संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास

त्रयोदश-खण्ड

पुराण

प्रधान सम्पादक

स्व. पद्मभूषण श्री बलदेव उपाध्याय

प्रो. श्रीनिवास रथ

सम्पादक

प्रो. गंगाधर पण्डा



उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास

त्रयोदश-खण्ड

पुराण

प्रधान सम्पादक

स्व. पद्मभूषण श्री बलदेव उपाध्याय

प्रो. श्रीनिवास रथ

सम्पादक

प्रो. गंगाधर पण्डा



उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास

त्रयोदश-खण्ड

पुराण

प्रधान सम्पादक

स्व. पद्मभूषण श्री बलदेव उपाध्याय

प्रो. श्रीनिवास रथ

सम्पादक

प्रो. गंगाधर पण्डा



उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

प्रकाशक :
प्रमोदकुमारपाण्डेयः
निदेशक :
उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-संस्थानम्, लखनऊ



प्राप्ति स्थान :
विक्रय विभाग :
उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, नया हैदराबाद,
लखनऊ-२२६ ००७
फोन : २७८०२५१, फैक्स : २७८१३५२
ई-मेल : nideshak@upsansthanam.org

प्रथम संस्करण :
वि.सं. २०६३ (२००६ ई.)
प्रतियाँ : ११००
मूल्य : ४२५/- (चार सौ पच्चीस रुपये)

मुद्रक : **शिवम् आर्ट्स,** निशातगंज, लखनऊ। दूरभाष : २७८२३४८, २७८२१७२

संस्कृत-वाङ्मय-बृहदितिहासं परिभाषिताष्टादशाश्वासम्।
मनसि विभाव्याकलितोपायाः श्रीयुतबलदेवोपाध्यायाः ।।



प्रवर प्रधान सम्पादक

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय

(संवत् १९५६-२०५६ : १८९९-१९९९ ई.)

प्रकाशकीय

'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मण स्मृतम्' ब्रह्माजी ने वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त सबसे पहले पुराणों का स्मरण किया। भारतीय संस्कृति तथा भारत के मूल स्वरूप की जानकारी पुराणों के अध्ययन के बिना सर्वथा अधूरी होती है। धार्मिक दृष्टि से पुराणों में वैदिक तत्त्वों को ही सरल संस्कृत श्लोकों के माध्यम से जन सामान्य को बताया गया है। वैदिक संहिताओं में विशेषकर ऋग्वेद में पुराण शब्द एक दर्जन से अधिक बार प्रयुक्त हुआ है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार 'पुराण' की व्युत्पत्ति है :- **'पुरा नवं भवति'** (अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नवीन होता है)। प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण पुराणों ने 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति पर चर्चा की है। पुराणों का प्राचीन इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, इसीलिए अनेक स्थानों पर 'इतिहास-पुराण' नाम का भी उल्लेख मिलता है। कुछ आलोचक इसी परिप्रेक्ष्य में 'महाभारत' को भी इतिहास कहते हैं।

वैदिक संहिताओं के साथ ही ब्राह्मण-ग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषद् तथा सूत्रग्रन्थों में पुराणों के अस्तित्व का, उनके अध्ययन का तथा उससे उत्पन्न होने वाले पुण्य का संकेत प्राप्त होता है। पुराण के लक्षण विषयक अधोलिखित श्लोक प्रायः सभी पुराणों में उपलब्ध है :-

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।

संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाश्यमान संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास के पुराण विषयक त्रयोदश खण्ड के प्रकाशन पर मैं इस खण्ड के लिए लेखन कार्य करने वाले उन समस्त विद्वान् लेखकों का आभार मानता हूँ, जिनके परिश्रम से ही यह ग्रन्थ अपना स्वरूप पा सका है। मैं इस खण्ड के प्रथम सम्पादक स्व. **प्रो. रामशंकर भट्टाचार्य** जी का आभारी हूँ, जिन्होंने तत्कालीन प्रधान सम्पादक के सहयोग से इस खण्ड का सम्पूर्ण प्रारूप तैयार कर अपने जीवन-काल में कुछ पुराण विषयक लेखों का सम्पादन भी किया।

साथ ही वर्तमान सम्पादक **प्रो. गंगाधर पण्डा** का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर इस खण्ड के लेखन और सम्पादन में विशेष अभिरुचि लेकर इस खण्ड को पूर्ण किया है।

जिनकी प्रेरणा और साधना से इस अट्ठारह खण्डों में प्रकाश्यमान 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास', विद्वान् पाठकों के समक्ष आ रहा है ऐसे पूज्य **स्व. बलदेव उपाध्याय** जो इस ग्रन्थ-माला के प्रवर-प्रधान-सम्पादक हैं उनके चरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ। उन्हीं की अपरोक्ष प्रेरणा से उनके प्रिय शिष्य **प्रो. श्रीनिवासरथ** जी प्रधान

सम्पादक के गुरुतर दायित्व का निर्वहण कर रहे हैं। मैं उनके प्रति भी आभार सहित प्रणाम निवेदित करता हूँ।

विद्वान्-लेखकों, सम्पादक तथा मुद्रक से सदैव सम्पर्क बनाकर इस कार्य को पूर्णता प्रदान कराने वाले संस्थान के अधिकारियों/कर्मचारियों को भी हार्दिक शुभकामना एवं साधुवाद देता हूँ। **'शिवम् आर्टस्'** के प्रबन्धक तथा उनके सहयोगियों को अमूल्य सहयोग हेतु धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में इस खण्ड के प्रकाशन में परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से जुड़े सभी महानुभावों का आभारी हूँ, जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है।

विद्वत्कृपाभिलाषी

महाशिवरात्रि सं. २०६३

प्रमोद कुमार पाण्डेय

निदेशक

निवेदनम्

उपाध्यायाय वन्द्याय बलदेवाय धीमते।
कृष्णज्येष्ठाय सोल्लासं प्रणामाञ्जलिरर्प्यते।।

सुविदितमेव विदुषां यथाधीतिबोधाचरणप्रचारण-विधिसंवर्धिता भारतीया विद्याभ्यसनसरणिः परामृष्टाऽभूत् कपटशताचारचतुरैः वैदेशिकैः शासनाध्यक्षैः। ततश्च राजभाषेति कृत्वाऽऽङ्ग्लभाषाप्रचारपरा प्राथमिक-माध्यमिक-स्नातक-स्नातकोत्तर-क्रमनियोजिता शिक्षणपद्धतिरासूत्रिता। नवजागरणोत्साहकरम्बितमतिभिः कैश्चन भारतीयैरपि समर्थिता सती सेयमभिनवा शिक्षानीतिः सुलभावकाशा सर्वत्र कृतास्पदा चाजायत। तदनु संस्कृतविद्यासु यथामति कृतश्रमैः कैश्चित् पाश्चात्यविपश्चिद्भिः ग्रथितानां तत्तद्विषयकसाहित्येतिहासग्रन्थानां पाठ्यग्रन्थतयाध्यापनं प्रावर्तत। तेषु च तत्तदभीष्टप्रामाण्याकलनपराः नैके वैदेशिका विद्वांसः भारतीयवैदुष्यमितिहासदृष्टिविकलमिति प्रख्यापयाञ्चक्रुः। अपरे च केचनाङ्ग्लसाम्राज्य-हितरक्षणनिरताः सन्तः भारतीयसाहित्यालोचनासु प्रभूततरं कार्पण्यमेवाऽऽविष्कुर्वते स्म। तथात्वे अस्मद्गुरुचरणाः श्रीमन्तः बलदेवोपाध्यायमहोदया एव महामनसां मदनमोहनमालवीयानां, स्वातन्त्र्यसिद्धिमन्त्रदीक्षागुरूणां श्रीबालगङ्गाधरतिलकमहाभागानां, भारतोत्कर्षगीताञ्जलि-पुलकितचेतसां श्रीरवीन्द्रनाथठाकुरमहोदयानां, सत्याग्रहग्रहिलानां श्रीमन् मोहनदासगान्धीमहाभागानां, इतरेषामपि स्वाराज्यार्जनपथिकानां स्वदेशमहिमोत्थान-प्रयतनपदवीमवलम्ब्य भारतीयविद्येतिहासादिविषयेषु प्रमाणानुसन्धानपुरःसरं याथार्थ्योपदेश-विधिना बहूपकृतवन्तः अस्मादृशानां छात्राणाम्। निगमादिभारतीयविद्यासु स नास्ति विषयः यो न नीतः शास्त्रदृशा विवेचनपथं श्रीमदुपाध्यायवर्यैः।

उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानेन सुचिरमुपकल्पितानां संस्कृतवाङ्मयबृहदितिहासग्रन्थानां दुर्वहं निर्मितिधुरं निजायुषः द्वानवतितमे वर्षेऽपि वोढुं सोत्साहमङ्गीकृतवन्तः श्रीमदाचार्यबलदेवोपा-ध्यायवर्याः। अनुपदमेव विद्यासंख्ययाष्टादशभागविभक्तमुपकल्प्य सामान्यजनताबोधगम्यं महाग्रन्थं प्रतिभाजुषः स्वशिष्यान् तत्तत्सम्पादनकर्मणि विनियुक्तवन्तः। कतिपयैरेवाब्दैः करबाणनभोनेत्रमितवैक्रमवत्सरवसन्तपञ्चम्यां भूमिकालेखपुरःसरं प्रकाशतामनायि वेदसंज्ञकः प्रथमः खण्डः। तदनु चतुर्भिरेववर्षैः निजायुषः शततमाब्दप्रवेशेन समं महाग्रन्थस्यैकादशखण्डानां प्रायशः पूर्णतामधिगतवद्भिः आचार्यवर्यैः श्रीभोलाशङ्करव्याससम्पादितार्षकाव्यखण्डस्य विमर्शहृद्या भूमिका श्रीजगन्नाथपाठकसम्पादिताधुनिकसंस्कृतसाहित्यखण्डस्याञ्जसैवालिखिता पुरोवाक् चेति लेखद्वयं युगपदलेखि ऋतुबाणनभोनेत्रमितवैक्रमवत्सर-गुरुपूर्णिमापर्वणि। तत्र चार्षकाव्यखण्ड-भूमिकायां- ''न खलु महाभारतं महाकाव्यं प्रत्युत इतिहासः इति प्रसङ्गेन- ''नानाविधेषु प्रपञ्चेषु अनासक्तः सन् लोकः परमात्मज्ञानस्वरूपं मोक्षं प्राप्नुयादित्येव महाभारतस्य विद्यते

मूलशिक्षा" इति व्याख्यानपूर्वकं काव्यशास्त्रखण्ड- सम्पादकं श्रीवायुनन्दनपाण्डेयमहोदयं स्वमनोगताभिराशीर्वचोभिरेवाभिषिच्य श्रीमदाचार्यवर्याः परब्रह्मसायुज्यपदवीपथिकत्वमगाहन्त।

उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानप्रयुक्तः संस्कृतवाङ्मयबृहदितिहासमहाग्रन्थस्य अष्टादशखण्डेषु प्रकाशनोद्योगः मूलत एव नवभिः पद्यैः "ज्ञानमहासत्रम्" इति निरूपितमभूदाचार्यचरणैः। अधुना प्रासङ्गिकतयौचित्यमावहति तदनुस्मरणम्।

ज्ञानमहासत्रम्

"संसारेष्वप्रतिमं सम्पूर्णगौरवैर्जुष्टम्।
सर्वविधानैः पुष्टं प्रणमामो संस्कृतेषु साहित्यम्।। १ ।।

स्वातन्त्र्यानन्तरमथ तदिदं किञ्चिद्विनिर्मलं ज्योतिः।
समुदेत्यन्तःसलिलं समुत्सुकं दर्शनं दातुम्।। २ ।।

संस्थानसंस्थया या संस्कृतसेवा सुसंदृब्धा।
उत्तरदेशविभूषातयेदमारब्धमथ महासत्रम्।। ३ ।।

अष्टादशभागेष्वथ सुबृहत्काय-प्रकृष्टेषु।
संस्कृतसाहित्यस्था दीप्ततरा काऽपि चित्रवियदालिः।। ४ ।।

प्रत्येकस्मिन् भागे विद्यासंख्यामहत्त्वसुख्याते।
मूर्धन्या विद्वांसः सश्रममेतन्निर्वर्तयन्त्यार्याः।। ५ ।।

इतिहासमहाग्रन्थः सोऽयं वा कल्पनातीतः।
आद्यात्कालादधुनापर्यन्तं सर्वमामृशति।। ६ ।।

उत्तरमुत्तरमेतत्सर्वं संस्कृतविरुद्धानाम्।
मित्रं मित्रं चैतत्सदनुष्ठानं वरेण्यानाम्।। ७ ।।

गुरुगुरुरूपं निखिलं सहस्रशो जागरूकाणाम्।
आगामिनि सन्ताने रिक्थं गीर्वाणवाणीनाम्।। ८ ।।

दूरस्थान् विज्ञान्प्रति सारल्यैर्वाऽथ गाम्भीर्यैः।
निखिलं संस्कृत-वाङ्मयमालोडितवैभवं जयति"।। ९ ।।

– बलदेवोपाध्यायः।"

इत्याकलयाञ्चक्रुः सर्वज्ञा बलदेवोपाध्यायाः।
तेषामेवाशीर्भिः समुपैष्यति पूर्णतां सत्रम्।।
पुराणैतिह्यनामायं भक्त्या ग्रन्थस्त्रयोदशः।
विधात्रे सर्वखण्डानां सप्रणामं निवेद्यते।। इति शम्

श्रीनिवास-रथः
''श्रीलीला'', १२ उदयन मार्गः
उज्जयिनी।

विजया एकादशी,
संवत् २०६३
१३/०२/२००७ ई.

अस्मदीयम्

वेदोत्तरकालिक भारतीय मनीषा का उत्कर्ष पुराण साहित्य में प्रतिफलित हुआ है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य की विभाजिका रेखा का निर्धारण प्रायः वैदिक या छान्दस और संस्कृत के रूप में अष्टाध्यायी के द्वारा सुपरिभाषित दृष्टिगोचर होता है। पाणिनि अपने पूर्वजों का भी स्मरण करते हैं। स्पष्ट है कि वैदिक वाङ्मय और लौकिक संस्कृत का समानान्तर अस्तित्व संहिता काल के उपरान्त उभरता दिखाई देता है। ब्राह्मणग्रन्थ और आरण्यक उपनिषदों के युग में इतिहास-पुराण-प्रवर्तित गाथाएँ और आख्यान प्रासंगिक हो चले थे। सूत इस परम्परा के संवाहक थे और उनकी लोकप्रियता निर्विवाद है। इतिहास तथा पुराण को स्वयं उपनिषद् पंचम वेद स्वीकार करते हैं।

'संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास' के अन्तर्गत तीसरे खण्ड 'आर्षकाव्य' में आदि काव्य के रूप में वाल्मीकिविरचित रामायण तथा इतिहास के रूप में महर्षि वेदव्यास के द्वारा ग्रथित महाभारत पर विद्वन्मनीषी परमभागवत आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय जी का सुस्पष्ट विवेचन पुराण साहित्य को महाभारत से पृथक् निर्धारित करता है। 'इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' का निर्देश महाभारत से ही प्राप्त हुआ है और उसमें इतिहास तथा पुराणों को अलग-अलग इकाई निरूपित किया गया है। यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि महाभारत और पुराणों के प्रवक्ता स्वयं कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं।

पुराणों के विपुल कलेवर और अनगिनत आख्यानों की रचना को काल खण्ड के किसी सीमित दायरे में बाँधना दुष्कर है। आख्यानों के आकार निरन्तर बढ़ते गये हैं। लिपिबद्ध होने के पूर्व भी पुराणों के कलेवर समृद्ध होते रहे होंगे। परन्तु यह बात भी भारतीय जीवन दर्शन का एक विचारणीय बिन्दु है कि हर युग का रचनाकार स्वयं वेदव्यास से एकाकार हो कर ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या प्रमाणित करता रहा। वक्ता स्वयं को अपने वक्तव्य से पृथक् नहीं देखता। यह अद्वैत है।

पुराण आज भी सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हैं। हमने एक ही नगर में पाँच विभिन्न स्थानों पर भागवत की पाँच कथायें एक साथ प्रवर्तित होते देखी हैं। कथावाचक आज भी अपने व्यक्तित्व को प्रायः उस व्यास-पीठ को समर्पित करते हैं जिस पर बैठकर वे पुराणों का प्रवचन करते हैं। श्रीमद्भागवत के अलावा गरुडपुराण भी बहुशः लोकप्रिय है। पुराण खण्ड के अन्तर्गत पाठकों को अवश्य ही उस महनीय व्यक्तित्व का पग-पग पर परिचय प्राप्त होगा जिन्हें हम भगवान् व्यास के रूप में स्मरण करते हैं। पुराणों में लोकमंगल की भावना के साथ उस विराट् व्यक्तित्व का साक्षात्कार होता है जो समाज के उस छोर पर

विराजमान है, जहाँ किसी गाँधी या विवेकानन्द की दृष्टि ही उन्हें देख पाती है। व्यास की वाणी में दीन हीन उपेक्षित और असहाय मानव की पीड़ा झाँकती है, जिसके लिये भगवान् भी अवतार लेते हैं।

डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन् ने इस बात को रेखांकित किया है कि पुराणों ने सत्य को कथा और पौराणिक आख्यानों में संपुटित कर सर्व साधारण जन-समुदाय तक पहुँचाया है। पीढ़ी दर पीढ़ी भारतीय जन मानस में दार्शनिक चिन्तन जगाने का कठिनतम कार्य पुराणों ने सहज सम्पन्न कर दिखाया है। पर्यावरण, प्रदूषण तथा सामाजिक न्याय की ज्वलन्त समस्याओं पर पुराण साहित्य का प्रखर चिन्तन आज के सन्दर्भ में भी हमारे लिये जन-जागृति का माध्यम बन सकता है।

वेदव्यास को हम व्यक्ति के रूप में देखें या हमारी अविच्छिन्न परम्परा के प्रतीक के रूप में देखें, वे कहते हुए आज भी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं कि 'मैं यहाँ दोनों हाथ उठाकर चीख रहा हूँ और कोई भी मेरी बात नहीं सुन रहा है' - **"ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।"** अस्तु, हम भारत की आत्मा की तरह भुवन के कण-कण में समाहित उस अमूर्त रूप से प्रत्यक्ष विभूति को अपनी प्रणामांजलि अर्पित करते है-

कृष्णद्वैपायनं वन्दे व्यासं सत्यवतीसुतम्।
जयवेदपुराणानां समासो यस्य विग्रहः।।

विव्यास वेदवचसां कमनीयराशिं
तेने नवद्वयपुराणमहार्णवं च।
पृथ्वीमुदाहरत भारतभारती य-
स्तत्पादपङ्कजरजोनिकरा जयन्ति।।

महापुराण, उपपुराण, औपपुराण के अलावा कुछ अन्य पुराण कल्प स्थलपुराणों के विस्तृत विवेचन से सम्पन्न पुराण खण्ड के सम्पादक हमारे प्रिय शिष्य **डॉ. गंगाधर पण्डा** संयोगवश उसी विश्वविद्यालय में पुराण विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित हैं जहाँ कभी हमारे गुरुवर आचार्य **श्री बलदेव उपाध्याय** पुराणों के अध्ययन, अध्यापन और शोध के विधाता थे। मैं आयुष्मान् गंगाधर पण्डा तथा उनके सहयोगी समस्त विद्वान् लेखकों को साधुवाद अर्पित करता हूँ जिनके वैदुष्यपूर्ण आलेखों से यह पुराणखण्ड संग्रहणीय बन सका है।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के माननीय अध्यक्ष जिस निष्ठा और समर्पण के भाव से इस गौरव अनुष्ठान को सम्पन्न कर रहे हैं वह हमारे लिये अवश्य ही गर्व का विषय है। संस्कृत संस्थान के यशस्वी निदेशक **श्रीयुत प्रमोद कुमार पाण्डेय** तथा उनके सहयोगी

डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदी जिस मनोयोग से लेखक, सम्पादक तथा प्रधान सम्पादक वर्ग को प्रतिपल की प्रगति से जोड़ते रहे हैं-वह सभी के लिये प्रेरणास्पद है। मुझे पूरा विश्वास है कि आचार्य प्रवर उपाध्याय जी के आशीर्वाद सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिये शिवम् आर्टस् के नियन्तागण के साथ सभी के लिये मंगलमय और वरदायी सिद्ध होंगे।

विजया एकादशी
संवत् २०६३
१३-२-२००७

श्रीनिवास रथ
'श्रीलीला'
१२ उदयन मार्ग
उज्जैन

शिवसङ्कल्पः

विद्यास्थानान्यष्टादश इति काश्चन पारम्परिकपृष्टभूमिर्वर्तते। सांख्यदर्शने पञ्चविंशतितत्त्वानि प्रतिपादितानि। तत्त्वतोऽष्टादश एवावतिष्ठन्ति। मूलतत्त्वं प्रकृतिं पुरुषं च विहाय पञ्च-भूतानामवस्थितिस्तत्कारणेषु पञ्चतन्त्रमात्रेष्वन्तर्भावमुररीकृत्य यदि विचार्यते तद्दूर्यवशिष्यन्तेऽष्टा-दशतत्त्वानि। एतन्मनसि निधाय पूर्वसूरिभिरष्टादशेति शुभा संख्याऽङ्गीकृता। अतो गीतायामध्यायाश्चाष्टदश, महाभारतस्य पर्वाण्यपि सन्त्यष्टादश। अतो मन्यते आचार्यबलदेव उपाध्यायावर्यैः संस्कृतवाङ्मयबृहदितिहासस्य विद्यासंख्यया ऽष्टादशेति स्थिरीकृता।

विद्यास्थानेष्वेशतेषु पुराणाध्ययनस्य कीदृशं महत्त्वं वरीवर्ति, तत्तु वैदिक-वाङ्मयानुशीलनेन ज्ञातुं शक्यते। उक्तं च शतपथ ब्राह्मणे-

इतिहासपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते (शतपथ ११.५.७.९)

एवं चान्यप्रसङ्गेऽपि

पुराणैरिमं यजमानं राजभिः साधुकृद्भिः समापतेति।

(शतपथ - १३.४.३.३)

यतः वेदार्थो दुरूह आसीत् ततः भगवता व्यासेनादौ महाभारतमुदाहरता शास्त्रमेतल्लोकसामान्यं कृतम्। उक्तं च **पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्ना प्रकाशिता।** (आदि पर्व १/८६)

पुराणानि प्रथमतया रचितानि, उत महाभारतमिति सत्यां जिज्ञासायां महाभारतमेवादि-पर्वणि प्रमाणमुपस्थापयति यत् -

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम्।।

कौटिल्य इतिहासपुराणं बहुमनुते। तस्मादसौ इतिहासं वेद कोटावुपस्थाप्यति-

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदः

अर्थशास्त्रम् - १/३

राज्ञः कुमार्गपतितान् नयमार्गे उपदिष्टुमन्यैः शास्त्रैः साकमितिहासपुराणेऽपि चान्यतमे आस्तां तदप्यर्थशास्त्रे सूचितम्।

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत् प्रियाश्रितः।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्।।

अर्थशास्त्रम् ५/३

पुरा पुराणानां तथा प्रामाण्यमासीद् धर्मशास्त्रकाराः स्व स्वधर्मशास्त्रीयसिद्धान्तानुपस्थापयितुं पुराणेभ्य एव दृष्टान्तान्युदाहरणपूर्वकमुपकल्पयन्ति। यथा च मनुः -

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यातानीतिहासाश्च पुराणानि खिलानि च।।

मनुस्मृतिः ३/२३२

याज्ञवल्क्योऽपि मतमेतत्समर्थयति।

यतो वेदाः पुराणं च विद्योपनिषदस्तथा।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यत् किञ्चिद् वाङ्मयं जगत्।।

याज्ञ. स्मृ. ३/१८६

एतत्पुराणवाङ्मयमष्टादशमहापुराणोपपुराणौपपुराणस्थलपुराणानि च क्रोडीकरोति। माहात्म्यानि सन्ति नैकानि महत्त्वपूर्णस्थानानां कथानां च वैशिष्ट्यपरकाणि, एतेषां पुराणानां स्थानकालवक्तृश्रोतृणां विषयेऽस्मिन् ग्रन्थे तत्तत्पुराणविशेषविमर्शप्रसङ्गे प्रतिपादितानि सन्ति तथ्यानि। महापुराणानीतरपुराणानां स्रोतांसीति नास्ति कस्यापि विप्रत्तिपत्तिः। पुराणपुरुषस्याङ्गानि महापुराणानि विविधानीति पाद्मे वर्णितानि।

पञ्चलक्षणं पुराणं सुविदितमस्ति। श्रीमद्भागवते द्वितीये, द्वादशे च दशलक्षणानि प्रपञ्चितानि वर्ण्यन्ते। ग्रन्थेऽस्मिन्नुपक्रमप्रसङ्गे सर्वमेतत्पुष्कलेन समीक्षितम्। पिष्टपेषणभिया तेषां समेषां विचारमन्थनं कर्तुं नाद्रियते मनः। तथापि पुराणलक्षणप्रतिपादितविषयानतिरिच्य सन्ति प्रासङ्गिकानि तथ्यानि वर्णितानि। तानि विद्यन्त आख्यानोपाख्यान-व्रत-तीर्थ-दान कर्मकाण्डेतिहासभूगोलसङ्गीतायुर्वेदधनुर्वेदज्योतिषशास्त्रव्याकरणनाट्यशास्त्रार्थशास्त्र प्राचीनराजशास्त्रादीनि। उक्तं च वैष्णवे-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणं संहितां चक्रे पुराणार्थविशारदाः।।

विष्णु पु. ३/६/१५

यद्यपि सनातनपरम्परानुसारेण त्रयस्त्रिंशत्कोटिपरिमिताः देवाः परिगणितास्तेषु सृष्टिस्थितिलयात्मककार्यसम्पादनाय त्रयो देवाः सन्ति प्रमुखाः। एतेनैव क्रमेण पुराणानां क्रमोऽपि विद्यते। ब्रह्मसम्मितानि पुराणानि राजसिकानि विष्णुपरकाणि सात्त्विकानि, शिवसम्बद्धानि च तामसानि सन्ति। पुराणसाहित्यमपि पञ्चदेवोपासनारहस्यमुपस्थापयति। आद्यशङ्कराचार्योऽपि विभिन्नाभिः स्तुतिभिः पञ्चदेवोपासनं पुष्णाति। मत्स्यपुराणानुसारेणापि पञ्चदेवाः सन्ति-

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।।

सिद्धान्तमिममुद्दिश्य-आदित्य-गणनाथ-देवी-सम्बन्धीन्युपपुराणानि रचितानि यानि महापुराणानां परवर्तीनि सन्तीति डॉ. आर.सी. हाजरा महोदया आमनन्ति। उपपुराणौपपुराणानां निबन्धलेखकैरप्यस्मिन्ननुपमे ग्रन्थे सुविस्तरं तत्तत्प्रभागेषूदञ्चितानि। उपपुराणेषु सूर्य सम्बन्धीनि सौर-भास्करादित्यनामभिस्त्रीणि, देवीतत्त्वोन्मेषीणि कालिकाऽम्बिका - देवीभागवत-देवी -भगवती भागवतोपपुराणानि पञ्च, गणेशोपपुराणं मुद्गलं गणेशभागवत चेत्यादीनि सन्ति बहुलानि पुराणरत्नानि।

ब्रह्माविष्णुमहेश्वरानधिकृत्य यानि महापुराणानि सन्ति तेषां परिचयो विशदरूपेणानन्तरं प्रदत्तोऽस्ति। गणेशभास्कराम्बिका अधिकृत्य किञ्चित्प्रास्ताविकं विवक्षुरस्मि।

गणेशोपपुराणम्

गणेशं मुद्गलं विनायकमाहात्म्यं च विनायकस्य जन्मकर्मपूजामाहात्म्यं विवृणोति। डॉ. आर.सी. हाजरामहोदयाः पुराणोपपुराणपर्यालोचनप्रसङ्गे गणेशपुराणं राजसिक-पुराणत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति।

गणेशाख्यं पुराणमादौ ब्रह्मणा व्यासाय, व्यासेन भृगवे, भृगुणा च सोमकान्ताय श्रावितम्-

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं व्यासायामिततेजसे।
ततो व्यासेन कथितं भृगवे च महर्षये।।
भृगुणा सोमकान्ताय गणेशचरितं महत्।।

डॉ. ब्रजेशकुमारशुक्लमहोदयाः स्वग्रन्थे पुराणसाहित्यादर्शे सूचितवन्तो यदयं ग्रन्थो मुम्बईनगरे प्रकाशितो, यस्य चत्वारः खण्डाः सन्ति उपासना-कृत-पूर्वोत्तरनामभिः। समालोचका अस्य रचनास्थानं मरहट्टदेशं स्वीकृत्यात्यन्तमर्वाचीनं चतुर्दशशताब्दीकाल-विरचितमामनन्ति।

देव्युपपुराणम्

अस्मिन् पुराणे १२८ अध्यायाः ७५०० श्लोकाश्च सन्ति। दिल्लीस्थ श्रीलालबहादुरशास्त्रिसंस्कृतविद्यापीठे प्रकाशनं जातम्। उक्तं च-

चतुष्पादविभागेन यथायुगक्रमागता।
देवी सर्वसुखावाप्तिं प्रयच्छन्ति प्रपूजिता।।

देवीपुराणे. १/३०

एते पादाः सन्ति क. त्रैलोक्यविजयपादः, ख. त्रैलोक्याभ्युदयपादः, ग. शुम्भनिशुम्भमथनपादः, घ. देवासुरयुद्धपादश्च। प्रतिपादसुविशदं चर्चा देवीपुराणप्रपञ्चप्रसङ्गे विवृतस्ति।

एतत्पुराणस्य महत्त्वं किमस्ति तद् बल्लालसेन दानसागरे उपोद्घातप्रसङ्गे विवृणोति-

तत्तत्पुराणोपपुराणसंख्याबहिष्कृतं कल्मषकर्मयोगात्।
पाखण्डशास्त्रानुमतं निरूप्य देवीपुराणं न निबद्धमत्र।।

कालिकोपपुराणम् - स्कन्दपुराणानुसारेण शाक्तपुराणद्वयमस्ति।

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।

देवीभागवत-देवीपुराण-महाभागवत-कालिकापुराणाख्यानि चत्वारि सन्ति प्रमुखानि शाक्तपुराणानि। एतेषु पुराणद्वयं किमिति शाक्तं तद् वक्तुं विद्वांस इदानीमपि चर्चां विदधति। केचन ब्रुवन्ति यत् मार्कण्डेयस्य दुर्गासप्तशती, ब्रह्माण्डस्य ललितोपाख्यानं च, देवी रहस्यं समुन्मीलयतः।

डॉ. हाजरामहोदया अस्य पुराणस्य 'एकनवतिः अध्यायाः सन्तीति स्वीकुर्वन्ति। परन्तु चौखम्बासंस्कृतसंस्थानवाराणसीप्रकाशनेऽस्य नवतिरध्यायाः विद्यन्त इति। सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य सरस्वतीभवनपुस्तकालयेऽस्य पुराणस्य काचिद् भिन्ना एका पाण्डुलिपिरूपलब्धाऽस्ति, इदानीं यावन्न प्रकाशितास्ति। अत्र देव्यास्तीर्थस्थानानि वर्णितानि।

रेणुका सूकरः काशी कालीकालौ बटेश्वरौ।
कालिञ्जरो महाकाल ऊषरा नवमुक्तिदाः।। का.पु. ४०/७४

वैष्णवपुराणानि

महापुराणेषु मत्स्य-कूर्म-वराह-वामनाख्यानि पुराणानि भगवतोऽवतारसम्बन्धीनि साक्षाद्रूपेण सन्ति। नारद-ब्रह्मवैवर्त्त-पद्म-विष्णुश्रीमद्भागवतानि विष्णोर्महिमानं वर्द्धयन्ति। वैष्णवतत्त्वस्य महत्त्वं रहस्यं च पुष्णान्ति।

ब्रह्मवैवर्तपुराणे राधादेव्या अवधारणा तस्या व्युत्पत्तिस्तु प्रणिधानयोग्या -

राधेत्येव संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता।।
रा च रासे च भवनाद् धा एव धारणादहो
हरेरालिङ्गनादारात् तेन राधा प्रकीर्तिता।

ब्र.वै.पु. कृष्णजन्मखण्डः १७/२२३-२२४

अर्थाद् 'राधा' इत्यस्यार्थः 'संसिद्धा' 'नित्या' वा। 'रा' इत्यस्यार्थो 'दानम्', 'धा' इत्यस्यार्थ 'आधानम्'। अनया व्युत्पत्त्या राधाशब्दो निर्वाणस्य दात्री इत्यर्थको भवति। अपरोऽपि कश्चन चमत्कारार्थो भवति - रासे भवनाद् भगवन्तं कृष्णं धारणाद् वा 'राधा' भवति।

विष्णुपुराणं भगवन्तं विष्णुं सगुणं निर्गुणं च भावयति। स सूक्ष्मोऽपि विराडपि -

सृष्टिस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं संप्रवर्तते।
गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्य गुणं महत्।।

वि.पु. १/२२/४१

यत्किमपि स्थावरजङ्गमात्मकं जगत्परिदृश्यमानं भवति तत्सर्वं भगवच्छरीरम्, नद्यस्तस्य नाड्यः, रोमाणि तरवश्च सन्ति।

त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि।
रोमाण्युद्भिज्जातीनां यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृतः।।

भाग.पु. २/६१/४

एतत्सामान्यपरिवर्तनं कृत्वा विष्णुपुराणं प्रतिवस्तु भगवत्स्वरूपं पश्यति हरिरेव जगत् जगदेव हरिः हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
ततो जगज्जगत् तस्मिन् स जगच्चाखिलं मुने।।

वि.पु. १/२२/६४

सात्त्विकपुराणेषु श्रीमद्भागवतं निकषायमाणं भूत्वा वैष्णवानामानन्दधनपदं धत्ते। प्रशस्तिपरकः श्लोक एवं विभाति।

धनञ्जये हाटकसम्परीक्षा रणाजिरे शस्त्रभृतां परीक्षा।
विपत्तिकाले गृहिणीपरीक्षा विद्यावतां भागवते परीक्षा।।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेदिति यत्पुराणवाक्यं पुराणरचनाकर्म संपोष्य पुराणानां प्रामाण्यं पुष्टिकरोति तत्र केवलमेव भागवतं सकलशास्त्राणां मूर्ध्नि तिष्ठति। भगवतोऽयं भागवतः, भगवत इदं भागवतम् ; इयं संहिता च भागवती। अतस्त्रिषु लिङ्गेषु सार्थकतां भजन्तं भागवतं विद्वांसः श्रीकृष्णस्य समाधिभाषात्वेन श्रद्धया विभूषयन्ति।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तत् चतुष्टयम्।।

शुद्धाद्वैतमार्तण्डः पृ. ४६

श्रीमद्भागवतस्य प्रथमे श्लोके केवलं 'सत्यं' गीयते 'सत्यं परं धीमहि' इति वाक्यं मन्त्ररूपं सदधिगायत्रीमन्त्रधत्तोसकलार्षपरम्परासमुन्नायकग्रन्थानां वेद-वेदाङ्गेषु प्रतिपादितम् ''ऋतम्'' आधाररूपं भवति। जन्माद्यस्य इति भागवतस्य प्रथमश्लोकस्योपरि नैका व्याख्या

दृश्यन्ते। श्रीमद्भागवतमहत्त्वं श्रेष्ठत्वं च प्रतिपादयन्ती तट्टीकासम्पत्तिरिदानीमपि नभश्चुम्बिनी राराजते। अद्वैत-द्वैत-द्वैताद्वैत-माध्व-विशिष्टाद्वैत-शुद्धाद्वैतगौडीयपरम्परासु स्वस्वसम्प्रदायसिद्धान्तान् संपोष्येयं टीकासम्पत्तिर्भारतीयवाङ्मयस्या-धारभित्तिः सञ्जाता।

पुराणवाङ्मयस्य बृहदितिहासग्रन्थरत्ने केवलं सुविशदं पुराणानां परिचयात्मक इतिहासः प्रदर्शितः, किन्तु पुराणानां टीकासम्पत्तेः विवरणं तथा न दत्तमस्ति। अतःस्थालीपुलाकन्यायेन केवलं श्रीमद्भागवतस्य काश्चन टीका अत्र उल्लिख्यन्ते।

अद्वैतसम्मताटीका

श्रीधरस्वामिनो 'भावार्थदीपिका' भाषां भावमर्थञ्च विभावयति। जगद्गुरुं कृष्णं केवलं ब्रह्मरूपं मत्वा जीवं तदंशभूतं प्रमाणयति। गङ्गातीरे बिन्दुमाधवसन्निधौ श्रीनृसिंहानुकम्पया टीकेयं तेन व्यरचि इति प्रमाणं लभ्यते।

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः।।

गुरुं परमानन्दं सन्तोष्य गुह्या भागवती टीका तेन श्रीमद्भगवद्गीतायां निरमायीति ज्ञायते।

परमानन्दपादाब्जरजः श्रीधरिणाऽधुना।
श्रीधरस्वामियतिना कृता गीतासुबोधिनी।।

सुबोधिनी टीका, १८ अध्याये

विशिष्टाद्वैती टीका

विशिष्टाद्वैतदर्शनस्याचार्यः श्रीरामानुजाचार्यः। परं तेन श्रीमद्भागवतस्योपरि टीका न लिखिता। तदनुयायिनः शिष्याः टीकामवश्यं रचयामासुः। तेषु सन्ति-

श्रीसुदर्शनसूरिः - शुकपक्षीया टीका

वीरराघवाचार्य - भागवतचन्द्रचन्द्रिका

द्वैतमतटीका

विजयध्वजः - पदरत्नावली

इतः पूर्वं द्वैतमतस्य आचार्य श्रीमध्वाचार्यः श्रीमद्भागवतस्य रहस्योद्घाटनं कृत्वा भागवततात्पर्यनिर्णयग्रन्थं रचितवान् आसीत्। मध्वाचार्यस्य ग्रन्थमुपजीव्यरूपेण स्वीकृत्य तेनेयं टीका कृतेति प्रमाणमुपलभ्यते।

आनन्दतीर्थविजयतीर्थौ प्रणम्य मस्करिवरवन्द्यौ।
तयोः कृतिं स्फुटमुपजीव्य प्रवच्मि भागवतं पुराणम्।।

शुद्धाद्वैतटीका - सुबोधिनी

आचार्यबल्लभसम्प्रदायः शुद्धाद्वैतसम्प्रदाय इत्युच्यते। श्रीमद्भागवतस्य दशमस्कन्धो भगवतः परब्रह्मणो हृदयत्वेन कल्प्यते। अतो मन्ये बल्लभाचार्येण दशमस्कन्धमुररीकृत्य गूढा विवेचनात्मिका टीका कृता। अस्यामेव परम्परायां गिरिधरमहाराजेनापि काचिदपूर्वा टीका विहिता।

द्वैताद्वैती टीका

अस्य दर्शनस्य प्रथमाचार्यस्य श्रीनिम्बार्कस्य काचिट्टीका नोपलभ्यते। किन्त्वेतत्सम्प्रदायस्य शुकदेवाचार्येण सिद्धान्तप्रदीपनामधेया टीका विरचिता।

गौडीयवेदान्ती टीका (श्रीचैतन्यसम्प्रदायस्य)
बृहद्-वैष्णवतोषिणी - सनातनगोस्वामी
क्रम-सन्दर्भः - जीवगोस्वामी
सारार्थ-दर्शिनी - विश्वनाथचक्रवर्ती
हरिभक्तिरसायनम् - श्रीहरिः

एवं प्रकारेण विष्णुपुराणस्य देवीभागवतस्य च विद्यन्ते टीकासम्पत्तयः।

उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानेन कालिदासोहीरितरं 'द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः' न्यायेन पुराणानां परिचयस्तेषामैतिह्यं च सन्धातुं 'संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास' लेखनयोजनासु पुराणखण्डकल्पना कृता। मदुपरिभारोऽयमर्पित इति कृत्वा संस्थानस्याधिकारिणोः निदेशकश्रीप्रमोदकुमारपाण्डयमहोदयस्य, सहनिदेशक डॉ. चन्द्रकान्तद्विवदिनश्च कार्तज्ञं विभर्मि।

उपसंहारः

यैर्विद्वद्भिः पुराणखण्डे लेखाः लिखिताः साधुवादवचोभिस्तेषां पौनःपुन्येन सुमङ्गलं कामये। नव नवनिर्मितीराधातुं तेषां सुमतयो वर्धन्तामिति श्रीविश्वनाथचरणयोः प्रणतिमर्पयामि।

मम मार्गप्रदर्शक-भाग्यनिर्मातारश्च सन्ति पद्मश्रीविभूषिताः प्रो. **वि. वेङ्कटाचलम्-**महाशयाः, महाकवयो महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानस्योपाध्यक्षाः **प्रो. श्रीनिवासरथमहोदयाश्च**। तेषामाशीर्वादेन एव ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः। सविशेषं बहुमानपुरःसरमस्मद्गुरुवर्यान् प्रधानसम्पादकवर्यान् भृशं स्मृत्वा नतिततिपूर्वकं कृतकृत्यतां विनिवेदयामि। राष्ट्रपतिसम्मानेनालङ्कृताः सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य पूर्वप्रतिकुलपतयः

प्रो. शिवजी-उपाध्यायाः मां सदैव एतादृशकर्मणि प्रेरयन्ति तेभ्योऽपि विनतिपूर्वकं सपर्यां समर्पयामि।

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटियुगधारिणे नमः।।

विदुषां वशंवदो

गङ्गाधर पण्डा
आचार्योऽध्यक्षश्च पुराणेतिहासविभागे
सङ्कायाध्यक्षचरः साहित्यसंकायस्य
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

शिवसंकल्प

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्।।

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में महर्षि व्यास अन्यतम हैं। वे वेदों के व्यवस्थापक एवं पुराणों के कर्ता रहें। भगवान् शङ्कराचार्य द्वापरयुग एवं कलियुग के बीच में व्यासजी का समय मानते हैं (ब्रह्मसूत्र भाष्य ३.३.३२)। इनका वासस्थान बदरीवन था। अतः वे बादरायण नाम से प्रसिद्ध रहे। द्वीप में निवास करने से द्वैपायन नाम भी उनका पड़ गया है। पुराणों में उन्तीस व्यासों के नाम पाये जाते हैं। १. ब्रह्मा २. मातरिश्वा ३. वायु ४. शुक्र ५. बृहस्पति ६. विवस्वान् ७. यम ८. इन्द्र ९. वसिष्ठ १०. सारस्वत ११. त्रियामा १२. शरद्वान् १३. त्रिविष्ट १४. अन्तरिक्ष १५. वार्षि १६. त्रयारण १७. धनञ्जय १८. कृतञ्जय ९. भारद्वाज २०. गौतम २१. निर्यन्तर २२. गजश्रवा २३. सोमशुष्क २४. तृणबिन्दु २५. वाल्मीकि २६. शक्ति २७. पराशर २८. जातुकार्य २९. द्वैपायन।

देवी भागवत के अनुसार अट्ठाइस व्यासों के नाम इस प्रकार हैं।

१. स्वयंभू, २. प्रजापति, ३. उशना, ४. बृहस्पति, ५. सविता, ६. मृत्यु, ७. मधवा, ८. वसिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रिधामा, ११. त्रिवृष, १२. भरद्वाज, १३. अन्तरिक्ष, १४. धर्म, १५. त्रय्यारुणि, १६. धनञ्जय, १७. मेधातिथि, १८. व्रती, १९. अत्रि, २०. गौतम, २१. हर्यात्मा, २२. वाजश्रवा, २३. अमुष्मायण, २४. तृणविन्दु, २५. भार्गव, २६. शक्ति, २७. जातुकर्ण्य, २८. कृष्णद्वैपायन (दे.भा. १।१।२६-३३) इसी प्रकार तीन चार नामों के परिवर्तन के साथ प्रायः यही नाम विष्णुपुराण में भी आये हैं।

वाल्मीकि के आदिकाव्य के बाद व्यासजी के महाभारत एवं पुराण वाङ्मय ही सर्वोत्कृष्ट हैं इसमें विद्वानों में मतभेद नहीं हैं। इसीलिये व्यास जी के बारे में कहा गया है-

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनःशम्भुर्भगवान् बादरायणः।।

अर्थात् व्यास जी चतुर्वदन-रहित ब्रह्मा हैं, चतुर्भुज-रहित द्विबाहु हरि हैं एवं मस्तक में चन्द्र-रहित शम्भु हैं। उन्होंने समस्त वेदराशि का मन्थन करके वाल्मीकि रामायण के सारभूत अंश को लेकर पुराण वाङ्मय की रचना कर अपने प्रियतम शिष्य रोमहर्षण को सौंप दिया एवं पुराण वाङ्मय का प्रचार प्रसार होता गया, जो आज भी नगर-नगर गाँव-गाँव में किसी न किसी रूप में विद्यमान है, जिसका उल्लेख अन्तःसाक्ष्य के रूप में पद्मपुराण में मिलता है-

कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे।।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्।।

पद्मपु. सृष्टि. ५१-५२

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् (महाभारत १/१/६८) से पुराण वाङ्मय की रचना का उद्देश्य स्वयं ज्ञात हो जाता है। वेदों को पढ़कर उनके दुरूह अर्थों को जानना सभी के सामर्थ्य के बाहर था। अतः साधारण जन समुदाय के लिए पुराण लेखन हुआ है। वेद की अस्मिता को मानते हुए तन्मूलक पुराणों के प्रामाण्य को माना जाता है। पुराण में अति सरल सुबोध, भावगम्य एवं मञ्जुल भाषा के माध्यम से ही वेदार्थ का वर्णन किया गया है। भारतीय वाङ्मय में पुराण साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। पुराण के अध्ययन के माध्यम से ही वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन किया जा सकता है। समस्त वेद के रहस्य पुराणों के द्वारा लोक में उपलब्ध हैं। पुराणों के अध्ययन के विना भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन भी सम्भव नहीं है।

वेदों के महत्त्व के बाद पुराणों के वैशिष्ट्य को मानते हुए श्रीमद्भागवत जैसे सर्वश्रेष्ठ पुराण ने इसे पञ्चम वेद का स्थान दिया है–

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः विसृजे सर्वदर्शनः।।

भागवत पु. ३/१२/३९

पौरस्त्य विद्वद्-गण इसे परब्रह्म के निःश्वास-प्रश्वास के रूप में मानते हैं। जिससे भगवान् के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है, ठीक उसी तरह वेदों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

वेदों को भगवान् परब्रह्म का प्राण माना गया है तो पुराण उनके अवयव हैं, जो इस प्रकार हैं–

१.	पद्मपुराण	–	हृदय
२.	ब्रह्मपुराण	–	शिर
३.	विष्णुपुराण	–	दक्षिण बाहु
४.	शिवपुराण	–	वाम बाहु
५.	भागवतपुराण	–	जङ्घा
६.	नारदीयपुराण	–	नाभि
७.	मार्कण्डेयपुराण	–	दक्षिण पाद
८.	अग्निपुराण	–	वाम पाद

९. भविष्यपुराण	–	दक्षिण सक्थि
१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण	–	वाम सक्थि
११. लिङ्गपुराण	–	दक्षिण गुल्फ
१२. वाराहपुराण	–	वाम गुल्फ
१३. स्कन्दपुराण	–	रोम
१४. वामनपुराण	–	त्वचा
१५. कूर्मपुराण	–	पीठ
१६. मत्स्यपुराण	–	स्नायु
१७. गरुडपुराण	–	मज्जा
१८. ब्रह्माण्डपुराण	–	अस्थि

अतः वेदों के पूरक होने के कारण पुराणों का महत्त्व उतना ही है। सत्य तो यह है कि वेदों के दुरूह तत्त्वों की व्याख्या एवं आख्यान उपाख्यानों के रहस्य को जानना पुराणों के विना सम्भव नहीं है। पुराण ने साधारण जनता को पुरुषार्थधर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को स्थिर किया है। प्राचीन चरित्रों की महनीयता को उजागर करके लोगों में अखण्ड आस्था को स्थापित किया है। पुराणो के अध्ययन के विना भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता समझ में नहीं आयेगी।

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास लिखने की परियोजना के अन्तर्गत 'पुराण खण्ड' नाम से पुराण वाङ्मय के बृहद् इतिहास का प्रणयन करना एक सार्थक प्रयास है। पुराण के मार्मिक विद्वान् एवं चिन्तकों से लेख-संग्रह कर इसमें ग्रथन किया गया है। क्रम इस प्रकार निर्धारण किया गया है। पहले महापुराण जिसके अन्तर्गत शिवमहापुराण एवं श्रीमद्देवी-भागवत महापुराण भी सन्निविष्ट है। इन दोनों पुराणों को महापुराण माना जाय या नहीं इस पर विद्वानों के मतभेद हैं। यह मतभेद शास्त्र पर आधारित हैं। लेखकों ने तत् तत् पुराणों के विमर्श करते समय उपजी युक्ति से इन्हें महापुराण माना है। मूल लेखों में विशेष सन्दर्भ हेतु अवलोकन किया जा सकता है। अतः पहले पुराण इतिहास के स्वरूप चिन्तन के वाद में महापुराण को रक्खा गया है। उसके उपपुराण एवं औपपुराणों का क्रम है। चूंकि औपपुराण पर कम लेख प्राप्त हैं, अतः औपपुराणों को इस पर्याय में रखा गया है। तदनन्तर माहात्म्य एवं स्थलपुराणों को सुसज्जित किया गया है।

महापुराण

महापुराणों के क्रम का आधार हमने श्रीमद्भागवत को माना है–

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्।।

भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।
भागवत पु. १२/७/२३-२४

(१. ब्रह्म २. पद्म ३. विष्णु ४. शिव ५. लिङ्ग ६. गरुड ७. नारद ८. भागवत ९. अग्नि १०. स्कन्द ११. भविष्य १२. ब्रह्मवैवर्त १३. मार्कण्डेय १४. वामन १५. वराह १६. मत्स्य १७. कूर्म १८. ब्रह्माण्ड) उक्त क्रम के अन्तर्गत हमने शिव पुराण एवं वायु पुराण की समता के कारण वायु को शिव के साथ रखा है। ठीक इसी प्रकार श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्देवीभागवत को क्रम में साथ साथ रखा है क्योंकि दोनों ही भागवत पुराण हैं– एक देव सम्बन्धित एक देवी सम्बन्धित। इस प्रकार महापुराणों में शिव और देवीभागवत को लेकर कुल औपपुराण इस ग्रन्थ में सन्निविष्ट हैं।

उप पुराणों एवं औप पुराणों के समय एवं रचनाक्रम के बारे में अनेक मतभेद हैं एवं रचनाक्रम के विषय में महापुराणों का मतैक्य नहीं है, क्योंकि उनमें उपपुराणों के क्रम में अनेकरूपता है। अतः मैंने विद्वानों के द्वारा जितने उपपुराणों पर लेख प्राप्त हुए उनको महत्त्व एवं कलेवर की दृष्टि से क्रमबद्ध किया है। समालोचक गण अपनी अपनी मान्यता के अनुसार उसे ग्रहण कर सकते हैं। जिन उपपुराणों और औपपुराणों पर लेख नहीं प्राप्त हुए हैं उनका सामान्य परिचय भूमिका के अन्तर्गत यथास्थान दिया गया है। तथापि उक्त ग्रन्थ में कुल २१ (इक्कीस) पुराण हैं, जिनमें १२ (बारह) उपपुराणों एवं ६ (छः) औपपुराणों तथा ३ (तीन) अन्य प्रमुख पुराणों पर लेख प्रकाशित हैं, जो अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

जिस प्रकार महाभारत के परिशिष्ट के रूप में हरिवंश है, इसी प्रकार अनेक पुराणों में परिशिष्ट के रूप में अथवा अंगों के रूप में विभिन्न माहात्म्य वर्णित हैं जिसमें से ब्रह्मवैवर्त में काशीरहस्य, स्कन्द पुराण में उत्कलखण्ड एवं काशीखण्ड आदि हैं। उक्त ग्रन्थ में छः माहात्म्य प्रकाशन हेतु प्राप्त हैं- जो इस प्रकार हैं- सूतसंहिता, पुराण एवं अन्य प्रमुख मानस खण्ड, काशीरहस्य, विनायक माहात्म्य, विरजाक्षेत्र, नेपाल एवं मिथिला माहात्म्य। **पंञ्चम** भाग में अर्थात् महापुराण एवं उपपुराण-औप पुराणों के सन्निवेश करने के पश्चात् ये प्रकाशित किये गये हैं।

भूमिका के अन्तर्गत महापुराणों की विशेष समीक्षा की आवश्यकता नहीं समझी गई है। विद्वानों ने अपने-अपने शोध-गर्भित लेखों में महापुराण पर पर्याप्त समीक्षा कर तत् तत्पुराणों का विवेचन किया है।

उपपुराण

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गोपाङ्गश्चिकित्सकः।
आज्ञासिद्धानि सर्वाणि न हन्तव्यानि हेतुभिः।।

महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित इन तथ्यों का पल्लवन महापुराण जितना करते हैं उससे उपपुराण कुछ कम नहीं करते हैं। पुराणों की संख्या क्यों अठारह है, इसके बारे में अलग से प्रथम लेख में (पुराण-इतिहास स्वरूप विश्लेषण) चर्चा की गयी हैं। अतः अठारह संख्या की मर्यादा का उपपुराणों और औप पुराणों ने भी उल्लंघन नहीं किया है। इस बात का समर्थन विष्णुपुराण ने किया है।

महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च।।
विष्णुपुराण ३/६/२४

गरुडपुराण अष्टादश उपपुराणों का नाम निर्देश न करता हुआ केवल सूचना मात्र देता है-

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
ग.पु. ११५/१६

उपपुराणों के स्रोत महापुराण ही हैं इसमें किसी की विमति नहीं है। परन्तु महापुराणों की कथावस्तुओं को कहीं पर संक्षिप्त कर दिया गया है तो कहीं पर विस्तृत कर दिया गया है। विलक्षणता एवं चमत्कार लाने हेतु कहीं-कहीं पर कथावस्तु का परिवर्तन कर दिया गया है। अतः उपपुराणों का रसास्वाद अन्य पुराणों से कुछ हटकर हैं। स्कन्दपुराण उपपुराणों की मान्यता को इस प्रकार स्वीकार करता है।

तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानि वेधसा।
स्कन्द.पु. रेवाखण्ड १/५४

उपपुराणों की संख्या एवं नाम

महापुराणों में उपलब्ध सूची के अनुसार सर्वत्र उप पुराणों की संख्या अठारह ही हैं, परन्तु पुराणों के नाम में पर्याप्त अन्तर लक्षित हैं।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार-

अष्टादशपुराणानामेवमेवं विदुर्बुधाः।
एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः।।
ब्र.वै. श्रीकृष्ण जन्मखण्ड १३१/२२

इस बात का समर्थन स्कन्द पुराण भी करता है-

पाराशरं भागवतं कौर्मञ्चाष्टादश क्रमात्।
स्क.पु. रेवाखण्डे १/५८

कूर्म पुराण के अनुसार उपपुराणों के नाम हैं-

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण च भाषितम्।।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्।।
कपिलं वामनं चैव तथैवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।।
माहेश्वरं तथा शाम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम्।।
कूर्म.पु. पूर्वार्द्ध १/१७-२०

उक्त पुराण में उपपुराणों का क्रम है-१. आदि २. नरसिंह ३. स्कन्द ४. शिवधर्म ५. दुर्वासा ६. नारद ७. कपिल ८. वामन ९. औशनस १०. ब्रह्माण्ड ११. वरुण १२. कालिका १३. माहेश्वर १४. शाम्ब १५. सौर १६. पाराशर १७. मारीच १८. भास्कर।

पद्मपुराण के अनुसार उपपुराणों का क्रम इस प्रकार है-

तथा चोपपुराणानि कथयिष्याम्यतः परम्।
आद्यं सनत्कुमाराख्यं नारसिंहमतः परम्।।
तृतीयं माण्डमुद्दिष्टं दौर्वाससमथैव च।
नारदीयमथान्यच्च कापिलं मानवं तथा।।
तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परम्।
वारुणं कालिकाह्वानं माहेशं साम्बमेव च।।
सौरं पाराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम्।
कौमारं च पुराणानि कीर्तितान्यष्ट वै दश।।
पद्म महा.पु. पातालखण्डे ११३/९३-९७

(१. सनत्कुमार २. नारसिंह ३. आण्ड ४. दौर्वासस ५. नारदीय ६. कपिल ७. मानव ८. औशनस ९. ब्रह्माण्ड १०. वारुण ११. कालिका १२. माहेश १३. साम्ब १४. सौर १५. पाराशर १६. मारीच १७. भार्गव १८. कौमार)

वायु पुराण के रेवामाहात्म्य के अनुसार (Studies in the Upapuranas से उद्धृत vol- 1, ३ उपपुराण पृष्ठ-८) उपपुराणों के नाम हैं-

आद्यं सनत्कुमारोक्तं द्वितीयं सूर्यभाषितम्।
सनत्कुमारनाम्नाऽपि तद् विख्यातं महामुने।।
द्वितीयं नारसिंहं च पुराणे पद्मभाषिते।
नन्दापुराणं च तथा तृतीयं वैष्णवे मतम्।।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं पुराणे वायुसंज्ञिते।
दौर्वाससं पञ्चमं च स्मृतं भागवते तथा
भविष्यं नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्।।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्।।
पाराशरं भागवतं कौर्मं चाष्टादश क्रमात्।।

(१. सनत्कुमार २. नारसिंह ३. नन्दा ४. शिवधर्म ५. दौर्वासस ६. नारदीय ७. कपिल ८. मानव ९. उशनसेरित् १०. ब्रह्माण्ड ११. वारुण १२. कालिका १३. माहेश्वर १४. साम्ब १५. सौर १६. पराशर १७. कौर्म)

इस प्रकार विभिन्न पुराणों में उपपुराणों की सूची मिलती है जिनमें से प्रमुख पुराण हैं– स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में सूतसंहिता, सौर संहिता, देवीभागवत, गरुडपुराण, वायुपुराण, कूर्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त्तपुराण।

ऐसे अनेक उपपुराण हैं जिनके नाम मात्र विभिन्न पुराणों में सूचित हैं परन्तु वे पुराण अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं– सनत्कुमार, स्कान्द, दौवासस, नारदीय, वामन, औशनस, ब्रह्माण्ड, माहेश्वर, मानव, नन्दिकेश्वर, आखेटक, नान्द, प्रभासक, लीलावती, एकपाद, शौकेय, बार्हस्पत्य, भागवत, कौर्म, काली, आण्ड, माहेश, कौमार, आदित्य, शौक्र, वायवीय, भास्कर, पाद्म, वृहन्नन्दीश्वर, गरुड, बृहन्नारसिंह, बृहद्वैष्णव, लघुभागवत, मृत्युञ्जय आङ्गिरस, अम्बिका, शिवरहस्य, सूर्य, भगवतीभागवत, हंस, वृहदौशनस एवं बृहद् रुद्र। इसी प्रकार नब्बे से अधिक उपपुराणों के नाम मिलते हैं। ऐसे तो डॉ. विल्सन ने विष्णु पुराण की भूमिका में उपपुराण की संख्या शताधिक माना है। ......more than a hundred Upapurāṇas beside a large number of treatises claiming to belong to one or other of these works. (Viṣṇu Purāṇa - H.H. Wilson, Introduction Portion)

उपपुराणों को पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(i) वैष्णव

(ii) शैव

(iii) शाक्त

(iv) सौर

(v) गाणपत्य

संस्कृत वाङ्मय के बृहद् इतिहास के अन्तर्गत पुराण खण्ड में अठारह महापुराणों के अतिरिक्त कुछ प्रमुख उपपुराणों के विषय में स्वतन्त्र रूप में लेख प्रस्तुत हैं। परन्तु जिन उपपुराणों के बारे में लेख प्राप्त नहीं हुए हैं उनका सामान्य परिचय देना उचित होगा।

शिवधर्म उपपुराण

एशियाटिक सोसाइटी में इस उपपुराण की दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। गरुडपुराण की सूचनानुसार इसके वक्ता नन्दीश्वर हैं– "स्यान्नन्दीश्वरभाषितम्"। श्रोता सनत्कुमार एवं इसकी प्रथम मातृका नेवारी लिपि में उपलब्ध है जिसमें ८२०० श्लोक है। इस मातृका के नाम से छः ग्रन्थ उपलब्ध हैं–१. शिवधर्म २. शिवधर्मोत्तर ३. शिवधर्मसंग्रह ४. उमामाहेश्वरसंवाद ५. शिवोपनिषद् ६. उत्तरोत्तरतन्त्र। इस पाण्डुलिपि का लिपिकाल बारहवीं शताब्दी है। नाम से सिद्ध है कि यह शैव उपपुराण है–यथा– "शिवमादौ शिवं मध्ये शिवमन्ते च सर्वदा"।

इस पुराण में शिवभक्ति, शिवपूजन, शिवलिंगार्चनविधि, शिवलिंगोत्पत्ति, प्रसाद, शान्ति, दान, शिवलिंगमहाव्रत, उपवास, गोदान एवं शिवाश्रम आदि अनेक विषय वर्णित हैं।

वारुण उपपुराण

Catalogos Catalogoram में सूचित An Alfabetical Register of Sanskrit Works and others में इस पुराण का नामोल्लेख है, इसकी पाण्डुलिपि Oriental Manuscript Library, Chennai में उपलब्ध है। यह शिव से सम्बन्धित उपपुराण है, जिसके वक्ता वरुण एवं श्रोता शौनकादि ऋषिगण हैं। इसकी रचना सरस्वती नदी तट पर हुई है–

पुरा सरस्वतीतीरे शौनकाद्या महर्षयः।
सत्रावसाने सर्वेऽपि हविषा वारुणेन च।।

इस पुराण में द्वादश अध्याय हैं, जिनमें शिव के माहात्म्य, भस्म, त्रिपुण्ड्र एवं रुद्राक्ष धारण के फल एवं शिव की महिमा से सम्बन्धित अनेक कथायें वर्णित हैं। यथा–

शिवः पुण्यः शिवा पुण्या पुण्यं भस्मत्रिपुण्ड्रकम्।
पुण्यश्चैवाविमुक्तश्च शिवोऽस्माकं भवेत्सदा।।

इस पुराण का और एक महत्त्वपूर्ण अंश यह है कि वेदार्थों का संग्रह करके उनके कथानक की व्याख्या की गई है।

वारुणं नाम वेदार्थसंग्रहं पारमेश्वरम्।
पुराणं सर्वमेतद्धि कथानकं महेशितुः।।

इस पुराण के रचनाकाल के विषय में कोई तथ्यात्मक विवरण प्राप्त नहीं होता है, परन्तु कुछ विद्वान् इसका समय दशवीं शताब्दी से द्वादश शताब्दी के अन्तर्गत मानते है।

मारीच उपपुराण

उक्त पुराण में केवल पाँच अध्याय हैं जो govt. oriental manuscript library, चेनै में अप्रकाशित रूप में उपलब्ध है। मङ्गलाचरण से यह स्पष्ट है कि यह शैव उप पुराण है–

वन्दे सच्चित्सुखमयं वेदान्तैकगोचरम्।
विज्ञानघनमानन्दमीश्वरं तं त्रयीमयम्।।

इस पुराण को नन्दिकेश्वर ने मरीचि को सुनाया था, जिसे सूतजी ने मुनियों के समीप प्रवचन दिया है। इसीलिए पुराण का नाम मारीचपुराण पड़ा है–

पुरा नन्दी मरीचाय यदुवाच शुभां कथाम्।
तामद्य संप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः।।

इस पुराण में प्रमुख रूप में चिदम्बर के माहात्म्य एवं पुण्डरीकपुर की कथा विशेष रूप में वर्णित हैं। कथाओं के माध्यम से शिवतत्त्व का प्रतिपादन उक्त पुराण का ध्येय है।

वासिष्ठलैङ्ग उपपुराण

यह उपपुराण अप्रकाशित है एवं इसकी पाण्डुलिपियाँ Asiatic Society, कोलकाता, सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, विश्वेश्वरनन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, पञ्जाब में उपलब्ध हैं। इसका नामान्तर वासिष्ठ उपपुराण भी है जो बारह अध्यायों एवं ६०० श्लोकों से विभूषित हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में विनायक एवं कार्तिकेय के वर्णन उपलब्ध हैं।

यस्य प्रसादलेशस्य लवलाभबलेन तु।
सर्वसिद्धिरयत्नेन तं नमामि विनायकम्।।

यत्प्रसादेन विज्ञानं यथावज्जायते नृणाम्।
तं वन्दे षण्मुखं साक्षात् ज्ञानशक्तिधरं परम्।।

इसमें प्रमुख रूप में सृष्टि वर्णन, जीव एवं ईश्वर का सम्बन्ध, मोक्ष उपाय, रुद्राक्ष माहात्म्य, भस्मधारणफल एवं शिव सम्बन्धित तीर्थों के वर्णन के माध्यम से शिवभक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया है।

क्रियायोगसार उपपुराण

इस पुराण का प्रकाशन पद्मपुराण के साथ वेंकटेश मुद्रणालय से हो चुका है, जिसमें छब्बीस अध्याय हैं। प्रमुख रूप से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की उत्पत्ति, ब्रह्माणी, लक्ष्मी एवं अम्बिका के प्रादुर्भाव, भूगोलवर्णन, मधुकैटभवध प्रसंग, ध्यान योग, दान, एकादशी व्रत, सुलोचना-माधव की प्रणयकथा, अश्वत्थवृक्ष माहात्म्य, राम द्वादशाक्षर मन्त्र की महिमा, अष्टोत्तर शतरामकृष्णस्तोत्र, बिल्वमङ्गलकथा, पुरुषोत्तमक्षेत्र वर्णन एवं श्री जगन्नाथदेव की पूजाविधि तथा चतुर्युगों की महिमा साङ्गोपाङ्ग वर्णित हैं।

प्रकृतिचित्रण के द्वारा साहित्यिक प्रतिभा भी विजृम्भित है यथा–

निशावशिष्टा नलिनी हिमाकरे
दूरीकृते चन्द्रकरेण भास्वता।
सुगन्धपुष्पप्रकरातिसुन्दरी
प्राप्नोति किं भृङ्गवरस्य सङ्गमम्।।

विष्णु भक्ति का प्रदर्शन अत्यन्त नये ढंग से किया गया है। हरि भक्ति के बिना विप्र चाण्डाल बन सकता है परन्तु चाण्डाल यदि हरिभक्त हो तब वह ब्राह्मण बन सकता है

हरेरभक्तो विप्रोऽपि विज्ञेयः श्वपचाधिकः।
हरिभक्तः श्चपचोऽपि विज्ञेयो ब्राह्मणाधिकः।।
क्रियायोगसार १६/३

इसमें हरिभक्ति का प्रवर्तनपरक श्लोक होते हुए भी उक्त पुराण ब्रह्मा, विष्णु, महेश में अभेद प्रतिपादन करता है। जो इनमें भेद करता है, उसे अधोगति प्राप्त होती है।

धर्म उपपुराण

उक्त उपपुराण अप्रकाशित रूप में Asiatic Society, कोलकाता में सुरक्षित है; बङ्ग लिपि में इसकी दो मातृकायें उपलब्ध हैं, जिसमें सामान्य अन्तर लक्षित है। एक मातृका में २५०० श्लोक हैं जबकि दूसरे में २२०० हैं। नारद और ब्रह्माजी के संवाद के माध्यम से वर्णित तथ्यों को सूत ने ऋषियों के सम्मुख प्रतिपादन किया है।

सन्दर्भित पुराण में वर्ण्य वस्तु निम्नवत् हैं- गरुडोत्पत्ति, चार वर्णों के कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय, धर्मशास्त्र के विषय, धात्री, तुलसी एवं गङ्गा के माहात्म्य यह अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यानों से सुसज्जित है जिनमें से पतिव्रता उपाख्यान, कालेययवन, तारेय वध, मधु, वृत्र एवं त्रिपुरासुर के वधवृत्तान्त प्रमुख रूप में हैं।

यद्यपि समस्त देव-देवियों के विषय में स्तुतियाँ इसमें की गई हैं तथापि विष्णु ही प्रमुख देवता है जिनके प्रति भक्ति करने से उनके सायुज्य की प्राप्ति होती है। यथा-

यः शृणोति पठेद् वापि पुराणं धर्मसञ्ज्ञकम्।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।

समालोचकों ने बङ्गप्रदेश में इसकी रचना हुई है- यह स्वीकार किया है, जिसका समय तेरहवी या चौदहवी शताब्दी माना जा सकता है।

दौर्वासस उपपुराण

एकाम्र पुराण में प्रदत्त सूची में इस पुराण का नाम गिनाया गया है। वीरमित्रोदय, चतुर्वर्गचिन्तामणि एवं शब्दकल्पद्रुम आदि ग्रन्थों में इसका नाम **आश्चर्य** भी है- **दुर्वासोक्तमाश्चर्यमिति** स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड के अनुसार इसका सम्बन्ध भागवत महापुराण से है यह बताया गया है।

दौर्वाससं पञ्चमं च स्मृतं भागवते सदा।

डॉ. आर.सी. हाजरा ने इस पुराण का रचनाकाल ख्रीष्ट ८०० से पूर्व माना है। इसकी पाण्डुलिपि अब तक अप्राप्य है।

औशनस उपपुराण

बृहद्धर्म एवं एकाम्र पुराण में उपलब्ध सूची के अनुसार इसकी गणना उपपुराण के अन्तर्गत की गई है। नित्याचार प्रदीप, देवी भागवत में उशनसेरित नाम से भी उक्त पुराण अभिविष्ट है। उशना इस पुराण के वक्ता होने से इसका नाम औशनस हुआ है। डॉ. हाजरा ने इसका रचनाकाल ८०० शताब्दी से पूर्व का माना है।

माहेश्वर उपपुराण

इस पुराण का उल्लेख देवी भागवत, गरुड, कूर्म, वारुण, मुद्गल एवं वीरमित्रोदय में हुआ है। अब तक इसकी पाण्डुलिपि उपलब्ध हो नहीं पाई है।

मानव उपपुराण

पद्मपुराण का पातालखण्ड, देवी भागवत, रेवामाहात्म्य, बिन्ध्यमाहात्म्य, पराशर उपपुराण, वीरमित्रोदय, चतुर्वर्गचिन्तामणि एवं वाचस्पत्य आदि ग्रन्थों में इस उपपुराण का नामोल्लेख हुआ है। यद्यपि इस पुराण की मातृका नहीं मिलती है, तथापि भट्टोजिदीक्षित ने 'तन्त्राधिकार निर्णय' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। भट्टोजिदीक्षित के उद्धरण से यह ज्ञात होता है उक्त पुराण वैष्णव है। भट्टोजिदीक्षित के पूर्व अर्थात् पञ्चदश शताब्दी से पूर्व इसकी रचना हुई होगी।

आखेटक उपपुराण

एकाम्र पुराण की सूची में इसका उल्लेख है। इसका उद्धरण किसी भी धर्मशास्त्र के ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। डॉ. आर.सी. हाजरा ने इसका रचनाकाल ११०० शताब्दी से पूर्व माना है।

नन्दीपुराण

भक्तिरत्नाकर एवं चतुर्वर्गचिन्तामणि में इसका नाम **नन्दा** है। पराशर एवं वारुण के अनुसार यह **नान्दम्** है। मत्स्यपुराण एवं नित्याचार प्रदीप के अनुसार इसका नाम **नन्दी** है। मुद्गल पुराण के अनुसार इसका नाम **नन्दिकेय** है। इसके वक्ता कार्तिकेय हैं।

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्त्तिकेयेन वर्ण्यते।
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते।।

मत्स्य.पु. ५३/६०

धर्मशास्त्र के निबन्धकारों ने इस पुराण से अनेक श्लोकों को उदाहरण के रूप में लिया है। परन्तु इसकी पाण्डुलिपि अभी तक अप्राप्य है। जिन प्रबन्ध ग्रन्थों में इसके श्लोक उद्धृत हैं उनके नाम हैं–चतुर्वर्ग चिन्तामणि, हरिभक्तिविलास, आचार मयूख, कालसार, स्मृतितत्त्व, नित्याचारप्रदीप, गङ्गाभक्तितरङ्गिणी, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी एवं कृत्यरत्नाकर आदि। यह पुराण शिवभक्ति परक है। विशेष रूप में शिवलिंग के पार्थिव पूजन का वर्णन इसमें उपलब्ध है। यथा–

आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी।
वरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत्।।
तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम्।

आचारमयूख से उद्धृत, पृ. ६४

शिव जी का पञ्चाक्षर मन्त्र "नमः शिवाय" सर्वार्थ साधक है, यह इस पुराण का रहस्य है–

गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलिपुष्पनिवेदने।
ज्ञेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।

आचारमयूख से उद्धृत, पृ. ६५

इस पुराण में दान के प्रकार एवं महत्त्व पर अनेक गहन विचार किया गया है। अतः बल्लालसेन नान्द पुराण को दानधर्म प्रतिपादक पुराण मानते हैं। डॉ. आर.सी. हाजरा ने इसका रचनाकाल ७०० शताब्दी से पहले का माना है।

प्रभासक उपपुराण

एकाम्र पुराण में प्रदत्त पुराणों की सूची में इसका नामोल्लेख है। किन्तु इसकी कोई भी मातृका उपलब्ध नहीं हैं। गोपालभट्ट के हरिभक्तिविलास (पृ. ३८६) में इसका एक श्लोक उद्धृत है।

नाम्ना मुख्यतरं नाम कृष्णाख्यं मे परन्तप।
प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोचकं परम्।।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत की वैष्णवतोषिणी टीका में भी इसका उल्लेख है– "उक्तं च प्रभासपुराणे-मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानाम्" (श्रीमद्भागवत १०/८/१३) विचारमन्थन करके डॉ. हाजरा ने इसका समय १००० शताब्दी माना है।

बृहद्वैष्णव उपपुराण

एकाम्र पुराण में दर्शायी गई सूची में इस पुराण का उल्लेख है। इसका उद्धरण चतुर्वर्गचिन्तामणि, हरिभक्तिविलास एवं क्रियासारदीपिका आदि ग्रन्थ में दिखाई देते हैं। श्रीमद्भागवत की वैष्णवतोषिणी टीका में इसके श्लोक का उल्लेख है। शालग्राम पर चढाये गये तुलसी दल के महत्त्व पर इसके श्लोक हरिभक्तिविलास में उल्लिखित है।

तीर्थाधिकं यज्ञशताच्च पावनं जलं सदा केशवदृष्टिसंस्थितम्।
छिन्नत्ति पापं तुलसीविमिश्रितं विशेषतश्चक्रशिलाविनिर्मितम्।।

हरिभक्ति विलास, पृ. ४४६

डॉ. हाजरा ने इसका समय १००० शताब्दी के पूर्व का माना है।

शिवरहस्य उपपुराण

श्रीमद्भागवत की चूर्णिका नाम की टीका में इस उपपुराण का उल्लेख है। इस पुराण

की मातृका के कतिपय अंश भिन्न-भिन्न स्थान में उपलब्ध है। बल्लालसेन ने इसे एक संग्रहात्मक उपपुराण माना है।

लोकप्रसिद्धमेतद् विष्णुरहस्यं च शिवरहस्यं च।
द्वयमिह न परिगृहीतं संग्रहरूपत्वमवधार्य।।

दानसार से उद्‌धृत, श्लोक ६०

इस पुराण में शिव जी की पूजाविधि, लिङ्गपूजन, तीर्थव्रतादिमाहात्म्य एवं सूर्य चन्द्र ग्रहण के समय वर्ज्य वस्तुओं का निर्देश किया गया है। यथा-

सूर्येन्दुग्रहणं यावत् तावत् कुर्याज्जपादिकम्।
न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः।।

समयमयूख में उद्‌धृत, पृ. १३३

दानसार ग्रन्थ में इस उप पुराण का उल्लेख होने से इसका रचनाकाल दशम शताब्दी के पहले ही होगा।

औपपुराण

महापुराण एवं उपपुराण के साथ-साथ या अनन्तर पुराण लिखने का क्रम निरन्तर चलता रहा, जिसके फलस्वरूप औपपुराण भी पुराणवाङ्मय की श्रीवृद्धि करते हैं। बृहद्विवेक में औपपुराण की सूची दी गई है-

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः।।
बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।

-बृहद् विवेक-३

(१. आदि २. सनत्कुमार ३. बृहन्नारदीय ४. आदित्य ५. नन्दिकेश्वर ६. कौर्म ७. भागवत ८. वाशिष्ठ ९. भार्गव १० मुद्गल ११. कल्कि १२. देवी १३. महाभागवत १४. बृहद्धर्म १५. परानन्द १६. वह्नि १७. पशुपति १८. हरिवंश)

इनमें बहुत से औपपुराण उपपुराण की कोटि में स्वीकृत हैं, जो पहले वर्णित हैं। इन औपपुराणों में से जो लेख इस पुस्तक में प्रकाशित हैं उनके उल्लेख न करते हुए अन्य अवशिष्ट औपपुराणों के सामान्य परिचय प्रदत्त हैं।

वह्नि औपपुराण

यद्यपि इसका हस्तलेख कहीं भी उपलब्ध नहीं है, तथापि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने पुराण विमर्श ग्रन्थ में लिखा है कि उक्त पुराण की पाण्डुलिपि डॉ. हाजरा जी के पास विद्यमान है। कुछ विद्वान् इसे प्राचीन अग्नि पुराण मानते हैं। हेमाद्रि ने चतुर्वर्ग चिन्तामणि में इस पुराण से अनेक पद्यों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

इसके वर्ण्य विषय हैं–पाशुपत व्रत, वापी एवं कूपों के प्रतिष्ठाकाल निर्णय, ब्राह्मण लक्षण, जन्माष्टमी विधि निर्णय, विभिन्न दानों के फल निरूपण एवं वेद वेदाङ्ग के पाठ का फल।

संस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक कुछ विकृत रूप में उक्त पुराण में उपलब्ध है–

नाप्यहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
प्राणिनां दुःखतप्तानां कामये दुःखनाशनम्।।

चतुर्वर्गचिन्तामणि के दानखण्ड से उद्धृत हेमाद्रि ने अग्नि पुराण एवं वह्नि पुराण से पृथक्-पृथक् श्लोकों का उद्धरण किया है। अतः वे दोनों पुराण पृथक्-पृथक् हैं। दशम शताब्दी से पहले ही इसकी रचना हो गई होगी।

हरिवंशपुराण औपपुराण

यह महाभारत का खिलभाग है। इसमें तीन पर्व हैं– (i) हरिवंश पर्व, (ii) विष्णु पर्व, (iii) भविष्य पर्व। प्रत्येक पर्व के विषयवस्तु इस प्रकार वर्णित है–

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिल संज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा।।
भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।।
एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।।

इसकी कथा जनमेजय एवं वैशम्पायन के संवाद से प्रारम्भ होती है। सूत, शौनक एवं व्यास के संवादों से आगे विस्तार होता है।

हरिवंश पर्व के प्रमुख विषय हैं–दक्षोत्पत्ति, पृथुचरित, मरुतों की उत्पत्ति, ऐल उपाख्यान, धुन्धुवध, त्रिशंकु वर्णन, श्राद्ध वर्णन, हंस वर्णन, सोमचरित, देवासुर संग्राम, उर्वशी-पुरुरवा उपाख्यान एवं विष्णु के विभिन्न अवतार आदि।

विष्णु पर्व में कृष्ण की बाललीला मुख्य रूप में वर्णित है जिसके अन्तर्गत शकट भंजन, यमलार्जुन प्रसंग, कुब्जा के प्रति अनुग्रह एवं कंसवध आदि वर्णित हैं। कृष्ण के परवर्ती चरित भी इस पर्व में वर्णित हैं।

भविष्य पर्व में कलियुग का वर्णन, जनमेजय मोक्ष, वर्णाश्रम धर्म, दक्षयज्ञध्वंस, कृष्ण का द्वारिका गमन, महाभारत फल श्रवण, त्रिपुर वध आदि अनेक विषय विस्तार से वर्णित हैं।

युगपुराण-प्रस्तुत पुराणखण्ड में वर्णित अन्य महत्वपूर्ण पुराणों नीलमतपुराण, आत्मपुराण, दत्तपुराण की ही भाँति 'युगपुराण' भी एक महत्वपूर्ण पुराण है। सर्वप्रथम डा. कर्ण ने बृहत्संहिता की अपनी प्रस्तावना में गर्गसंहिता के ऐतिहासिक अध्याय युगपुराण की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था और इसकी ऐतिहासिक घटनाओं को वास्तविक मानकर प्रकाशित भी किया था। प्रसिद्ध इतिहासकार डा. के.पी. जायसवाल ने बिहार एण्ड ओडिशा रिसर्च सोसाइटी के जर्नल्स में प्रकाशित किया। इसकी पाण्डुलिपियाँ, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेंङ्गाल (सं २० डी.आई.), गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज बनारस (सं. ११२) पेरिस के बाइबिल नेशनल (सं. बी. १८४) तथा सौराष्ट्र के शास्त्री जोडिया के पास है। सन् १९७५ में चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन ने इसको प्रकाशित किया है जिसमें डा. श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी (पू.अ.पुराण विभाग सं.सं.वि.वि.) की विस्तृत भूमिका एवं व्याख्या दी गयी है।

युगपुराण के अन्तर्गत भारत के ऐतिहासिक तथ्यों का संकेत, भूत एवं भविष्य वर्णन शैली में किया गया है। स्कन्द और भगवान् शङ्कर के संवाद के माध्यम से इसका आरम्भ होता है। इसके आरम्भ में कृतादि चारों युगों का परिमाण, धर्म की स्थिति, मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं प्रजा की दशा का वर्णन किया गया है। इसमें १७७ श्लोक हैं। अध्याय विभाजन नहीं है, मङ्गलाचरण के बिना सीधे प्रश्नों से ही इसका आरम्भ होता है। कल्पित कथा, पाठों की विविधता तथा भाषा की असंयतता होने पर भी इसका ऐतिहासिक मूल्य उपेक्षणीय नहीं है। इसके गम्भीर अनुसन्धान से इतिहास की कुछ नवीन बातों पर प्रकाश पड़ सकता है।

इससे अतिरिक्त प्रो. बृजेश कुमार शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय ने अपनी पुस्तक पुराणसाहित्यादर्श में ६८ ऐसे पुराणों की सूची दी है जिनके नाम केवल स्मृतिग्रन्थों में उद्धृत हैं। इनमें से कुछ निम्नवत् हैं-अर्बुद, आगम, आञ्जनेय, आनन्द, उत्तर सौर ऊर्ध्व, कन्यका, कच्छ, कात्यायनी, कारण, कृष्ण, गर्ग, गण्डकी, गालव, गोमती, गोकर्ण, तुला, निरञ्जन, प्रज्ञा, पुरुषोत्तम, भगवती, भूगोल, माधवीय, माध, यम, रुद्र, रैणुक, लक्ष्मी आदि।

इसी तरह श्रमण परम्परा के अन्तर्गत जैन साहित्य में भी संस्कृत भाषा के माध्यम से अनेक पुराण लिखे गये हैं जिसका समावेश श्रमणसाहित्य खण्ड के अन्तर्गत हो सकता है। सन्दर्भित ग्रन्थ में केवल वैदिक परम्परा पर आधारित पुराणों के विवेचनात्मक इतिहास वर्णित हैं।

कृतज्ञताज्ञापन

संस्कृत वाङ्मय के बृहद् इतिहास के अन्तर्गत 'पुराण खण्ड' को स्थान देने हेतु उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान को हृदय से धन्यवाद एवं कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। इसके शलाका पुरुष पुराण वाङ्मय के आधार स्तम्भ कीर्तिशेष पद्मभूषण **आचार्य बलदेव उपाध्याय** का स्मरण करता हुआ उन्हें विनम्र श्रद्धाजंलि अर्पित करता हूँ। मेरे पूज्य गुरुदेव सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पूर्व कुलपति **पद्मश्री वि. वेङ्कटाचलम्** एवं उक्त संस्कृत वाङ्मय के बृहद् इतिहास परियोजना के प्रमुख सम्पादक **प्रो. श्रीनिवास रथ** जी के चरणकमलों में शत शत प्रणाम करता हुआ आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ जिन्होंने मुझे उक्त ग्रन्थ के सम्पादन हेतु प्रेरणा दी।

इस ग्रन्थ के समस्त लेखकों का मैं आभारी हूँ जिन्होंने बहुमूल्य समय देकर अनेक ग्रन्थों का परिशीलन करके अपने महत्त्वपूर्ण शोधलेख लिखकर वाग्देवी की आराधना की एवं व्यासपरम्परा को आगे बढ़ाया है। इस कार्य में मार्गदर्शन देकर लेखों को परिमार्जित करके सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व प्रति कुलपति एवं राष्ट्रपति सम्मानित **प्रो. शिवजी उपाध्याय** एवं वर्तमान साहित्य विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष **प्रो. रमाशंकर मिश्र** जी ने मुझे अनुगृहीत किया है। अतः उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के निदेशक **श्री प्रमोद कुमार पाण्डेय** एवं स० निदेशक **डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदी** ने इसे मूर्त्त रूप देकर समय-समय पर मुझे प्रेरित कर नियत अवधि में इसे प्रकाशित कराया।

अतः मैं उन दोनों का आभारी हूँ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पुराणोतिहास विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक एवं पुराण के पारम्परिक विद्वान् **पण्डित श्याम बापटजी** एवं मेरी अर्द्धाङ्गिनी **डॉ. प्रमोदिनी पण्डा** ने पाठसंशोधन आदि कार्य में मेरी सहायता की हैं। अतः मैं उन्हें हार्दिक शुभाशंसा देता हूँ। लखनऊ के **शिवम् मुद्रणालय** के द्विवेदी बन्धुओं ने अत्यन्त निष्ठापूर्वक एवं व्यक्तिगत ध्यान देकर पाण्डुलिपियों को निर्दुष्ट मुद्रण कराया है। अतः मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अन्त में सहृदय पाठकों की हस्ताञ्जलि में उक्त ग्रन्थरत्न को सौंपकर परम संतोष का अनुभव करता हूँ।

गङ्गाधर पण्डा

आचार्य एवं अध्यक्ष, पुराणेतिहास विभाग

पूर्व संकायाध्यक्ष, साहित्य संस्कृति संकाय

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास

विषय-सूची

त्रयोदश-खण्ड

पुराण

पुराणेतिहासस्वरूपविश्लेषण १-२४

उपक्रम १, पुराण २, पुराण शब्द का अर्थ ५, पुराण-लक्षण-पञ्चलक्षण ६, दशलक्षण ८, पुराणेतिहास १०, आविर्भाव १२, पुराणविषयक समस्यायें १६, रचनाकाल : आधुनिक मत १८, पुराण की अष्टादश संख्या १९, पुराणक्रम रहस्य २०, पुराण-विभाजन २२, पुराणों का वर्गीकरण २३।

महापुराण : २५-५२९

१. ब्रह्मपुराण २७-५६

ब्रह्म पुराण का वैशिष्ट्य एवं महत्त्व ४४, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य ५१।

२. पदमूपुराण ५७-९२

पद्मपुराण का काल ५९, पद्मपुराण में उपलब्ध सुभाषित-६०, पद्मपुराण में वर्णित विषयों का सार आदिखण्ड ६१, भूमिखण्ड ६३, (४१-४७ अ.) (सुकलाचरित) ६६, ब्रह्मखण्ड ६६, पातालखण्ड ७१, सृष्टि खण्ड ७६, उत्तरखण्ड ८३।

३. विष्णुपुराण ९३-१०५

पुराणों में विष्णुपुराण की स्थिति ९३, पुराणनाम का हेतु ९३, विष्णुपुराण की परम्परा ९३, विष्णुपुराण की प्रामाणिकता ९४, विष्णुपुराण का अवान्तर विच्छेद ९५, विष्णुपुराण का श्लोकपरिमाण ९५, विष्णुपुराण का लक्षण ९६, नारदीयपुराण में विष्णुपुराण-विषयोल्लेख ९७, विष्णुपुराण

के द्वितीय भाग के विषय ६८, विष्णुपुराण में वर्णित विषयों का संक्षिप्तसार ६८, विष्णुपुराण के पाठ १०२, विष्णुपुराण की भाषा १०२, विष्णुपुराण में छन्द और अलङ्कार १०३, विष्णुपुराण का अनुवाद १०३, विष्णुपुराण के टीकाकार १०४, विष्णुपुराण के संस्करण १०४, विष्णुपुराण का रचनाकाल १०४।

४. शिवपुराण १०६-१२२

शिवमहापुरण की महापुराणता १०६, शिवमहापुराण का काल १०६, शिवमहापुराण का रचना-स्थल १११, शिवमहापुराण एवं शैवदर्शन ११२, क) पाशुपत दर्शन ११२, ख) सिद्धान्त शैव ११३, ग) प्रत्यभिज्ञा दर्शन ११३, दार्शनिक एवं धार्मिक अध्ययन ११४, परं ब्रह्म एवं परमात्म शिव ११४, एक ही सत्ता के द्विविध रूप ११५, शक्ति-तत्त्व ११७, तत्त्व ११७, ईश्वर-तत्त्व ११८, सद्विद्या अथवा शुद्धविद्या तत्त्व ११८, माया और पञ्चकञ्जुक ११८, पुरुष ११६, प्रकृति ११६, पाश और मुक्ति ११६, मुक्ति १२०, योग १२१, शिवमहापुराण में धार्मिकतथ्य १२१।

५. वायुपुराण १२३-१३८

अष्टादश महापुराणों में वायुपुराण या शिवपुराण १२६, वायुपुराण की लोकप्रियता का महत्त्व १३१, वायुपुराण के कतिपय वर्ण्य विषय १३२, श्राद्धकल्प १३४, शंयु का प्रश्न १३५।

६. लिङ्गपुराण १३६-१५४

पुराण-सूची में लिङ्ग पुराण का स्थान तथा श्लोक परिमाण १३६, लिङ्गपुराण के संस्करण १४०, लिङ्गपुराण की भाषा १४०, लिङ्गपुराण में छन्द एवं अलंकार १४१, लिङ्गपुराण का कालनिर्धारण १४१, लिङ्गपुराण में वर्णित विषयों का सार १४२, पूर्वार्द्ध १४२, उत्तरार्द्ध १४५, लिङ्गपुराण में सृष्टि १४५, लिङ्गपुराण में योग १४६, लिङ्गपुराण में प्राप्त विशिष्ट आख्यान १४६, शैव-पाशुपत मत १४८, शैव-व्रत तथा शिवार्चन-पद्धति १४८, धर्मशास्त्रीय आचार १४६, मन्त्र-माहात्म्य-द्वादशाक्षर मन्त्र १५०, लिङ्गपुराण में तन्त्रविद्या १५१, अन्य विविध प्रसंग १५२, अलक्ष्मी का निवास १५२, लिङ्गपुराण की टीका-'शिवतोषिणी' १५३, टीका की विशिष्टता १५३।

७. गरुडपुराण १५५-१७०

पुराणसूची में स्थान एवं श्लोक-परिमाण १५६, गरुडपुराण की भाषा १५६, गरुडपुराण में छन्द १५७, गरुडपुराण का काल तथा देश १५७, गरुडपुराण में वर्णित विषयों का सार १५८, उत्तर-खण्ड (प्रेतकल्प) १६५, गरुडपुराण के संस्करण १६७, गरुडपुराण में उपलब्ध सुभाषित १६८, लोकव्यवहार विषयक सुभाषित १६८, दार्शनिक विषयपरक सुभाषित १६६।

८. नारदीयपुराण १७१-१८४

वैशिष्ट्य १७१, प्रामाणिकता एवं महत्त्व १७२, कथावस्तु १७२, विशिष्टदार्शनिकमत एवं सम्प्रदाय १८१, भाषा एवं छन्दों का प्रयोग १८१, अन्य ग्रन्थों का अनुकरण १८२, वर्णाश्रमधर्म एवं व्यवस्थायें १८२, अवतार एवं स्तोत्र १८३।

६. श्रीमद्भागवतपुराण १८५-२३७

भगवान् वेदव्यास १८७, श्रीमद्भागवत वेदव्यास की कृति है, बोपदेव की नहीं १८८, भागवत भगवत्स्वरूप १८६, प्रथम स्कन्ध अधिकारी सम्बन्ध १६८, भगवान् के विविध अवतार इस प्रकार हैं– १६६, श्री भगवानुवाच २०८, तृतीय स्कन्ध-'सर्ग' २१२, पञ्चम स्कन्ध "स्थान" २२०, भुवनकोश का वर्णन २२२, षष्ठ स्कन्ध पोषण २२४, सप्तम स्कन्ध ऊति २२५, अष्टम स्कन्ध-सद्धर्म २२६, नवम स्कन्ध-ईशानुकथा २२७, दशम स्कन्ध : "आश्रय और निरोध" २३१, एकादश स्कन्ध भागवत धर्म २३५, द्वादश स्कन्ध अपाश्रय २३६।

१०. देवीभागवतपुराण २३८-२५४

देवीभागवत की प्रामाणिकता २३८, नाम और प्रतिपाद्य विषय २३८, प्रथम स्कन्ध २३६, द्वितीयस्कन्ध २४१, तृतीय स्कन्ध २४२, चतुर्थ स्कन्ध २४३, पंचम स्कन्ध २४४, षष्ठ स्कन्ध २४५, सप्तम स्कन्ध २४६, अष्टम स्कन्ध २४७, नवम स्कन्ध २४७, दशम स्कन्ध २४८, द्वादश स्कन्ध २५०, देवीभागवत और श्रीमद्भागवत २५०, देवी भागवत का दार्शनिक पक्ष २५०, देवी भागवत का रचनाकाल और देश २५२, देवी भागवत में सुभाषित २५३, देवी भागवत की टीका २५४।

११. अग्निपुराण २५५-२७७

पुराणसूची में स्थान तथा श्लोक परिमाण २५५, अग्निपुराण का देश २५६, अग्निपुराण का काल २५७, अग्निपुराण एवं वह्निपुराण २५७, अग्निपुराण में धर्मशास्त्रीय विषय २५८, अग्निपुराण की भाषा २५९, अग्निपुराण में छन्द २६०, अग्निपुराण के संस्करण २६०, अग्निपुराणोक्त काव्यालङ्कारशास्त्र २६०, काव्यलक्षण २६१, कवि का महत्त्व २६२, रीति २६२, गुण २६२, अलङ्कार २६२, दोष २६२, अग्निपुराण में वर्णित विषयों का सार २६३।

१२. स्कन्दपुराण २७८-३६६

स्कन्द पुराण के संस्करण २८१, स्कन्द पुराण में वर्णित विषयों का सार २८१, माहेश्वरखण्डान्तर्गत प्रथमः केदारखण्ड २८१, द्वितीयः कौमारिक खण्ड २८५, (४८-५३ अ.) (सोमनाथ-माहात्म्य) २९०, (द्वितीय कौमारिक खण्ड सम्पूर्ण) २९१, माहेश्वरखण्ड का तृतीयः अरुणाचलमाहात्म्य (पूर्वार्द्ध) २९१, अरुणाचलमाहात्म्य (उत्तरार्द्ध) २९३, (५-६ अ.) (कर्मविपाकवर्णन१ पापप्रायश्चित्त-विधान) २९४, (९-१६ अ.) २९४, स्कन्द पुराण का प्रथम माहेश्वरखण्ड समाप्त स्कन्दपुराण का द्वितीय वैष्णवखण्ड प्रथम-वेङ्कटाचल माहात्म्य २९५, द्वितीय पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्र का माहात्म्य २९८, तृतीय बदरिकाश्रम-माहात्म्य ३०१, चतुर्थ कार्तिक-माहात्म्य ३०२, पञ्चम मार्गशीर्ष-माहात्म्य ३०६, षष्ठ भागवतमाहात्म्य ३०७, सप्तम वैशाखमासमाहात्म्य ३०८, अष्टम अयोध्या माहात्म्य ३१०, नवम वासुदेव-माहात्म्य ३११, स्कन्दपुराण का तृतीय ब्राह्मखण्ड ब्राह्मखण्डान्तर्गत सेतु-महात्म्य ३१२, स्कन्दपुराण का तृतीय ब्रह्मखण्डान्तर्गत धर्मारण्यखण्ड ३१६, स्कन्दपुराणान्तर्गत तृतीय ब्रह्मोत्तरखण्ड ३२२, स्कन्दपुराण का चतुर्थ काशीखण्ड (पूर्वार्द्ध) ३२५, काशीखण्ड का उत्तरार्द्ध ३३२, (५३-५४ अ.) पिशाचमोचन-माहात्म्य (वाल्मीकि चरित) ३३२, स्कन्दपुराण के पञ्चम आवन्त्यखण्ड का प्रथम "अवन्तिक्षेत्र- माहात्म्य" ३३६, द्वितीय चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य ३४२, आवन्त्यखण्ड का तृतीय रेवाखण्ड ३४६, स्कन्दपुराण का षष्ठ नागरखण्ड ३४८, स्कन्दपुराण के सप्तम प्रभासखण्ड का प्रथम प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य ३५८, (१८७-१९८ अ.) (प्रभासपञ्चक तथा अन्य-लिङ्ग-माहात्म्य) ३६१, प्रभासखण्ड का द्वितीय वस्त्रापथ (गिरनार) क्षेत्र का माहात्म्य ३६३, प्रभासखण्ड का तृतीय अर्बुद खण्ड ३६४, प्रभासखण्ड का चतुर्थ : द्वारका-माहात्म्य ३६५।

१३. **भविष्यपुराण** ३६७-३८४

भविष्यपुराण से निःसृत ग्रन्थ ३६८, भविष्य पुराण में वर्णित विषयों का सार प्रथम ब्राह्मपर्व ३७०, द्वितीय मध्यमपर्व ३७६, प्रथम भाग ३७६, द्वितीय भाग ३७७, तृतीय भाग ३७७, तृतीय प्रतिसर्ग पर्व ३७८, प्रथम खण्ड ३७८, द्वितीय खण्ड ३७६, तृतीय खण्ड ३८०, चतुर्थ खण्ड ३८१, उत्तरपर्व ३८२।

१४. **ब्रह्मवैवर्तपुराण** ३८५-४०२

उपबर्हण वृत्तान्त ३८७, ब्रह्मवैवर्तपुराणम्-काशीरहस्यम् ३८६, सत्सङ्ग महिमा ३६०, द्वितीय प्रकृति खण्ड ३६१, वेदवती का सीता रूप में जन्म, तपस्या से राम के साथ विवाह ३६३, तुलसी माहात्म्य ३६३, सावित्री कथा ३६३, षष्ठी देवी मंगल चण्डी तथा मनसा देवी ३६४, तारा वृतान्त ३६४, सुरथ-समाधि-वृत्तान्त ३६५,तृतीय गणपति-खण्ड ३६५, गणेश की उत्पत्ति ३६५, परशुराम चरित ३६७, तुलसी वृतान्त ३६६, चतुर्थ-श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ३६६, कृष्णजन्म ३६६, पूतना प्रसंग ४००, गोवर्धन पूजा ४००, दुर्वासा-अम्बरीष वृत्तान्त ४००, रासक्रीडा ४००, उद्धव संदेश ४०१।

१५. **मार्कण्डेयपुराण** ४०३-४१७

पुराणों में मार्कण्डेय पुराण का स्थान और उसकी श्लोक संख्या ४०३, मार्कण्डेयपुराण नामकरण ४०४, अध्यायानुसार मार्कण्डेयपुराण के प्रतिपाद्य विषय ४०४, मार्कण्डेयपुराण की दृष्टि में देवीतत्त्व एवं सूर्यतत्त्व ४०८, मार्कण्डेयपुराण परिचय के अन्तर्गत दुर्गासप्तशती पर विशेष वक्तव्य ४१०, सप्तशती टीकाकारों का संक्षिप्त परिचय तथा टीकाओं की विशेषता ४११, मार्कण्डेय पुराण की दृष्टि में योग ४१४, मार्कण्डेय पुराण और वर्णाश्रमधर्म ४१५, सुभाषित ४१६, मार्कण्डेयपुराण का रचनाकाल ४१६, मार्कण्डेय पुराण के संस्करण और अनुवाद ४१७।

१६. **वामनपुराण** ४१८-४४२

वामनपुराण का रचनाकाल ४१६, पाण्डुलिपि एवं संस्करण ४२८, वामन पुराण की कथावस्तु ४२६, वामनावतार का मूल स्रोत ४३०, वामनपुराण का सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व ४३१, वामनपुराण का ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्त्व ४३३, वामन पुराण में दार्शनिक महत्त्व ४३५, उपसंहार ४४१।

१७. वराहपुराण ४४३-४६२

वराह पुराण का काल ४४४, वराहमहापुराण का कर्तृत्व तथा रचना-स्थल ४४६, बराहमहापुराण का कलेवर तथा वर्ण्यविषय ४४६, प्रचलित वराहमहापुराण के विषय ४४८, वराहमहापुराण का वैशिष्ट्य ४५१।

१८. मत्स्यपुराण ४६३-४८२

पुराणसूची में स्थान तथा श्लोकपरिमाण ४६४, मत्स्यपुराण के संस्करण ४६४ मत्स्यपुराण की मातृकाएँ ४६५, मत्स्य-पुराण की भाषा ४६५, मत्स्यपुराण का देश तथा काल ४६५, मत्स्यपुराण का काल ४६६, मत्स्यपुराण में उपलब्ध वैदिक मन्त्र तथा सूक्त ४६७, मत्स्य एवं पद्मपुराण का साम्य ४६७, मत्स्यपुराण में वर्णित विषयों का सार ४६९,

१९. कूर्मपुराण ४८३-५१२

कूर्मपुराण संस्करण तथा पाण्डुलिपि ४९०, पाण्डुलिपि - सरस्वती भवन पुस्तकालय सं.सं. वि.वि. वाराणसी हस्तलिखित ग्रन्थविवरण पञ्जिका खण्ड-४ ४९०, नारदपुराण के अनुसार कूर्ममहापुराण की कथा वस्तु ५००, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टि से कूर्मपुराण का महत्त्व ५०६।

२०. ब्रह्माण्डपुराण ५१३-५२९

नामकरण ५१३, रचनाकाल ५१४, कथावस्तु ५१५, पूर्वभागेप्रक्रियापादे ५१५, पूर्वभागेऽनुषङ्गपादे ५१५, मध्यभागे उपोद्घातपादे ५१६, उत्तरभागे उपसंहारपादे ५१६, ब्रह्माण्डपुराण का वैशिष्ट्य ५१८, इतिहासः पुरावृत्तम् ऋषिभिः परिकीर्त्यते ५१८, आख्यान ५१९, उपाख्यान ५१९, गाथा ५१९, कल्पशुद्धि ५२०, पञ्चलक्षणसंगति ५२०, ब्रह्माण्ड पुराण का साहित्यिक अनुशीलन ५२१, वामनावतार का प्रसङ्ग ५२२, ज्योतिर्लिङ्गोत्पत्ति का प्रसङ्ग ५२२, कृष्ण प्रसङ्ग ५२३, गङ्गावतरण प्रसङ्ग ५२४, नारद कथा प्रसङ्ग ५२४, नीलकण्ठ प्रसङ्ग ५२४, नृसिंहावतार प्रसङ्ग ५२५, परशुरामावतार प्रसङ्ग ५२५, वेदोपबृंहण ५२७, भूगोल एवं खगोल वर्णन ५२८, कल्पशुद्धि ५२८, पौराणिक निरुक्ति ५२९, उपसंहार ५२९।

उपपुराण : ५३१-७२२

१. गणेशपुराण ५३३-५५०

२. आदिपुराण ५५१-५६६

३. नरसिंहपुराण ५६७-६१६

प्राचीनता एवं काल-निर्णय ५६६, संक्षिप्त परिचय ५७०, भाषा एवं शैली ५६२, नरसिंह पुराण में पञ्चलक्षणों की सङ्गति ५६३, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिशीलन ५६६, अष्टाक्षर एवं द्वादशाक्षर-मन्त्रोपासना तथा माहात्म्य ५६६, सूर्य-माहात्म्य ६००, गणेश ६०१, इन्द्र ६०२, श्री नरसिंह पुराणान्तर्गत सूक्तियाँ ६१३।

४. कपिलपुराण ६१७-६३२

नामकरण का अभिप्राय ६१८, कपिल पुराण का देशकाल ६१६, संस्करण/पाण्डुलिपि ६२०, विषयवस्तु ६२०, कपिलपुराण की भाषाशैली ६३१, ऐतिहासिक-भौगोलिक विशेषताएँ ६३२, सांस्कृतिक सामाजिक महत्त्व ६३२, उपसंहार ६३२।

५. कालिकापुराण ६३३-६३८

दार्शनिक विवेचन ६३६, रचनाकाल एवं रचना स्थान ६३७।

६. विष्णुधर्मोत्तरपुराण ६३६-६५४

७. सौरपुराण ६५५-६६५

सौर-उपपुराण के अध्याय एवं श्लोकों की संख्या ६५५, प्रामाणिकता एवं महत्त्व ६५५, सौर उपपुराण में वर्णित विषयों का संक्षिप्तसार ६५६, विशिष्टदार्शनिक मत एवं सम्प्रदाय ६६३, सौर उपपुराण की भाषा एवं इसमें प्रयुक्त छन्द ६६३।

८. भार्गवपुराण ६६६-६८२

भार्गवोपपुराण का लुप्त पूर्वखण्ड ६६६, भार्गवोपपुराण का काल ६७१, भार्गवपुराण का कर्तृत्व तथा रचनास्थल ६७४, भार्गवोपपुराण का वर्ण्य विषय ६७४, भार्गवोपपुराण का वैशिष्ट्य ६७८।

९. पाराशरपुराण ६८३-६९५

उपपुराणों में पाराशरोपपुराण का स्थान ६८३, पाराशरोपपुराण की प्राचीनता ६८३, पाराशरोपपुराण का प्रकाशन ६८६, काल निर्धारण ६८६, अध्याय सारांश ६८७, प्रथम अध्याय ६८७, द्वितीय अध्याय (सृष्टि) ६८८, तृतीय अध्याय ६८९, चतुर्थ अध्याय ६८९, पंचम अध्याय ६८९, षष्ठ अध्याय ६८९, सप्तम अध्याय ६९०, अष्टम अध्याय ६९०, नवम अध्याय ६९०, दशम अध्याय ६९१, एकादश अध्याय ६९१, द्वादश अध्याय ६९१, त्रयोदश अध्याय ६९१, चतुर्दश अध्याय ६९१, पंचदश अध्याय ६९२, षोडश अध्याय ६९२, सप्तदश अध्याय ६९३, अष्टादश अध्याय ६९३, मुक्तिस्वरूप ६९४, उपसंहार ६९५।

१०. देवीपुराण ६९६-७०४

देवीपुराण की भाषा शैली ७०२, देवी पुराण का आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्त्व ७०३, सामाजिक, सांस्कृतिक महत्त्व ७०४।

११. साम्बपुराण ७०५-७१२

नामकरण का अभिप्राय ७०६, देशकाल ७०६, पाण्डुलिपि तथा संस्करण, ७०७, साम्बपुराण की कथावस्त ७०८, साम्बपुराण का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व ७११, सांस्कृतिक महत्त्व ७११, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक महत्त्व ७११, वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्व ७१२, उपसंहार ७१२।

१२. एकाम्रपुराण ७१३-७२२

एकाम्रपुराण की पाण्डुलिपियाँ ७१४, एकाम्रपुराण का वर्ण्य-विषय ७१५, एकाम्रपुराण का महत्त्व ७१६, एकाम्र पुराण का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अनुशीलन ७१७, एकाम्रपुराण का सांस्कृतिक अनुशीलन ७१८, एकाम्रपुराण का साहित्यिक अनुशीलन ७२१, उपसंहार ७२२, पुस्तक सूची ७२२।

औपपुराण : ७२३-७८६

१. कल्किपुराण ७२५-७३२

२. महाभागवतपुराण ७३३-७४३

महाभागवत का पुराणत्व विवेचन ७३४, महाभागवत उपपुराण का रचना विधान ७३६, प्रस्तावना ७३६, पुराण का स्वरूप ७३७, देवी स्वरूप वर्णन ७३७, पार्वती विवाह प्रकरण ७४२, महाभागवत का प्रतिपाद्य ७४३, महाभागवत पर अन्य पुराणों का प्रभाव ७४३, महाभागवत की देन ७४३।

३. परानन्दपुराण ७४४-७५०

उपक्रम ७४४, नामकरण ७४४, विषयवस्तु ७४५।

४. बृहद्धर्मपुराण ७५१-७५८

नामकरण ७५३, संस्करण/पाण्डुलिपि ७५३, भाषागतवैशिष्ट्य ७५४, प्रतिपाद्यविषयवस्तु ७५४, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व ७५५, पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से बृहद्धर्मपुराण का महत्त्व ७५६, उपसंहार ७५८।

५. बृहन्नारदीयपुराण ७५९-७६८

संस्करण तथा पाण्डुलिपि ७६१, बृहन्नारदीय पुराण के महत्त्वपूर्ण आख्यान ७६४, बृहन्नारदीय पुराण का धार्मिक आध्यात्मिक महत्त्व ७६७, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व ७६७, बृहन्नारदीय पुराण का पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्त्व ७६८।

६. मुद्गलपुराण ७६९-७८९

अन्य प्रमुख पुराण : ७९१-८२९

१. आत्मपुराण ७९३-८०१

उपक्रम ७९३, आत्मपुराण का पुराणत्व ७९४, नामकरण ७९५, आत्म पुराण का देश काल ७९५, पाण्डुलिपि संस्करण ७९५, आत्मपुराण की विषय वस्तु ७९६, आत्मपुराण का आध्यात्मिक महत्त्व ८०१, उपसंहार ८०१।

२. नीलमतपुराण ८०२-८१६

३. दत्तपुराण ८२०-८२६

नामकरण एवं पाण्डुलिपि ८२०, दत्तपुराण का वर्ण्य विषय ८२२, दत्तात्रेय वृत्तान्त ८२३, दत्तात्रेय एवं कार्तवीर्यार्जुन ८२५, दत्तात्रेय एवं नहुष ८२६।

माहात्म्य एवं स्थल पुराण : ८३१-६४३

१. सूतसंहिता ८३३-८५१

सूत संहिता-पुराण या उपपुराण ८३४, सूत संहिता का समय ८३५, सूत संहिता विषयक साहित्य ८३७, (क) टीकाएं ८३७, (ख) संग्रह ग्रन्थ ८३६, (ग) अनुवाद ८४०, प्रतिपाद्य विषय ८४०, समीक्षा ८४६, सूत संहिता की भाषा और शैली ८५१।

२. मानसखण्ड ८५२-८६६

मानस खण्ड की पृष्टभूमि ८५२, मानस खण्ड का पौराणिक सर्वेक्षण ८५४, मानस खण्ड का भौगोलिक विस्तार ८५६, मानसखण्ड की विषयगत समीक्षा ८६१, मानसखण्ड में ऐतिहासिक तत्त्व ८६२, धार्मिक सहिष्णुता ८६६।

३. काशीरहस्य ८६७-८७४

काशी की पौराणिकता एवं वर्तमान सन्दर्भ ८६८, सांस्कृतिक पक्ष ८६६, घाट ८७०, मन्दिर ८७१, काशी की सात पुरियाँ ८७१, काशी के देवी-देवता ८७२, कालभैरव ८७२, विनायक ८७२, आदित्य ८७३, रचनाकाल ८७३, भाषाशैली ८७३, वर्ण्य विषय ८७४।

४. विनायकमाहात्म्य ८७५-८८५

उपक्रम ८७५, नामकरण का अभिप्राय ८७६, कालनिर्धारण ८७७, संस्करण एवं पाण्डुलिपि ८७७, विनायक माहात्म्य की विषयवस्तु ८७८, विनायक माहात्म्य की भाषाशैली ८८०, विनायक माहात्म्य का सामाजिक सांस्कृतिक महत्व ८८१, ऐतिहासिक दृष्टि से विनायक माहात्म्य का महत्त्व ८८३, भौगोलिक दृष्टि से विनायक माहात्म्य का वैशिष्ट्य ८८५।

५. विरजाक्षेत्रमाहात्म्य ८८६-८६४

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ८८६, विरजा क्षेत्र के वर्ण्य विषय ८८८, विरजा क्षेत्र माहात्म्य का पुरातात्त्विक अध्ययन ८६१।

६. नेपालमाहात्म्य ८६५-६२२

पूर्वार्द्ध ८६५, उत्तरार्द्ध ६०३, भगवान पशुपतिनाथ : काठमाण्डू ६०४, भगवान् मुक्तिनाथ : मुक्तिनाथधाम, मुस्ताङ ६०५, भगवान् श्रीमन्नारायण का वराह-अवतार : वराह क्षेत्र सुनसरी ६०६, भगवती महालक्ष्मी सीताजी : जनकपुरधाम ६०६, देवतात्मा हिमालय और विश्व का सर्वोच्च शिखर सगरमाथा ६०६, अहिंसा और सत्य की प्रतिमूर्ति भगवान बुद्ध का अवतारःलुम्बिनी रूपन्देही ६०७, समन्वयात्मक उदात्त हिन्दुता की अखण्ड सापेक्षता ६०८, अपराधीन राष्ट्रीय संप्रभुता का अखण्ड उज्ज्वल वर्चस्व ६१०, नेपाल की प्राचीनता ६१०, समग्र नेपाल ही तीर्थस्थल है ६१२, श्रीमुक्तिनाथ धाम ६१२, रुरुक्षेत्र (रिडी) ६१५, सप्तगण्डकी सङ्गम-देवघाट धाम ६१६, शालग्राम-मूर्तिमाहात्म्य ६१७, शालग्राम में परव्यूहादि पांचों प्रकार का समावेश ६१८, गण्डकी नाम का कारण तथा भगवान् शिव के द्वारा मुक्तिक्षेत्र की घोषणा ६१६, शालग्राम संबंधी विषयों के आकार ग्रन्थ ६२१।

७. मिथिलामाहात्म्य ६२३-६४३

प्राकृतिक सौन्दर्य ६२३, आध्यात्मिकता ६२४, महालक्ष्मी सीता का अवतार तथा श्रीराम से सम्बन्ध ६२५, मिथिला की सीमा ६२५, मिथिला की प्राचीनता ६२७, मिथिला के आत्मवेत्ता राजाओं की परम्परा ६२७, विदेह निमि तथा उनके पुत्र मिथि ६२८, मिथिला में अध्यात्म-विद्या का विकास ६३०, मिथिला के तीन अपूर्व सिद्धान्त ६३२, मिथिला की वारवधू विष्णुभक्ता पिङ्गला ६३६, मिथिला के अन्य नाम ६४१, विदेह ६४१, मिथिला ६४२, तैरभुक्त (तीरहुत) ६४२, मिथिला की अन्य विशेषताएँ ६४३।

विषय एवं लेखक सङ्केत

क्र.सं.	विषय	लेखक
	पुराणेतिहासस्वरूपविश्लेषण	**स्व. डा. रमाकान्त झा**
		महापुराण
१.	ब्रह्मपुराण	**प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी** आचार्य, संस्कृत महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
२.	पद्मपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय** पूर्व प्रवक्ता, पुराण विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
३.	विष्णुपुराण	**स्व. डा. रामशंकर भट्टाचार्य** कमच्छा, वाराणसी।
४.	शिवपुराण	**डा. श्रीकृष्ण त्रिपाठी** प्रवक्ता, पुराण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५।
५.	वायुपुराण	**आचार्य वायुनन्दन पाण्डेय** १४/६५ टेढ़ीनीम, वाराणसी।
६.	लिङ्गपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
७.	गरुडपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
८.	नारदीयपुराण	**डा. उमाकान्त चतुर्वेदी,** वाराणसी।
९.	श्रीमद्भागवतपुराण	**डा. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग** गंगाधर शास्त्री भवन, घासी टोला वाराणसी।
१०.	देवीभागवतपुराण	**स्व. चक्रवर्ती रामाधीन चतुर्वेदी** वी. २/२०७, भदैनी, वाराणसी।

११.	अग्निपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
१२.	स्कन्दपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
१३.	भविष्यपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
१४.	ब्रह्मवैवर्तपुराण	**डा. त्रिनाथ शर्मा** दुर्गाकुण्ड, वाराणसी।
१५.	मार्कण्डेयपुराण	**डा. केदारनाथ त्रिपाठी** प्लाट-५५, जानकीनगर कालोनी बजरडीहा, वाराणसी।
१६.	वामनपुराण	**डा. रमाकान्त पाण्डेय** नगवा, पंचकोशी मार्ग, वाराणसी।
१७.	वराहपुराण	**प्रो. बृजेश कुमार शुक्ल** आचार्य, संस्कृत तथा प्राकृत विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
१८.	मत्स्यपुराण	**डा. ओमप्रकाश पाण्डेय,** वाराणसी।
१९.	कूर्मपुराण	**पं. श्याम वापट** वरिष्ठ प्रवक्ता, पुराण विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
२०.	ब्रह्माण्डपुराण	**प्रो. गंगाधर पण्डा** आचार्य एवं अध्यक्ष पुराणेतिहास विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

उपपुराण

१.	गणेशपुराण	**पं. श्याम वापट**
२.	आदिपुराण	**पं. श्याम वापट**

३.	नरसिंहपुराण	**प्रो. यदुनाथ प्रसाद दूबे** आचार्य, बौद्ध दर्शन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
४.	कपिलपुराण	**पं. श्याम वापट**
५.	कालिकापुराण	**डा. उमाकान्त चतुर्वेदी**, वाराणसी।
६.	विष्णुधर्मोत्तरपुराण	**डा. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग**
७.	सौरपुराण	**डा. उमाकान्त चतुर्वेदी**
८.	भार्गवपुराण	**प्रो. बृजेश कुमार शुक्ल**
९.	पाराशरपुराण	**डा. कपिलदेव त्रिपाठी**, वाराणसी।
१०.	देवीपुराण	**पं. श्याम वापट**
११.	साम्बपुराण	**पं. श्याम वापट**
१२.	एकाम्रपुराण	**प्रो. गंगाधर पण्डा**

औपपुराण

१.	कल्किपुराण	**डा. उमाकान्त चतुर्वेदी**
२.	महाभागवतपुराण	**डा. मृत्युञ्जय त्रिपाठी**, वाराणसी।
३.	परानन्दपुराण	**डा. श्रीराम पाण्डेय** प्राध्यापक, शास्त्रार्थ महाविद्यालय, दशाश्वमेघ, वाराणसी।
४.	बृहद्धर्मपुराण	**डा. मखलेश कुमार उपाध्याय** प्राध्यापक, एकरसानन्द संस्कृत महाविद्यालय, मैनपुरी।
५.	बृहन्नारदीयपुराण	**पं. श्याम वापट**
६.	मुद्गलपुराण	**पं. श्याम वापट**

अन्य प्रमुख पुराण

१.	आत्मपुराण	पं. श्याम वापट
२.	नीलमतपुराण	पं. श्याम वापट
३.	दत्तपुराण	प्रो. गंगाधर पण्डा

माहात्म्य एवं स्थल पुराण

१.	सूतसंहिता	स्व. डा. रमाकान्त झा
२.	मानसखण्ड	स्व. पं. गोपाल दत्त पाण्डेय के-२३/६ दूध विनायक, वाराणसी।
३.	काशीरहस्य	प्रो. शारदा चतुर्वेदी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
४.	विनायकमाहात्म्य	पं. श्याम वापट
५.	विरजाक्षेत्रमाहात्म्य	प्रो. गंगाधर पण्डा
६.	नेपालमाहात्म्य	पं. जगन्नाथ प्रसाद कण्डेल नेपाली भाषा विभाग सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।
७.	मिथिलामाहात्म्य	पं. जगन्नाथ प्रसाद कण्डेल

पुराणेतिहासस्वरूपविश्लेषण

उपक्रम

भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता के स्रोत वेदों में सन्निहित हैं। भारतीय मनीषा वेद को अपौरुषेय मानती है। वेदों में निहित गूढ़ तत्वों को जानने के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष रूप षडङ्गों की रचना की गई है। वे शिक्षादि षडङ्ग वेदार्थ ज्ञान की आधार-भूमि माने जाते हैं। शास्त्र ज्ञान सम्पन्न विद्वान् ही षडङ्ग सहित वेदों के गूढ़ अर्थों को समझने में समर्थ हैं। अतएव शास्त्रीय निर्देश है कि अङ्ग सहित वेदों का अध्ययन करना चाहिए-**"षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"**। इसी सन्दर्भ में वेद के अर्थ का अनुगमन करने वाली नाना स्मृतियों तथा स्मृति-संहिताओं का भी निर्माण हुआ। पर वे भी साधारण जनमानस के बोध की सीमा के बाहर हैं-यह समझ कर भारतीय धर्म और संस्कृति के उत्सभूत वेदार्थ का उपबृंहण (विस्तार) और प्रचार के लिए परम मेधावी विष्णु रूपधारी व्यास ने पुराणों की रचना की। छान्दोग्योपनिषद में पुराणों की परिगणना पंचम वेद के रूप में की गई है -

"स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमार्थर्वाणं
चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्"।
(७.१.१)

यहां ध्यातव्य है कि उपर्युक्त उपनिषद में पुराण को केवल पञ्चम वेद ही नहीं कहा गया है अपितु वेदों का वेद घोषित किया गया है। अतएव पुराण के विषय में एक मत यह है कि वेद से पहले पुराण की रचना हो गयी थी-

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।
- पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड अ. १०४

इस सम्बन्ध में उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदन ओझा का अभिमत है कि मंत्रब्राह्मण रूप वेदग्रन्थों के आविर्भाव से पूर्व या उसके समकाल ही ब्रह्माण्डपुराण नामक वेद-विशेष था, जिसमें सृष्टि और प्रलय का निरूपण था। इसलिए शतपथब्राह्मण में 'पुराण' शब्द का उल्लेख मिलता है-"ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीति"। मत्स्यपुराण के निम्न दो श्लोकों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है -

"पुराणमेकमेवासीतदा कल्पान्तरेनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।।१।।
कालेनाग्रहणं कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते"।।२।।

पद्मपुराण और बृहन्नारदीयपुराण में भी उपर्युक्त तथ्य परक श्लोक उपलब्ध है। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्व के प्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ के आधार पर ही परवर्ती अठारह पुराणों और उपपुराणों की निर्मिति हुई है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में नाना-विद्याओं का उल्लेख मिलता है किन्तु वे सूत्ररूप में निर्दिष्ट हैं। उन्हें बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से प्रतिभासम्पन्न महर्षियों ने ब्राह्मण ग्रन्थों से उन विद्याओं को पृथक करके युक्ति एवं सिद्धि के द्वारा विशदता प्रदान कर उन्हें लोक कल्याणार्थ प्रसारित किया। जिस प्रकार कपिल और पतञ्जलि ने सांख्य और योग को, वात्स्यायन ने कामसूत्र को, मनु ने धर्मसूत्र को, धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को, यास्क ने निरुक्त को और पाणिनि ने व्याकरण को प्रवर्तित किया, उसी प्रकार महर्षि व्यास ने लोकोपकार के लिए समग्र ब्राह्मण ग्रन्थों से सभी उपाख्यानों तथा गाथाओं का संग्रह करके, कथा-प्रसंग में आयी कल्पशुद्धियों को भी जोड़कर तथा लौकिक आख्यानों से सम्पुटित करके वेदरूप ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित जगत्सृष्टि और प्रलयरूप तथ्यों को आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि से गुंफित करके १८ खण्डों में विभक्त एक पुराणसंहिता का निर्माण किया। उसे 'पुराण संहिता' इसलिये कहा गया है कि इसमें पुराण शब्द से अभिहित तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में उल्लिखित विश्वसृष्टि विद्याओं का एकत्र संकलन कर उनका समाहार किया गया है और उसी संहिता के आधार पर वेदव्यास ने ब्रह्मपुराण आदि अठारह पुराणों की रचना की और उग्रश्रवा आदि सूतों ने उन्हें समृद्ध किया[1]।

पुराण

'पुराण' आर्यजाति का सर्वस्व है। यह भारतीय साहित्य के भव्य प्रासाद का आधारस्तम्भ है। पुराण प्राचीन इतिहास-मन्दिर का स्वर्ण कलश है। नानाविध ज्ञान-विज्ञान सागर में संतरण करने वाले पोत का प्रकाशदीप है और मानव जाति की अनादि काल से संचित विद्याओं की सुदृढ़ मनोरम मञ्जूषा है। पुराण वस्तुतः अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली कनकमयी शृंखला है। यह भारत की धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारसम्पदा का अक्षय भण्डार है। भाषा की सरलता एवं क्रमबद्ध कथा-शैली के कारण प्राचीन होकर भी नवीनतम स्फूर्ति को संचारित करने में पुराण विशेष महत्व रखता है। भारत की सनातन संस्कृति पुराण-साहित्य पर ही अवलम्बित है।

---

१. सं. तारिणीश झा, कूर्म पुराण, भूमिका पृ. ११

पुराण संस्कृत वाङ्मय का वह महनीय अंश है, जिसने वेदों की अध्यात्मविद्या को स्पष्टतः स्वीकार कर उसे लोकजीवन में गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। प्रतीकात्मक वैदिक तत्वों का विस्तार पौराणिक व्याख्या की अपेक्षा करता है। अतः **"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्"** वेदव्यास की यह स्पष्टोक्ति पुराणरचना की बीज बन गई है। इस दृष्टि से वेदविद्या का ही अवान्तररूप पुराणविद्या है। स्कन्दपुराण स्पष्टरूप से पुराण को वेद की आत्मा मानता है-"आत्मा पुराणं वेदानाम्"। पुराणों में ही वेद की प्रतिष्ठा निहित है[1]। नारदपुराण में पुराण को सभी वेदों के अर्थों का सार कहा गया है-

"सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते"।

- ना. पु. १.६.१००

पुराण की सर्वशास्त्रमयता स्कन्दपुराण में स्पष्टतः उल्लिखित है। पुराण की पंचम वेदता भी कही गयी है-

"पुराणं पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।
यो न वेद पुराणं हि न स वेदान्न किञ्चन"।

छान्दोग्योपनिषद् में भी विद्याओं की सूची में पुराण का उल्लेख पञ्चम वेद के रूप में निर्दिष्ट ही है अतः वेद और उपनिषद् की पृष्ठभूमि में पुराण विद्या का आविष्कार प्रतीत होता है।

धार्मिक परम्परा में वेद के पश्चात् पुराण की ही मान्यता है। इसके महत्त्व का आकलन इस कथन से भी किया जा सकता है कि अङ्गों सहित वेदों का अध्ययन करने वाला भी द्विज पुराणज्ञान के बिना विचक्षण नहीं हो सकता[2]।

पौराणिक ज्ञान की छाया में ही वैदिक साहित्य का अर्थबोध संभव है। वेद संक्षिप्त सूत्ररूप है और पुराण उसकी व्याख्या प्रस्तुत कर मानवीय जीवन में उसकी उपयोगिता को प्रशस्त करता है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार इतिहास और पुराण के द्वारा ही वेदार्थ का विस्तार होना चाहिए। पुराणज्ञान विहीन पुरुष से वेद को प्रहार का भय होता है[3]। वस्तुतः पुराण रूपी पूर्णचन्द्र से वेदों की ज्योत्स्ना ही प्रकाशित होती है। वेदों का प्रतीक तत्व पुराणों में किस प्रकार कथात्मक रूप ग्रहण करता है, इसका उदाहरण द्रष्टव्य है-

---

१. वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।। - स्कन्दपुराण, प्रभाषखण्ड, २.९०

२. यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः।। - वायुपुराण, १.१.१००

३. इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।। - महाभारत, १.१.२६७

विष्णुसूक्त (ऋग्वेद १.२२.१७) के "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधां निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे" इस मन्त्र की सम्पूर्ण व्याख्या वामनपुराण में निहित है

इसी प्रकारयजुर्वेद (१६.२८) के "नमो नीलग्रीवाय" इस मन्त्र में नीलग्रीव' पद का महीधरभाष्यकृत अर्थ विषभक्षण से नीलग्रीव, का स्पष्टीकरण पुराणवर्णित समुद्रमन्थन से प्राप्त विष का शिव द्वारा पान करने के आख्यान से होता है। "अहल्यायै जारः" इस वैदिक वाक्य का समर्थन भी पौराणिक अहल्योद्धार कथा से होता है। इसी तरह अथर्ववेद (क ८ सू.प्र. ३.४.५) में राजा पृथु का पृथ्वीदोहन संक्षेप में निदिष्ट है, किन्तु श्रीमद्भागवतपुराण में उसी का विस्तृत वर्णन है। पुराणों की अनेक विद्याओं का मूल वैदिक विद्याओं में उपलब्ध है। पुराण की हयग्रीव विद्या वेद की दध्यङ् अथर्वा विद्या है। वेद की अग्निसोमविद्या का ही परिबृंहित प्रतीक पुराणों की हरिहरमूर्ति है। पुराणों की सूर्योपासना में वेदों की त्रयीविद्या ही तत्वतः पायी जाती है। पुराणों की अण्डसृष्टि वस्तुतः वेद की हिरण्यगर्भ विद्या ही है। इस प्रकार वेद के अनेक प्रतीक प्रसङ्ग पुराणों में समुपबृंहित हुए हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहना युक्तिसंगत है कि पुराण ज्ञान के बिना वेदों के गूढ़ रहस्य का मर्म समझना संभव नहीं है। वेद सूत्ररूप में प्रतीकात्मक है जिसका विस्तार इतिहास और पुराण से करने का संकेत है। पुराणसाहित्य भारत की प्राचीन साहित्यिक शाखाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्रकृति रूप से आध्यात्मिक तत्व एवं हिन्दू देव-देवियों की विलक्षण विभूतियों का वर्णन किया गया है। पुराण हमारी पुराकथाओं का आकर है, किन्तु इसकी उपेक्षा साम्प्रदायिक कथा साहित्य मानकर नहीं की जा सकती है। डॉ. वी. राघवन् ने पुराणके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि पुराण साहित्य, व्याकरण, ललित एवं उपयोगी कला, राजनीति, स्थापत्य, सैन्यविज्ञान, ओषधि, माणिक्य आदि से सम्बन्धित भारतीय ज्ञान का विश्वकोश है[1]।

आजकल ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सामाजिक तथा भौगोलिक दृष्टि से पुराणों का समीक्षात्मक अध्ययन किया जा रहा है, किन्तु पुराणों में आध्यात्मिक विचारों का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। अतः उस दृष्टि से भी पुराणगत दार्शनिक तत्वों का पर्यालोचन प्रवर्तमान है, क्योंकि जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष रूप परमपद की प्राप्ति है और पुराणसाहित्य में अध्यात्म तत्व का वर्णन अत्यन्त उदात्त रूप में प्राप्त होता है। दर्शन ग्रन्थों में आध्यात्मिक तत्वों की प्रतिपादन-शैली जटिल होने के कारण जनमानस को उद्वेलित सी करती है। इसके विपरीत पुराणों की शैली सुबोध एवं प्राञ्जल है, जो शीघ्र ही दुरूह अध्यात्म तत्व को हृदयंगम कराती है।

---

१. डॉ. वी. राघवन्, संस्कृत लिटरेचर, पृ. ३५

पुराण शब्द का अर्थ

व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार 'पुरा भवं पुराणम्' अर्थात् 'पुरानी घटनायें' यह अर्थ होता हैं। 'पुरा' यह अव्यय पद है जिसकी व्युत्पत्ति है - 'पुरति अग्रे गच्छति इति पुरा'। तुदादिगणपठित अग्र गमनार्थक पुर् धातु से औणादिक 'क' प्रत्यय के योग से 'पुरा' शब्द बनता हैं। कोश के अनुसार इसका प्रयोग प्रबन्ध, अतीतकाल तथा संकट इन तीन अर्थों में होता है[1]।

'पुरा भवम्' इस विग्रह में 'पुरा'- अव्यय से भव इस अर्थ में 'ट्यु' प्रत्यय करने से पुराण शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जो कुछ हुआ, उसे पुराण कहते हैं। पुराण के सम्बन्ध में निरुक्तकार यास्क का कथन है-'पुराणं कस्मात् ? पुरा नवं भवति[2]'। अर्थात् जो प्राचीनकाल में नवीन था। यास्क के इस कथन से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जो साहित्य एक ओर पुरातनी सृष्टि विद्या-वेदविद्या से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये-नये रूप में उत्पन्न लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण है।

पुरा-पुरातनम् अनिति-जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थ विशेषः। 'पुरा' पूर्वक अदादि गण पठित 'अण्' धातु से 'अच्' प्रत्यय लगने से पुराण शब्द बनता है। यद्यपि अच् प्रत्ययान्त होने से पुराण शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में होना चाहिए, किन्तु 'पुराणंपञ्चलक्षणम्' (मत्स्य पुराण, ५३.६४) 'पुराणं ग्रन्थ भेदे च क्लीवे त्रिषु पुरातने' (नानार्थरत्नमाला, पृ. ७७) इनमें नपुंसक लिङ्ग में पुराणशब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः व्यवहार में पुराण शब्द नपुसंक लिङ्ग मान्य है।

पुरा-अतीतान् अर्थात् अणति-कथयति इस व्युत्पत्ति में शब्दार्थक अण् धातु से पचादित्वात् 'अच्' प्रत्यय करने से भी पुराण शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है- प्राचीन बातों को कहने का ग्रन्थ। यद्यपि पुराण शब्द के प्रत्न, प्रतन, पुरातन, चिरन्तन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि यहां पुराण शब्द से महर्षि व्यासरचित प्राचीनकथायुक्त अष्टादश ग्रन्थ विशेष का ही बोध होता है। व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के अनुसार सभी विद्वान् पुराण को प्राचीन ग्रन्थ-विशेष मानने में प्रायः एकमत हैं। स्वयं पुराण भी इस अर्थ का समर्थन करता है[3]। वायुपुराण भी प्राचीनकाल से आजतक जीवित साहित्य को ही पुराण कहता है[4]।

---

१. स्यात्प्रबन्धे पुरातीते संकटागमिके तथा। -मेदिनीकोश, २५
२. निरुक्त-नैघण्टुक काण्ड, पूर्वषट्क, तृ.अ. च.पा., द्वि. ख.
३. पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। म.पु. ५३.७२
४. यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन कथ्यते।
निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। वा.पु. १.२.३

पद्मपुराण प्राचीन परम्परा को व्यक्त करने में समर्थ शास्त्र को पुराण मानता है[1]। ब्रह्माण्ड पुराण में 'पुरा एतद्भूत्'- प्राचीनकाल में ऐसा था, यह अर्थ है[2]। इस अर्थ में भी प्राचीनता ही ध्वनित होती है। पौराणिक व्युत्पत्ति पुराण के वर्ण्य विषय को प्राचीनकाल से सम्बद्ध मानती है। निष्कर्षतः पुराणों का प्रतिपाद्य विषय प्राचीनकाल से सम्बन्धित वृतान्त है।

'पुराण' शब्द का प्रयोग विशेषण और संज्ञा दोनों रूपों में होता है। विशेषण के रूप में इसका अर्थ है पुराना, पुरातन या प्राचीन। भगवद्गीता में "अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" (२.२०), "त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः" (११.३८) आदि में प्रयुक्त 'पुराण' शब्द प्राचीन अर्थ का वाचक है। संज्ञा के रूप में इसका अर्थ है-पुरातन आख्यानों से युक्त ग्रन्थ। इस अर्थ में 'पुराण' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है[3]।

पुराण-लक्षण-पञ्चलक्षण

कोशकार के अनुसार जो प्राचीन वस्तु हो, उसे पुराण कहते हैं। अमरकोश में पुराण का पञ्चलक्षण कहा गया है - "पुराणं पञ्चलक्षणम्"। वाराहपुराण के अनुसार पञ्चलक्षण के अन्तर्गत सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित ये पांच विषय परिगणित हैं। सर्ग से तात्पर्य सृष्टि, प्रतिसर्ग से लय और पुनः सृष्टि, वंश से देव तथा ऋषियों की वंशावली तथा वंशानुचरित से राजवंशों का इतिहास है। उपर्युक्त पांच विषय ही मुख्य रूप से पुराणों में वर्णित हैं। पुराणों के इन्हीं प्रतिपाद्य विषयों को ध्यान में रखकर कोशकार ने पुराण का अपर नाम 'पञ्चलक्षण' रखा हैं। पुराण का पञ्चलक्षणत्व पुराणों में भी स्वीकृत है।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्"।। (वायु पुराण ४.१०)

विष्णुपुराण में पुराण का यही लक्षण है[4]। स्कंद की सूतसंहिता में वाराहपुराण के समान ही पुराण का लक्षण मिलता है[5]। अन्य पुराणों में भी प्रायः पुराण का यही लक्षण

---

१. पुरा परम्परां व्यक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।। पद्मपु. १.२.५४
२. यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्। ब्र.पु.१.१.१७३
३. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं....दिविश्रितः। अ.वे. ११.७.२४
अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः।
सोऽयमिति किञ्चित् पुराणामचक्षीत्। श.ब्रा. १३.४.३.१३
४. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च तत्।। - विष्णुपु., ३.६.२५
५. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।। सूतसंहिता, १.१.३३

किया गया है[1]। वस्तुतः पुराण का यह लक्षण उसके प्रतिपाद्य विषय को लक्ष्य करके किया गया है। पुराणों के विषयों का अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि मुख्य रूप से सभी पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पांच विषयों का ही विशद वर्णन हुआ है। इस पंचलक्षण का अभिप्राय है-यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई ? इसका लय कहां और किस प्रकार होगा ? सृष्टि के पदार्थों का उत्पत्ति क्रम किस प्रकार का है ? मानव जाति के प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकारारूढ़ हुए ? उनके चरित्र कैसे थे और सृष्टि एवं प्रलय के बीच कितना समय लगता है? इन विषयों की विवेचना जिसके द्वारा की जाय, वही पुराण है। विचार करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि पुराण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पुराकथायुक्त ग्रन्थविशेष और पुराण प्रतिपादित पञ्चलक्षण वस्तुतः एक ही विषय की ओर संकेत करते हैं और वह विषय है - उपर्युक्त पांच तत्वों का विस्तृत वर्णन। पुराण की व्युत्पत्ति और लक्षण दोनों में इन पांच विषयों का समावेश हो जाता है अतः 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' पुराणों का समान्य लक्षण मानने में कोई आपत्ति नही है। 'पञ्चलक्षण' शब्द पुराण का इतना अनिवार्य द्योतक स्वीकृत हो चुका था कि अमरसिंह ने कोश में इस शब्द का प्रयोग बिना किसी व्याख्या के ही किया है। व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता का संकेत है। पुराण की सर्वत्र मान्य परम्परा के अनुसार निम्नलिखित पांच विषय वर्णनीय माने गये हैं -

१. **सर्ग**-संसार की तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति 'सर्ग' कहलाती है। भागवत में सर्ग का लक्षण है -

"अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते।।" - १२.७.११

अर्थात मूल प्रकृति में लीन गुण से क्षुब्ध होने पर महत् तत्व की सृष्टि होती है। महत् तत्व से त्रिविध अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रम का नाम सर्ग है।

२. **प्रतिसर्ग**-सर्ग से विपरीत वस्तु अर्थात् प्रलय। विष्णुपुराण में प्रतिसर्ग के स्थान में 'प्रतिसंचर' शब्द का प्रयोग मिलता है -

"प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतं प्रलये तु यत्।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसंचरः।। - १.२.२५

---

१. यही लक्षण किञ्चित पाठ भेद से निम्न पुराणों में भी प्राप्त होता है - मार्कण्डेय १३४.१३, अग्नि, १.१४, भविष्य. २.५, ब्र.वै. १३.६, वराह. २.४, स्कन्द - प्र.ख. २.८४, कूर्म - पूर्वार्ध १.१२, मत्स्य. ५३.६४, गरुड आ.का. २.२८, ब्र. प्र. पा. १.३८, शिव. - वा.सं. १.४१ विशेष द्रष्टयव्य, पुराणविमर्श, पृ. १२५

श्रीमद्भागवत् में प्रतिसर्ग के स्थान में 'संस्था' शब्द प्रयुक्त हुआ है -

"नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः"।।- १२.७.१७

इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार है - नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। यही 'संस्था' शब्द से अभिहित है। भागवत (३.१०.१४) में प्रलय के लिए 'प्रतिसंक्रम' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। यह शब्द प्रतिसर्ग के समान ही संक्रम (सर्ग) से विपरीत तत्व का द्योतक है[1]।

३. **वंश**-श्रीमद्भागवत में वंशकी परिभाषा है -

"राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।। - १२.७.१६

अर्थात ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किये गये राजाओं की भूत, वर्तमान तथा भविष्य कालिक सन्तति परम्परा को वंश कहते हैं। भागवत में वंश को राजवंश तक ही सीमित रखा गया है, किन्तु अन्य पुराणों में वंश के अन्तर्गत ऋषिवंश भी वर्णित है।

४. **मन्वन्तर**-यह शब्द पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न कालमान का द्योतक है। मन्वन्तर १४ होते हैं और प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है जिसके सहयोगी पांचपदार्थ भी होते हैं। भागवत् में मन्वतर के सम्बन्ध में लिखा है-

'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते'८।। १२.७.१५

मनु देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार इन छः विशेषताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं।

५. **वंशानुचरित**-मनु आदि वंशों में उत्पन्न वंशधरों तथा राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें रहता है, उसे वंशानुचरित कहते हैं। यहां पर मानव वंश में प्रसूत महर्षियों एवं राजाओं का चरित्र भी समाविष्ट है। पुराणों में महर्षि चरित्र की अपेक्षा राजचरित्र का ही विशेष विवरण उपलब्ध है। राजनीतिशास्त्र में 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' का एक नया ही संकेत मिलता है जो पूर्व निर्दिष्ट लक्षण से भिन्न है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१.५) की व्याख्या में जयमंगल ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से यह श्लोक उद्धृत किया है-

१. कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधिः प्रतिसंक्रमः। विष्णु पुराण का प्रतिसञ्चर शब्द इसी शैली का शब्द है।

"सृष्टिप्रवृत्ति संहार-धर्म-मोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम्"।।

इसमें पञ्चलक्षण की नवीन व्याख्या दी गई है और धर्म को पुराण का अविभाज्य लक्षण माना गया है। इसका अभिप्राय यह है कि मूल रूप से ही पुराण में धार्मिक विषयों का सन्निवेश अभीष्ट था। 'मन्वन्तराणि सद्धर्मः' कहकर भागवत ने भी मन्वन्तर के अन्तर्गत धर्म का उपन्यास न्याय्य माना है[1]।

उपर्युक्त विवरण में वंश के अन्तर्गत देवों तथा ऋषियों के वंशों का भी समावेश समझना चाहिए। इन विषयों को पुराण का मौलिक वर्ण्य विषय मानने में प्रधान कारण 'सूत' के कार्यों के साथ इसकी पूर्ण संगति है। पुराण का वाचन तथा व्याख्यान करना सूत का प्रधान कार्य था। सूत का कर्तव्य था-देवों, ऋषियों, तेजस्वी राजाओं तथा लोकप्रथित महात्माओं के वंशों का धारण करना -

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चामितेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्"।।

- वायुपु. १.३१-३२

वस्तुतः पुराण की धारा वैदिक धारा से पृथक थी जिसके संरक्षण, संवर्धन और प्रचार-प्रसार का कार्य सूत की अधिकार-सीमा के भीतर था।

दशलक्षण

श्रीमद्भागवत् (२.१०.१-) में तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में दशलक्षण महापुराण के तथा पञ्चलक्षण क्षुल्लकपुराण के कहे गये हैं। भागवत के द्वादश स्कन्ध के अनुसार ये दश लक्षण हैं -

"सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः"।। १२.७.९

वस्तुतः उपर्युक्त दश लक्षण पूर्वोक्त पञ्चलक्षण के विस्तारमात्र ही हैं। इन दशों में कोई ऐसी नयी बात नहीं है, जो पूर्वोक्त पांच लक्षणों से बोधित न होती हो। भागवत के दशम स्कन्ध में सर्ग, प्रतिसर्ग (प्रलय-संस्था), वंश, वंशानुचरित और मन्वन्तर इन पांच लक्षणों का निरूपण इन्हीं शब्दों में किया गया है। अवशिष्ट जो पांच हैं उनमें 'विसर्ग' सृष्टि

---

१. द्रष्टव्य, पुराणपत्रिका (भाग ४, अङ्क १) में वर्णित पंडितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड का लेख - "भारतीय राजनीतौ पुराणपञ्चलक्षणम्" पृ. २३६-२४४। जुलाई १९६४ ई. प्रकाशक, अखिल भारतीय काशिराजन्यास, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

का ही अवान्तर भेद है। 'अपाश्रय' शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है और वह ईश्वर सृष्टि का निर्माता है। अतः सृष्टि-वर्णन में उसका अन्तर्भाव हो सकता है। 'हेतु' शब्द से अभिहित 'कर्म वासना' सृष्टि की कारण सामग्री के अन्तर्गत है। अतः वह भी सृष्टिवर्णन में ही अन्तर्भूत होती है। 'वृत्ति' शब्द से कथित परस्पर उपमर्द-उपमर्दकभाव स्पष्ट रूप से वंशानुचरित में अन्तर्भूत होता है। 'रक्षा' भी वंशानुचरित के ही अन्तर्गत है क्योंकि इसमें भगवान् के अवतारों का वर्णन है और ये अवतार किसी न किसी वंश में ही होते हैं। अतः वंशानुचरित में अवतारों का भी संग्रह अभिप्रेत है। फलतः यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों के ये दश लक्षण पूर्वोक्त पांच लक्षणों के ही अन्तर्भूत हैं। भागवत आदि में इनके निरूपण का अभिप्राय है - इन पुराणों में भगवच्चरित का वर्णन ही मुख्य प्रयोजन है, जैसा कि भागवत के प्रारंभ में उल्लेख है। अतः इनमें भगवच्चरित चित्रण की प्रमुखता से उनकी उपासना के अंगों को पृथक समझाने के लिए परिगणित किया गया है। इसी सन्दर्भ में यह निर्देश करना भी प्रासंगिक है कि उपर्युक्त पांच विषयों के अतिरिक्त लोकोपयोगी होने के कारण पुराणों में चार विषयों का विशेष रूप से संग्रह किया गया है। ये विषय हैं -आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि। विष्णुपुराण में इन चारों विषयों से युक्त पुराणसंहिता का स्पष्ट उल्लेख है -

"आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः"।। ३.६.१५

आख्यान और उपाख्यान की परिभाषा विष्णुपुराण की श्रीधरीटीका में दी गयी है। स्वयं देखी हुई बात का कथा आख्यान है और सुनी हुई बात का कथन उपाख्यान है[1]। वेदों में जो आख्यायिकायें संकेतरूप से आयीं हैं, उनका विस्तार पुराणों में किया गया है। उन्हें ही 'आख्यान' कहना चाहिए। उपाख्यान वे हैं जो वेद या प्राचीन वाङ्मय में संकेतित नहीं है, पुराणों में ही उनका संकलन हुआ है। नल आदि राजाओं के चरित ऐसे ही उपाख्यान हैं। अतिरिक्त विषयों में तीसरा स्थान 'गाथा' का है जो किसी महापुरुष के अनुभव वाक्य हैं। यद्यपि 'कल्पशुद्धि' पुराणों के मुख्य लक्षण में ही आती हैं, तथापि इस अतिरिक्त विषय के रूप में गृहीत कल्पशुद्धि का आशय धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित कल्पशुद्धि है।

पुराणेतिहास

इसी प्रसंग में पुराण के साथ प्रयुक्त होने वाले 'इतिहास' शब्द के अर्थ का भी विचार

---

१. स्वयंदृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।। - विष्णुपुराण, श्रीधरीटीका

करना आवश्यक है, क्योंकि इन दोनों का प्रयोग प्रायः साथ-साथ होता है। वैदिक काल से ही पुराण और इतिहास का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक माने गये हैं। वेदार्थ के उपवृंहण (विस्तार) में दोनों का समान सहयोग स्पष्टतः अपेक्षित है। पुराण और इतिहास ये दोनों शब्द कभी भिन्न अर्थों में और कभी अभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते थे। इन दोनों का पार्थक्य स्पष्टरूप से प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता है। महाभारत, जो अपने को 'इतिहास'[1] कहता है, अपने लिए 'पुराण' नाम का भी व्यवहार करता है[2]। उधर वायुपुराण पुराण होने पर भी अपने को 'पुरातन इतिहास' बतलाता है। इस विरुद्ध संकेत से प्राचीन काल में इतिहास एवं पुराणकी विभाजन रेखा अस्पष्ट थी। छान्दोग्योपनिषद में महर्षि नारद ने अपनी अधीत विद्याओं में इतिहास-पुराण को पञ्चमवेद कहा है[3] -

''ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्''। (७.१)। 'इतिहासपुराणम्' इस संयुक्त नाम से स्पष्ट है कि उपनिषत्काल में ये दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध था। बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में शंकराचार्य ने इन दोनों अभिधानों का पार्थक्य दिखाया है। आचार्य शङ्कर के अनुसार 'इतिहास' ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त उर्वशी-पुरूरवा के संवाद का नाम है और 'पुराण' असद् वा इदमग्र आसीत्'' इत्यादि सृष्टिविषयक वचनों का नाम है[4]।

परन्तु सायणाचार्य के अनुसार 'इतिहास' का अर्थ सृष्टि-विषयक इस प्रकार के वचन हैं-आरम्भ में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था'। और पुराण का अर्थ उर्वशी-पुरूरवा आदि का आख्यान है[5]। इस प्रकार दोनों मूर्धन्य भाष्यकारों के मत में इतिहास और पुराण के अर्थ में परिवर्तन हो गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि पुराण शब्द का विशेषण के रूप में 'प्राचीन' तथा संज्ञा के रूप में 'पुरातन आख्यानयुक्त ग्रन्थ विशेष' अर्थ होता है। इस अर्थ में पुराण शब्द का प्रयोग अथर्ववेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।

'इतिहास' शब्द की व्युत्पत्ति है-इति ह आस' अर्थात् 'इत्थं निश्चयेन बभूव'। यह ऐसा था या ऐसा हुआ। इस व्युत्पत्ति के अनुसार किसी तथ्यात्मक आख्यान का नाम

---

१. जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा। महा. उ.प. १३६.१८

२. द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मादिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्।। महा. आ.प. १.१७

३. इमं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्।
शृणुयात् श्रावयेद् वापि तथाध्यापयतेऽपि च।। वायु. पु. १०३.४८

४. इतिहास इत्युर्वशीपुरूरवसोः संवादादिः-'उर्वशीहाप्सराः' इत्यादि ब्राह्मण-मेव पुराणम्, 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इत्यादि। बृ.उ. २.४.१० शां.भा.

५. आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास इत्यादिकं सृष्टिप्रतिपादकं ब्राह्मणमितिहासः। उर्वशी हाप्सराः पुरूरवसमैडं चकमे इत्यादीनि पुरातनपुरुषवृत्तान्तप्रतिपादकानि पुराणम्।-शत. ब्रा. १३.४.३ सा.भा.

इतिहास है। यास्क ने निरुक्त में इतिहास शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है[१]। बाद में पुराणों में भी इतिहास शब्द का इस अर्थ में प्रयोग पाया जाने लगा[२]।

परन्तु ऐसा लगता है कि पुराण शब्द किसी समय दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता था। रूपात्मक या तथ्यात्मक आख्यान 'पुराण' कहा जाता था। चूंकि पुराण शब्द ही पुराण तथा इतिहास दोनों के लिए प्रयोग में लाया जाता था। अतः पुराण शब्द का अर्थ इतिहास शब्द के अर्थ से अधिक विस्तृत था और इतिहास का अन्तर्भाव पुराण में हो जाता था। याज्ञवल्क्यस्मृति (१.) में धर्म के चौदह स्थानों में केवल पुराण की गणना है।

विष्णुपुराण (३.६.२८) में भी केवल पुराण की गणना है, इतिहास की नहीं। उपर्युक्त दोनों स्थानों में महाभारतादि इतिहास धर्मप्रतिपादक होने के कारण पुराण के अन्तर्गत ही माने गये प्रतीत होते हैं। इस प्रकार पुराण तथा इतिहास ये दोनों शब्द एक दूसरे के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। इन दोनों की परिभाषा परस्पर घुल मिल गयी। अमरकोश में इतिहास का लक्षण है-'इतिहासः पुरावृत्तम्' (१.५.४)। महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने वही लक्षण पुराण का दिया है - पुराणं पुरावृत्तम्' (महा. १.५.१ नी.टी.) ज्यों ज्यों पुराणों में मानवोपयोगी विषयों का समावेश होने लगा, इतिहास तथा धर्मशास्त्र का भी समावेश पुराणों में होने लगा। महाभारत को भी पुराणनाम से अभिहित किया गया। रामायण का भी बहुलांश पुराण ही है। अतः पुराण में इतिहास समाविष्ट है। फलतः पुराण की विशालता में महापुराण, उपपुराण, महाभारत और रामायण भी समाविष्ट हो गये हैं। अठारह पुराणों की श्लोक संख्या चार लाख, महाभारत की एक लाख और रामायण की चौबीस हजार है। अतः लगभग सवा पांच लाख श्लोक संख्यापुराण-साहित्य की मानी गयी है। सवा पांच लाख श्लोकों का यह समग्र वाङ्मय 'पुराण' नाम से अभिहित है, जिसे मत्स्यपुराण भी स्वीकार करता है[३]। 'उपपुराण' पुराणों के एक प्रकार से परिशिष्ट हैं। अतः उनकी श्लोक संख्या इस सवा पांच लाख से अलग है। इस प्रकार भारतवर्ष का यह विपुल इतिहास-पुराण अथवा पुराण वाङ्गमय परिमाण तथा विषयविस्तार की दृष्टि से विश्व में अद्वितीय है।

आविर्भाव

पुराण के आविर्भाव के विषय में पुराणों तथा इतर शास्त्रों में अनेक सूत्र यत्र-तत्र विखरे पड़े हैं। इनकी एकत्र समीक्षा करने पर अनेक तथ्य उभर कर सामने आते हैं।

---

१. निरुक्त, २.३.१, तुलना-निदानभूतः इति ह एवमासीत् इति य उच्यते स इतिहासः, निरुक्त २.३.१ पर दुर्गाचार्य की वृत्ति।

२. अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। मत्स्य पु., १७.६

३. एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः।
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।। मत्स्यपुराण, ५३,७१

परम्परा के अनुसार पुराण एक विद्या है जो अनादि है। संस्कृत वाङ्मय में जो चौदह विद्याओं की अनेक गणना मिलती है, उनमें पुराण विद्या को प्रमुख स्थान प्राप्त है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने विद्याओं में पुराण को प्रथम स्थान दिया है[1]। पुराणों में स्पष्ट बताया गया है कि पहले पुराण एक ही था, वह बहुत विस्तृत कई कोटि की ग्रन्थ संख्या में था[2]। कलियुग के आरम्भ में मनुष्यों की स्मरण शक्ति और विचार बुद्धि की दुर्बलता को देखकर महर्षि व्यास ने जहां वेद को चारसंहिता रूप में विभाजित किया, वहां पुराण को भी संक्षिप्त कर अठारह भागों में बांट दिया। पुराण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों का मत है कि ब्रह्मा ने सम्पूर्ण शास्त्रों के आविष्कार से पूर्व पुराण का स्मरण किया। उसके बाद उनके मुख से वेदों का आविर्भाव हुआ[3]। पुराण प्रमाण के अनुसार पुराण का आविर्भाव वेद से भी पहले हुआ, यह तथ्य स्पष्ट होता है किन्तु भारतीय मनीषा ऋग्वेद को सबसे प्राचीन रचना मानती है। पुराण शास्त्रविशारद वेदव्यास ने वेदविभाजन के पश्चात् प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं तथा कल्पशुद्धियों के सहित एक पुराणसंहिता की रचना की-

''आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः''।। - विष्णु पु. ३.६.१५

श्रुति में पुराण की वेदसमकक्षता प्रदर्शित कर कहा गया है कि ऋक्, साम. छन्दस् और पुराण के समस्त साहित्य यजुस् के साथ उत्पन्न हुए-

''ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः''।। अथर्ववेद, ११.७.२४

श्रुतिप्रमाण्य से भी पुराण वेद का समकालीन सिद्ध होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण को वेद से अभिन्न और उपनिषद् वेद के समान पुराण को ईश्वर का ही निःश्वास मानते हैं[4]।

सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि। बृहदा. उप., २.४.१० छान्दोग्योपनिषद् में तो पुराण का पञ्चम वेदत्व प्रसिद्ध ही है। चिरकाल से

---

१. पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चर्तुदश।। - याज्ञ. स्मृ. १.३

२. पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।। स्कन्द- रे.मा., १.२३.३० यही श्लोक दो-एक शब्दपरिवर्तन के साथ मत्स्य पुराण के अध्याय ५३ में भी मिलता है।

३. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।। वा.पु., १.६१ मत्स्य पुराण के३.३-४ में भी पुराणोत्पत्ति के विषय में इसी प्रकार का श्लोक है।

४. (क) अध्वर्युस्ताक्ष्यें वै पश्यतो रयजयेत्याह पुराणं वेद। सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत्-श.ब्रा. १४.३.३.१३
(ख) अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि (बृहदा. उप. २.४.१०)।

जीवित रहने के कारण यह वाङ्मय 'पुराण' नाम से समाख्यात है। पुराणोत्पत्ति के प्रसङ्ग में उपर्युक्त शास्त्रीय मान्यताओं के पर्यालोचन से इतना स्पष्ट है कि प्राचीन समय में पुराण एक था। वह एक विद्या के रूप में जाना जाता था। उसका आविर्भाव वेद से भी पूर्व हो चुका था। वह वेद के ही समकक्ष तथा वेद के समान ही परमात्मा का निःश्वास था। उसी प्राचीन पुराण विद्या को वेदव्यास ने संहितात्मक रूप देकर अठारह भागों में विभक्त किया। विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण के विकास में दो धारायें हैं-व्यासपूर्व धारा तथा व्यासोत्तर धारा। महर्षि व्यास का मुख्य कार्य 'पुराणसंहिता' का निर्माण था, अतः पुराणों को सुव्यवस्थित रूप देना वेदव्यास का लोकोत्तर कार्य था। परन्तु पुराण का अस्तित्व तो व्यास से पूर्व भी लोकप्रचलित इतस्ततः विकीर्ण विद्याविशेष के रूप में विद्यमान था। जिसका संकलन कार्य वेदव्यास के भगीरथ प्रयास से सम्पन्न हुआ। एक पौराणिक मान्यता के अनुसार चतुःसहस्रात्मक पुराणसंहिता का विस्तार चतुर्लक्षात्मक अष्टादश पुराणों के रूप में है और दूसरी मान्यता के अनुसार देवलोक में विद्यमान शतकोटि श्लोकात्मक पुराण का संक्षिप्त रूप चतुर्लक्षात्मक अष्टादश पुराणों के रूप में किया गया है। एकमत प्राचीन संक्षिप्त पुराण का विस्तार और दूसरामत प्राचीन विस्तृत पुराण का संक्षेप स्वीकार करता है, किन्तु उभय तथ्य इस बात पर सहमत है कि पुराण के प्रणयन में वेदव्यास ही मुख्यरूप से सक्रिय व्यक्ति रहे हैं। इस पुराण-साहित्य के निर्माण का श्रेय कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि को है। जहां तक पुराण के वेद से पूर्व उत्पन्न होने की बात है, वह मत्स्यपुराण की अपनी विशिष्ट कल्पना है और वह पुराण की महत्ता के प्रतिपादन में अर्थवाद (प्रशंसोक्ति) मानी जा सकती है। श्रीमद्भागवत पुराण की उत्पत्ति वेद के पश्चात ही मानता है[१]। पौराणिक मत प्राचीनतम पुराण को ब्रह्मा के मुख से आविर्भूत मानने में एकमत है और यह स्पष्ट स्वीकार करता है कि ब्रह्मा ने ही व्यासरूप में लोक कल्याण की भावना से पुराण का अष्टादश विभाग किया है[२]।

पुराण के प्राचीन स्वरूप के विचार के अनन्तर अब उसके वर्तमान रूप की झांकी प्रस्तुत करना भी प्रासंगिक है। यह समझ लेना आवश्यक है कि सम्प्रति जो पुराण उपलब्ध हैं, उनका कलेवर व्यासरचित ही है या समय-समय पर उसमें संशोधन परिवर्धन भी हुआ है। पाश्चात्य विद्वान् पुराण साहित्य का परिशीलन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वर्तमान उपलब्ध पुराण प्राचीन न होकर अर्वाचीन हैं। भारतीय विद्वान् भी

---

१. इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः।। भागवत, ३.१२.३९

२. व्यासरूपी तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे।
चतुर्लक्ष प्रमाणेन द्वापरे द्वापरे विभुः।।
अष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते।। - पद्मपु. सृष्टिखण्ड, अ.१

पुराण के मूल अंश को अत्यन्त प्राचीन मानकर भी आज के प्राप्त पुराणों को रचना और भाषा की दृष्टि से उतना प्राचीन मानने के पक्ष में नहीं है।

यद्यपि विषय की दृष्टि से वर्तमान उपलब्ध पुराणों के अधिकांश रूप परवर्ती अवश्य हैं, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने जितना आधुनिक इन्हें माना है, उतने आधुनिक नहीं हैं। सम्भावना यह है कि प्राचीन साहित्य की पुराण चर्चा का समावेश कालक्रम से आधुनिक उपलब्ध पुराणों में हो गया और पुराणों ने प्राचीन साहित्य के साथ ही अन्य नवोदित शास्त्रों को अपने में समेटना प्रारम्भ कर दिया, फलतः पञ्चलक्षण पुराणों में सृष्टि, प्रलय, पुनः सृष्टि देव एवं ऋषियों की वंशावली, मनु का काल-विभाग और राजवंशों का इतिहास आदि विषयों का समावेश हो गया।

डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार महाभारतकाल में ही वैदिक संहिताओं के समान पौराणिक साहित्य का भी संघटन प्रारंभ हुआ। उसी समय वेदव्यास ने पुराणों की रचना की। यदि सभी पुराणों को व्यास की रचना, न भी माना जाय, फिर भी इतना तो अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि उसी समय प्राचीन पुराण-परम्परा का संकलन और सम्पादन प्रारम्भ हुआ और उनके मुख्य विषय पूर्वोक्त पांच हुए। पुराणों में अपने विस्तार की अनन्त शक्ति थी। अतः प्रत्येक आगत युग में उसमें नवीन सामग्रियां जुड़ती गयीं। कथा भाग के साथ ही नूतन विषयों का समावेश हुआ। देश में प्रचलित समस्त ज्ञान स्रोतों को यथासम्भव आत्मसात कर पुराणों ने विपुल वाङ्मय का रूप धारण किया[1]। विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है-पुराण और धर्म का अभिन्न सम्बन्ध है। एक के परिवर्तन से दूसरे में परिवर्तन स्वभाविक है। पुराणों की प्रामाणिकता अक्षुण्ण रही है। अतः जब कभी आर्य जाति में सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक उथल-पुथल की स्थिति आयी, तब पुराणों में भी तद्नुरूप परिवर्तन होकर तत्कालीन नवीन विचारधारायें पुराणों के सांचे में ढलीं। परिणामतः पुराणों में समय-समय पर संशोधन एवं परिवर्धन होते रहे। पुराणों के अनेक प्रक्षेप और पाठभेद इसी के परिणाम हैं। इस परिवर्तन के बावजूद कुछ परम्परायें प्राचीन काल से ही सुरक्षित रहकर आगे भी चलती रहीं। परवर्तीकाल में पुराणों का संशोधन-परिवर्धन देश-काल की मांग के अनुसार हुआ और उसमें प्रगतिशील हिन्दूधर्म के तत्कालीन स्वरूप का दिग्दर्शन मिला। वर्तमान पुराण ग्रन्थों में प्राचीन पुराण का संशोधित संस्करण ही समझना चाहिए। आज के उपलब्ध पुराणों में से कुछ प्रक्षिप्त अंश को छोड़कर कोई भी पुराण ११वीं शताब्दी के बाद का नहीं है, क्योंकि अरब के विद्वान् अलबेरूनी ने १२३० ई. में अपने ग्रन्थ 'अलबेरूनी का भारत' में इन सभी अठारह पुराणों तथा कुछ

---

१. अनुक्रमणी प्रस्तावना, पृ. २ विशेष द्रष्टव्य डॉ. सर्वदानन्द पाठक, विष्णुपुराण का भारत, भूमिका, पृ. ७

उपपुराणों का भी उल्लेख किया है। उसने अपने ग्रन्थ में पुराणों की दो सूचियाँ दी हैं-एक तो वह जो विष्णुपुराण (३.६.२१-२४) में दी गयी है तथा दूसरी वह जो किसी तत्कालीन पुराणज्ञ से उसने सुनी[1]। उनमें से कुछ पुराण सप्तम शताब्दी से भी पहले के हैं, क्योंकि उनमें गुप्तकाल के पश्चाद्वर्ती किसी भी राजवंश का उल्लेख नहीं मिलता। विन्टरनित्स ने अपने भारतीय साहित्य के इतिहास (भाग १, पृ. ५२५) में कहा है कि प्राचीन पुराण ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में ही आ चुके थे, क्योंकि वर्तमान पुराणों में तथा प्रथम शताब्दी के 'ललित विस्तर', 'सद्धर्मपुण्डरीक' आदि बौद्ध ग्रन्थों में शैली आदि की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य पाया जाता है। पुराण की 'पुरापि नवीनं भवति' यह व्युत्पत्ति उसकी प्राचीनता को स्वीकार करके भी उसमें कालान्तर में उत्पन्न नूतन परिवर्तनों को आत्मसात् करने की क्षमता का स्पष्ट संकेतक है।

पुराणविषयक समस्यायें

पुराण के सम्बन्ध में कई समस्यायें हैं जिन पर विहङ्गम दृष्टि डालने की आवश्यकता है। इनमें सर्वप्रथम इस विपुलकाय साहित्य के अध्ययन की ऐसी समस्या है, जिसका समाधन आज के अन्वेषण प्रधान युग में नितान्त अपेक्षित है। पुरातन काल से ही अस्तित्व में रहने पर भी इन पुराणों का सुव्यवस्थित अध्ययन १८वीं शताब्दी से पूर्व नहीं हो सका। गुप्तकाल में इनका परिमार्जन अवश्य हुआ, किन्तु उनके स्वतन्त्र अध्ययन की कोई स्वस्थ परम्परा नहीं बन सकी। अधिकतर पुराण कथावाचकों की जीविका के साधन बने रहे या बड़े-बड़े पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाते रहे। कुछ मूर्धन्य विद्वानों ने कुछ पुराणों की टीकायें लिखीं और बहुतों ने इनका भाषान्तर किया। अनुवाद-कार्य का मार्ग अन्य विदेशी भाषाओं में भी प्रशस्त हुआ और ऐतिहासिक दृष्टि से बाद में इनका मूल्याङ्कन होने लगा। परन्तु आश्चर्य होता है कि इस अक्षय साहित्य भण्डार में सुरक्षित अमूल्य रत्नों की परख गवेषणात्मक दृष्टि से क्यों नहीं हो सकी ? आज विज्ञान का युग है। आज इस दिशा में शोधपूर्ण अध्ययन अपना विशेष महत्त्व रखता है। पौराणिक अध्ययन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। १८वीं शताब्दी के अन्त में सर विलियम जोन्स ने पुराणों के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। १९वीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में कोल ब्रुक, वान्स केनेदी, विल्सन और वर्नप ने पुराण साहित्य के धार्मिक एवं दार्शिनिक पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत किया। वान्स केनेडी का १८३१ ई. में प्रकाशित 'रिसर्चेज इन टु द नेचर एण्ड एफिनिटी आफ एन्शियेण्ट एण्ड हिन्दू माइथालाजी,' विल्सन का १८३२ ई. में प्रकाशित 'एसेज आन संस्कृत लिटरेचर' तथा विष्णुपुराण के अनुवादकी भूमिका इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। वर्नप ने भागवतपुराण

१. दोनों सूचियों में जिन पुराणों का उल्लेख हुआ है, उनकी जानकारी के लिए विशेष द्रष्टव्य - काशिराजन्यास द्वारा प्रकाशित वामन पुराण-भूमिका, पृ. ८

का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत कर पाश्चात्य जगत् में उसकी लोकप्रियता बढ़ायी। उसके पश्चात श्री के.एम. बनर्जी द्वारा सम्पादित 'मार्कण्डेय पुराण' एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल से प्रकाशित हुआ। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में पुराणों का विशेष अध्ययन पार्जिटर ने किया। उनके श्रमसाध्य अनुसन्धान ने पुराणों की ऐतिहासिक सामग्रियों का एक पर्यालोचनात्मक विवरण संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप पुराणों के साक्ष्य के आधार पर इतिहास का प्रणयन नयी दृष्टि से होने लगा। श्री के.पी. जायसवाल ने पार्जिटर के कार्य को आगे बढ़ाया और 'शैशुनाग एण्ड मौर्यवंश' तथा 'द ब्राह्मण इम्पायर' नामक दो महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थों की रचना की। १९२७ ई. में किरफल ने 'दश पुराणलक्षण' के द्वारा पुराणों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला और पौराणिक अध्ययन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया। डॉ. आर.सी. हाजरा ने पुराण सम्बन्धी अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी 'स्टडीज इन पुराणिक रेकर्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' तथा विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित विष्णु पुराण का अंग्रेजी संस्करण ये दो पुस्तकें पौराणिक शोध कार्य के लिए अत्यन्त उपादेय हैं। सम्प्रति पुराण विषयक अध्ययन से सम्बद्ध जो ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं, उनमें डॉ. देवेन्द्र कुमार, राजाराम पाटिल का 'कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायुपुराण,' डॉ. एस.डी. ज्ञानी का 'अग्निपुराण ए स्टडी,' डॉ. ए.वी. एल. अवस्थी का 'स्टडी इन स्कन्दपुराण', 'हिस्ट्री फ्राम द पुराणाज,' डॉ. वी.एस. अग्रवाल का 'मार्कण्डेय पुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन, श्री मधुसूदन ओझा का 'पुराणोत्पत्तिप्रसंग', माधवाचार्य का 'पुराणदिग्दर्शन', पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय का 'पुराण विमर्श', डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी की पुराणतत्वमीमांसा, पं. बदरीनाथ शुक्ल का 'मार्कण्डेयपुराण : एक अध्ययन', डॉ. सर्वदानन्द पाठक का 'विष्णुपुराण का भारत', स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती का 'भागवतरहस्य', पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र का 'अष्टादशपुराण दर्पण' तथा डॉ. रामशङ्कर भट्टाचार्य का 'इतिहास पुराणका अनुशीलन' आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। प्रसन्नता की बात है कि सम्प्रति भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनेक पुराणों पर शोध कार्य हो चुके हैं और हो भी रहे हैं। कतिपय शोधप्रबन्ध छप भी चुके हैं और बहुत से मुद्रणप्रक्रिया की प्रतीक्षा में हैं।

पौराणिक अध्ययन की परम्परा का श्रीगणेश करने वाले प्रथम पाश्चात्य विद्वान् विल्सन हैं, जिन्होंने आधुनिक शिक्षित समाज में पौराणिक उपयोगिता की स्थापना की। पुराणों के अध्ययन के इतिहास के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि इस दिशा में अभी पर्याप्त कार्य करने का अवसर है और विभिन्न पुराणों में विद्यमान मानव जीवनोपयोगी विषयों का स्वतन्त्र अध्ययन आज निष्पक्ष आलोचक दृष्टि की अपेक्षा करता है।

पुराणों के अध्ययन के मार्ग में एक कठिनाई यह है कि उनका समुचित विवेचनात्मक सम्पादन नहीं हो पाया है अतः पुराणसाहित्य का समीक्षात्मक मूल्याङ्कन नहीं हो पाता।

हाँ, सम्प्रति अखिल भारतीय काशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी द्वारा कतिपय पुराणों के सानुवाद आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित हुए हैं और आगे भी इस दिशा में कार्य हो रहे हैं। पुराणों की लोकप्रियता ने इनमें अनेकता लाने का अवसर प्रदान किया है, फलतः इस रूपभिन्नता के कारण इनके कालक्रम का निर्धारण जटिल हो गया। पुराणों में अत्यधिक प्रक्षेप के कारण बहुत से ऐसे विषय हैं जिनका आलोचना की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। उन्हें पृथक् कर आवश्यक तथ्यों को एकत्र करना भी एक समस्या है। जिस प्रकार प्राचीन भारत के अवशेषों में ऐतिहासिक महत्व की वस्तुओं को खोज निकालने के लिए नयी ऊपर सतहों को हटाकर बहुत गहराई तक जाना पड़ता है, उसी प्रकार पुराणों में भी महनीय विषयों की खोज के लिए नयी ऊपरी सतहों को हटाकर गहराई में जाने की आवश्यकता है।

पुराणों के कालनिरूपण से सम्बद्ध समस्या भी कम उलझनपूर्ण नहीं है। किसी भी पुराण के लिए एक निश्चित तिथि या अवधि को निश्चित करना संभव नहीं है।

इस समस्या का निदान पुराणों को कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करके किया जा सकता है। अनेक विद्वानों ने पुराण विशेष के अध्ययन के प्रसंग में ऐसे प्रयास किये भी हैं। सम्प्रति पुराणों के अन्तः एवं बहिः साक्ष्य के गहन अध्ययन के द्वारा उनके निश्चित तिथियुक्त कालनिर्धारण का कार्य विद्वानों के लिए चुनौती है, जिसे स्वीकार करने की आवश्यकता है।

रचनाकाल : आधुनिक मत

पुराण-साहित्य के रचना-काल का निर्धारण एक कठिन कार्य है, क्योंकि पुराणों के कुछ अंश तो अतिप्राचीन हैं और कुछ अंश बाद के लिखे प्रतीत होते हैं। यद्यपि प्राचीन मान्यता पुराणों को व्यास की रचना मानती है, तथापि कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि पञ्चम शती ई. तक अथवा उससे कुछ पूर्व ही पुराण अपने निश्चित और स्थायी रूप ले चुके थे[1]। लोकमान्य तिलक के अनुसार पुराण ग्रन्थों का रचना-काल ईसा की द्वितीय शताब्दी के बाद कथमपि नहीं हो सकता[2]। पार्जिटर महाशय के अनुसार पुराण-साहित्य मूल रूप में ईस्वी सन् की आरंभिक शताब्दियों तक अस्तित्व में आ चुका था[3]। डॉ. हाजरा ने पुराणों के विषय में महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। उन्होंने प्राचीनतम पुराणों में 'मार्कण्डेय', 'ब्रह्माण्ड', विष्णु, 'मत्स्य', 'भागवत' तथा 'कूर्म' को स्थान दिया है[4]। प्रथम दो पुराणों को

---

१. वी. वरदाचारी, ए हिस्ट्री आफ द संस्कृत लिटरेचर, पृ. ५८।

२. गीता रहस्य, पृ. ५६६

३. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. ३०१ द्वारा उद्धृत।

४. पुराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, शक १६४०।

वे विष्णुपुराण से प्राचीन मानते हैं। शेष पुराणों का समय इस प्रकार है-विष्णुपुराण ४०० ई, वायुपुराण ५०० ई, भागवत ६००-७०० ई, कूर्मपुराण ७०० ई.। हरिवंशपुराण का समय भी उनके अनुसार ४०० ई. है। डॉ. हाजरा 'अग्निपुराण' का रचनाकाल ८०० ई. मानते हैं। किन्तु वे यह भी कहते हैं कि इस पुराण की कुछ सामग्री इस काल से पहले की है और कुछ बाद की। 'अग्निपुराण' के विषय में डॉ. सुशील कुमार दे का कथन है कि इसका अलंकार प्रकरण भामह और दण्डी के पश्चात और आनन्दवर्धन से पूर्व नवम शती की रचना है[1]। महामहोपाध्याय पी.वी. काणे अग्निपुराण को ७०० ई. पश्चात् और उसके काव्यशास्त्रीय अंश को ६०० ई. का स्वीकारते हैं[2]। 'नारदीय पुराण' का रचनाकाल दशम शताब्दी माना जाता है। 'ब्रह्मपुराण' का भी समय यही माना गया है। 'स्कन्दपुराण' की कुछ सामग्री अष्टम शतक और कुछ अंश उसके बाद की रचना है। डॉ. हाजरा 'गरुडपुराण' को दशम शतक का मानते हैं। 'ब्रह्मवैवर्त' के विषय में विद्वानों का कथन है कि इसकी रचना ७०० ई. में पूर्ण हो चुकी थी, किन्तु इसे वर्तमान रूप १६वीं शती ई. में प्राप्त हुआ है [3]।

पुराण की अष्टादश संख्या

संस्कृत वाङ्मय में अष्टादश (१८) संख्या पावन मानी जाती है। महाभारत की पर्वसंख्या १८ है, भगवद्गीता के अध्यायों की संख्या १८ है तथा भागवत पुराण की श्लोक संख्या १८ हजार है। इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी १८ ही है। उपपुराण भी १८ हैं। विद्न्मनीषा पुराणों की अष्टादश संख्या को सहेतुक मानती है। अष्टादश संख्या होने का तात्पर्य निम्नलिखित है-

(क) पुराण के पञ्चलक्षण में सृष्टितत्व का वर्णन प्रमुख है। इसी सृष्टिवर्णन के विकसन में शेष चार-प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित का समावेश किया गया है। पुराण की अष्टादश संख्या इस सृष्टि तत्व से सम्बद्ध है। शतपथब्राह्मण और यजुर्वेद में १२ मास, ५ ऋतु और एक संवत्सर परिगणित है जिनकी सम्मिलित संख्या १८ है[4] इस प्रकार सृष्टि से १८ संख्या के सम्बद्ध होने के कारण पुराणों का अष्टादशत्व युक्तिसंगत है।

---

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, भाग १, पृ. १०२-१०४।

२. साहित्यदर्पण की अंग्रेजी भूमिका पृ. ३-५।

३. डॉ. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, पृ. १२६।

४. तस्य द्वादश मासाः, पञ्चर्तवः संवत्सर एव प्रसूतिः। श.ब्रा. ८.४.१.१३ प्रसूतिरष्टादशः। यजुर्वेद १४.२३

(ख) वेद में सृष्टि का आरम्भ वैदिक छन्दों में स्वीकृत है। वेद के सात छन्दों में गायत्री तथा विराट् की प्रधानता है जिनका सृष्टि तत्व से गहरा संबंध है। गायत्री पृथ्वी-स्थानीया प्रकृतिरूपा है और विराट द्युस्थानीय पुरुष रूप है[१]। द्योष्पिता पृथिवी माता"। गायत्री के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर और विराट् के दस अक्षरमिलकर १८ संख्या होती है[२]। परिणामतः छन्दः सृष्टितत्व की दृष्टि से सृष्टि प्रतिपादक पुराणों की १८ संख्या समुचित है।

(ग) दृश्य ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ निवेशदृष्टि से तीन लोकों से सम्बद्ध है-पृथ्वी, अन्तरक्षि तथा आकाश। प्रत्येक पदार्थ की छः अवस्थायें हैं-सत्ता, उत्पत्ति, वृद्धि, पक्वता, ह्रास तथा विनाश।[३] ये छहों अवस्थायें त्रिलोक के समस्त पदार्थों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं। पुराण इन पदार्थों के सर्ग-प्रतिसर्ग (सृष्टि प्रलय) का वर्णन करता है। अतः उसकी १८ संख्या न्याय संगत है[४]।

(ङ) पुराण मुख्यतः पुराणपुरुष परमात्मा का प्रतिपादन करता है। आत्मा स्वरूपतः एक है, किन्तु उपाधि तथा अवस्था भेद से वह १८ प्रकार का होता है। इन अष्टादश आत्मा का प्रतिपादन होने से पुराण की अठारह संख्या मानी गई है।

पुराणक्रम रहस्य

अष्टादश पुराणों की सूची में निर्दिष्ट पुराण-क्रम बहुसम्मत है। यह क्रम साभिप्राय है। यह क्रमविधान ऐतिहासिक न होकर वर्ण्यविषय पर आधृत है। यद्यपि पुराणों के वर्ण्यविषय अनेक हैं परन्तु "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" इस न्याय से प्रधान विषय की दृष्टि से इस निर्दिष्ट क्रम का औचित्य युक्तिसंगत है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पुराणों का प्रधान लक्ष्य सृष्टि वर्णन है। किस प्रकार मूलतत्व से सृष्टि हुई, उसका विकास कैसे हुआ ? नाना वंशों का उदय तथा वंश प्रमुख महत्वशाली पुरुषों का चरित वर्णन और अन्त में सृष्टि का मूलतत्व में विलय होना यही सृष्टि की प्रवहमान धारा है। संसार का आदि है सर्ग और अन्त है प्रतिसर्ग। इन्हीं दोनों छोरों के बीच मन्वन्तर वंश ओर वंशानुचरित की धारा प्रवाहित होती है। सृष्टि की मुख्यता की दृष्टि से पुराणों के क्रम का रहस्य विचारणीय है।

इस ब्रह्माण्ड की रचना किसने की ? यह पहली जिज्ञासा है। तैत्तिरीय संहिता ब्रह्म को सृष्टि का कर्ता मानती है। तैतिरीय संहिता के अनुसार सृष्टि करने के लिए स्वयं ब्रह्म

---

१. गायत्री वा इयं पृथिवी। श.ब्रा. ४.३.४.६.। वैराजो वै पुरुषः ता.ब्रा. २.७.८

२. अष्टाक्षरा गायत्री। ऐत.ब्रा. ६.२०। दशाक्षरो विराट्। तै.ब्रा. १.१.५.३

३. जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति। निरुक्त (१)

४. विशेष द्रव्टव्य, माधवाचार्यकृत पुराणदिग्दर्शन तृ. सं. पृ. ६४-६७

ही ब्रह्मा हुए[1]। फलतः सृष्टि का मूल ब्रह्म है, उस आदि सृष्टिकर्ता ब्रह्म के निर्देश के लिए 'ब्रह्मपुराण' (१) का नाम पुराणसूची में प्रथम आया है। अब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति की जिज्ञासा स्वभाविक है। इसका समाधान 'पद्मपुराण' करता है-ब्रह्मा की उत्पत्ति पद्म से हुई, अतः सूची में पद्मपुराण (२) का द्वितीय स्थान है। ब्रह्मा का उत्पत्तिस्थान कमल कहां था, इसका उत्तर विष्णुपुराण देता है। 'विष्णुपुराण' के द्वारा प्रतिपाद्य विष्णु की ही नाभि में वह कमल था जहां उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने सृष्टि रचना की। फलतः विष्णुपुराण (३) का नाम सूची में तृतीय स्थान पर है। 'वायुपुराण' शेषशय्या का निरूपण करता है जिस पर भगवान् विष्णु शयन करते हैं अतः वायुपुराण (४) को सूची में चतुर्थ स्थान प्राप्त है। शेष भगवान् क्षीरसमुद्र में रहते हैं और इस समुद्र के रहस्य का वर्णन करने वाला श्रीमद्भागवत है अतः भागवत पुराण (५) का सूची में पञ्चम स्थान है। देवर्षि नारद भगवान विष्णु के अनन्य भक्त हैं अतः भागवत के पश्चात् 'नारदपुराण' (६) का सूची में षष्ठ स्थान पर निर्देश उचित है। सृष्टि विकास की यह एक रेखा है जिसमें उपर्युक्त छः पुराणों की क्रमसंगति दिखायी गयी है।

सृष्टिचक्र के विषय में एक प्रश्न उठता है कि यह चक्र किसकी प्रेरणा से निरन्तर घूमता रहता है। इस प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेयपुराण इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि प्रकृति स्वरूपिणी आद्याशक्ति देवी ही मूलप्रेरिका है, विश्वरचना की। अतः देवी तत्व प्रतिपादक 'मार्कण्डेयपुराण' (७) सूची में सप्तम स्थान पर है। ब्रह्माण्ड के भीतर क्रियाशील वस्तु है अग्नि और अग्नि तत्व का प्रतिपादक है 'अग्निपुराण' (८) अतः सूचीक्रम में इस पुराणका अष्टम स्थान है। अग्नि-तत्व सूर्य पर आधारित है और सूर्य स्थावर जंगम सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है- "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषः"। आत्म स्थानीय सूर्यतत्व का प्रतिपादक है 'भविष्यपुराण' (९)। अतः यह पुराण-सूची में नवम स्थान पर है। पुराणों के अनुसार ब्रह्म से ही विश्व की उत्पत्ति होती है। यह विश्व ब्रह्म का ही विवर्त है। वास्तविक मूल तत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म और उसका विवर्त विश्व है, इस तथ्य का प्रतिपादक होने के कारण सूची में दशम स्थान पर है। मूल तत्त्व निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो, इस प्रश्न का उत्तर सगुण ब्रह्म प्रतिपादक शेष पुराण देते हैं। ब्रह्म की शिव तथा विष्णु ही सगुण अभिव्यक्तियां हैं जिनका प्रतिपादन क्रमशः लिङ्गपुराण (११), स्कन्दपुराण (१२), वाराह (१३), वामन (१४), कूर्म (१५), तथा मत्स्य (१६) पुराण करते हैं। वराह, वामन, कूर्म, तथा मत्स्य ये चारों अवतार भगवान् विष्णु के हैं जो सृष्टि तत्व से विशेष रूप से सम्बद्ध हैं।

अन्तिम दो पुराणों का सम्बन्ध जीव जन्तुओं की गतिविधियों से है। कर्म, ज्ञान तथा उपासना के सम्पादन से प्राणी को कौन-कौन गतियां प्राप्त होती हैं इसका वर्णन गरुड

१. ब्रह्म ब्रह्मा भवत् स्वयम्। तै.सं. ३.१२.९.३

पुराण' (१७) करता है और इन गतियों के विस्तृत क्षेत्र का निर्देश करता है 'ब्रह्माण्डपुराण' (१८) अतः सूची में इसका अन्तिम स्थान है। इस प्रकार सृष्टितत्व से सम्बद्ध विषयों के प्रतिपादन में अष्टादश पुराण की उपयोगिता है। पौराणिक क्रम रहस्य का यही अभिप्राय है।

पुराण-विभाजन

मत्स्य पुराण (५३.१७-१८) के अनुसार पुराणों का त्रिविध विभाजन स्वीकार्य है- सात्विक, राजस, तामस। सात्विक पुराणों में विष्णु भगवान् का माहात्म्य वर्णित है, राजस पुराणों में ब्रह्मा तथा अग्नि का महत्त्व वर्णित है। तामस पुराणों में शिव का वर्णन किया गया है। इन तीनों से भिन्न एक संकीर्ण भेद भी है जिसमें सरस्वती तथा पितृगणों का माहात्म्य अधिक रूप से वर्णित है[1]। पद्मपुराण में सात्विक पुराणों में विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म तथा वाराह पुराणों का निर्देश है। गरुडपुराण[2] एक कदम आगे बढ़कर सात्विक पुराण का भी तीन विभाग मानता है-

(क) सत्वाधम = मत्स्य तथा कूर्म, (ख) सात्विक मध्यम वायु, (ग) सात्विक उत्तम-विष्णु, भागवत तथा गरुड। उपर्युक्त विभाजन देवता की प्रधानता को ध्यान में रखकर किया गया है।

स्कन्दपुराण के केदारखण्ड के अनुसार दश पुराणों में शिव, चार में ब्रह्मा, दो में देवी और दो में हरि-इस प्रकार विभाजन किया गया है, परन्तु तत् तत् पुराणों के नामनिर्देश न होने से इस विभाजन की वैज्ञानिकता संदिग्ध है। इसी पुराण के 'शिवरहस्य' नामक खण्ड के सम्भवकाण्ड (२.३०.३८) में एक अन्य विभाजन किया गया है जो इस प्रकार है-

(१) शैव = (शिवविषयक) शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड (१०)

(२) वैष्णव = (विष्णुविषयक) विष्णु, भागवत, नारदीय तथा गरुड (४)

(३) ब्राह्म = (ब्रह्माविषयक) ब्रह्म तथा पद्म (२)

(४) आग्नेय = (अग्निविषयक) अग्निपुराण (१)

(५) सावित्र = (सूर्यविषयक) ब्रह्मवैवर्त (१)

योग : १८

---

१. सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।
तद्वदग्नेर्माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।। मत्स्य. अध्याय ५३. श्लोक ६८-६६

२. पा.टि. २ - सत्वाधमे मात्स्यकौर्मे तदाहुवार्यु चाहुः सात्विकं मध्यमं च।
विष्णोः पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गारुडं प्राहुरार्याः।। - गरुडपुराण

स्कन्दपुराण का यह देवानुसारी विभाजन भी युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि 'पद्मपुराण' निश्चित रूप से विष्णु के महत्व का प्रतिपादक है, जिसको इस विभाजन में ब्राह्म पुराण कहा गया है। गौडीय वैष्णवों के सिद्धान्तों का विकास विशेषतः राधा तत्व का पद्मपुराण के आधार पर ही हुआ है[1]।

पुराणों के विपुल काय स्कन्दपुराण का विभाजन दो प्रकार से उपलब्ध होता है- (१) खण्डात्मक (ख) संहितात्मक।

खण्डात्मक विभाग में महेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवन्ती, नागर और प्रभास ये सात खण्ड हैं, जिनमें ८१ हजार श्लोक हैं। संहितात्मक विभाग में सनत्कुमार संहिता, सूतसंहिता, शङ्करी संहिता, वैष्णवी संहिता, ब्राह्मी संहिता और सौरी संहिता ये छः संहितायें हैं जिनमें एक लाख श्लोक हैं। संहिताओं के उपर्युक्त नाम और श्लोक संख्या सूत संहिता (१.१६-२४) के आधार पर है जो आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि (ग्रन्थाङ्क २५) में पूना से प्रकाशित है। सूतसंहिता प्रधानतया शैवदर्शन का प्रतिपादक है। इस पर माधव मंत्री की 'तात्पर्यदीपिका' टीका है।

पुराणों का वर्गीकरण

अष्टादश पुराणों के वर्गीकरण के अनेक प्रकार हैं। भिन्न-भिन्न पुराणों ने इस विषय में विभिन्न दृष्टियां अपनाई हैं। पुराण के पञ्चलक्षण को आधार मानकर प्राचीन और प्राचीनोत्तर ये दो विभाग माने जा सकते है। इसके अनुसार वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णु प्राचीन पुराण प्रतीत होते हैं। इन चारों पुराणों में पुराण के पांचों विषय उचित रूप से वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त शेष पुराणों को प्राचीनोत्तर मानना चाहिए। देवता के विचार से पुराणों का एक दूसरा वर्गीकरण है। पद्म पुराण के अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि, ये छः पुराण तामस हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्राह्म ये छः राजस पुराण हैं। विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड, पद्म तथा वाराह - ये छः सात्विक पुराण माने गये हैं[2]। मत्स्य पुराण का मत इससे भिन्न है। उसके अनुसार विष्णुवर्णनपरक पुराण 'सात्विक', ब्रह्मा और अग्निवर्णनपरक पुराण 'राजस', शिववर्णन परक पुराण 'तामस', सरस्वती और पितरों के माहात्म्यवर्णन परक पुराण 'संकीर्ण' कहे गये हैं[3]। स्कन्दपुराण के अनुसार दश पुराणों में शिव का, चार में ब्रह्मा का तथा दो-दो में देवी तथा हरि के माहात्म्य का वर्णन है। इस वर्गीकरण में पुराणों का नामनिर्देश नहीं है[4]। तमिल ग्रन्थों में पुराणों के निम्न पांच वर्ग प्राप्त होते हैं-

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुराणविमर्श, प्र.सं.वि.सं. २०२१, पृ. ६०-६१
२. पद्मपुराण उत्तरखण्ड, २६३, ८१-८४
३. मत्स्यपुराण १.६८-६६
४. अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः। - स्कन्द., केदारखण्ड १

(१) ब्रह्मा-ब्रह्मपुराण और पद्मपुराण
(२) सूर्य-ब्रह्मवैवर्त पुराण
(३) अग्नि-अग्निपुराण
(४) शिव-शिवपुराण, स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराण, कूर्मपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, भविष्यपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण।
(५) विष्णु-नारदीय पुराण, श्रीमद्भागवत, गरुडपुराण तथा विष्णु पुराण।

इस समस्त वर्गीकरणों की भिन्नता का कारण उनका विभिन्न दृष्टिकोण है। आधुनिक विद्वान् विषय-विभाग के अनुसार पुराणों के छः वर्ग निर्धारित करते हैं-

(१) प्रथम वर्ग में साहित्य का विश्वकोष है जिसमें मानवोपयोगी समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक विद्याओं का सारांश संकलित है।
(२) द्वितीय वर्ग में मुख्यतः तीर्थों और व्रतों का वर्णन है। इस वर्ग में पद्म, स्कन्द, तथा भविष्य पुराणों की गणना है।
(३) तृतीय वर्ग में ब्रह्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण आते हैं।
(४) चतुर्थ वर्ग में ऐतिहासिक पुराण आते हैं-'ऐतिहासिक पुराण' का अभिप्राय उस पुराण से है जिसमें कलियुग के राजाओं का वर्णन विशेष रूप से इतिहास की दृष्टि को लक्ष्य में रखकर किया गया है। इस वर्ग में वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण आते हैं।
(५) पञ्चम वर्ग में साम्प्रदायिक पुराण आते हैं। इनमें लिङ्ग, वामन और मार्कण्डेय पुराण हैं।
(६) षष्ट वर्ग में वाराह, कूर्म, तथा मत्स्य पुराण की गणना की जाती है जिनमें पाठों का अत्यधिक संशोधन होने से मूल पाठ लुप्तप्राय है[1]।

इस वर्गीकरण के बारे में आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है-"यह वर्गीकरण सामान्य रीति से ही समझना चाहिए। पुराणों का वर्गीकरण न यथार्थतः सर्वमान्य रूप से है, और न हो ही सकता है। भिन्नरुचिर्हि लोकः[2]"।

ऊपर कहा जा चुका है कि पुराणों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय पञ्चलक्षण-सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित है। इन लक्षणों के स्वरूप का विस्तृत समीक्षण पुराण-ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु पुराणों में मानव समाज के लिए वर्णित विविध विद्याओं की उपादेयता भी कम नहीं है। पुराणों के गम्भीर अनुशीलन से यदि इन विद्याओं के स्वरूप का परिचय मिल सके, तो इस वैज्ञानिक युग में नूतन चमत्कार दृष्टिगोचर होंगे।

---

१. द्रष्टव्य डॉ. पुलासकर का लेख- कल्याण-संस्कृति अड्क (१६५०), पृष्ठ ५५२-५५३
२. पुराणविमर्श, पृ. ६४

महापुराण

ब्रह्मपुराण

संस्कृतवाङ्मयं नित्यं ज्ञानविज्ञानवैभवम्।
तस्मिन् पुराणसाहित्यं राजते पञ्चलक्षणम्।।
अष्टादशपुराणेषु यदेकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
प्रस्तूयतेऽत्र संक्षिप्तं तस्य वस्तुप्रकल्पनम्।।

सामान्य परिचय–अष्टादश पुराणों में ब्रह्मपुराण सर्वप्रथम परिगणित है। इसी कारण इसे 'आदिपुराण' (अपेक्षाकृत कम प्रचलित नाम) भी कहा जाता है। प्रायः सभी पुराणों में सभी पुराणों के नाम और उनके ग्रन्थ परिमाण (अर्थात् श्लोक संख्या) कहे गये हैं। वहाँ ये नाम प्रायः क्रम से ही कथित हैं। कहीं-कहीं पुराणों की नाम-गणना में क्रम भेद भी प्राप्त होता है, किन्तु सर्वत्र ही 'ब्रह्मपुराण' को प्रथम स्थान पर ही रखा गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण में 'ब्रह्मपुराण' का उल्लेख सभी पुराणों में प्रथम स्थान पर किया गया है और इसकी श्लोक संख्या दशसहस्र (दस हजार) कही गयी है–'ब्राह्मं दशसहस्राणि।'[1] इसी प्रकार, पद्मादि अन्य पुराणों में भी ब्रह्मपुराण को प्रथम स्थानीय माना गया है। ब्रह्मपुराण को पुराण-क्रम में प्रथम स्थान पर रखने का कारण बताते हुए म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी लिखते हैं[2]– "यह तो सिद्ध ही है कि पुराणों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय सृष्टि है। यही सृष्टि विद्या पुराणों का क्रम नियत करती है।.....सर्वप्रथम मानव मस्तिष्क में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् किसने बनाया ? इसका उत्तर 'ब्रह्मपुराण' देता है कि इस प्रपञ्च-रचना के कर्ता आदिदेव ब्रह्मा हैं। ब्रह्मा के स्वरूप का पूर्ण वर्णन और उनके द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम 'ब्रह्म-पुराण' बता देता है।" इस कारण ब्रह्मपुराण को पुराण-क्रम में प्रथम स्थान पर रखा गया है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार, यह सृष्टि (संसार) या जगत्प्रपञ्च एकमात्र 'सत्' रूप 'ब्रह्म' का विवर्त है। अतः 'ब्रह्म' के सर्वप्रथम स्थानीय होने से 'ब्रह्मपुराण' भी प्रथम स्थान पर रखा गया है। किन्तु ब्रह्मपुराण में सगुण या साकार ब्रह्म की ही चर्चा है, निर्गुण या निराकार ब्रह्म की चर्चा नहीं की गयी है।

ब्रह्म पुराण की रचना के सम्बन्ध में मान्यता है कि महर्षि वेदव्यास ने सर्वप्रथम इसी पुराण का प्रणयन किया था। इसकी संज्ञा 'आदि पुराण' होने के पीछे यही कारण है। विष्णु, शिव, भागवत, नारद, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, देवी भागवत पुराणों में 'ब्रह्मपुराण' की श्लोक संख्या दस सहस्र कही गयी है, किन्तु लिङ्ग, वराह, कूर्म, मत्स्य और पद्म पुराणों के

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण, १२.१३.०४
२. म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी : पुराण परिशीलन, पृ. २८

अनुसार ब्रह्म पुराण की श्लोक संख्या तेरह सहस्र बतायी गयी है। मुम्बई से प्रकाशित संस्करण में तेरह हजार सात सौ सत्तासी (१३७८७) श्लोक हैं।[1] यह संख्या अधिकतम है।

नैमिषारण्य में एकत्र ऋषियों के समक्ष सूत लोमहर्षण ने इस पुराण का प्रवचन किया था। इस पुराण में कुल दो सौ पैंतालिस (२४५) अध्याय हैं। नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित संस्करण में अध्यायों की संख्या दो सौ तैंतालिस (१३८ + १०५ = २४३) है। इस संस्करण में ब्रह्म पुराण दो भागों में विभक्त है– ब्रह्म महापुराण और गौतमी माहात्म्य। कुल श्लोकों की संख्या १३७८३ है।

ब्रह्मपुराण का एक परिशिष्ट सौरउपपुराण है जिसमें तेरहवीं शताब्दी ई. में निर्मित कोणार्क के सूर्य मन्दिर का भी उल्लेख है।[2]

आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित और हिन्दी भाषा में अनूदित ब्रह्म-पुराण भी दो भागों में मुद्रित है। इसमें इन्होंने संक्षेपीकरण द्वारा पुराण को विकृत कर दिया है। प्रथम भाग में कुल ४६ अध्याय हैं और द्वितीय भाग में अध्यायों की संख्या ४८ है। इस प्रकार कुल मिलाकर चौरानबे (९४) अध्याय इस संस्करण में हैं। अतः यह प्रामाणिक संस्करण नहीं है। कालान्तर में यह ब्रह्मपुराण के कलेवर के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न कर सकता है।

यद्यपि प्राचीन वाङ्मय में पुराणों को वेदों के समकक्ष रखा गया है[3] किन्तु 'पुराण' ग्रन्थों की रचना निश्चित रूप से वेदों के बहुत समय पश्चात् हुई है। पुराण 'विद्या' के रूप में अवश्य ही अत्यन्त प्राचीन हैं किन्तु वे 'ग्रन्थ' के रूप में अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। पुराणों के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई भी सुनिश्चित निर्धारण करना प्रायः असम्भव है। अतः रचनाकाल की दृष्टि से पुराणों के रचना क्रम को व्यवस्थित करना भी दुष्कर सा ही है। यद्यपि 'ब्रह्मपुराण' को सर्वप्रथम मानते हुए इसे 'आदिपुराण' भी कहा गया है। किन्तु विद्वान् इस पर एक मत नहीं हैं कि सर्वप्रथम ब्रह्मपुराण की ही रचना हुई है। कई पुराणों ने ब्रह्मपुराण को प्रथम स्थान पर नहीं भी रखा है। अतः ब्रह्मपुराण का रचनाकाल अन्य पुराणों के साथ सम्बद्ध है।

वस्तुतः पुराण एक सतत् विकासशील साहित्य के रूप में जाना जाता है। वेद विद्या को व्यवस्थित करने के पश्चात् महर्षि व्यास ने पुराण विद्या को व्यवस्थित किया। उन्होंने अपने शिष्य लोमहर्षण को पुराण विद्या का ज्ञान प्रदान किया और लोमहर्षण ने यथावसर इसका उपदेश प्रवचन के रूप में जिज्ञासु ऋषियों मुनियों को दिया। जहाँ से उनका वितरण लोक में हुआ। ग्रन्थ के रूप में उनकी रचना का समय एक विचारणीय विषय है।

---

१. डॉ. उमाशङ्कर शर्मा ऋषि : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. १८०

२. वही, पृ. १८०

३. 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितं यद् ऋग्वेदो..... पुराणम्..............'

पुराणों में जो राजवंशों का विवरण प्राप्त होता है, वह ६०० ई. तक का ही है। अतः पुराण ग्रन्थकार रूप में इसके पूर्व ही आ गये होंगे। पुराणों का उल्लेख गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र और महाभारत में प्राप्त होता है।[1] इन धर्मसूत्रों का रचनाकाल ५०० वर्ष ई.पू. के आसपास है। अतः पुराणों की रचना ६०० वर्ष ई.पू. मानी जा सकती है।

लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ने पुराणों की रचना का समापन काल द्वितीय शताब्दी ई. माना है। पार्जीटर का मत है कि पुराण प्रथम शताब्दी ई. में अपने मूल रूप में आ गये होंगे। डॉ. आर.सी. हाजरा और डॉ. सुशील कुमार डे ने भी पुराणों के रचनाकाल पर विचार किया है। डॉ. हाजरा ने ब्रह्मपुराण का रचना काल दशम शताब्दी माना है। इस पुराण के वर्तमान संस्करणों में कोणार्क (उड़ीसा) के सूर्य मन्दिर का उल्लेख है।[2] इस सूर्य मन्दिर का निर्माण तेरहवीं शताब्दी ई. (१२५० ई. के आसपास) में हुआ है। इसका अभिप्राय है कि ब्रह्मपुराण का परिवर्धन तेरहवीं शताब्दी तक होता रहा।

इस प्रकार ब्रह्मपुराण के रचनाकाल की पूर्व सीमा तो निश्चित तौर पर नहीं कही जा सकती[3], तथापि इस अति प्राचीन महापुराण के निर्माण की अन्तिम सीमा तेरहवीं शताब्दी ई. कही जा सकती है।

ब्रह्म पुराण का प्रतिपाद्य– 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के अनुसार पुराणों के जो विषय कहे गये हैं, वे सभी इस पुराण में प्रायश वर्णित हैं। जगत् की सृष्टि, मनु की उत्पत्ति तथा उनके वंश का वर्णन; ब्रह्मा, सूर्यादि देवों, देव योनियों का वर्णन, राजवंशों का वर्णन, अन्य प्राणियों की उत्पत्ति, पृथिवी के भूगोल का वर्णन, भारतवर्ष, स्वर्ग एवं नरक का वर्णन निबद्ध है। इस पुराण के अधिकांश भाग में तीर्थों का वर्णन, देवों का माहात्म्य और देव पूजा की विधि वर्णित है। उत्कल प्रदेश के तीर्थों का वर्णन तथा सूर्य पूजा का विशेष वर्णन है। इस पुराण के पूर्वार्ध में यदि उत्कल के तीर्थों का माहात्म्य है तो उत्तरार्ध में दण्डकारण्य में बहने वाली गौतमी गङ्गा तथा उसके सन्निकटवर्ती तीर्थों का माहात्म्य वर्णन किया गया है। शिव-पार्वती के विवाह के साथ ही शैव तीर्थों का भी विवरण दिया गया है। जगन्नाथ पुरी (पुरुषोत्तम तीर्थ) के साथ ही कृष्ण लीला का अद्भुत वर्णन है। विष्णु के अवतारों के साथ ही विष्णु पूजा की गरिमा का भी निरूपण किया गया है। इस सबके अतिरिक्त वर्णाश्रम धर्म, श्राद्धकर्म आदि प्रासङ्गिक विषय भी उपनिबद्ध है। भुवनेश्वर के समीप स्थित कोणार्क

---

१. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी : संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ. ६५

२. ब्रह्मपुराण, अध्याय २६

३. ब्रह्मपुराण की रचना निश्चित रूप से 'महाभारत' की रचना के पश्चात् हुई है। ब्रह्मपुराण में महर्षि व्यास का उल्लेख 'महाभारत कर्ता' के रूप में हुआ है– 'कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां वरम्। महाभारतकर्तारं सर्वशास्त्र विशारदम्।। .....पुराणागमवक्तारं.....पराशर सुतं शान्तम्.....।। (ब्र.पु., २४, ६-८)'

मन्दिर का वर्णन और वहाँ दर्शन-पूजन का माहात्म्य वर्णित करना, इस पुराण को तेरहवीं शताब्दी ई. तक खींच लाता है।

अब संक्षेपतः अध्यायक्रम से इस पुराण का प्रतिपाद्य विषय प्रस्तुत किया जाता है–

मङ्गलाचरण, नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों द्वारा सूत लोमहर्षण से पुराण विषयक प्रश्न, सूत द्वारा सृष्टि क्रम का कथन, ब्रह्मा की उत्पत्ति, उनसे मरीच्यादि की उत्पत्ति, स्वयम्भू के वंश का संक्षिप्त वर्णन, दक्ष कन्याओं का वर्णन, साठ कन्याओं के विवाह का वर्णन, देवासुरों की उत्पत्ति, मरुतों की उत्पत्ति, भूतसर्ग के श्रवण का फल।

वेन के दुश्चरित से त्रस्त ऋषियों द्वारा वेन को शाप, मृत वेन के बाहुमन्थन से पृथु की उत्पत्ति, पृथु का राज्याभिषेक, पृथु द्वारा पृथिवी का दोहन और उसका विस्तृत वर्णन।

चौदहवें मन्वन्तर के मनु पुत्र और देवर्षियों का निरूपण, संक्षेपतः महाप्रलय और खण्डप्रलय का वर्णन।

सूर्यवंश का कथन, यम-यमुना की उत्पत्ति, सूर्य पत्नी संज्ञा और छाया का वृत्तान्त, सावर्णिशनैश्चर का जन्म और अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति, इतिहास श्रवण का फल।

वैवस्वत मनु के वंश में इला की उत्पत्ति, इला और बुध के संयोग से पुरूरवा का जन्म, पुरुष रूप को प्राप्त इला का सुषुम्ना नाम, उसके वंश का कथन, बलराम-रेवती का विवाह, कुवलयाश्व, धुन्धुमार और सत्यव्रत के वंश और चरित का वर्णन।

त्रिशङ्कु की कथा, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, सगर के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन, सगर के साठ हजार पुत्रों का कपिल मुनि के शाप से जल मरना, भगीरथ के तप से आयी हुई गङ्गा द्वारा उन सबका उद्धार, इक्ष्वाकु वंश की परम्परा का नलनृपति पर्यन्त कथन।

सोम की उत्पत्ति, सोम द्वारा राजसूय यज्ञ करना, चन्द्र और तारा के संयोग से बुध का जन्म।

बुध और इला से पुरूरवा का जन्म, पुरूरवा चरित वर्णन, गाधि की कन्या सत्यवती से ऋचीक मुनि का विवाह, जमदग्नि का जन्म, जमदग्नि और रेणुका से परशुराम की उत्पत्ति, विश्वामित्र का जन्म और उनके वंश तथा चरित का कथन।

आयु के पुत्र रजि का चरित, रजि का इन्द्र पदलाभ, भरद्वाज से धन्वन्तरि को आयुर्वेद की प्राप्ति, राजा अलर्क का चरित।

ययाति का जन्म और चरित वर्णन।

पुरुवंश का वर्णन, दुष्यन्त-शकुन्तलोपाख्यान, भरत का जन्म, सोमवंश का वर्णन, जनमेजय का वृत्तान्त।

वसुदेव का जन्म, वसुदेव और देवकी से श्रीकृष्ण का जन्म, रोहिणी से बलभद्र की उत्पत्ति, कालयवन का वध और यादवों का मथुरा छोड़कर द्वारकापुरी में बसना।

अनेक राजवंशों का कथन, कंस की उत्पत्ति का कथन।

सत्राजित् के द्वारा स्यमन्तक मणि की प्राप्ति, स्यमन्तक को चुराने के वृथापवाद को दूर करने हेतु स्यमन्तक को खोजते हुए श्रीकृष्ण का जाम्बवन्त से बाहुयुद्ध, प्रसन्न जाम्बवन्त द्वारा स्यमन्तक मणि के साथ ही अपनी पुत्री जाम्बवती को श्रीकृष्ण को सौंपना, स्यमन्तक पाकर सत्राजित् द्वारा अपनी पुत्री सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ विवाह कराना।

स्यमन्तक के लिए शतधन्वा द्वारा सत्राजित् का वध, अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को पुनः स्यमन्तक मणि प्रदान।

भूगोल वर्णन (द्वीप, वर्ष, पर्वतादि वर्णन)।

नीचे के अतलादि सप्तलोक वर्णन।

रौरवादि नरकों तथा पापियों की यातनाओं का वर्णन, स्वर्ग और नरक का व्याख्यान।

भू आदि सप्तलोकों, पृथ्वी-आकाशादि का वर्णन, सौर मण्डल का वर्णन, अव्याकृत महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति का कथन।

शिशुमार चक्र का निरूपण, ध्रुव संस्था निरूपण, सूर्य की किरणों तथा मेघ मण्डल से जल वृष्टि का निरूपण।

तीर्थ वर्णन और तीर्थ माहात्म्य।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन से मुनियों का संवाद, मोक्षप्रद क्षेत्र निरूपण।

भारतखण्ड की प्रशंसा और तदन्तर्गत देशों का वर्णन।

उत्कल प्रान्त के ब्राह्मणों का वर्णन, कोणादित्य की महिमा और सूर्य पूजा का निरूपण, रामेश्वर नामक महेश्वर लिङ्ग के माहात्म्य का कथन।

भगवान् सूर्य के पूजन, ध्यान और भक्ति के माहात्म्य का निरूपण।

सूर्य के द्वादश रूपों का निरूपण, मित्र नामक आदित्य का नारद के साथ संवाद।

वसन्तादि ऋतुओं में सूर्य वर्ण कथन, आदित्यादि द्वादश नाम कथन।

दैत्यों से पीड़ित देवों द्वारा आदित्य की आराधना, मार्तण्ड द्वारा दैत्यों का पराभव, सूर्य के विवाह और संततियों का वर्णन।

अन्धकार से पीड़ित ब्रह्मा आदि द्वारा सूर्य की स्तुति, १०८ आदित्य नाम।

रुद्र-माहात्म्य, दक्षोपाख्यान, शिव और दक्ष का परस्पर शाप दान, उमा की उत्पत्ति, उमा की तपस्या और ब्रह्मा का वरदान।

शिव-पार्वती-आख्यान, संवाद एवं वरदान।

पार्वती स्वयंवर, इन्द्रादि देवों द्वारा पार्वती की गोद में स्थित बालक (शिव) पर आयुधों द्वारा प्रहार, सभी का स्तम्भन, ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति, स्वरूप में आये हुए शिव का पार्वती से विवाह।

शिव पार्वती का विवाह हो जाने पर इन्द्रादि द्वारा उनकी स्तुति, शिव पार्वती का हिमालय निवास वर्णन।

मदन दहन प्रसंग, रति को उमामहेश्वर का वरदान, माता मेना के द्वारा पार्वती का उपहास, शिव पार्वती का हिमालय छोड़कर मेरु पर्वत पर चला जाना।

प्रजापति दक्ष का अश्वमेध यज्ञ, वीरभद्र द्वारा यज्ञ विध्वसं, यज्ञ का मृग रूप धारण कर पलायन, क्रुद्ध गणेश के ललाट स्वेद बिन्दु से अग्नि की उत्पत्ति, ब्रह्मा द्वारा शिव के क्रोध का निवारण, शिव का दक्ष को वरदान।

दक्ष द्वारा शिवाष्टसहस्रनाम से शिवस्तुति।

शिव के एकाम्र नामक (तीर्थ) क्षेत्र का वर्णन।

विरजा आदि आठ तीर्थों की यात्रा का वर्णन, उत्कल प्रान्त में स्थित पुरुषोत्तम (तीर्थ) का वर्णन।

पुरुषोत्तम माहात्म्य, अवन्तिकापुरी वर्णन, महाकाल शिव के माहात्म्य का वर्णन, शिप्रा वर्णन, गोविन्द स्वामी विष्णु माहात्म्य वर्णन।

महाराज इन्द्रद्युम्न का वर्णन, उनकी दक्षिण समुद्र तट यात्रा।

विष्णु लक्ष्मी संवाद में पुरुषोत्तम क्षेत्र वर्णन, वहाँ स्थित न्यग्रोध का वर्णन, यम द्वारा मूर्ति का आच्छादन कर स्वर्ग गमन।

पुरुषोत्तम क्षेत्र का दर्शन करके प्रसन्न राजा इन्द्रद्युम्न के मनोभिलाष का वर्णन।

इन्द्रद्युम्न के द्वारा सर्वोत्तम प्रासाद का निर्माण और अश्वमेध यज्ञ करना।

भगवान् की प्रतिमा प्राप्त करने हेतु सभी भोगों का त्याग कर भगवत्स्तुति।

भगवान् द्वारा स्वप्न में प्रतिमा प्राप्ति का उपाय बतलाना, प्रातः समुद्रतट पर ब्राह्मण वेश में विष्णु और विश्वकर्मा द्वारा इन्द्रद्युम्न को दर्शन देना, इन्द्रद्युम्न की इच्छा सुनकर विष्णु द्वारा महावृक्ष के काष्ठ से तीन प्रतिमाओं के निर्माण की आज्ञा देना। तीनों निर्मित मूर्तियाँ देखकर राजा द्वारा उन दोनों का परिचय पूछना।

अपना परिचय देकर दोनों का अन्तर्धान होना, राजा द्वारा तीनों मूर्तियों की स्थापना, पुरुषोत्तम क्षेत्र के पञ्च तीर्थों की यात्रा का वर्णन।

प्रलयकाल में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा वट का दर्शन।

महाप्रलय में मार्कण्डेय ऋषि को वटपत्र पर स्थित बालमुकुन्द का दर्शन।

बालरूप भगवान् के उदर में मार्कण्डेय का प्रवेश, पृथ्वी दर्शन, मुख से बाहर निकालना।

मार्कण्डेय द्वारा भगवान् की स्तुति।

विष्णु-मार्कण्डेय संवाद, ऋषि को हरिक्षेत्र में हरमूर्ति स्थापना की स्वीकृति।

पञ्च तीर्थ विधि वर्णन, वट पूजन एवं पुरुषोत्तम दर्शन माहात्म्य कथन।

नृसिंह-पूजा-विधान, तद्दर्शन माहात्म्य।

कपाल गौतम मुनि के मृत पुत्र को जीवित करने की श्वेत नृप की प्रतिज्ञा, शिव की आराधना से प्रतिज्ञा पूर्ति, श्वेतमाधव की स्थापना।

नारायण-कवच, समुद्र-स्नान-विधि, पितृ-तर्पण निरूपण।

शरीर शोधनपूर्वक भगवान् का आवाहन एवं पूजन।

सुभद्रा-बलराम सहित श्रीकृष्ण (जगन्नाथ) का माहात्म्य वर्णन।

पञ्च तीर्थ माहात्म्य निरूपण।

महाज्यैष्ठी-प्रशंसा।

श्रीकृष्ण की स्नान विधि, देवताओं द्वारा जगन्नाथ की स्तुति, ज्येष्ठ पूर्णिमा की तिथि में पुरुषोत्तम दर्शन का फल।

गुण्डिका (गुण्डीचा) यात्रा माहात्म्य।

यात्रा विधि, दर्शन-पूजन तथा द्वादश यात्रा फल माहात्म्य कथन।

विष्णु लोक वर्णन, विष्णु मन्दिर, विष्णु स्वरूप और विष्णु लोक के महत्त्व का वर्णन।

पुरुषोत्तम माहात्म्य निरूपण।

अनन्त वासुदेव माहात्म्य, ब्रह्मा के आदेश से वासुदेव की शिलामयी मूर्ति का निर्माण, देवों को परास्त कर रावण द्वारा प्रतिमा को लंका में ले जाना तथा विभीषण को देना, रावण को युद्ध में मारकर राम द्वारा प्रतिमा सहित साकेतपुर आगमन, मूर्ति को समुद्र में रखकर राम द्वारा परलोक गमन, द्वापर में श्रीकृष्ण द्वारा समुद्र से उस मूर्ति को निकाल कर पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्थापित करना।

पुरुषोत्तम क्षेत्र-माहात्म्य वर्णन।

कण्डुमुनि और प्रम्लोचा अप्सरा का वृत्तान्त, कण्डुमुनि द्वारा तपः क्षय होने पर पुरुषोत्तम क्षेत्र में विष्णु की आराधना और मोक्ष प्राप्ति।

श्रीकृष्ण के अवतार के विषय में बादरायण से सन्दिहान मुनि का प्रश्न।

व्यास द्वारा केशवावतार वर्णन।

भू भारहरण करने के लिए देवों के साथ ब्रह्मा द्वारा भगवान् की स्तुति, प्रसन्न भगवान् का अवतार लेने का आश्वासन, कंस-नारद-संवाद, कंस द्वारा वसुदेव-देवकी को

कारागार में डालना, देवकी के छः पुत्रों को कंस द्वारा मारना, विष्णु और योग निद्रा का संवाद, महामाया को भगवान् द्वारा भावी कार्य का आदेश।

कृष्णावतार की पूर्व भूमिका का निरूपण, कारागृह में श्रीकृष्ण का अवतार, गोकुल में यशोदा के पास बालक को रखकर वसुदेव द्वारा कन्या लेकर लौटना, दूत द्वारा सन्देश पाकर आए हुए कंस द्वारा कन्या को मारने का उपक्रम, हाथ से छूटकर कन्या का आकाश में जाना, कन्या द्वारा कंस की भर्त्सना।

कंस द्वारा नवजात शिशु की खोज, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति।

वसुदेव की आज्ञा से नन्द आदि गोपों का मथुरा से गोकुल आना, श्रीकृष्ण द्वारा पूतना वध आदि बाल लीला वर्णन।

गर्गमुनि द्वारा गोकुल में नन्द के दोनों शिशुओं का नामकरण, कृष्ण की अन्य बाल लीलायें।

यमुना में श्रीकृष्ण द्वारा कालियमर्दन।

धेनुक और प्रलम्बासुर का वध।

कृष्ण द्वारा इन्द्रयाग का निषेध और गोवर्धन पूजा हेतु प्रोत्साहन।

कुपित इन्द्र द्वारा गोकुल को डुबा देने हेतु भारी वर्षा, कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण कर गोकुल की रक्षा, सप्ताहान्त वृष्टि बन्द, गोवर्धन की पुनः स्थापना, इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक।

श्रीकृष्ण के साथ गोपियों की रासक्रीड़ा।

श्रीकृष्ण को अक्रूर द्वारा मथुरा बुलाना, कंस द्वारा धनुर्याग का आयोजन, कृष्ण बलराम द्वारा केशी का वध, नारद कृष्ण-संवाद।

मथुरा से निकले अक्रूर का मनोरथ वर्णन।

यमुना जल में अक्रूर को भगवान् का दर्शन, मथुरा में श्रीकृष्ण-बलराम की लीला, कंस वध का निश्चय।

श्रीकृष्ण की कुब्जा पर कृपा, कुवलयापीड, चाणूर-मुष्टिक का वध, तत्पश्चात् कंस वध।

वसुदेव-देवकी के साथ श्रीकृष्ण का संवाद, उग्रसेन को पुनः राजसिंहासन, सान्दीपनि गुरु से विद्या की प्राप्ति और उनके पुत्र को ले आना।

जरासन्ध पराजय।

कालयवन की उत्पत्ति, श्रीकृष्ण द्वारा पश्चिम समुद्र में द्वारकापुरी की स्थापना, मथुरा से यादवों सहित निर्गमन, मुचुकुन्द द्वारा कालयवन का वध कराना, मुचुकुन्द की भगवत्स्तुति।

मुचुकुन्द का गन्धमादन पर्वत पर तथा बलराम का गोकुल जाना।

बलदेव का गोपियों के साथ विहार, बलदेव द्वारा हल से यमुना को खींचना, नन्द यशोदा के साथ बलदेव का द्वारका लौटना, रेवती के साथ बलदेव का विवाह।

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्न का जन्म, शम्बरासुर द्वारा प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकना, मछली के पेट में पड़कर पुनः प्रद्युम्न का शम्बरासुर के भवन में आना, रति के द्वारा संवर्धन, प्रद्युम्न के द्वारा शम्बर का वध, रति के साथ प्रद्युम्न का द्वारका गमन, श्रीकृष्ण-नारद संवाद।

श्रीकृष्ण की सोलह हजार आठ सौ रानियों के मध्य आठ प्रमुख रानियों का नाम कथन, अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन, रुक्मि-बलदेव-द्यूतक्रीड़ा, बलदेव द्वारा रुक्मि का वध।

श्रीकृष्ण द्वारा नरकासुर वध का वर्णन, पृथिवी द्वारा दिये गये कुण्डल को अदिति को देने के लिए स्वर्ग गमन।

अदिति के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति, सत्यभामा के लिए पारिजातहरण, देवों के साथ श्रीकृष्ण का युद्ध, पराजित इन्द्र द्वारा कृष्ण का वर्णन।

इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति, द्वारका में पारिजात का रोपण, सोलह हजार आठ सौ रानियों के साथ श्रीकृष्ण का विवाह।

सत्यभामा के पुत्रों के नाम, चित्रलेखा का द्वारका गमन।

शंकर बाणासुर संवाद, अनिरुद्ध-उषा का विवाह, बाणासुर द्वारा अनिरुद्ध को बन्दी बनाना, श्रीकृष्ण का बाणासुर पर आक्रमण, कृष्ण का शंकर से युद्ध, बाणासुर का हस्तकर्तन, अनिरुद्ध-उषा के साथ श्रीकृष्ण का द्वारका पुरी लौटना।

काशीराज पौण्ड्रक द्वारा स्वयं को असली वासुदेव बताना, श्रीकृष्ण के साथ युद्ध, पौण्ड्रक का वध, पौण्ड्रक के पुत्र के द्वारा उत्पन्न कृत्या को मारकर सुदर्शन द्वारा काशी पुरी को जलाना।

साम्ब द्वारा दुर्योधन की कन्या का हरण, पकड़े गये साम्ब को छुड़ाने बलराम को दुर्योधनादि द्वारा अपमानित किये जाने पर बलराम द्वारा हल से हस्तिनापुर को खींचना, डरे हुए कौरवों द्वारा बलराम की पूजा, पत्नी सहित साम्ब को लेकर द्वारका प्रस्थान।

बलदेव द्वारा नरकासुर के मित्र द्विविद् वानर का वध वर्णन।

साम्ब के पेट से लौहमूसल की उत्पत्ति, समुद्र में चूर्ण कर फेंके गये मूसल के कणों से सरकण्डों का उगना, इन्हीं सरकण्डों से परस्पर प्रहार कर नशे में धुत यादवों का विनाश इत्यादि।

व्याध के तीर से आहत भगवान् श्रीकृष्ण का स्वर्ग गमन।

रुक्मिणी आदि आठ महारानियों का अग्नि प्रवेश, आभीरों से पराजित अर्जुन के समक्ष ही कृष्ण की स्त्रियों का हरण, अष्टावक्र के शाप का इतिहास, परीक्षित को राजसिंहासन और पाण्डवों का महाप्रस्थान।

भगवान् का दशावतार-वर्णन।

यम द्वारा दी जाने वाली यातनायें, यमपुरी का वर्णन।

नाना प्रकार के पातकों का वर्णन, नरक और महापातक।

नरक निवारण के लिए मुनियों का व्यास से प्रश्न, धर्माचार वर्णन।

धर्म की श्रेष्ठता, शरीरोत्पत्ति एवं पाप-पुण्य का निरूपण।

शुभ प्राप्ति के उपाय, अन्नदान प्रशंसा।

श्राद्ध एवम् उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन।

श्राद्धकल्प का वर्णन।

सपिण्डीकरण, श्राद्ध योग्य ब्राह्मण, पिण्ड दान का कथन।

उद्वार योग्य कन्या, निवास योग्य स्थानादि का निरूपण।

वर्णाश्रम धर्म वर्णन।

दुराचार से द्विजादि का शूद्रत्व और सदाचार से शूद्रादि का द्विजत्व।

सद्गति विषयक आचार, स्वर्ग प्राप्ति के हेतु भूत आचार, मनोधर्मफल और कर्मफलोदय का वर्णन।

स्वधर्म निरत को देवलोक एवम् अधर्म निरत को नरक प्राप्ति।

वासुदेव माहात्म्य, वासुदेव पूजा तथा उसका फल।

कृष्ण की पूजा करने वालों को नानालोक और सुख की प्राप्ति।

प्रतिमास एकादशी तिथि में जनार्दन की पूजा, रात्रि जागरण का फल, चाण्डाल-राक्षस-संवाद, दोनों के पूर्व जन्म का वृत्तान्त।

भास्करादि देवों की आराधना का फल, विष्णु भक्ति एवं भगवन्माया का निरूपण।

महाप्रलय वर्णन, कलि के रूप और भविष्य का वर्णन।

युगान्त का स्वरूप वर्णन, धर्मनाश का कारण।

प्राकृत प्रति संचर और कल्पमान का निरूपण।

प्राकृतलय का स्वरूप वर्णन।

आध्यात्मिक, मानसिक, भौतिक एवं दैविक तापों का निरूपण, गर्भ में स्थित जीव के दुःख का निरूपण, शरीर की तीन दशायें-बाल्य, जरा और मरण, पापी को नरक प्राप्ति, मुक्ति हेतु ज्ञान के माहात्म्य का निरूपण।

योग और योगाभ्यास का निरूपण।

योग और सांख्य का निरूपण।

ज्ञानियों को मोक्ष और कर्मियों को स्वर्ग प्राप्ति का कथन, आकाशादि पञ्च महाभूतों का गुण-कथन।

गुण सृष्टि निरूपण, विशिष्ट धर्म कथन, क्षमा से काम नाश का वर्णन।

योग-सांख्य के ज्ञानियों का आचार कथन, योगियों की प्रंशसा, योगियों के लिए वर्ज्य आहार, योगाभ्यास से नारायण पद की प्राप्ति।

मोक्ष की दुर्लभता, देह स्थित पञ्च दोष वर्णन, सांख्य ज्ञान का माहात्म्य, सांख्य योग भ्रष्टजनों की उत्तम कुल में उत्पत्ति इत्यादि।

क्षर और अक्षर के विषय में वसिष्ठ और करालजनक का संवाद, चौबीस तत्त्वों का कथन, तामसी को नरक प्राप्ति का वर्णन।

क्षर और अक्षर के ज्ञान के अभाव में नाना प्रकार के जन्म से संसार की प्राप्ति इत्यादि।

अर्थ ज्ञान के बिना ग्रन्थाध्ययन की व्यर्थता, यथार्थ ज्ञान के बिना तर्क करने वाले को नरक की प्राप्ति, योग लक्षण एवं सांख्य ज्ञान क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ।

विद्या और अविद्या का स्वरूप, क्षर-अक्षर का विस्तार से कथन, आत्म शुद्धि और सांख्य-योग की अभेदता।

विकार वशात् अज की भी नाना रूपता, ज्ञान विज्ञान संज्ञित मोक्ष का कथन, ज्ञान प्राप्ति की परम्परा।

पुराण श्रवण से उत्पन्न हर्ष वाले महर्षि द्वारा व्यास की प्रशंसा, व्यास की अनुमति से सभी मुनियों का अपने आश्रम में जाना, पुराण के श्रवण और पठन का फल।

उपर्युक्त अध्याय क्रम से ब्रह्म पुराण के प्रथम भाग के प्रतिपाद्य विषयों का अति संक्षेपतः उल्लेख किया गया। अब आगे ब्रह्म पुराण के द्वितीय भाग में स्थित गौतमी माहात्म्य के अन्तर्गत निरूपित विषयों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

तीर्थ संख्या, चार प्रकार के तीर्थ, तीर्थ का स्वरूप और तीर्थ के भेद।

तारकासुर से त्रस्त देवताओं द्वारा विष्णु की स्तुति, देवताओं का हित साधन करने कामदेव का शिव के पास जाना और उनके तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म होना, देवताओं की प्रार्थना से विवाह के लिए शिव का राजी होना।

हिमालय वर्णन, शिव पार्वती विवाह वर्णन।

वामनावतार एवं वामन का त्रिविक्रमत्व।

शिव के सिर से गङ्गा को उतारने के लिए पार्वती द्वारा विनायक को निर्देश, गौतम आश्रम का वर्णन, गौतम के लिए गंगा को ले आना।

गौतम मुनि की आराधना से प्रसन्न शिव पार्वती का कैलास पर्वत पर उन्हें दर्शन देना, गौतम द्वारा गङ्गा प्राप्ति की प्रार्थना, शिव द्वारा गंगा की प्रशंसा, शिव से गंगा समेत जटा लेकर गौतम का ब्रह्मगिरि पर आगमन।

गौतम की प्रार्थना से पन्द्रह आकृतियाँ धारण कर गङ्गा का तीनों लोकों में फैलना, गोदावरी तीर्थ स्नान का माहात्म्य।

सगर के पुत्रों का आख्यान, सगर का अश्वमेध यज्ञ, कपिल वृत्तान्त भगीरथ की तपस्या और शिव की कृपा से गंगा की प्राप्ति।

वराह तीर्थ वर्णन।

कपोतोपाख्यान, अतिथि प्रशंसा, गंगा स्नान से व्याध का स्वर्ग गमन, कपोततीर्थ वर्णन।

विषयासक्त कुमार का आख्यान, कुमारतीर्थ वर्णन।

कुमार (कार्तिकेय) के कहने से छः कृत्तिकाओं द्वारा गंगा स्नान और फलतः स्वर्ग गमन, कृत्तिकातीर्थ वर्णन।

गुरु और गौतमी की कृपा से भौवन द्वारा किये गए एक अश्वमेध के दश अश्वमेध यज्ञ की फल प्राप्ति, दशाश्वमेध तीर्थ का वर्णन।

पैशाचतीर्थ वर्णन।

कण्वकृत गंगास्तव, क्षुधातीर्थ वर्णन।

अहल्या-इन्द्र वृत्तान्त, अहल्यासङ्गमेन्द्रतीर्थ वर्णन।

वरुण के कहने से गौतमी तट पर अनेक अश्वमेध करने से जनक को भुक्ति-मुक्ति लाभ, जनस्थान तीर्थ वर्णन।

विश्वधर वैश्य का अपने मृत पुत्र के लिए करुण क्रन्दन सुनकर यम का गौतमी तट पर जाना, वहाँ तपो निरत यम की रक्षा के लिए विष्णु द्वारा अपना चक्र स्थापित करना, तपो भंग के लिए यम के पास गणिका का जाना, गान सुनने मात्र से नेत्र खोलकर यम द्वारा देखने से नदी रूप में परिवर्तित गणिका का गौतमी से मिलकर स्वर्ग जाना, चक्र तीर्थ गणिकासङ्गम तीर्थ वर्णन।

त्वष्ट्रा द्वारा सूर्य के खराद कर उनका तेज कम करना, अरुणा-वरुणासङ्गमाश्वभानु तीर्थ वर्णन।

गरुड़-तीर्थ वर्णन।

गोवर्धन-तीर्थ वर्णन।

धौत-पाप-तीर्थ वर्णन।

विश्वामित्र द्वारा श्वान मांस का भक्षण, विश्वामित्र इन्द्र संवाद, विश्वामित्र तीर्थ वर्णन।

यम-निधन-वृत्तान्त, मृत्यु-तीर्थ वर्णन।

शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी विद्या की प्राप्ति, शुक्र-तीर्थ वर्णन।

ब्रह्महत्या और इन्द्र का वृत्तान्त, पुण्यासिक्तासङ्गमेन्द्र-तीर्थ वर्णन।

रावण से पराजित कुबेर द्वारा गौतमी तट पर शिव की आराधना, फलतः उत्तरदिक्पालत्व की प्राप्ति, पौलस्त्य-तीर्थ वर्णन।

गङ्गा में अग्नि का प्रवेश, देवों की प्रार्थना से बाहर आना, अग्नि-तीर्थ वर्णन।

ऋणमोचन-तीर्थ वर्णन।

सुपर्णा-कद्रूसङ्गम-तीर्थ वर्णन।

पुरूरवा वृत्तान्त, सरस्वतीसङ्गम-तीर्थ वर्णन।

पञ्च-तीर्थ वर्णन।

प्रियवत के यज्ञ में हिरण्यक दानव द्वारा विघ्न, वसिष्ठ द्वारा दानव बाधा का निवारण, पुनः यज्ञ का प्रवर्तन, शम्पादि तीर्थ का वर्णन।

वरुण के कोप से हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग, पिता के द्वारा बेचे गये शुनः शेप को लेकर रोहित का नरमेध यज्ञारम्भ, आकाशवाणी द्वारा नरमेध का निषेध, विश्वामित्र द्वारा पुनः शुनःशेप को पुत्र रूप में स्वीकार करना, विश्वामित्रादि-तीर्थ का वर्णन।

गन्धर्वों को सरस्वती प्रदान कर देवताओं द्वारा सोम की प्राप्ति, गङ्गा से मिलने वाले नद-नदी आदि का वर्णन।

समुद्र-मन्थन-वृत्तान्त, राहुशिरश्छेदन, अमृतसङ्गम-तीर्थ वर्णन।

गौतम-वृद्धा-विवाह-वृत्तान्त, गङ्गाजल के अभिषेक से वृद्धा को यौवन प्राप्ति, वृद्धसङ्गम-तीर्थ वर्णन।

बुध-इला-विवाह-वृत्तान्त, पुरूरवा का जन्म, इलादि-तीर्थ वर्णन।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ का वृत्तान्त, दाक्षायणी का योगाग्नि से शरीर त्याग, यज्ञ विध्वंस, दक्षकृत शिवस्तुति, चक्र तीर्थ वर्णन।

देवताओं द्वारा दैत्यों के विनाश के लिए दधीचि की हड्डियों से वज्र का निर्माण, पुत्र को पीपल के पास छोड़कर मुनि पत्नी का पति के साथ गमन, पीपल से पिता की गति जानकर पुत्र द्वारा कृत्या का निर्माण, कृत्या के भय से देवों का पलायन, शिव की प्रार्थना, शिव की कृपा से सब ठीक हो जाना, कृत्या का नदी रूप में होकर गंगा से मिलाना, पिप्पलेश्वर-तीर्थ वर्णन।

शूरसेन की पत्नी से सर्पोत्पत्ति, सर्प के साथ राजा विजय की कन्या भोगवती का विवाह, सर्प द्वारा शिव शाप के विषय में भोगवती को बतलाना, नाग-तीर्थ वर्णन।

दैत्यों के साथ शिव के युद्ध में धर्म से मातृ देवियों की उत्पत्ति, रसातल में देवियों द्वारा दैत्यों का विनाश, मातृ तीर्थ वर्णन।

ब्रह्मा के पाँचवें सिर को काटकर हाथ में लिये हुए शिव का गंगातट पर जाना, ब्रह्म तीर्थ वर्णन।

विनायक स्तव, अविघ्न तीर्थ वर्णन।

शेष-ब्रह्मा-संवाद, शिव से प्राप्त त्रिशूल से शेष द्वारा असुरों का वध, शेष-तीर्थ वर्णन।

ऋषि के मृत्यु शमिता दीर्घ यज्ञ में देवों से प्रेरित असुरों का उपद्रव, शिव की कृपा से यज्ञ की रक्षा, देवों और असुरों में ऋषि के शाप से वैर, काल पत्नी वडवा का अभिषेक जल से वडवा नामक नदी होना, गङ्गा में उसका जाकर मिलना, सङ्गम पर 'महानल' नामक शिवलिङ्ग की स्थापना, वडवा तीर्थ का वर्णन।

गंगातट पर शिवस्तुति से दत्त को आत्मज्ञान की प्राप्ति, आत्म-तीर्थ वर्णन।

अगस्त्यमुनि द्वारा विन्ध्यपर्वत को नत करने के लिए दक्षिण दिशा में गङ्गातट पर यज्ञ करना, अश्वत्थपिप्पल नामक दो राक्षसों का वध, अश्वत्थादि तीर्थ वर्णन।

औषधि-ब्रह्मा-संवाद, सोम का औषधियों के साथ विवाह, सोम तीर्थ वर्णन।

धान्य तीर्थ वर्णन।

गुरु की आज्ञा से कठ द्वारा भरद्वाज की कुरूप बहन से विवाह, शिव की कृपा से उसका सुरूप होना, विदभरिवतीसङ्गम तीर्थ वर्णन।

स्त्री वेशधारी तम राक्षस के द्वारा राजा धन्वन्तरि का तपोभङ्ग, विष्णु की स्तुति से धन्वन्तरि को इन्द्र पद की प्राप्ति, इन्द्र के द्वारा हरि और हर की स्तुति, बृहस्पति द्वारा इन्द्र का अभिषेक, पूर्ण तीर्थ वर्णन।

आखेट में दशरथ द्वारा ब्रह्म-हत्या, राम के वनवास से दशरथ की मृत्यु और ब्रह्म हत्या के कारण नरक प्राप्ति, यम के सेवक की आज्ञा से राम और दशरथ का संवाद, राम द्वारा गंगास्नान और पिण्डदान से दशरथ का उद्धार, रामतीर्थादि वर्णन।

दिति द्वारा इन्द्रजित् पुत्र के लिए कश्यप से प्रार्थना, दिति के गर्भ में प्रवेश कर इन्द्र द्वारा गर्भ नाश, कश्यपादि का गंगातट पर गमन, शिव की कृपा से मरुतों को देवत्व की प्राप्ति, पुत्रतीर्थादि वर्णन।

कबूतर और उल्लू के युद्ध का वर्णन, कपोती द्वारा अग्नि की स्तुति, उलूकी द्वारा यम की स्तुति, अग्नि और यम द्वारा उन दोनों के युद्ध का निवारण, यमाग्नेयादि तीर्थ वर्णन।

श्रेष्ठता के लिए अग्नि और जल का परस्पर विवाद, विष्णु भक्त ऋषियों की आकाशवाणी से सन्देह निवारण, तपस्तीर्थ वर्णन।

मिथुं दैत्य द्वारा अश्वमेध यज्ञ करते हुए राजा अर्ष्टिषेण का पुरोहित सहित अपहरण, पुरोहित पुत्र देवापि द्वारा गंगातट पर शिव की आराधना, शिव की आज्ञा से नन्दी द्वारा दैत्य का वध करके राजा और पुरोहित का उद्धार, अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति, देवापि को अग्नि का वरदान, देव तीर्थ वर्णन।

शिव के तेज से स्वाहा में अग्नि की मिथुन सन्तानोत्पत्ति, अग्नि की सुपर्णासुवर्णा नामक दो पालियों को देवताओं का शाप, गंगातट पर शिवाराधन, लिंग स्थापन, विष्णु द्वारा शार्दूल नामक दैत्य वध कर सुवर्णा का उद्धार, तपोवनादि तीर्थ का वर्णन।

फेनासङ्गम वर्णन, महाशनि द्वारा इन्द्र को पराजित कर उन्हें पाताल में रखना, वरुण द्वारा अपनी कन्या देकर महाशनि को प्रसन्न करके इन्द्र को मुक्त कराना, इन्द्र द्वारा गंगातट पर शिव और विष्णु की आराधना, शिव विष्णु रूपधारी पुरुष द्वारा उस दैत्य का वध, इन्द्रादि तीर्थ वर्णन।

अगस्त्य मुनि द्वारा आपस्तम्ब के आश्रम में जाना, आपस्तम्ब द्वारा पूछने पर अगस्त्य द्वारा सभी देवों में शिव को श्रेष्ठ बताना, शिव द्वारा आपस्तम्ब को वरदान, आपस्तम्ब-तीर्थ का वर्णन।

देवों की गायों की रक्षा में नियुक्त सरमा को लालच देकर दैत्यों द्वारा गायें हरण कर लेना, इन्द्र द्वारा सरमा को शाप देना, देवों की प्रार्थना से विष्णु द्वारा दैत्यों को मारकर गायें वापस लाना, गंगास्नान से सरमा की शाप मुक्ति, यमादि तीर्थ वर्णन।

विश्वावसु की बहन को ऋषि का शाप, गङ्गास्नान से शाप विमुक्ति, यक्षिणीसङ्गमादि तीर्थ वर्णन।

भरद्वाज के यज्ञ में पुरोडाश भक्षण करते राक्षस को गोदावरी जलस्पर्श से शुक्लत्व की प्राप्ति, शुक्लतीर्थादि वर्णन।

वसिष्ठादि के यज्ञ में विष्णु चक्र से दैत्यों का विनाश, असुर-रक्त दूषित चक्र का गंगाजल में प्रक्षालन, चक्रतीर्थादि वर्णन।

ब्रह्मा-विष्णु में श्रेष्ठता को लेकर परस्पर विवाद में शिवलिङ्ग की उत्पत्ति, शिवलिङ्ग का अन्त न पाने पर ब्रह्मा द्वारा असत्य बोलने पर शाप की प्राप्ति, शाप विमोचन, वाणीसङ्गमादि तीर्थ वर्णन।

मौदगल्य नामक ब्राह्मण का एकान्त में विष्णु से नित्य संवाद, मौदगल्य का अपनी दरिद्रता पर मनन, विष्णु द्वारा उसकी दरिद्रता दूर करना, विष्णु तीर्थ वर्णन।

लक्ष्मी और दरिद्रता के बीच अपनी बड़ाई को लेकर विवाद, ब्रह्मा की आज्ञा से दोनों का गंगातट पर जाना, गङ्गा द्वारा लक्ष्मी की प्रशंसा, ब्रह्मा द्वारा गौतमी की प्रशंसा, लक्ष्मी तीर्थ वर्णन।

मधुच्छन्दा नामक पुरोहित के साथ महाराज शर्याति की दिग्विजय के लिए यात्रा, दोनों का संवाद, मधुच्छन्दा द्वारा सूर्य की स्तुति, भानुतीर्थादि वर्णन।

कवष पुत्र पैलूष मुनि का चरित, खड्गतीर्थादि वर्णन।

ब्रह्मा के वरदान से आत्रेय मुनि को इन्द्रत्व की प्राप्ति, दैत्यों के त्रास से इन्द्रत्व का त्याग, आत्रेयादि तीर्थ वर्णन।

कपिल-मुनि और पृथु के चरितों का वर्णन, कपिलतीर्थादि वर्णन।

राहु के पुत्र मेघहास दैत्य का चरित, देवस्थानादि तीर्थ वर्णन।

ब्रह्मा से रावण को शिव के १०८ नामों की प्राप्ति, रावण की तपस्या और शिव से उनके खड्ग की प्राप्ति, सिद्धतीर्थादि वर्णन।

अत्रि मुनि चरित वर्णन, परुष्णीसङ्गमादि तीर्थ वर्णन।

मार्कण्डेयादि ऋषियों का ब्रह्मा के साथ ज्ञानकर्म के विषय में संवाद, मार्कण्डेयादि तीर्थ माहात्म्य वर्णन।

महाराज ययाति के चरित का वर्णन, कालञ्जरादि तीर्थ वर्णन।

गम्भीरातिगम्भीरा नामक अप्सराओं द्वारा विश्वामित्र का तपोभङ्ग, ऋषि के शाप से दोनों का नदी हो जाना, अप्सरोयुगसङ्गम तीर्थ।

कण्व मुनि पुत्र वाह्लीक चरित वर्णन, कोटि तीर्थ वर्णन।

नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु वध वृत्तान्त, नारसिंहादि-तीर्थ वर्णन।

शुनःशेप द्वारा गौतमी जलप्रक्षेप से अजीगर्त को विष्णु पद प्राप्ति, पैशाचादि तीर्थ वर्णन।

उर्वशी के स्वर्ग चले जाने से दुःखी पुरूरवा को वसिष्ठ का उपदेश, पुरूरवा द्वारा गङ्गास्नान से उसे उर्वशी लोक की प्राप्ति, निम्नभेदादि तीर्थ वर्णन।

चन्द्र द्वारा तारा का हरण, चन्द्र को शुक्र का शाप, नन्दी वटादि तीर्थ वर्णन।

भावतीर्थादि सत्तर तीर्थों का वर्णन।

राम का राज्याभिषेक, सीता का परित्याग, राम के अश्वमेध में लवकुश का आना, सहस्रकुण्डादि तीर्थ निर्णय।

अंगिरसों को सूर्य द्वारा भूमिदान, कपिलासङ्गमादि तीर्थ वर्णन।

ब्रह्मा का भक्षण करने आए दैत्यों का सुदर्शन चक्र द्वारा विनाश, शङ्खतीर्थादिदशसहस्र तीर्थ वर्णन।

लङ्का से लौटते हुए राम का सीता सहित गौतमी तट पर आगमन, राम द्वारा गौतमी की प्रशंसा, वानरों द्वारा स्नान, शिवलिङ्ग का अर्चन पूजन, राम द्वारा शिवस्तुति, किष्किन्धा तीर्थ वर्णन।

माता की आज्ञा के बिना तप के लिए गये अंगिरसों को विघ्नों से परेशान देखकर अगस्त्य द्वारा गौतमी में स्नान करने से उन्हें सिद्धि की प्राप्ति, व्यास-तीर्थ वर्णन।

कद्रू-विनता-वृत्तान्त, सूर्य लोक में मूर्च्छित सर्पों को गरुड़ द्वारा पाताल ले जाकर उन्हें स्वस्थ करना, वंजरा संगम तीर्थ वर्णन।

देवासुर युद्ध में गौतमी तट पर हरिहर स्तुति, देवों की विजय, देवागम तीर्थ वर्णन।

ब्रह्मा के यज्ञ का वर्णन, विराट् की उत्पत्ति, कुशतर्पणादि तीर्थ वर्णन।

देवों द्वारा अपनी विजय के लिए वीर पुरुष प्राप्ति हेतु शिवस्तुति, मन्यु नामक वीर पुरुष की प्राप्ति, देवताओं की विजय, मन्यु तीर्थ वर्णन।

परशु नामक राक्षस का ब्राह्मण वेश में शाकल्या श्रम में जाकर विघ्न पैदा करने की चेष्टा, शाकल्य द्वारा उस राक्षस से सरस्वती की स्तुति कराना, राक्षस को उत्तम लोक की प्राप्ति, सरस्वती तीर्थ वर्णन।

राजा पवमान का चिञ्चिक पक्षी के साथ संवाद, पक्षी द्वारा अपना पूर्व वृत्त बतलाना, पक्षी का गङ्गा में स्नान कर गदाधर का दर्शन, गंगा की स्तुति से स्वर्ग प्राप्ति, चिञ्चिक तीर्थ वर्णन।

सूर्य कन्या विष्टि का विश्वरूप के साथ विवाह, अपने पितरों की शान्ति के लिए हर्षण का यम से प्रश्न, यम की सलाह से हर्षण का गौतमी में स्नान, भद्र तीर्थ वर्णन।

सम्पाति और जटायु का सूर्य मण्डल तक उड़ कर जाना, सूर्य के तेज से दग्ध होकर पर्वत शिखर पर गिरना, सूर्य की कृपा से पुनः जीवित होना, विष्णु आदि देवों का वहाँ जाना, पतत्रि-तीर्थ वर्णन।

ब्राह्मण पुत्र आसन्दिव को लेकर एक राक्षसी द्वारा पलायन, किसी ब्राह्मण कन्या के साथ आसन्दिव का विवाह, पत्नी द्वारा कहे जाने पर आसन्दिव द्वारा विष्णु की स्तुति, विष्णु द्वारा राक्षसी का वध, विप्रनारायण तीर्थ का वर्णन।

राजा अभिष्टुत का अश्वमेध यज्ञ, ब्राह्मण वेष में दैत्यों का यज्ञ में आना, विश्वरूप उपाय से असुरों का निवारण, भान्वादि तीर्थ वर्णन।

वेद नामक शिव आराधक ब्राह्मण का, व्याध द्वारा शिव पूजा देखकर क्रोध करना, आदिकेश शिव का वेद नामक ब्राह्मण से संवाद, व्याध को शिव का वरदान, भिल्ल-तीर्थ का वर्णन।

कुण्डल वैश्य का उपाख्यान, चक्षु-तीर्थ वर्णन।

इन्द्र-प्रमिति-संवाद, मधुच्छन्दा के साथ प्रमिति के पुत्र का संवाद, गंगास्नान से हरिहर की कृपा से प्रमिति को पुनः राज्य की प्राप्ति, उर्वशी-तीर्थ का वर्णन।

गङ्गा का सागर से संवाद, गङ्गा का सात धाराओं में विभक्त होना, सामुद्र तीर्थ का वर्णन।

सप्तधा विभक्त गङ्गा के नाम, ऋषि के यज्ञ में देवशत्रु विश्वरूप का आना, ऋषि का विश्वरूप से संवाद, भीमेश्वर-तीर्थ वर्णन।

गङ्गा सागर सङ्गम वर्णन, सोम-तीर्थ वर्णन, देवर्षि द्वारा सोम की स्तुति, आदित्य बार्हस्पत्यादि तीर्थ वर्णन।

गङ्गा का क्रमशः ब्रह्म कमण्डलु, विष्णु पद, शिवकपर्द, ब्रह्मगिरि और पूर्व समुद्र में अवस्थान निरूपण, तीर्थों की चतुर्विधता का निरूपण, युगक्रम से तीर्थों की अप्राप्ति, पार्वती-गणेश संवाद में यह व्यक्त करना कि ब्रह्मगिरि से लेकर सागर पर्यन्त मैं गौतमी तट का त्याग नहीं करूँगा, शिव से वर की प्राप्ति, शिव द्वारा गौतमी तीर्थों की प्रशंसा, मनुष्यों द्वारा गोदावरी तीर्थ में स्नान से उनके विघ्नों का निवारण, गौतमी माहात्म्य श्रवण फल।।

इस प्रकार, ब्रह्म पुराण के कुल १३८ + १०५ = २४३ अध्यायों में प्रतिपादित विषयवस्तु का उपर्युक्त रीति से संक्षेपतया निरूपण किया गया। ब्रह्म-पुराण के उत्तर भाग के १०५ अध्यायों के अन्तर्गत मुख्य रूप से गौतमी माहात्म्य को आलोकित करने वाले आख्यानों की योजना करके तत्सम्बद्ध तीर्थ का वर्णन किया गया है। इस तरह से गौतमी तट पर स्थित कम से कम १२० तीर्थों का महत्त्व ब्रह्मपुराण प्रतिपादित करता है।

ब्रह्म पुराण का वैशिष्ट्य एवं महत्त्व

'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के अनुसार सभी पुराणों के मूल प्रतिपाद्य विषय पाँच ही हैं– सृष्टि, प्रलय, ऋषियों और राजाओं के वंशों का वर्णन, मन्वन्तरादि काल गणना और उन कुलों में उत्पन्न महान् पुरुषों के चरित का वर्णन। ये पाँच विषय जिनमें वर्णित हों वह ग्रन्थ 'पुराण' कहा जायेगा। पुराणों के एक समान पाँच विषय निर्धारित होने और उनका कर्ता भी एक ही होने पर भी इतने अधिक पुराणों की रचना क्यों कर दी गयी ? इसका उत्तर है कि इन पाँचों विषयों की समान रूप से पुराण विषय के रूप में स्वीकृति होने पर भी पुराणों में ये पाँचों विषय समान रूप से वर्णित नहीं है और इनके अतिरिक्त भी अनेक विषयों का निबन्धन पुराणों में हुआ है। सभी पुराणों की रचना पद्धति एक होने पर भी उनके कुछ मुख्य प्रतिपाद्य विषय पृथक्-पृथक हैं। यही उन पुराणों की अपनी अलग पहचान है, उनकी निजी विशेषता है और उनका अपना विशिष्ट महत्त्व है।

'ब्रह्म-पुराण' को समक्ष रखकर जब हम उपर्युक्त दृष्टि से विचार करते हैं तो इस पुराण के सम्बन्ध में हमें दो प्रमुख वैशिष्ट्य प्राप्त होते हैं। प्रथम यह कि इसमें उत्कल देश का विशिष्ट वर्णन और सूर्य पूजा पर विशेष बल दिया गया है। द्वितीय यह कि इसमें गौतमी

गङ्गा (गोदावरी) का माहात्म्य सविस्तार वर्णित है। ब्रह्म-पुराण के द्वितीय भाग को (कुल १०५ अध्याय) सर्वात्मना इसी विषय पर केन्द्रित किया गया है। प्रत्येक अध्याय का प्रारम्भ किसी पौराणिक कक्षा में होता है और अन्त तत्सम्बद्ध गौतमीतटावस्थित तीर्थ और उसके माहात्म्य से। इस क्रम में विशेष बात यह है कि शिवस्तुति (शिव की आराधना) और (गौतमी) गङ्गा में स्नान का पुण्य फल अत्यन्त नैपुण्य के साथ अनुस्यूत है। इन्हीं दो प्रमुख विशेषताओं के कारण ब्रह्म पुराण का अपना एक विशेष महत्त्व है। त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) की भक्ति, पूजा-आराधना का भी निरूपण किया गया है।

धार्मिक वैशिष्ट्य– पुराण वेदार्थ का उपबृंहण करते है। वेद सभी प्रकार के (समस्त) धर्मों का मूल है– 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' अतः पुराणों के प्रतिपाद्य विषयों में धर्म का प्रमुख स्थान है। धर्म के तत्त्व का उन्मीलन करना, धर्म को सर्वजन-बोधगम्य बनाना और जनता को धर्म के प्रति उन्मुख कर सदाचारगामी बनाना– यह पुराणों का प्राथमिक कर्तव्य है। आदि पुराण 'ब्रह्म पुराण' भी धर्म के वास्तविक सर्वजन संवेद्य स्वरूप का निरूपण करने के साथ ही धर्म के साधनों का भी निर्देश करता है। मानवी सृष्टि के आदि कारण भूत मनु और शतरूपा हैं। शतरूपा की उत्पत्ति धर्म से हुई है– 'धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत।।' (ब्र.पु. १.५६)।

ब्रह्म पुराणकार ने कहा है कि चूँकि धर्म सनातन है अतः धर्म सामान्य है और साध्य साधन रूप से वह अनेक प्रकार का है। धर्म, देश और काल के अधीन होता है। जो धर्म काल के आश्रय से रहता है, वह घटता-बढ़ता रहता है। किन्तु देश के आश्रय से स्थित धर्म सदैव एक रूप रहता है। जो धर्म के इस स्वरूप को जानता है उसका धर्म कभी क्षीण नहीं होता–

"सर्वत्र धर्मः सामान्यो यतो धर्मः सनातनः।
साध्यसाधनभावेन स एव बहुधा मतः।।
तस्याऽऽश्रयश्च द्विविधो देशः कालश्च सर्वदा।
कालाश्रयश्च यो धर्मो हीयते वर्धते सदा।।
युगानामनुरूपेण पादः पादोऽस्य हीयते।
धर्मस्येति महाप्राज्ञ देशापेक्षा तथोभयम्।।
कालेन चाश्रितो धर्मो देशे नित्यं प्रतिष्ठितः।
युगेषु क्षीयमाणेषु न देशेषु स हीयते।।
उभयत्र विहीने च धर्मस्य स्यादभावता।
तस्माद्देशाश्रितो धर्मश्चतुष्पात् सुप्रतिष्ठितः।।
स चापि धर्मो देशेषु तीर्थरूपेण तिष्ठति।
कृते देशं च कालं च धर्मोऽवष्टभ्य तिष्ठति।।

त्रेतायां पादहीनेन स तु पादः प्रदेशतः।
द्वापरे चार्धतः काले धर्मो देशे समास्थितः।।
कलौ पादेन चैकेन धर्मश्चलति सङ्कटम्।
एवं विधं तु यो धर्मं वेत्ति तस्य न हीयते।।" (ब्र.पु., गौ.मा., १०५.१७-२४)

ब्रह्मपुराण में धर्म की महत्ता सर्वत्र वर्णित है। धर्म से ही अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। धर्म भुक्ति-मुक्ति प्रदाता है। इसलिए सदैव धर्म का सेवन करना चाहिए। लोक में धर्म ही माता-पिता-भ्राता-सखा-स्वामी आदि सब कुछ है। धर्म जीवमात्र का पोषक है। जो धर्म का सेवन करते हैं, वे भय से त्राण पाते हैं, उत्तम योनि में जन्म पाते हैं। किन्तु अधर्म करने वाले नीच योनियों में पैदा होते हैं–

"तस्माद्धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः।
धर्मादर्थस्तथा कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते।।
धर्मो माता पिता भ्राता धर्मो नाथः सुहृत्तथा।
धर्मः स्वामी सखा गोप्ता तथा धाता च पोषकः।।
धर्मोदर्थोऽर्थतः कामः कामाद् भोगः सुखानि च।
धर्मैदैश्वर्यमैकाग्र्यं धर्मात्स्वर्गगतिः परा।।
धर्मस्तु सेवितो विप्रास्त्रायते महतो भयात्।
देवत्वं च द्विजत्वं च धर्मात्प्राप्नोत्यसंशयम्।।"
(ब्र.पु., १०७.७३-७६)।

पूर्व संचित पापों के नष्ट होने पर ही बुद्धि धर्म का सेवन करती है। जो दुर्लभ मानव देह प्राप्त कर धर्माचरण नहीं करता, वह निश्चय ही पुण्यों, अथ उत्तम लोकों से वञ्चित रह जाता है। जो नीच, दरिद्र, रोगी आदि हैं, मूर्ख हैं, उन्होंने निश्चय ही धर्म का आश्रय ग्रहण नहीं किया था। इसके विपरीत जो दीर्घजीवी हैं, वीर हैं, पण्डित हैं, रूपवान् हैं उन्होंने पूर्व में धर्माचरण किया है–

"यदा च क्षीयते पापं नराणां पूर्वसञ्चितम्।
तदैषां भजते बुद्धिर्धर्मं चात्र द्विजोत्तमाः।।
जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
यो हि नाचरते धर्मं भवेत्स खलु वञ्चितः।।
कुत्सिता ये दरिद्राश्च विरूपा व्याधितास्तथा।
परप्रेष्याश्च मूर्खाश्च ज्ञेया धर्मविवर्जिताः।।
ये हि दीर्घायुषः शूराः पण्डिता भोगिनोऽर्थिनः।
अरोगा रूपवन्तश्च तैस्तु धर्मः पुरा कृतः।।"
(ब्र.पु., १०७.७७-८०)।

इस संसार में यदि कुछ भी सर्वोपरि है तो वह एकमात्र धर्म ही है। गौतम-वैश्य-संवाद में वैश्य बार-बार धर्म का ही पक्ष लेता है और कहता है-

"धर्ममेव परं मन्ये यथेच्छसि तथा कुरु।
ब्राह्मणांश्च गुरून्देवान्वेदान्धर्मं जनार्दनम्।।
यस्तु निन्दयते पापो नासौ स्पृश्योऽथ पापकृत्।
उपेक्षणीयो दुर्वृत्तः पापात्मा धर्मदूषकः।।" (ब्र.पु., गौ.मा., १००.४५-४६)

धर्म की प्रशंसा करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि मृत शरीर को लोग छोड़ कर चले जाते हैं, सगे-सम्बन्धी भी क्षणभर रोकर मुँह फेर लेते हैं। किन्तु एकमात्र धर्म ही साथ जाता है। धर्म सबसे बड़ा सहायक है। धर्मयुक्त प्राणी स्वर्ग में और अधर्मी नरक में जाते हैं। जो धर्मयुक्त है वही जीव सुख प्राप्त करता है।

ब्रह्म पुराणकार एक अवसर पर 'तप' को सभी धर्मों से श्रेष्ठ धर्म बताते हैं-

"मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।
तच्छ्रेष्ठं सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते।।" (ब्र.पु., १३०.१८)।

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है- 'नास्ति सत्यात्परो धर्मः।' वस्तुतः इस सृष्टि के सारे नियम सत्य पर ही आश्रित हैं। इस सत्य रूप धर्म की महिमा ब्रह्मपुराण में राक्षस-मातङ्ग-संवाद में मातङ्ग ने अत्यन्त श्रद्धा और विश्वासपूर्वक गायी है-

"मैवं वदस्व भद्रं ते सत्यं लोकेषु पूज्यते।
सत्येनावाप्यते सौख्यं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्।।
सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनापो रसात्मिकाः।
ज्वलत्यग्निश्च सत्येन वाति सत्येन मारुतः।।
धर्मार्थकामसम्प्राप्तिर्मोक्षप्राप्तिश्च दुर्लभा।
सत्येन जायते पुंसां तस्मात्सत्यं न सन्त्यजेत्।।
सत्यं ब्रह्म परं लोके सत्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।
सत्यं स्वर्गसमायातं तस्मात्सत्यं न संत्यजेत्।।" (ब्र.पु., १२०.५२-५५)।

महर्षि व्यास ने ब्रह्मपुराण के अध्ययन-श्रवण की फलश्रुति में धर्माचरण पर बल देते हुए धर्म की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि जो उत्तम कोटि के पुरुष होते हैं उन्हीं की बुद्धि धर्म में अनुरक्त होती है। धर्म ही परलोक में बन्धु होता है। संसार के सारे भोगादि अस्थिर हैं, धर्म एकमात्र स्थिर तत्त्व है। धर्म का सेवन करने से मनुष्य राज्य, स्वर्ग, मोक्ष आदि सब कुछ प्राप्त करता है। धर्म इहलोक और परलोक, उभयत्र कल्याणकारी है और धर्म के अतिरिक्त कुछ भी सारवान् नहीं है-

"धर्मेण राज्यं लभते मनुष्यः स्वर्गं च धर्मेण नरः प्रयाति।
आयुश्च कीर्तिञ्च तपश्च धर्मं धर्मेण मोक्षं लभते मनुष्यः।।
धर्मोऽत्र मातापितरौ नरस्य धर्मः सखा चात्र परे च लोके।
त्राता च धर्मस्त्विह मोक्षदश्च धर्मादृते नास्ति तु किञ्चिदेव।।"
(ब्र.पु., १३८.३७-३८)।

साध्य रूप धर्म के अवान्तर भेदों का भी उल्लेख ब्रह्मपुराण में प्रसङ्गतः यत्र तत्र किया गया है। वर्णाश्रम-धर्म की चर्चा करते हुए पुराणकार कहते हैं कि वर्णाश्रम विभाग से धर्म चार प्रकार का होता है– "धर्मश्चतुर्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः।"[1] चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि वह अपने साथ ही शेष तीनों आश्रमों का भरण-पोषण करता है। यही कारण है कि ब्रह्मपुराण में गृहस्थाश्रम धर्म का सविस्तर निरूपण किया गया है।[2]।

महर्षि व्यास का कथन है कि गृहस्थ को सदैव सदाचार की रक्षा करनी चाहिए। आचार का लक्षण सदाचार रूप धर्म ही है–

"गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिरक्षणम्।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र वा।।
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लंघ्य प्रवर्तते।।
सदाचारो हि पुरुषो ब्रह्मायुर्विन्दते महत्।
कार्यो धर्मः सदाचारः आचारस्यैव लक्षणम्।।" (ब्र.पु., ११३.६-८)।

यहाँ पुराणकार ने 'आचारः परमो धर्मः' के आर्ष सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए सदाचार के पालन पर जोर दिया है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि यदि सदाचार का उल्लंघन करके यज्ञ, दान और तप का अनुष्ठान किया जाता है तो वह सब व्यर्थ है, उनका कुछ भी फल मिलने वाला नहीं है। निश्चय ही जीवन में सदाचार का सर्वोपरि महत्त्व है। सदाचार सत्य में प्रतिष्ठित है और धर्म सदाचार में प्रतिष्ठित है।

साध्य रूप धर्म की श्रेष्ठता, महत्ता और जीवन में उसके आचरण की महिमामयी उपयोगिता का व्याख्यान करने के साथ ही पुराणकार साधन रूप धर्म का भी यथावसर प्रतिपादन करता है। मुख्य रूप से सूर्योपासना, त्रिदेवों की उपसना और गौतमी गङ्गा की सपर्या का विशेष निरूपण करते हुए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को विशेष महत्त्व प्रदान किया

---

१. ब्रह्म पुराण, १८.६
२. वही, अध्याय ११३

गया है। यहाँ हम संक्षेपतः साधन रूप इन धर्मों का निरूपण करते हैं। ब्रह्मपुराण के अध्याय २६ से ३१ तक सूर्य पूजा का माहात्म्य, सूर्य के विविध रूपों का वर्णन, कोणादित्य की उपासना और उसका फल, सूर्य के नाम और स्तुतियों का सन्निवेश कर मानो अपने समय के प्रचलित महत्त्वपूर्ण धार्मिक सौर-सम्प्रदाय का निरूपण किया है। ब्रह्मा ने सूर्य को सर्व प्रधान देव बतलाते हुए उन्हें सृष्टि का मूल कहा है। अग्नि में दी गयी आहुतियाँ सूर्य को ही प्राप्त होती हैं–

"सर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परं दैवतम्।।
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।
सूर्यात्प्रसूयते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते।
भावाभावौ च लोकानामादित्यान्निःसृतः पुरा।।" (ब्र.पु., २६.३-५)।

उत्कल प्रान्त में प्रतिष्ठापित कोणादित्य (कोणार्क) के दर्शनमात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है–

कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे दिवाकरः।
यं दृष्ट्वा भास्करं मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (ब्र.पु., २६.६)।

इस प्रकार सूर्य-पूजा का माहात्म्य वर्णित कर इस प्रत्यक्ष देव की उपासना के प्रति मनुष्य मात्र को उन्मुख करके ब्रह्मपुराणकार ने धर्म साधना हेतु अपना उल्लेखनीय योगदान किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मपुराण में पुरुषोत्तम क्षेत्र का वर्णन करके वहाँ स्थित पवित्र-पञ्च-तीर्थों के साथ भगवान् जगन्नाथ की प्रभुता और माहात्म्य का निरूपण कर उनमें अपार श्रद्धा व्यक्त की है।[1] नारायण के दशावतार का उल्लेख[2] करने के साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का सुविस्तृत वर्णन किया है।[3] केशव के साक्षात् धर्म का स्वरूप (तुलनीय–'रामो विग्रहवान् धर्मः') बतलाते हुए उनकी उपासना का पुण्य-फल बताया गया है–

"तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति।
यस्तु तं मानवो लोके संश्रयिष्यति केशवम्।।

१. ब्रह्म पुराण, अध्याय ४०-४८
२. वही, ,, १०४
३. वही, ,, ७०-१०४

तस्य कीर्तिर्यशश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति।
धर्माणां देशिकः साक्षाद् भविष्यति स धर्मवान्।।
धर्मविद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदाऽच्युतः।
धर्म एव सदा हि स्यादस्मिन्नभ्यर्थिते विभौ।।" (ब्र.पु. ११८.४६-५१)।

पुराणकार ने पूज्य त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की एकता का प्रतिपादन करते हुए भी भगवान् भूतभावन भवेश शिव की पूजा-अर्चना के प्रति विशेष प्रीति प्रदर्शित की है। पुरुषोत्तम माहात्म्य का वर्णन करने के क्रम में ही वह अवन्तिकापुरी वर्णन में तल्लीन हो गया तथा महाकाल शिव के माहात्म्य का निरूपण करने लगा।[1] इसके पूर्व ही वह रुद्र-माहात्म्य, दक्ष यज्ञ वृत्तान्त और शिव-पार्वती विषयक आख्यान का सन्निवेश कर चुका था।[2] ब्रह्मपुराण में शिव के प्रति अभिव्यक्त की गयी भक्ति भावना, शिवलिङ्गों की अनेकशः स्थापना और उनके माहात्म्य का आख्यान करने से स्पष्ट है कि पुराणकार ने शिव और शिव भक्ति को विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

ब्रह्मपुराण का अनुशीलन करने से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि ब्रह्म पुराण की आधे से अधिक वाङ्मयी काया तीर्थों से ही विरचित है। विविध पुण्यप्रद पावन तीर्थों का उल्लेख और माहात्म्य वर्णन[3] करने के साथ ही पुराणकार ने ब्रह्म पुराण के उत्तरवर्ती १०५ अध्यायों में गौतमी गङ्गा और उसके माहात्म्य वर्णन के प्रसंग में प्रायः सभी अध्यायों में गौतमी गङ्गा (गोदावरी) के तट पर अवस्थित एक या एकाधिक तीर्थों का केवल वर्णन ही नहीं किया है अपितु उनसे सम्बद्ध कोई न कोई वृत्तान्त अथवा उपाख्यान भी निबद्ध किया है जो उन तीर्थों के माहात्म्य को प्रख्यापित करते हैं। इस निबन्ध के पूर्व पृष्ठों से यह तथ्य जाना जा सकता है। पुराणकार परम पुण्यप्रदा, मोक्षदायिनी गौतमी गङ्गा (गोदवरी) के माहात्म्य का वर्णन करने से कहीं भी नहीं चूकता। जिस क्षेत्र में गौतमी प्रवाहित है, उस क्षेत्र दण्डकारण्य को वह 'धर्मबीज' की संज्ञा देता है-

"धर्मबीजं मुक्तिबीजं दण्डकारण्यमुच्यते।
विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत्।।" (ब्र.पु., ६१.७३)।

गौतम नामक ब्राह्मण (ऋषि) ने अपने तपस्या-याचना से भगवान् शिव को प्रसन्न करके उनकी जटा में स्थित गङ्गा को लोक कल्याण के लिए ब्रह्मगिरि से होते हुए पृथ्वी पर उतारा। गौतम ने शिव से वर भी प्राप्त किया कि वह जहाँ-जहाँ जायेगी, वहाँ सर्वत्र

---

१. वही, ,, ४१
२. वही, ,, ३२-३८
३. वह, अध्याय २३, ३६, ४०, ६० इत्यादि

इसके तट पर आपका (भगवान् शिव का) निवास होगा। भूतल पर अवतरित इस पुण्यसलिला अमृतधारा गौतमी का माहात्म्य अनेकत्र वर्णित है।[1] एक स्थल पर इसकी परम महिमा गायी गयी है–

"कलिकलङ्कविनाशपटु त्विदं सकलसिद्धिकरं शुभदं शिवम्।
जगतिपूज्यमभीष्टफलप्रदं भवति गाङ्गमुदीरितमुत्तमम्।।
साधु गौतम भद्रं ते कोऽन्योऽस्ति सदृशस्त्वया।
य एनामानयद्गङ्गां दण्डकारण्यमादरात्।।
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये।
तानि, स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ।।
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम्।
सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ।।
इयं तु गौतमी पुत्र यत्र क्वापि शिवाज्ञया।
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति।।"

(ब्र.पु., गौ.मा., १०५.८०-८५)।

अन्त में ब्रह्मा ने कहा कि गौतमी माहात्म्य का श्रवण करने मात्र से हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त हो जाता है–

"अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत्।।" (वही, १०५.८६)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्म पुराण में धर्म के सभी उपादानों का यथोचित समावेश हुआ है। चूँकि दैवी शक्तियाँ धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिए ही होती हैं। अतः उनका आश्रयण करने से पुराणों का भी यही प्रयोजन सिद्ध होता है। अतः ब्रह्मपुराण का धार्मिक वैशिष्ट्य उसी में से उद्धरण ग्रहण कर यहाँ संक्षेपतः प्रकाशित किया गया।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य

मनुष्य की सामाजिकता उसकी प्रत्येक कृति में साफ झलकती है, वह कृति चाहे लौकिक हो अथवा अलौकिक। मनुष्य जिस सामाजिक परिवेश में रहता है, वह परिवेश

१. ब्रह्म पुराण, गौतमी माहात्म्य, अध्याय १ से १०५, विशेषत : अध्याय ६ एवं १०५।

उसके मनोगत भावों से मिलकर एक अद्भुत सृष्टि का निर्माण करते हैं और वही सृष्टि उसकी कृति के रूप में प्रतिफलित होती है। ब्रह्मपुराण जो एक आर्ष कृति है, इसका अपवाद नहीं है। पुराण के मुख्य प्रतिपाद्य विषयों के साथ मनुष्य का सहज सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश भी अनुस्यूत है जो उस काल के समाज की सुव्यवस्था और समरसता का मूलाधार था। यहाँ हम तत्तत्प्रसङ्गों से उन सन्दर्भों को उद्धृत कर संक्षेपतः उन्हें प्रस्तुत करेंगे।

ब्रह्मपुराण कालिक सामाजिक संरचना वैदिक धर्म-संस्कृति की मान्य नियमावली और परम्परा पर आधारित थी। त्रिः-चतुर्वर्ग का मान्य सिद्धान्त पूरे समाज को एक सुदृढ़ अनुशासन में आबद्ध कर सुव्यवस्थित कर रहा था और समाज को विशृङ्खलित होने से बचा रहा था। चतुर्वर्ग की वह व्यवस्था त्रिधा थी– मनुष्य का जीवनकाल, मनुष्य की वर्ण व्यवस्था और पुरुषार्थ। इन तीनों के ही प्रत्येकशः चार-चार विभाग थे। मनुष्य की पूर्ण आयु को– ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास– इन चार आश्रमों (सोपानों) में बाँटा गया था। इन चारों के पृथक्-पृथक् धर्म (करणीय कर्म) थे। समाज को भी चार प्रकार (कोटियों में) से बाँटा गया था। यह विभाजन कर्माश्रित था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णों और आश्रमों को उनके अनुरूप कुछ जीवन मूल्यों संवलित दायित्व दिये गये थे, जिनकी संज्ञा 'पुरुषार्थ' है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ब्रह्म पुराण का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उस समय का समाज चतुर्वर्ग के इस त्रितय से सम्यक् सम्पृक्त था। जो मनुष्य इस त्रितय के अनुशासन को भङ्ग करते थे, वे अधम, पापी और दण्डार्ह होते थे। समाज उन्हें पतित मानता था। वे दृष्टादृष्ट शक्तियों द्वारा दण्ड के भागी बनाये जाते थे।

ब्रह्म पुराण में वर्णाश्रम व्यवस्था का निरूपण किया गया है।[1] महर्षि व्यास से मुनियों ने एतद्विषयक जिज्ञासा की–

"श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् वर्णधर्मान् विशेषतः।
चतुराश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ब्रवीहि तान्।।
(व्यास उवाच) ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च यथाक्रमम्।
शृणुध्वं संयता भूत्वा वर्णधर्मान् मयोदितान्।।" (ब्र.पु., ११४.१-२)।

इस पुराण में भी परम्परागत वर्ण धर्मों का वर्णन किया गया है, किन्तु कुछ विशेषता है। सभी प्राणियों के साथ मैत्री को ब्राह्मण का सर्वोत्तम धन कहा गया है–"मैत्री समस्तसत्त्वेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम्।" (११४.५) और शूद्र को भी पाकयज्ञ से यजन और

१. ब्रह्म पुराण, अध्याय ११४, ११५

दान का अधिकार दिया गया है– "दानं दद्याच्च शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च।" (११४.१४)। यह वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं थी अपितु गुण और कर्म के अनुसार थी। वर्ण धर्म का निर्वाह न करने वाला अपने वर्ण से च्युत हो जाता था और उत्तम कर्म के द्वारा अधम वर्ण का मनुष्य उत्तम वर्णता को प्राप्त हो जाता था। ब्रह्म पुराण में इसका पर्याप्त निर्देश प्राप्त होता है। मुनियों ने व्यास से जिज्ञासा की– "कर्मणा केन वर्णानामधमा जायते गतिः। उत्तमा च भवेत्केन ब्रूहि तेषां महामते।।" (ब्र.पु., ११५.२)। महर्षि व्यास ने मुनियों के प्रश्न का विस्तार पूर्वक समुचित उत्तर देते हुए अन्त में कहा–

"न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतिर्न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।।
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते।
वृत्ते स्थितश्च शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं हि गच्छति।।" (ब्र.पु., ११५.५६-५८)।

इस प्रकार, ब्रह्म पुराण स्पष्टतः वर्ण व्यवस्था में कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करता है। वर्णाश्रम कथन के पश्चात् महर्षि व्यास ने अध्याय ११४ में (श्लोक २२ से ५६ पर्यन्त) क्रमशः चारों आश्रमों के कर्तव्यों का निरूपण किया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय का मानव जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मोक्ष चरम पुरुषार्थ है और केवल साध्य है। शेष तीन– धर्म, अर्थ और काम साध्य भी हैं और साधन भी। इन तीनों में धर्म प्रधान है क्योंकि धर्म के आश्रय से ही शेष दोनों, 'अर्थ' और 'काम', श्लाघ्य हैं। ब्रह्म पुराण में धर्मार्थ-काममोक्ष-इस पुरुषार्थ चतुष्टय का बहुधा उल्लेख किया गया है।[1]

इस प्रकार, हम देखते हैं कि ब्रह्म पुराण में सामाजिक सुव्यवस्था के मूल आधार पर वर्ण, आश्रम और पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्यग् विवेचन किया गया है।

भारतीय मनीषा मानव जीवन की सफल यात्रा के लिए संस्कारों की उपयोगिता एकमत से स्वीकार करती है। ब्रह्म पुराण में प्रसङ्गतः नामकरण, उपनयन, विवाहादि संस्कारों का उल्लेख हुआ है। वसुदेव से प्रेरित होकर पुरोहित गर्ग मुनि ने गोकुल में जाकर गोपबालकों के संस्कार सम्पन्न किये–

गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः। प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारमकरोत्तयोः।।
ज्येष्ठं च राममित्याह कृष्णं चैव तथाऽपरम्। गर्गो मतिमतांश्रेष्ठो नामकुर्वन्महामतिः।।
(ब्र.पु. ७६.१-२)।

---

१. ब्रह्म पुराण- ११३/१६५; १२०/४५, ५४; १२३/६२ ब्र.पु.-गौतमी माहात्म्य- १०/२१; १७/३; ४४/१४; ५९/११२; ६०/७; १०५/१०, ७७

विद्याध्ययन के लिए द्विज (संस्कार सम्पन्न) बालक गुरुकुल में जाते थे (ब्र.पु. ८६) वहाँ उनका उपनयन संस्कार करके ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर विद्यादान किया जाता था-

'बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः।
गुरोर्गेहे वसन् विप्रा ब्रह्मचारी समाहितः।।' (ब्र.पु. ११४.२२)।

विवाह संस्कार गृहस्थाश्रम प्रविष्ट ब्रह्मचारी का अति महत्त्वपूर्ण संस्कार है। ब्रह्म पुराण में अनेक विवाहों का उल्लेख प्राप्त होता है-शिव-पार्वती विवाह, इला-बुध विवाह, बलराम-रेवती विवाह, कृष्ण-रुक्मिणी-सत्यभामा विवाह, विष्टि-विश्वरूप विवाह, आसन्दिव-ब्राह्मणकन्या विवाह, अनिरुद्ध-उषा विवाह। सोम का औषधियों के साथ विवाह (ब्र.पु.गौ.मा., ४६) उल्लेखनीय है। विवाह में स्वयंवर का भी आयोजन होता था (ब्र.पु. ३४)। साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री का और चन्द्र ने तारा का हरण करके विवाह किया था। बहु पत्नी प्रथा का भी सङ्केत प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ कन्याओं के साथ विवाह किया था (ब्र.पु. ६५/१६-१७)। आठ पटरानियाँ पहले से थीं। विवाह के पश्चात् शिव, पार्वती के साथ श्वशुरालय में ही रहते थे। बाद में पार्वती की माँ मेना द्वारा पुत्री का उपहास करने पर (ब्र.पु. ३६) वे पार्वती समेत मेरु पर्वत पर चले गये।

मृत्यु के पश्चात् पितृ तर्पण और पितरों का श्राद्ध करना लोगों का नैतिक कर्तव्य था (ब्र.पु., अध्याय ५७ एवं ११०-११२)।

समाज में पाप-पुण्य की अवधारणा थी और इसके आधार पर समाज में अनैतिक आचरण पर नियन्त्रण भी था। नरक जाने के भय से लोग पाप-कर्म प्रवृत्त होने से हिचकते थे और स्वर्ग जाने की बुद्धि से पुण्य कर्मों का सम्पादन करते थे। ब्रह्मपुराण में पाप-पुण्य का विश्लेषण (अ. १०८) किया गया है और नाना प्रकार के पाप कर्मों के अनुसार नरक यातनाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है (अ. १०६-१०७)। व्रत-दान-तीर्थ-सेवन-अतिथि सपर्या और यज्ञादि पुण्य कर्मों के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति का उल्लेख बहुधा ब्रह्मपुराण में किया गया है।

समाज में पुरोहितों की प्रतिष्ठा थी और वे भी यजमान के कल्याण हेतु निरन्तर सचेष्ट रहते थे। गर्ग ने अत्यन्त गोपनीय तरीके से बलराम और श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार किया था। महाराज ययाति पुरोहित के साथ दिग्विजय यात्रा करते थे। वे समाज को धर्माचरण के लिए भी प्रेरित करते थे।

ब्रह्मपुराण में अतिथि सेवा का माहात्म्य वर्णित है। गृहस्थ धर्म का प्रतिपादन करते हुए पुराणकार कहते हैं- "अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।।" (ब्र.पु. ११४.३६)। अर्थात् जिसके घर में अतिथि निराश लौट जाय

तो वह अपने पाप उसे देकर और उसका पुण्य स्वयं लेकर जाता है। ब्रह्मपुराण के कपोतोपाख्यान में भी अतिथि सेवा का माहात्म्य वर्णित है (ब्र.पु.गौ.मा., अ. १०)।

मनोरंजन के साधनों में धनुर्याग, मल्लयुद्ध और द्यूतक्रीड़ा का भी प्रचलन था (ब्र.पु. अ. ८२ एवं ६२)।

समाज में नर-नारी आस्तिक भावना से युक्त थे। वे श्रद्धापूर्वक देवी-देवताओं की पूजा अर्चना करते थे। देव मन्दिरों, प्रासादों तथा प्रतिमाओं के निर्माण और शिवलिङ्गों की स्थापना के उल्लेख ब्रह्म पुराण में पदे-पदे प्राप्त है।

शास्त्रीय वैशिष्ट्य– वेद-वेदाङ्ग का उपबृंहण करने वाले पुराण शास्त्रीय विषयों का प्रवचन करने में भला कैसे चूक कर सकते हैं ? ब्रह्म पुराण में भी शास्त्रीय विषयों का यथावसर पर्याप्त निरूपण हुआ है। सर्ग और प्रतिसर्ग (सृष्टि और प्रलय) तो पुराणों के लक्षणान्तर्गत गृहीत हैं। अतः ब्रह्मपुराण के प्रथम अध्याय में ही सृष्टि का निरूपण किया गया है। प्रलय का निरूपण अध्याय ४६-५० में, महाप्रलय का वर्णन अध्याय १२२ में और प्राकृतलय का निरूपण अध्याय १२५ में हुआ है।

ब्रह्मपुराण में भूगोल का वर्णन अध्याय १६ से २१ तक किया गया है। इसके अन्तर्गत भूमण्डल पर स्थित द्वीपों, वर्ष पर्वतों, सागरों और नदियों का वर्णन करने के पश्चात् नीचे के सातों लोकों का वर्णन किया गया है। भूआदि ऊपर के सात लोकों की गणना कराने के बाद पृथ्वी सहित आकाशादि (खगोल) का वर्णन करके पुराणकार सौर मण्डल का निरूपण करता है। अध्याय २२ में शिशुमार चक्र, ध्रुवसंस्था और सूर्य की किरणों का वर्णन करके सूर्य किरणों तथा मेघ मण्डल से जल वृष्टि का निरूपण किया गया है–

"विवस्वानष्टभिः मासैर्ग्रसत्यम्भो रसात्मकम्।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादेवाखिलं जगत्।।
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमं पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाडीमयैर्दिवि।।

x x x

आकाशगङ्गासलिलं तथा हृत्य गभस्तिमान्।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः।।

x x x

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत्प्राणिनां द्विजाः।
पुष्णात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतंहितत्।।" (ब्र.पु. २२.८-१६)।

ब्रह्म पुराण में दर्शन शास्त्र के सिद्धान्तों और तत्त्वों का निरूपण पर्याप्त विस्तृत रूप से किया गया है। अध्याय १२६ से १३५ तक कुल १० अध्यायों में वेदान्त, सांख्य और योग दर्शन का व्याख्यान किया गया है। किन्तु इसके पूर्व ही अध्याय २१ में अत्याकृत प्रकृति (विष्णु की शक्ति रूपा) से महत्तत्त्वादि की उत्पत्ति का कथन किया गया- 'एवमत्याकृतात्पूर्वं जायन्ते महदादयः।' (ब्र.पु. २१.३४)।

योग को दुःखसंयोग का भेषज कहा गया है-'इदानीं ब्रूहि योगं च दुःखसंयोग भेषजम्।' (१२७.१)। योग की सम्पूर्ण प्रक्रिया बतलाने के पश्चात् महर्षि व्यास ने कहा- "न च पद्मासनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात्। मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते।।" (१२७.२६)।

ब्रह्मपुराण का सांख्य शास्त्र वर्तमान में प्रवर्तमान सांख्य न होकर महाभारत में वर्णित सांख्य है। ब्रह्मपुराण में प्रकृति सहित पचीस तत्त्वों का कथन किया गया है, किन्तु पुरुष तत्त्व के स्थान पर आत्मा (किं वा परमात्मा) ही प्रतिष्ठित है। इसी तरह वेदान्त प्रतिपादित विद्या और अविद्या तथा क्षर और अक्षर का स्वरूप भी यहाँ भिन्न है और सांख्ययोगानुसारी है (ब्र.पु., अ. १३६)। ब्रह्मपुराणकार स्पष्ट से सांख्य और योग में अभेदता की घोषणा करता है-

"सांख्य योगो मया प्रोक्तः शास्त्रद्वयनिदर्शनात्।
यदेव सांख्यशास्त्रोक्तं योगदर्शनमेव तत्।।" (ब्र.पु. १३६.४४)।

इस प्रकार, इस लघु निबन्ध में संक्षेपतः ब्रह्मपुराण में उपलब्ध विषयों को संकेतित करते हुए उसके वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया गया।

ब्रह्मपुराण का साहित्यिक वैशिष्ट्य नगण्य सा है। इस दृष्टि से ब्रह्मपुराण का अनुशीलन करने से यह प्रतीत ही नहीं होता कि यह कृति भी महाभारतकार अथवा श्रीमद्भागवत पुराणकार महर्षि वेदव्यास की है। व्याकरण की दृष्टि से भाषा विशुद्ध और सरल है। सामान्य संस्कृतज्ञ को भी ब्रह्मपुराण का पारायण करने से अर्थावबोध में कठिनाई नहीं होगी। यह इस पुराण की प्रयोजन सिद्धि मूलक सबसे बड़ी विशेषता है क्योंकि पुराणकार ने प्रतिपाद्य विषय-निरूपण में सर्वत्र क्लिष्टता से बचने की चेष्टा की है। संवाद शैली में भाषा की सहज प्रवाहमयता समग्र ग्रन्थ में विद्यमान है। इस पुराण की छन्दोयोजना और प्रस्तुतीकरण में महाभारत (विशेषतया श्रीमद्भगवद् गीता) का प्रभाव है। यत्र तत्र वहाँ से अनेक श्लोक लेकर यथावत् सन्निविष्ट करे दिये गये हैं।

पद्मपुराण[1]

अष्टादश पुराणों में पद्म पुराण का विशिष्ट स्थान है। यह पुराण वैष्णव पुराण है। इसमें भगवान विष्णु के माहात्म्य का सम्यक् प्रतिपादन है। सात्विक-राजस-तामस विभाजन क्रम में यह सात्विक पुराण के रूप में परिगणित है। इसमें रामावतार तथा कृष्णावतार की कथाओं के संक्षिप्त वर्णन के साथ ही अयोध्या एवं वृन्दावन माहात्म्य, श्री राधाकृष्ण तथा उनके पार्षदों का वर्णन, वैष्णवों की द्वादशशुद्धि, शालग्राम-स्वरूप भगवन्नाम कीर्तन, दीक्षासविधि तथा विभिन्न तीर्थादि की महिमा भी वर्णित है। पद्मपुराण यद्यपि विष्णु के चरित का निर्विरोध प्रतिपादक पुराण है परन्तु इसमें ब्रह्मा एवं महेश को भी समान महत्व दिया गया है। वास्तव में यह ग्रन्थ सभी देवों में अभेद प्रतिपादक है। शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु एवं शक्ति के उपासक भी भगवान् विष्णु को प्राप्त करते हैं :-

सौराश्व शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव प्राप्तुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा।।
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याहूयन नामभिः।।
- उ.ख. ९०.६३-६४

इस पुराण को भगवान् के पुराणरूपी विग्रह का हृदय कहा गया है-हृदयं पद्मसंज्ञकम्। पद्मपुराण (आदि. १.२३-२४) के अनुसार यह महापद्ममय है। इस महापद्ममय जगत् की उत्पत्ति के वृत्तान्त का आश्रय होने के कारण ही इसे पद्मपुराण कहा जाता है -

एतदेव महापद्ममुद्भूतं यन्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तस्मात्पदममित्युच्यते बुधैः।।

पुराणसूची में स्थान एवं श्लोक परिमाण-पद्मपुराण अष्टादश पुराणों के गणना क्रम में द्वितीय पुराण के रूप में परिगणित है।[2] आकार की दृष्टि से भी यह पुराण

---

१. प्रस्तुत निबन्ध हेतु आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (१८९३-९४ ई.) से प्रकाशित संस्करण का उपयोग किया गया है।

२. मत्स्य. ५३.१४; भागवत १२.१३.४; विष्णु- ३.६.२१

स्कन्दपुराण के उपरान्त द्वितीय स्थान प्राप्त है। पद्मपुराण के अनुसार इसकी श्लोक सं. ५५ हजार है तथा यह छह खण्डों में विभक्त है -

सहस्रं पञ्चपञ्चाशत्षडभिः खण्डैः समन्वितम्।। -१.२१

मत्स्यपुराण के अनुसार भी पद्मपुराण की श्लोक संख्या पचपन हजार ही है –

पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते। - ३३.१४

नारदीय पुराण की विषयानुक्रमणी के अनुसार भी इसके श्लोकों की संख्या पचपन हजार बतलायी गयी है, परन्तु प्रकाशित आनन्दाश्रम संस्करण में कुल श्लोक ४८४५२ (कुल अध्याय ६२८) हैं।

पद्मपुराण के बंगाली तथा देवनागरी दो संस्करण प्राप्त हैं। बंगाली संस्करण में कुल पांच खण्ड हैं –

१. सृष्टि २. भूमि ३. स्वर्ग ४. पाताल ५. उत्तर

प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम्।।
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम्। पद्म.भूमि-१२५.४८-४६

इसी मत की पुष्टि उत्तखण्ड (१.६६-६७) से भी होती है। परन्तु आनन्दाश्रम एवं वेंकटेश्वर संस्करणों में छह खण्ड प्राप्त हैं –

१. आदि २. भूमि ३. ब्रह्म ४. पाताल ५. सृष्टि ६. उत्तरखण्ड।

वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण में खण्डों का क्रम निम्नलिखित है -

१. सृष्टि २. भूमि ३. स्वर्ग ४. ब्रह्म ५. पाताल ६. उत्तरखण्ड।

गुरुमण्डल ग्रन्थमाला संस्करण में भी वेंकटेश्वर संस्करण वाला ही क्रम है, परन्तु क्रियायोग सार नामक सप्तम खण्ड भी प्राप्त है।

पद्मपुराण भूमिखण्ड एवं उत्तरखण्ड के उपर्युक्त उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि छठें खण्ड की कल्पना उत्तरवर्ती है। बंगीय संस्करण को विद्वान् देवनागरी (दाक्षिणात्य) से प्राचीन मानते हैं।[१]

---

१. Puranic Records : R.C. Hazra Page 108, Padma Puran : A study : Asok Chatterjee, Page - 11

पद्मपुराण के संस्करण-पद्मपुराण के प्रचलित निम्नलिखित संस्करण हैं -

(१) आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना, १८६३-१८६४ ई.

(२) वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण बम्बई-इस संस्करण को फोटो आफसेट रूप में नाग पब्लिशर्स दिल्ली (१६८७ ई.) ने पुनर्मुद्रित किया है।

(३) गुरुमण्डल ग्रन्थमाला (अष्टादश पुष्प) कलकत्ता- (१६५७-१६५८ ई.)

(४) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

(५) बंगवासी संस्करण, कलकत्ता।

पद्मपुराण का काल

पद्मपुराण बृहत्काय पुराण हैं। विद्वान् इसके प्रत्येक खण्ड का रचनाकाल परस्पर भिन्न मानते हैं। आदिखण्ड में सृष्टि, पृथ्वी, जम्बू तथा शाकद्वीपीय पर्वतों, नदियों एवं जनपदों के उल्लेख होने के साथ ही तीर्थादि का भी विस्तृत वर्णन है। विद्वान् इसे मत्स्यपुराण से संकलित मानते हैं। डा. हाजरा इस पर मत्स्य एवं कूर्म का प्रभाव मानते हैं तथा इसे (आदिखण्ड को) उपर्युक्त पुराण का अधमार्ग सिद्ध करते हैं। डा. हाजरा विभिन्न ग्रन्थों की विवेचना के उपरान्त इसका काल ६५०-१४०० ई. मानते हैं।

भूमिखण्ड-इस खण्ड में आख्यानों की बहुलता है जिनमें प्रसिद्ध हैं-ययाति, वेद, पृथु, नहुष, आदि। आख्यानों के साथ ही इस पुराण में दान, पुण्य, स्वर्ग, नरक आदि का भी पर्याप्त वर्णन प्राप्त है। इस खण्ड की विषयवस्तु के विवेचन से ज्ञात होता है कि इसका काल ८०० ई. से पूर्ववर्ती नहीं हो सकता।

ब्रह्मखण्ड-का काल डा. हाजरा (पु.रि.११५) चौदहवीं शती निश्चित करते हैं।

पाताल खण्ड-इस खण्ड का काल हाजरा महोदय ८००-१४०० ई. तक मानते हैं।

सृष्टिखण्ड-इसके कतिपय अध्याय (१-४३) लगभग ६०० से ६०० ई. तक लिखे जा चुके थे। नारदीय पुराण की विषयानुक्रमणी इससे अधिक मिलती है। अतः इसका वर्तमान स्वरूप चौदहवीं शती तक लिखा जा चुका था।

उत्तरखण्ड-उत्तरखण्ड में पूर्व-वर्णित खण्डों की अनेक कथाओं, आख्यानों की पुनरावृत्ति प्राप्त है। व्रत-दानमाहात्म्यादि अनेक पूर्वखण्डों में प्राप्त विषयों को इसमें सम्मिलित किया गया है। अतः यह अन्य खण्डों का उत्तरवर्ती सिद्ध होता है। इस खण्ड का वर्तमान स्वरूप १५०० ई. तक तैयार हो चुका था-(डा. हाजरा - पु. रि. १२७)। इस प्रकार विद्वानों ने पर्याप्त समालोचना के आधार पर पद्मपुराण के रचना काल की पूर्ववर्ती

सीमा पाचवीं शती[1] एवं उत्तरवर्ती सीमा पन्द्रहवीं शती सुनिश्चित करते हैं।[2]

पद्मपुराण में उपलब्ध सुभाषित–

न क्रिया फलमाप्नोति क्रियाकालं न वेत्ति यः ।। आदि. २२.६५ श्लोकार्द्ध ।।

अनुरक्तेषु भक्तेषु मित्रेषु द्रोहकारिणः।
पुंसो लोकोभयोः सौख्यं नाशमेतीति नः श्रुतम् ।। आदि. २२.१०२ ।।

यस्मिस्तु निहते पाप एकस्मिन् स्वे परे तथा।
बहवः सुखमेधन्ते हन्याद्दुष्टं न पातकम् ।। भूमि. २८.७ ।।

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा ।। पाताल. ८२-२६ ।।

सन्तः प्रतिष्ठा दीनानां देवादुद्भूतपाप्मनाम्।
आर्तानामार्तिहन्तारो दर्शनादेव साधवः ।। पाताल. ८८.२१ ।।

परित्यजेदर्थकामौ स्यातां चेद्धर्मवर्जितौ।
धर्मेण प्राप्यते सर्वमर्थकामादिकं सुखम् ।। पाताल. ९५.२६ ।।

सर्वोपायेन कर्तव्यो निग्रहः कामक्रोधयोः।
श्रेयोर्थिना यतस्तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ ।। पाताल. ९५.४५ ।।

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ।। पाताल. ९६.१७ ।।

सत्ये प्रतिष्ठता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः।
उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घ्यति ।। सृष्टि. १८.३९६ ।।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। सृष्टि. १९.२७१

प्रतिज्ञापालनं कार्यं सतां धर्मः सनातनः ।। सृष्टि २५.१६५ श्लोकार्द्ध

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्। सृष्टि ४१.१०१ श्लोकार्द्ध।

कामनाशकरी चिन्ता बलतेजः प्रणाशिनी।
नाशयेत्सर्वसौख्यं तु रूपहानिं निदर्शयेत् ।। उत्तर.३२.२६ ।।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।

---

१. पुराण विमर्श : बलदेव उपाध्याय-पृष्ठ ५४१

२. पद्मपुराण : एक समीक्षात्मक अध्ययन; हरे राम त्रिपाठी, प्रभा प्रकाशन, वाराणसी १९८८, पृ. १७

त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्।। उत्तर. ११३.१३

यत्राभावेन गृहिणां कृशत्वमुपजायते।
सर्वतो ग्रीष्मसमये त्वम्भसां सरसामिव।। उत्तर. १६७.४०।।

निर्धनं पुरुषं लोके सर्वे मुञ्चन्ति बान्धवाः।
न मुञ्चति सखा यस्तु तस्य दुःखेन दुखितः।। उत्तर. २०३.६५।।

उपकारः सदा कार्यः परेषामपि साधुभिः।
अपकारो न मन्तव्यः कृतो भृशमसज्जनैः।। उत्तर. २१३.३६।।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते।। उत्तर. २३८.२८।।

आशा भङ्गकरी पुंसामाशा ज्ञेयाग्निसन्निभा।
तस्मादाशां त्यजेत्प्राज्ञो य इच्छेच्छाश्वतं पद्म।। उत्तर. २३८.३१।।

अहिंसा परमो धर्मस्त्वहिंसा परमं तपः।
अहिंसा परमं दानमित्यूचुर्मुनयः सदा।। उत्तर. २४३.६६।।

परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपिः।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि।। उत्तर. २५०.२३७।।

पद्मपुराण में वर्णित विषयों का सार

आदिखण्ड[1]

(१-१२ अ.) (सृष्ट्युत्पत्ति, भारतवर्ष-वर्णन तथा पृथ्वी-प्रदक्षिणा-माहात्म्य) मङ्गलाचरण। प्रारम्भ में ऋषियों के प्रश्न पर सूत द्वारा सप्तखण्डात्मक पद्मपुराण का वर्णन है। तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन क्रम में क्रमशः पञ्चमहाभूतादि का वर्णन एवं भारतवर्ष-वर्णन-क्रम में भारतस्थित पर्वत (महेन्द्र-मलय-सह्यादि), नदी (गोदावरी-नर्मदा-वितस्ता आदि), देश जनपद (कुरु-पाञ्चाल आदि), चार युग (कृत-त्रेता-द्वापर-कलि) के उल्लेख के साथ ही काल, द्वीप (जम्बू, शाक, कुश आदि) तथा सप्तसागर (घृततोय, दधि, मण्डोद, दुग्ध आदि) का भी प्रतिपादन है।

धर्मराज युधिष्ठिर एवं नारद-संवाद के माध्यम से पृथिवी-प्रदक्षिणा का फल (यज्ञादि दरिद्र व्यक्तियों से साध्य नहीं है परन्तु तीर्थ यात्रा से यज्ञादि का फल प्राप्त होता है); तीर्थार्थी के पाल्य धर्म, पुष्कर-माहात्म्य तथा अन्य तीर्थाश्रमों (अगस्त्य, कन्या, भद्रवन आदि) का महत्व प्रतिपादित है।

---

१. प्रस्तुत आदिखण्ड वेंकटेश्वर संस्करण में प्रकाशित स्वर्गखण्ड से अभिन्न है।

(१३-२१ अ.) **(नर्मदा-माहात्म्य)** युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में नारद ने नर्मदा नदी को समस्त नदियों में श्रेष्ठ, पापों की विनाशिनी तथा स्थावर एवं जङ्गम को तारने वाली बतलाया है। नर्मदा नदी दर्शन मात्र से ही पवित्र करने वाली है। जालेश्वर तीर्थोत्पत्ति, त्रिपुर-दहन (भगवान् के आदेश पर नारद द्वारा बाण पत्नी अनौपम्या का उपदेश द्वारा चित्त-हरण करने तथा स्त्रियों के भ्रष्ट तेज होने एवं शंकर की प्रेरणा से अग्नि द्वारा त्रिपुर-दहन) वर्णित है। यहां बाण कृत हरस्तुति भी लिखित है। अमरकण्टक तीर्थ वर्णन, कावेरी-नर्मदा - सङ्गम-माहात्म्य, नर्मदा तट स्थित विविध तीर्थों का वर्णन (शूलभेद, भीमेश्वर, मल्लिकेश्वर, वरुणेश, भार्गवेश्वर, शुक्लतीर्थ (आजव्यसञ्चित पाप शुक्लतीर्थ में स्नान से समाप्त होते हैं) नरक तीर्थ, विहगेश्वर, अश्वतीर्थ, सावित्री तीर्थ, मानसतीर्थ आदि का वर्णन है।

(२२-२८ अ.) (नर्मदा माहात्म्य, गान्धर्व कन्याओं की मुक्ति तथा अन्य तीर्थ) पांच गन्धर्व कन्याएं (प्रमोहिनी, सुशीला, सुस्वरा, सुतारा, चन्द्रिका) एक बार वन में विचरती हुई अच्छोद सरोवर पहुंची। वहाँ उन्होंने एक ऋषि कुमार को देखा, जिस पर वे आसक्त हो गयीं। ब्रह्मचारी द्वारा प्रथमाश्रमनिष्ठ होने की बात कहे जाने पर भी विह्वल गन्धर्व कन्याओं को ऋषि कुमार ने पिशाची होने का शाप दे दिया। रुष्ट गन्धर्व कन्याओं ने भी ऋषि कुमार को पिशाच होने का शाप दिया। लोमश ऋषि के उपदेश पर नर्मदा-जल-कण के स्पर्श से वे शापमुक्त हुए। यहाँ काश्मीर स्थित तक्षक नाग, वितस्ता, कुरुक्षेत्र, पारिप्लव, नैमिष, कन्या, सोम, धर्म तथा कलापवनादि तीर्थों का वर्णन है।

(२९-३२ अ.) **कालिन्दी-माहात्म्य** (हेमकुण्डल वैश्य पुत्र चरित) यमुना में स्नान के बिना मनुष्य जीवन निष्फल बतलाया गया है। स्नान से समस्त पाप नष्ट होते हैं। कृतयुग में निषधनगर में धर्मनिष्ठ, सदाचारी हेमकुण्डल नामक वैश्य के दो पुत्र थे। दोनों ने ही पिता द्वारा उपार्जित धन को कुमार्ग में पड़कर नष्ट कर दिया। निर्धन दोनों भाइयों में से बड़े की जङ्गल में व्याघ्र द्वारा तथा छोटे की सर्प काटने से मृत्यु हो गयी। यमदूतों द्वारा यम के समीप ले जाने पर यम ने बड़े भाई को नरक तथा छोटे (विकुण्डल) को स्वर्ग भेजा। विकुण्डल द्वारा शंका करने पर दूत ने पूर्व जन्म में सुमित्र ब्राह्मण के साथ यमुना में स्नान का कारण बतलाया। अन्त में विकुण्डल के प्रश्न पर दूत द्वारा स्वर्ग प्राप्ति हेतु सत्कर्मों तथा विकुण्डल के पुण्यदान से श्रीकुण्डल की नरक से मुक्ति के वर्णन के साथ ही सुगन्धरुद्रवर्तादि तीर्थों का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(३३-३६ अ.) **(वाराणसी-गया तथा अन्य तीर्थ माहात्म्य)** वाराणसी पुरी को समस्त प्राणियों को संसार सागर से मुक्त करने वाली बतलाया गया है। यहां स्थित 'ओम्कार' नामक शिवलिङ्ग स्मरणमात्र से ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। ओम्कार लिङ्ग के साथ ही कृत्तिवासेश्वर, कपर्दीश्वर, विश्वेवर, कन्दर्पेश्वर आदि लिङ्गों का भी

उल्लेख है। **कपर्दीश्वर-माहात्म्य** एक दैत्य ने व्याघ्र का रूप धारण कर एक मृगी का पीछा किया-भागती हुई मृगी महेश की परिक्रमा करने लगी। व्याघ्र ने मृगी को मार डाला। परन्तु लिङ्ग के समक्ष होने से मृगी ने गणेश्वरी स्वरूप को प्राप्त किया, **पिशाचमोचन-माहात्म्य** धर्मिष्ठ शंकुकर्ण विप्र का एक क्षुधार्त पिशाच द्वारा ग्रसित किये जाने पर पिशाचमोचन में स्नान से मुक्ति हुई थी) के प्रतिपादन पूर्वक गङ्गासागर-सङ्गम, वैतरणी, बदरिकाश्रम, गोकर्ण, गोदावरी तथा दण्डक आदि तीर्थों का भी वर्णन है। (४०-४६ अ.) **प्रयाग-माहात्म्य-** द्रोण, भीष्म, कर्ण एवं कौरवों के वध से दुःखी युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर मार्कण्डेय ने प्रयाग का माहात्म्य विस्तार से प्रतिपादित किया। तीर्थ में स्नान तथा जलपान से सप्त कुल पवित्र होते हैं। गङ्गाद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागर सङ्गम में गङ्गा को दुर्लभ बतलाया गया है। साथ ही मानस तीर्थ एवं मोचनतीर्थ का माहात्म्य भी प्रतिपादित है। प्रयागस्थ गङ्गा-यमुना-सङ्गम, प्रयाग में सभी देवताओं के निवास एवं सभी तीर्थों में प्रयाग की श्रेष्ठता वर्णित है।

(५०-६० अ.) (विष्णुभक्ति माहात्म्य कर्मयोग तथा वर्णाश्रम- धर्म-निरूपण) देवाधिदेव विष्णु की भक्ति प्रतिपादित है। चाण्डाल-म्लेच्छादि जाति के व्यक्ति जो हरिभक्ति में रत रहते हैं, वे भी वन्दनीय होते हैं। कर्मयोग-वर्णन में वर्णाश्रम के धर्म प्रतिपादित हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र के नियम, गुरु का महत्व, कर्तव्य निषिद्ध कर्मों का कथन, भक्ष्याभक्ष्य-विचार, ब्रह्मचर्यादि धर्मकथन (दण्डादियुक्त, शौचाचार समन्वित आदि) ब्रह्मचर्य -व्रत के अनुपालन के अनन्तर गृहस्थधर्म में प्रवेश करने तथा गृहस्थधर्म के अनुपालन (सत्यवादी, जितक्रोध, लोकमोहविवर्जित, सावित्री-जप निरत) वानप्रस्थाचार (नित्य अतिथिपूजन, देवार्चन, भूमिशयन, नित्य-सावित्री जप आदि), यतिधर्म निरूपण में यति भेद-(ज्ञान-सन्यासी, वेदसन्यासी, कर्मसन्यासी तीन भेद) तथा यतिधर्म ब्रह्मचारी जिताहारी, ग्राम से अन्न लाने वाला, अध्यात्मरतिरत, निरपेक्ष, निराशिषः आदि का प्रतिपादन है।

(६१-६२ अ.) कलियुग में हरिभक्ति ही मनुष्य से साध्य है, युगान्तरों में अन्य धर्म का विधान हैं। विष्णु की भक्ति के बिना जीवन निष्फल है। अन्तिमाध्याय (६२ अ.) में अष्टादशपुराणों का हरिविग्रह रूप में वर्णन है। जिसमें पद्मपुराण को हरि का हृदय बतलाते हुए इसके मात्र एक अध्याय के पाठ से ही सभी पापों से मुक्ति का उल्लेख है। इसके आदिखण्ड के पाठ से महापातकी मनुष्य भी मुक्त हो सकता है।

भूमिखण्ड

(१-६ अ.) **पितृभक्ति-माहात्म्य** (शिवशर्मा-आख्यान) द्वारका निवासी शिवशर्मा के पांच पुत्र- क्रमशः यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा थे। एक बार शिवशर्मा ने अपने पुत्रों का पितृभक्ति भाव जानना चाहा। अतः माया द्वारा शिवशर्मा ने

अपनी पत्नी को मृत कर दिया तथा ज्येष्ठ पुत्र को माता के अङ्गों को काट कर फेंक डालने का आदेश दिया। पुत्र ने वैसा ही किया। द्वितीय पुत्र वेदशर्मा को शिवशर्मा ने एक श्रेष्ठ स्त्री लाने का आदेश दिया। वेदशर्मा ने स्त्री से पिता की इच्छा बतलायी। स्त्री ने वेदशर्मा के साथ ही रमण की बात कही, जिसे सुनकर दुखी वेदशर्मा ने स्त्री से पुनः पिता हेतु प्रार्थना की तदनन्तर स्त्री ने सभी देवताओं के दर्शन की शर्त रखी। वेदशर्मा के आवाहन पर सभी देवता उपस्थित हुए परन्तु स्त्री ने वेदशर्मा का शिर मांगा। तत्काल वेदशर्मा ने अपना सिर उसे समर्पित कर दिया। जिसे लेकर वह स्त्री शिवशर्मा के समीप गयी, जिसे देखकर शिवशर्मा ने अपने तृतीय पुत्र धर्मशर्मा को उसे जीवित करने को कहा। तप के प्रभाव से धर्मशर्मा ने यम का आहवान किया। यम ने उपस्थित होकर उसके भाई को जीवित किया तथा उसे पितृभक्ति का वर दिया। उसके पश्चात् शिवशर्मा ने विष्णुशर्मा को इन्द्र के पास से अमृत लाने का आदेश दिया। विष्णुशर्मा जब अमृत लाने हेतु गये तो मार्ग में मेनका ने विघ्न डाला, परन्तु अन्ततः विष्णुशर्मा ने इन्द्र से अमृत प्राप्त कर पिता को समर्पित किया। तत्पश्चात् पुत्रों ने प्रसन्न पिता से माता को जीवित करने का वर मांगा। अन्त में पिता के वर से वे गोलोक गये।

शिवशर्मा ने अपने कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा की पितृभक्ति की परीक्षा हेतु उसे एक अमृत कलश दिया तथा उसकी रक्षा हेतु कह कर स्वयं पत्नी के साथ तीर्थ यात्रा को चले गये। दस वर्षों के अनन्तर जब वापस आये तो मायापूर्वक अपने को तथा पत्नी को कुष्ठी बना लिया, जिसे देखकर दुःखी सोमशर्मा ने उनकी निष्ठापूर्वक सेवा की। परीक्षार्थ पिता ने अमृतकलश से अमृत का आहरण कर लिया तथा अमृत की मांग की। कलश को रिक्त देखकर सोमशर्मा ने तपस्या के प्रभाव से अमृत प्राप्त कर पिता को समर्पित किया।

तपस्यारत सोमशर्मा की दैत्य-भय से मृत्यु हुई जिसने पुनः हिरण्यकशिपु के पुत्र (प्रहलाद) के रूप में जन्म लिया। यहां इन्द्र के जन्म की कथा तथा इन्द्र पद प्राप्ति एवं दिति -कश्यप के आत्मज्ञान विषयक संवाद का वर्णन है।

(१०-२१ अ.) **सुव्रत-आख्यान** इन्द्रजन्म-कथा-वर्णन के प्रसङ्ग में सुव्रत का चरित प्रतिपादित है। कौशिकवंशीय सोमशर्मा नामक ब्राह्मण पुत्रहीनता के कारण दुखी रहते थे। उनकी पत्नी सुमना ने पति को पुत्र-प्राप्ति का कारण, सुपुत्र का लक्षण, धर्म का स्वरूप तथा धर्म के अङ्गों को बतलाया। दुर्वासा द्वारा तपस्या करने पर भी धर्म का साक्षात्कार न होने पर धर्म को राजा (युधिष्ठिर) दासीपुत्र (विदुर) तथा चाण्डाल स्वरूप (हरिश्चन्द्र) होने का शाप देने, धर्मात्मा व्यक्ति तथा पापियों की मृत्यु के वर्णन एवं पुत्र प्राप्ति के साधनों का निरूपण है।

सोमशर्मा द्वारा पूर्वजन्म में कृत शुभाशुभ कर्मों का वर्णन वशिष्ठ ने किया तथा सोमशर्मा को भगवद्भजन करने का उपदेश दिया। जिसके अनुपालन हेतु सुमना एवं सोमशर्मा रेवा के तट पर गये तथा तपस्या की। प्रसन्न हरि ने उन्हें दर्शन देकर पुत्र-प्राप्ति

का वर दिया। जिससे सोमशर्मा को सुव्रत नामक पुत्र हुआ। सुव्रत तपस्या के प्रभाव से माता पिता के साथ विष्णु लोक को गये।

(२२-२५ अ.) (बल-वध, वृत्रासुर-वध तथा मरुदुत्पत्ति) दिति ने कश्यप से पुत्र की कामना की। तपस्या से दिति ने बल नामक पुत्र प्राप्त किया। यथासमय संस्कार कर दिति ने बल को चक्रपाणि से वैर साधन हेतु प्रेरित किया। सागर में कण्ठ तक खड़े होकर तपस्यारत बल को इन्द्र ने वज्र से मार डाला। पुत्र-वध सुनकर दुखी दिति पुनः पति कश्यप के समीप गयी तथा अपने दुःख का कारण बतलाया। क्रुद्ध कश्यप ने अपनी एक जटा नोंचकर अग्नि कुण्ड में डाल दी, जिससे वृत्र की उत्पत्ति हुई। कश्यप ने वृत्र को इन्द्र-वध का आदेश दिया। इन्द्र ने वृत्र को मैत्री भाव का प्रस्ताव सप्तर्षियों के माध्यम से प्रेषित किया। रम्भा ने वृत्र को वश में कर सुरापान कराया। इन्द्र ने वज्र के प्रहार से वृत्र को मार डाला।

वृत्र के वध को सुनकर दुःखी दिति पुनः कश्यप के समीप गयी। कश्यप पुत्र-प्राप्ति हेतु दिति के साथ सुमेरु पर्वत तपस्यार्थ गये। वहीं इन्द्र ब्राह्मण-वेष धारण कर आये तथा उनकी तपस्या में सहायक बने। बिना पाद प्रक्षालन किये, उल्टे शिर तथा केश खोलकर सोयी दिति के कुक्षि में प्रविष्ट होकर इन्द्र ने गर्भ को सप्तधा काट डाला। रोते हुए गर्भ को इन्द्र ने पुनः सप्तधा काट डाला जो मरुत् नाम से उत्पन्न हुए। (२६-४० अ.) (पृथुचरित, वेनोपाख्यान तथा सुनीथा चरित) अङ्ग नामक प्रजापति ने मृत्यु की कन्या सुनीथा से विवाह किया, जिसके गर्भ से वेन की उत्पत्ति हुई। अधर्मरत वेन के व्यवहार से त्रस्त ऋषियों ने उसकी बायीं जांघ का मंथन किया, जिससे निषाद जाति की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋषियों ने उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया, जिससे पृथु की उत्पत्ति हुई। प्रजापालन के कारण उनका नाम 'राजराज' पड़ा। ऋषियों के कथन पर राजा ने पृथ्वी का दोहन किया। तदनन्तर ऋषियों ब्राह्मणों तथा देवों ने भी पृथ्वी का दोहन किया। पुण्यात्मा पृथु की उत्पत्ति के कारण वेन पापरहित हो गया।

मृत्यु-कन्या सुनीथा एक बार सखियों के साथ वन गयी जहां उसने सुशङ्ख नामक तपस्यारत गन्धर्व को मारा पीटा। क्रुद्ध सुशङ्ख ने सुनीथा को देव-ब्राह्मण निन्दक पुत्रोत्पत्ति का शाप दे दिया। अत्रिपुत्र राजा अङ्ग पिता के आदेश पर पुत्र प्राप्त्यर्थ मेरुगिरि पर तपस्या करने लगे। प्रसन्न विष्णु ने उन्हें सद्गुणयुक्त पुत्र प्राप्ति का वर दिया। सुनीथा भी तपस्या हेतु वन को गयी जहां रम्भा आदि सखियों ने उसे मोहिनी विद्या सिखलायी। अङ्ग के साथ सुनीथा का गान्धर्व-रीति से विवाह हुआ। इनसे वेन की उत्पत्ति हुई। ऋषियों ने वेन को राज्याभिषिक्त कर दिया। एक बार एक छद्मवेशधारी पुरुष आया, जिसने जैनधर्म का उपदेश वेन को दिया जिससे वेन की पाप में प्रवृत्ति हुई।

यहां वेन-विष्णु संवाद के माध्यम से दान-काल का लक्षण (नित्य, नैमित्तिक काम्य) तथा अनत्थ (मृत्यु) तथा तीर्थ स्वरूप का वर्णन है।

(४१-४७ अ.) (सुकलाचरित)

पत्नी तीर्थ वर्णन प्रसङ्ग में वेन द्वारा विष्णु से प्रश्न किये जाने पर सुकला चरित का वर्णन विष्णु ने किया। सुकला काशी निवासी कृकल वैश्य की साध्वी पत्नी थी। एक बार कृकल मार्ग की कठिनाईयों का ध्यान कर पत्नी को छोड़कर अकेले ही तीर्थयात्रा पर चले गये। दुःखी सुकला को सखियों ने अनेकविध समझाया। सुकला ने सखियों को सुदेवा का चरित बतलाया। राजा इक्ष्वाकु का विवाह काशी नरेश देवराज की पुत्री सुदेवा से हुआ था। एक समय राजा सुदेवा के साथ जङ्गल को आखेट हेतु गये। राजा की सेना के आगे चलने वाले व्याधों ने अनेक शूकरों को देखा। व्याधों तथा शूकरों के युद्ध में अनेक शूकर तथा व्याध मारे गये। राजा ने मुख्य शूकर को मार डाला। शूकरी ने अपने पुत्रों को युद्ध क्षेत्र से भाग जाने का आदेश दिया पर वे नहीं भागे। एक व्याध के प्रहार से शूकरी पृथ्वी पर गिर पड़ी जिसे देखकर राजपत्नी सुदेवा उसके समीप गयी । शूकरी ने अपने पूर्वजन्म का वृतान्त सुनाया। पूर्वजन्म में उसका पति रङ्ग विद्याधर (अपर नाम गीतविद्याधर) था। वन में तपस्यारत पुलस्त्य के समीप गीतविद्याधर विद्याभ्यास करने लगा। पुलस्त्य द्वारा मना किये जाने पर भी नहीं मानने पर पुलस्त्य स्वयं स्थान छोड़कर चले गये। बहुत दिनों के अनन्तर गीत विद्याधर शूकर रूप में पुलस्त्य के समीप गया तथा उनका अनादर किया। रुष्ट ऋषि ने उन्हें शूकर होने का शाप दे दिया। अपने पूर्वजन्म कृत पापों के कारण शूकरी होने (ब्राह्मण वसुदत्त की पुत्री सुदेवा ने पति शिवशर्मा की उपेक्षा की जिससे उसका पति उसे छोड़कर चला गया दुश्चरित्र के कारण वह शूकरी हुई) पितृगृह में रहने के दोष का वर्णन करते हुए शूकरी ने पद्मावती चरित का वर्णन किया।

(४८-६० अ.) **(पद्मावती -उग्रसेन चरित)** मथुरा नरेश उग्रसेन का विवाह विदर्भराज सत्यकेतु की पुत्री पद्मावती से हुआ था। पितृगृह में रहते हुए पद्मावती एक बार भ्रमणार्थ पर्वत पहुंची। वहाँ सरोवर में स्नान करते हुए उसे देखकर गोभिल नामक दैत्य उस पर आसक्त होकर अशोक वृक्ष के नीचे उग्रसेन का रूप धर कर सङ्गीत प्रारम्भ कर दिया। सङ्गीत से पद्मावती को आकृष्ट कर उसके साथ संसर्ग किया। तथ्य ज्ञात होन पर पातिव्रतभङ्ग होने के कारण दुःखी पद्मावती उसे शाप देने हेतु उद्यत हुई परन्तु स्वयं का दोष मानकर और भी दुखी हुई। पुनः उग्रसेन के घर आयी जहां उसके गर्भ से कंस की उत्पत्ति हुई। अग्रिमाध्यायों में पिता वसुदत्त द्वारा पुत्री का त्याग, सुदेवा द्वारा भिक्षाटन करते हुए अपने पति शिवशर्मा के घर जाने, शिवशर्मा की द्वितीय पत्नी मङ्गला द्वारा उसे भोजन कराने, सुदेवाके यमलोक गमन, इक्ष्वाकुपत्नी दत्त पुण्य के प्रभाव से सुदेवा के स्वर्ग

गमन, सुकला के पातिव्रत भङ्गार्थ इन्द्र और काम की चेष्टा करने तथा असफल वापस जाने, सुकला पति कृकल का तीर्थ यात्रा से वापस आने, सुकला के पातिव्रत्य से प्रसन्न देवों द्वारा सुकला को वर प्रदान करने की कथा वर्णित है।

(६१-८४ अ.) **पितृतीर्थ माहात्म्य** (सुकर्माचरित; ययाति चरित) पितृभक्ति-माहात्म्य वर्णन प्रसङ्ग में पिप्पल की तपस्या का उल्लेख है। कुरुक्षेत्रीय कुण्डल नामक ब्राह्मण का सुकर्मा नामक विद्वान् पुत्र था। उन्हीं दिनों कश्यपकुलोत्पन्न पिप्पल नामक तपस्वी ब्राह्मण ने देवों को प्रसन्न कर विद्याधर होने का वर प्राप्त किया। पिप्पल को गर्व होने पर एक सारस (ब्रह्मा) ने उन्हें सुकर्मा के पास जाने का उपदेश दिया। पिप्पल के समक्ष देवों को उपस्थित कर सुकर्मा ने पितृभक्ति का वर मांगा। विस्मित पिप्पल की अनेक शंकाओं (पराचीन तथा अर्वाचीन) का सुकर्मा ने समाधान किया।

नहुष के पुत्र ययाति धर्मात्मा राजा थे। एक समय नारद इन्द्र के समीप गये तथा यायति के राज्य की प्रशंसा की। चिन्तित इन्द्र ने ययाति को स्वर्गलोक लाने हेतु अपने सारथि मातलि को भेजा। मातलि ने ययाति को धर्माधर्म विचार शिवागमोक्तधर्म तथा यमप्रदत्त पीडादि का वर्णन किया। ययाति ने मातलि के साथ स्वर्ग जाने से मना कर दिया। ययाति ने अपने राज्य में हरि नाम (७३.१०-१७) का प्रसार अपने दूतों द्वारा किया। एक समय ययाति के यहां कामदेव (नर रूप में) रति (नटी) तथा बसन्त (पारिपार्श्वक) ने नाटक किया। जिसे देखकर ययाति का चित्त क्षुब्ध हो गया। तदनन्तर ययाति जरावस्था को प्राप्त हुए। मृगया हेतु गये हुए राजा ने अश्रुबिन्दुमती (रतिपुत्री) तथा उसकी सखी विशाला (वरुण पुत्री) को देखा। अश्रुबिन्दुमती की कामना करने पर विशाला ने राजा से जरावस्था त्यागने को कहा। विशाला के वचन सुनकर राजा ने अपनी वृद्धावस्था पुत्रों को लेने हेतु कहा। एवं यदु द्वारा मना करने पर राजा ने दोनों को शाप दिया तथा कुरु को छोड़ दिया। शर्मिष्ठा पुत्र पूरु ने अपनी युवावस्था राजा को प्रदान की। बहुत दिनों तक भोग कर पुनः ज्ञान होने पर ययाति को सिंहासनासीन कर स्वयं ब्रह्मा शिव तथा विष्णु लोक को गमन किया तथा उनसे वर प्राप्त किया।

(८५-१०० अ.) **गुरुतीर्थ** (च्यवनतीर्थ यात्रा; कुञ्जलशुक चरित) बेन की गुरुतीर्थ विषयक जिज्ञासा पर विष्णु ने च्यवन की कथा सुनायी। भार्गववंशीय च्यवन ऋषि ज्ञान प्राप्ति हेतु सभी तीर्थों की यात्रा करते हुए एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। उस वृक्ष पर कुञ्जल नामक एक ज्ञानी पक्षी निवास करता था। उसके चार पुत्र-उज्ज्वल, समुज्ज्वल विज्ज्वल तथा कपिञ्जल थे। पुत्रों की जिज्ञासा पर पक्षी ने उन्हें क्रमशः व्रत, स्तोत्र, ध्यान तथा ज्ञान का उपदेश दिया। उज्ज्वल द्वारा प्लक्षद्वीप राज दिवोदास की पुत्री दिव्या देवी के चित्रसेन से विवाह के समय ही विधवा होने का कारण पूछे जाने पर कुञ्जल ने पूर्व कर्म विपाक के कारण पति का दिवंगत होना बतलाया। पूर्वजन्म में वह वाराणसी में सुबीर नामक

वैश्य की चित्रानाम वाली दुश्चरित्रा पत्नी थी। दुश्चरित्रा के पाप के कारण ही उसका पति मर गया। एक सन्यासी को भोजन कराने के पुण्य से पुनः दिवोदास की पुत्री हुई। यहां व्रत के भेद तथा विष्णुशतनाम-स्तोत्र (८७.६.२२) भी लिखित है।

द्वितीय पुत्र समुज्ज्वल के सन्देह (हंस-व्याध-प्रसङ्ग से) निवारण हेतु प्रयाग, पुष्कर, रेवा आदि तीर्थों का माहात्म्य बतलाया गया है। इसी प्रसङ्ग में विदुर-चरित भी वर्णित है। तृतीय पुत्र विज्ज्वल द्वारा दृष्ट आनन्दकाननस्थ सिद्धपुरुष द्वारा सपत्नीक स्वमांस भक्षण का उल्लेख करने पर कुञ्जल ने सुबाहु चरित का वर्णन किया। चोलदेशीय नरेश सुबाहु के जैमिनि नामक ब्राह्मण पुरोहित थे। उन्होंने राजा को दान एवं तपस्या का महत्व बतलाते हुए दोनों में से दान को दुष्कर बतलाया। जैमिनि ने राजा को दान के भेद, स्वर्गादि लोकों की विशेषताएं, नरकगामी पुरुषों के कर्मविपाक, वासुदेवाभिधान-स्तोत्र (६८-३८-६७) भार्या सहित सुबाहु की मुक्ति तथा कुञ्जल के पूर्वजन्म विषयक वेन द्वारा विष्णु से पूछे गये प्रश्न का वर्णन है।

(१०१-११७ अ.) (**नहुष चरित**) चतुर्थ पुत्र द्वारा कैलास पर्वत के गंगाह्रद के सामने एक शिला पर स्थित एक हिमकन्या के दुखी होकर रोने से उसके अश्रुबिन्दुओं के कमलपुष्प बन जाने का रहस्य पूछे जाने पर कुञ्जल ने शंकर का पार्वती के साथ क्रीडार्थ वन जाने, वहां कल्पद्रुम के नीचे कन्या के जन्म (जिसका नाम अशोक सुन्दरी पड़ा) अशोक सुन्दरी पर हुण्ड दैत्य के आसक्त होने, दोनों के मध्य संवाद, भावी नहुष को कन्या द्वारा अपना पति मानने पर हुण्ड द्वारा माया रूप से नहुष का रूप धारण कर अशोक सुन्दरी के पास जाने एवम् अपने गृह ले जाने, हुण्ड के वध हेतु अशोक सुन्दरी के तप करने, पुत्रहीन राजा आयु का दत्तात्रेय के समीप जाने, दत्तात्रेय से वर प्राप्त करने, राजपत्नी इन्दुमती के गर्भ से नहुष का जन्म होने तथा हुण्ड द्वारा इन्दुमती के पुत्र का छद्म अपहरण, राजा आयु तथा इन्दुमती का पुत्र विलाप, वसिष्ठ की आज्ञा से नहुष के वन जाने, हुण्ड दैत्य के वध हेतु प्रयाण काल में सभी देवों द्वारा नहुष को शस्त्र देने, युद्धार्थ जाते हुए मार्ग में नहुष द्वारा अशोक सुन्दरी के दर्शन, हुण्ड-नहुष युद्ध, हुण्ड-वध, अशोक सुन्दरी सहित नहुष के गृहागमन, उनके पुनरागमन से माता पिता की प्रसन्नता तथा नहुष द्वारा माता-पिता को हुण्ड के वृत्तान्त वर्णन की कथा वर्णित है।

(११८-१२५ अ.) (**कामोदाख्यान**) नहुष द्वारा पिता का वध ज्ञात होने पर विहुण्ड, देवों के विनाश हेतु तपस्या करने लगा, जिससे डरे हुए इन्द्रादिदेव विष्णु के समीप गये। विष्णु ने माया द्वारा विहुण्ड का वध करने हेतु तरुणी का रूप धारण किया। तरुणी ने आसक्त विहुण्ड को सात करोड़ कामोद कमल पुष्पों से शिवार्चन का आदेश दिया। पुष्पों का अन्वेषण करते हुए विहुण्ड शुक्र के समीप गया तथा कामोद वृक्ष का पता पूछा। शुक्राचार्य द्वारा कामोद नामक किसी वृक्ष के न होने तथा गङ्गाद्वार में कामोदा स्त्री के रहने

का उल्लेख (जिसके रोने तथा हंसने से कमलों की उत्पत्ति होती है) किया। कपिञ्जल के प्रश्नों के उत्तर में कुञ्जल समुद्र से उत्पन्न चार कन्याओं - (लक्ष्मी, वारुणी, कामोदा, तथा ज्येष्ठा) का उल्लेख किया।

नारद ने विहुण्ड को कामोदा को रुलाकर पुष्प प्राप्त करने का उपाय बतलाया। नारद द्वारा भगवान् के दुःख का उल्लेख करने पर कामोदा गङ्गा तट पर जाकर रोने लगी। उसके अश्रुबिन्दुओं से कमल उत्पन्न होने लगे। दुःखजनित पुष्पों को विहुण्ड ने एकत्र कर शिवार्चन किया। ब्राह्मण रूप धर देवी विहुण्ड के समीप गयीं तथा अपने मुंह से हुंकार किया जिससे विहुण्ड निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दानव-वध से देव प्रसन्न हुए।

कुञ्जल शुक द्वारा च्यवन को अपने पूर्वजन्म का वृतान्त बताने, सिद्ध पुरुषों द्वारा कथित ज्ञान का उपदेश देने, वेन द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने तथा विष्णु लोक जाने का वर्णन है। अन्त में पद्मपुराण के भूमिखण्ड श्रवण का माहात्म्य प्रतिपादित है।

ब्रह्मखण्ड

(१-२ अ.) (हरिभक्तिवर्णन, वैष्णवलक्षण, दण्डकनामक चौरवृत्तान्त) कलिकाल आने पर प्राणियों का किस कर्म से उद्धार होगा ? एतद्विषयक प्रश्न शौनक द्वारा पूछे जाने पर सूत ने व्यास-जैमिनि-संवाद का उल्लेख करते हुए कृष्ण-कथा-श्रवण का माहात्म्य; कथा में विघ्न डालने वाले तथा पुराणकथा का उपहास करने वाले को नरक की प्राप्ति ब्रह्म-हत्या, अकाल मरण, सुरापान, असत्यभाषण आदि से होने वाले पापों से भी पश्चात्तापपूर्वक कृष्णचरित श्रवण से मुक्ति बतलायी। साथ ही विप्रभक्ति, तुलसी-रोचन, हरिस्थान का मार्जन, वैष्णवजन का लक्षण (वेदशास्त्रानुरक्त, तुलसीवनपालक, राधाष्टमीव्रत आदि) प्रतिपादित हैं।

हरिमन्दिर-प्रोक्षण-महत्त्व वर्णन में दण्डक चोर का वृत्तान्त उल्लिखित है। पहले दण्डक नामक एक चोर था। एक बार वह द्रव्य चुराने हेतु किसी विष्णुमन्दिर को गया। अन्दर राधिकानाथ को प्रणाम कर वह निष्पाप हो गया। कमलापति के अंगवस्त्र में मन्दिर-सामग्री बांधते समय उसके हाथ से गिर पड़ी। शब्द होने के कारण लोगों द्वारा पीछा किये जाने पर वह भागा। भागते समय सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हो गयी। यमदूतों द्वारा नरक ले जाने पर चित्रगुप्त ने मूर्ति-द्रव्यों को चुराते समय प्रोक्षण के कारण दण्डक को वैकुण्ठ का भागी बतलाया।

(३-५ अ.) (कार्तिक (वैकुण्ठ विप्राख्यान) तथा जयन्ती-व्रत-माहात्म्य) कार्तिक-माहात्म्य-वर्णन प्रसङ्ग में कार्तिक में विहित नियम (दीपदान, तुलसीपत्र पूजन, अभ्रप्रदीप प्रज्वलन आदि) का वर्णन है। वैकुण्ठ नामक विप्र ने एक बार हरिमन्दिर में दीप प्रज्वलित किया, जिसके घृत को एक मूषिका (चूहिया) खा गयी। जिसको सांप ने डस लिया। मृत्यु के

अनन्तर विष्णु के आगे दीप जलाने के फलस्वरूप मूषिका विष्णुलोक को प्राप्त हुई। तदनन्तर जयन्ती व्रत नियमादि वर्णन के साथ ही पुत्रहीनता का कारण तथा श्रीधर नामक (पुत्रहीन) द्विज का चरित प्रतिपादित है।

६-७ अ. (मन्दिर-लेपन (वारनारीचरित) तथा राधाष्टमीव्रत महिमा) द्वापर में एक वेश्या जार के साथ वित्त के लोभ में देवालय गयी। वहां ताम्बूल भक्षण कर उसने अवशिष्ट चूने को मन्दिर के सौधभित्ति पर लेप दिया। रात्रि में व्याघ्र द्वारा मारे जाने पर उस वेश्या को मन्दिर पर चूर्ण लेपन के प्रभाव से विष्णु लोक की प्राप्ति हुई। भाद्रशुक्लपक्ष में पड़ने वाली राधाष्टमी के व्रत के प्रभाव से कलावती नामक वेश्या के उद्धार का भी वर्णन है।

(८-१० अ.) (समुद्रमन्थन कथा) एक बार दुर्वासा स्वर्ग गये। वहां उन्होंने इन्द्र को पारिजात पुष्प की एक माला दी जिसे इन्द्र ने ऐरावत के माथे पर रख दिया। ऐरावत ने माथे से माला उतार कर पृथ्वी पर फेंक दिया। क्रुद्ध दुर्वासा ने इन्द्र को श्रीहीन होने का श्राप दे दिया। जिसके प्रभाव से जगन्माता अन्तर्हित हो गयी। लोक में अनावृष्टि हो गयी, जलाशय जलहीन हो गये, वृक्ष सूख गये। देवता मुनियों के साथ क्षीरसागर पहुंचे। भगवान् ने उन्हें दैत्यों के साथ समुद्र मन्थन का उपाय बतलाया। देवों ने गन्धर्वों तथा दानवों के साथ मन्दराचल को मथानी एवम् अनन्त (शेषनाग) को रस्सी बनाकर समुद्र मंथन प्रारम्भ किया। मंथन से क्रमशः कालकूट, अलक्ष्मी, ऐरावत, धन्वन्तरी, पारिजात, सुरभी, अप्सरा महालक्ष्मी आदि की उत्पत्ति हुई। अन्त में महालक्ष्मी का विष्णु से विवाह होने एवं विष्णु द्वारा राहु और केतु के शिरच्छेद, सूर्यचन्द्रग्रहण में स्नानदानादि का माहात्म्य वर्णित है।

(११-१४ अ.) (गुरुवार व्रतकथा, भद्रश्रवसराजावृत्तान्त एवं कृष्णजन्माष्टमी-व्रत-माहात्म्य) द्वापर युगीन सौराष्ट्रवासी भद्रश्रवसराजा की पुत्री श्यामबाला द्वारा कृत मार्गशीर्षमास के रवि (नारायणसहित लक्ष्मी पूजन) व्रत का महात्म्य प्रतिपादित है। पुत्र-प्राप्ति विषयक दीनानाथ राजा के प्रश्न के उत्तर में गालव द्वारा वर्णित नरमेधयज्ञ का उल्लेख है। दिलीप-वसिष्ठ संवाद के माध्यम से श्रीकृष्णजन्म-कथा, कृष्ण का बालचरित, जन्माष्टमी के प्रभाव से पापी चित्रसेन राजा का उद्धार (हरिलोक प्राप्ति) ब्राह्मणपाद जल का प्रभाव (भीम नामक शूद्र की मुक्ति) एवं माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१५-१६ अ.) (एकादशीव्रत-माहात्म्य तथा पूर्णिमा को विष्णुपूजा का महत्व) प्रारम्भ में एकादशी व्रत का निर्णय उल्लिखित है। वल्लभ नामक वैश्य की पत्नी महारूपा दुष्टा थी। पति से रुष्ट उसने कई दिनों तक अन्न ग्रहण नहीं किया। दैवयोग से उस समय एकादशी थी जिसके प्रभाव से मृत्यु के अनन्तर वह हरिलोक को प्राप्त हुई।

कालद्विज नामक शूद्र भयङ्कर एवं पापी था। पाप के कारण वह सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ। एक बार उसने आश्विन मास की पूर्णिमा को बिल से निकलकर लाजा हरि के आगे

प्रक्षेपित कर दिया था, जिसके प्रभाव से वह विष्णुलोक को गया। विष्णुपादोदक-पान-माहात्म्य (पापी सुदर्शन ब्राह्मण की विष्णुपादोदक पीने से मुक्ति हुई थी), अगम्यागमन प्रायश्चित तथा भक्ष्याभक्ष्यभक्षण प्रायश्चित का वर्णन है।

(२०-२३ अ.) **(कार्तिक माहात्म्य)** कार्तिक मास में राधा दामोदर पूजन माहात्म्य वर्णित है। त्रेतायुग में शङ्कर नामक वृषल था जिसकी पत्नी कलिप्रिया दुश्चरित्रा थी। उसने स्वच्छन्दता हेतु अपने पति की हत्या कर दी। जिस पर पुरुष के कारण उसने पति की हत्या की थी उसे सिंह ने मार डाला। दुखी कलिप्रिया का निधन पूर्णिमा के दिन हुआ था। अतः उसे विष्णुमन्दिर की प्राप्ति हुई। कार्तिक मास में करणीय तथा अकरणीय कर्मों का विशेष रूप से वर्णन एवं तुलसी, धात्री का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(२३-२६ अ.) (विष्णुपञ्चक माहात्म्य) (दण्डकचौरवृत्तान्त तथा दान माहात्म्य) दण्डक नामक शूद्र धर्मनिन्दक असत्यभाषी मित्रघ्न तथा वेश्याविभ्रमलोलुप था। उसे उसकी जाति वालों ने अपकीर्ति के भय से कुल से बहिष्कृत कर दिया। धात्री मूल में स्थित ब्राह्मणों के उपदेश पर विष्णु - पञ्चक में निराहार रहकर दण्डक ने विष्णुलोक को प्राप्त किया।

अन्त में भूमि, धेनु, स्वर्ण, हीरक, मणि, कन्यादि दानों का माहात्म्य, हरिनाम महिमा, प्रतिज्ञा पालन का फल एवं त्याग का दोष वर्णित है।

पातालखण्ड[1]

(१-५ अ.) (रामाश्वमेध-कथा-प्रारम्भ) मङ्गलाचरण। एक बार वात्स्यायन ने पृथ्वी के आधार शेष से रामाश्वमेध कथा को विस्तार से सुनाने का अनुरोध किया। ज्ञानदृष्टि से शेष ने रामकथा का अवलोकन किया तथा वर्णन प्रारम्भ किया। रावण-वध के अनन्तर विभीषण को लंका का राज्य प्रदान कर राम पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या को प्रस्थान किये। मार्ग में अयोध्या के निकट नन्दिग्राम (जहां भरत निवास करते थे) देखा। राम के आदेश पर हनुमान भरत को राम के समीप ले आये। पुष्पक पर आरूढ़ हो भरत राम के साथ अयोध्या आये। आगे राम का भरत के साथ नगर में प्रवेश करने माताओं से मिलने, रामवियुक्त कौशल्या के विलाप करने, राम का माताओं से संवाद तथा सुमुहूर्त में राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।

रावण-वध से प्रसन्न देवों ने राम की स्तुति की जिससे प्रसन्न राम ने उन्हें असुरों द्वारा पीड़ित किये जाने पर बार-बार अवतार लेने का वर दिया। यहां रामराज्य का विस्तृत वर्णन है। एक धोबी के आक्षेपपूर्ण वचन को सुनकर राम ने सीता का त्याग कर दिया।

---

१. पातालखण्ड (आनन्दाश्रम संस्करण) में कुल ११३ अ. है। जबकि मोर प्रकाशन कलकत्ता संस्करण में ११७ अ. हैं।

(६-११ अ.) (अगस्त्य का राम-संसद में आगमन) एक समय राम जब अपने दरबार में बैठे थे तभी अगस्त्य मुनि पधारे। राम ने उनका स्वागत किया तथा आने का कारण पूछा। मुनि ने रावण के वध पर प्रसन्नता व्यक्त की। राम ने पुनः ऋषि से रावण, कुम्भकर्णादि के जन्म के विषय में जिज्ञासा की जिसका वर्णन ऋषि ने किया। पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा की दो पत्नियां मन्दाकिनी तथा कैकसी थीं। मन्दाकिनी के गर्भ से कुबेर का जन्म हुआ था। विद्युन्माली दैत्य की पुत्री कैकसी के गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण तथा पुण्यात्मा विभीषण का जन्म हुआ था। एक समय कुबेर को पुष्पक पर आरूढ़ देखकर कैकसी ने रावण की भर्त्सना की। माता के समक्ष प्रतिज्ञा कर रावण ने तपस्या कर ब्रह्मा से राज्य प्राप्त किया। दुष्ट बुद्धि रावण ने देवों पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिया। देव ब्रह्मा के साथ शङ्कर के समीप गये तथा उनकी स्तुति की। शङ्कर देवों के साथ विष्णु के समीप गये तथा विष्णु ने अयोध्या में दशरथ के यहां जन्म लेने का आश्वासन देवों को दिया।

इस प्रकार अगत्स्य ने राम को विष्णु का अवतार बतलाया।

ब्राह्मण रावण के वध से खिन्न राम को अगस्त्य ने अश्वमेध-यज्ञ करने का उपदेश दिया। राम के अनुरोध पर अगस्त्य ने अश्वमेध योग्य अश्व का निर्धारण किया। स्वर्णमयी सीता के साथ राम द्वारा सरयू तट पर यज्ञ आयोजित हुआ। वशिष्ठ के आमन्त्रण पर सभी ऋषि यज्ञ में सम्मिलित हुए तथा धर्म का वर्णन किया। मुद्राङ्कित अश्व छोड़ा गया जिसकी रक्षा का भार राम ने शत्रुघ्न को दिया। शत्रुघ्न के साथ भरत पुत्र पुष्कल हनुमान आदि वीर सेना के साथ अश्व की रक्षा हेतु प्रस्थान किये।

(१२-१६ अ.) **सुमदचरित** (कामाक्षा-स्थान तथा च्यवनसुकन्याचरित) अग्रसर होता हुआ अश्व अहिछत्रपुरी पहुंचा। यहां अहिछत्रपुरी का वर्णन है। अहिछत्र के राजा सुमद शत्रुओं द्वारा परास्त होने पर विमलतीर्थ में तपस्या करने गये। सुमद की तपस्या भङ्ग करने इन्द्र ने कामदेव को आदेश दिया। कामदेव ने रम्भादि अप्सराओं के साथ सुमद की तपस्या-भङ्ग का प्रयास किया, पर असफल रहे। प्रसन्न जगदम्बा कामाक्षा ने राजा सुमद को दर्शन दिया। राजा ने देवी से अकण्टक राज्य, भवानी में अविचल भक्ति तथा अन्त में मोक्ष का वर मांगा। देवी ने ऐसा होने का वर दिया तथा रामाश्वमेध के समय शत्रुघ्न के सुमद के समीप आने का उल्लेख भी किया। राजा सुमद् अहिछत्र के राजा हुए। अश्व पकड़ने में समर्थ अहिछत्र राजा सुमद ने अश्व को नहीं पकड़ा। शत्रुघ्न को प्रणाम कर अपना सर्वस्व समर्पित कर शत्रुघ्न के साथ च्यवन मुनि के आश्रम पर गये।

दमन नामक राक्षस ने अग्नि के संकेत पर गर्भवती भृगुपत्नी को प्रताडित किया। भयग्रस्त ऋषिपत्नी का गर्भ पृथ्वी पर पतित हो गया। शिशु के शाप से राक्षस नष्ट हो गया। तथ्य ज्ञात होने पर मुनि ने अग्नि को पवित्रापवित्र भक्षण का शाप दिया। पर अग्नि द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सर्वदा पवित्र होने का वर भी दिया। गर्भ से च्युत होने के कारण

बालक का नाम च्यवन पड़ा था। तपस्या करते हुए च्यवन को दीमकों ने आच्छादित कर लिया। तीर्थयात्रा हेतु निकले मनुपुत्र राजा शर्याति की पुत्री ने शलाकाओं से मुनि की आंखों को फोड़ डाला। ऋषि को प्रसन्न करने के लिए राजा ने अपनी पुत्री का च्यवन से विवाह कर दिया। सुकन्या ने ऋषि की शुश्रूषा की। एक बार आश्रम आये अश्विनी कुमारों ने ऋषि को आंखें प्रदान की। प्रसन्न ऋषि ने शर्याति के यज्ञ में अश्विनी कुमारों को यज्ञ भाग प्रदान किया।

भ्रमण करता हुआ अश्व च्यवन के आश्रम पर पहुंचा। शत्रुघ्न के कथन पर हनुमान ने च्यवन को सपत्नीक अयोध्या पहुंचाया।

(१-२२ अ.) **नीलपर्वत माहात्म्य** (रत्नग्रीव-राज-चरित) विचरण करता हुआ अश्व राजा विमल के राज्य रत्नातट पहुँचा। सुमति ने शत्रुघ्न को वहां स्थित नीलाचल तथा नीलाचल निवासी पुरुषोत्तम का माहात्म्य बतलाया। काञ्ची निवासी रत्नग्रीव को एक ब्राह्मण ने रामचन्द्र की सेवा का उपदेश दिया। ब्राह्मण ने किरात बालक द्वारा दृष्ट मन्दिर का भी वर्णन किया तथा राजा को नीलगिरि यात्रा की विधि बतलायी। राजा ने नीलगिरि की यात्रा की। यहाँ गण्डकी नदी तथा शालग्राम शिला का माहात्म्य भी लिखित है। रत्नग्रीव द्वारा पुरुषोत्तम की पूजा से चतुर्भुज रूप प्राप्ति तथा बैकुण्ठ गमन वर्णन के साथ ही पुल्कस शबर की शालग्राम चरणामृत तथा राम नाम उच्चारण से मुक्ति की कथा भी वर्णित है।

(२३-२९ अ.) **सुबाहु-चरित** (दमन-पराभव) अश्व बढ़ते हुए सुबाहु राज पोषित चित्राङ्का नगरी पहुंचा। सुबाहु पुत्र दमन ने अश्व को पकड़ कर बांध दिया। राजा प्रतापाग्र्य तथा दमन से युद्ध हुआ, जिसमें प्रतापाग्र्य परास्त हुआ। शत्रुघ्न की आज्ञा से पुष्कल ने दमन को पराजित किया। तदनन्तर सुबाहु उनके भाई सुकेतु तथा विचित्र एवं पुत्र चित्राङ्ग के साथ युद्धभूमि में आये तथा क्रौञ्च व्यूह की रचना की। सुकेतु तथा लक्ष्मीनिधि (जनकपुत्र) के साथ युद्ध में सुकेतु परास्त हुए। पुष्कल ने चित्राङ्ग का वध कर दिया। सुबाहु पुत्र वध के दुख से मूर्च्छित हो गये तथा स्वप्न में राम का दर्शन किया। अन्त में शत्रुघ्न सुबाहु समागम हुआ।

(३०-३२ अ.) (ऋतम्भरराज तथा सत्यवदाख्यान) अग्रसर होता हुआ अश्व तेजपुर नगरी पहुंचा। वहां के राजा सत्यवान् सत्यनिष्ठ थे। शत्रुघ्न द्वारा पूछे जाने पर सुमति ने पूर्वकालीन ऋतम्भर नामक राजा का चरित वर्णन किया। ऋतम्भर ने जाबालि ऋषि से सन्तानहीनता का कारण तथा निवारण पूछा। जाबालि ने गोसेवा का उपदेश दिया तथा राजाजनक की कथा सुनायी। ऋतम्भर ने गोसेवा कर सत्यवान् नामक पुत्र प्राप्त किया। यज्ञाश्व सत्यवान् की नगरी पहुंचा। सत्यवान् ने शत्रुघ्न को राज्य अर्पित किया। सत्यवान् को साथ लेकर शत्रुघ्न आगे बढ़े।

(२३-३७ अ.) (विद्युन्माली वध तथा आरण्यक-ऋषि-वृत्तान्त) रावण के सुहृद विद्युन्माली ने अश्व का अपहरण कर लिया। शत्रुघ्न ने विद्युन्माली का वध किया तथा अश्व को विचरण हेतु मुक्त किया। घूमता हुआ अश्व आरण्यक ऋषि के आश्रम पर पहुंचा। आरण्यक ऋषि शत्रुघ्न को पूर्वकाल में लोमश द्वारा उन्हें उपदिष्ट रामार्चन विधि के वर्णन पूर्वक रामचरित को भी सुनाया। लोमश के ही उपदेश पर भगवान राम का दर्शन कर सायुज्य मुक्ति प्राप्त की।

(३८-४८ अ.) (रुक्माङ्गद वध तथा सात्विक ब्राह्मण आख्यान) नर्मदा हृद में स्नान कर आगे बढ़ता हुआ अश्व देवपुर पहुंचा। वहां के राजा वीरमणि के पुत्र रुक्माङ्गद ने अश्व का अपहरण कर अपने पिता वीरभूमि से अश्वापहरण की चर्चा की। वीरमणि ने शिव से उपाय पूछा। शिव ने अश्व वापस करने को कहा। परन्तु राजा द्वारा मना करने पर शिव ने राजा की रक्षा का वचन दिया।

पुष्कल एवं रुक्माङ्गद के मध्य युद्ध हुआ। रुक्माङ्गद के मूर्च्छित होने पर वीरमणि स्वयं युद्धार्थ आये जिन्हें पुष्कल ने मूर्च्छित कर दिया। स्वयं के भक्तों को सत्रस्त देखकर शिव स्वयं युद्धार्थ आये तथा पुष्कल से युद्ध करने का आदेश वीरमणि को दिया। वीरमणि ने पुष्कल का वध कर दिया तथा शत्रुघ्न को पराजित किया। पुनः हनुमान एवं शिव के मध्य युद्ध हुआ। युद्ध से प्रसन्न शिव ने हनुमान् से वर मांगने को कहा। हनुमान् ने अपने पक्ष के सभी मृत योद्धाओं के शरीर की रक्षा का वर मांगा। तदनन्तर द्रोणाचल से सञ्जीवनी लाकर सबको जीवित किया। स्वस्थ वीरों ने पुनः युद्ध प्रारम्भ किया। शिव से संत्रस्त शत्रुघ्न ने राम का स्मरण किया। युद्ध भूमि में उपस्थित राम एवं शिव समागम हुआ। राम के दर्शन से शिव प्रसन्न हुए। शिव की आज्ञा से वीरमणि ने आत्मसमर्पण किया।

तदनन्तर अग्रसर होता हुआ अश्व हेमकूट पर पहुंचा। हेमकूट पर पहुंचते ही अश्व का शरीर स्तम्भित (अकड़ गया) हो गया। शत्रुघ्न ने वहां स्थित शौनक मुनि से उसका कारण पूछा शौनक ने घोड़े को स्तम्भित करने वाले सात्विक ब्राह्मण की कथा (जो कर्म से स्वर्ग पहुंचा पर राक्षस भाव को प्राप्त हो गया था) सुनाने के साथ ही कर्म विपाक का वर्णन भी किया। रामचरित सुनाने पर अश्व पुनः स्वस्थ होकर आगे बढ़ा।

(४९-५२ अ.) **सुरथाख्यान-वर्णन** अश्व सुरथराज के कुण्डल नामक (अदिति का कुण्डल गिरने से कुण्डल नामकरण) नगर में पहुंचा। सेवकों के कथन पर सुरथ ने राम के दर्शन के लोभ में अश्व को पकड़ लिया। शत्रुघ्न ने अंगद को दूत रूप में भेजा। सुरथ ने अश्व पकड़ने का कारण राम के दर्शन को बतलाया तथा अश्व-मुक्त करने से मना कर दिया। पुनः चम्पक एवं पुष्कल के मध्य युद्ध हुआ। पुष्कल के बन्धन प्राप्त होने पर हनुमान ने चम्पक को पराजित कर पुष्कल का मुक्त कराया। सुरथ का हनुमान शत्रुघ्नादि से क्रमेण युद्ध हुआ। सुरथ से शत्रुघ्न परास्त हुए। सुरथ सबको बांधकर नगर ले आये।

हनुमान द्वारा बताये जाने पर राम स्वयं उपस्थित हुए। राम सुरथ का समागम हुआ। सुरथ ने सबको मुक्त किया।

(५३-६८ अ.) **वाल्मीकि-आश्रम-कथा** (लवकुश चरित वर्णन) अग्रसर होता हुआ अश्व वाल्मीकि आश्रम पहुंचा, जहां मुनि कुमारों द्वारा मना किये जाने पर भी लव ने अश्व को पकड़ लिया। विरोध करने पर लव ने अश्व-सेवकों की बाहें काट डालीं। सेवकों ने शत्रुघ्न से अश्वबन्धन तथा स्वयं की दुर्दशा का वर्णन किया।

पुनः वात्स्यायन द्वारा शेष से पूछे जाने पर शेष ने राम द्वारा धोबी द्वारा निन्दा किये जाने पर सीता के परित्याग, सीता वियोग से राम के मूर्च्छित होने, राम सीता वियोग का कारण (बाल्यावस्था में सीता ने एक तोती द्वारा रामचरित सुनकर उसे पकड़ लिया था। गर्भिणी तोती द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी सीता द्वारा नहीं छोड़े जाने पर तोती ने सीता को गर्भावस्था में पति वियोग का शाप दे दिया था) धोबी के पूर्वजन्म का चरित, लक्ष्मण द्वारा सीता के वन में त्याग, सीता का वाल्मीकि आश्रम गमन, वन में कुश-लव का जन्म, लव द्वारा कालजित-वध, लव द्वारा पुष्कल वध, हनुमान की लव द्वारा पराजय, शत्रुघ्न-लव युद्ध में लव के मूर्च्छित होने, कुश द्वारा शत्रुघ्न, हनुमान्-सुग्रीवादि को परास्त करने, लवकुश से युद्ध का वर्णन सुनने पर सभी को बन्धनमुक्त करने, अश्व के साथ अयोध्या वापस आने तथा सुमति द्वारा राम को आद्यन्त वृत्तान्त सुनाने, राम द्वारा सीता को बुलाने हेतु लक्ष्मण को भेजने, सीता के आदेश से लव कुश के अयोध्या आने, वाल्मीकि के आदेश से रामचरित सुनाने, रामायण रचना कारण निरूपण के माध्यम से वाल्मीकि के पूर्व चरित का निरूपण, लक्ष्मण का सीता को लाने हेतु लक्ष्मण को प्रेषित करने, सीता के आने पर यज्ञ के आरम्भ होने, अवभृथ स्नान तथा अन्त में रामाश्वमेध चरित पठन तथा श्रवण का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(६९-८३ अ.) **श्रीकृष्णचरितारम्भ** (वृन्दावन-माहात्म्य) शिवपार्वती संवाद के माध्यम से वृन्दावन का माहात्म्य तथा कृष्ण चरित वर्णित है। श्रीकृष्ण के चरण रज के स्पर्श से विभूषित नित्यधाम नाम से प्रसिद्ध है। वहां स्थित भगवान् के श्रीविग्रह का भी उल्लेख है। राधाकृष्ण के पार्षदों, ललितादि सखियों का भी उल्लेख, नारद के नन्द कुमार के पास गोकुल आने, कृष्ण के दर्शन, नन्द के मित्र भानु के पुत्र तथा पुत्री (राधा) का दर्शन करने तथा देवी का स्मरण करते हुए वन जाने का भी वर्णन है।

अग्रिमाध्यायों में वृन्दावन-मथुरा-माहात्म्य, गोपों की उत्पत्ति, अर्जुन तथा नारद की राधालोक दर्शन (सर स्नान) से स्त्रीत्व प्राप्ति, श्रीकृष्णतीर्थ वर्णन, वैष्णव जनों द्वारा अनुपाल्य (बाह्य तथा आभ्यन्तर) नियम व्रतादि का निरूपण श्रीकृष्ण मन्त्र (गोपीजनचरणवल्लभान् शरणं प्रपद्ये) दीक्षा, वृन्दावन में कृष्ण की दैनन्दिनचर्या तथा राधा विलासादि का वर्णन है।

(८४-९९ अ.) **बैशाखमास माहात्म्य**

नारद अम्बरीष संवाद के माध्यम से भक्ति लक्षण, भक्ति के भेद (लौकिकी, वैदिकी, आध्यात्मिकी-सांख्य प्रोक्त) माधव मास (वैशाख मास) व्रतविधि, स्नान माहात्म्य, पापप्रणाशन स्तोत्र (विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः.....। नमामि विष्णुं चित्तस्य महाकारगतं हरिम्।।-अ. ८८.७२-९५ श्लोक), वैशाखमास माहात्म्य वर्णन प्रसङ्ग में ब्राह्मण-यम संवाद के माध्यम से नरक एवं स्वर्ग प्राप्ति का कथन, धर्माख्य विप्र चरित के माध्यम से तीन प्रेतों (कृतघ्न, विदैवत, अवैशाख) की मुक्ति का उल्लेख, राजा महीरथ चरित (विषयासक्त राजा कश्यप नामक पुरोहित के उपदेश पर धर्मनिष्ठ हुए) तथा वैशाख मास में स्नान दान कर विष्णु लोक प्राप्त करने का वर्णन तथा अन्त में विष्णुध्यान (अ. ११. २१-५८ श्लो.) का निरूपण है।

(१००-११३ अ.) (शिवलिङ्गार्चन, शिवपूजा, पुराण श्रवणफल) राम के अश्वमेध यज्ञ के उपरान्त एक समय शिव ब्राह्मण वेष धारण कर अयोध्या में राम के समीप आये। राम ने उनसे लिङ्गार्चन प्रकार, लिङ्ग-माहात्म्य तथा महेश-नाम-माहात्म्य पूछा। जिसके उत्तर में ब्राह्मण वेशधारी शिव द्वारा पुराण परिचय, पुराण-श्रोतावक्ता के परिपाल्य नियम तथा विधि बतलाने का उल्लेख है। राम द्वारा विभीषण के बन्धन विषयक जिज्ञासा (वन में तपस्यारत विप्र के धर्षण तथा ब्राह्मण वध के फलस्वरूप बन्धन) करने एवं विभीषण को राम द्वारा मुक्तकरने की कथा भी वर्णित है।

तदनन्तर राम के पुष्पक विमान से श्रीरङ्ग आने, नारायण-दर्शन करने के साथ ही रामलक्ष्मी-संवाद, शिवलिङ्ग-स्थापन, भस्मधारण-माहात्म्य, शिवलिङ्गार्चन-माहात्म्य, लिङ्गार्चन - नियम, महेशनाम-माहात्म्य (त्रिरात सुता 'कला' का चरित) सोमवार-व्रत (गौरीकृत) माहात्म्य, पुराणपाठ-क्रम विधि महाभारत श्रवण विधि, पुराण संख्या, महापुराणों तथा उपपुराणों के नाम (११२. ९०-९८) के उल्लेख के साथ ही न्यायोपार्जित धन से ही देवपूजा के विधान तथा अन्यायोपार्जित द्रव्य से देवपूजन का निषेध प्रतिपादित है। (११२वें अध्याय में उत्कृष्ट गद्य प्राप्त है)।

अन्त में पातालखण्ड श्रवण का फल, शिव-राघव-संवाद श्रवण का फल तथा पुराण वक्ता के सत्कार का फल भी वर्णित है।

सृष्टि खण्ड

(१-३ अ.) (मङ्गलाचरण ग्रन्थोपक्रम तथा सृष्टि क्रम वर्णन) प्रारम्भ में पुष्करतीर्थ -माहात्म्य विषयक मङ्गलाचरण है, तदनन्तर पिता लोमहर्षण की आज्ञा से उग्रश्रवा नैमिषारण्य (धर्मचक्र नैमिषारण्य के गङ्गापर्वत स्थान पर गिरा था; निमि की शीर्णता के कारण नैमिष नामकरण) गये तथा यज्ञरत महर्षियों में से शौनक द्वारा पद्मपुराण की कथा-

श्रवण की इच्छा पर इस पुराण की कथा का वर्णन किया। पद्मपुराण नामकरण का कारण सृष्टिखण्डान्तर्गत विषयों की गणना, ब्रह्मा-पुत्र पुलस्त्य का गङ्गाद्वार पर निवास करने वाले भीष्म के पास गमन, भीष्म के सृष्टि विषयक प्रश्न पर पुलस्त्य द्वारा ब्रह्मा की आयु, युग आदि का कालमान, प्रलय काल, वराहरूप में भगवान द्वारा पृथ्वी के उद्धार, असुर-देव-मनुष्य आदि की सृष्टि, यज्ञार्थ ब्राह्मणादि एवम् अन्न की सृष्टि, मरीचि आदि ऋषियों, प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदि की उत्पत्ति का वर्णन है।

(४-७ अ.) **समुद्र मन्थन** (लक्ष्मी की उत्पत्ति) दक्ष-यज्ञ-विध्वंश, देवदानवगन्धर्वादि की सृष्टि, देवासुर युद्ध में परास्त देव ब्रह्मा के साथ विष्णु के समीप गये तथा विष्णु के उपदेश पर मन्दराचल को मथानी एवं वासुकि नाग को नेती (रस्सी) बनाकर समुद्र का मन्थन प्रारम्भ किया। मन्थन से कामधेनु, वारुणी आदि की उत्पत्ति के अनन्तर लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई, उत्पन्न लक्ष्मी ने हरि के वक्षस्थल में निवास प्राप्त किया।

दक्ष ने गङ्गाद्वार में यज्ञ किया जिसमें सभी देवताओं को आमन्त्रित किया पर महादेव को नहीं। जिसे देखकर सती ने दक्ष से इसका कारण पूछा। दक्ष ने शिव के अनामन्त्रण को उनका 'अभद्र-वेष' बतलाया। जिसे सुनकर सती ने अपने शरीर से अग्नि प्रकट कर स्वयं को भस्म कर दिया, तथ्य ज्ञात होने पर भगवान् रुद्र ने हजारों गणों को दक्षयज्ञ विध्वंसार्थ भेजा। यज्ञ के विध्वंस को देखकर दक्ष भगवान् की शरण में गये तथा स्तुति की। प्रसन्न शिव ने उन्हें यज्ञ का फल प्रदान किया।

अग्रिमाध्यायों में देवदानवगन्धर्वादि की सृष्टि, द्वादशादित्य, गरुडोत्पत्ति, प्रतिसर्ग तथा मन्वन्तरों का वर्णन है।

(८-१२ अ.) (पृथूपाख्यान, इलाख्यान, सोमवंश तथा श्राद्ध विधि) स्वायंभुव मनुवंशीय अङ्ग नामक प्रजापति की स्त्री सुनीथा (यम-पुत्री) से वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अधर्मी था। महर्षियों द्वारा समझाये जाने पर भी जब उसने कदाचार का त्याग नहीं किया तो ब्राह्मणों ने वेन के शरीर का मन्थन किया जिससे उसके मातृअंश से म्लेच्छ तथा दायें हाथ के मन्थन से सुदर्शन 'पृथु' की उत्पत्ति हुई। पृथु को ब्राह्मणों ने सिंहासन पर अभिषिक्त किया। पृथु ने गोरूपी पृथ्वी का, स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर स्वयं दोहन किया। भीष्म के प्रश्न पर पुलस्त्य ने 'इलाख्यान' सुनाया-एक बार 'इल' शरवण गये। जहां शिव के शाप के कारण स्त्री (इला नामवाली) हो गये। कामासक्त बुध के अनुरोध पर 'इला' बुधाश्रम गयी। इल के भाई इक्ष्वाकु आदि द्वारा शिव-पार्वती की उपासना करने पर इल 'किंपुरुष' हो गये। ऐल चन्द्रवंश के विस्तारक हुए। यहां इक्ष्वाकुवंश, भगीरथ, दिलीप आदि के वंशों के वर्णन के साथ ही पितृप्रीतिकर वस्तुओं, श्राद्धनिषिद्ध वस्तुओं, श्राद्धकाल तथा श्राद्ध-भेद आदि का वर्णन है।

ब्रह्मा ने अत्रि को सृष्टि का आदेश दिया। अनुत्तर (लोकोत्तर) तपस्यारत महर्षि की आंखों से अश्रु निकले, जिन्हें दिशाओं ने अपने उदर में ग्रहण कर लिया। उनकी

गर्भधारण असमर्थता पर ब्रह्मा ने उसे एकत्र किया, जिससे तरुण पुरुष (सोम) उत्पन्न हुआ। सोम के तेज से औषधियाँ उत्पन्न हुईं। इसीलिए चन्द्रमा को 'ओषधीनां पतिः' कहा जाता है। चन्द्रमा से बुध की उत्पत्ति हुई। यहां बुध द्वारा इला के गर्भ से पुरुरवा की उत्पत्ति का उल्लेख तथा पुरुरवा वंश का वर्णन है।

(१३-१५ अ.) (क्रोष्टु-वंश-वर्णन एवं पुष्कर-माहात्म्य) यदुवंश वर्णन के अन्तर्गत क्रोष्टु आदि के वंश का वर्णन तथा कृष्णावतार की कथा, परमेश्वर के दशावतार ग्रहण का कारण, देवों के उत्कर्ष तथा दैत्यों के अपकर्ष एवं दानवों के मध्य बृहस्पति द्वारा नास्तिक -धर्म-दीक्षा का निरूपण है।

एक बार शिव ने ब्रह्मा का शिरच्छेद कर दिया। ब्रह्म हत्या से भीत शिव से ब्रह्मा की स्तुति की। ब्रह्मा की आज्ञा से शिव ने विष्णु की स्तुति की तथा समस्त तीर्थों की यात्रा की। यहां कपालमोचन तीर्थ के वर्णन प्रसङ्ग में वाराणसी का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

भगवान् की नाभि से उत्पन्न कमल को ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर उसी का व्यक्त रूप है)। यहां पुष्कर के निवासियों के लिए नियम का तथा आश्रम-धर्म का वर्णन है।

(१६-१९ अ.) (ब्रह्मा कृत-यज्ञ-वर्णन तथा सरस्वती-माहात्म्य) पुष्कर क्षेत्र में ब्रह्मा ने कृतयुग में यज्ञ किया। जिसमें मरीचि, अङ्गिरादि ऋषि, धाता, अर्यमादि-द्वादशदित्य, मृगव्याध, एकादशरुद्र, तार्क्ष्य-वासुकि आदि नागों के साथ ही दानव भी सम्मिलित हुए। ब्रह्मा द्वारा गोपकन्या पर दृष्टिपात करने से सावित्री ने ब्रह्मा को श्राप दे दिया। निदान रूप में सावित्री ने ब्रह्मा को कार्तिकपूर्णिमा व्रत करने को कहा।

सरस्वती के माहात्म्य वर्णन में सरस्वती द्वारा वडवानल को विष्णु के कथन पर समुद्र में ले जाने की कथा का वर्णन, सरस्वती के 'नन्दा' नाम पड़ने के कारण (प्रभञ्जन नृपति का आख्यान) पुष्कर का माहात्म्य, वृत्रासुर-वध का आख्यान, अगस्त्य के आश्रम तथा उनके प्रभाव के उल्लेख के साथ ही सन्तोष-प्रशंसा, कामदोष-कथन तथा अन्नदान की प्रशंसा का निरूपण है।

(२०-२४ अ.) (दान-प्रशंसा, पुष्पवाहन नृपति एवं धर्ममूर्ति का आख्यान) विभूतिद्वादशी व्रत माहात्म्य के अन्तर्गत पुष्पवाहन नृपति आख्यान (पूर्वजन्म में व्याध थे पर अनङ्गवती वेश्या द्वारा विभूति द्वादशी को लवणाचल के दान को देखकर अपने द्वारा लाये गये कमल को विष्णु को समर्पित करने के कारण उत्तर जन्म में राजा हुए थे), नक्तव्रत, रुद्र, प्रीति, शिव, सौभाग्य साम, आनन्द तथा सूर्यादि व्रतों का उल्लेख, धर्ममूर्ति आख्यान (धर्मिष्ठ राजा धर्ममूर्ति की पत्नी भानुमती अति सुन्दरी थी। वशिष्ठ से राजा ने अपने पूर्व-जन्म का वृत्त पूछा। वशिष्ठ ने उन्हें पूर्वजन्म में एक वेश्या का परिचारक तथा पत्नी भानुमती को उसकी परिचारिका होना बतलाया, जिन्होंने बिना शुल्क लिए देवप्रतिमाएं बनाकर दानार्थ वेश्या को दी थी। जिसके फलस्वरूप उत्तर जन्म में वे राजा धर्ममूर्ति तथा रानी भानुमती हुए।),

अनङ्गदानव्रत, अशून्यशयन (श्रवणकृष्ण द्वितीया), वीरभद्र की उत्पत्ति-कथा, अङ्गारक चतुर्थी, आदित्य शयन, रोहिणीचन्द्र, शयनव्रत एवं तडागनिर्माण-विधि, अश्वत्थादि वृक्षारोपण-विधि तथा फल (अशोक-शोकनाशक, पाकड-यज्ञफल दायक, नीम-आयु प्रदाता आदि) एवं सौभाग्यशयन व्रत की विधि प्रतिपादित है। (२५-३१ अ.) **तीर्थ माहात्म्य**-(वामनावतार कथा पञ्चप्रेताख्यान, मार्कण्डेयोत्पत्ति) दानवों ने स्वर्ग पर अधिकार कर इन्द्र को निष्कासित कर दिया था। दानवों में वाष्कलि अत्यन्त बलवान था। दुखी देव ब्रह्मा के समीप गये। ब्रह्मा ने विष्णु का ध्यान किया, जिससे विष्णु प्रकट हुए। ब्रह्मा ने बाष्कलि के पराभव की प्रार्थना की। विष्णु ने वामन रूप धारण करने का आश्वासन देवों को दिया। तदनन्तर विष्णु ने अदिति के गर्भ से जन्म लिया। भगवान् वामन ब्राह्मण रूप में इन्द्र के साथ वाष्कलि के पास गये। वाष्कलि द्वारा इन्द्र से आने का प्रयोजन पूछे जाने पर इन्द्र ने वामन को तीन पग भूमि दान देने का अनुरोध किया। वाष्कलि ने शुक्राचार्य द्वारा मना किये जाने पर भी दान देना स्वीकार कर लिया तब विष्णु (वामन) ने प्रथम पग में सूर्य लोक दूसरे में ध्रुवलोक तथा तीसरा पग (तीसरे पग के अङ्गुष्ठ से ब्रह्माण्ड पर आघात किया जिससे गङ्गा उत्पन्न हुई) रखने हेतु भूमि मांगी। वाष्कलि द्वारा सत्यभाषण तथा असमर्थता दिखलाने पर विष्णु ने वाष्कलि को वर (विष्णु द्वारा मृत्यु तथा परमधाम प्राप्ति) प्रदान किया।

नागतीर्थ, शिवदूत्याख्यान, पञ्चप्रेतों (पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रगा, रोधक तथा लेखक नामक) की पृथु नामक धर्मिष्ठ ब्राह्मण से वार्तालाप के कारण मुक्ति, मार्कण्डेय की उत्पत्ति (मृकण्डु के पुत्र जो तपस्या कर दीर्घायु प्राप्त किये थे), राम द्वारा पुष्कर में पिता का श्राद्ध करने (रामकृत शिवस्तुति-२८. १५६-१७८) ब्रह्माकृत यज्ञ काल निर्णय, समस्त देवों को ब्रह्मा द्वारा वर प्रदान, विष्णु एवं शिव द्वारा ब्रह्मा की स्तुति तथा पुष्कर की महिमा के साथ ही क्षेमंकरी-आख्यान (क्षेमंकरी द्वारा महिषासुर वध) वर्णित है।

(३२-३७ अ.) (शूद्रक (शम्बूक) वध, गृद्धोलूकाख्यान, रामकथा तथा सृष्टि-क्रम-वर्णन) रावण वध कर राम जब अयोध्या पर शासन कर रहे थे तभी अगस्त्यादि ऋषि उनके समीप आये। राज्य का कुशल बतलाते हुए अगस्त्य ने राम को अपने आश्रम पर आने का निमन्त्रण दिया। उसी काल में एक ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्र को लेकर राम के समीप उपस्थित हुआ तथा अपने पुत्र की मृत्यु का कारण राम के शासन को बताया। वशिष्ठ द्वारा उपदिष्ट राम दण्डकारण्य गये, जहां शम्बूक नामक शूद्र (जो उल्टा लटक कर तपस्या रत था) का वध किया। शम्बूक के वध के अनन्तर राम अगस्त्याश्रम को गये।

यहां दण्डकारण्य का वर्णन, गृद्ध तथा उलूक का आख्यान (गृद्ध-उलूक के परस्पर विवाद तथा इनके पूर्वजन्म की कथा) प्रसङ्गतः सीताहरण से लेकर सीता के प्रत्यागमन तक की रामकथा वर्णित है।

कृतादि युगों का परिमाण, युगों में वर्णधर्माख्यान, मार्कण्डेय को भगवान्-कृत उपदेश, पृथिव्यादि भूतों का लय, जलक्रीडा करते हुए भगवान् की नाभि से पद्म; पद्म से ब्रह्मा की उत्पत्ति तथा हिमाचलादि पर्वतों, मधुकैटभादि दैत्यों, कपिलादि आचार्यों एवं दक्षादि प्रजापतियों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(३८-४१ अ.) (तारकासुरोत्पत्ति, शिव पार्वती विवाह, गणेश-कार्तिकेयोत्पत्ति तथा तारकवध-कथा) प्रारम्भ में उर्वानल की उत्पत्ति, कालनेमि-वध-कथा तथा तारकासुर की उत्पत्ति की कथा वर्णित है। कश्यप के वर से दिति से वज्र की भांति अङ्गवाले पुत्र का जन्म हुआ, जिसे दिति ने इन्द्र-वध हेतु प्रेषित किया। वज्राङ्ग ने इन्द्र को पाशबद्ध कर माता के सम्मुख प्रस्तुत किया। परन्तु कश्यप एवं ब्रह्मा के अनुरोध पर इन्द्र को मुक्त किया। ब्रह्मा ने वराङ्गी नाम वाली कन्या वज्राङ्ग को प्रदान। वज्राङ्ग ने तपस्या कर ब्रह्मा से वर प्राप्त किया। पत्नी वराङ्गी को इन्द्र द्वारा त्रास दिये जाने के कारण रुष्ट वज्राङ्ग ने पुनः तपस्या कर ब्रह्मा से तारक नामक पुत्र प्राप्ति का वर प्राप्त किया। पराक्रमी तारक की तपस्या से चिन्तित देव ब्रह्मा के समीप गये तथा उसकी मृत्यु का कारण पूछा। ब्रह्मा ने 'शंकर' के अंश से उमा के पुत्र द्वारा ही तारक का वध होना बतलाया। तदनन्तर पार्वती के जन्म, अनङ्ग-दहन, पार्वती-शिव-विवाह; गणेश तथा कार्तिकेय के जन्म एवं कार्तिकेय द्वारा तारक के वध की कथा प्रतिपादित है।

(४२-४३ अ.) (हिरण्यकशिपु वध तथा अन्धकासुराख्यान) कृतयुग में हिरण्यकशिपु ने तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न किया तथा उनसे देवासुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, मनुष्य, पिशाच, ऋषि-मुनि शाप, शस्त्रास्त्र, पर्वत, पेड़, शुष्क, आर्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, दशदिशाएं, काम, क्रोध, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, किंपुरुषादि से अबध्य होने का वर प्राप्त किया। उससे पीड़ित देव ब्रह्मा के समीप गये। ब्रह्मा ने उन्हें विष्णु के समीप भेजा। विष्णु ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया। ब्रह्मा कृत नृसिंहस्तुति (४२. १६०-१६३) यहां लिखित है।

अन्धक नामक असुर ने एक बार पार्वती के रूप से प्रभावित होकर उनक हरण का उद्योग किया तथा देवों को पीड़ित किया। संत्रस्त देव जब शंकर के समीप गये तो शंकर विकट रूप धर कर अन्धक के साथ युद्धार्थ आये। अन्धक द्वारा माया प्रसारित करने से उद्विग्न शिव ने सूर्य की प्रार्थना की (हरकृत भास्कर स्तुति-४३.५१-७४) तथा शूल से अन्धक पर प्रहार किया। आहत अन्धक ने शिव की स्तुति की, प्रसन्न शिव ने उसे अपने गणों में 'भृङ्गिरिटि' नाम से स्थान दिया। अध्याय के अन्त में ब्राह्मण प्रशंसा (ब्राह्मण को गुरु पूज्य एवं तीर्थस्वरूप बतलाया गया है), सद्ब्राह्मण लक्षण, गायत्री जप विधि (प्रत्येक अक्षर के प्रत्येक देव का उल्लेख (४३-१६८-१७५) एवं फल का कथन है।

(४४-४६ अ.) (अधम ब्राह्मण लक्षण, ब्राह्मणाख्यान, गरुडोत्पत्ति) अधम ब्राह्मण वह है जिसने देवपूजा, व्रत, विद्या, सत्य, शौच, योग, ज्ञान तथा अग्निहोत्र का त्याग कर दिया है। यहां पञ्च स्नान (आग्नेय = भस्म लगाना, वारुण = जल स्नान, ब्राह्म = ऋचाओं से अभिषेक, वायव्य=गौ चारण से वायु द्वारा उठी धूल, तथा दिव्य =वर्षा जल) का उल्लेख है।

एक पतित ब्राह्मण चाण्डाली के साथ रहने लगा। एक दिन चाण्डाली ने उसके मुंह में मदिरा डाल दी, जिससे अग्नि प्रज्वलित हो गयी। ब्राह्मण द्वारा अग्नि का कारण पूछे जाने पर आकाशवाणी ने ब्राह्म तेज को इसका कारण बतलाया। ज्ञान होने पर ब्राह्मण ने ऋषियों से परामर्श किया, जहां ब्राह्मणों ने उसे गरुड की उत्पत्ति की कथा सुनायी। विनतानन्दन जब अण्डे से बाहर आये तो माता से भोजन मांगा। माता ने उन्हें पिता कश्यप के पास भेजा। कश्यप के कहने पर गरुड एक हाथी तथा कछुए को चोंच में उठाकर उड़ने लगे। उन्हें कोई पर्वतादि धारण नहीं कर पाते थे। जिसे देखकर भगवान् ने मनुष्य रूप में उपस्थित होकर उन्हें अपनी बांह पर बैठने को कहा। बैठने पर बांह में किसी भी प्रकार का कम्पन न देखकर गरुड ने भगवान् से पूछा-आप कौन हैं ? भगवान् ने अपना रूप धारण कर उन्हें अपना वाहन बनाया। गरुड अपनी माता को दासी भाव से मुक्त कराने हेतु देवलोक से अमृत लाये तथा कद्रु को प्रदान कर माता को मुक्त किया। इन्द्र द्वारा छल से अमृत के स्थान पर विष रख देने से उनके पान से सर्प 'विषधर' हुए। गरुड की कथा सुनकर ऋषियों ने ब्राह्मण को भी सदाचार पालन का उपदेश दिया।

ब्राह्मणों को त्रास देने से दुःख की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों की वृत्ति, सत्य की प्रशंसा, गो माहात्म्य, गोदान-माहात्म्य, द्विजों का आचार तर्पण तथा शिष्टाचार का वर्णन है।

(४७-५३ अ.) पितृपूजन, पतिव्रता माहात्म्य (शैव्याख्यान) पितृ-पूजन-फल, पिता के अनादर से नरक-प्राप्ति, विष्णु-भक्ति, पिता के प्रति पुत्रों का कर्तव्य, श्राद्ध माहात्म्य तथा श्राद्ध प्रकार, पिता की मृत्यु पर पुत्र द्वारा करणीय कर्म एवं श्राद्ध की प्रशंसा प्रतिपादित है।

मध्यदेश में शैव्या नाम वाली एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी जिसका पति कुष्ठी था फिर भी शैव्या उसकी निरन्तर सेवा करती थी। उसका पति एक बार वेश्या पर आसक्त हो गया तथा उसने अपनी कामना की पूर्ति हेतु पत्नी से कहा। वेश्या से अनुमति लेकर शैव्या उसे रात्रि में कन्धे पर उठाकर वेश्या के पास ले चली। चोरों का अन्वेषण करते हुए राजा के गुप्तचरों ने तपस्यारत माण्डव्य ऋषि को दण्डस्वरूप शूल पर बैठा दिया था। शैव्या द्वारा पति को ले जाते समय माण्डव्य के शरीर से उसके पति का शरीर छू गया। कष्टकर स्थिति में माण्डव्य ने उसे सूर्योदय होने पर भस्म होने का शाप दे दिया। तथ्य ज्ञात होने पर शैव्या ने तीन दिनों तक सूर्य के उदय न होने का शाप दे दिया। सूर्योदय न होने से त्रस्त इन्द्रादि देव ब्रह्मा के समीप गये। ब्रह्मा के वर से शैव्या का पति स्वस्थ शरीर वाला हो गया।

युवतियों की दुष्टता का कारण, पतिव्रता स्त्री के त्याग का दोष, रजस्वला स्त्री के साथ गमन से नरक प्राप्ति, अगम्या के साथ समागम का दोष, कन्यादान की विधि तथा फल, कन्याशुल्क लेने का निषेध, तुलाधारचरित के माध्यम से सत्य की प्रशंसा, प्रत्येक प्रशंसार्थ शूद्राख्यान-(अत्यन्त गरीब होने पर भी शूद्र ने वन में प्राप्त वस्त्रस्वर्णादि वस्तुएं ग्रहण नहीं की थी, काम की दूर्जेयता (इन्द्रकृत हलाधर्षण), परमहंसाख्यान तथा लोहित तीर्थ (जहाँ परशुराम ने स्नानकर समस्त क्षत्रिय-वध जन्य पाप का विनाश किया था) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(५४-६० अ.) (जलदान प्रशंसा, सरोवर निर्माण तथा वृक्षारोपण) जलदान-प्रशंसा, निर्जल प्रदेश में सरोवर खुदवाने, वृक्ष लगाने, पीपल वृक्ष रोपण विधि, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय निर्माण तथा देवपूजा-माहात्म्य, रुद्राक्ष की उत्पत्ति-(त्रिपुर नामक दानव को मारते समय रुद्र शरीर से टपकने वाले स्वेद कणों से रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई) तथा माहात्म्य, धात्री (आंवला) माहात्म्य तथा तुलसी-माहात्म्य, गङ्गा में स्नान दानादि की विधि तथा गङ्गा के मृत्यु लोक आगमन का कारण वर्णित है।

(६१-६३ अ.) (गणेश की पूजा में अग्रजा तथा द्वादश नाम) देवों ने एक बार अमृतनिर्मित मोदक (लड्डू) पार्वती को दिया, जिसे देखकर उनके पुत्र स्कन्द (कार्तिकेय) एवं गणेश लड्डू मांगने लगे। माता ने धर्माचरण में श्रेष्ठता सिद्ध करने पर ही मोदक देने की बात कही। स्कन्द मयूर पर आरूढ़ होकर समस्त तीर्थों की यात्रा मुहूर्त भर में कर आये, जबकि गणेश ने शिव एवं पार्वती की परिक्रमा कर मोदक की मांग की। पार्वती ने सभी तीर्थों की अपेक्षा माता-पिता के पूजन को ही श्रेष्ठ बतलाया तथा इसी कारण गणेश को प्रत्येक यज्ञ में पहले पूजन का वर दिया।

यहाँ गणेश के द्वादश नाम-(गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल तथा भवात्मज-६१. ३१-३२), गणेशस्तोत्र (६२.१-११) यज्ञ के प्रारम्भ में गणेश पूजा का फल, प्रारम्भ में पूजा न करने पर विघ्न प्राप्ति का उल्लेख तथा देवासुर संग्राम में चित्ररथ द्वारा कृत कालकेय-वध का वर्णन है।

(६४-७४ अ.) **विभिन्न देवों द्वारा दैत्यों का वध** जयन्त-कालेय युद्ध में कालेय-वध, इन्द्रकृत बल तथा नमुचि-वध षडानन द्वारा तारेय वध, यमकृत देवान्तक दुर्धर्ष, दुर्मुखवध, इन्द्रकृत द्वितीय नमुचि वध, विष्णु कृत मधुदैत्य का वध, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर तथा गणेश द्वारा त्रैपुरिवध का वर्णन है।

हिरण्याक्ष द्वारा देवों की पराजय, विष्णु से भीत हिरण्याक्ष के पाताल-गमन, विष्णु द्वारा वाराह रूप धारण कर पाताल में हिरण्याक्ष का वध करने, रण में सम्मुख मृत्यु प्राप्त दैत्यों की उत्तम गति प्राप्ति तथा रण से विमुखों को नीच योनि प्राप्ति का उल्लेख है। प्रह्लाद द्वारा तप से सुरत्व प्राप्ति एवं मनुष्य योनि में उत्पन्न दैत्य एवं देवों के लक्षण प्रतिपादित हैं।

(७५-८२ अ.) (**सूर्यचरित, नवग्रहपूजन तथा दान-माहात्म्य**) सूर्योत्पत्ति (कश्यप मुनि के अंश और अदिति के गर्भ से सूर्य की उत्पत्ति हुई, इसी कारण 'आदित्य' नाम), सूर्य के दर्शन मात्र से ही समस्त पापों के नाश, सूर्य की उपासना, तथा सूर्य-माहात्म्य के प्रतिपादन प्रसङ्ग में भद्रेश्वर नृप (मध्यदेशीय भद्रेश्वर के बायें हाथ में कुष्ठ हो गया ब्राह्मणों के उपदेश पर सूर्य की उपासना कर राजा रोग मुक्त हुए) का आख्यान लिखित है।

सूर्य, सोम, भौम पूजा की विधि तथा चण्डिका पूजा फल, दुर्गापूजा का फल, वुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि नवग्रहों की पूजा विधि, कृतत्रेताद्वापर कलि में तप, ज्ञान, यज्ञ, दानादिकों का प्राशस्त्य तथा दानों में अभय दान की श्रेष्ठता वर्णित है। अन्त में पद्मपुराणपाठ का फल, सृष्टि खण्ड की प्रशंसा तथा सृष्टिखण्ड के श्रवण-श्रावण तथा पठन का फल निरूपति है।

उत्तरखण्ड

(१-२ अ.) (उत्तरखण्ड विषय-वर्णन तथा बदरिकाश्रम-माहात्म्य) महेश्वर-नारद -संवाद के माध्यम से उत्तरखण्ड में वर्णित विषयों के उल्लेख के साथ ही नारायण एवं बदरिकाश्रम की महिमा (बदरिकाश्रम पर नारायण सदा विद्यमान रहते हैं।) भी वर्णित है।

३-१६ अ. (जालन्धरोपाख्यान) जालन्धरोपाख्यान के अन्तर्गत जालन्धर की उत्पत्ति, वृन्दा-विवाह, जालन्धराभिषेक, देव-दानव युद्ध में देवों की पराजय तथा जालन्धर द्वारा सौराज्य की स्थापना, देवों की प्रार्थना पर शङ्कर द्वारा तेजोमय-चक्र-निर्माण; नारद के मुख से पार्वती के सौन्दर्य को जालन्धर द्वारा सुनना, मायाशङ्कर रूप में जालन्धर का पार्वती के समीप आने एवं यह वृत्तान्त ज्ञात होने पर विष्णु का वृन्दा के समीप जाने तथा उसके साथ रमण करने, वृन्दा के देह त्याग, शङ्कर के साथ जालन्धर का युद्ध, जालन्धर-वध तथा वृन्दा प्रसङ्ग से तुलसी की महिमा वर्णित है।

२०-२५ अ. (शैलमाहात्म्य, हरिद्वार-गङ्गा तथा प्रयाग माहात्म्य) हंस कोकिल मयूरादि की ध्वनियों से निनादित, पारिजातादि पुष्पों से सुशोभित शैलपर्वत को बालहत्यादि पातकों से मुक्ति दिलाने वाला कहा गया है। हरिद्वार माहात्म्य वर्णन क्रम में गङ्गा की उत्पत्ति की कथा (सगर वृत्तान्त पूर्वक) वर्णित है, साथ ही हरिद्वार की प्रशंसा, गङ्गा, यमुना, काशी तथा प्रयाग की स्तुति एवम् इनका माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

२६-३१ अ. (तुलसी त्रिरात्र व्रत, पुराण-कथा-महिमा, गोपी चन्दन माहात्म्य) कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी से ही संकल्पपूर्वक द्वादशी पर्यन्त होने वाले तुलसी-त्रिरात्र-व्रत की विधि तथा महिमा बतलायी गयी है। यहां पर अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण तथा सत्य की महिमा (२८.२०-२६ अ.), पुराण कथा पाठ का माहात्म्य, गोपी चन्दन-महिमा (मृत्यु के समय ललाट पर तिलक रहने पर विष्णुलोक की प्राप्ति) संवत्सर-दीप-व्रत, हेमन्त ऋतु के प्रथम मास की एकादशी व्रत की विधि भी प्रतिपादित है।

(३२-३५ अ.) (जयन्ती नामक जन्माष्टमी-व्रत, शनैश्चरस्तोत्र, त्रिस्पृशाख्यान तथा उन्मीलन्यैकादशीव्रत) पूर्वकाल में हरिश्चन्द्र नामक एक राजा हुए थे। एक बार उन्होंने सनत्कुमार से अपनी उन्नति के विषय में प्रश्न किया। सनत्कुमार ने उन्हें पूर्वजन्म में वैश्य होने तथा बान्धवों द्वारा त्यागे जाने पर वाराणसी जाकर कमल बेचने एवं काशी नरेश इन्द्रद्युम्न की पुत्री चन्द्रावती द्वारा किये जाने वाले जयन्ती जन्माष्टमी व्रत में सम्मिलित होने के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य से उत्तरजन्म में राजा होना बतलाया।

नारद जी के प्रश्न पर महादेव ने शनैश्चर द्वारा प्रदत्त पीडा के निवारण का उपाय बतलाया। यहां दशरथकृत शनैश्चर-स्तोत्र (३४.२७-३५ अ.) एवं त्रिस्पृशा-(त्रिस्पृशा-उदयकाल में थोड़ी एकादशी, मध्य में पूर्ण द्वादशी, अन्त में किञ्चित् त्रयोदशी हो तो त्रिस्पृशा कहलाती है)-व्रत (विषयों में आसक्त व्यक्ति भी इस व्रत को करने से मोक्ष प्राप्त करते हैं) की विधि एवम् उन्मीलन्यैकादशी व्रत की महिमा वर्णित है।

(३६-४१ अ.) (पक्षवर्द्धिनी एकादशी, जयाविजयादि एकादशी के भेद, मुरवध तथा मार्गशीर्ष मोक्षैकादशी) अमावस्या अथवा पूर्णिमा साठ दण्ड होकर दिनरात रहे और दूसरे दिन प्रतिपद में कुछ अंश रहे तो उसे 'पक्षवर्द्धिनी' कहते हैं। यह एकादशी एक हजार अश्वमेध यज्ञों की पुण्य प्रदात्ती है। यहां एकादशी रात्रि में जागरण का महत्व भी प्रतिपादित है। शुक्लपक्ष की एकादशी को पुनर्वसु नक्षत्र हो तो 'जया', शुक्लपक्ष द्वादशी को 'श्रवण' हो तो 'विजया', शुक्लपक्ष की द्वादशी को रोहिणी हो तो 'जयन्ती', शुक्लपक्ष की द्वादशी को 'पुण्य' हो तो 'पापनाशिनी' कहलाती है।

सत्ययुग में मुर नामक एक दैत्य था। जिसने इन्द्र को परास्त कर दिया था। परास्त इन्द्र महादेव के समीप गये। महादेव ने इन्द्र को विष्णु के समीप भेजा। तथ्य ज्ञात होने पर विष्णु चन्द्रावती पुरी गये, वहां दैत्यों की सेना को छिन्न-भिन्न कर वदरिकाश्रम स्थित सिंहावती गुफा में विश्राम करने लगे। उनका पीछा करता हुए मुर दैत्य भी वहां पहुंचा, उसी समय भगवान् के शरीर से एक कन्या निकली, जिसने मुर का वध कर डाला। वह कन्या एकादशी थी। एकादशी ने उपवास (नक्त अथवा एक भुक्त) करके व्रत करने वालों हेतु धन, धर्म एवं मोक्ष प्राप्ति का वर विष्णु से प्राप्त किया।

४२-६५ अ. (विभिन्न एकादशियों के नाम व्रत-विधि एवं माहात्म्य) मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष में 'उत्पत्ति' नामक एकादशी तथा शुक्लपक्ष में मोक्षा (मोक्ष प्रदान करने वाली) एकादशी होती है। पौषमास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम 'सफला' है। इसके महत्व प्रतिपादन में परदाराभिचारी वेश्यासक्त लुम्पक की कथा उपलब्ध है। जिसने अभाव के कारण सुफला का व्रत तथा जागरण कर मोक्ष को प्राप्त किया था।

पौषमास शुक्लपक्ष की एकादशी 'पुत्रदा' है। भद्रावती पुरी के राजा सुकेतुमान पुत्रहीन थे। विश्वेदेव के उपदेश पर व्रत कर पुत्र-प्राप्ति किये।

माघ कृष्णपक्ष की 'षट्तिला' एकादशी पापहारिणी है। यहां व्रत की विधि एवम् अर्ध्यदानादि का विधान है। (तिल स्नान, उबटन, तिलहोम, तिलमिश्रित जलपान, तिलदान तथा तिल का भोजन में प्रयोग इन तिलपूर्ण छह कार्यों से यह षट्तिला कहलाती है)

माघशुक्लपक्ष की 'जया' एकादशी पिशाचत्व मोचिनी है। इन्द्र के शाप से चित्रसेन पुत्री पुष्पवती तथा पुष्पदन्त पुत्र माल्यवान पिशाच तथा पिशाची हो गये थे। दैवयोगात् जया एकादशी का व्रत हो जाने से दोनों पिशाचत्व से मुक्त हुए।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष की 'विजया' एकादशी पापों को हरने वाली तथा विजय प्रदात्री है। वनवास काल में भगवान् राम ने समुद्र को पार करने की युक्ति लक्ष्मण के कथन पर बकदाल्भ्य ऋषि से पूछी। ऋषि के उपदेश पर विजया का व्रत कर राम ने समुद्र को पार किया था।

फाल्गुन शुक्लपक्ष की 'आमलकी' एकादशी विष्णुलोक प्रदात्री है। इस एकादशी को आंवले के वृक्ष के समीप रात्रि जागरण करने का विधान है। यहां इस एकादशी व्रत की विधि प्रतिपादित है। इसमें भगवान् परशुराम की पूजा होती है।

चैत्रकृष्ण पक्ष की एकादशी 'पापमोचिनी' है। पूर्व में चैत्ररथ नामक वन में मेधावी नामक ऋषि कुमार को मञ्जुघोषा अप्सरा ने मोहित कर लिया। वे परस्पर सत्तावन वर्षों तक रमण करते रहे। तथ्य ज्ञात होने पर मेधावी ने मञ्जुघोषा को पिशाची होने का शाप दे दिया। पुनः उनकी प्रार्थना पर पापमोचिनी व्रत करने का उपदेश दिया तथा स्वयं भी पिता च्यवन के उपदेश पर पापमोचिनी का व्रत कर पापमुक्त हुए।

चैत्रशुक्ल पक्ष की 'कामदा' एकादशी परमपुण्य प्रदान करने वाली है। ललित नामक गन्धर्व द्वारा नागराज पुण्डरीक की सभा में गायन करते हुए पत्नी का स्मरण करने से तालभङ्ग होने पर (कर्कोटक नाग द्वारा कारण बतलाये जाने पर) पुण्डरीक ने ललित को राक्षस होने का शाप दे दिया। पत्नी ललिता ने ऋषि के उपदेश पर कामदा का व्रत कर अपने पति ललित को राक्षस योनि से मुक्त कराया।

वैशाख कृष्ण 'वरुथिनी' एकादशी के व्रत से सौख्य की प्राप्ति एवं पाप का क्षय होता है। यमराज से भीत मनुष्य को इसका व्रत करना चाहिए। वैशाख शुक्ल पक्ष की एकादशी 'मोहिनी' है। धृतिमान राजा का पञ्चम पुत्र धृष्टबुद्धि दुराचारी था। पिता द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर कौन्डिण्य मुनि के उपदेश पर इस व्रत का विधान कर उसने विष्णुलोक को प्राप्त किया।

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की एकादशी 'अपरा' है। यह एकादशी ब्रह्महत्यादि दोषों से निवृत्ति दिलाने वाली है। अपरा का व्रत रखकर भगवान वामन की पूजा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की एकादशी 'निर्जला' है। भीमसेन की जिज्ञासा पर वेदव्यास ने उन्हें निर्जला का व्रत करने का उपदेश दिया था। यह समस्त व्रतों का पुण्य प्रदान करने वाली है। भीम ने इस व्रत का अनुष्ठान किया था। इसे 'पाण्डवद्वादशी' भी कहते हैं।

आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी योगिनी है। कुबेर के सेवक हेममाली यक्ष द्वारा पत्नी में अनुरक्त होने के कारण पूजा हेतु पुष्प लाने में विलम्ब होने पर कुबेर ने उसे शाप दे दिया था। मार्कण्डेय के उपदेश पर यक्ष द्वारा योगिनी एकादशी का व्रत कर शापमुक्त होन की कथा वर्णित है।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी 'शयनी' है। इस तिथि को भगवान् विष्णु शेष शय्या पर आगामी कार्तिक की बोधिनी एकादशी तक विश्राम करते हैं। शयनी एव बोधिनी के मध्य की कृष्णपक्षीय एकादशियों का ही व्रत गृहस्थ को रखना चाहिए। अन्य मासों की कृष्णपक्ष की एकादशियों को नहीं।

श्रावणमास कृष्णपक्ष की एकादशी 'कामिका' (पापनाशिनी) एवं श्रावणमास शुक्लपक्ष की पुत्रदा (पुत्रहीन महिजित राजा को प्रजा द्वारा पुत्रदा का व्रत पुण्य दान करने से पुत्र प्राप्ति हुई थी) एकादशी का माहात्म्य वर्णित है।

भाद्रपद कृष्ण पक्ष की एकादशी 'अजा' है। हरिश्चन्द्र इस एकादशी के व्रत के प्रभाव से ही चण्डालत्व से मुक्त हुए तथा पुनः अपना राज्य प्राप्त किये थे।

'पद्मा' भाद्रपद की शुक्लपक्ष की एकादशी है। इस दिन हृषीकेश की पूजा होती है। इस व्रत के प्रभाव से अनावृष्टि आदि दोषों का परिहार सम्भव है।

आश्विन मास की कृष्णपक्ष की एकादशी 'इन्दिरा' एवं आश्विन शुक्ल की एकादशी 'पापशाङ्कुशा' का महात्म्य प्रतिपादित है।

कार्तिक कृष्णपक्ष की 'रमा' एवं कार्तिक शुक्लपक्ष की 'प्रबोधिनी' एकादशी-(विष्णु भगवान् का जागरण इसी दिन होता है।) व्रत की विधि एवं फल वर्णित है।

पुरुषोत्तममास कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष की एकादशी क्रमशः 'कमला' एवं 'कामदा' हैं। अवन्तीपुरीस्थ शिवशर्मा के पांच पुत्रों में से छोटे पुत्र दुराचारी जयशर्मा को पिता ने निर्वासित कर दिया था। हरिमित्र मुनि के आश्रम पर कमला एकादशी की कथा सुनकर जयशर्मा ने लक्ष्मी (कमला) का दर्शन प्राप्त किया। लक्ष्मी के उपदेश पर जयशर्मा ने इस एकादशी का व्रत कर धनधान्य प्राप्त कर पुनः पिता के यहां सम्मान प्राप्त किया।

६६-७१ अ. **(चातुर्मास्य-व्रत, श्रवणद्वादशी तथा नदी त्रिरात्र-व्रत)** आषाढ़ शुक्ल की एकादशी से हरिप्रबोधिनी एकादशी तक चार मास पर्यन्त चलने वाले व्रत में करणीय एवं निषिद्ध कर्मों का विवेचन है। साथ ही इस व्रत के उद्यापन की विधि भी प्रतिपादित है। गोपीचन्दन-माहात्म्य प्रतिपादन में मुद्गल-वृत्तान्त प्राप्त हैं-(गोपी तालाब से प्राप्त मिट्टी

पवित्र एवं शरीर का शोधन करने वाली है।) यहां पर वैष्णव लक्षण, श्रवण द्वादशी (भाद्रपदमास के शुक्लपक्ष में श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी) एवं नदीत्रिरात्र व्रत की विधि एवं माहात्म्य वर्णित है।

७२-८० अ. (विष्णुसहस्रनाम, रामरक्षास्तोत्र, दानधर्म, गण्डकी नदी माहात्म्य, और्ध्वदेहिक स्तोत्र, ऋषिपञ्चमी व्रत तथा अपामार्जन स्तोत्र) महादेव-पार्वती संवाद के माध्यम से नामकीर्तन माहात्म्य (जिन पापों हेतु कोई भी प्रायश्चित प्रतिपादित नहीं है उनसे मुक्ति हेतु नामकीर्तन ही एकमात्र साधन है)।

विष्णुसहस्रनाम (७२. १२३-२६७); नाम-महिमा, रामरक्षास्तोत्र (७४.३-६ अ.) तथा दानधर्म का कथन है। गण्डकी नदी को गङ्गा के समान बतलाया गया है। और्ध्वदेहिकस्तोत्र (७७. ३-३० अ.) ऋषि पञ्चमी (भाद्रपदशुक्ल पञ्चमी), अपामार्जन स्तोत्र (न्यासपूर्वक-७६ अ.) की महिमा वर्णित है।

८१-८६ अ. **विष्णु-महिमा** (पुण्डरीक की कथा), वैष्णव लक्षण, पवित्रारोपण तथा मासपुष्प-माहात्म्य) सदाचारी पुण्डरीक एवं नारद के संवाद के माध्यम से विष्णु की महिमा वर्णित है। सभी मन्त्रों में 'ओम् नमो नारायणाय' मन्त्र को श्रेष्ठ कहा गया है। नियमपूर्वक इस मन्त्र को जप कर पुण्डरीक ने भगवान् का साक्षात्कार किया था। यहाँ गङ्गा की महिमा, पवित्रारोपण की विधि (श्रावणमास में) तथा विष्णु की पूजा में प्रत्येक मासों में प्रयुक्त होने वाले पुष्पों (वैशाख में केतकी आदि ८६. ५-२७ अ.) का भी उल्लेख है।

९०-९७ अ. (कार्तिक-माहात्म्य, गुणवती-आख्यान) एक समय कृष्ण से सत्यभामा ने अपने पूर्वजन्म का वृतान्त पूछा। कृष्ण ने कहा- हरद्वारवासी देवशर्मा ब्राह्मण की गुणवती नामक पुत्री थी, जिसका विवाह उन्होंने अपने शिष्य चन्द्र से किया था। कुश एवं समिधा आहरणार्थ वन में विचरते देव शर्मा एवं चन्द्र को एक राक्षस ने मार डाला। विधवा गुणवती ने आजीवन एकादशी का व्रत एवं कार्तिक मास व्रत का नियमपूर्वक अनुपालन किया। जिसके पुण्य के प्रभाव से मरने के अनन्तर गुणवती सत्यभामा रूप में सत्राजित की पुत्री हुई।

कार्तिक मास की श्रेष्ठता वर्णन प्रसङ्ग में शंखासुर की कथा वर्णित है। समुद्रपुत्र शंखासुर अत्यन्त पराक्रमी था। उसने देवों को स्वर्ग से निष्कासित कर दिया था। देवों की प्रबलता का कारण वेदों को मानकर शंख ने वेदों को अपहृत कर लिया। भगवान् ने मत्स्य रूप धारण कर शंख का वध किया तथा ऋषियों को वेदों का संकलन करने का आदेश देकर स्वयं प्रयाग चले गये। यहां तीर्थराज प्रयाग तथा वदरी वन यात्रा का फल वर्णित है।

कार्तिक मास में स्नान, जागरण, पूजन तथा व्रतोद्यापन की विधि विहित है।

९८-१०७ अ. (जलन्धरोपाख्यान तथा धात्री तुलसी माहात्म्य) कार्तिक मास माहात्म्य प्रतिपादन में तुलसीमाहात्म्य वर्णन प्रसङ्ग से जलन्धर की उत्पत्ति से लेकर उसके वध

पर्यन्त पूर्व वर्णित कथा (३-१६ अ.) पुनः संक्षिप्त रूप में प्राप्त है। यहां धात्री और तुलसी का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

१०८-१२५ अ. (कलहोपाख्यान, विष्णुदासकथा तथा धनेश्वरोपाख्यान) सौराष्ट्रवासी भिक्षु ब्राह्मण की पत्नी 'कलहा' थी। दुष्ट स्वभाववाली होने के कारण उससे रुष्ट उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया, जिससे कलहा ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। अनेक निम्न योनियों में जन्म लेती हुई कलहा राक्षसी हुई। एक ब्राह्मण द्वारा तुलसीमिश्रित जल प्रोक्षित करने से उसकी मुक्ति हुई।

काञ्चीपुरी के राजा चोल एक समय अनन्तशयनतीर्थ गये, जहां उन्होंने मणिमाणिक्य से पूजन किया। वहां उन्होंने विष्णुदास ब्राह्मण को भी पूजाकरते देखा। तुलसी पत्र से पूजन करते हुए विष्णुदास ने श्रीविग्रह को ढक दिया, जिससे राजा रुष्ट हुए। राजा ने विष्णुदास से पूर्व भगवान् के दर्शन की प्रतिज्ञा की। राजभवन आकर उन्होंने मुद्गल को आचार्य बनाकर यज्ञ प्रारम्भ किया। विष्णुदास भी नियमपूर्वक माघ एवं कार्तिक के व्रत करते हुए विष्णु पूजन करने लगे। विष्णुदास ने एक दिन भोजन बनाकर ज्यों ही रखा कोई उठा ले गया। यही क्रिया सात दिनों तक दुहरायी गयी। विष्णुदास ने एक दिन चाण्डाल को भोजन ले जाते देखकर पुकारा तथा उसे घी भी देने का आग्रह किया। यह सुनकर चाण्डाल वेगपूर्वक भागा तथा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। समीप जाने पर विष्णुदास ने चाण्डाल रूपी शंखचक्रगदाधारी विष्णु का दर्शन किया। भगवान् विष्णु विष्णुदास को बैकुण्ठधाम ले गये। राजा चोल ने स्वयं से पहले विष्णुदास को स्वर्ग जाते देखकर अग्निकुण्ड में कूद पड़े। उसी समय विष्णु ने राजा को हृदय से लगाया तथा बैकुण्ठधाम को प्रस्थान किया।

मनुष्य को संसर्ग से भी पाप पुण्य की प्राप्ति होती है। नर्मदा तट पर भ्रमण करते हुए धनेश्वर नामक ब्राह्मण को सर्प ने काट लिया। उस समय उपस्थित अन्य जनों ने उसके मुख पर तुलसीमिश्रित जल डाल दिया। जिससे धनेश्वर ने उत्तम गति पायी। यहां पर अश्वत्थ वट प्रशंसा, कार्तिक-स्नान-विधि, कार्तिक नियम वर्णन (विष्णु के समीप जागरण, प्रातः स्नान, तुलसी सेवन, उद्यापन, दीपदान में पांच व्रत हैं ११७. ३ अ.) मास में उपवास की विधि, शालग्राम-माहात्म्य, पुष्पदीप, धात्री फल, यमद्वितीया तथा भीष्मपञ्चकव्रत (भीष्मकृत-कार्तिक शुक्ल एकादशी से पांच दिनों का व्रत) का कथन है।

१२६-१२८ अ. (भक्तिमहिमा, शालग्रामपूजन तथा हरिस्मरण माहात्म्य) उमा-महेश्वर संवाद के माध्यम से भक्ति का स्वरूप प्रतिपादित है। सात्विकी-राजसी और तामसी भेद से भक्ति त्रिविधा बतलायी गयी है। शालग्राम शिला को समस्त पापों को हरने वाली एवं हरिस्मरण करने वाले को विष्णु स्वरूप बतलाया गया है।

१२९-१७० अ. (विभिन्न तीर्थ वेत्रवती (वेतवा) एवं साभ्रमती (साबरमती) माहात्म्य) जम्बूद्वीपस्थित विभिन्न तीर्थों यथा-पुष्कर, काशी, नैमिष, प्रयाग आदि का उल्लेख है। वेत्रवती नदी वृत्रासुर निर्मित महागम्भीर कूप से निस्सृत है। चम्पक नगर का राजा विदारुण

अपने दुष्ट कर्मों के कारण कुष्ठी हो गया था परन्तु इस नदी में स्नान कर वह स्वस्थ शरीर वाला हो गया। वेत्रवती को दूसरी गङ्गा के समान माना गया है।

साभ्रमती नदी में पितृतीर्थ, प्रयाग तथा दशाश्वमेधतीर्थ ईश्वर की आज्ञा से वहीं निवास करते हैं। इस तीर्थ में प्रयत्न नियमपूर्वक स्नान का विधान है। यहां पर साभ्रमती के किनारे अवान्तर तीर्थों-नन्दि, श्वेत, मधुर, सप्तधारा, ब्रह्मवल्ली, संगमेश्वर, रुद्रमहालय, खड्ग, मालार्क, चन्दनेश्वर, धवलेश्वर, बालपेन्द्र, दुर्धर्षेश्वर, खड्गधारेश्वर, दुग्धेश्वर, चन्द्रेश्वर, पिप्पलाद, निम्बार्कदेव, कोटर, सोम, कपोत, गो, काश्यप, भूतालय, वटेश्वर, वैद्यनाथ, देव, चण्डेश, गाणपत्य, वार्तघ्नी, वराह, संगम, आदित्य, नीलकण्ठ तथा नृसिंहतीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१७१-१८८ अ.) (**गीतामाहात्म्य**) गीता के पांच अध्याय-भगवान् के पांच मुख, दस अध्याय-दस भुजाएं, एक अध्याय-उदर एवं दो अध्याय उनके चरण कमल हैं। ये अट्ठारह अध्याय वाङ्मयी ईश्वरी मूर्ति हैं।

गीता के प्रथम अध्याय के माहात्म्य प्रतिपादन में पापिष्ठ सुशर्मा ब्राह्मण की कथा प्राप्त है। एक समय सुशर्मा को सांप ने काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। मरने पर अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ वह बैल हुआ। एक पङ्गु द्वारा उससे (बैल से) अधिक श्रम लेने के कारण वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। पास खड़े मनुष्यों ने उसके उद्धार हेतु पुण्य दान किया। जिसमें एक वेश्या भी थी। वेश्या का तोता जो वास्तव में आश्रमवासी था। आश्रमबालकों द्वारा प्रथमाध्याय की आवृत्ति को सुनकर वह उसकी आवृत्ति करता रहता था, जिसका श्रवण वेश्या भी करती थी। उसी के पुण्य से सुशर्मा (बैल) मुक्त हुआ था।

द्वितीय अध्याय-सुशर्मा ने पुरन्दरपुर के एक देवालय में आत्मज्ञानी महात्मा से द्वितीय अध्याय का पाठ सुनकर तथा स्वयं कर परम पद प्राप्त किया था।

तृतीय अध्याय-जनस्थानीय जड नामक ब्राह्मण दुराचारी था। एक समय लुटेरों ने उसकी हत्या कर दी। जड के धर्मात्मा पुत्र ने अपने पिता की मृत्युस्थल पर गीता के तीसरे अध्याय का पाठ किया, जिससे उसके पिता को मोक्ष की प्राप्ति हुई।

चतुर्थ अध्याय-दो अप्सराओं को जिन्हें सत्य तथा ऋषि ने बेर वृक्ष होने का शाप दे दिया था, महात्मा भरत द्वारा उनके मूल में चतुर्थ अध्याय के पाठ से उनकी मुक्ति हुई थी।

पञ्चम अध्याय-वेदपाठी पिङ्गल नामक ब्राह्मण वेदाध्ययन छोड़कर गीत नृत्यादि में संलग्न हो गया। पिङ्गल की स्त्री अरुणा भी दुश्चरित्रा थी। मरने के बाद अनेक योनियों में घूमते हुए दोनों क्रमशः शुक एवं गिद्ध हुए। बहेलियों द्वारा मारे जाने पर दोनों एक खोपड़ी में स्थित जल में गिरे। वह खोपड़ी वट नामक ब्रह्मज्ञानी की थी जो सदैव पञ्चम अध्याय का पाठ करते थे। जिसके प्रभाव से दोनों मुक्त हुए।

षष्ठ अध्याय-राजा जानश्रुति ने महात्मा रैक्व से छठे अध्याय का अभ्यास कर मोक्ष की प्राप्ति की थी। सप्तम अध्याय-सर्प काटने से मृत शङ्कुकर्ण ब्राह्मण सर्प योनि में उत्पन्न हुआ था। उसके पुत्रों द्वारा सप्तम अध्याय के पाठ से उसकी मुक्ति हुई थी।

अष्टम अध्याय-भावशर्मा नामक ब्राह्मण पापात्मा था। मरने पर वह ताड़ वृक्ष हुआ। उसी वृक्ष पर ब्रह्मराक्षसभाव से ब्राह्मण पति पत्नी भी रहा करते थे। गीता के आठवें अध्याय के एक श्लोकार्द्ध का श्रवण कर ताड रूप त्याग पुनः भावशर्मा ब्राह्मण ने आठवें अध्याय का पाठ कर आत्यधिक सुख को प्राप्त किया। नवम अध्याय-एक ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश करने को उद्यत चाण्डाल (कालपुरुष से प्रकट) एवं चाण्डाली (निन्दा) को गीता के नवम् अध्याय के पाठ द्वारा रोका तथा ब्राह्मण द्वारा कृत नवम अध्याय का पाठ श्रवण कर दोनों मुक्त हुए।

दशम अध्याय-काशीपुरी में स्थित धीरबुद्धि नामक ब्राह्मण का अनुगमन भगवान शिव करते थे, जिसे देखकर उनके पार्षद भृङ्गिरिटि ने जिज्ञासा की। भगवान् ने ब्राह्मण द्वारा दशम अध्याय के पाठ को कारण बतलाया।

एकादश अध्याय-सुनन्द नामक ब्राह्मण भ्रमण करते हुए विवाह मण्डप नगर पहुंचे। जहां ग्रामपाल द्वारा उन्हें धर्मशाला में भेज दिया गया। वहां स्थित एक राक्षस ने मात्र ब्राह्मण को छोड़कर उसके सभी सहयोगियों को मार डाला। एक दिन मुखिया के पुत्र को भी राक्षस ने मार डाला। ग्रामपाल द्वारा ब्राह्मण को बताये जाने पर ब्राह्मण ने वहां एकादश अध्याय का पाठ किया, जिसका श्रवण कर राक्षस मुक्त हुआ। द्वादश अध्याय-सिद्धसमाधि ब्राह्मण ने मृत बृहद्रथ राजा को द्वादश अध्याय के प्रभाव से जीवित कर दिया था तथा उनके अश्वमेध यज्ञ के अश्व को जो दूसरों द्वारा अपहृत कर लिया गया था, पुनः प्राप्त कराया था।

त्रयोदश अध्याय-हरिदीक्षित की दुश्चरित्रा स्त्री चाण्डाल योनि को प्राप्त हुई। निरन्तर त्रयोदश अध्याय का पाठ करने वाले वासुदेव नामक ब्राह्मण से पाठ श्रवण कर उसने मुक्ति प्राप्त की थी।

चतुर्दश अध्याय-विक्रमवेतालनामक राजा एक बार आखेट हेतु राजकुमारों तथा दो कुतियों को साथ लेकर जंगल गये। कुतियों ने एक खरगोश का पीछा किया। भागता हुआ खरगोश वत्स मुनि के आश्रम स्थित खड्ड में गिर गया। वत्स मुनि के आश्रम में चतुर्दश अध्याय का सदैव पाठ होता रहता था। जिसके श्रवण से खरगोश एवं कुतियाँ मुक्त हुए।

पञ्चदश अध्याय-गौडदेश के कृपाण नरसिंह राजा थे। उन्हें एक वैश्य ने एक घोड़ा भेंट स्वरूप प्रदान किया। राजा आखेट हेतु वन गये। वहां एक पत्ते पर गीता के पञ्चदशाध्याय का श्लोकार्द्ध लिखा था, जिसका राजा ने पाठ किया, जिसे सुनकर अश्व (राजा का पूर्व सेनापति सरभ मेरुदण्ड) मुक्त हुआ।

षोडश अध्याय-सौराष्ट्र के राजा खड्गबाहु का एक हाथी था। जो उन्मत्त हो गया, वह किसी उपाय से वश में नहीं आ रहा था। गीता के सोलहवें अध्याय का नित्य पाठ करने वाला एक ब्राह्मण उसके मद का स्पर्श कर चला गया। राजा द्वारा कारण पूछे जाने पर ब्राह्मण ने षोडशाध्याय का पाठ बतलाया।

सप्तदश अध्याय-राजा खड्गबाहु के पुत्र का एक दुःशासन नामक सेवक था, जिसे हाथी ने मार डाला। वह पुनः हाथी हुआ। एक बार हाथी बीमार पड़ा। गीता के सत्रहवें अध्याय के पाठ को सुनकर हाथी मुक्त हो गया।

अष्टादश अध्याय-इस अध्याय के पांच श्लोकों के नित्य पाठ के प्रभाव से इन्द्र पद प्राप्त होने का उल्लेख है।

१८६-१६४ (**भागवत-माहात्म्य**) कलियुग के कालरूपी सर्प के डसे जाने के भय को दूर करने के लिए शुकदेव ने भागवत का उपदेश किया है। मन की शुद्धि हेतु इससे बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं है। जब जन्म जन्मान्तरों का पुण्य उदय होता है, तब कहीं इस शास्त्र की प्राप्ति होती है। यदि सप्ताह परायण की विधि से इसका श्रवण किया जाय तो यह अवश्य मोक्ष प्रदाता है।

यहां नारद की सनकादि से भेंट, भक्ति (युवती रूपी) तथा ज्ञान एवं वैराग्य (दोनों पुत्र) की दुर्दशाका वर्णन है, भक्ति के कष्ट निवारण हेतु नारद के प्रयास, आत्मदेव ब्राह्मण का वृतान्त, धुन्धुकारी (दुराचारी) एवं गोकर्ण (धर्मज्ञ की गोमाता से उत्पत्ति हुई थी) का जन्म, धुन्धुकारी को प्रेतयोनि की प्राप्ति, गोकर्ण की भागवत कथा से धुन्धुकारी की तथा अन्य श्रोताओं की मुक्ति के वर्णन के साथ ही भागवत की सप्ताह विधि एवं भागवत का माहात्म्य प्रतिपादित है।

१६५-२१८ अ. (**कालिन्दी माहात्म्य**) युधिष्ठिर ने सौभरि मुनि से कालिन्दी के तटस्थित तीर्थों के विषय में प्रश्न किया, जिसके उत्तर में सौभरि ने इन तीर्थों का वर्णन किया। कालिन्दी तट स्थित प्रमुख तीर्थ हैं-इन्द्रप्रस्थ, निगमोद्बोध तीर्थ (राजा दिलीप को नन्दिनी की सेवा से पुत्र की प्राप्ति), द्वारा, कौशल, मधुवन, बदरिकाश्रम, हरिहर, पुष्कर, प्रयाग, काशी, काञ्ची तथा गोकर्ण आदि।

२१६-२५० अ. (**माघ-माहात्म्य**) होम, यज्ञ एवम इष्टापूर्त कर्मो के बिना ही जो उत्तम गति प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, वे माघ मास में प्रातः स्नान करें। मृगशृङ्ग मुनि द्वारा माघ के पुण्य से गज को मोक्ष प्रदान कराने, मरी हुई कन्याओं को जीवित करने, यमलोक के वर्णन, कर्म की प्रशंसा, पुष्कर माहात्म्य द्वारा नारकीय जीवों का उद्धार, मृगशृङ्ग के विवाह वर्णन क्रम में विवाह के आठ भेदों का उल्लेख एवं गृहस्थ धर्म, पतिव्रता स्त्रियों के लक्षण, मृगशृङ्ग पुत्र मृकण्डु मुनि की काशी यात्रा, काशी-माहात्म्य तथा माताओं की मुक्ति, मार्कण्डेय की उत्पत्ति तथा अमरत्व प्राप्ति एवं मृत्युञ्जय स्तोत्र, माघस्नान हेतु

प्रमुख तीर्थों का वर्णन तथा माघ स्नान से सुव्रत को दिव्यलोक की प्राप्ति होने की कथा वर्णित है।

२५१-२५७ अ. (मन्त्रोपदेश, त्रिपाद्विभूतिवर्णन एवं विष्णुव्यूह भेद) लक्ष्मी एवं नारायण-ये दो मन्त्र रत्न बतलाये गये हैं। यहां पर मन्त्रदीक्षा विधि भी बतलायी गयी है। विष्णु की महिमा, भक्ति के भेद एवम अष्टाक्षर मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) का स्वरूप तथा उसके अर्थ का प्रतिपादन, विष्णु और लक्ष्मी के स्वरूप (नाम-लक्ष्मी श्री कमला आदि) गुण, धाम एवम उनकी विभूतियों का उल्लेख है। साथ ही भगवान् की बैकुण्ठ में स्थिति तथा सृष्टि रचना का भी वर्णन है।

२५८-२६३ अ. (मत्स्यादि अवतार, लक्ष्मीउत्पत्ति, गुणवर्णन, रामावतार की कथा) मत्स्य एवं कूर्मादि अवतारों का उल्लेख, इन्द्र के हाथी द्वारा अपमानित होने पर दुर्वासा द्वारा इन्द्र को शाप देने, समुद्र मंथन से दरिद्रा तथा लक्ष्मी आदि की उत्पत्ति, नृसिंहावतार एवं प्रह्लाद का आख्यान, वामन का प्रादुर्भाव, परशुरामचरित, रामावतार की कथा (जन्म, संस्कार, सीता की उत्पत्ति, राम आदि का विवाह, वनवास से अयोध्या आगमन, राज्याभिषेक एवं परमधाम गमन तक) का वर्णन है।

२७२-२८२ (**कृष्णचरित**) श्रीकृष्णजन्म, व्रज की लीलाओं का प्रसङ्ग, श्रीकृष्ण की मथुरा-यात्रा, कंसवध, उग्रसेन के राज्याभिषेक, जरासन्ध की पराजय, मुचुकुन्द की मुक्ति, रुक्मिणी हरण, कृष्ण-विवाह, बाणासुर-संग्राम, श्रीकृष्ण का परमधामगमन, विष्णुपूजा विधान, रामचन्द्राष्टोत्तरशतनाम (२८१-३०-४७) तथा त्रिदेव में विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादित है।

विष्णुपुराण

पुराणों में विष्णुपुराण की स्थिति

विभिन्न पुराणों में पुराणनामों की जो सूची मिलती है, उनमें सर्वत्र विष्णु (अथवा वैष्णव) पुराण का नाम पढ़ा गया है। इससे विष्णुपुराण की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

पुराणगत पुराणसूचियों में विष्णुपुराण का स्थान तृतीय है (ब्रह्मपुराण और पद्मपुराण यथाक्रम प्रथम और द्वितीय हैं)। लिङ्गपुराण में प्रसंगान्तर में इस पुराण को चतुर्थ स्थान दिया गया है (चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु, १.६४.१२२)। चूंकि यहाँ अन्य किसी पुराण का उल्लेख नहीं है, इसलिए तृतीय स्थान किस पुराण को दिया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता; पर इससे इतना सिद्ध होता है कि पुराणों के गणनाक्रम में मतभेद था।

पुराणनाम का हेतु

इस पुराण का 'विष्णु' नाम इसलिए नहीं है कि इसके वक्ता विष्णु है। प्रथम वक्ता पराशर हैं, यद्यपि मूलतः इस पुराण के वक्ता पितामह ब्रह्मा है, १.१.८। चूँकि इस पुराण में विष्णु और वैष्णव धर्म सम्बन्धी सामग्री की प्रचुरता है एवं विष्णु को परतत्व के रूप में माना गया है, इसलिए इस पुराण का नाम 'विष्णु' पड़ा है। स्कन्दपुराण में कहा गया है- चरित्रं, रञ्जितं विष्णोस्तल्लोके वैष्णवं विदुः (प्रभासखण्ड २.३३)।

विष्णु से सम्बन्धित इस अर्थ में इस पुराण को 'वैष्णव' (विष्णु + अणप्रत्यय) भी कहा जाता है।

मूलतः यह पुराण पराशर (वक्ता) और मैत्रेय के संवाद में है। इसमें कई अवान्तर संवाद भी हैं, जिनमें और्व-सगर-संवाद (३१८-१६), ऋभु-निदाघ-संवाद (२.१५-१६) और खाण्डिक्य-केशिध्वजसंवाद (६.६-७) मुख्य हैं।

विष्णुपुराण की परम्परा

जिस क्रम से यह पुराण पराशर को प्राप्त हुआ, वह क्रम पुराण के प्रारम्भिक अंश में इस प्रकार कहा गया है-पितामह (ब्रह्मा)-दक्ष आदि-पुरुकुत्स-सारस्वत-पराशर (१.२.८-६)। पुराण के अन्त में यह क्रम कुछ विस्तार से मिलता है (६.८.४३ यथा-ब्रह्मा-ऋभु-प्रियव्रत-भागुरि-स्तम्भमित्र-दधीचि-सारस्वत-भृगु-पुरुकुत्स-नर्मदा-धृतराष्ट्र-पूरणनाग-वासुकि-वत्स-अश्वतर-कम्बल-एलापुत्र-वेदशिरा-प्रमति-जातूकर्ण-मुनिगण। यहाँ यह भी कहा गया है कि पुलस्त्य के वरदान से पराशर में इस पुराण का स्मरण रह

गया और पराशर ने मैत्रेय को यह पुराण सुनाया। कलियुग के अन्त में शिनीक को मैत्रेय इस पुराण को सुनायेंगे (६.८.५०)।

विष्णुपुराण की प्रामाणिकता

विष्णुपुराण की प्रामाणिकता के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि धर्मशास्त्र के आचार्यों एवं दर्शनशास्त्र के आचार्यों ने इस पुराण के वाक्य प्रमाणरूप से उद्धृत किये हैं। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में ये ग्रन्थ प्रधान है-जीमूतवाहनकृत कालविवेक, याज्ञवल्क्य स्मृति की अपरार्कटीका, अनिरुद्धभट्टकृत हारलता, वल्लालसेनकृत दानसागर, कुल्लूककृत मनुस्मृतिटीका, देवणभट्टकृत स्मृतिचन्द्रिका, हेमाद्रिकृत चतुवर्गचन्तामणि, श्रीदत्तउपाध्यायकृत कृत्याचार, शूलपाणिकृत प्रायश्चित्तविवेक, मदनपालकृत मदनपारिजात। यह भी ज्ञातव्य है कि उद्धृत सभी वचन मुद्रित विष्णुपुराण में मिलते नहीं हैं। अथवा अल्पाधिक पाठान्तरों के साथ मिलते हैं। डॉ. हाजराकृत Puranie Records ग्रन्थ, परिशिष्ट प्रथम। जिन दार्शनिक ग्रन्थों में विष्णुपुराण के वचन उद्धृत हुये हैं, उनमें निम्नोक्त ग्रन्थ प्रधान हैं-योगसूत्रभाष्य पर वाचस्पति की तत्ववैशारदीटीका तथा विज्ञान भिक्षु का योगवार्तिक, रामानुजकृत ब्रह्मसूत्र-श्रीभाष्य, विष्णुसहस्रनाम पर शंकराचार्यकृत भाष्य (किन्हीं के अनुसार यह भाष्य आद्यशंकराचार्यकृत नहीं है), ललितासहस्रनाम पर भास्कर का भाष्य, जीवगोस्वामीकृत षट्सन्दर्भ, विवरणप्रमेयसंग्रह, वेदान्तपरिभाषा।

विष्णुपुराण की एक असाधारण विशिष्टता है-विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों द्वारा स्व स्व सिद्धान्तों के समर्थन के लिए इस पुराण को प्रमाण रूप से मानना। यह सत्य है कि रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ तथा चैतन्य (गौडीय)-इन पाँच वैष्णव आचार्यों के मतों में (तथा उनके साम्प्रदायिक आचार्यों के मतों में भी) कुछ-कुछ भेद है। यह भेद बाह्य आचारों में ही नहीं, बल्कि दार्शनिक दृष्टियों में भी है और कहीं-कहीं इन दृष्टियों में परस्पर विरोध भी है। ऐसा होने पर भी सभी वैष्णव आचार्य विष्णुपुराण को एकस्वर से मानते हैं मुख्यतया विष्णुपुराण के आधार पर ही स्व सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं। जिन सिद्धान्तों के लिए वे विष्णुपुराण को प्रमाण रूप से उद्धृत करते हैं, उनमें ये मुख्य हैं-विष्णु या हरि की सर्वशीर्षता, उनकी अचिन्त्य शक्तिमत्ता, उनकी ह्लादिनी आदि तीन प्रमुख शक्तियाँ, उनकी शुद्ध-सत्वमयता, उनकी अप्राकृतगुणवत्ता, उनके शरीर की नित्यता, उनमें पुरुष-प्रकृति का लीन होना, भक्तिमार्ग की मुख्यता।

इस प्रसंग में यह विशेषतः लक्षणीय है कि विष्णुभक्ति की सर्वोच्च साधनरूपता का प्रतिपादक होने पर भी यह पुराण वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थक है, क्योंकि यह कहता है कि वर्णाश्रमाचार-पालनकारी पुरुष के द्वारा परम पुरुष विष्णु की भक्तिपूर्वक आराधना की जाती है। विष्णु की सन्तुष्टि के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है (३.८.६; वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्रोपकारकः।।)

विष्णुपुराण के वैशिष्ट्य के और भी कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। विष्णुपुराण का कृष्णचरित भागवतोक्त कृष्णचरित की तरह पल्लवित नहीं है; तथा इसमें कृष्ण के लौकिक चरित्र का कहीं-कहीं भलीभांति प्रतिपादन हुआ है (द्र. आचार्य बलदेव उपाध्यायकृत विमर्शचिन्तामणि, पृ. ७)। इस पुराण में योग और उसके अङ्गों का जो विवरण है (६.७ अ.), वह बहुत ही सारवान् है। कई योगग्रन्थों में इस प्रकरण के श्लोक उद्धृत मिलते हैं।

विष्णुपुराण का अवान्तर विच्छेद

यह पुराण छह अंशों में विभक्त है। प्रथम अंश में २२ अध्याय, द्वितीय में १६, तृतीय में १८, चतुर्थ में २४, पंचम में ३८ तथा षष्ठ में ८ अध्याय हैं। यद्यपि सभी संस्करणों में इस विच्छेदसंख्या में कोई भेद नहीं मिलता, तथापि प्रत्येक अध्याय में पठित श्लोकों की संख्या में विभिन्न संस्करणों में कहीं-कहीं विभिन्नता देखी जाती है।

विष्णुपुराण का श्लोकपरिमाण

पुराणगत पुराणसूचियों में विष्णुपुराण का श्लोकपरिमाण त्रयोविंशतिसहस्र (२३०००) कहा गया है, पर प्रचलित पुराण में लगभग ६००० श्लोक हैं। यह ६००० श्लोक वाला पुराण पुराणक्षेत्र में सर्वथा अज्ञात है, ऐसी बात नहीं, क्योंकि लिङ्गपुराण (१.६४.१२० ख-१२२) में पराशरकृत एक वैष्णवपुराण का उल्लेख आया है, जो 'षट्प्रकार' तथा 'षट्साहस्रमित' है एवं पुराणक्रम में चतुर्थस्थान में स्थित है।[1]

विष्णुपुराण के श्लोकपरिमाण के विषय में जो वैषम्य हैं, वह पूर्वाचार्यों को भी ज्ञात था। टीकाकार श्रीधरस्वामी कहते हैं कि विष्णुपुराण के परिमाण के विषय में कहीं दस हजार और कहीं अट्ठारह हजार आदि मतभेद के रहने पर भी वे छह हजार परिमाण वाली पुराण पर टीका लिख रहे हैं।[2] यहाँ १० और १८ शब्द ध्यान देने योग्य हैं, क्योंकि पुराण में इस संख्या का समर्थन नहीं मिलता।

---

१. अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः।।१२०
प्रसादाद् वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः।
षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसंचयम्।।१२१
षट्साहस्रमित सर्वं वेदार्थेन च संयुतम्।
चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु सुशोभनम्।।१२२
(लिङ्.गपु. १.६४.१२०ख-१२२)

२. विष्णुपुराणं च क्वचिद् दशसाहस्रं क्वचिद्अष्टसाहस्रमित्यादि विकल्पेऽपि अत्र षट्साहस्रमेव व्याख्यायते (विष्णुपु. ३.६.२६ श्रीधरीटीका)।

तत्वार्थदीपनिबन्ध की टीका में अन्य प्रकार का ही मत मिलता है। टीकाकार का कहना है कि २३००० श्लोक परिमाण वाला पुराण पृथक् है, जो १८ पुराणों में अन्यतम है। प्रचलित छह हजार श्लोक परिमाण वाली पुराण पराशरकृत है (इसका नाम वस्तुतः पराशरसंहिता है)। पराशर ने भागवत पुराण सुनकर मैत्रेय को इस पुराण का उपदेश दिया।[1]

इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है वल्लालसेन की दृष्टि में २३००० परिमाण वाली पुराण अप्रामाणिक है (द्र. दानसागर की उपक्रमणिका)।

इस समस्या का निरूपण करना सरल नहीं है। विष्णुपुराण के प्राचीनतम हस्तलेखों के मिलने पर इस समस्या का समाधान किया जा सकेगा।

मुझे ऐसी संभावना प्रतीत होती है कि प्रचलित विष्णुपुराण विष्णुधर्म (जिसमें ४००० से अधिक श्लोक हैं, द्र. स्टडीज इन द उपपुराणाज, भाग-१, पृ. ११८) तथा विष्णुधर्मोत्तर (जिसमें न्यूनाधिक १५००० श्लोक हैं) - इन तीनों को मिलाकर २३००० श्लोक परिमाण कहा गया है। इन तीनों में विष्णु-वैष्णवधर्म सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री है तथा तीनों के नाम में 'विष्णु' शब्द है, अतः इन तीनों के लिए विष्णुपुराण शब्द का प्रयोग किया गया होगा। विष्णुधर्मोत्तर विष्णुपुराण के साथ सम्बद्ध ही है, यह नारदीयपुराणगत विष्णुपुराण विषय-परिचयपरक श्लोकों से भी ज्ञात होता है।

यदि विष्णुधर्मोत्तर का श्लोक परिमाण १७००० हो तो विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तर को मिलाकर २३००० श्लोक होंगे। विष्णुधर्मोत्तर का श्लोकपरिमाण अभी निर्णेय है।

विष्णुपुराण का लक्षण

पुराणों में ही विष्णुपुराण का लक्षण कहा गया है जो इस प्रकार है -

वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत् प्राह धर्मांनखिलान् तदुक्तं वैष्णवं विदुः।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्-प्रमाणं विदुर्बुधाः।

(मत्स्य. ५३.१६) (विष्णुपु.३.६.२६ की टीका में श्रीधरस्वामी द्वारा उद्धृत-'यान् प्राह धर्मान्' पाठ के साथ)।

इसका अनुरूप श्लोक स्कन्द प्रभास क्षेत्रमाहात्म्य (२.३२-३३) में मिलता है।

ब्रह्मा के द्वितीय परार्द्ध के प्रथम कल्प का नाम वराह है, यह इस पुराण में ही कहा

---

१. त्रयोविंशति वैष्णवम् इति त्रयोविंशतिसहस्रसंमितं पुराणं भिन्नमेव; तद्व्यासेनेव कृतम्, अष्टादशपुराणानामिति वाक्यात्। इयंतु पराशरसंहिता भिन्नैव। पराशरो हि भागवतं श्रुत्वा मैत्रेयाय तथा बोधितवान् (तत्वार्थदीप निबन्ध के भागवतार्थप्रकरण की टीका)।

गया है (१.३.२८)। उपर्युक्त लक्षण इस पुराण में घट जाता है (श्लोकपरिमाण पर पहले विचार किया गया है)।

नारदीयपुराण में कहा गया है कि इस पुराण के प्रथम भाग में ६ अंश हैं, यह शक्तिपुत्र पराशर की कृति है, जो मैत्रेय को कहा गया (पूर्वाध ६४.२)। इस लक्षण से निःसंशय रूप से ज्ञात होता है कि विष्णुधर्मोत्तर इस पुराण का उत्तरार्थ है।

नारदीयपुराण में विष्णुपुराण-विषयोल्लेख

नारदीय पुराण (अ. ६४) में विष्णुपुराण में प्रतिपादित विषयों की सूची दी गई है। प्रचलित पुराण के विषयों के साथ इस सूची में उक्त विषयों का कोई उल्लेखनीय भेद नहीं है। सूचीकार ने गौण विषयों का उल्लेख नहीं किया है-यह देखा जाता है।

प्रथम अंश के विषय-आदिकारणसर्ग (अ. १-२); देवादिकों का संभव (जन्म) (अ. ३-८); समुद्रमंथन की कथा (अ. ९); दक्ष आदि के वंश (अ. १०); ध्रुव का चरित (अ. ११-१२); पृथु का चरित (अ. १३); प्राचेतस का आख्यान (अ. १४-१५); प्रह्लाद की कथा (अ. १६-२१); पृथु के द्वारा राज्याधिकार-प्रदान (अ. २२)।

द्वितीय अंश के विषय-प्रियव्रत-आख्यान (अ.१); द्वीपवर्षनिरूपण (अ. २-४); पाताल-नरक-आख्यान (अ. ५-६); सप्तस्वर्गनिरूपण (अ. ७); सूर्यादि के चार (गति) का कथन (इनके पृथक्-पृथक् लक्षणों के साथ) (अ. ८-१२); भरत-चरित (अ. १३); मुक्तिमार्गनिदर्शन (अ. १४); निदाघ-ऋभु-संवाद (अ. १५-१६)।

तृतीय अंश के विषय-मन्वन्तरसमाख्यान (अ. १-२); वेदव्यासावतार (अ. ३-६); नरकोद्धारक कर्म (अ. ७); सगर-और्वसंवाद में सर्वधर्मनिरूपण, श्राद्धकल्प; सदाचार (१-१६) मायामोहकथा (अ. १७-१८)।

चतुर्थांश के विषय-सूर्यवंशकथा (अ. १-५); सोमवंशकथा (अ. ६-२४); (दोनों में अनेक राजाओं की कथा है तथा भविष्य राजाओं का विवरण भी दिया गया है)।

पंचमांश के विषय-कृष्णावतार विषयक प्रश्न (अ. १); गोकुल-विषयक कथा (अ. २-४); पूतनादिवध (बाल्यकाल में) (अ. ५-७); अघासुरादिवध (कौमार अवस्था में) (अ. ८-१४); कंसवध (किशोर अवस्था में) (अ. १५-२०); माथुरचरित (अ. २१); द्वारावती भवलीला (यौवनावस्था में) (अ. २२-३७) (दैत्यवध, विवाह आदि); स्वकीय-परकीय-जनों के नाश के द्वारा भूभार का हरण); अष्टावक्रीय आख्यान (अ. ३८)।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि रासलीला-गोवर्धन धारण आदि विशिष्ट कर्मों का उल्लेख सूची में नहीं किया गया। बाल्य-कौमार-किशोर अवस्था के उल्लेख से ही इन कर्मों को लक्षित किया गया है- ऐसा प्रतीत होता है। विष्णुपुराण में अधासुर का प्रसंग नहीं है, पर भागवत में है। यही कारण है कि यहाँ अध्यायों का उचित निर्देश नहीं किया जा सका।

षष्ठ अंश के विषय-कलिज चरित्र (अ. १-२); चतुर्विधप्रलय (अ. ३-५); खाण्डिक्य-केशिध्वजसंवाद में ब्रह्मज्ञान (अ. ६-८);। (सप्तमाध्याय तक ही यह विषय है; अष्टमाध्याय पुराण का उपसंहारभूत है- यह जानना चाहिये)।

विष्णुपुराण के द्वितीय भाग के विषय

यह द्वितीय भाग विष्णुधर्मोत्तर है। इसमें निम्नोक्त विषय हैं-नानाधर्मकथा; व्रत-नियम-यम; धर्मशास्त्र; अर्थशास्त्र; वेदान्त; ज्योतिष; वंशाख्यान; स्तोत्र; मनु; नाना लोकोपकारक विद्यास्थान।

प्रचलित विष्णुधर्मोत्तर (जिसमें अवान्तर खण्ड हैं) में उपर्युक्त विषय प्रतिपादित हुये हैं-यह देखा जाता है। (ये विषय विष्णुधर्मोत्तर में जिस क्रम से वर्णित हुये हैं-यह विष्णुधर्मोत्तरसम्बन्धी निबन्ध में दिखाया जायेगा)।

विष्णुपुराण में वर्णित विषयों का संक्षिप्तसार

इस पुराण के प्रत्येक अध्याय में जिन मुख्य विषयों का प्रतिपादन किया है, उसका एक संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। इस पुराण में पाँच प्राचीन लक्षणों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंश्यानुचरित) के अतिरिक्त अन्यान्य कई विषयों का संक्षेप-विस्तार के साथ प्रतिपादन किया गया है- यह ज्ञातव्य है।

प्रथम अंश-(अ. १) जगत के सृष्टि के विषय में प्रश्न; पराशर के द्वारा यह यज्ञ करना; पुलस्थ के द्वारा पराशर को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति; पराशर के द्वारा विष्णुपुराण का प्रणयन।

(अ. २-३) वासुदेव महिमा; पुरुष और प्रधान से महदादि तत्वों का प्रादुर्भाव; पालनकर्ता विष्णु सृष्टिकर्ता ब्रह्मा एवं संहारकर्ता रुद्र हैं; काल और काल के विभिन्न विभाग; ब्रह्मा एवं मनुओं का काल; कल्प।

(अ. ४-६) इस कल्प के आरम्भ में नारायण का वराहरूप में आर्विभाव; वराह द्वारा समुद्रगर्भ से पृथवी का उद्धार। ब्रह्मारूपी विष्णु के द्वारा जगत्-सृष्टि एवं जीव-सृष्टि; नौ विशिष्ट सर्ग; ब्रह्मा द्वारा विभिन्न प्रकार की सृष्टियाँ।

(अ. ७-८) ब्रह्मा के द्वारा मानसी प्रजा, प्रजापतियों; रुदों तथा स्वायंभुव मनु एवं शतरूपा की सृष्टि; मनु के अपत्य; दक्ष की कन्यायें एवं उनका धर्म आदि के साथ विवाह; धर्म एवं अधर्म के अपत्य; रुद्र की उत्पत्ति; उनके आठ रूप, उनकी पत्नियाँ एवं सन्तान; विष्णु के प्रसंग में श्री का उल्लेख।

(अ. ९) श्री (लक्ष्मी) की कथा एवं महिमा; समुद्र का मन्थन।

(अ. १०) दक्ष की कन्याओं का ऋषियों के साथ विवाह तथा उनके अपत्य।

(अ. ११-१२) उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का चरित; माता के उपदेश से ध्रुव का तपश्चरण; ध्रुव के द्वारा विष्णु का साक्षात् दर्शन; विष्णु के प्रसाद से ध्रुवनक्षत्र के स्थान की प्राप्ति।

(अ. १३-१५) ध्रुव-वंश; दुःशील वेन नृप का चरित; ऋषियों द्वारा वेन का वध; वेन से निषाद एवं पृथु नृप का जन्म; पृथु के द्वारा पृथिवी का समीकरण; गो-रूपा पृथिवी; पृथु का वंश; प्रचेतसों की कथा; प्रचेतसों द्वारा वृक्षों का नाश; मारिषा के साथ उनका विवाह; कण्डु ऋषि का चरित; दक्ष के पुत्र और कन्यायें।

(अ. १६-२०) प्रह्लादचरित; प्रह्लाद का पिता देव विजयी हिरण्यकशिपु; प्रह्लाद का विष्णुभक्ति देखकर हिरण्यकशिपु का क्रोध तथा प्रह्लाद पर विविध प्रकार का कठोर दण्ड; प्रह्लाद के वध के लिए सभी उपायों का व्यर्थ होना; प्रह्लाद-हिरण्यकशिपु-संवाद; प्रह्लाद का विष्णु के प्रति तन्मय होना; प्रह्लाद के प्रति विष्णु का प्रकटित होना; नृसिंहरूपी विष्णु के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध; प्रह्लाद का दैत्यराज होना; प्रह्लाद-वंश।

(अ. २१-२२) दक्षकन्या दनु तथा अन्यान्य पत्नियों से कश्यप की सन्तानें; मरुतों का जन्म; ब्रह्मा के द्वारा विभिन्न देव आदि को उनके राज्यों को देना; विष्णु की महिमा; विष्णु के चार भेद; विष्णु के भूषण और अस्त्र।

द्वितीय अंश-(अ. १-३) स्वायंभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत को दस पुत्र; उनमें तीन निवृत्तिमार्गी और सात-सात द्वीपों के राजा हुये; जम्बुद्वीप के राजा आग्नीध्र के द्वारा द्वीप का नौ भागों में विभाजन; नाभि को दक्षिणभाग का आधिपत्य प्रदान; नाभि-पुत्र ऋषभ के पुत्र भरत के नाम से दक्षिणभाग के वर्ष का भारत (वर्ष) नाम होना। सात द्वीप एवं सात संमुद्र; जम्बू द्वीप, मेरु पर्वत, इलावृत वर्ष का विवरण; विभिन्न वर्षों में विष्णु के रूप। भारतवर्ष का विशद विवरण (नदी, जनपद, पर्वत आदि का उल्लेख सहित)।

(अ. ४) प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीपों का विवरण; लोकालोक पर्वत, ब्रह्माण्ड का विस्तार।

(अ. ५-६) सप्तपातालों का विवरण; शेषनाग का स्वरूप; ज्योतिषशास्त्रविद् गर्ग के द्वारा शेषनाग की आराधना। पाताल के अधःस्थ नरकों का विवरण; नारकप्रापक दुष्कर्म; नाश के लिये विष्णु-ध्यान की उपयोगिता।

(अ. ७) भू-भुव-स्व-मह-जन-तपस्-सत्य लोकों का विवरण; ब्रह्माण्ड और उसका आवरण; विष्णुशक्तिमहिमा।

(अ. ८-१२) सूर्य, सूर्यरथ, सूर्याश्व आदि का विवरण; कालविभाग, पितृयान-देवयानमार्ग, गङ्गा की उत्पत्ति तथा उसका चतुर्धा विभाग। नवग्रहविवरण; सूर्य, सूर्यरश्मि, मेघ एवं वृष्टि का विवरण; नारायण का सर्वाधिष्ठातृत्व। द्वादशआदित्य; प्रतिमास सूर्यरथ से सम्बन्धित गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, उरग, राक्षस तथा उनके कर्म। सूर्य की महिमा; सूर्य के कर्म। चन्द्र,

चन्द्ररथ, चन्द्राश्व आदि का विवरण; ग्रहों के रथादि का विवरण; ग्रहसम्बन्धी विशिष्ट विचार; वासुदेव का वासुदेवत्व।

(अ. १३-१६) भरत-चरित। एक हरिणशिशु के प्रति प्रेम के कारण उनका बारबार जन्मग्रहण; अन्तिम जन्म में अवधूत ब्राह्मण के रूप में प्रकट होना; सौवीरराज के साथ उनका संवाद। सौवीरराज के प्रति तत्त्वज्ञान का उपदेश करना। भरत के द्वारा प्रसंगतः ऋभु-निदाघ-संवाद का उल्लेख करना। निदाघ शिष्य ऋभु का राजा होना; निदाघ के द्वारा ऋभु के प्रति तत्त्वज्ञान का उपदेश। ऋभु के उपदेश से निदाघ को ज्ञान की प्राप्ति; भरत के उपदेश से सौवीरराज को निःश्रेयस की प्राप्ति।

तृतीय अंश-(अ. १-२) सात मनु एवं मन्वन्तरों का विवरण; प्रत्येक मनु से सम्बन्धित देवता और ऋषियों के नाम। प्रत्येक मन्वन्तर में विष्णु के रूप। सात भविष्य मनुओं का विवरण। सूर्य एवं उनकी पत्नी छाया आदि एवं उनके पुत्र आदि। चार युगों में विष्णु का आविर्भाव।

(अ. ३-६) प्रत्येक द्वापर में व्यास के द्वारा वेद का चतुर्था विभाग, वर्तमान मन्वन्तर के २८ व्यासों के नाम; ब्रह्मशब्दार्थ। वर्तमान द्वापर में कृष्णद्वैपायन व्यास के द्वारा वेद का चतुर्द्धा विभाग; उनके पैलादि चार वेदपाठी शिष्य; व्यास के द्वारा सूत को पुराण पढ़ाना; ऋग्वेदका शाखा विभाग। यजुर्वेद का शाखा विभाग; याज्ञवल्क्य के द्वारा सूर्य से शुक्लयुजुर्वेद की प्राप्ति; कृष्णयजुर्वेदीय तैतिरीयसंहिता का प्रणयन। सामवेद और अथर्ववेद का शाखाविभाग; चार मूल पुराणसंहितायें; १८ पुराणों के नाम; ऋषियों का अवान्तरभेद।

(अ. ७) यमपाश से छुटकारा पाने का उपाय, यम-यमदूत का संवाद; विष्णुभक्त (जो यम के अधीन नहीं है) की पहचान।

(अ. ८-१६) विष्णु-आराधना के उपाय; चारों वर्णों के धर्म एवं आपद्धर्म; चारों आश्रमों के धर्म; जातकर्म-नामकरण-विवाहादिसंस्कारों का विवरण; गृहस्थों के सदाचारों का विवरण; श्राद्धभेद एवं श्राद्धविधियाँ।

(अ. १७-१८) नग्न-स्वरूप विषयक प्रश्न; दैत्यों से देवों की पराजय; देवताओं का भगवान् की शरण में जाना; भगवान् का मायामोह को प्रकट करना; मायामोह द्वारा दैत्यों के प्रति उपदेश; दैत्यों का क्षीणबल होना; तथा देवों से पराजित होना; कर्म के अवैद्य त्याग का फल; प्रसंगतः शतधनु और उसकी पत्नी की कथा; नास्तिकों के संग की हेयता।

चतुर्थ अंश-(अ. १-४) वैवस्वतमनु तथा इक्ष्वाकु के वंश का विवरण; सौभरिचरित; मान्धाता, त्रिशङ्कु, सगर, सौदास, खट्वाङ्ग और राम का वर्णन।

(अ. ५) निमि और निमिवंश का विवरण।

(अ. ६-९) सोमवंश; चन्द्रमा, बुध और पुरुरवा का चरित; जह्नु का गङ्गाजलपान; जमदग्नि और विश्वामित्र; काश्यपवंश; रजि और उनके पुत्र।

(अ. 10-12) ययातिचरित; यदुवंश; सहस्रार्जुनचरित; यदुपुत्र क्रोष्टु का वंश।

(अ. 13-15) सात्वत-वंश; स्यमन्तकमणि की कथा; अनमित्र-वंश; अन्धकवंश; शिशुपालचरित; वसुदेव की सन्ततियाँ।

(अ. 16-19) ययाति के पुत्र तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु तथा पुरु के वंश।

(अ. 20) कुरु का वंश।

(अ. 21-23) भविष्यराजाओं का वर्णन; इक्ष्वाकुवंशीय एवं मगधवंशीय राजाओं का विशेष विवरण।

(अ. 24) कलिधर्म; राजवंशवर्णन का उपसंहार; कलि के बाद सत्ययुग का आविर्भाव; पृथिवीगीता (पृथिवी के प्रति ममत्व की व्यर्थता का प्रतिपादन)।

पंचम अंश-(अ. 1-2) वसुदेव-देवकी-विवाह; भारपीड़ित पृथिवी द्वारा विष्णु की स्तुति करना; विष्णु का पृथिवी को धैर्य बंधाना; भगवान का देवकीगर्भ में प्रवेश।

(अ. 3-4) भगवान् (कृष्णरूपी) का देवकी गर्भ से जन्मग्रहण; योगमाया द्वारा कंस (देवकीभ्राता) की वंचना; वसुदेव-देवकी का कारागार से मोचन।

(अ. 5-6) पूतनावध; शकटभंजन; यामलार्जुनउद्धार; गोकुल से वृन्दावन में व्रजवासियों का जाना; कालियदमन; धेनुकासुर और प्रलम्ब का वध।

(अ. 15-18) कृष्ण को बुलाने के लिए कंस द्वारा अक्रूर को भेजना; केशी का वध; अक्रूर की गोकुलयात्रा; कृष्ण का मथुरा के लिए प्रस्थान; गोपियों का विरह; अक्रूर का मोह।

(अ. 19-21) कृष्ण का मथुराप्रवेश; कृष्ण द्वारा रजक का वध तथा माली एवं कुब्जा पर कृपा; धनुर्भङ्ग; कुबलयापीड़ चाणूरादि मल्ल तथा कंस का वध; उग्रसेन का राज्याभिषेक, कृष्ण का सान्दीपनि से अध्ययन।

(अ. 22-25) कृष्णद्वारा जरासन्ध की पराजय; द्वारका की रचना; कालयवन का भस्म होना; मुचुकुन्द का तपस्यार्थ गमन; बलराम की व्रजयात्रा तथा उनके द्वारा यमुना का आकर्षण।

(अ. 26-31) कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण; प्रद्युम्नहरण तथा कृष्ण द्वारा शम्बर-वध; कृष्ण द्वारा रुक्मि-वध, नरकासुर-वध तथा पारिजात हरण।

(अ. 32-38) बाणासुर-कन्या उषा का चरित; कृष्ण और बाणासुर युध्द, देहत्याग; यादवों का अन्त्येष्टिसंस्कार; अभिमन्युपुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक; पाण्डवों का स्वर्गारोहण।

षष्ठ अंश-(अ. 1-2) कलियुगधर्म; व्यास द्वारा कलियुग-स्त्री-शूद्रों का महत्व-वर्णन।

(अ. 3-5) निमेषादि कालावयव; नैमित्तिक और प्राकृतिकप्रलय का वर्णन; आत्यन्तिक प्रलय के प्रसंग में त्रिविध दुःखों का विवरण; भगवान् एवं वासुदेव शब्दों की व्याख्या; भगवान् के पारमार्थिक स्वरूप का प्रतिपादन।

(अ. ६-८) केशिध्वज और खाण्डिक्य की कथा में ज्ञान और योग का निरूपण; विष्णुपुराण की परम्परा और माहात्म्य।

विष्णुपुराण के पाठ

पुराणों में संभवतः भागवत और विष्णुपुराण-ये दो ही ऐसे पुराण हैं, जिनके पाठ अधिकतर मात्रा में सुरक्षित रहें हैं और यदि इनमें प्रक्षेप हुए हैं तो बहुत कम ही हुए हैं- यह कहना सर्वथा संगत है। इन पर लिखी गई टीकाओं के कारण इनके पाठों में अधिक गड़बड़ी न हो सकी-ऐसा प्रतीत होता है।

ऐसा होने पर भी इन दोनों पुराणों में पाठान्तरों की कमी नहीं है। विष्णुपुराण के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने अनेक स्थलों पर पाठान्तरों का उल्लेख किया है[1]; कहीं-कहीं 'अमुक श्लोक या श्लोकांश सर्वत्र पठित नहीं हुआ है'- ऐसा भी कहा है (द्र. ३.१०.२० टीका-क्वचित् पुस्तके अयमर्ध-श्लोको नास्त्येव)। कहीं-कहीं संपादकीय प्रमाद के कारण भी पाठभ्रंश हो गया है; ६.४.१५ में 'प्रणष्टे' पाठ है। गीताप्रेस संस्करण में; अन्य संस्करण में 'प्रनष्टे' पाठ है। व्याकरण की दृष्टि से दन्त्यन-घटित पाठ (प्रनष्टे) ही संगत है; द्र. पाणिनि 'नशेःषान्तस्य' (८.४.३६)। प्रतीत होता है कि गीताप्रेस के संपादक ने भ्रमवश 'प्रणष्टे' पाठ की कल्पना की है।

विष्णुपुराण की भाषा

इस पुराण में गद्यांश भी उपलब्ध होता है। चतुर्थ-अंश मुख्यरूप से गद्य में रचित है (बीच-बीच में कुछ श्लोक हैं)। प्राचीन गद्यरचनाशैली का प्रकृष्ट उदाहरण यहाँ मिल जाता है।

अपाणिनीय प्रयोग भी कहीं-कहीं दृष्ट होते हैं; 'अशीति' के स्थान पर 'आशीति' (२.१.८); पितृमातृतः (३.१०.१८); पिता-मातृतः होना चाहिये); 'एषो भवतो' (२.१२.४४; एष होगा); 'द्वे ऽयने दक्षिणोत्तरे' (१.३.९; द्वे अयने होगा)। असंगत विभक्ति का प्रयोग (द्वितीया विभक्ति का अशास्त्रीयलोप) १.१५.१०३ में तथा असंगतसन्धि १.२०.१५ (नमोऽस्तु विष्ववेत्येतत्) में देखी जाती है। उपर्युक्त कुछ प्रयोग छन्दोरक्षार्थ किये गये हैं; ऐसा प्रतीत होता है।

कुछ स्थलों में दुरुह प्रयोग मिलते हैं, यथा 'जाज्वलीति' (२.११.१५; यह यङ्लुगन्त है)। व्यक्तिनाम में पर्यायवाची शब्द का प्रयोग असंगत है, पर अन्तर्धिनृप के लिए अन्तर्धान शब्द १.१४.१ में प्रयुक्त हुआ है।

---

१. द्र. श्रीधरी टीका १.१२.६१; १.१२.६६; १.१३.१; २.४.८३; २.६.२०; २.७.१२; ३.११.१०२ (जीवानन्द संस्करण)।

विष्णुपुराण में छन्द और अलङ्कार

विष्णुपुराण में अनुष्टुप् के अतिरिक्त वंशस्थ (१.४.२६), पुष्पिताग्रा (३.७.१४-३५; १.६.१४६ तथा ६.८.६३) अन्तिमश्लोक, शार्दूलविक्रीडित (६.८.५४-५८), मालिनी (५.३०.८०), वसन्त तिलक (५.१८.५७, ५.२०.१०३-१०५), प्रहर्षिणी (५.१८.५५-५६; ५.२३.४७), और इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा-उपजाति (१.२.२३-२४; २.३.२४-२६; ४.१. ८३-९६; ५.१७.२७-३३; ४.२.७७-७९) छन्दों का प्रयोग मिलता है।

इस पुराण में अनुष्टुप् में नवाक्षरचरण भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुआ है; (द्र. ५.२५. ७) उपगीयमानो ललितगीतवाद्यविशारदैः प्रथम चरण में नवाक्षर हैं)। (यह जीवानन्द संस्करण का पाठ है; गीताप्रेस संस्करण में 'प्रगीयमानो' पाठ है, जो छन्द की रक्षा के लिए संपादक द्वारा कल्पित है-ऐसा प्रतीत होता है)।

इस पुराण में दो स्थलों पर ऐसी उपमायें मिलती हैं, जिनमें उपमान मानसशास्त्रीय तथा अध्यात्मशास्त्रीय वस्तु है (द्र. ५.६.३७-४३ वृन्दावन में वर्षा वर्णन के प्रसंग में; तथा ५.१०.२-१५ शरद्-वर्णन के प्रसंग में)। कुछ उपमाओं में शास्त्रीयदृष्टि भलीभांति प्रतिपादित हुई है, जैसे 'वटवः सामगा इव' (२.१३.२७; कटी हुई शिखा वाले कुश और काश की शिखाहीन सामाध्यायी ब्रह्मचारियों के साथ दी गई है।

विष्णुपुराण का अनुवाद

बंगला में इस पुराण का अनुवाद म.न. पंचानन भट्टाचार्य वङ्गवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

मुनिलाल गुप्त कृत अनुवाद गीताप्रेस (गोरखपुर) से प्रकाशित है।

अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी इसके कई अनुवाद होंगे-ऐसा प्रतीत होता है।

इस पुराण के दो अंग्रेजी अनुवाद प्रचलित हैं (मन्मथनाथ दत्त कृत तथा एच.एच. विलसन कृत)। प्रथम अनुवाद अनुवादमात्र है; पर द्वितीय अनुवाद में बहुसंख्यक विशद ट्प्पिणियाँ हैं। जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश डालती हैं। यह खेद का विषय है कि भारतीय विद्यापरम्परा से परिचित न रहने के कारण विलसन को बहुत भ्रम हुआ है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा-षोडशी, अग्निष्टोम, आप्तोर्याम, अतिरात्र, वाजपेय और गोसव को विलसन 'वेद के अंश विशेष' (portions of the Vedas) समझते हैं (पृ. ३७ की २१वी टिप्पणी) जो वस्तुतः यज्ञ विशेषों के नाम हैं।

दोनों अनुवादों में एक बड़ा दोष यह है कि अंग्रेजी अनुवाद के साथ श्लोकों की संख्या नहीं दी गई, जिससे कौन अनुवादवाक्य किस श्लोक का है- यह जानना कठिन हो जाता है।

विष्णुपुराण के टीकाकार

विष्णुपुराण की कई टीकायें प्रचलित हैं :-

(१) श्रीधर स्वामी की आत्मप्रकाश या स्वप्रकाश नामक टीका। यह टीका न अतिविस्तृत है और न अतिलघु है; टीकाकार के अनुसार यह टीका 'मध्यमा' है (द्र. तृतीय मङ्गलाचरण श्लोक)। यह टीका काशी में बिन्दु-माधव मन्दिर के पास लिखी गई थी। ऐसा मङ्गलाचरण श्लोक (१) से ज्ञात होता है। भागवतटीका के बाद यह टीका लिखी गई थी (भागवत २.६.३७ की श्रीधरीटीका)। यह टीका वेंक्टेश्वर प्रेस तथा जीवानन्द संस्करण में हैं।

(२) विष्णुचित्त कृत विष्णुचित्ती। यह वेंक्टेश्वर प्रेस संस्करण में प्रकाशित है।

(३) रत्नगर्भकृत वैष्णवाकूतचन्द्रिका-टीका। यह बम्बई से पत्रिका रूप में प्रकाशित हुई है। यह टीका विस्तृत है।

इस पुराण पर कुछ अप्रकाशित टीकायें भी हैं-

(१) चित्सुखमुनिकृत व्याख्या- इस टीका का उल्लेख श्रीधरस्वामी ने किया है (श्रीमत् चित्सुखयोगिमुख्यरचितव्याख्या, मङ्गलाचरणश्लोक २)। टीकाकार प्रसिद्ध अद्वैतवेदान्ती हैं।

(२) जगन्नाथपाठककृत स्वभाषार्थदीपिका।

(३) नृसिंहभट्टकृत टीका। (द्र. पुराणविमर्श, पृ. ५७८)।

विष्णुपुराण के संस्करण

टीका एवं अनुवाद के उपर्युक्त विवरण से विष्णुपुराण के संस्करणों का ज्ञान स्वतः हो जाता है, अतः पृथक् रूप से संस्करणों का उल्लेख नहीं किया गया। ऐसा सुनने में आया है कि बड़ौदा शोध-संस्थान में विष्णुपुराण के समीक्षात्मक संस्करण के लिए कोई योजना है। इस पुराण की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता के कारण इसकी समीक्षात्मक संस्करण की महती आवश्यकता है। भविष्यराजवृत्तान्तों से सम्बन्धित कई दुरूह बातों का निरूपण समीक्षात्मक संस्करण की सहायता से हो सकेगा-ऐसी आशा है।

विष्णुपुराण का रचनाकाल

विष्णुपुराण जिस रूप में प्राप्त है, उस रूप का रचना-काल नवम शताब्दी से पर्याप्त प्राचीन हैं, इसमें संशय नहीं, क्योंकि वाचस्पति मिश्र ने विष्णुपुराण का नाम तत्ववैशारदी टीका में लिखा है। रचनाकाल के विषय में आधुनिक विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इसका रचनाकाल पाँचवी शती में मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों के मत में इसके कुछ अंश (यथा मायामोह प्रकरण) अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। कुछ विद्वानों ने (जैसे

वैद्य जी) इसका काल नवींशती माना है, जो तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। यह प्रायेण निश्चित हैं कि विष्णुपुराण भागवत से प्राचीन है।

उपसंहार में इस पुराण के दो चार लक्षणीय स्थलों का उल्लेख किया जा रहा है। यह पुराण कृष्ण को अंशावतार मानता है (द्र. ५.१.४; ५.२.२; ५.२०.१०३ आदि)। जन्मग्रहण के समय कृष्ण चतुर्बाहु थे, यह ५.३.८ में कहा गया है। सूर्य के उदय और अस्त अवास्तव हैं, यह २.८.१४-१५ से सिद्ध होता है। क्षुधातृष्णा का वैज्ञानिक हेतु २.५.२० में कहा गया है। अहंकार के सात्त्विक आदि भेद की तरह महत्तत्व के भी सात्त्विकादि भेद हैं, यह १.२.३४ में कहा गया है (यह मत सांख्य के प्रचलित ग्रन्थों में नहीं मिलता)। परीक्षित से नन्दराजा पर्यन्त कालपरिमाण का उल्लेख ४.२४.१०४ में मिलता है। अद्वैतदृष्टि के प्रतिपादक वचन कई स्थलों पर मिलतो है; द्र. २.१६.१८; २.४.३१। काललुप्त हिरण्यगर्भशास्त्र के दो श्लोक २.१३.४३-४४ में उद्घृत किये गये हैं।

शिवपुराण

शिवमहापुराण के अनुसार महापुराणों की संख्या अष्टादश है।[1] इनके नाम इस प्रकार हैं-१. ब्रह्म, २. पद्‌म, ३. विष्णु, ४. शिव, ५. भागवत, ६. भविष्य, ७. नारद, ८. मार्कण्डेय, ९. अग्नि, १०. ब्रह्मवैवर्त, ११. लिङ्ग, १२. वाराह, १३. स्कन्द, १४. वामन, १५. कूर्म, १६. मत्स्य, १७. गरुड़, १८ ब्रह्माण्ड।[2] अधिकांश पुराणों में महापुराणों की यही नामावली दी गई हैं[3], किन्तु कुछ महापुराणों में शिव महापुराण के स्थान पर, चतुर्थ महापुराण के रूप में, वायुपुराण का नामोल्लेख मिलता है।[4] ऐसी अवस्था में किस महापुराण को चतुर्थ महापुराण के रूप में मान्यता दी जाय यह आशङ्का उठनी स्वाभाविक ही है।

शिवमहापुरण की महापुराणता

आशङ्का की इस अवस्था में पुराणों का अभिमत, पुराणों का बहुमत, पुराणों के प्रामाणिक व्याख्याकार एवम् अतिप्राचीन काल से प्रवाहित परम्परा के आधार पर ही निर्णय करना सम्भव एवं न्याय-संगत प्रतीत होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, केवल तीन पुराणों को छोड़ कर, स्पष्ट ही अधिकांश महापुराण की गणना करते हैं। पुराणों के इस बहुमत को तथ्य-विहीन एवं भ्रामक कहना कथमपि बुद्धि-सङ्गत नहीं माना जा सकता। पुराण-वाङ्मय अतीत की एक सुदीर्घ परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी सम्मति एक विशाल परम्परा की अभिव्यञ्जिका है। अतः पौराणिक बहुमत प्रामाणिक है, आदरणीय है।

अब आइये द्वितीय तथ्य पर विहङ्गम दृष्टिपात करे। श्रीमद्‌भागवत के विश्व-विश्रुत व्याख्याकार श्रीधर स्वामी भागवत की व्याख्या (१/१/४) में 'तथा च वायवीये' कह कर निम्न लिखित साढ़े तीन श्लोक उद्‌धृत करते हैं-

एतन्मनोमयं चक्रं मयासृष्टं विसृज्यते।
यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः।।

---

१. दशधा चाष्टधा चैततपुराणमुपदिश्यते। शिव. ७/१/१/४२

२. ब्राह्मं पाद्‌मं वैष्णवं शैवं भागवतं तथा।
भविष्यं नारदीयञ्च मार्कण्डेयमतः परम्।।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च।
स्कान्दं च वामनं चैव कौर्मं मात्स्यं च गारुडम्।।
ब्रह्माण्डं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः। शिव. ७/१/१, ४३-४५ तथा ५/४४/११९-१२२।।
अधिकांश पुराणों में महापुराणों की यही नामावली दी गई है।

३. देखिये-विष्णु. ३/६/२०-२४ तथा भागवत १२/१३/३-८; पद्‌म. उत्तर खण्ड, २६-३३/८१-८४ आदि।

४. देखिये-देवीभाग. १/३; मत्स्य. ५३ अध्याय तथा नारद पुराण, पूर्व खण्ड अध्याय ९५।

इत्युक्त्वासूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम्।
प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः।।
तेऽपि दृष्टतमा विप्रा प्रणम्य जगतां प्रभुम्।
प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्व्यशीर्यत्।।
तद्वनं तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्।

ये श्लोक शिवमहापुराण की पूर्ववायवीय संहिता के तृतीय अध्याय में अविकल उपलब्ध होते हैं।[1] इन श्लोकों की उपलब्धि वायुपुराण में नहीं होती। इनमें एकमात्र प्रथम श्लोक का भाव ही वायुपुराण में इस प्रकार से प्राप्त होता है-

भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत्।
कर्मणा, तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्।।[2]

वहाँ इससे अधिक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। वायुपुराण को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उस प्रसङ्ग का निर्देशमात्र कर रहा है, जिसका विस्तार शिवमहापुरण में उपलब्ध होता है। वायुपुराण की सरणि से प्रतीत होता है कि वह अति प्रसिद्ध कथानक का निर्देश भर कर रहा है। इस से यह बात पूर्ण प्रमाणित हो जाती है कि श्रीधरस्वामी जैसे प्रकाण्ड पौराणिक भी 'वायवीय' शब्द से वायुसंहिता से समलङ्कृत शिवमहापुराण का ही अर्थ समझते थे और सङ्केतित भी करते थे। श्रीधर स्वामी का समय १२वीं अथवा १३वीं शती माना जाता है।

'सौन्दर्यलहरी' अपने साहित्यिक सौन्दर्य एवं भावशबलता के लिये विद्वन्मण्डली में विख्यात है। इस पर लक्ष्मीधर की एक व्याख्या है- 'लक्ष्मीधरा'। इसमें एक पञ्चाशत् तत्त्वों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि- "ये एक पञ्चाशत तत्त्व वायवीय संहिता आदि सभी शैवपुराणों में उल्लिखित हैं।[3] इस वाक्य में उल्लिखित "वायवीय संहिता आदि सभी शैव पुराणों में" विशेष ध्यान देने योग्य है। पहली बात यह है कि 'वायवीय संहिता' को शैवपुराण कहा गया है। दूसरी बात यह है कि वायुपुराण पुराण है, संहिता नहीं। इसकी प्रसिद्धि वायुपुराण के रूप में है, वायु संहिता के रूप में नहीं। वायुसंहिता शिवपुराण का एक विशिष्ट अंश है, उत्तरभाग है। अकेले वायुसंहिता में ही ४१२६ श्लोक हैं। वायु पुराण का विभाजन

१. एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते।
यत्रास्यशीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः।। आदि।
शिव. ७/१/३/५३।।
२. वायुपुराण-२-७।।
३. देखिये-सौन्दर्यलहरी, प्रथम भाग, श्लोक ११ पर लक्ष्मीधरा व्याख्या।

भी संहिता में न होकर 'पाद' में किया गया है। यथा- १. प्रक्रिया पाद, २. अनुषङ्ग पाद, ३. उपोद्घात पाद और ४. उपसंहार पाद।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह निर्णीत होता है कि वायवीय संहिता को भी कभी-कभी शिवपुराण के रूप में उल्लिखित किया जाता था। यही कारण है कि 'इति वायवीये' कह कर जिस ग्रन्थ का निर्देश किया जाता था वह अधिकांश स्थलों में 'वायुपुराण' का बोधक न होकर शिवमहापुराणस्थ 'वायवीयसंहिता' का ही बोधक होता था। सौन्दर्यलहरी की 'लक्ष्मीधरा' टीका में जिन एकपञ्चाशत् तत्त्वों के वायवीयसंहितादि शैवपुराणों में उल्लिखित होने की बात की गई है वे सभी के सभी एकत्र शिवमहापुराण की वायवीय संहिता में उपलब्ध होते हैं।[2] वायुपुराण में इनकी चर्चा नहीं की गई हैं।[3]

चतुर्थ शैवपुराण की श्लोक-संख्या चतुर्विंशति सहस्र बतलाई गई है। पुराणों के अनुसार 'वायवीय' पुराण की श्लोक-संख्या चतुर्विंशति सहस्र होनी चाहिये।[4] यह लक्षण शिवमहापुराण में पूर्णरूप से चरितार्थ होता है। यतः इसकी श्लोक संख्या चतुर्विंशति सहस्र ही है-

क) व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशतिसहस्रकम्।
शैवं तत्र चतुर्थं वै पुराणं सप्तसंहितम्।। शिव. १/२/५६।।

ख) व्यासेन तत्तु संक्षिप्तं चतुर्विंशतिसहस्रकम्।
शैवं तत्र पुराणं वै चतुर्थं सप्तसंहितम्।। शिव. ७/१/१/५८।।

---

१. देखिये-वायुपुराण, वेंकटेश्वर प्रेस प्रकाशन।
२. तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्धयन्तामित्यनुस्मरन्।
पञ्च भूतानि तन्मात्राः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।।
ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्चकर्मविभागशः।
त्वगादिधातवः सप्त पञ्चप्राणादिवायवः।।
मनो बुद्धिरहंख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपुरुषौ।
रागो विद्याकले चैव नियतिः काल एव च।।
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदा शिवौ।
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः।। शिव. ७/१/३३/१२-१५।।
३. देखिये-वायुपुराण, वेङ्कटेश्वर प्रेस, मुम्बई।
४. यत्र तद्वायवीयं स्याद् रुद्रमहात्म्यसंयुतम्।
चतुर्विंशतिसहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते।। मत्स्य पु. ५३/१८
पुराणं यन्मयोक्तं हि चतुर्थं वायुसंज्ञितम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रं शिवमहात्म्यसंयुतम्।। वायवीय, ४ पा. ७२ अ.

वायुपुराण उक्त लक्षण से पूर्ण विसंगत है। क्योंकि इस में श्लोकों की संख्या केवल द्वादश सहस्र ही निर्दिष्ट की गई है-"एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः" (वायु. ३२/६६)। आज तो इसकी श्लोक-संख्या इससे भी कम उपलब्ध होती है। इस प्रकार सप्रमाण यह कहा जा सकता है कि 'वायुपुराण' को चतुर्थमहापुराण के सिंहासन पर बैठानेवाले स्वयं नारदपुराण तथा मत्स्य पुराण के द्वारा निर्दिष्ट श्लोक-संख्या रूपी निकष पर कसने पर 'वायुपुराण' एकदम दोटूक हो जाता है, जब कि शिव पुराण उस पर खरा उतरता है।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त एक और प्रबलतम तथ्य है, जो शिवपुरण को महापुराण सिद्ध करने में रामबाण है। भगवान् शिव त्रिदेवों में- ब्रह्मा, विष्णु, महेश में- अन्यतम हैं। लोकप्रसिद्धि की दृष्टि से अथवा साहित्य के आलम्बन की दृष्टि से शिव की महिमा विष्णु से न्यून नहीं थी और न आज भी न्यून है। पौराणिक युग में शिव की महिमा की प्रबलता का प्रबल प्रमाण है अधिकांश पुराणों में उनके महत्त्व का प्राधान्येन निरूपण। अष्टादशमहापुराणों में दशपुराण शिवपरक कहे गये हैं।[1] ऐसी अवस्था में जब कि ब्रह्मा के नाम से 'ब्रह्ममहापुराण' तथा विष्णु के नाम से 'विष्णुमहापुराण' की रचना की गई तो शिव के नाम पर शिवमहापुराण का न होना विश्व का अद्भुत आश्चर्य माना जायेगा। अतः हम यह स्वीकार करने के लिये बाध्य हैं कि शिव के महत्त्व को देखते हुए उनके नाम से निर्मित शिवपुराण ही महापुरण है, न कि वायुपुराण।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शिवपुराण ही चतुर्थ महापुराण होने का अधिकारी है और यही पुराण 'वायवीय' के भी नाम से जाना जाता था, माना जाता था। इसे वायवीय कहे जाने का प्रमुख कारण है कि इस में वायवीयसंहिता का वर्ण्यविषय की दृष्टि से अधिक महत्त्व है। उद्धृत करने योग्य दार्शनिक तथा धार्मिक बातें इसी संहिता में प्राधान्येन वर्णित हैं। 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' इस नीति के अनुसार 'वायवीय' इस नाम से शिवमहापुराण एवं उसकी वायवीय संहिता ही जानी-मानी जाती थी।

शिवमहापुराण का काल

शिवमहापुराण की कैलास संहिता के सोलहवें तथा सत्रहवें अध्याय में प्रत्यभिज्ञादर्शन के विशद विवेचन के अवसर पर 'शिवसूत्र' के दो सूत्रों- 'चैतन्यमात्मा' एवं 'ज्ञानं बन्धः' का तथा उन पर लिखित 'वार्तिक' का स्पष्ट निर्देश किया गया है।[2] 'शिवसूत्र' एवं उस पर

१. अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः। स्कन्द., केदारखण्ड १।।

२. चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्तितम्।। चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञानक्रियात्मकम्।
स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यत्र स आत्मा परिकीर्तितः।। इत्यादि शिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया।
ज्ञानं बन्ध इतीदंतु द्वितीयं सूत्रमीशितुः।। शिवपु. ६/१६/४४-४६।।

लिखित 'वार्तिक' (भास्करविरचित)[१] का काल क्रमशः नवमशताब्दी का पूर्वार्ध तथा दशम शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।[२] शिवमहापुराण में शिवसूत्र का उल्लेख एकाधिक स्थलों पर हुआ है।[३] अलबरूनी (१०३० ई.) भी पुराणों के उद्धरण के प्रसंग में शिवमहापुराण का उल्लेख करता है।

इसके अतिरिक्त शिवमहापुराण की कोटिरुद्रसंहिता में महर्षि गौतम की एक कथा वर्णित है।[४] उनका कुछ ऋषियों से कलह चल रहा था। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उन ऋषियों ने कुछ षड्यन्त्र रचा। फलतः निर्दोष महर्षि गौतम को अपना आश्रम छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। उनका यह आश्रम दक्षिण दिशा में 'ब्रह्मगिरि' पर्वत पर था।[५] कुछ समय के अन्तराल पर जब गौतम को इस षड्यन्त्र का पता चला तो उन्होंने उन लोगों को शाप देते हुए कहा- "मुझ शिव-भक्त को दुःख पहुँचाने वाले तुम सब-के-सब दुरात्मा हो, दुष्ट हो। आगे चल कर तुम सब वेद-विमुख होओगे। आज से तुम लोगों के भाल मृत्तिका से लिप्त हुआ करेंगे। इसी कारण तुम लोगों को नारकीय यातना भी भोगनी पड़ेगी। उसके बाद तुम लोग दुःख दारिद्रय से पीड़ित, दूसरे की निन्दा करने वाले, शठ चाण्डाल बनोगे। तुम्हारा शरीर तप्त-मुद्रा से अङ्कित होगा।[६] महर्षि के इस शाप को सुनकर शैवधर्म-बहिष्कृत, खिन्नहृदय वे सम्पूर्ण ऋषि 'काञ्ची' नगरी में जाकर निवास करने लगे।[७]

निश्चय ही यह कथा वैष्णव ऋषि रामानुज एवम् उनके अनुयायियों की ओर स्पष्ट सङ्केत करती है। रामानुज के जीवन का उत्तरार्द्ध 'काञ्ची' नगरी में ही व्यतीत हुआ था। अतः उनके मतावलम्बियों का वह नगरी केन्द्र मानी जाती है। भाल में मृत्तिकालेपन, तप्तमुद्रा से शरीर को अङ्कित करना आदि बातें रामानुज सम्प्रदाय की विशेषता हैं।

---

१. यहाँ भास्कररचित वार्तिक अभिप्रेत है; क्योंकि भास्कर ही 'शिवसूत्र' के प्रत्यक्षकर्ता आचार्य 'वसुगुप्त' के सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे।

२. देखिये- पुराणविमर्श, पृष्ठ १०५।

३. मूलविद्या शिवं शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरं तथा। शिव. ७/२/१३/५१

४. गौतम उवाच- यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा में विशेषतः।
शिवभक्तस्य सततं स्युर्वेदविमुखः सदा।। शिव. ४/२७/३५

५. दक्षिणस्यां दिशि हि यो गिरिब्रह्मेति संज्ञकः।
तत्र तेन तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तथा। वही, ४।३४।३।

६. यूयं सर्वे दुरात्मानो दुःखदा मे विशेषतः।
शिवभक्तस्य सततं स्युर्वेदाविमुखा सदा।। शिव. ४/२७/३५
अद्य प्रभृति भालानि मृल्लिप्तानि भवन्तु वः।
संस्रध्वं नरके यूयं भालमृल्लेपनाद द्विजाः।। वही, ४/२७/४८
ततो भवन्तु चाण्डाला दुःखदारिद्र्यपीडिताः।
शठा निन्दाकराः सर्वे तप्तमुद्राङ्किताः सदा।। वही, ४/२७/४३।।

७. ततस्तैः (ततो हि) खिन्नहृदया ऋषयस्तेऽखिला द्विजाः।
काञ्च्यां चक्रुर्निवासं हि शैवधर्मबहिष्कृताः।। वही, ४/२७/४५।।

दक्षिण भारत में शैवों एवं वैष्णवों, विशेषतः रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायियों में एक लम्बी अवधि तक संघर्ष चलता रहा। इसी संघर्ष के कारण कट्टर शैवों को वीरशैव तथा कट्टर वैष्णवों को वीरवैष्णव कहा जाता है। स्पष्ट है, रामानुज सम्प्रदाय ही वीरवैष्णव है। अतः शिवमहापुराण का उत्तर काल तेरहवीं शताब्दी मानना ही उपयुक्त होगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सम्पूर्ण शिवमहापुराण तेरहवीं शताब्दी का ही है। इसका बहुत-सा भाग प्राचीन पौराणिक काल का ही है। पूरे पुराण को अर्वाचीन ठहराने का प्रयास केवल दुःसाहस और परम्परा-विरुद्ध होगा।

शिवमहापुराण का रचना-स्थल

शिवमहापुराण, कोटिरुद्रसंहिता के प्रारम्भिक अंश, के सूक्ष्म परिशीलन से ज्ञात होता है कि इस पुराण की रचना, प्रयाग को केन्द्र में रखते हुए ब्रह्मावर्त क्षेत्र, गंगा-यमुना के मध्य क्षेत्र, में कहीं हुई थी। इस कथन का कारण यह है कि इसमें चारों दिशाओं के सुविख्यात शिव-लिङ्गों का वर्णन किया गया है। इस प्रसङ्ग में विमुक्ति-दायिनी काशी और सूर्यवंशीय राजाओं की राजधानी साकेत को पूर्व दिशा में बतलाया गया है।[1] दक्षिण दिशा में चित्रकूट, तत्रस्थ अत्रीश्वर और कामदवन की स्थिति कही गई है।[2] गोदावरी और उसका पश्चिम दिग्भाग भी दक्षिण में वर्णित है। पश्चिम दिशा में कपिलानगरी, पश्चिम सागर तट और गोकर्ण-क्षेत्र के शिव-लिङ्गों का महत्वपूर्ण वर्णन है।[3] उत्तर दिशा में महावनस्थ गोकर्णक्षेत्र, चन्द्रभालमहादेव तथा नैमिषारण्य में वर्तमान ऋषिश्वर शिव-लिङ्ग की चर्चा की गई है। देवप्रयाग और नयपाल के पशुपतीश्वर महादेव को भी उत्तर दिशा में गिनाया गया है।[4]

---

१. पूर्वस्यां दिशि जातानि शिवलिंगानि यानि च।
सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते।। शिव. ४/२/३०

२. दक्षिणस्यां दिशि काश्चिदत्रीश्वर इति स्वयम्।
लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च।।
दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नामयद्वनम्।
चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम्।। वही, ४/३/३, ७।।

३. शिवमहापुराण, कोटिरुद्र संहिता, अध्याय ८।।

४. उत्तरस्यां दिशायां च शिवलिङ्गानि यानि च।
शृणुतादरतो विप्रा औत्तराणां विशेषतः।।
नैमिषारण्यतीर्थे, तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम्!।
ऋषीश्वरमिति ख्यातं शिवलिंगं सुखप्रदम्।।
नयपालाख्यपुर्यां तु प्रसिद्धायां महीतले।
लिंगं पशुपतीशाख्यं सर्वकामफलप्रदम्।। शिव. ४/११/२, ३, १४, १८।।

इन शिव लिङ्गों और पवित्र तीर्थों के वर्णन को पढ़ने से शिवपुराण की रचना-स्थली वही प्रतीत होती है, जो ऊपर वर्णित है।

शिवमहापुराण एवं शैवदर्शन

शिवमहापुरण शैवदर्शनों एवं मतो का आकर ग्रन्थ है। समस्त शैवदर्शनों की अधिकांश सैद्धान्तिक बातें इस पुराण में कहीं विस्तार के साथ तो कहीं संक्षेप में वर्णित हैं। इस सभी का पूर्ण सम्यग् विश्लेषण संभव नहीं हे। अतः संक्षेप में ही यहाँ यह देखने का प्रयास किया जायगा कि किन-किन शैव-दर्शनों ने शिवमहापुराण को प्रभावित किया है-

क) पाशुपत दर्शन

शैवदर्शनों में 'पशुपत दर्शन' सब से अधिक प्राचीन है। पाशुपत आगम महाभारत के काल में भी सुपरिचित थे। वेद की भाँति इन्हें भी स्वतः प्रमाण माना जाता था। इनके अनुयायी इन शास्त्रों का वेद से भी अधिक आदर करते थे।[1] शिवमहापुराण पाशुपत धर्म एवं दर्शन से सर्वाधिक प्रभावित है। 'पाशुपतसूत्र' के बहुत-से सूत्र शिवमहापुराण में मन्त्र के रूप में उल्लिखित किये गये हैं।[2] इन सूत्रों में से कुछ का उल्लेख कतिपय शैव उपनिषदों में भी हुआ है। यही कारण है कि इनका उद्धरण करते हुए शिवमहापुराण 'इति श्रुतयः' अथवा 'इति श्रुति=' कहता है। उदाहरण के लिये कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

क) ईशानः सर्वविद्यानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये।

मत्त एव भवन्तीति वेदा= सत्यं वदन्ति हि। शिव. ६/३/१९

तुलना- ईशान = सर्वविद्यानाम्।। पाशु. ५/४२।।

---

१. देखिये- 'न्यायसिद्धाञ्जन' की पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी लिखित हिन्दी भूमिका, पृष्ठ-७।

२. भवे भवे नाति भव इति पाद्यं प्रकल्पयेत्।
वामदेवाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम्।।
ज्येष्टाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रं प्रकल्पयेत्।
श्रेष्टाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम्।।
रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम्।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धं दद्यात् सुसंस्कृतम्।।
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत्।
बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत्।।
बलाय नम इत्युक्त्वा धूपं दद्यात्प्रयत्नतः।
बलप्रमथनायेति सुदीपं चैव दापयेत्।। शिव. ६/७/७२-७६।।
तुलना-भवे भवे नातिभवे।। पाशु. १/४२।। वामदेवाय नमो ज्येष्टाय नमो रुद्राय नमः। वही, २/२२।। कालायनमः। वही, २/२३।। कलविकरणाय नमः। वही, २/२४।। बलप्रमथनाय नमः। वही, २/२५।। सर्वभूतदमनाय नमः। वही, २/२६।।

ख) सद्योजातं प्रपद्यामीत्युपक्रम्य सदाशिवम्।

इति **प्राहश्रुतिस्तारं ब्रह्मपञ्चकवाचकम्**।। वही ६/१४/२०।।

तुलना-सद्योजातं प्रपद्यामि।। पाशु. ४०।

पाशुपत व्रत, पाशुपत ज्ञान तथा पाशुपत योग की चर्चा से शिवमहापुराण के बहुत-से स्थल अलङ्कृत हैं।[1] पाशुपत व्रत की इस लोकप्रियता का कारण था उसका श्रुति के अनुकूल होना।[2] शिवमहापुराण का कथन है कि शैवदर्शन तथा धर्म के आधारस्तम्भ आगमों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- श्रौत तथा अश्रौत। श्रौत आगम श्रुति के अनुकूल अपने सिद्धान्तों की स्थापना करते हैं, जब कि अश्रौत आगम श्रुति की बिना अपेक्षा किये स्वतन्त्र रूप से लिखे गये हैं।[3] पाशुपतदर्शन ही नकुलीश या लकुलीश पाशुपतदर्शन भी कहा जाता है।

ख) सिद्धान्त शैव

स्वतन्त्ररूप से लिखे गये 'कामिक' आदि आगमों की संख्या अष्टादश है। इनके द्वारा जिस दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है उसे 'सिद्धान्त शैवदर्शन' कहते हैं, क्यों कि स्वतन्त्र रूप से लिखित ये आगम 'सिद्धान्त' भी कहे गये हैं। सिद्धान्त शैव के सिद्धान्तों का प्रभाव शिवमहापुराण पर बहुत ही स्पष्ट ढङ्ग से पड़ा है। उनका यह प्रभाव पशु, पाश एवं पति[4] (परमात्म शिव) के वर्णन के अवसर पर देखा जा सकता है। शक्ति के वर्णन के विषय में भी शिवमहापुराण 'सिद्धान्त शैव' से पर्याप्त प्रभावित है।

ग) प्रत्यभिज्ञा दर्शन

'प्रत्यभिज्ञादर्शन' अद्वैतदर्शन के नाम से भी जाना जाता है। काश्मीर में विकसित होने के कारण इसे 'काश्मीरशैवदर्शन' भी कहते हैं। शिवमहापुरण के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अद्वैतविषयक विचारधारा के विषय में यह महापुराण 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' से

---

१. (क) व्रतं पाशुपतं कृत्वा त्वथर्वशिरसि स्थितम्। शिव. ७/२/८/१८।।
परं पाशुपतं यत्र व्रतं ज्ञानं च कथ्यते।। वही, ७/१/३२/१३।।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो व्रतं पाशुपतं परम्। वही, ७/१/३२/१७।।
ख) तेषु पाशुपतो योगः शिवं प्रत्यक्षयेद् दृढम्। वही, ७/१/३२/१७।।
तस्माच्छ्रेष्टमनुष्ठानं योगः पाशुपतो मतः।। वही, ७/१/३२/१८।।

२. तत्र लीनाश्च मुनयः श्रौतपाशुपतव्रताः। वही, ७/२/४०/३५।।
व्रतं पाशुपतं श्रौतमथर्वशिरसि श्रुतम्। वही, ७/१/३३/२।।

३. शैवागमो हि द्विविधःश्रौतोऽश्रौतश्च संस्कृतः।
श्रुतिसारमयः श्रौतः स्वतन्त्र इतरो मतः।। वही, ७/१/३२/११।।

४. देखिये-शिवमहापुराण की वायवीय संहितायें, विशेषतः पूर्ववायवीय संहिता का पंचम षष्ठ अध्याय।

पर्याप्त प्रभावित है। पुराण की पूर्णता के पूर्व अवश्य ही 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' का विकास एवं विस्तार हो चुका था। इस तथ्य का साक्ष्य स्वयं शिवमहापुराण में ही उपलब्ध है। शिवमहापुराण की कैलास संहिता में प्रत्यभिज्ञादर्शन के तीन मान्य ग्रन्थों- 'शिव सूत्र'[1], 'शिवसूत्रवार्तिक'[2] एवं 'विरूपाक्षपंचाशिका'[3] -का उल्लेख हुआ है। इस से यह बात सिद्ध होती है कि शिवमहापुराण के काल तक 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' अपनी पूर्ण प्रौढि को पहुँच चुका था।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि शिवमहापुराण में इन द्वैत एवम् अद्वैत-उभयविध दर्शनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। द्वैतदर्शनों में पाशुपतदर्शन, विद्येश्वरसंहिता एवं वायवीय संहिताओं में तथा सिद्धान्तशैवदर्शन वायवीय संहिताओं में अथ च अद्वैतदर्शन (प्रत्यभिज्ञादर्शन) कैलास संहिता में विशेष रूप से वर्णित किया गया है।

यहाँ यह निर्देश कर देना निरर्थक न होगा कि प्रत्यभिज्ञादर्शन का विस्तार क्षेत्र शारदादेश कश्मीर था, पाशुपतदर्शन की विलास भूमि गुर्जरदेश (गुजरात) एवं सिद्धान्त शैवदर्शन की लीला स्थली दक्षिण भारत की भूमि थी। उन सभी दर्शनों में प्रचुर साहित्य की संरचना हुई है। लोकप्रियता की दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा दर्शन और सिद्धान्त-शैवदर्शन आगे हैं।

दार्शनिक एवं धार्मिक अध्ययन

शिवमहापुराण के अध्ययन को, सौविध्य की दृष्टि से, दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- दार्शनिक एवं धार्मिक। दार्शनिक दृष्टि से उन छत्तीस तत्त्वों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनका वर्णन इस महापुराण में उपलब्ध होता है।

परं ब्रह्म एवं परमात्म शिव

परंब्रह्म-शिव- शिव महापुराण की रुद्रसंहिता के सृष्टि खण्ड में कहा गया है कि महाप्रलय के समय स्थावर-जङ्गम सभी विनष्ट हो चुके थे। उस समय सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था। सूर्य, ग्रह, नक्षत्रमण्डल, चन्द्र, दिन, रात्रि, अग्नि, अनिल, भू, जल आदि कुछ भी न थी। किन्तु ऐसी भी अवस्था में एकमात्र सद्ब्रह्म ही अवशिष्ट था। यह एक ऐसी सत्ता है जो वाणी और मन का कभी भी विषय नहीं बन सकती। उसका न कोई नाम है और न रूप ही। वह न तो स्थूल है और न कृश ही। सत्य तो यह है कि उसकी कोई

१. चैतन्यमात्मेति मुने शिवसूत्रं प्रवर्तितम।। शिव. ६/१६/४४।।
ज्ञानं बन्ध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितु। वही, ६/१६/४६।।

२. इत्यादिशिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया।। वही, ६/१६/४६।।

३. .... श्रीविरूपाक्षनिर्मिते/शास्त्रे पंचाशिके....।। वही, ६/१६/४४।।

भी परिभाषा नहीं दी जा सकती। श्रुति भी चकित होकर उसकी सत्ता स्वीकार करती है। यह सत्य, ज्ञान, अनन्त, परानन्द एवं परज्योतिः स्वरूप, अप्रमेय, अनाधार तथा अविकार है। उसकी कोई आकृति भी नहीं है। वह निर्गुण, निष्कल, योगिगम्य सर्वव्यापी एवम् एककारक है।[1] वह निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य एवं निरुपद्रव भी कहा गया है। वह आदि अन्त तथा विकासशून्य है। शिवमहापुराण उसी को परं ब्रह्म शिव की संज्ञा से अभिहित करता है।[2] यह मूर्ति शिव-तत्त्व (परमात्म-परंब्रह्म-शिव की द्वितीयेच्छा- कुछ काल के अन्तराल पर उसकी इच्छा दो रूपों में विभक्त होने की हुई। अतः उसने लीला से अपनी एक मूर्ति कल्पित की।[3] यह मूर्ति शिव-तत्त्व (परमात्म-शिव) कही गई है।[4]

एक ही सत्ता के द्विविध रूप

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि परंब्रह्म शिव एवं परमात्म-शिव एक ही सत्ता के दो रूप हैं। एक ही सत्ता का यह भेद शक्ति के कारण होता है। इन दोनों तत्त्वों में शक्ति ही भेदक तत्त्व है। शक्ति के अस्फुट अतः शान्त रहने पर परंब्रह्म शिव एवं शक्ति के सुस्फुट तथा कार्योन्मुख होने पर परमात्म-शिव कहा जाता है।[5] शक्ति (कला)[6] के निष्क्रिय अतः पूर्ण विलीन रहने के कारण परंब्रह्म शिव को निष्कल शिव तथा उसके सक्रिय अत एव प्रकट होने के कारण परमात्म-शिव को सकल शिव भी कहा जाता है।[7] इस प्रकार एक ही सत्ता शक्ति-भेद के कारण द्विविध रूप को धारण करती है।[8] वस्तुतः निष्कल एवं

---

१. अभिधत्ते स चकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः।
सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दपरम्महः।।
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृतिः।
निर्गुणं योगिगम्यं च सर्वव्याप्येककारकम्।। शिव. २/१/६/११-१२।।

२. यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम्।। वही. ४/४१/१४।

३. कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत् किल। वही, २/१/६/१४।
अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया। वही, २/१/६/१५।।

४. यच्चादौ हि समुत्पन्नं निर्गुणात् परमात्मनः।
तदेव शिवसंज्ञं हि वेदवेदान्तिनो विदुः।। शिव. ४/४२/२।।

५. निर्गुणत्वे शिवाहोहि परमात्मामहेश्वरः।
परं ब्रह्माऽव्ययोऽनन्तो महादेवेतिगीयते।। वही, २/१/४/३३।।

६. कला या परमाशक्तिः कथिता परमात्मनः। वही, ७/२/४/२६।।

७. सकलं निष्कलंचेतिस्वरूपद्वयमस्ति मे। वही, १/६/३०।।
तदेव शिवरूपं हि पठ्यते च मुनीश्वराः।
सकलं निष्कलं चेतिद्विविधं वेदवर्णितम्।। वही, ४/४/१/६।।

८. ...शिव एव मुनीश्वराः।
स एव सगुणो ज्ञेयः शक्तिमत्वाद् द्विधाऽपि सः।। वही, ४/४२/२१।।

सकल शिव में भेद न होकर पारमार्थिक रूप से अभेद ही है।[1] संसार का बृंहण करने के कारण परमात्म-शिव को ब्रह्म भी कहते हैं।

परमात्म-शिव की शक्ति- परमात्म-शक्ति की परा शक्ति स्वाभाविकी एवं विश्वविलक्षणा है। यह एक होते हुए भी भानु की प्रभा की भाँति अनेक रूपों में प्रकाशित होती है। वहीं से विस्फुलिङ्ग की भाँति इससे विविध शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। यह इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूपा है। यह इस प्रकार हो, यह इस प्रकार न हो- इस प्रकार कार्यों का नियमन करने वाली शक्ति इच्छा शक्ति कही जाती है। बुद्धि रूप होकर कार्य, करण, कारण और प्रयोजन का ठीक-ठीक निश्चय करनेवाली शक्ति ज्ञानशक्ति कही जाती है। यह आमर्शात्मक होती है। संकल्परूपिणी परमात्म-शिव की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत् को क्षण भर में कल्पना कर देने वाली शक्ति क्रिया शक्ति कही गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक पराशक्ति ही इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप से त्रिधा कही गई है।[2]

परमात्म-शिव के पञ्च कृत्य- परमात्म-शिव के पञ्च-विध जागतिक कृत्य बतलाये गये हैं- सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह।[3] इनकी व्याख्या इस प्रकार की गई है-

१. सृष्टि - संसार की रचना का जो प्रारम्भ है, उसी को सर्ग अथवा सृष्टि कहते हैं।
२. स्थिति अथवा पालन- शिव से पालित होकर सृष्टि का सुस्थिर रूप से रहना ही उसकी स्थिति है।
३. संहार- संसार का विनाश संहार है।
४. तिरोभाव- प्राणों के उत्क्रमण को 'तिरोभाव' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है- रुद्र आदि के लोकों को प्राप्त करानेवाला एवं पूर्ण मुक्ति को प्राप्त कराने वाला।[4]
५. अनुग्रह- सृष्टि, स्थिति, संहार एवं तिरोभाव से मुक्ति मिल जाना ही परमात्म-शिव

---

१. एकस्त्वमेव सदसद द्वयमद्वयमेव च।
स्वर्ण कृताकृतमिव वस्तुभेदो न चैव हि।। वही, २/३/४६/१८।।
२. तथा शक्तित्रयोत्थानं शक्तिः प्रसवधर्मिणी। शिव. ७/२/४/३५।।
३. सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः।
पञ्चैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ।। वही, १/१०/२।।
४. तिरोभावो द्विधा भिन्न एको रूद्रादिगोचरः।
अन्यश्च देहभावेन पशुवर्गस्य सन्ततेः।
भोगानुरञ्जनपरः कर्मसाम्यक्षणावधि।
कर्मसाम्ये स एकः स्यादनुग्रहमयो विभुः।। शिव. ६/१५/६-७।।

का अनुग्रह है। अनुग्रह भी दो प्रकार का होता है। पर मुक्ति का दाता एवम् अपर मुक्ति का दाता।[1]

ये पाँच कृत्य परमात्म-शिव में नित्य बतलाये गये हैं। इनमें सृष्टि आदि, चार कृत्य संसार का विस्तार करने वाले कहे गये हैं। पञ्चम कृत्य अनुग्रह मोक्ष का हेतु है। परमात्मा-शिव के अनुग्रह से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। अनुग्रह परमात्म-शिव में ही अचल भाव से स्थिर रहता है।

परमात्म-शिव के रूप में औपनिषदिक ब्रह्म- वस्तुतः यथार्थ बात तो यह है कि शैवाचार्यों ने औपनिषदिक ब्रह्म को ही लेकर, उसके लिये वेदान्त में वर्णित बातों की शैव दर्शन के दृष्टिकोण के अनुसार व्याख्या कर, शिव (निष्कल एवं सकल शिव) के रूप में वर्णन किया है।[2]

शक्ति-तत्त्व

शक्ति तत्त्व का प्रादुर्भाव परमात्म-शिव से बतलाया गया है। वस्तुतः परमात्म-शिव एवं शक्ति में कुछ भी भेद नहीं है। शक्ति के बिना परमात्म-शिव की कल्पना ही संभव नहीं है। परमात्म-शिव (सकल शिव) के अस्तित्व में आने का एकमात्र कारण शक्ति (कला) ही है।[3] ये दोनों ही अभिन्न हैं। जैसे शिव हैं वैसी ही देवी हैं और जैसी देवी हैं वैसे ही शिव हैं। चन्द्र एवं चन्द्रिका की भाँति इन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है।[4] शक्ति को संसार की निर्माणकर्त्री कहा जाता है। यह शुद्धाध्वा का उपादान कारण मानी गई है।

शक्ति, जिसे परा प्रकृति भी कहा जाता है, का द्विधा परिणाम होता है- शब्द- भावना एवम् अर्थ भावना। अर्थात शक्ति शब्द एवम् अर्थ के रूप में परिणमित होती है। इसे पशुओं की पाश-विच्छेदिका भी कहा जाता है।

तत्त्व

शक्ति (बिन्दु) से सदाशिवतत्त्व की उत्पत्ति बतलाई गई है।[5] तत्त्वों के क्रम में इनका तृतीय स्थान है। इनमें क्रिया-शक्ति की वर्तमानता रहने पर भी ज्ञान-शक्ति की प्रबलता

---

१. अनुग्रहोऽपि द्विविधस्तिरोभावादिगोचरः।
प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः।। वही, ४/१४/२८।।

२. देखिये- श्वेताश्वतरोपनिषद् और पूर्ववायवीय संहिता, विशेषत-श्वेताश्वतरोपनिषद का तृतीय, चतुर्थ एवं षष्ठ अध्याय तथा शिवपुराण की पूर्ववायवीय संहिता का षष्ठ अध्याय।

३. कला या परमा शक्ति = कथिता परमात्मनः। शिव. ७/२/४/२६।।

४. यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।। वही, ७/२/४/६।।

५. नादाद्विनिःसृतो बिन्दुर्बिन्दोर्देवः सदाशिवः। वही, ७/२/४/२०।।

रहती है।[1] सदाशिव तत्त्व को परमात्मा-शिव की मूर्ति कहा गया है।

ईश्वर-तत्त्व

सदाशिव-तत्त्व से महेश्वर का प्रकाशन होता है। महेश्वर को ईश्वर-तत्त्व भी कहते हैं।[2] इसकी गणना चतुर्थ तत्त्व के रूप में की जाती है। उनकी उत्पत्ति सदाशिव के सहस्रांश से बतलाई गई है। इन्हें वायु की अधिपत्यता प्राप्त है। इन के वाम भाग में 'माया' नामक शक्ति सर्वदा वर्तमान रहती है। अर्थात् इनकी शक्ति का नाम माया है। इनमें क्रिया-शक्ति (जगदंश) का प्राबल्य रहता है।[3] ज्ञान-शक्ति क्रिया-शक्ति की सहकारिणी होकर इनमें वर्तमान रहती है।

सद्विद्या अथवा शुद्धविद्या तत्त्व

ईश्वर-तत्त्व से शुद्धविद्या का प्रादुर्भाव होता है।[4] इस तत्त्व में ज्ञान एवं क्रिया नामक दोनों ही शक्तियाँ समानरूप से प्रबल रहती हैं।[5] तत्त्वों के क्रम में इसका स्थान पञ्चम है।

माया और पञ्चकञ्जुक

शुद्ध-विद्या तत्त्व के अनन्तर माया तत्त्व को परिगणित किया जाता है। इसे महेश्वर (ईश्वर-तत्त्व) की शक्ति कहा गया है। माया अनन्त के संयोग से काल, नियति, कला और विद्या की सृष्टि करती है। पुनः कला से राग और पुरुष का प्रादुर्भाव होता है।[6] किन्तु कैलास संहिता के त्रयोदश अध्याय में माया से ही काल, राग, कला, विद्या एवं नियति को ही पञ्चकञ्चुक कहते हैं। इनकी भी तत्त्वों में ही गणना होती है। यह माया ही पुरुष (पशु अथवा आत्मा) के ऊपर एक आवरण डाल देती है, जिस के प्रभाव के कारण वह अपनी वास्तविक प्रकृति को विस्मृत हो जाता है। इस प्रकार माया वैभिन्य की भावना उत्पन्न करती है।[7]

---

१. ज्ञान-क्रिया-शक्तियुग्मे ज्ञानाधिक्ये सदाशिवः।। वही, ६/१६/७१।।
२. नादाद्विनीःसृतो बिन्दुर्बिन्दोर्देवः सदाशिवः।
तस्मान्महेश्वरो जातः ......।। शिव., ७/२/४/२०
३. मायाशक्तियुतो वामे सकलश्च क्रियाधिकः। वही, ६/१५/४।।
४. ... शुद्धविद्या महेश्वरात्। वही, ७/२/४/२०।।
५. ज्ञान-क्रिया-शक्ति-साम्यं शुद्धविद्यात्मकं मतम्। वही, ६/१६/७२।।
६. अथानन्तसमावेशान्माया कालमवासृजत्।
नियतिं च कलां विद्यां कलातो रागपुरुषौ।। वही, ७/२/४/२२
७. स्वांगरूपेषु भावेषु मायातत्त्वविभेदधीः। शिव. ६/१६/७६।।

पुरुष

इस प्रकार परमात्म-शिव अपने आप को माया का विषय बनाते हुए, उसके पञ्च कञ्जुक को धारण कर पुरुष (पशु अथवा आत्मा) बन जाते हैं। पुरुष, जिसे पशु भी कहा जाता है, का वर्णन इस पुराण की कैलास संहिता एवं वायवीय संहिता में प्रचुरता से उपलब्ध होता है।

प्रकृति

माया का द्विधा परिणाम होता है-१. पञ्च कञ्जुक और २. प्रकृति। शिवमहापुराण में भी, अन्य पुराणों की भाँति, प्रकृति से लेकर पृथिवी तक के तत्त्व सांख्य की ही भाँति वर्णित किये गये हैं। सांख्य के २५ तत्त्वों को लेकर उनमें अपने पूर्वोक्त एकादश तत्त्वों को मिलाकर षट्त्रिंशत् (३६) तत्वों का वर्णन किया गया है। इस महापुराण में एक स्थल पर इक्यावन (५१) तत्त्वों का भी नाम-निर्देशपूर्वक वर्णन किया गया है।[1]

पाश और मुक्ति

शिवमहापुराण अपने दार्शनिक विवेचन में पति, पशु (आत्मा) एवं पाश पर विशेष बल देता है। उसका मत है कि सुख की कामना करनेवाले प्रत्येक पुरुष को पति, पशु एवं पाश पर उत्कृष्ट निष्ठा रखनी चाहिए।[2] यह पाश की ही प्रभुता है कि शुद्ध, निरञ्जन आत्मा अपने को देह आदि मानता हुआ एक योनि से दूसरी योनि में भटकता रहता है, भ्रमण करता रहता है।

पाश के त्रिधा भेद-मल एवं पाश समान अर्थ के वाचक हैं।[3] पाश का अर्थ है-बन्धन। पाश (मल) प्रधान रूप से तीन प्रकार का माना गया है- आणव, मायीय एवं कार्म। इन का अति संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

१. **आणवमल**-आत्मा को 'अणु' भी कहते हैं।[4] पूर्णत्व के अभाव के कारण परिमित हो जाने से ही आत्मा को अणु कहा गया है। आत्मा के द्वारा अपने आप में पूर्णता का अभाव माना जाना आणवमल कहा जाता है। पशुपति शिव की कृपा से आत्मा जब अपने आप को पूर्ण मानने लगता है तब तो वह चिद्घन परमात्म-शिव ही हो

१. देखिये- शिवमहापुराण, पूर्व वायवीय संहिता, अध्याय-३३, श्लोक-१२-१५।।

२. पशुपाशपतिज्ञानं यल्लब्धं तु मया पुरा।
तत्र निष्ठा परा कार्या पुरुषेण सुखार्थिना।। शिव, ७/१/५/१०

३. मलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम्। वही, ७/२/१७/२८।।

४. अणवो नैव जानन्ति माययैव मलावृताः। शिव. ७/१/३२/४२।।

जाता है। दीक्षा-संस्कार के समय गुरु शिष्य को पूर्ण अतः शिव पति स्वरूप होने की भावना का उपदेश देता है।

२. **मायीयमल**-"आणवमल" से आवृत आत्मा आगे "मायीयमल" के द्वारा और अधिक सङ्कुचित कर दिया जाता है। "मायीयमल" माया के द्वारा उपस्थित किया जाता है और यह भी एक सङ्कोचावस्था है। इसके कारण आत्मा अपने आप को शरीर आदि समझने लगता है।[1] इसी मल के कारण आत्मा सांसारिक वस्तुओं में अनुराग करने लगता है।

३. **कार्ममल**-आणवमल एवं मायीयमल के द्वारा सङ्कुचित एवं संसारी बना हुआ आत्मा शुभाशुभ कर्मों को करता हुआ आनन्द एवं दुःख का अनुभव करता है। अतः मुक्ति के कामी को चाहिये कि वह शुभाशुभ उभयविध कर्मों का परित्याग कर दे।[2]

मुक्ति

मुक्ति की प्राप्ति भारतीय दर्शनों का सर्वस्व है। शिवमहापुराण में भी तत्त्व-ज्ञान का अनुसन्धान इसीलिये किया जाता है कि उस के द्वारा जीवन के लक्ष्य की उपलब्धि हो सके। मुक्ति का वर्णन विभिन्न दर्शनों एवं मतों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया गया है।

शिवमहापुराण में द्विविध दर्शन- इस महापुराण में द्वैत एवं अद्वैत-द्विविध दर्शनों का विवरण प्राप्त होता है। कैलास संहिता में प्रधानरूप से अद्वैत दर्शन का वर्णन किया गया है।[3] किन्तु वायवीय संहिता में द्वैत दर्शन की ही प्रबलता दृष्टिगोचर होती है। यहाँ हम दोनों दर्शनों के अनुसार मुक्ति का विहगावलोकन, अति संक्षिप्त विहगावलोकन करने जा रहे हैं-

शिवमहापुराणस्थ अद्वैत दर्शन के अनुसार मुक्ति-दो प्रकार की होती है- पर एवम् अपर[4] । पर मुक्ति पूर्ण पशुपति शिव ही हो जाना है और इस अवस्था को पहुँचने पर आत्मा कभी पुनः इस जगत् में जन्म नहीं ग्रहण करता है। अपर मुक्ति की अवस्था में आत्मा का अभ्युदय होता है। वह (आत्मा) पशुपति के गाणपत्य (गणपति के अवस्था) को प्राप्त कर शिव के समान शरीर को धारण करता है। ऐसी अवस्था में उसके मृगचर्म, टङ्क, त्रिशूल, त्रिनेत्र, चन्द्रशकल, जटा में गङ्गा का प्रवाह, अविहत गतिवाले विमान, ये सभी शिव के समान होते हैं। वर देने का अधिकार भी उसे प्राप्त रहता है।[5]

---

१. स्वाङ्गरूपेषु भावेषु मायातत्त्वविभेदधीः। वही, ६/१६/७३।।
२. पुण्यापुण्यात्मकं कर्म मुक्तेस्तत्प्रतिबन्धकम्।
तस्मान्नियोगतो योगी पुण्यापुण्यं विवर्जयेत्।। वही, ७/२/१०/४६।।
३. देखिये-कैलाससंहिता, १६वां अध्याय।
४. प्रभुश्चान्यस्तु जीवानां परावरविमुक्तिदः।। शिव. ६/१४/२८।।
५. स्वसाम्यं च वपुर्दत्ते गाणपत्येऽभिषिच्य च। अनुगृह्णाति सर्वेशः शङ्करः सर्वनायकः।।
मृगटङ्कत्रिशूलाग्र्यवरदानविभूषितम्। त्रिनेत्रं चन्द्रशकलं गंगोल्लासिजटाधरम्।। वही. ६/२१/२२-२३।।

द्वैत दर्शन के अनुसार पर एवम् अपर मुक्ति- वायवीय संहिता में प्रायः द्वैत दर्शन का प्रतिपादन हुआ है, जिससे यही प्रतीत होता है कि मुक्त होने पर आत्मा ब्रह्म (पशुपति शिव) में नहीं विलीन होता है, किन्तु पशुपति शिव के समान हो जाता है। उसे शिवसाधर्म्य की उपलब्धि होती है। इससे जन्म-पुनर्जन्म का चक्कर सर्वदा के लिये समाप्त हो जाता है। उसके सभी पाश समाप्त हो जाते हैं। द्वैत दर्शन के अनुसार यही पर मुक्ति है।[1]

द्वैतदर्शन के अनुसार अपर मुक्ति में आत्मा विद्येश्वर (शुद्धविद्या के निवासी आत्मा) आदि के पद को प्राप्त करता है। वह वहाँ बहुत-से भागों को भोग कर एक बार पुनः जन्म धारण करता है। फिर वह शिव की कृपा को प्राप्त कर शिव साधर्म्य को प्राप्त करता है और वहाँ से कभी नहीं लौटता है।[2] इस प्रकार द्वैतवादी दर्शन के अनुसार विद्येश्वरादि पद की प्राप्ति अपर मोक्ष और शिव-साधर्म्य परं मोक्ष है।

योग

शिव महापुराण में योग का भी विस्तृत वर्णन हैं। इस पुराण की उमासंहिता और उत्तरवायवीयसंहिता में विभिन्न योग-प्रकारों का निरूपण किया गया है। उत्तरवायवीय संहिता में अष्टाङ्ग योग का जो वर्णन है, वह सामान्यतया पातञ्जल योग से साम्य रखता है। भक्ति-योग तो पुराणों का प्राण ही है। अतः शिवमहापुराण में इसकी विस्तृत उपलब्धि कोई नई बात नहीं है।

शिवमहापुराण में धार्मिकतथ्य

पुराण में जितना दार्शनिक तत्त्व उपलब्ध होता है, उससे अधिक धार्मिक बातों का उल्लेख दिखलाई पड़ता है। शिवमहापुराण में शिव के विभिन्न अवतार वर्णित हैं। उनका लक्ष्य है धर्म की रक्षा करना, भक्तों का परित्राण करना। इस पुराण में शिव के जितने भी अवतार हैं, उनमें द्वादश ज्योतिलिङ्गों के अवतार प्रमुख है।

अन्य देवी-देवों के आविर्भाव में महादेवी उमा, स्कन्द, गणपति, विष्णु और ब्रह्मा का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इन के विशिष्ट चरित का वर्णन भी प्रसङ्गानुसार इस महापुराण की विशेषता है।

शिवमहापुराण पर लिखा जाय और लिङ्ग की उत्पत्ति, लिङ्ग के भेद, लिङ्ग के प्रकार और लिङ्गोपासना की चर्चा न की जाय तो बात अधूरी रह जाती है, अपूर्ण हो जाती है। लिङ्ग की अर्चना और भस्म का धारण शिवमहापुराण के प्रधान प्रतिपाद्य विषयों

१. देखिये-शिवमहापुराण, पूर्ववायवीय संहिता का प्रथम, द्वितीय अध्याय

२. शिवमहापुराण : ७/१/३२/२२; ७/२/१०/२४; ७/२/२८/२६; ७/२/५/३७; ७/१/३२/२२।।

में हैं। शङ्कर ही एक ऐसे देव हैं, जिनकी उपासना लिंग और वेर (प्रतिमा)- दोनों में होती हैं। लिङ्ग शिव के निर्गुण, निष्कल स्वरूप का प्रतिपादक है और प्रतिमा उनके सगुण साकार होने का लक्षक है। फिर भी मूर्ति की अपेक्षा शङ्कर के लिङ्ग की आराधना अधिक देखी जाती है। पुराण और लोक-दोनों की यही स्थिति है।

वर्णाश्रम-धर्म, लोकाचार और आभिचारिक क्रियाओं का वर्णन भी इस पुराण की अपनी विशेषता है। अन्य पुराणों की भाँति खगोल और भूगोल का वर्णन भी इसमें प्रचुरता से किया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि पुराण के सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पञ्चलक्षणों की दृष्टि से यह महापुराण भलेही खरा न उतरता तो भी इसकी महापुराणता के विषय में सन्देह का अवकाश नहीं रह जाता है। इसकी इसी विशेषता के कारण अधिकांश महापुराण इसका गुणगान करते हैं, इसकी चर्चा करते हैं।

वायुपुराण

वायुपुराण में केवल ११२ अध्याय हैं तथा श्लोक संख्या लगभग ११ हजार है। इस पुराण में चार पाद हैं, १. प्रक्रिया पाद २. अनुषङ्गपाद ३. उपोद्घात ४. उपसंहार पाद।

इन चारों पादों के समर्थन में कहा गया है, जैसे चार वेद हैं, चार पुरुषार्थ है, चार युग हैं, उसी प्रकार इस पुराण के चार पाद हैं-

यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम्
यथा युगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम्।
चतुष्पादं सुराणां तु ब्रह्मणा विहितं पुरा।।

(वायु पु. ३२/६४)

इसके आरम्भ में प्रक्रियापाद है। उसमें छः ही अध्याय हैं, प्रथम अध्याय में अनुक्रमणिका वर्णित है, दूसरे अध्याय में द्वादश वार्षिक सत्र निरूपित है। तीन से छः अध्यायों में सृष्टि प्रक्रिया ब्रह्माण्ड रचना का वर्णन है। इस चराचरात्मक जगत में जीवों का उद्भव पहले कैसे हुआ यह विस्तार से वर्णित है।

अनुषङ्गपाद ६वें अध्याय से ६१वें अध्याय तक ५४ अध्यायों का है, इसमें ७वें अध्याय में प्रतिसन्धि का वर्णन है, पूर्व कल्प की समाप्ति वर्तमान कल्प के प्रारम्भ का जो अन्तर है उसे प्रतिसन्धि कहते हैं -

"समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्यचोभयोः।
कल्पयोरन्तरं यच्च प्रतिसन्धिर्यतस्तयोः।।" (वायु.पु. ७/३)
"अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्वोऽतीतः सनातनः।
तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थां निबोधत।।" (वा.पु. ७/६)

आठवें अध्याय में कल्पान्त में जलादि में विलीन हुए पृथिवी के उद्धार का वर्णन पञ्चमहाभूतों का निर्माण, कला, काष्ठा, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन, अब्द, युग का निर्माण, वर्ण विभाग, ब्राह्मणादि वर्णों का कर्म, जीविका का साधन, चारों आश्रमों का विभाग वर्णन है। खेट, नगर, ग्राम का विस्तार वर्णन, राजमार्ग, चतुष्पथ आदि का निर्माण वर्णन है। नदी-पर्वत आदि के निरूपण के पश्चात धान्य निर्माण, आश्रम विभाग और उनके कर्म वर्णित हैं।

९वें अध्याय में देवादि की सृष्टि वर्णन, १०वें में मन्वन्तर वर्णन, ११वें में पाशुपतयोग, १२वें से १५वें तक क्रमशः योगोपसर्ग, योगैश्वर्य, तथा पाशुपत योग का निरूपण है। १६वें में शौच आचार का कथन, १७वें में परमाश्रय प्राप्ति कथन, १८वें में यति प्रायश्चित

विधि, १९वें में अरिष्ठ का निरूपण है, २०वें में ओङ्कार प्राप्ति का लक्षण २१वें में कल्प निरूपण, २२वें में कल्पसंख्या वर्णन, २३वें में माहेश्वरावतार, २४वें में शार्वस्तव, २५वें में मधु कैटभ की उत्पत्ति तथा विनाश वर्णन, २६वें में स्वरोत्पत्ति, २७वें में महादेव के तनु का वर्णन, २८वें में ऋषि वंशों का, २९वें में अग्निवंश का ३०वें में दक्षशाप का, ३१वें में देववंश का वर्णन, ३२वें में युगधर्म, ३३वें में स्वायंभुव वंश का वर्णन है, ३४-३५वें में जम्बू द्वीप का वर्णन, ३६-३८ में पूर्व-पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाओं में स्थित सर तथा शैलों का वर्णन है, ३९वें में शैलों पर विविध देवताओं का निवास वर्णन है, ४०-६१ अध्यायों तक क्रमशः देवकूट पर्वत, कैलास पर्वत, देवनदी, केतुमाल, भारतवर्ष, किम्पुरुष आदि वर्षों का, गङ्गावतरण का, जम्बूद्वीप के अन्तर्गत द्वीपों का, प्लक्षादि द्वीपों का वर्णन, ज्योतिष्प्रचार, ध्रुव चर्या, ज्योतिः सन्निवेश, नीलकण्ठस्तव, लिङ्गोद्भव, पितृवर्णन, यज्ञप्रवर्तन, चतुर्युगाख्यान, ऋषिलक्षण, महास्थान तीर्थवर्णन, प्रजापति वंशानुकीर्तन है।

उत्तरार्ध में पृथिवी दोहन, पृथुवंश, वैवस्वत सर्ग का वर्णन १-३ अध्यायों में क्रमशः है।

अनुषङ्गपाद में ४-३७ तक ३४ अध्यायों में क्रमशः प्रजापतिवंश वर्णन, काश्यपीय प्रजासर्ग, ऋषिवंश, श्राद्धप्रक्रियारम्भ, श्राद्धकल्प, श्राद्ध में ब्राह्मण परीक्षा, दान का फल, तिथि विशेष में श्राद्ध का फल, नक्षत्र विशेष में श्राद्ध करने का फल, विभिन्न कालों में तृप्ति के साधन-द्रव्यविशेष, गयाश्राद्ध का फल, वरुणवंश, वैवस्वत मनु की सृष्टि, मनुवंश, गान्धर्व मूर्च्छना का लक्षण, गीतों का अलङ्कार निर्देश, वैवस्वत मनुवंश, सोमोत्पत्ति, चन्द्रवंश, रजियुद्ध, कार्तवीर्य्यार्जुन की उत्पत्ति, ज्यामघवृत्तान्त, विष्णुवंश, शम्भुस्तव, विष्णु-माहात्म्य वर्णन पूर्वक अनुषङ्गपाद की समाप्ति का वर्णन है।

उपसंहार पाद में ३८-५० अध्याय तक १३ अध्यायों में सप्तम मनु से लेकर १४ मनुओं का विवरण, महर्लोक से शिवपुर पर्यन्त का वर्णन, प्रलयादि तथा पुनः सृष्टि का वर्णन, व्याससंशयापनोदन, अन्तिम ८ अध्यायों में गया माहात्म्य का वर्णन है।

इन वर्णनों में सृष्टि का विस्तृत प्रकार कल्पभेद तथा मन्वन्तरों का वर्णन है, यह वर्णन दक्षयज्ञ के प्रसङ्ग में महेश्वर के माहात्म्य के व्याज से किया गया है, पितरों का विस्तृत विवरण, श्रेष्ठ ऋषियों का उल्लेख यहाँ वैदिक रीति से किया गया है। उत्तरार्ध में सप्तर्षियों का, उनके वंशजों का गोत्रवर्णन किये गये हैं। दक्ष की पुत्रियों से सृष्टि का विस्तार तथा श्राद्धकल्प का विस्तृत प्रतिपादन है।

उपसंहार में भविष्य मन्वन्तरों का, अन्तरिक्ष का मान, विसर्ग, योगमाहात्म्य, वायुपुराणके परवर्ती व्यासों के नाम का वर्णन है, अन्तिम ६ अध्यायों में श्री राधाजी तथा श्रीकृष्ण का माहात्म्य संक्षिप्त रूप से तथा गया माहात्म्य विस्तृत रूप से वर्णित है।

अर्थात् वायुपुराण में संक्षिप्त रूप से भारत का तथा विश्व का भूगोल, खगोल, प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था, नारी की स्थिति, राजसंस्था, धर्मदर्शन आदि का वर्णन है।

यह पुराण भौगोलिक वर्णन के लिए विशेष उपयोगी है, जम्बूद्वीप के वर्णन के साथ साथ अन्य द्वीपों का भी वर्णन सुन्दर रीति से इसमें किया गया है, खगोल वर्णन भी विस्तृत रूप से इसमें उपलब्ध होता है।

वायुपुराण का पुराणों में विशिष्ट स्थान है, इसमें पुराणों के पांचों लक्षण सर्ग-प्रतिसर्ग -वंश-मन्वन्तर तथा वंशानुचरित संघटित होते हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार इसमें अन्त के नौ अध्याय जिनमें श्रीकृष्णचरित है, तथा गया माहात्म्य है, उसे किसी वैष्णव ने अपने मत की (वैष्णव मत की) पुष्टि के लिए पीछे से जोड़ दिया है। इस पुराण का अन्तिम अध्याय १०३ रा ही है, वे पुराण विमर्श के ६६-६७ पृष्ठ पर लिखते हैं -

वस्तुतः १०३रा अध्याय ही अन्तिम अध्याय प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अन्त में पुराण के अवतरण की गुरु परम्परा प्रामाणिक रूप से निबद्ध की गयी है। तथा आगे के श्लोकों में फलश्रुति और महेश्वर की स्तुति की गयी है। यह वायुपुराण को शैवतत्त्व प्रतिपादक होने का स्पष्ट सकेत है। १०४ अध्याय में महर्षि व्यास द्वारा परमतत्त्व का वर्णन तथा साक्षात्कार का विवरण है, और यह परमतत्त्व राधासंवलित श्रीकृष्ण ही माने गये हैं, राधा का नामोल्लेख जो श्रीमदभागवत में भी नहीं है विष्णुपुराण में भी नहीं है, वायुपुराण में यह नामोल्लेख उसे परवर्ती सिद्ध कर रहा है, अतः यह अंश किसी ने पीछे से जोड़ दिया है।

उक्त अपने कथन में पुराण के अवतरण की जिस गुरु परम्परा का निर्देश उपाध्याय जी ने किया है उसे ग्रन्थानुसार यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। (इस समय वायुपुराण की जो प्रति हमारे सामने है वह खेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा सम्पादित श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय में प्रकाशित वायुपुराण का पुनःर्मुद्रण है भूमिका, लेखक श्री ब्रजमोहन चतुर्वेदी जी हैं। इसके अनुसार यह अध्याय १०३रा न होकर उपसंहार पाद का ४१वां अध्याय है। यहां वर्णित अवतरण प्रक्रिया निम्नाङ्कित है।

ब्रह्मा ने इस शास्त्र को वायु को दिया, वायु ने उशना को, उशना ने बृहस्पति को, बृहस्पति ने सूर्य को, सूर्य ने मृत्यु को, मृत्यु ने इन्द्र को, इन्द्र ने वसिष्ठ को, वसिष्ठ ने सारस्वत को, सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वान् को, उसने त्रिविष्टप को, त्रिविष्टप ने अन्तरिक्ष को, उसने वर्षी को, उसने त्रय्यारुण को, त्रय्यारुण ने धनञ्जय को, उसने कृतञ्जय को, कृतञ्जय ने तृणञ्जय को, उसने भरद्वाज को, भरद्वाज ने गौतम को, उन्होंने निर्यन्तर को, निर्यन्तर ने वानश्रवा को, उसने सोमशुष्म को, उसने तृणबिन्दु को, उसने दक्ष को, दक्ष ने शक्ति को दिया। शक्ति से गर्भस्थ पराशर ने सुना, पराशर से जातुकर्ण, उनसे द्वैपायन प्राप्त किये, द्वैपायन से मैंने (सूत) ने प्राप्त किया, मैंने अपने पुत्रों से कहा।

ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने।
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं, तस्माच्चापि बृहस्पतिः।।

बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम्।
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः।।

इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च।
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते।।

शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान्।
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च।।

त्रय्यारुणो धनञ्जये सोऽपि प्रादात् कृतञ्जये।
कृतञ्जयात् तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ।।

गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरेपुनः।
निर्यन्तरस्तुप्रोवाच तथा वाजश्रवाय च।।

स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे।
तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये।।

शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्।।
पराशराज्जातुकर्णः तस्माद् द्वैपायनः प्रभुः।

द्वैपायनात् पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तमाः।
मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये।।

(वायु. पु. उपसंहार-पाद ४१/५८-६७)

अष्टादश महापुराणों में वायुपुराण या शिवपुराण-

देवी भागवत में अष्टादश पुराणों की गणना की गयी है, वह एक ही श्लोक में निबद्ध हैं-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं व चतुष्टयम्।
अनापल्लिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।। (देवी. भाग. १/३/२)

जिसका अर्थ है 'म' द्वयम्, मकारादि दो पुराण हैं १. मत्स्य, २. मार्कण्डेय, भद्वयम् = भकारादि दो पुराण ३. भागवत, ४. भविष्य, ब्रत्रयम् = ५. ब्रह्म, ६. ब्रह्माण्ड,

७. ब्रह्मवैवर्त, व चतुष्टयम् = वकारादि चार, ८. वामन, ६. वायु, १०. वाराह, १. विष्णु, १२. अ = अग्नि, ना = १३. नारद, प = १४ पद्म, लि = १५ = लिङ्ग, ग = १६. गरुड, कू = १७. कूर्म 'स्क' = १८. स्कन्द।।

इन अट्ठारह पुराणों का नाम आद्यक्षर पर निर्दिष्ट हैं। इसमें शिव पुराण की गणना नहीं है, उसे उपपुराणों में गिना गया है। (द्रष्टव्य देवीभागवत १/३/१३-१६)

"तथैवोप पुराणानि, श्रृण्वन्तु मुनिसत्तमाः।
सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्।।
नारदीयं शिवं चैव दौर्वासिसमनुत्तमम्।
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम्।।
वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नन्दिकृतं शुभम्।
सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं चाति विस्तृतम्।।
माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम्।
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः।। इति

ये उपपुराण भी १८ ही हैं। देवी भागवत के अनुसार श्रीमद्भागवत उपपुराण है, और देवी भागवत ही महापुराण है। ऐसा कुछ विद्वानों का भी मत है।

इनकी श्लोक संख्या-इन महापुराणों की श्लोक संख्या भी देवी भागवत के अनुसार निम्नाङ्कित हैं। देवी भागवत मत्स्य पुराण को ही आद्य पुराण मानता है। उसकी श्लोक सं. १४००० है। मार्कण्डेय पुराण में ६ हजार श्लोक हैं। भविष्यपुराण १४५०० श्लोकों का है, श्रीमद्भागवत १८ हजार श्लोक हैं। ब्रह्मपुराण में १० हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्ड पुराण में १२१०० श्लोक हैं। ब्रह्मवैवर्त में १८ हजार, वामन में १० हजार, वायुपुराण में २४ हजार छः सौ श्लोक हैं, विष्णुपुराण में २३ हजार, श्लोक हैं, वाराह पुराण में २४ हजार, अग्नि पुराण में १६ हजार, नारद पुराण में २५ हजार, पद्म पुराण में ५५ हजार, लिङ्ग पुराण में ११०००, गरुड पुराण में १६०००, कूर्म में १७ हजार, स्कन्द पुराण में ८१ हजार श्लोक हैं।

परन्तु भागवत के अनुसार शिवपुराण तथा श्रीमद्भागवत महापुराण हैं, वायु तथा देवीभागवत उपपुराण हैं, महापुराणों के नाम तथा श्लोक सं. निम्नाङ्कित है-

ब्रह्म पुराण में दस हजार, ब्रह्माण्ड पुराण में १२ हजार, पद्म पुराण में ५५ हजार, विष्णु पुराण में २३ हजार, शिवपुराण में २४ हजार, श्रीमद्भागवत में १८ हजार, नारद पुराण में २५ हजार, मार्कण्डेय में ६ हजार, अग्निपुराण में १५ हजार चार सौ, भविष्य पुराण में १४ हजार ५ सौ, ब्रह्मवैवर्त में १८ हजार, लिङ्ग पुराण में ११ हजार श्लोक हैं। वाराह पुराण में २४ हजार, स्कन्द पुराण में ८१ हजार एक सौ श्लोक हैं, गरुड पुराण में

१६ हजार श्लोक हैं। इस प्रकार सब पुराणों की श्लोक सं. ४ लाख है। (श्रीमद्भागवत महा पु. १२/१३/४-६)

वायु पुराण के अनुसार पुराणों की श्लोक संख्या-

चतुर्दशसहस्र च मात्स्यं प्रोक्तमतिस्फुटम्। (मत्स्य १४०००) श्लोक संख्या
तत्संख्यकं भविष्यं च प्रोक्तं पञ्चशताधिकम्। (भविष्य १४५००) ”
मार्कण्डेय महात्म्यं प्रोक्तं नवसहस्रकम्। (मार्कण्डेय ६०००) ”
कथितं ब्रह्मवैवर्तमष्टादशसहस्रकम्।। (ब्रह्मवैवर्त १८०००) ”
शतोत्तरं च ब्रह्माण्डं सूर्यसंख्या सहस्रकम्। (ब्रह्माण्ड - १२१००) ”
अथ भागवतं दिव्यमष्टादशसहस्रकम्। (श्रीमद्भागवत १८०००) ”
सहस्राणि दशैवोक्तं पुराणं ब्रह्मनामकम्। (ब्रह्मपुराण १००००) ”
अयुतश्लोकघटितं पुराणं वामनाभिधम्। (वामन पुराण १००००) ”
तथैवायुतसंख्यातं षट्शताधिकमादिकम्। (आदिपुराण १०६००) ”
त्रयोविंशतिसाहस्रमनिलं तद्गतं शुभम्। (वायु पुराण २३०००) ”
त्रयोविंशति साहस्रं नारदीयमुदाहृतम्। (नारदीय पुराण २३०००) ”
एकोनविंशसाहस्रं वैनतेयमुदाहृतम्। (गरुड पुराण १६०००)
सहस्रपञ्चपञ्चाशत् प्रोक्तं पाद्मं सुविस्तरम्। (पद्म पुराण ५५०००) ”
सप्तदशसहस्रं तु कूर्मं प्रोक्तं मनोहरम्। (कूर्म १७०००) ”
चतुर्विंशति साहस्रं सौकरं परमाद्भुतम्। (वाराह पुराण २४०००)
एकाशीतिसहस्राणि स्कान्दमुक्तं सुविस्तृतम्। (स्कन्द पुराण ८१०००)

इस प्रसङ्ग में वायु पुराण का एक श्लोक भ्रष्ट है जिससे दो पुराणों की श्लोक संख्या नहीं ज्ञात हो सकी। (यह प्रति ब्रजमोहन चतुर्वेदी द्वारा भूमिका तथा पाठशोधन से परिष्कृत है) इस पुराण में धर्म का निरूपण है। जो धर्म-अर्थ-काम-तथा मोक्ष का साधन है। इन चार पुरुषार्थों में लौकिक तथा पारलौकिक सभी सुख सुविधाओं का समावेश है। रागी-विरागी-यती-ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ-स्त्री-शूद्र-ब्राह्मण-क्षयित्र-वैश्य, और सङ्कर जातियों का वर्णन है। गङ्गादि महातीर्थों का यज्ञ-व्रत-तप का विविध प्रकार के दानों का तथा यम-नियम के साथ विविध योगधर्मो का सांख्य सिद्धान्त तथा भागवत का भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग-उपासना की विधि, चित्तशुद्धि का साधन, कर्मकाण्ड-ब्राह्म-शैव-वैष्णव-सौर-शाक्त तथा आर्हत (जैन धर्म) इन षड्दर्शनों का निरूपण है।

इस प्रकार इन पुराणों की श्लोक संख्या में जो भेद मिलता है उसका कारण है उन पुराणों के कुछ अंशों की भ्रष्टता या त्रुटित होना, वायुपुराण की द्वादशसाहस्री ही उपलब्ध है, इस पर आगे भी कुछ विचार किया जायेगा। संख्या भेद में कल्पभेद भी कारण है।

"१८ महापुराणों में वायुपुराण या शिवपुराण"

पुराणों में प्रायः ८ पुराण = कूर्म, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, भागवत, मार्कण्डेय, लिङ्ग, वाराह, विष्णुपुराण, शिवपुराण को ही महापुराण मानते हैं। नारद, मत्स्य, देवी भागवत वायुपुराण को महापुराण मानते हैं।

इस पर कुछ निबन्धकार या विचारक अनुसन्धाता कहते हैं कि यद्यपि अनेक पुराण शिवपुराण को ही महापुराण की संज्ञा देते हैं, परन्तु ऐसे गम्भीर विषय पर बहुमत का कोई महत्त्व नहीं होता, विचार करने पर वायुपुराण ही चतुर्थ महापुराण प्रतीत होता है। क्योंकि इसमें पुराण के पञ्चलक्षण सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरित, इन पांचों का वर्णन वायुपुराण में ही उपलब्ध होता है, और यह प्राचीन भी है। अतः वायुपुराण ही महापुराण है, शिवपुराण ही उपपुराण है। (आचार्य बलदेव उपाध्याय पुराण विमर्श पृ. ६४-६५)

हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों का नामकरण कहीं वक्ता के नाम पर कहीं वर्ण्य विषय को आधार मानकर किया गया है। ऐसी स्थिति में वर्ण्य की प्रधानता स्वीकार करने पर वायुपुराण भी शिवपुराण ही है, क्योंकि उसमें शिव ही प्रधान स्रष्टा रूप से वर्णित हैं।

नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्तते।
तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः।।
अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम्।
स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत।।"

(वायु. पु. १/१८४-८५)

वायुपुराण में शिव ही प्रधान रूप से चराचरात्मक जगत् का उत्पादक, संहारक रूप से तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के नायक रूप में वर्णित हैं। अतः यह शिवपुराण ही है, शिवपुराण में भी वायवीय संहिता है ही। वायु द्वारा प्रोक्त होने से इसे वायुपुराण भी आचार्य गण कहते हैं। साथ ही सभी पुराण भी अनादि ही हैं, इनका कालवश आविर्भाव तिरोभाव होता ही रहता है, अतः आविर्भाव को लेकर इनका निर्माण काल का निश्चय बुद्धि और तर्क के बल से करना उचित नहीं है, जो लोग वेदों और पुराणों का काल निर्धारणय बुद्धि तथा तर्क के बल से करते हैं, वे बहुश्रुत नहीं माने जा सकते। सब की बुद्धि सीमित है, और तर्क बुद्धिबल से ही किया जाता है। इसीलिए एक बुद्धिमान के सिद्धान्त को दूसरा बुद्धिमान अपने तर्कबल से काट देता है, इसीलिए शास्त्रकारों ने इन विषयों पर तर्क की कोई महत्ता नहीं दी है। प्रत्युत "तर्काप्रतिष्ठानात्" कहकर तर्क का खण्डन किया है, इनमें श्रद्धा और विश्वास की ही प्रधानता है, बुद्धि और तर्क की नहीं।

पुराणों में भी प्रथम पुराण रूप से कहीं मत्स्य तो कहीं पद्म कहीं ब्रह्म का वर्णन मिलता है, तो उस प्रथम पुराण के निर्माण काल में दूसरे पुराण तो निर्मित नहीं हुये थे, तो उनका नाम तथा श्लोक संख्या का निर्देश उसमें कैसे किया गया? यह प्रश्न असमाधेय हो जायगा। अतः पुराणों की उत्पत्तिकाल को निर्णय बुद्धि और बल से नहीं करना चाहिए।

पुराणों की श्लोक संख्या चार लाख ही है। द्वापर में भगवान् व्यास ने उसका विभाजन किया है। इसका निर्देश मत्स्य तथा पद्मपुराण में किया गया है-

"व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।।

तदष्टादशधां कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशते।
अद्यापि देव लोकेऽस्मिन् शतकोटि प्रविस्तरम्।।

तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षसंक्षेपेण निरूपितम्।।

(पद्मपुराण भाग ५, १/४५-५२)

श्रीमद्भागवत में भी यह वर्णन उपलब्ध है। (१२/१३)

"एवं पुराणसन्दोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।"

कहीं कहीं ब्रह्मपुराण को आद्यपुराण के रूप में वर्णित किया गया है।

"आद्यं ब्राह्माभिधानं च सर्व वाञ्छाफलप्रदम्।।" (ब्रह्म पु. २४५/४)

विष्णु पुराण भी इसका समर्थन करता है -

"आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते" (विष्णु पु. ३/६/२०)

मित्र मिश्र ने अपनी परिभाषा प्रकाश में लिखा है कि विष्णु पुराण में अष्टादश पुराणों की गणना में वायुपुराण छोड़ दिया गया है, ब्रह्मवैवर्त में वायवीय का ग्रहण कर ब्रह्माण्ड पुराण को छोड़ दिया गया है। कहीं कहीं श्लोक संख्या की विभिन्नता मिलती है। यह कल्पभेद के कारण है।

यद्यपि शुष्क तर्क या बुद्धिवाद इसको नहीं मानता है, परन्तु न मानने से यथार्थता लुप्त नहीं होगी। सत्य तो सत्य ही है।

श्रीमद्भागवत में वर्णित है-

"ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः" परन्तु श्लोकों की गणना करने पर संख्या पूरी नहीं होती। इसके समाधान में सुधीजनों का कथन है कि-अनुष्टुप् छन्द ३२ अक्षरों का है। उसे ग्रन्थ कहते हैं। भागवत में बड़े छन्दों में कथा निबद्ध है। उन छन्दों का ३२ अक्षरों में विभाजन

करने पर पुष्पिका सहित गणना करने पर संख्या पूर्ति हो जाती है। अतः शिष्ट पुरुषों की परम्परा मानकर गणना करने पर संख्या भेद मिट जाते हैं। कुछ अंशों के त्रुटित होने से भी संख्या में भेद है, कल्पभेद भी इसका समाधान है। इन अतर्क्य विषयों पर तर्क नहीं किया जाता है।

वायुपुराण की लोकप्रियता का महत्त्व

बाणभट्ट की उक्तियों से वायुपुराण की लोकप्रियता की प्रतीति होती है, और लोक में वायुपुराण का महत्त्व ज्ञात होता है। यज्ञ यागादि में आहुति प्रदान के पश्चात शास्त्रों एवं पुराणों की चर्चा करने का विधान है। वे हर्षचरित में लिखते हैं कि पुस्तक वाचक सुदृष्टि ने वायुप्रोक्त पुराण का पाठ किया। **"पुस्तकवाचको गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ"** (हर्षचरित ३/५ अनु)

पुनः हर्षचरित तृ.प. ५ अनु. ५ में कहते हैं कि हर्षचरित से अभिन्न वायुपुराण है-

"तदपि मुनिगीतमति पृथु तदपि जगद्व्यापि पावनं तदपि।
हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति हि मे पुराणमिदम्।।"

अर्थात् पावनं पुराणं हर्षचरितादभिन्नं प्रतिभाति। यहाँ श्लेष से पावन अर्थ है पवनेन प्रोक्तं पावनम्, अर्थात् वायुपुराण तथा पावनं = पवित्रं, वह भी मुनि = व्यास द्वारा गीत है अति विस्तृत है, जगत में व्याप्त है, यह विशेषण हर्षचरित के विषय में भी संगत है।

कादम्बरी के पूर्वभाग जाबाल मुनि के आश्रम का वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहते हैं "पुराणेषु वायुप्रलपितम्" अर्थात् इस आश्रम में वायु द्वारा पीड़ित कोई व्यक्ति प्रलाप नहीं करता था, पुराणों में वायु प्रलाप = वायु द्वारा वर्णित किया गया पुराण वायुपुराण सुना जाता है, जनता में नहीं।

आचार्य शङ्कर भी (१/३/३० ब्र.सू. के) भाष्य में दो पद्य उद्‌घृत किये हैं, वे दोनों पद्य वायुपुराण (८/३२-३३) में उपलब्ध हैं।

"तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत् तस्य रोचते।।" इति।

परन्तु इसको आधार मानकर सातवीं सदी में या इससे कुछ पूर्व यह पुराण लिखा गया है, यह कल्पना नितान्त अनुचित है। शङ्कराचार्य को आठवीं सदी में कुछ लोग मानते हैं, परन्तु अमिट काल रेखा नामक निबन्ध में जो ३-४ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ है उसमें

अनुसन्धान पूर्वक सिद्ध किया गया है लगभग २५०० वर्ष पूर्व श्री शङ्कराचार्य का आविर्भाव हुआ है, यह निबन्ध द्वारका के शारदापीठाधीश्वर शङ्कराचार्य के यहाँ सुरक्षित है।

इसीलिए हम कहते हैं कि "तर्कप्रतिष्ठानात्" तर्क और बुद्धि को ही प्रमाण नहीं माना जा सकता, यहाँ श्रद्धा तथा विश्वास की आवश्यकता है।

वायुपुराण के कतिपय वर्ण्य विषय

वायुपुराण में पुराण का लक्षण नूतन रीति से किया गया है जो अन्य पुराण में उपलब्ध नहीं है।

"यस्मात्पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।"
निरुक्तमस्य यो वेद सर्व पापैः प्रमुच्यते।।" (वायु.पु. उत्तरार्ध ४१ अ. ५५)

"पुरा अनक्ति" पूर्वकाल के वृत्तातों को जो अभिव्यक्त करता है, उसे पुराण कहते हैं। यह अन्वर्थ स्वरूप लक्षण है। अनक्ति "अञ्जु" व्यक्तिप्रक्षण आदि अर्थों में पढ़ा गया रुधादि गण की धातु है।

यह श्लोक (१/१०३) प्रथम अध्याय में भी आया है।

मत्स्य पुराण के अनुसार श्वेतकल्प के प्रसङ्ग में वायु के द्वारा जिस पुराण में धर्म कथा का और रुद्रमाहात्म्य का वर्णन है, वही वायुपुराण है। नारदीय पुराण में कहा गया है कि जिस पुराण में श्वेतकल्प के प्रसङ्ग में भगवान शिव की महिमा प्रकाशित करने वाले २४ हजार श्लोक हैं, वही वायुपुराण है।

चतुर्द्वीपा वसुन्धरा सप्तद्वीपा वसुमती च।

वायुपुराण चतुर्द्वीपा तथा सप्तद्वीपा वसुन्धरा का वर्णन उपस्थित करता है। ये चारों द्वीप सुमेरु के चारों दिशाओं में फैले हुए हैं। सुमेरु के पूर्व दिशा में भद्राश्वद्वीप, दक्षिण में भारतद्वीप, पश्चिम में केतुमाल द्वीप, उत्तर में उत्तरकुरु नामक महाद्वीप हैं, ये चारों महाद्वीप पद्माकार पृथ्वी के चारों दिशा में पद्म पत्र के समान फैले हुए हैं।

महाद्वीपास्तु विख्याताश्चत्वारः पत्रसंस्थिताः।
ततः कर्णिकसंस्थानो मेरुर्नाम महाबलः।। (वायुपु. ३४/४६)

इन प्रत्येक महाद्वीपों में मुख्य रूप से एक विशिष्ट पर्वत, एक परम पवित्र नदी, एक सुन्दर वन, एक सुरम्य सरोवर, एक महान वृक्ष, भगवान् का एक अवतार वर्णित है।

"चतुर्महाद्वीपवती चतुराक्रीडकानना।
चतुष्केतु महावृक्षा चतुर्वरसरस्वती।।

चतुर्महाशैलवती चतुरोरगसंश्रया।
अष्टोत्तर महाशैला तथाष्टवरपर्वता।। (वायुपु. ४२/८०-८१)

भारतवर्ष सुमेरु के दक्षिण में है। इसका पर्वत हिमालय है, नदी अलकनन्दा है, वन नन्दन वन है, सरोवर मानस सरोवर है, वृक्ष जम्बू है, अवतार कच्छप है। सप्तद्वीपा का भी वर्णन है "तस्या द्वीपेषु सप्तसु" (वायुपु. पूर्वार्द्ध ८/१३) सप्तद्वीपा वसुमती के अनुसार यह भूलोक सात द्वीपों में विभक्त है। एक द्वीप के अनन्तर समुद्र, पुनः द्वीप, पुनः समुद्र, पुनः द्वीप-इस क्रम से सात द्वीप सात समुद्र हैं। उन द्वीपों का नाम जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक एवं पुष्कर हैं।

इन द्वीपों को चारों तरफ से घेरने वाले वलयाकार सात समुद्र हैं।

"लवणेक्षुसुरासर्पिदधिदुग्धजलैः समम्।
जम्बू द्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मेरुमैत्रेय! मध्ये कनकपर्वतः।।

इनमें एकद्वीप और समुद्र की अपेक्षा द्वितीय द्वीप और समुद्र का परिमाण द्विगुणित है।

भारतवर्ष वर्णन-समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण भारतवर्ष है, यहाँ भारतीय प्रजा निवास करती है। प्रजा का पालन पोषण करने से मनु का ही यौगिक नाम भरत है। इस निरुक्ति के आधार पर इस वर्ष का नाम भारतवर्ष है। यहीं परकर्मानुसार स्वर्ग या मोक्ष फल की प्राप्ति होती है। अन्यत्र मनुष्यों के लिए कर्म का विधान नहीं है (वा.पु. १/४५)।

इस भारतवर्ष के नवभेद कहे गये हैं। वे समुद्र से अन्तरित हैं। वे परस्पर में अगम्य हैं। उनके नाम- इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वरुण है। यह नवां द्वीप है, इसका नाम कुमारी द्वीप है। सागर से घिरा हुआ है। दक्षिणोत्तर में लम्बाई इसकी हजार योजन है। कन्या कुमारी से लेकर गङ्गा के प्रादुर्भाव तक कुछ तिरछा उत्तर में चौड़ाई नव हजार योजन की है। इस द्वीप के अन्तभाग में म्लेच्छों का वास है। इसके पूर्वी अन्तभाग में किरात हैं, पश्चिम में यवन हैं, मध्यभाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र हैं। यज्ञ-युद्ध-व्यापार इनकी जीविका है। इनका धर्म-अर्थ-काम त्रिवर्ग साधन हैं, स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्ति के लिए मानवों की प्रवृत्ति है।

जो यहाँ नवद्वीप हैं, जिसकी चौड़ाई तिरछी है, इसके समग्र भाग को जीतने वाले को सम्राट कहते हैं। यह लोक सम्राट, अन्तरिक्ष विराट दूसरे लोक स्वराट् कहलाते हैं। इनमें सात कुल पर्वत हैं-महेन्द्र-मलय-सह्य-शक्तिमान्-ऋक्ष-विन्ध्य-पारियात्र उनके नाम हैं। उनके समीप में हजारों दूसरे पर्वत हैं, मन्दर-बैहार-दर्दुर-कोलाहल-ससुरस-मैनाक,

वैद्युत-यातन्धम पाण्डुर-गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि-गोधन-पुष्पगिरि-जयन्त-रैवतक-श्रीपर्वत-कारु कूट शैल आदि और दूसरे भी उन पर्वतों के समीप में छोटे छोटे पर्वत हैं। उनसे मिले हुये आर्यों के जनपद हैं, बाह्यभाग में म्लेच्छों के जनपद हैं। जहाँ के रहने वाले गङ्गा-सिन्धु-सरस्वती-शतद्रु-चन्द्रभागा यमुना-सरयू-इरावती-वितस्ता-विपाशा-देविका-कुहू-गोमती-धूतपापा-बाहुदा-दृषद्वती-कौशिकी-निश्चीरा-गण्डकी-इक्षु लोहित नदियों के जो हिमालय से निकली हुई है जल पीते हैं।

इसके पश्चात् पारियात्र-विन्ध्यपर्वत-सह्यगिरि-मलय-महेन्द्र-शुक्तिमान आदि पर्वतों से निकलने वाली नदियों का वर्णन है। ये सारी नदियां पवित्र हैं, पुण्यदायिनी हैं, समुद्रगामिनी हैं, जगत का पाप हरने वाली हैं। विश्व की माताएँ हैं, इन सरिताओं से निकलने वाली सैकड़ों या हजारों सरिताएं या उपसरिताएं हैं। इनमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, जाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, बोध शतपथ, राजाओं के देश वत्स, किराष्ण, कुल्या कुन्तला काशिका, कोशल आदि देश हैं। यही समीप में तिलङ्ग.मगध, वृको के साथ मध्यदेश के जनपद हैं। सह्य के उत्तरार्ध में जहाँ गोदावरी नदी बहती है, वह देश समग्र भूभाग में मनोरम है। वहीं गोवर्धन नामक पर्वत देवराज के द्वारा निर्मित स्वर्ग के समान है। वहाँ विविध प्रकार के वृक्ष तथा औषधियां हैं। भरद्वाज मुनि ने इसे राम की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग से उतारे थे। यह वन का अन्तःपुर है, अत्यन्त मनोहर है।

श्राद्धकल्प

वायुपुराण के अनुषङ्गपाद में ११-१६ अध्यायों के श्राद्धकल्प का वर्णन है। इसके पूर्व दशम अध्याय में पूर्वपीठिका है। शांशपायन जी सूत से प्रश्न करते हैं, कि सूत जी हम श्राद्ध की विधि सुनना चाहते हैं, ये पितृगण किसके पुत्र हैं, वे पितृ (पितर) क्यों कहे जाते हैं; कुछ पितृगण स्वर्ग में रहते हैं वे देवताओं के भी देवता हैं, ये पितृसर्ग की कथा आप सुनावें। हम जब विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं तो वह पितरों को सन्तुष्ट करता है, वे सन्तुष्ट होकर श्राद्धकर्ता की कामना को पूर्ण करते हैं, कुछ पितर स्वर्ग में हैं, कुछ कर्मवश नरक में हैं, तो नरकस्थ पितर श्राद्धकर्ता की कामना कैसे पूर्ण करते हैं। वे फल कैसे देते हैं?

सूत जी ने उत्तर दिया कि मन्वन्तर में उत्पन्न हुये देवताओं के पुत्र ही पितर कहलाये। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने देवों की सृष्टि की, परन्तु वे यजन, पूजन, यज्ञ नहीं किये, तब अपनी दूसरी सृष्टि कर ली। इससे ब्रह्मा न असन्तुष्ट होकर इनको शाप दे दिया कि मूर्खों तुम्हारी चेतना शक्ति नष्ट हो जायगी। तब इन्होंने ब्रह्मा से पुनः प्रार्थना की और अपने अपराध को क्षमा करने के लिए निवेदन किए। ब्रह्मा ने भी अनुग्रह करके उन्हें प्रायश्चित्त करने के लिए निर्देश दिया और प्रायश्चित जानने के लिए कहा कि अपने पुत्रों से पूछो, तब उन देवताओं ने अपने पुत्रों से प्रायश्चित पूछा। उन्होंने भी उन्हें प्रायश्चितों

का उपदेश किया। वाणी, मन और कर्म से त्रिविध प्रायश्चित्तों का उपदेश प्राप्त कर वे देव अपने पुत्रों को आशीर्वाद-दिये आप लोग हमें दुष्कर्म निवारक प्राश्यचित्त का उपदेश किए हैं, अतः आप हमारे पितर हैं। अब आप बतावें कि आप को धर्म, ज्ञान या काम की पूर्ति में कौन सा वर दिया जाये। इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि आप सत्यवादी हैं। आप लोग अपने पुत्रों को पितर कहा है। अतः इन्हें पितर होने का वरदान दीजिए। इनके वरदान से ब्रह्मा के पुत्र देवगण पितर हो गये, और उनके पिता पुत्र हो गये।

ब्रह्मा भी सन्तुष्ट होकर पितरों को आशीर्वाद दिये कि जो पितरों का पूजन श्राद्ध बिना किए कोई यज्ञ यागादि करेगा तो उसका फल दानवों और राक्षसों को मिलेगा।

श्राद्ध से तृप्त पितर सोम को तृप्त करते हैं, और सोम चराचर जगत को तृप्त करता है और श्राद्धकर्ता की वृद्धि करता है। पुष्टि की कामना से, पुत्र की कामना से जो पितरों को श्राद्ध से सन्तुष्ट करेगा, उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति पितर करते हैं।

पुनः ऋषियों ने सूत से पितृसर्ग के विषय में प्रश्न किया, तो सूत जी ने कहा कि यही प्रश्न बृहस्पति के पुत्र शंयु ने बृहस्पति से पूछा था। उनका जो उत्तर वे दिये उसे सुनाता हूँ।

शंयु का प्रश्न -

१. पितर कौन हैं? कितने हैं? और उनके नाम क्या हैं?
२. पितरों का यज्ञ में पूजन क्यों होता है? महात्माओं की सारी क्रिया श्राद्धपूर्वक क्यों होती है?
३. किसको श्राद्ध देना चाहिए? और क्या देने से महाफल होता है?
४. किस तीर्थ में श्राद्ध करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है?
५. कहाँ श्राद्ध करने से समग्र फल प्राप्त होता है?
६. श्राद्ध का काल क्या है? और कौन सी विधि है ?

बृहस्पति ने कहा सृष्टि से पूर्व न तो पृथिवी थी, न अन्तरिक्ष था, न तो द्युलोक न नक्षत्र, न दिशाएं, न तो सूर्य और चन्द्रमा ही थे, न दिन था न रात्रि थी। समग्र अन्धकार से व्याप्त था। तब ब्रह्मा ने दुश्चर तप किया, इन तपोयोग से वेदों का प्रादुर्भाव किया। इस भूत भव्यलोक की सृष्टि की। सान्तानिक लोक की सृष्टि की, जिसमें अमित तेजस्वी वैराज नामक देवों के देवता निवास करते हैं। योग और तप से युक्त ब्रह्मा ने प्रथम देवताओं का सृजन किया। वे देव, महासत्त्व महाबलवान् आदिदेव कहलाते हैं। देव दानव मानवों से पूजित होकर उनके मनोरथों को पूर्ण करते हैं। उनके सात गण हैं, वे त्रैलोक्य में पूजित हैं। इन सात गणों में तीन गण तो अमूर्त हैं, भावमय हैं, चार गण मूर्तिमान हैं। उनमें भावमूर्ति वाले गण ऊपर तथा सूक्ष्ममूर्तिवाले उनके नीचे निवास करते हैं। पश्चात देवगणों की सृष्टि

हुई, अनन्तर भूमि की सृष्टि और लोक की परम्परा की सृष्टि हुई, यागादि क्रिया से पर्जन्य उत्पन्न हुआ, पर्जन्य से वृष्टि और वृष्टि से अन्न और लोकों का निर्माण हुआ। वे देवगण अपने योगबल से सोम और अन्न को आप्यायित किये, सोम से देवगण और अन्न से मानव तथा समग्र सृष्टि तृप्त हुई। अतः उन आदिदेवों को समग्र लोक देवों का भरण पालन करने के कारण पिता कहा गया, वे पितर कहलाये।

ये मन के समान वेगवान् हैं तथा स्वधा शब्द से समर्पित पदार्थ का भक्षण करने वाले हैं। ये लोभ मोह भय शोक से रहित हैं। ये हजार युगों के अन्त में ब्रह्मवादी हो जाते हैं, पुनः योग द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं। श्राद्ध से प्रसन्न ये पितर सोम को आप्यायित करते हैं, जिससे तीनों लोक के प्राणी जीवित होते हैं। अतः प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध करना चाहिए।

श्राद्ध योगियों को देना चाहिए, पितरों का बल योग ही है। हजार ब्राह्मण को भोजन कराने के बराबर एक योगी को खिलाना है, हजार गृहस्थ सौ वानप्रस्थी हजार ब्रह्मचारी के समान एक योगी है। जैसे सुवृष्टि से किसान संतुष्ट होते हैं, उसी प्रकार योग क्रिया में निष्णात को भोजन कराने से पितर सन्तुष्ट होते हैं। ध्यान क्रिया करने वाले ध्यानी महात्मा को भोजन करावें। अगर ध्यानी न मिले तो दो ब्रह्मचारी को भोजन करावें। यदि ब्रह्मचारी न मिले तो गृहस्थ ब्राह्मण को भोजन करावे। सिद्ध गण भी ब्राह्मण रूप में भ्रमण करते हैं, यदि वे मिल जायं अतिथि रूप में तो उनका स्वागत कर उन्हें अर्घ्य और भोजन से सन्तुष्ट करना चाहिए।

पितरों के सात गण हैं। अब उनका वर्णन करते हैं। इन पितरों की जो पुत्रियाँ हैं, और जो दौहित्र हैं, वे विरजस नाम के लोक में निवास करते हैं, वे विरज प्रजापति के पुत्र हैं, वैराज कहलाते हैं। यह वैराजों का प्रथम कल्प है। इनकी मानसी कन्या जिस का नाम मेना था, वह हिमवान् से व्याही गयी थी। उससे मैनाक पर्वत उत्पन्न हुये, जो सभी औषधियों से सम्पन्न, सभी रत्नों की खान था, उसका पुत्र क्रौञ्च पर्वत हुआ। हिमालय ने मेना से तीन कन्याओं को उत्पन्न किया, जिनका नाम था अपर्णा, एकपर्णा, एकपाटला। ये तीनों तप कर रही थी, इनमें एकपर्णा सौ हजार वर्ष बीतने पर वर के एक पत्ते से पारण करती थी, एकपाटला एक पाटल से तथा अपर्णा निराहार करती थी। उसको माता मेना ने उमा कहकर निषेध किया। अतः उसका नाम उमा पड़ गया। यह जगत् तीन कुमारियों वाला हो गया। ये सभी देवियाँ ब्रह्मवादिनी उर्ध्वरेता स्थिरयौवना थीं। इनमें उमा सबसे श्रेष्ठ थी, वह महायोग के बल से महादेव को प्राप्त की। एकपर्णा असति की पत्नी हुई, एकपाटला का शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य से विवाह हुआ। इन तीनों के क्रमशः उशना, देवल, तथा शंख लिखित मानस पुत्र हुये। रुद्राणी और शिव जब परस्पर संसक्त हुये, तब इन्द्र ने इनके सन्तानोत्पत्ति में विघ्न डालने के लिए अग्नि को भेजा। अग्नि वहीं पहुंच गये। अतः शिव ने उमा को छोड़कर भूमि पर शुक्र पात किया। इस पर क्रुद्ध होकर शिव बोले

अग्निदेव तुमने अकर्तव्य किया है, अतः इसका दण्ड भोगो, इस शुक्र को तुम धारण करो, अग्नि अन्तर्गर्भ हो गये। बहुत दिनों तक गर्भ धारण करने से अग्नि उसकी ज्वाला से सन्तप्त होकर गङ्गा जी के पास जाकर अपना दुःख सुनाया और उस गर्भ को धारण करने के लिए उनसे प्रार्थना की, गङ्गा जी की स्वीकृति प्राप्त कर अग्नि ने गङ्गा में गर्भ का त्याग किया, गङ्गा गर्भवती हो गयी, गङ्गा भी उस गर्भ को धारण तो कि परन्तु उसके ताप से सन्तप्त हो गयी। फिर हिमालय में शरवण था, जहाँ वृक्षों में विचित्र पुष्प लगे थे, वहीं गर्भ का विसर्जन कर दिया। वह गर्भ प्रदीप्त अग्नि के समान रुद्र-अग्नि-गङ्गा से उद्भूत अरुणप्रभा वाला सैकड़ों आदित्य के समान तेजस्वी उत्पन्न हुआ। उसे पक्षिगण घेर लिये, देवताओं ने दुन्दुभि बजाई, सिद्धों चारणों ने पुष्पवृष्टि की। वहाँ महानाग तथा पक्षिप्रवर उपस्थित हुये।

पहले ही अभिषेक के लिए आई हुई सप्तर्षियों की पत्नियों ने कुमार को देखा, केवल अरुन्धती नहीं आई थी। इनके तेज से दानव गण स्कन्दित हो (भाग) गये, अतः इनका नाम स्कन्द पड़ा। सप्तर्षि पत्नियों ने इस बालक से अत्यधिक स्नेह किया, इनके तेज से लोक का तेज आक्षिप्त हो गया। चन्द्र की कृत्तिका आदि छः पत्नियों ने इनका संवर्धन किया, अतः उनका कार्तिकेय नाम पड़ा।

विष्णु भगवान् के जंभाई लेने से ज्वालामाला से व्याप्त अपराजिता शक्ति उनके मुख से प्रादुर्भूत हुई उस बालक के क्रीडा के लिए मयूर और कुक्कुट दिये, वायु ने पताका दी। सरस्वती ने महावीणा, ब्रह्मा ने अज, शिव ने मेष दिया। असुर वर तारक के मारे जाने पर इन्द्र उपेन्द्र के सहित देवताओं ने इनका सेनापति पद पर अभिषेक किया।

एक पितरों की कन्या स्वर्ग से भ्रष्ट हुई, गिरती हुई विमानों को देखी। उनमें त्रसरेणु के प्रमाण के (बराबर) पितरों को देखकर 'त्रायध्वम्' मेरी रक्षा करो-इस प्रकार आर्तस्वर में बोली। पितरों ने कहा मत डरो, तुम अपने दोष से भ्रष्ट हुई हो। देवता जिस शरीर से जो कर्म करते हैं उसी शरीर से उसका फल भी भोगते हैं। यह सुनकर उसने पुनः पितरों की प्रार्थना की, तब से कृपाकर अवश्य होने वाली घटना को उसे समझाए।

इस समय राजा अमावसु मनुष्य शरीर से भूलोक में उत्पन्न हुये हैं, उनकी कन्या होकर पुनः अपने लोक की प्राप्त करोगी। तुम अट्ठाइसवें द्वापर में मत्स्य योनि से (मछली से) उत्पन्न होकर इसी अमावसु राजा की पुत्री होगी, तथा पराशर ऋषि से एक पुत्र उत्पन्न करोगी। वह ब्रह्मर्षि एक वेद का चार विभाग करेगा। पुनः तुम महाभिषक् शन्तनु के दो पुत्र विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद को उत्पन्न कर पुनः अपने लोक को प्राप्त करोगी। पितरों के व्यतिक्रम से तुम्हें यह दण्ड भोगना पड़ेगा।

ऐसा सुनकर वह दाश कन्या सत्यवती हुई, अद्रिका मछली में अमावसु से उत्पन्न हुई। यह गङ्गा यमुना के संगम (प्रयाग) में उत्पन्न हुई। इस वंश क्रम में उत्पन्न

अग्निष्वात्ता गण विरजा नाम के लोक में निवास करते हैं। ये पुलह प्रजापति के पुत्र हैं। इन धर्ममूर्ति तीन पितृगणों का वर्णन हो गया। इनकी मानसी कन्या पीवरी नाम से प्रसिद्ध थी तथा योगिनी योगपत्नी, योगमाता थी। अट्ठाइसवें द्वापर में पराशर के कुल में उत्पन्न शुक नाम के महातपस्वी होंगे, वे योगी महायोगी योग को उत्पन्न करेंगे। व्यास से अरणी में उत्पन्न धूमरहित अग्नि के समान तेजस्वी थे। वे उस पितृकन्या में कृष्ण, गौर, प्रभु, शम्भु तथा भूरिश्रुत को उत्पन्न किए तथा कीर्तिमती कन्या को उत्पन्न किए वह अणु की पत्नी तथा ब्रह्मदत्त की जननी हुई। इनको उत्पन्न करके वे शुकदेव जी अपुनरावर्तिनी गति को प्राप्त किये।

ये सब पितृगण अमूर्तिमान हैं। अग्नि से स्वधा में उत्पन्न पितर देवलोक में दीप्यमान है। इनकी मानसी कन्या जिसका गौ नाम था शुक्र की महिषी थी, भृगु की कीर्ति बढ़ाने वाले इकतीस हैं। वे स्वर्ग में स्थित हैं। इनकी मानसी कन्या का नाम यशोदा था, वह विश्वशर्मा की बहन थी। विश्वमहत् की पत्नी थी, खट्वाङ्ग राजर्षि की जननी थी, जिसके यज्ञ में महर्षियों ने गाथा गाई थी –

"अग्नेर्जन्म तथा दृष्ट्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
यजमानं दिलीपं ये पश्यन्ति सुप्समाहिताः।।
सत्यव्रतं महात्मानं ते स्वर्गजयिनोऽमराः।।"

(वायुपु. पितृ कल्प ११ अ.)

ये आज्यपा नाम के पितर कर्दम प्रजापति से उत्पन्न पुनः पुलह से उत्पन्न हुए हैं। इन पितरों की मानसी कन्या विरजा नाम की थी। वह नहुष की पत्नी ययाति की माता थी। उससे सुकाला नाम के पितर हुये। इन पितरों की मानसी कन्या नर्मदा नाम की सरिता हुई। वह पुरुकुत्स की पत्नी त्रसदस्यु की जननी हुई।

जो भक्ति से पितरों को तृप्त करता है, उसे पितृगण तृप्त करते हैं। पुष्टि प्रजा तथा स्वर्ग देते हैं। देवकार्य से भी पितृकार्य विशिष्ट है। देवताओं के पूजन के पूर्व ही पितरों की पूजा की जाती है। इनकी पूजा या सम्भावना देवगण, मरुद्गण, ब्रह्मादि देव, अत्रि, भृगु अङ्गिरादि ऋषि, यक्ष, नाग, सुपर्ण, किन्नर, राक्षस ये सभी फलार्थी पितरों की पूजा करते हैं।

प्रज्ञा-पुष्टि-स्मृति-मेधा-राज्य-आरोग्यादि सभी सुख एवम् ऐश्वर्य पितरों के प्रसाद से प्राप्त होता है।

लिङ्गपुराण[1]

यह पुराण परमेश्वर शिव के चरितानुवर्णन के माध्यम से वस्तुतः समग्र वैदिकज्ञान का प्रकाशन करता है, क्योंकि लिङ्गपुराण में सर्वप्रथम भगवान् शिव के चतुर्वेदमय स्वरूप का ही प्रतिपादन किया गया है। (पू. १.२०-२१); ब्रह्मतनु शिव ऋग्वक्त्र, सामजिह्व, यजुर्ग्रीव तथा अथर्वहृदय है। शिवोपासना का इस पुराण में विस्तृतरूपेण वर्णन है। परमात्मा को निर्गुण निराकार तथा अलिंग कहा जाता है। (नास्ति लिङ्गं चिह्नं यस्य स अलिङ्गः निर्गुणः)-यही परामात्मा अव्यक्ता प्रकृति का मूल है। इस परमात्मा में कोई गुण नहीं है। परमात्मा लिङ्ग (प्रकृति) का मूल है। लिङ्ग का अभिप्राय अव्यक्त प्रकृति है -

अलिङ्गो लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।
अलिङ्गः शिव इत्युक्तो लिङ्गं शिवमिति स्मृतम्।। - (पू. ३१)

पाणिनीय धातुपाठ १.१५२ एवं १०.१२४ के अनुसार लिगि धातु गत्यर्थक एवं चित्रीकरणार्थक है। लिङ्ग शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है-सबको अपने में लीन करने वाला अथवा जगत् के समस्त चराचर पदार्थों का यह परिचायक लक्षण है-लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः। (पू. १९.१६)

शिवपुराण के अनुसार लिङ्ग चरित के वर्णन के कारण इस पुराण को लिङ्गपुराण के नाम से अभिहित किया जाता है-लिङ्गस्य चरितोक्तत्वात् पुराणं लिङ्गमुच्यते। आलोच्य पुराण के पूर्वार्द्ध के १७वें अध्याय में लिङ्गोद्भव का वर्णन स्वरूप माहात्म्य सहित वर्णित है। भगवान् विष्णु के विग्रह रूप में लिङ्ग पुराण गुल्फ (टखना) माना जाता है- लिङ्ग तु गुल्फकम् (पद्म. पु. स्वर्ग. सं. ६२.५)। मत्स्यपुराण के ५३वें अध्याय तथा नारदपुराण के १०२ अध्याय में लिङ्गपुराण का सम्यक् परिचय प्राप्त है।

पुराण-सूची में लिङ्ग पुराण का स्थान तथा श्लोक परिमाण

लिङ्पुराण अष्टादश पुराणों की गणना में एकादश पुराण के रूप में परिगणित है। लिङ्गपुराण में एकादशसहस्र श्लोकों की संख्या उपदिष्ट है। परन्तु मुद्रित लिङ्गपुराण के पूर्वार्द्ध के १०८ अध्यायों में मात्र ५८१३ श्लोक है, उत्तरार्द्ध के ५५ अध्यायों में २२१५

---

१. प्रस्तुत निवन्ध हेतु गुरुमण्डल प्रकाशन, कलकत्ता से प्रकाशित 'लिङ्गपुराण' का उपयोग किया गया है। इसमें दो भाग हैं-पूर्वार्ध और उत्तरार्थ, जिनके लिए यथाक्रम पू. और उ. का प्रयोग यहां किया गया है।

श्लोक हैं। इस प्रकार समस्त श्लोकों का योग करने पर कुल श्लोक संख्या ८०२५ ही होती है। सम्भावना है उत्तरवर्ती काल में कतिपय श्लोकों को लिङ्गपुराण के मूल भाग से निकाल दिया गया हो तथा अर्वाचीन शोधार्थियों की यह भी सम्भावना है कि कुछ अंश समाविष्ट भी कर दिये गये हों। आर.सी. हाजरा महोदय भी अनेक निबन्धकारों (यथा-जीमूतवाहनादि) द्वारा लिङ्गपुराण के उद्घृत शताधिक श्लोकों की मुद्रित-ग्रन्थ में अनुपलब्धता सिद्ध कर उपर्युक्त तथ्य को प्रतिपादित करते हैं।[1]

लिङ्गपुराण के संस्करण

१. लिङ्गपुराण का गणेशनातू (पुणे) कृत शिवतोषिणी टीका सहित प्रकाशन १९०६ ई. में क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुबंई से हो चुका है। शिवतोषिणी टीका सहित इसका पुनः प्रकाशन नाग पब्लिशर्स, दिल्ली ने फोटो आफसेट रूप में सन् १९८९ ई. में किया है।

२. गुरुमण्डल प्रकाशन कलकत्ता से मूल मात्र लिङ्गपुराण का प्रकाशन हुआ है। इसकी तथा वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित विषयानुक्रमणिका में सामान्य अन्तर है पर मूल भाग में परिवर्तन प्राप्त नहीं है।

३. नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से भी लिङ्गपुराण प्रकाशित है। इस पुराण का विषय नारदपुराण की विषयसूची और लक्षण से साम्य रखता है।

४. इस पुराण का बंगला संस्करण, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

कुछ ऐसे ग्रन्थ हैं जिनको लिङ्गपुराण से निःसृत अथवा लिङ्गपुराण के अंश के रूप में माना जाता है यथा-अरुणाचल-माहात्म्य, पंचाक्षार माहात्म्य, रुद्राक्ष-माहात्म्य आदि।

लिङ्गपुराण की भाषा

लिङ्गपुराण की भाषा सरल तथा सुबोध है। इस पुराण में गद्यात्मक भाग भी उत्तरार्द्ध के ९, २४, २५, २६ तथा २८ अध्यायों में समुपलब्ध है, यह गद्य भाग भागवत से सरल है, इसमें कहीं-कहीं क्लिष्टता तो है पर प्रायः सारल्य है। इस पुराण में मन्त्रात्मक वाक्यों का भी प्रयोग (उ. २३ अ. में) प्राप्त है।

उत्तरवर्ती होने के कारण अपाणिनीय शब्दों का प्रयोग कम प्राप्त होता है। तथापि त्रियायुषम् पू. ३४.४ का प्रयोग है, जबकि होना चाहिए त्र्यायुषम्। इसी प्रकार तम-रज-दोष-विवर्जित (पू. ३४.२३) प्रयुक्त हुआ है, जबकि तमो रजो होना चाहिए। इसी

---

१. द्रष्टव्य-पुराणम्, लिङ्गपुराणं तन्त्रशास्त्रं च, परांजपे विनायक शर्मा, वाल्यूम ६, नं. २, जुलाई १९६४, पृ. २६४।

भांति 'सर्वाणि आतपन्ति' (पूर्वा. ६१.१) तथा 'धर्मञ्च अनुपालय' पू. ६६.८३ में सन्धि नहीं है।

लिङ्गपुराण में छन्द एवं अलंकार

लिङ्गपुराण में अनुष्टुप् के अतिरिक्त अनेक छन्दों का प्रयोग समुपलब्ध है। यथा- रथोद्धता (पू. ७२.६४), शार्दूलविक्रीडित (पू. ७२.७०), मालिनी (पू. ८०.६), इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि ८१.५६, १०६.१५। सुन्दरी, वैताली या वियोगिनी (पू. १०७. ५३), स्रग्धरा उ. ६.५५ आदि।

लिङ्गपुराण का अंलकारों की दृष्टि से यद्यपि वैशिष्ट्य नहीं है तथापि कतिपय शब्दालंकार एवम् अर्थालंकार स्तुतियों के प्रसंग में दृष्टिगोचर होते है। अनुप्रास तथा उपमा अलंकारों का विशेष प्रयोग आवश्कतानुसार इसमें किया गया है। उदाहरणार्थ-अनुप्रास पू. १०४.२८, उ. १०.१५, ७२.१५७। उपमा पू. ६४.१६, ७२.८७ पूणेपमा - पू. ७२. ६० आदि। विषम अलं. पू. २७.१६६, ७२.१६६ आदि।

लिङ्गपुराण का कालनिर्धारण

समस्त पुराणों के काल निर्धारण के विषय में विद्वानों में मतवैभिन्य है। समुपलब्ध पुराणों की रचना में पर्याप्त अन्तराल सिद्ध होता है। तत्कालीन व्यवस्था के अनुरूप इन पुराणों में नूतन उपादेय विषयों को समावेश तथा विषयों को पुराणों से निकाल दिया जाना सामान्य सिद्धान्त है-यह आधुनिक मत है।

इस दृष्टि से किसी भी ग्रन्थ के कालनिर्धारण के पूर्व उसमें प्राप्त विषयों का सम्यक् अध्ययन आवश्यक होता है। लिङ्गपुराण के कालनिर्धारण में इसका उत्तरार्द्ध विशेष रूप से सहायक हो सकता है। पूर्वार्द्ध के १४वें तथा १५वें अध्याय में तथा उत्तरार्द्ध के प्रारम्भिक सात अध्यायों (१६ से २५ अध्यायों तक) तथा बाद के तीन अध्यायों को मिलाकर उत्तरार्द्ध के कुल १० अध्यायों में लिङ्गपुराण के काल निर्धारण में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। शिवपूजाविधि वर्णन (अध्याय १६); दीक्षाविधि वर्णन (अध्याय २३); नामक अध्यायों में वर्णित विषय तन्त्रशास्त्रीय विषयों पर स्पष्ट रूप से आधृत है।

तन्त्रशास्त्र का प्रारम्भ ईसा की तृतीय अथवा चतुर्थ शती माना जाता है। लिङ्गपुराण में तन्त्रशास्त्रीय विषयों का विशद विवेचन उपलब्ध है। सामान्य रूप से यह निर्धारित किया जा सकता है कि लिङ्गपुराण की रचना तृतीय एवं चतुर्थी शती के बाद की होगी। अपने प्रारम्भिक चरण में तन्त्रशास्त्र सीमित विषयों एवं क्रियाओं से युक्त रहा होगा। परन्तु लिङ्गपुराण में प्रौढ़ विषयों को समावेश इस सम्भावना को द्योतित करता है कि तन्त्रशास्त्र के विकसित काल में लिङ्गपुराण की रचना हुई होगी और इसके विकास में कम से कम

तीन या चार शती व्यतीत हुई होगी। अतः इस आधार पर यह तथ्य स्थापित किया जा सकता है कि लिङ्गपुराण की रचना अष्टम शती से लेकर दशम शती के मध्य ही हुई है।

इसी प्रकार आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने भी अल्बेरुनी, कल्पतरुकार, लक्ष्मीधरभट्ट तथा योगभाष्य को उद्घृत करते हुए अपने प्रबल तर्कों के आधार पर लिङ्गपुराण का काल अष्टम एवं नवम शती निर्धारित किया है।[1]

लिङ्गपुराण में वर्णित विषयों का सार

लिङ्गपुराण दो भागों में विभक्त है-पूर्वार्द्ध एवम् उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विषय-साम्य के आधार पर लगभग २० प्रकरणों में विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में पाँच प्रकरण बनाये जा सकते हैं।

पूर्वार्द्ध

(१-२ अ.)-मंगलाचरण तथा अनुक्रमणिका है। लिङ्गपुराण में दी गयी अनुक्रमणिका तथा समग्र लिङ्गपुराण के अध्ययन से मुद्रित पुराण में विषयगत तथा क्रमगत वैषम्य प्राप्त होता है।

(३-६ अ.)-सृष्टि का वर्णन है। जिसमें प्राकृत (प्राथमिक सर्ग) युग संख्या, देवोत्पत्ति आदि की विवेचना की गयी है।

(७- ९ अ.)-शंकर रहस्य, योगस्थान तथा योगान्तरायों का वर्णन है। योग की चर्चा के प्रसंग में योग के आठ अंगों का लक्षण तथा योगसाधना में आने वाले विघ्नों का भी उल्लेख है।

(१०-१७ अ.)-शिवसाक्षात्कार, शंकरभक्ति, वामदेव-माहात्म्य अघोरेश-माहात्म्य तथा लिङ्गोद्भव का क्रमशः वर्णन है। लिङ्गोद्भव की रोचक कथा १७वें अध्याय में उल्लिखित है। प्रलय-समुद्र में विष्णु को निश्चिन्त सोते हुए देख कर ब्रह्मा ने पूछा तुम कौन हो ? ब्रह्मा माया के वशीभूत थे। जगने पर विष्णु ने ब्रहमा को 'वत्स सम्बोधन पूर्वक आसन ग्रहण करने को कहा। 'वत्स' सम्बोधन के कारण ब्रह्मा रुष्ट हुए। अपनी-अपनी श्रेष्टता को लेकर दोनों के मध्य विवाद होन लगा। इस विवाद की शन्ति हेतु इन दोनों के मध्य ज्योतिलिङ्ग का प्राक्ट्य हुआ। जिज्ञासा होने पर विष्णु सूकर-रूप में नीचे की ओर तथा ब्रह्मा हंस-रूप में ऊपर की ओर उड़े। परन्तु उस लिङ्ग को थाह न पा सके। उस लिङ्ग की दाहिनी दिशा में अकार, बायी ओर उकार तथा बीच में मकार है-ऐसा उन्होनें देखा। बाद में दोनों ने स्तुतियां की। शंकर ने दोनों को वरदान देकर सृष्टि कार्य अग्रसर करने का आदेश दिया।

१. पुराण-विमर्शः आचार्य बलदेव उपाध्याय; चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी १९६५, पृष्ठ ५५८।

(१८ - २३ अ.) - शिवस्तव, विष्णु तथा ब्रह्मप्रबोध, कुमाराविर्भाव तथा गायत्री-महत्व प्रतिपादित है।

(२४ - २८ अ.) लिङ्गार्चन-विधि-क्रम के प्रतिपादन-प्रसंग में गायत्री-जप-विधान, पंचमहायज्ञ सहित स्नानविधि आदि विषय उल्लिखित हैं।

(२९-३४ अ.) श्वेत ऋषि द्वारा रुद्र की उपासना करके समाप्त प्राय आयु से मृत्युंजयत्व की प्राप्ति, श्वेतमुनि का आख्यान (आख्यान अग्रिम पृष्ठों पर द्रष्टव्य) मुनिकृत शिवस्तोत्र, योगियों की प्रशंसा तथा पाशुपत योग का वर्णन है।

(३९-४०अ.) चतुर्युगों के धर्मों का वर्णन, चतुर्युगों का परिमाण, कलिधर्म तथा श्रौत स्मृति धर्मों का संक्षिप्त स्वरूप यहाँ प्राप्त है।

(४९-४४ अ.) इन्द्र द्वारा शिवभक्ति का वर्णन, ब्रह्म-शिव-संवाद, नन्दिकेश्वर का प्रादुर्भाव तथा नन्दिकेश्वर के अभिषेक का उल्लेख है।

(४५-५३ अ.) स्थूल-सृष्टि-वर्णन-प्रंसग में पाताल, भारतवर्ष, प्लक्षद्वीप तथा जम्बू द्वीप एवं मेरु गिरि का विशद वर्णन है। नील , हेमकूट, देवकूट, माल्यवान्, गन्धमादन, कैलास आदि पर्वतों का सीमा सहित वर्णन (१९ अ.) करते हुर यक्षराज कुबेर तथा यक्षों के निवासस्थान, रुद्रपुरी का उनके प्राकृतिक ऐश्वर्य सहित विशिष्ट वर्णन है। पृथ्वी के अधोवर्ती लोकों को भौगोलिक विस्तार एवं विशेषताएं भी वर्णित हैं। इसके अनन्तर पृथ्वी के सात द्वीपों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच शाक तथा पुष्कर) का उल्लेख सप्त-सागरों सहित प्राप्त है। मेरुपर्वत को आधार मान कर तेजस्विनी, अमरावती वेवस्वती, यशोवती आदि पुरियों का वर्णन है।

(५४-६२ अ.) इनमें ज्योतिष शास्त्रीय विषय वर्णित है जिसमें सूर्यमण्डल, सूर्यरथ निर्णय, आदित्य-स्थान, सोमवर्णन, सूर्यरश्मि का स्वरूप, ग्रह संख्या का वर्णन है। चन्द्रमा के रथ तथा उसकी वृद्धि एवं क्षय की विवेचना, अमावस्या, पूर्णिमा का वर्णन प्राप्त है। चन्द्रमा की वृद्धि एवं क्षय का कारण सूर्य को बतलाया गया है। सूर्य की रश्मियों को स्वरूप, षड् ऋतुओं में उनका प्रकार वर्णित है; यथा-वसन्त में कपिल, ग्रीष्म में कांचन, वर्षा में श्वेत, शरद में पाण्डु हेमन्त में ताम्र तथा शिशिर में लोहित वर्णवती होती है। सूर्य ही क्षण, मुहूर्त, दिवस, रात्रि, मास, संवत्सर, ऋतुओं तथा युगों का जनक है। सूर्य को रुद्रस्वरूप बतलाया गया है साथ ही ध्रुव का स्थान भी निर्धारित किया गया है। ध्रुवाख्यान का विस्तृत विवेचन भी यहीं प्राप्त है (आख्यान भाग द्रष्टव्य)।

(६३-६६ अ.) देवताओं, गन्धर्वो, उरगों, राक्षसों तथा ऋषियों की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। ऋषियों के वंशवर्णन में कश्यप, अत्रि की वंश-परम्परा उल्लिखित हैं वशिष्ठ के वंश-वर्णन-प्रसंग-में वशिष्ठ के पुत्र शक्ति की कथा उपलब्ध हैं। शक्ति की पत्नी अदृश्यन्ती के पुत्र पराशर द्वारा राक्षससत्र करना, वशिष्ठ द्वारा समझाने पर यज्ञ बन्द करना तथा

सोमवंशीय यदु के वंश का वर्णन किया गया है। सोमवंशानुकीर्तन द्वारा श्रीकृष्ण के आविर्भाव एवं तिरोभाव की कथा वर्णित है। यदुवंश के तथा पुरुवंश के राजाओं परीक्षित्, जनमेजय आदि का वर्णन उनके विशिष्ट कार्यों का स्मरण करते हुए किया गया है। यदुवंश के वर्णन में हैहय तथा वृष्णि वंशों की परम्परा भी उल्लिखित है।

(७० अ.) अव्यक्तमहदादि से सृष्टि का आविर्भाव, तैजससृष्टि, असुरोत्पत्ति, देवसृष्टि आदि का वर्णन है।

(७०-७३ अ.) त्रिपुरदहन का वर्णन है। दानवश्रेष्ठ मय ने त्रिपुर की रचना की थी। इस पुर की यह विशिष्टता थी कि एक भूतल पर लोहमय, दूसरा गगनतल में रजतमय तथा तीसरा द्युलोक में सुवर्णमय था। इस प्रकार तीनों पुरों से युक्त होने के कारण यह 'त्रिपुर' संज्ञा वाला हुआ। तदनन्तर दैत्यों का अत्याचार, देवताओं का भगवान् की शरण में जाना, त्रिपुरदाह हेतु रुद्ररथ का निर्माण तथा देवों के साथ उनका युद्ध हेतु प्रस्थान, तत्पश्चात् शिव के एक बाण के प्रहार से ही त्रिपुर को नष्ट करने की कथा वर्णित है। साथ ही शिवपूजा का माहात्म्य भी लिखित है।

(७४ -८२ अ.) शिवपूजा का माहात्म्य तथा उनके शिवलिंगों का वर्णन, शिवालय सेवा का महत्त्व, शिवार्चन विधि, पाशुपतव्रत का माहात्म्य, पशुपाश-विमोक्षण-व्रतादि का वर्णन है।

(८३-९२ अ.) उमा तथा महेश्वर का व्रत-विधान, पंचाक्षर मन्त्र (ओम् नमः शिवाय) का माहात्म्य, सदाचार की महिमा, शिवस्मरण-प्रकार, पाशुपत योग का निरूपण, अशौच वर्णन एवं वाराणसी का माहात्म्य वर्णित है। वाराणसी के वर्णन-प्रसंग में अविमुक्त-क्षेत्रीय उपवनों की शोभा का चारु-चित्रण है।

(९३-९७ अ.) हिरण्याक्ष द्वारा सागर में लीन की गयी पृथ्वी का वराह द्वारा समुद्धार की कथा उल्लिखित है। हिरण्यकशिपु के धर्मनिष्ठ, सत्य-सम्पन्न, तपस्वी तथा बुद्धिमान् पुत्र प्रह्लाद बाल्यावस्था से ही विष्णु की भक्ति में तल्लीन रहते थे जिसे देखकर हिरण्यकशिपु अप्रसन्न रहता था। एक बार दैत्य-कुमारों को प्रह्लाद द्वारा अष्टाक्षर मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) का उपदेश देने पर दैत्यराज ने रुष्ट होकर कहा-कौन विष्णु है ? इन्द्र वरुणादि देव कौन हैं ? पुत्र ! तुम मेरी अर्चना करो। प्रह्लाद नारायण की अर्चना करता है। तत्पश्चात् नृसिंह भगवान् प्रकट होते हैं और अपने नखों द्वारा हिरण्यकशिपु का वध कर प्रह्लाद की रक्षा करते है (९५ अ.)। अन्त में नृसिंह-स्तुति, शरभरूपी शिव का नृसिंह से संवाद, नृसिंह-वीरभद्र-संवाद तथा शिव एवं जलन्धर के युद्ध तथा शिव के द्वारा जलन्धर के वध का वर्णन है।

(९८-१०६ अ.) विष्णुकृत शिवसहस्रनाम, शिवद्वारा दक्षयज्ञ का विध्वंस, मदन-दहन, रति-विलाप, उमा की तपस्या, उमा का स्वयंवर, शिव उमा-विवाह, विनायक की उत्पत्ति तथा शिवताण्डव की रोचक कथा का वर्णन यहाँ प्राप्त है।

(१०७-१०८ अ.) उपमन्यु का चरित वर्णित है। उपमन्यु मुनि बाल्यावस्था में राजकुमार की भांति तेजस्वी थे। अपने मामा के आश्रम में मामा के पुत्र को यथेष्ट दूध पीते देखकर तथा अपने लिए अल्प मात्रा में दूध प्राप्त होने पर उपमन्यु ने अपनी माता से अधिक दूध की मांग की, माता ने अपने पुत्र का आलिंगन करते हुए दूध के अभाव को बतलाया, पर पुत्र के अधिक आग्रह पर कृत्रिम दूध बना कर पुत्र को दिया। पुत्र उपमन्यु तथ्य को जान कर दूध पीने से मना कर दिया। तब माता के द्वारा शिवोपासना से दुग्ध की प्राप्ति का उपदेश प्राप्त कर, उपमन्यु ने पंचाक्षर मंत्र के जप द्वारा शिव को प्रसन्न किया। शक्ररूपी शिव द्वारा 'वर मांगो' ऐसा कहने पर उपमन्यु को अपने सान्निध्य का वर प्रदान करने की कथा उल्लिखित है।

उत्तरार्द्ध

(१-८ अ.) कौशिक द्वारा नारायण-महिमा-वर्णन, विष्णु माहात्म्य, वैष्णव गीत, अम्बरीष तथा श्रीमती का आख्यान (अग्रिम पृष्ठों पर द्रष्टव्य दरिद्रा (अलक्ष्मी) का व्रत्त एवं द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) और अष्टाक्षर (ॐ नमो नारायणाय) मंत्रों का महत्त्व प्रतिपादित है। (महत्त्व अग्रिम पृष्ठों पर द्रष्टव्य)।

(१५-२७ अ.) शिवतत्त्व-माहात्म्य, पाशुपत-व्रत, शिवपूजाविधि, दीक्षाविधि, अघोरार्चन-विधि की विस्तृत विवेचना इन अध्यायों में की गयी हैं।

(२८-४५ अ.) अनेक दानों (यथा-तुलापुरुषदान, हिरण्यगर्भदान, तिलपर्वतदान, सूक्ष्म-पर्वत, लक्ष्मी-दान, कन्यादान आदि) की विधि एवं माहात्म्य तथा इसके साथ ही जीवच्छ्राद्ध की विधि भी वर्णित है।

(४६-५५ अ.) ऋषि, रुद्र, लिंग, मूर्ति एवं अघोरेश की प्रतिष्ठा तथा अघोशर्चन की विधि बतलायी गयी है। यहां अघोर-मन्त्र भी उल्लिखित अघोरेभ्यः प्रशान्तहृदयाय नमः। अथ कोटेभ्यः सर्वालशिरसे स्वाहा कोटकोटतरेभ्यः ज्वालामालिनो शिखायै वषट् सर्वेभ्यः पिंगलकवचाय हुं, नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वौषट्, सहस्राक्षाय दुर्मेदाय पाशुपतायास्त्राय हुं फट्।)। अघोर मन्त्र की साधना, वज्रेश्वरी-विद्या, वश्याकर्षणादि का प्रयोग के साथ ही मृत्युंजय-हवन-विधि (घृत, तिल, कमल, दूर्वा, गोक्षीर, मधु आदि से हवन करने से मृत्यु का प्रतिकार होता है) तथा पाशुपतयोग द्वारा शिवाराधन वर्णित है।

लिङ्गपुराण में सृष्टि

लिङ्गपुराण की दृष्टि से सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति अव्यक्ता थी तथा शिव के द्वारा दृष्ट होने के कारण वह शैवी हुई। इसी विश्वधात्री, अजा शैवी प्रकृति का समुच्छ्रित रूप विश्व है। 'अजामेकाम्.......... (श्वेताश्वरतरोपनिषद् ४.५) इत्यादि का ही उपबृंहण करते हुए लिङ्गपुराण में 'ताम् अजां लोहितां शुक्लां औष्णमेकां बहुप्रजाम्' आदि श्लोकों

के द्वारा शैवी प्रकृति का वर्णन किया गया है। इस क्रम में ही महत् से प्रारम्भ होकर अहंकार, पंचमहाभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा मन आदि की सृष्टि वर्णित है। पंचमहाभूतों के प्रसंग में उनके गुणों का भी निरूपण लिङ्गपुराण के तृतीय अध्याय में प्राप्त है।

महत् से विशेष पर्यन्त के तत्त्वों से अण्ड की उत्पत्ति होती है, उससे जलबुद्बुद् के समान ब्रह्मा अवतीर्ण होते हैं, ब्रह्मा से अन्य सृष्टि-क्रम होता है। यह सात्विक सर्ग है। सर्ग-क्रम के प्रसंग में काल का निरूपण अपरिहार्य है। लिङ्गपुराण के पू० चतुर्थ अ० में ब्रह्मा के काल का वर्णन किया गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होता है तथा प्रलय उनकी रात्रि का सूचक है। इस अहोरात्र के अन्तर्गत मन्वन्तर, चतुर्युग आदि की गणना भी वर्णित है। ब्रह्मा की सृष्टि में सात्त्विक, भौतिक, ऐन्द्रिय, मुख्य, तिर्यक्, दैविक, मानुष, अनुग्रह तथा कौमार सर्गों का निरूपण किया गया है। इस सृष्टि क्रम में भी मरीचि आदि नव ऋषि ब्रह्मा के, योग विद्या से उत्पन्न आद्य पुत्र माने गये हैं। लिङ्गपुराण पू. के पंचम, षष्ठ अध्यायों में इन ब्रह्मा-पुत्रों के द्वारा सृष्टि का प्रवर्तन वर्णित है। सप्तम अध्याय में व्यासावतार तथा योगाचार्यावतारों का वर्णन है। ब्रह्म सृष्टि का वर्णन अड़तीसवें अध्याय में समुपलब्ध है। महत् से सृष्टि का आविर्भाव यद्यपि प्रारम्भिक अध्यायों में उल्लिखित है तथापि इसका विस्तारपूर्वक वर्णन सत्तरवें अध्याय में प्राप्त होता है। इसी अध्याय में त्रिदेवों का आविर्भाव तेजस् सृष्टि, असुरोत्पत्ति तथा देवोत्पत्ति का वर्णन हैं।

लिङ्गपुराण में योग

शिवतत्त्व के ज्ञान हेतु योग की आवश्यकता लिङ्गपुराण के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित है। योग, चित्तवृत्तियों का निरोध है-(योगोनिरोघो-वृत्तेस्तुचितस्य-८.७) इसके आठ साधन परिगणित हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि, ये योग के आठ अंग हैं। आठवें अध्याय में इन अंगों का क्रमशः लक्षण भी प्राप्त होता है। इसमें प्राणायाम एवं ध्यान पर विशेष बल दिया गया है। योग की साधना में आने वाले विघ्नों की चर्चा भी दृष्टिगत होती है-(नवम अध्याय) योग-मार्ग से सिद्धि प्राप्त साधु पुरुषों का लक्षण भी बतलाया गया है (१०अ.) योगियों की प्रशंसा तथा पशुपति योग का वर्णन भी उल्लिखित है (३४ अ.) योग के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में लिङ्गपुराण तथा पातजंल-योग सूत्र का परस्पर अतिशय नैकट्य परिलक्षित होता है।

लिङ्गपुराण में प्राप्त विशिष्ट आख्यान

पुराणों में आख्यानों का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। लिङ्गपुराण में भी अनेक आख्यान वर्णित हैं। यथा-श्वेतमुनि का आख्यान, ध्रुवाख्यान, ययातिनृपाख्यान, अम्बरीषाख्यान तथा श्रीमत्याख्यान आदि।

श्वेतमुनि का आख्यान पूर्वार्द्ध के ३०वें अध्याय में वर्णित है। श्वेतमुनि परम शैव थे। उनकी आयु समाप्त प्राय थी फिर भी वे रुद्र की उपासना में संलग्न थे। तभी काल उपस्थित हुआ, परन्तु श्वेतमुनि ने उसका शिवभक्ति के बल पर दृढ़ता से विरोध किया। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हुए तथा श्वेतमुनि को अभय तथा आयु प्रदान की। श्वेतमुनि कृत शिवस्तुति ३१वें अध्याय में है।

ध्रुवाख्यान पूर्वार्द्ध के ६२वें अध्याय में उल्लिखित है। ध्रुव राजा उत्तानपाद की दो पत्नियों सुनीति एवं सुरुचि में से ज्येष्ठा सुनीति के पुत्र थे। एक बार पिता की गोद में बैठे ध्रुव को सुरुचि के पुत्र के कारण गोद से उतरना पड़ा। दुःखी ध्रुव अपनी माता के पास गये तथा उनकी बात सुनकर माता भी दुःखी हुई। 'तुम अपनी शक्ति से अपना स्थान प्राप्त करोगे' ऐसा कह कर माता ने ध्रुव को सान्त्वना दी। ध्रुव ने वन में विश्वामित्र के उपदेश पर तपस्या तथा द्वादशाक्षर मंत्र का जप किया। उनकी अटल भक्ति एवं तपस्या देखकर भगवान् ने उन्हें माता के साथ नक्षत्रों में स्थान प्राप्त करने का वरदान दिया। नक्षत्रों के मध्य ध्रुव आज भी शोभायमान है।

ययातिनृपाख्यान पूर्वार्द्ध के ६६वें अध्याय में वर्णित है। राजा नहुष के पुत्र ययाति की पत्नी शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी थी। देवयानी के साथ ही दासी रूप में आयी शर्मिष्ठा को भी स्त्री-भाव से रख लेने के कारण क्रुद्ध देवयानी के कहने पर उसके पिता शुक्राचार्य ने ययाति को वृद्ध होने का शाप दिया, साथ ही यह उपाय बतलाया कि यदि तुम्हारा कोई पुत्र तुम्हें वृद्धावस्था के बदले युवावस्था दे सके तो तुम इस शाप से मुक्त हो सकते हो। देवयानी के दोनों पुत्रों के निषेध करने पर शर्मिष्ठा के तीन पुत्रों में से तृतीय पुत्र पुरु द्वारा प्रदत्त युवावस्था प्राप्त कर ययाति अनेक वर्षों तक विषयवासना में संलग्न रहे, परन्तु अन्त में वैराग्य होने पर इन्होंने काम की निन्दा की।

अम्बरीष-आख्यान तथा श्रीमती-आख्यान उत्तरार्द्ध के पांचवें अध्याय में विस्तृतरूपेण वर्णित है। त्रिशंकु के पुत्र अम्बरीष नारायण के भक्त थे। त्रिशंकु के उपरान्त अम्बरीष का राज्याभिषेक हुआ। इन्होंने अपना राज्य मन्त्री को प्रदान कर सहस्रसंवत्सर पर्यन्त नारायण का जप किया। भगवान् ने इन्द्र-रूप में प्रकट होकर वर मांगने को कहा तब अम्बरीष ने कहा कि मैंने तो नारायण की उपासना की थी, अतः मेरी बुद्धि भ्रमित मत कीजिए तथा यहां से जाइये। ऐसा सुनने पर भगवान् ने अपना चतुर्भुज-रूप धारण कर अम्बरीष को सम्यक् प्रजा पालन का वर दिया। अम्बरीष पुनः अयोध्या आकर राज्य करने लगे।

अम्बरीष की एक सुलक्षणा कन्या थी, जिसका नाम 'श्रीमती' था। एक बार नारद तथा पर्वत ऋषि दोनों राजा के पास आये तथा इन्होंने उनकी पुत्री की स्त्री रूप में मांग की। राजा के यह कहने पर कि 'मेरी कन्या एक का ही वरण करेगी' नारद मुनि यह सुनकर भगवान् विष्णु के पास गये। विष्णु से नारद मुनि के वानरानन (बन्दर के समान

मुख) सदृशरूप की मांग की तथा पर्वतमुनि गोपुच्छानन (गाय की पूंछ के समान मुख) की इच्छा की। विष्णु के 'ऐसा ही हो' कहने पर पुनः अयोध्या वापस आये। इन दोनों ऋषियों की आकृति देखकर भीता श्रीमती ने इनके मध्य में छद्मरूपधारी युवा श्री विष्णु को वरमाला समर्पित की तथा माला पहनाकर वह कन्या लुप्त हो गयी। इस आख्यान में नारद एवं पर्वत मुनियों के बुद्धि मोह का सुन्दर चित्रण है तथा भगवान् द्वारा रामावतार का भविष्य कथन भी उल्लिखित है।

शैव-पाशुपत मत

लिङ्गपुराण का प्रधान वर्ण्य-विषय शिव ही है। शिवचरित का वर्णन पूर्वार्द्ध के अन्त में उल्लिखित है। यद्यपि शिव की उपासना, शिवस्तुति, ज्योतिर्लिंगों का वर्णन, त्रिपुरदाह-प्रसंग तथा कतिपय शिवसम्बन्धी विषय शिवचरित के पूर्व में भी प्रतिपादित हैं परन्तु ६५वें अ. में रुद्रसहस्रनाम तथा ९८वें अध्याय में शिवसहस्रनाम इस पुराण की विशिष्टता में परिगणित किये जा सकते हैं। शरभ रूपधारी शिव का नृसिंह से संवाद ९६वें अध्याय में वर्णित है। ९७वें अध्याय में जलन्धर से शंकरजी का युद्ध उल्लिखित हैं जलमण्डल से उत्पत्ति के कारण उसकी प्रसिद्धि जलन्धर रूप में हुई (जलन्धर इति ख्यातो जलमण्डल सम्भवः ९७. २)। जलन्धर का वध भगवान् ने सुदर्शन चक्र द्वारा उसके दो खण्ड करके किया, जिससे वह दैत्य भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार शिव ने जलन्धर का वध किया। शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ के ध्वंस के प्रसंग में अग्निमण्डप में प्रवेश, कलश-ध्वंस, तोरण-सहित यूपों का नाश तथा अन्त में दक्ष द्वारा क्षमा प्रार्थनापूर्वक शिव की स्तुति प्रतिपादित है। इसके अनन्तर मदन-दहन-वर्णन, शिव-प्राप्त्यर्थ उमा-तपस्या, उमा-स्वयंवर तथा उमा-शिव विवाह की कथा १०१ से १०३ अ. में वर्णित है। प्रस्तुत शिवचरित अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त है। विवाह के अनन्तर विनायक की उत्पत्ति तथा शिव-ताण्डव १०५वें अध्याय में वर्णित हैं।

शैव-व्रत तथा शिवार्चन-पद्धति

लिङ्गपुराण में शेव व्रतों एवं शिवार्चन की विस्तृत विधि अनेक अध्यायों में निबद्ध है। प्रस्तुत पुराण शिवविषयक व्रतों तथा अनुष्ठानों का विवरण देने में अपूर्व है। इसके पूर्वार्द्ध में प्रारम्भिक-सर्ग-विषयक तथा योग-सम्बन्धी अध्यायों के अनन्तर शिवार्चन-सम्बन्धी अध्याय प्रारम्भ होते हैं। सत्रहवें अध्याय में लिङ्गोद्भव की कथा लिखित है। शिव के ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों को ही दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग की उपासना करके सृष्टि का कार्य अग्रसर करने का आशीर्वाद दिया था।

विष्णुकृत शिवस्तुति का वर्णन १८वें अध्याय में है। शिवस्तोत्रांजलि-वर्णन २१वें अध्याय में विशद रूप से वर्णित है। इस स्तोत्र में भगवान् शिव के प्रसिद्ध तथा विशिष्ट नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-क्षेत्राधिपति, शूली, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, घटेश, व्योमचीराम्बर,

विद्याधिपति, व्रताधिपति, मन्त्राधिपति, पशुपति, हिमघ्न, तीक्ष्ण, प्राणपाल, मुण्डमालाम्बर, नृत्यशील, अप्रमेय, निर्गुण, वाहप्रिय, गुहावासी, खेचर, रजनीचर, नन्दवर्द्धन, बृहद्रथ, भीमकर्मा, बृहत्कीर्ति, महादेव, शिव, भव, आदि।

२५वें अध्याय में लिङ्गार्चन विधि वर्णित है। इसके अनुसार त्रिविध स्नान, आचमन के अनन्तर स्थान को कपिला गौ के गोमय से लेपनकर शुक्ल वस्त्र धारण करके पंचमुख भगवान् शिव के ध्यान का विधान है। २७वें अध्याय में भी लिङ्गार्चन का विधिक्रम वर्णित है। ५३वें अध्याय में अष्टमूर्ति शिव का वर्णन है। शिव की अष्टमूर्तियों का वर्णन उत्तरार्द्ध के तेरहवें अध्याय में भी प्राप्त है। शिव की अष्टमूर्तियों निम्नलिखित हैं- विश्वम्भरात्मक (पृथ्थीव्यात्मक) शिवमूर्ति = शर्व, जलीयमूर्त्ति = भव, अग्निमूर्त्ति = पशुपति, वायुमूर्त्ति = ईशान, आकाशमूर्त्ति = भीम, सूर्यमूर्ति = रुद्र, सोममूर्त्ति = महादेव, यजमानमूर्त्ति = उग्र।

शिवपूजा का माहात्म्य ७३वें अध्याय में तथा नानाविध शिवलिङ्गों का वर्णन ७४वें अध्याय में है। शिवाद्वैततत्त्व का वर्णन ७५वें अध्याय में उपलब्ध है। ७९वें अध्याय में शिवार्चनविधि वर्णित है, शिवार्चन की मुख्य विधि में शिव को पाद्य, आचमन तथा अर्घ्य देकर दिव्य जल, घृत और दुग्ध से स्नान कराना चाहिए। रुद्र को दधि से भी स्नान कराना चाहिए। बाद में शुद्ध जल से स्नान करा कर चन्दन, रोचनादि से पूजा करके दिव्य पुष्प एवम् अखण्ड बिल्व पत्रों तथा पद्मों से शिव की पूजा करनी चाहिए।

८३वें अध्याय में उमामहेश्वरव्रत की विधि समुपलब्ध है। ९८वें अध्याय में विष्णुकृत शिवसहस्रनाम तथा १०६वें अध्याय में शिवताण्डव का वर्णन है।

उत्तरार्द्ध में शिवाष्टमूर्तियों का वर्णन (१३अध्याय), शिवमाहात्म्य (अ. १६-१७), शिवपूजा (अ. १९-२०), तथा शिवार्चन विधि (२३वें अध्याय में) स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते है।

धर्मशास्त्रीय आचार

लिङ्गपुराण में धर्मशास्त्र-विषयक सामग्री भी प्रचुर रूप में दृष्टिगोचर होती है। इनमें मुख्यतः दान, व्रत, मंत्र-माहात्म्य, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध-विषय वर्णित है। यहां इनका क्रमेण उल्लेख किया जा रहा है।

दान-लिङ्गपुराण के उत्तरार्द्ध में अनेक प्रकार के दान उल्लिखित हैं (उ. २८.१४)। यथा-तुलापुरुषादिरोहणदान, हिरण्यगर्भदान, तिलपर्वतदान, सूक्ष्मपर्वतदान, सुवर्णमेदिनीदान, कल्पपादपदान, विश्वेश्वरदान, सुवर्णधेनुदान, लक्ष्मीदान, तिलधेनुदान, गोसहस्रदान, हिरण्याश्वदान, कन्यादान, सुवर्णवृषदान, गजदान, लोकपालाष्टकदान तथा विष्णुदान आदि।

उपर्युक्त दानों की विधिपूर्वक विस्तृत चर्चा २८ से लेकर ४४ अध्यायों में विद्यमान है। पशुओं के दान के सन्दर्भ में यह विशेष विधान उल्लेख है कि उनके प्रत्यक्षाभाव में 'निष्को' के रूप में दान दिया जाय। 'निष्क' प्राचीनकालीन स्वर्णमुद्रा थी। प्रत्येक दान का फल भी अन्त में वर्णित है। यथा-कन्या का दान देने वाला रुद्रलोक में निवास करता है। इन सभी दानों में विष्णुदान सर्वोत्तम दान बतलाया गया है।

व्रत-भगवान् शिव से सम्बद्ध होने के कारण इस पुराण में शैव-व्रत ही उपदिष्ट हैं। इन व्रतों में पाशुपतव्रत (पूर्वार्द्ध अ. ८०, १०८ तथा उत्तरार्द्ध अ. १८) शिवव्रत (अ.८३) तथा उमा-महेश्वर व्रत (पू. अ. ८४) मुख्य व्रत है।

मन्त्र-माहात्म्य-द्वादशाक्षर मन्त्र

उत्तरार्द्ध के सातवें अध्याय में पापों सें मुक्ति, अलक्ष्मी के नाश तथा समृद्धि हेतु इस मन्त्र का उपदेश सूत जी ने ऋषियों को किया था। इन मन्त्र का स्वरूप है-'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय'। इसके माहात्म्य में वर्णित है कि किसी विद्वान ब्राह्मण को एक ऐतरेय नामक पुत्र था। कुछ भी बोलने में असमर्थ उसकी जिह्वा द्वादशाक्षर मन्त्र मात्र का ही उच्चारण कर पाती थी। पुत्र की अपनी अयोग्यता से चिन्तित ब्राह्मण ने दूसरा विवाह किया तथा उससे उत्पन्न पुत्र ने अपनी योग्यता से परिवार को समृद्ध किया। पर ऐतरेय की मां दुखी रहती थी। एक दिन मां के दुःख से दुखी ऐतरेय यज्ञ-स्थल पर गये और द्वादशाक्षर मन्त्र का शुद्ध उच्चारण किया। यज्ञकर्ता ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए। यज्ञ के उपरान्त स्वर्ण आदि ऐतरेय को प्रदान किया गया। समस्त प्राप्त पदार्थ ऐतरेय ने अपनी माता को समर्पित कर माता को प्रसन्न किया।

इसी प्रकार उत्तरार्द्ध के आठवें अध्याय में अष्टाक्षर मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) का तथा पूर्वार्द्ध के ८५वें अध्याय में पंचाक्षर मन्त्र (ओम् नमः शिवाय) का माहात्म्य वर्णित है।

जीवच्छ्राद्ध-इसका विधान उत्तरार्द्ध के ४५वें अध्याय में वर्णित है। श्राद्ध व्यक्ति अपनी जीवितावस्था में अपने आत्मा के भावी कल्याण हेतु करता है। जीवत् श्राद्ध पर्वत, नदी, तट अथवा वन में किया जाता है। इसे श्रोत्रिय, अश्रोत्रिय, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी कर सकते हैं। इस विधि में अलग-अलग नामों से रुद्र को अनेक आहुतियां प्रदान की जाती हैं। तदनन्तर श्राद्धार्ह व्यक्तियों को भोजन कराया जाता है। विप्रों को प्रभूत दक्षिणा का विधान भी लिङ्गपुराण में उल्लिखित है। इस श्राद्ध की विशेषता यह होती है कि इसमें 'प्रेत' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

प्रतिष्ठा-ऋषियों द्वारा देवताओं की प्रतिष्ठा से सम्बधिंत प्रश्न-'विष्णु, शक्र, वायु, सोम, कुबेर, लक्ष्मी आदि की प्रतिष्ठा किस प्रकार की जाती है ?' पूछे जाने पर लिङ्गमूर्त्ति

की प्रतिष्ठा का विधान सूत जी ने उ. के ४६ से लेकर ४८ अध्यायों में बतलाया है। ४७वे अध्याय में लिङ्ग में अवस्थित देवताओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है यथा-इसके मूल में बह्मा, मध्य भाग में विष्णु तथा उर्ध्वभाग में पशुपति का निवास रहता है। (उ. ४७.१६)। ४८वें अध्याय में सभी देवताओं की प्रतिष्ठा के वर्णन के प्रसंग में गायत्री के भेदों का भी वर्णन किया गया। रुद्रांश रूप गायत्री के २२ भेद (अंश) बतलाये गये गरुड, स्रष्टा, वाचा, शुक्र, वह्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, यक्ष, रुद्र सर्वेश्वर रूप में पुनः उल्लेख, तथा दुर्गा ये सभी रुद्र के अंश के रूप में परिगणित हैं।

लिङ्गप्रतिष्ठा के सन्दर्भ में ही अघोरेश्वर की प्रतिष्ठा का निर्देश (४६ अध्याय) तथा अघोरमन्त्र की साधना (अ. ५०) आदि का विधान वर्णित है।

लिङ्गपुराण में तन्त्रविद्या

लिङ्गपुराण में तन्त्रशास्त्रीय विषयों का बाहुल्य है। तान्त्रिक ग्रन्थों में शारदा तिलक विशेष प्रतिष्ठाप्राप्त ग्रन्थ है। शारादातिलक में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने पर तथा लिङ्गपुराण के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि तान्त्रिक विषयों का शारदातिलक तथा लिङ्गपुराण में अत्यधिक साम्य है।

यहां आवश्यक समझकर शारदातिलक में वर्णित विषयों की सूची दी जा रही है। शारदातिलक के प्रथम पटल से लेकर षष्ठ पटल तक सृष्टिक्रम मातृकास्वरूप, मुद्रा, दीक्षाविधि, भूतशुद्धि, मन्त्रोपदेश प्रकार, षडध्वशुद्धि तथाा न्यासादि का वर्णन है। सत्रहवें पटल में गणपति, विष्णु, दुर्गा, शिव इत्यादि देवताओं के बीजमन्त्रों के साथ ही महामन्त्रों को बतलाते हुए मन्त्रसिद्धि में सहायक पुरश्चरण देवावाहन, पूजन, आवरण तथा अंग देवताओं के स्थापन पूजनादिपूर्वक सिद्ध मन्त्र के शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक कर्मों का विनियोग सहित उल्लेख प्राप्त है। दो पटलों में विभिन्न देवताओं की पूजा में आवश्यक मन्त्रों का स्वरूप बतलाये हुए पद्मासनादि आसनों के द्वारा कुण्डलिनी की जागृति हेतु सहायक योगविद्या का प्रतिपादन किया गया है।

लिङ्गपुराण के उत्तरार्द्ध के उन्नीसवें अध्याय में वर्णित शिवपूजा विधि तन्त्रमार्गानुसारी ही है। शिव के अष्टबाहु, चतुर्मुख, द्वादशाक्ष, जटामुकुटधारी भयंकर रूप का वर्णन है -

अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रं द्वादशाक्षं महाभुजम्।
अर्द्धनारीश्वरं देवं जटामुकुटधारिणम्।। उ. १६.७ ।।

उत्तरार्द्ध के ही बीसवें अध्याय के अन्त में प्रदत्त सभी विषय तन्त्रशास्त्र के ही प्रतिपाद्य विषय हैं। इक्कीसवें अध्याय में वर्णित दीक्षाविधि यज्ञविषयिणी न होकर तन्त्रशास्त्रपरक ही है। दीक्षा की समाप्ति पर दीक्षांगभूत ब्रह्मरन्ध्रभेदनादि का प्रसंग तन्त्रशास्त्र से प्रभावित

है। बाइसवें अध्याय में वर्णित स्नानविधि में सूर्यपूजन के समय गायत्री मन्त्र के साथ 'नमः सूर्याय खखोल्काय नमः' मन्त्र संयुक्त का जप विधान है। प्रस्तुत मन्त्र तन्त्र ग्रन्थों में ही समुपलब्ध होता है। तेइसवें अध्याय में उल्लिखित शिवार्चन विधि भी प्राणायाम, शोषण, दाहन, प्लावन के साथ करने का विधान तन्त्रशास्त्र से सम्बद्ध है।

चौबीसवें अध्याय में धरा, वारि, वह्नि, वायु तथा आकाशशुद्धि के प्रत्येक मन्त्र में फडन्त शब्द का प्रयोग इसकी तान्त्रिकता का द्योतन करता है। २५वें अध्याय में उल्लिखित 'शिवाग्निकार्यवर्णन' नामक अध्याय में निर्दिष्ट होम-विधि भी तन्त्रशास्त्र से प्रभावित हे। २६वें अध्याय का शीर्षक (अघोरार्चनविधिवर्णन) ही तन्त्रशास्त्र का बोधक है।

इसी प्रकार ५१, ५२ तथा ५३वें अध्याय में तन्त्रशास्त्रीय विधानों का सम्यक् तथा विस्तृत विवेचन वर्णित है।

अन्य विविध प्रसंग

भारतीय संस्कृति को पुष्ट करने वाले अन्य अनेक विषय लिङ्गपुराण में बहुशः उल्लिखित हैं। उनकी संक्षिप्त चर्चा प्रासंगिक है।

अलक्ष्मी का निवास

अलक्ष्मी (दरिद्रता) का वृत्त उत्तरार्द्ध के छठें अध्याय में वर्णित है। समुद्र-मन्थन के काल में विष की उत्पत्ति के अनन्तर अलक्ष्मी की उत्पत्ति हुई थी। अलक्ष्मी के उपरान्त लक्ष्मी समुद्र से उद्भूत हुई थी। अलक्ष्मी को ज्येष्ठा नाम से भी अभिहित किया जाता है। ज्येष्ठा का विवाह दुःसह नामक ब्राह्मण से हुआ था। धार्मिक-कृत्य-स्थलों से सर्वथा दूर रहने वाली अलक्ष्मी को लेकर दुःसह अत्यन्त चिन्तित रहते थे। मार्कण्डेय ऋषि से अपने निवास के विषय में प्रश्न करने पर ऋषि द्वारा उपदिष्ट स्थानों को अलक्ष्मी ने चुना। अलक्ष्मी के निवास स्थान हैं-जहाँ पति-पत्नी परस्पर कलह रत हों, जहाँ भगवद्निन्दा होती हो, जप, हवनादि से विरत स्थल आदि। जिस घर में बालकों का पोषण उचित रीति से न होता हो, जिस घर में पलाश के वृक्ष तथा नीम के वृक्ष हों, जहां मांगलिक कृत्य न होते हों, जो पुरुष परस्त्रीगामी हो, उनका घर अलक्ष्मी के लिए निरापद है .... इत्यादि।

भगवान् विष्णु ने भी अलक्ष्मी को बताया-जो पार्वती, शंकर और मेरे भक्तों की निन्दा करते हैं, उनके समस्त धन की तुम स्वामिनी हो। जो भगवान् शंकर के निन्दक हैं उनका धन तुम्हारा होगा। अलक्ष्मी के स्थानों का यह विवरण भारतीय संस्कृति के सदाचारों के परिप्रेक्ष्य में अतिविशिष्ट स्थान रखता है।

इसके अतिरिक्त ज्ञान से पापक्षय (८६ अ.), वाराणसी-माहात्म्य (१०३ अ.), सदाचार महत्त्व (८५ अ.), कलिकाल में वेदों की उपेक्षा तथा श्रौतस्मार्त्त धर्म का वर्णन (४० अ.) स्फुट रूप से 'लिङ्गपुराण' में वर्णित हुये हैं।

इस प्रकार विषय की व्यापकता की दृष्टि से लिङ्गपुराण का महत्त्व स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सृष्टिक्रम, देव, ऋषि, असुर, मनुष्य आदि वंशों का वर्णन, कालगणना, धर्मशास्त्र, सदाचार, उपासना, आख्यान, भूमण्डलनिर्देश, सांख्य, योग आदि दर्शनों का निरूपण तथा प्रसंगतः अत्यन्त मार्मिक सूक्तियों का निर्देश आदि विशेषताओं से यह पुराण मण्डित है। भूलोक में भारतवर्ष तथा उसके अन्तर्गत विशेषतः वाराणसी का महत्त्व स्पष्ट रूप से उल्लिखित होने के कारण काशी के प्रति इस पुराण का अतिशय सम्बन्ध ज्ञात होता है।

लिङ्गपुराण की टीका-'शिवतोषिणी'

लिङ्गपुराण पर एकमात्र उपलब्ध प्रसिद्ध शिवतोषिणी टीका के टीकाकार 'गणेश नातू' हैं। इस टीका के आरम्भ तथा अन्त के श्लोकों में टीकाकार ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। ये शैव हैं। इनके पिता का नाम बल्लालनातू तथा माता का नाम यशोदा था। ये पूना के निवासी महा-राष्ट्रिय ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनका गोत्र वशिष्ठ है। नातू उपाधि के कुल में विद्वान् नारायण के पुत्र बल्लाल नातू थे। इनकी पत्नी यशोदा के गर्भ से दो पुत्रियां तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें शिवतोषिणीकार गणेश ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके गुरु का नाम नीलकण्ठ था (श्री नीलकण्ठाख्यगुरोः प्रसादात्)। गणेश बाल्यकाल से ही शिवाराधन में संलग्न रहते थे - (बाल्याच्छिवाराधनरागयुक्तः)।

इनके द्वारा प्रदत्त विवरणों से यह ज्ञात होता है कि इनकी टीका की समाप्ति का काल (१७६९ शालिवाहन शक) १८४७ ई. है।-

प्लवङ्गवत्सरे शुक्लपञ्चम्यां श्रावणस्य तु।
अंकर्त्वश्वकुसंख्याके शालिवाहनके शके।।
पुण्यग्रामे च विश्वेशकृपया गुर्वनुग्रहात्।
लैङ्गव्याख्या समाप्तेयं शिवप्रेमभरास्पदा।।

अतः शिवतोषिणी टीका अर्वाचीन सिद्ध होती है।

टीका की विशिष्टता

टीकाकार वैदिक तथा पौराणिक साहित्य के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इन्होंने अपनी टीका में वैदिक मन्त्रों को अनेकशः उद्धृत किया है। उत्तरवर्ती होने के कारण टीकाकार का पुराण विषयक पाण्डित्य भी स्पष्ट होता है। शैव मतावलम्बी होने के कारण शिव विषयक स्थलों पर टीकाकार ने अधिक श्रम किया है। कई सरल स्थलों पर टीकाकार ने व्याख्या की आवश्यकता न समझते हुए श्लोक संख्या को उद्धृत मात्र किया है। प्रस्तुत टीका की भाषा

सरल तथा बोधगम्य है। सामान्य संस्कृत का ज्ञान रखने वाला भी इसका अभिप्राय समझ सकता है।

कतिपय श्लोकों की टीका उदाहरण स्वरूप यहाँ प्रस्तुत की जा रही है-यथा-

अलिङ्गो लिङ्गमूलं .... शिवमिति स्मृतम् ।। पू. ३.१

'ब्रह्माण्डरूपलिंङ्गस्य संभवस्थितिसंहृतीः संक्षेपेण शिवात्साम्बा तृतीयेऽस्मिन्निगद्यते।' नास्ति लिङ्गचिह्न यस्य सः अलिङ्ग : निर्गुणः अत एव श्रुतयोऽपि निषेधमुखेनैव परमेश्वरं प्रतिपादयन्ति। तदुक्तं महिम्ने-अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोरतद्वृत्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।' इति लिङ्गस्य मूलं कारणम् अव्यक्तं प्रकृति। लिङ्गं तु उच्यत इत्यन्वयः।

अनेक स्थलों पर टीकाकार ने आवश्यक पदों की टीका की है-

प्रधानं प्रकृतिश्चेति .... शब्दस्पर्शादिवर्जितम्।। पू. ३.२

अलिङ्, तटस्थशिवलक्षणं निरूपयति, गन्धर्वणरसैहीनमित्यादिना।

लिङ्गपुराण में गद्य वाक्यों की टीका भी टीकाकार ने अत्यन्त कुशलता तथा प्रवाहपूर्ण ढंग से की है। उदाहरणार्थ-

'स होवाचैव याज्ञवल्क्यो .... तदाश्नाति किञ्चन' ।। उ. १.५३

वाक्य की टीका देखी जा सकती है, जिसमें प्रत्येक शब्द की स्पष्ट व्याख्या की गई है।

गरुडपुराण[1]

नानाविध विषयों के समावेश के आधार पर गरुडपुराण को भी विद्वान् "विश्वकोष" की संज्ञा प्रदान करते हैं। उत्तरवर्ती साहित्य में इस पुराण के अन्य नाम यथा-तार्क्ष्य, वैनतेय, सुपर्ण (गरुड के द्वारा प्रोक्त सौपर्ण) जो गरुड के ही नामान्तर हैं भी मिलते हैं। दानसागर में तार्क्ष्य नाम का ही उल्लेख है, गरुड का नहीं जबकि अन्य निबन्धकार तार्क्ष्य, वैनतेय तथा सौपर्ण का भी उल्लेख करते हैं।

इस पुराण में विष्णु ने गरुड को विश्व की सृष्टि बतलायी है, इसीलिए इसका नाम गरुड पड़ गया (द्र.-पुराण-विमर्श पृ. १६०)। शिवपुराण-उमा संहिता (४४.१३५) के अनुसार इस पुराण के वक्ता स्वयं गरुड हैं, अतः इसका नाम गरुड पड़ा-गरुडस्तु स्वयं वक्ता यत् तद् गारुडसंज्ञकम्, मत्स्यपुराण (५३.५२) के अनुसार इसके आदिम उपदेष्टा कृष्ण तथा श्रोता गरुड हैं। तदनन्तर गरुड ने कश्यप को, कश्यप ने व्यास को, व्यास ने शौनक को तथा शौनक ने नैमिषारण्य में ऋषियों को इस पुराण का उपदेश दिया।

नारद पुराण (१.१०८.१-२) में गरुडपुराण का लक्षण निम्नलिखित है-

मरीचे श्रृणु वच्म्यद्य पुराणं गारुडं शुभम्।
गरुडायाब्रवीत् पृष्ठो भगवान् गरुडासनः।।
एकोनविंशसाहस्रं तार्क्ष्यकल्पकथाचितम्।

मत्स्यपुराण (५३.५३) के अनुसार-जिसमें भगवान् कृष्ण ने गरुडकल्प के समय विश्वाण्ड (ब्रह्माण्ड) से गरुड की उत्पत्ति के वृत्तान्त का आश्रय लेकर उपदेश दिया है, उसे इस लोक में गारुड (गरुड) पुराण कहते हैं-

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीत् कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते।।

तत्कालीन समाज की सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा आर्थिक स्थिति के सम्यक् ज्ञान हेतु ये पुराण विशेष उपयोगी है।

---

१. प्रस्तुत निबन्ध हेतु पण्डित पुस्तकालय, काशी (१९६३ ई.) से प्रकाशित मूल गरुडपुराण का उपयोग किया गया है।

पुराणसूची में स्थान एवं श्लोक-परिमाण

अष्टादश पुराणों की सूची में गरुडपुराण का स्थान सत्रहवाँ हैं-विष्णुपुराण ३.६.२४, मार्क. १३७.११, भाग. १२.१३.८, ब्रह्मवैवर्त ४.१३३.२०। पद्म पु. इसका स्थान सोलहवाँ कहता है। अल्बेरूनी की प्रथम सूची में तार्क्ष्यरूप में इसका स्थान पन्द्रहवाँ है। पद्मपु. (२६३.८२) इसे सात्विक पुराण मानता है, सात्विक पुराणों में विष्णु-माहात्म्य बाहुल्येन वर्णित है। सौर. (९.३५) इसे उपपुराणों के अन्तर्गत रखता है।

गरुडपुराण के दो खण्ड हैं-पूर्वखण्ड-इसमें २२९ अ. हैं तथा उत्तर खण्ड (नामान्तर प्रेत खण्ड) इसमें ३५ अ. हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर २६४ अ. हैं। (यही संस्करण (२६४ अ. वाला) सर्वाधिक प्रचलित है) वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण के पूर्वार्द्ध में २४० अ., प्रेतखण्ड में ४९ अ. तथा ब्रह्मखण्ड में २९ अ. हैं (कुल ३१८ अ.)। वंगवासी संस्करण के पूर्वखण्ड में २४३ अ. और उत्तरखण्ड में ४५ अ. हैं (कुल २८८ अ.)। प्रेतखण्ड के पृथक्-पृथक् संस्करणों में अध्यायों की संख्या में साम्य नहीं है।

मत्स्य पु. (५३.५३) के अनुसार इस पुराण की श्लोकसंख्या अट्ठारह हजार है-तदष्टादशकं चैव सहस्राणीह पठ्यते। जबकि नारद पु. (१.१०८.२) तथा ब्रह्मवैवर्त पु. (४.१३१.२०) ने इस पुराण की श्लोकसंख्या उन्नीस हजार बतलायी है। गरुड पु. (१.१.३५) स्वयं को ८८०० श्लोकों वाला बतलाता है जबकि अग्नि पु. (२७२.२१) इसे आठ हजार श्लोक संख्या वाला मानता है-

गारुडं चाष्टसाहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पके।

पञ्चपर्वमाहात्म्य, त्रिवेणी-स्तोत्र, विष्णुधर्मोत्तर, वेंकटगिरि माहात्म्य, श्रीरंगनाथ-माहात्म्य, सुन्दरपुर-माहात्म्य आदि अनेक लघुकाव्य ग्रन्थ इससे निस्सृत माने जाते हैं।

गरुडपुराण की भाषा

इस पुराण के पूर्वखण्ड में पद्यभाग के अतिरिक्त मन्त्रात्मक वाक्य (गद्यभाग) भी अनेक अध्यायों में प्राप्त हैं-(उत्तर-खण्ड में गद्य नहीं है)।

उदाहरणस्वरूप-अ. ७, १०, १२, १६, २०, २३, २५-२७, २९-३२, ३८-४२, १३४, १९४, १९५, १९८, २०६-२१२ आदि।

गरुडपुराण में कतिपय अपाणिनीय शब्द भी प्राप्त है, यथा-उदरम्भर (१.२०५.८२) जो पाणिनि-सूत्र के अनुसार निष्पन्न नहीं होता, चान्द्रव्याकरणानुसार उदरम्भरि शब्द सिद्ध होता है (सिद्धान्त-कौमुदी ३.२.२६)। गृहण (१.३८.१२) शतृ के स्थान पर शानच् का प्रयोग, जपमानः (२.१७.४४), जीवमान (२.१६.३४)। इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए द्र. रामशङ्कर-भट्टाचार्य सम्पादित गरुडपुराण, भूमिका पृ. ९।

गरुडपुराण में छन्द

अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य अनेक छन्दों का भी व्यवहार इस पुराण में हुआ है। यथा-

मालिनी - १.१.१, १.११०.१८, २२६. ५०-५१, २.१५.४१, ३५.५२।

शिखरिणी - १.११३.११

शार्दूलविक्रीडित - १.१०६.६, १८, १.११३, १.११४. १४, १.११५. २, ८१, १२२२.४४।

वसंन्ततिलका - १.६८.२२.३१, १.७३.५, १.६६.३५, ३७, १.७१.५, ७, २.८.२२, २.६.८।

स्रग्धरा - १.१०८.२७, १.१११.११, १.११३.१४, १.११४.३६, २.१०.४५।

आर्या - २.१.१

गरुडपुराण का काल तथा देश

गरुडपुराण का काल-निर्धारण भी अन्य पुराणों की भाँति ही दुष्कर है तथा विद्वानों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ है। इसके काल-निर्धारण में विद्वानों ने इसमें उपलब्ध अन्तःसाक्ष्यों की विवेचना इस प्रकार की है-गरुडपुराण में याज्ञवल्क्य-स्मृति का वर्णधर्म तथा पराशर-स्मृति का संक्षिप्त रूप भी प्राप्त होता है। नारदपुराण की सूची में इन स्मृत्यंशों के उल्लेख की अनुपलब्धता इन अंशों की उत्तरवर्तिता सिद्ध करती है। इस पुराण में आयुर्वेदविषयक प्रभूत सामग्री भी वर्णित है। विद्वानों ने अत्यन्त साम्य के आधार पर अष्टाङ्ग हृदय-संहिता को इस भाग का उपजीव्य निश्चित किया है। अष्टाङ्गहृदय-संहिता के लेखक वाग्भट्ट द्वितीय का काल अष्टम, नवम शती का मध्य माना जाता है। इस प्रकार गरुड-पुराण नवम शती का उत्तरवर्ती होगा। वल्लालसेन ने दानसागर में तार्क्ष्य-पुराण के रूप में तथा भोजराज ने "युक्तिकल्पतरु" में इसके अनेक श्लोकों का संकलन किया है। अल्बेरूनी (१०३० ई.) ने भी इस पुराण का उल्लेख किया है।

इस आधार पर यह पुराण १००० ई. से उत्तरवर्ती नहीं हो सकता है। अतः इसका काल अष्टम, नवम शती स्थिर किया जा सकता है (द्र. पुराण-विमर्श पृ. ५६७)।

बृहत्संहिता अथवा नीलिसार के नाम से उल्लिखित (१०८-११५ अ.) नीतिविषयक श्लोक "चाणक्यनीतिशास्त्र" नामक ग्रन्थ से अविकल लिये गये हैं। "चाणक्यनीतिशास्त्र" चाणक्य (विष्णुगुप्त) रचित न होकर तिब्बती भिक्खु (रिन-चेन-जोन-पी जन्म ९५५ ई.) द्वारा अनूदित तथा संकलित है। अतः गरुडपुराण की रचना नवम शती से पूर्ववर्ती सिद्ध

होती है। चाणक्य राजनीतिशास्त्र का संग्रह काल अष्टम शती निश्चित है, अतः इस आधर पर भी गरुडपुराण का काल अष्टम शती के उपरान्त नवम शती निश्चित किया जा सकता है। डा. हाजरा गरुडपुराण प्रेत-कल्प (उत्तरखण्ड) को उत्तरवर्ती मानते हैं-(पौराणिक टीका. पृ. १४४)।

इस पुराण में पश्चिम में यवनों (पश्चिमे यवनाः) तथा उत्तर में तुरूष्कों (तुरूष्काश्चोत्तरे) निवास का उल्लेख है। यवन और तुरूष्क अरब और तुर्क विजेता थे। सिन्ध के नास्तिक म्लेच्छों को यवन कहा गया है-सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा- (ग.पु. १.५५.१५)। इन ऐतिहासिक तथ्यों के विवेचन द्वारा डा. अवध बिहारी अवस्थी ने इस पुराण का काल सिन्ध-विजय के बाद उत्तर-पश्चिम में तुरूष्कों के प्राबल्य के युग (९००-१००० ई.) को माना है।[1] उपर्युक्त वाक्य अन्य पुराणों में भी प्राप्त है, द्र. विष्णुपुराण २.३.१७ अतः इससे काल निर्धारण नहीं होता है।

विद्वानों के मतों के पर्यालोचन के द्वारा गरुड-पुराण का काल दशम शती निर्धारित किया जा सकता है।

गरुडपुराण का रचना-स्थान की पर्याप्त विवेचन की अपेक्षा रखता है यद्यपि डा. हाजरा इसका स्थान मिथिला मानते हैं (द्र. पुराण विमर्श पृ.) परन्तु इस क्षेत्र में अभी पर्याप्त शोध की सम्भावनाएं हैं।

गरुडपुराण में वर्णित विषयों का सार

(१-२ अ.) मङ्गलाचरण तथा पुराणोपक्रम।

नैमिषारण्य में ऋषियों के देवतत्त्व, ईश्वरतत्त्व आदि विषयों से सम्बद्ध प्रश्न पूछे जाने पर सूत ने इनका उत्तर यहाँ दिया है-प्रारम्भ में गरुड ने इस पुराण का उपदेश कश्यप को दिया था। बाद में व्यास से सूत ने इसका श्रवण किया। जगत् के रक्षणार्थ देवाधिदेव नारायण के अवतार ग्रहण करने तथा उनके अन्य अवतारों का वर्णन है। विनता की कथा द्वारा नागभय के निवारण तथा विनता के दासी भाव से मुक्ति की कथा भी लिखित है।

(३-६ अ.) प्रारम्भ में इस पुराण में वर्णित विषयों की सूची लिखित है। तदनन्तर सृष्टि का कथन है। ब्रह्माविष्णुरुद्र की उत्पत्ति, महत्तत्व, तन्मात्र, वैकारिक, मुख्य-तिर्यक्-उर्ध्वस्रोतों, अनुग्रह सर्ग तथा कौमार सृष्टि चतुर्विध प्रजा की उत्पत्ति तथा असुरों की उत्पत्ति के साथ ही रात्रि, देवगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मनुष्य, पशु-पक्षी, सरीसृप आदि की उत्पत्ति का सृष्टिवर्णन के प्रसङ्ग में विवेचन किया गया है।

१. गरुडपुराण : एक अध्ययन : अवध बिहारी अवस्थी, कैलाश प्रकाशन लखनऊ, १९६८, पृ. १५।

(७-१० अ.) तान्त्रिक विधि से की जाने वाली सूर्य-पूजा वर्णित है। तदनन्तर विष्णु की तथा लक्ष्मी की पूजा-विधि बतलायी गयी है। इसके मध्य में दीक्षा की विधि का उल्लेख भी प्राप्त है।

(११-१३ अ.) नवव्यूहार्चन का विधान है। नवव्यूह [वासुदेव, बल (राम), काम (प्रद्युम्न), अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, सिंह (नृसिंह), वाराह] के नाम तथा वैष्णवपञ्जर-स्तोत्र लिखित है। वैष्णवपञ्जर-स्तोत्र में विष्णु द्वारा विभिन्न अवतारों में गृहीत अस्त्र-शस्त्रों से समस्त दिशाओं में अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना की गयी है।

(१४ अ.) भुक्तिमुक्तिप्रदाता योग का संक्षिप्त वर्णन है। योग की विभिन्न अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयादि का उल्लेख करते हुए वैष्णव रीति से ध्यान का विवरण दिया गया है।

(१५-१७ अ.) विष्णुसहस्रनाम तथा उसके पाठ का माहात्म्य लिखित है। इसके पाठ से द्विज विष्णुत्व को, क्षत्रिय जय को, वैश्य धन को तथा शूद्र विष्णुभक्ति को प्राप्त करता है। विष्णु के शङ्खचक्रगदाधारी रूप के ध्यान के साथ ही सूर्चार्चन (खखोल्क सूर्य) की विधि भी वर्णित है। सूर्य के साथ ही अन्य ग्रहों की पूजा का विधान विहित है।

(१८-२० अ.) मृत्युञ्जय (शिव) की पूजा का वर्णन है। अमृतेश मन्त्र (ओम् अमृतेश्वरभैरवाय नमः, ओम् जुं सः सूर्याय नमः) तथा इसके जप का माहात्म्य भी लिखित है। गारुडी विद्या तथा अन्यान्य अनेक मन्त्रों का उल्लेख है।

(२१-२३ अ.) मुक्ति-भुक्ति-प्रदायी शिव की पूजा वर्णित है। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान नामों का उल्लेख है। शिवार्चन में आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्थान आदि का विधान विहित है। साथ ही सूर्य-मन्त्र (ओम् हां हीं हूं हैं हौं हः शिव सूर्याय नमः। ओम् हं खखोल्काय सूर्यमूर्तये नमः। ओम् ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः) तथा भूतशुद्धि आदि तान्त्रिक विषय भी लिखित हैं।

(२४-२७ अ.) यहाँ गणपति, अष्टशक्तियों, त्रिपुरा तथा पादुका-(अनन्तशक्ति, आधारशक्ति, कालाग्नि रुद्र, हाटकेश्वरदेव, शेषभट्टारक) पूजा आदि का तथा तान्त्रिक विषयों-मन्त्र, मुद्रा, देहादिन्यासों का वर्णन है। सर्वनागविषहरण मन्त्र भी यहाँ लिखित है।

(२८-३४ अ.) गोपाल, त्रैलोक्यमोहन, श्रीधर, विष्णु, पञ्चतत्त्व, (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण), सुदर्शनचक्र तथा हयग्रीव की पूजा विस्तृत रूप से वर्णित है।

(३५-३७ अ.) गायत्री-न्यास, प्राणायाम, (प्रणव तथा व्याहृतिपूर्वक आयतप्राण होकर तीन बार गायत्री का जप) -पूर्वक सन्ध्या-विधि का वर्णन है।

(३८-४१ अ.) दुर्गा (गौरी, काली, उमा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, विजया, लक्ष्मी, शिवा, नारायणी आदि का क्रमपूर्वक पूजन), सूर्य और माहेश्वरी-(महेश्वर सम्बन्धी) पूजा-विधि वर्णित है।

(४२-४३ अ.) पवित्रारोपण। आषाढ, श्रावण, माघ तथा भाद्रपद में पवित्रक के पूजन का विधान है। सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, कपास तथा कुश से निर्मित पवित्रक का उल्लेख है। विष्णु-सम्बन्धी पवित्रारोपण (४३ अ.) भी वर्णित है।

(४४-४५ अ.) हरि का ध्यान प्रतिपादित है। इसमें यम, नियम, आसन प्राणायाम आदि का भी वर्णन है। शालग्राम-लक्षण (४५ अ.) कथित है। शालग्राम-शिला के स्पर्श को कोटिजन्मों के पापों का विनाशक बतलाया गया है। शालग्राम के केशव, नारायण, विष्णु, मधुसूदन, श्रीधर, वासुदेव, हृषीकेश आदि भेदों के लक्षण बतलाये गये हैं।

(४६-४८ अ.) वास्तुयाग-विधि तथा प्रासाद लक्षण प्रतिपादित हैं। प्रासादों के विभिन्न प्रकारों यथा-चतुःषष्टिपद, षोडशभागिक प्रासादों का उल्लेख प्राप्त है। विभिन्न प्रासादों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है-(१) वैराज (चतुरस्र), २-पुष्पक (आयताकार), ३-कैलास (वृत्ताकार), ४-मालिक (वृत्तायत) और ५-त्रिपिष्टप। सर्वदेवप्रतिष्ठा की विधि (४८ अ.) संक्षेप में वर्णित है। किस देव की प्रतिष्ठा किस वैदिक मन्त्र से की जाय इसका भी उल्लेख है।

(४९-५० अ.) वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के धर्म प्रतिपादित हैं। इसी के वर्णन प्रसङ्ग में अष्टाङ्ग योग की भी विवेचना की गयी है। यहाँ सदाचार का उपदेश (५० अ.) भी है। ब्राह्ममुहूर्त में जगकर धर्मार्थ चिन्तन करने की तथा दन्तधावन, स्नान, व्याहृतिपूर्वक सावित्री मन्त्र-जप, प्राणायाम आदि नित्य-क्रियाओं की विधि बतलायी गयी है।

(५१-५३ अ.) दानधर्म, प्रायश्चित्त तथा अष्टनिधियाँ। दान का लक्षण, भेद तथा इससे सम्बद्ध अन्य विवरण यहाँ वर्णित हैं। भूमि-दान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है। विभिन्न दानों (कृष्णाजिन, तिल, मधु आदि) का फल भी बतलाया गया है। यथा-विद्या दान देने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। पापों तथा उपपापों के प्रायश्चित्त विहित हैं। विष्णु की आठ निधियों (पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील, शङ्ख) का उल्लेख तथा स्वरूप वर्णित है।

(५४-५७ अ.) सात द्वीपों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर), सात कुल पर्वतों (महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य, पारिभद्र), सात पातालों (अतल, वितल, नितल, गभस्ति, सुतल आदि), नरकों (रौरव, सूकर, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वैतरणी, कृमिश, कृमि भोजन, असिपत्रवनादि) का वर्णन है।

(५८-६२ अ.) सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ग्रहादि के प्रमाण-संस्थान के साथ ही फलित ज्योतिष का भी विवरण है। देवता-कथन, सिद्धयोग तथा अमृतयोग की विवेचना है। सूर्य, चन्द्र, बुध, शनि, गुरु, राहु आदि की दशाओं, काल तथा उनके शुभाशुभ फलों का वर्णन है। यहाँ चन्द्रशुद्धि, द्वादश राशियों के परिमाण, मेषादि लग्नों में विवाह के फल भी कहे गये हैं।

(६३-६५ अ.) समुद्र द्वारा उपदिष्ट सामुद्रिक शास्त्र के विषय प्रतिपादन के अन्तर्गत स्त्री एवं पुरुष के अङ्गों के विशिष्ट लक्षणों (वर्णता, ह्रस्वता, स्थूलता, उच्चता, गाम्भीर्य आदि) के आधार पर उनके गुण दोषों की विवेचना की गयी है।

(६६-६७ अ.) स्वरोदय-शास्त्र। उन उपायों का कथन है जिनके माध्यम से वायु पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ पाँच स्वरों (आ, ई, ऊ, ऐ, और औ) का भी उल्लेख है।

(६८-८० अ.) रत्न-परीक्षा। वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्मक, पुलक, रुधिर, स्फटिक तथा विद्रुम रत्नों की परीक्षा, उत्पत्ति स्थान, मान तथा लक्षणादि की विवेचना की गयी है। किस वर्ण को कौन सा रत्न धारण करना चाहिए, इसका भी विधान विहित है।

(८१-८६ अ.) तीर्थ-माहात्म्य। वाराणसी, कुरुक्षेत्र, द्वारका, केदार, नैमिष, अयोध्या, चित्रकूट, रामगिरि, काञ्ची, रामेश्वर, गोदावरी, गोकर्ण आदि तीर्थों का उल्लेख तथा माहात्म्य वर्णित है। गया का महात्म्य (८२-८६ अ.) विशेष रूप से प्रतिपादित है। विष्णु द्वारा गयासुर के वध की कथा, गया में यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान, स्नान आदि से मनुष्य को ब्रह्म प्राप्ति का उल्लेख है। किसी भी प्रकार से मृत्यु प्राप्त मनुष्य का यहाँ पर श्राद्ध करने से उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति का वर्णन है।

(८७-९० अ.) मन्वन्तर तथा पित्राख्यान। चतुर्दश मन्वन्तरों तथा उनके पुत्रों के नाम के साथ तत्सम्बद्ध देवों और ऋषियों का वर्णन है। अग्निष्वान्त, बर्हिषद, आज्यप, सोमप आदि पितरों का विवरण, पूजन तथा श्राद्धादि की विस्तृत विवेचना की गयी है।

(९१-९२ अ.) विष्णुध्यान। शङ्ख-चक्र-गदाधर विष्णु के विशिष्ट ध्यान का वर्णन तथा इस ध्यान के पाठ द्वारा परम-गति-प्राप्ति का उल्लेख है।

(९३-९७ अ.) याज्ञवल्क्य प्रोक्त वर्ण-धर्म का कथन है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनेक वाक्य थोड़े पाठान्तर के साथ यहाँ संगृहीत हैं। धर्मशास्त्र के वक्ता ऋषियों (मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, आपस्तम्ब, औशनस, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख, हारीत, अत्रि आदि) का उल्लेख है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि के संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म) का वर्णन तथा गृहस्थधर्मविचार, गृहस्थों के कर्तव्याकर्तव्य का वर्णन भी है। सङ्कर जातियों (शूद्र, निषाद, अम्बष्ठ, म्लेच्छ चाण्डाल, प्रतिलोमज, अनुलोमज) के गृहस्थों की कर्मविधि भी कथित हुई है। अशुद्ध द्रव्य का शुद्धिकरण किस प्रकार किया जाय ?- द्रव्य शुद्धि (९७ अ.) के अन्तर्गत बतलाया गया है।

(९८-९९ अ.) दान तथा श्राद्ध। प्रारम्भ में दान की विधि वर्णित है। दान देने हेतु अन्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में स्वकर्मपरायण को श्रेष्ठ तथा उनमें भी विद्या, तप से अन्वित

ब्रह्मवेत्ता को श्रेष्ठ बतलाया गया है। गौ, धान्य, छत्र, वृक्ष, यान, घृत, शय्या आदि के दान का विधान विहित है। श्राद्ध की विधि, श्राद्धार्ह ब्राह्मण का लक्षण एवं श्राद्धमाहात्म्य प्रतिपादित है।

(१००-१०१ अ.) विनायकपूजा तथा ग्रह-यज्ञ। विनायकपूजा की विधि उसका माहात्म्य तथा फल कथित है। सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, ग्रहगणों की शान्ति, हवन, दानादि का विधान विहित है।

(१०२-१०३ अ.) वानप्रस्थाश्रम एवं भिक्षु के धर्म बतलाये गये हैं। भार्या को पुत्रों के समीप छोड़कर अथवा साथ रखकर वनगमन करना चाहिए। वन में ब्रह्मचर्यपूर्वक अग्नि के साथ शम, दम, क्षमादि गुणों के परिपालनपूर्वक भूमिशयन, ग्रीष्म में पञ्चाग्नि-सेवन, वर्षा में स्थण्डिलशयन, हेमन्त में आर्द्रवस्त्रयुक्त योगाभ्यासपूर्वक अक्रुद्ध तथा परितुष्ट होकर वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करें। भिक्षु के धर्म प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि भिक्षु को सभी प्राणियों की हितचिन्ता करते हुए शान्त, कमण्डलुयुक्त, त्रिदण्डी होकर भिक्षा के लिए अलोलुप, यात्रा (प्राणधारण मात्र) के लिए ग्राम में जाना चाहिए।

(१०४-१०६ अ.) पापफल, प्रायश्चित्त तथा अशौच। ब्रह्म, स्वर्णचौर, धान्यहर्ता, पिशुन, तैलहारी, तैलपायी आदि पापिष्ठ पुरुषों की मरणोत्तर जीवन में जो गति होती है, उसका उल्लेख है। इन पापों के शमनार्थ प्रायश्चित्तों की विस्तृत विवेचना की गयी है। यहाँ चान्द्रायणव्रत, पञ्चगव्य-(गोक्षीर, दधि, मूत्र, शकृत, घृत)-पान, गोदान, पयोव्रत तथा प्रेताशौच का कथन है।

(१०७ अ.) पराशरोक्त-धर्म। पराशर द्वारा कथित वर्णाश्रमधर्म का कथन है। कलियुग में दान को धर्म कहा गया है। षट्कर्मों (सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देव तथा अतिथिपूजन) के आचार से युक्त मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। कृषिकर्ता द्वारा राजा को षड्भाग, देवताओं को बीसवाँ भाग तथा ब्राह्मणों को तैंतीसवाँ भाग प्रदान करने का विधान है।

(१०८-११५ अ.) नीतिसार। नीतिविषयक श्लोकों का संग्रह है। धर्म, अर्थ, काम से सम्बद्ध सुभाषितों तथा राजधर्म, राजनीति और राजव्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले श्लोकों को उद्धृत किया गया है। सिद्धिकामी पुरुष को सज्जनों की सङ्गति करनी चाहिए। असज्जनों की सङ्गति इहलोक तथा परलोक दोनों को नष्ट करती है। क्षुद्र लोगों से संवाद नहीं करने तथा दुष्टों के दर्शन का भी निषेध है। मूर्ख-शिष्य को उपदेश देने से, दुष्ट स्त्री के पोषण से तथा दुष्ट-पुरुषों की सङ्गति से पण्डित व्यक्ति भी कष्ट उठाता है। यहाँ स्त्री के गुण-दोषों की भी विवेचना की गयी है।

आपत्तिकाल हेतु धन की रक्षा, स्त्रियों की रक्षा धन से भी अधिक तथा स्वयं की

रक्षा, धन तथा स्त्री से भी अधिक करनी चाहिए। इन आठ अध्यायों (१०८-११५ अ.) में सुभाषित विषयक ३६० श्लोक संकलित हैं।

(११६-१३७ अ.) व्रत-विधान। तिथिव्रत (प्रतिपद, द्वितीया, तृतीया आदि), अनङ्गत्रयोदशी (मार्गशीर्ष के शु.प. की त्रयोदशी), अखण्डद्वादशी (मार्गशीर्ष शु.प. की द्वादशी), अगस्त्यार्ध्य व्रत, रम्भा तृतीया (मार्गशीर्ष शु.प. की तृतीया), चातुर्मास्य, मासोपवासाख्य (वानप्रस्थ, यति तथा नारियों द्वारा आश्विन शु.प. की एकादशी से तीस दिनों तक सम्पादित होने वाला व्रत), भीष्मपञ्चक, शिवरात्रि, एकादशी (दोनों पक्षों की), मुक्तिभुक्तिकर पूजा विधि ा, व्रत-परिभाषा, दष्टोद्वरण, पञ्चमी, सप्तमी, रोहिण्यष्टमी (भाद्रपद शु.प. अष्टमी), बुध ाष्टमी (पौषमास की दोनों अष्टमियों को बुधवार के दिन), अशोकाष्टमी (चैत्रमास शु.प. की अष्टमी), महानवमी, नवमी (वीरनवमी, दमनाख्य नवमी), दिग्दशमी, श्रवणद्वादशी, आदि व्रतों की विधि, माहात्म्य तथा फल प्रतिपादित हैं।

(१३८-१४१ अ.) वंश-वर्णन। सूर्य-चन्द्र-वंशीय राजाओं के नाम परिगणित हैं। ब्रह्मा से दक्ष, दक्ष से अदिति और अदिति से विवस्वान् तथा विवस्वान् से मनु का जन्म हुआ। मनु के इक्ष्वाकु, शर्याति, मृग, धृष्ट, पृषध्रक, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट और शशक हुए। इसी प्रकार सूर्यवंश का प्रारम्भिक वर्णन करते हुए इक्ष्वाकु से भगीरथ तथा भगीरथ-पुत्र श्रुत से लेकर दशरथ पुत्र रामादि के उल्लेखपूर्वक बहुलाश्व से कृति तक का वर्णन है। सूर्यवंश के कथनान्तर सोमवंश का वर्णन है। नारायण से ब्रह्मा और ब्रह्मा से अत्रि का जन्म हुआ। अत्रि से सोम (चन्द्र) की उत्पत्ति हुई। सोमवंश के विस्तृत वर्णन में तुर्वसु, द्रुह्य, अनु, पूरु, कुरु, मागध आदि वंशों का वर्णन है।

(१४२-१४५ अ.) विष्णु के अवतारों (मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म, धन्वन्तरि, (मोहिनी क्षीरोदमथनकाल में स्त्रीरूप), वराह, नरसिंह, परशुराम, राम) के वर्णन के साथ ही पतिव्रता सीता का माहात्म्य कथित है। कुष्ठी कौशिक तथा उसकी पत्नी माण्डवी (जिसने अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से सूर्योदय को ही रोक दिया था) की कथा का तथा पतिव्रता अनुसूया का उल्लेख है। रामायण, हरिवंश (कृष्ण-माहात्म्य), भारत (महाभारत) की कथा भी संक्षेप में कथित है।

(१४६-१६७ अ.) आयुर्वेदीय निदान। यहाँ कहा गया है कि आत्रेयादि मुनियों द्वारा उपदिष्ट सर्वरोग निदान का ज्ञान धन्वन्तरि ने सुश्रुत को प्रदान किया है। रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुष्ट, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद और आबाध शब्द पर्याय हैं (१.१४६.२)। निदान (मूल कारण), पूर्वरूप (प्राथमिक रोग लक्षण), रूप (रोग की तात्कालिक स्थिति), उपशय (वृद्धि) तथा सम्प्राप्ति रोगविज्ञान के ये अङ्ग हैं। समस्त रोगों का मूल कारण दोष का कुपित होना बतलाया गया है। सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मताः १.४६.१३)। उस कोप का कारण विविध अहितकर पदार्थों का सेवन है। यहाँ वात, पित्त, कफ के प्रकोप

के कारण भी निर्दिष्ट हैं। अग्रिम अध्यायों में ज्वर रक्तपित्त, कास, श्वासरोग, हिक्का, यक्ष्मा, अरोचक, हृदरोग, मदात्यय, अर्श, अतीसार, मूत्राघातमूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, विद्रधिगुल्म, उदर, पाण्डुशोथ, विसर्प कुष्ठ, क्रिमि, वातव्याधि, वातरक्त आदि रोगों के निदान बतलाये गये हैं।

(१६८-१७२ अ.) निदान के अनन्तर चिकित्सा भी बतलायी गयी है। यहाँ अनुपानादि विधि सहित ज्वर, नाडीव्रण, शूल, भगन्दर, स्त्रीरोगादि की चिकित्सा-विधि प्रतिपादित है।

(१७३-१९३ अ.) रोगनाशक द्रव्यगुण-विवेचन है। घृत-तैलादि के गुणों का कथन तथा चिकित्सा में प्रयुक्त नाना योगों का प्रतिपादन है। अनेक अध्यायों में अनेक औषधियों की गुणविवेचनपूर्वक चर्चा प्राप्त है। हरीतकी, पिप्पली, आमलक, हरिद्रा, निम्ब, त्रिफला आदि ओषधियों के गुणों तथा विभिन्न रोगों में इनकी उपादेयता बतलायी गयी है। वशीकरण, वन्ध्या-गर्भधारण, उच्चाटन का उल्लेख प्राप्त है। अनेक व्याधिनाशक तथा वशीकरण मन्त्र भी प्रोक्त हैं।

(१९४-१९६ अ.) सर्वव्याधिहर वैष्णव-कवच। कवच में विष्णु की प्रार्थना की गयी है कि वे विभिन्न रूपों के द्वारा हमारे शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा करें। यहाँ ज्वरनाशक अनेक लघुमन्त्र (ओम् कालाय स्वाहा, ओम् कालपुरुषाय स्वाहा, ओम् कृष्णाय स्वाहा आदि) तथा अनेक दीर्घमन्त्र-(ओम् नमः अयोखेतये ये-ये संज्ञायापात्र.........पूर्वतो रक्ष। ओम् हे है है है........पश्चिमतो रक्ष। ओम् निवि निवि......उत्तरतो रक्ष। ओम् विलि विलि मिलि मिलि...दक्षिणतो रक्ष।) कहे गये हैं।[1] सर्वकामप्रद तथा विष्णुधर्माख्य विद्या का भी कथन है।

(१९७-२०० अ.) गरुडप्रोक्त विषनाशक गारुडी विद्या, भैरवरूपी महेश्वर द्वारा कथित त्रिपुर-मन्त्र (ओम् ह्रीं आगच्छ देवी ऐं ह्रीं ह्रीं... अस्त्राय फट्) का कथन है। शुभाशुभ ज्ञान के शुद्ध्यर्थ चूडामणि-विद्या तथा वायुजय (२०० अ.) का उल्लेख है।

(२०१-२०२ अ.) हयायुर्वेद (अश्वचिकित्सा) तथा औषधियों का नाम-कथन है। ग्राह्य एवं त्याज्य अश्व के लक्षण, उनके रोग तथा चिकित्सा बतलायी गयी है। गजायुर्वेद (३३ से अन्तिम श्लोक तक) के अन्तर्गत गज हेतु सूर्य, शिव, दुर्गा, विष्णु की पूजा, रोगी गज को प्रदान की जानें वाली औषधियों आदि का संक्षिप्त कथन है।

(२०३-२०४ अ.) व्याकरण। इस व्याकरण के वक्ता कुमार तथा श्रोता कात्यायन हैं। कात्यायन इस व्याकरण के विस्तारक हैं।

---

१. इन मन्त्रों के मुद्रित-पाठ कहीं-कहीं भ्रष्ट प्रतीत होते हैं।

(२०५-२०६ अ.) सदाचार। श्रुति-स्मृति के ज्ञानपूर्वक श्रौतकर्म करने, श्रौत कर्म की अनुक्ति पर, स्मार्त कर्म तथा उसके पालन में अशक्त व्यक्ति को सदाचार के पालन का विधान है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के आचरण प्रोक्त हैं। स्नान-विधि तथा इस काल में जपे जाने वाले अनेक मन्त्र (ओम् उरुं राजा वरुणश्चकार...वरुणाय नमः। ओम् ये ते शतं वरुणाय...पूर्वमृद्भिस्त्रिभिस्त्रिभिः।) आदि उल्लिखित हैं। तर्पण वैश्वदेवहोम तथा सन्ध्या-विधि वर्णित है।

(२१०-२१२ अ.) श्राद्ध। पार्वण, नित्य तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध की विधि, माहात्म्य तथा फल वर्णित हैं।

(२१३-२१४ अ.) धर्मसार तथा प्रायश्चित्त। कर्म को प्रधानता देने, शोक के परित्याग, होम, जप, स्नान, देवार्चन में तत्परता करने की तथा सत्य, दम, दया आदि गुणों से युक्त मनुष्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। लोभ, क्रोध, द्रोह, मोह, राग, द्वेष, अनृतादि की निन्दा तथा विभिन्न पापों के प्रशमनहेतु प्रायश्चित्त भी बतलाये गये हैं।

(२१५-२१७ अ.) कृत-त्रेता-द्वापरादि युगों की अवस्थाओं, तत्कालीन युग के मनुष्यों की आयु तथा दशादि का वर्णन है। यहाँ पुराण पञ्चलक्षण, अष्टादशपुराण-नामावली, तथा उपपुराणों की भी सूची प्राप्त है। ब्राह्मनैमित्तिक प्रलय, आत्यन्तिक प्रलय तथा संसारचक्र का वर्णन है।

(२१८-अ.) अष्टाङ्गयोग। इसका उपदेश दत्तात्रेय ने अलर्क को दिया था। योग के आठ अङ्गों (यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि) की विवेचना की गयी है।

(२१९-२२६ अ.) विष्णुभक्ति, हरिनमस्कार, विष्णुमाहात्म्य, नरसिंहस्तव (शिवकृत नृसिंह-स्तुति) कुलामृतस्तोत्र (महेश्वरप्रोक्तस्तोत्र) मृत्यवष्टक (मृत्यु + अष्टक) स्तोत्र तथा अच्युत स्तोत्र (विष्णुपरक) कथित है।

(२२७-२२८ अ.) वेदान्त और सांख्य के सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। अद्वैतयोगसम्पन्न व्यक्ति बन्धन से मुक्त होते हैं। सद्विचार के कुठार से संसारवृक्ष छिन्न होता है-ऐसी विशिष्ट उक्तियों के द्वारा आत्मज्ञान का महत्व वर्णित है।

(२२९ अ.) गीतासार। भगवान् द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट गीता का संक्षिप्त उपदेश यहाँ लिखित है। साथ ही यम-नियम-आसन-प्राणसंयम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा-समाधि इन आठ योगाङ्गों, ब्रह्मचर्य-पालन, शौच आदि का वर्णन तथा "अहं ब्रह्मास्मि" आदि वेदान्त वाक्यों का कथन है।

उत्तर-खण्ड (प्रेतकल्प)

(१-२ अ.) तार्क्ष्य (गरुड) - कृष्ण (विष्णु) - संवाद। तार्क्ष्य द्वारा मनुष्यत्व-प्राप्ति,

मृत्यु, कर्मयोग, प्रेतमुक्ति, यमलोक तथा विष्णुलोकगमन आदि के विषय में प्रश्न किये जाने पर कृष्ण द्वारा इन प्रश्नों के दिये गये उत्तर यहाँ लिखित हैं।

(३-४ अ.) किस कर्म से प्रेतत्व नहीं होता इस प्रश्न के तथा और्ध्वदैहिक, वृषोत्सर्ग श्राद्धफलादि से सम्बद्ध गरुड के प्रश्नों के समाधान भगवान् द्वारा प्रतिपादित हैं। अपुत्र मनुष्य की गति न होने तथा किसी भी प्रकार से पुत्रजननोपाय करने का विधान विहित है।

(५-७ अ.) यमलोक के निर्णय के प्रश्न के उत्तर में प्रेतमार्ग कर्मयोग, पिण्डदान (मृतस्थान, द्वार, चत्वर, विश्रामस्थल, काष्ठचयन तथा सञ्चयन) पिण्डनाम (शव, पान्थ, खेचर भूत आदि) तथा इससे सन्तुष्ट होने वाले देवों का उल्लेख है। अन्त में श्रवणगणों के चरित का वर्णन है।

(८-१० अ.) कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों, यममार्ग से बचने के उपाय, मृत के प्रति दिये गये दीपदान, वृषोत्सर्ग, एकादशाहपिण्ड, उदकुम्भ, शय्यादि दानों तथा सप्तविध-(छत्र, उपानह, वस्त्र, मुद्रिका, कमण्डल, आसन, भाजन) दानों, चित्रगुप्तपुर (बीसयोजन विस्तृत) कायस्थों (पाप-पुण्य देखने वाले) का कथन एवं प्रेतों का विचरण तथा प्रेतपीड़ा वर्णित है।

(११-१३ अ.) प्रेतत्व का प्रमाण, वर्ष संख्या तथा प्रेतत्व मुक्ति, प्रेतत्व प्राप्ति तथा इनके आहार (गर्हित, श्लेष्म, मूत्र, पुरीष, रेचक उच्छिष्टादि) आदि का विवेचन है। साथ ही मृत्यु के हेतु (मनुष्य को शतजीवी कहा गया है पर वह विकर्म के प्रभाव से शीघ्र नष्ट भी हो जाता है।) भी बतलाये गये हैं।

(१४-१६ अ.) अशौच, प्रेत-कृत्य, सपिण्डीकरण तथा श्राद्ध का वर्णन है। मनुष्यदेह के बिना सुख सम्भव नहीं है। व्रतदान के प्रभाव से मनुष्य चिरन्जीवी होता है। गर्भपात, बालमृत्यु अशौच, दानादि का उल्लेख है।

(१७-१८ अ.) प्रेतत्वप्राप्ति तथा मुक्ति के कारण निर्दिष्ट हैं। बभ्रुवाहन राजा का आख्यान वर्णित है। मृगया हेतु राजा ने एक मृग को बाण मारा। बाण लगने पर वह मृग बन में अदृश्य हो गया। शोणित-स्राव को देखते हुए राजा भी वन के मध्य में पहुँच गये वहाँ उन्होंने एक भयंकर प्रेत को देखा तथा उससे उसकी इस दुर्दशा का कारण पूछा। प्रेतराज ने राजा को प्रेतत्व के कारण तथा निवारण के उपाय बतलाते हुए स्वयं के प्रेतत्व से मुक्ति की प्रार्थना की। राजा ने अपने नगर में आकर प्रेतोक्त और्ध्वदैहिक क्रिया, प्रेत के निमित्त विधिपूर्वक सम्पन्न की। यहाँ प्रेतत्व से मुक्तिहेतु अनेक दान भी कथित हैं। जिनमें प्रेतघटदान प्रमुख हैं।

(१९-२२ अ.) अपुत्र मनुष्य की गति न होने का उल्लेख, पुत्रोत्पत्ति का फल, धर्माधर्म तथा मुक्ति का स्वरूप प्रतिपादित है। दशावतारों (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि) का वर्णन, प्रेत-सांख्यकरदान, देहस्वरूप तथा उत्पत्ति का कथन है।

(२३-२५ अ.) यमलोक (मनुष्य लोक से छियासी हजार योजन दूर, पापकर्मा मनुष्यों का पीड़ा स्थान) का वर्णन तथा धर्माधर्म का लक्षण विस्तृत रूप से कथित है। कृतयुग में तप, त्रेता में ज्ञानसाधन, द्वापर में यज्ञ और दान तथा कलियुग में एकमात्र दान का महत्व कहा गया है। एकादशाह, षोडश-श्राद्ध एवं सपिण्डीकरण के विषयक में विवरण प्राप्त है। श्राद्ध में उपादेय वस्तुओं की सूची भी दी गयी है।

(२६-२८ अ.) तीर्थमाहात्म्य, अनशनव्रत, विविधदान। सात मोक्षदायक पुरियों (अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती), अनशनव्रत (इस व्रत से मरने वाला सभी बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है), कृष्णनाम एवं हरिनाम का महत्त्व, तुलसी-माहात्म्य, कन्यादान, वापी-कूप-तडागादि-दानों का महत्व प्रतिपादित है।

(२९-३३ अ.) सूतक (चारों वर्णों को अपने सभी निर्दिष्ट कर्मों से दस दिनों तक विरत रहने का) तथा अशौचविधि का विधान है। अपमृत्युफल, उसका मार्ग तथा नारायणबलि का वर्णन है। भूमि के समान कोई दान नहीं है, न ही भूमि के समान कोई निधि है। यहाँ कहा गया है कि सत्य के समान कोई धर्म नहीं है तथा अनृत (झूठ) के समान कोई पाप नहीं है। भूमि-स्वर्ण-गो आदि का दान तथा वर्ज्य द्रव्यों का उल्लेख किया गया है। विविध श्राद्धों एवं नित्य-श्राद्ध-विधि वर्णित है।

(३४-३५ अ.) कर्मविपाक (कर्मों के फल)। मनुष्य द्वारा किये गये कर्मों के आधार पर उसे अन्य जन्मों में प्राप्त होने वाली योनियों का वर्णन है। वैतरणी नदी (यमद्वार पर सौ योजन विस्तृत, दुर्गन्धयुक्त, दुस्तर) का भयावह वर्णन, उसके पारगमन के उपाय तथा अन्त में विष्णुनामस्मरण का फल कथित है।

गरुडपुराण के संस्करण

इस पुराण के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। कतिपय प्रचलित संस्करण निम्नलिखित हैं-

१. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई १९६२ वि.
२. जीवानन्द संस्करण (सं. पं. जीवानन्द विद्यासागर) कलकत्ता १८९० ई.
३. वंगवासी संस्करण (सं. पञ्चानन तर्करत्न) कलकत्ता (बंगला अनुवाद के साथ)
४. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
५. पण्डित पुस्तकालय, काशी (सं. पं. रामतेज पाण्डेय), १९६३ ई., इसका पुनर्मुद्रण चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी (१९८६ ई.) ने किया है।
६. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस, (सं. रामशंकर भट्टाचार्य) वाराणसी १९६४।
७. निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (१९१२ ई.) (प्रेतकल्प मात्र सानुवाद)। प्रेतकल्प के अन्य अनेक संस्करण भी हैं।

८. अंग्रेजी-अनुवाद (अनु. मन्मथनाथ दत्त शास्त्री) कलकत्ता (१६६८ ई.)।

गरुडपुराण में उपलब्ध सुभाषित

इस पुराण के नीतिपरक अध्याय सुभाषितों से भरे पड़े हैं। यहाँ आवश्यक समझकर उन सुभाषितों को दो भागों में (लोकव्यवहारपरक, दार्शनिक विषयपरक) बाँट कर उदाहरणार्थ कुछ श्लोकों का संग्रह किया जा रहा है।

लोकव्यवहार विषयक सुभाषित

सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ।। १.१०८.२

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुष्टानां सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।। १.१०८.४

परदारं परार्थञ्च परिहासं परस्त्रिया।
परवेश्मनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन।। १.१०८.१३

दुष्टाभार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ।। १.१०८.२५

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।। १.१०६.१

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत्।। १.१०६.१५

उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम्।। १.११०.२१

धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संस्थितिम्।। १.११०.२६

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।। १.१११.१२

उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षड्विधेर्यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते।। १.१११.३२

उद्योगेन कृते कार्य्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते।
दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्तव्यं पौरुषं सदा।। १.१११.३३

नीचः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।। १.११३.५६

नात्मछिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च।
गृहे कूर्म इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत्। १.११४.१५

नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा।
मृदुनैव मृदुं हन्ति दारुणेनैव दारुणम्।। १.११४.४६

नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च।। १.११४.५१

एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः।। १.११४.५८

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम्।
परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम्।। १.११५.३

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्।। १.११५.१३

वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च।
इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च।। १.११५.२०

दार्शनिक विषयपरक सुभाषित

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।। १.१०८.७

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधु समागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्।। १.१०८.२६

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपाः दग्धं वनान्तं मृगाः
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः।। १.१०६.६

एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः।
शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढाः।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्यां प्रयाताः
को वा कस्मिन् समर्थो भवति विधिवशाद्भ्रामयेत्कर्मरेखा।। १.११३.१४

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे

विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिरमरो भिक्षाटनं कारितः
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।। १.११३.१५

पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्।
पुरा कृतानि कर्माणि अग्रे धावन्ति धावतः।। १.११३.२४

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः।। १.११३.६०

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्तते।। १.११३.६१

अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति।
स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम्।। १.११४.६७

आयुः कर्म चरित्रञ्च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः।। १.११५.२३

नारदीयपुराण

पुराणों में नारदीय-पुराण का विशिष्ट स्थान है। इसमें विविधविषयों के प्रतिपादन के साथ-साथ अठारहों पुराणों की विषय-सूची भी विस्तार के साथ दी गयी है। (द्र. ६२.१०४ अ.) अन्य पुराणों में कथायें सूत से नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों के प्रश्नोत्तर रूप में कही गयी हैं, परन्तु इसकी कथा विचित्र है। नैमिषारण्य में स्थित शौनक-प्रभृति-ऋषि धर्मादि के सम्बन्ध में उत्पन्न सन्देह की निवृत्ति के लिये सिद्धाश्रम में अग्निष्टोम-यज्ञ-द्वारा विष्णु का यजन करते हुये सूत जी के पास गये और अपनी शंकायें व्यक्त की तथा उसकी विनिवृत्ति के लिये सनत्कुमार आदि ने देवर्षि नारद से जिस पुराण का कथन किया था, उसी को सूत जी ने कहा। तात्पर्य यह है कि इसका नाम अन्य पुराणों की भाँति वक्ता के नाम पर न होकर श्रोता के नाम पर है (द्र.पू. अ.-८-३६) इसके कभी-कभी बृहत् नारदपुराण भी कहा जाता है, पर इसका पुराणोक्त नाम नारदीय या नारद ही है, तस्मादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणम्-ना.पु.अ.-१०४ श्लोक।

वैशिष्ट्य

इस बृहत्काय पुराण को सभी शास्त्रों का संकलन और ज्ञान की निधि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें नारद और शौनकादि ऋषियों के प्रश्नोत्तर के रूप में वेद के सारतत्व को पिरो दिया गया है। वेदों के स्वाध्याय की चर्चा करने के बाद वेद के षडंगों का इतना व्यापक विवेचन हुआ है कि उसे किसी भी अंश में अपूर्ण नहीं कहा जा सकता। विशेष कर ज्योतिष के सिद्धान्त, संहिता और होरा- इन तीनों स्कन्धों का विवेचन एक-एक ग्रन्थ के रूप में स्थित है। धर्मशास्त्रादि-विषयों से सम्बन्धित नियमों, व्रतों के करने की विधि, प्रायश्चित-विधि और शरीर के बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्धि के उपाय परमोपादेय हैं। दार्शनिक-दृष्टि से सांख्य-योग-सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा शैव दर्शन के मूल रहस्यों का विवेचन भी विस्तार के साथ किया गया है।

नारदीयपुराण के अध्यायों एवं श्लोकों की संख्या- पुराणों के गणनाक्रम के अनुसार इसका छठा स्थान है। परन्तु देवीभागवत में इसे १३वाँ पुराण कहा गया है (द्र.१.३.२.)

यह पुराण पूर्व तथा उत्तर-दो भागों में विभक्त है। पूर्वभाग में चार पाद हैं। प्रथमपाद में ४१ अध्याय, द्वितीयपाद में २१, तृतीयपाद में २१, तथा चतुर्थपाद में ३४ अध्याय हैं। कुल मिलाकर इस भाग में १२५ अध्याय हैं। उत्तरभाग का नाम पंचमपाद है, जिसमें ८२ अध्याय हैं। इस प्रकार दोनों भागों में २०७ अध्याय हैं। इसकी कुल श्लोक-संख्या २५ हजार है, किन्तु उपलब्ध नारदीयपुराण में लगभग १८ हजार ही श्लोक मिलते हैं। संभवतः इसका कुछ भाग लुप्त है। मत्स्यपुराण के अनुसार इसके श्लोकों की संख्या २५ हजार है-

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च।
पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते।। (मत्स्यपु.- ५३.२३)

किन्तु हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९८६ में प्रकाशित बृहन्नारदीयपुराण में २२००० श्लोक हैं। अतः इसकी श्लोक-संख्या के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

प्रामाणिकता एवं महत्त्व

नारदीयपुराण प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में इसके उद्धरण मिलते हैं। हेमाद्रि के प्रायश्चित्ताध्याय में इसके उद्धरण हैं, (द्र. पृ. सं-१०१, १३४, १८४, २०४ वेंकटेश्वरप्रेससंकरण सं. १८२६) हेमाद्रि में इसके उद्धरण प्राप्त होने से यह सिद्ध है कि हेमाद्रि के पूर्व यह पुराण सर्वजनीन हो चुका था, अतः यह सुप्राचीन पुराण है, किन्तु उत्तरार्द्ध में अ. ३५ श्लोक सं. ८६ को देखने से लगता है कि इसकी रचना कालिदास के बाद की ही है।

कथावस्तु

पूर्वभाग के अध्याय में नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों की तपस्या का वर्णन है। ऋषियों द्वारा सनत्कुमार और नारद के संवाद जानने हेतु सूत से कहना, अ. २ में सूत द्वारा सनत्कुमार और नारद के संवाद क्रम में मेरूश्रृंग पर ब्रह्मा की सभा में सनकादि का प्रस्थान, मार्ग में गंगा के दर्शन एवं स्नान करने की इच्छा, अकस्मात् नारद का आगमन आदि वर्णित हैं। इसी अध्याय में संध्यादि कृत्य करने के बाद शौनकादि से नारद का विविध प्रश्न एवं दशावतार की स्तुति का भी वर्णन किया गया है।

अ. ३-६ में सनक द्वारा महाविष्णु से ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णु की उत्पत्ति कहना, अविद्या और विद्या का निरूपण, शक्तिनिरूपण, जगत् की सृष्टि एवं सांख्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों का उल्लेख है। अ. ४ में सात समुद्रों एवं सप्तमहाद्वीपों का वर्णन तथा भरतखण्ड का विस्तृत परिचय आदि वर्णित है। अ. ५ में मार्कण्डेय की कथा के क्रम में उनका जन्म, यज्ञोपवीतादि संस्कार, तपस्या तथा नवीन सृष्टि देखकर मार्कण्डेय का चकित होना आदि का वर्णन किया गया है। अ. ६ में विष्णु की स्तुति तथा विष्णु द्वारा परमभागवत का लक्षण कहना, नारद द्वारा उत्तम-तीर्थ की जिज्ञासा, सनक द्वारा गंगा-यमुना-संगम का माहात्म्य, गंगाजल, काशीमाहात्म्य, विष्णु तथा शिव के एकत्व-माहात्म्य, का वर्णन किया गया है।

अ. ७ में गंगा-माहात्म्य, बाहु की कथा के अन्तर्गत बाहु की मृत्यु से दुःखि गर्भवती रानी की सती होने से और्वमुनि द्वारा निवारण करना आदि वर्णित है। अ. ८ में रानी का और्वमुनि के आश्रम में निवास, वहीं पर सगर की उत्पत्ति, सगर की शिक्षा, माता द्वारा

सगर का पूर्वघटितवृत्तान्तों को जानना, आदि का वर्णन किया गया है। अ. ६ में सगर का राज्याभिषेक आदि वर्णित है तथा अ. १० में गंगा-माहात्म्य, गंगाजल के सम्पर्क से राजा सौदास का शापोद्धार एवं राजा बलि से देवताओं की पराजय आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ११ में नारद द्वारा अग्नि में नहीं जल सकने वाली अदिति का प्रभाव पूछना, सनक द्वारा उसके प्रभाव की कथा कहते हुये भक्तों की महिमा का वर्णन करना आदि वर्णित है। अ. १२ में देवमाता अदिति की स्तुति से प्रसन्न विष्णु का अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने की प्रतिज्ञा करना, प्रसन्नमना अदिति का घर लौटना आदि का वर्णन किया गया है तथा समयानुसार अदिति के गर्भ से विष्णु का अवतार, कश्यप द्वारा भगवान् की स्तुति, शुक्राचार्य का वामनावतार के रहस्य को बलि से बताना, वामन का तपस्या हेतु बलि से तीन पग भूमि मांगना तथा भूमिदान का माहात्म्य बतलाना, बलि को छलकर वामन द्वारा त्रिलोक लेना एवं देवताओं की प्रसन्नता आदि का वर्णन किया गया है।

अ. १२ में दान देने योग्य ब्राह्मण का कथन तथा धर्म-अधर्म का वर्णन, अ. १३ में मन्दिर बनवाने का फल एवं तिथिविशेष में देवता-विशेष के पूजन करने का फल तथा धार्मिक अनुष्ठानों का माहात्म्य बताया गया है। अ. १४ में अनेक प्रकार के किये गये दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त का भी निर्देश किया गया है। अ. १५ में जीवों के कर्मानुसार अनेक प्रकार की नारकीय यातनाओं का वर्णन है तथा पितरों की मुक्ति के लिये गंगा को पृथ्वी पर लाने हेतु भगीरथ के उद्योग का उल्लेख है।

अ. १६ में हिमालय पर भगीरथ की घोर तपस्या का वर्णन, तपस्या से प्रसन्न शिव का गंगा को मुक्त करना, भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाकर अपने पूर्वजों को मोक्ष प्रदान कराना आदि का वर्णन है। अ. १७ में विष्णु के विधिवत् पूजन, शुक्लपक्षीय द्वादशीव्रत का निरूपण तथा अन्य प्रकार के व्रतों की विधि एवं उद्यापन-प्रक्रिया बतलायी गयी है। अ. १८ में उद्यापन विधि सहित लक्ष्मी-नारायण के व्रत का वर्णन किया गया है।

अ. १६ में विष्णुमन्दिर में ध्वजारोपण की विधि, माहात्म्य एवं उसके फल का वर्णन किया गया है। अ. २० में सोमवंशी राजा सुमति के पूर्वजन्म का इतिहास विस्तार के साथ वर्णित है तथा विष्णु-मन्दिर में इनके द्वारा ध्वजारोपण करने से उत्पन्न पुण्य का उल्लेख है। अ. २१ में हरिपांचरात्र व्रत, अ. २२ में मासोपवास एवं अनेक व्रतों के फलों का उल्लेख, अ. २३ में भद्रशील नामक ब्राह्मण का उपाख्यान, एकादशीव्रत करने की विधि, अ. २४ में ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के सदाचार, कर्तव्य एवं शील आदि का निरूपण किया गया है। अ. २५ में स्मृति शास्त्रीय आचार एवं आश्रमधर्म आदि का निरूपण किया गया है। अ. २६ में द्विजातियों के वेदाध्ययन आदि का निरूपण अ. २७-२८ में गृहस्थ,

वानप्रस्थ और सन्यासी के कार्यों एवं धर्मों का निरूपण है तथा इसमें यह भी बतलाया गया है कि किस प्रकार के लोगों को श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिये और कैसे लोगों को नहीं।

अ. २६ में तिथियों का वर्णन है। इसमें ज्योतिष सम्बन्धी वर्णन मिलता है। अ. ३० में प्रायश्चित-विधि का निरूपण किया गया है। इसमें विविध पापों के निरसन हेतु धर्मशास्त्रीय प्रायश्चित्तों का विधान भी उल्लिखित है।

अ. ३१ में यमलोक के मार्ग एवं पुण्यात्माओं और दुरात्माओं के सुख-दुःख तथा यम के द्वारा दिये गये कष्टों का उल्लेख है। इसमें पूर्णरूपेण यमकृत्य का विवेचन किया गया है। उ. ३२ में भवाटवी जहाँ सत्कर्मी महापुरुष जाकर विष्णुमय हो जाते और उन्हें जीवन-मरण की यातनायें नहीं भोगनी पड़ती। अ. ३३ में योग-निरूपण के अन्तर्गत अष्टांगयोग का विवेचन है।

अ. ३४ में हरिभक्तों के लक्षण, विष्णु की आराधनाविधि तथा विष्णुनाम के जप की महिमा बतलायी गयी है। अ. ३५ में ज्ञान-निरूपण के अन्तर्गत विष्णुमाहात्म्य, आराधनाविधि तथा विष्णुभक्त सुमाली के दिव्यज्ञान की प्राप्ति आदि का वर्णन है। अ. ३६ में यज्ञमाली और सुमाली के उत्तमलोक प्राप्ति तथा विष्णु-सेवा का प्रभाव वर्णित है। इसी प्रकार अ. ३७ से अ. ४१ में विविध कथाओं एवं स्तुतियों के रूप में विष्णु के नाम का माहात्म्य वर्णित है।

अ. ४२ के अन्तर्गत स्थावर जंगमात्मक जगत् की उत्पत्ति, लय, प्राणियों की सृष्टि, वर्णव्यवस्था, धर्मव्यवस्था एवं जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। अ. ४३ में जीव की गति एवं द्विज का आचार बतलाया गया है। अ. ४४ में ध्यान-योग का निरूपण है। अ. ४५ में अविद्या के बन्धन में जीव के बंधने का कारण और उसकी विनिर्मुक्ति का उपाय बतलाया गया है। एवं इसी प्रसंग में पंचशिख का राजा जनक को उपदेश देना, अ. ४६ में त्रिविध तापों से मुक्ति पाने के उपाय, क्लेशों को दूर करने के लिये योग की महिमा तथा अ. ४७ में योगविद्या के सम्यक् ज्ञान से प्राणि को मुक्ति की प्राप्ति आदि का वर्णन है।

अ. ४८ में दुष्टों के दुराचरण को सज्जनों द्वारा सहने की प्रवृत्ति, ज्ञानचर्चा के प्रसंग में ऋषभपुत्र राजाभरत का उपाख्यान वर्णित है। अ. ४६ में परमार्थतत्व का निरूपण किया गया है। यह कथा भी भरतोपाख्यान से ही संबंधित है। अ. ५० में शिक्षानिरूपण के प्रसंग में शुकोत्पत्ति एवं उनके शीघ्र ब्रह्मज्ञानप्राप्ति का कारण विवेचित है। इस अध्याय में शिक्षा का सांगोपांग वर्णन किया गया है। अ. ५१ में वेद के द्वितीय अंग कल्प के-नक्षत्रकल्प वेदकल्प, संहिताकल्प, आंगिरसकल्प और शान्तिकल्प, इन पाँचों भेदों का वर्णन है। तथा इसी में गणेशपूजन, ग्रहशान्ति और श्राद्ध का भी निरूपण किया गया है। अ. ५२ में व्याकरणशास्त्र का वर्णन है। उसके अन्तर्गत पद, धातु, संहिता, समास तथा कारक आदि का वर्णन है। अ. ५३ में निरूक्त का वर्णन है। वैदिक धातु को निरूक्ति के पाँचों प्रकारों-

वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णविनाश, धातु का अर्थ के साथ योग एवं कहीं-कहीं वर्णनाश और वर्णविकार का सोदाहरण वर्णन है। अ. ५४ में त्रिस्कन्धात्मक (सिद्धान्त, संहिता एवं होरा) ज्योतिष का वर्णन है। इसी प्रकार अ. ५५ और ५६ में भी ज्योतिष शास्त्र का वर्णन किया गया है। अ. ५७ में छन्दशास्त्र के वैदिक और लौकिक छन्दों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

अ. ५८ में शुकदेव की उत्पत्ति तथा उनके परीक्षण के लिये सुन्दरियों द्वारा दिये गये प्रलोभनों का वर्णन है। अ. ५९ में विरक्त शुक का पिता की प्रेरणा से जनक के पास जाना, ब्राह्मकर्म का प्रश्नकरना, जनक द्वारा आध्यात्मविद्या का उपदेश आदि वर्णित है। अ. ६० और ६१ में सनत्कुमार द्वारा शुक को ज्ञानोपदेश देना, व्यास द्वारा वेदपाठ एवं ६२ में मोक्षधर्म का निरूपण किया गया है।

अ. ५३ में पाशुपतदर्शन का वर्णन है। इसमें पाशुपतदर्शन के मूल रहस्य को दिखाया गया है। अ. ६४ में दीक्षाविधि तथा अ. ६५ में मन्त्रजपविधि, दीक्षा, दान तथा शिष्यधर्म का वर्णन किया गया है। अ. ६६ में शौचाचार, स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि का वर्णन, अ. ६७ में देवपूजन की विधि एवं ६८ में कामना-दायक गणेश की आराधना की विधि बतलायी गयी है।

अ. ६७ में अंजनिपति-सूर्य के पूजन की विधि तथा मन्त्र-विधान का निरूपण है। अ. ७० में विष्णु के अष्टाक्षरमन्त्र तथा अन्य मन्त्रों की विधि वर्णित है।

अ. ७१ में नृसिंहमन्त्रोपासना तथा गायत्री आदि की उपासना-विधि, अ. ७२ में हयग्रीवोपासना की विधि तथा विविधप्रकार के काम्यकर्मों की सिद्धि के लिये अनेक प्रकार की हवनप्रक्रिया का उल्लेख, अ. ७३ में रामलक्ष्मण के मन्त्रों का जपविधान एवं उपासना, अ. ७४ में हनुमान की उपासना-पद्धति तथा उनके द्वादशाक्षर, चतुर्दशाक्षर मन्त्रों के जप, हवन एवं प्रयोग की विधियों का निरूपण, अ. ७५ में विविधकामनाओं की पूर्ति के लिये हनुमान की मूर्ति के समक्ष दीपदान की विधि वर्णित है। अ. ७६ में कार्तवीर्य की महिमा आदि वर्णित है। अ. ७७ में कार्तवीर्य-कवच और उसकी पाठविधि, माहात्म्य का वर्णन, अ. ७८ में हनुमत्-कवच, उसकी पाठविधि एवं माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इसमें इनके अवतारों का उल्लेख है।

अ. ८० में कृष्णसम्बन्धी मन्त्रों की अनुष्ठानविधि, जपविधि, हवनविधि एवं काम्यकर्मों की पूर्णता हेतु विविधप्रकार की विधियाँ बतलायी गयी हैं। अ. ८१ में कामनाभेद से कृष्णमन्त्रों का भेदनिरूपण किया गया है। इसमें मन्त्रों के अंगन्यास, करन्यास, ऋषि आदि का भी उल्लेख है। अ. ८२ में राधाकृष्णसहस्रनामस्तोत्र है। अ. ८३ में राधा के अंश से उत्पन्न पाँच प्रकृतियों का वर्णन किया गया है और इनके विविध-मन्त्रों को विधिसहित जप एवं हवन की पद्धति के साथ-साथ फलों का भी वर्णन किया गया है।

अ. ८४ में देवी-उपासना की विधि बतलायी गयी है। इसमें जप, होम आदि की विधि-सहित सभी प्रकार के काम्यकर्मों के लिये पृथक्-पृथक् विधियाँ बतलायी गयी है। अ. ८५ में वाग्देवतावतार काली की सांगोपांग प्रक्रिया कही गयी है। अ. ८६ में महालक्ष्मी के अवतारस्वरूपा बगला आदि देवियों की मन्त्रसिद्धि, मारण, मोहन एवं उच्चाटन आदि की विधियाँ बतलायी गयी हैं।

अ. ८७ में दुर्गादेवी की उपासना का वर्णन है। अ. ८८ में राधावतार का वर्णन है। इसमें सोलह देवताओं के मन्त्र, उनके जप एवं हवन की पद्धति आदि का वर्णन है। अ. ८९ में कवचसहित ललितासहस्रनामस्तोत्र का वर्णन है तथा अ. ९० में इनकी पूजा पद्धति वर्णित है। इसमें तन्त्रशास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार काम्यफलों के निमित्त मन्त्र-प्रयोग करने की विधि बतलायी गयी है।

अ. ९१ में महेश्वर की आराधना पद्धति का वर्णन है तथा इसमें दार्शनिकदृष्टिबहुल महेश्वरस्तोत्र भी है।

अ. ९२ में संक्षिप्त ब्रह्मपुराण का इतिहास वर्णित है। अ. ९३ में पद्मपुराण की विषयसूची, ९४ में विष्णुपुराण की अनुक्रमणिका तथा अ. ९५ में वायुपुराण की अनुक्रमणिका दी गयी है। उसी प्रकार अ. ९६ में श्रीमद्भागवतमहापुराण की अनुक्रमणिका दी गयी है और अ. ९७ में नारदीयपुराण की अनुक्रमणिका, अ. ९८ में मार्कण्डेयपुराण, अ. ९९ में अग्निपुराण, अ. १०० में भविष्यपुराण, अ. १०१ में ब्रह्मवैवर्त-पुराण, अ. १०२ में लिंगपुराण, अ. १०३ में वाराहपुराण की सूची, अ. १०४ में स्कन्दपुराण, अ. १०५ में वामनपुराण, अ. १०६ में कूर्मपुराण, अ.० १०७ में मत्स्यपुराण, अ. १०८ में गरुड़पुराण और अ. १०९ में ब्रह्माण्ड पुराण की विषयसूची एवं तत्तत् पुराणों की श्लोकसंख्या के साथ दी गयी है। इस प्रकार उसमें अठारहों पुराणों की विषयसूची उल्लिखित है।

अ. ११० में बारहों मासों की पवित्र तिथियों की कथा एवं बारहों मासों की प्रतिपदा तिथि तथा उस तिथि को निश्चित किये गये व्रतों का विधान, पूजन-पद्धति एवं व्रतोपवास आदि का वर्णन किया गया है। अ. १११ में बारहों मासों की द्वितीयातिथि के व्रतों का, अ. ११३ में चतुर्थी तिथि के व्रतों का, अ. ११४ में पंचमी तिथि के व्रतों का, अ. ११५ में षष्ठीतिथि के व्रतों का, अ. ११६ में सप्तमीतिथि के व्रतों का, अ. ११७ में अष्टमीतिथि के व्रतों का, अ. ११८ में नवमीतिथि के व्रतों की विधि, अ. ११९ में दशमी तिथि के व्रतों का एवं अ. १२० में एकादशी तिथि एवं उस तिथि के व्रतविशेष का सांगोपांग विवेचन है। उसके अन्तर्गत व्रतकरने की विधि, उद्यापनविधि, दान फल एवं माहात्म्य का वर्णन है। एकादशी के नियमविवेचन के अन्तर्गत दशमी तिथि के आदि तीन दिनों के पालनीय विशेष नियमों का भी उल्लेख है। इसी प्रकार अ. १२१ में द्वादशी तिथि के, अ. १२२ में त्रयोदशी तिथि के, अ. १२३ में चतुर्दशी तिथि के, अ. १२४ में पूर्णिमा तिथि के व्रतों की विधि, माहात्म्य एवं फल का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

अ. १२५ में सनक आदि ब्रह्मकुमारों और नारद के प्रस्थान का वर्णन करते हुये, नारदीयपुराण की महिमा और फलश्रुति का वर्णन किया गया है।

उत्तरभाग के अध्याय ६ में वसिष्ठ द्वारा मान्धाता को सभी प्रकार के शुष्क एवं आर्द्र पापों के नाश के लिये एकादशीव्रत की महिमा सुनाना, अ. २ में तिथिविषयक वर्णन एवं तिथिव्रतोपवास विधि का वर्णन और विद्धातिथि के निषेध का भी वर्णन किया गया है। अ. ३ में एकादशी-तिथि के प्रभाव से रूक्मागंद के राज्य में सभी के वैकुण्ठ-प्राप्ति का वर्णन है। अ. ४ में यमराज द्वारा होने वाली यातनाओं और वैकुण्ठ में रूक्मांगद के प्रभाव का वर्णन किया गया है। अ. ५ में एकादशी व्रत की महिमा से वैकुण्ठ-प्राप्त लोगों को देखकर एवं भूमण्डल पर रूक्मागंद के तीन हजार वर्षों तक के राज्य को देखकर यमराज की ईर्ष्या और उसके विलाप का वर्णन किया गया है।

अ. ६ में ब्रह्मा द्वारा भगवद्भक्तों की श्रेष्ठता बतलाना, अ. ७ में मोहिनी की सृष्टि करना आदि का वर्णन है। अ. ८ में मोहिनी का नामकरण एवं मन्दराचल पर्वत का वर्णन है। अ. ६ में रुक्मागंद का अपने पुत्र धर्मागंद से संवाद वर्णित है। उसमें यह अपने पुत्र को राज्यसंभालने योग्य समझकर उसे राज्यभार सौप कर प्रजा की भलीभांति भलाई हेतु उपदेश देकर अपनी पत्नी सन्ध्यावली से अपने को कृतकृत्य बतलाना आदि कथाओं का वर्णन है। अ. १० में रूक्मागंद की वन जाने की इच्छा, सन्ध्यावली द्वारा वन जाने से रोना, किन्तु राजा का प्रजा के कल्याणार्थ उद्देश्य जानकर छोड़ देना आदि वर्णित है। इसी अध्याय में राजा का जंगल में वामदेव से मुलाकात तथा राजा का अपने सौभाग्य के सम्बन्ध में प्रश्न करना आदि बातों का वर्णन है। अ. ११ में वामदेव द्वारा राजा के वर्तमान सुख का कारण उनके पूर्वजन्म की कथा बतलाना आदि वर्णित है। वामदेव ऋषि की आज्ञा से रूक्मांगद का मन्दराचल पर प्रस्थान, वहाँ मोहिनी को देखकर राजा का विमुग्ध होना आदि वर्णित है। अ. १२ में मोहिनी का राजा से शर्त स्वीकार कराकर प्रणयनिवेदन करना आदि की कथा है। अ. १३ में मोहिनी और रूक्मागंद के विवाह की कथा है।

अ. १४ में घोड़े की टाप से कुचली हुयी छिपकली की कथा वर्णित है। इसके अन्तर्गत उसके इस योनि में आने और विमुक्ति की सारी कथा बतलायी गयी है। अ. १५ में मोहिनी-सहित राजा के नगर-प्रवेश तथा पितापुत्र के संवाद का वर्णन है। अ. १६ में धर्मागंद द्वारा मोहिनी का सत्कार एवं पतिव्रता स्त्रियों की कथा वर्णित है। अ. १७ में सपत्नी-मोहिनी के सत्कार करने हेतु पुत्र द्वारा सन्ध्यावली को समझाना, सन्ध्यावली से सेवित मोहिनी के पास राजा का आना, मोहिनी द्वारा राजा को फटकारना आदि की कथा वर्णित है। अ. १८ में धर्मागंद का अपनी अन्य माताओं से पिता और विमाता मोहिनी के प्रति उदार व्यवहार हेतु अनुरोध करना आदि वर्णित है। अ. १६ में मोहिनी और रूक्मांगद का विलास वर्णन है।

अ. २० में धर्मागंद का दिग्विजय वर्णन है। इसमें धर्मागंद द्वारा मलयाचल पर आक्रमण, विद्याधरों को जीतकर सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान करने वाले मणियों को लाकर पिताजी के चरणों में अर्पित करना, अ. २१ में धर्मागद का नागकन्याओं के साथ विवाह, रूक्मांगद का राज्यव्यवस्थाहेतु उपदेश, सन्ध्यावली द्वारा पुत्र धर्मांगद को शिक्षा देना आदि का वर्णन है।

अ. २२ में धर्मांगद का एकादशीव्रत करते हुये समस्त-भूमण्डल का पालन करने, मोहिनी के सम्मुख रूक्मांगद द्वारा कार्तिक माहात्म्य कथन और कार्त्तिकव्रत करने की अनुमति लेना आदि वर्णित है।

अ. २३ में रूक्मांगद की आज्ञा से सन्ध्यावली को कृच्छ्रव्रत करना, धर्मांगद द्वारा एकादशीव्रत करने की घोषणा करवाना एवं कामांसक्त रूक्मांगद का प्रबोधिनी-एकादशी करने के लिए उद्यत होना आदि कथायें वर्णित हैं। अ. २४ में रूक्मागंद और मोहिनी के व्रतोपवास तथा भोजन करने आदि धार्मिक विषयों पर तर्कवितर्क होना आदि की चर्चा है। अ. २५ में राजा के प्रबोधिनी-एकादशी को भोजन नहीं करने पर रुष्ट होकर अन्यत्र जाना तथा धर्मागंद द्वारा उसे मनाकर लाना आदि वर्णित है। अ. २६ में राजा रूक्मांगद के एकादशी-तिथि को भोजन नहीं करने के निर्णय का वर्णन किया गया है।

अ. २७ में सन्ध्यावली द्वारा मोहिनी को पातिव्रत्य की महिमा बतलाना, काष्ठीला (लकड़ी का कीड़ा) बनी हुयी कौण्डिन्यपत्नी के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन किया गया है। अ. २८ में भी काष्ठीला और कौण्डिन्य की कथा है। तथा कौण्डिन्य को एक राक्षसी का वध कर काशी पहुँचने की कथा है। अ. २६ में काशीमाहात्म्य का वर्णन किया गया है। अ. ३० में कौण्डिन्य और सुद्युम्न की पुत्री रत्नावली के विवाह की कथा है। यहाँ तक सन्ध्यावली से काष्ठीला अपने पूर्वजन्म की बात कहती है।

अ. ३१ में काष्ठीला के मोक्ष के लिये सन्ध्यावली की प्रवृत्ति, मुक्ति के उपाय तथा माहात्म्य का वर्णन है। अ. ३२ में मोहिनी द्वारा सन्ध्यावली से उसके पुत्र का मस्तक मांगना, सन्ध्यावली द्वारा अपने पुत्र का मस्तक देने हेतु तैयार होना, प्रसंगवश हिरण्यकशिपु की कथा मोहिनी को सुनाना आदि कथायें वर्णित हैं। अ. ३३ में सन्ध्यावली द्वारा सत्य की रक्षा हेतु राजा के पुत्रवध के लिए उद्यत करना, राजा का मोहिनी के पास जाकर पुत्रवध नहीं करने को कहना एवं पुत्र की भीख मांगना, अकस्मात्, रूक्मागंद और मोहिनी के समक्ष वध के लिये धर्मांगद का उपस्थित होकर वध करने के लिए कहना आदि वृत्तान्त वर्णित हैं।

अ. ३४ में पुत्रवध के लिये रूक्मांगद का तैयार होना, अपने क्रूरकृत्य से मोहिनी का मूर्च्छित होना, पुत्रवध के लिये उद्यत रूक्मांगद को भगवद्दर्शन एवं सपरिवार गोलोक जाने का आशीर्वाद प्राप्त होना आदि कथायें वर्णित हैं। अ. ३५ में मोहिनी के द्वारा ही

रूक्मांगद का सत्य-परीक्षण हुआ है-ऐसा मानकर मोहिनी को वरदान देने को तत्पर होना, रूक्मांगद के पुरोहित द्वारा देवताओं को फटकारना, मोहिनी का ब्राह्मण के शाप से भस्म होना आदि कथायें हैं। अ. ३६ में मोहिनी को देवलोक से अनेक यातनायें झेलकर नरक में गिरना, वहाँ यमदूतों द्वारा अनेक यातनाओं, मोहिनी का अपने कुकृत्यों पर क्षोभ तथा ब्रह्मादि देवों से प्रार्थना करना, ब्रह्मा का सभी देवों के साथ पुरोहित के पास जाना और अपना शाप लौटा लेने की प्रार्थना करना तथा पुरोहित को मोहिनी के कुकृत्यों का प्रकाशन करने आदि की कथा है। अ. ३७ में पुरोहित द्वारा मोहिनी को दशमी-तिथि के अन्तभाग में स्थान देने और उसके पुनः शरीर-प्राप्ति एवं रात्रि के तेरह मुहूर्त बीत जाने पर उपवास करने के पुण्य लेकर उसके स्वस्थ रहने की कथा है। अ. ३८ में गति चाहने वाली मोहिनी को पुरोहित (वसु) के साथ संवाद का वर्णन है। मोहिनी के द्वारा गति मिलने का उपाय पूछने पर पुरोहित का मुक्तिदायिनी गंगा का माहात्म्य बतलाना, अ. ३९ में गंगा के दर्शन, स्मरण और गंगा स्नान करने का माहात्म्य बतलाया गया है। अ. ४० में गंगातट पर किये गये स्नान, तर्पण, पूजन और विविध प्रकार के दानों की महिमा बतलायी गयी है। अ. ४१ में कालविशेष में तीर्थविशेष पर गंगास्नान करने का महत्व, अ. ४२ में एकवर्ष तक गंगार्चनव्रत तक गुडधेनु बनाने आदि का विधान वर्णित है (गुड़ का धेनु और बछड़ा बनाकर पूजन करने वाला व्रत) अ. ४३ में गंगादशहरा के पुण्य-कृत्यों और उसके माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

अ. ४४ में राजाविशाल की कथा एवं गयातीर्थ का माहात्म्य है। अ. ४५ में गया में प्रथम एवं द्वितीय दिन के कृत्य तथा पिण्डदान आदि की विधि, अ. ४६ में गया के तीसरे और चौथे दिन का कृत्य, ब्रह्मतीर्थ एवं विष्णुतीर्थ (पद) आदि की महिमा बतलायी गयी है।

अ. ४७ में गया में पाँचवे दिन के कृत्य का वर्णन किया गया है।

अ. ४८ में अविमुक्तपुरी काशी की महिमा का उल्लेख, अ. ४९ में काशी की तीर्थयात्रा का उल्लेख किया गया है। अ. ५० में काशी की यात्रा का समय तथा शिवलिंगों का वर्णन है। अ. ५१ में अनेक कथाओं के साथ काशी की उत्तरवाहिनी गंगा और पंचनद में स्नान करने वालों के महापातक की निवृत्ति एवं शिवलोक की प्राप्ति बतलायी गयी है।

अ. ५२ में उत्कलदेश (ओड़िशा) के पुरुषोत्तम क्षेत्र की महिमा, राजा इन्द्रद्युम्न का वहाँ जाकर मोक्ष प्राप्त करना आदि वर्णित है। अ. ५३ में राजा इन्द्रद्युम्न के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति, अ. ५४ में राजा को स्वप्न में और प्रत्यक्षरूप से भगवान के दर्शन भगवत्प्रतिमाओं के निर्माण की महिमा, वरप्राप्ति, देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा आदि विधियाँ, कथायें आदि वर्णित है। अ. ५५ में पुरुषोत्तमक्षेत्र की यात्रा का समय और नृसिंह-पूजन-विधि का वर्णन किया गया है। अ. ५६ में पुरुषोत्तम क्षेत्र के श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव आदि देवों के दर्शन का फल और माहात्म्य का उल्लेख है। अ. ५७ में कायशोधनविधि, समुद्रतट

पर नारायणपूजन की विधि आदि वर्णित है। अ. ५८ में पुरुषोत्तम क्षेत्र में स्नान, दान एवं पितृश्राद्ध आदि फलनिरूपण, ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्णित है। अ. ५६ में गोलोकवासी राधाकृष्ण के पंचविग्रहरूपों का उल्लेख है। अ. ६० में ज्येष्ठशुक्ल-दशमी से लेकर पौर्णमासी पर्यन्त यात्रोत्सव-कथन, भगवत्-स्नान-विधि, राधाकृष्ण के अभिषेक का माहात्म्य एवं पुरुषोत्तम क्षेत्र की यात्राविधि, फल-महिमा आदि का वर्णन है।

अ. ६२ में तीर्थराजप्रयाग में स्नान, दान आदि की विधि, अ. ६३ में प्रयाग में माघ मकर में स्नान करने का फल तथा वहाँ के भिन्न-भिन्न तीर्थों में स्नान, पूजन और दान करने का फल निहित है।

अ. ६४ में कुरुक्षेत्र का माहात्म्य, अनेक तीर्थों, नदियों में स्नान करने की विधि तथा माहात्म्य बतलाया गया है।

अ. ६५ में कुरुक्षेत्र के वन, नदी एवं भिन्न-भिन्न तीर्थों का माहात्म्य एवं यात्राविधि बतलायी गयी है।

अ. ६६ में विविध आख्यानों के साथ हरिद्वार और वहाँ के विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य बतलाया गया है।

अ. ६७ में पौराणिक आख्यानों के साथ बदरिकाश्रम-माहात्म्य, वहाँ की यात्रा-विधि एवं अन्य उपाख्यान भी वर्णित हैं। इसी प्रकार अ. ६८ में कामोदा नामक देवीक्षेत्र की, अ. ६६ में सिद्धनाथ-चरित सहित कामाक्ष्या-माहात्म्य एवं देवी के दर्शन करने की विधि, सिद्धनाथ आदि तीर्थों के दर्शन, स्नान एवं दान की विधि, महिमा आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ७१ में यात्राविधि-सहित पुष्करक्षेत्र का माहात्म्य, अ. ७२ में गौतमाश्रममाहात्म्य, अ. ७३ में पुण्डरीकपुर का माहात्म्य, जैमिनि द्वारा भगवानशंकर की स्तुति आदि का उल्लेख तथा शंकरविषयक विविधकथाओं का भी वर्णन किया जाता है। अ. ७४ में गोकर्णक्षेत्र की यात्राविधि एवं उसका माहात्म्य, एवं अ. ७५ में लक्ष्मणाचल माहात्म्य बतलाया गया है।

अ. ७६ में रामेश्वरशिवलिंगमाहात्म्य सहित सेतुमाहात्म्य, अ. ७७ में नर्मदा के तीर्थों का दिग्दर्शन उनका माहात्म्य, अ. ७८ में अवन्तीक्षेत्र की यात्राविधि और उसका माहात्म्य, अ. ७६ में मथुरा के भिन्न-भिन्न तीर्थों की यात्राविधि, उसका माहात्म्य एवं अनेक तत्सम्बन्धित पौराणिक कथायें भी दी गयी हैं।

अ. ८० में वृन्दावनतीर्थ के रहस्य, यात्राविधि एवं माहात्म्य का वर्णन किया गया है। अ. ८१ में पुरोहित वसु का सभी तीर्थों की यात्राविधि माहात्म्य एवं तीर्थों के रहस्य को मोहिनी को सुनाकर वृन्दावन में ही तपस्या हेतु रुकना और मोहिनी को तीर्थयात्रा हेतु अनुमति देना तथा भावी कृष्णचरित्र का वर्णन आदि किया गया है।

अ. ८२ में मोहिनी की तीर्थयात्रा, यात्रा के प्रभाव से उत्तमलोक की प्राप्ति और दशमी-तिथि के अन्त में स्थान ग्रहण करना आदि वर्णित है तथा इसी अध्याय में बृहन्नारदीय-पुराण के श्रवण, पठन का फल भी बतलाया गया है।

विशिष्टदार्शनिकमत एवं सम्प्रदाय

इस पुराण में प्रायः सभी दार्शनिक-सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। एक-एक अध्याय में सांख्य और योग सम्बन्धी दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन है। इस पुराण ग्रन्थ में ध्यानयोग का निरूपण है (द्र. अ. ४४)। पंचशिख द्वारा जो राजा जनक को उपदेश दिया गया है वह अध्यात्म की सीमा है। अध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों की अत्यन्तिक विनिर्मुक्ति के लिये अनेक प्रकार के आध्यात्मिक तत्वों का निर्वचन (द्र.पू. अ. ४६), तथा इसी क्रम में मुक्तिप्रद योग शास्त्रीय-सिद्धान्तों की व्याख्या एवं परमार्थ-तत्व के निरूपरण में अध्यात्म की पराकाष्ठा है (द्र.पू.अ. ४६) इसी प्रकार इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर माया, मुक्ति, ईश्वर, एवं जीव और परमात्मतत्व का निर्वचन किया गया है। पूर्वार्द्ध के अध्याय ५६ में अध्यात्म-तत्व का निरूपण विस्तार के साथ किया गया है। तृतीय पाद के अध्याय ६३ में शैवदर्शन के अन्तर्गत पाशुपतदर्शन-तत्त्व का विशद विवेचन हुआ है। इसमें तन्त्रागम की सांगोपाग व्याख्या की गयी है। यों तो इस पुराण ग्रन्थ में इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी इसके निदर्शन देखे जा सकते हैं।

भाषा एवं छन्दों का प्रयोग

यों तो पुराणों की भाषा सामान्यतया सरल ही होती है फिर भी इस पुराण की भाषागत विशेषता यह है कि अनायास ही अर्थबोध हो जाता हैं इसमें कठिन से कठिन शास्त्रों के सिद्धान्तों को श्लोक के माध्यम से दिखाया गया है, पर अर्थबोध में आयास नहीं करना पड़ता। उदाहरणार्थ व्याकरणशास्त्र-सम्बन्धी कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं-

तृतीया सहयोगे कुत्सितेऽर्थे विशेषणे।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यति।। ५२.१४।।
लिडतीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुड् भविष्यति।
स्यादनद्यतनेलृट् च भविष्यति तु धातुतः।।५२.१७।।

इसी प्रकार अन्य स्थलों में भी भाषा प्रसादमयी है। ग्रन्थ में मुख्यतया अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग है, फिर भी कुछ स्थलों पर इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों के प्रयोग हैं। द्र. पूर्वभाग का अ. १.६३-६८, १०.६-१२, ४५.७८-८७, अ. ३८.३-११ आदि। यत्र-तत्र समस्तपदों का प्रयोग भी है, जो प्रसादगुण के लिए नाति-उपयोगी होते हुये भी

अर्थबोध में बाधक नहीं होता (द्र. अ. ७० श्लो. ४६, ४८ आदि। आलंकारिक-भाषा बिलकुल नहीं है। यत्र-तत्र उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग पाया जाता है।

अन्य ग्रन्थों का अनुकरण

इस पुराण पर शब्द और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से अन्य ग्रन्थों का प्रभाव है। अ. २७ में अ. २ के श्लोक-संख्या ५२ और ५३ दोनों पद्य पर शुक्लयजुर्वेद के पुरुषसूक्त का प्रभाव है। अ. २७ में अघमर्षणसूक्त का शब्दतः अनुकरण कहा जा सकता है। इसी प्रकार पू.भा. के ३५ वे अ. में कालिदास के "कुमार-सम्भवम्" के 'क्रोधंप्रभो संहर सहरेति'। इस पद्य का अक्षरशः अनुकरण कहा जा सकता है (द्र.पू. ३५.८६) इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी इसके पूर्ववर्ती ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों का प्रभाव है। इसमें सभी दर्शनों का विवेचन है, फिर भी अनेक स्थलों के अध्ययन से लगता है कि यह वैष्णवसम्प्रदाय का ही ग्रन्थ है। जैसे इसमें प्रबोधिनी-एकादशीतिथि के माहात्म्य और उसके करने की सांगोपांग विधि (द्र.उ.अ. २३), मान्धाता को एकादशीव्रत की महिमा सुनाना (द्र.उ.अ. १), पूर्वभाग के अ. ३७-४१ में विष्णु-माहात्म्य-कथन, उत्तरभाग के अ. ३ में एकादशीव्रत के प्रभाव से रूक्मांगद के राज्य में सबका वैकुण्ठ जाना तथा रुक्मांगद के पुत्र धर्मांगद के राज्यकाल में आठ वर्ष से अधिक और अस्सी वर्ष तक की अवस्था वाले लोगों को एकादशीव्रत अनिवार्य रूप से करना आदि इस ग्रन्थ के वैष्णव-सम्प्रदायमूलक होने में प्रबल प्रमाण हैं।

वर्णाश्रमधर्म एवं व्यवस्थायें

इस पुराण में अनेक स्थलों पर आश्रम-चतुष्टय और वर्णव्यवस्था की रूप रेखा मिलती है। पूर्वभाग के अ. २४, २५ और २६वें में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सदाचार का वर्णन किया गया है। देखिये-

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चत्वार एव ते।
वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिकः।।२४.७।।
एतैर्वर्णैः सर्वधर्माः कार्या वर्णानुरूपतः।
स्ववर्णधर्मत्यागेन पाखण्डः प्रोच्यते बुधैः।।२४.६।।
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत्।
पाखण्डः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः।। २५.२।।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी वर्णव्यवस्था का वर्णन किया गया है। वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत पूर्व-पूर्व क्रम से वर्णों की श्रेष्ठता, चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् कर्म एवं निषेध और आवरण आदि का सुस्पष्ट उल्लेख है। इसी प्रकार पूर्वभाग के अ. २७ में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी के धर्म का निरूपण किया गया है। यथा-

प्रातर्मध्यन्दिने चैव गृहस्थः स्नानमाचरेत्।
वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिषवणं यतिः।। पू. २७.६४।।

एक स्थल पर गृहस्थ के घर से अतिथि के निराश होकर लौटने का धर्मशास्त्रीय वर्णन इस प्रकार है-

अतिथिर्यस्य भग्नाशी गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति।। २७.७२।।

अवतार एवं स्तोत्र

इस पुराण के प्रारम्भ में ही दशावतार का वर्णन किया गया है। इसमें यत्र-तत्र सभी अवतारों का निर्देश है फिर भी वामनावतार का विस्तार से विवेचन है (द्र ११ अ. पूर्वभाग) अदिति द्वारा विष्णु की स्तुति करने पर विष्णु देवमाता अदिति के गर्भ से अवतार लेते हैं और बलि को छलकर पाताल भेजते हैं। इसमें अनेक देवताओं की स्तुतियाँ की गयी हैं और वस्तुतः इसमें शिव, विष्णु, राम एवं हनुमान तथा देवियों के अनेक अवतारों की स्तुति अनेक रूपों में विस्तार के साथ की गयी है, जिनका उल्लेख मात्र करने पर भी अतिविस्तार हो जायेगा। अतः कुछ प्रमुख स्तोत्रों का उल्लेख किया जा रहा है-

नारदकृतविष्णु स्तुति	अध्याय. २ ;
राधाकृष्ण सहस्रनामस्तोत्र	अध्याय. ८२ ;
हनुमत्स्तोत्र एवं कवच	अध्याय. ७८ ;
कार्तवीर्य-कवच	अध्याय. ७७ ;
ललितासहस्रनामस्तोत्र एवं कवच	अध्याय. ८६ ;
महेश्वरस्तोत्र	अध्याय. ९१ ;

सूक्तियाँ- इस पुराण में सूक्तियों का ढेर सा है। कुछ अति प्रसिद्ध सूक्तियाँ ही यहाँ दी जा रही हैं-

विवेकं हन्त्यहङ्कारस्त्वविवेकात्तु जीविनाम्।
आपदः सम्भवन्त्येवेत्यहङ्कारं त्यजेत्ततः।। ७.३०।।

यो वा को वा गुणी मर्त्यः सर्वश्लाघ्यतरो द्विजः।
सर्वसम्पत्समायुक्तोऽप्यगुणी निन्दितो जनैः।। ७.३८।।

अपकीर्तिसमोमृत्युर्लोकेष्वन्यो न विद्यते।। ७.३६.०६ ।।

नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः।।
नास्त्यसूयासमाऽकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः।
नास्तिरागसमः पाशो नास्ति संङ्गसमं विषम्।। ७.४१-४२।।

पण्डिते वापि मूर्खे वा द्ररिद्रे वा श्रियान्विते।
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्योः सर्वत्र तुल्यता।। ७.५६ ।।

श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविदः।
साधुत्वं समभावं च खलानां नैव विश्वसेत्।। ८.४८।।

दुर्जनं प्रणतिं यान्तं मित्रं कैतवशीलिनम्।
दुष्टां भार्यां च विश्वस्तो मृत एव न संशयः।। ८.४६

अहो कष्टतरा लोके दुर्जनानां हि संगतिः।
कारूकैस्ताड्यते वह्निरयः संयोगमात्रतः।।८.७२।।

दुर्जनेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।। ८.१२३।।

दारितश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चन्दनः।
सौरभं कुरुते सर्वं तथैव सुजनो जनः।। ८.१२४।।

श्रीमद्भागवतपुराण

छान्दोग्य उपनिषद् (७.१.४) के अनुसार देवर्षि नारद के कौमार सर्ग में अवतीर्ण श्रीसनत्कुमार जी से जब तत्त्व जिज्ञासा की, तब उन्होंने उनसे यह कहा–

"नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवयजनविद्या नामेवैतन्नामोपास्वेति।"

नारद! तुम यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पञ्चम इतिहासपुराण, वेदों का वेद व्याकरण, पितृकार्य सम्बन्धी श्राद्धकल्पादि, गणित, दैवीउत्पातविद्या, महाकाल आदि निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, भूतप्रेतादिविद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष, सपेरों की विद्या, नृत्य, गीत, वाद्य, शिल्पादि विज्ञान जो कुछ जानते हो वह सब नाम ही हैं, तुम नामोपासना करो। इसके अनन्तर सनत्कुमार जी ने देवर्षि नारद को नामोपासना से बढ़कर वाक्, मन, सङ्कल्प, चित्त, ध्यान और विज्ञान की उपासना की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए विज्ञानोपासना का उपदेश इस प्रकार दिया–

"विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयो, विज्ञानेन वा ऋग्वेदं जानाति, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां....इमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति, विज्ञानमुपास्वेत।"

(छा.उ. ७-५-१)

"ध्यान से विज्ञान श्रेष्ठ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पञ्चम इतिहासपुराण, वेदों का वेद व्याकरण, पितृकार्य सम्बन्धी श्राद्धकल्प, गणित, दैवीउत्पातविद्या, महाकाल आदि निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, भूतप्रेतादिविद्या, शास्त्रविद्या, ज्यौतिषविद्या, गारुड़शास्त्र, नृत्य, वाद्य, शिल्पादि इहलोक और परलोक सबका ज्ञान विज्ञान से ही होता है। तुम ब्रह्म के रूप में विज्ञानोपासना करो।"

इस प्रकार "छान्दोग्य उपनिषद्" में ऋग्वेदादि के साथ 'इतिहासपुराण' को पञ्चमवेद की संज्ञा देकर नाम एवं विज्ञान की कोटि में माना है। 'श्रीमद्भागवत' भी "महाभारत" को इतिहासपुराण में समाविष्ट करते हुए उसे पञ्चमवेद की संज्ञा देता है–

"इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते"

(भागवत १।४।२०)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने चतुर्दश विद्याओं में पुराण विद्या का प्रथम उल्लेख करते हुए चतुर्दश विद्या स्थानों के साथ चतुर्दश धर्म स्थानों में इस प्रकार परिगणित किया है–

"पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।"
"पुराणोपपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।"

इस सूक्ति के अनुसार समस्त पुराण वाङ्मय समस्त वेद वाङ्मय का उपबृंहण स्वरूप ही है। पुराण वाङ्मय परिपूर्ण होने के कारण पुरातन काल से नवीन ही था-"परिपूर्णत्वात् पुरा नवमेव पुराणम्।" जो प्राणिमात्र के अन्तःकरणों को परिपूर्ण करता है, वही 'पुराण' है-

"पुराणि अन्तःकरणानि (जीवहृदयानि) अनति (अण्यते) उज्जीवयति इति पुराणम्"

समस्त वेद वाङ्मय प्रभुसम्मित है और समस्त पुराण वाङ्मय सुहृत्सम्मित। रामायण, महाभारत और अष्टादश पुराण-उपपुराणों का अवलम्बन लेकर ही हमारा सम्पूर्ण ललित वाङ्मय अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ है जो कान्तासम्मित है। जैसा की श्री मम्मट भट्ट काव्य प्रयोजन का प्रतिपादन करते हैं-

'कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे'-"प्रभुसम्मित शब्द प्रधान वेदादि शास्त्रेभ्यः सुहृतसम्मितार्थ तात्पर्यवत् पुराणादीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूतव्यापार प्रवणतया विलक्षणं यत् काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म, तत् कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत् इति सत्कर्मप्रवृत्तिपरकमसत्कर्मनिवृत्तिपरकं च यथायोगं कवेः सहृदयस्य च करोति।"

(काव्य प्र.- १.१)

इसका समर्थन 'हरिलीलामृतकार' श्रीबोपदेव भी करते हैं-

"वेदः पुराणं काव्यं च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तीति हि प्राहुस्त्रिवद् भागवतं पुनः।।"

समस्त जनमानस-पटल पर राम और कृष्ण की सरस गाथा अंकित करने में अत्यन्त सफल शिल्पी रहे हैं; आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास जिनकी सरस काव्य परिणति है रामायण और महाभारत। श्रीमद्भागवत वेद भी है, पुराण भी है और काव्य भी है।

समस्त पुराण वाङ्मय को 'जय' नाम से सम्बोधित किया जाता है। क्योंकि समस्त पुराण वाङ्मय द्वारा ही संसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है-**"जयतिसंसारमनेन इति जयः पुराणमहाभारतादिः।"**

'भविष्य पुराण' में समस्त पुराण वाङ्मय को 'जय' नाम से सम्बोधित किया है-

"अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा।
कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः।।
तथैव विष्णुधर्माश्च शिवधर्माश्च शाश्वताः।
जयेति नाम तेषां च प्रवदन्ति मनीषिणः।।"

अतएव पुराण प्रवचनकार अपने प्रवचन के प्रारम्भ में नर-नारायण ऋषि, वाग्देवी सरस्वती और महर्षि वेदव्यास की वन्दना कर पुराण प्रवचन प्रारम्भ करते हैं-

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।"
तदनुसार 'भागवत महापुराण' भी जय है।

भगवान् वेदव्यास

"अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः।"

इस प्रकार किसी सहृदय कवि द्वारा भगवान् वेदव्यास का ब्रह्मदेव, विष्णु और महेश्वर-त्रिदेव के रूप में श्रद्धापूर्वक चित्रण आपकी अद्भुत लोकोत्तरता, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचायक है। भगवान् गणेश द्वारा सम्पूर्ण महाभारत का लेखन तथा बीच-बीच में उपन्यस्त कूट पद्यों को समझना ही उनको अवतार मानने के लिये बाध्य करता है। **"विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृतः।"** (महा. ४।११)

वेदवृक्ष का विस्तार (व्यास) करने के कारण आपका "वेदव्यास" नाम सार्थक था। आप भगवान् विष्णु के सत्रहवें अवतार हैं और इसी कार्य के लिए प्रति द्वापरयुग में अवतीर्ण होते हैं। विष्णु, वायु, स्कन्द, देवीभागवत आदि महापुराणों में अनेक व्यासों का उल्लेख है। आप उपरिचर वसु की कन्या सत्यवती और ऋषि पराशर के पुत्र रूप में वैवस्वत मन्वन्तर में अवतीर्ण अट्ठाईसवें व्यास है। आपका मूल नाम कृष्ण था, किन्तु यमुनाद्वीप में जन्म लेने के कारण आपका नाम श्रीकृष्ण द्वैपायन पड़ा। जाबाल ऋषि की कन्या वरिका के साथ विवाहोपरान्त आपको शुक नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वायु पुराण के अनुसार शुकाचार्य की उत्पत्ति अरणीमन्थन से हुई थी। आपने यज्ञ संस्था की रक्षा के लिए चार वेदों का विभाजन करने के उपरान्त इन्हें यथाक्रम वह वेदनिधि सौंप दी- १. ऋग्वेद (पैल), २. यजुर्वेद (वैशम्पायन), ३. सामवेद (जैमिनि मुनि) और ४. अथर्ववेद (सुमन्तु मुनि) को। आपने 'महाभारत' की रचना कर पुराणैतिहासिक आर्षकाव्यनिधि को पञ्चमवेद की संज्ञा देते हुए उग्रश्रवा के पिता श्री रोमहर्षण सूतजी को सौंप दिया। उन्होंने

अष्टादश महापुराणों की रचना जातूकर्ण्य से प्राप्त तत्त्वज्ञान से की। वह पुराणतालिका "श्रीमद्भागवत" के अन्त में इस प्रकार अङ्कित है–

क्रम	पुराण	श्लोक संख्या
१.	ब्रह्मपुराण	दस हजार
२.	पद्मपुराण	पचपन हजार
३.	विष्णुपुराण	तेईस हजार
४.	शिवपुराण	चौबीस हजार
५.	भागवतपुराण	अठारह हजार
६.	नारदपुराण	पच्चीस हजार
७.	मार्कण्डेयपुराण	नौ हजार
८.	अग्निपुराण	पन्द्रह हजार चार सौ
९.	भविष्यपुराण	चौदह हजार पाँच सौ
१०.	ब्रह्मवैवर्तपुराण	अठारह हजार
११.	लिङ्गपुराण	ग्यारह हजार
१२.	वराहपुराण	चौबीस हजार
१३.	स्कन्दपुराण	इक्यासी हजार एक सौ
१४.	वामनपुराण	दस हजार
१५.	कूर्मपुराण	सत्रह हजार
१६.	मत्स्यपुराण	चौदह हजार
१७.	गरुड़पुराण	उन्नीस हजार
१८.	ब्रह्माण्डपुराण	बारह हजार

श्रीमद्भागवत वेदव्यास की कृति है, बोपदेव की नहीं–

श्रीमद्भागवत महर्षि वेदव्यास द्वार विरचित है जिनका आविर्भाव वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें व्यास के रूप में हुआ था। यह बोपदेव की कृति नहीं है जिनका समय ई. त्रयोदश शतक निर्धारित है। श्री बोपदेव ने देवगिरि राज्य के राज्यमन्त्री 'श्री हेमाद्रि की प्रसन्नता' के लिए छब्बीस (२६) ग्रन्थ लिखे। जिनमें व्याकरण के दस, वैद्यक के नौ, तिथि निर्णय का एक, साहित्य के तीन और भागवत तत्त्व के तीन ग्रन्थ सम्मिलित हैं। भागवत तत्त्व के तीन ग्रन्थों में 'हरिलीलामृत' (भागवतानुक्रमणिका) और 'मुक्ताफल' प्रकाशित है। 'परमहंसप्रिया' अप्रकाशित है। बोपदेव के 'हरिलीलामृत' में भागवत का सारांश है।

बोपदेव के पूर्ववर्ती श्रीमध्वाचार्य पूर्णप्रज्ञ अथवा आनन्दतीर्थ (ई. द्वादश शती) ने भागवत पर 'भागवततात्पर्यनिर्णय' नामक टीका लिखी है। उसके पूर्ववर्ती-श्री हनुमान् चित्सुखाचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, (१०१७ ई. जन्म काल) आदि ने भागवत पर टीकाएँ लिखी हैं। 'हेमाद्रि' ने भी भागवत टीकाकार के रूप में 'श्रीधरस्वामी' का उल्लेख किया है। 'अभिनवगुप्ताचार्यकृत' 'गीता' की व्याख्या में भागवत के उद्धरण हैं। सांख्यकारिका की 'माठरवृत्ति' का चीनी अनुवाद ५५६ ई.-५६६ ई. के बीच में प्रकाशित हुआ, जिसमें भागवत के श्लोक उद्धृत हैं। गौडपादाचार्य कृत 'पञ्चीकरण' और 'उत्तरगीता' की टीका वेदान्त तत्त्वसार, देवर्द्धिगणिकृत 'नन्दिसूत्र' आदि ग्रन्थों में भी भागवत के उद्धरण हैं। 'पद्म पुराण' के 'माहात्म्यखण्ड' में तीन भागवत सप्ताहों का वर्णन इस प्रकार है–

आकृष्ण निर्गमात् त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्।।
परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम्।।
तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति।
ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः।।

(पद्म पु.-उ.ख. ६।६४-६६)

तदनुसार-१. भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्यधाम पधारने के उपरान्त भगवत्स्वरूप श्री शुकदेव जी ने राजर्षि परीक्षित को सुनाने के लिए भाद्रपद शुक्ल नवमी कलिसंवत् युग के तीस वर्ष से कुछ अधिक बीत जाने पर भागवत कथा प्रारम्भ की थी। २. अनन्तर श्रीगोकर्ण ने धुन्धुकारी को प्रेतयोनि से मुक्त करने के लिए २३० कलिसंवत् आषाढ़ शुक्ल नवमी को भागवत सप्ताह प्रारम्भ किया। ३. तदनन्तर सनकादि ऋषियों ने कार्तिक शुक्ल नवमी २६० कलिसंवत् को कथा प्रारम्भ की।

इससे यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत वेदव्यास की ही कृति है, जिसे वेदव्यास पुत्र शुकदेव ज़ी ने राजर्षि परीक्षित् को ५१०० वर्ष पूर्व कलिसंवत् ३० (३०१४ विक्रम वर्ष पूर्व) सुनाया था।

इन समस्त विषयों का विशद विवेचन स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज के ग्रन्थ 'भागवत दर्शन' (भाग १) की भूमिका तथा पुराणेतिहास के मर्मज्ञ आचार्य श्री अनन्तशास्त्री फड़के जी की भूमिका में किया गया है।

भागवत भगवत्स्वरूप

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।"

समग्रऐश्वर्य, समग्रधर्म, समग्रयश, समग्रश्री, समग्रज्ञान और समग्रवैराग्य ये षड्विध 'भग' जिसमें सम्पूर्ण रूप से वास करते हैं, उसे 'भगवान्' कहते हैं। "भगवतः इदं भागवतम्"–भागवत महापुराण भी भगवान् का स्वरूप और उसका वाङ्मय अवतार ही है। जैसा कि "पद्म पुराण" का वचन है–

स्वकीयं यद्भवेत् तेजस्तद् वै भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्।।
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात् पाठात् दर्शनान् पापनाशिनी।।

(–पद्म पु.–उ.ख. ३।६१-६२)

सम्प्रति उपलब्ध भागवत में ३३५ अध्याय और अठारह हजार श्लोक हैं। "गौरीतन्त्र" भी यही कहता है–

"ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः।
पञ्चत्रिंशोत्तराध्यायस्त्रिशतीयुक्त ईश्वरी !।।"

पद्म पुराण के अनुसार भागवत श्रीकृष्ण का ही स्वरूप है और उसके द्वादश स्कन्ध उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। प्रथम और द्वितीय स्कन्ध भगवान् के दोनों चरणकमल, तृतीय और चतुर्थ स्कन्ध उनकी दोनों जंघाएँ, पञ्चम स्कन्ध नाभि, षष्ठ स्कन्ध वक्षस्थल, सप्तम स्कन्ध बाहुयुगल, नवम स्कन्ध कण्ठ, दशम स्कन्ध मुखारविन्द, एकादश स्कन्ध ललाट और द्वादश स्कन्ध मूर्धा है।

"कौशिकीसंहिता" के भागवत माहात्म्य के अनुसार भागवत का प्रथम स्कन्ध भगवान् के चरणयुगल से लेकर जानुपर्यन्त का भाग, द्वितीय स्कन्ध जानु से कमर तक का भाग, तृतीय स्कन्ध नाभि, चतुर्थ स्कन्ध उदर, पञ्चम स्कन्ध हृदय, षष्ठ स्कन्ध बाहु सहित कण्ठ, सप्तम स्कन्ध मुखारविन्द, अष्टम स्कन्ध नेत्र, नवम स्कन्ध कपोल और भ्रुकुटि, दशम स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र, एकादश स्कन्ध मन और द्वादश स्कन्ध आत्मा है।

महाप्रभु के शब्दों में– **"उत्क्षिप्तहस्तपुरुषो भक्तमाकारयत्युत"** मानों भागवत पुरुष दोनों हाथ उठाकर भक्त का आवाहन कर रहा है।

श्रीमद्भागवत परब्रह्म-परमात्मा के समान है। क्योंकि वेदवृक्ष का सरस फल है; निर्गुण परब्रह्म का सगुण पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीमद्भागवत वाङ्मय 'शुक-सुधासागर' है, जो उनसे अभिन्न है। जिसमें प्रेमभक्ति की सरस मन्दाकिनी सत्कर्मों की कालिन्दी और श्रुतिसार सर्वस्व सत् ज्ञान सरस्वती की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित होती है।

अनुबन्ध चतुष्टय– इस दृष्टि से सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण और मात्सर्य मुक्त सन्तों का निष्कपट भावगत धर्म भागवत का विषय है; जिज्ञासु और विरक्त उसके अधिकारी हैं, बोद्धा और बोधव्यभाव सम्बन्ध है तथा त्रिविध ताप की निवृत्ति के साथ भगवत-प्राप्ति अथवा मुक्ति उसका फल प्रयोजन है।

भागवत की गुरु-शिष्य परम्परा–श्रीमद्भागवत परमसत्य का प्रकाशक है 'सत्यं परं धीमहि' यही भागवत का आदर्श वाक्य है, "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि मङ्गलाचरण में भी है और अन्त के गुरु परम्परा ज्ञापक पद्य में भी प्राप्त होता है। भागवत की गुरु परम्परा का इस प्रकार है–

"कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञान प्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत
सच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि।।"

(–भागवत १२-१३-१६)

क्षीरसागर में कल्पान्तवेला में शेषशय्या पर शयन करने वाले भगवान् वासुदेव ही उस परमसत्य के प्रकाशक हैं। वे जब योगनिद्रा से मुक्त होते हैं तब अपने नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी को और ब्रह्मा जी अपने मानस पुत्र देवर्षि नारद को ज्ञानोपदेश अर्थात् वही चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश करते हैं। नारद से वही ज्ञान श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास को प्राप्त हुआ। अनन्तर उस ज्ञानामृत का पान वेदव्यास जी ने अपने परमविरक्त पुत्र शुकदेव को कराया और फिर शुकदेव जी ने वही ज्ञान राजर्षि परीक्षित को दिया। यही भागवत की क्रमागत गुरु शिष्य परम्परा है।

१. परब्रह्म-परमात्मा–कल्पान्त में भगवान् वासुदेव योगमाया के वश में होकर शेषशय्या पर शयन करते हैं। उसी शेषशायी सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् के नाभिकमल में सृष्टि के अधिष्ठाता ब्रह्मदेव रहते हैं।

२. ब्रह्मदेव–भागवत का प्रथमोपदेश श्रीहरि से आदिगुरु ब्रह्मदेव को प्राप्त हुआ–

तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते।
इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे।।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात् सम्प्रकाशितम्।।

(–श्री.भा. १।५।३७)

३. देवर्षि नारद– नारद मुनि विष्णु के द्वितीय अवतार है जिन्होंने ऋषियों की सृष्टि में देवर्षि पद प्राप्त कर "सात्वततन्त्र" (नारदपाञ्चरात्र) का प्रवर्तन किया। उस तन्त्र में नैष्कर्म्य सिद्धि (निष्कामकर्मयोग) का प्रतिपादन किया गया है।

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सास्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः।।

कालान्तर में उन्होंने भगवान् शेषशायी श्रीहरि के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर उनके नाभिकमल में विराजमान ब्रह्मदेव के पुत्र के रूप में मरीचि आदि प्रजापतियों के साथ ही जन्म लिया। भगवान् ने स्वयं हंसावतार में भक्ति भावना से प्रसन्न होकर भक्तियोग, ज्ञान और भागवत तत्व का उपदेश दिया जो केवल भगवान् वासुदेव के शरणागत भक्तों को ही तत्काल प्राप्त होता है। आपने ब्रह्मदेव के मुख से उस भागवत तत्त्व का श्रवण-मनन किया जिसे साक्षात् नारायण ने ब्रह्मदेव को दिया था।

४. भगवान् वेदव्यास– प्रति द्वापर युग में सत्यवती के पुत्र के रूप में प्रकट होकर वेदवृक्ष का अनेक शाखाओं में विभाजन करते हैं, उसके बाद भी जब उन्हें संतोष नहीं हुआ तब देवर्षि नारद ने व्यास को भागवत का उपदेश दिया। महर्षि वेदव्यास ने ब्रह्मनदी सरस्वती के तटवर्ती बदरिकाश्रम स्थित शम्याप्रास ग्राम में ध्यान लगाया; भगवान् का साक्षात्कार करके वहीं पर भागवत संहिता की रचना की तथा उसका अध्यापन अपने विरक्त पुत्र शुकाचार्य के लिए किया।

५. परमविरक्त महात्मा शुकदेव–परमसत्य का साक्षात्कार ब्रह्मदेव से लेकर शुकाचार्य तक सभी ने किया किन्तु शुकदेव जी का सत्यसाक्षात्कार मात्र सत्यान्वेषण के लिए है, उसका विशिष्ट प्रयोजन नहीं है। शुकदेव का प्राकट्य राजर्षि परीक्षित को सर्वदा के लिए जन्म-मरण चक्र के बन्धन से मुक्त करने के लिये ही हुआ था। भागवत के मुख्य वक्ता श्री शुकदेव ही हैं। श्री शुकदेव का भागवत प्रवचन सुधासागर है।

६. राजर्षि परीक्षित– १. मनुष्य का कर्तव्य क्या है ? उसके जीवन का लक्ष्य क्या है ? २. मरणासन्न मनुष्य का कर्तव्य क्या है ?

इन दो प्रश्नों से ही सम्पूर्ण भागवत का उदय हुआ है। वक्ता श्री शुकदेव का एकमात्र प्रयोजन है प्राणिमात्र के कल्याण के लिए सत्त्य का अविष्कार। श्रोता राजर्षि परीक्षित का एकमात्र प्रयोजन है उस सत्त्य की अनुभूति। परीक्षित के ब्रह्मपद प्राप्ति का यही रहस्य है। "सत्यं परं धीमहि" इस आदर्श वाक्य की सार्थकता भी इसी में है।

७. सूत शिरोमणि उग्रश्रवा– शुक और परीक्षित के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के अन्य वक्ता और श्रोता में सूत-शौनक आते हैं। नैमिशारण्य अथवा नैमिषारण्य पुराण वाङ्मय की उपबृंहणस्थली है। वहाँ अनेक वर्षों तक ज्ञानयज्ञ यहाँ होते थे।

"ब्रह्मणा विसृष्टस्य मनोमयस्य चक्रस्य नेमिः यत्र शीर्यते = कुण्ठी भवति, तन्नेमिशम् नेमिशमेव नैमिशम्।"

"वायुपुराण" के अनुसार जिस तपोभूमि में ब्रह्मदेव द्वारा छोड़ा गया मनोमय चक्र (नेमि) भी शीर्ण-कुण्ठित होता है, वह तपोभूमि 'नैमिशारण्य' है। 'वराह पुराण' के अनुसार व अरण्य नैमिषारण्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ निमिष (क्षण) मात्र में दानव सेना का संहार हुआ; वह 'अनिमिषक्षेत्र' श्री विष्णु का क्षेत्र है, क्योंकि अलुप्त दृष्टि होने के कारण विष्णु का अन्यतम नाम अनिमिष भी है– **"अनिमिषः श्री विष्णुः, अलुप्तदृष्टित्वात् तस्य क्षेत्रे।"**[1] **अथवा निमिषः (निमेषः) न विद्यते येषां ते, अनिमिषाः = देवाः तेषां क्षेत्रम्-अनिमिषक्षेत्रम्"** इति, इस समास विग्रह के अनुसार वह देवभूमि है।

उन ज्ञानयज्ञों में महर्षिगण सूतशिरोमणि उग्रश्रवा से संवाद करते थे। उस वार्तालाप में महर्षिगण तत्त्वजिज्ञासा करते एवं वे उनका समाधान। प्रश्न प्रतिवचन की 'व्यासशैली' द्वारा अन्य पुराणों की भाँति श्रीमद्भागवत महापुराण का भी उपबृंहण हुआ है।

महर्षि शौनक ने एक बार उनसे साग्रह निवदेन किया–महर्षे ! भगवततत्त्व क्या है ? आप ही उसका समाधान कर सकते हैं, क्योंकि आप समस्त वाङ्मय के अधिकारी विद्वान् हैं, केवल वैदिक वाङ्मय के अधिकारी नहीं है–

"मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात्" पूज्य श्री श्रीधर स्वामी इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं–**"यद् यस्मात् वाचां विषये = गिरां गोचरेऽर्थे स्नातं पारङ्गतं त्वां मन्ये, छान्दसादन्यत्र = वैदिक व्यतिरेकेण अत्रैवर्णिकत्वात्"**

यतः उग्रश्रवा त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के) न होकर वर्णसंकर जाति के थे, अतः उनको वेदाधिकार नहीं था।

सूतशिरोमणि उग्रश्रवा को भी इसकी आन्तरिक पीड़ा थी। अतः वह एक स्थल पर कहते हैं–

"अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः।।"

(भाग. १।१८।१८)

वस्तुतः सवर्ण विवाह की सन्तान श्रेष्ठ होती है। असवर्ण विवाहों में उच्चवर्ण के पिता और निम्नवर्ण की माता से उत्पन्न सन्तान अनुलोम होती है। उच्चवर्ण की माता और निम्नवर्ण की सन्तान विलोम होती है। ब्राह्मणवर्ण की माता और क्षत्रियवर्ण के पिता से उत्पन्न सन्तान सूतजाति कहलाती है। किन्तु पुराण वाङ्मय के वे अधिकारी विद्वान् थे। परन्तु महर्षि वेदव्यास ने महाभारत और पुराण वाङ्मय की रचना ही उनके लिये की थी, जो वेदाधिकारी नहीं हैं।[2]

---

१. द्रष्ट. (१) श्रीधरी "नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे" (भाग. १।१।४)

२. श्री.भा. १।४।२०-२२

इतिहासपुराण 'महाभारत' की रचना पञ्चमवेद के नाम से कर महर्षि वेदव्यास ने वह निधि उग्रश्रवा के पिता रोमहर्षण को सौंप दी, जिसे स्त्री, शूद्र आदि भी समझ सकें।[1] पश्चात् श्री वेदव्यास ने भागवत की रचना की और उसे अपने पुत्र शुकाचार्य को पढ़ाया। शुकदेव ने जब उस भागवत की व्याख्या राजर्षि परीक्षित के सम्मुख की थी, तो वहीं पर उग्रश्रवा ने भी श्रवण किया था। उसे ही वे महर्षि शौनक को सुना रहे थे।[2]

८. महर्षि शौनक– "शौनः सर्वविवेकदृक्, अथवा शौन एव शौनकः, भगवद्भावरसिको मुनिवरः।"

महर्षि शौनक-उत्तम श्रोता हैं सभी प्रकार की विवेक दृष्टि रखते हैं और भक्ति रस में डूबे रहते हैं।

श्रीमद्भागवत की द्वितीय गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार वह ज्ञान पाताल लोक में विराजमान भगवान् संकर्षण से यथाक्रम सनकादि ऋषि, सांख्यायन मुनि, भगवान् पराशर, देवगुरु बृहस्पति, श्री मैत्रेयमुनि और विदुर को प्राप्त हुआ।

श्रीमद्भागवत की भाष्य सम्पत्ति– श्रीमद्भागवत सुधानिधि पण्डित श्रीकृष्ण शङ्कर शास्त्री जी द्वारा विभिन्न टीकाओं के साथ सम्पादित श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में पुराणेतिहास तथा अन्य शास्त्रों के प्रकाण्ड आचार्य श्री पं.प्र. अनन्तशास्त्री फड़के जी की वैदुष्यपूर्ण भूमिका है। इस संस्करण में १. भावार्थदीपिका (श्रीधरस्वामी), २. भावार्थदीपिकाप्रकाश (श्री वंशीधर), ३. दीपिनी (श्री राधारमणगोस्वामी), ४. श्री वीरराघवकृतव्याख्या, ५. पदरत्नावली (विजयध्वजतीर्थ), ६. क्रम सन्दर्भ (जीवगोस्वामी), ७. सारार्थ दर्शिनी (विश्वनाथ चक्रवर्ती), ८. सिद्धान्त प्रदीप (श्री शुकदेव), ६. सुबोधिनी (महाप्रभुवल्लभाचार्य), १०. सुबोधिनी प्रकाश (श्री पुरुषोत्तमचरण गोस्वामी), ११. बालप्रबोधिनी और १२. राष्ट्रभाषानुवाद प्रकाशित हैं। इस महाग्रन्थ के प्रत्येक खण्ड के परिशिष्ट में श्रीमद् वल्लभदीक्षित विरचित 'प्रकाश' तथा गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तम विरचित 'आवरणभङ्ग' व्याख्या के साथ महाप्रभुवल्लभाचार्य विरचित 'तत्वार्थदीप' का 'भागवतार्थप्रकरण' और पूज्य श्री मधुसूदनसरस्वतीकृत टीका के साथ श्री बोपदेव प्रणीत 'हरिलीलामृत' प्रकाशित है।

श्रीमद्भागवत का यह संस्करण तथा भागवतदर्शन (प्रवचनसंकलन) स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती कृत इस निबन्ध का उपजीव्य है।

भागवत सप्ताह श्रवण– भागवत सप्ताह का श्रवण प्रचलित है, उसके चार लक्षण हैं– मन पर नियन्त्रण न रखना, रोगग्रस्त होना, आयुष्य का ह्रास और कलिकाल का कुप्रभाव–

---

१. श्री.भा. १।४।२५
२. श्री.भा. १।३।४५

"मनसश्चाजयाद् रोगाद् पुंसां चैवायुषः क्षयात्।
कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम्।।"

(पद्म पु.-उ.ख. ३।४६)

राजर्षि परीक्षित ने यद्यपि भागवत का श्रवण एक सप्ताह में किया था, किन्तु उसका कारण था उनकी मृत्यु की निकटता। उन्होंने श्रद्धापूर्वक श्री शुकदेव जी से उसका श्रवण किया अत एव वह "निर्गुण" कोटि का था, "तामस" नहीं–

पारीक्षितेऽपि संवादे निर्गुणं तत् प्रकीर्तितम्।
तत्र सप्तदिनाख्यानं तदायुर्दिनसंख्यया।।

(भाग. स्कन्द पु.माहा. अ.४।२६)

पुराण लक्षण–श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय है भगवान् श्रीकृष्ण; वही उसका प्राणभूत आश्रयतत्व है। पुराण के द्विविध लक्षण प्राप्त होते हैं– पञ्चविध और दशविध। उसका पञ्चविध इस प्रकार है–

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तरौ तथा।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।।"

यह पञ्चविध पुराण लक्षण हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इनका समावेश पञ्चविध पुराण लक्षण में है।

"भागवत" में दशविध पुराण लक्षण द्वितीय और द्वादश स्कन्ध में प्राप्त होता है। "भागवत" का स्पष्ट कथन है कि जहाँ पुराणों के पञ्चलक्षण प्राप्त होते हैं वह उपपुराण और जहाँ दशविध लक्षण प्राप्त होते हैं वह महापुराण है–

"केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् ! महदल्पव्यवस्थया।"

(भाग. १२।७।१०)

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।

(भाग. २।१०।१)

१. सर्ग, २. विसर्ग, ३. स्थान, ४. पोषण, ५. ऊति, ६. मन्वन्तर, ७. ईशानुकथा, ८. निरोध, ६. मुक्ति और १०. आश्रय। इनका समावेश दशविध पुराण लक्षण में होता है। वस्तुतः दशम तत्व आश्रय ही भागवत महापुराण का प्राणतत्त्व है और उसका साक्षात्कार करने के लिए ही उस लक्षण में अन्य नौ का समावेश किया जाता है–

"दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा।।"

(भाग. २।१०।२)

द्वादश स्कन्ध में उसका लक्षण इस प्रकार है–

"सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ति रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।।"

(भाग. १२।७।६)

सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय इनका दशविध पुराण लक्षण में समावेश किया गया है। इस लक्षण में "वृत्ति" 'रक्षा' शब्द पूर्व लक्षण के 'स्थान' और 'पोषण' के स्थान पर है। 'अन्तर' का अर्थ मन्वन्तर करना चाहिए। 'वंश' और 'वंशानुचरित' का समावेश पूर्व लक्षण के 'ईशानुकथा' में होता है। 'संस्था' और 'निरोध' एक ही हैं। पूर्व लक्षण के आत्यन्तिक प्रलय लक्षण मुक्ति का 'संस्था' में ही समावेश है। पूर्व लक्षण के 'ऊति' को यहाँ 'हेतु' शब्द से कहा गया है। 'अपाश्रय' पूर्व लक्षण के 'आश्रय' को यहाँ अपाश्रय कहा गया है। पञ्चविध पुराण लक्षण का 'प्रतिसर्ग' दशविध लक्षण में 'विसर्ग' शब्द से संकेतित है।

यद्यपि भागवत में सर्वत्र भगवततत्त्व का ही निरूपण है, तथापि विशेष रूप से उसके सगुण साकार स्वरूप का दशम स्कन्ध में और निर्गुण-निराकार स्वरूप का द्वादश स्कन्ध में निरूपण किया गया है। अन्य सभी नौ लक्षण उसी परब्रह्म परमात्मा की सिद्धि में सहायक होते हैं।

आश्रयतत्त्व– आश्रयतत्त्व का निरूपण द्वितीय स्कन्ध में इस प्रकार किया गया है–

"आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति गीयते।।
योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः।।
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः।।"

(भाग. २।१०।७-८-९)

जहाँ से सृष्टि (आभास) होता है और जहाँ उसका प्रलय (निरोध) होता है, वही 'आश्रय' है, जिसे परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। आश्रय दो प्रकार का होता है– क्रिया का

आश्रय और ज्ञान का आश्रय। सृष्टि और प्रलय दोनों क्रियाएँ हैं, जिसका आश्रय परब्रह्म परमात्मा है, यह प्रथम पद्य का अर्थ है।

–वह ज्ञान का भी आश्रय है, ज्ञेय का ही ज्ञान होता है, जो त्रिविध प्रतीत होता है। जो आध्यात्मिक पुरुष है वही आधिदैविक भी है। दस बाह्यकरण (पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रिय) त्रिविध अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार) तथा पञ्चप्राण ये सभी "आत्मा" (देह) का आश्रय लेकर रहते हैं, अतः इन्हें 'अध्यात्म' कहते हैं। इनका अधिष्ठाता चक्षु आदि करणों को अभिमानी द्रष्टा जीव आध्यात्मिक पुरुष हैं। 'आधिदैविक' पुरुष का अर्थ है चक्षु आदि करणों का अधिष्ठाता सूर्य आदि। 'अधिभूत' का अर्थ है, जहाँ शब्द स्पर्श आदि का अनुभव होता है, वह नेत्र, त्वचा आदि। करणों का अभिमानी आध्यात्मिक पुरुष भी वहीं रहता है और करणों का अधिष्ठाता सूर्यादि भी। इन्द्रियों का अवयव स्वरूप आधिभौतिक देह भी भगवत् स्वरूप ही है जो उन दोनों को एक-दूसरे से अलग करता है। यहाँ त्रिविध प्रतीत होने वाला भगवत् स्वरूप वस्तुतः एक ही है, जो ज्ञेय है। ये त्रिविध स्वरूप परस्पर सापेक्ष है, क्योंकि दृश्य देह है, अनुमेय करण है, करण प्रवृत्ति के अधिष्ठाता सूर्य आदि है और करणाभिमानी द्रष्टा जीव होता है। दृश्य देह का साक्षात्कार किये बिना न तो अनुमेय 'करण' (इन्द्रियादि) की सिद्धि होगी और न द्रष्टा जीव की इन्द्रियादि की प्रवृत्ति से ही उसके अधिष्ठाता सूर्य आदि भी अनुमेय होते हैं। वह भी बिना आधिभौतिक संभव नहीं है। इस प्रकार बिना आधिभौतिक देह के न तो आध्यात्मिक द्रष्टा जीव का अनुमान संभव है और न आधिदैविक सूर्य आदि का। इन तीनों का आश्रय ही सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा है, जो विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। वह समस्त ज्ञेयों का आश्रय है, उसका कोई आश्रय नहीं है। वही स्वाश्रयाश्रय परब्रह्म परमात्मा भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। (द्रष्टव्य 'श्रीधरी' और 'सुबोधिनी')

आश्रय को ही 'अपाश्रय' नाम देकर द्वादश स्कन्ध में उसका निरूपण इस प्रकार किया गया है–

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीव वृत्तिष्वपाश्रयः।।

(भाग. १२।७।१९)

परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न अंश स्वरूप जीव की तीन वृत्तियों– जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्थाओं से माया के आवरण से सम्बन्ध (अन्वय) होता है, तब प्रापञ्चिक स्थिति में उसका त्रिविध स्वरूप– विश्व, तैजस और प्राज्ञ प्रकट होता है। समाधि की स्थिति में सांसारिक प्रतीति न होने पर उसका बाध (व्यतिरेक) होता है। इन अवस्थाओं से जो तुरीय परब्रह्म है, वही सबका अधिष्ठान स्वरूप है, जिसे यहाँ "अपाश्रय" कहा गया है।

वही परमात्मा का निर्गुण निराकार स्वरूप है। वे पुराण पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सर्ग, विसर्ग (प्रतिसर्ग) स्थान (वृत्ति) पोषण (रक्षा) ऊति (हेतु) मन्वन्तर, ईशानुकथा (वंश और वंशानुचरित) निरोध (संस्था) और मुक्ति इन नौ लक्षणों से लक्षित होता है। भाष्यकार श्रीधर स्वामी उनकी वन्दना इस प्रकार कर रहे हैं–

"विश्वसर्ग विसर्गादि नवलक्षण लक्षितम्।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम ननाम तत्।।"

प्रथम स्कन्ध अधिकारी सम्बन्ध

"जन्माद्यस्य यतः" इत्यादि मङ्गलाचरण भगवान् का लक्षण है। लक्षण द्विविध होता है– स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण। **'सत्त्यं परं धीमहि'** (हम परमसत्त्य का ध्यान करते हैं)। पूर्वार्ध में उसका तटस्थ लक्षण है और उत्तरार्ध में स्वरूप लक्षण उस परमसत्त्य स्वरूप परमेश्वर का ध्यान इसलिए कर रहे हैं कि जिस परब्रह्म में जो माया के तीन गुण हैं– सत्व, रज और तम उनका सर्ग (सृष्टि) असत्य (मृषा) होने पर भी सत्त्य (अमृषा) प्रतीत होता है। मरुभूमि में 'मरीचिका' को मृग सत्त्य समझता है, जब बालुका कणों में सूर्य किरणें पड़ती हैं, तब उसे स्थल में भी जल का भ्रम होता है और प्यासा मृग उसके पीछे दौड़ता है। स्थल में जल का भ्रम असत्य ही है; उसी प्रकार जगत् को सत्त्य समझना भी भ्रम है अथवा भगवत्स्वरूप जगत् भी सत्त्य है जब अपने ही प्रकाश से कुहरा छट जाता है, तब परमसत्त्य का प्रकाश होता है।

पूर्वार्द्ध में परमात्मा का तटस्थ लक्षण है– जहाँ से विश्व की सृष्टि, उसका पालन और संहार होता है, वहीं परमसत्त्य है। वह परमसत्त्य सत्पदार्थों से सम्बन्ध रखता है, असत् पदार्थों से नहीं। वह सर्वसाक्षी (अभिज्ञ) और विशुद्ध ज्ञान स्वरूप (स्वराट्) है। उसी परमेश्वर ने ब्रह्मा के अन्तःकरण में वेदनिधि को प्रकाशित और प्रसारित किया। यतः विद्वान् लोग भी जिसके विषय में मोहग्रस्त होते हैं, जब परमात्मा की कृपा होती है तभी अन्तःकरण में ज्ञान प्रकाशित होता है, अन्यथा नहीं। उसी परमसत्त्य का ध्यान कर रहे हैं; वही भागवत का परमसत्त्य है।

"जन्माद्यस्य यतः" (१।१।२) इस ब्रह्मसूत्र से भागवत का श्रीगणेश यह सूचित करता है कि उस परब्रह्म परमात्मा का निरूपण करने के लिए भागवत का अवतार हुआ है। "भागवत" के भगवान् श्रीकृष्ण और परब्रह्म-परमात्मा दोनों ही हैं–

वदन्ति यत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

(भाग. १।२।११)

वस्तुतः वह अखण्ड ज्ञान स्वरूप है, उपनिषद् वाङ्मय में उसे 'ब्रह्म' कहा गया है, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मदेव) के अनुयायी परमात्मा कहते हैं और नारदीय परम्परा के लोग 'भगवान्'। यह मात्र नामभेद है, तीनों का अर्थ एक ही है और वह अखण्ड शुद्ध ज्ञान। सृष्टि कामना से वह षोडश 'पुरुष' रूप में अपने को आविष्कृत करता है, जो महत्तत्त्व, अहंकार तथा पञ्चतन्मात्राओं से निष्पन्न है। अन्तःकरण मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चमहाभूत उसकी सोलह कलाएं हैं। वस्तुतः यह भगवद्स्वरूप नहीं है, किन्तु 'विराट् पुरुष' की उपासना के लिए यह वर्णन है-

"जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया।।"

(भाग. १।३।१)

भगवान् अखण्ड विशुद्ध सत्वस्वरूप हैं, जिसमें योगी 'विश्वरूप' दर्शन करते हैं-

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत्।।

(भाग. १।३।४)

यह 'पुरुषसूक्त' का उपबृंहण है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसी विश्वरूप का दर्शन कराया। "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" (१.३.२८) यही भागवत की मान्यता है। भगवान् श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुष हैं, अन्य सभी उसकी कलाएँ हैं।

अवतार समीक्षा- विश्वस्वरूप भगवान् का समष्टि स्वरूप अव्यय, अविनाशी सृष्टि बीज है तथा वह अवतारों का निधान है। उसका प्रधान अंश ब्रह्मदेव है जो समाधि निद्रा में उनके नाभिकमल से प्रकट हुए हैं। 'सर्ग' (सृष्टि) दशविध पुराण का प्रथम लक्षण है और ब्रह्मदेव 'सर्ग' के अधिष्ठाता देवता हैं। उनके कौमार, आर्ष, प्राजापत्य, मानव आदि विविध सर्ग हैं।

भगवान् के विविध अवतार इस प्रकार हैं-

१. कौमार सर्ग- कौमार सर्ग में **सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार** का अवतार हुआ। ये चारों अवतार ब्रह्मदेव की 'सन्' (अखण्ड) तपस्या का फल था; अतः चारों वैष्णवावतारों में 'सन' शब्द जुड़ा हुआ है। अवतार संख्या की दृष्टि से चारों मिलकर एक अवतार माना जाता है।

२. वराहावतार- पाद्मकल्प के अनुसार प्रलय बेला में जलमग्न पृथ्वी का उद्धार करने के लिए भागवान् ने यज्ञ स्वरूप वराह अवतार लिया और जल में ही अपनी दंष्ट्रा

से आदिदैत्य हिरण्याक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। 'हिरण्याक्ष' का अर्थ है, जिसे केवल हिरण्य (सुवर्ण-धन) ही दृष्टिगोचर हो। उसके वध का अर्थ यह है कि प्राणियों की दृष्टिमात्र हिरण्य पर न हो। वराहावतार का प्रयोजन पृथ्वीवासी प्राणियों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करना, यज्ञ संस्था तथा सनातन वैदिक धर्म संस्कृति की रक्षा करना था।

३. देवर्षि नारद– इनका वर्णन भागवत की गुरु-शिष्य परम्परा में वर्णित है।

४. नर-नारायण– धर्म और उनकी पत्नी दक्ष कन्या मूर्ति के पुत्र के रूप में दो ऋषि प्रकट हुए और आत्मसंयम के लिए कठोर तप किया। दोनों ऋषि भगवान् का एक अवतार है।

५. महर्षि कपिल– जिन्होंने सांख्यदर्शन का प्रवर्तन कर उसका प्रथमोपदेश 'आसुरि' को दिया। विद्वान् शिरोमणि बोपदेव के अनुसार मैत्रेय द्वारा उपदिष्ट सृष्टि योगमार्ग सम्मत है और महर्षि कपिल द्वारा देवहूति को उपदिष्ट सृष्टि सांख्यदर्शन सम्मत है। वे दोनों भिन्न-भिन्न इतिहास हैं–

"सर्गः कारणसम्भूतिः भिन्ना सा योगसांख्ययोः।
विदुरायोक्तवान् योगं मैत्रेयो देवहूतये।।
कपिलः सांख्यमित्येतावितिहासाविहोदितौ।।"

(हरिलीलामृत ३।१-२)

६. दत्तात्रेय–अनसूया और अत्रि मुनि के पुत्र के रूप में प्रकट विष्णु का अवतार जिन्होंने चौबीस गुरु बनाए तथा आन्वीक्षिकी विद्या का प्रह्लाद, अलर्क आदि राजाओं को उपदेश किया।

७. यज्ञनारायण–रूचि प्रजापति और आकूति के पुत्र रूप में प्रकट होकर उन्होंने अपने पुत्र याम आदि के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की।

८. ऋषभदेव– राजा नाभि और रानी मेरुदेवी के पुत्र के रूप में प्रकट हुए और परमहंसों का मार्ग प्रदर्शन किया।

९. राजा पृथु– वेन के पुत्र के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने पृथ्वी का दोहन किया। उसका विस्तार करने के कारण 'पृथ्वी' नाम सार्थक हुआ–'प्रथनात् पृथ्वी' (निरुक्त) इस इतिहास का हिमालय वर्णन प्रसङ्ग में कालिदास ने भी स्मरण किया है।[1]

१०. मत्स्य– चाक्षुष मन्वन्तर में प्रकट हुए और पृथ्वी की नौका पर अग्रिम मन्वन्तर के अधिपति वैवस्वत मनु की रक्षा की।

---

१. कुमार संभव १।१।२ द्रष्टव्य

११. कच्छप– इस अवतार में भगवान् ने समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल को अपने पीठ पर धारण किया।

१२. भगवान् धन्वन्तरि– समुद्र मन्थन से भगवान् धन्वन्तरि अमृत कलश लेकर प्रकट हुए।

१३. मोहिनी– इस अवतार में भगवान् ने दैत्यों से अमृत की रक्षा और उसे देवताओं को पिलाया।

१४. नरसिंह भगवान्– इनके द्वारा हिरण्यकशिपु का वध और प्रह्लाद की रक्षा हुई। जो हिरण्य (सुवर्ण) की (तकिया) पर सोता है, वह हिरण्यकशिपु है। जो सिंह के समान तेजस्वी रहता है वही हिरण्यकशिपु (मदमत्तप्राणी) का वध कर सकता है।

१५. वामन– इस अवतार में राजा बलि से तीन चरण भूमि माँगकर पूरे त्रिलोक पर साम्राज्य स्थापित किया।

१६. परशुराम– ब्राह्मणद्रोही सम्पूर्ण क्षत्रिय राजवंश का इक्कीस बार संहार किया।

१७. वेदव्यास– आपके द्वारा वेदों का शाखा विस्तार हुआ।

१८. रामावतार, १९. बलराम, २०. भगवान् श्रीकृष्ण, २१. बुद्धावतार, २२. कल्कि अवतार की भविष्यवाणी। इन २२ अवतारों में रामभक्त राम को और कृष्णभक्त कृष्ण को अवतारी मानते हैं। शेष उनके कलावतार अथवा अंशावतार हैं।

द्वितीय स्कन्ध के सप्तमाध्याय में इनका संक्षिप्त वर्णन है, जिसका क्रम भिन्न है, वह इस प्रकार है–१. वराह, २. सुयज्ञ, ३. कपिल, ४. दत्तात्रेय, ५. सनकादि, ६. नर-नारायण, ७. ध्रुव-नारायण, ८. राजा पृथु, ९. ऋषभदेव, १०. यज्ञपुरुष हयग्रीव, ११. मत्स्य, १२. कच्छप, १३. नृसिंह, १४. श्रीहरि (गजेन्द्रमोक्ष), १५. वामन, १६. हंस, १७. स्वायम्भुवमनु, १८. धन्वन्तरि, १९. परशुराम, २०. दाशरथी राम, २१. केशावतार (बलराम + श्रीकृष्ण), २२. महर्षि वेदव्यास, २३. भगवान् बुद्ध और २४. कल्कि।

वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण अवतारी पुरुष हैं। इनके कुछ अंशावतार होते हैं, कुछ कलावतार होते हैं और कतिपय विभूतियाँ हैं, इनमें परमपुरुष की ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का समावेश होने से अंशावतार अथवा कलावतार कहा जाता है। सनक-सनन्दनादि कुमार, देवर्षि नारद आदि में परमपुरुष की ज्ञानशक्ति का अंश है। राजा पृथु आदि में भगवान् की क्रियाशक्ति का अंश है। वशिष्ठ आदि मंत्रद्रष्टा ऋषि, स्वायम्भुव आदि मनु, इन्द्रादि देव, प्रियव्रतादि मनुपुत्र दक्षादि प्रजापति ये सब भगवद् विभूतियाँ हैं।

वस्तुतः जिनमें अल्पशक्ति का प्रकाश होता है उन्हें अंशावतार और जिनमें पूर्णशक्ति का प्रकाश होता है उन्हें अवतारी पुरुष कहते हैं, इसमें भागवतामृत का वचन इस प्रकार है–**"शक्तेर्व्यक्तिस्तथाऽव्यक्तिस्तारतम्यस्यकारणम्"**

ब्रह्मसंहिता श्रीकृष्ण की पूर्णावतार आदि परमपुरुष की वन्दना इस प्रकार करती है–

"रामादिमूर्तिषु कला नियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोत् भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् पुरुषः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।"

इन सबका सविस्तार वर्णन अग्रिम स्कन्धों में है।

नैमिषीयोपाख्यान में महर्षि शौनक का सूतशिरोमणि उग्रश्रवा से यही प्रश्न है कि "भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त विश्व के कल्याण के लिये देवकी और वसुदेव के पुत्र के रूप में बलराम के साथ मनुष्यों की योनि में जन्म लेकर अकल्पनीय विविध लीलाएँ की। उनके दिव्यधाम चले जाने के बाद और कलिकाल के प्रवेश के बाद धर्म ने कहाँ शरण ली ? यह प्रश्न व्यक्तिनिष्ठ न होकर विश्वकल्याण की कामना से किया गया प्रश्न है। चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धि के लिए मानव जन्म होता है, जिसका चरम पुरुषार्थ है मोक्ष। अर्थार्जन जीवन का लक्ष्य नहीं होता, वह मात्र धर्म का साधन होता है। उसी प्रकार 'काम' का प्रयोजन इन्द्रियोपभोग नहीं, अपितु जीवन यात्रा है। विवाह संस्था का उद्देश्य वंश वृद्धि है कामोपभोग नहीं। सत्य का साक्षात्कार जीवन का चरम लक्ष्य होता है, स्वर्गादि सुख नहीं। अतः इस प्रश्न से सूतशिरोमणि उग्रश्रवा का प्रसन्न होना स्वाभाविक है; अतः उसके उत्तर में उग्रश्रवा महर्षि शौनक को वासुदेव श्रीकृष्ण में अहैतुकी भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। उसी में समस्त विश्व का कल्याण निहित है।"

वासुदेव का अर्थ– 'वासुदेव' का अर्थ मात्र वसुदेव का पुत्र नहीं है; इसकी व्याख्या 'दीपिनी' कार श्रीराधारमणदास गोस्वामी इस प्रकार करते हैं–

वसति भूतेषु अन्तर्यामितया इति वासुः, दीव्यति = द्योतते, न क्वापि सज्जते इति देवः। स चासौ चेति सर्वत्र नियामकतया तिष्ठन्नपि क्वापि न सक्त इत्यर्थः। यद् वा वसन्त्यत्र भूतानि इति वासुः, च स देवः, सर्वाधिष्ठानमपि नोपाधिभूतः। यद् वा वसुदेवे = शुद्धसत्त्वे (दीव्यति) प्रकाशते इति वसुदेवः। शैषिकश्चाण्। (इति वासुदेवः)

वक्ष्यति हि चतुर्थ स्कन्धे–

"सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः"

(भा. ४।३।२३)

प्राणिमात्र में अन्तर्यामी होकर जो प्रकाशित होता है और सबका नियामक होकर भी कहीं भी सम्बन्ध नहीं रखता वह परब्रह्म-परमात्मा 'वासुदेव' है। अथवा प्राणिमात्र जिसमें रहते हैं और जो प्रकाशित होता है अर्थात् सबका अधिष्ठान होने पर उपाधि से मुक्त

परमेश्वर वासुदेव है अथवा जो विशुद्ध अखण्डसत्व में प्रकाशित होता है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा वासुदेव है। समस्त वेद, यज्ञयागादि, समाधि, समस्त क्रियाकलाप, समस्त ज्ञान, तप, दानधर्म आदि उसी वासुदेव श्रीकृष्ण की शरण में जाने के लिए हैं। **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' 'श्रीकृष्णः शरणं मम'** ये दो मन्त्रजप विश्वकल्याणकारी हैं। भगवान् वासुदेव का षोडशकला विशुद्ध ज्ञानमय विश्वरूप समस्त सृष्टि बीज, समस्त अवतारों का निधान और श्रीमद्‌भागवत का प्रतिपाद्य विषय है।

महर्षि वेदव्यास के परमविरक्त पुत्र श्री शुकदेव को भगवद् गुणों ने अपनी और आकृष्ट किया और उन्होंने अपने पिता से भागवत का चिन्तन-मनन किया। राजर्षि परीक्षित के दो प्रश्नों ने श्रीमद्‌भागवत को शुकशास्त्रगाथा बना दिया।

राजर्षि परीक्षित का इतिवृत्त–भीमसेन की गदा से जब दुर्योधन की जंघा टूट गयी, तब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों के सिर सोते हुए स्थिति में काटकर दुर्योधन को भेंट किये। अर्जुन गाण्डीव धनुष लेकर उसके पीछे दौड़ पड़े। प्राण संकट देखकर उसने ब्रह्मास्त्र को प्रयोग किया, किन्तु अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र से उसे लौटा दिया। अर्जुन ने दण्डस्वरूप अश्वत्थामा का शिरोमणि काट लिया। फलस्वरूप वे निस्तेज हो गये। किन्तु अश्वत्थामा ने पाण्डवों के वंश को निर्बीज करने के लिए उत्तरा पर ब्रह्मास्त्र चला दिया किन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपनी गदा और सुदर्शनचक्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की।

अभिमन्युनन्दन परीक्षित ने अपनी माता उत्तरा के गर्भ में दसवें मास ही अङ्गुष्ठ मात्र तेजोमय श्रीकृष्ण का दर्शन किया, जो अपनी गदा द्वारा ब्रह्मास्त्र का शमन कर रहे थे। इस प्रकार राजा परीक्षित की गर्भ में जीवन रक्षा हुई।

पाण्डवों के महाप्रयाण के बाद राजा परीक्षित पृथ्वी पर शासन करने लगे। तब तक भगवान् श्रीकृष्ण दिव्यधाम सिधार चुके थे। उन्होंने इरावती से विवाह किया, जिससे जनमेजय आदि चार पुत्र हुए। राजा परीक्षित ने अनेक अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये। दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में राजा परीक्षित ने एक बार शिविर में रहते हुए देखा कि एक बैल एक पैर पर खड़ा था और एक गाय चारों ओर विचरण कर रही थी। वे दोनों परस्पर व्यथा कथा कह रहे थे, जब तक राजा परीक्षित सरस्वती तट पर पहुँचे, राजवेषधारी एक पुरुष शूद्रोचित आचरण करते हुए डण्डों से उन्हें पीट रहा था।

राजा परीक्षित समझ गये कि वह वृष धर्मराज हैं और गौ पृथ्वी। उन्हें मारने वाला कलिपुरुष था। जैसे ही उस कलिपुरुष को मारने के लिये राजा ने तलवार उठाई, उसी क्षण 'कलिपुरुष' राजचिन्ह उतारकर राजा परीक्षित के चरणों में गिर पड़ा। राजा ने उसे राज्य से निष्कासन का दण्ड दिया, किन्तु उसका वध नहीं किया। शरणागत कलि की प्रार्थना करने पर उसे पाँच स्थान दिये; द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग, हिंसा और सुवर्ण जहाँ यथाक्रम

असत्य, मद, आसक्ति, निर्दयता और रजोगुण से पञ्चविध अधर्म रहता है। उस अधर्म का मूल कारण कलिकाल है। धार्मिक राजा प्रजावर्ग के लौकिक नेता और धर्मगुरुओं को बड़ी सावधानी ने इनका त्याग करना चाहिए।

उस समय धर्म का एक चरण सुरक्षित था सत्य, राजा परीक्षित ने अवशिष्ट तीन चरणों तपस्या, शुचिता, दया को जोड़ दिया और पृथ्वी पर धर्मराज्य स्थापित किया।

एक बार राजा परीक्षित शमीक ऋषि के आश्रम आये और प्यास लगने पर पानी माँगा, किन्तु समाधि स्थिति में शमीक ऋषि को उसका भान नहीं हुआ। फलस्वरूप क्रोधाविष्ट राजा ने उनके कण्ठ में सर्प डाल दिया और अपनी राजधानी चले आए। राजा की यह करतूत जानकर ऋषि पुत्र शृङ्गी ने यह शाप दे दिया कि आज के सातवे दिन राजा परीक्षित को तक्षक नाग डस लेगा। इस शाप से राजा परीक्षित जरा भी भयभीत नहीं हुए, राजा ने गंगा तट पर आमरण अनशन का निश्चय किया, इतने में उनके सामने शुकदेव आए। राजा परीक्षित ने उनके सम्मुख मरणासन्न व्यक्ति के कर्तव्य से सम्बन्धित और मनुष्य मात्र के कर्तव्य कर्म के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की। साथ ही यह भी पूछा कि मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। श्री शुकदेव द्वारा इनका समाधान ही भागवत अथवा शुकशास्त्रगाथा है प्रथम प्रश्न का उत्तर है– "अन्ते नारायणस्मृतिः"–मृत्यु के समय श्री नारायण का स्मरण करना चाहिए, उसे मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए और अभय पद प्राप्त करना चाहिए–

तस्माद् भारत ! सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम्।।

स्कन्धार्थसङ्गति– श्रीहरि की लीला ही भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। जैसा कि महाप्रभु वल्लभाचार्य अपने 'तत्वार्थ दीप निबन्ध' में लिखते हैं– "आनन्दस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थः।" विद्वत् शिरोमणि बोपदेव भी इसी का समर्थन करते हैं– "आनन्दस्य हरेर्लीलां वक्ता भागवतागमः।" द्वादश स्कन्ध में उसी का विस्तार है। एक श्लोकी भागवत में श्रीहरि की उसी लीला का अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन है–

"आदौ देवकि देवगर्भजननं गोपीगृहेवर्द्धनं
मायापूतनजीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम्।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतपालनं
एतत् भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम्।।"

दशविध भागवत लक्षण में 'आश्रय' श्रीहरि सबका अङ्गी (प्रधान) है, शेष नौ उसके अङ्ग। वे सर्ग आदि भी परस्पर के अङ्ग हैं। 'आश्रय' का मुख्य अङ्ग है 'सर्ग' और

'सर्ग' का अर्थ है अशरीरी श्रीहरि का पुरुष शरीर धारण। उस पुरुष से ब्रह्मदेव आदि की सृष्टि 'विसर्ग' है, जो सर्ग का अङ्ग है। उन सबका आधार है लोककमल की व्यवस्थिति उसी को 'स्थान' कहते हैं जो 'विसर्ग' का अङ्ग है। उनका पालन-'पोषण' है जो 'स्थान' का अङ्ग है। उन अनुग्रहीत अथवा पुष्टों को आचार 'ऊति' है, जो 'पोषण' का अङ्ग है। आचारों में भी सदाचार 'मन्वन्तर' है जो 'ऊति' का अङ्ग है। सदाचार में भी विष्णुभक्ति का नाम 'ईशानुकथा' है जो 'मन्वन्तर' का अङ्ग है, विष्णुभक्तों का प्रपञ्च में न पड़ना 'निरोध' है, 'ईशानुकथा' का अङ्ग है। प्रपञ्चरहित विरक्तों को आत्मसाक्षात्कार होना ही 'मुक्ति' है, जो 'निरोध' का अङ्ग है। मुक्त योगियों की स्वस्वरूप में स्थिति को 'आश्रय' कहते हैं, जो अङ्गादि भाव सम्बन्ध में 'सर्ग' से 'मुक्ति' तक नौ पुराण लक्षणों का अङ्गी है। इनका विस्तार भागवत के तृतीय स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध तक है। इनका विवेचन बोपदेव कृत 'श्रीहरिलीलामृत' की मधुसूदनसरस्वतीकृत व्याख्या में द्रष्टव्य है। श्रीमद्भागवत श्रीहरि स्वरूप है। उसका अर्थज्ञान श्रीहरि भक्ति का साधन है, जिसकी अनुचरी 'मुक्ति' है। इस प्रकार भक्ति के माध्यम से भागवत मुक्ति साधन है। भागवत के उत्तम वक्ता शुकदेव और उत्तम श्रोता परीक्षित हैं। मध्यम कोटि के वक्ता और श्रोता देवर्षि नारद और वेदव्यास जी हैं। सूत और शौनक आदि तृतीय कोटि के वक्ता और श्रोता है।

द्वितीय स्कन्ध-श्रवणविधि– समस्त ब्रह्माण्ड भगवान् का शरीर है जो जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत् तत्त्व और प्रकृति इन सात आवरणों से वेष्टित है। उसी में विराट् पुरुष का वास है। उनका स्वरूप पादमूल से लेकर इस प्रकार है– पादमूल पाताल, एडियाँ और पंजे रसातल, गुल्फ- महातल, दोनों जंघाएँ- तलातल, दोनों जानु- सुतल, दोनों ऊरू वितल- अतल, जघन- महीतल, नाभि- नभस्तल, वक्षःस्थल- स्वर्ग, ग्रीवा- महर्लोक, मुख- जनलोक, ललाट- तपोलोक, सहस्रशीर्ष- सत्यलोक, भुजाएँ इन्द्रादिदेव, कान- दिशाएं, श्रवणेन्द्रिय- शब्द, नासिका छिद्र- अश्विनीकुमार, घ्राणेन्द्रिय- गध, मुख- अग्निज्वाला, नेत्रगोलक- अन्तरिक्ष, नेत्रज्योति- सूर्य, दोनों पलकें- रात और दिन, भ्रूविलास- ब्रह्मलोक, तालु- जल, जिह्वा- रस, ब्रह्मरन्ध्र- वेद, दंष्ट्रा- यम, स्मित- माया, ओष्ठ- लज्जा, अधर- लोभ, स्तन- धर्म, पीठ- अधर्म, जननेन्द्रिय- प्रजापति, अण्डकोश- मित्रावरूण, कुक्षि- समुद्र, अस्थियाँ- पर्वत, नाड़ियाँ- नदियाँ, रोम- वृक्ष, श्वास- वायु, गति- काल, कर्म- गुणप्रवाह, केश- मेघ, वस्त्र- संध्या, हृदय- मूलप्रकृति, मनोविकार- चन्द्रमा, चित्त- महत्तत्व, अहंकार- रुद्र, बुद्धि- स्वायंभुवमनु, षड्जादि स्वर स्मृति- गन्धर्वादि, वीर्य- दैत्य, मुख- ब्राह्मण, भुजाएँ- क्षत्रिय, जंघाएं- वैश्य, चरण- शूद्र, यही विराट शरीर का स्वरूप है। प्राणिमात्र के हृदय कमल में शंख-चक्र गदाधारी चतुर्भुज पुरुष रहते हैं। निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार सब कुछ भगवान् का स्वरूप ही हैं।

"तस्मात् सर्वात्मना राजन् ! हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्।।"

(भाग. २।२।३६)

जिजीविषु लोग सकाम उपासना करते हैं। उनकी उपासना कामना के अनुसार इस प्रकार है–ब्रह्मणस्पति-ब्रह्मवर्चस्काम, इन्द्र-इन्द्रियकाम, प्रजापति-प्रजाकाम, मायादेवी- श्रीकाम, विभावसु-तेजस्काम, वसु-रुद्र धन का इच्छुक, वीर्यवान- वीर्यकाम, अश्विनीकुमार-आयुष्काम, इला- पुष्टिकाम, प्रतिष्ठाकाम-द्यावापृथिवी, गन्धर्व-रूपकाम, उर्वशीअप्सरा-स्त्रीकाम, परमेष्ठी-आधिपत्यकाम, यज्ञ-यशस्काम, प्रचेता-कोशकाम, गिरीश-विद्याकाम, सतीपार्वती-दाम्पत्य सुख, पितर-वंशरक्षा, यक्ष-सर्वबाधानिवारण, मरुद्गण-बल, मन्वन्तराधिपति-राज्य कामना, निर्ऋति-अभिचार, चन्द्रमा-विविध भोग। किन्तु परमपुरुष नारायण की निष्काम उपासना सर्वश्रेष्ठ है।

भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपों का साक्षात्कार करने के लिए ध्यानयोग है, जिससे क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति होती है। कैवल्यमुक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग तीव्र भक्तियोग ही है।

सृष्टिक्रम (सर्ग)– राजा परीक्षित् के अनेक प्रश्नों में अन्यतम प्रश्न है–

भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया।
यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः।।
यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः।
यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्।
आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च।।

(भाग. २।४।६-७)

भगवान् सृष्टि, रक्षा और संहार किस प्रकार करते हैं; यह भगवान् की लीला अद्भुत और अकल्पनीय है। दशविध पुराणलक्षण में प्रथम 'सर्ग' का समावेश है–

"भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्मसर्ग उदाहृतः" (२।१०।३)
"भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते" (१२।७।११)

सत्त्व, रज और तमोगुणों की साम्यावस्था का नाम है। जब भगवत्प्रेरणा से इनमें विक्षोभ होता है तब वह उसकी विकृति है। भूत प्रकृति में विलीन गुणों के विक्षोभ से महत्तत्व की उत्पत्ति होती है, उससे तामस, राजस और सात्त्विक, त्रिविध अहंकार का जन्म होता है। त्रिविध अहंकार से पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा, एकादशइन्द्रिय और उनके विषयों की

उत्पत्ति होती है। महाकल्प के प्रारम्भ में प्रकृति से महत्तत्व आदि की उत्पत्ति होती है। कल्पों में वह सृष्टि यथावत रहती है। चराचर प्राणियों की नवीन सृष्टि होती है, यह सृष्टिक्रम ही 'सर्ग' है।

कर्म, काल, स्वभाव, जीव, देवता, यज्ञ आदि सब कुछ नारायण के अङ्गों में कल्पित नारायण स्वरूप है। ब्रह्मदेव भी उन्हीं की सृष्टि है और उन्हीं की प्रेरणा से ब्रह्मदेव सृष्टि रचना करते हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलय के हेतु रज, सत्त्व और तमोगुणों द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर माया से परे नित्यमुक्त पुरुष की ही माया के आवरण से कार्य कारण और कर्ताप के अभिमान से बाँध लेते हैं। फलतः मायावी भगवान् ने काल-कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया। जिससे सृष्टि हुयी। महत्तत्व से वैकारिक, तैजस और तामस त्रिविध अहंकार का जन्म हुआ, जो यथाक्रम ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है। इनमें तामस अहंकार से आकाश की, आकाश से वायु की, वायु से तेज की, तेज से जल की और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। पञ्चमहाभूतों के तन्मात्रा गुण इस प्रकार हैं–

महाभूत		**तन्मात्रा और गुण**
आकाश	–	शब्द
वायु	–	स्पर्श और शब्द
तेज	–	रूप, शब्द और स्पर्श
जल	–	रस, शब्द, स्पर्श और रूप
पृथ्वी	–	गन्ध और सभी गुण

वैकारिक अहंकार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवों– दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति की उत्पत्ति हुई। तैजस अहंकार से पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, बुद्धि और प्राण उत्पन्न हुए। भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर जब ये तत्त्व परस्पर मिल गये, तब कार्यकारण भाव द्वारा व्यष्टि स्वरूप पिण्डाण्ड और समष्टिस्वरूप ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई। सहस्रवर्षपर्यन्त जल में निर्जीव रूप से पड़ा हुआ ब्रह्माण्ड जब जीवित हुआ, तब उस ब्रह्माण्ड से विराट् पुरुष बाहर निकला। इस प्रकार समस्त जगत् भगवत्स्वरूप है। इस स्कन्ध के प्रथम और पञ्चम अध्याय में तथा अग्रिम स्कन्धों में इसका वर्णन है।

जन, तप और सत्त्यलोकों में यथाक्रम ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासी रहते हैं। गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में निवास करते हैं। द्विविधशास्त्र मार्गों में अविद्यारूप कर्ममार्ग का आश्रय सकाम लोग लेते हैं और निष्काम विद्यारूप उपासना मार्ग का आश्रय निष्काम उपासक लेते हैं। भोगेच्छु दक्षिणमार्ग पर चलते हैं और मुमुक्षु उत्तरायण पर। किन्तु

पुरुषोत्तम भगवान् दोनों का आश्रय स्वरूप हैं। यज्ञसामग्री की उत्पत्ति उसी पुराण पुरुष से हुई। ब्रह्मदेव ने प्रथम आदि पुराण के अङ्गों में यज्ञोचित पशु आदि की कल्पना की।

परब्रह्म परमात्मा के अधीन होकर विष्णु उस जगत का पालन और रुद्र उसका संहार करते हैं। सभी अवतार भगवत् स्वरूप हैं, परमात्मा का वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय और मात्र ज्ञान स्वरूप है। वह सत्-असत् से विलक्षण है। भागवत भी उसी का स्वरूप है। उसी भागवत को शुकदेव से राजर्षि परीक्षित सुन रहे हैं। उनकी एक मात्र इच्छा है-

"कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम्"

(भाग. २।८।३)

राजा परीक्षित भागवत के उत्तम श्रोता हैं उनकी मात्र कामना है देहपात के साथ स्वस्वरूप का साक्षात्कार। उनका श्रवण 'निर्गुण' है, राजस नहीं।

'सप्तश्लोकी भागावत' इस अष्टादश साहस्री परमहंस संहिता का प्राणतत्त्व है। ब्रह्मदेव सृष्टि रचना तभी कर सके जब उन्हें विशुद्ध ज्ञानदृष्टि प्राप्त हुई। इसके लिए उन्हें दिव्यसहस्र वर्ष पर्यन्त तप करना पड़ा। फलस्वरूप श्रीहरि (परब्रह्म परमात्मा) ने अत्यन्त गुह्यतम उस विशुद्ध ज्ञान का ब्रह्मदेव को उपदेश दिया जो विशिष्ट ज्ञान से समन्वित था।

श्री भगवानुवाच-

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया।। १ ।।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्।। २ ।।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।। ३ ।।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।। ४ ।।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।। ५ ।।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।। ६ ।।

एतन्मयं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।। ७ ।।

(भाग. ६।३०-३६)

श्रीभगवान् ने ब्रह्मदेव को जो ज्ञानोपदेश दिया, उसमें ज्ञान का अर्थ शास्त्रीय ज्ञान, 'विज्ञान' का अर्थ भक्ति और 'सरहस्य' का अर्थ भक्ति प्रचुर है। "यावानहं" इत्यादि का यह अर्थ है समाधिस्थिति में भगवत्कृपा से ब्रह्मदेव को उनके यथार्थ स्वरूप लक्षण सत्ता, रूप, गुण और कर्म का ज्ञान हुआ, जिससे कल्प-उपकल्पों में बिना मोह में पड़े व सृष्टि रचना कर सके। इस 'सप्तश्लोकी भागवत' के अन्तर्गत "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि पद्य से लेकर "एतावदेव जिज्ञास्यं" इत्यादि चार पद्य "चतुःश्लोकी भागवत" के नाम से प्रसिद्ध है और "एतन्मतं समातिष्ठ" सप्तश्लोकी भागवत का उपसंहार है **अहमेवासमेवाग्रे**– सृष्टि के पूर्व में भी मैं ही (तुरीयब्रह्म) था। इसमें अनेक श्रुतिवचन प्रमाण हैं– **"वासुदेवो वा इदमग्रआसीन्न ब्रह्मा न च शङ्करः" "आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः" "पुरुषो ह वै नारायणः" "एको ह वै नारायणः" "पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत" "अथ नारायणदजोऽजायत" "यतः सर्वाणि भूतानि, नारायणः परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणं परम्" "ऋतं सत्यं परं ब्रह्मपुरुषः" "कृष्ण पिङ्गलम्"**। यह स्मृति वचन भी इसमें प्रमाण है। **"नान्यत् यत् सदसत् परम्"** मुझ (परमात्मा) से भिन्न स्थूल, सूक्ष्म या उनका दोनों का कारण कुछ भी नहीं था। **"पश्चादहं यदेतच्च"** सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही हूँ। समस्त संसार भगवत्स्वरूप ही है प्रलयकाल में जो अवशिष्ट रहेगा वह भी मैं ही हूँ। **"पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्वमेवावशिष्यते" "योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्"**। **"ऋतेर्थं यत् प्रतीयेत"**। इत्यादि पद्य में माया का निरूपण है। जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं है, उसका आभास होना और सत्ता होने पर भी उसका भान न होना यह सब परमेश्वर की माया है। वास्तव में चन्द्रमा एक है, किन्तु दो की प्रतीति माया है। उसी प्रकार छाया ग्रह राहु की सत्ता अन्तरिक्ष में होने पर भी उसकी प्रतीति न होना माया है। यही माया का स्वरूप है। **"यथा महान्ति भूतानि"** उसी का विस्तार है। प्राणियों का शरीर यतः पञ्चमहाभूतों से निर्मित है, अतः उनमें वे कार्यरूप रहते हैं साथ ही वे कारणरूप में पहिले से वहाँ नहीं रहते। उसी प्रकार उन पञ्चमहाभूतों में तथा पाञ्चभौतिक शरीरों में परमात्मा की सत्ता रहती है और नहीं भी रहती। यह सब माया का खेल है। **"एतावदेव जिज्ञास्यम्"** जो अपना कल्याण चाहता है अथवा जो परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप जानना चाहता है, उसे 'अन्वय' और व्यतिरेक द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए सर्वत्र और सर्वदा जिसकी सत्ता हो। 'अन्वय' का अर्थ है कार्यों में कारण के रूप में सत्ता। जब सृष्टि होती है, तब उपादानकारण के रूप में ईश्वर सर्वत्र रहता है। जैसें गहनों में सोने की सत्ता। उसी प्रकार जब सृष्टि रचना नहीं होती तब

भी जिसकी सत्ता रहती है, जैसे सुवर्ण के अलंकार न बनने पर भी मूल सुवर्ण के रूप में उसकी सत्ता। इसका नाम है 'व्यतिरेक'। सृष्टि रचना के पूर्व अथवा प्रलय वेला में कार्य से कारण का सम्बन्ध नहीं रहता, किन्तु उस समय भी अव्यक्त स्थिति में ईश्वर की सत्ता रहती है। इस प्रकार अन्वय-व्यतिरेक द्वारा परमसत्त्य का साक्षात्कार होता है। यही "चतुःश्लोकी भागवत" का निष्कर्ष है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शब्दों में-

साकारं ब्रह्मशुद्धं हि माया तच्छक्तिरूत्तमा।
तया सर्वत्र सम्मोहः साक्षात् भक्तिश्च मोचिका।।

(तत्वार्थ दीपिका- ३।१।१८-१६)

यही इसका सारांश है। इसी का पल्लवन **'भागवत संहिता'** है। भागवत के दस लक्षणों में 'आश्रय' उसका प्रथम लक्षण है। **"अहमेवासमेवाग्रे"** में उसका संकेत है। द्वादश स्कन्ध में भी उसी का निरूपण है। **"पश्चादहं"** इत्यादि पद्यार्थ में पुरुष प्रकृति विषयक विवेचन और द्वितीय-तृतीय स्कन्ध का बीज है। **"यदेतच्च"** में "विसर्ग" 'स्थान' 'ऊति' मन्वन्तर और ईशानुकथा का सङ्केत है। "यदेतत्" का अर्थ है जो कुछ कार्यस्वरूप जगत् है वह श्रीभगवान् ही हैं। इसी का उपबृंहण चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम और नवम स्कन्ध हैं। **"योवशिष्येत सोऽस्म्यहम्"** इस चरण का विस्तार दशम स्कन्ध है और यही 'निरोध' का बीज है। **"ऋतेऽर्थंयत्"** इत्यादि में माया का निरूपण है जो जगत्सृष्टि का मूल कारण है। जीव का संसरण और जीवेश्वर विभाग का संकेत भी इसी में है। प्रथम स्कन्ध का बीज भी यही है। **"यथामहान्तिभूतानि"** इत्यादि 'पोषण' का बीज है। षष्ठ स्कन्ध भी इसी का पल्लवन है। **"एतावदेव जिज्ञास्यम्"** इत्यादि मुक्ति का साधन है। एकादश स्कन्ध इसी का पल्लवन है "सर्ग" आदि के सम्बन्ध में **पूज्य श्री श्रीधरस्वामी** ने अपने भाष्य के प्रत्येक स्कन्ध के उपक्रम श्लोकों में विवेचन किया है। **"दीपिनी"** में इसका सादर स्मरण करते हुए विद्वानों के लिये उपादेय टिप्पणी की है।

द्वितीय स्कन्ध के दशमाध्याय में पुराण लक्षण और **विराट् पुरुष का उत्पत्ति क्रम** है 'विराट् पुरुष' ने ब्रह्माण्ड का भेदन किया, अपने स्वयं के रहने के लिये जल की सृष्टि की और वह 'नर' (विराट् पुरुष) उस 'नार' (जल) में रहने लगा। **"नरस्य (विराट् पुरुषस्य) इमे नारा = आपः (जलानि) ताः अयनं (स्थानम्) अस्य सः नारायणः"**- विराट् पुरुष का ही दूसरा नाम 'नर' है, उसकी सन्तान होने के कारण जल को 'नार' भी कहते हैं। 'नार' (जल) जिसका अयन (स्थान) है वह विराट् पुरुष नारायण कहलाता है-

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।"

(-मनुस्मृति १।१०)

वह योगनिद्रा में दिव्यसहस्रवर्ष पर्यन्त वही पड़ा रहा। नारायण की कृपा से द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव की सत्ता है, अन्यथा नहीं। योगनिद्रा से मुक्त होकर श्री नारायण ने अपने हिरण्यमय बीज को अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत इन तीन भागों में विभक्त किया। अतएव आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक तीनों स्वरूप श्री नारायण के ही हैं। प्रथम उनके शरीर से इन्द्रिय बल और शरीर बल की सृष्टि हुई, उसके पश्चात् प्राण की है। जो सब इन्द्रियों का स्वामी है। नारायण को जब क्षुधा लगी तो सर्वप्रथम उनके शरीर में मुख, मुख से तालु, तालु से रसना और अनेक प्रकार के रस उत्पन्न हुए। बोलने की इच्छा होने पर वागीन्द्रिय, उसके अधिष्ठाता अग्नि और वैखरी वाणी प्रकट हुई। श्वास के वेग से नासिकाच्छिद्र घ्राणेन्द्रिय और उसके अधिष्ठाता वायु ने जन्म लिया। दर्शनेच्छा से नेत्रच्छिद्र, उसके अधिष्ठाता सूर्य और नेत्र प्रकट हुए। उन्हीं से रूप का ग्रहण होने लगा। फिर वेद उनके गीत गाने लगे। उसके श्रवण की इच्छा से कान दिशाएँ और श्रवणेन्द्रिय प्रकट हुए। अनन्तर त्वचा, रोम और उनके भीतर का वायु प्रकट हुआ, जिससे कोमलता, कठोरता, शीतलता, उष्णता आदि स्पर्श का अनुभव होने लगा। पुनश्च हस्तेन्द्रिय, उनके अधिष्ठाता अधिदेवता इन्द्र और ग्रहण शक्ति प्रकट हुई। अनन्तर चरण, उसके अधिष्ठाता यज्ञपुरुष, चलनशक्ति प्रकट हुई। भोगेच्छा से लिङ्ग की उत्पत्ति हुई जिसका इन्द्रिय उपस्थ देवता प्रजापति और उससे कामसुख प्राप्त होता है। अनन्तर गुदाद्वार, पायुइन्द्रिय और मित्र देवता प्रकट हुए। अनन्तर नाभिद्वार, अपान और मृत्यु देवता प्रकट हुए। विराट् पुरुष की अन्न-जल ग्रहण करने की इच्छा ने कुक्षि, आँते और नाड़ियाँ और उनके देवता-समुद्र नदियाँ और तुष्टि-पुष्टि क्रमशः प्रकट हुई। पश्चात् हृदय, मन, चन्द्रमा, कामना और संकल्प ने जन्म लिया। विराट् पुरुष का स्थूल स्वरूप पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्व इन सात आवरणों से घिरा हुआ है। ब्रह्मदेव का रूप धारण कर वे वाच्य वाचक भाव से नाम, रूप और क्रिया को धारण करते हैं। धर्मनारायण के रूप में उनका पालन और कालाग्नि रुद्र के रूप में उसका संहार करते हैं। यही उनका सक्रिय स्वरूप है और निष्क्रिय स्वरूप उससे परे हैं। वह अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप है, जो वाणी और मन का विषय नहीं है।

विद्वत् शिरोमणि 'हरिलीलामृत' कार श्री बोपदेव कहते हैं–**"द्वितीये श्रवणं विधिः"**। महाप्रभु वल्लभाचार्य कहते हैं– **"द्वितीये त्वङ्गनिर्णयः"**। यतः श्रवण-दशविध हैं, अतः उसके निरूपण के लिये द्वितीय स्कन्ध में दस अध्याय हैं। श्रवण विधि का अर्थ है पद और वाक्य के तात्पर्य को समझते हुए उसका श्रवण करना। उसके तीन अङ्ग हैं ध्यान, श्रद्धा और विमर्श। ध्यान का अर्थ है तत्त्व चिन्तन, श्रद्धा का अर्थ है चित्त की प्रसन्नता। विमर्श का अर्थ है युक्तिपूर्वक मनन। वह दो प्रकार का होता है–उत्पत्ति और उपपत्ति। विराट् पुरुष की उत्पत्ति और अवतार वर्णन उत्पत्ति के अन्तर्गत हैं। उपपत्ति त्रिविध होती है– आक्षेप,

समाधान और प्रयोजन। आक्षेप का अर्थ है देह की उत्पत्ति के विषय में राजा परीक्षित की जिज्ञासा, जो अष्टम अध्याय में की गयी है। उसका समाधान नवम अध्याय में किया गया है। भागवत का श्रवण मुख्य प्रयोजन है जिसका लक्षण दशम अध्याय में है।

तृतीय स्कन्ध-'सर्ग'

"ईशेक्षया गुणक्षोभात् सर्गो ब्रह्माण्ड सम्भवः"

भगवान् के कृपा-कटाक्ष से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति 'सर्ग' कहलाती है। तृतीय स्कन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'सर्ग' ही है, जो श्रवण विधि के तृतीय अङ्ग 'विमर्श' के अन्तर्गत है। यद्यपि इसका प्रतिपादन द्वितीय स्कन्ध के पञ्चम और षष्ठ अध्याय में भी प्राप्त होता है, किन्तु इसका विस्तार तृतीय स्कन्ध से लेकर ग्रन्थान्त तक किया गया है। यह भागवतोपदेश परमभागवत उद्धवजी को भगवान् श्रीकृष्ण से साक्षात् प्राप्त हुआ था।

इस स्कन्ध के तैंतीस अध्याय हैं। सृष्टि दो प्रकार की होती है-लौकिक और अलौकिक। अलौकिक सृष्टि में तैंतीस (३३) देवताओं का समावेश है, जो "बृहदारण्यक" में इस प्रकार वर्णित है-

"अत्र त्रयस्त्रिंशद् देवाः-अग्नि, पृथिवी, वायुः, अन्तरिक्षम्, आदित्या, द्यौः, चन्द्रमाः, नक्षत्राणि इति, अष्टौ वसवः, दश प्राणाः। एकादश रुद्राः संवत्सरस्य द्वादश मासाः, आदित्याः, स्तनयित्नु पशवश्चेति, इन्द्रप्रजापति इत्येवं बृहदारण्यकोक्ताज्ञेयाः।"[1] लौकिक सृष्टि भी तैंतीस प्रकार की हैं, जिसमें अट्ठाईस तत्व, चतुर्विध भूतबीज और एक काल परिगणित है। अतएव अध्यायों की तैंतीस संख्या का औचित्य है। सृष्टि रचना के पूर्व परब्रह्म परमात्मा का एक अखण्ड स्वरूप ही है। वह न तो द्रष्टा है और न दृश्य। प्रकाश स्वरूप परमात्मा में भावस्वरूप द्रष्टा और दृश्य का अनुसन्धान करने वाली अनिर्वचनीय माया जब व्यक्त होती है, तब सत्य, रज और तमोगुण में रजोगुण का विक्षोभ होता है और सृष्टि होती है। वह सृष्टिक्रम इस प्रकार है। महत्तत्व अहंकार सूक्ष्मभूत इन्द्रिय मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत। ये महत् तत्त्वादि के अभिमानी विकार विक्षेप और चेतनांश विशिष्ट देवगण भगवत्स्वरूप ही है, किन्तु बिना संघटित हुए ब्रह्माण्ड रचना नहीं कर सकते। एतदर्थ वे परमेश्वर की स्तुति करते हुए उनसे क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति की याचना कर रहे हैं। कालशक्ति की प्रेरणा से महत्तत्व, अहंकार, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय इन तेईस तत्त्वों के समूह में प्रविष्ट होकर महत्तत्व आदि शक्तियों ने तत्त्वसमूह को संघटित कर दिया। उसी चतुर्विंशति तत्त्वसमूह से 'अधिपुरुष' 'विराट्' प्रकट हुआ। तत्वों का परिणाम ही विराट् पुरुष है, जिसमें चराचर जगत् विद्यमान

---

१. "आवरणभङ्ग" (श्री भागवतार्थ प्रकरण)-श्री पुरुषोत्तम गोस्वामी

है। जल के भीतर ब्रह्माण्ड में वह हिरण्यमय विराट् पुरुष सम्पूर्ण जीवों के साथ एक दिव्यसहस्र वर्ष तक पड़ रहा, जो ज्ञान, क्रिया और आत्मशक्ति से सम्पन्न था, वह विराट् पुरुष ही प्रथम-जीव व आदि-अवतार है। उस विराट् पुरुष का त्रिविध पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और मन उसका आध्यात्मिक स्वरूप है। इन्द्रिय आदि के विषय उसका आधिभौतिक स्वरूप है। इन्द्रियाधिष्ठाता देव उसका आधिदैविक स्वरूप है। प्राणरूप से उसका दशविध स्वरूप है, क्योंकि प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दस प्राण हैं। हृदयरूप से वह एक प्रकार का है; उस विराट् पुरुष का स्वरूप इस प्रकार है–

अङ्ग	इन्द्रिय	देवता	शक्ति
मुख	वागिन्द्रिय	अग्नि	वाक्
तालु	रसना	वरूण	रस
नासापुट	घ्राणेन्द्रिय	अश्विनीकुमार	गन्ध
नेत्रच्छिद्र	नेत्रेन्द्रिय	सूर्य	रूप
त्वचा	त्वगिन्द्रिय	वायु	स्पर्श
कर्णच्छिद्र	श्रवणेन्द्रिय	दिशा	शब्द
लिङ्ग	लिङ्ग	प्रजापति	आनन्द
गुदा	पायु	मित्र	मलत्याग
हाथ	कर्मेन्द्रिय	इन्द्र	ग्राहकता
चरण	–	विष्णु	गति
बुद्धि	–	ब्रह्मा	ज्ञानशक्ति
हृदय	मन	चन्द्रमा	संकल्प-विकल्प
अहंकार	अभिमान	रुद्र	क्रियाशक्ति
चित्त	चितिशक्ति	महत्तत्व	चेतना

इसी विराट् पुरुष से तीन लोकों की उत्पत्ति हुई है–

अंग	लोक	गुण	निवासी
शिर	स्वर्ग	सत्त्व	देवता
चरण	पृथ्वी	रज	मनुष्य
नाभि	अन्तरिक्ष	तम	रुद्र के पार्षद भूत, प्रेतादि।

अनन्तर चार वर्णों की सृष्टि विराट्-पुरुष के विविध अङ्गों से हुई। सब धर्मों की सिद्धि का मूल सेवा है। सेवा ही शूद्र का धर्म है। अतः वह सब धर्मों में महान् है। ब्राह्मण

का धर्म मोक्ष के लिए, क्षत्रिय का धर्म भोग के लिए, वैश्य का धर्म अर्थ के लिये और शूद्र का धर्म धर्म के लिये है। अतएव उनकी उत्पत्ति यथाक्रम विराट् पुरुष के मुख, बाहू, ऊरु (जंघा) एवं चरण से मानी गई है। अन्य वर्णों का धर्म अन्य पुरुषार्थ के लिये है, किन्तु शूद्र का धर्म स्वपुरुषार्थ के लिये है। अतः उसकी सेवा वृत्ति से भगवान् प्रसन्न होते हैं।

ब्रह्मदेव की सृष्टि– ब्रह्मदेव की दशविध सृष्टि इस प्रकार है– सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव ने प्रथम भूः, भुवः, स्वः इन तीन लोकों की रचना की निष्काम कर्म करने वालों को महः, तपः, जनः और सत्यलोक की प्राप्ति होती है। १. महत्तत्व, २. अहंकार (पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय), ३. भूतसर्ग- तन्मात्रा, ४. इन्द्रियसृष्टि, ५. इन्द्रियाधिष्ठाता देवता और मन, ६. अविद्या (तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह) ये छः प्राकृत सर्ग हैं।

सातवीं वैकृत सृष्टि के अन्तर्गत छह प्रकार की स्थावरसृष्टि में वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार, विरुध और द्रुम। आठवीं सृष्टि तिर्यक् (पशु-पक्षियों की) सृष्टि अट्ठाईस प्रकार की है। इनमें एक खुर वाले और दो खुर वाले पशु और आकाश विहारी पक्षी आते हैं। नवमी सृष्टि मनुष्यों की है। दसवीं देवसृष्टि देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, सिद्ध-चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष-अश्वमुख आदि भेद से आठ प्रकार की है।

कालविभाग– 'परमाणु' वह सूक्ष्मतम अंश है, जिसका विभाग संभव नहीं है, दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है। 'त्रसरेणु' तीन अणुओं का होता है, झरोखे से आने वाले सूर्यप्रकाश में 'त्रसरेणु' को देखा जा सकता है। 'परमाणु' वस्तु का सूक्ष्मतम रूप है और पृथ्वी आदि कार्य वर्ग उसका महत्तम रूप। काल के विचार से 'त्रुटि' तीन 'त्रसरेणुओं' तक पहुँचने की सूर्य की अवधि है; तथा **'वेध'** उसका शतगुणित काल, **'लव'** = तीन वेध, **"निमेष"** = ३ वेध, **"क्षण"** = तीन निमेष, **'काष्ठा'** = ५ "क्षण", **"लघु"** = १५ काष्ठा, **'नाडिका' (दण्ड)** = पन्द्रह लघु, **"मुहूर्त"** = दो नाडिकाएँ, **"प्रहर"** वह काल जिसमें दिन एवं रात्रि की सन्धियाँ दो मुहूर्तों को छोड़कर ६-७ नाडिकाएँ होती हैं। **'याम'** = मनुष्य के दिन या रात्रि का चौथा भाग। **"दिन"** = चार प्रहर, **'रात्रि'** = चार प्रहर। **'अहोरात्र'** = (दिन-रात), **"पक्ष"** = १५ अहोरात्र, **"मास"** = २ पक्ष (१ कृष्ण, १ शुक्ल) १ **'ऋतु'** = दो मास, **अयन** = छः मास का तथा वर्ष = दो अयनों (दक्षिणायन, उत्तरायण) का होता है।

सूर्य परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त द्वादश राशिस्वरूप भुवनकोश की परिक्रमा करता है। उसी प्रकार अन्य ग्रह भी परिक्रमा करते हैं।

मनुष्य की आयु १०० सौर वर्ष होती है। **"संवत्सर"** = १२ सौर मास, **"परिवत्सर"** बृहस्पति के १२ मास, **"इडावत्सर"** १३ सावन मास, **"अनुवत्सर"** = १२ चान्द्र मास, **"वत्सर"** = २७ नाक्षत्रमास। **चतुर्युग** = १२ दिव्यसहस्र वर्ष (संध्या संध्याश सहित),

सत्यगुग = ४ दिव्यसहस्र वर्ष, **त्रेतायुग** = ३ दिव्यसहस्र वर्ष, **"द्वापरयुग"** २ दिव्यसहस्र वर्ष, **कलियुग** = एक दिव्यसहस्र वर्ष।

अर्थात् **'सत्ययुग'** = ४८०० दिव्यवर्ष, **'त्रेता'** = ३६०० दिव्यवर्ष, **'द्वापर'** = २४०० दिव्य वर्ष और **'कलियुग'** = १२०० दिव्यवर्ष संध्या-संध्याश के साथ होते हैं। एक दिव्य दिन एक मानव वर्ष के बराबर होता है। एक दिव्यवर्ष ३६० मानव वर्ष के बराबर होता है, अतः मानवीय मान से कलियुग में ४३२००० (चार लाख बत्तीस हजार) वर्ष होते हैं और उससे दुगुने द्वापर में, तिगुने त्रेता में और चौगुने सत्ययुग में होते हैं। युग के आदि में संध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश। महर्लोक से सत्यलोक (ब्रह्मलोक) पर्यन्त एक सहस्र चतुर्युग का एक 'ब्राह्म' दिन और उतनी ही 'ब्राह्म' रात्रि होती है। ब्राह्म रात्रि में बह्मदेव शयन करते हैं और उसका अन्त होने पर ब्राह्म दिन प्रारम्भ होता है, जिसे 'कल्प' कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। एक मनु के शासनावधि को **'मन्वन्तर'** कहते हैं, एक 'मन्वन्तर' में ७१ दिव्युगों से कुछ अधिक काल होता है, (७१ ६/१४ चतुर्युगी)। प्रलय काल में जब संसार ब्रह्मदेव में विलीन हो जाती है, उस समय भृगु आदि महर्षि महर्लोक से जनलोक चले जाते हैं। ब्रह्मा जी की आधी आयु परार्द्ध कहलाती है। पूर्व परार्द्ध (ब्राह्मकल्प) में ब्रह्मा जी का जन्म हुआ था, जिसे **'शब्दब्रह्म'** कहते हैं। परार्द्ध के अन्त में जो कल्प हुआ उसे **'पाद्मकल्प'** कहते हैं; उसमें भगवान् के नाभिकमल से सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ। इस समय दूसरे परार्द्ध का प्रारम्भ काल चल रहा है, जो **"वाराहकल्प"** के नाम से विख्यात है। यह दो परार्द्धों की अवधि श्रीहरि का 'निमेष' मात्र है। प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, मन और पञ्चभूत इन सोलह विकारों से निर्मित ब्रह्माण्डकोश भीतर से पचास करोड़ योजन विस्तार का है। उसके बाहर चारों ओर दस-दस गुने बड़े सात आवरण हैं। इसके अन्तर्गत करोड़ों ब्रह्माण्ड राशियाँ है। उनमें प्रधानादि समस्त कारणों का कारण परमाणु स्वरूप 'अक्षर ब्रह्म' रहता है। वही पुराण पुरुष श्रीहरि का परमधाम (स्वरूप) है।

सृष्टि विस्तार– तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) ये अज्ञान की पाँच वृत्तियाँ हैं। इनकी रचना से असन्तुष्ट ब्रह्मदेव ने सनक, सनंदन, सनातन और सनतकुमार इन चार निवृत्ति परायण ऊर्ध्वरेता मुनिकुमारों की सृष्टि की, जो "कौमारसर्ग" के नाम से प्रसिद्ध है।

एकादश रुद्र– वे सृष्टि विस्तार करना नहीं चाहते थे अतः ब्रह्मदेव की क्रोधाग्नि से नीललोहित **'रुद्र'** प्रकट हुए। उन एकादश **'रुद्र'** के नाम, पत्नी और स्थान का विवरण इस प्रकार है–

रुद्र	**रुद्राणी**	**स्थान**
मन्यु	धी	हृदय

मनु	वृत्ति	इन्द्रिय
महिनस	उशना	प्राण
महान्	उमा	आकाश
शिव	नियुत्	वायु
ऋतध्वज	सर्पि	अग्नि
उग्ररेता	इला	जल
भव	अम्बिका	पृथ्वी
काल	इरावती	सूर्य
वामदेव	सुधा	चन्द्रमा
धृतव्रत	दीक्षा	तप

वे एकादश रुद्र जब संहार करने लगे, तब ब्रह्मदेव ने उन्हें विरत किया; वे तपस्या करने चले गये। आध्यात्मिक रूप से ११ इन्द्रियाँ रुद्र हैं जो जीव को सताते हैं और बन्धन में डालते हैं। इन्हें यज्ञ में स्थान नहीं है।

"दक्ष प्रजापति"– ब्रह्मा जी के मानस संकल्प से उनके विभिन्न अङ्गों से दस प्रजापति उत्पन्न हुए। उनमें नौ का विवाह मनु-शतरूपा से उत्पन्न कन्या देवहूति और कर्दम ऋषि की नौ कन्याओं से हुआ–उनका विवरण इस प्रकार है-

प्रजापति		ब्रह्मदेव का अङ्ग	पत्नी	सन्तान
१.	मरीचि	मन	कला	पूर्णिमा, कश्यप
२.	अत्रि	दोनों नेत्र	अनसूया	दत्तात्रेय, दुर्वासा, चन्द्र
३.	अङ्गिरा	मुख	श्रद्धा	बृहस्पति, उतथ्य
४.	पुलस्त्य	दोनों कान	हविर्भू	विश्रवा, अगस्त्य
५.	पुलह	नाभि	गति	कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् सहिष्णु।
६.	क्रतु	हाथ	क्रिया	बालखिल्यादि ६० हजार ऋषि।
७.	भृगु	त्वचा	ख्याति	कवि, धाता, विधाता
८.	वसिष्ठ	प्राण	अरुन्धती	चित्रकेतु आदि पुत्र
९.	दक्ष	अङ्गुष्ठ	प्रसूति (मनु शतरूपा की पुत्री)	१६ कन्याएँ।

देवर्षि नारद का जन्म ब्रह्मदेव के उत्संग (गोद) से हुआ है। पूर्व जन्म में उपबर्हण नामक गन्धर्व थे, शाप से दासी पुत्र हुए, अनन्तर भगवद्भक्ति से परम भागवत हो गये।

वे अविवाहित हैं। उसी प्रकार ब्रह्मदेव के वमतन से धर्म, पीठ से अधर्म, हृदय से काम, भ्रूयुगल से क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से वाग्देवी, लिङ्ग से समुद्र, गुदा से निर्ऋति, उनके हृदयाकाश से 'ओङ्कार' और रोम आदि से उष्णिग् आदि छन्द, स्वर तथा व्यञ्जन तथा निषाद आदि सप्तस्वर प्रकट हुए।

ब्रह्मदेव के तमोमय शरीर से यक्ष-राक्षसों की, सात्विकी प्रभा से देवताओं की और जघन से असुरों की सृष्टि हुई। चतुर्मुख ब्रह्मदेव के चारों मुखों से अग्रिम सृष्टि हुई –

विषय	**पूर्वमुख**	**दक्षिणमुख**	**पश्चिममुख**	**उत्तरमुख**
वेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
उपवेद	आयुर्वेद	धनुर्वेद	गान्धर्ववेद	स्थापत्यवेद
आश्रम	ब्रह्मचर्य	गार्हस्थ्य	वानप्रस्थ	संन्यास
याग	षोडशी उक्थ,	चयन अग्निष्टोम,	आप्तोर्याम, अतिरात्र	वाजपेय, गोसव
ऋत्विक	होता	उद्गाता	अध्वर्यु	ब्रह्मा
उनके कर्म	शस्त्र	इज्या	स्तुतिस्तोम	प्रायश्चित
धर्म के चरण	विद्या,	दान	तप	सत्य

तृतीय स्कन्ध में दो दिव्य प्रकरण हैं जिनमें दो अवतारों के चरित्र वर्णित हैं। १. कर्मप्रधान वाराह अवतार (पूर्व मीमांसा) २. ज्ञान प्रधान कपिल अवतार (उत्तरमीमांसा)। यह किये बिना कपिल नारायण की विद्या बुद्धि में स्थिर नहीं होती। मन, वचन और काया से किसी को पीड़ा न देना यज्ञ है। यज्ञ के बिना, सत्कर्म के बिना चित्त शुद्धि नहीं होती और जिसके बिना ज्ञान टिकता नहीं। कलुषित मन से परमात्मा का अनुभव नहीं हो सकता यही तृतीय स्कन्ध का सार है।

ब्रह्मदेव के द्वारा परित्यक्त काम कलुषित शरीर सन्ध्या देवी के रूप में परिणत हो गया, जिससे गन्धर्व-अप्सरायें, तन्द्रा से भूत-पिशाच, तेजोमय शरीर से साध्यगण और पितर, तिरोधान शक्ति से सिद्ध और विद्याधर, प्रतिबिम्ब से किन्नर-किम्पुरुष झड़े हुए केशराशि से सर्प और मन से चतुर्दश मनुओं की सृष्टि हुई। फिर समाधि द्वारा ऋषिगणों की रचना हुई, जिनमें आदि ऋषि ब्रह्मदेव की समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या-वैराग्यमय शरीर का अंश मिश्रित था। शब्दब्रह्म स्वरूप ब्रह्मदेव ओङ्कार रूप से अव्यक्त और वैखरी के रूप में व्यक्त है।

पुनश्च ब्रह्मदेव (क) ने अपने को द्विधा विभक्त किया। उस 'काय' (शरीर) से स्वयम्भुव मनु (पुरुष) एवं शतरूपा (स्त्री) का जन्म हुआ। यतः वे ब्रह्मदेव की बाहुओं से उत्पन्न हुए थे, अतः क्षत्रियवर्ण के थे। उनकी मैथुनी सृष्टि ने प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति तीन कन्याओं को जन्म दिया।

चतुर्थ स्कन्ध - विसर्ग

"ब्रह्मणो गुणवैषम्याद् विसर्गः पौरुषः स्मृतः" (२/१०/३)
पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्।।"
(१२/७/१२)

ये दो विसर्ग के लक्षण हैं। इनमें प्रथम लक्षण के अनुसार सत्त्व, रज और तमोगुण इन तीनों गुणों में विषमता और रजोगुण में क्षोभ के कारण "विराट्पुरुष" द्वारा जो स्थावर -जङ्गम सृष्टि होती है, वह विसर्ग है, द्वितीय लक्षण के अनुसार महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, तन्मात्रा, सूक्ष्म-इन्द्रिय और स्थूल-इन्द्रियाभिमानी देवों का संघटित होकर पूर्वकर्म वासना प्रधान सृष्टि 'विसर्ग' कहलाती है। 'सर्ग' व्यष्टि प्रधान कारण सृष्टि है तो 'विसर्ग' समष्टि प्रधान कारण सृष्टि है। एक बीज से दूसरे बीज की स्थावर-जङ्गमस्वरूप उत्पत्ति की परम्परा ही 'विसर्ग' सृष्टि है।

'पूज्य श्रीधरस्वामी' स्पष्ट कहते हैं कि यद्यपि तृतीय स्कन्ध में 'सर्ग' का वर्णन है तथापि उसके पञ्चम अध्याय से द्वादश अध्याय के बीच 'विसर्ग' का निरूपण भी है। बीसवें अध्याय में उसका उपसंहार है और इक्कीसवें से तैंतीसवें अध्याय तक कपिलोपाख्यान है। यह कपिलोपाख्यान स्वायम्भुव मनु की वंशपरम्परा के उपक्रम रूप में है। अग्रिम 'वराहावतार' का निरूपण मनु-शतरूपा की स्थान-याचना के सन्दर्भ में है। उल्लेखनीय है कि दशविध पुराण लक्षण में 'मन्वन्तर' और 'स्थान' का भी समावेश है।

यद्यपि शतरूपा-मनु के ब्राह्म विवाह से मैथुनी सृष्टि के इतिहास द्वारा 'विसर्ग' का बीज तृतीय स्कन्ध में ही पड़ चुका है, तथापि चतुर्थ स्कन्ध के इकतीस अध्यायों में उसका विशेष वर्णन है। ब्रह्मदेव, चतुर्दश मनु तथा दस प्रजापतियों द्वारा की गई समस्त चराचर सृष्टि (विसर्ग) वस्तुतः ईश्वर के अधीन ही होती है।

महाराज पृथु – महाराज पृथु क्रूर कर्मा वेन के भुजामन्थन से भगवान् विष्णु की विश्वपालिनी शक्ति से प्रकट हुए थे। उनकी पत्नी भी उस परम-पुरुष की अनपायिनी शक्ति लक्ष्मी का ही अवतार थी, जो वेन के भुजामन्थन से ही प्रकट हुई थी। सुयश का प्रथन (विस्तार) करने के कारण उनका पृथु नाम सार्थक था। महाराज पृथु ने ही गोरूप धरा पृथ्वी के दोहन के अनन्तर पृथ्वी तल पर नगर-ग्राम आदि का विभाजन कर उसे बसाया। महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये। देवराज इन्द्र ने उनके अश्वमेध यज्ञ में अश्वहरण की इच्छा से जो जो वेष धारण किये, वे 'पापखण्ड' होने के कारण 'पाखण्ड' कहलाए। महाराज पृथु का राष्ट्र के नाम संदेश अत्यन्त उपादेय है। सनकादि के उपदेश से उन्होंने वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार कर लिया। उनकी पत्नी 'अर्चि' भी उनके साथ वन गयीं।

पृथु वंश – महाराज पृथु के बाद उनके पुत्र विजिताश्व सम्राट हुए, जिन्होंने अपने भाईयों को हर्यक्ष (पूर्व) धूम्रकेश (दक्षिण) वृक, (पश्चिम) और द्रविण (उत्तर) को विभिन्न दिशाओं का राजा बनाया। महाराज विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्धान शक्ति प्राप्त की थी। अतः उन्हें अन्तर्धान भी कहते थे। अन्तर्धान के पुत्र बर्हिषद ने इतने यज्ञ किये कि आगे चलकर वे प्राचीनबर्हि नाम से विख्यात हुए। उन्हेंाने 'प्रजापति' पद तक प्राप्त कर लिया। शतद्रुति के गर्भ से प्राचीनबर्हि के प्रचेता नामक दस पुत्र हुए। प्रचेताओं को भगवान् 'रुद्र' का उपदेश प्राप्त हुआ और उन्होंने समुद्र में प्रवेश कर दस हजार वर्षों तक तपश्चरण करते हुए श्री हरि की आराधना की।

पुरञ्जनोपाख्यान – प्राचीनबर्हि का चि त्त कर्मकाण्ड में रमा हुआ था। देवर्षि नारद ने उन्हें पुरञ्जनोपाख्यान सुना कर यज्ञों में होने वाले पशुबलि से विरत किया। 'पुरञ्जन' वह जीव होता है जो अपने लिये पुर (नगर) का निर्माण करता है। जीव का सखा 'अविज्ञात' ईश्वर है, नाम गुण और कर्मों से जीवों को ज्ञान नहीं होता। नवद्वार पुर में रहने वाले 'पुरञ्जन' की पत्नी 'पुरञ्जनी' बुद्धि और अविद्या है। दस इन्द्रियाँ पुरञ्जन के मित्र हैं, जिनका नायक मन है। पञ्चप्राण नगर की रक्षा करने वाला पाँच फनों वाला सर्प है। शब्दादि पाँच विषय पाञ्चाल देश है। जिसके बीच में वह नवद्वार पुर (नगर) बसा हुआ है। प्राचीनबर्हि के पुत्र प्रचेताओं ने 'मारिषा' से विवाह किया, तब उनके द्वारा 'दक्ष' का पुनर्जन्म हुआ। चाक्षुष मन्वन्तर में वे प्रजापतियों के। बने और मरीचि आदि प्रजापतियों को अपने-अपने कार्य में नियुक्त किया। प्रचेताओं को नारदोपदेश से परम पद प्राप्त हुआ।

वस्तुतः श्रीमद्‌भागवत के सर्ग विसर्गादि का वर्णन भी अलौकिक ही है। इसमें विशिष्ट सर्ग का प्रतिपादन है और पुरुष प्रयत्न से भगवान् का आश्रय लेकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - चारों पुरुषार्थ प्राप्त कर लेना शक्य है। अतः तत्त्वार्थ दीप निबन्ध के अनुसार चतुर्थ स्कन्ध के चार विभाग हैं –धर्म प्रकरण में सात अध्याय हैं। सात प्रकार की शुद्धि होने पर धर्म की सिद्धि होती है। १. देश शुद्धि, २. काल शुद्धि, ३. मन्त्रशुद्धि, ४. देह शुद्धि, ५. विचार शुद्धि, ६. इन्द्रिय शुद्धि और ७. द्रव्यशुद्धि, आरम्भ के प्रथम अध्याय और शेष सती चरित्र से सम्बन्धित ६ अध्यायों में इन्हीं का वर्णन है। चतुर्थ स्कन्ध के दूसरे अर्थ प्रकरण में पाँच अध्याय हैं। अर्थ की प्राप्ति पाँच साधनों से होती है जो इस प्रकार है- १. माता पिता के आशीर्वाद, २. गुरुकृपा, ३. उद्यम, ४. प्रारब्ध और ५. प्रभुकृपा इन्हीं से ध्रुव को अर्थ की प्राप्ति हुई। इस स्कन्ध के तीसरे प्रकरण में ग्यारह अध्याय हैं। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ और मन इन्हीं में काम, बसता है। पृथु ने अपने पौरुष के द्वारा इसी जीवन में अपनी सम्पूर्ण वासनाएँ पूर्ण कर लीं। वस्तुतः पुरुषार्थ चतुष्टय की पूर्णता पृथु चरित्र में ही है। अन्तिम प्रकरण मोक्ष में आठ अध्याय हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार इस अष्टधा प्रकृति को नियन्त्रण में रखने वाला

ही मोक्ष का अधिकारी होता है। इनमें पांच अध्यायों में निर्गुण और तीन अध्यायों में सगुण मोक्ष का स्वरूप राजा प्राचीनबर्हि और प्राचेतस चरित्र के माध्यम से वर्णित है।

पञ्चम स्कन्ध "स्थान"

पञ्चम स्कन्ध की अनेक विशेषताएँ हैं। इसके छब्बीस अध्यायों में स्वायम्भुव मनु शतरूपा के द्वितीय पुत्र 'प्रियव्रत के वंश वर्णन के साथ ही 'स्थान' का निरूपण है। दशविध पुराणलक्षण में 'स्थान' का लक्षण है। **"स्थितिर्वैकुण्ठविजयः"** भगवान वैकुण्ठ (श्रीविष्णु) के द्वारा प्रकट किये गये लोकों का मर्यादा पालन पूर्वक उत्कर्ष स्थान कहलाता है (२/१०/४)। द्वादश स्कन्ध में 'स्थान' को ही 'वृत्ति' कहा गया है -

"वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा।।"

(१२/७/१३)

इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि स्थावर-जङ्गम प्राणियों की जीविका व्यवस्था 'वृत्ति' कहलाती है। द्वितीय स्कन्ध में उसे 'स्थान' इसलिए कहा गया है कि प्रथम प्राणियों के लिये रहने की व्यवस्था चाहिए।

पूज्य श्री श्रीधर स्वामी के शब्दों में - लोक-द्वीप आदि की मर्यादा का पालन 'स्थान' कहलाता है.... स्थानमीर्यते। "लोकद्वीपादिमर्यादापालनाख्यमनेकथा।" वह तीन प्रकार का है – मध्यम लोक पृथ्वी का पालन ऊर्ध्वलोक स्वर्गलोक का पालन और अधोलोक पाताल लोक का पालन। इसके अतिरिक्त एक-एक लोक पर अनेकरीति से उस मर्यादा का पालन किया जाता है।

पञ्चम स्कन्ध के बीस अध्यायों में यह वर्णित है कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत की वंशपरम्परा ने पृथ्वीलोक में किस प्रकार अनेक द्वीपादि की शासन व्यवस्था संभाली। अनन्तर के तीन अध्यायों में सूर्य आदि देवताओं ने ज्योतिश्चक्र आदि की व्यवस्था किस प्रकार देखी। पश्चात् अधोलोक अतल आदि में दैत्य आदि के द्वारा किस प्रकार रक्षा व्यवस्था संभाली गयी ?

स्वायम्भुव मनु के द्वितीय पुत्र प्रियव्रत ने देवर्षि नारद से आत्मज्ञान प्राप्त किया। फिर अनासक्त भाव से सार्वभौम शासन किया और अनन्तर भिन्न-भिन्न प्रान्तों का विभाजन करते हुए वह शासन अपने पुत्रों को सौंपा और अन्त में परम पद प्राप्त किया। यह प्रियव्रत चरित्र का सारांश है।

प्रथम तो प्रियव्रत ने परमार्थतत्त्व की विस्मृति के भय से स्वायम्भुव मनु के राज्यपालन सम्बन्धी आदेश को अस्वीकार किया किन्तु ब्रह्मदेव के आग्रह करने पर ग्यारह अरब वर्षों

अर्थात् दीर्घावधि तक पृथ्वी पर शासन किया। उनका विवाह प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से हुआ था। उनके द्वारा आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि नामक दस पुत्र तथा ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या हुई। इनमें कवि, महावीर, और सवन तीनों नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे; अन्त में संन्यासी हो गये। प्रियव्रत की दूसरी भार्या से उत्तम, तामस और रैवत ये तीन पुत्र अपने अपने नाम वाले मन्वन्तरों के अधिपति हुए।

एक बार महाराज प्रियव्रत ने देखा कि भगवान् सूर्य लोकालोक पर्यन्त पृथ्वी के आधे भाग को ही प्रकाशित करते हैं। अतः उन्होंने ज्योतिर्मय रथ पर आरूढ़ होकर पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ कीं। रथ चक्रों द्वारा जो खाईयाँ बनीं वे सात समुद्र बने। उनसे पृथ्वी में सात द्वीप हो गये। इनमें जम्बू द्वीप क्षार समुद्र से घिरा हुआ है। उसके चारों ओर प्लक्षद्वीप है। वह प्लक्षद्वीप इक्षुरस गन्ने के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। इस इक्षु समुद्र के चारों ओर शाल्मलि द्वीप है, जो मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है। मदिरा समुद्र कुशद्वीप से घिरा हुआ है, जो घी के समुद्र से घिरा हुआ है। उसके चारों ओर 'क्रौञ्च' द्वीप है, जो क्षीरसागर से घिरा हुआ है, उसके चारों ओर शाक द्वीप है जो माड के समुद्र से घिरा हुआ है। उसके चारों ओर पुष्कर द्वीप है, जो मीठे जल से घिरा हुआ है। इस प्रकार सप्त द्वीपा सप्तसमुद्रशीला वसुन्धरा का स्व स्वरूप है, जिसके क्षारसमुद्र वेष्टित भूभाग को देखने में हम समर्थ हैं। इनमें आग्नीध्र, इध्मजिह्व आदि सात पुत्र यथाक्रम जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, आदि के शासक हुए। कन्या ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य से हुआ, जिनकी सन्तान देवयानी थी। अन्त में प्रियव्रत ने परम पद प्राप्त किया।

इनमें 'जम्बूद्वीप' का शासक आग्नीध्र अत्यन्त स्त्रैण था। उसकी पत्नी पूर्वचित्ति थी, जिससे उसे नाभि नामक पुत्र हुआ। यज्ञपुरुष की आराधना के फलस्वरूप नाभि की भार्या मेरुवती की कुक्षि से श्रीहरि ऋषभ अवतार लेकर प्रकट हुए। ऋषभदेव ने अपने देश 'अजनाभखण्ड' को कर्मभूमि माना। देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती से उनका विवाह हुआ। उससे सौ पुत्र हुए, जिनमें 'भरत' ज्येष्ठ थे। उनके नाम पर "अजनाभखण्ड" का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। यद्यपि ऋषभदेव के सभी पुत्र शिक्षित थे, तथापि लोकशिक्षा के लिये ऋषभदेव ने उन्हें उपदेश दिया और स्वयं अवधूत वृत्ति को स्वीकार कर परमहंसमार्ग का प्रवर्तन किया।

भरतचरित्र–महाराज भरत का विवाह विश्वरूप की कन्या पञ्चजनी से हुआ था। उनके पांच पुत्र थे - सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। महाराज भरत ने अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु, और सोम आदि अनेक क्रतुओं (यज्ञों) का सम्पादन किया। सम्पूर्ण अङ्गों से सम्पन्न क्रतुओं को 'प्रकृति' कहते हैं, और सब अङ्गों से अपूर्ण क्रतुओं को 'विकृति'। अन्त में महाराज भरत गण्डकी नदी के तट पर आये और

मृगशावक के मोह में पड़कर उन्होंने मृगयोनि प्राप्त की। पश्चात् मृग शरीर को छोड़कर आङ्गिरस गोत्र में ब्राह्मण कुल में पुनर्जन्म लिया। फिर भी उन्हें पूर्वजन्म का स्मरण था। वे ही जड़-भरत थे। उन्हें देहाभिमान नहीं था। और लौकिक मानापमान से भी वे सर्वथा मुक्त थे। वे नङ्ग-धड़ङ्ग रहा करते, जब भद्रकाली के सम्मुख उस ब्रह्मर्षिकुमार की बलि दी जाने लगी, तब क्रुद्ध भद्रकाली ने प्रकट होकर उस अभिमंत्रित खड्ग से सभी पापियों का शिरच्छेद कर दिया। फिर जड़भरत और राजा रहूगण की भेंट हुई। जड़भरत ने उन्हें यथार्थ तत्त्व का उपदेश दिया। भरत जी के पुत्र सुमति ने ऋषभदेव के मार्ग का अनुसरण किया।

भुवनकोश का वर्णन

जम्बूद्वीप–भूमण्डलस्वरूप कमल का सबसे भीतर का कोश है। वह एक लक्ष विस्तृत है। इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप इसलिए है कि मेरुमन्दर पर्वत पर विराजमान हाथी के समान विशालकाय जम्बूफलों (जामुन) के रस से वहाँ जम्बू नदी प्रकट होती है जो इलावृत्त के दक्षिण भूभाग को सींचती है। उस रस से भीगी मिट्टी सूख कर 'जाम्बूनद' सोना बन जाती है, उस जम्बूनदी से घिरा होने के कारण यह द्वीप 'जम्बूद्वीप' कहलाता है। उसमें कोश स्थानीय सात द्वीपों का वर्णन किया जा चुका है। इसमें नौ-नौ हजार योजन के नौ वर्ष हैं। आठ पर्वत इनकी सीमा निर्धारित करते हैं।

'इलावृत' दशम वर्ष है, जिसके मध्य में कुल पर्वतों का राजा 'सुमेरु' (सुवर्ण पर्वत) भूमण्डल रूप कमल की कर्णिका के रूप में विराजमान है। वह एक लाख योजना ऊँचा, बत्तीस हजार योजन विस्तृत और तलहटी में सोलह हजार योजन प्रविष्ट है। भूमि के बाहर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इलावृत्त वर्ष के उत्तर में नील, श्वेत और श्रृंगवान पर्वत यथाक्रम रम्यक् हिरण्मय और कुरु वर्षों की सीमा बाँधते हैं, वे पूर्व से पश्चिम तक खारे समुद्र से घिरे हुए हैं।

इलावृत के दक्षिण की ओर निषध, हेमकूट और हिमालय क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष की सीमा-विभाजन करते हैं। इलावृत के पूर्व और पश्चिम की ओर उत्तर में नील पर्वत और दक्षिण में निषध पर्वत तक, गन्धमादन और माल्यवान पर्वत हैं, वे भद्राश्व और केतुमाल वर्षों की सीमा निश्चित करते हैं। इनके अतिरिक्त मन्दर, मेरु मन्दर सुपाश्र्व और कुमुद ये पर्वत मेरु पर्वत के आधार स्तम्भों के समान हैं। इन पर्वतों पर दूध, मधु, इक्षु रस और मधुर जल के चार सरोवर और नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक, और सर्वतोभद्र चार दिव्य उपवन भी हैं।

मेरु शिखर पर ब्रह्मदेव की नगरी, उनके नीचे दिशा- उपदिशाओं में लोकपालों की 'आठ पुरियाँ हैं।

विष्णुपदी गङ्गा का प्रादुर्भाव–भक्त प्रह्लाद के पौत्र महाराज बलि की यज्ञशाला में वामनावतार त्रिविक्रम यज्ञमूर्ति श्री हरि ने त्रिभुवन को नापने के लिए अपना पैर फैलाया तो उसके वाम चरण के अङ्गुष्ठ नख से ब्रह्माण्ड कटाह फट गया, उसमें से निकली जलधारा हजारों युग बीतने पर 'विष्णुपद' (ध्रुवलोक) उतरी। वह जलधारा गङ्गा थी जो 'विष्णुपदी' कहलायी। वहां से वह चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती है। वहाँ वह सीता, अलकनन्दा, चक्षु, और भद्रा नाम से चार धाराओं में विभक्त होकर अन्त में समुद्र में मिलती है। इनमें सीता गन्धमादन पर्वत से प्रवाहित होकर भ्रदाश्ववर्ष को प्लावित करते हुए पूर्व की ओर क्षार समुद्र में, चक्षु माल्यवान पर्वत के शिखर से केतुमाल वर्ष को सिञ्चित करती हुइ पश्चिम समुद्र में, भद्रा मेरु पर्वत के शिखर से विभिन्न पर्वत-शिखरों पर प्रवाहित होती हुई अन्त में श्रृंगवान पर्वत से उत्तर कुरुदेश होती हुई उत्तर समुद्र में मिलती है। अलकनन्दा ब्रह्मपुरी से हेमकूट पर्वत पर पहुंचकर हिमालय के शिखरों को चीरती हुई भारतवर्ष आती है और दक्षिण समुद्र में मिल जाती है।

भारतवर्ष–"तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रम् अन्यानि अष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति''। (भाग. ५/१८/११) इन नौ वर्ष में भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है, अन्य आठ वर्ष भोग भूमि। "दिव्य-भौम-बिल भेदात् त्रिविधः स्वर्गः" (श्रीधरी) दिव्य, भौम, और बिल के भेद से आठ वर्ष (देश) भौम स्वर्ग स्थान हैं। जहाँ पुण्य प्राप्ति के कारण प्राणी अवशिष्ट सुख उपभोग करते हैं। इन नौ वर्षों में श्री हरि विभिन्न मूर्तियों से विराजमान हैं। इलावृत वर्ष में एकमात्र भगवान शङ्कर पार्वती के साथ रहते हैं। वहाँ प्रवेश करने वाला पुरुष पार्वती के शाप से स्त्री रूप हो जाता है। वहाँ भगवान् शंकर श्रीहरि की चतुर्व्यूह मूर्तियों में "संकर्षण" मूर्ति का ध्यान करते हुए यह जप करते हैं – **"ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति"।**

भद्राश्ववर्ष में धर्मपुत्र भद्रश्रवा हयग्रीव की उपासना करते हैं। हरिवर्ष खण्ड में भगवान नृसिंह, केतुमाल वर्ष में कामदेव, रम्यकवर्ष में भगवान मत्स्य, हिरण्मय वर्ष में भगवान् कच्छप और कुरुवर्ष में यज्ञपुरुष वराह भगवान का वास है। किम्पुरुषवर्ष में परमभागवत श्रीरामोपासक हनुमान् निवास करते हैं।

भारतवर्ष में श्रीहरि नर-नारायण रूप धारण कर अव्यक्त रूप से कल्पान्त तक तपश्चरण कर रहे हैं। वहाँ देवर्षि नारद सांख्य और योगशास्त्र के साथ पाञ्चरात्र दर्शन का उपदेश सावर्णि मनु को करते हैं। भारतवर्ष में मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक आदि सैकड़ों हजारों पर्वत, चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवरोदा, कावेरी, तुङ्गभद्रा आदि अनेक नदियों में भारतीय प्रजा स्नान आदि करती है। देवता भी भारतवर्ष का गान इस प्रकार करते हैं –

"अहो अमीषां किमकारि शोभनं, प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरे, मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः।।"

(५/१६/२१)

पञ्चम स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में सूर्य के रथ और उसकी गति का, बाईसवें अध्याय में भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का, तेईसवें अध्याय में शिशुमार चक्र का, चौबीसवें अध्याय में राहु की स्थिति का और अतलादि अधोलोकों का, पच्चीसवें अध्याय में पाताल लोक स्थित, अनन्त भगवान् (सङ्कर्षण) का और छब्बीसवें अध्याय में नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन है।

गायत्री मंत्र के "ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्" इन सप्तव्याहृतियों का उपबृंहण भूलोक से ऊर्ध्व स्थित सभी लोकों का निरूपण है। अधोलोकों के अन्तर्गत अतल-वितल -सुतल - तलातल- महातल- रसातल और पाताल में असुरादि निवास करते हैं। सुतललोक विरोचन पुत्र बलि का निवास स्थान है।

षष्ठ स्कन्ध पोषण

"पोषणं तदनुग्रहः" (२/१०/४) पोषण का अर्थ है श्रीहरि का अनुग्रह। "पोषण" का पर्याय है "रक्षा"

"रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे।
तिर्यङ् मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः।।"

(भाग १२/८/१४)

पशु-पक्षी-मनुष्य-ऋषि-देवताओं में जो श्री विष्णु के अवतार हुए, उनकी युगानुयुग लीला ही 'रक्षा' कहलाती है। जिनके द्वारा धर्म संस्कृति के द्वेष्टा मारे जाते हैं; पूज्य श्री श्रीधर स्वामी के शब्दों में पोषण का लक्षण है – "पोषणमुच्यते' अविलङ्घित मर्यादा भक्तरक्षण-लक्षणम्"। मर्यादा का उल्लङ्घन न करने वाले भक्तों की रक्षा ही 'पोषण' है। इस स्कन्ध में 'पोषण' ही प्रधान है, षष्ठ स्कन्ध के तीन अध्यायों में **'अजामिलोपाख्यान'** के माध्यम से विष्णु दूतों द्वारा भागवत धर्म का निरूपण किया गया है। कर्म के द्वारा ही कर्म का निर्बीज नाश नहीं होता। अज्ञान रहते पाप वासनाएं नहीं मिटतीं। पाप मुक्तों को तत्त्वज्ञान होता है; उसके लिए प्रखर श्रीकृष्ण भक्ति आवश्यक है। केवल नाम संकीर्तन में देशकाल का नियम, शुचिता, अशुचिता का विचार बाधक नहीं होता। प्रखर भगवन्नाम स्मरण से ही ईश्वर प्राप्त हो जाते हैं।

चतुर्थ अध्याय में **"प्रजापति दक्ष"** के पुनर्जन्म का इतिवृत्त है।

सती देह त्याग के यज्ञविध्वंस के पश्चात 'दक्ष प्रजापति' ने वह देह त्याग कर प्रचेताओं के पुत्र के रूप में पुनर्जन्म लिया और चाक्षुष मन्वन्तर में पुनः प्रजापति हुए। इस मन्वन्तर में उन्होंने मैथुनी सृष्टि की उनके दस हजार पुत्र शबलाश्व और एक हजार पुत्र हर्याश्व नाम से प्रसिद्ध थे। वे अत्यन्त विरक्त थे। दक्ष को पुनः साठ कन्याएँ हुईं। इनमें दस कन्याओं का धर्म के साथ, तेरह कन्याओं का कश्यपमुनि के साथ सत्ताईस कन्याओं का चन्द्रमा के साथ, दो कन्याओं का अङ्गिरा के साथ, दो कन्याओं का भूत के साथ, चार कन्याओं का तार्क्ष्य कश्यप के साथ और दो कन्याओं का कुशाश्व के साथ विवाह हुआ।

इस कन्यावंश की मैथुनीसृष्टि ही समस्त पशु-पक्षी, जहरीले जन्तु, अप्सराएँ, गन्धर्व, राक्षस, दानव, दैत्य, मरुद्गण, देव, द्वादशादित्य आदि समस्त प्राणी वर्ग हैं।

देवराज इन्द्र के ऐश्वर्यमद से देवगुरु बृहस्पति ने जब उनका त्याग किया, तब उन्होंने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण किया। विश्वरूप ने देवराज को नारायणकवच का उपदेश दिया, फलतः उन्होंने असुरों पर विजय प्राप्त की। वे विश्वरूप त्रिशिरा थे। उनकी माता असुरकुल की थीं, अतः वे छिप-छिपकर असुरों को भी यज्ञाहुति देते थे। अतः देवराज इन्द्र ने उनके तीनों सिर काट लिये। विश्वरूप की मृत्यु के बाद उनके पिता त्वष्टा ने अन्वाहार्य पचन नामक दक्षिण अग्नि से वृत्रासुर प्रकट किया, जिससे देवगण हारने लगे, पश्चात दधीचि ऋषि की अस्थियों का वज्र निर्माण कर ही वे वृत्रासुर का वध कर पाये। वे वृत्तासुर पूर्वजन्म में विद्याधर चित्रकेतु थे, जिनका पूर्ववृत्त भागवत में द्रष्टव्य है।

सप्तम स्कन्ध ऊति

ऊति का अर्थ है कर्मवासना - **"ऊतयः कर्मवासनाः"** (२/१०/४) उसी का नामान्तर है 'हेतु' –

हेतुर्जीवोऽस्य सगदिरविद्याकर्मकारकः।
(आ. १२/७/१८)

इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम सर्ग' और 'विसर्ग' (व्यष्टिसृष्टि, समष्टिसृष्टि, मानससृष्टि, और मैथुनी सृष्टि) आदि का निमित्त जो जीव है, वही यहाँ 'हेतु' शब्द से संकेतित है। वह जीव यतः अज्ञान (अविद्या) जन्य कर्म करने वाला है। चैतन्य प्रधान दृष्टि रखने वाले उसे 'अनुशयी' (प्रकृति में शयन करने वाला) और औपाधिक दृष्टि रखने वाले 'अव्याकृत' (प्रतिरूप) कहते हैं।

पूज्य श्री श्रीधर स्वामी के मतानुसार उस कर्म का अनुसरण करने वाली वासना 'ऊति' कहलाती है, जो द्विविध है- अशुभ और शुभ। अशुभ कर्म वासना सन्त महात्माओं के क्रोध से जन्म लेती है और शुभ कर्म वासना उनके कृपा-कटाक्ष से–

"ऊतिश्च वासना प्रोक्ता तत्-तत् कर्मानुसारिणी।
अशुभा च शुभा चेति द्विधा सा हेतु भेदतः।।
अशुभा महती कोपात् शुभा-महदनुग्रहात्।।"

अशुभ कर्मवासना का उदाहरण है–वैकुण्ठलोक में रहने वाले विष्णु के पार्षद जय और विजय जो श्रीहरि से द्वेष के कारण सनकादि के शाप से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक दैत्य बन गये और विष्णुद्रोही हो गये। शुभ कर्मवासना का उदाहरण है भक्त प्रह्लाद, जो दैत्ययोनि में जन्म लेने पर भी देवर्षि नारद के अनुग्रह से विष्णुभक्त बने रहे। किन्तु श्री हरि ने वराहावतार और नरसिंहावतार लेकर दोनों का उद्धार किया। इसलिए सन्त महात्माओं का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए 'ऊति' का निरूपण है।

पञ्चदश अध्याय स्वरूप इस सप्तम स्कन्ध के दस अध्यायों में सन्त-महात्माओं के क्रोध से उत्पन्न अशुभ वासना का निरूपण किया गयाा है, और अवशिष्ट पञ्च अध्यायों में शुभ वासना का। नरसिंहावतार हिरण्यकशिपु और भक्त प्रह्लाद के उद्धार के लिये ही हुआ था। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद से पूछा कि तुमने अब तक गुरुकुल में क्या पढ़ा ? तब उसने उत्तर दिया–

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।"

(भाग. ७/५/२३-२४)

इस प्रकार भक्त प्रह्लाद नवविधा भक्ति को ही सर्वोत्तम अध्ययन मानते हैं। उस नवधा भक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण इस प्रकार है–१. श्रवण-परीक्षित्, २. कीर्तन-शुकदेव, ३. स्मरण भक्त प्रह्लाद, ४. पादसेवन- लक्ष्मी, ५. पूजन- पृथु, ६. वन्दन-उद्धव, ७. दास्य - हनुमानजी, ८. सख्य-अर्जुन, ९. आत्मसमर्पण-राजा बलि। इसके अतिरिक्त सप्तम स्कन्ध में त्रिपुर दहन, मानवधर्म, वर्णधर्म, स्त्रीधर्म, आश्रमधर्म और गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म का भी निरूपण है।

अष्टम स्कन्ध - सद्धर्म

दशविध भागवत लक्षण में मन्वन्तरों का षष्ठ स्थान है; वह 'सद्धर्म' है। क्योंकि उन उन मन्वन्तरों के अधिपतियों द्वारा प्रवर्तित धर्म ही 'मन्वन्तर' कहलाता है। 'मन्वन्तराणि सद्धर्मः' (२/१०/४) मन्वन्तर षड्विध है–

"मन्वन्तरं मनुर्देवाः मनुपुत्राः सुरेश्वराः।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते।।"

(भाग. १२/७/१५)

मन्वन्तर का अर्थ है १. चतुर्दश मनु, २. देवता, ३. मनुपुत्र, ४. देवताओं के स्वामी, ५. ऋषिगण और ६. श्रीहरि के अंशावतार जिस अवधि में अपने-अपने अधिकार में रहते हैं, वह अवधि 'मन्वन्तर' कहलाती है। पूर्वलक्षण के अनुसार उनके द्वारा प्रवर्तित सन्मार्ग 'मन्वन्तर' कहलाता है। चौदह मन्वन्तरों के नाम इस प्रकार हैं-१. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, (वर्तमान), ८. सावर्णि, ९. दक्षसावर्णि, १०. धर्मसावर्णि, ११. रूद्रसावर्णि, १२. ब्रह्मसावर्णि, १३. रौच्यसावर्णि और १४. भौक्तिकसावर्णि।

प्रथम मनु स्वायम्भुव ने उपनिषत् पाठ किया। स्वारोचिष मन्वन्तर में विभु ने ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा की। तृतीय मन्वन्तर में सत्यवादिता का प्रवर्तन हुआ। चतुर्थ मन्वन्तर में वेदाभ्यास का संवर्धन हुआ। पञ्चम मन्वन्तर में रमा वैकुण्ठ का निर्माण हुआ। षष्ठ मन्वन्तर में समुद्र मन्थन आदि के द्वारा सन्त महात्माओं की सेवा का प्रचलन हुआ। वैवस्वत मन्वन्तर में विविध व्रतों का प्रवर्तन हुआ। अष्टम मन्वन्तर में पुष्टिधर्म, नवम मन्वन्तर में यज्ञादि की प्रवृत्ति, दशम मन्वन्तर में लोक कल्याणकारी धर्म का प्रवर्तन, एकादश मन्वन्तर में स्मार्तधर्मों का पुनरुज्जीवन, द्वादश मन्वन्तर में रागद्वेष रहित धर्मों का प्रवर्तन, और चतुर्दश मन्वन्तर में ज्ञाननिष्ठ धर्मों का प्रचलन हुआ। कालधर्म के समान देशधर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

भगवदवतारों की प्रेरणा से मनु आदि विश्व व्यवस्था करते हैं। सप्तर्षिगण श्रुतियों का साक्षातकार कर सनातनधर्म की रक्षा करते हैं। मनुपुत्र प्रजापालन करते हैं, देवता यज्ञभाग स्वीकार करते हैं, परमेश्वर मरीचि आदि प्रजापतियों के रूप में सृष्टि विस्तार करते हैं, सम्राट के रूप में लुटेरों का वध करते हैं और काल के रूप में सबका संहार करते हैं। नाम और रूप की माया से अनेकविध दर्शन शास्त्रों के द्वारा भगवान की महिमा गाने वाले भी उसके यथार्थ स्वरूप को नहीं जान पाते। मोहिनी अवतार, धन्वन्तरि अवतार, वामन अवतार, मत्स्यावतार, भी अष्टम स्कन्ध में ही निरूपित है।

नवम स्कन्ध-ईशानुकथा

दशविध पुराण लक्षण में सप्तम 'ईशानुकथा' का लक्षण इस प्रकार है-

"अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्।
पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः।।"

(१२/१०/५)

श्री हरि के अवतारों का तथा उनके सद्भक्तों की कथा वार्ता 'ईशानुकथा' कहलाती है। द्वादश स्कन्ध में उसके दो भाग किये हैं वंश और वंशानुचरित। द्वादश स्कन्ध में पञ्चविध पुराण लक्षण में भी इन दोनों का समावेश है। इसमें 'वंश' की परिभाषा इस प्रकार है-

"राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।"

(१२/७/१६)

ब्रह्मदेव द्वारा साक्षात उत्पन्न शुद्ध राजाओं की त्रैकालिक परम्परा 'वंश' कहलाती है। वंशानुचरित की परिभाषा इस प्रकार है–

"वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये" (१२/७/१६)

उन निर्मल राजाओं का और उनके वंशज राजाओं का चरित्र 'वंशानुचरित' कहलाता है। दोनों का 'ईशानुकथा' में समावेश इसलिए है कि इन्हीं वंशों में श्रीहरि के अंशावतार तथा उनके अनुयायी सद्‌भक्त हुए हैं। अतः दोनों मिलकर 'ईशानुकथा' ही है। नवम स्कन्ध के चौबीस अध्यायों में सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन है। ''सूर्य'' का पर्यायवाची है विवस्वान्। उसका पुत्र था श्राद्धदेव जो द्रविड देशाधिपति सत्यव्रत था, वहीं जन्मान्तर में वैवस्वत मन्वन्तर का अधिपति बना।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती के शब्दों में 'नवमस्कन्ध के उपाख्यानों का वर्णन क्रियागत दोष निवृत्ति के लिये नहीं; वासनागत दोष निवृत्ति के लिये है। नवम स्कन्ध में वैराग्य भरा है।

ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान् यह विवस्वान की वंश परम्परा है। विवस्वान् की पत्नी संज्ञा से श्राद्धदेव मनु हुए। वसिष्ठ मुनि के आचार्यत्व में आयोजित मैत्रावरुण इष्टि से श्राद्ध देव को श्रद्धा की कुक्षि से इला नाम की कन्या हुई, जो भगवान् का ध्यान करने पर पुत्र बन गया और उसका नाम सुद्युम्न रखा गया। वे बड़े होने पर शिकार करने के लिये पार्वती-शंकर के उस विहार स्थल चले गये, जहाँ पुरुष स्त्री बन जाता है। फलस्वरूप वे पुनः स्त्री बन गये और बुध के सम्पर्क में आकर उन्हें पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। गुरु वसिष्ठ की तपस्या और भगवान शंकर के कृपा कटाक्ष से वे एक महीना स्त्री और एक महीना पुरुष रहने लगे। यह कथा भगवान् की समदर्शिता और भगवान की सर्वशक्तिमत्ता को अभिव्यक्त करती है। वे अपने पूर्व पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर वन में चले गये। पुनश्च तपस्या करने पर श्राद्धदेव के इक्ष्वाकु नग आदि दस पुत्र हुए। इनमें आठवा पुत्र पृषध्र था यह असावधानी वश गोहत्या तथा गुरु शाप के कारण शूद्र हुआ। और उसने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। आपके तृतीय पुत्र शर्याति की कन्या सुकन्या का विवाह च्यवन मुनि के साथ हुआ था। देववैद्य अश्विनी कुमारों के प्रयास से च्यवनमुनि को यौवन लाभ हुआ। मनु पुत्र नाभाग के पुत्र अम्बरीष परम भगवद् भक्त थे। वैवस्वत मनु के प्रथम पुत्र इक्ष्वाकु का आगे चलकर वंश विस्तार हुआ। इसी वंश में राजा हरिश्चन्द्र हुए। यह आख्यान प्रसिद्ध आख्यान से भिन्न है। हरिश्चन्द्र ने यह प्रतिज्ञा की थी कि पुत्र होने पर हे वरुणदेव ! हम तुम्हारा यजन करेंगे। अन्त तक वे टालते रहे, अनन्तर उनके

पुत्र रोहिताश्व अजीगर्त के शुनः शेप नामक पुत्र को लेकर वरुण के पास आए। फलतः हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से मुक्त हो गये। अन्त में शुनः शेप भी छूट गया। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था।[1]

रोहिताश्व के वंशज बाहुक का राज्य जब छीन लिया गया तब वे वन चले गये। उनकी पत्नी सती हो जाना चाहती थी, पर ऋषियों ने गर्भवती पत्नी को सती हो जाने से रोक दिया। किन्तु सौतों ने उसे विष दे दिया। गर (विष) के साथ उन्होंने जन्म लिया, जिससे उसका नाम 'सगर' पड़ा। समुद्र को इसी महाराज सगर का सम्बन्धी होने के कारण 'सागर' कहते हैं –

"सगरस्य राज्ञोऽयं सागरः" । सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यतसुतैः कृतः" (९/८/५)

वह सगर इतना आज्ञाकारी था कि उसने गुरुदेव की आज्ञा से युद्ध में तालजंघ, यवन, शक, हैहय, और बर्बरों को मारा नहीं, अपितु उनके रूपरंग विकृत कर दिये। यज्ञ का सम्पादन करते समय इन्द्र ने उसके अश्व का हरण कर लिया। कपिलमुनि के आश्रम पर सुमति की कुक्षि से उत्पन्न साठ हजार सगर पुत्र उस अश्व को खोजते हुए पहुंचे और किसी क्रुद्ध मुनि की (कपिल मुनि की नहीं) शरीराग्नि से क्षण भर में भस्मसात हो गये।

केशिनी सगर की द्वितीय पत्नी थी। उसके पौत्र अंशुमान उस अश्व को ले आए और अपने साठ हजार चाचाओं के उद्धार का प्रयत्न भी किया। महर्षि कपिल ने उनसे कहा कि गङ्गाजल द्वारा ही उनका उद्धार होगा। उसी अंशुमान के पुत्र राजा दिलीप थे और पौत्र भगीरथ। उनके द्वारा शंकर के जटाकलाप से धरती पर गङ्गा लाने का कठिन प्रयास भगीरथ प्रयास के नाम से प्रसिद्ध है, और उनके प्रयत्न से धरती माता को सिञ्चित करने वाली गङ्गा माता 'भागीरथी' कहलायी।

इसी वंश में खटवाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु हुए और उनके परम यशस्वी पुत्र रघु। जबकि कविकुल गुरु कालिदास राजा दिलीप को रघु का पिता कहते हैं। रघु के पुत्र अज और उसके पुत्र महाराज दशरथ हुए। दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम रघु के नाम पर 'राघवेन्द्र' भी कहलाये। आदिकवि वाल्मीकि श्रीरामचन्द्र की पवित्र गाथा "रामायण" की सृष्टि कर अमर हो गये। वह 'रामकथा' एक श्लोक में इस प्रकार है–

"आदौरामतपो वनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीव सम्भाषणम्।

बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरी दाहनम्
पश्चाद्रावण कुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम्।।"

---

१. यह कथा 'ऐतरेय ब्राह्मण' की कथा से मिलती है।

चन्द्रवंश-ब्रह्मदेव पुत्र अत्रि के नेत्रों से चन्द्र का जन्म हुआ। बृहस्पति की पत्नी तारा को चन्द्रमा ने हर लिया और उस तारा के लिए घनघोर देवासुर संग्राम हुआ। उससे एक पुत्र हुआ। चन्द्रमा ने उसका नाम बुध रखा। बुध के द्वारा इला के गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ। देवाङ्गना उर्वशी पुरुरवा पर मुग्ध हो गयी। इन दोनों की प्रणय गाथा का अंकन कविकुलगुरु कालिदास के "विक्रमोर्वशीयम्" नाटक में है।

त्रेता के प्रारम्भ में पुरुरवा से ही वेदत्रयी और अग्नित्रयी का आविर्भाव हुआ। उर्वशी के गर्भ से पुरुरवा के छः पुत्र हुए, आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय। विजय की वंशपरम्परा में जह्नु हुए, जो गङ्गा को अपनी अञ्जलि में लेकर पी गये। फलतः गङ्गा माता 'जाह्नवी' हो गयीं। उसी जह्नु के वंश में कुशाम्बु पुत्र गाधि हुए। गाधिकन्या सत्यवती का ऋचीक ऋषि से विवाह हुआ। सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि ऋषि का जन्म हुआ। सत्यवती कौशिकी नदी बन गयी। रेण की कन्या रेणुका के साथ जगदग्नि ऋषि का विवाह हुआ।

परशुराम अवतार—उनके सबसे छोटे पुत्र भगवान परशुराम का स्थान दस अवतारों में जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय रहित कर दिया था। उसका कारण यह था कि हैहयवंशी सहस्रबाहु कार्तवीर्यार्जुन ने श्रीहरि के अंशावतार दत्तात्रेय से अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया और वे महाबली हो गये। देखते ही देखते उन्होंने जमदग्नि मुनि के आश्रम से कामधेनु का अपहरण कर लिया। पता लगते ही भगवान् परशुराम माहिष्मतीपुरी आए और देखते ही देखते अकेले ने केवल परशु से समस्त अक्षौहिणी सेना तथा कार्तवीर्यार्जुन की सहस्र बाहुओं को काट उसका वध कर दिया और कामधेनु को लौटा लिया।

एक बार जमदग्नि की पत्नी रेणुका गंगा नदी में अप्सराओं से जल विहार करने वाले गन्धर्व राज चित्ररथ को देखकर मोहित हो गयी। उसके मानसिक व्यभिचार को समझकर उसके पति जमदग्नि मुनि ने अपने पुत्रों से उसे मारने की आज्ञा दी। पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता के साथ सभी भाईयों को भी मार डाला फिर परशुराम के अनुनय पर पिता ने उन्हें पुनरुज्जीवित कर दिया।

सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जब जमदग्नि ऋषि की हत्या करे तो परशुराम जी ने माहिष्मती नगरी में उसके पुत्रों का शिरच्छेद कर बड़ा भारी पहाड़ खड़ा कर दिया। परशुराम जी ने अपने पिताजी का सिर लाकर उसे धड़ से जोड़ दिया और यज्ञों द्वारा सर्वदेवमय आत्मस्वरूप भगवान् का यजन किया।

महाराज गाधि के पुत्र थे विश्वामित्र, जो अपने तपोबल के द्वारा राजर्षि से ब्रह्मर्षि बन गये। पुरुरवा का एक पुत्र आयु था। इन्द्रपत्नी शची से सहवास की चेष्टा के कारण उसके ज्येष्ठ पुत्र नहुष को ब्राह्मणों ने इन्द्रपद से हटा दिया और अजगर बना दिया, तब

नहुष पुत्र ययाति को राजपद प्राप्त हुआ। वे शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह कर और अपने छोटे भाईयों को चारों दिशाओं का शासन सौंप कर पृथ्वी का पालन करने लगे। अपने छोटे पुत्र पुरु से उन्होंने यौवन माँगा और पुत्र ने पिता का बुढ़ापा सहर्ष स्वीकार कर लिया। **"तृष्णैका तरुणायते"**

सहस्र वर्ष बीतने पर भी उनकी वासना बढ़ती ही जा रही थी, अन्त में उन्होंने पुरु को उसका यौवन लौटा दिया और अपनी वृद्धावस्था को स्वीकार कर लिया, आत्म साक्षात्कार द्वारा ययाति का त्रिगुणमय लिङ्ग शरीर नष्ट हो गया।

पुरु वंश के राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की अमर प्रणय गाथा "अभिज्ञान शाकुन्तल" में जीवित है। उनका पुत्र भरत चक्रवर्ती सम्राट हुआ। अन्तिम अध्यायों में भरतवंश का इतिहास और राजा रन्तिदेव की कथा चित्रित है।

दशम स्कन्ध : "आश्रय और निरोध"

इस स्कन्ध से द्वादश स्कन्ध तक प्रधान रूप से विश्व के आश्रयस्वरूप परमतत्त्व श्रीकृष्ण परब्रह्म का निरूपण है, जिसके अङ्ग् के रूप में दशविध पुराण लक्षण के नौ लक्षणों का स्वरूप निरूपण किया जाता है। इस स्कन्ध में दशम आश्रय तत्त्व के साथ ही 'निरोध' का भी वर्णन है, दुष्ट राजाओं को दण्डित करने के लिए चित्रित है। क्योंकि दुष्ट राजा ही धर्म के ह्रास का कारण होते हैं। प्रतियुग में भगवदवतार के वे ही कारण होते हैं। जैसा कि 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा है–

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।"
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। "

जो 'महाभारत' और 'गीता' के श्रीकृष्ण हैं वे ही श्रीमद्भागवत के भी श्रीकृष्ण हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। 'आश्रयतत्त्व' अथवा 'अपाश्रय' तत्त्व का लक्षण पूर्व निरूपित है। 'निरोध' का लक्षण इस प्रकार है –

"निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सहशक्तिभिः" (२/१०/६)

प्राणिमात्र का श्रीहरि की योगनिद्रा के पश्चात् उसकी उपाधियों के साथ उनमें विलय ही 'निरोध' कहलाता है। द्वादश स्कन्ध में संस्था को ही 'निरोध' कहा गया है, जिसमें द्वितीय स्कन्ध की मुक्ति का भी समावेश है। 'संस्था' का लक्षण इस प्रकार है–

"नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः।।"

(१२/७/१७)

समस्त विश्व का वह विलय चार प्रकार से होता है –

नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। वही 'संस्था' अथवा 'निरोध' है। द्वितीय स्कन्ध की 'मुक्ति' इससे भिन्न नहीं है। 'मुक्ति' का लक्षण है –

"मुक्तिर्हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः" (२/१०/६)

अविद्या के कारण प्राणी अपने ऊपर जो कर्तृत्व भोक्तृत्व इत्यादि का अध्यास करता है उसे छोड़कर पुनः आत्मस्वरूप की प्राप्ति ही 'मुक्ति' है।

'संस्था' का अर्थ है 'प्रलय'। वह चार प्रकार का है–

१. नित्य प्रलय – इसके दो अर्थ हैं–क. निरन्तर क्षय का होना, ख. निद्रा के समय समस्त सृष्टि का अज्ञान में विलय।

२. नैमित्तिक प्रलय – वह भी द्विविध है – क. आंशिक और ख. पूर्ण। क. आंशिक प्रलय का अर्थ है एक मन्वन्तर के समाप्त होने पर भगवदिच्छा से कभी बीच में ही पृथ्वी, भुवर्लोक और स्वर्लोक का छिन्न विच्छिन्न होना, किन्तु महर्लोक आदि को कोई भी क्षति न पहुँचना, यही आंशिक नैमित्तिक प्रलय है। पूर्ण नैमित्तिक प्रलय का अर्थ है कल्प के अन्त में ब्राह्म दिन पूर्ण होने पर सृष्टि के साथ ही ब्रह्मदेव की घोर निद्रा।

३. प्राकृत प्रलय–ब्रह्मदेव के सौ वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्माण्ड का प्रकृति में विलय -प्राकृत प्रलय कहलाता है।

४. आत्यन्तिक प्रलय – साधन चतुष्टय सम्पन्न जीव का श्रवण-मनन निदिध्यासन द्वारा अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही आत्यन्तिक प्रलय है। यह आत्मस्वरूप प्राप्ति ही मुक्ति है, जो 'संस्था' या निरोध से भिन्न नहीं है। दशम स्कन्ध के नब्बे अध्यायों में श्रीकृष्ण की कीर्तिगाथा है और प्रसङ्गवश उन-उन प्रसङ्गों में सृष्टि संहार आदि का निरूपण करते हुए चतुर्विध प्रलय स्वरूप निरोध (संस्था) का चित्रण है। इसके प्रारम्भिक चार अध्यायों में ब्रह्मदेव की प्रार्थना पर पृथ्वी का पाप भार दूर करने के लिए प्रसङ्ग सहित श्रीकृष्ण जन्म चित्रित है। लीलाभूमि की दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण के तीन लीला स्थल हैं - गोकुल, मथुरा, और द्वारिका। पञ्चम अध्याय से पैंतीसवें अध्याय तक गोकुल-वृन्दावन की श्रीकृष्ण लीला, एक अध्याय द्वारा यमुना प्रवाह में रहते हुए अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण स्तुति, ग्यारह अध्यायों में मधुवन (मथुरा) में की हुई श्रीकृष्ण लीला और अवशिष्ट अध्यायों में श्रीकृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण आदि लीला वर्णित है।

'कृष्ण' शब्द के अनेक निर्वचन हैं –

"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः।।"

(महाभा. उद्योग ७०/५१)

'कृष्ण' शब्द 'कृष्' और 'ण' वर्ण संयोग से निष्पन्न है जिसमें 'कृष' सत्ता का और 'ण' आनन्दवाचक है। "कृष्ण" सत स्वरूप भी है और आनन्दस्वरूप भी। अथवा

कृषाभि पृथिवीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो हलः।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन

(महाभा. शान्ति ३४१-३४६)

अर्जुन ! यतः मैं कृष्ण वर्ण हूँ और कृष्ण वर्ण हलस्वरूप होकर धरती जोतता हूँ, अतः मेरा 'कृष्ण' नाम सार्थक है।

"अणोरणीयान् महतो महीयान्" परब्रह्म परमात्मा का सूक्ष्मतम 'अणु' स्वरूप जैसे अखण्ड पूर्ण अविभाज्य है, वैसे ही उनका 'षोडशकल' साकार स्वरूप भी अखण्ड-पूर्ण अविभाज्य है। "कृष्णस्तु भगवान स्वयम्" भगवान श्रीकृष्ण ही पूर्णावतार हैं, अन्य सब श्रीहरि के अंशावतार हैं। चन्द्रवंशी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्र के समान ही अह्लादक हैं - "यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः" यह चन्द्र शब्द का निर्वचन उनके 'कृष्णचन्द्र' नाम को सार्थक करता है।

सूर्यवंशी श्रीरामचन्द्र के नाम के साथ 'चन्द्र' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ उतना सार्थक नहीं है जितना श्रीकृष्णचन्द्र नाम के साथ। क्योंकि वे सूर्य के समान प्रतापी हैं- "प्रतापात् तपनो यथा"। रघु के लिये कही गयी यह कालिदासोक्ति भगवान राघवेन्द्र (रामचन्द्र) के साथ ठीक बैठती है।

राजर्षि परीक्षित् सोमवंशी षोडशकला पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्र के पुण्य चरित्र के श्रवण से तृप्त नहीं होते, जो केवल उनके वंश के लिए नहीं अपितु संसार सागर को पार करने के लिये 'प्लवस्वरूप' हैं। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी की प्रत्येक लीला का कुछ न कुछ आध्यात्मिक विश्वकल्याणकारी सन्देश है।

भगवान् की आज्ञा से ही योगमाया ने देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित किया, जो शेषावतार संकर्षण बलराम थे और स्वयं ने नन्द पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लिया। ब्रह्मादि देवों एवं नारदादि ऋषियों द्वारा की गयी भगवान की यह गर्भस्तुति केवल उनके सत्यस्वरूप की परिचायिका है-

"सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।"

(१०/२/२६)

दशम स्कन्ध के उन्तीसवें अध्याय से लेकर तैंतीसवें अध्याय तक पांच अध्याय "रासपञ्चाध्यायी" के नाम से प्रसिद्ध है। "रस्यते इति रसः" इस निवर्चन के अनुसार

लौकिक काव्यरस "ब्रह्मास्वाद सहोदर" मात्र अनुभवगम्य होता है। किन्तु वह ब्रह्मास्वाद नहीं होता, क्योंकि वहाँ अनुभूति का आलम्बन सामान्य नायक-नायिका होते हैं। पर जहाँ स्वयं परब्रह्म परमात्मा ही आलम्बन हो तो वह "रस" न रहकर "महारास" और ब्रह्मास्वाद हो जाता है। "रमन्ते योगिनोऽस्मिन् इति रामः" श्री राम का नाम अन्वर्थ इसलिए है कि योगी उनके साथ रमण करते हैं-भगवान श्रीकृष्णचन्द्र "आत्माराम" इसलिए हैं कि वे अपनी आत्मा राधिका के साथ रमण करते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः।।
आत्मा तु राधिका तस्य तथैव रमणादसौ।
आत्मा राम इति प्रोक्त ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की वंशी पर गोपिकाएँ मंत्रमुग्ध हैं। श्रीकृष्णयामल तंत्र के अनुसार नादब्रह्म की अधिष्ठात्री वीणापाणि भगवती सरस्वती श्रीकृष्णचन्द्र का अधरामृत पान करने के लिये स्वयं वंशी के रूप में अवतीर्ण होती हैं। अन्यमत के अनुसार भगवान रुद्र ही वंशी बनकर उनके कर कमलों में बसकर उनका सान्निध्य नहीं छोड़ते - "वंशस्तु भगवान रुद्रः" और वह वंशी ही श्रीकृष्ण चन्द्र के गोपियों को स्व स्वरूप का साक्षात्कार कराएगी और आत्मविलीन करेगी, यह गोपियों का दृढ़ विश्वास है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों को परावृत्त करते हैं कि "भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मः" "पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यः।" "प्रतियात ततो गृहान्" फिर भी वे नहीं लौटतीं क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र के भक्तिरस में डूबकर "परब्रह्मास्वाद" ही उनका चरम लक्ष्य है।

फलतः तैंतीसवें अध्याय में महारास वर्णित है –

"रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।।"

(१०/३३/३)

भगवान का भी यही लक्ष्य है-**पिबत भागवतं रसमालयम्।**

वेदस्तुति–राजर्षि परीक्षित का यह प्रश्न अत्यन्त समीचीन है कि 'शब्दशक्ति' लक्षणा गुणवृत्ति है। जैसा कि काव्यप्रकाशकार मम्मट प्रतिपादित करते हैं –

"अभिधेया विना भूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते।
वक्ष्यमाणगुणैर्योगाद् वृत्तेरिष्टा तु गौणता।।"

अतः श्रुतियाँ सत् और असत् से विलक्षण परब्रह्म परमात्मा की स्तुति कैसे कर सकती हैं ? इसका उत्तर देते हुए श्री शुकाचार्य कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा में बुद्धि, इद्रिय मन और प्राणों की सृष्टि विषयोपभोग, कर्म प्रवृत्ति, आत्मा का उन-उन लोकों में विचरण और मुक्ति के लिये की। "जय जय जह्यजामजितदोषगृभीतगुणा" इत्यादि वेदस्तुति ब्राह्मी उपनिषद् है, जो बिना तर्क-कुतर्क किये इसे आत्मसात करता है, वह देहादि उपाधियों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। श्रुतियाँ सगुण का प्रतिपादन करने पर भी निर्गुणपरक हैं। श्री शुकदेव जी ने राजर्षि परीक्षित को वह गाथा सुनायी, जिसमें देवर्षि नारद का आदि ऋषि श्री नारायण के साथ संवाद बदरिकाश्रम में हुआ है। सनक-सनन्दन-सनातन और सनत्कुमार यह जानते हैं कि जब भगवान योगनिद्रा में रहते हैं तब श्रुतियाँ उन्हें जगाती हैं। श्री नारायण देवर्षि नारद को यह स्मरण करा रहे हैं कि श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्ध का दर्शन करने आप गये, तब सनकादि ऋषियों ने वेदों के तात्पर्य और ब्रह्म के स्वरूप से सम्बन्धित वेदस्तुति के उसी रहस्य को कहा था।

एकादश स्कन्ध भागवत धर्म

इस स्कन्ध के इकतीस अध्यायों के अन्तर्गत समास और व्यास शैली में अनेक इतिहासों के उदाहरण देकर मुक्ति का निरूपण किया गया है। द्वितीय स्कन्ध में 'मुक्ति' दश विध पुराण लक्षण का नवम लक्षण है, जबकि द्वादश स्कन्ध में वह 'संस्था' (निरोध) का एक भेद है – आत्यन्तिक लय जिसका लक्षण निरूपण पूर्व में किया जा चुका है।

देवर्षि नारद ने वसुदेव को समास शैली में मुक्ति प्राप्ति का उपदेश दिया है, और भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव को वही उपदेश व्यास शैली में दिया है।

यदुवंश के कुछ उद्दण्ड बालक अपने वंश क्षय का कारण हुए। जब उन्होंने जाम्बवती नन्दन साम्ब को स्त्री वेश में मुनियों के पास ले जाकर यह प्रश्न किया कि इसे कन्या होगी अथवा पुत्र ? तब क्रुध ऋषियों ने उन्हें यह शाप दे दिया कि इसके गर्भ से निकलने वाला मूसल पूरे यदुवंश का नाश करेगा।" अब भगवान् श्रीकृष्ण की अवतार-समाप्ति का काल आ चुका था।

देवर्षि नारद ने वसुदेव जी को द्वितीय से पञ्चम अध्याय तक विद्या के पांच पर्वों द्वारा अविद्या के पांच पर्वों की निवृत्ति का उपदेश दिया है। विद्या के वे पांच पर्व हैं – वैराग्य, सत्सङ्ग, विवेक, भक्ति और तत्त्वज्ञान। यही जीव की मुक्ति का मुख्य उपाय है। भागवतधर्म प्रधान है और मोक्ष उसका अनुगामी है। एतदर्थ देवर्षि नारद ने वसुदेव जी को ऋषभदेव के नौ योगीश्वर पुत्रों-कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्लायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन के साथ विदेह राज निमि का वह शुभ आध्यात्मिक संवाद (वार्तालाप)

सुनाया। अनन्तर के चौबीस अध्यायों में प्रकृति के चौबीस बन्धनों की निवृत्ति के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव को उपदेश दिया, जो "उद्धवगीता" के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव को इस प्रसंग में अवधूतोपाख्यान सुनाया। भगवान् श्रीकृष्णके पूर्वज महाराज यदु ने ब्रह्मज्ञानी अवधूत भगवान् दत्तात्रेय से शिक्षा ग्रहण की थी। भगवान् दत्तात्रेय के गुरुओं में - पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग भौंरा, मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हिरन, मछली, पिङ्गला-वेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुमारीकन्या, वाणनिर्माता, सर्प, मकड़ी और भृंगीकीट आते हैं। इनसे अवधूत भगवान् ने कुछ न कुछ सीखा। इतना ही नहीं अपना शरीर भी गुरु होता है, जो विवेक और वैराग्य की शिक्षा देता है। गीता, पाञ्चरात्र आदि भगवान् श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक सन्देश ग्रन्थ हैं, जो सद्धर्म मार्ग के प्रवर्तक हैं। आत्मा न तो बन्धन में पड़ती है न उसकी मुक्ति होती है। अविद्या के कारण ऐसी प्रतीति होती है। इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में हंसगीता, भिक्षुगीता, ऐलगीता, मुख्य अवतार, भक्तिमार्ग, योगोपासना, मुख्य वैष्णव अवतार, आश्रम धर्म, सांख्य योग, क्रियायोग, ज्ञानयोग, आदि वर्णित हैं। ब्रह्ममुक्ति (श्रीकृष्ण के वैकुण्ठ गमन) के साथ ही स्कन्ध परिपूर्ण होता है।

द्वादश स्कन्ध अपाश्रय

इस स्कन्ध के तेरह अध्यायों में आश्रय तत्त्व का निरूपण स्थावर-जङ्गमात्मक जगत के अधिष्ठाता और कालपुरुष के रूप में किया गया है। आश्रय स्वरूप भगवदतार का निरूपण महापुरुषों के वर्णन प्रसङ्ग में किया गया है कालस्वरूप प्रलयावधि का वर्णन प्राकृतिक और आत्यन्तिक प्रलय के सन्दर्भ में किया गया है वह भी इसलिए कि इस नश्वर शरीर का कोई ठिकाना नहीं रहता। जीव के उद्धार का एक उपाय मात्र भगवान् का चरित्र श्रवण और भागवतधर्म ही है।

श्रीकृष्णचन्द्र के दिव्यधाम पधारने के पश्चात अवशिष्ट चन्द्रवंशी और अन्यशासकों का वर्णन इसलिये किया गया है कि उनकी मुक्ति भी बिना श्रीकृष्णभक्ति के सम्भव नहीं है। इस स्कन्ध के प्रारम्भिक छः अध्यायों में शुक-परीक्षित संवाद है और अन्य अवशिष्ट अध्यायों में सूत शौनकादि संवाद।

उपसंहार-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भागवत अपनी दार्शनिकता एवं व्यापक धार्मिकता के कारण सचमुच पुराण तिलक है। यह एक गम्भीर पुराण है। वस्तुतः उसके तत्त्वज्ञान की मीमांसा एक दुरूह व्यापार है। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'-यह लोकोक्ति स्वयं भागवत के रहस्यमय रूप को प्रकट करती है। भक्तिशास्त्र का तो यह सर्वस्व है। वल्लभाचार्य जी महाराज तो भागवत को महर्षि वेदव्यास की 'समाधिभाषा' कहते हैं अर्थात्

व्यास ने भागवत के तत्त्वों का वर्णन समाधि दशा में अनुभूत करके किया है। भक्तिशास्त्र होने से वल्लभ एवं चैतन्य सम्प्रदाय पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा है। योग के विषय में भी भागवत का यही परिनिष्ठित सिद्धान्त है योगियों के लिए जगदाधार भगवान् में भक्ति के द्वारा चित्त लगाने के अतिरिक्त ब्रह्मप्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है (श्री.भा. ३/२५/१६)। साहित्यिक दृष्टि से भी भागवत अप्रतिम है। घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक चार प्रकार से इसका विभाजन है। रस, छन्द, पाक, रीति, वृत्ति, अलङ्कारादि दृष्टि से भी भागवत अद्भुत है। समग्र धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का प्रकाशक होने से ही यह स्वयं आनन्दकन्द सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण का शब्दावतार माना जाता है। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति सहित नैष्कर्म्य का निरूपण ही इसकी पूर्णता है। भक्तिरस के माध्यम से अद्वैत को प्रकाशित करना भागवत का अपना वैशिष्ट्य है। अतः निश्चय ही समस्त पुराण एक तरफ और श्रीमद्भागवत एक तरफ ऐसा कहा जा सकता है। इसीलिये सम्पूर्ण पुराण वाङ्मय में इसका स्थान सर्वोपरि है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

देवीभागवतपुराण

देवीभागवत की प्रामाणिकता

प्राचीन निबन्धग्रन्थों में देवीभागवत का कोई उल्लेख न रहने पर भी इसकी प्रामाणिकता पर कोई संशय नहीं होना चाहिये, क्योंकि शाक्त-संप्रदाय में इसकी महती प्रतिष्ठा है। भास्कर आदि आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में इस पुराण से अनेक वचन उद्धृत किये हैं (द्र. ललितासहस्रनाम का भाष्य आदि)। आधुनिक काल में म.म. पंचानन भट्टाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रशक्तिभाष्य में भी इस पुराण के वचन उद्धृत कर विचार किया है।

भागवतटीकाकार श्रीधरस्वामी से पहले ही यह पुराण विद्वत्समाज में सुविज्ञात था, जो स्वामी के 'अत एव भागवत' नाम अन्यद् इत्यपि नाशङ्कनीयम्' (भागवत १।१।१ की टीका) वाक्य से ज्ञात होता है। पद्मपुराण में इस पुराण का उल्लेख मिलता है, जहां इसको उपपुराण माना गया है (द्र. डा. हाजराकृत स्टडीज इन द उपपुराणाज़्, भाग २, पृ. ३४५-३४५)।

नाम और प्रतिपाद्य विषय

'भगवत्या इदं भागवतम्' इस निर्वचन के आधार पर इस पुराण के नाम में भागवत पद का प्रयोग हुआ है। भगवती ही इस पुराण की अधिष्ठात्री हैं, इसलिये इसे 'देवी-भागवत' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'सती-पुराण' भी है। दुर्गा से सम्बंधित होने के कारण इसे दौर्ग पुराण भी कहा गया है-दौर्गमेतत्पुराणम् (११.१४.३६)।

उसी भगवती आद्याशक्ति के वाग्बीज-ऐं, मायाबीज-ह्रीं, तथा कामबीज-क्लीं के जप के महत्व का सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित के रूप में प्रतिपादन इस पुराण में किया गया है। प्रत्येक चरित में मुख्य रूप से शक्तित्व का सम्बन्ध है। शक्ति की सत्ता से सभी सत्तावान् तथा चेतनावान् हैं-इस बात की पुष्टि कथाओं के माध्यम से की गयी है। एक ही शक्ति नानारूपों में क्यों और कैसे प्रकट होती है-इसका निरूपण भी इस पुराण का प्रतिपाद्य विषय है।

इस भागवत की भाषा सरल तथा सुबोध है। यद्यपि उपनिषदों के तत्व इसमें निहित हैं, फिर भी भाषा इतनी प्रांजल है, कि देवी के द्वारा उपदिष्ट गीता को पढ़ने में कोई कठिनता नहीं होती।

इसमें बारह स्कन्ध, तीन सौ अठारह अध्याय तथा अठारहहजार श्लोक हैं। प्रत्येक स्कन्ध का कथासार यहाँ दिया जा रहा है।

प्रथम स्कन्ध

इसमें बीस अध्याय हैं। इस स्कन्ध का प्रारम्भ बुद्धि को प्रेरणा देने वाली सबकी चेतना रूप में विद्यमान आद्या शक्ति के स्मरण से होता है। इसके बाद सूत शौनक संवाद के रूप में इसका उपक्रम है। शौनकऋषि ने सूत से कहा कि संसार-बन्धन से मुक्त करने वाली भागवतपुराण की कथा कहिये, क्योंकि ज्ञान के बिना मनुष्य जन्म-मरण रूप भवबन्धन से छूटता नहीं। इसे सुनकर सूत ने भगवती का स्मरण किया और इस पुराण के स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकों की संख्या बतलायी। फिर सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराणों के पांच लक्षणों का उल्लेख कर सर्ग के रूप में निर्गुणा, तुरीया शक्ति से महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली के आविर्भाव की चर्चा की । प्रतिसर्ग के रूप में विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र को क्रमशः पालन, उत्पादन तथा नाशरूप कार्य का प्रतिनिधि कहा। वंश से सूर्य, चन्द्र तथा हिरण्यकशिपु आदि दैत्य वंश लिये गये हैं। मन्वन्तर में स्वायम्भुख आदि मनु, उनकी काल संख्या और उनके वंशों का अनुकथन ही वंशानुचरित के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार पुराण के पांच लक्षणों के समन्वय के बाद अठारह पुराणों का संकेत नाम के आदि अक्षर से इस प्रकार कियां गया है -

मद्वयं भद्वयं चैव बत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।। (१।३।२)।

साथ ही प्रत्येक पुराणों की श्लोक संख्याओं तथा अठारह उपपुराणों के नामों का भी उल्लेख है (१, ३, १३-१६)।

मुख्य रूप से इस स्कन्ध में व्यासपुत्र शुकदेव की उत्पत्ति एवं जीवनचरित का वर्णन है। सरस्वती नदी के तीर पर पक्षियों को अपने पुत्र के प्रति स्नेह प्रकट करते हुए देखकर व्यासमुनि के मन में भी परिवार बसाने की लालसा जगी और वे पुत्र-लालसा से मेरु-पर्वत के निकट गये। वहां नारद जी आ गये। उनसे व्यास ने पूछा कि किसकी उपासना से मुझे पुत्र-प्राप्त होगा। नारद ने आद्या-शक्ति के महत्व को बतलाते हुये उन्हीं का ध्यान करने को कहा। उन्हीं के पद-कमल के आराधन से तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।

प्रसंगतः यहां भगवान् ह्यग्रीव की कथा है। हयग्रीव दानव ने एकाक्षर माया बीज (ह्रीं) का जप कर देवी से वर प्राप्त कर लिया था कि मेरी मृत्यु यदि हो तो ह्यग्रीव से ही हो दूसरे से नहीं। देवी ने कहा ऐसा ही होगा। अन्त में भगवान् विष्णु ने हयग्रीव रूप से उसका वध किया।

इसी प्रकार मधु और कैटभ के वध का भी वर्णन है। उन दोनों दैत्यों ने भगवती के वागबीज (ऐं) का जप कर देवी से वरदान प्राप्त कर लिया था कि हमारी मृत्यु हमारी इच्छा से हो। देवी के 'तथास्तु' कह देने के बाद उन दोनों के भयंकर अत्याचार से त्रस्त

होकर ब्रह्मा ने योगमाया की आराधना की। जिससे विष्णु की नींद खुली और वे बहुत दिनों तक मधु और कैटभ-दोनों से युद्ध करते रहे। अन्त में भगवती की माया से मोहित होकर उन दोनों ने वर मांगने को कहा। विष्णु ने अपने हाथों से उनकी मृत्यु मांगी, जिससे उनकी इच्छा के अनुसार मृत्यु हुई।

बाद में शुकदेव की उत्पत्ति की कथा पुनः शुरू होती है। व्यासमुनि नारद से वागूबीज की दीक्षा प्राप्त कर पुत्र की कामना से महामाया का ध्यान करते हुये तप करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव उनके पास जाते हैं और तेजस्वी पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं।

इसके बाद व्यास अपने आश्रम पर आते हैं, और अग्नि के लिए अरणि मन्थन करने लगते हैं। उनके मन में पुत्रप्राप्ति के लिये चिन्ता हुई कि उनके समीप घृताची नाम की अप्सरा दिखायी पड़ी। कामदेव के बाण से पीड़ित व्यासमुनि धैर्य धारण कर सोचने लगे कि यह तो महा-धर्मसंकट सामने आ गया। यदि मैं इसे स्वीकार करता हूं तो दुनियां हंसेगी। इस प्रकार मेरी निन्दा होगी, फिर भी गृहस्थजीवन का वात्सल्य प्रेम अनुपम है। हां इतना अन्तर जरूर है कि स्वर्गसुख तथा मोक्षसुख बन्धक नहीं होता, पर अप्सरा का सुख बन्धक होता है। इस सम्बन्ध में नारदऋषि ने मुझे उर्वशी के वशीभूत राजा पुरुरवा की प्रसिद्ध कहानी सुनायी थी।

उर्वशी के प्रेमपाश में बंधे हुये दुःखित पुरुरवा के चरित का स्मरण कर व्यासमुनि ने घृताची की ओर देखा। मुनि को देखकर घृताची डर गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दें। इसलिये वह शुकी बन गयी, जिसे देखकर व्यास अरणि-मन्थन करने लगे और मन में काम व्याप्त हो गया। उन्होंने मन को बहुत प्रकार से रोका, पर मन तो घृताची से मोहित था, इसलिये रुका नहीं और अचानक उनका शुक्र मन्थन की अरणि (लकड़ी) पर गिर गया जिससे शुक की उत्पत्ति हुयी। पुत्र प्राप्त कर व्यास प्रसन्न हुये। कुछ दिनों बाद व्यास ने गृहस्थाश्रम की प्रशंसा कर शुक को व्याह के लिये प्रवृत्त कराना चाहा, पर वे अपने निर्णय पर अटल रहे। गृहस्थाश्रम में नहीं जाने के शुक के निर्णय को सुनकर व्यास ने उन्हें श्रीमद्भागवत का अध्ययन करने को कहा जो सभी पुराणों का सार और मुक्ति का साधन है। किन्तु श्रीमद्भागवत् पढ़ने के बाद भी शुकदेव को अपने आश्रम में शून्य के समान पड़े हुये देखकर व्यास ने कहा पुत्र ! मेरे कहने पर भी तुम्हें शान्ति नहीं मिली तो तुम मिथिलाधिपति जनक के पास जाओ। वे तुम्हारे मोह को नष्ट करेंगे। शुकदेव ने कहा-'जीवन्मुक्त राजा को तो मैंने देखा ही नहीं। राजा राजकाज करता हुआ मुक्त है-यह बात समझ में नहीं आती। इसलिये में मिथिला जाऊंगा।' मिथिला पहुंचने पर सिंहद्वार का प्रतिहारी शुकदेव से आने का कारण पूछा। प्रतिहारी के अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुये शुकदेव ने कहा-काम, क्रोध, मोह ये मनुष्य के शत्रु हैं, मित्र तो केवल सन्तोष ही है।

शुकदेव की बात सुनकर प्रतिहारी समझ गया कि यह ज्ञानी है, इसे भीतर जाने का अधिकार है।

दूसरे दिन पुरोहित को आगे कर अपने मन्त्रियों के साथ जनक आते हैं और विधिवत् अतिथि सत्कार कर आने का कारण पूछते हैं। शुकदेव ने कहा-'पिता द्वारा अनेक प्रकार से गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करने पर भी मैंने इसे स्वीकार नहीं किया। तब उन्होंने मुझें आपके पास भेजा है। आप जीवन मुक्त गृहस्थ हैं। आप ही बताइये कि मुझे क्या करना चाहिये।' इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप जनक और शुक का विस्तृत संवाद हुआ है।

जनक ने मन की निर्बलता पर जोर देते हुये वेदान्तशास्त्र के अनुसार जीव और ब्रह्म की एकता का यहां उपपादन विस्तार से किया है। अन्त में जनक ने शुकदेव से कहा 'यदि आप पिता का साथ छोड़कर वन में जाना चाहते हैं तो वहां भी मृगों के साथ सम्बन्ध निश्चित रूप से हो जायेगा, क्योंकि पांच महाभूत तो सब जगह हैं, इसलिये उनसे निःसर्ग होना कठिन है। भोजन की चिन्ता तो वन में भी बनी रहेगी। मैं तो निर्विकल्प हूं। मेरे सामने विकल्प रूप सन्देह है ही नहीं। इसलिये सुखपूर्वक सोता हूं और सुखपूर्वक भोजन करता हूं।'

इस प्रकार जनक की बात से सन्तुष्ट होकर शुकदेव अपने पिता के घर आते हैं और 'पीवरी' नाम की कन्या से विवाह कर कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि तथा देवश्रुत नाम के चार पुत्र तथा कीर्ति नाम की कन्या को उत्पन्न करते हैं।

इसके बाद शुकदेव योगबल से कैलास-शिखर पर चले जाते हैं। पुत्र-शोक के कातर व्यास को शिव समझाते हैं कि तुम्हारा पुत्र योग का परम ज्ञाता है। वह परम गति को प्राप्त कर लिया है। उससे तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी। शिव के उपदेश से व्यास का मोह दूर हो जाता है।

इसके बाद इस स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में शन्तनु की सन्तान की संक्षिप्त कथा वर्णित है।

द्वितीयस्कन्ध

इस स्कन्ध में बारह अध्याय हैं। व्यास की माता सत्यवती की जन्मकथा के साथ इस स्कन्ध का प्रारम्भ होता है, जिसमें भगवती के वाग्बीज के प्रभाव का संकेत है। चेदिदेश के अधिपति वसु ने तप किया था, जिससे प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें एक विमान दिया। उस विमान से भ्रमण करने के कारण वह राजा 'उपरिचर' नाम से विख्यात हुआ। उसकी स्त्री का नाम 'गिरिका' था। एक दिन ऋतुमती रानी गिरिका ने राजा से निवेदन किया, 'मैं आज स्नान कर पवित्र हो गयी हूं' किन्तु राजा वसु पितरों के आदेश से उस दिन मृग को मारने के लिये वन में चले जाते हैं। वहां जाने पर वे अपनी पत्नी का स्मरण करते

हैं व कामातुर हो जाते हैं, जिससे उनका वीर्यपात हो जाता है। राजा उसको वट-पत्र में रखकर वाज-पक्षी से अपनी पत्नी के पास भेजतें हैं, किन्तु दूसरे वाज ने मांस समझकर उसे लेना चाहा। दोनों के परस्पर युद्ध से वह वीर्य यमुना-जल में गिर गया। जिसे 'अद्रिका' नाम की अप्सरा, जो ब्राह्मण के शाप से मछली हो गयी थी, निगल गयी। उसी से एक बालक और सुन्दर कन्या उत्पन्न हुयी। मल्लाह उन दोनों को राजा वसु के पास ले जाता है। राजा ने बालक को तो अपने पास रख लिया पर कन्या को उसे देते हुये कहा कि तुम इसे अपने पास रखो। वही काली, मत्स्योदरी, मस्यगन्धा के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसे देखकर पराशर का मन आकृष्ट हुआ। परिणामस्वरूप उससे द्वैपायन-व्यास की उत्पत्ति हुई। पराशर के सम्बन्ध से वह मत्स्यगन्धा योजनगन्धा तथा सत्यवती के नाम से विख्यात हुई। उसने अपने पिता के भय से पुत्र को द्वीप में रख दिया था। इसीलिये व्यास का पहला नाम 'द्वैपायन' हुआ। बाद में वेद का विस्तार करने से वे व्यास कहलाये। उन्होंने सुमन्तु, जैमिनी, पैल, वैशम्पायन आदि शिष्यों को वेद पढ़ाया।

इसके बाद सत्यवती का राजा शन्तनु के साथ सम्बन्ध का वर्णन है, जिसमें शन्तनु और गंगा से उत्पन्न हुये देवव्रत का पिता के लिये त्याग का वर्णन है। सत्यवती और शन्तनु से विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद दो पुत्र हुये। पर, उनसे कोई सन्तान नहीं हुयी। वे अचानक युद्ध में मारे गये। सत्यवती की आज्ञा से व्यास ने उनकी स्त्रियों से धृतराष्ट्र और पाण्डु को पैदा किया। इसी प्रकार कुन्ती ने दुर्वासा से वाग्बीज की दीक्षा प्राप्त कर युधिष्ठिर आदि पुत्रों को पैदा किया।

अन्त में इस वंश के राजा परीक्षित का वृत्तान्त तथा परीक्षित के पुत्र जन्मेजय का नागयज्ञ करने के निश्चय को आस्तिक ऋषि के द्वारा रोकने का उल्लेख है।

तृतीय स्कन्ध

इसमें तीस अध्याय हैं। मुख्य रूप से भगवती की महिमा का वर्णन है। विश्व की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र? जन्मेजय की इस जिज्ञासा के समाधान में व्यास ने कहा कि मैंने भी नारद से यही प्रश्न पूछा था। तब उन्होंने कहा कि मैंने सुना है कि वे प्रलय के बाद विष्णु के जिस नाभिकमल से उत्पन्न हुये थे, उसके मूलाधार को जानने के लिये हजारों वर्षों तक जल में तैरते रहे और तप किये। आकाशवाणी हुयी कि तप करो। तब तक मधु-कैटम नाम के दो असुर आये। उन्होंने निद्रा देवी की स्तुति की, जिससे निद्रा देवी विष्णु के देह से अलग हो गयी। तब विष्णु के द्वारा दोनों असुर मारे गये। इसके बाद भुवनेश्वरी देवी वहां उपस्थित हुयीं। उस समय पूरा चराचर ब्रह्माण्ड उस भगवती के पैर के नखदर्पण में दिखायी दिया। तथा रुद्र और विष्णु युवति स्त्री के रूप में वहां थे। विष्णु ने महादेवी से पूछा कि, ब्रह्मा-सृष्टि, मैं

पालन तथा रुद्र संहार करते हैं यह जनश्रुति है, किन्तु वास्तविक बात क्या है देवी ने कहा-ब्रह्मा और मुझ में भेद नहीं है।

इस प्रकार अपने स्वरूप तथा प्रभाव का परिचय कराते हुये देवी ने ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिये अपनी रजोगुण सम्पन्न महासरस्वती शक्ति दी और कहा कि नवाक्षर मन्त्र का सर्वदा हृदय में ध्यान करते हुये अपना कार्य करो। इसके बाद विष्णु को महालक्ष्मी शक्ति प्रदान कर कहा कि तुम वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज को जपते हुये विश्व का पालन करो। इसी प्रकार शंकर को अपनी महाकाली गौरीशक्ति को समर्पित करते हुये निर्गुणा देवी ने कहा-इसमें तमोगुण प्रधान है, रज तथा सत्त्व गौण। इसके साथ कैलास बनाकर विहार करो। तुम तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र) त्रिगुण हो। संसार में इन तीनों गुणों से शून्य कोई वस्तु नहीं है। निर्गुण तो केवल परमात्मा है, जो दृष्टिगोचर नहीं होता। मैं समयानुसार निर्गुणा और सगुणा-दोनों रूपों में विराजमान हूं। मैं कारण हूं, कार्य नहीं।

इसके आगे सांख्यशास्त्र के अनुसार सृष्टि के वर्णन में विरोधी गुणों के परस्पर संबंध का उपपादन दीपक आदि उदाहरणों के साथ किया गया है।

बिन्दुरहित वाग्बीज के महत्व को बताते हुये सत्यव्रत नामक मूर्ख ब्राह्मण की कथा के प्रसंग में अनेक कथायें हैं। जिनमें अम्बायज्ञ की विधि, विष्णु के द्वारा अम्बायज्ञ के अनुष्ठान तथा विश्वामित्र का वशिष्ठ की गौ नन्दिनी के हरण-प्रसंग में कामबीज के जप का महत्त्व बताया गया है। इसके बाद अयोध्याधिपति ध्रुवसन्धि का वर्णन है, जिसमें राजा की धर्मपत्नी मनोरमा और लीलावती-इन दो पत्नियों से क्रमशः सुदर्शन और शत्रुजित् नामक दो पुत्रों का जन्म कहा गया है। मनोरमा का अपने पुत्र सुदर्शन को लेकर भारद्वाज के आश्रम पर जाना तथा कामबीज के प्रभाव से सुदर्शन के विवाह आदि का वर्णन अवान्तर कथाओं के साथ हुआ है।

इसके बाद देवी की महिमा तथा काशी में दुर्गावास का निरूपण करते हुये अन्त में रामकथा कही गयी है। सीता के वियोग से व्याकुल श्रीराम के पास नारद का आकर शारदीय नवरात्रि के महत्व तथा देवी के अनुष्ठान की विधि बताना और राम के द्वारा देवी की आराधना कर उनके प्रत्यक्षदर्शन का उल्लेख है।

चतुर्थ स्कन्ध

इसमें पच्चीस अध्याय हैं। आदि और अन्त में कृष्ण की कथा है। मध्य में प्रसंगानुसार बहुत सी अवान्तर कथायें हैं। स्कन्ध का प्रारम्भ शूरसेन के प्रतापी पुत्र वसुदेव को कारागार में बन्द होने के कारण तथा कृष्ण का कारागार में जन्म और कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनायें कैसे और क्यों हुयीं-इत्यादि जन्मेजय की जिज्ञासा से होता है। इसके समाधान में व्यास ने कर्म को प्रधान बताते हुये कहा कि, कर्म की गति बड़ी

विचित्र है। देवता और मानव सभी अपने-अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं। कर्म के कारण सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। रामावतार में देवता, वानर और कृष्णावतार में यादव कर्म के अनुसार ही बने। वसुदेव भी पूर्व जन्म में कश्यपमुनि थे, उन्होंने यज्ञ के लिये वरुण की गाय का अपहरण किया था। इसलिये वरुण के शाप से वे गोपाल बने तथा उनकी अदिति और सुरसा (दिति) दोनों पत्नियां भी शाप के कारण क्रमशः देवकी और रोहिणी दो बहन के रूप में उनकी पत्नी हुई। इसके बाद अदिति को दिति के द्वारा दिये गये शाप से देवकी के छह पुत्र की मृत्यु के कारण का उल्लेख है। स्वार्थवश इन्द्र ने अपनी विमाता दिति के गर्भ को नष्ट कर दिया, जिससे दिति ने अदिति को शाप दिया था।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि न केवल कलियुग के प्राणी ही निन्दनीय कार्य करते हैं बल्कि पहले के लोग भी राग-द्वेष से ग्रस्त होकर अनुचित कार्य में प्रवृत्त होते थे।

इसी प्रसंग में नरनारायण की तपस्या से डरे हुये इन्द्र के द्रोह का वर्णन है, जिसमें इन्द्र के द्वारा भेजी गयी मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के मानभंग करने के लिये नारायण ने अपने ऊरु से सर्वसुन्दरी नारी को पैदा किया, जिसका नाम उर्वशी पड़ा। उर्वशी के सहचरियों की मनोकामना की पूर्ति के लिये नारायण का कृष्ण रूप में अवतरित होने का यहां संकेत है।

इसी प्रसंग में अहंकार तथा काम-क्रोध को निन्दनीय बताते हुये नारायण का प्रह्लाद के साथ युद्ध होने के कारण का वर्णन विस्तार से हुआ है। अन्त में भृगु के द्वारा हरि को दिये गये शाप का कथन तथा दैत्यगुरु शुक्र की कथा और कृष्ण के जन्म तथा चरित वर्णन के साथ इस स्कन्ध की पूर्ति होती है।

पंचम स्कन्ध

इसमें पैंतीस अध्याय हैं। सबसे पहले विष्णु की अपेक्षा रुद्र श्रेष्ठ हैं-इसका उपपादन है। जिसमें कहा गया है कि 'ओम्' प्रणव के अकार, उकार तथा मकार के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अधिष्ठाता हैं। इनके अतिरिक्त वर्णमाला के रूप में आद्याशक्ति महेश्वरी है। ये उत्तरोत्तर उत्तम है।

इसके बाद देवीमहिमा तथा महिषासुर की उत्पत्ति का वर्णन है। दनुदैत्य के पुत्र रम्भ और करम्भ ने प्रतापी पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या की। जिससे डर कर इन्द्र ने करम्भ को मार डाला। इसके बाद रम्भ अपने शिर को काटकर जब हवन करना चाहा, तो उस समय अग्नि देव प्रकट होकर उसे त्रैलोक्य विजयी-पुत्र-प्राप्ति का वर दिया। दैववशात् एक महिषी (भैंस) को देखकर वह कामातुर हो उठा, जिससे महिषासुर की उत्पत्ति हुयी। उसने स्त्री को तुच्छ समझ कर ब्रह्मा से देव-दानव से न मर कर अमरत्व प्राप्ति का वर मांग लिया था। उसके अत्याचार से देव और असुरों के संग्राम का वर्णन है, जिसमें उसके

सेनानी चिक्षुर, विडाल आदि असुरों के वध के बाद देवी के द्वारा महिषासुर के वध का उल्लेख है।

इसी प्रकार धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज, शुम्भ और निशुम्भ की देवी के द्वारा मारे जाने की कथा है। अन्त में राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य की कथा है, जिसमें राज्य और परिवार से परित्यक्त होकर मुनि के आश्रम में जाना तथा उनके उपदेश से देवी के प्रथम, मध्यम और उत्तम चरितों के अनुसार आराधना कर राज्य और ज्ञान प्राप्ति करने का उल्लेख है।

षष्ठ स्कन्ध

इसमें इकतीस अध्याय हैं। प्रथम के छः अध्यायों में त्वष्टा के पुत्र त्रिशिर (तीन शिर वाले) और वृत्रासुर के वध का वर्णन है। त्रिशिर एक शिर से वेद पढ़ता था, दूसरे से मदिरा पीता था तथा तीसरे से दशों दिशाओं को देखता था। भोग-विलास छोड़कर जब वह तपस्या करने लगता है, तो इन्द्र उससे डर कर तक्ष के द्वारा उसका वध करवा देते हैं। इसके बाद त्वष्टा इन्द्र को मारने वाले पुत्र की कामना से अग्नि में हवन करते हैं, जिससे अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष प्रकट होकर पूछता है, कि मैं क्या करूं! त्वष्टा ने कहा इन्द्र तुम्हारे शत्रु हैं, उन्हें तुम मारो। तुम दुःख से रक्षा करने में समर्थ हो, इसलिये वृत्र के नाम से विख्यात होगे। इसके बाद इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन है, जिसमें इन्द्र के द्वारा वृत्र मारा जाता है।

इसके आगे सातवें अध्याय से नौ अध्याय तक नहुष की कथा है। इन्द्र जब ब्रह्महत्या के भय से भागकर मानसरोवर में छिप जाते हैं, तब देवताओं के द्वारा नहुष इन्द्र बनाया जाता है, जो इन्द्राणी पर आसक्त होता है, किन्तु देव-गुरु बृहस्पति के उपदेश से इन्द्राणी जगदम्बा की आराधना करती है, जिससे नहुष की बुद्धि भ्रष्ट होती है और वह सर्प योनि को प्राप्त होता है।

इसके बाद संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध कर्म, युगधर्म, चित्त शुद्धि और पुष्कर, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के महत्त्व का निरूपण है। प्रसंगतः वसिष्ठ और विश्वामित्र के परस्पर कलह तथा राजा निमि के द्वारा देवी की आराधना कर सभी प्राणियों के नेत्रपलकों में रहने का वर प्राप्त करना और उनके स्थूल शरीर के मन्थन से जनक की उत्पत्ति का वर्णन है।

इसके आगे हैहय-वंशी क्षत्रियों के द्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणों का संहार, भृगृवंश की स्त्रियों के द्वारा देवी की आराधना से तेजस्वी बालक की उत्पत्ति का उल्लेख है। आगे 'एक-वीर' का चरित्र है, जिसमें एकवीर के द्वारा कालकेतु का वध तथा एकावती के साथ उसके विवाह का वर्णन है। इसी प्रसंग में नारद के विवाह की भी कथा है, जो भगवान् की माया से स्त्रीभाव को प्राप्त होकर गृहस्थजीवन बिताने के बाद पुनः पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं।

अन्त में महामाया की महिमा तथा देवी भागवत के महत्त्व का उल्लेख है। जिसमें यह कहा गया है कि सच्चिदानन्दरूपिणी देवी ही अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करने में समर्थ है, दूसरी नहीं। अन्त में कहा गया है कि यह भागवत सभी कथाओं का सारभूतपुराण तथा सम्पूर्ण वेदों के समान प्रमाणों से युक्त है।

सप्तम स्कन्ध

यह स्कन्ध चालीस अध्याय का है, जिसके तीस अध्यायों में सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं तथा उनसे सम्बन्धित अनेक उपाख्यानों का वर्णन है। इसके बाद अन्तिम के दश अध्यायों में देवी के द्वारा हिमालय को दिये गये रहस्यात्मक उपदेश हैं, जो देवी गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं। स्कन्ध का प्रारम्भ जगत् की सृष्टिप्रक्रिया से होता है, जिसमें विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा देवी की आराधना तथा उनसे शक्ति प्राप्त कर महर्षि-अंगिरा आदि मानसपुत्रों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया का निरूपण है। इसके बाद दक्षप्रजापति तथा उनकी पत्नी वीरिणी की साठ कन्याओं के विवाह तथा उनसे उत्पन्न देवदानवों का भी वर्णन है।

इसके बाद सूर्यवंशी राजाओं का विस्तृत उपाख्यान है, जिसमें विवस्वान् तथा उनके पुत्र वैवस्वतमनु से उत्पन्न हुये इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति आदि नौ पुत्रों का वर्णन है। शर्याति की पुत्री सुकन्या का महर्षिच्यवन के साथ विवाह के कारण का भी विस्तृत विवरण है। आगे सूर्यवंश के प्रतापी राजा यौवनाश्व की कोख से पैदा हुये मान्धाता के चरित्र का चित्रण है, जिसमें प्रसंगतः त्रिशंकु पर विश्वामित्र की कृपा तथा राजा हरिश्चन्द्र पर विश्वामित्र के क्रोध का वर्णन है, जो त्रिशंकु के संदेह स्वर्गगमन और राजा हरिश्चन्द्र को सत्य की कसौटी पर खरे उतरने का इतिहास है।

फिर तीन अध्यायों में देवी के दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी आदि नामों का इतिहास तथा सिद्धपीठ और उन पीठों पर विराजमान शक्तियों की नामावली का उल्लेख है।

इसके बाद देवी गीता का प्रारम्भ होता है। जिसमें हिमालय की मानसपूजा तथा तारकासुर से पीड़ित देवताओं के द्वारा की गयी स्तुति से प्रसन्न होकर 'गौरी के रूप में तुम्हारे घर प्रकट होने' का वरदान देने पर हिमालय के द्वारा देवी से अनुरोध का वर्णन है। हिमालय की जिज्ञासा के समाधान में देवी ने जो रहस्यात्मक ज्ञान का उपदेश किया, वही देवी गीता के नाम से विख्यात हुई। देवी ने तीन अध्यायों में अपने चिदात्मक स्वरूपका निरूपण किया है। इसके बाद योग, कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा शक्तिपीठों का परिचय एवं पूजाविधि का विस्तार से वर्णन है, जिसमें सामान्यतः बाह्य और आभ्यन्तर नाम से पूजा के दो भेदों को बताकर पुनः बाह्य पूजा की वैदिकी और तांत्रिकी विधि तथा उसके अधिकारी की चर्चा है। अन्त में आभ्यन्तर अर्थात् मानस पूजा की विधि में देवी ने जो कहा

है, उससे यह बात सिद्ध होती है कि शाक्त दर्शन संविद् रूप शक्तितत्त्व को ही जगत् का आधार मानता है, जो शिव और शक्ति का सामरस्य रूप है। इस सामरस्य की प्रतीति में ही परमानन्द है। इसके बिना आनन्द शुष्क है, जो दुःख है। इसीलिये स्वयं विमर्शरूपा शक्ति ने देवताओं से कहा कि हिमालय के घर में जो गौरी नाम की शक्ति प्रकट होगी, उसे तुम लोग शिव को समर्पित कर देना। यही शिव-शक्ति का सामरस्य है, जो प्रकाशरूप हैं। इसीसे मोहान्धकार रूप तारकासुर का नाश होता है। इस प्रकार उपनिषदों के साररूप में देवी का उपदेश देवी भागवत का हृदय माना जाता है।

अष्टम स्कन्ध

इसमें चौबीस अध्याय है। इस स्कन्ध में मुख्य रूप से मनु के वंश का वर्णन तथा भूगोल, खगोल, अतल, वितल आदि लोगों और तामिस्र आदि नरकों का विवेचन हुआ है। देवी से प्रजासृष्टि का वर प्राप्त कर मनु का ब्रह्मा के पास जाना तथा उनसे स्वीकृति मांगने पर सृष्टि के आधार की चिन्ता से उनकी नासिका के द्वारा उत्पन्न वाराहशिशु का विराट् रूप धारण कर पृथ्वी को पाताललोक से लाने का वर्णन है। फिर स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का तथा बड़े पुत्र प्रियव्रत का संक्षिप्त परिचय है।

इसके बाद भूमण्डल के विस्तार का वर्णन और नदियों तथा गंगावतरण का वृतान्त है। इसी प्रकार जम्बू द्वीप के इलावृत वर्ष, भद्राश्व वर्ष तथा हरि वर्ष आदि नवों वर्षों का और उनके भिन्न-भिन्न अधिष्ठाताओं का पूर्ण परिचय दिया गया है, जिसमें किंपुरुष वर्ष में हनुमान् के द्वारा श्रीरामचन्द्र की, तथा भारतवर्ष में नारद के द्वारा की गयी नारायण की स्तुति के बाद भारतवर्ष की महिमा का वर्णन है। प्रसंगतः प्लक्ष, शाल्मली आदि द्वीपों तथा लोकालोक पर्वत का निरूपण है। इसके बाद मार्त्तण्ड, हिरण्यगर्भ के रहस्य को बतलाते हुये सूर्य की स्थिति, गति का विवरण विस्तार के साथ है। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि ग्रहों की गति का उल्लेख है। फिर अतल, वितल आदि सात लोकों के दानवों के नाम और कामों की चर्चा है।

स्कन्ध के अन्त में नरकों से बचने के लिये देवी की उपासना-विधि बतलायी गयी है, जिसमें प्रत्येक तिथि, योग, करण, नक्षत्र, दिन के सम्बन्ध में पूजासामग्री का विवरण तथा प्रत्येक मास की तृतीयातिथि को देवी की उपासना-पद्धति का निरूपण है।

नवम स्कन्ध

इसमें पचास अध्याय हैं, जिनमें प्रधानरूप से लक्ष्मी, सरस्वती के अतिरिक्त गंगा, तुलसी, सावित्री, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, षष्ठीदेवी, मंगलचण्डी, मनसादेवी, सुरभी, राधा और दुर्गा के आख्यान हैं। स्कन्ध का आरम्भ सृष्टि की प्रकृति के विवरण से होता है। मूलप्रकृति

की दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा ये पांच प्रकृतियां सृष्टि के आधार हैं। सृष्टि की प्रक्रिया में कुशल तथा सत्व, रज, तम इन तीनों से युक्त को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति शब्द के निर्वचन से प्रकृति का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के मन में सृष्टि की इच्छा होते ही मूलप्रकृति परमेश्वरी प्रकट होकर पूर्वोक्त पांच रूप धारण कर लेती है, जिनसे अनेक प्रकार की सृष्टि होती है। इन पांच प्रकृतियों के विवेचन के बाद परमात्मा श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधा-शक्ति से प्रकट हुये विराट् रूप वाले बालक का वर्णन है। इसके आगे प्रकृतियों की पूजाविधि तथा उनकी काली, वसुन्धरा, गंगा आदि कलाओं का उल्लेख है। सरस्वती पूजा विधि में 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' इस अष्टाक्षर मन्त्र के जप तथा सरस्वती कवच और स्तुति के महत्व का प्रतिपादन हुआ है। फिर लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा का परस्पर शापवश भारतवर्ष में कलारूप से आनेका रोचक उपाख्यान है।

आगे भक्तों के महत्त्व और लक्षण के विस्तृत विवेचन के बाद पृथ्वी, गंगा और तुलसी की उत्पत्ति का निरूपण हुआ है। तदनन्तर कुशध्वज की कन्या वेदवती के उपाख्यान प्रसंग में सीता तथा द्रौपदी के पूर्वजन्म का उल्लेख है। जिसमें वेदवती दूसरे जन्म में सीता के रूप में प्रकट होती है। जिसे वन में अग्निदेव राम के धरोहर के रूप में रखकर उन्हें छायासीता समर्पित करते हैं, जिसे रावण हरण कर लेता है। फिर राम के द्वारा रावण के वध होने पर अग्निदेव मूल सीता को लौटा देते हैं। अग्नि के आदेश से छाया-सीता पुष्कर-क्षेत्र में तपस्या करती है। वही तीसरे जन्म में द्रुपद के यहां जन्म लेकर द्रौपदी के नाम से विख्यात होती है।

छायासीता ने पुष्कर में तप करते समय शंकर से पांच बार 'पति दो' कहकर वर मांगा था, जिससे उसके पांच पति हुए।

इसके आगे तुलसी और सावित्री की विस्तृत कथा तथा भुवनेश्वरी की कला के रूप में प्रकट हुई स्वाहा आदि के उपाख्यान हैं, जिनमें प्रत्येक के मन्त्र तथा पूजाविधि का सांगोपांग उल्लेख है।

दशम स्कन्ध

इसमें तेरह अध्याय हैं, जिनमें मुख्यतः स्वायम्भुव, स्वारोचिष आदि चौदह मनुओं का उपाख्यान है। प्रसंगतः विन्ध्याचल के द्वारा सूर्य का मार्ग निरोघ तथा भ्रामरी देवी के द्वारा अरुण दानव के वध का वर्णन है। ब्रह्मा के मानसपुत्र स्वायम्भुव मनु के विषय में कहा गया है कि उन्होंने सृष्टि कार्य में विघ्न न हो इसके लिये देवी के बाग्-बीज मन्त्र का जप किया। जिससे देवी उन्हें दर्शन देकर विंध्यालय पर चलीं गयी। इसी प्रसंग में विन्ध्याचल की भी कथा है जिसमें नारद से सूर्य द्वारा सुमेरु गिरि की परिक्रमा सुनकर

विन्ध्याचल का सूर्य के मार्ग को रोकने पर देवताओं की प्रार्थना से अगस्त्य का काशी छोड़कर जाने का विस्तृत विवरण है।

इसके बाद स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष इन पांच मनुष्यों का संक्षिप्त परिचय है। फिर सप्तम मनु वैवस्वत का उल्लेख है, जो भगवती के परमभक्त श्राद्धदेव के नाम से प्रसिद्ध थे। आठवां सावर्णि मनु हैं, जो पूर्वजन्म में सुरथ नाम के राजा थे। यहां राजा सुरथ और सुमेधा मुनि का संवाद है, जिसमें मधु कैटभ, महिषासुर और शुम्भ-निशुम्भ के वध की कथा है। देवी की उपासना से वे दूसरे जन्म में सावर्णि मनु हुये। सावर्णि मनु के बाद दक्ष-सावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि तथा विष्णु सावर्णिं इन छः मनुओं का संक्षिप्त परिचय है। ये सभी भगवती भ्रामरी देवी के परम उपासक थे। उनकी कृपा से इनके सभी मनोरथ सिद्ध होते रहते थे।

इसी प्रसंग में भ्रामरी देवी का उपाख्यान है जिसमें अरुणदानव का ब्रह्मा से वर प्राप्त करना, उसे मारने के लिये देवताओं की प्रार्थना पर देवी का प्रकट होना तथा अपने हाथ से असंख्य भौरों को उत्पन्न कर अरुणदानव को मारने की चर्चा है।

एकादश स्कन्ध इसमें चौबीस अध्याय हैं। इसमें सदाचार, सत्कर्म का वर्णन है, जिसमें प्रातःकृत्य, शौचादिविधि, स्नानविधि, रुद्राक्षधारण महिमा, भस्म-धारण, प्रातः सन्ध्या तथा गायत्रीपुरश्चरण आदि का विशद निरूपण हुआ है। सदाचार के विषय में कहा गया है कि सत्कर्म ही मनुष्य के लिये कल्याण करने वाला परम धर्म है, जिससे मनुष्य इस लोक में सुख का उपभोग कर परलोक में परमसुख मोक्ष को प्राप्त करता है।

आगे धर्म की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि धर्म के श्रुति और स्मृति-ये दो नेत्र हैं तथा पुराण हृदय है। इसलिये इन तीनों के वचन ही धर्म है। प्रातः कृत्य में रात्रि के चौथे प्रहर ब्राह्ममुहूर्त में जागकर ब्रह्म का ध्यान, प्राणायाम, देवी की स्तुति तथा गुरु को प्रणाम करने की विधि बतलाई गयी है। फिर क्रमानुसार मल-मूत्र-त्याग, स्नान तथा सन्ध्या की विधि, गायत्री के महत्व के प्रसंग में रुद्राक्ष-धारण विधि तथा रुद्र के नेत्र बिन्दु से उत्पन्न वृक्ष के अड़तीस प्रकार के फलरूप रुद्राक्ष का विशद वर्णन है। तदनन्तर गायत्री मन्त्र के जप, पूजन एवं मध्याह्न, सन्ध्या तर्पण, सांय की विधि का निरूपण है। फिर गायत्री पुरश्चरण तथा प्राणाग्निहोत्र का विवेचन है, जिसमें पुरश्चरण के लिये पवर्त-शिखर, नदीतट, विल्ववृक्ष आदि स्थान का निर्देश तथा मन्त्रशुद्धि, आत्मशुद्धि, अन्नशुद्धि और भोजन के परिमाण का उल्लेख है।

इसी प्रकार पुरश्चरण प्रारम्भ करने के लिये नक्षत्र, दिन, मास तथा पक्ष का निर्णय है। प्राणाग्नि होत्र में पंचप्राण के लिये आहुति का विधान है। अन्तिम के दो अध्याय प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, कृच्छ्र और चान्द्रायणव्रत की विधि का विवरण तथा कामना सिद्धि एवं विघ्न निवारण के लिये गायत्री में अनेक विधियों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है।

द्वादश स्कन्ध

इसमें चौदह अध्याय हैं, जिनमें गायत्री से सम्बन्धित सभी विषयों का वर्णन है। सर्वप्रथम छह अध्यायों में गायत्री के चौबीस अक्षरों के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, रूप, मुद्रा तथा गायत्री का ध्यान, कवच, हृदय स्तोत्र और सहस्रनाम का उल्लेख है। इसके बाद गायत्री या किसी भी मन्त्र के अनुष्ठान के लिये दीक्षित होना आवश्यक माना गया है। इसीलिये यहां दीक्षाविधि का विशेष रूप से निरूपण हुआ है। इसके बाद केनोपनिषद् की कथा है जिसमें देवताओं के विजय-गर्व को दूर करने के लिये भगवती का प्रकट होना तथा अग्नि और वायु की शक्ति को स्तंभित कर देवराज इन्द्र को ज्ञानोपदेश देने का वर्णन है।

अन्त में मणिद्वीप के विस्तृत विवरण के बाद बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी भुवनेश्वरी को प्रणाम करते हुये इस देवी भागवत की पूर्ति की गयी है।

देवीभागवत और श्रीमद्भागवत

इन दो ग्रन्थों के एक नाम में आकार-प्रकार तथा प्रतिपाद्यविषय की एकता ही कारण है। दोनों में बारह स्कन्ध, अठारह हजार श्लोक तथा अध्याय की संख्या भी प्रायः एक ही है। देवी भागवत में तीन सौ अठारह अध्याय हैं और श्रीमद्भागवत में तीन सौ पैंतीस। दोनों में सच्चिदानन्द, एक अद्धैततत्त्व का निरूपण शक्ति और शक्तिमान के रूप में हुआ है, जिस प्रकार देवी भागवत में भगवती ने सभी शास्त्रों को सार **"सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्"** इस आधे श्लोक में कह दिया। उसी तरह श्रीमद्भागवत में भी भगवान् ने-

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्। (२।९।३२)

कहा है। दूसरी बात यह है कि ये दोनों भागवत वेद और वेदान्त के सार ग्रन्थ हैं। इसका उल्लेख इन पुराणों में ही किया गया है। इसलिये ये एक दूसरे के सर्वथा पूरक हैं भेदक नहीं। यही कारण है कि दोनों के नाम में भागवत पद का प्रयोग हुआ है।[1]

देवी भागवत का दार्शनिक पक्ष

पुराणग्रन्थों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश आदि के वर्णन प्रसंग में आध्यात्मिक दृष्टि से दार्शनिक पक्ष का भी निरूपण हुआ है। जगत् के मूलतत्व तथा जीव के बन्धमोक्ष का भी

---

१. पुराणों में कहीं कहीं 'भागवत' पुराण का उल्लेख एवं लक्षण मिलते हैं। इन स्थलों में देवीभागवत लक्षित हुआ है या श्रीमद्भागवत (अथवा विष्णु-भागवत)-इस पर दीर्घकाल से एक विवाद चला आ रहा है। इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए प्रस्तुत खण्ड का भूमिका भाग तथा भागवतपुराण लेख द्रष्टव्य हैं।

विवेचन प्रायः प्रत्येक पुराण में किया गया है। देवीभागवत शक्तिप्रधानपुराण है। इसमें शक्ति को ही जगत् का मूलकारण माना गया है। यह जगत् शक्ति का विवर्तरूप है। शक्ति से भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं है- इसका उल्लेख देवीभागवत के प्रारम्भ में ही कर दिया गया है, जो इस प्रकार है -

श्लोकार्धेन तयाप्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम्।
सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।। (१।१६।५२)

आसक्ति को बन्धन का कारण बताते हुये कहा गया है कि लोहे और काठ की बेड़ी से मनुष्य मुक्त हो सकता है, किन्तु स्त्री-पुत्र की आसक्ति में जकड़ा हुआ मनुष्य कभी भी मुक्त नहीं होता-

कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियन्त्रितः।
पुत्रदारैनिर्बद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित्।। (१।१४।३८)

दूसरी बात यह भी कही गयी है कि आत्मा तो निर्विकार तथा निर्मल है, इसलिये उसका बन्ध व मोक्ष नहीं हो सकता। बन्ध तथा मोक्ष का कारण तो समल तथा निर्मल मन ही है। इसलिये शरीरशुद्धि की अपेक्षा मन की शुद्धि पर ध्यान रखना चाहिये। यह बात श्रीजनक ने शुकदेव से इस प्रकार कही है -

आत्मागम्योनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन।
स कथं बध्यते ब्रह्मन् निर्विकारो निरञ्जनः।।
मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज।
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन् सर्वं भवति निर्मलम्।।
भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम्।।
न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।। (१।१८।३६-३९)

'ओम्'- इस प्रणव की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि -

अकारो भगवान् ब्रह्माप्युकारः स्याद् हरिः स्वयम्
मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी।।
उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः।।

अर्थात् ओम् प्रणव के अकार, उकार तथा मकार ये वर्ण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के क्रमशः अधिष्ठाता हैं। इनके अतिरिक्त अर्धमात्रा के रूप में आद्याशक्ति महेश्वरी हैं। इन्हें

विद्वानों ने उत्तरोत्तर कहा है। स्वयं देवी ने अपने चिदात्मक स्वरूप का परिचय कराते हुये कहा है -

अहमेवाऽऽस पूर्वं तु नान्यत् किंचिन्नगाधिप।
तदात्मरूपंचित्संवित् परब्रह्मैकनामकम्।। (७।३२।२)

प्रकाशरूप ज्ञान के अतिरिक्त जगत् नाम की कोई वस्तु नहीं। यह जगत् मायिक है असत्य है। सत्य तो केवल चिन्मय प्रकाश में ही है। इसलिये मुझमें अपने चित्त को लगाना चाहिये।

संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम।
अतः संविदि मदरूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम्
संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्यामायामयं जगत् (७।३६।४४-४५)

इस प्रकार वेदान्तदर्शन के अद्वैततत्त्व का उपपादन देवीभागवत में विशेष रूप से हुआ है। सप्तम स्कन्ध के छत्तीसवें अध्याय में मुण्डकोपनिषद् के नव मन्त्रों का उल्लेख अक्षरक्षः हुआ है।

धनुर्गृहीत्वोपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत।

इस मंत्र से लेकर-'बह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्मपश्चाद् ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्धं च प्रसृतं ब्रह्मैदं विश्ववरिष्ठम्।' यहां तक के मंत्र विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट है कि देवीभागवत का दार्शनिक आधार उपनिषद् है। इसलिये इस पुराण को वेदों का सार कहा गया है -

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तम।
वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि।। (१२।१४।२६)

देवी भागवत का रचनाकाल और देश

देवी भागवत को बहुत प्राचीन नहीं माना जा सकता, क्योंकि निबन्धकारों ने भागवत के नाम से जिन श्लोकों को उद्धृत किया है, उनमें से कोई भी देवीभागवत में नहीं मिलता। वे भागवतनाम से श्रीमद्भागवत ही समझते थे, इसमें कोई संशय नहीं है। प्राचीन निबन्धकारों ने कहीं भी 'देवी-भागवत' नाम का भी उल्लेख नहीं किया है। देवीभागवत ६।२१ अ. में दान-विवरण रहने पर भी बल्लालसेन ने दानसागर में देवीभागवत का कोई उल्लेख नहीं किया। राधानाम का स्पष्टतया उल्लेख देवीभागवत में हैं, श्रीमद्भागवत में

नहीं। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इस पुराण की पूर्व सीमा ६५० ई. से प्राचीन नहीं हो सकती।

चूंकि देवी भागवत को श्रीधरस्वामी से प्राचीन मानना उचित है, अतः यह पुराण १२०० ई. से बाद का भी नहीं हो सकता। रचनाकाल के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार कर डा. हाजरा ने कहा है कि इसका रचना काल ११-१२ शती है (द्र. स्टडीज इन द उपपुराणज, भाग-२ में देवी भागवत शीर्षक प्रकरण)।

कुछ विद्वानों ने इस पुराण का रचनाकाल ६०० से १३५० ई. के बीच माना है। टी. एन्. रामचन्द्रन का कहना है कि यह पुराण ईस्वी छठी शती के बाद का नहीं हो सकता। डा. हाजरा ने विस्तार से विचार कर यह दिखाया है कि इस मत का आधार युक्ति दृढ़ नहीं है।

इस पुराण की रचना बंगाल में हुई थी-यह बहुतों का मत है। इसकी भाषा में कहीं कहीं बंगलाभाषाविधि की छाया दिखाई देती है, जैसा कि डा. हाजरा ने कई स्पष्ट उदाहरण देकर दिखया है। व्यभिचारिणी नारी के लिए पुङ्गीशब्द इस पुराण में प्रयुक्त हुआ है (३) ३५।५।२६। यह असंस्कृत शब्द हैं। आज भी यह शब्द पूर्वबङ्गाल में इस अर्थ में प्रयुक्त होता है[1]।

कई विद्वानों की यह मान्यता है कि यह पुराण बंगाल से भिन्न प्रान्त में रचित हुआ था। इसके अधिक संख्यक हस्तलेख बंगाल से भिन्न प्रान्तों में मिलते हैं। इसमें उल्लिखित नवरात्रव्रत बंगाल में अप्रचलित है। देवीभागवत को ही भागवत मानने वाले निबन्धकरों में कोई बंगाल के नहीं है।

संभवतः यह पुराण काशी में रचित हुआ था, क्योंकि इसमें सभी क्षेत्रों में काशी की श्रेष्ठता मानी गई है जो 'सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति' (७।३८।७२) वाक्य से ज्ञापित होता है। उपर्युक्त तथ्यों से तथा सम्बन्धित अन्यान्य विषयों पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि देवीभागवत का लेखक मूलतः बंगीय स्मार्त हैं, पर उन्होंने इसे संभवतः काशी में लिखा था।

देवी भागवत में सुभाषित

इस पुराण में अनेक रोचक सुभाषित मिलते हैं, जिनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं -

१. **सर्वः स्वार्थवंशो लोकः कुरुते पातकं किल (१।५।२२)**

२. **अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।**
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः। (१।५।८३)

---

१. वसउतः पुगृगी-यह पुंश्चली का ही विग्रह रूप है।

३. परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः।
दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा। (१।११।५६)

४. नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः।
निरुद्यमं प्रशंसन्ति कातरा न च सोद्यमाः। (५।५।२)

५. नाभुङ्क्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। (६।२६।६६-७०)

६. दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी।
दानभोगौ कृतिनां च नाशः पापात्मनां किल ।। (६।१६।४०)।

देवी भागवत की टीका

श्रीनीलकण्ठदेव ने देवीभागवत की संस्कृत टीका की है, जो 'तिलक' नाम से प्रसिद्ध है। वे अठारहवीं सदी के मध्य में विद्यमान थे। (महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ दूसरे थे, जो सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में माने जाते हैं)। नीलकण्ठ शैव ने तान्त्रिक विधियों एवं मतों का भी उल्लेख किया है। यह टीका १८६७ ई. में बम्बई से तथा १८८७ ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुई है।

देवी भागवत का हृदयरूप देवीगीता पर श्रीनीलकण्ठ की संस्कृत टीका तो है ही इधर अर्चना नाम की हिन्दी व्याख्या भी डा. उपेन्द्र पाण्डेय ने की है, जो वाराणसेय संस्कृत संस्थान से १९८६ ई. में प्रकाशित हुई है। इसमें उद्‌धृत उपनिषद् अंशों का पूर्ण विवरण दिया गया है। साथ ही यत्र-तत्र टिप्पणी में गूढ रहस्यों का प्रकाशन भी हुआ है। अप्रोक् ने अपनी सूची में देवीभागवत की अन्य दो टीकाओं का भी उल्लेख किया है (भाग १, पृ. २६१)।

इस पुराण का स्वामी विज्ञानानन्द कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित है। (सेक्रेड बुक्स आफ हिन्दूज् सीरीज में)। हरिचरण वसु कृत बंगला अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

देवीभागवत का बंगला संस्करण का काशी प्रेस, कलकत्ता से तथा देवीनगरी संस्करण काशी से प्रकाशित हुए हैं। इसके अन्य संस्करण भी प्रचलित हैं।

अग्निपुराण[1]

विद्वज्जनों के मध्य "विश्वकोश" अभिधान से समादृत अग्निपुराण का पुराण-वाङ्मय में विशिष्ट स्थान हैं। यह पुराण सर्ग आदि पञ्चलक्षण तक सीमित न रहकर अनेक शास्त्रों तथा आचार्यों के मतों को उपस्थापित करता है। स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड (२.४७) के अनुसार अग्नि का माहात्म्य प्रकाशन करना ही अग्निपुराण का लक्ष्य है। इसी प्रकार का मत मत्स्य पुराण (५३.२८) का है- "जिस पुराण में ईशानकल्प के वृत्तान्त का आश्रय लेकर अग्नि ने वशिष्ठ के प्रति जो उपदेश दिया है, उसे अग्निपुराण अथवा आग्नेय (= अग्निप्रोक्त) पुराण कहते हैं।

नारदीयपुराण (१.९९.१-२) में अग्नि पुराण का परिचय इस प्रकार दिया गया है-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तदाग्नेयपुराणकम्।
ईशानकल्पवृत्तान्तं वसिष्ठायानलोऽब्रवीत्।।
तत्पञ्चदशसाहस्रं नानाचरितमद्भुतम्।
पठतां श्रृण्वतां चैव सर्वपापहरं नृणाम्।।

स्वयं अग्निपुराण (१.१३) अपने को "विद्याओं का सार" घोषित करता है-

विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते।
विद्यासारं पुराणं यत् सर्वं सर्वस्य कारणम्।।

अग्निपुराण को विष्णु का रूप बतलाया गया है -

आग्नेयाख्यं पुराणं तु रूपं विष्णोर्महत्तरम्।

पुराणसूची में स्थान तथा श्लोक परिमाण

अष्टादश पुराणों की उपलब्ध सूचियों में अग्नि या आग्नेय पुराण का उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है। पुराणों के गणना-क्रम में अग्निपुराण का आठवां स्थान है। मुद्रित पुराण में अध्यायों की संख्या ३८३ है जो प्रायः सभी संस्करणों में समान है, परन्तु श्लोक संख्या में पर्याप्त अन्तर प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण (५३.२९) तथा देवीभागवत (१.३.९) इसे

1. प्रस्तुत निबन्ध के लिए मोर प्रकाशन, कलकत्ता (१९५७) से प्रकाशित मूल "अग्निपुराण" का उपयोग किया गया है।

१६००० श्लोकों वाला बतलाते हैं। नारदीय पुराण (१.९९.२) और स्वयं अग्निपुराण (३८३.६४) इसके श्लोकों की संख्या १५००० मानते हैं। अग्निपुराण के एक अन्य स्थान (२७२.११) पर इसे १२०० श्लोकों वाला कहा गया है। भागवत (१२.१३.५) इसमें १५४०० श्लोकों का होना स्वीकार करता है।

मुद्रित अग्निपुराण में जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उनका क्रमपूर्वक उल्लेख इस पुराण के अन्तिमाध्याय (३८३ अ.) में प्राप्त है। अग्निपुराण के विषयों की सूची नारदीय पुराण (१.९९.१-२२) में भी उपलब्ध है। नारदीयपुराण में कथित विषयक्रम का मुद्रित अग्निपुराण से सर्वदा साम्य नहीं है। विद्वानों का मत है कि सूचीकर्ता ने जिस अग्निपुराण का उपयोग सूची निर्माण में किया था, वह प्रचलित अग्निपुराण से किन्हीं अंशों से पृथक था।

पद्मपुराण (उत्तर ख. २६३.८१) अग्निपुराण को तामसपुराण के रूप में परिगणित करता है। तामसपुराण उसे कहते हैं जिसमें अग्नि अथवा शिव के माहात्म्य का प्राधान्य रहता है। मत्स्यपुराण (५३.२८) के अनुसार इस पुराण का उपदेश अग्नि ने वसिष्ठ को दिया था। अग्निपुराण (२७१.१७) के अनुसार इस पुराण के मूल कर्ता एवं श्रोता स्वयं जनार्दन हैं–

आग्नेयाख्य-पुराणस्य कर्ता श्रोता जनार्दनः।
तस्मात् पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत्।।

इस पुराण के कुछ अंश पृथक् ग्रन्थ के रूप में भी प्रसिद्ध हो गये हैं, यथा- "ऋग्यजुस्सामथर्वविधानम्" (२५९-२६२ अ.) (खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई, (१९३७) से प्रकाशित)। "यजुर्विधानम् (२६० अ.) नामक ग्रन्थ चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित है।

अग्निपुराण का देश

अग्निपुराण की रचना का स्थान अद्यावधि अनिर्णीत है। यह पुराण दक्षिण भारत में रचित हुआ था-ऐसा कहने का कोई हेतु दिखाई नहीं पड़ता। इस पुराण में गङ्गा तथा गया का माहात्म्य प्रमुखता से वर्णित है। इस आधार पर अग्निपुराण की रचना का स्थान गङ्गा तथा गया के निकट पूर्वोत्तर भारत में निश्चित किया जा सकता है। हरप्रसाद शास्त्री मानते हैं कि इस पुराण की रचना बंगाल अथवा बिहार में हुई है। सुशील कुमार दे के अनुसार -अग्निपुराण की सर्वाधिक मातृकाएं बंगाली अथवा देवनागरी लिपि में प्राप्त हैं। बंगाली-लिपि में उपलब्ध मातृकाओं में श्लोकसंख्या अधिक है–इस आधार पर कहा जा सकता है कि इसकी रचना भी पूर्वोत्तर भाग में ही हुई है। डा. हाजरा मानते हैं कि इस पुराण की रचना

पूर्वी ओड़िशा अथवा पश्चिम-बंगाल में हुई है।[1] इस पुराण में उपलब्ध तान्त्रिक विषयों का बाहुल्य देखकर कतिपय विद्वान् इसकी रचना का क्षेत्र मिथिला को मानते हैं।

अग्निपुराण का काल

अग्निपुराण का काल स्थिर करना दुष्कर है, क्योंकि इस पुराण में उल्लिखित विविध विषयों के अन्तर्भाव का काल एक नहीं हो सकता। इस पुराण के साहित्यशास्त्रीय अंश को विद्वान् दण्डी (सातवीं शती) से उत्तरवर्ती तथा भोजराज (ग्यारहवीं शती) के सरस्वती कण्ठाभरण से पूर्ववर्ती मानते हैं।[2] अल्बेरूनी (१०३० ई.) ने अग्निपुराण का उल्लेख किया है। पार्जिटर अग्निपुराण का काल ९०० ई. मानते हैं।[3] डा. हाजरा मानते हैं कि यद्यपि अग्निपुराण के काल के विषय में विभिन्न मत हैं, परन्तु यदि हम इसकी रचना का काल नवीं शती मानें तो इसमें कोई गम्भीर आपत्ति नहीं हो सकती।[4] डा. ज्ञानी इस पुराण की रचना का काल (विषयों का संयोजन) क्रमिक विकास रूप में ७०० ई. से ११०० तक के मध्य स्वीकार करते हैं।[5] म.म. काणे इसके काव्यशास्त्रीय भाग का काल ९०० या १०५० ई. मानते हैं।[6] डा. सुशील कुमार दे पर्याप्त आलोचन के उपरान्त इस पुराण के अलङ्कार प्रकरण को ९०० ई. के मध्य का मानते हैं।[7] एम.दत्त लिखते हैं कि अग्निपुराण रूपी विश्वकोष की रचना कब हुई यह कहना दुष्कर है, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि यह रचना मुगल आक्रमण के पूर्व की है।[8]

अग्निपुराण एवं वह्निपुराण

पुराणों में अग्निपुराण के लिए अग्नि के साथ ही इसके अन्य पर्याय आग्नेय, अग्नि-उक्त, वह्नि आदि भी प्रयुक्त हैं। परन्तु वह्नि पुराण नाम से एक अन्य पुराण भी उपलब्ध है (द्र.-पौराणिक रेकॉर्डस : हाजराकृत पृ. १३६) डा. हाजरा ने इन दोनों पुराणों का तुलनात्मक विवेचना किया है। डा. हाजरा मानते हैं कि प्राचीन निबन्धकारों ने 'अग्निपुराण' अभिधान से जो वचन उद्धृत किये हैं वे वह्निपुराण से ही लिए गये हैं। अग्निपुराण में कर्मकाण्ड एवं तान्त्रिकता का प्राधान्य है। इसी कारण वल्लालसेन ने अपने

---

१. अग्निपुराण : (भूमिका) नाग पब्लिशर्स दिल्ली, पृ.-६-७
२. अग्निपुराण : सं. बलदेव उपाध्याय (भूमिका) चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, पृ. ४.
३. ऐन्शियण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन (पार्जिटरकृत) पृ. ८०.
४. पौराणिक रिकार्ड्स (हाजराकृत), पृ. १३८
५. अग्निपुराण-ए स्टडी (एस.डी. ज्ञानीकृत) २८८.
६. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास (काणेकृत), पृ. ९.
७. हिस्ट्री आफ पोयटिक्स (एस.के. दे कृत) पृ. ९७.
८. अग्निपुराण इंग्लिश ट्रान्सलेशन-एम.एन. दत्ता कृत, पृ. ५

ग्रन्थ 'दानसागर' में इसके वचनों का संकलन नहीं किया है। वह्निपुराण के अनेक श्लोक अग्निपुराण में समाविष्ट हो गये हैं। वह्निपुराण का काल ईसा की चौथी-पांचवीं शती स्थिर किया जाता है। वह्नि का संकलन तीन क्रमों में अनुमानित है। प्रथम यजुर्वेदीय ब्राह्मणों द्वारा, द्वितीय वैष्णवों द्वारा तथा तृतीय अन्य द्वारा विविध विषयों को संकलित किया गया है। द्र.-अग्निपुराण : सं. बलदेव उपाध्याय, पृ. २७-२८)[1]

अग्निपुराण में धर्मशास्त्रीय विषय

अग्निपुराण में धर्मशास्त्रीय आचारों-व्रत, दान, श्राद्ध, तीर्थ-माहात्म्य आदि का विस्तृत विवेचन समुपलब्ध है। इनका यहां संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है-

व्रतः-इस पुराण में तिथि, वार, नक्षत्र, मास, ऋतु आदि व्रतों का वर्णन माहात्म्य फल सहित किया गया है; प्रमुख व्रत हैं :-

तिथिव्रत-प्रतिपद (धन्यव्रत, शिखिव्रत); **द्वितीया**-अशून्य शयन, कान्ति, विष्णुः **तृतीया** -सौभाग्यतृतीया (ललिता तृतीया को गौरी व्रत), दमनक-तृतीया; **चतुर्थी**-अङ्गारक (मङ्गलवार युक्त चतुर्थी), अविघ्नाचतुर्थी; **पञ्चमी**-श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक शुक्लपक्ष की पञ्चमी को नागों (वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक, धनञ्जय) का पूजन।

षष्ठी - स्कन्दषष्ठी (कार्तिककृष्ण), अक्षयषष्ठी (भाद्रपदकृष्ण)।

सप्तमी - सर्वाप्ति, नन्द, अपराजिता, पुत्रीयाव्रत।

अष्टमी - कृष्णाष्टमी (भाद्रपदकृष्णपक्ष रोहिणीयुक्त), बुधाष्टमी।

नवमी - गौरीनवमी (पिष्टका-पिष्टान्न भोजन), महानवमी- (नवदुर्गास्थापन, पूजन, दशाक्षरमन्त्र, ओम्! दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वहा का जप)।

दशमी - एक समय भोजन तथा व्रत समाप्ति पर गौ (दस) तथा स्वर्णप्रतिमा का दान।

एकादशी - दोनों पक्षों की एकादशी।

द्वादशी - मदनद्वादशी (चैत्र शुक्लपक्ष), गोविन्द (फाल्गुन शुक्लपक्ष), विशांक (आश्विन), गोवत्स (भाद्रपद), तिलद्वादशी (फाल्गुन कृष्णपक्ष), सम्प्राप्ति (पौष शुक्लपक्ष), श्रवण (भाद्र शुक्लपक्ष), अखण्ड (मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष)।

त्रयोदशी - अनङ्ग (कामदेव) त्रयोदशी को हर, योगेश्वर, महेश्वर वीरभद्र, सुरूप, महारूप, प्रद्युम्न, उमापति, शूलपाणि, सद्योजात, त्रिदशाधिपति, विश्वेश्वर आदि शिव के विभिन्न रूपों की अर्चना; कामत्रयोदशी व्रत।

---

१. इस वह्निपुराण के विशद विवरण के लिए डा. हाजरा कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ.-६७-१७१ देखें। इसमें वह्नि पुराण गत सभी अध्यायों का सार दिया गया है- (हस्तलेख के आधार पर)। यह पुराण अभी तक अप्रकाशित है।

चतुर्दशी - फलचतुर्दशी अनन्तव्रत, वासुदेव के अनन्त स्वरूप का ध्यान। शिवरात्रि (फाल्गुन कृष्णपक्षचतुर्दशी)।

पूर्णिमा - **अमावस्या**-अशोक (फा.शु.प.) वृषोत्सर्गव्रत, वटसावित्री-(मा.कृ.अमा. त्रयोदशी से अमावस्या तक त्रिरात्रव्रत।)

वारव्रत - रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, तथा शनिवार से विभिन नक्षत्रों के योग से प्रारम्भ होने वाले व्रत।

नक्षत्र व्रत - सभी नक्षत्रों में भगवान् की मूर्ति के अङ्गों का क्रमेण पूजन।

दिवस व्रत - (दिवस पर्यन्त चलने वाले व्रत) त्रिरात्र, पञ्चरात्र, धेनु, पयोव्रत, कल्पवृक्ष, एकभुक्त, भास्करकृच्छ्रव्रत।

मासव्रत - चातुर्मास्य, चान्द्रायण, प्राजापत्य, मौन, कौमुदव्रत।

ऋतुव्रत - वर्ष, संक्रान्ति व्रत, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, (ईन्धनदान-अग्निव्रत) सारस्वत-व्रत, देवीव्रत, उमाव्रत, मूलव्रत, उमेश, दीपदानव्रत।

दान- विविध दानों का उल्लेख है (२०६-२१३ अ.)। षोडशमहादानों के नाम, संख्या विधि, क्रम तथा माहात्म्य का प्रतिपादन है। इन महादानों के नाम तथा अन्य पुराणों में उपलब्ध षोडश महादानों के अतिरिक्त अन्य अनेक दानों यथा- गो, वृष, महिषी आदि का भी उल्लेख प्राप्त है।

तीर्थ - (१०६-११७ अ.) तीर्थ-माहात्म्य प्रतिपादन में गङ्गा, प्रयाग, नर्मदा आदि का विस्तृत विवेचन उनकी महत्ता के साथ किया गया है। यहाँ कहा गया है कि गङ्गा जल के स्पर्श से मनुष्य पवित्र होता है पर नर्मदा के दर्शन मात्र से पवित्रता प्राप्त होती है। वाराणसी में महादेव सदैव विद्यमान रहते हैं इसलिए इसकी संज्ञा 'अविमुक्त' है। यहां गया का महत्त्व भी प्रतिपादित हुआ है।

श्राद्ध - गया में करणीय श्राद्ध का विस्तृत वर्णन है। प्रेतशिला, गयाशिर तथा प्रभास स्थित प्रेतकुण्ड पर पिण्डदान का विधान है। श्राद्ध का विस्तृत वर्णन ११७ तथा १६३ अ. में प्राप्त है। श्राद्धों के वर्णन में एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, आभ्युदयिक, काम्यकल्प तथा अमावस्या आदि को सम्पन्न होने वाले श्राद्धों की विधि वर्णित है।

अग्निपुराण की भाषा

इस पुराण की भाषा सरल एवं सुबोध है। इसमें गद्य में रचित मन्त्र भी उपलब्ध हैं; द्रष्टव्य अ.-८८, १३३, १३४, १३५, १३७, १४२, १४६, १४७, १४८, २६४, २६५, २६७, ३२२-३२४, ३४६ आदि।

अग्निपुराण में छन्द

इस पुराण में अनुष्टुप छन्द का ही बाहुल्य है। अन्य छन्द अल्प मात्रा में ही प्रयुक्त है। इन्द्रवज्रा ११५.४० में, उपेन्द्रवज्रा १६६,१६ में उपजाति १६६.१५, २५५.३५ में, वंशस्थ २७०,१४, १५ में आदि। स्रग्धरा आदि दीर्घ छन्द इस पुराण में अनुपलब्ध हैं।

अग्निपुराण के संस्करण

अग्निपुराण के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

१. आनन्दाश्रम सीरीज, पूना (संपा. हरि नारायण आप्टे) १६०० ई.।
२. जीवानन्द विद्यासागर (भट्टाचार्य) संस्करण, कलकत्ता।
३. गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के सप्तदश पुष्प रूप में मोर प्रकाशन कलकत्ता से, १६५७ में प्रकाशित।
४. वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई (क्षेमराज श्रीकृष्णदास सम्पादित) से प्रकाशित हुआ था जिसका पुनर्मुद्रणनाग पब्लिशर्स, दिल्ली ने किया है (फोटो आफसेट) १६८५
५. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी से (संपा. आचार्य बलदेव उपाध्याय) प्रकाशित, १६६६।
६. गीताप्रेस गोरखपुर से "कल्याण" के दो विशेषाङ्कों (१६७०, ७१) में अग्निपुराण का हिन्दी अनुवाद मात्र प्रकाशित।
७. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से भी यह पुराणसानुवाद प्रकाशित है (१६८५)।
८. अग्निपुराण का अंग्रेजी अनुवाद (अनु. मन्मथनाथ दत्त) दो भागों में कलकत्ता से (१६०३-०४) प्रकाशित हुआ था जिसका पुनः प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी (१६६७) ने किया है।
६. अग्निपुराण का एक अन्य अंग्रेजी अनुवाद ऐन्शियण्ट इण्डियन ट्रेडीशन एण्ड मायथालोजी के अन्तर्गत चार भागों में (वालूम्स२७-३०) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से प्रकाशित है।
१०. बंगवासी प्रेस, कलकत्ता (सं. पंचानन तर्करत्न) से प्रकाशित (बंगला अनुवाद के साथ)।

अग्निपुराणोक्त काव्यालङ्कारशास्त्र

इस पुराण के ग्यारह अध्यायों (३३७-३४७ अ.) में काव्यालङ्कार-शास्त्र का विस्तृत विवेचन है। उत्तरवर्ती साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने इस साहित्यिक सामग्री को पर्याप्त आदर देते हुए अपनी प्रतिभा के विकास में इसका उपयोग किया है। काव्यप्रकाशादर्श की टीका में महेश्वर ने लिखा है कि-"भरत ने सुकोमल राजकुमारों को स्वादुकाव्य-प्रवृत्ति द्वारा

अलङ्कारशास्त्र में प्रवृत्ति हेतु, अग्निपुराण से संगृहीत कर तथा कारिकाओं द्वारा संक्षिप्त कर अलङ्कारशास्त्र का प्रणयन किया।[1] पाश्चात्य विद्वान सिल्वा लेवी का भी यही अभिमत है कि-"नाट्यशास्त्र की कारिकाएं अग्निपुराण से उद्धृत हैं।[2]

सरस्वती भवन (पुस्तकालय) वाराणसी में काव्यालङ्कारशास्त्र (काव्यप्रभावृत्ति-युक्त) की पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इसका प्रकाशन भी "अग्निपुराणोक्त काव्यालङ्कारशास्त्र" नाम से (सं. डा. पारसनाथ द्विवेदी शोध संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९८५ वाराणसी) हो चुका है। इसमें कुल १३ अध्याय हैं। नाटकादि विशेष लक्षण नामक सप्तम अध्याय अतिरिक्त है जो मुद्रित अग्निपुराण में प्राप्त नहीं है तथा शब्दालङ्कार का विभाजन भी दो अध्यायों में कर देने के कारण इसके कुल अध्यायों की संख्या तेरह हो गयी है। काव्यप्रभावृत्ति के लेखक गङ्गाधर कविराज हैं जो पूर्वी बंगाल (अब बंग्लादेश) के निवासी थे। इन्होंने विभिन्न शास्त्रों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं (द्र. रामशंकर भट्टाचार्य कृत अग्निपुराणीयकाव्यपरकाध्यायटीकायाः कर्तुः परिचयः शीर्षक लेख, गाण्डीवम्, टंकार २४ सं. १०)।

अग्निपुराण में प्राप्त काव्यादि के विशिष्ट लक्षण यहां संक्षेप में लिखित हैं-

काव्यलक्षण

काव्य को स्फुट रूप से अलङ्कारयुक्त तथा गुणसम्पन्न एवम् दोष विहीन होना चाहिए।

काव्यं स्फुटालङ्कारं गुणदोषवर्जितम्-३३७.७

काव्यभेद-

अग्निपु. में काव्य के तीन भेद प्रतिपादित हैं-गद्य, पद्य और मिश्र।

गद्यं पद्यं मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम्। -३३७.८

रस-रस नौ बतलाये गये हैं, जो अपने-अपने भावों से उत्पन्न होते हैं-शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्व-स्व भावोद्भवा रसाः॥ ३३९.८

अग्निपुराण में मुद्रित पाठ-"**स्वभावाच्चतुरो रसाः**" है।

---

१. १-२ काणे कृत संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास पृ. ४

२. काणे कृत संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास पृ. ४

कवि का महत्त्व

अपार काव्य संसार में कवि ही निर्माता है जैसी उसकी रुचि होती है वैसी ही सृष्टि करता है -

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।। - ३३९.१०

रीति

वाग्विद्या के सम्यक् ज्ञान में जो शैली कथित है वह रीति है। यह चार प्रकार की बतलायी गयी है-पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी, लाटी या लाटजा।

वाग्विद्यासंप्रतिज्ञाने रीतिः सापि चतुर्विधा।
पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा।। - ३४०.१

गुण

जो काव्य में महती शोभा को अनुगृहीत करता है, अर्थात् जो काव्य को अत्यन्त सुशोभित करता है, उसे गुण कहते हैं -

यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः। - ३४६.३क

अलङ्कार

काव्य के शोभाकारक धर्म अलङ्कार कहलाते हैं -

काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते। - ३४२.१७

अर्थालङ्कारविहीन वाणी विधवा है -

अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती। - ३४४.३

दोष

सभ्यों (सहृदयों) को उद्विग्न करने वाला तत्त्व दोष है।

उद्वेगजनको दोषः सभ्यानाम्। - ३४७.१

अग्निपुराण में वर्णित विषयों का सार

(१ अ.) मङ्गलाचरण तथा अग्नि एवं वशिष्ठ के संवाद से अग्निपुराण का आरम्भ किया गया है। विष्णुरूप अग्निदेव ने वशिष्ठ को, वशिष्ठ ने व्यास को, व्यास ने सूत को, सूत ने नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को इस पुराण का उपदेश दिया था। यहाँ अग्नि पुराण का महत्त्व तथा परा-अपरा विद्याओं की चर्चा की गई है।

(२-४ अ) विष्णु के अवतारों के वर्णन प्रसङ्ग में मत्स्यावतार (ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय के काल में मत्स्यावतार द्वारा मनु तथा समस्त जीवों की रक्षा हेतु); कूर्मावतार (वाराहकल्प आने पर देव दैत्यों द्वारा समुद्र-मंथन के समय मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण करने हेतु) तथा समुद्र-मंथन के वर्णन के उल्लेख में समुद्र से उत्पन्न हलाहल (विष), वारुणी देवी, पारिजात, कौस्तुभमणि, गौएं, दिव्य अप्सराएं, लक्ष्मी, धन्वन्तरि, मोहिनी आदि की उत्पत्ति उल्लिखित है। वराह, नृसिंह (हिरण्यकशिपु के वधार्थ); वामन (बलि से तीन पगों के दान रूप में तीनों लोकों को प्राप्त करना तथा इन्द्र को त्रिलोक का राज्य देना) तथा परशुराम (कृतवीर्य के पुत्र राजा अर्जुन का वध तथा क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार) आदि अवतारों का वर्णन है।

(५-११ अ.) रामावतार-वर्णन। रामायण के सात काण्डों (बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तर) की कथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है। यहां कहा गया है कि प्रस्तुत रामकथा को नारद ने वाल्मीकि को सुनाया था जिसके आधार पर ही वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की रचना की।

(१२ अ.) हरिवंश पुराण गत विषयों के संक्षिप्त वर्णन प्रसङ्ग में कृष्णावतार का वर्णन है। देवकी-गर्भ से उत्पन्न कृष्ण को वसुदेव द्वारा कंस के भय से यशोदा के पास पहुंचाने, पूतना-वध, कालिय-मर्दन, कुब्जा को रूपवती बनाने; कुवलयापीडवध, नरकासुर दमन, पञ्चजन-दैत्य-वध आदि लीलाओं के वर्णन के साथ ही यादवों के नाश तथा कृष्ण के परमधाम-गमन की कथा भी वर्णित है।

(१३-१५ अ.) कृष्ण की महिमा को प्रदर्शित करने वाले महाभारत की संक्षिप्त कथा वर्णित है। कौरव तथा पाण्डवों की उत्पत्ति, कौरव-पाण्डवों में द्वेष, जल रहे लाक्षागृह से पाण्डवों के सुरक्षित निकलने, मुनि-वेष में ब्राह्मण के घर में वास, बक का वध, पाञ्चाल राज्य में द्रौपदी स्वयंवर, अर्जुन द्वारा अग्नि से गाण्डीव तथा रथ प्राप्त करने, कौरव-पाण्डव युद्ध, कृष्ण का अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश, भीष्म का बाण शय्या पर शयन, द्रोण की मृत्यु, कर्ण-वध, शल्य के सेनापति होने, अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा को पराजित करके उसके मस्तक से मणि निकालने, अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा के गर्भ पर अस्त्र का प्रयोग, गर्भ के दग्ध होने तथा श्रीकृष्ण द्वारा गर्भ को जीवन दान देने, कौरव-पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य अश्वत्थामा तथा पाण्डव पक्ष के सात्यकि, कृष्ण और पांच पाण्डवों का संग्राम में शेष रहने

का उल्लेख प्राप्त है। युधिष्ठिर द्वारा परीक्षित को सिंहासन प्रदान करने, यदुकुल-संहार तथा पाण्डवों के स्वर्ग-गमन की कथा वर्णित है।

(१६अ.) बुद्ध (श्लोक १ से ७), कल्कि (भावी, श्लो. ८ से १० तक) अवतारों का उल्लेख है। शुद्धोधन के पुत्र रूप में बुद्ध का अवतार हुआ। इन्होंने दैत्यों से वैदिक धर्म का परित्याग कराया; इनके अनुयायी बौद्ध कहलाये। कलि के अन्त में ये लोग वर्णसंकर होंगे तथा नीच पुरुषों से दान ग्रहण करेंगे। लोग अधर्म में रुचि रखेंगे। कलि के अन्त में कल्कि का अवतार होगा, जो म्लेच्छों का संहार करके स्वधाम गमन करेंगे का वर्णन है।

(१७-२० अ.) सृष्टि-वर्णन जगत् को विष्णु की क्रीड़ा बतलाया गया है। सृष्टि एवं प्रलय उन्हीं के रूप में है। विष्णु ने प्रकृति में प्रविष्ट होकर उसे क्षुब्ध किया, प्रकृति से महत् तत्त्व, अहंकार के वैकारिक (सात्विक) तेजस (राजस) और भूतादि (तामस) भेद; भूतादि से शब्दादितन्मात्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा भूमि की उत्पत्ति हुई। नारायण शब्द का निर्वचन (आपो नारा इति प्रोक्त आपो वै नर सूनवः। अयनन्तस्य ताः पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः।।) भी बतलाया गया है। द्युलोक, भूलोक, काल, मन, काम, क्रोध, रति, ऋक्, यजुः, साम, रुद्र आदि की सृष्टि का, तदनन्तर स्वायम्भुव मनु तथा कश्यपादि के वंश का वर्णन है। ब्राह्म, भूत, ऐन्द्रियक, मुख्य, तिर्यक योनि, देव, मानव अनुग्रह, कौमार सर्गों तथा नित्य, नैमित्तिक, एवं प्राकृत इन तीन प्रलय या प्रति-सर्गभेदों की भी चर्चा है।

(२१-२८ अ.) विष्णु आदि देवों की पूजा का विधान है। पूजा-मण्डप के द्वार देश में क्रमशः-दक्षिण वाम में धाता एवं विधाता, गङ्गा यमुना, शंखनिधि तथा पद्मनिधि, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा प्रारम्भ में करने का विधान है। पुनः वेदों, युगों, गुणों, सूर्यादि की पूजा के उपरान्त दुर्गा, इन्द्र, सरस्वती आदि की पूजा के साथ ही शिव की पूजा भी वर्णित है। इन देवों की पूजा में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र भी कहे गये हैं तथा यहाँ स्नान-विधि भी उपदिष्ट है। नृसिंह मन्त्र के जप द्वारा दिग्बन्ध कर प्रतिमा का मार्जन करके अघमर्षण मन्त्र द्वारा वस्त्र धारण करने तथा अर्घ्य देकर द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम् नमो भगवते वासुदेवाय) के जप का विधान है। तदनन्तर अन्य देवों तथा विष्णु की पूजा विधि प्रतिपादित है। कुण्ड के निर्माण के वर्णन में तीन मेखलाओं सहित गोल एवं चन्द्राकार कुण्डों की निर्माण-विधि बतलायी गयी है। मन्त्रों के उल्लेख में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध-चार व्यूहमूर्तियों के नाम के प्रारम्भ में ओम् फिर क्रमशः अं आं अं अः बीजमन्त्र तथा नमो भगवते और अन्त में नमः पद संयुक्त करने का निर्देश है। यथा-ओम् अं नमो भगवते वासुदेवाय नमः; ओम् आं नमो भगवते संकर्षणाय नमः, ओम् अं नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः, ओम् अः भगवते अनिरुद्धाय नमः। इसी प्रकार नारायण मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय); ब्रह्म-मन्त्र (ओम् तत्सद् ब्रह्मणे ओम् नमः) तथा नृसिंह मन्त्र (ओम धीं ओम् नमो भगवते नरसिंहाय नमः) आदि का वर्णन है। मुद्राओं

(अञ्जलि, वन्दनी, हृदयानुगा) तथा शिष्यों की दीक्षा एवम् आचार्य का शिष्यों द्वारा किये जाने वाले अभिषेक का उल्लेख है। गुरु का अभिषेक एक सहस्र या एक सौ आवृत्ति वाले घड़ों से करने का उल्लेख है।

(२६-४० अ.) प्रारम्भ में मन्त्रसाधना, सर्वतोभद्र मण्डल के निर्माण तथा भद्रमण्डल -पूजन की विधि बतलायी गयी है। मार्जन विधि (स्वयं तथा अन्यों की रक्षा का उपाय, मार्जन या अपामार्जन है) तथा स्तोत्र पाठ से समस्त रोगों एवं व्याधियों से मुक्ति का उल्लेख है। दीक्षा की सिद्धि हेतु अड़तालीस संस्कारों, पवित्रारोहण (वर्षभर की पूजा में होने वाले दोषों को परिमार्जित करने तथा इष्ट प्राप्त्यर्थ किया जाता है), भूतशुद्धि में प्रयुक्त होन वाले मन्त्रों, अन्य देवों की पूजा पवित्राधिवास, सर्वदेव पवित्रारोपण की विधि वर्णित है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी आदि के मन्दिर बनवाने का फल उल्लिखित है। देव-प्रतिष्ठा के वर्णन प्रसङ्ग में पञ्चरात्र तथा सप्तरात्रों (जिनकी संख्या पच्चीस है) की गणना की गयी है। उनके नाम हैं-आदि, हयशीर्ष, त्रैलोक्य मोहन, वैभव, पुष्कर, प्रह्लाद, गार्ग्य, गालव, नारदीय, श्रीप्रश्न, शाण्डिल्य, ईश्वर, सत्य, शौनक, ज्ञानसागर, स्वायम्भुव, कापिल, तार्क्ष्य (गारुड) नारायणीय, आत्रेय, नारसिंह, आनन्द, आरुण, बौधायन, अष्ठाङ्ग तथा विश्वतन्त्र। भूमि शोधन के बाद भूमिपरिग्रह, वास्तुमण्डल देवों की स्थापना, पूजा, अर्ध्यादि की विधि वर्णित है।

(४१-५५ अ.) शिलाविन्यास की विधि बतलायी गयी है। इसमें (अ. ४१) अनेक वैदिक मन्त्रों (यथा-आपो हिष्ठा, तरत्समन्दी, उदुत्तमं वरुणं पाश. आदि) का उल्लेख है। प्रासाद का लक्षण, पिण्डिका लक्षण, (पिण्डिका की लम्बाई प्रतिमा के समान तथा ऊँचाई प्रतिमा से आधी होती है) बतलाया गया है। शालग्राम-मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, विष्णु, कूर्म, हयग्रीव, बैकुण्ठ, श्रीधर, वामन, त्रिविक्रम, अनन्त, दामोदर, जनार्दन, द्वादशात्मा, अनन्त आदि) का लक्षण तथा पूजन, चतुर्विंशति मूर्तिस्तोत्र, मत्स्य, देवी, सूर्यादि की प्रतिमा का लक्षण चौसठ योगिनी (अक्षोम्या, रूक्षकर्णी, क्षपणा, पिङ्गाक्षी, लीलालया, लोला) आदि की प्रतिमाओं का नामोल्लेखपूर्वक लक्षण प्रतिपादित है। लिङ्ग का लक्षण, मृत्तिका (पक्व एवम् अपक्व) काष्ठ, प्रस्तर, मोती, सुवर्ण, चांदी, ताम्र, पारद, निर्मित लिङ्गमान का कथन तथा पिण्डिका का पुनः लक्षण बतलाया गया है।

(५६-५६ अ.) प्रतिष्ठा तथा मण्डप निर्माण का विधान विहित है। प्रतिमा पुरुष का प्रतीक है तथा पिण्डिका प्रकृति का; दोनों का योग प्रतिष्ठा कहलाता है। मण्डप निर्माण, तोरण, स्तम्भ, कलश, ध्वजस्थापन के साथ ही दस-दिक्पाल-याग, कलशाधिवास की विधि, विग्रह के स्नान, शयन तथा अधिवास (विष्णु का सान्निध्यकरण) की विधि वर्णित है।

(६०-७० अ.) प्रतिष्ठा तथा पूजा। वासुदेव-प्रतिष्ठा, द्वार, ध्वजारोहण, लक्ष्मी, सुदर्शन-चक्र कूप, सभास्थापन, साधारण प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, यात्रोत्सव, स्नान, वृक्षारोपण,

गणेश, सूर्य, शिव, अग्नि, चण्ड, कपिलादि की प्रतिष्ठा तथा पूजाकी विधि वर्णित है। आकाश को विष्णु का विग्रह तथा पृथिवी को उसकी पीठिका (सिंहासन) कहा गया है। अनेक मन्त्रों के जप, अवभृथ-स्नान तथा लक्ष्मी की प्रतिष्ठा में श्रीसूक्त के द्वारा ही मुख्य रूप से पूजा करने की विधि प्रतिपादित है। पुस्तक लेखन की विधि भी बतलायी गयी है। अत्यन्त जीर्ण, टूटी हुई, विशिष्ठ लक्षणहीन प्रतिमा को नृसिंह मन्त्र की आहुतियां देकर हटाने, दारुमयी मूर्ति को प्रज्ज्वलित करने, प्रस्तरमूर्ति जल में तथा धातु एवं रत्नजटितमूर्ति को समुद्र में प्रवाहित करने का विधान विहित है। शिवपूजाविधि में शिव के ध्यान में कुण्डलिनी शक्ति, कुम्भक, रेचक आदि प्राणायाम-विधियों तथा होम-विधि की चर्चा है। गौ, चूल्हा, ओखली, मूसल, झाड़ू स्तम्भ आदि के पूजन का विधान भी निहित है।

(७८-८० अ.) पवित्रारोपण तथा दमनकारोपण की विधि कथित हुई है (क्रिया-योग तथा पूजन में हीनता की पूर्ति इससे होती है)। पवित्रारोपण नित्य तथा नैमित्तिक दो प्रकार का होता है। सोने, चांदी, तथा तांबे के पवित्रकों का क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर में तथा कलियुग में कार्पास-निर्मित का विधान है। उत्तम श्रेणी का १०८ सूत्रों का, ५४ मध्यम तथा २७ निम्न श्रेणी का निर्मित होता है। पवित्रकों का व्यासमान बाहर आठ अथवा चार अङ्गुल का बतलाया गया है। शङ्कर के कोप से भैरव की उत्पत्ति, भैरव द्वारा देवों का दमन, शिव द्वारा भैरव को दमनक वृक्ष होने का शाप देने, भैरव की क्षमा प्रार्थना, शिव द्वारा दमनक पत्रों से पूजन करने पर मनोवाञ्छित फल प्राप्ति के वर देने की कथा वर्णित है।

(८१-९१ अ.) दीक्षा-विधि। जिसके द्वारा शिष्यों में ज्ञान की उत्पत्ति करायी जाती है उसे दीक्षा कहते हैं। साधारा तथा निराधारा भेद से दीक्षा के दो भेद बतलाये गये हैं। साधारा दीक्षा चार प्रकार की होती है-सबीजा, निर्बीजा, साधिकारा और अनाधिकारा। समय संस्कार तथा निर्वाण दीक्षा का वर्णन है। निर्वाण-दीक्षा के अन्तर्गत निवृत्ति कला शोधन-विधि-वर्णित है। यहां एक सौ आठ भुवनों के नाम लिखित हैं। इसी दीक्षा की विधि के वर्णन प्रसङ्ग में विद्या कला-(राग, शुद्ध, विद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या ये विद्याकला के सात तत्व एवं र, ल, व, श, ष, स ये छः वर्ण हैं) शोधन, शान्तिशोधन अवशिष्ट विधि, एक तत्व दीक्षा तथा अभिषेकादि की विधि तथा देवार्चन से सम्बद्ध विविध मन्त्र तथा मण्डलों (१४४० जिसमें सूर्य, शिव, विष्णु तथा दुर्गा प्रत्येक के ३६० मण्डल) का उल्लेख है।

(९२-१०६ अ.) देव-प्रतिष्ठा-विधि। प्रतिष्ठा के पांच भेद हैं-प्रतिष्ठा, स्थापन, स्थिर स्थापन, उत्थापन और आस्थापन। प्रथमतः शिलान्यास, वास्तुपूजा, पूजासामग्री, स्थापन और पूजन के समय, नक्षत्र, वार, राशि-विचार तथ अधिवास-विधि वर्णित है। शिव, गौरी, सूर्य आदि देवों की प्रतिमा-प्रतिष्ठा की विस्तृत विधि तथा द्वार, प्रासाद, ध्वजारोपण के साथ शिवलिङ्गों के जीर्णोद्धार, नगर, ग्राम, गृह आदि की प्रतिष्ठा हेतु ८१ पदों से युक्त

वास्तुचक्र-पूजा; सर्वतोमुख, यमसूर्यक, वात, विशाल, पक्षघ्न आदि नामों वाले प्रासादों का स्वरूप तथा नगर-निर्माण का वास्तु-विधान वर्णित है।

(१०७-१०८ अ.) भुवनकोश। स्वायम्भुव मनु वंश का वर्णन है। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर सात द्वीपों उनके वर्षों; मेरु आदि पर्वतों तथा समुद्रों का वर्णन है।

(१०६-११७ अ.) तीर्थ-माहात्म्य। पुष्कर, कण्वाश्रम, कोटितीर्थ, अर्बुद (वर्तमान में आबू पर्वत) चर्मण्वती (चम्बल), सिन्धु, सोमनाथ, प्रभास, पिण्डारक, द्वारका, गोमती, भूमितीर्थ, ब्रह्मतुङ्गतीर्थ, पञ्चनद, कनखल, कुरुक्षेत्र, शालग्राम, लौहित्य, मन्दाकिनी, चित्रकूट, शृङ्गवेरपुर आदि तीर्थो। का महत्त्व संक्षिप्त रूपेण प्रतिपादित है। गङ्गा, प्रयाग, वाराणसी, नर्मदा, गया आदि तीर्थों का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रयाग में यज्ञ और वेद विग्रह रूप में विद्यमान रहते हैं। अक्षयवट के मूल में मृत्यु पाने वाला मनुष्य विष्णुलोक में जाता है। वरणा और असी के मध्य में वाराणसी स्थित है। महादेव यहां सदा निवास करते हैं। इसलिए इसे "अविमुक्त" भी कहा जाता है। मनुष्य पत्थर से पैर तोड़कर यहां रहे, इसे कभी छोड़े नहीं (अश्मना चरणौ हत्वा वसेत् काशीन्न हि त्यजेत् ११२.३ क)। मनुष्य गङ्गा जल के स्पर्श से, पर नर्मदा के दर्शन मात्र से ही पवित्र होता है। नर्मदा-माहात्म्य वर्णन में श्रीपर्वत का वर्णन भी है। गया-तीर्थ के महत्व प्रतिपादन में गयासुर की कथा भी लिखित है। गय असुर था जिससे संतप्त देवों के उद्धार हेतु विष्णु ने उसका शरीर मांग लिया; ब्रह्मा ने उसके मस्तक के ऊपर यज्ञ किया। देवों ने गयासुर के क्षेत्र में विष्णु, ब्रह्मा, शिव के निवास-स्थान होने का वर दिया। इसके अनन्तर गया की यात्रा तथा गया में श्राद्ध करने की विधि वर्णित है।

(११८-१२० अ.) भारतवर्ष, जम्बू आदि द्वीपों तथा भुवनकोश आदि का वर्णन है। समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित भारत है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, हेमपर्वत, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुलपर्वत तथा इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रवर्ण गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण ये आठ द्वीप हैं। समुद्र से घिरा भारत नवम द्वीप है। इसके बाद जम्बू, प्लक्ष आदि द्वीपों तथा भुवनकोश के वर्णन प्रसङ्ग में अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इन सात पातालों का वर्णन; पृथ्वी के अधोवर्ती भाग में स्थित नरकों; नभोलोक (अन्तरिक्ष या भुवनर्लोक) का विस्तार, पृथ्वी से ग्रहों की दूरी; सूर्यचन्द्र के रथों की विशेषताएं (ध्रुव की स्थिति, स्वयं भ्रमण करता हुआ सूर्य चन्द्रादि को घुमाता है) आदि वर्णित है।

(१२१-१३६) ज्योतिः शास्त्र। ज्योतिःशास्त्र को चार लाख श्लोक वाला बतलाया गया है। जिसका सारांश यहां लिखित है। यहां ये विषय प्रधानतः प्रतिपादित हुये हैं-वर और

कन्या के गुणों का विवेचन, संस्कार-मुहूर्त, रोगमुक्ति हेतु निश्चित नक्षत्रों एवं वारों का तथा स्नान का विधान, यन्त्र-प्रयोग, क्रय-विक्रय, कृषि हेतु धान्य काटने तथा घर लाने, धान्य वृद्धि हेतु मन्त्र, ग्रहण में दान के महत्व, कालगणना, विजय आदि शुभ कार्यों की सिद्धि हेतु-नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा तिथियों का फल, शनि, राहु चक्र, रौद्र, श्वेत, मैत्र आदि पन्द्रह मुहूर्तों का वर्णन; युद्ध में विजयप्रदायी पदार्थों का उल्लेख, युद्धजयार्णव सम्बन्धी अनेक चक्रों-कुम्भ, राहु, कोटिचक्रादि तथा अर्धमान (वस्तुओं का महंगा तथा सस्ता होने का विचार) के वर्णन के साथ ही आग्नेय मण्डल, वारुण मण्डल, ग्रास (मुख तथा पुच्छ) सोमग्रास आदि मण्डल, घात, नर तथा जय (प्रथम. द्वितीय) सेवा चक्रों, शत्रु की पराजय हेतु अन्य प्रयोग, त्रैलोक्य विजय विद्या, संग्रामविजयमन्त्र, त्रिनाडीचक्र (प्रथम-अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद); द्वितीय (भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, घनिष्ठा तथा उत्तराभाद्रपद, तृतीय-कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ, श्रवण तथा रेवती) (१३७-१४६ अ.) तन्त्र-विद्या वर्णन। शत्रुओं का मर्दन करने वाली महामारी विद्या का उल्लेख है। साधक अङ्गन्यास पूर्वक शव के ऊपर का चौकोर वस्त्र लेकर उस पर देवी के तीन मुख (पूर्वाभिमुख, दक्षिणाभिमुख, पश्चिमाभिमुख) तथा चार भुजाओं वाला चित्र अङ्कित करे। तदनन्तर विभिन्न सामग्रियों (धतूरे की समिधा, रक्त, विषसंयुक्त, राई, नमक आदि) से हवन करे। तीन लोकों पर विजयप्रदायी दैवी-माया हैं तथा उनकी आकृति से चित्रित वस्त्र माया पट कहलाता है। तन्त्रविषयक छह कर्मों (शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन, और मारण) का वर्णन है। साठ संवत्सरों (शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, प्रमाथी, बहुधान्य, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु आदि) के नाम तथा फलभेद उल्लिखित हैं। वशीकरण आदि योग, चोर तथा जातक का निर्णय, अपराजिता मन्त्र, कुब्जिका (जिसकी सहायता से देवों ने असुरों पर विजय पायी थी), न्यास पूजा-विधि, शाम्भव, शाक्त, यामल आदि न्यासों तथा त्रिखण्डी मन्त्र का वर्णन है। अक्षोद्या, ऋक्षकर्णी, राक्षसी, क्षपणा, क्षया, पिङ्गाक्षी, अक्षया और क्षेमा-इन आठ देवियों का वर्णन, गुह्य कुब्जिका, नवा, त्वरिता के मन्त्र, सूर्यपूजन, विविध, हवनादि (अयुत, लक्ष, कोटि) का वर्णन प्राप्त है।

(१५० अ.) मन्वन्तर-वर्णन। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, रौच्य तथा भौत्य-इन चौदह मन्वन्तरों का वर्णन है। साथ ही सप्तर्षियों (वशिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, भरद्वाज) का भी उल्लेख है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में भगवान् का "मानस" तथा शेष द्वितीय से सप्तम मन्वन्तरों में क्रमशः अजित, सत्य, हरि, देववर, वैकुण्ठ, वामन रूप में प्रादुर्भाव हुआ।

(१५१-१६५ अ.) वर्णाश्रमधर्म, आचार एवं धर्मशास्त्र का विषय प्रतिपादित है। प्रारम्भ में सत्य, दया, जीवों पर अनुग्रह, तीर्थाटन, दान, ब्रह्मचर्य, मात्सर्याभाव, गुरुजनों की सेवा, पितरों की पूजा, भगवद्भक्ति, अक्रूरता, आस्तिकता आदि का वर्णन एवं आश्रम-धर्म कथित है। धर्म विपरीत कर्तव्य अधर्मः; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि की जीविका का विधान; प्रमुख संस्कारों का तथा ब्रह्मचारी-धर्म का निरूपण; विवाह-विधान (कन्यादान, शचीयोग (मृत्तिकानिर्मित शची की पूजा), विवाह और चतुर्थी कर्म) के वर्णन में ब्राह्म, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच सात प्रकार के विवाह (१५४.९-११); दैनन्दिनचर्या, स्नान (नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण, क्रियास्नान छह प्रकार); गायत्री-जप, पुरुष-सूक्त पाठ तथा अन्य नित्य किये जाने वाले कर्मों का विधान है। द्रव्य-शुद्धि, मरणाशौच, पिण्डदान, अन्त्येष्टि आदि का विधान तथा अशौच, वानप्रस्थधर्म (जरा, अग्निहोत्र, पृथ्वीशयन, अरण्यवास, फलमूल भक्षण, ब्रह्मचर्य व्रत पालन) तथा सन्यास-धर्मः, मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अत्रि, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शतातप आदि द्वारा उपदिष्ट धर्म का संक्षिप्त रूप से कथन, श्राद्धकल्प वर्णन; सूर्यादि नवग्रहों-सूर्य (ताम्र, चन्द्र (रजत या स्फटिक), मङ्गल (रक्तचन्दन), बुध तथा गुरु-(सुवर्ण), शुक्र (रजत) शनि (लौह), राहु-केतु (सीसा) की प्रतिमा का निर्माण, स्थापन, पूजन और हवन आदि की विधि वर्णित है।

(१६६-१६७ अ.) श्रौत और स्मार्त धर्म का वर्णन है। ४८ संस्कारों का तथा शान्ति, समृद्धि, एवं विजय हेतु तीन प्रकार के ग्रहयज्ञों (अयुत, लक्ष तथा कोटि होमात्मक) की विधि वर्णित है।

(१६८-१७४ अ.) पातक तथा प्रायश्चित्त का विवेचन किया गया है। जातिभ्रंशकर, अपात्रीकरण, मलिनीकरण, पातक, उपपातक; चान्द्रायण, सांतपनकृच्छ्र, नक्तव्रत, प्राणायाम, प्राजापत्य व्रत, आदि का विधान, विभिन्न प्रायश्चित्तों, गुप्त पापों हेतु कृच्छ्रव्रत, यति चान्द्रायण, शिशुचान्द्रायण, सुरचान्द्रायण, तप्तकृच्छ्र, शीतकृच्छ्र, कृच्छ्रातिकृच्छ्र, महासांतपन, आग्नेय कृच्छ्र तथा अन्य व्रतों की विधि; सभी पापों के शमन हेतु पापनाशन स्तोत्र का पाठ (विष्णु की स्तुति) करने का विधान (१७२.२-१८) विहित है। चान्द्रायण, पराक एवं प्राजापत्य, गायत्री, प्रणव, पापप्रणाशन स्तोत्र तथा मन्त्रों को विभिन्न पापों का नाशक बतलाया गया है। यहां कहा गया है कि अग्निपुराण के पाठ तथा श्रवण से भी पाप नष्ट होते हैं।

(१७५-२०८ अ.) व्रत-विधान। शास्त्रोक्त नियम व्रत कहलाता है। वही तप माना गया है। (शास्त्रोदितो हि नियमः व्रतं तच्च तपो मतम्)। तिथि, वार, मास, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग, मन्वन्तरारम्भ, शिवरात्रि, अशोक पूर्णिमा, दिवस, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति, दीपदान, भीष्मपञ्चक, कौमुद आदि व्रतों की विधि विस्तृत रूप से वर्णित है। इन्हीं व्रतों के वर्णन

प्रसङ्ग में नवव्यूहार्चन, विविध पुष्पों का नामोल्लेखपूर्वक पूजन में योग्यता एवम् अयोग्यता का कथन तथा नरकों (महावीचि, आमकुम्भ, महारौरव, तामिस्र, महातामिस्र) का स्वरूप वर्णन उपलब्ध है।

(२०६-२१३ अ.) विविध दानों की विधि तथा माहात्म्य का कथन है। षोडश महादान -(तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, कल्पवृक्ष, सहस्रगोदान, स्वर्णमयी कामधेनु, स्वर्णाश्व, अश्वयुक्तरथ, स्वर्णहस्तिरथ, पांच हलों का दान, भूमिदान, विश्वचक्र, कल्पलता, सप्तसागर, रत्नधेनु, जलपूर्णकुम्भदान,दस मेरुदान, दस धेनुदान तथा गोदान) क्रमपूर्वक उल्लिखित हैं। अन्य दानों में गो, वृष, महिषी, शय्या, गृह, मठ, गज, अश्व, तिल, तिलपात्र, अन्न, धृत, तैल, लवण, पुस्तक, मेरु, तथा पृथ्वी आदि दानों की विधि एवं महत्व प्रतिपादित है।

(२१४-२१७ अ.) मन्त्रमाहात्म्य के वर्णन में दस प्राणवहा नाडियों (इडा, पिङ्गला, सुसुम्णा[1], गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पृथा, यशा, अलम्बुषा, हुहुः[2] शंखिनी) की प्राणायाम में स्थिति, सन्ध्या-विधि (ओङ्कार के ज्ञाता को योगी कहा गया है।) ; शिव के दो भेद सकल (साकार) तथा निष्कल (निराकार) बतलाये गये हैं। किसी भी पाप के प्रशमन हेतु प्रायश्चित्त रूप में तिल होम गायत्री का जप तथा सन्ध्या करने का विधान विहित है। गायत्री-निर्वाण-वर्णन में लिङ्गमूर्ति शिव की स्तुति वर्णित है।

(२१८-२२७ अ.) राज्याभिषेक तथा राजधर्म। राजा का अभिषेक देव, ऋषि (भृगु, अत्रि आदि) पितृगण (बर्हिषद् अग्निष्वात्त आदि), चन्द्रमा की भार्याएं (अश्विनी आदि), देवियां (भूता, कपिशा आदि), देवङ्गनाएं, काल (महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर आदि) ग्रह (सूर्यादि), चौदह मनु (स्वायम्भुव, स्वरोचिष आदि), आठ वसुओं, बारह सूर्यों (धाता, मित्र, अर्यमा आदि), उनचास मरुतों (एंक ज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति आदि), गन्धर्वों (चित्राङ्गद, चित्ररथादि) अप्सरायें (अनवद्या, सुकेशी आदि), निधियों, पर्वत, चौदह-विद्याओं, तीर्थभूत नदियों आदि की प्रार्थना विविध मन्त्रों के उल्लेख पूर्वक) करने का विधान बतलाया गया है। राजा द्वारा अपने अनुजीवियों की नियुक्ति, अनुचरों द्वारा राजाके प्रति कर्तव्य, राजा के दुर्गों (धन्व, मही, नर, वृक्ष, जल और पर्वत दुर्ग) का निर्माण, विषनाशक औषधियों का ज्ञान, स्त्री के कर्तव्य, राष्ट्र की रक्षा, प्रजा से कराहरण, राजा के नैतिक कर्तव्यों का विधि, निषेध (मृगया, मद्यपान, जुआ आदि); पुरुषार्थ का महत्व, सात उपाय (साम, दान, भेद, दण्ड, माया, उपेक्षा, इन्द्रजाल); अपराध तथा दण्ड का विधान विहित है।

(२२८-२३३ अ.) शकुन-विचार। युद्ध यात्रा के सम्बन्ध में शुभाशुभ स्वप्नों का विचार, शकुन के भेद, शुभाशुभ फल, (कौआ, श्वान, गौ, अश्व, हस्ती के मार्ग में पड़ने

---

१. सुसुमणा पाठ भी प्राप्त हुआ है। प्रकृत शब्द है-सुषुम्ण

२. प्रकृतपाठ कुहू है।

पर होने वाले प्रभावों का) तथा यात्रा के मुहूर्त, राजमण्डल, शत्रुभेद, (कुल्य, अनन्तर, कृत्रिम,); दण्ड प्रयोग, माया (कपटपूर्ण उपाय), इन्द्रजाल, संग्राम-दीक्षा, युद्ध के समय करणीय नियम तथा इन्द्रकृत लक्ष्मी-स्तोत्र वर्णित है।

(२३४-२३७ अ.) दण्ड का भेदपूर्वक (गुप्त एवं प्रकाश) प्रयोग, माया (कपटपूर्ण उपाय, इन्द्रजाल, राजा के नित्य कर्तव्य, संग्राम, दीक्षा, युद्धकालीन नियम आदि की विस्तृत विवेचना की गयी है।

(२३८-२४२ अ.) राम द्वारा लक्ष्मण के प्रति उपदिष्ट नीति वर्णित है। राजा के चार प्रकार के व्यवहार या कृत्य (न्याय मार्ग से धनोपार्जन उपार्जित धन की वृद्धि, (संरक्षण एवं सत्पात्र में नियोजन), राजा के लिये नय का महत्व, नय की विजय मूलकता प्रकार के **(न्यायोपार्जित धन, उपार्जित धन की वृद्धि, रक्षा तथा नियोजन) व्यवहार,** सम्पत्ति के हेतुभूत गुण, षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान, मद) का परित्याग, सात अङ्ग (राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल, सुहृत्); आभिगामिक गुण (कुलीनता, सत्त्व, शील, दाक्षिण्य आदि); आत्मसम्पत्तिविषयक गुण (वाग्मिता, प्रगल्भता, उदग्रता, बलवत्ता आदि); सचिवों के गुण, मन्त्रिसम्पत् के गुण (स्मृति, अर्थ तात्पर्य, विनिश्चयन आदि) कोष तथा मित्र के गुणों के साथ राजसेवकों के गुणों की भी विवेचना की गयी है। प्रजा को पञ्चविधभयों (आयुक्त राजकर्मचारी, चोर, शत्रु, राजा के सम्बन्धी, राजलोभ) से मुक्ति के उपाय भी बतलाये गये हैं। द्वादश राजमण्डलों (१. शत्रु, २. मित्र, ३. शत्रुमित्र., ४. मित्रमित्र, ५. अरिमित्र, ६. विजीगीषु, ७. पार्ष्णिग्राह, ८. आक्रन्द्र, ९. पार्ष्णिग्राहासार, १०. आक्रन्दासार, ११. मध्यम, १२. उदासीन) की विस्तृत विवेचना की गयी है। सन्धि के षोडश भेद (कपाल, उपहार, सन्तान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषान्तर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्म, उपग्रह, परिक्रय, च्छिन्न, परदूषण, स्कन्धोपनेय); सन्धेय भेद (अभियोक्ता, अनभियोक्ता) तथा सन्धि के अन्य चार भेद (परस्परोपकार, मैत्र, सम्बन्ध, उपहार) विग्रह (परस्पर अपकार से विग्रह) के प्रधान तथा गौण कारण, वैर के भेद आदि का विस्तृत वर्णन है। मन्त्र शक्ति का प्रभाव, मन्त्रणा के अङ्ग, दूत के भेद; राज-व्यसन (क्रोधज, कामज आदि); सैन्य-प्रकार (मौल, भूत, श्रेणि, सुहृद् शत्रु, आटविक); सेना के छह अङ्ग (पैदल, घुड़सवार, रथी, हाथीसवार, मन्त्र और कोष); व्यूह (वज्रव्यूह, सर्वतोभद्र, भोग, पद्‌म, अक्षवर, काक, अर्धचन्द्र, श्रृङ्गार, अचलादि) तथा व्यूह के अङ्गादि की चर्चा है।

(२४३-२४८ अ.) स्त्री तथा पुरुष के लक्षण बतलाये गये हैं। श्रेष्ठ पुरुष (एकाधिक, द्विशुक्ल, त्रिगम्भीर, त्रिप्रलम्ब, त्रित्रिक, त्रिवलीयुक्त, त्रिविनत, त्रिकालज्ञ, त्रिविपुल, चतुर्लेख, चतुस्सम, चतुष्किष्कु, चतुर्दष्ट्र, चतुष्कृष्ण, चतुर्गन्ध, चतुर्ह्रस्व, पञ्चसूक्ष्म, पञ्चदीर्घ, षडुन्नत, अष्टवंश, सप्तस्नेह, नवामल, दशपदम्, दशव्यूह, न्यग्रोधपरिमण्डल, चतुर्दशसमद्वन्द, षोडशाक्ष) तथा शुभलक्षणा स्त्री (मत्तमातङ्गगामिनी गुरूरुजघना, तन्वङ्गी आदि) के लक्षण चामर

(सुवर्णदण्डमण्डित हंस, मयूर तथा शुकपक्षों से निर्मित छत्र श्रेष्ठ) धनुष, बाण तथा खड्ग के लक्षण प्रतिपादित हैं। वज्र (हीरा) मरकत, पदमराग, मुक्ता, महानील, इन्द्रनील वैदूर्य, चन्द्रकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, उत्पल, आदि रत्नों की परीक्षण विधि गृह-निर्माण योग्य भूमि, वास्तुमण्डल (६४ पदों से युक्त) का निर्माण; वृक्षारोपण आदि की विधि, विष्णु-पूजन में उपयुक्त फलों (मालती, मल्लिका, यूथिका आदि), पत्रों (बिल्व, शमी, तुलसी आदि) का प्रयोग तथा निषिद्ध पुष्पों (मंदार, धतूर, गुञ्जा, कुटजादि) के वर्णन के साथ ही फल भी वर्णित है।

(२४६-२५२ अ.) धनुर्वेद का वर्णन है। धनुर्वेद के पांच प्रकार (यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, मुक्तसंधारित, अमुक्त और बाहुयुद्ध); युद्ध के तीन प्रकार-उत्तम (धनुष बाण से होने वाला), मध्यम (जिसमें भालों का प्रयोग होता है।) अधम (बाहुयुद्ध) बतलाये गये हैं। बाण प्रक्षेप की विधि, बाण-संग्रह, लक्ष्य-वेध-विधि, वैध्य के (दृढ, दुष्कर तथा चित्र दुष्कर) भेद एवं प्रभेद परिगणित हैं। पाश बनाने की विधि तथा प्रयोग, तलवार, कवच, यष्टि (लाठी) धारण का विधान है। तलवार चलाने के बत्तीस ढंग (भ्रान्त, उद्‌भ्रान्त, आविद्ध, विप्लुत, प्लुत, सम्पात आदि), पाश प्रक्षेपण के ग्यारह प्रकार (परावृत्त, अपावृत्त, गृहीत, लघु आदि), शूल के छह कर्म (आस्फोट, क्ष्वेडन, भेद, त्रास, आन्दोतिलक, आघात); तोमर के कार्य (दृष्टिघात, भुजाघात, पार्श्वघात, ऋजुपात, पक्षपात और इषुपात), गदा-कार्य (आहत, विहृत, प्रभूत आदि); फरसे के कार्य (कराल, अवघात, दंशोप्लुत आदि), मुदगर (ताडन, छेदन, चूर्णन, प्लवन, घातन) लगुड, पट्टिश, कृपाण, क्षेपणी (गोफन) के कार्य बतलाये गये हैं।

गदायुद्ध के प्रकार (संत्याग, अवदंश, वाराहोद्‌धूतक आदि) तथा मल्लयुद्ध के प्रकार (आकर्षण, विकर्षण, बाहुमूल, ग्रीवा विपरिवर्त आदि) वर्णित हैं। शस्त्रपूजा तथा त्रैलोक्यमोहनकवच के पाठ का विधान है।

(२५३-२५८ अ.) व्यवहार-शास्त्र। व्यवहारमात्र का आधार साक्षी होता है। कौन सा ऋण देय है अथवा कौन अदेय है, ऋण देने तथा उसे वसूलने की विधि क्या है, इन पर विचार ऋणादान कहलाता है। निक्षेप, सम्भूय समुत्थान, दत्ताप्रदानिक, अभ्युपेत्य अशुश्रूषा, अस्वामि-विक्रय संज्ञक पदों विवाद-विषय की विवेचना की गयी है। उपनिधि सम्बन्धी विचार-साक्षी, लेखा, दिव्य प्रमाणों (तुला, अग्नि, जल, विष, कोष आदि) का वर्णन, दायभाग, स्त्रीधन, पितामहधन का उत्तराधिकारी, विभाज्य, अविभाज्य धन, पुत्रों के बारह प्रकार (औरस, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज, गूढ़ज, कानीन, पौनर्भव, दत्तक, क्रीत, कृत्रिम, दत्तात्मा, सहोढ़ज, अपविद्ध) आदि विषयों का विस्तृत रूप से प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर सीमा-विवाद, अस्वामिविक्रय, दत्ताप्रदानिक, क्रीतानुशय, वेतनादान, व्यवहार के वाक्पारुष्य, स्त्री-संग्रहण के दण्ड का विधान है।

(२५६-२६२ अ.) ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेद का विधान वर्णित है। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के विविध मन्त्रों के ऋषि देवता, छन्द, विनियोग के ज्ञानपूर्वक कर्मों का रोग के दूरीकरण आदि के लिए अनुष्ठान विहित है।

(२६३-२७२) विभिन्न उत्पातों के शमन के उपाय, देवपूजा तथा वैश्वदेव बलि (काक, कुक्कुर, बलि), गोग्रास (गाय को दिया जाने वाला ग्रास), दिक्पाल स्नान; विनायक, माहेश्वर स्नान विधि तथा अन्य स्नान विधियों का उल्लेख भी प्राप्त है। विष्णु के पूजन, गायत्री-मन्त्र द्वारा लक्षहोम, सांवत्सर कर्म; इन्द्र, शची तथा भद्रकाली आदि देवों की पूजन-विधि; छत्र, अश्व, ध्वजा, गज, खड्ग, कवच और दुन्दुभि-प्रार्थना के मन्त्र; विष्णुपञ्जरस्तोत्र, वेदों के मन्त्र, शाखा तथा वेदमहिमा की विस्तृत विवेचना साथ ही पुराणों तथा महाभारत का श्रवण और दानादि का माहात्म्य कथित हुये हैं।

(२७३-२७८ अ.) वंश वर्णन। प्रारम्भ में सूर्यवंश का वर्णन है। इस वंश के वर्णन में वैवस्वत मनु के दस पुत्रों (इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करुष, पृषध्र) तथा हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व, वृक, बाहु, सगर, असमञ्जस, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, नाभाग, अम्बरीष, सिन्धुद्वीप, श्रुतायु, ऋतुपर्ण, कल्माषपाद, सर्वकर्मा, अनरण्य, निघ्न, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, लव-कुश, अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, सुधन्वा, देवानीक, अहीनाश्व, सहस्राश्व, चन्द्रालोक, तारापीड, चन्द्रगिरि, भानुरथ तथा श्रुतायु का क्रमेंण वर्णन है। ब्रह्मा के पुत्र अत्रि से सोम की उत्पत्ति हुई। सोमवंश में बुध, पुरुरवा तथा नहुष हुए। नहुष के यति, ययाति, उत्तम, उद्भव, पञ्चक, शर्याति, तथा मेघपालक-सातपुत्र हुए। ययाति की देवयानी (पुत्र-यदु, तुर्वसु) तथा शर्मिष्ठा (पुत्र-दृह्यु, अनु, पुरु) दो पत्नियों से पांच पुत्र हुए। यदु एवं पुरु ने सोमवंशको विस्तृत किया। तदनन्तर यदुवंश का विस्तृत उल्लेख है; साथ ही कृष्ण की पत्नियों तथा पुत्रों का नामोल्लेख उपलब्ध है। देवों तथा असुरों के मध्य अपने दायभाग हेतु द्वादश युद्धों (नाम-नारसिंह, वामन, वाराह, अमृतमन्थन, तारकामय, आडीवक, त्रैपुर, अन्धकवध, वृत्रविघात, जित, हालाहल, घोरकोलाहल) की विवेचना है। अन्त में तुर्वसु, अङ्ग तथा पुरुवंशीय राजाओं का वर्णन हैं।

(२७९-२९२ अ.) आयुर्वेद। आयुर्वेद का उपदेश धन्वन्तरि ने सुश्रुत को दिया था। इस शास्त्र में मनुष्य, अश्व और हस्ती के रोगों के शमन के उपाय वर्णित हैं। ज्वर, रक्तपित्त, गुल्म, उदर, श्वासकास, वात, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, छर्दि (वमन) कान दर्द आदि का निदान बतलाया गया है। व्याधियों के चार प्रकार (शारीर, मानस, आगन्तुक, सहज) वात, पित्त, कफ, रस, वीर्य, विपाक आदि का लक्षण प्रतिपादित है। वृक्षायुर्वेद के अन्तर्गत वृक्ष का आरोपण, कर्तन, सेचन आदि का विधान वर्णित है। विभिन्न रोगों के शमन हेतु उपयुक्त मन्त्रों की विवेचना की गयी है यथा-ओम् हूं विष्णवे नमः पुण्डरीकाक्षाय (नेत्र रोगहारी),

हृषीकेशः (भयहारी) आदि। आत्रेय द्वारा उपदिष्ट सम्पूर्ण व्याधियों का विनाशक मृत-सञ्जीवनी कारक तथा मृत्युन्जय योग का वर्णन है। गज के लक्षण, गुणों (वर्ण, सत्व, बल, रूप, कान्ति, शारीरिक संगठन तथा वेग), रोग तथा उनके उपचार वर्णित हैं। गजशान्ति तथा अश्व शान्ति भी प्रतिपादित है। अन्त में पालकाप्य द्वारा अङ्गराज के प्रति उपदिष्ट गवायुर्वेद का वर्णन है।

(२६३-३२७ अ.) मन्त्र-विज्ञान। मन्त्र विद्या -भोग एवं मोक्ष प्रदात्री है। बीस से अधिक अक्षरों वाले मन्त्र "मालामन्त्र", दशधिक अक्षरों वाले "मन्त्र" तथा दस से कम अक्षरों वाले मन्त्र "बीज मन्त्र" कहे गये हैं। "स्वाहान्त" पद वाले मन्त्र स्त्री जातीय, "नमः" पद नपुंसक तथा अवशिष्ट पुरुष जातीय हैं। मन्त्रों के दो भेद-आग्नेय (जिसके आदि में प्रणव हो) तथा सौम्य (जिसके अन्त में प्रणव हो) बतलाये गये हैं। नागों के नाम (शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल तथा कुलिक) एवं भेद (फणी, मण्डली, राजिल), सर्पदंश के भेद, सर्प द्रष्ट व्यक्ति की चिकित्सा, सर्पविष-विनाशक मन्त्रों-गरुड गायत्री मन्त्र, नृसिंह मन्त्र तथा वृश्चिक-विषनाशक मन्त्र के उल्लेख के साथ ही मृषक, लूता (मकड़ी), आदि के विषहर मन्त्र भी प्रतिपादित हैं। शिशुओं को ग्रसने वाली विविध राक्षसियों का नामोल्लेख तथा ग्रहबाधाओं के निवारण के मन्त्र (ओम नमो नारायणाय) पञ्चाक्षर (नमः शिवाय); विष्णुनाम, नृसिंह मन्त्र, त्रैलोक्य-मोहन-मन्त्र, का उल्लेख है। त्वरितापूजा, अपरत्वरिता मन्त्र तथा मुद्रा, त्वरिता-विद्यालभ्य सिद्धियां, स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन-प्रयोग कुब्जिकाविद्या, अघोरास्त्रमन्त्र; वागीश्वरीपूजा एवं मन्त्र (ह्रीं वां वागीश्यै नमः), सर्वतोभद्र, पञ्चाब्जमण्डल, विघ्नध्वंस चक्र, बुध्याधार तथा भद्रमण्डलों के निर्माण की विधि विहित है। अघोरास्त्र, पाशुपतास्त्र मन्त्र; वशीकरण, महामृत्युञ्जय, ईशान-मन्त्र, रुद्रशान्ति मन्त्र, रुद्राक्षधारण विधि, मन्त्रसिद्धिविधि, मृत्युञ्जयपूजा, लिङ्गपूजा तथा देवालय का महत्व विस्तृत रूप से प्रतिपादित है।

(३२८-३३५ अ.) छन्द-वर्णन। पिङ्गलोक्त छन्दों का क्रमशः वर्णन है। तीन प्रकार के छन्द बतलाये गये हैं - गण, मात्रा, तथा अक्षर छन्द। इन छन्दों का क्रमशः वर्णन प्राप्त है। प्रारम्भ में आठ गणों (म, न, भ, य, ज, र, स, त) तथा गुरु-लघु -विधान के अनन्तर गायत्री छन्द के भेद (आर्षी, दैवी, आसुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आर्ची, ब्राह्मी) तथा अन्य आर्ष छन्दों यथा-जगती, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, उत्कृति (१०४ अक्षरों वाला) तथा उत्कृति के भेद, आर्या आदि छन्दों का भेद भी प्रतिपादित है। विषमवृत्त, अर्धसमवृत्त तथा समवृत्तों का विस्तृत वर्णन है। अन्त में प्रस्तार निरूपण है। छन्दशास्त्र में जो छन्द नाम से निर्दिष्ट नहीं हैं परन्तु व्यवहार में दृष्ट हैं, वे समस्त "गाथा" नाम से जाने जाते हैं। एकाक्षर, द्वयक्षर, त्रयक्षर, चतुरक्षर, पञ्चाक्षर, षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर प्रस्तारों की सम्यक् विवेचना प्राप्त है।

(३३६ अ.) शिक्षा-निरूपण। वर्णों की संख्या, उच्चारण-स्थान, उच्चारण-काल (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत), स्वर के प्रकार (उदात्त, अनुदात्त स्वरित), अनुनासिक आदि का प्रतिपादन है।

(३३७-३४७ अ.) काव्य, नाटकादि के स्वरूप तथा अलङ्कार का विवेचन है। काव्य के भेद, (गद्य, पद्य, मिश्र) तथा प्रभेद बतलाये गये हैं। रूपक के सत्ताइस भेद (नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार; प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्णा, दुर्भल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य, प्रेङ्क्षण) नान्दी, सूत्रधार लक्षण, आमुखभेद (प्रवृत्तक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय); अर्थप्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य), पांच कार्यावस्थाएं (प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्तिसद्भाव, नियतफलप्राप्ति, फलयोग), पञ्चसन्धियां (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण) वर्णित हैं। तदनन्तर रस, भाव, नायक, रीति आदि का निरूपण है। अभिनय (नृत्य) के आङ्गिक कर्मों की विस्तृत विवेचना की गयी है। अभिनय के प्रकार (सात्विक, वाचिक, आङ्गिक, आहार्य) तथा रसों के स्थायी भाव भी प्रतिपादित हैं।

शब्दालङ्कारों (अनुप्रास, यमक आदि) अर्थालङ्कारों (उपमा, रूपक, सहोक्ति, अर्थान्तरन्यास), शब्दार्थोभयालङ्कार (प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता, अभिव्यक्ति), काव्यगुण (जो काव्य में शोभा का आनयन करता है) तथा गुण के भेद (सामान्य, वैशेषिक एवं प्रभेद; शब्द-गुण के भेद (श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सौकुमार्य, उदारता, ओज, योगिकी); अर्थगुण के भेद (माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि, सामयिकता); शब्दार्थगुण भेद (प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्तता, पाक, राग); तथा काव्यादोष विवेचन में वक्ता के दोषों (संदिहान, अविनीत, अज्ञ, ज्ञाता) एवं पद दोषों (असाधुत्व, अप्रयुक्तत्व आदि) का निरूपण किया गया है।[1]

(३४८ अ.) एकाक्षरकोष। अ (विष्णु, निषेध), आ (ब्रह्मा), इ (रति, लक्ष्मी), उ (शिव, रक्षक), ऋ (शब्द) क (ब्रह्मा), कु (कुत्सित), ख (शून्य, इन्द्रिय मुख) आदि एक एक अक्षर का अर्थ दिया गया है।

(३४९-५९ अ.) व्याकरण। वर्ण, सन्धि (स्वर, व्यञ्जन, विसर्ग) सुबन्त, पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग-रूपों की सिद्धि, काकर समास, तद्धित, उणादि तिङ्विभक्त्यन्त रूप, कृदन्त आदि रूपों की विवेचना की गयी है।

---

१. इस अंश पर एक संस्कृत टीका काव्य प्रभावृत्ति भी है जो शोध संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी (सं. डा. पारसनाथ द्विवेदी १९८५) से प्रकाशित हुई है।

(३६०-३६७ अ.) कोष। स्वर्ग, पाताल, अव्यय, नानार्थ, भूमि, वनौषधि, मनुष्य, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सामान्य नाम लिङ्गादि से सम्बद्ध कोष उपलब्ध है।[1]

(३६८-३७१ अ.) प्रलय के चार प्रकारों (नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक) का वर्णन है। नित्य (जगत् के प्राणियों की मृत्यु होना) ब्रह्मा का एक दिन (सामान्य एक हजार चतुर्युग) बीतने पर नैमित्तिक (ब्राह्म) लय, प्राकृत (पांच भूतों का प्रकृति में लीन होना), आत्यन्तिक (ज्ञान होने पर आत्मा का परमात्मा में स्थित होना) प्रलयों तथा साथ गर्भ की उत्पत्ति, प्राणियों की मृत्यु, नरकादि का विस्तृत वर्णन है।

(३७२-३७९ अ.) अष्टाङ्ग-योग। चित्त को एकाग्र करना 'योग' है। चित्तवृत्तियों का निरोध भी योग कहलाता है। यम, नियम की विवेचना, प्रणव-माहात्म्य, भगवत्पूजन, आसन, प्राणायाम (प्राण वायु को रोकना) ध्यान (ध्यै चिन्तायाम् भगवान् का बार-बार चिन्तन), धारणा (ध्येय वस्तु में मन की स्थिति), समाधि (जिसमें आत्मा के अतिरिक्त किसी भी वस्तु की प्रतीति नहीं होती वही ध्यान-समाधि), श्रवण, मनन, निदिध्यासन, भगवान् का स्वरूप, ब्रह्म तत्व की प्राप्ति के उपाय (ज्ञान तथा कर्म) परक वर्णित है।

(३८० अ.) अद्वैत ब्रह्मज्ञान। जड़भरत द्वारा सौवीरराज के प्रति उपदिष्ट अद्वैततत्त्व का निरूपण है। राजा भरत शालग्राम क्षेत्र में निवास करते हुए वासुदेव की पूजा में निरत रहते थे, परन्तु एक मृग के प्रति व्यामोह के कारण उन्हें मृग शरीर मिला। पशुयोनि में भी उन्हें विगत जन्म की बातों का स्मरण था। उन्होंने मृगशरीर का परित्याग कर ब्राह्मण रूप धारण किया। ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी वे संसार में जड़ की भांति रहते थे, अतः जड़भरत कहलाये। एक बार सौवीरनरेश के सेवक उन्हें देखकर पालकी ढोने हेतु पकड़ ले आये। पालकी ढोते समय उनकी मन्दगति को देखकर राजा ने पूछा-देखने में स्वस्थ, तुमसे क्या पालकी का भार वहन नहीं किया जाता ? ब्राह्मण ने अपने उत्तर से आत्मा का ऐक्य प्रतिपादित कर राजा को चमत्कृत कर दिया। राजा ने पुनः जड़भरत से अनेक प्रश्न पूछे। जड़भरत ने ऋभु (मुद्रित पाठ ऋतु अशुद्ध है) निदाघ का संवाद सुनाकर तथा अनेक उदाहरण देकर अद्वैत तत्व का प्रतिपादन किया।

(३८१ अ.) गीतासार। भोग तथा मोक्ष प्रदाता श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के प्रति उपदिष्ट ज्ञान 'गीता'' है। यहां गीता के कुछ वाक्य पठित हुये हैं, जैसे-गतप्राण अथवा जो गतप्राण नहीं हैं, उनके विषय में शोक करना मिथ्या है, आदि।

(३८२ अ.) यम-गीता। यमराज ने नचिकेता को इसका उपदेश दिया था। आत्म-तत्त्व के विवेचन-प्रसंग में कपिल, जनक, ब्रह्मा, देवल, सनकादिकों के श्रेयविषयक

१. यह अध्याय अमरकोशपर आधारित है, क्योंकि इसके प्रायः सभी वाक्य अमरकोश में देखे जाते हैं।

मत उल्लिखित हैं। आत्मा (रथी), शरीर (रथ), बुद्धि (सारथि), मन (वल्गा), इन्द्रिय (अश्व) विषय (मार्ग), शरीर, इन्द्रिय, मन सहित आत्मा (भोक्ता) के रूपक के द्वारा आत्मतत्व का उपस्थापन है। अन्त में यम, नियमादि का उल्लेख है।

(३८३ अ.) अग्निपुराण का माहात्म्य। वर्णित विषयों के उल्लेख के साथ परा, अपरा विद्याओं का वर्णन तथा इस पुराण के पाठ एवं दान का फल भी प्रतिपादित है।

स्कन्दपुराण[1]

अष्टादश पुराणों में स्कन्दपुराण बृहत्काय है। प्रस्तुत पुराण परिमाण की दृष्टि से दीर्घ होने पर भी विशिष्ट कथानकों से संवलित तथा साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वशाली है। इसके काशी, प्रभास, नागर एवम् अवन्ती खण्डों में इन क्षेत्रीय तीर्थों का माहात्म्य वर्णित है। एतदतिरिक्त अयोध्या, पुरी, रामेश्वर, कन्याकुमारी, काञ्ची, मथुरा, द्वारका, कुरुक्षेत्र, उज्जयिनी, प्रभृति तीर्थों, गङ्गानर्मदादि नदियों, कार्तिकवैशाखादि मासों; शिवरात्रि आदि व्रतों, पीपल, वट, धात्री आदि वृक्षों का महत्त्व एवम् उपयोगिता प्रतिपादित है।

अग्निपुराण के अनन्तर प्रस्तुत पुराण विषय वैविध्य की दृष्टि से द्वितीय-स्थान प्राप्त है। इसमें नीतिधर्म, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, दान, तप, पूजा, सुभाषित आदि विषयों का सम्यक् विवेचन है।

भगवान् स्कन्द प्रोक्त होने के कारण इस पुराण का नाम 'स्कन्द' पड़ा। मत्स्यपुराण (५३'४१-४२) में कहा गया है-जिस ग्रन्थ में षष्मुखस्कन्द ने तत्पुरुषकल्प के वृत्तान्त को लक्षण करके अनेक चरितों से उपबृंहित माहेश्वरधर्मों को कहा है उसे स्कन्दपुराण कहते हैं-

यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ते चरितैरूपबृंहितम्।।
स्कान्दं नाम पुराणं वै तदेकाशीति गद्यते।

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड (७.१.२७-२८) के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मादि देवों के समक्ष शिव ने पार्वती से स्कन्द पुराण कहा। तदनन्तर पार्वती से क्रमशः कार्त्तिकेय, नन्दी, अत्रिकुमार, व्यास तथा सूत ने प्रस्तुत पुराण का श्रवण किया-

पुरा कैलासशिखरे ब्रह्मादीनां च सन्निधौ।
स्कन्दं पुराणं कथितं पार्वत्यग्रे पिनाकिना।।
पार्वत्या षण्मुखस्याग्रे तेन नन्दिगणाय वै।
नन्दिनाऽत्रिकुमाराय तेन व्यासाय धीमते।।
व्यासेन च समाख्यातं भवद्भ्योऽहं प्रकीर्तये।

शिवपुराण (उत्तरखण्ड) के अनुसार स्कन्दपुराण के वक्ता महेश्वर तथा श्रोता स्कन्द हैं -

---

१. प्रस्तुत निबन्ध-वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय बम्बई से प्रकाशित 'स्कन्दमहरापुराण' के नाग पब्लिशर्स दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित संस्करण (१९८७) पर आधृत है।

यत्र स्कन्दः स्वयं श्रोता वक्ता साक्षान्महेश्वरः।।

पुराणसूची में स्थान एवं श्लोक परिमाण-स्कन्द पुराण अष्टादशपुराण गणनाप्रसङ्ग में श्रीमद्भागवत (द्वादश स्कन्द अ. ७) के अनुसार दशम स्थान पर परिगणित है, जबकि नारदीयपुराण के अनुसार स्कन्दपुराण का स्थान त्रयोदश है।

नारदीयपुराण (अ. १०४) के अनुसार स्कन्दपुराण में कुल ८१००० श्लोक हैं। परन्तु मत्स्यपुराण इसकी श्लोक संख्या ८११०० बतलाया है। कतिपय संस्करणों में इसकी अध्याय संख्या १६७१ है। वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई के संस्करण के स्कन्द पुराण कुल (७ खण्डों की) अध्याय संख्या १७३१ है।

जिसका विभाजन निम्नलिखित है-

खण्ड	**अध्याय संख्या**
१. माहेश्वर खण्ड	१३६
२. वैष्णव खण्ड	२२१
३. ब्राहम खण्ड	११४
४. काशी खण्ड	१००
५. आवन्त्य खण्ड	३८७
६. नागर खण्ड	२७६
७. प्रभास खण्ड	४६१

स्कन्द पुराण का संहिता विभाजन भी प्राप्त है। इसमें निम्नलिखित छह संहिताएं है -

संहिता	**श्लोक संख्या (सूत संहितानुसार)**
१. सनत्कुमार संहिता	३६०००
२. सूतसंहिता	६०००
३. शांकरी संहिता	३००००
४. वैष्णवी संहिता	५०००
५. ब्राह्मी संहिता	३०००
६. सौरी संहिता	१०००

इस प्रकार स्कन्द पुराण की श्लोक संख्या ८१००० निश्चित होती है। सौरी संहिता के श्लोकों की संख्या ६००० भी उल्लिखित है। इस प्रकार कुल श्लोक संख्या ८६००० होती हैं।

सूत संहिता के अनुसार स्कन्दपुराण की श्लोक संख्या एक लाख है। इसमें छः संहिताएं और पचास खण्ड हैं।[1] इसकी प्रथम संहिता में ५५००० श्लोक हैं। शेष संहिताओं में उपर्युक्त विवरण के अनुसार ही श्लोक है।[2]

उपर्युक्त में से मात्र सूतसंहिता (मध्वाचार्य की तात्पर्यदीपिका टीका के साथ) ही प्रकाशित है।

स्कन्दपुराण से निस्सूत ग्रन्थ-कतिपय ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हें स्कन्द पुराण से निस्सृत माना जाता है। ये ग्रन्थ पृथक् रूप से भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें निम्नलिखित हैः-

- सह्याद्रि खण्ड	- अर्बुदाचल खण्ड
- कश्मीरखण्ड	- कैलासखण्ड
- पुष्करखण्ड	- बदरिकाखण्ड
- हिमवत्खण्ड	- अधिमासखण्ड
- अम्बिकामाहात्म्य	- अयोध्यामाहात्म्य
- अरुन्धतीमाहात्म्य	- वैशाखमाहात्म्य
- कार्तिकमाहात्म्य	- मानसखण्ड कूर्माञ्चल (कुमाऊँ) के तीर्थों का माहात्म्य)

लोक में प्रचलित सत्यनारायणव्रत कथा का उत्स भी स्कन्द पुराण का रेवाखण्ड ही है। इसका उल्लेख कथा की प्रत्येक अध्याय के अन्त में है।[3] (परन्तु प्रस्तुत कथा मात्र मोर प्रकाशन संस्करण में ही प्राप्त है।)

रचनाकाल एवं स्थान-प्रस्तुत पुराण के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। जगन्नाथ मन्दिर का उल्लेख होने के कारण विल्सन इसे ग्यारहवीं सदी का मानते

---

१. लक्षं तु ग्रन्थसंख्याभिः सर्वविज्ञानसागरम्।
स्कन्दमद्याभिवक्ष्यामि पुराणं श्रुतिसम्मतम्।। सू.सं. १/१/१८

२. आद्या सनत्कुमारोक्ता......................सू.सं. १।१।२०-२१
ग्रन्थतः पञ्चपञ्चाशत सहस्रेणोपलक्षिता
आद्या तु संहिता विप्राः............सू.सं. १।१।२२

३. यद्यपि वेङ्कटेश्वर प्रेस मुम्बई एवं नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित स्कन्दपुराण में यह कथा नहीं मिलती, किन्तु बङ्गवासी प्रेस कोलकाता तथा गुरुमण्डल-ग्रन्थ-माला से मुद्रित स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में अ. (२२२ से २२६) चार अध्यायों में निबद्ध है। इसका २२५वाँ अध्याय बड़ा है जिसे वर्तमान में उपलक्ष्य कथा में दो अध्यायों में विभक्त कर दिया है, जिस कारण अध्याय संख्या ५ हो गई है। सत्यनारायण-व्रत-कथा में वर्णित भौगोलिकक्षेत्र नर्मदातट ही है जो इसके रेवाखण्ड में सम्बन्ध की ओर संकेत करता है। रेवा नर्मदा का ही अपर नाम है।

हैं। काशीखण्ड की एक पाण्डुलिपि जो ६३४ ई. में लिखित है, बंगाली एनसाइक्लोपीडिया कार्यालय को प्राप्त है, जिसका प्रचलित काशीखण्ड से साम्य है। नेपाल के पुस्तकालय में स्कन्दपुराण की एक पुस्तक प्राप्त है जिसका प्रथमखण्ड अम्बिकाखण्ड है तथा उसके बाद ही (नारदपुराणानुसार) अन्यखण्ड हैं।

आर. सी. हाजरा विभिन्न स्मृतिग्रन्थों में उद्धृत स्कन्द पुराण के उद्धरणों के विस्तृत विवेचन के आधार पर इसका रचनाकाल ७०० ई. पूर्व तथा उत्तर १३०० ई. सुनिश्चित करते हैं।

रचनाकाल की भांति ही विद्वान् स्कन्दपुराण के स्थान के विषय में मत वैभिन्य रखते हैं। पुराणगत तीर्थों की विस्तृत विवेचना कर विद्वान्, काशी, उज्जयिनी, पुरी आदि निर्धारित करते हैं।

स्कन्द पुराण के संस्करण

१. वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण, बम्बई से प्रकाशित संस्करण को नाग पब्लिशर्स दिल्ली ने पुनर्मुद्रित (१९८७) कर प्रकाशित किया है।
२. बंगवासी प्रेस, कलकत्ता संस्करण
३. आनन्दाश्रम प्रेस संस्करण, पूना
४. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
५. मोर प्रकाशन संस्करण, कलकत्ता
६. गीताप्रेस, गोरखपुर (संक्षिप्त हिन्दी)

स्कन्द पुराण में वर्णित विषयों का सार

माहेश्वरखण्डान्तर्गत प्रथमः केदारखण्ड

(१-५ अ.) (मङ्गलाचरण, स्कन्दपुराणोपक्रम तथा दक्षयज्ञविध्वंसवृत्तान्त) शौनकादि ऋषियों के दर्शनार्थ व्यासशिष्य लोमशऋषि नैमिषारण्य में आये; ऋषियों द्वारा प्रश्न किये जाने पर लोमश ने कहा-पूर्वकाल में प्रजापति दक्ष ने अपनी पुत्री सती का विवाह शंकर से किया। एक बार दक्ष नैमिषारण्य आये, परन्तु शिव ने उनका अभिवादन नहीं किया, जिससे रुष्ट दक्ष ने शिव को यज्ञ से बहिष्कृत करने का शाप दिया। कालान्तर में दक्ष ने एक यज्ञ का आयोजन कनखल में किया। जिसमें उन्होंने वशिष्ठादि ऋषियों तथा देवगणों आदि को आमन्त्रित किया। दधीचि ने दक्ष से शिव को भी यज्ञ में आहूत करने को कहा। दक्ष द्वारा मना करने पर दधीचि यज्ञशाला से चले गये। दक्षकुमारी सती ने शिव से दक्ष द्वारा आमन्त्रित न किये जाने का कारण पूछा। शिव ने अनाहूत दूसरे के घर जाने को निषेध किया। परन्तु सती द्वारा आग्रह किये जाने पर शिव ने सती को अपने गणों के साथ

यज्ञ में भेजा। वहां पहुँचकर सती ने पिता से शिव को आमन्त्रित न किये जाने का कारण पूछा। दक्ष ने शिव के प्रति अपमानजनक शब्द कहे, जिसे सुनकर सती अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं। इस पर क्रुद्ध शिव ने वीरभद्र को दक्ष के यज्ञ के विनाश का आदेश दिया। वीरभद्र ने दक्ष के शिर को काट कर अग्नि में फेंक दिया। पुत्र (दक्ष)-वध से दुखी ब्रह्मा कैलास पर शिव के समीप पहुँचे तथा शिव को प्रार्थना द्वारा प्रसन्न किया। प्रसन्न शिव ने दक्षयज्ञस्थल पर आकर वीरभद्र से दक्ष का शिर मांगा, पर वीरभद्र ने दाढ़ीयुक्त छाग पशु का सिर प्रस्तुत किया, जिसे दक्ष के सिर से जोड़कर शिव ने उसे प्राणवान् कर दिया। अन्त में लोमश द्वारा शिव-भक्ति, हरनामोच्चारण-प्रभाव, रुद्राक्ष तथा त्रिपुण्डधारण-माहात्म्य वर्णित है।

(६-८ अ.) (लिङ्गपूजाप्रवृत्ति का कारण, शिवभक्तिामाहात्म्य तथा रामावतार-कथा) दारुवन में शिव के दिगम्बररूप को देखकर ऋषिपत्नियां मुग्ध होकर शिव का अनुगमन कर गयीं। इसे जानकर ऋषियों ने शिव को शाप दिया, जिससे उनका लिङ्ग भूमि में पतित हो गया। पतितलिङ्ग का समस्त ब्रह्माण्डव्यापी स्वरूप देखकर उसके आदि और अन्त का अनुसन्धान हेतु विष्णु पाताल लोक को तथा ब्रह्मा स्वर्गलोक को गयें। ब्रह्मा-द्वारा "लिङ्ग मस्तक देखा गया है" ऐसी सुरभी एवं केतकी की झूठी उक्ति सुनकर भगवान् द्वारा आकाशवाणी के माध्यम से इन्हें शाप प्रदान करने, अभिशप्त देवर्षियों द्वारा लिङ्ग की शरण में जाने, वीरभद्र द्वारा शिवलिङ्ग पूजन करने, अनेक देवों द्वारा अनेक स्थानों पर शिवलिङ्ग की स्थापना करने तथा उद्दालकमहर्षि एवं काशिराजपुत्री सुन्दरी का संवाद वर्णित है। शिवभक्ति-प्रतिपादन हेतु एक दुश्चरित्र तथा जुआड़ी तस्कर की कथा भी लिखित है। एक बार जुएं में अपना सब कुछ हारा हुआ वह शिवलिङ्ग के ऊपर चढ़कर घण्टा उतारने लगा। वीरभद्र उस तस्कर को विमान द्वारा कैलास पर ले आये जहां प्रसन्न शिव ने उसे अपना पार्षद बनाया। अन्त में शिव एवं विष्णु का अभेद प्रतिपादन, रावण-नन्दी का संवाद, नन्दी द्वारा रावण को शाप देने (वानरों को आगे करके कोई मानव जब तुझ पर आक्रमण करेगा, तुम्हारी मृत्यु होगीं), राम द्वारा रावण-वध, रावण का शिव-सायुज्य तथा शिवलिङ्गार्चन की महिमा वर्णित है।

(९-१२ अ.) एक समय इन्द्र के प्रति रुष्ट होकर बृहस्पति सभा से चले गये। अवसर देखकर बलि ने अमरावती पर आक्रमण कर इन्द्र को परास्त किया। इन्द्र, विष्णु द्वारा प्रेरित होकर बलि के समीप गये तथा बलि को समुद्र-मन्थन हेतु तत्पर किया। मन्दराचल को मथानी तथा वासुकि को रस्सी बनाकर समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हुआ। मन्थन के कारण समुद्र से हलाहल निकला। अग्रिम अध्यायों में हेरम्ब की उत्पत्ति, हेरम्ब की स्तुति से प्रसन्न शिव द्वारा लिङ्ग रूप से विष को अपना ग्रास बनाने, समस्त कार्यों के आरम्भ में गणेशपूजन के विधान तथा शिवप्रेरित गणेशपूजा की विधि विहित है। पुनः समुद्र-मन्थन

से चन्द्रमा, कामधेनु आदि रत्नों की उत्पत्ति, लक्ष्मी का प्राकट्य, लक्ष्मी द्वारा विष्णु के वरण, अमृतकलश के साथ धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव, वृषपर्वा द्वारा बलपूर्वक धन्वन्तरि से घड़ा लेकर पाताल-गमन, निराश देवों का विष्णु के समीप जाने, विष्णु द्वारा मोहिनीरूप धारण करके दैत्यों को न देकर देवों को अमृत पिलाना, सूर्य एवं चन्द्रमा की सूचना पर देवपंक्ति में विद्यमान राहू के शिर का विष्णु द्वारा छेदन, अमृत न पाने के कारण क्रुद्ध दैत्यों की दशा वर्णित है।

(१३-१४ अ.) देवासुर-संग्राम में कालनेमि द्वारा पराजित देवों ने कालनेमि के वधार्थ विष्णु की स्तुति की। विष्णु कालनेमि का वध कर अन्तर्धान हो गये। तदतन्तर इन्द्र ने असुरों का संहार प्रारम्भ किया। इन्द्र सभी देवों के साथ अमरावती को प्रस्थान किये। युद्ध में जीवित असुर मानसोत्तर पर्वत पर तपस्याकारी शुक्राचार्य के पास गये। शुक्राचार्य ने मृतदैत्यों को सञ्जीवनीविद्या द्वारा पुनः जीवन प्रदान किया।

(१५-१७ अ.) (इन्द्र द्वारा विश्वरूप का वध, नहुष द्वारा ऐन्द्रपद प्राप्ति तथा पतन एवम् इन्द्र की पुनः राज्य प्राप्ति)। अपमानित बृहस्पति द्वारा इन्द्र को छोड़कर चले जाने के बाद तीनमस्तक वाले विश्वरूप इन्द्र के पुरोहित हुए। तीन मुखों से वे क्रमेण देवताओं, दैत्यों तथा मनुष्यों को यज्ञ-भाग प्रदान करते थे। रहस्य ज्ञात होने पर इन्द्र ने उनका मस्तक काट डाला। ब्रह्म-हत्या के कारण इन्द्र स्वर्गराज से च्युत हो गया और नहुष को इन्द्र का राज्य सौंप दिया गया। एक बार कामान्ध नहुष ने इन्द्राणी को बुलाया, इन्द्राणी द्वारा "जो वाहन बनाने योग्य न हो" ऐसे वाहन पर बैठ कर आने की बात कह गयी। नहुष ने विचार कर तपस्वीब्राह्मणों को पालकी उठाने की आज्ञा दी। क्रुद्ध तपस्वीब्राह्मण अगस्त्य ने नहुष को अजगर होने का शाप दिया जिससे नहुष तिर्यग्योनि में पतित हुए। बृहस्पति के सहयोग से इन्द्र को पुनः स्वर्ग-राज्य प्राप्त हुआ।

विश्वरूप के वध से क्रुद्ध विश्वकर्मा ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर इन्द्र का वध करने में समर्थ पुत्र मांगा। ब्रह्मा द्वारा तथास्तु कहते "वृत्र" नामक एक अद्भुत दैत्य प्रकट हुआ, जिसने सम्पूर्ण भूमण्डल को ढक लिया। डरे हुए देवों को ब्रह्मा ने दधीचि के पास भेजा। दधीचि से अस्थियां प्राप्त कर देवों ने "वज्र" तथा "ब्रह्मशिर" नामक अस्त्र बनाये। जिनकी सहायता से इन्द्र ने "वृत्र" तथा "नमुचि" का वध किया। शुक्र की आज्ञा से यज्ञ रथ प्राप्त कर, बलि का युद्ध के लिए स्वर्गलोक प्रस्थान करने की कथा भी यहां लिखित है।

(१८-१६ अ.) (बलि द्वारा देवों की पराजय, वामनावतार तथा बलि पर विष्णु की कृपा) शुक्राचार्य के आदेश से देवों को परास्त करने के लिए बलि ने विश्वजित् नामक यज्ञ किया, जिससें अद्भुत-रथ उत्पन्न हुआ जिस पर आरूढ़ हो बलि स्वर्गलोक पहुंचा। भयभीत देवताओं के कश्यप के आश्रम पर जाने, कश्यप द्वारा आदिष्ट अदिति द्वारा

श्रवणद्वादशी व्रत करने तथा स्वर्गलोक को रिक्त पाकर शुक्र द्वारा बलि को वहां अभिषिञ्चित करने का उल्लेख है। यहां बलि के पूर्वजन्म की कथा भी कही गयी है। शुक्र द्वारा मना किये जाने पर भी बलि ने वामन को तीन पग-भूमि दान देना स्वीकार कर लिया। वामन ने दो पदों में ही चराचर ब्रह्माण्ड को माप लिया। बलि-पत्नी विन्ध्यावती द्वारा दिये गये उत्तर से प्रसन्न वामन ने बलि को बन्धनमुक्त कर स्वयं को सदा बलि के समीप रहने का वरदान दिया।

(२०-३० अ.) (सुरतारकासुरसंग्रामवृत्तान्त। शिव-पार्वती-विवाह। कुमार की उत्पत्ति। कुमार द्वारा तारकासुर-वध) नमुचि-पुत्र तारक ने तपस्याकर ब्रह्मा से "अजेय" होने का वर मांगा। ब्रह्मा ने "उसकी मृत्यु शिव के बालक द्वारा होगी"-ऐसा वर दिया। उस असुर से पराजित देवों को आकाशवाणी द्वारा यह ज्ञात हुआ कि तारकासुर की मृत्यु शिव के पुत्र के द्वारा होगी। देवगण कन्या की उत्पत्ति हेतु हिमालय और उनकी पत्नी के पास गये। कालान्तर में मेना से एक कन्या "गिरिजा" की उत्पत्ति हुई। एक बार हिमालय अपनी कन्या के साथ तपस्यारत शिव के दर्शनार्थ हिमालय-कन्दरा में गये। शिव के आदेश पर पार्वती उनकी सेवा करने लगी। देवताओं ने इन्द्र के माध्यम से शिव के पास कामदेव को भेजा। शिव ने काम को भस्म कर डाला। देवों ने शिव को कहा कि पार्वती की सहायता के लिए ही उन्होंने काम को भेजा था। शिव ने देवों को काम की निरर्थकता समझायी। कामपत्नी, रति को पार्वती ने काम के पुनर्जीवन का आश्वासन दिया। पार्वती पुनः शिव की प्राप्ति हेतु तपस्या में लीन हो गयी। पत्तों का भक्षण भी छोड़ने के कारण पार्वती का नाम "अपर्णा" पड़ा। देवों की प्रार्थना पर शिव, पार्वती के समीप गये तथा बटुरूप धारण कर उनके प्रेम की परीक्षा ली। शिव ने हिमालय के पास, विवाह की मध्यस्थता हेतु सप्तर्षियों को भेजा। शिव के साथ पार्वती के विवाह के निश्चय, समस्त देवों को शिव की बारात में सम्मिलित होने तथा हिमालय द्वारा कन्यादान करने का उल्लेख है। विवाहोपरान्त गन्धमादन पर्वत पर शिवपार्वती के रमणकाल में ब्रह्मादि देवों ने अग्नि को उनके समीप प्रेषित किया, असमय आने के कारण पार्वती ने अग्नि को शाप दिया। पार्वती से षण्मुख बालक के जन्म; देवासुर-संग्राम में पराजित देवों द्वारा तारकासुर से युद्ध करने तथा कुमार द्वारा तारकासुर-वध करने की कथा प्रतिपादित है।

(३१-३३ अ.) (कुमारस्वामि-माहात्म्य, श्वेतराजा का चरित, महाशिवरात्रि-माहात्म्य) कुमार के दर्शनमात्र से ही पापिष्ठ व्यक्ति को भी स्वर्ग प्राप्त करने के कारण अपने अधिकार क्षेत्र को सीमित होता हुआ जानकर दुःखी यम, शिव के पास गये। शिव ने उन्हें कुमार के दर्शन से प्राप्त होने वाले पुण्य-फल को समझाया जिससे यम सन्तुष्ट एवम् आत्मज्ञ हुए।

धर्मपरायण, शिवोपासनारत महाराज श्वेत को निकट मृत्यु पर यमदूत उन्हें लेने आये पर उनकी शिवभक्ति देखकर वापस चले गये। तदनन्तर यम भी स्वयं आये पर उनको ले जाने का साहस नहीं कर सके। काल श्वेत को मारने के लिए उद्यत हुए, भयभीत श्वेत की रक्षा के लिए शिव ने अपना तृतीय-नेत्र खोलकर काल को भस्म कर दिया। श्वेत की प्रार्थना पर शिव ने काल को जीवित किया। अन्त में श्वेत ने शिव-सायुज्य प्राप्त किया।

(शिवरात्रिमाहात्म्य-प्रतिपादन में "चण्ड" नामक किरात तथा विधवा ब्राह्मणीपुत्र दुस्सह की कथा वर्णित है)। प्राचीनकाल में "चण्ड" नामक एक दुष्टात्मा किरात (माघ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को) मृगया हेतु जंगल में जाकर श्रीवृक्ष पर चढ़ गया। श्रीवृक्ष पर चढ़े हुए उसने अनायास ही बिल्व पत्रों को गिराया जो नीचे स्थित शिवलिङ्ग पर पड़े। उसी दिन उसकी पत्नी भी उसकी प्रतीक्षा में व्रती रह गयी। अज्ञान में ही किरात तथा उसकी पत्नी द्वारा किये गये पूजन एवं व्रत से वे पुण्यफलभागी बने तथा शिवलोक को प्राप्त किये।

दुराचारिणी विधवा ब्राह्मणी से उत्पन्न 'दुस्सह' अत्यन्तहीन आचरणवाला था। शिवरात्रि के दिन उपवास कर तथा शिव-कथा को सुनकर पुण्य को प्राप्त किया। इसी प्रकार चित्राङ्गद के विचीत्रवीर्य नामक पुत्र ने भी शिव की भक्ति द्वारा शिव-सायुज्य प्राप्त किया।

(३४-३६ अ.) कैलास पर शिव एवं पार्वती ने एक बार द्यूतक्रीडा की, जिसमें शिव हार गये। हारे हुए शिव तपोवन को चले गये। शिव के बिना विरह-सन्तप्त पार्वती, शबरी रूप में समाधिस्थ शिव के पास गयी। शिव के देखे जाने पर शबरीरूपिणी पार्वती अन्तर्धान हो गयी। शिव द्वारा स्वयं को पति रूप में स्वीकार करने हेतु शबरी से प्रार्थना करने पर शबरी ने शिव से कहा कि-उसे प्राप्त करने हेतु गन्धमादन पर्वतवासी उसके पिता से प्रार्थना करनी होगी। शिव ने हिमालय से कन्या-प्राप्ति हेतु प्रार्थन की। तदनन्तर कन्या के स्वरूप का बोध होने पर वे पार्वती से रूष्ट होकर पुनः वन जाने को उद्यत हुए, पर हिमालयादि पर्वतों के समझाने पर गन्धमादन पर्वत पर निवास किया, वहां बृहस्पति द्वारा अभिषिक्त हुए।

द्वितीयः कौमारिक खण्ड

(१-२ अ.) (अर्जुन की तीर्थ-यात्रा। नारद-अर्जुन-संवाद) पूर्वकाल मे अर्जुन द्वादशवर्षीय तीर्थयात्रा के प्रसंग में मणिपुर होते हुए दक्षिण समुद्र तट पर अवस्थित पांचतीर्थों (१. कुमारिश २. स्तम्भेश ३. बर्करेश्वर ४. महाकालेश्वर ५. सिद्धेश) में स्नान के लिए पहुँचे। इन तीर्थां को मुनियो ने ग्राहों के भय से त्याग दिया था। यह जानकर अर्जुन ने शाप हेतुक ग्राहरूपिणी पांच अप्सराओं (१. वर्चा २. सौरभेयी ३. सामेयी ४. बुद्बुदा

५. लता) का उद्धार किया। नारद ने कात्यायन-सारस्वत-संवाद के माध्यम से अर्जुन की तीर्थ-माहात्म्य-जिज्ञासा का समाधान किया।

(३-१३ अ.) (महासागरसंगम तीर्थ-माहात्म्य) ब्राह्मणों को भूमिदान करने के इच्छुक नारद श्रेष्ठभूमि का अन्वेषण करते हुए भृगु के आश्रम पर पहुँचे; भृगु ने नारद को महीनदी तथा सागर का उल्लेख करते हुए दोनों के संगम पर स्थित "स्तम्भ" नामक तीर्थ का माहात्म्य बतलाया। नारद ने दान के तीन प्रकारों (१. शुक्ल (उत्तम, सात्त्विक), २. शबल (मध्यम, राजस), ३. कृष्ण-द (अधम तामस) पर विचार करते हुए शुक्ल दान को श्रेष्ठ बतलाया। उसी समय सौराष्ट्र देश के निवासी कुछ ऋषि स्नानार्थ आये। उन्होंने नारद से कहा कि-धर्मवर्मा के बहुत दिनों तक तपस्यारत रहने के बाद आकाशवाणी द्वारा उन्हें दान के हेतु, अधिष्ठान अङ्ग आदि के विषय में बतलाया गया। पर धर्म-वर्मा उसकी व्याख्या न कर सके। ऐसा सुनने पर नारद ने आकाशवाणी द्वारा प्रोक्त श्लोक की व्याख्या धर्मवर्मा को समझाकर उनसे दान-स्वरूप यह संगम-भूमि प्राप्त की। तदनन्तर नारद ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों से मातृकास्वरूप तथा पच्चीस वस्तुनिर्मित गृह विषयक प्रश्न पूछा, जिसका कलापग्रामवासी सुतनु ने समुचित उत्तर दिया। उत्तर से सन्तुष्ट नारद के कलापवासी ब्राह्मणों को महासागरसङ्गम ले जाकर भूमि आदि प्रदान करके पुण्य स्थान की स्थापना की। मधुपर्क के समय हारीत ब्राह्मण द्वारा पहले बायां पैर आगे करने के कारण नारद ने इन्हें मूर्ख होने का शाप दिया। रुष्ट अन्य ब्राह्मणों ने नारद को भी ऐसा ही होने का शाप दिया। नारद ने पश्चाताप करते हुए चिरकारी ब्राह्मण (चिरकारी को उसके पिता ने उसकी माता की हत्या का आदेश दिया था, पर अधिक सोच-विचार करने के कारण उसने अपनी माता का वध नहीं किया)-के वृत्तान्त का स्मरण किया।

यहां राजा इन्द्रद्युम्न का वृत्तान्त है। तपस्वी इन्द्रद्युम्न अपनी जिज्ञासा के समाधान हेतु क्रमेण मार्कण्डेयमुनि, नाड़ीजड़धबक, प्राकारकर्णउलूक, चिरायुगिद्धराज एवं मन्धार कछुए से मिले। कछुए ने उन्हें लोमश के पास भेजा। इन्द्रद्युम्न ने संवर्त के समीप जाकर उनसे महीसागर-संगम की महिमा का श्रवण किया। इन संगम में इन्द्रद्युम्न ने इन्द्रद्युम्नेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना की।

१४-१५ अ.) (कुमारनाथ-माहात्म्य) माता की आज्ञा से वज्राङ्ग स्वर्ग जाकर इन्द्र को अपनी माता के समीप ले आया। कश्यप की प्रार्थना पर वज्राङ्ग ने इन्द्र को छोड़ा। ब्रह्मा की आज्ञा से वज्राङ्ग ने तपस्या प्रारम्भ की। तपस्या के समय वज्राङ्ग की पत्नी वराङ्गी ने उसकी शुश्रूषा की। वराङ्गी को इन्द्र ने अनेक प्रकार से संत्रस्त किया पर असफल रहा। ब्रह्मा के वररूप में वज्राङ्ग एवं वराङ्गी से तारकासुर की उत्पत्ति हुई।। सभी दैत्यों द्वारा उसका राज्याभिषेक किया गया। देवों को जीतने की इच्छा से पारियात्र पर्वत की कन्दरा में तारकासुर ने तपस्या की। तपस्या से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने उसे सप्तवर्षीय बालक द्वारा ही मारे जाने का वर दिया।

(१६-२१ अ.) तारकासुर ने अपने मंत्रियों से मन्त्रणा कर देवों को जीतने हेतु अपनी सेना को तथा बृहस्पति से परामर्श कर इन्द्र ने देव-सेना को युद्ध के लिए तैयार किया। कुबेरादि देवों से जम्भादि असुरों का युद्ध हुआ। वरूण एवं निऋर्चति को ग्रसने हेतु उद्यत महिषासुर आदि असुरों को चन्द्रमा द्वारा शीत किरणों से व्याकुल करने तथा कालनेमि द्वारा पावकार्चि के प्रसार से शीत की समाप्ति हुई। तदनन्तर सूर्य द्वारा देव-दानवों का परस्पर रूप-विपर्यय करने पर मोह के कारण कालनेमि द्वारा दैत्यों की ही हत्या की गयी।

कालनेमि के पुत्र निमि द्वारा यथास्थिति बतलाने पर कालनेमि ने ब्रह्मास्त्र चलाया। सूर्य ने प्रचण्ड गर्मी उत्पन्न कर दैत्यों को पराजित किया। कालनेमि ने कालमेघस्वरूप-वृष्टि द्वारा देवों को पराजित किया। सभी देवों की प्रार्थना पर विष्णु गरूड पर आरूढ़ होकर युद्धभूमि में आये तथा कालनेमि से युद्ध कर उसे पराजित किया। परन्तु जम्भासुर से युद्ध में विष्णु पराजय प्राप्त कर पलायित हो गये। इन्द्र द्वारा स्तुति किये जाने पर भागते हुए विष्णु रुके तथा देवों की सेना को पुनः एकत्रित कर जम्भासुर से युद्ध कर उसका वध किया। जम्भासुर के वध के अनन्तर सभी दैत्य तारकासुर के समीप गये। पुनः तारकासुर तथा देवसेना के मध्य युद्ध हुआ जिसमें देव परास्त हुए तथा विष्णु की आज्ञा से सभी देव अन्तर्धान हुए। विजय प्राप्त कर तारकासुर महीसागर-संगम (खम्बायत नामक स्थल) पर राजसिंहासन पर आसीन हुआ। अन्त में तारकासुर द्वारा इन्द्रादि देवों के स्थानों पर दैत्यों को स्थापित करने की कथा वर्णित है।

(२२-२९ अ.) इन्द्रादिक देवताओं ने ब्रह्मा से अपने कष्टों के निवारण का उपाय पूछा। ब्रह्मा ने बताया कि-हिमालय के घर जगदम्बा अवतार ग्रहण करेंगी। तदनन्तर मैना से जगदम्बा के प्रादुर्भाव; इन्द्र के कथन पर नारद का हिमालय के समीप आने, हिमालय को पुत्रीमाहात्म्य बतलाते हुए पार्वती के सामुद्रिक लक्षणों के द्वारा महेश्वर को वर रूप में प्राप्ति हेतु आश्वासन प्रदान करने, का उल्लेख है। अग्रिम अध्यायों में हिमालय द्वारा पार्वती को शिव की सेवा में नियुक्त करने का वर्णन है। नारद ने पार्वती का विवाह शिव से करने का उपदेश हिमालय को दिया। इन्द्र ने शिव को काम-मोहित करने हेतु मदन को भेजा। शिव ने काम को तृतीय नेत्र द्वारा दग्ध कर डाला। रति की प्रार्थना पर शिव ने अनङ्ग रूप में मदन को जीवन-दान दिया। शिव की प्राप्ति हेतु पार्वती द्वारा तप प्रारम्भ करने, शिव के विप्र रूप में उनकी परीक्षा लेने, प्रसन्न शिव द्वारा उन्हें आश्वासन देने, विवाह हेतु सभी देवों को निमन्त्रित करने, शिव द्वारा हुंकार मात्र से ही दैत्यों को उनके स्थान पर भेजने, शिव-विवाह-स्थल पर देवों के आगमन, शिव-पार्वती-विवाह, मन्दराचल में स्थित सुन्दर भवन में रमण, पार्वती द्वारा देवों की सहायता के लिए गणपति को प्रदान करने, शिव द्वारा परिहास (नर्मोक्ति) से पार्वती को "काली" कहने पर पार्वती द्वारा तपस्या के लिए जाते हुए शिव के समीप अन्यस्त्री को न आने देने के लिए द्वार पर वीरक नामक

गण को नियुक्त करने, पार्वती को वायु द्वारा किसी अन्यस्त्री का शिव के समीप आने की बात कहने पर पार्वती द्वारा वीरक को शाप देने, पार्वती के शरीर से नीलवर्णा देवी के निकल जाने पर अपने पूर्व गौर-रूप की प्राप्ति के अनन्तर शिव के समीप गमन करने, छह ऋषिपत्नियों के चरित, विश्वामित्र द्वारा कुमार के प्रारम्भिक संस्कार कराने तथा इन्द्रादिक देवों को कुमार के समीप आने की विस्तृत कथा प्राप्त है।

(३०-३६ अ.) (कुमार का सेनापति रूप में अभिषेक, तारकासुरवध, कुमारेश्वर-लिङ्ग-स्थापना) तारक के वध हेतु सभी देवों द्वारा कुमार को सेनापति बनाने, तारक द्वारा कुमार को देखकर अपने वध के ज्ञान होने, देव-दैत्य संग्राम तथा कुमार द्वारा तारक के वध का वर्णन है। शिवभक्त तारक के वध पर कुमार का शोक तथा पातक की शान्ति हेतु विश्वकर्मा द्वारा निर्मित शिवलिङ्गों (१. प्रतिज्ञेश्वर २. कपालेश्वर ३. कुमारेश्वर) की स्थापना करने, शिव के विशिष्टों नामों (शिव, निरामय, मनोमय, भव, शर्व आदि-अ. ३४) के उल्लेखपूर्वक स्तुति करने तथा कुमारेश-माहात्म्य भी कथित है।

(महीसागर-संगम में ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भी अनेक शिवलिङ्गों की स्थापना तथा उनके माहात्म्य एवं प्रलम्ब -वध का वर्णन है) प्रलम्ब, देव-तारकासुर युद्ध के समय कुमार के भय से पाताल में जा छिपा था, जहां वह विध्वंस में संलग्न था। यह ज्ञात होने पर कुमार ने संकल्पपूर्वक "प्रलम्ब मारा जाय" ऐसा कह शक्ति को छोड़ा। शक्ति ने पाताल में जाकर प्रलम्ब का वध किया।

(३७-३९ अ.) (बर्बरीतीर्थ माहात्म्य (कुमारी-चरित) तथा भूगोलवर्णन) सिंहलद्वीप के राजा शतश्रृङ्ग को आठ पुत्र (इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान, नग, सौम्य, गन्धर्व एवं वरूण) तथा एक पुत्री उत्पन्न हुई। पूर्व जन्म में यह पुत्री एक बकरी थी जो अपने झुण्ड से पृथक् होकर महीसागर-संगम क्षेत्र की लताओं में फँसकर मृत्यु को प्राप्त हुई। पुण्य जल के प्रभाव से वह शतश्रृङ्ग राजा के घर बकरीसदृशमुखवाली कन्या रूप में उत्पन्न हुई। एक दिन दर्पण देखते समय उस कन्या को अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त ज्ञातकर और उसने महीसागर-संगम में आकर बकरी के सिर की अस्थियां प्राप्त कर उसे भी महीसागर-संगम में प्रवाहित कर दिया तथा तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न कर महीसागर-संगम कभी न छोड़नें का वर पाया। कन्या ने बकरी की स्थापना की जिसका माहात्म्य भी वर्णित है।

भूगोल-वर्णन में कहा गया है सृष्टि के ऊर्ध्व भाग में देव, मध्य में मानव तथा नाग और दैत्य पाताल में निवास करते हैं। पाताल, द्वीप तथा लोक ये सात-सात की संख्या वाले हैं। इनका विस्तृत वर्णन यहां उपलब्ध है।

(४०-४१ अ.) (कालभीति-चरित तथा महाकाल-अन्धक-संवाद) वाराणसी में "माण्टि" नामक ब्राह्मण रहते थे। पुत्र-प्राप्त्यर्थ उन्होंने रुद्रमन्त्र (= रुद्राध्याय) का जप किया। शिव

ने उन्हें पुत्र प्राप्त करने का वर दिया। चार वर्ष व्यतीत हो जाने पर माण्टि ने पत्नी के गर्भस्थ-शिशु को मनुष्य योनि की श्रेष्ठता समझायी, परन्तु भयभीत गर्भस्थ बालक गर्भ से बाहर नहीं आया। विभूतियों द्वारा आश्वस्त किये जाने पर वह बाहर आया, परन्तु भयभीत रहने के कारण उसका नाम "कालभीति" पड़ा। कालभीति ने तपस्या से शिव को प्रसन्न कर महाकाल (कालमार्ग से मुक्ति दिलाने के कारण), नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की। यहां महाकाल तथा राजा करन्धम का संवाद एवं युगव्यवस्था विषयक संवाद भी लिखित है। पुराण सूची भी यहां हैं -(१५८-१६६-२०२)। वाराहकल्पीय व्यासों (ऋतु, सत्य, भार्गव, अङ्गिरा, सविता आदि) के नाम, शिवपूजनविधि तथा सदाचार का निरूपण है।

(४२-४४ अ.) (वृद्धवासुदेवमाहात्म्य तथा ऐतरेय ब्राह्मण का चरित) लोक-कल्याण हेतु नारद ने महीसागरसंगम में वृद्धवासुदेव की स्थापना की, जिसके पूजन से मनुष्य अन्त में वैकुण्ठधाम को प्राप्त करता है। यहां ऐतरेय ब्राह्मण का चरित भी वर्णित है। माण्डूकि नाम के ब्राह्मण की "इतरा" नामकी स्त्री से ऐतरेय उत्पन्न हुआ था। वह सदा द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम् नमो भगवते वासुदेवाय) का जप करता रहता था। दुखी माता को ऐतरेय ने संसार की निस्सारता बतलाकर ज्ञान प्रदान किया। भगवान् ने प्रसन्न होकर ऐतरेय को दर्शन दिया, तत्पश्चात् ऐतरेय यज्ञ में जाकर वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों को अपनी विद्या से सन्तुष्ट कर तथा हरिमेधा की पुत्री को पत्नी रूप में प्राप्त कर मां के समीप आया। अन्त में ऐतरेय ने मोक्ष प्राप्त किया। नारद ने महीसागर संगम में भट्टादित्य (सूर्य) की भी स्थापना की। यहां सूर्य की एक सौ आठ नाम तथा सूर्यपूजन की विधि भी लिखित है।

(४५-४७ अ.) (नन्दभद्रवणिक् का आख्यान, कपिलेश्वर-माहात्म्य) महात्मा कपिल ने तपस्या कर बहूदक में शिवलिङ्ग की स्थापना की, जो कपिलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नन्दभद्र नामक एक सत्यनिष्ठ वणिक् का सत्यव्रत नामक एक नास्तिक तथा चरित्रहीन शुद्र पड़ोसी था। नन्दभद्र की पत्नी कनका के स्वर्गवासी होने पर सत्यव्रत ने नन्द की श्रद्धा को नष्ट करने की चेष्टा की परन्तु नन्दभद्र ने उसके नास्तिक विचारों का खण्डन किया। भट्टार्क-स्थल के बहूदक कुण्ड पर पुनः आकर नन्दभद्र तपस्या में संलग्न हो गये। दुखी नन्दभद्र के सामने एक कुष्ठी बालक उपस्थित हुआ तथा अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाकर बालक ने अपना शरीर त्याग दिया। नन्दभद्र ने बालक की इच्छानुसार उसका संस्कार किया तथा बालादित्य नाम से प्रसिद्ध एक सूर्यप्रतिमा की स्थापना की। बाद में नन्दभद्र ने दूसरा विवाह किया तथा निरन्तर उपासनारत रहते हुए मोक्ष को प्राप्त किया।

इस तीर्थ की रक्षा के लिए नारद ने यहां महाशक्तियों (महादुर्गा, सुवर्णाक्षी, कात्यायनी आदि) की स्थापना, उनके परिवारों के साथ की।

(४८-५३ अ.) (सोमनाथ-माहात्म्य)[1]

त्रेता युग में चौडदेशवासी उज्जयन्तती एवं प्रालेय नामक दो ब्राह्मण प्रभास क्षेत्र में स्नानार्थ निकल पड़े। यात्रा से क्लान्त दोनों पर प्रसन्न शिव ने प्रभासक्षेत्र में इन्हें लिङ्ग रूप में दर्शन दिया। पश्चिम में ऊर्जयन्त और पूर्व में प्रालेयेश्वर-ये दो सोमनाथ, सिद्धेश्वर की समीप विद्यमान है। ब्रह्मा ने यहां हाटकेश्वर शिव के स्थापना एवं स्तुति की थी। नारद, महीसागर-संगम में ब्राहमणों के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए आये थे। हारीत के अष्टवर्षीय पुत्र कमठ ने उनकी शंकाओं (यथा-जीव की उत्पत्ति, पारलौकिक गति आदि) का शास्त्रीय रीति से उत्तर दिया। यहां विविध कर्मों (यथा-ब्राह्मण की हत्या करने वाला क्षयरोगी, शराबी के दाँत कृष्णवर्णीय (श्यामदंतक), सोने का चोर-कुनखी (खराबनखवाल), गुरुपत्नीगामी, दुश्चर्मा (चर्मरोगवाला) के फल भी लिखित हैं। जयादित्य का माहात्म्य, अहिल्यासरवर्णन प्रसंग में इन्द्र द्वारा अहिल्याघर्षण तथा नारदीय सरोवर-नागेश्वर माहात्म्य भी यहां प्रतिपादित है।

(५४-५८ अ.) (बाभ्रव्य-अर्जुन-संवाद, केदारेश्वर-माहात्म्य।) अर्जुन द्वारा नारद से उनकी अस्थिरता तथा कलहकारिणी प्रवृत्ति के विषय में प्रश्न किये जाने पर बाभ्रव्य मुनि ने उसका समाधान इस प्रकार किया-एक बार कृष्ण यदुओं के साथ महीसागर-संगम यात्रा पर आये। देवपूजन के अन्तर उनके द्वारा नारद की भी पूजा किये जाने पर उग्रसेन ने अर्जुन की भाँति ही प्रश्न किये। जिसका उत्तर कृष्ण ने इस प्रकार दिया-प्रजापति दक्ष के पुत्रों को अपने उपदेशों से विरक्त कर देने वाल नारद को दक्ष ने सदैव भ्रमण करते रहने तथा चुगली खाने का शाप दिया। शाप से स्वतः मुक्त होने की सामर्थ्य रखने वाले नारद ने इससे मुक्ति का प्रयास नहीं किया।

नारद प्रोक्त गौतमेश्वरलिङ्गमाहात्म्य तथा योगतत्व-चिन्तन में योग के आठ अंगों का सलक्षण प्रतिपादन है। यहां विभूतियों को आठ भागों में बाटा गया है और चौसठ प्रकार की विभूतियाँ कही गयी है। अन्त में गुप्त-क्षेत्र का माहात्म्य भी लिखित है।

(५९-६०अ.) (सिद्धेश्वरलिङ्गसिद्धाम्बिकामाहात्म्य तथा घटोत्कचवृत्तान्त) पाण्डवों ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया। एक समय उनकी सभा में भीम-पुत्र घटोत्कच आया। युधिष्ठिर ने कृष्ण से घटोत्कच के योग्य कन्या की प्रार्थना की। कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुरनिवासिनी मुरकन्या कामकटंकटा का घटोत्कच की भावी-पत्नी-रूप मे उल्लेख करते हुए घटोत्कच को वहां भेजा। घटोत्कच सूर्याक्ष, बालाख्य तथा महोदर इन तीन सेवकों के साथ प्राग्ज्योतिषसुर पहुँचा। कथा द्वारा कामकटंकटा को भ्रम में डालकर तथा बलपूर्वक उसे परास्त कर पत्नी रूप में उसका वरण किया। मौर्वी की पीठ पर आरूढ़ होकर घटोत्कच पाण्डवों के समीप आया। पुनः भीमकुमार अपनी राजधानी हिडिम्ब-वन को गया। जहां उसे बर्बरीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

---

१. चोलदेश-पाठभेद

(६१-६६ अ.) (बर्बरीक तथा विजय की गुप्तक्षेत्र में साधना तथा उसका वध) घटोत्कच बर्बरीक को साथ लेकर आकाशमार्ग द्वारा द्वारका पहुँचा। घटोत्कच ने श्रीकृष्ण से अपने पुत्र की शंकाओं (जिनमें देवी-आराधना सम्बन्धी प्रश्न था) का समाधान करने की प्रार्थना की। कृष्ण ने महीसागर-संगम में नारद द्वारा आहूत नवदुर्गाओं की उपासना का उपदेश दिया। बर्बरीक गुप्तक्षेत्र में तपस्यालीन हो गया। उसी समय मगधदेशीय विजय नामक ब्राह्मण ने वहां आकर सुहृदय (कृष्ण प्रदत्त बर्बरीक का नाम) को देवी की साधना का उपदेश दिया। यहां गणपति-मन्त्र (ओम् गा गीं गूं गैं गों गः) तथा अपराजिता-विद्या का भी उल्लेख है।

ब्राह्मण विजय जब साधनारत थे, उसी समय बर्बरीक ने रात्रि के प्रथम प्रहर में एक राक्षसी का, द्वितीय प्रहर में रेपलेन्द्र नामक दानव का तथा तृतीय प्रहर में विध्नरूप में उपस्थित दुहद्रुहा नामक राक्षसी का वध किया। अन्तिम प्रहर में छदमवेषी दिगम्बर सन्यासी के वध के साथ ही बर्बरीक ने अन्य राक्षसों का भी वध कर डाला। दैत्यों के वध से प्रसन्न नागों से, बर्बरीक ने विजय नामक ब्राह्मण हेतु निर्विध्न सिद्धि प्राप्त का वर मांगा। तदनन्तर बर्बरीक एवं नाग-कन्याओं का संवाद वर्णित है।

कौरव-पाण्डव-युद्ध में बर्बरीक द्वारा मात्र दो मुहूर्त में ही शत्रुओं को परास्त करने की बात कहते ही कृष्ण ने अपने चक्र से उसका मस्तक धड़ से अलग कर दिया। बर्बरीक के धड़ द्वारा युद्ध देखने की इच्छा प्रकट करने पर पर्वतशिखर पर उसका मस्तक रखा गया। युद्ध के अन्त में बर्बरीक द्वारा मात्र कृष्ण को युद्ध करते हुए देखने का उल्लेख है, तथा बर्बरीक को कृष्ण द्वारा वर प्रदान करने की कथा भी वर्णित है।

महीसागर में विद्यमान केदारेश्वर, रात्रीश्वर, नीलकण्ठेश्वर, जयादित्य-माहात्म्य तथा सप्तक्रोशीय गुप्तक्षेत्र के माहात्म्य श्रवण, पाठ आदि का फल उल्लिखित है।

(द्वितीय कौमारिक खण्ड सम्पूर्ण)

माहेश्वरखण्ड का तृतीयः अरुणाचलमाहात्म्य[1] (पूर्वार्द्ध)

(१-२ अ.) (ब्रह्मा-सनक-संवाद। अरूणाचल-माहात्म्य। लिङ्गोद्भव) प्राचीन काल में ब्रह्मा से सनक द्वारा परम निर्मल, दिव्य, अपरिच्छिन्न, नाम-स्मरण मात्र से ही सभी पातको के विनाशक शिवलिङ्ग के विषय में प्रश्न किये जाने पर ब्रह्मा ने उन्हें बताया

१. अरुणाचल माहात्म्य के दो विभाग हैं-पूर्वार्द्ध एवम उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में ब्रह्मा तथा सनक एवम् उत्तरार्द्ध में नन्दिकेश्वर तथा मार्कण्डेय-संवाद रूप में कथा अग्रसरित होती है। पूर्वार्द्ध एवम् उत्तरार्द्ध में कतिपय कथाओं में अत्यधिक साम्य है। पूर्वार्द्ध में वर्णित कुछ कथाएं उत्तरार्द्ध में उपबृंहित हैं।

-परस्पर श्रेष्ठता के विवाद में उनमें (ब्रह्मा के) तथा विष्णु के समक्ष एक अग्निमय स्तम्भ प्रकट हुआ। जिसके आदि, अन्त के ज्ञान हेतु वराह रूप में विष्णु पृथ्वी के नीचे तथा हंस रूप में ब्रह्मा ऊर्ध्वभाग को गये पर असमर्थ वापस आये तथा स्तुति की। प्रसन्न शिव ने वर मांगने की आज्ञा दी। ब्रह्मा एवं विष्णु ने संसार पर अनुग्रह हेतु इस तेजोमय स्वरूप का सीमित कर अरूणाचल नामक स्थावर लिङ्ग होने की प्रार्थना की। शिव ने वैसा ही किया। विष्णु ने अरूणाचलेश्वर का माहात्म्य बतलाया।

(३-४ अ.) (पार्वती-चरित) केलि पर्वत पर पार्वती एवं शिव जब आनन्दपूर्वक निवास कर रहे थे, उसी समय पार्वती ने शिव के तीनों नेत्रों की लीला के कारण बन्द कर दिया। चन्द्र, सूर्य, अग्निरूपी तीनों नेत्रों के बन्द हो जाने से सम्पूर्ण संसार अन्धकार से आच्छन्न हो गया। प्रायश्चित रूप में पार्वती ने कांचीपुरीस्थ कम्पा नदी (जहां पर मर्त्यों के करोड़ों पाप कांप उठते हैं-यत्र स्थितानां मर्त्यानां कम्पन्ते पापकोटयः-मा. अ. ३.६२) के तट पर बालुका निर्मित शिवलिङ्ग की उपासना प्रारम्भ की। शिव द्वारा पार्वती की भक्ति-परीक्षा हेतु नदी के प्रवाह द्वारा लिङ्ग को चतुर्दिक घेर लेने पर पार्वती ने लिङ्ग की रक्षा के लिए उसे आलिङ्गनबद्ध किया। परन्तु उसे छोड़कर अन्यत्र जाने को उद्यत पार्वती को आकाशवाणी ने अरूणाचल पर गौतम ऋषि के आश्रम में जाकर तपस्या करने का आदेश दिया।

(५-६ अ.) (पार्वती की गौतमाश्रम में तपश्चर्या) पार्वती अरूणाचल के निकटस्थ गौतम-आश्रम पर आयीं, वहीं उन्होंने गौतमऋषि को देखा। पार्वती की प्रार्थना पर गौतम ने अरूणाचल का माहात्म्य पार्वती को बतलाया। स्थान के महत्व को समझते हुए तथा गौतम के आदेश पर पार्वती ने तपस्या हेतु वहीं आश्रम बनाया और तपस्या में लीन हो गयी। वहां ब्रह्मपुष्कर का माहात्म्य, देवों, महर्षियों, राजषियों द्वारा स्थापित अनेक तीर्थों की स्थिति तथा उनके दर्शन एवं स्नान का फल भी लिखित है।

(७-६ अ.) गौतम ऋषि से पार्वती द्वारा 'अग्निमयलिङ्ग की शान्ति' विषयक प्रश्न किये जाने पर गौतम ने अरूणाचलेश्वर के चतुर्युगीय नामों (कृत में अग्निमय शैल, त्रेता में मणिपर्वत, द्वापर में हाटकगिरि, कलियुग में मरकताचल) के उल्लेखपूर्वक शिवलिङ्ग की शीतलता प्राप्ति की कथा पार्वती को सुनायी।

परमेश्वरार्चन की विधि, शङ्करप्रोक्त अरूणाचलेश्वररूपी शिव की आराधना भी विस्तृत रूप से वर्णित है। अरूणाद्रीश के नाम (शोणाद्रीश, अरूणाद्रीश, देवाधीश, जनप्रिय, प्रपन्नरक्षक, शिवसेवकवर्धक आदि) तथा इनकी प्रदक्षिणा का फल भी प्रतिपादित है। अन्त में गौतम के आदेश पर पार्वती के द्वारा तप हेतु एक कुटिया बनाने तथा तपस्या प्रारम्भ करने का उल्लेख है।

(१०-११ अ.) (महिषासुर-वध-कथा) महिषासुर से संत्रस्त देवों ने पार्वती के समीप आकर महिषासुर के दुष्कृत्यों का वर्णन किया। देवी ने महिषासुर के वध की प्रतिज्ञा कर देवों को आश्वस्त किया तथा पुनः तपस्यारत हो गयी। एकबार महिषासुर आखेट के लिए शोणपर्वत पर आया। देवी की सेवा में संलग्न ब्रह्मचारियों द्वारा रोके जाने पर वह वृद्धब्राह्मण अतिथि के वेश में देवी के समीपजाकर अपनीप्रशंसा करता हुआ स्वयं (महिषासुर) को वर रूप में स्वीकार करने को कहा। देवी ने उस असुर से युद्ध करने का आह्वान किया, महिषासुर ने अपनी सेना को युद्धार्थ बुलाया। प्रारम्भ में जो देवी कन्यारूपिणी थीं, उन्होंने भयंकर "दुर्गा" रूप धारण किया और महिषासुर का वध कर डाला। अपने द्वारा शिवभक्त महिषासुर के वध से दुःखी देवी ने पश्चात्ताप किया। शोकग्रस्त जगदम्बा को गौतम ने प्रायश्चित्त रूप में अरूणाचल तीर्थ में स्नान का उपदेश दिया।

(१२-१३ अ.) (खड्गतीर्थ) दुःखी देवी को आकाशवाणी ने अपने खड्ग से एक पापप्रणाशकतीर्थ का निर्माण करने को कहा, जिसमें स्नान से पाप का प्रायश्चित्त हों। देवी ने खड्ग से एक शिलातल को विदीर्ण कर दिया, जिससे वहां पाताल तक एक छिद्र हो गया तथा वहां नवतीर्थ (गंगा, यमुना, सिन्धु, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, शोणनद, शोणनदी) प्रकट हुए। महिषासुर के कण्ठ में स्थित शिवलिङ्ग भी यहीं प्रतिष्ठित हुआ। इस तीर्थ में देवी ने नित्य स्नान करते हुए एक मासपर्यन्त अरूणाद्रीश्वर की पूजा, अर्चना तथा प्रदक्षिणा की, जिसके फलस्वरूप शिव तथा जगदम्बा का समागम हुआ। पार्वती के प्रसाधन में मृगमद के उपयोग से प्रसन्न पुलक नामक मृगरूपी दैत्य का चरित भी वर्णित हैं जिसने वर-रूप में अत्यन्त सुगन्धि को प्राप्त किया था। सुगन्ध के बल पर वह देव पत्नियों को सम्मोहित कर समस्त जगत् को पीड़ित करता था। देवों की प्रार्थना पर शिव ने उस दैत्य को सुगन्धियुक्तशरीर को त्यागने को कहा। तब पुलक ने शिव से कहा कि शरीरत्याग के बाद मेरे शरीर से निस्सृत मृगमद को देव आदि धारण करें। इस प्रकार मृगमद की उत्पत्ति हुई। अन्त में अरूणाद्रीश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

अरुणाचलमाहात्म्य (उत्तरार्द्ध)

(१-४ अ.) (मार्कण्डेयनन्दीश्वर संवाद) मार्कण्डेय ने तीन प्रकार के कर्म फलों (भूमि- सुख, स्वर्गभोग, कैवल्य) में प्रथम दो के क्षय का उल्लेख करते हुए नन्दीश्वर से स्थान-माहात्म्य की जिज्ञासा की। नन्दीश्वर ने गंगा, सरस्वती, कालिन्दी, नर्मदा, गोदावरी आदि के तटों पर अवस्थित तीर्थों तथा वाराणसी, गया, प्रयाग, केदारादि स्थानों का वर्णन किया। जिनमें पितरों को पिण्ड प्रदान करने से पितरों की प्रसन्नता का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य तीर्थों केदार, बदरिकाश्रम, नैमिष, पुष्कर, दण्डिमुडी, कनखल, श्वेतारण्य, सेतुबन्ध का महत्व, तत्तत् स्थानीय देवों के नामों की चर्चा है। दक्षिण के द्राविडदेशान्तर्गत स्थित अरूणाचलेश्वर के स्थान का भी वर्णन है।

(५-६ अ.) (कर्मविपाकवर्णन' पापप्रायश्चित्त-विधान)

शुद्धसत्त्वगुणसम्पन्न मनुष्य इस लोक में दुर्लभ हैं, जबकि रजोगुण एवं तमोगुण-प्रधान-पुरुषों का बाहुल्य है, सात्विकपुरूष अपने पुण्य एवं शील के कारण निश्रेयस (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं। परन्तु अन्य जन अपने कर्मो के अनुसार मरणोत्तर गति को प्राप्त होते हैं। यथा-ब्रह्मस्वहर्ता ब्रह्मराक्षस होता है आदि। विविध पापों से मुक्ति हेतु वाजपेय, राजसूय, अश्वमेधादि यज्ञों को करने का विधान वर्णित है।

(७-८ अ.) (काम्यकर्मवर्णन, अरूणाचलमाहात्म्य तथा सृष्टि-वर्णन) रवि आदि वारों एवं प्रतिपदा आदि तिथियों पर शोणाद्रीश्वर की पूजा का विधान वर्णित है। यथा-रविवार को लालकमल से, सोमवार को कस्तूरी तथा करबीर से आदि। इसी प्रकार प्रथमा तिथि को दुग्ध से, द्वितीय का दधि, अन्न से, तृतीया को अपूप (पूआ) से पूजा करने का विधान है।

निर्विकल्प महेश्वर ने सर्वप्रथम स्वेच्छा से सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न किया। उन्होंने अपने दक्षिण अंग से ब्रह्मा तथा वामाङ्ग से विष्णु को उत्पन्न कर, ब्रह्मा को सृष्टि कार्य में तथा विष्णु को स्थिति कार्य में नियुक्त किया। यहां ब्राह्मण -क्षत्रिय-वैश्य-शुद्र-नाग-गन्धर्व-अप्सरा-यक्ष-राक्षसादि की क्रमेण सृष्टि वर्णित है।

(६-१६ अ.)[२]

ब्रह्मा एवं विष्णु का अपनी श्रेष्ठता हेतु विवाद, तेजोमयलिङ्ग का प्राकट्य, वराहरूप में विष्णु अधोलोक में तथा हंस रूप में ब्रह्मा के ऊर्ध्वलोकगमन, ब्रह्मा के पक्ष के केतकी पत्र द्वारा मिथ्या साक्ष्य, विष्णु द्वारा तेजोमयलिङ्ग की स्तुति, शंकर का पञ्चमुख-रूप धारण, ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति तथा ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा अरूणाचलेश्वर-मंदिर-निर्माण का वर्णन हैं।

१७-२१ अ) (महिषासुरवध-कथा) शिव-पार्वती का विहार, गणेश तथा षडानन का वृत्तान्त, प्रणवकुपितापार्वती का तपस्या हेतु गौतमाश्रम-गमन, गौतम के निर्देश पर पार्वती की तपस्या, तपस्यारत पार्वती के समीप महिषासुर[३] द्वारा दूती को प्रेषित करना, महिषासुर का सेना के साथ देवी से युद्ध करने हेतु आने, देवी-महिषासुर-युद्ध; दुर्गा देवी द्वारा महिषासुर के वध, देवी द्वारा खड्गतीर्थ के निर्माण, महिषासुर के कण्ठ में स्थित शिवलिङ्ग की स्थापना करने, शिवभक्त महिषासुर के वध से पाप की आशंका से देवी द्वारा शौणाद्रीश्वर की स्तुति, स्तुति से प्रसन्न भगवान् द्वारा पार्वती को सान्त्वना प्रदान करने,

---

१. कर्मविपाक का वर्णन कुमारिकाखण्ड के ५१वें अ. में भी है।

२. यही कथा इसी पुराण के पूर्व में भी विस्तृत रूप से वर्णित है। द्र. केदारखण्ड-६-८अ. तथा २४-२७ अ. कुमारिकाखण्ड-२४-२६ अ.

३. महिषासुर-वध-कथा अरूणाचलमाहात्म्य के पूर्वार्द्ध क १०-१२ अ. में भी है।

शंकर द्वारा पार्वती को अपने पार्श्व में स्थान देने, खड्गतीर्थ में गौतम महर्षि तथा सप्तमातृकाओं का शिव द्वारा वर प्रदान करने की कथा लिखित है।

(२२-२४ अ.) (वज्रांगद-चरित) पाण्ड्य देश के राजा वज्रांगद धर्मात्मा और शिवपूजक थे। एक दिन वे आखेट हेतु अरूणाचल-वन गये। वहां एक कस्तूरी-मृग के शरीर से निस्सृत सुगन्ध के कारण मृग के पीछे दौड़ते हुए वज्रांगद क्लान्त होकर गिर पड़े। श्रान्तराजा ने घोड़े तथा मृग को शरीर त्याग कर विद्याधर रूप धारण करते हुए देखा तथा तथ्य ज्ञात करने की जिज्ञासा से दो विद्याधरों (कलाधर तथा कान्तिशाली) से प्रश्न किया। कलाधर ने कान्तिशाली की आज्ञा से अपने पूर्वजन्म में-पुष्पों के स्पर्श से क्रुद्ध, दुर्वासा के शाप से स्वयं का कस्तूरी मृग का तथा कान्तिशाली के कम्बोज देश में घोड़े का शरीर प्राप्त करने का उल्लेख किया। कलाधर ने आगे बताया कि आपने (वज्रांगद ने) हमारा पीछा करते हुए अरूणाचल की परिक्रमा करवा दी जिससे हमें तिर्यग्योनि से मुक्ति मिली। तदनन्तर कलाधर ने वज्रांगद को अरूणाचलेश्वर की उपासना का उपदेश दिया, जिससे वज्रांगद ने अपने रत्नांगद नामक पुत्र को राज्य पर स्थापित कर गौतममुनि के आश्रम के निकट तपस्या प्रारम्भ की। तपस्या से प्रसन्न शिव ने वज्रांगद को अपनी आठ मूर्तियों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और पुरुष का वर्णन करते हुए अपनी भक्ति का उपदेश दिया। अन्त मे अरूणाचलेश्वर की प्रदक्षिणा का माहात्म्य भी लिखित है।

स्कन्द पुराण का प्रथम माहेश्वरखण्ड समाप्त

स्कन्दपुराण का द्वितीय वैष्णवखण्ड प्रथम-वेङ्कटाचल माहात्म्य

(१.२ अ.) (यज्ञवराहदर्शन तथा वराहाराधन-विधि) सूत-शौनक-संवाद के माध्यम से नारद द्वारा सुमेरूशिखर स्थित यज्ञवराह (चार भुजाओं तथा वराहसदृशमुखवाले) के दर्शन का वर्णन तथा पृथ्वी को स्थिर करने वाले मुख्य पर्वतों (सुमेरू, विन्ध्य, गन्धमादन, महेन्द्रादि) एवं तीर्थों (चक्र, देव आदि) का उल्लेख है। स्वामिपुष्करिणी की श्रेष्ठता, कुमारधारा, तुम्बरू, पाण्डव एवं देवतीर्थों का माहात्म्य, पृथ्वी द्वारा की गयी वराह-स्तुति, वेङ्कटाचल-माहात्म्य, वराहमन्त्र (ओम् नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा) तथा वराहपूजन की विधि भी प्रतिपादित है।

(३-८ अ.) (पद्मावती की उत्पत्ति एवं पद्मावती-श्रीनिवास परिणय) अगस्त्य की प्रार्थना पर भगवान् ने स्वातिपुष्करिणी तट पर सदा प्रत्यक्ष रहने का वर दिया था। राजा मित्रवर्मा के पुत्र ''आकाश'' तथा शकवंश में उत्पन्न 'धरणी' से 'वसुदान' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा के द्वारा प्रतिपादित यज्ञ की शोधितभूमि से एक कन्या 'पद्मावती' (पद्मिनी) उत्पन्न हुई। उपवन में भ्रमण करती हुई पद्मावती को वेङ्कटाचल वासी वीरपति के रूप मे साक्षात् हरि के दर्शन होने, आसक्त श्रीनिवास (भगवान्) द्वारा बकुलमालिका से वेदवती नामक कन्या द्वारा (रामावतार में सीता को अग्नि द्वारा ले जाने पर सीतारूपिणी वेदवती का ही रावण ने अपहरण किया था) लक्ष्मी की सहायता करने की कथा कहने,

बकुलमालिका पद्मावती-संवाद, श्रीनिवास-पद्मावती विवाह तथा भगवान् द्वारा वियद् (आकाश) राज को अविचल भक्ति का वर देने का वर्णन है।

(९-१० अ.) (वसुनिषाद तथा तोण्डनृपवृत्तान्त) धर्मनिष्ठ 'वसु' निषाद की पत्नी धर्मवती से 'वीर' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वसु श्यामाक (= सांवा) के जङ्गल का रक्षक था। सांवा के चावल तथा मधु को वह भगवान् को नित्य निवेदित कर ही अन्य कार्य करता था। एक बार मधु-अन्वेषण हेतु अन्यत्र चले जाने पर उसके पुत्र ने भगवान् को मात्र सांवा का चावल ही अर्पण किया। पुत्र के कार्य से अप्रसन्न वसु, पुत्र को मारने हेतु उद्यत हुआ पर भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसके पुत्र की रक्षा की।

चन्द्रवंशी तोण्डराज का विवाह पद्मा से हुआ। शिकार करते हुए राजा ने स्वर्णमुखरी नदी पार करके शुकमुनि की आज्ञा से वन में जाकर रेणुकादेवी का दर्शन किया। जङ्गल में 'श्रीनिवास', 'श्रीनिवास' रटने वाले तथा पांचरंगों वाले एक तोते को देखकर राजा ने उसे पकड़ना चाहा। वहां उपस्थित वनेचर ने तोते का परिचय बतला कर राजा को वेङ्कटाचल निवासी देवेश्वर का दर्शन करवाया। तदनन्तर तोण्डराज को पिता से राज्य की प्राप्ति हुई। यहां अस्थिसरोवर-माहात्म्य भी वर्णित है।

(११-१५ अ.) (स्वामिपुष्करिणी (काश्यप दोष मुक्ति) तथा रामकृष्णतीर्थ माहात्म्य) मृगया हेतु भ्रमण करते हुए राजा परीक्षित ने ध्यानस्थ शमीकमुनि से घायल मृग के विषय में पूछा पर मुनि द्वारा उत्तर न पाने पर क्रुद्ध राजा ने मुनि के गले में मृत सर्प लपेट दिया, जिससे क्रुद्ध मुनिपुत्र शृङ्गी ने राजा को सातवें दिन तक्षक द्वारा काटे जाने का शाप दिया। राजा की रक्षा में समर्थ विषविद्याविशारद काश्यप, तक्षक द्वारा प्रभूत धन दिये जाने के कारण मध्य मार्ग से ही लौट आये, जिससे उनकी लोक-निन्दा हुई। स्वामिपुष्करिणी में स्नान कर काश्यप, महापातक से मुक्त हुए। मृगया हेतु वन में गये चन्द्रवंशीय राजा 'धर्मगुप्त' सिंहादि के भय से वृक्ष पर चढ़ गये, तभी उनके समीप एक रीछ भी आ गया। राजा के सोने पर वृक्ष के नीचे स्थित सिंह ने रीछ से राजा को गिराने को कहा, पर रीछ ने ऐसा नहीं किया। परन्तु सिंह द्वारा राजा से रीछ को गिराने को कहने पर राजा ने रीछ को गिराने का प्रयास किया। रीछ (जो वास्तव में ध्यानकाष्ट मुनि था) अपने नखों से डाल पर पुनः चढ़ गया तथा राजा को उन्मत्त होने का शाप दिया। जैमिनि के कथन पर स्वामिपुष्करिणी में स्नान कर राजा पुनः स्थिर चित्त हुए।

महाराष्ट्रीय शिवनारायण पुत्र 'सुमति' अपने पिता तथा पतिव्रता पत्नी को छोड़कर उत्कलदेशीय एक किराती के यहां रहने लगा। चौरकर्म-संलग्न लम्पट सुमति ने एक ब्राह्मण की हत्या कर दी। दुर्वासा के उपदेश पर सुमति की ब्रह्महत्या दोष का परिहार स्वामिपुष्करिणी में स्नान से हुआ। यहां रामकृष्णतीर्थ (मुनिरामकृष्ण-स्थापित) का माहात्म्य भी लिखित है।

(१६-२० अ.) (वेङ्कटाचल-माहात्म्य (भद्रमति आख्यान) वेङ्कटाचल क्षेत्र में जलदान आदि की महत्ता, वेङ्कटाचल क्षेत्र का वैभव एवं यहां देवों की सदा उपस्थिति का तथा पापविनाशन तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन है। 'दृढ़मति' नामक शूद्र हेतु 'सुमति' ब्राह्मण ने वैदिक कर्मों का अनुष्ठान किया। शूद्रों के लिए वर्जित कर्मों के अनुष्ठान के कारण दोषग्रस्त सुमति, अगस्त्य के उपदेश पर पापविनाशन तीर्थ में स्नान कर दोषमुक्त हुए। पापविनाशनतीर्थ-माहात्म्य के प्रसंग में बहुपुत्रवाले भद्रमति की पापविनाशनतीर्थ में स्नान तथा स्तुति करने से दारिद्रय नाश का वर्णन है।

(२१-२२ अ.) (आकाशगङ्गातीर्थ माहात्म्य (रामानुज द्विज वृत्तान्त) वैष्णव ब्राह्मण रामानुज ने अष्टाक्षर-मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) के जप से विष्णु को प्रसन्न किया तथा प्रसन्न विष्णु से अविचलभक्ति मांगी। भगवान् ने रामानुज को आकाशगंगा के समीप निवास तथा स्नान करने से संसार से मुक्ति का आश्वासन दिया। यहां दान के पात्रों (उत्तम कार्यतत्पर, श्रोत्रिय, अग्निहोत्री आदि) तथा अपात्रों (नपुंसक, पुत्रहीन, पाखण्डी आदि) का उल्लेख एवम् आकाशगंगा का माहात्म्य भी लिखित है।

(२३-२४ अ.) (चक्रतीर्थमाहात्म्य (पद्मनाभद्विजचरित) वीरबाहु के पुत्र सुन्दर-गन्धर्व को शताधिकस्त्रियों के साथ नग्नक्रीडा करते देखकर वशिष्ठ ने उसे राक्षस होने का शाप दिया था। सोलह वर्ष राक्षस रूप में रहने के अनन्तर सुन्दर चक्रतीर्थ पहुँचा। तपस्यारत वत्सगोत्रीय पद्मनाभ को मारने हेतु उद्यत राक्षस (सुन्दर) का वध करने हेतु भगवान् ने सुदर्शन चक्र को प्रेषित किया। चक्र ने राक्षस का वध कर डाला, जिससे सुन्दर की राक्षस योनि से मुक्ति हुई। पद्मनाभ ने सुदर्शन की प्रार्थना की तथा भगवान् से सदैव चक्रतीर्थ में निवास का वर प्राप्त किया।

(२७-२८ अ.) (प्रमुखतीर्थ तथा कटाहतीर्थ माहात्म्य) वेङ्कटाचल के प्रमुख तीर्थों (स्वामिपुष्करिणी, आकाशगंगा, पापविनाशन आदि) का तथा पुराण-श्रवण का माहात्म्य वर्णित है। कटाहतीर्थ-माहात्म्य के प्रसंग में केशव द्विज का वृत्तान्त प्राप्त है। वेश्यागामी केशव अपने पिता तथा पत्नी को छोड़कर एक वेश्या में अनुरक्त होकर इधर-उधर चोरी करने लगा। एक दिन उसने चोरी करते समय एक ब्राह्मण की हत्या कर दी। भरद्वाज के कहने पर कटाहतीर्थ में स्नान से केशव को ब्रह्महत्यादोष से मुक्ति मिली।

(२९-३६ अ.) (अर्जुन की तीर्थयात्रा) तीर्थ यात्रा प्रसंग में अर्जुन ने स्वर्णमुखरी नदी के तट पर स्थित कालहस्तीश्वर का दर्शन कर यहीं पर स्थिर आश्रम में भारद्वाज जी से आशीर्वाद प्राप्त किया था।

देवों की इच्छा को आकाशवाणी के माध्यम से सुनकर अगस्त्य ने ब्रह्मा जी से वर-रूप में प्राप्त स्वर्णमुखी नदी को प्रवाहित किया। यहां स्वर्णमुखी नदी के तीर्थ, इसके

संगमों (व्याघ्रपदनदी एवं कल्पानदी संगम) का वर्णन है। वराहकृत पृथ्वी के उद्धार तथा कल्पवृत्तान्तपूर्वक श्वेतवराह के अवतार की कथा प्रतिपादित है।

(३७-४० अ.) (शंखवृत्तान्त एवं अञ्जना की पुत्र प्राप्ति) हैहयवंशी राजा श्रुत के शंखनामक योग्य पुत्र हुए। भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होने से धर्मनिष्ठ शङ्ख दुखी रहते थे। भगवान् की आज्ञा से शंख वेङ्कटाचल पर गये, जहां ब्रह्मा की आज्ञा से अगस्त्यमुनि भी तपस्या कर रहे थे। दोनों की तपस्या से प्रसन्न विष्णु ने इन्हें दर्शन दिया।

पुत्रहीन अञ्जना पुत्र की अभिलाषा से तपस्या में संलग्न थी। विष्णुभक्तमतङ्गी के उपदेश पर अञ्जना वेङ्कटाचल गयीं तथा स्वामिपुष्करिणी में स्नानपूर्वक वायुदेवता की उपासना करने लगीं। प्रसन्न वायु ने अञ्जना को स्वयं पुत्र रूप में उत्पन्न होने का वर दिया।

अन्त में आकाशगंगास्नानकालनिर्णय तथा वेङ्कटाचल क्षेत्र में करणीय दानों का माहात्म्य प्रतिपादित है।

द्वितीय पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) क्षेत्र का माहात्म्य[1]

(१-३ अ.) (विष्णु का आविर्भाव, ब्रह्मा का पुरुषोत्तम क्षेत्र आगमन, लक्ष्मी-यम संवाद, यमेश्वर माहात्म्य, मुनियों की पुरुषोत्तम क्षेत्र विषयक जिज्ञासा)-दस योजनवाला उपर्युक्त क्षेत्र तीर्थराज समुद्र के जल से निर्मित है। इसके चारों और बालुका-राशि है तथा मध्यभाग में नीलगिरि है। ब्रह्मा ने संसार के जीवों की मुक्ति हेतु विष्णु से प्रार्थना की, प्रसन्न विष्णु ने पुरुषोत्तम क्षेत्र के दर्शन मात्र से ही मुक्ति होना बतलाया। अपने अधिकार क्षेत्र को सीमित हुआ जानकर यम ने विष्णु की प्रार्थना की। विष्णु के आदेश पर लक्ष्मी ने यम को पुरुषोत्तम क्षेत्र का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए इस क्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र पर ही यम का अधिकार बतलाया। यम-लक्ष्मी के संवाद के माध्यम से ही मार्कण्डेय के पुरुषोत्तम क्षेत्र आगमन, वट-वृक्ष दर्शन, बालभगवान् के दर्शन तथा यमद्वारा यमेश्वर लिङ्ग की स्थापन का वर्णन है।

(४-६ अ.) (पुरुषोत्तम क्षेत्रीय विभिन्न तीर्थ तथा पुण्डरीक एवम् अम्बरीष की कथा) यहां कपालमोचन, अर्द्धाशिनीतीर्थ, रोहिणकुण्ड, कमलातीर्थ (कामाख्या क्षेत्रपाल के मध्य) तथा इस क्षेत्र की रक्षा में संलग्न आठ शक्तियां (मङ्गला, विमला, सर्वमंगला, अर्द्धाशिनी, लम्बा, कालरात्रि, महीचिका, चण्डरूपा) स्थित हैं। भगवान् के आठलिङ्ग (कपालमोचन, वटेश्वर) भी यहां स्थित हैं।

---

१. मोर प्रकाशन, कलकत्ता से प्रकाशित स्कन्दपुराण के पुरुषोत्तम-माहात्म्य में कुल ६० अध्याय हैं, जबकि वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित इस भाग में मात्र ४६ अध्याय ही है। (१-३ अ.)

स्वकर्मविरत एवं निषिद्धकर्मरत ब्राह्मणपुण्डरीक तथा क्षत्रियअम्बरीष अपने पापकर्मों की मुक्ति हेतु एक वैष्णव के उपदेश पर पुरुषोत्तमक्षेत्र आये तथा भगवान् के दर्शन एवं स्तुति से दोनों ने भगवान् के पुण्यधाम को प्राप्त किया।

(७-८ अ.) (उत्कलदेशवर्णन, इन्द्रद्युम्न की तीर्थयात्रा-विषयक जिज्ञासा, विद्यापति शबर-संवाद) प्रारम्भ उत्कल देश की भौगोलिक स्थिति तथा नागरिकों के उत्तम जीवन का वर्णन है। अवन्ती निवासी सत्ययुगीन राजा इन्द्रद्युम्न ने अपने पुरोहित से भगवान् जगन्नाथ से साक्षात् दर्शन की इच्छा की। एक जटिल तीर्थयात्री ने राजा को ओड्रदेश स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र का माहात्म्य बतलाया। पुरोहित के अनुज विद्यापति ने सहायकों के साथ पुरुषोत्तमक्षेत्र की यात्रा की तथा विश्वावसुशबर के साथ नीलमाधव का दर्शन किया। वापस आकर, निराहार इन्द्रद्युम्न से इस क्षेत्र का तथा भगवान जगन्नाथ के विग्रह का वर्णन विद्यापति ने किया।

(६-१४ अ.) (इन्द्रद्युम्न की तीर्थयात्रा) एक बार इन्द्रद्युम्न जब भगवान् की प्रार्थना कर रहे थे उसी समय नारद आये। इन्द्रद्युम्न ने नारद का सत्कार कर आने का प्रयोजन पूछा। नारद ने राजा को भक्ति का उपदेश दिया तथा पुरुषोत्तम-क्षेत्र-यात्रा की आज्ञा दी। राजा ने अपने परिजनों तथा अनुचरों के साथ इस क्षेत्र की यात्रा की। उत्कलदेशीय राजा ने अपने क्षेत्र में उनका सत्कार किया तथा नीलमाधव के बालुका राशि में छिपने की बात कही। चिन्तित इन्द्रद्युम्न को नारद ने अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से भगवान् के दर्शन-प्राप्ति का आश्वासन दिया। राजा ने नारद के साथ नृसिंह, कल्पवट तथा नीलमाधव का दर्शन किया।

(१५-२० अ.) (इन्द्रद्युम्न का अश्वमेघयज्ञ तथा दारुमयी प्रतिमा का निर्माण) आकाशवाणी के कहने पर इन्द्रद्युम्न ने अश्वमेघयज्ञ आयोजित किया, अश्वमेघ के अन्तिम चरण में भगवान् ने इन्द्रद्युम्न को दर्शन दिया। पूर्णाहुति के समय प्रकट एक वटवृक्ष की स्थापना इन्द्रद्युम्न ने की। आकाशवाणी की घोषणानुसार एक वृद्ध बढ़ई द्वारा दारुविग्रह का निर्माण हुआ। पन्द्रहवें दिन भगवान् बलभद्र, सुभद्रा तथा जनार्दन सिंहासन पर अवस्थित हुए। नारद द्वारा उद्बोधित किये जाने पर इन्द्रद्युम्न ने भगवान की स्तुति की। तदनन्तर इन्द्रद्युम्न ने शिल्पियों द्वारा मन्दिर का निर्माण करवाया।

(२१-२६ अ.) (इन्द्रद्युम्न का ब्रह्मलोक प्रस्थान तथा ब्रह्मा का भूतल पर आगमन) नारद की इच्छा से ब्रह्मा को निमन्त्रित करने हेतु इन्द्रद्युम्न ब्रह्मलोक को गये, मार्ग में चिन्तित राजा को नारद ने चिन्तामुक्त किया। नवनिर्मित प्रासाद में भगवान् की स्थापना हेतु ब्रह्मा राजा के अनुरोध पर भूलोक आये। आकाशवाणी ने पद्मनिधि द्वारा दारुमूर्ति की स्थापना की बात कही। नारद की आज्ञा से विश्वकर्मा ने तीन रथों का निर्माण किया, जिनकी स्थापना नारद ने स्वयं अपने हाथों से की। अपने राज्य में किसी अन्य राजा के

आगमन को अपने क्षेत्र में हस्तक्षेप मानते हुए, गालराज ससैन्य पूजा स्थल पर आये; परन्तु इन्द्रद्युम्न के दुर्लभ पूजन को देखकर तथा स्ववंशीय जानकर नम्रभाव से अपने सिंहासन पर बैठाया।

(२७-३१ अ.) (नृसिंह का प्राकट्य) भूलोक पर पधारे ब्रह्मा ने क्रमशः तीनों रथों पर स्थित भगवान्, सुभद्रा तथा बलभद्र की स्तुति की। उसी समय उपस्थित नरव्याघ्र से भीत इन्द्रद्युम्न को नारद ने नृसिंह भगवान् का प्रभाव समझाया। यहाँ ब्रह्मा द्वारा इन्द्रद्युम्न को उपदेश देने तथा दारु देवता के पूजन का माहात्म्य विहित है।

इन्द्रद्युम्न ने द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम् नमो भगवते वासुदेवाय) से बलभद्र की, नारायण की पुरुषसूक्त से तथा सुभद्रा की अर्चना देवी सूक्त से की। दारुविग्रहवान् भगवान् द्वारा इन्द्रद्युम्न को वर देने की कथा लिखित है। ज्येष्ठमास में स्नानदानादि तथा सिन्धुराजतीर्थ-क्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है। साथ ही इन्द्रद्युम्नसरोवर में स्नान का महत्व भी प्रतिपादित है।

(३२-३६ अ.) (रथनिर्माण, जगन्नाथ की तीर्थयात्रा, महाज्येष्ठीपूर्णिमा, महादेवी महोत्सव) महाज्येष्ठीपूर्णिमा (ज्येष्ठमास की पूर्णिमा के दिन जब ज्येष्ठा नक्षत्र में चन्द्र एवं बृहस्पति हों तथा बृहस्पति वार के साथ शुभयोग हो-ज्येष्ठीपूर्णिमा कहलाती है) के दिन जगन्नाथ के दर्शन, पूजन का विशेष महत्त्व है।

वैशाख शु. प. की तृतीया को रोहिणीनक्षत्र के योग पर राजा द्वारा किसी आचार्य के निर्देशन में बढ़इयों से तीन रथों के निर्माण कराने का विधान है। रथनिर्माण के अनन्तर उसके पूजन, मार्ग-संस्कार, साज-सज्जापूर्वक-रथयात्रा प्रारम्भकरने, गुण्डिचा नगर जाने तथा बिन्दुतीर्थ पर सात दिन निवास के विधानपूर्वक नौ दिन की यात्रा का वर्णन है।

(३७-३८ अ.) (चातुर्मास्य-व्रत तथा श्वेतराजचरित) पुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास्य (सूर्य के कर्कराशि पर रहते हुए आषाढ़ शु. एकादशी से लेकर कार्तिक शु. एकादशी तक) व्यतीत करने वाला प्रत्येक दिन अश्वमेघ-यज्ञ के फल का भागी होता है। चातुर्मास्य में भगवान् के शयन, पूजन तथा स्नानादि की विधि विहित है। त्रेतायुग में श्वेत नामक सत्य, धर्म एवं व्रतनिष्ठ राजा थे। एक दिन भोग के समय दर्शनार्थ राजा ने भगवान् के समक्ष रखे पदार्थों को देखकर उनके भोग से सम्बन्ध में शंका प्रकट की। परन्तु स्वयं भगवान् को लक्ष्मी के साथ भोग ग्रहण करते देख आश्चर्यचकित राजा ने भगवान् से भक्ति तथा अपने नागरिकों की समृद्धि मांगी। भगवान् नृसिंह ने दर्शन देकर श्वेत को वर दिया। यहाँ कलिकाल-निर्णय, भगवान् के दयादाक्षिण्यादि गुणों का तथा कलि में भगवान् के गुण-चिन्तन के फल का वर्णन है। एक ब्राह्मण द्वारा भगवान् के प्रसाद को उच्छिष्ट मानते हुए त्यागने पर शरीर-पीड़ा तथा अन्य ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण करने पर दिव्यकान्ति-प्राप्ति की कथा प्राप्त है।

(३६-४० अ.) (शयनोत्सव, शयन-परिवर्तन, उत्थापन तथा प्रावरणोत्सव) भगवान् के शयन-काल (चातुर्मास्य) में भाद्रशुल्कपक्ष की एकादशी को भगवान् का पार्श्वपरिवर्तन कराने तथा कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर पूजन करने, कार्तिकमास की एकादशी को भगवान के उत्थापन एवं मार्गशीर्ष शुल्कपक्ष षष्ठी को प्रावरर्णोत्सव के उल्लेखपूर्वक इस उत्सव की विधि विहित है।

(४१-४३ अ.) (पुष्यस्नानोत्सव, उत्तरायणोत्सव तथा दोलारोहण) पौषमास की पूर्णिमा को जब पुष्यनक्षत्र हो भगवान् का पुष्योत्सव स्नान का विधान विहित है। सूर्य जब उत्तरदिशा की ओर गमन करते हुए मकरराशि पर आते हैं, उस समय उत्तरायण होता है। उनके संक्रमण का काल पुण्यफलदायी होता है, उस समय समुद्र में स्नान का विशेष महत्व है।

फाल्गुन मास में भगवान् के दोलारोहण के उत्सव का विधान प्रतिपादित है। इस आयोजन से मनुष्य को ब्रह्महत्यादि पांचमहापातकों से भी मुक्ति मिलती है।

(४४-४७ अ.) (सांवत्सर व्रत, दमनकभंजन, अक्षयमोक्षदयात्रा तथा दारुदेहभगवान् के दर्शन का फल) फाल्गुन पूर्णिमा को सांवत्सरव्रत (भगवान् की बारह मूर्तियों, जगन्नाथ, मधुसूदन आदि) की प्रत्येक मास में एक-एक की पूजा बारह पुष्पों (अशोक, मल्लिकादि) तथा बारह फलों (अनार, नारियल आदि) से करने के विधान के साथ विष्णु-प्रतिमा-प्रतिष्ठा का वर्णन है।

दमनक का (चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को) समूल आहरण करने तथा अक्षयमोक्षदायात्रा (वैशाख शु. की द्वितीयरात्रि) की विधि लिखित है। अन्त में नीलाचल स्थित दारूविग्रहवान् भगवान् के दर्शन का पुण्य प्रतिपादित है।

(४८-४६ अ.) (इन्द्रद्युम्न का ब्रह्मलोक गमन तथा पुराणश्रवण माहात्म्य) जगन्नाथ से वर प्राप्त कर कृतार्थ इन्द्रद्युम्न ने गालराजश्वेत को भगवान् की काष्ठमूर्ति का वैशिष्ट्य तथा पूजन का माहात्म्य समझाया, साथ ही विधिपूर्वक पूजन, अर्चन का आदेश देकर नारद के साथ वे ब्रह्मलोक को चले गये।

अन्त में पुराण श्रवण की विधि तथा फल वर्णित है।

तृतीय बदरिकाश्रम-माहात्म्य

(१-४ अ.) (विविधतीर्थ, बदरिकाश्रम तथा शिलामाहात्म्य) प्रारम्भ में क्षुद्रजनों के उद्धारविषयक प्रश्न का समाधान कहा गया है। यहाँ गंगा, गोदावरी, नर्मदा, क्षिप्रा आदि नदियों; अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्ती आदि तीर्थों का माहात्म्य प्रतिपादित है। बदरीतीर्थ के सर्वाधिक महत्व के प्रसंग में कहा गया है कि पुत्री के प्रति कामभाव वाले ब्रह्मा के पांचवे सिर को शिव ने काट डाला। ब्रह्मा के कपाल को लेकर शिव, ब्रह्महत्यादोष के

निवारणार्थ समस्त तीर्थो में गये; परन्तु बदरिकाश्रम जाने पर ही उनके दोष का परिहार हुआ।

अग्नि भी अपने सर्वभक्षण दोष के परिहार हेतु व्यास के आदेश पर बररिकाश्रम गये। प्रसन्न भगवान् ने अग्नि को बदरीक्षेत्र के दर्शनमात्र से ही सभी पापों के नाश होने का रहस्य बतलाया। बदरी क्षेत्र में स्थित पाँच शिलाओं (१. नारद, २. मार्कण्डेय, ३. वैनतेय, ४. वाराही, ५. नारसिंही) की उत्पत्ति तथा माहात्म्य वर्णित है।

(५-८ अ.) (बदरीक्षेत्र के अन्य तीर्थ) कपालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, पञ्चतीर्थ (१. प्रभास, २. पुष्कर, ३. गया, ४. नैमिष और ५. कुरूक्षेत्र, चन्द्रमा-निर्मित सोमतीर्थ (नारायण से चन्द्रमा को ग्रह, नक्षत्रादि के राजा होने की वर प्राप्ति, चतुःस्रोततीर्थ (यहाँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष द्रव रूप में विद्यमान रहते हैं) सत्यपदतीर्थ तथा नरनारायणाश्रम, मेरूतीर्थ आदि का सम्यक् वर्णन है। बदरिकाश्रम में लोकपालों की स्थापना, इस आश्रम में दान से समस्त फलों की प्राप्ति का उल्लेख तथा अन्त में दण्डपुष्करिणी तीर्थ का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

चतुर्थ कार्तिक-माहात्म्य[1]

(१-४ अ.) (कार्तिक-मास-वैभव) कार्तिक मास के माहात्म्य के विषय में शौनक का सूत के प्रति प्रश्न करने पर सूत द्वारा ब्रह्मा-नारद-संवाद के माध्यम से इस मास के व्रत की प्रशंसा बतलायी गयी है। ब्रह्मा ने मासों में कार्तिक, देवों में विष्णु तथा तीर्थों में नारायणतीर्थ (बदरिकाश्रम) को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। इस मास में किया हुआ-स्नान, दान, व्रतादि द्वारा उपार्जितपुण्य अक्षयफल देने वाला है। अन्नदान के महत्व प्रतिपादन में सत्यकेतु ब्राह्मण (जिसने मात्र अन्नदान से मोक्ष प्राप्त किया) का आख्यान भी लिखित है। कार्तिकमास में हरिकीर्तन (गोविन्द गोविन्द रथागंपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति) तथा गीता-पाठ का विशेष महत्व है। कार्तिकव्रत के प्रारम्भ, अवसान, कालनिर्णय, स्नान-विधि, कावेरी-तीर्थ स्नान-फल पञ्चनदतीर्थ आदि का भी निरूपण है।

(५-६ अ.) (कर्तव्याकर्तव्यनियम) कार्तिक मास में उषःकाल से ही प्रारम्भ (मूत्रपुरीष त्याग, दन्तधावन, स्नान, शयनान्त तक) नित्य कार्यों का विस्तृत विवेचन प्राप्त है। इस मास के कर्तव्याकर्तव्य, व्रतदानादि का भी निरूपण है। निषिद्धकर्मों (तैल, परान्नत, गणान्न, गणिकान्न, तैलयुक्तभोजन, शूद्रान्न, सूतकान्न, द्विदल आदि का भक्षण) तथा कर्तव्यों (कथा-श्रवण, कदलीफल, आँवला, वस्त्र, गोदान तथा शालिग्राम दान आदि) का विवेचन है।

---

१. इस पर वेङ्कटरामात्मज हरिकृष्णशास्त्री विरचित एक आधुनिक टीका प्रकाशित है, जो क्लिष्टांशों पर ही लिखित हैं।

(७-८ अ.) (दीपदान-माहात्म्य तथा कुत्सब्राह्मण एवं हरिमेधा-सुमेधा-आख्यान) विष्णुमन्दिर में दीपदान का महत्व वर्णित है। द्रविडदेश में बुद्धनामक ब्राह्मण की स्त्री दुष्टा एवं दुराचारिणी थी। पति की मृत्यु के अनन्तर ब्राह्मणी और भी स्वेच्छाचारिणी हो गयी। एक दिन कुत्स नामक एक ब्राह्मण तीर्थयात्री ने उसे शरीर की निरर्थकता समझा कर भगवान् को कार्तिक में दीपदान का महत्व बतलाया। समय आने पर ब्राह्मणी ने वैसा ही किया और अन्त में मोक्ष को प्राप्त हुई। कार्तिक में आकाश-दीपदान का पुण्य भी अतुलनीय बतलाया गया है।

हरिमेधा एवं सुमेधा नामक कश्मीर वास्तव्य भक्तिपरायण दो ब्राह्मण तीर्थयात्रा करते हुए दुर्गमवन में श्रान्त पड़े थे, तभी सुमेधा ने तुलसी वन को देखकर प्रणाम किया। जिज्ञासावश हरिमेधा ने इसका कारण पूछा। सुमेधा ने बताया कि समुद्र-मंथन के समय अमृतकलश की प्राप्ति पर प्रसन्न विष्णु की आँखों से छलके आनन्दाश्रु से तुलसी की उत्पत्ति हुई थी, नारायण जगत् के त्राता हैं तथा तुलसी उनकी वल्लभा हैं। अतः मैंने (सुमेधा) इन्हें प्रणाम किया।

(९-११ अ.) (वत्सद्वादशी, नरकचतुर्दशी, दीपावली, यमद्वितीया-व्रत-विधान) कार्तिक मास कृष्ण द्वादशी के दिन संवत्सर, गाय की पूजा की विधि वर्णित है। यहाँ एकाङ्गी नामक गोपालिका (जो मात्र तीन वर्ष तक व्रत करके धनधान्य युक्त हुई) की कथा का उल्लेख भी है।

दीपावली के पहले चतुर्दशी को तेल में लक्ष्मी का तथा जल में गंगा (तैले लक्ष्मी जले गंगा-९.३२) का निवास रहता है। इस दिन श्याम तथा शबल दो कुत्तें, जो परस्पर भाई तथा मृत्यु के पुत्र हैं-को दीपदान एवं यम को तर्पण (चौदह यमनाम मन्त्रों से यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक आदि) करने का विधान है। दीपावली के दिन महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती के पूजन; लक्ष्मी-प्रबोधोत्सव तथा प्रतिपदा के दिन गोवर्धनपूजा एवं मृत्युनाशक यमद्वितीया के व्रत की विधि वर्णित है। यमद्वितीया के दिन सहोदरा बड़ीबहन के घर जाने, उसे प्रणाम करने तथा बहन के अनुरोध पर उसके घर भोजन करने का भी उल्लेख है। इस दिन यम का सत्कार उनकी बहन यमुना ने किया था, यम आज के दिन पापिष्ठों को भी छोड़ देते हैं।

(१२-१३ अ.) (धात्री-माहात्म्य, सत्यभामा-कृष्ण-संवाद, शंखा-सुराख्यान) वैकुण्ठचतुर्दशी (कार्तिक शुक्लचतुर्दशी) के दिन आँवलावृक्ष के पूजन, उसकी उत्पत्ति की कथा (प्रलय जल में समस्त जगत् के निमग्न हो जाने पर जपरत ब्रह्मा को भगवद्दर्शन के कारण निकले आनन्दाश्रु के पृथ्वी पर गिरने से आँवले की उत्पत्ति हुई; सर्वप्रथम उत्पत्ति के कारण "आदिरोह" नाम), उसकी छाया में भोजन, दान, कथा-श्रवण, परिक्रमा आदि का विधान वर्णित है।

सत्यभामा द्वारा कृष्ण से अपने पूर्वजन्म-विषयिणी जिज्ञासा करने पर कृष्ण ने बताया-हरद्वार (मायापुरी) निवासी अत्रिकुलोत्पन्न वेद-वेदाङ्गपारङ्गत देवशर्मा की गुणवती नामक एक कन्या थी। देवशर्मा ने चन्द्र नामक अपने शिष्य से उसका विवाह किया। वन गये हुए चन्द्र एवं देवशर्मा को एक राक्षस ने मार डाला। गुणवती-एकादशी के उपवास तथा कार्तिकमासव्रतपालनस्वरूप प्राप्तपुण्य के कारण मेरे (भगवान्) समीप व वैकुण्ठ में स्थित हुई। पूर्वजन्म के देवशर्मा सम्प्रति सत्राजित हैं, चन्द्र, अक्रूर हैं, एवं गुणवती तुम (सत्यभामा) हो।

पृथु के पूछने पर नारद ने शखांसुर का वृत्तान्त सुनाया। शंखासुर समुद्र से उत्पन्न एक राक्षस था, जिसने देवों के अधिकार हस्तगत कर लिये थे। देवों के बल के अपहरण हेतु उसने वेदों का अपहरण कर लिया। अपहृत-वेद उसके भय से समुद्र में विलीन हो गये। देवों के अनुरोध पर कार्तिकशुक्लएकादशी के दिन विष्णु ने शंख का वध कर वेदों की रक्षा की।

(१४-२३ अ.) (जलन्धर वृत्तान्त तथा तुलसी की उत्पत्ति) पृथु द्वारा तुलसी की उत्पत्ति तथा उसके हरिप्रिया बनने सम्बन्धी प्रश्न किये जाने पर नारद ने बतलाया-एक बार इन्द्र कैलास पर शिव के दर्शनार्थ आये तथा शिवगृह को जाते हुए एक भीमपुरुष को देखकर उसका परिचय बार-बार पूछा, पर उत्तर न पाकर वज्र से प्रहार कर दिया। वज्र उस पुरुष के कण्ठ तक आते ही भस्म हो गया। क्रुद्ध शिव के क्रोधाग्नि से जलन्धर की उत्पत्ति हुई (नेत्राभ्यां विधृतं यस्मादनेनेतज्जलं मया। तस्माज्जलंधर इति ख्यातो नाम्ना भविष्यति।।)। समस्त शस्त्र तथा शास्त्रपारंगत तरूण जलन्धर रुद्रातिरिक्त सबसे अवध्य हुआ। उसने कालनेमि की पुत्री वृन्दा को पत्नी बनाया। जलन्धर से पराजित देवों ने विष्णु की प्रार्थना की। विष्णु ने जलन्धर से युद्ध किया। उसके पराक्रम से प्रसन्न विष्णु ने उसे वर दिया। नारद ने जलन्धर की सभा में उपस्थित होकर उसे स्त्रीरत्नपार्वती को ग्रहण करने का उपदेश दिया। तदर्थ जलन्धर ने राहू को प्रेषित किया। क्रुद्धशिव के भ्रूमध्य से कीर्ति नामक मुख्यगण उत्पन्न हुआ। देवासुर-संग्राम में रुद्रसेना परास्त हुई तथा वीरभद्र भी पराभव को प्राप्त हुए। "वृन्दा के पातिव्रत्य भंग से ही जलन्धर की मृत्यु होगी।" - ऐसा विचार कर विष्णु ने माया प्रदर्शित करते हुए वृन्दा के साथ रमण किया। रहस्य ज्ञात होने पर वृन्दा ने विष्णु को शाप दिया। वृन्दा के देह-त्याग करने पर अपना स्वरूप भूलकर विष्णु उसकी राख में लोटने लगे। जलन्धर की मृत्यु पर शिव की आज्ञा से विष्णु के बोधनार्थ शक्ति द्वारा तीन बीज प्रदान किये गये। देवों द्वारा उन बीजों को वृन्दा के देहत्याग-स्थल पर वपन से धात्री, मालती तथा तुलसी की उत्पत्ति हुई।

(२४-२५ अ.) (कलहा-राक्षसी-वृत्तान्त) सह्यपर्वत पर करवीरपुर में धर्मदत्त नामक धर्मज्ञ ब्राह्मण रहता था। कार्तिकमास में विष्णु के समीप रात्रि जागरण हेतु जा रहे धर्मदत्त

ने एक राक्षसी को आते हुए देखा। भया-क्रान्त ब्राह्मण ने विष्णुपूजन सामग्री (जिसमें तुलसी दल मिश्रित जल भी था) राक्षसी के शरीर पर फेंकी, जिसके पड़ते ही उसके पूर्वजन्म के पापकर्म नष्ट हो गये तथा उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। राक्षसी ने अपने पूर्वजन्म की कथा ब्राह्मण को इस प्रकार बतलायी-पूर्वजन्म में वह सौराष्ट्र नगर में भिक्षु नामक ब्राह्मण की पत्नी थी। उसका नाम कलहा था। उसके व्यवहार से व्यथित भिक्षु द्वारा दूसरी स्त्री से विवाह का निश्चय करने पर कलहा ने विष खाकर प्राण त्याग दिये। यमलोक जाकर सूकरी, बिल्ली आदि निम्न योनि में रहने के बाद कलहा राक्षसी हो गयी। परन्तु ब्राह्मण द्वारा तुलसी जल प्रोक्षित करने से मुक्ति को प्राप्त हुई।

(२६-२८ अ.) (विष्णुभक्ति माहात्म्य विष्णुद्विजेतिहास, जयविजय चरित) एक बार चोलराज ने अनन्तशयनतीर्थ जाकर भगवान् की मणि-माणिक्य से विधिपूर्वक पूजा की। उसी समय उन्हीं की नगरी काञ्ची का निवासी ब्राह्मण विष्णुदास ने भी तुलसीदल से भगवान् की पूजा की, जिससे भगवान् तुलसी से आच्छादित हो गये। यह देखकर राजा अप्रसन्न हुए तथा ब्राह्मण को अपशब्द कहे। राजा को अपने द्वारा कृत धार्मिक कृत्यों पर गर्व था। राजा ने ब्राह्मण से पूर्व भगवान् के दर्शन की चुनौती रखी। ब्राह्मण तथा राजा प्रतिस्पर्धापूर्वक विष्णु भक्ति में संलग्न हो गये। विष्णुदास जब सायंकाल भोजन बना कर रखते तभी उसे कोई उठा ले जाता; पर पुनः भोजन न बनाकर विष्णुदास पूजा में लग जाते। सातवें दिन छिपकर देखने पर विष्णुदास ने एक चाण्डाल को भोजन ले जाते देखा तथा उसे घृत भी देने की बात कही पर वह चाण्डाल मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। विष्णुदास ने जब समीप जाकर देखा तो उन्हें विष्णु चतुर्भुज रूप में दिखायी पड़े तथा विष्णुदास को अपने लोक ले चले; जिसे देखकर राजा ने अपने यज्ञ के पुरोहित मुद्गल से स्वयं को भगवान् का दर्शन न देने का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि प्रभु दर्शन में मात्र यज्ञ, दान नहीं, भक्ति का प्राधान्य आवश्यक है। अन्त में राजा की बैकुण्ठ प्राप्ति हुई।

देवहूति के गर्भ से महर्षि कर्दम के दृष्टि मात्र से ही दो पुत्र जय, विजय उत्पन्न हुए। धर्मपरायण जय को राजा मरूत ने यज्ञ में ब्रह्मा तथा विजय को आचार्य बनाया। प्राप्त-धन के वितरण हेतु विवाद होने पर दोनों ने एक दूसरे को ग्राह तथा गज होने का शाप दिया। दोनों गण्डकी नदी पर ग्राह तथा गज बन गये। कार्तिक मास में गज स्नानार्थ जब नदी पर आया तब उसे ग्राह ने पकड़ लिया। गजराज ने विष्णु का स्मरण किया, भगवान् ने दोनों का उद्धार किया।

(२९-३६ अ.) (धनेश्वर आख्यान तथा अन्य व्रत) धार्मिक धनेश्वर को साँप काटने से हुई मृत्यु के कारण कुम्भीपाक नरक की प्राप्ति हुई। पर कार्तिक व्रत करने वाले पुरुषों के संसर्ग से प्राप्त पुण्य के प्रभाव से कुम्भीपाक शीतल हो गया। नारद के कथन पर यमदूतों ने धनेश्वर को नरक के दर्शन कराकर यक्षलोक को भेजा।

कूष्माण्ड नवमी, तुलसी-विवाह, भीष्मपञ्चक व्रत (कार्तिक एकादशी से पूर्णिमा तक), प्रबोधिनी एकादशी, द्वादशी विधान, कार्तिक व्रतोद्यापन-विधि; बैकुण्ठचतुर्दशी व्रत, त्रिपुरोत्सव आदि व्रतों की विधि, माहात्म्य तथा पुराण श्रवण का फल वर्णित है।

पञ्चम मार्गशीर्ष-माहात्म्य

(१-४ अ.) श्वेत द्वीप में स्थित रमापति से ब्रह्मा ने "मासानां मार्ग-शीर्षोऽहं" वाक्य में लक्षित मार्गशीर्ष मास का माहात्म्य जानना चाहा। भगवान् ने इस मास में किये हुए स्नान, व्रत को सभी पुण्यों का प्रदाता बतलाते हुए गोपिकाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया। पूर्व में हुए नन्दगोप की सहस्र कन्याएं थीं जिनका चित्त कृष्ण में अनुरक्त था। कृष्ण के उपदेश पर मार्गशीर्षमास में स्नान के पुण्य से गोपियों ने कृष्ण को प्राप्त किया। मार्गशीर्ष में प्रातः स्नान (मृत्तिकालेपनपूर्वक), मुखमार्जन आदि की समन्त्रविधि, स्नानोत्तर त्रिपुण्ड्रधारण, गोपीचन्दनधारणविधि, भगवान् के अवतारचिह्नों को शरीर पर चिह्नित करने, तुलसीमाला तथा धात्री(आँवला) फलमालाधारण, पञ्चामृत (दुग्ध, दधि, घृत, मधु, शर्करा), स्नान, शंख-(पाञ्चजन्य) पूजन आदि की विधि वर्णित है।

(५-१० अ.) (घण्टानाद, चन्दन, पुष्प, तुलसी आदि का माहात्म्य) घण्टा सर्ववाद्यमय (सर्ववाद्यमयी घण्टा) है इसलिए पूजन में घण्टानाद का विधान है। मृदङ्ग और शंख की ध्वनि चन्दन का लेप तथा प्रणव-उच्चारण के साथ किया हुआ पूजन मोक्षप्रदाता है। भगवत्पूजा में प्रयुक्त पुष्पों (बेला, चमेली, जूही, कमल आदि) का उल्लेख है, पर सभी पुष्पों में जातिपुष्प (जूही) श्रेष्ठ है। तुलसी पत्र के दान से भी सभी वस्तुओं के दान के फल की प्राप्ति, धूप, दीप दान का फल, नैवेद्यविधि, साष्टाङ्गप्रणाम (दोनों पैर, दोनों हाथ, दोनों घुटनों, छाती, सिर, मन, वाणी तथा दृष्टि से), प्रदक्षिणा तथा पूजासमापन की विधि विहित है। भगवान् को विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष, अनुस्मृति तथा गीता-ये पाँच स्तोत्र विशेष प्रीतिकर हैं। भगवान् के दामोदर नाम (दधिभाण्ड फोड़ने पर यशोदा द्वारा कसकर कमर, उखल में बाँधने से दामोदर) पड़ने का कारण भी यहाँ लिखित है।

(११-१२ अ.) (एकादशी-माहात्म्य (वीरबाहुचरित) काम्पिल्य नगर के वैष्णव राजा वीरबाहू की पत्नी कान्तिमती पतिव्रता तथा साध्वी थी। एक दिन वीरबाहू के घर भरद्वाज-ऋषि आये जिनका राजा ने सविधि सत्कार किया तथा ऋषि के आगमन को अपना सौभाग्य मानते हुए अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा। भरद्वाज ने बताया कि तुम पूर्वजन्म में नास्तिक तथा दुराचारी शूद्र थे परन्तु तुम्हारी स्त्री पतिव्रता थी। देवशर्मा नामक भटके हुए एक क्षुधार्त ऋषि का तुम्हारे आदेश पर तुम्हारी पत्नी ने फल खिला कर सत्कार किया। सत्कार से प्रसन्न देवशर्मा ने तुमको अतिथिसत्कार से प्राप्त फल को बतलाया तथा स्वयं प्रयाग चले गये। अतिथिसत्कार के पुण्य से तुम राजा हुए। तदनन्तर राजा वीरबाहू ने भरद्वाज से

मार्गशीर्ष एकादशीव्रत की विधि पूछी जो इस प्रकार वर्णित है-दशमी को भक्त व्रत, एकादशी को दिन तथा रात्रि में उपवास एवं द्वादशी को पारणा के रूप में एक समय भोजन करें-इसे अखण्डा एकादशी कहते है। यहाँ व्रती हेतु दशमी को वर्ज्य तथा एकादशी को वर्ज्य कार्य बताये गये हैं। उपवास नाम का कारण इस प्रकार है-पापों से उपावृत्त (निवृत्त) होकर जो गुणों के साथ वास किया जाय वह उपवास है, शरीर को सुखा डालना उपवास नहीं है-

उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयो न शरीरस्य शोषणम्।। १२.३०

(१३-१४ अ.) (एकादशी जागरण, मत्स्योत्सव) एकादशी की रात्रि में गीत, वाद्य, नृत्य, पुराणपाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन अनुलेपन, फल निवेदन, श्रद्धादान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण तथा निद्रात्यागपूर्वक भगवान की प्रत्येक प्रहर में आरती करते हुए रात्रि जागरण करने वाले का पुर्नजन्म नहीं होता।

मार्गशीर्ष शु.प. द्वादशी तिथि को मत्स्योत्सव का विधान है। इस दिन मत्स्यावतार की सुवर्ण-प्रतिमा पूजन तथा प्रार्थना भगवान् के वेदोद्धारक रूप का ध्यान करते हुए पूजा करने का विधान है।

(१५-१७ अ.) (दम्पती-पूजन, दामोदर-मन्त्र तथा मथुरा-माहात्म्य) यहाँ दम्पती के पूजन वस्त्र-गो-भूमि-स्वर्णादि दान का महत्व एवं कृष्णनाम-स्मरण का महत्व लिखित है। दामोदर-मन्त्र (श्रीदामोदराय नमः) के अनधिकारी तथा अधिकारी शिष्य का लक्षण एवं भागवत का माहात्म्य और फलश्रुति भी प्रतिपादित है।

अन्त में मथुरा क्षेत्र में निवास का फल तथा उसका महत्व वर्णित है।

षष्ठ भागवतमाहात्म्य

(१-२ अ.) (व्रजभूमि माहात्म्य, उद्धव-दर्शन) युधिष्ठिर द्वारा अनिरूद्धनन्दन वज्र को मथुरा तथा अपने पौत्र परीक्षित् को हस्तिनापुर के राज्य पर अभिषिक्त कर हिमालय पर चले जाने के अनन्तर इन राजाओं (वज्र और परीक्षित्) के कर्तव्य-विषयक प्रश्न ऋषियों द्वारा किये जाने पर सूत ने अग्रिमं कथा इस प्रकार सुनायी-एक दिन परीक्षित् मथुरा आकर वज्रनाभ से मिले। वज्रनाभ ने अपने दुःख का कारण मथुरा प्रान्त की निर्जनता को बताया। परीक्षित् ने नन्द आदि के पुरोहित शाण्डिल्य को बुलाया। शाण्डिल्य ने व्रज शब्द की व्युत्पत्ति (व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते) व्याप्ति बतलाया। व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है। इसमें कृष्ण कणकण में व्याप्त हैं। शाण्डिल्य ने वज्रनाभ को बतलाया कि इस भूमि के सेवन से उद्धव का दर्शन भी सम्भव है। एक बार कृष्ण की विरह व्याकुल रानियाँ स्नानार्थ यमुना तट पर गयीं, यमुना ने उनकी व्यथा सुनकर उनको सान्त्वना प्रदान की। रानियों

द्वारा उद्धव के दर्शन की उत्कण्ठा पर यमुना ने उन्हें गोवर्धन-पर्वत के निकट गोपियों की विहार स्थली में लता और बेलों के रूप में उद्धव के निवास को बतलाया। लताकुञ्जों से प्रकट होकर उद्धव ने गोपियों को दर्शन दिया।

(३-४ अ.) (उद्धव-परीक्षित्-संवाद, भागवत-माहात्म्य) उद्धव ने परीक्षित् से कृष्ण की बाललीलाओं तथा भागवतपाठ का महत्व प्रतिपादित करते हुए बतलाया कि जिस घर में भागवत का पाठ होता है उसमें श्रीकृष्ण सदा निवास करते हैं। इसके श्रवण से मोक्ष की प्राप्ति होती है। उद्धव के आदेश पर कलि के निग्रह तथा दिग्विजय हेतु परीक्षित् चले गये। वज्र ने भी अपने पुत्र प्रतिबाहु को राज्याभिषेक कर भागवत की कथा सुनते हुए कृष्णपत्नियों तथा श्रोताओं के साथ भगवान् का सान्निध्य प्राप्त किया।

सूत ने श्रीमद्भागवत तथा भगवान् का स्वरूप एक ही बतलाया। यहाँ वक्ता (कृष्णभक्त, अलोलुप आदि) तथा श्रोता के गुण, प्रकार प्रवर (चातक, हंस, शुकादि) २. अवर (वृक, वृष, उष्ट्र आदि)), लक्षण, श्रवणविधि एवं माहात्म्य वर्णित है।

सप्तम वैशाखमासमाहात्म्य

(१-५ अ.) (अम्बरीष-नारद-संवाद, वैशाखमासमाहात्म्य) राजा अम्बरीष द्वारा वैशाखमास की श्रेष्ठता तथा भगवान् का इस मास के प्रति "विशेष प्रेम" विषयक जिज्ञासा के समाधान में नारद ने इस मास में किये जाने वाले, स्नान, व्रत, दान (व्यजन, छत्र, उपानह आदि), निर्माण (कूप, तड़ाग, उद्यान, विश्राम-मण्डप आदि) के महत्व को प्रतिपादित किया। यहाँ वैशाखमास के व्रतियों के वर्ज्य पदार्थों (तैल, दिवा-शयन, आदि) का उल्लेख तथा पुनः वैशाखमास की श्रेष्ठता वर्णित है।

(६-१३ अ.) (जलदान-माहात्म्य) वैशाखमास में जलदान का विशेष महत्व है। जलदान न करने के कारण हेमाङ्ग राजा तिर्यग्योनि को प्राप्त होकर मैथिलराज (जनक) के घर गोधिका हुए। श्रुतदेव के सम्पर्क से हेमाङ्ग की इस योनि से मुक्ति हुई। मैथिलराज (जनक) के पूछने पर श्रुतदेव ने शिवपार्वतीसंवाद द्वारा वैशाख-मास के माहात्म्य का वर्णन किया। यहाँ कुमार (कार्तिकेय) के जन्म की कथा भी लिखित है। अशून्यशयनव्रत (श्रावण शु.प. द्वितीया को शय्या, वस्त्रादि के दानपूर्वक दम्पती भोजन आदि कृत्य) की विधि विहित है। राजा कुशकेतु के पुत्र हेमकान्त एक बार मृगया से श्रान्त शतर्चिऋषि के समीप पहुँचे तथा समाधिस्थ ऋषि द्वारा सत्कार न पाने के कारण आश्रम में कुद्धराजा के सैनिकों ने विध्वंस किया। हेमकान्त के पिता कुशकेतु ने अपने पुत्र को राज्य से निष्कासित कर दिया। एक बार श्रान्त त्रितमुनि को छाया प्रदान करने के कारण हेमकान्त को भगवान् का सामीप्य मिला।

वशिष्ठ के उपदेश से राजा कीर्तिमान् ने समस्त प्रजा से वैशाख मास के व्रत के पालन का आदेश दिया। सभी लोगों को मरकर स्वर्ग जाते देख, दुःखी यम ब्रह्माके समीप गये। ब्रह्मा से यम ने अपना दुःख कहा-जिस पर ब्रह्मा ने यम को वैशाखमास का महत्व समझाया पर यम इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। यम विष्णु के समीप गये। विष्णु ने यम को अपने भक्त के प्रति अनुग्रह को बतलाते हुए सान्त्वनापूर्वक वर प्रदान किया।

(१४-१६ अ.) (वैशाख स्नान प्रशंसा, कर्मनिष्ठ एवं तपोनिष्ठद्विज कथा तथा पुरुयश वृत्तान्त) मेषराशि में सूर्य के स्थित रहने पर वैशाख मास में जो प्रातः स्नान करता है तथा विष्णु की पूजा पूर्वक कथा श्रवण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करता है। दुर्वासा के कर्मनिष्ठ तथा तपोनिष्ठ दो शिष्य थे। कर्मनिष्ठ लोगों को विष्णु की कथा सुनाते पर तपोनिष्ठ अन्य कर्मों में लिप्त रहता था। कथा की अवहेलना के कारण तपोनिष्ठ को कष्ट प्राप्त हुआ, जिससे सत्यनिष्ठ ने उसकी रक्षा की।

भूरियश के पुत्र पुरुयश पाञ्चाल देश के राजा थे। एक समय राज्य में अकाल पड़ा। शत्रुओं से पीड़ित दुर्बल राजा ने अपनी पत्नी शिखिनी के साथ कन्दरा में शरण ली। चिन्तित राजा ने गुरु "याज" एवं "उपयाज" से अपनी दुर्दशा का कारण पूछा। गुरुओं ने उनके पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाते हुए वैशाखमास के व्रत के पालन का उपदेश दिया। राजा द्वारा वैसा किये जाने पर प्रसन्न भगवान् द्वारा उन्हें सायुज्य-मुक्ति मिली।

(१७-१९ अ.) (शंख-व्याध संवाद) पम्पा तट स्थित शंख नामक ब्राह्मण एक बार गोदावरी में स्नान हेतु प्रस्थान किये पर मार्ग विस्मृत होने के कारण क्षुधार्थ वृक्ष की छाया में बैठ गये। तभी वहाँ एक व्याध आया और अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूछा। शंख ने बताया पूर्वजन्म में वह "स्तम्भ" नामक ब्राह्मण था पर वेश्यागामी होने के कारण अपनी पत्नी की उपेक्षा करता रहा। परन्तु उसकी पत्नी कान्तिमती ने दोनों (पति तथा वेश्या) की सेवा करती रही। अर्थहीन होने पर वेश्या ने उसे त्याग दिया पर वह (स्तम्भ) अन्त तक वेश्या में अनुरक्त रहा। कान्तिमती ने एक महात्मा का पाद-प्रक्षालन कर जल, स्तम्भ के मुख में डाल दिया। जिसके पुण्य के कारण ही तुम्हें (व्याध को) शंख का सान्निध्य तथा पूर्वजन्म विषयक जिज्ञासा हुई। व्याध ने शंख से अनेक प्रश्न (यथा-भगवान् का स्वरूप, वैष्णव धर्म, प्राण की श्रेष्ठता, भागवत धर्म आदि) पूछे, जिसका समाधान शंख ने किया।

(२०-२३ अ.) (सर्प की मुक्ति, वैशाख धर्म तथा रामनाम-माहात्म्य) वटवृक्ष में एक सर्प रहता था, वृक्ष के गिरते ही सर्प पापयोनिमय शरीर त्याग कर दिव्यस्वरूप वाला हो गया। इस प्रकरण को देखकर विस्मित शंख एवं व्याध ने उससे कारण पूछा। सर्प ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताया कि पूर्व में वह प्रयागनिवासी कुसीद का पुत्र रोचन नामवाला ब्राह्मण था। ब्राह्मणधर्म में उसकी रुचि नहीं थी। वैशाख मास में जयन्त नामक ब्राह्मण जब भक्तों को कथा सुनाया करता था तब वह (रोचन) उसमें विघ्न डालता था। जिसके

दण्डस्वरूप उसे यह योनि (सर्प) मिली। शंख ने व्याध को रामनाम स्मरण का उपदेश दिया, जिसका जप कर व्याध ने ऋषीत्व प्राप्त किया तथा वाल्मीकि रूप में प्रसिद्ध हुआ। यहाँ कलिधर्म (गुरू-शिष्य-वैर, पति-पत्नी द्वेष, ब्राह्मण शूद्रवत, शुभ कर्मों की न्यूनता आदि) का निरूपण, वैशाख की तिथियों का क्रमेण वर्णन तथा अक्षय तृतीया का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

(२४-२५ अ.) (वैशाख शुक्लद्वादशी-माहात्म्य, देवद्विज कथा) कश्मीर-निवासी देवव्रत नामक ब्राह्मण की मालिनी नामक चरित्रहीन कन्या का विवाह सत्यशील से हुआ था। पति की उपेक्षा करते हुए वह पर पुरुषों में अनुकूल रहती थी। बहुत दिनों तक कष्ट उठाने के बाद उत्तरजन्म में वह कुतिया हुई। पद्मबन्धु के पुत्र के पादप्रक्षालित जल के स्पर्श से उसे पुण्य की प्राप्ति हुई। उसकी प्रार्थना पर पद्मबन्धु के पुत्र ने वैशाखशुक्लपक्षद्वादशी का पुण्यदान कर उसे मुक्ति दिलायी।

अन्त में पुष्करिणी तिथि (वैशाखमास की त्रयोदशी से पूर्णिमा तक) नाम से प्रसिद्ध तीन तिथियों का माहात्म्य एवं वैशाखमास-माहात्म्य-श्रवण का फल लिखित है।

अष्टम अयोध्या माहात्म्य

(१-३ अ.) (अयोध्या-माहात्म्य, विष्णुशर्मा चरित) राम के द्वादशवर्षीय यज्ञ के अवसर पर भरद्वाज आदि ऋषियों द्वारा अयोध्या-माहात्म्य सुनने की इच्छा पर सूत ने अयोध्या-माहात्म्य का वर्णन किया। विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण ने अयोध्या में तीनवर्ष तक निवास करते हुए तपस्या की। प्रसन्न विष्णु से विष्णुशर्मा ने अविचलभक्ति तथा अन्त में स्वर्गलोक प्राप्त किया।

(४-५ अ.) (धर्महरि-माहात्म्य, रघु-कौत्स-संवाद) प्रारम्भ में धर्महरि की स्थापना तथा माहात्म्य का वर्णन है। एक बार राजा रघु ने विश्वजित् नामक यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर दिया था तभी कौत्स ने उससे गुरु-दक्षिणा हेतु चतुर्दशस्वर्णमुद्राएं मांगी। अकिञ्चन राजा ने कुबेर को जीतने की इच्छा की, पर भीत कुबेर ने उनके प्रासाद में स्वर्णवर्षा की, जिसे रघु ने कौत्स को प्रदान किया। यहाँ तीलोदक तीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है।

(६-७ अ.) (अयोध्या-तीर्थ वर्णन) सीताकुण्ड, गुप्तहरि, चक्रहरि, गोप्रतारतीर्थ, क्षीरोदक, वशिष्ठकुण्ड, योगिनीकुण्ड, उर्वशीकुण्ड, घोषार्ककुण्ड, रुक्मिणीकुण्ड, बृहस्पति तथा सागर आदि प्रमुख कुण्डों का माहात्म्य प्रतिपादित है। यहाँ राजा के स्वधाम-गमन के समय चिन्तित विभीषण, हनुमान, मयद एवं द्विविद तथा शेष वानरों को राम द्वारा सान्त्वना और वर प्रदान करने की कथा प्राप्त है।

(८-१० अ.) (शेषतीर्थ-माहात्म्य) रतिकुण्ड, कुसुमायुधकुण्ड, रतिकन्दर्पपूजाविधि, महारत्नतीर्थ, दुर्भराख्यतीर्थ, महाविद्यातीर्थ, हनुमत्कुण्ड, सीताकुण्ड, गयाकूप, पिशाचमोचन, मानसतीर्थ, भैरवकुण्ड तथा जटाकुण्ड-माहात्म्य का वर्णन है।

अन्त में अयोध्या यात्रा की विधि, रामजन्मस्थान-महत्व तथा अयोध्या-माहात्म्य-श्रवण का फल लिखित है।

नवम वासुदेव-माहात्म्य[1]

(१-४ अ.) (नारायण-नारद समागम, वासुदेव का सर्वोपासकत्व, श्वेतद्वीपवर्णन) नारद की चतुर्वर्गसिद्धि हेतु देवोपासना विषयिणी जिज्ञासा के समाधान में वासुदेव की उपासना का उल्लेख है। वासुदेव को देवमनुष्यादि सभी का उपास्य बतलाया गया है, साथ ही श्वेतद्वीप का विस्तृत वर्णन भी है।

(५-७ अ.) (उपरिचरवसुवृत्तान्त) धार्मिक, पितृभक्त, विरक्त, सदाचार आदि गुणसम्पन्न "उपरिचरवसु" ने पृथ्वी का सम्यक् पालन करते हुए दिव्य देह प्राप्त कर स्वर्गलोक को प्राप्त किया था। पर एक बार महर्षियों से संवाद में वेदों को हिंसापरक बतलाने के कारण वसु पतित होकर पृथ्वी के विवर में प्रविष्ट हो गये थे। भगवान् में भक्ति रखने के कारण गरुड ने अपनी चोंच से राजा को सशरीर स्वर्ग पहुँचाया।

(८-६ अ.) (हिंस्त्रयज्ञप्रवृत्ति) एक बार शंकर के अंश दुर्वासा मुनि ने पुष्पभद्रा नदी में सुमति नामक विद्याधर को अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखा। वहाँ उपस्थित इन्द्र ने भी अधर्म के प्रभाव से दुर्वासा को देखकर प्रणाम नहीं किया। क्रुद्ध दुर्वासा ने इन्द्र की समृद्धि को समुद्र में समा जाने का शाप दिया तथा स्वयं कैलास चले गये। दुर्वासा के शाप से देव, दैत्य, मनुष्यादि दरिद्र हो गये तथा "अन्न, अन्न" चिल्लाने लगे। क्षुधार्त मनुष्यों ने पशुओं को मारना प्रारम्भ कर दिया। विद्वानों ने आपद्धर्म रूप में स्वीकृत वेदविहित हिंसा को हिंसा नहीं कहा, जिससे यज्ञों में हिंसा का प्रचार हो गया।

(१६-१६ अ.) (गोलोकवर्णन, वासुदेवावतार) कल्पवृक्षादि तथा मल्लिकायूथिकादि लताओं से सुसज्जित, हजारों मणिमाणिक्यादि रत्नों के स्तम्भों से निर्मित भवनों वाले, शीतलमन्दसुगन्धियुक्तवायुवाले तथा अनेक निर्झरसम्पन्न गोलोक की समृद्धि का वर्णन है। गोलोक पहुंचकर नारद ने भगवान् को प्रणाम कर निश्चलभक्ति मांगी। प्रसन्न भगवान् ने सृष्टि के मूल में अपने को बतलाते हुए सृष्टि का वर्णन किया। यहाँ भगवान् के अवतारों (नृसिंह, राम, कृष्णादि) की संक्षिप्त चर्चा तथा नारद-नारायण संवाद लिखित है।

---

१. बङ्गवासी प्रेस, कलकत्ता तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित स्कन्दपुराण में वासुदेव-माहात्म्य प्राप्त नहीं है। नारदीयपुराण की विषय सूची में वासुदेव-माहात्म्य माहेश्वर खण्डान्तर्गत परिगणित है। वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण में यह माहात्म्य अयोध्या-माहात्म्य के बाद मुद्रित है पर इस संस्करण में वासुदेव-माहात्म्य की सूची मुद्रित नहीं है। इस आधार पर कतिपय विद्वान् इसे परिशिष्ट मानते हैं। परन्तु मोरप्रकाशन संस्करण में यह माहात्म्य विषय सूची पूर्वक मुद्रित है।

(२०-२७ अ.) (चातुर्वर्ण्यधर्म-वर्णन) नारायण ने नारद को वर्णों तथा आश्रमों के पृथक्-पृथक् सदाचार बतलाये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के कर्तव्याकर्तव्य का प्रतिपादन है। ब्रह्मचारीधर्म (सायं प्रातः होम, भिक्षाचर्या, त्रिकालसन्ध्या आदि) तथा भेद १-प्राजापत्य, २-सावित्र, ३-ब्राह्म, नैष्ठिक, गृहस्थ-धर्म (तर्पण, वैश्यदेव, स्वाध्याय, विष्णुपूजन, अतिथिपूजन आदि); स्त्रीधर्म (चाञ्चल्य, अतिलोभ, क्रोध आदि का परित्याग); विधवा-धर्म (विष्णुसेवन, कामसम्बन्धी वार्ता तथा दिन में शयन निषेध, विष्णुसेवन, चान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान); वानप्रस्थ-धर्म (पञ्चतप, स्वयम् अन्नादि का आहरण आदि) तथा सन्यासी के धर्म (काषायवस्त्रधारण, काम, क्रोध, भय, वैर तथा अन्नादि के संग्रह का परित्याग) तथा चार भेदों १-कुटीचक २-बहूदक ३-हंस ४-परमहंस का वर्णन है। ज्ञानस्वरूप-प्रतिपादन में सृष्टि का वर्णन तथा वैराग्यभक्ति का निरूपण है। अन्त में कृष्णार्चनविधि, पूजामण्डलरचना-विधि एवं कृष्णपूजामाहात्म्य प्रतिपादित है।

(२८-३२ अ.) राधाकृष्ण के स्वरूप का चिन्तन, वासुदेवपूजा विधि, अष्टाङ्गयोग (यम, नियम, आसनादि) का निरूपण तथा पुराणश्रवण का फल (धर्मार्थी को धर्म, कामुक को काम, धनार्थी को धन, मोक्षार्थी को मोक्ष की प्राप्ति होती है) कथित है।

स्कन्दपुराण का तृतीय ब्राह्मखण्ड

ब्राह्मखण्डान्तर्गत सेतु-महात्म्य

(१-२ अ.) (सेतुबन्ध-कथा) नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों द्वारा जीवों की मुक्तिविषयक-जिज्ञासा करने पर सूत ने रामेश्वर-तीर्थ-क्षेत्र का वर्णन किया। इस क्षेत्र में स्थित सेतु, रामेश्वरलिङ्ग तथा गन्धमादन पर्वत के दर्शन तथा चिन्तन मात्र से ही मुक्ति सम्भव है। वनवास-काल में श्रीराम जब दण्डकारण्य के पञ्चवटी में निवास कर रहे थे तथा मारीच के माध्यम से रावण ने सीता को छल द्वारा हर लिया। सीता की खोज करते हुए राम किष्किन्धा में पम्पा-सरोवर पर गये। हनुमान् के साथ राम, सुग्रीव के समीप पहुंचे। भक्ति-प्रदर्शन (दुन्दुभि-दानव कों पैर के अंगूठे से कई योजन दूर फेंक कर) द्वारा राम ने सुग्रीव से मित्रता की। वालि का वध कर राम वानरों के साथ समुद्र तट पर आये तथा समुद्र की तीन रात्रिपर्यन्त उपासना कर प्रतीक्षा की। तदनन्तर नल के माध्यम से समुद्र पर पुल बनाया। पुल-निर्माण स्थान "दर्भशयन" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(३-४ अ.) (सेतुतीर्थ स्थित अन्य तीर्थ तथा गालव-आख्यान) सेतु-तीर्थ में अनेक तीर्थ हैं जिनमें २४ तीर्थ (चक्रतीर्थ नामान्तर आदितीर्थ, वेताल-वरद, पापविनाशन, सीता-सरोवर आदि) प्रसिद्ध हैं। पूर्वकाल में गालव नामक ऋषि दक्षिण समुद्र के तट पर हालास्य के निकट फुल्लग्रामस्थ क्षीरसरोवर पर अष्टाक्षर मन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) का जप करते रहे। उसी समय क्षुधापीड़ित एक राक्षस गालव को खा जाने हेतु तत्पर हुआ।

गालव ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् द्वारा प्रेषित चक्र ने राक्षस का वध किया। इसी समय से "धर्मपुष्करिणी" की "चक्रतीर्थ" नाम से प्रसिद्धि हुई। गालव को त्रास देने वाला राक्षस पूर्वकाल में विश्वावसु गन्धर्व का पुत्र दुर्दम था। स्त्रियों के साथ निर्वस्त्र क्रीड़ा करते देखकर वशिष्ठ ने इसे राक्षस होने का शाप दे दिया था। सुदर्शन-चक्र द्वारा शिरच्छेदन के कारण इस राक्षस की मुक्ति हुई।

(५-७ अ.) (चक्रतीर्थ-माहात्म्य तथा देवीपत्तन वृत्तान्त) चक्रतीर्थ माहात्म्यप्रसङ्ग में विधूम तथा अलम्बुषा अप्सरा की कथा प्राप्त है। ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की सभा में अलम्बुषा अप्सरा द्वारा नृत्य किये जाते समय विधून ने कामभाव से उसके ऊरुप्रदेश का अवलोकन किया, क्रुद्ध ब्रह्मा ने विधूम को मनुष्य होने का शाप दिया। इस कथा के साथ ही महिषासुर तथा दुर्गादेवी के साथ युद्ध का वर्णन है। सेतु-निर्माण के समय नवग्रहस्वरूप नवपाषाणों की स्थापना, नल द्वारा सेतु-निर्माण तथा सेतुनाथ हरि का माहात्म्य वर्णित है।

(८-१० अ.) (वेतालवरदतीर्थ तथा गन्धमादन पर्वत-माहात्म्य) गालवऋषि की कन्या कान्तिमती के केश, सुदर्शन नामक विद्याधर कुमार द्वारा पकड़े जाने के कारण ऋषि ने उसे वेताल तथा उसके कनिष्ठ सुकर्ण को मनुष्य होने का शाप दिया। दोनों का यमुना तीरवासी गोविन्द स्वामी के घर विजयदत्त तथा अशोकदत्त के रूप में जन्म होने; दुर्भिक्ष होने पर वाराणसी आने; विजयदत्त की वेतालत्व प्राप्ति तथा उसके भाई द्वारा चक्रतीर्थ में स्नान से मुक्ति की कथा वर्णित है। वेतालत्व से मुक्ति दिलाने के कारण इसका नाम वेतालवरद पड़ा। दक्षिणसमुद्र के समीप गन्धमादन पर्वत पर स्थित पापविनाशनतीर्थ का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

(११-१३ अ.) (सती-सरोवर, मङ्गलतीर्थ तथा एकान्त रामनाथ क्षेत्र) अग्निपरीक्षा देने के अनन्तर सीता ने लोकरक्षार्थ एक तीर्थ बनाया जिसका नाम सीता-सरोवर पड़ा। कपालाभरण नामक राक्षस के वध से लगे ब्रह्महत्या के पाप के विनाश हेतु इन्द्र इस कुण्ड में स्नानकर दोष मुक्त हुए थे। मङ्लतीर्थ के माहात्म्य वर्णन में मनोजव राजा का आख्यान है। चन्द्रवंशी मनोजव धर्मपरायण थे, पर एक समय वे अहंकारग्रस्त हो गये। ब्राह्मणों पर "कर" लगाने के कारण विवेकहीन राजा के ऊपर शत्रु "गोलभ" ने आक्रमण कर परास्त कर दिया। श्रीहीन राजा के क्षुधार्त पुत्र के अन्न मांगने पर अशक्त राजा की पत्नी सुमित्रा ने उसी समय आये हुए पराशरऋषि से अपनी व्यथा-कथा सुनायी तथा दोष मुक्त होने के लिए ऋषि के उपदेश पर सेतु क्षेत्र में स्थित मङ्गलतीर्थ में स्नान करने से राजा दोष मुक्त हुए, यह कथा वर्णित है।

सेतुबन्ध के अनन्तर समुद्रगर्जना न सुनायी पड़े, इस हेतु राम ने जहाँ अपने सहायकों से एकान्त में मन्त्रणा की थी, उस स्थान का नाम एकान्त-रामनाथ पड़ा। यहाँ स्थित "अमृतवापिका" में स्नान कर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त करता है। हिमालय में

तपस्यारत अगस्त्य के अनुज ने शिव के उपदेश पर इस तीर्थ में स्नान कर मुक्ति को प्राप्त किया था।

(१४-१७ अ.) (ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड तथा अगस्त्यतीर्थ-माहात्म्य) गन्धमादन पर्वत पर सेतु के मध्यभाग में ब्रह्मकुण्ड स्थित है। यहाँ ब्रह्मकुण्ड की उत्पत्ति का वृत्तान्त वर्णित है-ब्रह्मा, विष्णु के श्रेष्ठता विषयक विवाद के समय उनके मध्य उपस्थित शिवलिङ्ग के आदि के ज्ञान हेतु ब्रह्मा तथा विष्णु का क्रमशः हंस तथा वराह रूप में ऊर्ध्व तथा अधःगमन, निराश विष्णु के सत्य भाषण तथा ब्रह्मा के असत्य भाषण करने पर शिव द्वारा ब्रह्मा के अपूज्य होने का शाप देने तथा उससे मुक्ति हेतु शिव द्वारा उपदिष्ट, ब्रह्मा द्वारा गन्धमादन पर्वत पर यज्ञ करने तथा एक कुण्ड (ब्रह्मकुण्ड) स्थापित करने की कथा वर्णित है। लोकोपकार हेतु हनुमान् ने हनुमत्कुण्ड की स्थापना की थी। पूर्वकाल में धर्मसख नामक राजा थे, जिनकी सौपत्नियाँ थीं पर पुत्र एक भी नहीं था। पुरोहित के उपदेश पर राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ कर हनुमत्कुण्ड में स्नान किया, जिससे उन्हें सौपुत्र प्राप्त हुए तथा अन्त में वैकुण्ठ को प्राप्त किया। गन्धमादन पर्वत पर अगस्त्यमुनि ने अगस्त्य कुण्ड की स्थापना की थी।

(१८-२० अ.) (रामकुण्डतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ तथा जटातीर्थ) (रामकुण्ड के माहात्म्य प्रतिपादन में सुतीक्ष्ण की कथा वर्णित है। रामकुण्ड पर अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण द्वारा राम के षडक्षर-मंत्र (ओम् रामाय नमः) का जप करने से इन्हें आत्मसाक्षात्कार-कारक अद्वैतविज्ञान का ज्ञान हुआ था। लक्ष्मणतीर्थ में लक्ष्मण द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। महाभारत युद्ध के अनिच्छुक बलभद्र तीर्थयात्रा हेतु नैमिषारण्य गये थे। वहाँ उन्होंने उच्चपदासीन सूत का वध कर डाला जिससे उन्हें ब्रह्महत्या लगी। जिसके निवारणार्थ ऋषियों के कहने पर उन्होंने "बल्वल" राक्षस का वध कर सभी तीर्थों की यात्रा की, फिर भी पापमुक्त न होने पर ऋषियों द्वारा उपदिष्ट बलभद्र, लक्ष्मणतीर्थ में स्नान कर पापमुक्त हुए। रावण की मृत्यु के अनन्तर राम ने जिस जल से अपनी जटा धोयी थी वही जटातीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शुकदेव द्वारा अन्तःकरण-शुद्धि-विषयक जिज्ञासा पर व्यास ने इन्हें इस तीर्थ की महत्ता बतलायी, जिसमें स्नान मात्र से शुकदेव ने अन्तःकरण को शुद्ध किया।

(२१-२३ अ.) (लक्ष्मीतीर्थ, अग्नितीर्थ तथा चक्रतीर्थ-माहात्म्य) लक्ष्मीतीर्थ दारिद्र्यनाशक है। इन्द्रप्रस्थ स्थित युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण से महेश्वर्य प्रापकधर्मविषयक जिज्ञासा करने पर कृष्ण ने लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य बतलाया। युधिष्ठिर ने लक्ष्मीतीर्थ जाकर एक मासपर्यन्त निवास तथा स्नान कर ऐश्वर्य प्राप्त किया एवम् इन्द्रप्रस्थ आकर राजसूय-यज्ञ किया।

रावणवध के अनन्तर सीता की शुद्धिविषयक परीक्षा के समय अग्नि ने सीता के पातिव्रत्य की प्रशंसा की। अग्नि के वचन से ही सीता को राम ने स्वीकार किया। अग्नितीर्थ के माहात्म्य के प्रसङ्ग में पशुमान् वैश्य की कथा वर्णित है। पशुमान् का आठवाँ दुष्प्रवृत्ति वाला पुत्र दुष्पण्य समवयस्क बालकों की हत्या तालाब में डुबोकर कर देता था, जिससे

अप्रसन्न राजा ने उसे राज्य से निष्कासित कर दिया। दुष्पण्य ने उग्रश्रवा के पुत्र को भी डुबोकर मार डाला और ऋषि ने इसे पिशाच होने का शाप दिया। महर्षियों द्वारा पिशाच की मुक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर अगस्त्य ने अपने शिष्य सुतीक्ष्ण को अग्नितीर्थ में स्नान कर प्राप्त पुण्य को पिशाच को दान देने से ही उसकी मुक्ति होना बतलाया। सुतीक्ष्ण ने वैसा कर पिशाच को मुक्त किया। अहिर्बुध्न्य नामक ब्राह्मण की तपस्या में बाधा डालने वाले राक्षस का वध सुदर्शनचक्र ने किया था। जिससे इस तीर्थ का नाम चक्रतीर्थ पड़ा। इसके माहात्म्य में हरिहर ब्राह्मण का वर्णन है। श्यामलापुर के निवासी हरिहर ब्राह्मण के दोनों पैर एक व्याध ने बाण द्वारा काट डाले थे। जो चक्रतीर्थ में स्नान करने से ठीक हो गये।

(२४-२६ अ.) (शिवतीर्थ, शंखतीर्थ एवं गङ्गा-यमुना-गया-तीर्थ माहात्म्य) ब्रह्मा विष्णु के श्रेष्ठत्व विवाद में ब्रह्मा द्वारा शिव के प्रति अनादर प्रदर्शित करने के कारण काल-भैरव द्वारा ब्रह्मा के पंचमशिर के काटने से लगने वाली ब्रह्महत्या के निवारणार्थ शिवतीर्थ में स्नानकर दोषमुक्त होने का वर्णन है। शिवतीर्थ का कपालतीर्थ के रूप में भी उल्लेख मिलता है। शंखतीर्थ (शंखमुनि द्वारा तपस्या-निर्मित) के माहात्म्य प्रतिपादन में वत्सनाभ ब्राह्मण का वृत्तान्त वर्णित है। तपस्यारत वत्सनाभ के तप के विघ्नार्थ उनके शरीर पर दीमकों की आच्छादित मिट्टी को बहाने हेतु इन्द्र ने वर्षा की, जिससे धर्मदेव ने महिषरूप में वत्सनाभ की रक्षा की। समाधि की समाप्ति पर महिषरूप धर्म की पूजा न करने के कारण कृतघ्नतादोष के परिहार हेतु वत्सनाभ ने शंखतीर्थ में स्नानकर अपने दोष का निवारण किया।

जानश्रुति राजा ने गङ्गा-यमुना-गया-तीर्थ में स्नान कर रैक्व से उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। जानश्रुति राजा धर्मज्ञ तथा विद्वान् थे। एक समय हंसों की परस्पर वार्ता में "रैक्व" की श्रेष्ठता सुनकर जानश्रुति धन और स्वर्ण मुद्राएं लेकर रैक्व के पास गये। रैक्व ने धन लेने से मना करते हुए गंगा-यमुना-गया-तीर्थ में स्नान करने के अनन्तर ही उपदेश की बात कही। राजा ने वैसा कर आत्मज्ञान का उपदेश रैक्व से प्राप्त किया।

(२७-२६ अ.) (कोटितीर्थ, साध्यामृत तथा सर्वतीर्थ-माहात्म्य) राम ने रावण वध से लगे ब्रह्महत्या-दोष के परिहार हेतु रामनाथ नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की थी। राम ने धनुष-कोटि से पृथ्वी का भेदन कर पातालगङ्गा के जल से शिवलिङ् को स्नान कराया था, इसी से इस तीर्थ की "कोटितीर्थ" संज्ञा पड़ी। इस तीर्थ के माहात्म्य-वर्णन में कृष्ण का प्रसिद्ध चरित वर्णित है। कंस-वध के कारण मातुलवधजनितदोष के परिहारार्थ कृष्ण के कोटितीर्थ में स्नान का उल्लेख है। साध्यामृततीर्थ के महिमा वर्णन में पुरुरवा उर्वशी का आख्यान है। पुरुरवा-उर्वशी समागम; प्रतिज्ञा-भङ्ग के कारण उर्वशी से वियुक्त शोकाकुल पुरूरवा के उर्वशी से पुनः मिलन पर उर्वशी का पुत्रप्राप्ति का पुरूरवा को आश्वासन तथा

आयु नामक पुत्र प्रदान करने, पुनः वियोग तथा यज्ञ द्वारा पुनः उर्वशी की प्राप्ति, पुरूरवा उर्वशी को नृत्य के समारम्भ में परस्पर देखने के कारण नाट्याचार्य तुम्बरू द्वारा इन्हें वियोग का शाप देने तथा प्रार्थना करने पर शक्र द्वारा साध्याभूततीर्थ में स्नान से पुनः पुरूरवा-उर्वशी समागम की कथा वर्णित है।

सर्वतीर्थ-माहात्म्य प्रतिपादन हेतु सुचरित ब्राह्मण का चरित कहा गया है। जन्मना अन्ध तथा वृद्धावस्था में शिथिल अङ्ग वाले सुचरित ने तीर्थयात्रा की कामना से गन्धमादन पर्वत पर आकर एवं शिवदीक्षा लेकर तपस्या प्रारम्भ की। प्रसन्न शिव ने दर्शन देकर सुचरित को सभी तीर्थों का आवाहन करके सर्वतीर्थ नाम से एक तीर्थ की स्थापना करने का वर दिया। तदनुरूप कार्य कर सुचरित ने जरामुक्त हो तारुण्य को प्राप्त किया।

(३०-३६ अ.) (धनुष्कोटितीर्थ-माहात्म्य) लंका पर अन्य राजाओं के आक्रमण की विभीषण की चिन्ता के निवारण हेतु राम ने अपने धनुष की कोटि से सेतु को तोड़ डाला अतः इस तीर्थ का नाम "धनुष्कोटि" पड़ा। इस तीर्थ के माहात्म्य प्रतिपादन में अश्वत्थामा, नन्दपुत्र, धर्मगुप्त, परावसु आदि का चरित क्रमशः वर्णित है। अश्वत्थामा ने पाण्डव शिविर में सोये हुए वीरों के वध की प्रतिज्ञा की, रात्रि में कृतवर्मा एवं कृपाचार्य के साथ अपने पितृहन्ता धृष्टद्युम्न का वध करके द्रौपदी के पाँच पुत्रों सहित अनेक योद्धाओं को मार कर तथा शिविर सूना कर अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कृपाचार्य विभिन्न दिशाओं को पलायित हो गये। कृष्ण के उपदेश से पाण्डव शिविर से बाहर सोये थे, अतः बच गये। अश्वत्थामा व्यासाश्रम पहुंचे तथा उन्होंने प्रायश्चित पूछा, व्यास ने धनुष्कोटि में स्नान से इस दोष से मुक्ति का उपाय बतलाया। स्नान तथा शिव की उपासना कर अश्वत्थामा पाप रहित हुए।

सोमवंशीय नन्दराज के तपस्या हेतु वन चले जाने पर उनके पुत्र धर्मगुप्त राज्याभिषिक्त हुए। एक समय मृगया हेतु वन जाने पर रात्रि में व्याघ्रादि के भय से राजा पेड़ पर चढ़ गये तभी उनके समीप एक ऋक्ष भी आ गया। सम्भाषण द्वारा परस्पर विश्वास प्राप्त कर क्रमशः एक दूसरे की रक्षा का निश्चय किया। रात्रि में एक सिंह ने ऋक्ष से राजा को नीचे गिराने को कहा पर ऋक्ष ने वैसा नहीं किया। परन्तु ऋक्ष ने सोने पर सिंह द्वारा राजा से ऋक्ष को गिराने के लिए कहे जाने पर राजा ने ऋक्ष को पेड़ से गिराना चाहा। पर अपने नखों से डाल को पकड़ कर ऋक्ष पुनः पेड़ पर चढ़ गया तथा वचनभङ्ग के कारण राजा को उन्मत्त होने का शाप दिया। राजा के इस दोष के निवारण हेतु नर्मदातीरनिवासी नन्द के समीप लाया गया। अपने पुत्र को उन्मत्त देखकर नन्द ने जैमिनि से पुत्र को दोष मुक्त करने की प्रार्थना की। जैमिनि ने धर्मगुप्त को धनुष्कोटि में स्नान करने का उपदेश दिया, जिससे राजा शापमुक्त हुए।

ब्राह्मण रैभ्य के अर्वावसु तथा परावसु दो योग्य पुत्र थे जिन्हें राजा बृहद्द्युम्न ने यज्ञ-सम्पन्न कराने को कहा। यज्ञकाल में ही एक दिन सायंकाल परावसु ने अपने मृगचर्मधारी पिता को भ्रमवश मार डाला तथा आकर अनुज अर्वावसु से घटना को कहा।

दुःखी अर्वावसु ने परावसु के कहने पर बारह वर्षों तक ब्रह्महत्यानाशन व्रत किया। तदुपरान्त आने पर परावसु द्वारा निन्दित अर्वावसु ने तपस्या कर अपने पिता को जीवन प्रदान किया तथा दोष के परिहार हेतु स्वयं परावसु के साथ धनुष्कोटितीर्थ में स्नान किया, जिससे परावसु के पातक का नाश हुआ।

धनुष्कोटि माहात्म्य में सियार एवं वानर की कथा भी है। एक साथ रहने वाले सियार एवं वानर को पूर्वजन्म का स्मरण था। सियार पूर्वजन्म में वेदशर्मा था जिसने वचन देकर ब्राह्मण को दान नहीं दिया जबकि वानर जो विश्वनाथ पुत्र वेदनाथ था-ब्राह्मण का साग चुराने के कारण इस योनि को प्राप्त हुआ था। मुनि सिन्धुद्वीप के उपदेश पर धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान कर दोनों देवलोक को प्राप्त किये।

पाण्ड्यदेशीय इध्मबाहु का पुत्र दुर्विनीत पिता के मरने पर उनका और्ध्वदेहिक कृत्य (अन्त्येष्टि श्राद्ध) करके माता के साथ तीर्थयात्रा पर गया। कामपीडित मूढबुद्धि दुर्विनीत ने माता के साथ दुष्कर्म किया। ज्ञान होने पर पश्चातापपूर्वक निजदेहशुद्ध्यर्थ व्यास द्वारा उपदिष्ट धनुष्कोटि में स्नान तथा निवास कर मुक्त हुआ। गोदावरी के तट पर एक चरित्रहीन "दुराचार" नामक ब्राह्मण था। संस्कारहीन दुराचार को वेताल ने पकड़ लिया था। वेताल ने प्रेरित कर दुराचार को धनुष्कोटि में स्नान कराया जिससे उसकी वेताल योनि से मुक्ति हुई। दत्तात्रेय से अपनी स्थिति पूछने पर दत्तात्रेय ने वेताल के पूर्वजन्म में संस्कारहीन ब्राह्मण होने तथा महालय श्राद्ध नहीं करने के कारण वेताल योनि प्राप्त करने की कथा बतलायी। (भाद्रपद कृ.प. में महालय श्राद्ध का काल है।)[1]

(३७-३८ अ.) (क्षीरकुण्ड-माहात्म्य) पुण्यक्षेत्र फुल्लग्राम के समीप क्षीरकुण्ड है। फुल्लग्राम में रहने वाले मुद्गलमुनि के यज्ञ से सन्तुष्ट विष्णु ने इन्हें दर्शन दिया। मुद्गल ने विष्णु से वर रूप में निश्चलभक्ति तथा एक कुण्ड (विश्वकर्मा-निर्मित) माँगा। कुण्ड को भगवान द्वारा प्रदत्त सुरभि के दूध से भरा गया जिससे इसका नाम क्षीरकुण्ड पड़ा। इस कुण्ड में स्नान से महापातक भी समाप्त हो जाते हैं। कद्रु तथा विनता सगी बहनें थी, पर सद्रूपाभाव के कारण कद्रु ने विनता के साथ छल किया। कश्यम द्वारा अभिशप्त कद्रु के शाप दोष की शान्ति हेतु कद्रु के क्षीरकुण्ड स्नान करने की कथा है।

(४१-४२ अ.) (कपितीर्थ तथा गायत्रीसरस्वती तीर्थ) वानरों द्वारा निर्मित होने के कारण "कपितीर्थ" संज्ञा पड़ी। कुशिकवंशीय विश्वामित्र भ्रमण करते हुए वशिष्ठाश्रम पर आये। कामधेनु के प्रभाव से वशिष्ठ द्वारा आतिथ्य सत्कार किये जाने से आश्चर्यान्वित विश्वामित्र ने कामधेनु को मांगा। शस्त्रबल से भी कामधेनु प्राप्त करने में असमर्थ विश्वामित्र ने तपस्या प्रारम्भ की। तपस्या से भीत इन्द्र ने विघ्न रूप में रम्भा को प्रेषित किया। तथ्य

१. उत्तर भारत में इसे ही आश्विन कृष्ण पक्ष (पितृपक्ष) कहा जाता है।

ज्ञात होने पर विश्वामित्र ने रम्भा को शिला होने का शाप दिया। तपस्या करते हुए विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर पुनः तपस्या प्रारम्भ की। तभी एक राक्षसी (जो पूर्वजन्म में घृताची नामक अप्सरा थी) ने विघ्न डाला। शिलाभूत रम्भा को विश्वामित्र ने वायव्यास्त्र रूप में राक्षसी के ऊपर छोड़ा। शिला राक्षसी का अनुगमन करती हुयी कपितीर्थ में गिरी, जिससे दोनों की मुक्ति हुई।

ब्रह्मा द्वारा पुत्री के प्रति कामभाव के कारण शिव ने ब्रह्मा का वध कर डाला। गायत्री, सरस्वती की प्रार्थना पर शिव ने ब्रह्मा को जीवित किया। शिव की आज्ञा से गायत्री, सरस्वती ने दो कुण्डों की स्थापना की। शमीक मुनि पुत्र श्रृङ्गी द्वारा प्रदत्त शाप "परीक्षित को भविष्य में तक्षक काटेगा" के निवारण हेतु जा रहे, विषविद्या के ज्ञाता कश्यप को मार्ग में ही धन देकर तक्षक ने वापस कर दिया, जिससे कश्यप की लोक निन्दा हुई। इसके शमनार्थ कश्यप गायत्री, सरस्वती कुण्ड में स्नान कर पापमुक्त हुए। अन्त में ऋणमोचन तीर्थ पञ्चपाण्डवतीर्थ, देवतीर्थ, सुग्रीवतीर्थ, नलतीर्थ तथा गवाक्षतीर्थादि का वर्णन है।

(४३-४७ अ.) (रामनाथलिङ्गमाहात्म्य) रावण-वध के कारण ब्रह्महत्या दोष के निवारणार्थ राम द्वारा रामेश्वरलिङ्ग की स्थापना की इच्छा से मुनियों द्वारा शुभ-मुहूर्त निश्चित कर दिये जाने पर हनुमान् को कैलास से शिवलिङ्ग ले आने के लिए भेजा गया। विलम्ब होता जानकर मुनियों ने सीता के हाथ बालुकालिङ्ग की सुमुहूर्त में स्थापना करा दी। हनुमान् जब कैलास से शिवलिङ्ग लेकर आये तब स्थापित लिङ्ग देखकर क्रुद्ध हुए, तथा स्थापित लिङ्ग को उखाड़ने का असफल प्रयास करते हुए मूर्च्छित हो गये। सीता और राम द्वारा उद्योग करने पर हनुमान की मूर्च्छा समाप्त हुई। अपने कृत्य का विचार करते हुए दुःखी हनुमान् को राम ने हनुमत्कुण्ड स्थापना का आदेश दिया। रामनाथ के समीप हनुमान ने अपने द्वारा लाये गये शिवलिङ्ग की स्थापना की। रावण के ब्राह्मण होने के कारण ब्रह्महत्या दोष के परिहार हेतु राम ने सेतुबन्ध में रामेश्वरलिङ्ग की एवम् इसके दक्षिण में गिरिजा की तथा परिवार सहित सभी देवों की स्थापना की। रामेश्वरलिङ्ग की पूजा सेवा हेतु राम ने ब्राह्मणों को अग्रहारग्राम प्रदान किया।

(४८-४६ अ.) (शंकरराजवृत्तान्त) पाण्ड्यदेशीय राजा शंकर ने एक बार आखेट करते हुए व्याघ्रचर्म धारण किये शाकल्यमुनि तथा उनकी पत्नी का (व्याघ्र-शंका में) वध कर डाला। माता-पिता की मृत्यु पर बालक जाङ्गल क्रन्दन करने लगा। समीप आकर तथा तथ्य जानकर ब्रह्महत्या एवं स्त्रीहत्या दोष शमन हेतु मुनियों की आज्ञा से रामनाथ का दर्शन कर शंकर ने शिव सायुज्य प्राप्त किया। अन्त में राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् आदि वानरों, मुनियों द्वारा रामेश्वर भगवान् की स्तुति करने तथा वर प्राप्त करने का उल्लेख है।

(५०-५२ अ.) (सेतुमाधववैभव, पुण्यनिधिवृत्तान्त) मथुरा निवासी पुण्यनिधि राजा अपने पुत्र को राज्याभिषेक कर रामसेतु तीर्थ में निवास करने लगे। एक दिन उन्होंने एक

अष्टवर्षीय कन्या (लक्ष्मीरूपा) को देखकर उसका परिचय पूछा-कन्या ने स्वयं को अनाथ बताया तथा किसी भी अन्य से अपनी रक्षा का वचन राजा से लिया। एक दिन एक ब्राह्मण (विष्णु रूपी) ने कन्या का हाथ पकड़ लिया। जिस पर क्रुद्ध राजा ने उस ब्राह्मण रूपी विष्णु को बेड़ी डालकर बांध दिया। बाद में विष्णु ने राजा को दर्शन दिया। बेड़ीबद्ध विष्णु ने वहाँ निवास करने का वचन राजा को दिया। यहाँ भगवान् की प्रसिद्धि सेतुमाधव रूप में हुई। पुण्यनिधि को देहान्त के बाद मुक्ति मिली। यहाँ सेतु यात्रा की विधि (समुद्र को प्रणाम करने, अर्घ्यादि के मन्त्र तथा समुद्र में स्नान के मन्त्र आदि) तथा सेतुतीर्थ का माहात्म्य एवं सेतुमाहात्म्य पाठश्रवणदानादि का माहात्म्य एवं ग्रन्थ का उपसंहार लिखित है।

स्कन्दपुराण का तृतीय ब्रह्मखण्डान्तर्गत धर्मारण्यखण्ड

(१-४ अ.) (धर्मारण्य-माहात्म्य, यमवर्द्धिनी-संवाद) नैमिषारण्य में सूत जी से शौनकादि ऋषियों द्वारा धर्मवर्द्धक कथा सुनने की जिज्ञासा पर सूत ने धर्मारण्य-माहात्म्य युधिष्ठिर तथा व्यास संवाद रूप में सुनाया। व्यास ने युधिष्ठिर को धर्मारण्य का माहात्म्य इस प्रकार कहा-एक बार यम ने उग्र तपस्या की, उनकी तपस्या से भीत देवता ब्रह्मा के साथ शंकर के पास गये पर शंकर ने उन्हें यम से नहीं डरने का आश्वासन देकर वापस किया। परन्तु इन्द्र को अपने पदं की चिन्ता बनी रही। इन्द्र ने यम की तपस्या में विघ्न डालने हेतु अप्सराओं को भेजने का विचार कर वर्द्धिनी नामक अप्सरा को भेजा। यम के समीप आकर वर्द्धिनी ने नृत्य प्रारम्भ किया। जिससे यम का मन क्षुब्ध हो उठा। वर्द्धिनी ने अपने आने का कारण यम को बतलाया। उसके सत्यभाषण से प्रसन्न यम द्वारा उसे वर मांगने को कहने पर वर्द्धिनी ने इन्द्रलोक में स्थिरता का तथा इसी स्थान पर एक तीर्थ की स्थापना का वर मांगा। यम के तथास्तु कहने पर वर्द्धिनी स्वर्गलोक को चली गयी। पुनः तपस्या करने पर शिव ने यम को दर्शन दिया जिस पर यम ने इस क्षेत्र में अपने नाम (धर्म क्षेत्र) से प्रसिद्ध होकर शिव के निवास करने का वर मांगा। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम धर्मारण्य क्षेत्र पड़ा।

(५-७ अ.) (सदाचार तथा गृहस्थाश्रमधर्म) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव द्वारा उत्पन्न अट्ठारह हजार सदाचारी धर्मवेत्ता ब्राह्मण धर्मारण्य में रहते हैं। रागद्वेषविरहित श्रेष्ठबुद्धि वाले महापुरुष जिसका पालन करते हैं उसे ही सदाचार कहते हैं। यहाँ यम (सत्य, क्षमा, सरलता ध्यानादि), नियम (शौच, स्नानादि), देहशत्रु (काम, क्रोध, मद आदि) ... सन्ध्या, तर्पण, प्राणायाम, अग्निहोत्र, वेदाभ्यास आदि विषय वर्णित हैं। गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता, गृहस्थधर्म, अष्टविधविवाह (ब्राह्म, दैव, आर्ष आदि) पञ्चमहायज्ञ, शिष्टाचार, पतिव्रताधर्म (पति के भोजनोपरान्त भोजन, पति के अनन्तर शयन तथा जागरणपूर्व आदि) दुराचारिणी-दुर्विपाक (परपुरुष दर्शन से कुरूपा, पति को छोड़कर अन्यत्र घूमने वाली-उलूकी

आदि), विधवा-धर्म (भूमि-शयन, सुगन्धि का प्रयोग वर्जन आदि), दान (दीपदान, तिलधेनु आदि) तथा श्राद्धादि की विवेचना है।

(८-१० अ.) (शिव-स्कन्द संवाद, वैश्योत्पत्ति) स्कन्द के मुख से इन्द्रादि देवों का आगमन सुनते ही शिव द्वारा बिना वाहन पर आरूढ़ हुए शीघ्रतापूर्वक उनके सत्कार हेतु जाने के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाने पर शिव ने सृष्टि की उत्पत्ति की कथा, तथा यम निर्मित धर्मारण्य माहात्म्य भी स्कन्द को सुनाया। यहां ऋषियों, ब्राह्मणों की शाखा, प्रशाखा, गोत्र प्रवरादि का वर्णन है। मुख्य चौबीस गोत्रों (भारद्वाज, वत्स, कौशिक आदि), कुलदेवियों (श्रीमाता, तारणीदेवी, गोत्रपा आदि) के नाम भी लिखित हैं। ब्राह्मणों की सेवा हेतु कामधेनु के दुग्ध से शिखा सूत्रधारी छत्तीस हजार वैश्यों की उत्पत्ति तथा वैश्यों द्वारा विवाह हेतु विश्वावसु की साठ हजार कन्याओं के वरण की कथा वर्णित है।

(११-१२ अ.) (लोलजिह्वाख्यान, गणेशोत्पत्ति) त्रेता के प्रारम्भ में लोलजिह्वाक्ष राक्षस ने द्वेषवश धर्मारण्य में आग लगा दी जिससे डरे हुए ब्राह्मण धर्मारण्य छोड़कर भाग गये। श्रीमाता आदि देवियों ने उस राक्षस की भर्त्सना करते हुए उस पर प्रहार किया। इन्द्र ने युद्धार्थ नलकूबर को भेजा, उस समय श्रीमाता आदि देवियों से युद्ध चल रहा था। नलकूबर ने इन्द्र के समीप जाकर युद्ध का वर्णन किया, जिसको सुनकर विष्णु ने सुदर्शन-चक्र से राक्षस का वध कर डाला तथा ब्राह्मणों को पुनः धर्मारण्य में बसाया। देवों ने धर्मारण्य में गणेश को स्थापित किया था। यहाँ गणेशोत्पत्ति की कथा वर्णित है। एक समय पार्वती ने अपने अङ्गों में उबटन लगाया, जिसकी मैल से पार्वती ने एक प्रतिमा बनाकर उसमें प्राण डाल दिया। स्नानकाल में ही आगत शिव को प्रवेश न देने के कारण क्रुद्ध शिव ने बालक का मस्तक काट डाला। दुःखी पार्वती की प्रसन्नता हेतु शिव ने गजराज का मस्तक काट कर बालक के सिर पर आरोपित कर दिया तथा बालक की स्थापना देवों ने की।

(१३-१५ अ.) (संज्ञा की तपस्या, अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति, हयग्रीव वृत्तान्त शङ्कर के पश्चिम भाग में सूर्य भगवान् स्थापित हैं यहीं देवों के वैद्य अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए थे। सूर्य की पत्नी संज्ञा (विश्वकर्मा की पुत्री) की दो सन्तानें यम तथा यमुना हुई। सूर्य के तेज को सहन न करने के कारण संज्ञा अपनी छाया का आवाहन सूर्य की सेवा हेतु कर स्वयं पिता के घर चली गयी। सूर्य ने छाया से अपनी पत्नी संज्ञा की भाँति व्यवहार करते हुए दो पुत्र तथा एक कन्या को उत्पन्न किया। विश्वकर्मा द्वारा लोकभय से पुनः संज्ञा को सूर्य के समीप भेजे जाने पर संज्ञा, घोड़ी रूप में कुरूक्षेत्र में तपस्या करने लगी। कालान्तर में सूर्य भी तथ्य-ज्ञान होने पर संज्ञा के पास अश्वरूप में तपस्या करने लगे, दोनों के समागम से दो अश्वी देवों की उत्पत्ति हुई।

एक बार एकान्तस्थल में विष्णु धनुष धारण कर तपस्या कर रहे थे, उनके प्रबोधन के लिए बृहस्पति द्वारा उपदिष्ट उपाय (बभूया, कीट द्वारा) से प्रत्यंचा काटने के कारण विष्णु का मस्तक कट कर आकाश में लुप्त हो गया। देवों की प्रार्थना पर अश्व का

मस्तक काट कर विष्णु के धड़ के ऊपर संयोजित कर दिया गया। ब्रह्मा द्वारा विष्णु के शीर्षपतन का शाप देने, जिस पंचम मुख से ब्रह्मा ने शाप दिया था, उसको शिव द्वारा काटने तथा ब्रह्मा द्वारा मोक्षेश्वर की स्थापना का वर्णन है।

(१६-१८ अ.) (देवीमाहात्म्य, कर्णाटकदैत्य-वध) ब्रह्मारण्य के निवासियों को राक्षसादि के भय से मुक्त करने हेतु अनेक स्थानों में अनेक देवियों (स्थानमातृकादि) की स्थापना, पूजा विधि एवं दक्षिणदिशास्थित शान्तादेवी तथा मातादेवी का माहात्म्य प्रतिपादित है।

सद्योविवाहितद्विज दम्पती का मातंगीदेवी के समीप कर्णाटकदैत्य के वधार्थ आने; मातंगी-कर्णाटक-युद्ध होने; युद्ध में कर्णाटक द्वारा माया से ठग कर श्रीमातादेवी के समीप विवाहार्थ आने; श्रीमातादेवी द्वारा श्यामला देवी के समीप भेजने, श्यामलादेवी द्वारा कर्णाटक दैत्य से युद्ध करने तथा उसके वध की कथा वर्णित है।

(१९-२२ अ.) (इन्द्रेश्वर तथा शिवतीर्थमाहात्म्य) वृत्रहत्या से संत्रस्त इन्द्र ने हत्या दोष निवारण हेतु तपस्या की। अपने नाम से धर्मारण्य क्षेत्र में स्थापित होने का शिव ने इन्द्र को वर दिया। अतः इन्द्र ने इन्द्रेश्वरतीर्थ की तथा उनके समीप ही जयन्त ने जयन्तेश्वर की स्थापना की। यहाँ शंकर के पूर्व जन्म की कथा, पार्वती द्वारा की गयी तपस्या के स्थल पर स्थापित "धरा क्षेत्र" की प्रसिद्धि तथा माहात्म्य वर्णित है। धर्मारण्य स्थित देवियों (भट्टारिकी छत्रा आदि) की गणना; यहाँ के निवासी ब्राह्मणों के गोत्र, प्रवर तथा प्राच्यादि दिशाओं में स्थापित देवों एवम् आशापुरी आदि योगिनियों का उल्लेख है।

(२३-२९ अ.) (लोहासुर आख्यान; सरस्वती, द्वारका तथा गोवत्सतीर्थ) ब्राह्मण वेशधारी लोहासुर धर्मारण्य के ब्राह्मणों, शूद्रों एवं वैश्यों को प्रताड़ित करता तथा पवित्र भूमि को दूषित कर देता था। उससे भीत निवासी क्षेत्र छोड़कर पलायित हो गये तथा लोहासुर भी पुनः अपने स्थान को वापस चला गया। यहाँ धर्मारण्यतीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है। धर्मारण्य के अन्तर्गत द्वारावतीतीर्थ में मार्कण्डेय ने सरस्वतीनदी को उतारा था। सरस्वती में स्नानदानश्राद्धादि का माहात्म्य वर्णित है। यहाँ स्थित द्वारका तीर्थ में भगवान् सदैव निवास करते हैं। द्वारका के समीप ही गोवत्सतीर्थ है यहाँ शिव का स्वयम्भूलिङ्ग विद्यमान है। गोवत्सतीर्थ से नैर्ऋत कोण में "लोहयष्टि" दीख पड़ती है यहाँ भी एक स्वयंभू लिङ्ग विद्यमान है।

शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्यारत लोहासुर से देवों का युद्ध हुआ। युद्ध में उत्तान गिरे हुए असुर के शिर भाग में शिव, कण्ठ में ब्रह्मा, चरणों में विष्णु की स्थिति का तथा लोहासुर का उस क्षेत्र में उत्तान पड़े रहने का वर्णन है।

(३०-३५ अ.) (रामचन्द्रचरित तथा धर्मारण्य-यात्रा) राम के बाल्यकाल, सीता-परिणय, वनवास, रावण-वध, सीता-प्राप्ति, अयोध्या-पुनरागमन तथा राज्याभिषेक पर्यन्त, रामचरित का वर्णन है।

रावण के वध से उत्पन्न ब्रह्महत्या, दोषनिवारणार्थ वशिष्ठ से तीर्थविषयक जिज्ञासा करने पर वशिष्ठ ने गंगानर्मदादि तीर्थों के वर्णन के अनन्तर राम से धर्मारण्यमाहात्म्य का वर्णन किया। धर्मारण्य पहुंच कर राम द्वारा रामेश्वर तथा कामेश्वर की स्थापना करने, अर्द्धरात्रि में किसी नारी (श्रीमातारूपिणी) के रोदन को सुनकर दूत भेजने नारी के लोहासुर द्वारा निर्जन किये गये धर्मारण्य में पुनः ब्राह्मणों को बसाने के अनुरोध पर पूर्व-स्थिति लाने की राम द्वारा प्रतिज्ञा करने; नगर का जीर्णोद्धार कर ब्राह्मणों को पुनः बसाने; क्षेत्र के निवासियों की रक्षा हेतु हनुमान् को राम द्वारा आज्ञा देने; पुनः अयोध्या आकर राज्य करने का उल्लेख है। अयोध्या में वशिष्ठ के मुख से 'धर्मारण्यक्षेत्रस्य तीर्थों' (प्रयाग आदि) के माहात्म्य को सुनकर इस क्षेत्र की पुनः राम द्वारा यात्रा करने तथा अयोध्या आने की कथा प्रतिपादित है।

(३६-४० अ.) (पूर्वकलियुग वृत्तान्त, धर्मारण्य पुराण श्रवण माहात्म्य) कलिधर्म (लोगों के असत्यवादी, साधुनिन्दाततपर, दस्युकर्मरत, पितृभक्ति से दूर रहने आदि) का वर्णन; कान्यकुब्ज के आम नामक राजा के वैष्णवधर्म छोड़कर बौद्धधर्म ग्रहण करने, आम की पत्नी के गर्भ से रत्नमङ्गा की उत्पत्ति तथा राजा के जामाता कम्भीपाल (अपरनाम कुमारपाल) द्वारा जैनधर्म के पालन तथा प्रसार; रामदूत हनुमान् द्वारा धर्मारण्यक्षेत्र के निवासियों को पुनः रामेश्वरक्षेत्र में बसाने का वर्णन है। अन्त में धर्मारण्य-माहात्म्य-फलश्रुति कही गई है।[1]

स्कन्दपुराणान्तर्गत तृतीय ब्रह्मोत्तरखण्ड

(१-२ अ.) (पञ्चाक्षर-माहात्म्य (दाशार्हराजवृत्तान्त), गोकर्ण-क्षेत्र माहात्म्य (मित्रसहचरित) ऋषियों द्वारा शिव-माहात्म्य सुनने की जिज्ञासा पर सूत जी ने पञ्चाक्षर मंत्र (ओम् नमः शिवाय) का उपदेश किया। "शिव" दो अक्षरों वाला यह मन्त्र ही समस्त पातकों का नाशक है। यदि इसमें नमः शब्द भी जोड़ दिया जाय तो मोक्ष प्रदाता हो जाता है। इस मन्त्र के माहात्म्य-प्रतिपादन में मथुरा के दाशार्हराजा का चरित वर्णित है। बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, नीतिवान् दाशार्ह का विवाह काशिराजपुत्री कलावती से हुआ। व्रत की हुई कलावती के मना करने पर भी स्पर्शमात्र से ही राजा के शरीर में दाह होने लगा। सन्तप्त राजा द्वारा रानी से कारण पूछे जाने पर रानी ने पञ्चाक्षरमन्त्रका प्रभाव बतलाया तथा इसके उपदेश हेतु राजा को गर्गाचार्य के समीप प्रेषित किया। गर्गाचार्य द्वारा मन्त्र के उपदेश से राजा स्वस्थ हुए।

---

१. मोर प्रकाशन, कलकत्ता से प्रकाशित स्कन्दपुराण में धर्मारण्यमाहात्म्य के उपरान्त चातुर्मास्य-माहात्म्य (३२ अध्यायात्मक) भी मुद्रित है। परन्तु यह माहात्म्य वेंकटेश्वर संस्करण तथा बङ्गवासी संस्करण में मुद्रित नहीं है।

शिवरात्रि (फल्गुन कृष्णचतुर्दशी) को उपवास, शिवलिङ्गपूजन तथा बिल्वपत्रसमर्पण का माहात्म्य लिखित है। इक्ष्वाकुवंशीय मित्रसह धर्मात्मा परन्तु मृगया-व्यसनी राजा थे। एक बार इन्होंने एक राक्षस को मार डाला था। जिसे देखकर उसके अनुज ने राजा को छल से परास्त करने के विचार से वेश बदल कर भोजनाध्यक्ष के रूप में राजा के घर सेवा करते हुए वशिष्ठ को मनुष्य का मांस परोस दिया। तथ्य से अनभिज्ञ वशिष्ठ ने राजा को राक्षस होने का शाप दे दिया। राजा भी अञ्जलि में जल लेकर वशिष्ठ को शाप देने हेतु उद्यत हुए पर पत्नी मदयन्ती के मना करने पर वह जल अपने पैरों पर डाल लिया, जिससे उनके पाँव मलिन हो गये। इस कारण राजा का नाम "कल्माषपाद" पड़ा। राक्षस-योनि में पड़े राजा ने एक ब्राह्मण को पकड़ कर मार डाला, जिससे उसकी पत्नी ने राजा को "अपनी पत्नी के समागम करते ही मृत्यु-प्राप्ति का" शाप दिया। शापान्त के बाद भी राजा को ब्रह्महत्या ने नहीं छोड़ा, गौतममुनि के उपदेश पर शिवरात्रि का उपवास कर राजा ब्रह्महत्या दोष से मुक्त हुए।

(३-४ अ.) (गोकर्णक्षेत्र-माहात्म्य (चाण्डाली-वृत्तान्त) गोकर्णक्षेत्र के माहात्म्य प्रतिपादन में एक चाण्डाली का वृत्तान्त वर्णित है। अन्धी कृशकाय, रुग्णा तथा कुष्ठी एक राक्षसी की मृत्यु पर उसे शिवगणों द्वारा शिवलोक ले जाते देखकर, गौतमऋषि की जिज्ञासा पर शिवगणों ने असावधानीवश राक्षसी द्वारा शिवनामोच्चारण, गोकर्णक्षेत्र में शिवरात्रि उपवास तथा शिवलिङ्ग पर बिल्वपत्र चढ़ाने के कारण शिवलोक-प्राप्ति को बताया। यहाँ गोकर्णक्षेत्र का विस्तृतमाहात्म्य वर्णित है। विमर्दन राजा की मृत्यु शिवमन्दिर की परिक्रमा करते समय बाण लगने से हुई थी, फिर भी शिवमन्दिर के कारण राजा को शिवसन्निधि प्राप्ति का उल्लेख है।

(५-७ अ.) (चन्द्रसेन तथा गोपकुमारचरित एवं प्रदोष-माहात्म्य) उज्जयिनी के राजा चन्द्रसेन महाकाल के भक्त थे। शिवपार्षदमणिभद्र ने मैत्री के कारण राजा को चिन्तामणि प्रदान की। इस मणि को प्राप्त करने की इच्छा से पड़ोसी राजाओं ने चन्द्रसेन पर आक्रमण कर दिया। राजा ने महाकाल की पूजा प्रारम्भ की, उसी समय बच्चे के साथ आयी हुई एक ग्वालिन ने शिवपूजन को देखकर अपने घर भी वैसी ही पूजा (कृत्रिम साधनों से) की। पुत्र के पूजा में सम्मिलित न होने से कुद्ध ग्वालिन ने शिवलिङ्ग फेंक दिया। उसी समय बालक द्वारा शिव-शिव उच्चारण से गोप-शिविर सम्पत्ति सम्पन्न हो गये। यह अद्भुत समाचार सुनकर युद्धार्थ आये हुए सभी राजा ग्वालिन के शरणागत हुए। राजाओं के समक्ष प्रकट हनुमान ने गोप-वंश की आठवीं पीढ़ी के नन्दवंश में कृष्ण-प्राकाट्य की भविष्यवाणी की तथा गोपिका बालक को "श्रीकर" नाम से विख्यात होने का वर दिया।

प्रदोषमाहात्म्य वर्णन प्रसङ्ग में सत्यरथ का वृत्तान्त लिखित है। धीर, सुशील, सत्यप्रतिज्ञ राजा सत्यरथ विदर्भ पर राज्य करते थे। एक समय शाल्वदेशीय राजाओं के

आक्रमण में राजा मारे गये, बाद में उनकी गर्भवती पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, पुत्र को छोड़कर क्षुधार्थ जलाशय में गयी रानी को ग्राह ने ग्रास बना लिया। बालक का पालन एक ब्राह्मणी (जो एक वर्षीय बालक की माँ थी) ने किया। शाण्डिल्य मुनि ने ब्राह्मणी को बालक के राजपुत्र होने तथा प्रदोषकाल में पूजा की उपेक्षा करने के कारण राजा की पराजय का कारण बतलाया। प्रदोषव्रत के पुण्य से ब्राह्मणपुत्र को स्वर्गप्राप्ति की एवं राजपुत्र धर्मगुप्त द्वारा गन्धर्व द्रविक की कन्या अंशुमती से विवाह करने और राज्य की प्राप्ति का वर्णन है।

(८-९ अ. (सोमवार व्रत (सीमन्तिनी आख्यान) आर्यावर्त के राजा चित्रवर्मा को सीमन्तिनी नाम की एक पुत्री हुई जिसका विवाह निषधनरेश नल के पौत्र चन्द्राङ्गद से हुआ। चौदहवें वर्ष में चन्द्राङ्गद यमुना में डूबने से नागलोक को चला गया। इधर सीमन्तिनी वैधव्य जीवन व्यतीत करने लगी। सीमान्तिनी द्वारा सोमव्रत के प्रभाव से तथा नागराज सक्षम की कृपा से चन्द्राङ्गद पुनः वापस आया एवं सीमन्तिनी के साथ अनेक वर्षों तक राज्य करता रहा।

(१०-१४ अ.) (दशार्णराजपत्नी सुमति आख्यान) दशार्णराज वज्रबाहु ने अपनी रुग्ण-पत्नी सुमति तथा पुत्र को त्याग दिया। परित्यक्त सुमति पद्माकर वैश्य के घर दासी रूप में कार्य करने लगी। वहाँ उसका पुत्र मर गया जिसे शिवयोगी ने जीवित किया तथा रानी को भी स्वस्थ किया। राजपुत्र "भद्रायु" तथा वैश्यपुत्र "सुनय" की कथा भी यहाँ है। रानी ने अपने पुत्र को योगीश्वर ऋषभ को समर्पित किया। शिवयोगी द्वारा शिवकवच का उपदेश देने, दिव्य शंख पाकर भद्रायु का शत्रुओं को जीतने तथा निषधराजपुत्री कीर्तिमालिनी से विवाह तथा भद्रायु की शिवभक्ति परीक्षा का वर्णन है।

(१५-१७ अ.) (भस्ममाहात्म्य (वामदेवाख्यान)) एक समय वामदेव नामक तपस्वी क्रौञ्चारण्य पहुंचे। वहाँ उन्हें एक राक्षस ने पकड़ लिया पर वामदेव के स्पर्श से उसके पाप नष्ट हो गये तथा उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। राक्षस पूर्व में पवनराष्ट्र का रक्षक दुराचारी "दुर्जय" था, दुराचरण के कारण अनेक योनियों (पिशाच, व्याघ्र, अजगर आदि) में विचरते हुए पच्चीसवें जन्म में ब्रह्मराक्षस हुआ था, पर वामदेव के अङ्ग में लगे भस्म के प्रभाव से उसकी मुक्ति सम्भव हुई थी। भस्म की महिमा में पाञ्चालभृत्य चण्डक शबर का आख्यान है। शबर ने जङ्गल में एक शिवलिङ्ग देखकर राजपुत्र सिंहकेतु द्वारा पूजन-विधि पूछकर, चिता भस्म के अभाव में शबरस्त्री का अपना शरीर जलाकर चिता भस्म प्राप्त कर शबर द्वारा पूजन करने से प्राप्त श्रेष्ठगृह तथा शबर स्त्री की पुनः जीवन प्राप्ति की कथा लिखित है।

(१८-२२ अ.) उमामहेश्वरव्रत (शारदाख्यान) रुद्राक्ष तथा पुराण श्रवणमाहात्म्य आनर्तदेश में वेदरथ नामक ब्राह्मण की एक पुत्री शारदा थी, जिसका विवाह "पद्मनाभ" नामक प्रौढ़ ब्राह्मण से हुआ था। पद्मनाभ की सर्प काटने से मृत्यु हो गयी। शारदा पितृगृह में विधवा जीवन बिताने लगी। एक दिन नैध्रुव नामक अन्धमुनि ने शारदा को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया पर शारदा के वैधव्य ज्ञान पर नैधृव ने शारदा को उमामहेश्वरव्रत की विधि बतलायी, जिसको करके शिवपार्वती को प्रसन्न कर शारदा ने स्वप्नावस्था में पति समागम द्वारा पुत्र प्राप्त किया। यहाँ उमामहेश्वर व्रत की विधि तथा रुद्राक्ष-माहात्म्य भी वर्णित है।

पुराण श्रवणमाहात्म्य वर्णन में विदुर नामक जारकर्मप्रवृत्त अधम ब्राह्मण एवं उसकी पत्नी बिन्दुला की कथा प्राप्त है। स्वयं वेश्यारत विदुर ने बिन्दुला को भी इसी मार्ग में संलग्न कर दिया। कालान्तर में विदुर के मरने पर जारकर्म से उत्पन्न पुत्र को लेकर बिन्दुला गोकर्णक्षेत्र पहुंची। वहाँ अपने दुष्कर्मों का स्मरण करती हुई, एक पौराणिक द्वारा उपदिष्ट बिन्दुला ने पुराण कथा श्रवण द्वारा शिवसायुज्य प्राप्त किया।

स्कन्दपुराण का चतुर्थ काशीखण्ड (पूर्वार्द्ध)

(१-५ अ.) (मङ्गलाचरण, विन्ध्यवर्द्धन, तथा अगस्त्य द्वारा विन्ध्य का निम्नीकरण) एक समय नारद ने नर्मदा में स्नान कर विन्ध्य को देखा। विन्ध्य ने भी नारद को देखकर उनका उचित सत्कार किया। परन्तु विन्ध्य के अहंभाव को समझते हुए नारद ने विन्ध्य में प्रतिस्पर्द्धा भाव और बढ़ाने हेतु मेरू द्वारा उसकी (विन्ध्य की) अवमानना किये जाने की बात कही। नारद द्वारा ऐसा सुनकर विन्ध्य ऊँचा उठने लगा तथा सूर्य का मार्ग अवरुद्ध कर दिया, जिससे सांसारिक कार्य अवरुद्ध हो गये। दुःखी देव ब्रह्मा के समीप गये। ब्रह्मा ने उन्हें काशी में तपस्यारत मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य के पास भेजा। (यहाँ अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा के वर्णन प्रसङ्ग से पातिव्रतधर्म भी प्रतिपादित है)। देवों की प्रार्थना पर अगस्त्य विन्ध्य के पास पहुंचे। विन्ध्य ने अगस्त्य का सत्कार किया। तदनन्तर अगस्त्य ने स्वयं के दक्षिण से लौट आने तक विन्ध्य को लघुरूप धारण करने का आदेश दिया। विन्ध्य के लघुरूप धारण करते ही समस्त सांसारिक कार्य प्रारम्भ हो गये। अगस्त्य ने दक्षिण में जाकर महालक्ष्मी का दर्शन किया।

(६-८ अ.) (तीर्थाध्याय, शिवशर्माविप्रकथा एवं यमलोकवर्णन) आरम्भ में परोपकार का महत्व प्रतिपादित है- (उपकार से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है तथा अपकार से बढ़कर कोई पाप नहीं है)। श्रीशैल के दर्शन मात्र से ही पुण्य प्राप्ति बतलायी गयी है। यहाँ प्रधानतीर्थों (प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरूक्षेत्र आदि) का वर्णन है। गयाक्षेत्र में श्राद्ध से मनुष्य पितृऋण से मुक्त होता है। अन्तःकरण की शुद्धि को सबसे बड़ा तीर्थ बतलाया गया है। मथुरा निवासी

शिवशर्मा ब्राह्मण द्वारा वृद्धावस्था में की गयी तीर्थयात्रा का वर्णन है। शिवशर्मा ने क्रमशः प्रयाग, काशी एवम् अवन्ति (अवन्ति का शब्दार्थ है-पाप से अवन, रक्षा) की यात्रा की। अन्त में रोगग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त हुए। शिवशर्मा ने पुण्यशील तथा सुशील नामक भगवान् के पार्षदों के साथ पिशाच-गुह्यक-गन्धर्व आदि के लोकों को देखने के साथ ही यमलोक को भी देखा। यहाँ यमलोक में पापियों को दिये जाने वाले दण्डों का वर्णन किया गया है।

(६-११ अ.) (अप्सरा-सूर्य-इन्द्रादि के लोकों का वर्णन) शिवशर्मा ने यमलोक के बाद अप्सरा-लोक को देखा। तदनन्तर सूर्यलोक को प्रस्थान किया। यहाँ सूर्यलोक प्राप्ति के कारण (सूर्योपासना, सूर्योपस्थान, गायत्री मन्त्र आदि); सूर्य के प्रमुख नाम (हंस, भानु, सहस्रांशु, तपन, तापन आदि) तथा अर्घ्यप्रदान की विधि उल्लिखित हैं। यज्ञीय उपादेय वस्तुओं के प्रदाता को अर्चिष्मतीपुरी प्राप्त होती है।

नर्मदातट स्थित नर्मपुरनिवासी विश्वानर धर्मपरायण ब्राह्मण थे। एक बार उनकी पत्नी शुचिष्मती ने उनसे शंकर-सदृश पुत्र की कामना की। विश्वानर ने तपस्या द्वारा प्रसन्न शिव से पुत्र रूप में उन्हें ही (शिव को) मांगा। शिव के वर रूप में विश्वानर को ''गृहपति'' नामक पुत्र हुआ। नारद द्वारा गृहपति की विद्युत्पात से मृत्यु की भविष्यवाणी किये जाने पर दुःखी माता को आश्वस्त कर ''गृहपति'' काशी आकर तपस्या में संलग्न हो गया। बारहवें वर्ष में इन्द्र (शिवरूपी) प्रकट हुए तथा उससे वर मांगने को कहा, पर गृहपति ने शिव से ही वर मांगने की बात कही। रुष्टइन्द्र गृहपति को मारने हेतु उद्यत हुए, भयभीत गृहपति की प्रार्थना पर प्रकट शिव ने उसे अग्नि एवं दिक्पाल का पद प्रदान किया।

(१२-१३ अ.) (नैर्ऋत तथा वारुण लोगों एवं गन्धवतीपुरी-वर्णन) दिक्पाल की पुरी ''निर्ऋति'' है। इसमें पुण्यसम्पन्न राक्षस ही निवास करते हैं। ये राक्षस आचार-सम्पन्न भी हैं। पूर्व काल में विन्ध्य के जङ्गल में क्रूरकर्मविरत पिङ्गाक्ष नामक एक व्याध रहता था। एक समय उसके गाँव के निकट तीर्थयात्रियों के दल पर पिङ्गाक्ष के पितृव्य ने आक्रमण कर दिया। पिङ्गाक्ष तीर्थयात्रियों की रक्षा हेतु आगे आया पर युद्ध में मारा गया। मरने पर पिङ्गाक्ष नैर्ऋत्य लोक में राक्षसों का राजा एवं दिक्पाल हुआ। नैर्ऋत्यपुरी के उत्तर में वरुणदेव का लोक है। वरुणपुरी के उत्तर में पवनदेव की गन्धवतीपुरी है। इसमें प्रभञ्जन (वायु) नामक दिक्पाल निवास करते हैं।

कश्यपपुत्र पूतात्मा ने काशी में पवनेश्वर नामक लिङ्ग की आराधना की। प्रसन्न शिव ने पूतात्मा को दिक्पालपद पर प्रतिष्ठित किया। गन्धवती के पूर्वभाग में कुबेर की अलकापुरी है।

(१४-१८ अ.) (ईशानपुरी तथा चन्द्रादि लोकों की स्थिति) अलकापुरी के पूर्व में शङ्कर की ईशानपुरी है। इसमें भगवान् शङ्कर के भक्त निवास करते हैं, जो शिवविषयक व्रतों तथा स्तोत्रों का पाठ करते रहते हैं। यहाँ अजैकपाद् तथा अहिर्बुध्न्य आदि

त्रिशूलधारी ग्यारह रुद्र शिवभक्तों के संरक्षण में संलग्न रहते हैं। काशी में ईशानेश्वर की आराधना से ये ईशानकोण में दिक्पाल हुए। अग्रिम अध्याय में चन्द्रलोक का वर्णन है। चन्द्रमा ब्रह्मा के मानसपुत्र अत्रि के पुत्र हैं। चन्द्रमा ने काशी में चन्द्रेश्वर नामक मूर्ति की स्थापना तथा आराधना की। जिससे प्रसन्न शिव ने इन्हें बीज, औषधि, जल और ब्राह्मणों का अधिपति बनाया। शिव ने चन्द्रमा की उत्तम कला को अपने मस्तक पर धारण किया। दक्ष द्वारा अभिशप्त चन्द्रमा मास की समाप्ति पर (अमावस्या तिथि को) क्षीण होने पर भी मात्र उसी कला द्वारा पुनः वृद्धि एवं पुष्टि को प्राप्त करते हैं।

भगवान् के पार्षदों ने उपर्युक्त लोकों को शिवशर्मा को दिखाने के बाद चन्द्रमा के पुत्र बुध के लोक का दर्शन कराया। बुध ने काशी में बुधेश्वर की स्थापना तथा पूजन से नक्षत्रलोक में उच्च स्थान प्राप्त किया है। बुध से ऊपर शुक्र का लोक है यहाँ दैत्यों के गुरू शुक्र का निवास है। शिव की तपस्या से शुक्र ने सञ्जीवनी विद्या प्राप्त की थी। अग्रिम अध्यायों में क्रमशः मङ्गल (पृथ्वी से उत्पन्न), बृहस्पति (अङ्गिरा के पुत्र) तथा बृहस्पति लोक के ऊपर शनि (सूर्य-पुत्र) लोक का वर्णन है। अन्त में ब्रह्मा के मानसपुत्र सप्तर्षियों (मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा तथा वशिष्ठ) के लोकों का तथा इन ऋषियों की पत्नियों (क्रमशः सम्भूति, अनसूया, क्षामप्रीति, सन्नति, स्मृति और अरुन्धती) का, जो लोकमाता कही जाती है; का उल्लेख है।

(१६-२१ अ.) (ध्रुवलोक-वर्णन) राजा उत्तानपाद की दो पत्नियों सुरूचि तथा सुनीति के गर्भ से क्रमशः "उत्तम" तथा "ध्रुव" नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक दिन राजा की गोद में उत्तम का बैठा देखकर बालस्वभाव के कारण ध्रुव ने स्वयं भी बैठने का हठ किया, पर सुरूचि ने उसे डांटकर वहाँ से हटा दिया। दुःखी ध्रुव को सुनीति ने उच्च स्थान प्राप्ति का कारण तपस्या बतलाया। जिसे सुनकर बालक ध्रुव तपस्या हेतु जंगल में चला गया। जंगल में सप्तर्षियों ने ध्रुव को विष्णु की तपस्या का उपदेश दिया। ध्रुव की तपस्या से भीत देवगण ब्रह्मा के समीप गये, परन्तु ब्रह्मा ने उन्हें निश्चिन्त होने का आश्वासन दिया। बालक ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न विष्णु ने ध्रुव को ग्रह नक्षत्रादि के ज्योतिर्मण्डल का आधार होने के साथ ही उसकी माता सुनीति को भी उसके समीप स्थान प्राप्त करने का वर दिया। यहाँ ध्रुवकृतभगवत्स्तोत्र का पाठ का तथा काशी में ध्रुव द्वारा स्थापित ध्रुवेश्वर का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

(२२-२४ अ.) (महर्लोक, जनलोक तथा तपलोक की स्थिति) महर्लोक में कल्पान्तजीवी तपस्वी तथा जनलोक में ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक, सनन्दन आदि निवास करते हैं। सत्यलोक में ब्रह्मा का निवास है। सत्यलोक पहुँचने पर ब्रह्मा ने शिवशर्मा को सत्यलोक का तथा भारतवर्ष के अनेक तीर्थों का महत्त्व बतलाते हुए प्रयाग एवं काशी की महिमा का

वर्णन किया। तीर्थों के वर्णन के अनन्तर वैकुण्ठ का वर्णन है। सत्यलोक के ऊपर वैकुण्ठधाम है, वैकुण्ठ से ऊपर शिव का निवास "कैलास" स्थित है।

(२३-२६ अ.) (काशी-महिमा, मणिकर्णिकाख्यान) अगस्त्य ने अपनी पत्नी के साथ श्रीपर्वत की परिक्रमा कर लोहितपर्वत के समीप स्थित छहमुखों वाले कार्तिकेय का दर्शन किया। प्रसन्नकार्तिकेय ने अगस्त्य के पूर्वकृत्यों (विन्ध्य के निम्नीकरण) का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा की। मुनि ने काशी-विषयक प्रश्न स्कन्द से किये जिसके उत्तर में स्कन्द ने काशी की उत्पत्ति, काशी, मणिकर्णिका का माहात्म्य तथा काशीवास के फल का विस्तृत वर्णन किया।

प्रलयकाल में भी शिव एवं पार्वती ने इस क्षेत्र का परित्याग नहीं किया अतः इसका नाम "अविमुक्त" पड़ा। काशी भगवान् के आनन्द का हेतु है अतः इसकी संज्ञा "आनन्द कानन" हुई। एक बार भगवान् विष्णु ने अपने चक्र से एक पुष्करिणी खोद कर उसे अपने पसीने से भर दिया तथा उसी स्थान पर तपस्या की। प्रसन्न शिव ने उन्हें भवानी सहित सदा दर्शन देने का वर दिया तथा अपने मणि-जटिलत कर्णिका (कुण्डल) गिरने के कारण इस तीर्थ का नाम "मणिकर्णिका" रखा। यहाँ मणिकर्णिका-स्नान की विधि तथा फल का कथन है।

(२७-२६ अ.) (गंगा-महिमा) गंगा को शिव अपने मस्तक पर सदैव धारण करते हैं। गंगा का सेवनकर्ता सभी तीर्थों में स्नान का पुण्य प्राप्त करता है। कलियुग के मनुष्यों की गति गंगा के बिना नहीं है। यह सभी दोषों को जलाने तथा पापों को नष्ट करने वाली है। जो मनुष्य गंगा का सदैव स्मरण-मात्र करता रहता है। गंगा-पूजन के समस्त कार्य मन्त्र (ओम् नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा) से करने का विधान है। शिव-सन्निधि के कारण काशी में गंगा-स्नान से समस्त महापातक तथा उपपातकों के नाश होने का उल्लेख है।

कलिंगदेशीय वाहीक की किसी व्याघ्र द्वारा मारे जाने से मृत्यु हो गयी, जिसके अस्थिमांस के टुकड़े को लेकर उड़ते हुा दो गृद्धों में परस्पर युद्ध के कारण उस टुकड़े के गंगा में गिर जाने के फलस्वरूप वाहीक की मुक्ति हुई। अन्त में अशक्त लोगों को गंगास्नान के फल की प्राप्ति हेतु गंगासहस्रनामस्तोत्र के पाठ का विधान विहित है। गंगासहस्रनाम में गंगा के सहस्रनामों (ओमूकाररूपिणी, अजरा, अतुला, अनन्ता आदि पूर्वार्द्ध २६.१७-१६८ तक) का परिगणन है।

(३०-३१ अ.) (वाराणसी-महिमा (धनञ्जयवैश्याख्यान)) शिव की कृपा के बिना काशीवास की प्राप्ति न होने के विषय में धनञ्जयवैश्य की कथा है। एक बार धनञ्जय की माता ने अपने पति से विश्वासघात कर परपुरूष समागम किया था। उसके मरने पर उसके पुत्र धनञ्जय ने उसकी अस्थियां एक ताम्रपुटक में रखकर गंगा में प्रवाहित करने हेतु काशी

को प्रस्थान किया। मार्ग में किसी वस्तु को लेने हेतु जब धनञ्जय बाजार गया तभी उन अस्थियों का वाहक सेवक ताम्रपुटक के लोभ में साथ लेकर जंगल में भाग गया। परन्तु उसमें अस्थियां देखकर सेवक ने उसे वहीं फेक दिया। वापस आकर धनञ्जय ने उस सेवक की बहुत खोज की पर उसे न पाकर पुनः अपने गाँव लौट आया तथा उस कहार से अस्थियों के विषय में पूछा। कहार पुनः उस जंगल में गया पर स्थान भूल जाने के कारण अस्थियां प्राप्त न होने के कारण काशी पहुँच कर भी बाहर हो गयीं। यहाँ काशी के वाराणसी (वरणा+असी) नाम का निर्वचन तथा कपालमोचनतीर्थ (भैरव को ब्रह्मा के शिरच्छेद से लगी ब्रह्महत्या का निरसन यहीं हुआ था) में स्नान से सभी पातकों के नाश का भी उल्लेख है।

(३२-३४ अ.) (हरिकेश की उत्पत्ति, ज्ञानवापी-माहात्म्य, कलावती-माहात्म्य) रत्नभद्र यक्ष के पुत्र ''पूर्णभद्र'' को समस्त वैभव प्राप्त था, पर कोई पुत्र नहीं था। पूर्णभद्र ने अपनी पत्नी कनककुण्डला से अपना दुःख कहा। कनककुण्डला ने पूर्वजन्म में कृत अशुभ कर्मो को ही पुत्रहीनता का कारण बतलाया तथा पति से महादेव की आराधना का अनुरोध किया। पत्नी से उपदिष्ट पूर्णभद्र ने तपस्या के फल रूप में ''हरिकेश'' नामक पुत्र को प्राप्त किया। हरिकेश सदैव शिव की प्रार्थना, सेवा एवं ध्यान में संलग्न रहता था तथा शिव के नामों से ही अपने मित्रों को पुकारता था। पिता ने हरिकेश को अन्य विद्याओं के अभ्यास का उपदेश दिया पर हरिकेश ने ऐसा नहीं किया। पिता की ताड़ना के भय से हरिकेश ने घर त्याग दिया तथा काशी आकर तपस्या करने लगा। पार्वती के कथन पर शिव ने अपने स्पर्श से समाधिस्थ हरिकेश को चैतन्य किया साथ ही उसे ''दण्डपाणि'' नाम और काशी के दण्डनायक होने का वर भी दिया।

काशीनिवासी हरिस्वामी ब्राह्मण की ''सुशीला'' नामवाली एक रूपवती कन्या थी। जिस पर आसक्त एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया; मार्ग में विद्युन्माली नामक राक्षस ने विद्याधरकुमार पर आक्रमण कर दिया। परस्पर युद्ध में दोनों मर गये। विद्याधर को अपना पति मानते हुए सुशीला ने उसकी मृत्यु पर अपना शरीर त्याग दिया। विद्याधरकुमार मलयकेतु के यहाँ पुत्र रूप में (माल्यकेतु नामक) तथा कर्नाटक में सुशीला ''कलावती'' रूप में उत्पन्न हुई। समय आने पर दोनों का विवाह हो गया। काशी-विषयक एक चित्रपट देखकर कलावती' को सम्पूर्ण काशी का ध्यान आ गया तथा चित्रपट को देखते ही वह विस्मृत-सी हो गयी; जिसे देखकर उसकी दासियाँ चिन्तित हो उठीं। कलावती की सखी बुद्धि शरीरिणी द्वारा उपदिष्ट दासियों ने उस चित्रपट के स्पर्श से उसे पुनः चैतन्य किया। स्वस्थ्य कलावती ने काशी के ज्ञानोद तीर्थ (ज्ञानवापी) का वर्णन किया तथा राजा से अनुरोध कर काशी पहुँची। वहाँ ज्ञानवापी में स्नानकर शिव के परम धाम को प्राप्त किया।

(३५-४० अ.) (सदाचार-महत्व, आश्रमवर्णन तथा दिवोदास-वृत्तान्त) आचार को परमधर्म, उत्तमतप तथा आयुवर्द्धक और समस्तपापों का विनाशक बतलाया गया है।

उत्तमआचारवाला मनुष्य सौवर्षों की आयु वाला होता है। दुराचारी लोक में निन्दा का पात्र होता है। जिस कार्य से अन्तरात्मा में प्रसन्नता हो उसे ही करना चाहिए, विपरीत कर्मों को नहीं। यहाँ यम-नियमादि तथा मनुष्य के छह शत्रुओं (काम, क्रोधादि) एवं नैतिक कार्यों का उल्लेख है। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को "द्विज" संज्ञापूर्वक इनके प्रमुख संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन आदि) का संक्षेप में प्रतिपादन है। ब्रह्मचर्याश्रम-धर्म (भिक्षाटन, अध्ययन आदि) भी वर्णित है। विधिपूर्वक किये गये यज्ञ से जपयज्ञ उससे, उपाशुं जप (सूक्ष्म स्वर से उच्चारण किया हुआ) तथा उससे मानस जप को अधिक फल देने वाला बतलाया गया है। यहाँ आचार्य, उपाध्याय, गुरु आदि शब्दों का तात्पर्य भी दिया गया है। विद्याध्ययन के उपरान्त आश्रमश्रेष्ठ गृहस्थाश्रम में प्रवेश का विधान है। पति और पत्नी की परस्पर अनुकूलता धर्म-अर्थ-काम की प्रदात्री है। यहाँ स्त्री के लक्षण (निष्कलङ्ककुलवाली, नीरोगी, मृदुभाषिणी आदि) भी प्रतिपादित है। उत्तम लक्षणों वाली स्त्री ने भी यदि अपना शील दूषित कर लिया है तो वह कुलक्षणा है, पर बाह्यलक्षण-विहीना भी यदि सतीत्व-सम्पन्न है तो वह भी सुलक्षणा है। पार्वती पूजिका स्त्री "सदाचारिणी" कहलाती है। अन्त में पाँच शुभ यज्ञों (अहुत (जप), हुत (होम), प्रहुत (बलिवैश्वदेव), प्राशित (श्राद्ध) तथा ब्राह्महुत (ब्राह्मण सत्कार) के वर्णन के साथ ही गृहस्थों के शिष्टाचार तथा धर्म का भी प्रतिपादन है।

(४१-४२ अ.) (वानप्रस्थ एवं यति-धर्म, योगाख्यान तथा मृत्युसूचक चिह्न) गृहस्थ धर्म के अनुपालनपूर्वक सिर के बालों के पक जाने तथा मुँह पर झुरियां पड़ जाने पर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने का विधान है। पत्नी को पुत्रों के संरक्षण में छोड़कर या पत्नी को भी साथ लेकर वन में प्रवेश करें। मृगचर्म का पुराना वस्त्र धारण, मुनियों के लिए विहित अन्न से जीवन यापन, अग्नि में आहूति तथा जटाधारण, फलमूल से अतिथि सत्कार, दान न लेना, स्वाध्याय आदि वानप्रस्थी के आचार एवं धर्म हैं। संन्यासी के चार प्रधान कर्त्तव्य (ध्यान, शौच, भिक्षाटन तथा एकान्त सेवन) बतलाये गये है-

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।
यतेश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नोपपद्यते।। (पू. ४१.२०)

संन्यासी को तैजसपात्र (पीत्तल, काँसे आदि से निर्मित) धारण करने का निषेध तथा तुम्बी, काष्ठ, मिट्टी अथवा बाँस निर्मित पात्र धारण करने का विधान है। योग के छह अंगों (आसन, प्राणसंरोध, (प्राणायाम), प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि) के वर्णन के साथ ही इन्हें यहाँ क्रमशः परिभाषित भी किया गया है। अन्त में आसन्नमृत्युवाले व्यक्ति के लक्षण भी उल्लिखित हैं।

(४३-४६ अ.) (दिवोदास-चरित) मन्दराचल की तपस्या से प्रसन्न शिव मन्दराचल को चले गये। उनके प्रस्थान के उपरान्त सभी देवों द्वारा उनके अनुगमन पर विष्णु ने भी वैसा ही किया। पृथ्वी से देवों के चले जाने पर राजा दिवोदास ने काशी पर अखण्डराज्य

किया। उनका अनुगमन नाग, दानव (मानवरूप धारण कर) तथा गुह्यक आदि सभी करते थे। राजा के मन्त्री योग्य थे तथा सभा पण्डितों से पूर्ण थी, प्रत्येक गाँव राजकर्मियों से रक्षित था। राजा, राजनीति के छह गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय) के ज्ञाता थे तथा त्रिविधि-शक्तियों (प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति तथा मन्त्रशक्ति) से उत्साहित रहते थे। दिवोदास के राजकार्य को देखकर इन्द्रादि देवों ने विघ्नार्थ अनेक उपाय किये पर सभी निष्फल रहे। तदनन्तर शिव ने चौंसठ योगिनियों को राजकार्य के दोष देखने हेतु भेजा पर वे भी असफल रहीं। अन्त में शिव ने धर्म-विरोध द्वारा राजकार्य के विघ्नार्थ सूर्य को भेजा, परन्तु साथ ही राजा का अनादर नहीं करने का आदेश भी दिया। सूर्य काशी आये तथा विविध रूप धारण कर काशी के मनुष्यों में दोष निकालने का प्रयास किये पर असफल रहे। काशी में विचरते हुए सूर्य स्वयं बारह रूपों (लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बा-दित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरूणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गंगादित्य, यमादित्य) में स्थित हो गये। अर्क (सूर्य) का मन काशी के दर्शन हेतु लोल (= चञ्चल) हो उठा था; अतः लोलार्क नाम पड़ा। यहाँ लोलार्क का माहात्म्य भी कहा गया है।

(४७-४८ अ.) (उत्तरार्क (सूर्य) महिमा, सुलक्षणा-आख्यान, साम्बादित्य महिमा) काशी के उत्तर में उत्तरार्क कुण्ड है, यहाँ सूर्य "उत्तरार्क" नाम से निवास करते हैं। "प्रियव्रत" नामक ब्राह्मण की "सुलक्षणा" नामवाली सदाचार परायणा एक कन्या थी। कन्या हेतु योग्य वर की चिन्ता में संलग्न प्रियव्रत ने अपने प्राण त्याग दिये। कन्या की माता भी कुछ ही दिनों बाद पति के वियोग में मृत्यु को प्राप्त हुई। दुःखी सुलक्षणा ने उत्तरार्क-देव के समीप तपस्या प्रारम्भ की। तपस्या काल में उसके समीप एक अजा (= बकरी) भी आती थी। प्रसन्न शिवपार्वती ने सुलक्षणा से वर मांगने को कहा तब उसने परोपकारार्थ पहले बकरी के लिए वर की प्रार्थना की, जिससे अत्यधिक प्रसन्न पार्वती ने उसे अपनी सखी होने तथा बकरी को काशीनरेश की पुत्री होने का वर दिया।

द्वारकाधीश कृष्ण के सभी पुत्रों में साम्ब सर्वाधिक गुणवान् थे। उन्होंने काशी में सूर्य की उपासना कर एक कुण्ड की स्थापना की जो साम्बादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(४९-५० अ.) (द्रौपदादित्य, मयूखादित्य तथा खखोल्कादित्य का माहात्म्य) पाण्डवों के वनवास काल में द्रौपदी ने तपस्या द्वारा सूर्य को प्रसन्न किया। प्रसन्न सूर्य ने द्रौपदी को एक अक्षयपात्र दिया था (द्रौपदी के भोजन के पूर्व उसमें से जितना भी भोजन निकाला जाय वह कभी रिक्त नहीं होता था) द्रौपदी द्वारा स्थापित होने के कारण इसका नाम द्रौपदादित्य पड़ा (विश्वनाथ के दक्षिण में स्थित)। यहां मयूखादित्य का माहात्म्य भी लिखित है।

त्रिलोचन के उत्तर भाग में सर्वरोगनाशक "खखोल्क" आदित्य स्थित है। अन्त में कद्रु एवं विनता की प्रसिद्ध कथा वर्णित है। अपनी बहन कद्रु द्वारा वंचित विनता एवम्

उसके पुत्र गरुड ने काशी में तपस्या की, जिससे प्रसन्न सूर्य ने विनता को वर दिया तथा काशी में निवास करते हुए विनतादित्यनाम से प्रसिद्ध हुए।

काशीखण्ड का उत्तरार्द्ध

(५१-५२ अ.) (विभिन्न आदित्यों तथा दशाश्वमेध का माहात्म्य), विनता पुत्र अरुण ने काशी में तपस्या कर सूर्य को प्रसन्न किया। प्रसन्न आदित्य ने अरुण को वर रूप में अपना सारथि बनाया तथा उन्हीं के नाम से अरुणादित्य नाम से प्रसिद्ध हुए। प्राचीनकाल में काशी में वृद्धहारीत ने सूर्य की आराधना की तथा वररूप में तपस्या हेतु युवावस्था मांगी। सूर्य ने हारीत को युवावस्था प्रदान की। हारीत द्वारा स्थापित सूर्य वृद्धादित्य नाम से विख्यात हुए।

आकाश मार्ग से गमन करते हुए सूर्य ने केशव को विश्वनाथ की पूजा करते देख कूतुहलवश इसका कारण पूछा। केशव ने सूर्य को काशी में महादेव को एकमात्र पूज्य बतालाया और सूर्य को भी शिव की पूजा का उपदेश दिया। सूर्य ने स्फटिक निर्मित लिङ्ग की स्थापना केशव को गुरु मानकर की, जो केशवादित्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुष्ठी 'विमल' नामक क्षत्रिय द्वारा रोगमुक्ति हेतु की गयी सूर्य की आराधना तथा स्थापना से सूर्य का विमलादित्य नाम पड़ा। विश्वनाथ के दक्षिण भाग में गङ्गादित्य हैं (गङ्गा-स्तुति हेतु सूर्य यहीं अवस्थित हुए थे); यमादित्य (यम द्वारा स्थापित) के दर्शन से व्यक्ति यमलोक को नहीं जाता है।

शिव द्वारा प्रेषित सूर्य के काशी में ही अवस्थित हो जाने पर शिव ने ब्रह्मा को काशी भेजा। ब्रह्मा ने वृद्ध ब्राह्मण के रूप में दिवोदास से उनके शासन तथा काशी की प्रशंसा करते हुए यज्ञ हेतु सामग्री मांगी। प्राप्त सामग्री से ब्रह्मा ने दस अश्वमेध यज्ञ किये तथा वहां दशाश्वमेधेश्वर की स्थापना की। दिवोदास ने वृद्धब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा के निवासार्थ वहां एक ब्रह्मशाला का निर्माण करवाया।

(५३-५४ अ.) पिशाचमोचन-माहात्म्य (वाल्मीकि चरित)

वाल्मीकि मुनि एक बार विमलोदक तीर्थ में स्नानार्थ पञ्चाक्षर-मन्त्र का जप करते हुए जा रहे थे, तभी उनके सम्मुख एक पिशाच उपस्थित हुआ। पिशाच ने वाल्मीकि से पिशाच योनि से मुक्ति की प्रार्थना की। वाल्मीकि ने उसे विमलोदक तीर्थ में स्थान का उपदेश दिया पर वहां जाने में असमर्थ उस पिशाच को वाल्मीकि ने भस्म लगाकर स्नानार्थ प्रेषित किया। स्नान से प्राप्त पुण्य से पिशाच उस योनि से मुक्त हुआ। पिशाच की मुक्ति के कारण इसका नाम पिशाचमोचन पड़ा।

(५५-५७ अ.) (गणेश की काशी-यात्रा) काशी की स्थिति ज्ञात करने हेतु जो भी शिव

के गण काशी आये थे उन्हें पुनः लौटकर न आते देख, शिव ने गणेश को काशी भेजा। वृद्धज्योतिषी के रूप में गणेश नागरिकों को प्रसन्न करते थे। एक दिन दिवोदास की पत्नी लीलावती ने राजा से ज्योतिषी की प्रशंसा की तथा उनसे मिलने का अनुरोध किया। राजा ने ज्योतिषी (गणेशरूपी) से अपना भविष्य पूछा। गणेश ने राजा से उस दिन के अट्ठारहवें दिन आने वाले एक वृद्धब्राह्मण के वचन के अनुपालन को कहा। यहाँ गणेश के प्रमुख नाम तथा ढुण्ढि (पुरुषार्थों को ढूंढने के कारण) नाम का निर्वचन भी लिखित है।

(५८-५६ अ.) (दिवोदास का निर्वाण) गणेश के पुनरागमन में विलम्ब होते देख शिव ने विष्णु को काशी जाने हेतु प्रेरित किया। काशी पहुंचकर विष्णु ने काशी के उत्तर में धर्मक्षेत्र (धर्मचक्रस्थान-सारनाथ) में रहना निश्चित किया। भगवान् ने वेष परिवर्तित कर अपना नाम पुण्यकीर्ति तथा गरुड का नाम विनयकीर्ति रखा। पुण्यकीर्ति ने विनयकीर्ति को अनेक विषय के उपदेश दिये। इस उपदेश से काशी के नागरिक क्रमशः आकृष्ट हुए। राजा के समीप अठारहवें दिन पुण्यकीर्ति उपस्थित हुए तथा राजा को वैराग्यपूर्ण उपदेश दिये। अन्त में दिवोदास शिवपार्षदों के साथ विमान द्वारा शिवलोक को गमन किये। यहाँ पञ्चनदतीर्थ (किरणा-धूतपाया-सरस्वती-गङ्गा-यमुना)-नदियों के समवेत के कारण) नाम का कारण भी बतलाया गया है।

(६०-६१ अ.) (बिन्दुमाधवतीर्थ) विष्णु ने पञ्चनदतीर्थ में दुर्बलकाय "अग्निबिन्दु" नामक तपस्वी को देखा। तपस्वी ने पञ्चनद में भगवान् के निवास का वर मांगा। विष्णु ने अग्निबिन्दु के आधे भाग तथा लक्ष्मी के नाम के साथ प्रसिद्ध होने (बिन्दु. माधव = बिन्दुमाधव) का वर दिया। विष्णु ने नामपूर्वक अपने निवास बतलाये यथा-पादोदक तीर्थ में आदि केशव, श्वेतद्वीप में ज्ञानकेशव, तार्क्ष्यतीर्थ में तार्क्ष्यकेशव आदि।

(६२-६६ अ.) (वृषभध्वजतीर्थ, जैषव्य पर शिवकृपा तथा विविध शिवलिङ्ग) काशीवासियों द्वारा शिव के वृषचिह्नयुक्तध्वज के दर्शन के कारण इस तीर्थ का नाम वृषध्वजतीर्थ पड़ा। शिव के काशी छोड़ने के साथ ही उनके पुनः वापस आने तक के लिए जैगीषव्य ने बिना जल ग्रहण किये तपस्या प्रारम्भ कर दी थी। काशी आकर शिव ने जैगीषव्य को भक्ति का एवम् उनके द्वारा स्थापित लिङ्ग में निवास का वर दिया। यहाँ काशी के माहात्म्य सहित पराशरेश्वर, माण्डव्येश्वर, जाबालेश्वर, शैलेश्वर (हिमवान् द्वारा प्रतिष्ठित) आदि का माहात्म्य भी वर्णित है।

(६७-६८ अ.) (रत्नेश्वर-माहात्म्य तथा कृत्तिवासेश्वर-माहात्म्य) श्रेष्ठरत्नों का तथा मोक्षरत्न का प्रदाता रत्नेश्वरलिङ्ग है। शिवरात्रि में एकनर्तकी द्वारा रत्नेश्वर के समीप नर्तन से वह (नर्तकी) वसुमति नामक गन्धर्व के यहां पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। रत्नावली नामवाली गन्धर्व कन्या के चरित वर्णन से रत्नेश्वर का माहात्म्य प्रतिपादित हुआ है। मुनियों को प्रताड़ित करने वाले महिषासुर के पुत्र गजासुर का शिव ने जब वध किया तो उसके

चर्म को धारण करने का वर भी उसे दिया। इस क्षेत्र में स्थापित लिङ्ग का नाम कृत्तिवासेश्वर पड़ा।

(६८-७२ अ.) (विविध शिवलिङ्ग तथा दुर्ग-वध) विविध तीर्थों में स्थित देवविग्रह काशी आये (यथा-कुरुक्षेत्र से आया हुआ स्थाणुलिङ्ग, गोकर्ण से प्रकट महाबललिङ्ग (जो साम्बादित्य के निकट स्थित है आदि) यहां पार्वतीश्वर का माहात्म्य भी वर्णित है। पूर्वकाल में दुर्ग नामक दैत्य ने तपस्या द्वारा पुरुषमात्र से अवध्य होने का वर प्राप्त कर लिया था। उसके दुष्कर्मों से पीड़ित होकर देव शिव के समीप गये। शिव ने देवी को उसका वध करने का आदेश दिया। क्रमशः हाथी, महिष तथा पुरुष रूप धारी दुर्ग का देवी ने वध कर डाला। दुर्ग के वध के कारण देवी का "दुर्गा" नाम प्रसिद्ध हुआ।

(७३-७६ अ.) (ओमूकार तथा त्रिलोचन माहात्म्य) पार्वती के द्वारा शिवलिङ्ग-विषयक प्रश्न किये जाने पर शिव ने उन्हें चतुर्दशलिङ्गों (१) ओमूकार, (२) त्रिलोचन, (३) महादेव, (४) कृत्तिवास, (५) रत्नेश्वर, (६) चन्द्रेश्वर, (७) केदारेश्वर, (८) धर्मेश्वर, (९) वीरेश्वर, (१०) कामेश्वर, (११) विश्वकर्मेश्वर, (१२) मणिकर्णीकेश्वर, (१३) अविमुक्तेश्वर, (१४) विश्वेश्वर) का परिगणनपूर्वक माहात्म्य बतलाया। इनके अतिरिक्त शैलेश्वर, सङ्गमेश्वर, स्वरलीनेश्वर आदि लिङ्गों का उल्लेख भी यहां है। पुनः ओमकारेश्वर तथा त्रिलोचन का प्रभाव एवं माहात्म्य वर्णित है। एक समय त्रिलोचन मन्दिर में युगल कपोत रहते थे। बाज से सन्तप्त कबूतर को कबूतरी ने मन्दिर छोड़ने को कहा, पर कबूतर ने ऐसा नहीं किया। मृत्यु के अनन्तर कपोत मन्दारदामाविद्याधर का पुत्र "परिमलालय" तथा कपोती पातालस्थित नागराज रत्नद्वीप के घर पुत्री (रत्नावली) के रूप में उत्पन्न हुई। रत्नावली तथा परिमलालय का विवाह हुआ। कालान्तर में दोनों त्रिलोचनमहादेव के दर्शनार्थ आये तथा त्रिलोचनलिङ्ग में लय को प्राप्त हुए।

(७७-८१ ३०) (केदारेश्वर तथा धर्मेश-माहात्म्य) उज्जयिनी से काशी आये वशिष्ठ ने आचार्य हिरण्यगर्भ से पाशुपत व्रत की शिक्षा ली। गुरु-शिष्य दोनों द्वारा केदारेश्वर की यात्रा करते समय एक दिन मृत्यु को प्राप्त हिरण्यगर्भ को शिव के पार्षद विमान द्वारा अपने लोक ले गये। इसे देव केदारेश्वर की श्रेष्ठता मानकर वशिष्ठ ने भी प्रत्येक वर्ष केदारेश्वर की यात्रा का व्रत लिया। यात्री वशिष्ठ को शिव ने दर्शन देकर काशी में ही केदारेश्वर रूप में प्रतिष्ठित होने का वर दिया।

"विश्वभुजा" पार्वती तथा विघ्नविनाशक "आशाविनायक" गणेश के समीप स्थित लिङ्ग की प्रार्थना करने पर धर्मराज को शिव ने धर्मेश रूप में प्रसिद्ध होने का वर दिया। धर्मेश के दर्शन से ही राजा दुर्दम क्षण मात्र में धर्मबुद्धि वाला हो गया। यहां धर्मेश-माहात्म्य, धर्मपीठगरिमा तथा मनोरथ तृतीयाव्रत की विधि तथा फल कथित है।

(८२-८४ अ.) वीरेश्वरलिङ्ग महिमा (अमित्रजितचरित) पूर्वकाल में अमित्रजित् नामक धर्मात्मा राजा थे। इनकी प्रजा सुखी तथा धर्मपरायण थी। एकादशी के दिन इनके यहां सभी मनुष्य, पशु तथा पक्षी भी व्रत रहते थे। एक दिन नारद ने आकर राजा से बतलाया कि-विद्याधर राजकुमारी मलयगन्धिनी जब उद्यान में खेल रही थी उसी समय कपालकेतु दानव के पुत्र कङ्कालकेतु ने उसका अपहरण कर पाताललोक की चम्पकावती नगरी ले गया है। "उस दानव का वध उसके त्रिशूल से ही सम्भव है"-अतः आप (अमित्रजित्) जाकर उसका वध करें। नारद द्वारा उपदिष्ट मार्ग से चम्पकावती पहुंचकर अमित्रजित् ने दानव का वध कर मलयगन्धिनी का वरण किया। पुत्र की कामना से मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष की तृतीया को राजा ने व्रत रखा। व्रत के पुण्य से पुत्र तो उत्पन्न हुआ, पर दुष्टनक्षत्रीय होने के कारण रानी ने उसे मातृकाओं के संरक्षण में भेज दिया। बालक ने तपस्या से प्रसन्न तथा लिङ्ग रूप में प्रकट शिव से उस लिङ्ग में विद्यमान रहने का वर मांगा। शिव ने उसके नाम पर उस लिङ्ग को वीरेश्वरलिङ्ग के रूप में प्रसिद्धि का वर दिया।

(८५-८६ अ.) (दुर्वासेश्वर (कामेश्वर) तथा विश्वकर्मेश्वरलिङ्ग) एक बार दुर्वासा ने काशी में तपस्या की पर फल की प्राप्ति न देखकर काशी को शाप देने हेतु उद्यत हुए, जिसे जानकर शिव हंसने लगे तथा लिङ्गरूप में प्रकट हुए, जिसका नाम 'प्रहसितेश्वर" पड़ा। शिव ने दुर्वासा से वर मांगने को कहा। लज्जितदुर्वासा ने अपनी मनःकामनापूर्तिकारक उस लिङ्ग की कामेश्वर नाम से प्रसिद्धि का वर मांगा।

विद्याध्ययनरत प्रजापति के पुत्र विश्वकर्मा से एक दिन उनके गुरु ने पर्णशाला, गुरुपत्नी ने कञ्चुकी, गुरुपुत्र ने विशिष्ट खडाऊ, गुरुपुत्री ने स्वर्णनिर्मित कर्णफूल तथा खिलौने बनाने का आदेश दिया। तपस्या द्वारा विश्वकर्मा ने शिव को प्रसन्न कर सभी प्रकार के शृङ्गाराभूषण निर्माण तथा शिल्पादिविद्या में निपुणता का वर पाया। विश्वकर्मा-निर्मित लिङ्ग विश्वकर्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(८७-९० अ.) (दक्षेश्वर (दक्षयज्ञविध्वंश) तथा पार्वतीश्वर) शिव से शत्रुभाव रखने वाले दक्ष ने बिना शिव के ही यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। नारद द्वारा यह बात ज्ञात होने पर (शिव के वचन की उपेक्षा करती हुई) सती यज्ञस्थल पहुंची। वहां दक्ष द्वारा निन्दा सुनकर सती ने देह का विसर्जन कर दिया। यह सुनकर वीरभद्र ने यज्ञ का नाश करते हुए दक्ष का शिरच्छेद कर यज्ञकुण्ड में डाल दिया। पुनः शिव की आज्ञा पाकर वीरभद्र ने मेष (भेड़) का मुख दक्ष के धड़ पर आरोपित कर दिया। दक्ष ने काशी में आकर जिस शिवलिङ्ग की स्थापना कर तपस्या की वह "दक्षेश्वर" नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शिव की आज्ञा से पार्वती ने महादेवेश्वर के समीप एक लिङ्ग की स्थापना की थी, जिसका नाम पार्वतीश्वर पड़ा। चैत्रशुक्ल तृतीया को पार्वतीश्वर की पूजा से मनुष्य लोक में सौभाग्य तथा परलोक में सद्गति प्राप्त करता है।

(६१-६४ अ.) (गङ्गेश्वर, नर्मदेश्वर, सतीश्वर तथा अमृतेश्वरादि लिङ्ग) विश्वनाथलिङ्ग के पूर्व में गङ्गा द्वारा स्थापित गङ्गेश लिङ्ग तथा नर्मदा द्वारा स्थापित नर्मदेश्वर की स्थापना का वृत्तान्त एवं माहात्म्य भी प्रतिपादित है। एक बार नर्मदा ने तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न किया। प्रसन्न शिव ने नर्मदातटस्थित समस्त प्रस्तरखण्डों को शिवलिङ्ग स्वरूप होने तथा नर्मदा द्वारा काशी में स्थापित शिवलिङ्ग की नर्मदेश्वर रूप में प्रसिद्ध का वर दिया। इसी प्रकार सती द्वारा स्थापित लिङ्ग सतीश्वर है, जो रत्नेश्वर के पूर्व भाग में स्थित है।

पूर्वकाल में काशीनिवासी सनारूमुनि का उपजङ्घनि नामक पुत्र था। जिसकी सांप डंसने से मृत्यु हो गयी। सनारू ने मृतपुत्र को महाश्मशान पहुंचाया जहां श्रीफल आकारवाला एक गुप्त शिवलिङ्ग था। इसके प्रभाव से उपजङ्घनि जीवित हो उठा। अनुसंधान करने पर वहां एक शिवलिङ्ग प्राप्त हुआ, जिसका नाम अमृतेश्वरलिङ्ग पड़ा जिसके स्पर्श से मनुष्य को अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

(६५-६५ अ.) (व्यास-शाप-विमोचन) एक समय व्यास काशी में ऊर्ध्वबाहुकर "हरिः सेव्यो हरिः सेव्यः" का उच्चारणकंर रहे थे, जिसे सुनकर रुष्ट नन्दी ने व्यास की भुजाओं तथा वाणी को स्तम्भित कर दिया। विष्णु के उपदेश पर-व्यास ने विष्णु के कण्ठ के स्पर्श द्वारा स्तम्भन मुक्त होकर शिव की स्तुति की। यहां व्यास द्वारा उपदिष्ट व्रतों (कृच्छ्रचान्द्रायण, पादकृच्छ्र, पर्णकृच्छ्रादि) का उल्लेख, विधि तथा फल प्रतिपादित है।

(६७-१०० अ.) (काशी के प्रमुख तीर्थ), काशी के प्रधान तीर्थों (गोपेश्वर, दधीचीश्वर, अमीश्वर, वेदेश्वर, महादेवेश्वर आदि) का वर्णन शिव ने स्वयं पार्वती को सुनाया। जब शिव पार्वती को कथा सुना रहे थे, उसी समय नन्दी ने मोक्षलक्ष्मीविलास नामक प्रासाद के पूर्ण निर्माण की सूचना शिव को दी। शिव ने अपने गणों तथा अन्य देवों के साथ मंदिर में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने शिव का अभिषेक किया। विष्णु ने भी शिव के सतत् सामीप्य का वर मांगा। महादेव ने ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों को काशीस्थविश्वेश्वर का माहात्म्य बतलाया।

काशीखण्डान्तर्गत पञ्चतीर्थ, चतुर्दश-आयतन, अष्ट-आयतन, एवं शैलेशादि आयतनों की तथा गौरी-यात्रा, गणेश-यात्रा और अन्तर्गृह यात्राओं के साथ ही विश्वनाथ-यात्रा का भी वर्णन है। अन्त में काशी खण्ड के श्रवण, पठन आदि का फल भी प्रतिपादित है।

स्कन्दपुराण के पञ्चम आवन्त्यखण्ड का प्रथम "अवन्तिक्षेत्र-माहात्म्य"[१]

(१-४ अ.) (महाकालपरक मङ्गलाचरण, ब्रह्मा का पञ्चमशिरच्छेद तथा ब्रह्मा कृत प्रायश्चित्) सनत्कुमार-व्यास संवाद के माध्यम से सनत्कुमार द्वारा महाकालवन की प्रशंसा

१. मोर प्रकाशन संस्करण के अवन्तिक्षेत्र-माहात्म्य में कुल ८३ अध्याय है। जबकि वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण में मात्र ७१ अध्याय हैं। यह लेख वेङ्कटेश्वर संस्करण पर आधृत है।

के उपरान्त ब्रह्मा के पञ्चमशिरशच्छेद का वर्णन है। ब्रह्मा के मस्तक-रक्त से उत्पन्न पुरुष को ब्रह्मा ने शिव के वध की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर राक्षस शिव-वध हेतु उद्यत हुआ। शिव ने विष्णु के समीप जाकर भिक्षा मांगी, तपस्यारत विष्णु ने उन्हें अपना दक्षिण हस्त दिया। शिव के वधार्थ राक्षस भेजने के दोष से निवृत्ति हेतु ब्रह्माकृतप्रायश्चित का तथा अन्त में वैश्वानर की उत्पत्ति का वर्णन है।

(५-६ अ.) (कुशलस्थली तथा कपालमोक्षतीर्थ-माहात्म्य) नर-नारायण रूप में विष्णु ने बदरिकाश्रम में लोकहितार्थ तपस्या की। कपालपाणि-शिव वसुधा का भ्रमण करते हुए कुशस्थली पहुंचे। वहां स्थित वृक्षों ने भक्तिपूर्वक शिव के चरणों में पुष्प समर्पित किया तथा शिव से वहां के वन में निवास का वर मांगा। शिव के दर्शनार्थ ब्रह्मादि देव उस वन में आये, परन्तु शिव का दर्शन न पाने पर यज्ञ प्रारम्भ किया। प्रसन्न शिव ने देवों को वर दिया, शिव के कथन पर देवों ने लिङ्ग की स्थापना की। यहां कपालमोक्षतीर्थ का माहात्म्य भी लिखित है।

(७-८ अ.) (महाकालवनवास-विधि माहात्म्य तथा कलकलेश्वरोत्पत्ति) प्रारम्भ में भक्ति (लौकिकी, वैदिकी, आध्यात्मिकी आदि) का भेदपूर्वक उल्लेख है। तदनन्तर रुद्रलोक की इच्छा रखने वाले मनुष्य हेतु महाकालवन में निवास की विधि वर्णित है।

महाकाल वन में निवास करते हुए शिव द्वारा पार्वती को लीलावश काली कहे जाने से रुष्ट पार्वती से कलहनाशन "कलकलेश्वर' की उत्पत्ति हुई। यहां कलकलेश्वर-कुण्ड पर दान का महत्व तथा अप्सर-कुण्ड का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(९-१० अ.) (हालाहल-वध, माहिषकुण्ड तथा कौटुम्बकेश्वर-माहात्म्य) एक बार हालाहल दैत्य महिष रूप धारण कर महाकालवन में आया। उस राक्षस को देखकर शिव ने अपने गणों को उसे मारने की आज्ञा दी। शिवगणों ने अपने अस्त्र-शस्त्रों से उसे मार डाला। इसी समय मातृकाएं उत्पन्न हुईं तथा दैत्य को काट-काट कर खाने लगीं, इसी कारण इस क्षेत्र का नाम "कपालमातृका" पड़ा। कपाल को भेद कर एक कुण्ड प्रकट हुआ जो रुद्रसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां रुद्रसर तथा "कौटुम्बिकेश्वर" का माहात्म्य वर्णित है।

(११-१३ अ.) (विद्याधर तीर्थ, शीतलातीर्थ तथा स्वर्गद्वार माहात्म्य) पारिजातपुष्प की माला लेकर विद्याधरपति इन्द्र भवन गया। नृत्यसंसद में नृत्यरता मेनका को उसने वह प्रदान की। माला पर मुग्ध मेनका को देखकर नृत्यभङ्ग के कारण क्रुद्ध इन्द्र ने विद्याधर को विद्याधरपद त्याग का शाप दिया। इन्द्रशाप के कारण विद्याधर अवन्ती आया तथा तीर्थ में स्नान कर अपने पूर्व पद को प्राप्त किया। मर्कटेश्वर तीर्थ में स्नान से शीतलारोग से मुक्ति तथा स्वर्गद्वार माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१४-१७ अ.) (चतुःसमुद्र, शङ्करवापी, नीलगन्धवती तथा दशाश्वमेधतीर्थ माहात्म्य) सुद्युम्न नामक धर्मात्मा राजा की पत्नी सुदर्शना ने दालभ्य मुनि से पुत्र प्राप्ति हेतु दानव्रतादि के विषय में जिज्ञासा की। दालभ्य मुनि के उपदेश पर उसके पति सुद्युम्न ने शिव को प्रसन्न किया तथा शिव से उपदिष्ट सुद्युम्न अवन्तीपुरी पहुंचे। कुशस्थली में राजस्थल के समीप चारों समुद्रों को उपस्थित देखकर राजा ने उन्हें प्रणाम किया तथा शुभ लक्षणों वाला पुत्र उनसे प्राप्त किया। अवन्तीपुरी में सुद्युम्न द्वारा लाये गये चतुःसमुद्र के कारण इसका नाम चतुःसमुद्रतीर्थ पड़ा। शिववापी (क्रीडा करते हुए शिव के द्वारा निर्मित), शङ्करादित्य (शिव के द्वारा सूर्योपासना करके स्थापित), नीलगन्धवती (कपाल प्रक्षालन के समय शिव द्वारा फेंके गये जल से निर्मित) नदी तथा दशाश्वमेध-तीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है।

(१८-२० अ.) (एकानशादेवीतीर्थ, हरसिद्धितीर्थ तथा अन्य तीर्थ) ब्रह्मा द्वारा संस्कृत एकानंशादेवी के दर्शन और ध्यान का महत्व एवं हरसिद्धि तीर्थ शिव के आदेश से देवी द्वारा चण्ड और प्रचण्ड दैत्यों के वध के कारण देवी की हरसिद्धि नाम से प्रसिद्धि हुई तथा अन्त में वटयक्षिणी, पिशाच, शिप्रागुम्पेश्वर, अगस्त्येश्वर, ढुण्ढेश्वर, डमरुकेश्वर, अनादिकल्पेश्वर, सिद्धेश्वरवीरभद्रचण्डिका, स्वर्णजालेश्वर, महामाया, कपालेश्वर एवं स्वर्गद्वारतीर्थ-यात्रा माहात्म्य का वर्णन है।

(२१-२३ अ.) (हनुमत्तेश्वर, यमेश्वर तथा महाकाल यात्रा माहात्म्य) एक दिन कथा-श्रवण के समय अयोध्या में मुनि अगस्त्य से रावणहन्ता राम द्वारा शिव तथा हनुमान् के पराक्रम के विषय में प्रश्न किये जाने पर अगस्त्य ने शिव को शौर्य में अनुपमेय बतलाते हुए हनुमान् को भी उनके समान कहा। जिसे सुनकर हनुमान लंका गये तथा रावण द्वारा स्थापित एक शिवलिङ्ग विभीषण से मांगकर अवन्ती ले आये, जिसे एक सरोवर के किनारे रखकर स्नान करने लगे। स्नान के अनन्तर जब हनुमान ने लिङ्ग उठाया तो लिङ्ग की अचलता देखकर शिव की आज्ञा से उसे वहीं स्थापित कर दिया। यह लिङ्ग हनुमत्केश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां यमेश्वर तथा रुद्रसर के माहात्म्य के साथ ही पुण्यलोक प्रदायिनी महाकाल की यात्रा का भी वर्णन है।

(२४-२३ अ.) (वाल्मीकेश्वर तथा अन्य लिङ्गों का माहात्म्य) भृगुवंशीय सुमति ब्राह्मण की कौशिकवंशीय पत्नी से अग्निशर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वेदाभ्यास से विरत अग्निशर्मा का साथ लुटेरों से हो गया। मार्ग में सप्तर्षियों को मारने को उद्यत अग्निशर्मा को अत्रि ने रोकते हुए उसे हिंसापूर्वक उपार्जित धन से परिवार के पोषण का दोष बतलाया। अत्रि से उपदिष्ट अग्निशर्मा तपस्या करते हुए वल्मीकि से आच्छादित हो गये। पुनरागमन पर सप्तर्षियों ने वल्मीकि से निकलती हुई ध्वनि को सुनकर अग्निशर्मा को उठाया तथा वाल्मीकि (बॉबी में बैठने के कारण) नाम से प्रसिद्धि का वर दिया। वाल्मीकि ने अवन्ती में वल्मीकेश्वर की स्थापना की, जो मनुष्यों को कवित्वशक्ति प्रदान करने वाले हैं। अग्रिम

अध्याय में शुक्रेश्वर, भीमेश्वर, गर्भेश्वर, कामेश्वर, चूडामणीश्वर, चण्डीश्वरादि तीर्थों का माहात्म्य कहा गया है।

(२६-२८ अ.) (कालवन माहात्म्य, अंकपादाख्यस्थान तथा अन्य तीर्थ) प्रारम्भ में कालवन के सौन्दर्यवर्णनपूर्वक इसके चारों ओर अवस्थित पिंगलेश, अंकुरेश्वर तथा ब्रह्मकुण्ड का माहात्म्य वर्णित है। तदनन्तर अंकपादाख्यान स्थान का उल्लेख है। बलराम एवं कृष्ण ने गुरुदक्षिणा में सान्दीपनि के पुत्र को (जिसे पञ्चजन ने मार डाला था) यम से मांगा। यम को युद्ध में परास्त कर गुरु-पुत्र को प्राप्त कर दोनों अवन्ती आये, जहां श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से-कहा "उज्जयिनी में मेरे चरणों द्वारा चिह्नित जो स्थान है वह अंकपादाख्य नाम से प्रसिद्ध होगा तथा मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करेगा"। चन्द्रादित्य, करमेश्वर, गणेशेश्वर, सुकुमेश्वर, जयेश्वर, मार्कण्डेयश्वर, ब्रह्मेश्वर तथा अन्य कुण्डादिकों का माहात्म्य वर्णित है।

(२९-३३ अ.) (अनरकतीर्थ रामेश्वर, सौभाग्यतीर्थ तथा केशवादित्य माहात्म्य, अनरकतीर्थ माहात्म्य वर्णन प्रसङ्ग्य में नरकों (रौरव, शूकर, कुम्भीपाक आदि) का वर्णन तथा नरक में प्राप्त यातनाओं के चित्रण के साथ ही नरक से बचने के उपाय परिगणित है। अनरकतीर्थ में दीपदान का महत्त्व, पूजा विधि तथा फल का कथन है। इसके साथ ही केदारेश्वर, भटेश्वर, इन्द्रेश्वर, गोपेश्वर, आनन्देश्वर आदि के दर्शन-पूजन की विधि एवं फल वर्णित है।

एक समय लक्ष्मण एवं सीता के साथ राम उज्जयिनी आये तथा परशुराम के उपदेश पर अपने पिता दशरथ का श्राद्ध कर महाकाल का दर्शन किया। प्रसन्न शिव ने उन्हें (राम को) अपने नाम से लिङ्ग-स्थापना का आदेश दिया। राम से आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने रामेश्वर की स्थापना की। यहाँ सौभाग्यतीर्थ धृततीर्थादि का भी उल्लेख है।

अर्जुन ने इन्द्र से शस्त्रविद्या प्राप्त की। गुरुदक्षिणा के रूप में इन्द्र ने अर्जुन को हिरण्यपुर निवासी निवातकवच राक्षस का वध करने को कहा। अर्जुन द्वारा निवातकवच के वध पर प्रसन्न इन्द्र ने वर रूप में ब्रह्मा द्वारा पूजित दो प्रतिमाएँ माँगी। मर्त्यलोक आकर इन्द्र ने कृष्ण के उपदेश पर उज्जयिनी में नरादित्य की स्थापना एवम् उपासन की। यहाँ कृष्ण द्वारा स्थापित केशवादित्य के अष्टोन्तरशतनाम भी परिगणित है।

(३४-३७ अ.) (शक्तिभेदतीर्थ (स्कन्दजन्म-कथा) अगस्त्येश्वर, ओंकारेश्वरादि तीर्थ) देव-दानव-युद्ध में परास्त देवों के नेता इन्द्र ने महादेव से एक महासेनापति रूप में पुत्र को मांगा। शिवपार्वती विवाह के अनन्तर काम द्वारा पीड़ित शिव का वीर्यपात होने पर अग्नि ने उसका प्राशन कर लिया तथा असह्य होने पर उसे गङ्गा में त्याग दिया। गङ्गा स्नान के कारण शीतार्त मातृकाओं ने गङ्गा तट स्थित वीर्यरूप अग्नि का सेवन किया। वह वीर्य उनके गर्भ में स्थित हो गया। मुनि शाप के भय से मातृकाओं ने वीर्य को व तपस्या के प्रभाव से गर्भ से निकाल कर शरो (शरपत) के मध्य रख दिया, जिससे षडानन की उत्पत्ति

हुई। यहाँ कार्तिकेय के षोडश नाम (गाङ्गेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति आदि) कथित हैं। स्कन्द में तारक का वध कर अपनी शक्ति को शिप्रा नदी में फैंक दिया। उस शक्ति ने पाताल तक भूमि को विदीर्ण कर दिया जिससे गङ्गा प्रकट हुई। अतः इस तीर्थ का नाम शक्तिभेदतीर्थ पड़ा। अग्रिम अध्यायों में अगस्त्येश्वर, ओमकारेश्वर, अभयेश्वर आदि लिङ्गों का माहात्म्य वर्णित है।

(३८-४७ अ.) (अन्धक की शिवगणत्व प्राप्ति, उज्जयिनी के विभिन्न नाम तथा कुशस्थली-माहात्म्य, उज्जयिनी के राजा अन्धक के पुत्र कनकदानव को इन्द्र ने मार डाला तथा अन्धक के भय से शिव के समीप कैलास पहुँचे। पुत्रवध का ज्ञान होने पर अन्धक ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। शिव ने अन्धक से देवों की रक्षा की। युद्ध में क्षत-विक्षत शरीरवाला अन्धक मायापूर्वक अन्धकार फैलाकर स्वयं छिप गया। अर्जुन द्वारा स्थापित नरादित्य ने प्रकट होकर अन्धकार का नाश किया। भगवान् महेश्वर ने त्रिशूल से अन्धक पर प्रहार किया भीत अन्धक ने शिव की शरण ली। शिव ने उसे अपने गणों का अध्यक्ष बनाया। यहाँ उज्जयिनी के सात कल्पों के नाम क्रमशः (स्वर्णश्रृङ्गा, कुशस्थज, अवन्तिका, अमरावती, चूडामणि, पद्मावती तथा उज्जयिनी) लिखित है। उत्तरवर्ती अध्यायों में राहुतीर्थ तथा रत्नकुण्डस्नानमाहात्म्य वर्णन-प्रसङ्ग में समुद्रमन्थन की प्रसिद्धकथा (अ. ४४) में वर्णित है। आगे उज्जयिनी के कनकश्रृङ्गा (सुवर्णमय शिखर वाली होने से), कुशस्थली (ब्रह्मा द्वारा विष्णु के लिए कुश की एक मूँठ को उच्च स्थान पर बिछाने के कारण), उज्जयिनी (त्रिपुर नामक दैत्य को यहाँ उत्कर्षपूर्वक जीता गया था अतः उज्जयिनी), पद्मावती (यहाँ भगवती लक्ष्मी-पद्मा सदैव विद्यमान रहती है), कुमुदवती (यहाँ सब समय कुमुदवती (कुमुदिनी) खिली रहती है), विशाला (विशाल होने के कारण) आदि नामों की व्याख्या तथा माहात्म्य वर्णित है।

(४८-४९ अ.) (कालप्रमाण तथा ज्वरघ्नीतीर्थ) काल प्रमाण के अन्तर्गत निमिष, काष्ठा, कला, युग तथा कल्पभेद के वर्णन के साथ ही चौरासी कल्पों का समयमान तथा प्रतिकल्पपुरी की चर्चा है। यहाँ शिप्रा के नामकरण का कारण भी प्रतिपादित है- एक समय शिव भिक्षार्थ वैकुण्ठ गये, भिक्षा-दान के समय शिव ने विष्णु की अङ्गुली पर प्रहार कर दिया। अङ्गुली से निर्गत रक्त नदी रूप में प्रवाहित हो गया, यह नदी "शिप्रा" नाम से प्रसिद्ध हुई।

युद्ध में कृष्ण ने सहस्रभुजाओं वाले बाणासुर की मात्र दो भुजाएं छोड़कर सभी काट डालीं। पीड़ित बाणासुर शिव की शरण में गया। दयार्द्र-शिव आकर कृष्ण से युद्ध करने लगे। शिव ने शैवज्वर तथा कृष्ण ने वैष्णवज्वर की उत्पत्ति की। ज्वरों में परस्मर युद्ध हुआ। शैवज्वर पलायित होकर शिप्रा में कूद पड़ा जिससे उसे शान्ति प्राप्त हुई। तबसे शिप्रा का वह स्थान ज्वरघ्नीतीर्थ रूप में प्रसिद्ध हुआ।

(५०-५४ अ.) (शिप्रामाहात्म्य (दमनराजा का वृत्तान्त)अमृतोद्भवमाहात्म्य तथा वराहावतार) दमन नामक राजा मृगया हेतु वन गये। रात्रि होने पर राजा वटवृक्ष में घोड़े को बाँध कर वृक्ष के नीचे सो गये। सोये हुए राजा को सर्प ने काट लिया। यमदूतों द्वारा यातना के समय कौए द्वारा ले जाये जाते हुए राजा के शरीर का माँस शिप्रा में गिर गया जिसके पुण्य से दमन को शिवलोक की प्राप्ति हुई।

शिव एक समय भिक्षार्थ नागलोक को गये। भिक्षा की प्राप्ति न होने पर शिव नागलोक स्थित इक्कीस कुण्डों के अमृतों को अपने तृतीय नेत्र से पी लिये। पीड़ित नाग वासुकि के समीप गये, वासुकि के उपदेश पर नागों ने शिप्रा के समीप आकर शिव की स्तुति की। प्रसन्न शिव ने अमृतोद्भव कुण्ड की स्थापना की, जिससे शिप्रा का एक नाम अमृतोद्भवा (या अमृतसम्भवा) पड़ा।

सनकादिऋषि भ्रमण करते हुए बैकुण्ठ पहुँचे, जहाँ द्वार स्थित जय-विजय ने उन्हें बलात् रोका। मधुसूदन के आने पर अप्रसन्न सनकादि ने जय-विजय को राक्षस (प्रथम जन्म में हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष; द्वितीय में कुम्भकर्ण-रावण; तृतीय में दन्तवक्र-शिशुपाल) होने का शाप दिया। भगवान् ने वाराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष का वध किया तथा पृथ्वी का उद्धार किया। वाराह के हृदय से शिप्रानदी की उत्पत्ति का उल्लेख है।

(५५-५६ अ.) (विन्ध्यवासिनी, विमलोदतीर्थ, क्षातासंगम-माहात्म्य) रेवा (नर्मदा) नदी के जल में निमग्न पृथ्वी को देखकर उसके उद्धारार्थ अगस्त्य ने विन्ध्यवासिनी के यहाँ तपस्या की। प्रसन्न देवी ने उज्जयिनी जाकर विमलोदतीर्थ की स्थापना की। नर्मदा, चर्मण्वती एवं क्षाता तीनों नदियाँ अमरकण्टक से पृथ्वी पर प्रकट हुई। क्षाता नर्मदा का साथ छोड़कर विन्ध्यगिरि का भेदन करती हुई महाकालवन चली आयी, जहाँ नर्मदा के संगम पर क्षाता संगम तीर्थ प्रकट हुआ। इस संगम का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(५७-६२ अ.) (गयातीर्थ तथा पुरुषोत्तम माहात्म्य) पुण्यमय सत्ययुग में युगादिदेव नामक एक प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा थे। इनके राज्य में प्रजा सुखी थी। प्रकृति भी इनके अनुकूल थी। इन्हीं के काल में तुहुण्ड नामक राक्षस सबको अपने वश में कर प्रजा तथा देवों को पीड़ित करने लगा। त्रस्तदेव ब्रह्मा के समीप गये। ब्रह्मा देवों को साथ लेकर विष्णु के पास गये। विष्णु ने देवों को उज्जयिनी स्थित गयातीर्थ जाने का उपदेश दिया। यहाँ तीर्थ की महिमा तथा श्राद्ध का विधान वर्णित है।

लक्ष्मीनारायण संवाद द्वारा अधिकमास (मलमास-तीन वर्ष पर आता है, इसमें सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती) का वर्णन है तथा इस मास में होने वाले व्रतनियमादि की विधि बतलायी गयी है। भगवान् पुरुषोत्तम ही इस मास (अधिकमास) के अधिपति हैं इसीलिए इसे "पुरुषोत्तम" मास कहा जाता है।

यहाँ जटेश्वर, महेश्वर, भार्गवरामतीर्थ तथा कौशिकीनदी एवं गोमती कुण्ड का महत्त्व भी प्रतिपादित है।

(६३-६५ अ.) वामनतीर्थ (वामनावतार-कथा तथा विष्णुसहस्रनाम) विष्णुभक्त प्रह्लाद के पौत्र बलि ने नारद के उपदेश पर, पृथ्वी को जीतने के उपरान्त चक्रवर्ती सम्राट् की पदवी प्राप्त कर इन्द्रादिदेवों को अपने अधीन कर लिया। पीड़ितदेव ब्रह्मा के समीप गये, ब्रह्मा ने उन्हें विष्णु की आराधना करने को कहा। (यहाँ विष्णुसहस्रनाम के विनियोग, ध्यान तथा पाठ का फल वर्णित है।) भगवान ने वामन रूप धारण कर बलि से तीन पग भूमि रूप में (आचार्य शुक्र द्वारा मना किये जाने पर भी) सर्वस्व दान ले लिया। इन्द्र को राज्य प्रदान कर वामन उज्जयिनी आये तथा वामनकुण्ड की स्थापना की। यहाँ वामनकुण्ड के साथ ही वीरेश्वर, कालभैरव, नागालयतीर्थ तथा रमासरस्तीर्थ का माहात्म्य बतलाया गया है।

(६६-७१ अ.) (नृसिंहतीर्थ तथा अन्यतीर्थ) हिरण्यकशिपु ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार कर लिया था। गोरूप में पृथ्वी का ब्रह्मा के समीप जाने, हिरण्यकशिपु के मृत्युविषयक वर (दिन, रात्रि, आकाश, पृथ्वी आदि पर न होने), उज्जयिनी स्थित तीर्थ में स्नान, दान का महत्त्व, दुष्टों के विनाशार्थ भगवान् द्वारा नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु के वध करने की कथा वर्णित है।

कुटुम्बेश्वर, देवप्रयाग, आनन्दभैरव, अखण्डेश्वर, कर्कराज विधूमार्चि तथा चातुर्मास्य आदि का महत्त्व एवम् अन्त में अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य की फलश्रुति प्रतिपादित है।

द्वितीय चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य

(१-५ अ.) (अगस्त्येश्वर, गुहेश्वर, ढुण्ढेश्वर डमरुकेश्वर तथा अनादिकल्पेश्वर) उमा-महेश्वर-संवाद के माध्यम से अवन्तीस्थ चौरासीलिङ्गों का माहात्म्य प्रतिपादित है, जिसमें सर्वप्रथम अगस्त्येश्वर (अगस्त्य ने दानवों को क्रोधाग्नि से भस्म कर डाला, तदनन्तर अहिंसा का विचार कर पश्चात्तापपूर्वक हत्यादोष के निरसन हेतु शिव की आज्ञा से अपने नाम के शिवलिङ्ग की स्थापना की); गुहेश्वर (इनकी उपासना से मकणकऋषि ने मुक्ति प्राप्त की थी); ढुण्ढेश्वर (ढुण्ढ नामक गणनायक द्वारा इन्द्रसभा में रम्भा को काममोहित देखने पर इन्द्र द्वारा अभिशप्त ढुण्ढ ने महाकालवन में अपने नामवाला लिङ्ग स्थापित किया था); डमरुकेश्वर (रुद्र पुत्र वज्र का ईश्वर प्रेरित डमरू द्वारा वध तथा डमरूकेश्वर लिङ्ग की स्थापना, अनादिकल्पेश्वर (कल्प के आदि में विद्यमान इसी लिङ्ग से सभी स्थावरजङ्गम की उत्पत्ति हुई) का माहात्म्य वर्णित है।

(६-१० अ.) (स्वर्णजालेश्वर, त्रिविष्टपेश्वर, कपालेश्वर, स्वर्गद्वारलिङ्ग तथा कर्कोटकेश्वरलिङ्ग) स्वर्णजालेश्वर (शङ्कर की आज्ञा से अग्निपुत्र काञ्चन द्वारा स्थापित), त्रिविष्टपेश्वर (नारद के उपदेश पर त्रिविष्टप द्वारा स्थापित लिङ्ग); कपालेश्वर (ब्रह्मा के

यज्ञ में शिव द्वारा लाये गये कपाल से भीत ब्राह्मणों द्वारा स्थापित लिङ्ग); स्वर्गदारलिङ्ग (शिवगणों द्वारा निरुद्ध स्वर्गद्वार को खोलने हेतु देवों द्वारा स्थापित तथा पूजित) तथा कर्कोटकेश्वर (कर्कोटक नाग द्वारा स्थापित) लिङ्ग का माहात्म्य वर्णित है।

(११-१५ अ.) (सिद्धेश्वर, लोकपालेश्वर, कामेश्वर, कुटुम्बकेश्वर तथा इन्द्रद्युम्नेश्वर); सिद्धेश्वर (ब्राह्मणों द्वारा सिद्धि प्राप्ति हेतु स्थापित); लोकपालेश्वर (हिरण्यकशिपु से परास्त लोकपालों द्वारा दानवों को जीतने की इच्छा से स्थापित); कामेश्वर (अनङ्गीभूत काम द्वारा स्थापित); कुटुम्बकेश्वर (समुद्रमन्थन के समय निर्गत विष को शिव द्वारा पान कर लेने तथा असह्य होने पर शिप्रा को प्रदत्त कालकूट को शिप्रा ने कामेश्वरलिङ्ग के समीप स्थित लिङ्ग के ऊपर उसका निक्षेपण कर दिया था। वहाँ दर्शनार्थ आये ब्राह्मणों द्वारा उसका स्पर्श कर लेने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी, तदनन्तर शिव ने आकर ब्राह्मणों को जीवन (प्रदान कर उस लिङ्ग का कुटुम्बकेश्वर नामकरण किया) तथा इन्द्रद्युम्नेश्वर (इन्द्रद्युम्न द्वारा अक्षयकीर्ति की प्राप्ति हेतु स्थापित) लिङ्ग का महत्व प्रतिपादित है।

(१६-२० अ.) (ईशानेश्वर, अप्सरसेश्वर, कलकलेश्वर, नागचण्डेश्वर तथा प्रतीहारेश्वर) ईशानेश्वर (मुण्डपुत्र तुहुण्ड द्वारा परास्त देवों द्वारा उसे जीतने की इच्छा से पूजित लिङ्ग); अपसरसेश्वर (तालत्रुटि के कारण इन्द्र द्वारा अभिशप्त रम्भा द्वारा नारद के उपदेश पर स्थापित); कलकलेश्वर (उमा-महेश्वर-विवाद के कारण कम्पित विश्व से उत्पन्न कलकल ध्वनि से उत्पन्न कलकल लिङ्ग); नागचण्डेश्वर (नागचण्ड द्वारा स्थापित) तथा प्रतीहारेश्वर (उमा शिव के रमण काल में अग्नि के प्रवेश के कारण प्रतिहारी नन्दी को शिव ने शाप प्रदान किया जिसके निरशन हेतु नन्दी द्वारा स्थापित-प्रतीहारेश्वर) का माहात्म्य वर्णित है।

(२१-२५ अ.) (कुक्कुटेश्वर, मेघनादेश्वर, महालयेश्वर तथा मुक्तीश्वर) कुक्कुटेश्वर (ताम्रचूड द्वारा दत्त शाप के कारण प्रत्येक रात्रि में कुक्कुटत्व की प्राप्ति से मुक्ति हेतु कौशिकनामकराजा द्वारा स्थापित लिङ्ग) मेघनादेश्वर (मदांध राजा की धृष्टता से वृष्टि हुई थी); महालयेश्वर (दृश्यमान समस्त वस्तुएं अन्त में इसमें लय को प्राप्त होती है) तथा मुक्तीश्वर (मुक्तिनामकब्राह्मण द्वारा स्थापित) की महत्ता वर्णित है।

(२६-३० अ.) (लोमेश्वर, अनरकेश्वर, जटेश्वर, रामेश्वर, च्यवनेश्वर) सोमेश्वर (सोम (चन्द्र) द्वारा स्थापित) नरकेश्वर (अल्प पाप के कारण निमि के नरक जाने पर वहाँ अनरकेश्वर के दर्शन से इन्द्रलोक की प्राप्ति); जटेश्वर (वीरधन्वा राजा द्वारा पूजित); रामेश्वर (परशुराम द्वारा इक्कीसबार क्षत्रियसंहार के कारण शत्रुहत्या-दोष के निवारणार्थ स्थापित लिङ्ग) तथा च्यवनेश्वर (महर्षि च्यवन द्वारा पूजित लिङ्ग की उपासना-विधि एवं माहात्म्य वर्णित है।

(३१-३५ अ.) (खण्डेश्वर, पत्तनेश्वर, आनन्देश्वर कंथडेश्वर, इन्द्रेश्वर) खण्डेश्वर (भद्राश्व राजा द्वारा अगस्त्य की आज्ञा से खण्डित व्रत की पूर्ति हेतु स्थापित लिङ्ग); पत्तनेश्वर (जन्ममृत्युजरारोगनिवारक तथा पापविनाशक); आनन्देश्वर (अनमित्र के पुत्र आनन्द द्वारा स्थापित), कंथडेश्वर (वितस्तातट निवासी पाण्डव नामक ब्राह्मण द्वारा कन्या हेतु स्थापित), इन्द्रेश्वर (पुत्र कुशध्वज के स्वर्गपतन से क्रुद्ध ब्रह्मा द्वारा अपनी जटा को उखाड़कर भूमि पर पटकने से वृत्र की उत्पत्ति हुई; वृत्र ने इन्द्र को परास्त किया, परास्त इन्द्र ने बृहस्पति की आज्ञा से महाकालवन जाकर तपस्या द्वारा वृत्र का वध किया, उसकी हत्या दोष के निवारणार्थ स्थापित लिङ्ग का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(३६-४० अ.) (मार्कण्डेयेश्वर, शिवेश्वर, कुसुमेश्वर, अक्रूरेश्वर, कुण्डेश्वर) मार्कण्डेयेश्वर (मार्कण्डेय द्वारा स्थापित), शिवेश्वर (मार्कण्डेयेश्वर के उत्तर में स्थित राजा रिपुञ्जय द्वारा पूजित), कुसुमेश्वर (कुसुम क्रीडा के कारण, कुसुमपण्डितलिङ्ग); अक्रूरेश्वर (क्रूरबुद्धि भृंगिरिटि द्वारा अपनी क्रूरता के विनाश हेतु स्थापित) कुण्डेश्वर (एक समय वृषारूढ़ होकर पार्वती के साथ जाते हुए शिव अन्तर्धान हो गये, शिवदर्शन की कामनावाली पार्वती ने विघ्नभूत कुण्ड नामक गण को शाप प्रदान कर दिया, शापनिवृत्तिहेतु कुण्ड द्वारा स्थापित) के दर्शन का फल वर्णित है।

(४१-५० अ.) (लुंपेश्वर, गङ्गेश्वर, अंगारकेश्वर, उत्तरेश्वर, त्रिलोचनेश्वर, वीरेश्वर, नूपुरेश्वर, अभयेश्वर, पृथुकेश्वर तथा स्थावरेश्वर) लुम्पेश्वर (ब्राह्मणवध से कुष्ठी लुम्प राजा द्वारा कुष्ठरोग निवारणार्थ स्थापित, अपरनाम सैकतेश्वर); गङ्गेश्वर (भागीरथद्वारा शिप्रा तट पर स्थापित); अंगारकेश्वर (शिवगात्र से उत्पन्न, अंगारकद्वारा पूजित); उत्तरेश्वर (नवग्रहों से पीड़ित इन्द्रादि देवों द्वारा वृष्टि हेतु पूजित); त्रिलोचनेश्वर (रत्नावली चरित्र वर्णन पूर्वक इस लिङ्गको अवन्ती में विद्यमान सभी लिङ्गों से इसे श्रेष्ठ बतलाया गया है), वीरेश्वर (वीर द्वारा पूजित, विना मुद्रा तथा मन्त्र के सिद्धिदाता) नूपुरेश्वर (कुबेर से अभिशप्त नूपुर नामक गण द्वारा उपासित), अभयेश्वर (भवभय से अभय देने वाला), पृथुकेश्वर (नारद के उपदेश पर महाकाल वन में पश्चिम में स्थित पृथु द्वारा पूजित), स्थावरेश्वर (शनि द्वारा पूजित) लिङ्ग का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(५१-५६ अ.) (शूलेश्वर, ओंकारेश्वर, विश्वेश्वर, कण्ठेश्वर, सिंहेश्वर रेवन्तेश्वर) शूलेश्वर (देवी ने अंधकासुर का वध शूल द्वारा किया जिसके नाम पर इस लिङ्ग की स्थापना हुई), ओंकारेश्वर (शिव के मुख से ओंकार शब्द निकलने के कारण ओंकार नामकरण) विश्वेश्वर (विश्वरथ राजा द्वारा ब्राह्मणवध जनित पाप के कारण चाण्डाल योनि में द्वादश बार जन्म तथा त्रयोदश जन्म में विश्वेश कुल में उत्पत्ति तथा इनके द्वारा महाकालवन में विश्वेश्वर की स्थापना); कण्टेश्वर (सत्यविक्रमराजा द्वारा निष्कण्टक राज्य प्राप्ति हेतु स्थापित); सिंहेश्वर (तपस्यालीनदेवी के निकट आगतब्रह्मा के वचन से उस देवी

के मुख से सिंह की उत्पत्ति हुई, पार्वती की आज्ञा से सिंह द्वारा अपने नाम से स्थापित लिङ्ग) रेवन्तेश्वर (सूर्यपुत्र रेवन्त द्वारा स्थापित) लिङ्ग का माहात्म्य उल्लिखित है।

(५७-६१ अ.) (घण्टेश्वर, प्रयागेश्वर, सिद्धेश्वर, मतंगेश्वर, सौभाग्येश्वर, घण्टेश्वर (शिव के गण घण्ट द्वारा स्थापित); प्रयागेश्वर (सावित्री दर्शन से नारदमुनि का ज्ञान लुप्त हो गया तदनन्तर सावित्री के वचन से नारद अवन्तीस्थित प्रयाग गये जहाँ प्रयागेश्वर की स्थापना की); सिद्धेश्वर (राजा अश्वशिर द्वारा सिद्धि प्राप्ति हेतु स्थापित) मतंगेश्वर (सुगति ब्राह्मण के पुत्र मतङ्ग द्वारा स्थापित एवं पूजित); सौभाग्येश्वर (पति वियोग से दुःखी अश्ववाहन राजा की स्त्री द्वारा सौभाग्य-प्राप्ति-हेतु स्थापित) लिङ्गों का महत्त्व वर्णित है।

(६२-६६ अ.) (रूपेश्वर, धनुःसाहस्रेश्वर, पशुपतीश्वर, ब्रह्मेश्वर, जल्पेश्वर) रूपेश्वर (एक बार पद्मराज कण्वाश्रम गये तथा कण्व की अनुपस्थिति में उनकी कन्या से व्यभिचार किया, ज्ञानचक्षु से ज्ञात होने पर कण्व ने राजा को कुरूप होने का शाप दिया; रूप की प्राप्ति हेतु राजा द्वारा पूजित), धनुःसाहस्रेश्वर (विदूरथ राजा द्वारा पूजित इस लिङ्ग से विदूरथ को धनुसहस्रतुल्य धनुष की प्राप्ति के कारण प्रस्तुत नामकरण) पशुपतीश्वर (पशुपाल राजा द्वारा पूजित); ब्रह्मेश्वर (ब्रह्मा द्वारा स्थापित); जल्पेश्वर (जल्प नामक राजा द्वारा स्थापित) लिङ्ग का वर्णन है।

(६७-७६ अ.) केदारेश्वर, पिशाचेश्वर, सङ्गमेश्वर, दुर्धर्षेश्वर, प्रयागेश्वर, चन्द्रादित्येश्वर, शरंभेश्वर, राजस्थलेश्वर, बडलेश्वर, अरुणेश्वर) केदारेश्वर (हिमपीड़ित देवों का कैलासगमन, जहाँ केदारेश्वर के प्रभाव से हिमपीडा का विनाश), पिशाचेश्वर (सोमनामक शूद्र दुराचार के कारण पिशाच योनि में उत्पन्न हुआ, शाकटायन ब्राह्मण के उपदेश पर सोम द्वारा पूजित लिङ्ग) सङ्गमेश्वर (राजा सुबाहु को प्रस्तुत लिङ्ग के पूजन से मोक्ष की प्राप्ति हुई थी); दुर्धर्षेश्वर (दुर्धर्ष राजा द्वारा स्थापित); प्रयागेश्वर (मनुष्य योनि से मुक्तिप्राप्त्यर्थ गङ्गा द्वारा पूजित); चन्द्रादित्येश्वर (चन्द्रमा द्वारा पूजित) करमेश्वर (राजा वीरकेतु शरभ का पीछा करते हुए महारण्य में चले गये, जहाँ शरभ अदृश्य हो गया, एक ऋषि द्वारा उपदिष्ट राजा द्वारा शरभेश्वर की स्थापना तथा पूजन से कैलासादि की प्राप्ति); राजस्थलेश्वर (रिपुन्जय पूजित) बडलेश्वर (मणिभद्रयक्ष के पुत्र बडल द्वारा प्रस्तुत लिङ्गके पूजन से मोक्ष प्राप्ति); अरुणेश्वर (विनतापुत्र अरुण द्वारा पूजित) का माहात्म्य वर्णित है।

(७७-८४ अ.) (पुष्पदन्तेश्वर, अविमुक्तेश्वर, हनुमत्केश्वर, स्वप्नेश्वर, पिंगलेश्वर, कायावरोहणेश्वर, बिल्वेश्वर, उत्तरेश्वर) पुष्पदन्तेश्वर (शिनि नामक ब्राह्मण के पुत्र पुष्पदन्त द्वारा स्थापित), अविमुक्तेश्वर (शाकल नगरीय चित्रसेन राजा ने अपनी पुत्री के उपदेश पर लिङ्गपूजनकर मोक्ष प्राप्त किया), हनुमत्केश्वर (हनुमान् द्वारा स्थापित), स्वप्नेश्वर (दुःस्वप्ननाशक-लिङ्ग), पिङ्गलेश्वर (पिङ्गलनामवाली पिङ्गलकन्या द्वारा स्थापित), कायावरोहणेश्वर (दक्षयज्ञध्वंस के समय वीरभद्रादि शिवगणों द्वारा पराजित दक्षादि के द्वारा लिङ्गपूजन से

कायावरोहण के कारण प्रस्तुत नामकरण), बिल्वेश्वर (बिल्वनृप द्वारा पूजित) तथा उत्तरेश्वर (वृद्ध दर्दुर द्वारा गाल्व के शाप के कारण दर्दुरयोनि प्राप्ति का उल्लेख तथा उत्तरेश्वर के पूजन से गालवदत्त शाप से मुक्ति वर्णित है) लिङ्ग के पूजन का माहात्म्य प्रतिपादित है।

आवन्त्यखण्ड का तृतीय रेवाखण्ड

(१-५ अ.) (मङ्गलाचरण, नर्मदा-माहात्म्य) प्रारम्भ में पुराणों तथा उपपुराणों की गणना एवम् उनकी श्लोकसंख्या प्रदत्त है। तदनन्तर जनमेजय-वैशम्पायन संवाद द्वारा वनवासकाल में पाण्डव जब विन्ध्य-यात्रा पर थे, उसी समय मार्कण्डेयऋषि ने युधिष्ठिर को गङ्गादितीर्थों की तुलना में नर्मदातीर्थ की श्रेष्ठता बतलायी, साथ ही मार्कण्डेय ने अपनी कथा के वर्णन के द्वारा, प्रलय काल में भ्रमण करते हुए मनु तथा किसी अबला के अपनी नाव में आरोहण का उल्लेख करते हुए त्रिकूट शिखरस्थ शंकर के दर्शन तथा नर्मदा की उत्पत्ति का वर्णन किया। मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को नर्मदा का माहात्म्य भी बतलाया। यहाँ नर्मदा के पञ्चदश नाम चित्रोत्पला, विपाशा, रञ्जना, बालुवाहिनी आदि) तथा नर्मदा नामनिरुक्ति लिखित है।

(६-१३ अ.) (नर्मदा की उत्पत्ति तथा स्थिति) त्रिकूट पर्वत के दो शिखरों से नर्मदा एवं गङ्गा की उत्पत्ति तथा तीसरे भग्न शिखर से सप्तकुल पर्वतों की उत्पत्ति हुई। एक समय महाशिवलिङ्गार्चन करती हुई एक कन्या को देखकर मार्कण्डेय ने उसका नाम पूछा; कन्या ने अपना नाम नर्मदा बतलाया। यहाँ नर्मदा एवं शंकर का संवाद, नर्मदोत्पत्ति, नर्मदा-स्नानफल का कथन, नर्मदा की सभी कल्पों में स्थिति तथा २१ कल्पों में नर्मदा के क्रमपूर्वक नाम वर्णित हैं।

(१४-२५ अ.) कालरात्रिकृत सृष्टिसंहारवर्णन, संवर्तकाल में द्वादशादित्यों का प्रतपन, पञ्चमहाभूतों का प्रकोप, चतुस्समुद्रों के एक होने, गजशुण्डसमान धारावाली वृष्टि, चौदहों भुवनों का जल के मध्य एक होने, मार्कण्डेय कृत भगवान् तथा नर्मदा की स्तुति एवं प्रजा संहारचिह्न का वर्णन है। साथ ही नर्मदा तीरस्थ तीर्थों का एवं कपिला नदी की उत्पत्ति तथा अन्य नदियों यथा- कपिला-विशली, करा-नर्मदा संगम तथा नीलगङ्गा आदि के सङ्गम का माहात्म्य वर्णित है।

(२६-२९ अ.) (जालेश्वरोत्पत्ति, त्रिपुर-नाश) बाणासुर से पीड़ित इन्द्रादि देव ब्रह्मा-विष्णु के साथ कैलास पहुँचे तथा महादेव की स्तुति की। शिव की आज्ञा से नारद बाणासुर के समीप गये। बाणासुर के अन्तःपुर में नारद ने बाण की स्त्रियों को मधूक

तृतीया के व्रत-स्नानादि का उपदेश दिया। नर्मदा के तट पर उमा के साथ स्थित शिव ने समन्त्र-प्रेषित बाण द्वारा त्रिपुर को नष्ट कर डाला। शिवलिङ्ग को मस्तक पर धारण कर बाण ने शिव की स्तुति की, प्रसन्न शिव ने बाणासुर को वर दिया। यहाँ ज्वालेश्वर तथा अमरेश्वरतीर्थ एवं कावेरीसंगम में स्नानदानादि का माहात्म्य वर्णित है।

(३०-७५ अ.) (विविध तीर्थ) दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्ततीर्थ, पत्रेश्वरतीर्थ, शुक्रेश्वरतीर्थ, अग्नितीर्थ, रवितीर्थ, मेघनादतीर्थ, दारुतीर्थ, देवतीर्थ, नर्मदेश्वरतीर्थ, कपिलातीर्थ, करंजेश्वर (करंज नामक दनुपुत्र द्वारा स्थापित), कुण्डलेश्वर (विश्वनस पुत्र कुण्डल द्वारा स्थापित), पिप्पलादेश्वर, विमलेश्वर, शूलभेदतीर्थ (शूलभेद में दानधर्म प्रशंसा), शूलभेद माहात्म्य, पुष्पकिरणीतीर्थ, आदित्यतीर्थ, रेवातीर्थ (रेवातीरस्थ आदित्येश्वर), शुक्रेश्वरतीर्थ, करोडीश्वर (इन्द्रस्थापित), कुमारेश्वर, रवितीर्थ, कामेश्वर, मणिनागेश्वर, गोपारेश्वर तथा शङ्खचूडतीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(७६-८९ अ.) पारेश्वर (पुत्रप्राप्त्यर्थ पराशर द्वारा स्थापित), भीमेश्वर, नारदेश्वर, दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थ, वरुणेश्वर, वहिनतीर्थ, हनुमन्तेश्वर (ब्रह्महत्या दोष निवारणार्थ हनुमान द्वारा स्थापित) कपितीर्थ, रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, कुम्भेश्वर, सोमनाथेश्वर, पिङ्गलेश्वर, ऋणत्रयमोचनतीर्थ, कपिलेश्वरतीर्थ, तथा पूतिकेश्वरतीर्थ का वर्णन है।

(९०-१२० अ.) चक्रतीर्थ (चक्रनिर्मित) चण्डादित्यतीर्थ, यमहास्यतीर्थ, कल्होणीतीर्थ, नन्दिकेश्वरतीर्थ, नारायण (नरनारायण स्थापित), कोटीश्वर, व्यासतीर्थ, प्रभासतीर्थ, नागेश्वर, मार्कण्डेयेश, संकर्षण, मन्मथेश्वर माहात्म्य, एरण्डीसंगम, सुवर्णशिलातीर्थ, करंज, कामद, भण्डारी, रोहिणी, चक्र, धौतपाप, स्कन्द, अग्निरस, कोटितीर्थ, अयोनिसंभव, अङ्गारक, पाण्डु, त्रिलोचन, इन्द्रतीर्थ, कल्होणीतीर्थ तथा कंबुकेश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(१२१-१५९ अ.) सोमतीर्थ, चन्द्रहास, कोहनस्व (कोहनस्व स्थापित), कर्दमेश्वर, नर्मदेश्वर, रवितीर्थ, अयोनिप्रभव, अग्नितीर्थ, भृकुटेश्वर, ब्रह्मतीर्थ, देवतीर्थ, नागेश्वर, आदिवाराह, कुबेरादिलिङ्गचतुष्टय, रामेश्वर, सिद्धेश्वर, ककंटेश्वर, शुक्रेश्वर, नन्दाह्रदतीर्थ, तापेश्वर, रुक्मिणीतीर्थ, योजनेश्वर, द्वादशतीर्थ, शिवतीर्थ, अस्माहकतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, मङ्गलेश्वर, लिङ्गवराहतीर्थ, कुसुमेश्वरलिङ्ग, श्वेतवाराहतीर्थ, आर्गलेश्वर, आदित्येश्वर, कलकलेश्वर, शुक्लतीर्थ, हुंकारस्वामितीर्थ, संगमेश्वर एवम् अनरकेश्वरतीर्थ में स्नान दान का फल उल्लिखित है।

(१६०-१९१ अ.) मोक्षतीर्थ, सर्पतीर्थ, गोपेश्वर, नागतीर्थ, सांवौरेश्वर, सिद्धेश्वर, सिद्धेश्वरीतीर्थ, मार्कण्डेयेश्वर, अंकूरेश्वर, माण्डव्यतीर्थ (१६९-१७२ अ.), शुद्धेश्वर, गोपेश्वर, कपिलेश्वर, पिंगलेश्वर, भूतीश्वर, गङ्गावहक, गौतमेश्वर, दशाश्वमेधिकतीर्थ, भृगुतीर्थ, भृगुकच्छ, केदारेश्वर, धौतपापतीर्थ, एरण्डीतीर्थ, कनखलेश्वर, कालाग्निरुद्र, शालिग्राम, वराह, चन्द्रप्रभात तथा द्वादशादित्यतीर्थ-माहात्म्य का वर्णन है।

(१६२-२२६ अ.) श्रीपतिक्षेत्रमाहात्म्य, हंसतीर्थ, मूलस्थानतीर्थ, शूलेश्वर, आश्विनतीर्थ, सावित्रीतीर्थ, देवतीर्थ, शिखीतीर्थ, कोटितीर्थ, पैतामहतीर्थ, कुर्करीतीर्थ, दशकन्यातीर्थ, सुवर्णबिन्दु, ऋणमोचन, पुष्कलीतीर्थ, पुंखिलतीर्थ, मुण्डितीर्थ, एकशालडिंडिमेश्वरतीर्थ, अमलेश्वर, श्रीकपालेश्वर, श्रृङ्गितीर्थ, आषाढतीर्थ, एरण्डीतीर्थ, जामदग्नेश्वर, कोटितीर्थ, लोटणेश्वर, हंसेश्वर, तिलोदेश्वर, वासेश्वर, कोटीश्वर, अलिकेश्वर, विमलेश्वर आदि का माहात्म्य वर्णित है[1]।

(२२७-२३२ अ.) उपरिलिखित नर्मदातीरस्थ तीर्थों की यात्रा-विधि का उल्लेख, परार्थतीर्थयात्रा का माहात्म्य, रेवाखण्ड के श्रवण, पाठ आदि का फल, तीर्थावलि का वर्णन, तीर्थों की गणनापूर्वक रेवाखण्ड पुस्तक के दान का फल वर्णित है।

स्कन्दपुराण का षष्ठ नागरखण्ड

(१-६ अ.) (मङ्गलाचरण, त्रिशंकूपाख्यान हाटकेश्वर-माहात्म्य तथा वृत्रासुर-वध) सूत-शौनक संवाद के माध्यम से लिङ्गोत्पत्ति की कथा वर्णित है। एक समय स्त्रीवियुक्त दिगम्बरशिव ऋषियों के आश्रम गये। उनको देखकर ऋषियों ने शिव को शाप दे दिया, बाद में स्तुति से सन्तुष्ट शिव ने लिङ्गपूजन की विधि बतलायी। तदनन्तर हाटकेश्वर जाकर देवों ने लिङ्ग की स्थापना की। त्रिशंकु-आख्यान के अन्तर्गत त्रिशंकु के चाण्डालत्व प्राप्ति का वर्णन है। त्रिशंकु ने सशरीर स्वर्ग जाने की प्रार्थना वसिष्ठ से की। वसिष्ठ द्वारा असमर्थता जताने पर तथा त्रिशंकु के दुराग्रह को देखते हुए क्रुद्ध वसिष्ठ के पुत्र ने त्रिशंकु को चाण्डाल होने का शाप दे दिया। चाण्डाल-त्रिशंकु अपने पुत्र हरिश्चन्द्र को राज्य देकर वन को चले गये, जहाँ विश्वामित्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने की प्रतिज्ञा की। हाटकेश्वर की उपासना से त्रिशंकु चाण्डालत्व से मुक्त हुए तथा स्वर्गप्राप्ति हेतु यज्ञ किया। त्रिशंकु को स्वर्ग की प्राप्ति न होते देख विश्वामित्र ने तपस्या से नवीन स्वर्ग की रचना की तथा त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा। विश्वामित्र एवं ब्रह्मा की सृष्टि में विवाद होने पर ब्रह्मादि देवों के कहने पर विश्वामित्र ने नूतन सृष्टि को समाप्त किया।

हाटकेश्वर के प्रभाव को सुनकर सभी प्राणी वहाँ आकर रहने लगे। विश्वामित्र ने भी कुरुक्षेत्र छोड़कर अपना आवास वहीं बनाया। विष्णु की कृपा से वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई। दधीचि की अस्थियाँ प्राप्त कर इन्द्र ने वृत्र का वध किया। ब्रह्म-हत्या दोष निवारणार्थ इन्द्र हाटकेश्वर गये तथा पूजन किया।

---

१. वेङ्कटेश्वर संस्करण में मात्र २२६ अ. हैं जबकि मोर प्रकाशन संस्करण में २३६ अ. हैं। सत्यनारायण व्रत की कथा तथा विधि मोर संस्करण २३३-२३६ अ. में प्राप्त है।

(१०-१६ अ.) (शंखतीर्थ (चमत्कार नृपाख्यान) तथा अचलेश्वर माहात्म्य) एक बार चमत्कार नृप मृगया हेतु वन गये। वहाँ बच्चे को दुग्धपान करा रहीं मृगी को राजा ने मार डाला। मृगी प्रदत्त शाप से राजा कुष्ठी हो गये, हाटकेश्वर क्षेत्र के शंखतीर्थ में स्नानकर राजा स्वस्थ शरीर हुए।

शंखतीर्थोत्पत्ति-वृत्तान्त वर्णन प्रसंग में लिखित के आश्रम के फलों को शंख द्वारा तोड़े जाने पर लिखित द्वारा शंख के हाथ काट डालने का उल्लेख है। तदनन्तर हाटकेश्वर स्थित शंखतीर्थ में तपस्या कर शंख स्वस्थ हुए थे। राजा चमत्कार ने अपने पुत्रों को राज्य प्रदान कर अचलेश्वर नामक लिङ्ग की स्थापना तथा उपासना की थी। यहाँ रक्तशृङ्ग का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

(१७-२३ अ.) (गयाशिरो महात्म्य (विदूरथचरित) चमत्कारपुर की चारों दिशाओं में स्थित तीर्थों के वर्णन क्रम में। प्रारम्भ में गया शिर का वर्णन है। राजा विदूरथ मृगया हेतु वन को गये। उन्होंने पितृकूपिका तीर्थ पर अपने पितरों का श्राद्ध किया। एक समय राम-लक्ष्मण-सीता भी पितृकूपिका तीर्थ पर आये थे। यहाँ श्राद्ध करने से पितरों का साक्षात् दर्शन राम ने किया था। मन में राम एवं सीता के वध का विचार उठने पर लक्ष्मण बालमण्डनतीर्थ में स्नान कर विश्वासघात दोष से निवृत्त हुए थे। यहाँ अन्य तीर्थों यथा-बालमण्डन तथा मृगतीर्थ का भी वर्णन है।

(२४-२७ अ.) (विष्णुपदतीर्थ, गोकर्णतीर्थ तथा कलिकाल-माहात्म्य) बलिनिग्रह के समय वामन द्वारा दो पैरों से ही लोकों को व्याप्त कर तृतीय पाद ब्रह्माण्ड के उर्ध्वभाग में रखने पर गङ्गा निस्सृत हो गयी थी, जिससे विष्णुपदतीर्थ की उत्पत्ति हुई। अन्तिमाध्याय में चतुर्युगों का कालपरिगणन तथा कलिकाल का माहात्म्य वर्णित है।

(२८-३२ अ.) (सर्वतीर्थमाहात्म्य, (सिद्धेश्वर नागह्रद तथा सप्तर्षितीर्थ) बृहस्पति-इन्द्र-संवाद के माध्यम से सभी तीर्थों की चर्चा की गयी है। सर्पवधदोष के निरसन हेतु वत्सऋषि ने सिद्धेश्वर की पूजा कर सिद्धि प्राप्त की थी। वृहस्पति की आज्ञा से सिद्धाधिप नामक हंस ने पुत्र प्राप्त्यर्थ इस लिङ्ग की स्थापना तथा पूजन किया था। अतः इसका नाम सिद्धेश्वर पड़ा। अन्त में नागह्रद (नवनागों द्वारा स्थापित) तथा सप्तर्षि-तीर्थ का उल्लेख है।

(३३-३५ अ.) (अगस्त्याश्रम-माहात्म्य) विन्ध्य एवं सूर्य के मध्य विवाद होने पर सूर्य अगस्त्य के समीप आये। विन्ध्य को निम्न कर अगस्त्य दक्षिण दिशा में हाटकेश्वर पहुँचे। यहाँ पत्नी लोपामुद्रा के साथ रहते हुए अगस्त्य ने लिङ्ग की स्थापना की। जलवासी दैत्यों के विनाश हेतु देवों ने अगस्थ्य से समुद्रजलपान की प्रार्थना की। अगस्त्य ने सम्पूर्ण जल का पान कर लिया। तदनन्तर देवों ने दैत्यों का वध किया। अगस्त्य ने चित्रेश्वर पीठ की स्थापना की।

(३६-४१ अ.) (चित्रेश्वरपीठ तथा अन्य तीर्थ) प्रस्तुत अध्यायों में चित्रेश्वर (अगस्त्य स्थापित), धुन्धुमारेश्वर, ययातीश्वर, चित्रशीला मंकणकेश्वरलिङ्ग (मंकणक ऋषि स्थापित), जलशोय्यपत्ति (बाष्कलिदैत्यपीडित देवों द्वारा अशून्यशयन तिथि पर भगवान् का पूजन करने से भगवान् ने बाष्कलि का वध कर वही निवास किया था) की कथा वर्णित है।

(४२-४८ अ.) (विश्वामित्र-कुण्ड) विश्वामित्र-मेनका समागम के समय विश्वामित्र द्वारा मेनका को उपदिष्ट स्त्रीधर्म यहाँ लिखित है। विश्वामित्र द्वारा पातिव्रत्य के उपदेश से रुष्ट मेनका ने विश्वामित्र को तथा विश्वामित्र ने मेनका को वृद्धावस्था प्राप्ति का शाप दे दिया। विश्वामित्र द्वारा वहाँ लिङ्ग की स्थापना की गयी वहाँ स्थित कुण्ड विश्वामित्र के नाम से प्रख्यात हुआ। यहाँ पुष्करतीर्थ, सरस्वतीतीर्थ (मूकत्व समाप्त करने वाला), महाकाल तथा उमा-महेश्वर लिङ्ग (हरिश्चन्द्र द्वारा पुत्र प्राप्त्यर्थ स्थापित) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(४६-५१ अ.) (कलशेश्वर-लिङ्ग-माहात्म्य) एक बार कलशनृप के पास महर्षि दुर्वासा चातुर्मास्य-व्रत के पारण हेतु आये। राजा द्वारा दुर्वासा को मांस-भोजन प्रस्तुत किये जाने पर दुर्वासा ने कलश को व्याघ्र होने का शाप दे दिया, जिससे राजा व्याघ्र हो गये। शाप से व्याघ्रत्व प्राप्त राजा नन्दिनी द्वारा उपदिष्ट होने पर बाण-स्थापित लिङ्ग के पूजन से व्याघ्रत्व मुक्त हुए तथा पूर्व राज्य को प्राप्त किये। अन्त में कलशेश्वर का महत्व वर्णित है।

(५२-६० अ.) (रुद्रकोटि, भ्रूणगर्ता, चर्ममुण्डा, साम्बादित्य, शिवगङ्गा तथा नरादित्येश्वर माहात्म्य) मित्रसह नामक राजा को वसिष्ठ ने राक्षसत्व प्राप्ति का शाप दे दिया था, राक्षस रूप में राजा ने अनेक ब्राह्मणों का वध कर डाला। ब्रह्महत्या दोष की निवृत्ति राजा द्वारा भ्रूणगर्ता तीर्थ में स्नान करने से हुई। अग्रिमाध्यायों में नल द्वारा स्थापित नलेश्वर, विदुर स्थापित विदुरेश्वर तथा नरादित्येश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(६१-६५ अ.) (शर्मिष्ठा तीर्थ-माहात्म्य तथा अन्य तीर्थ) प्रारम्भ में विषकन्या की उत्पत्ति का वर्णन है। लोकापवाद से दुखी विषकन्या तपस्या हेतु वन गयी। पञ्चाग्नि-साधनपूर्वक विषकन्या की तपस्या से प्रसन्न पार्वती ने इन्द्राणी रूप में विषकन्या को वर दिया। विषकन्या ने पुनः पार्वती की उपासना की जिससे प्रसन्न पार्वती विषकन्या को अपने साथ कैलास ले गयीं। तदनन्तर सोमेश्वर (सोम-स्थापित), चमत्कारी दुर्गादेवी (चमत्कार-नृप-स्थापित) तथा आनर्तकेश्वर एवं शूद्रेश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(६६-६६ अ.) (रामह्रद-माहात्म्य) एक बार सहस्रार्जुन जमदग्नि के आश्रम आया। यहाँ कामधेनु के प्रभाव को देखकर सहस्रार्जुन ने जमदग्नि से उसकी याचना की। पर जमदग्नि द्वारा अस्वीकार किये जाने पर सहस्रार्जुन ने जमदग्नि का वध कर डाला। पिता के वध का समाचार सुनकर परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियहीन करने की प्रतिज्ञा की तथा युद्ध में सहस्रार्जुन का वध किया। परशुराम ने हाटकेश्वर में सहस्रार्जुन के शरीर से निस्सृत

रक्त से पिता का श्राद्ध किया तथा पृथ्वी की इक्कीसबार क्षत्रियरहित कर विजित-भूमि ब्राह्मणों को दान दे दिया एवम् रामह्रद की स्थापना की।

(७०-७९ अ.) (शक्ति-माहात्म्य, पाण्डव-कौरवादि स्थापित लिङ्ग, हराश्रयवेदिका, रुद्रशीर्ष तथा बालखिल्याश्रम-माहात्म्य) तारकासुरवध वर्णन में कार्तिकेय की उत्पत्ति तथा कार्तिकेय स्थापित शक्ति का माहात्म्य वर्णित है। एक समय पाण्डव धृतराष्ट्रादि हाटकेश्वर आये, तदनन्तर द्वारवती गये। वहाँ दुर्योधन ने भानुमती से विवाह किया। हाटकेश्वर में धृतराष्ट्रादि ने अनेक लिङ्गों की स्थापना की। यहाँ यज्ञभूमि का माहात्म्य तथा मुण्डीरकालप्रियमूलस्थान की चर्चा है।

शिव-पार्वती के विवाह के समय पार्वती-दर्शन से ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया। उस पाप से लिप्ताङ्ग ब्रह्मा रुद्रशिर की आराधना कर दोषनिवृत्त हुए। अन्त में हराश्रयवेदिका, रुद्रशीर्ष (व्यभिचारिणी ब्राह्मणी इस दर्शन मात्र से दोष मुक्त हुई), तथा बालखिल्य का माहात्म्य वर्णित है।

(८०-८३ अ.) (सुपर्णाख्य-माहात्म्य) कश्यप द्वारा अपनी पत्नी विनता को प्रदत्त अमृत-कलश के प्राशन से गरुड़ की उत्पत्ति हुई। एक बार गरुड़ ब्राह्मणमित्र की कन्या के लिए वर चयन हेतु प्रस्थान किये। मार्ग में इन्हें नारद मिले। नारद ने ब्राह्मणकन्या विष्णु को समर्पित करने को कहा। कन्या को विष्णु-पत्नी रूप में देखकर लक्ष्मी ने उसे अश्वमुखी होने का तथा विप्र ने लक्ष्मी को गजमुखी होने का शाप दे दिया। विष्णु द्वारा ब्राह्मणकन्या को सान्त्वना प्रदान की गयी। विष्णुपुरस्थित शाण्डिली नामकी वृद्धा को देखकर गरुड़ द्वारा परिहास करने पर वृद्धा ने गरुड़ के पक्ष जल जाने का शाप दे दिया। पुनः शाण्डिली के उपदेश पर गरुड़ हाटकेश्वर गये तथा शिव की आराधना से पुनः सुवर्णमय पक्ष प्राप्त किये।

(८४-८९ अ.) (महालक्ष्मी, अम्बावृद्धा तथा पादुका-माहात्म्य) ब्राह्मण प्रदत्त शाप से मुक्ति हेतु लक्ष्मी ने ब्रह्मा की उपासना की। ब्रह्मा ने लक्ष्मी के शाप को समाप्त कर वर दिया तथा उस स्थान का "गजवक्त्र महालक्ष्मी" नामकरण किया।

काशिराज की अम्बावृद्धा नामवाली स्त्री ने काशिराज की मृत्यु के अनन्तर पुर की रक्षा हेतु वहीं निवास किया तथा हाटकेश्वर में ही अपने नाम से अम्बावृद्धा नामक लिङ्ग की स्थापना की। चमत्कारराज की प्रार्थना पर अम्बावृद्धादेवी द्वारा अपनी पादुका की स्थापना की गयी जिसके दर्शन से सर्वसिद्धि-प्राप्त का उल्लेख है।

(९०-९५ अ.) (अग्नितीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, गोमुख, लोहयष्टि तथा अजापालेश्वरी) सोमवंशीय प्रतीप के दो पुत्रों देवापि तथा शन्तनु में से ज्येष्ठ पुत्र को राज्य न प्रदान कर कनिष्ठ शन्तनु को राज्याभिषिक्त करने से रुष्ट इन्द्र ने अनावृष्टि कर दी। इसी कारण वन में भ्रमण करते हुए विश्वामित्र ने किसी चण्डाल के घर में श्वमांस से अग्नि में पञ्चमहायज्ञ किया। रुष्ट अग्नि ने अपने को सर्वत्र छिपा लिया। देवों द्वारा कारण पूछे जाने

पर अग्नि ने इन्द्र की अनावृष्टि तथा विश्वामित्र के हवन को कारण बतलाया। बाद में इन्द्र ने वर्षा की तथा ब्रह्मा ने अग्नि को वर दिया तथा यहाँ स्थित ह्रद का अग्नितीर्थ नामकरण किया। यहाँ मार्कण्डेय स्थापित ब्रह्मकुण्ड, गोमुखतीर्थ (कुष्ठरोग निवारक) लोहयष्टि तथा अजापालेश्वरी (अजापालनृपस्थापित) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(९६-१०४ अ.) (दशरथ तथा रामाख्यान) प्रारम्भ में शनैश्चर-दशरथ-संवाद है। तदनन्तर "अपुत्र की सद्गति नहीं होती" ऐसा इन्द्र के मुख से सुनकर दशरथ ने हाटकेश्वर जाकर तपस्या की। दशरथ को विष्णु ने चार पुत्रों के रूप में जन्म लेने का वर दिया।

रामेश्वर-स्थापना के समय राम द्वारा सीता का त्याग करने के उपरान्त स्वर्णमयी सीता बनाकर यज्ञ का आरम्भ किया। रामाज्ञाभंग दोषनिवारणार्थ लक्ष्मण रामाज्ञा से नगर गये। सरयू में स्नान कर लक्ष्मण दोष से निवृत्त हुए। तदनन्तर लक्ष्मण ने योगसाधनापूर्वक प्राण त्याग दिये। लक्ष्मण के प्राण त्याग से दुःखी राम किष्किन्धा गये जहाँ सुग्रीव ने तथा पुष्पकपर आरूढ राम द्वारा लंका जाने पर विभीषण ने उनका सत्कार किया। हाटकेश्वर आकर राम ने रामेश्वरलिङ्ग की स्थापना की। यहाँ आनर्ततीर्थ-कूपिका तथा कुशेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य भी लिखित है।

(१०५-११० अ.) (राक्षसलिङ्गाच्छादन, लुप्ततीर्थ, अष्टषष्टितीर्थ) राक्षसों ने हाटकेश्वर क्षेत्र में स्थापित चतुर्मुख लिङ्गों को भूमि में ढक दिया। एक समय वहाँ बृहदाश्वराज आये तथा भवन निर्माणार्थ वहाँ भूमि खनन प्रारम्भ किया, जिससे लिङ्ग प्रकट हुए। अडसठ गोत्रों में उत्पन्न ब्राह्मणों ने राजा की आज्ञा से अडसठ लिङ्गों की स्थापना की। यहाँ अडसठ लिङ्गों का नामनिर्देशपूर्वक प्रभाव वर्णित है।

(१११-११८ अ.) (आनर्तराजवृत्तान्त, अग्नितीर्थ, भट्टिकोपाख्यान) एक समय आनर्तराज की पत्नी दमयन्ती हाटकेश्वर क्षेत्र गयीं। हरिबोध के अवसर पर दमयन्ती ने स्नान कर भगवान् का ध्यान किया तथा ब्राह्मण स्त्रियों को आभूषणादि दान दिये। लोभवश दानग्रहण के कारण ब्राह्मणस्त्रियों के पति पतन को प्राप्त हुए। पतितऋषियों ने दमयन्ती को शिला होने का शाप दे दिया। दमयन्ती को दोष-मुक्त कराने हेतु दुःखी आनर्तराज वहाँ आये। राजा को भी शाप देने हेतु उद्यत विप्रों ने अन्य ब्राह्मण के समझाने पर जल को भूमि पर फेंक दिया। जिससे भूमि "ऊसर" हो गयी। प्रार्थना तथा दान से आनर्तराज ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया।

चमत्कारपुरवासी देवरातब्राह्मण का क्रथ नामक पुत्र नागतीर्थ गया। वहाँ क्रथ ने रुद्रमाल के पुत्र को डण्डे से मार डाला, जिससे दुखी नागों ने वहाँ स्थित सभी लोगों को काटना प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले उन्होंने देवरातपुत्र क्रथ का भक्षण किया। भयभीत सभीलोग नगर से भाग कर त्रिजात के समीप गये। सर्प को निर्विष करने हेतु शिव ने "न

गरं, न गरम्" इस मन्त्र का दान किया। इस कारण यहाँ स्थित ब्राह्मणों का नाम "नागर" पड़ा। अन्त में भट्टिकातीर्थ (क्रथद्विज की भगिनी भट्टिका द्वारा स्थापित) का महत्त्व बतलाया गया है।

(११६-१२२ अ.) (महिषासुर वृत्तान्त तथा कात्यायनी माहात्म्य) दुर्वासा ने दीर्घबाहुराजा को महिष होने का शाप दे दिया था। शुक्र के उपदेश पर राजा हाटकेश्वर में तपस्याकर शिव से स्त्री मात्र से ही मृत्यु का वर प्राप्त किया। महिषासुर तथा देवों के मध्य युद्ध हुआ जिसमें देवसेना परास्त हुई महिषासुरवध हेतु कात्यायनीदेवी की उत्पत्ति हुई। कात्यायनीदेवी अपने तेज की वृद्धि हेतु सिंह पर आरूढ़ हो विन्ध्य पर्वत पर तपस्या करने लगीं। वहीं महिषासुर ने देवी से भार्या होने का प्रस्ताव किया। देवी द्वारा महिषासुर के प्रस्ताव को अमान्य करने से क्रुद्ध राक्षस ने युद्ध आरम्भ कर दिया। महिषासुर को मारने को उद्यत देवी की दानवों से प्रार्थना प्रारम्भ की। दयावश देवी ने महिषासुर को जीवनदान दिया। यहाँ कात्यायनी के साथ ही केदार का माहात्म्य भी लिखित है।

(१२३-१२८ अ.) (शुक्ल तथा अन्य तीर्थ) शुद्धक नामक धोबी ने ब्राह्मणों के वस्त्रों को भी नील के मध्य डाल दिया। रजककन्या की सखी दाशकन्या के उपदेश से उल्लिखित जलाशय में प्रक्षालन से वस्त्र पुनः शुक्ल हो गये। अतः इस तीर्थ का नाम शुक्लतीर्थ पड़ा। यहाँ मुखारतीर्थ, कर्णोत्पला के नाम पर), सत्यसन्धेश्वर (सत्यसन्ध द्वारा स्थापित) तथा अटेश्वरतीर्थ का वर्णन है।

(१२९-१३३ अ.) (याज्ञवल्क्याश्रम, गणपति तथा वास्तुपदतीर्थमाहात्म्य) गुरु शाकल्य के रुष्ट होने पर याज्ञवल्क्य ने अधीत विद्यागुरु को समर्पित कर सूर्य की उपासना की, सूर्य ने उन्हें लधिमा-विद्या प्रदान की। सूर्य से समस्तवेद पढ़कर याज्ञवल्क्य ने हाटकेश्वर में तीर्थ स्थापना की। मैत्रेयी के ऊपर याज्ञवल्क्य का अनुराग देखकर वैसी ही प्रीति की इच्छा वाली द्वितीय पत्नी कात्यायनी ने शाण्डिली से उपाय पूछा। शाण्डिली ने उसे गौरीपूजन का उपदेश दिया। यहाँ पञ्चपिण्डागौरी, गणपति (वररुचि स्थापित) तथा वास्तुपदतीर्थ (कात्यायनी निर्मित) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१३४-१४२ अ.) (खण्डशिलासौभाग्यकूपिकातीर्थ, दीर्घिकागर्त, धर्मराजेश्वर तथा गणपतित्रय) एक समय हारीत पत्नी जलाशय में स्नानार्थ गयी। उसी समय वहां कामदेव उपस्थित हो गये। तथ्य ज्ञात होने पर हारीत ने अपनी पत्नी को शिला होने का तथा कामदेव को कुष्ठी होने का शाप दे दिया। खण्डशिलासौभाग्यकूपिका की आराधना से दोनों दोषमुक्त हुए।

वीरशर्मा ब्राह्मण की पुत्री का विवाह एक कुष्ठी ब्राह्मण से हुआ। पति की आज्ञा से वह तीर्थों में गयी। मार्ग स्थित माण्डव्य ने उसकी पति की सूर्योदय होने पर मृत्यु का शाप

दे दिया। ब्राह्मण पुत्री ने सूर्योदय को ही रोक दिया। देवों द्वारा आश्वस्त किये जाने पर उसने सूर्योदय होने दिया। अप्रसन्न माडव्य ने धर्मराज को शूद्र योनि प्राप्ति का शाप दे दिया। धर्मराज ने माण्डव्य प्रदत्त शाप के निवारणार्थ धर्मराजेश्वर की स्थापना तथा उपासना की। अन्त में मिष्टान्नेश्वर तथा गणपतित्रय का माहात्म्य लिखित है।

(१४३-१५१ अ.) (जाबालीश्वर, अमरेश्वर, वटिकेश्वर, केलीश्वर तथा भैरवक्षेत्र) जाबालि की तपस्या में विघ्न डालने हेतु, रम्भा उपस्थित हुई। रम्भा ने जाबालि का चित्त उद्विग्न करने हेतु कृत्रिम भाव से रमण किया। रम्भा से उत्पन्न कन्या का जाबालि ने पालन किया। युवती होने पर जाबालि कन्या को चित्रसेन नामक गन्धर्व देव मन्दिर ले गया। इससे क्रुद्ध जाबालि ने गन्धर्व को शाप दे दिया। तपस्या से गन्धर्व तथा जाबालि कन्या फलवती दोनों दोष रहित हुए। यहाँ जाबालिश्वर, अमरेश्वर (अमरत्वप्रदायक) वटिकेश्वर (वटिका (शुक्राचार्य की माता पिङ्गलास का अपरनाम) द्वारा स्थापित), भैरवक्षेत्र (भैरव स्थापित) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१५२-१६४ अ.) (चक्रपाणि, रूपतीर्थ (मणिभद्राख्यान), पुष्पादित्य माहात्म्य) युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ब्राह्मणों की गायों के संरक्षण हेतु जंगल में गये। गायों को मुक्त कराकर अर्जुन ने हाटकेश्वर जाकर चक्रपाणि की स्थापना की थी), रूपतीर्थ (शिव पर आसक्त तिलोत्तमा को पार्वती ने कुरूपा होने का शाप दे दिया था, पुनः प्रार्थना करने पर पूर्व रूप प्राप्ति का वर पार्वती ने दिया) तथा चित्रेश्वरी तीर्थ का महत्व वर्णित है।

मणिभद्रनामक वृद्धक्षत्रिय ने वित्त के बल पर युवती से विवाह कर लिया। मणिभद्र ने पुष्प नामक तीर्थयात्रीब्राह्मण की भर्त्सना एवं ताड़ना इस आशंका से की कि वह उसकी पत्नी पर आसक्त है। ब्राह्मण पुष्प से सूर्य की उपासना कर, सूर्य प्रदत्त गुटिका से स्वयं का रूप मणिभद्र के समान बनाकर मणिभद्र के घर पहुंचा तथा उसकी पत्नी से रमण किया। वास्तविक मणिभद्र के आने तथा स्थिति के सम्यक ज्ञान होने पर राजा बृहत्सेन ने मणिभद्र (वास्तविक) को दण्डित किया। बाद में पुष्प ने अपने पापों के शमनार्थ पुष्पादित्य की स्थापना की। यहाँ षोडशोपचारपूजन, प्रतिमासपूजन, पुरश्चरण, सप्तमी व्रत-विधि नगरादित्य का माहात्म्य है।

(१६५-१७३ अ.) (अश्वतीर्थ, परशुरामोत्पत्ति, विश्वामित्रोत्पत्ति तथा धारातीर्थ) ऋषि गाधि की कन्या की याचना हेतु ऋचीक गाधि के घर गये। सहस्रश्यामकर्ण प्राप्ति पर ही कन्यादान की ऋषि की प्रतिज्ञा सुनकर ऋचीक सरस्वती के तीर पर तपस्या द्वारा मन्त्रशक्ति से श्यामकर्ण प्राप्त कर गाधि के समीप गये तथा कन्या प्राप्त कर अश्वतीर्थ की स्थापना की।

वर प्रदान को तत्पर ऋचीक की पत्नी ने अपनी माता तथा स्वयं के लिए पुत्र प्राप्ति हेतु वर मांगा। ऋचीक ने पत्नी की बात सुनकर क्षात्रतेजयुक्त पुरोडाश गाधिपत्नी हेतु तथा ब्राह्मणतेजयुक्त पुरोडाश अपनी पत्नी को दिया। परन्तु पुरोडाश ग्रहण में परस्पर परिवर्तन

हो गया। राजपत्नी तथा विप्रपत्नी के पुरोडाश विपर्यय को जानने पर ऋषि ने अपनी पत्नी को शाप दे दिया। पत्नी की प्रार्थना पर ऋचीक ने "तुम्हारा पौत्र क्षात्रतेज वाला होगा"- ऐसा कहा जिससे परशुराम की उत्पत्ति हुई।

एक समय विश्वामित्र सेनासहित वसिष्ठाश्रम आये तथा कामधेनु के प्रभाव को देखकर उसकी याचना वसिष्ठ से की। वसिष्ठ द्वारा मना करने पर तथा वसिष्ठ के ब्राह्मतेज की श्रेष्ठता जान कर विश्वामित्र तपस्या हेतु वन को गये। विश्वामित्र ने वसिष्ठ के विनाशार्थ यज्ञ किया जिससे कृत्या की उपस्थिति हुई। कृत्या वशिष्ठ के हृदय का स्पर्श कर वहीं गिर पड़ी जिससे उसका नामकरण "धारा" हुआ। वसिष्ठ की पत्नी ने धारातीर्थ आकर देवी की उपासना की। वसिष्ठ के ऊपर अपनी शक्ति का प्रभाव न देखकर विश्वामित्र ने ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया पर ब्रह्मास्त्र भी निष्फल रहे। विश्वामित्र ने पुनः सरस्वती को वसिष्ठ से द्वेष हेुत भेजा। अपनी आज्ञा का सरस्वती द्वारा पालन न करते हुए देख वसिष्ठ ने सरस्वती को भी शाप दे दिया।

(१७४-१८२ अ.) (पिप्पलादोत्पत्ति, याज्ञवल्क्येश्वर (याज्ञवल्क्य स्थापित) कंसारेश्वर, पञ्चपिण्डागौरी (लक्ष्मी स्थापित) पुष्करत्रय ब्रह्मा प्रक्षेपित कमल के भूमि पर पतन से निर्मित गर्तत्रय) तथा गायत्री तीर्थ के माहात्म्य के साथ ही ब्रह्मादि देवों द्वारा प्रारम्भ किये गये यज्ञ के प्रथम दिन का कार्यवृत्त भी वर्णित है।

(१८३-१८६ अ.) (नागतीर्थ, पिङ्गलोपाख्यानादि) यज्ञ के दूसरे दिन किसी बटु द्वारा ब्राह्मणों के मध्य सर्प फेंक दिये जाने पर तथा सर्प द्वारा किसी होता के शरीर को आवेष्टित कर लिये जाने पर होता ने बटु को शाप दे दिया। यहाँ नागतीर्थ की स्थापना तथा नागतीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है।

यज्ञ के तृतीय दिन भोजनकाल में किसी ब्राह्मण ने सम्मिलित होने पर ब्राह्मणों द्वारा उसके गुरु के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर ब्राह्मण ने पिङ्गलादि छह गुरुओं से ज्ञान प्राप्ति की बात कही। जिसे सुनकर ब्राह्मणों, द्वारा पिङ्गला से ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा पर ब्राह्मण ने पिङ्गलाख्यान, निरामिष कुररं के सुखी होने, सर्प के अन्य के गृह में निवास करने, भ्रमरादि से गुणग्रहण करने का वर्णन किया। यहां अतिथि के पूजन आदि की विधि का विधान है।

(१८७-१६४ अ.) यज्ञ के चतुर्थ दिन विश्वावसुब्राह्मण द्वारा मांसभक्षण के कारण ब्राह्मणों द्वारा उन्हें राक्षस होने का शाप दे दिया गया। राक्षसत्व से मुक्ति हेतु श्राद्ध करने पर विश्वावसु मुक्त हुए।

पञ्चम दिन उद्गाताओं द्वारा गेय गीतों के श्रवणार्थ ओदुम्बर के आगमन तथा उनके द्वारा स्वजन्म वृत्तान्त का वर्णन है। यज्ञ के अन्त में समस्त नागरों को आमन्त्रित करने, ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ वृत्तान्त कहने तथा ब्रह्मा को ब्राह्मणों के साथ अवभृथ स्नान हेतु ज्येष्ठ

पुष्कर जाने एवं यक्ष्यतीर्थोत्पत्ति का उल्लेख है।

सावित्री ने यज्ञमण्डप में आने पर अपशकुन होने, घृताची आदि अप्सराओं के वहाँ आने एवम उनके द्वारा गायन, वादन आदि के वर्णन के साथ ही समस्त देवों द्वारा सावित्री के स्तवन एवं पादुकातीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है।

(१६५-१६६ अ.) (कुमारिकातीर्थद्वय, परावसु प्रायश्चित, शूद्री तथा ब्राह्मणी तीर्थ तथा तीर्थत्रय) छान्दोग्य ब्राह्मण की कन्या तथा आनर्ताधिप की कन्या रत्नवती के मध्य सख्य था। "विवाह के अनन्तर परस्पर वियोग होगा" इस तथ्य का विचारकर वे प्रायः दुखी रहती थीं। राजा तथा पुरोहित से दोनों के क्रमशः विवाह पर सदा साथ रहना निश्चित हुआ। विश्वास से विवाहित ब्राह्मण कन्या को परावसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। परावसु ने एक बार मद्यपान कर लिया था। जिसकी दोष निवृत्ति हेतु उसे प्रायश्चित रूप में मित्रों ने परिहास में रत्नावती के स्तनग्रहण तथा अधरपान को बताया। अन्त में परावसु मातृभाव से ऐसा कर दोष मुक्त हुए। शूद्री तथा ब्राह्मणी तीर्थ के वर्णन के अनन्तर क्षेत्रत्रय, अरण्यत्रय, पुरीत्रय, वनत्रय, ग्रामत्रय, तीर्थत्रय, पर्वतत्रय तथा नदी त्रयादि की उत्पत्ति का वर्णन है।

(२००-२०३ अ.) (नागर जाति-व्यवस्था) भर्तृयज्ञ ने नागर ब्राह्मण की जाति व्यवस्था का वर्णन किया है। एतद्विषयक भर्तृयज्ञ एवं विश्वामित्र संवाद के साथ ही भर्तृयज्ञ द्वारा गर्तादि तीर्थों में स्नान एवं श्रीसूक्तपवमानादि सूक्तों के पाठ से शुद्धि आदि का उल्लेख है। साथ ही नागर ब्राह्मणों के प्रश्नों का भर्तृयज्ञ प्रदत्त उत्तर प्रतिपादित है।

(२०४-२१४ अ.) आनर्तविश्वामित्र संवाद के माध्यम से हिरण्याक्षेन्द्र युद्ध का वर्णन है। अग्रिमाध्यायों में गया श्राद्ध, बालमण्डनतीर्थ, पञ्चरात्रेन्द्र-महोत्सव, गौतमेश्वराहिल्येश्वर, शतानन्देश्वर (क्रमशः गौतम, अहिल्या, शतानन्द द्वारा स्थापित), शंखतीर्थ (आनर्ताधिप के कुष्ठी होने पर नारद के उपदेशपर शंखतीर्थ की स्थापना राजा द्वारा की गयी थी), ताम्बूलभक्षणमहत्व, विश्वामित्रीय तीर्थ-माहात्म्य, रत्नादित्य, साम्बादित्य तथा गणपतिपूजन का महत्व प्रतिपादित है।

(२१५-२२७ अ.) (श्राद्धकालनिर्णय तथा श्राद्ध के प्रकार) भर्तृयज्ञ तथा आनर्तराज के संवाद के माध्यम से श्राद्ध की आवश्यकता, श्राद्धकालनिर्णय, व्यतीपातादिकाल में श्राद्धकर्म, अग्निष्वात्तादि पितरों का उल्लेख, अमावस्या श्राद्ध, गयाश्राद्ध, श्राद्धानर्ह वस्तुएं, प्रतिमासश्राद्धार्हतिथि, श्राद्धार्हपदार्थ, कालनिर्णय, श्राद्धनियम, काम्यश्राद्ध, श्राद्धार्ह तथा श्राद्धानर्ह ब्राह्मणों का उल्लेख, एकोद्दिष्ट एवं पार्वणश्राद्ध, नवश्राद्ध, सपिण्डीकरणश्राद्ध के वर्णन के साथ ही नरकों का उल्लेख, नरकों से मुक्ति के उपाय आदि विस्तृत रूपेण वर्णित हैं।

(२२८-२३१ अ.) (अन्धक-वृत्तान्त) प्रह्लाद द्वारा राज्य के अस्वीकार कर देने पर प्रह्लाद के कनिष्ठ भ्राता अन्धक ने राज्य स्वीकार किया। ब्रह्मा से वर प्राप्त कर अन्धक ने देवों को परास्त किया। परास्त इन्द्र शिव के समीप गये। शंकर ने गणेश एवं वीरभद्र को अन्धक के पास भेजा पर ब्रह्मा के वर से प्रमादी अन्धक ने शिवाज्ञा का अनादर किया। क्रुद्धशिव युद्धार्थ स्वयं वृषारूढ़ होकर आये। युद्ध में शिव ने अन्धक को अपने त्रिशूल पर उठा लिया जिससे उसके रक्त, वीर्यादि क्षय को प्राप्त हुए। अन्त में अन्धक की प्रार्थना पर शिव ने उसे भृगिरीटि नाम से अपने गणों में सम्मिलित कर लिया। अपने पिता अन्घक की स्थिति ज्ञात होने पर उसके पुत्र वृक ने तपस्या से इन्द्र के अधिकार क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। वृक को सांकृति ऋषि ने पंगु होने का शाप दे दिया। तदनन्तर ब्रह्मा द्वारा चातुर्मास्य में पंगु न होने के वर के कारण वर्षा काल में वृक के देवों की ओर आगमन को सुनकर देव पलायित होकर विष्णु के समीप पहुंचे। जलशक्ति के वृक के ऊपर शयन के कारण इन्द्र को राज्य की प्राप्ति हुई। यहां शुक्लैकादशी व्रत का महत्व वर्णित है।

(२३२-२५५ अ.) (चातुर्मास्य-वर्णन तथा विष्णुभक्ति माहात्म्य) चातुर्मास्य-कर्तव्य-नियम-होम-जपादि का कथन, पितृतर्पण, चातुर्मास्यदान फल, त्याज्य भोजन, पाल्य धर्म, चातुर्मास्य में भगवान की षोडशोपचार पूजा आदि का विस्तृत वर्णन है।

अग्रिम अध्यायों में चातुर्वर्ण्योत्पत्ति, उनके कर्माधिकार, विष्णु-भक्ति-माहात्म्य, शालिग्राम-शिलापूजन, शिवपार्वतीविवाह, रुद्र का हरिहररूप, अश्वत्थोत्पत्ति, पलाश, तुलसी, तथा बिल्वमाहात्म्य, तिलदान, लक्ष्मीनारायण-महिमा वर्णित है।

(२५६-२७९ अ.) (द्वादशाक्षर-माहात्म्य) शिव-पार्वती संवाद के माध्यम से द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) का महत्व प्रतिपादित है, साथ ही चातुर्मास्य कथा का सारांश भी लिखित है।

ध्यानयोग, ज्ञानयोग, मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्ति, तारकासुरवध, भीष्मपञ्चकव्रत, अशून्यशयन, मंकणेश्वरतीर्थ, शिवरात्रि माहात्म्य, सिद्धेश्वर माहात्म्य, गौतमेश्वर तुलापुरुषदान, कपालेश्वर (इन्द्र स्थापित) इन्द्रद्युम्नेश्वर, सप्तलिङ्गोत्पत्ति (सप्तर्षियों द्वारा स्थापित) कलिकालनिर्णय, तथा युगप्रमाण का वर्णन है।

दुःशीलेश्वर, दुर्वाससेश्वर, एकादशरुद्रों का नाम कथन, द्वादशादित्यों का वर्णन एवं याज्ञवल्क्य का वृत्तान्त लिखित है।

अन्तिमाध्याय (२७९) में स्कन्दपुराण परम्परा-कथन, नागरखण्ड का उपसंहार, वैभववर्णन, फलश्रुति, गुरुशिष्याधिकार तथा पौराणिक व्यासाधिकार का कथन है।

स्कन्दपुराण के सप्तम प्रभासखण्ड का प्रथम प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य[1]

(१-५ अ.) (मङ्गलाचरण, पुराणानुक्रम तथा प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य) नीलकण्ठ विषयक मङ्गलाचरण के उपरान्त सूत-शौनक संवाद के माध्यम से कथाश्रवण के अधिकारी, अनधिकारी, कथा-लक्षण एवं गुण-दोष वर्णन पूर्वक अट्ठारहपुराणों (२.४-७), उपपुराणों (२.११-१५) का उल्लेख तथा उनकी श्लोक-संख्यादि का विस्तृत वर्णन है।

शिव पार्वती संवाद में विभूतियोग का उल्लेख, प्रभास-क्षेत्र-माहात्म्य, प्रभासक्षेत्र यात्रानुक्रम, माहेश्वर-वैष्णव तथा ब्राह्मभेद से यात्रावर्णन, प्रभासक्षेत्र में निवास करने वाले महापापियों को भी मोक्ष-प्राप्ति का उल्लेख, इस क्षेत्र में गङ्गादिनदियों की अवस्थिति, पिण्डदान का महात्म्य एवं यहां स्थित देवों तथा ऋषियों का वर्णन है।

(६-१० अ.) (सोमेश्वर तथा प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य) सोमेश के पञ्चवक्त्र स्वरूप का उल्लेख है। चन्द्रमा ने शिव से वर प्राप्त कर अपने नाम से सोमेश्वरलिङ्ग की स्थापना की थी। सोमेश के चारों ओर स्थित तीर्थों का माहात्म्य, सोमेशलिङ्ग के अष्टसिद्धियों की उत्पत्ति एवं सोमेशका ऐश्वर्य वर्णित है।

शिव द्वारा मुण्डमाला धारण करने का कारण तथा पार्वती द्वारा विष्णु के मत्स्यादि दशावतारों से सम्बन्धित प्रश्न करने पर शिव ने प्रभास-क्षेत्र में ब्रह्मादि के निवास का वर्णन किया। प्रभासक्षेत्र अनेक लिङ्गों का माहात्म्य बतलाया गया है।

(११-२०) (जम्बूद्वीप वर्णन तथा सूर्य-माहात्म्य) जम्बूद्वीप-वर्णन-प्रसङ्ग में अष्टकुल का उल्लेख, जम्बूद्वीप की सीमा, भारतभूमि की श्रेष्ठता, नवगहविन्यास, प्रभासक्षेत्र-चिन्ह, आदिक्षेत्र-माहात्म्य, यम की उत्पत्ति, यमेश्वर (यम-स्थापित)-लिङ्ग-माहात्म्य, कृतत्रेताद्वापरकलियुगों में सूर्य के क्रमशः नामों (सूर्य, सवितृ, भास्कर, अर्कस्थल) का उल्लेख जैगीषव्येश्वर, सिद्धेश्वर-मांहात्म्य, सूर्य-माहात्म्य का जपफल, चन्द्रोत्पत्ति (समुद्र-मंथन से हिमांशु की उत्पत्ति का वर्णन), वाराहकल्प-वृत्तान्त, षोडशतिथियों के अनुक्रम से षोडशचन्द्रकलाओं की उत्पत्ति, सप्तर्षियों की उत्पत्ति, बलि-प्रह्लाद-कार्तवीर्य-कुबेर तथा रावणकी उत्पत्ति, रामकृत रावणनाश, अत्रि के नेत्रों से सोममय सोम की उत्पत्ति एवं सोम द्वारा राजसूय यज्ञ सम्पादन का वर्णन है।

(२१-२७ अ.) (दक्षोत्पत्ति, सोमेश्वरलिङ्ग एवं गन्धर्वेश्वर-माहात्म्य) प्रारम्भ में ब्रह्मा की आज्ञा से दक्ष द्वारा साठ कन्याओं की उत्पत्ति तथा उन कन्याओं को धर्मादि को दान का वर्णन है। चन्द्रमा द्वारा रोहिणी से ही प्रेम करने तथा अन्य स्त्रियों की उपेक्षा को सुनकर दक्ष ने चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग होने का शाप दे दिया। चन्द्रमा शिव की उपासना कर शाप

---

१. प्रस्तुत निबन्ध हेतु वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित संस्करण के नाम पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित संस्करण (१९८७) का उपयोग किया गया है।

मुक्त हुए तथा सोमेश्वरलिङ्ग की स्थापना की। शिव ने पार्वती द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तररूप में सात्विक-राजस-तामस भक्तों का वर्णन, हरिहर का अभेद तथा नृसिंहावतार का वर्णन किया। सोमेश्वर-व्रत-कथा की विधि एवं गन्धर्वेश्वर (धनवाह नामक गन्धर्व द्वारा स्थापित) लिङ्ग का माहात्म्य लिखित है।

(२८-३६ अ.) (सोमनाथ, अग्नितीर्थ तथा सरस्वत्यवतार) (सोमनाथ-दर्शन, यात्रा-विधि, यात्राफल, तीर्थार्थी के त्याज्य तथा पाल्य कर्म, अग्नितीर्थ-माहात्म्य, यात्रावर्णन, वडवानलतीर्थस्थापनवृत्तान्त) देवासुर संग्राम में पराजित देव दधीचि के आश्रम गये तथा दधीचि से वज्र-निर्माणार्थ अस्थियों को मांगा। वज्रनिर्माणार्थ दधीच ने देह त्याग किया। दुःखी दधीचि-पत्नी सुभद्रा को देवों ने सान्त्वना प्रदान की। सुभद्रापुत्र पिप्पलाद ने पितृहन्ता देवों को मारने की प्रतिज्ञा की तथा हिमालय में तपस्या कर वडवानल की उत्पत्ति की। पिप्पलाद की आज्ञा से वडवानल देवों के भक्षण हेतु स्वर्ग गया, जहां विष्णु ने वञ्चनापूर्वक बडवानल को सरस्वती के साथ समुद्र भेज दिया। वहां वडवानल द्वारा समुद्रजलशोषण से दुःखी जलचरों को कृष्ण ने अभय प्रदान किया। यहां प्रभासक्षेत्र में सरस्वती के अवतारग्रहण, अग्नितीर्थ तथा प्राचीसरस्वती का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(३७-५१ अ.) (कङ्कण-प्रक्षेपण-माहात्म्य(इन्दुमती आख्यान), कपर्दीश्वर, भीमेश्वर, आदित्येश्वर तथा अन्य लिङ्ग) एक बार महर्षिकण्व, बृहद्रथ राजा के समीप आये। राजा द्वारा अतिथिपूजन के उपरान्त धर्म के विषय में जिज्ञासा की गयी, तदुपरान्त रानी इन्दुमती द्वारा भी स्वयं के ऐश्वर्य प्राप्ति की जिज्ञासा करने पर कण्व ने इन्दुमती को पूर्वजन्म में शूद्रा होने तथा सोमेश्वरतीर्थ में स्नानकाल में उसके हाथ से कङ्कण गिर जाने के पुण्य से इस जन्म में ऐश्वर्य-प्राप्ति बतलाया। प्रस्तुतकारण जानकर राजा बृहद्रथ इन्दुमती के साथ प्रत्येक वर्ष सरस्वती में स्नान कर कंकण का निक्षेप करते थे।

अग्रिमाध्यायों में कपर्दीश्वर, केदारेश्वर, भीमेश्वर, भैरवेश्वर तथा चण्डीश (चण्डगण द्वारा पूजित) आदित्येश्वर, सोमेश्वर, अंगारकेश्वर, सोमेश्वर, बुधेश्वर (बुधस्थापित), बृहस्पतीश्वर, (गुरु-स्थापित) शुक्रेश्वर, (शुक्र स्थापित), शनैश्चरीश्वर, (शनि-स्थापित), राहवेश्वर (राहु-स्थापित), केत्वेश्वर (केतु-स्थापित) का माहात्म्य वर्णित है।

(५२-८६ अ.) (विविध लिङ्ग-माहात्म्य) सिद्धेश्वर (अणिमादि अष्टसिद्धि प्रदाता), कपिलेश्वर (राजर्षिकपिल-स्थापित), गन्धर्वेश्वर, विमलेश्वर, धनदेश्वर, (धनदस्थापित), धरारोहेश्वर, अजापालीश्वर, रुद्रशक्तित्रय (१. ब्राह्मीशक्ति-मङ्गला, २. वैष्णवीशक्ति-विशालाक्षी, ३. रौद्रीशक्ति-चत्वरदेवी), भैरवेश्वर, लक्ष्मीश्वर, वाडवेश्वर, अर्घ्येश्वर, गौरीश्वर, वरुणेश्वर, तोषेश्वर, कुमारेश्वर, (षण्मुखस्थापित), शाकल्येश्वर, कलकलेश्वर (चारों युगों में क्रमशः कामेश्वर, बुलेश्वर, नारदेश्वर, कलकलेश्वर) कुलीश, उत्तङ्केश्वर (उत्तङ्कस्थापित) वैश्वानरेश्वर,

लकुलीश्वर, गौतमेश्वर, दैत्यसूदन, चक्रतीर्थ, योगीश्वर, आदित्यनारायण तथा पाण्डवेश्वर (पाण्डवों द्वारा अपने-अपने नामों से स्थापित) आदि लिङ्गों का माहात्म्य लिखित है।

(८७-११० अ.) (एकादश रुद्र तथा अन्य लिङ्ग) एकादश रुद्रों के नाम (भूतेश, नीलरुद्र, कपालीश्वर, वृषभेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, अघोरेश्वर, महाकालेश्वर, भैरवेश्वर, मृत्युञ्जय, कामेश्वर, एवं योगेश्वर) तथा माहात्म्य के साथ ही अन्य लिङ्गों पृथ्वीश्वर (पृथ्वी-स्थापित), दण्डपाणिचक्रधर, साम्बादित्येश्वर (दुर्वासा द्वारा अभिशप्त साम्बस्थापित), कण्टकशोधिनी देवी, कपालेश्वर, कोटीश्वर, ब्रह्म-माहात्म्य, चातुर्वर्ण्यधर्म, चान्द्रायणादि-व्रत-विधान, ब्राह्मणप्रशंसा, पन्चगव्यविधि, गायत्रीन्यास तथा षोडशोपचारपूजन की विधि वर्णित है। प्रत्यूषेश्वर (प्रत्यूष नामक वसु द्वारा स्थापित), अनिलेश्वर (अनिलस्थापित), तथा प्रभासेश्वर (प्रभास नामक अष्टम वसु द्वारा स्थापित) का माहात्म्य भी वर्णित है।

(१११-१३० अ.) रामेश्वर (वन गमन के समय राम प्रभासक्षेत्र गये जहां पिता का श्राद्ध किया तथा अपने नाम से लिङ्ग की स्थापना की), लक्ष्मणेश्वर (लक्ष्मण-स्थापित), जानकीश्वर (सीता-स्थापित), विष्णुपदी, पुष्कर, पुष्करेश्वर, शंखोदककुण्डेश्वरी गौरी, भूतनाथेश्वर, गोप्यादित्येश्वर, बलातिबलदैत्यघ्नी, गोपीश्वर, जामदग्न्येश्वर (मातृवधदोष निवारणार्थ परशुराम-स्थापित), चित्राङ्गदेश्वर, रावणेश्वर (रावण-स्थापित), सौभाग्येश्वर (सौभाग्यवर्धनार्थ अरुन्धतीस्थापित) पौलोमीश्वर (इन्द्रपत्नी-पौलोमी-स्थापित), शाण्डिल्येश्वर (ऋषि-शाण्डिल्य-स्थापित) क्षेमकरेश्वर, सागरादित्य, अक्षमालेश्वर एवं पाशुपतेश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(१३१-१४७ अ.) (लिङ्ग, पीठ तथा तीर्थ माहात्म्य) ध्रुवेश्वर (उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवद्वारा स्थापित), सिद्धलक्ष्मीपीठ, पुष्करावर्तकनदी, शीतलागौरी (दुःखान्तकारिणी), लोमशेश्वर (लोमशस्थापित), कंकाल-भैरवक्षेत्रपाल, तृणबिन्दु स्थापित तृण बिन्द्रवेश्वर, चित्रगुप्तस्थापित चित्रादित्य, चित्रपथानदी, कपर्दिचिन्तामणि, चित्रेश्वर, विचित्रेश्वर, पुष्करकुण्ड, गजकुम्भोदर, यमेश्वर तथा ब्रह्मकुण्डेश्वर (ब्रह्मनिर्मित) का माहात्म्य वर्णित है।

(१४८-१६५ अ.) (कुण्डकूप राजा सुदर्शन तथा रानी सुनन्दा (गान्धारराजपुत्री), द्वारा पूजित), भैरवेश्वर, ब्रह्मेश्वर (ब्रह्मस्थापित), सावित्रीश्वर (सावित्रीस्थापित) नारदेश्वर, भैरव, हिरण्येश्वर, गायत्रीश्वर, रत्नेश्वर (विष्णुस्थापित), गरुडेश्वर, सत्यभामेश्वर, अनङ्गेश्वर (अनङ्-स्थापित) रत्नकुण्ड, रैवतंकराजभट्टारकमाहात्म्य, अनन्तेश्वर, अष्टकुलेश्वर, नासत्येश्वर, अश्विनेश्वर, तथा अन्त में सावित्री-माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१६६-१८६ अ.) (वट-सावित्री-व्रत) राजा अश्वपति ने पुत्र-प्राप्ति हेतु सावित्री की आराधना कर वर रूप में "सावित्री" नामक कन्या को प्राप्त किया। सावित्री का विवाह सत्यवान् से हुआ। समित्कुशाहरण हेतु सत्यवान् सावित्री के साथ जङ्गल गये। शिरोवेदना से पीड़ित सत्यवान् सावित्री की गोद में निद्रा-निमग्न हो गये। यम द्वारा सत्यवान् के शरीर

से जीव का ग्रहण कर चलने तथा सावित्री द्वारा यम का अनुगमन किये जाने तथा बार-बार यम द्वारा रोके जाने पर भी सावित्री के दृढ़ निश्चय को जानकर यम ने सत्यवान के जीव को मुक्त किया। सावित्री त्रिरात्र पर्यन्त वटसावित्री के व्रत को पूर्ण कर अपने पति के साथ वापस आश्रम आयी। यहां सावित्री व्रत की विधि, पूजा, दानादि का माहात्म्य तथा उद्यापन-विधि बतलायी गयी है।

भूतमातृका, शलकटकटा, वैवतेश्वर लिङ्ग, मातृगण बलदेवी, दशरथेश्वर (दशरथ-स्थापित), भरतेश्वर (आग्नीध्र-पुत्र-भरत-स्थापित) कुन्तीश्वर (कुन्तीस्थापित), अर्कस्थल, सिद्धेश्वर, लकुलीश, भार्गवेश्वर, माण्डल्येश्वर, पुष्पदन्तेश्वर, क्षेत्रपालेश्वर, वसुनन्दामातृगणश्रीमुखविवर, त्रिसंगम, मंकीश्वर, देवमातृगौरी तथा नागेश्वरलिङ्ग का माहात्म्य कहा गया है।

(१८७-१६८ अ.) (प्रभासपञ्चक तथा अन्य-लिङ्ग-माहात्म्य)

एक समय शिव भिक्षार्थ दारुवन आये, वहां स्थित स्त्रियां शिव के रूप को देखकर मोहित हो उठीं। उनके पतियों ने नग्न शिव को देखकर शाप दे दिया, जिससे शिव-लिङ्ग पतित हो भूमि पर गिर पड़ा, जिस कारण ब्रह्माण्ड क्षय को प्राप्त होने लगा। विष्णु के कथन पर देव प्रभासक्षेत्र आये तथा लिङ्ग की स्थापना की।

अग्रिमाध्यायों में रुद्रेश्वर, कुर्ममोटी, मोक्षस्वामि, अतीगर्तेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, यमेश्वर, अमरेश्वर, वृद्धप्रभास (ऋषियों द्वारा शिवलिङ्ग दर्शन हेतु वृद्धता प्राप्त करने के कारण वृद्ध प्रभास नामकरण), जल प्रभास लिङ्ग (परशुराम स्थापित), जमदग्नीश्वर तथा पञ्चप्रभासक्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है।

(१६१-२०४ अ.) (दक्षयज्ञविध्वंस, कृतस्मर-माहात्म्य तथा अन्य लिङ्ग) दक्ष द्वारा यज्ञ के आयोजन पर अपना अपमान देखकर सती ने अपने शरीर का त्याग कर दिया। क्रुद्ध शिव ने यज्ञ के विध्वंस हेतु वीरभद्र को भेजा। वीरभद्र द्वारा पराजित देव विष्णु के समीप गये। विष्णु वीरभद्र से युद्ध करने हेतु आये, वीरभद्र को पराजित होता देख शिव स्वयं युद्धार्थ आये। शिव को आया देख देव विष्णु सहित पलायित हो गये। शिव ने दक्षयज्ञ का विध्वंस किया। ब्रह्मा की आज्ञा से कामदेव शिव के मन में काम भाव उत्पन्न करने हेतु आये, तथ्य ज्ञात होने पर शिव ने काम को भस्म कर दिया। पतिविरह-शोकाकुल रति को आकाशवाणी ने सान्त्वना प्रदान की। रति ने वहां शिवलिङ्ग तथा एक कुण्ड (कामकुण्ड) की स्थापना की।

कालभैरव, श्मशान, रामेश्वर (बलभद्र स्थापित, मंकीश्वर मंकि द्वारा कुब्जत्व निवारणार्थ स्थापित) तथा सरस्वती-सागर-संगम का माहात्म्य वर्णित है।

(२०५-२२२ अ.) (श्राद्ध-विधि तथा लिङ्ग-माहात्म्य) श्राद्ध-काल, श्राद्धार्ह दिवस, पार्वणादि श्राद्धों की व्याख्या, श्राद्ध हेतु अर्ह एवं अनर्ह ब्राह्मण, श्राद्ध हेतु मौन विधि की श्रेष्ठता, श्राद्धान्न, वस्त्रादि का दान, दान के पात्रापात्र, वर्णाश्रम-धर्म, आपद्धर्म, श्राद्धदिवसों में मैथुनादि के निषेध एवम् एकादशीव्रत के विधान के साथ ही मार्कण्डेयेश्वर, पुलस्त्येश्वर, पुलहेश्वर, क्रत्वीश्वर, कश्यपेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, वृषभध्वजेश्वर, ऋणमोचनेश्वर, तथा रुक्मवतीश्वर का माहात्म्य भी वर्णित है।

(२२३-२३६ अ.) गात्रोत्सर्ग (बलभद्र-कृत)-तीर्थ, प्रेमतीर्थ, इन्द्रेश्वर, अनरकेश्वर (नरकवर्णन, कर्मविपाक) मेधेश्वर, कलभद्रेश्वर, भैरवेश्वर, गणपति, जाम्बवतीनदी, पाण्डवकूप, पाण्डवेश्वर, दशाश्वमेधिक-(भरत द्वारा दस अश्वमेध करने के उपरान्त स्थापित लिङ्ग) तीर्थ, शतमेधसहस्र, मेघकोटिमेधलिङ्गत्रय तथा दुर्वासेश्वर का वर्णन है।

(२३७-२५४ अ.) वज्रेश्वर लिङ्ग (साम्ब द्वारा स्त्री रूप धारण कर ऋषि को वञ्चित करने के कारण ऋषि प्रदत्त शाप के कारण यादवों के विनाश के अनन्तर अवशिष्ट वज्र नामक यादव द्वारा यादवों की उत्तरक्रिया सम्पन्न की गयी तथा प्रभास आकर वज्र ने लिङ्ग की स्थापना की), हिरण्यानदी, नागरादित्य, बलभद्रसुभद्राकृष्ण, शेष, कुमारी (चण्डमुण्डवधकर्त्री), मन्त्रावलिक्षेत्रपाल, विचित्रेश्वर, ब्रह्मेश्वर, पिंगानदी, पिंगलादित्य, पिंगादेवी, शुक्रेश्वर, ब्रह्मेश्वर, संगमेश्वर, गंगेश्वर, शंकरादित्य, शंकरनाथ, गुंफेश्वर तथा घण्टेश्वर का माहात्म्य है।

(२५५-२७० अ.) ऋषितीर्थ, नन्दादित्य (कुण्ठी राजानन्द द्वारा पूजित) त्रितकूपतीर्थ, शशापानकूप, पर्णादित्य, सिद्धेश्वर, न्यंकुमती, वाराहस्वामि, छायालिङ्ग, नन्दिनीगुफा, कनकनन्दा, कुम्भीश्वर, गंगापथगंगेश्वर, विदुराश्रम एवं मंकेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य वर्णित है।

(२७१-३०४ अ.) ज्वालेश्वर, त्रिपुरलिङ्गत्रय, शंखतीर्थ, सूर्यप्राची, त्रिनेत्रेश्वर, उमापति, भूधरयज्ञवराह, देविकामाहात्म्य (वैशाख नामक विप्र ने परिजन-पोषण-हेतु व्याधधर्म ग्रहण कर लिया, सप्तर्षियों के उपदेश से तथा देविकापूजन से सिद्धि प्राप्त की तथा बाद में वाल्मीकि नाम से विख्यात हुआ), सूर्याष्टोत्तरशतनाम (२७६ अ.)-पाठ-फलश्रुति, च्यवनेश्वर माहात्म्य (सुकन्या द्वारा अश्विनों से अपने पति च्यवन के तारुण्य की प्रार्थना किये जाने पर अश्विन ने च्यवन के साथ कुण्ड में स्नान कर च्यवन को सुरूप प्रदान किया), सुकन्यासर, गंगेश्वर, बालार्ड, अजापालेश्वरी, लिङ्गत्रय (पातालगंगेश्वर, विश्वामित्रेश्वर, बालेश्वर), सोमनाथ (कुबेरस्थापित) भद्रकाली, भद्रकालीबालार्क, कुबेर, पुष्पेश्वर, चन्द्रेश्वर, ऋचितोयानदी, कुण्डत्रय (ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र), गुप्तप्रयाग, माधव, सङ्गालेश्वर, सिद्धेश्वर, गन्धर्वेश्वर, उत्तरेश्वर, तथा गङ्गा की महिमा का चित्रण है।

(३०५-३२३ अ.) नारदादित्य (वृद्धावस्था के विनाश हेतु नारद द्वारा पूजित), साम्बादित्य (शाप विनाशार्थ साम्ब स्थापित), अपरनारायण, मूलचण्डीश, चतुर्मुखविनायक, कंजलेश्वर, गोपालस्वामिहरि, बकुलस्वामि, उत्तरार्क, ऋषितीर्थ, मेरुदायदिवी, क्षेमादित्य,

कंटकशोषिणी, ब्रह्मेश्वर, उन्नतस्थान, लिङ्गद्वय, ब्रह्म, दुर्गादित्य एवं क्षेमेश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(३२४-३६५ अ.) गणनाथ, उन्नतस्वामि, महाकाल, महोदय, संगमेश्वर, उन्नतविनायक, कालमेघ, रुक्मिणी, पिंगेश्वरभद्रा, तलस्वामी, (शङ्कर के अङ्ग से उत्पन्न तल दैत्य से आक्रान्त देवों की प्रार्थना पर विष्णु ने तल से युद्ध किया। श्रान्तविष्णु तप्त कुण्ड में स्नान कर तल के कन्धे पर आसीन हो गये। परन्तु तल के हंसने पर विष्णु ने तल को वर प्रदान किया) शंखावर्त, गोष्पद, नारायणगृह, जालेश्वर, हुंकारकूप, चण्डीश्वर, आशापूरविघ्नराज, चन्देश्वर, कपिलधारा, कपिलेश्वर, कपिलाषष्ठिव्रत, जरद्गवेश्वर,, नलेश्वर, कर्कोटकार्क, हारकेश्वर, नारदेश्वरी, मन्त्रविभूषणगौरी, दुर्गकूटगणपति, कौरवेश्वर, सुपर्णेला, भट्टतीर्थ, कर्णमाल, गुप्तेश्वर, बहुसुवर्णेश्वर, शृगेश्वर, कोटीश्वर, नारायणतीर्थ, शृंगारेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, मण्डूकेश्वर, एकादशरुद्र, कन्टेश्वर, संवर्तेश्वर, तथा प्रकीर्ण स्थान लिङ्ग का माहात्म्य प्रतिपादित है।

प्रभासखण्ड का द्वितीय वस्त्रापथ (गिरनार) क्षेत्र का माहात्म्य

(१-५ अ.) (दामोदर, भव, स्वर्णरेखा नदी, गिरिस्थान तथा गङ्गेश्वर-माहात्म्य) एक बार गज नामक राजा के घर अनेक ऋषि आये। गज द्वारा तीर्थों के महत्व विषयक प्रश्न किये जाने पर ऋषियों ने गज को सभी तीर्थों का उल्लेख करते हुए दामोदर का महत्व बतलाया। यहां "भव" शब्द की व्युत्पत्ति (स स्वयंभूः स्थितस्तत्र प्रभासे भूतिदो भवः। भवतीदं जगद्यस्मात्तस्माद्भव इति स्मृतः ११- २.३) तथा माहात्म्य, स्वर्णरेखानदी के वर्णन के साथ ही वस्त्रापथ स्थित अन्य अनेक तीर्थों तथा गिरि स्थान एवं गङ्गेश्वर का माहात्म्य वर्णित है।

(६-८ अ.) (चक्रतीर्थ, स्वर्णरेखा माहात्म्य) राजा भोज से एक वनपाल ने एक बालिका के मृग की भांति कूदने का उल्लेख किया। वनपाल के साथ राजा वन को गये तथा बालिका को घर ले आये तथा उससे कारण पूछा। बालिका द्वारा उत्तर नहीं दिये जाने पर राजा ने ब्राह्मणों से पूछा। सारस्वत महर्षि ने इसका कारण संस्कृतपूरोडाश के प्राशन को बतलाया। मृगानना ने भी अपनी उत्पत्ति का कारण बतलाया (एक बार उद्दालक ऋषि मूत्रत्याग हेतु वन गये, जहां उनका वीर्यपात हो गया, वहां स्थित एक मृगी द्वारा वीर्यबिन्दुप्राशन से मृगानना की उत्पत्ति हुई। स्वर्णरेखा नदी में अपने मुख का प्रक्षेपणकर मृगानना ने दिव्य मुख प्राप्त किया)। सारस्वत-भोज-संवाद के माध्यम से ब्रह्मकृत रुद्र-प्रसादन का वर्णन है।

(९-१५ अ.) (भवलिङ्ग तथा सोमनाथ-माहात्म्य) एक बार शिव के अन्तर्ध्यान हो जाने पर सिंह पर आरूढ़ होकर पार्वती देवों के साथ शिव का अन्वेषण करने हेतु निकलीं।

शिव प्रभासक्षेत्र के वस्त्रापथ क्षेत्र में मिले। विष्णु आदि की आज्ञा से शिव ने "भव" नाम से लिङ्ग की स्थापना की।

वस्त्रापथ-क्षेत्र की यात्रा-क्रम का विधान, यात्रार्थियों के लिए त्याज्य दोषादि का वर्णन, श्राद्ध-दानादि का उल्लेख, सोमनाथ-(वामनस्थापित)-माहात्म्य, दामोदर के समक्षजागरण का महत्व, शिवरात्रि-माहात्म्य एवं शिवरात्रि व्रत की विधि का कथन है।

(१७-१६ अ.) (बलि-कथा) भृगु से अभिशप्त देवों को जब यह ज्ञात हुआ कि वामनावतार के द्वारा भगवान बलि का निग्रह करेंगे, तब देवों ने बलि के समीप नारद को भेजा। नारद ने बलि से देवेन्द्र की लक्ष्मी को अधिक बताकर बलि के मन को चञ्चल कर दिया। यहां नारद द्वारा राजनीति, धर्म-शास्त्रादि का कथन है तथा कुमुदपर्वत आदि का वर्णन है। नारद ने बलि को वैष्णवव्रत तथा जागरणादि का महत्व बतलाया जिसे सुनकर बलि ने यज्ञ प्रारम्भ किया। नारद ने वामन से बलि के यज्ञ का वर्णन किया जिसे सुनकर वामन ने नारद की कलहोत्पादिका वृत्ति की निन्दा की। नारद के हिरण्याक्षादि के वध के कथन पर वामन ने बलि का निग्रह किया तथा बलि को उसके द्वार पर स्थित होने का वर दिया।

प्रभासखण्ड का तृतीय अर्बुद खण्ड

(१-५ अ.) (अर्बुदाचल-माहात्म्य (वसिष्ठाश्रमविवरण वर्णन, उत्तङ्कचरित, अचलेश्वर) तथा नागतीर्थ- माहात्म्य) वसिष्ठ एक बार अर्बुदाचल गये तथा वहां तपस्या करने लगे। वहां यज्ञार्थ पालित गायें चरती हुईं एक गड्ढे (श्वभ्र) में जा गिरीं। सायंकाल जब गायें वापस नहीं आयीं तो वसिष्ठ उनके अन्वेषण हेतु स्वयं गये, उनकी दशा देखकर सरस्वती से उनके उद्धारार्थ प्रार्थना की। सरस्वती ने अपने जल से उस गर्त को पूर्ण कर उनको बाहर निकाला। तदनन्तर वसिष्ठ उन गर्तों की पूर्ति हेतु हिमालय के समीप गये।

गौतम के शिष्य उन्तङ्क गुरुपत्नी को कुण्डल रूप में गुरुदक्षिणा देने हेतु सौदास की पत्नी मदयन्ती के कुण्डल मांगने हेतु गये। कुण्डल प्राप्त कर लाते समय मार्ग में उत्तङ्क से कुण्डलों को तक्षक ने भक्षण कर लिया। तक्षक के पीछे-पीछे कुण्डल लाने हेतु जाने के कारण वहां गर्त बन गया। हिमवान् के वचन से नन्दिवर्धन पर्वत ने उसकी पूर्ति की। यहां अचलेश्वर (वसिष्ठ-स्थापित) तथा नागतीर्थ का माहात्म्य वर्णित है।

(६-१६ अ.) (वसिष्ठाश्रम तथा अन्य तीर्थ) वसिष्ठाश्रम, अचलेश्वर प्रभाव, केदारेश्वर, युगकाल-प्रमाण, चतुर्युग-कलियुग-प्रभाव, कोटीश्वर, रूपतीर्थ (वपु नामा अप्सरा को यहां स्नान से सुरूप-प्राप्ति हुई थी) हृषीकेश (अम्बरीष स्थापित) सिद्धेश्वर (विश्वावसु-स्थापित), शुक्रेश्वर (शुक्राचार्य-उपासित) तथा मणिकर्णेश्वर (मणिकर्णिका नाम वाली स्त्री द्वारा स्थापित) का महत्व प्रतिपादित है।

(२७-२८ अ.) (विविधतीर्थ) पंगुतीर्थ, यमतीर्थ, वाराहतीर्थ, चन्द्रप्रभासतीर्थ (चन्द्रमा

स्थापित), पिण्डोड्कतीर्थ, श्रीमाता-माहात्म्य, शुक्लतीर्थ, कात्यायनी-माहात्म्य, पिण्डारकतीर्थ, कनखलतीर्थ, चक्रतीर्थ-प्रभाव तथा मनुष्यतीर्थ का वर्णन है।

(२६-४५ अ.) कपिलातीर्थ, अग्नितीर्थ, रक्तानुबन्धतीर्थ, महाविनायकमाहात्म्य, पार्थेश्वर, कृष्णतीर्थ, मामुह्रद, चण्डिकाश्रम, नागोद्भवतीर्थ, शिवगड्गाकुण्ड, कामेश्वर (रति के साथ काम द्वारा स्थापित) मार्कण्डेयाश्रम, उद्दालकेश्वर, सिद्धेश्वर एवं गजतीर्थमाहात्म्य वर्णित है।

(४६-६३ अ.) गौतमाश्रम, कुलसंतरण, परशुराम, कोटि, चन्द्रोद्भेद, ईशानीशिखर, ब्रह्मपद, त्रिपुष्कर, रुद्रह्रद, गुहेश्वर, अविमुक्त, उमामहेश्वर, महोजस, जम्बु, गड्गाधर, कटेश्वर, गड्गेश्वर के माहात्म्य वर्णन के साथ ही अर्बुद खण्ड माहात्म्य की फलश्रुति भी बतलायी गयी है।

प्रभासखण्ड का चतुर्थ : द्वारका-माहात्म्य

(१-४ अ.) (कलियुग-स्थिति तथा गोमती-माहात्म्य) प्रारम्भ में शौनकादि ऋषियों द्वारा कलियुग में भगवान की स्थिति पूछे जाने पर सूत ने कलिकाल का वर्णन किया। एक बार उद्दालकादि ऋषि ब्रह्मा के समीप गये तथा उनसे भगवान् की स्थिति के विषय में जिज्ञासा की। ब्रह्मा ने कलिकाल में भगवान् की स्थितिविषयक अज्ञानता प्रकट की तथा सभी ऋषियों के साथ प्रह्लादके समीप गये। प्रह्लाद ने कलियुग के प्रारम्भ की स्थिति का वर्णन किया।

यहां पर रुक्मिणी को दुर्वासा द्वारा शाप देने, नारद द्वारा उसके निरसन, कृष्ण एवं दुर्वासा द्वारा परस्पर को वर देने, गोमतीतीर-माहात्म्य तथा द्वारकायात्रा की विधि वर्णित है।

(५-११ अ.) (गोमती-उत्पत्ति, कृष्णपूजा-विधि, चक्रतीर्थ तथा अन्यतीर्थ) प्रह्लाद तथा ऋषि-संवाद के माध्यम से भगवान् के प्रादुर्भाव एवं गोमती की उत्पत्ति, कृष्ण-पूजन-विधि, स्नानदानादि का माहात्म्य, चक्रतीर्थ माहात्म्य, षोडशोपचार-पूजन-विधि (७ अ.)-क्रम, गोमती-समुद्र-संगम तीरस्थ चक्रतीर्थ का वर्णन, रुक्मिणी-ह्रद, कृकलासतीर्थ (अपरनाम नृगतीर्थ) तथा विष्णुपदतीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१२-२२ अ.) (गोप्रचार तथा अन्यतीर्थ) कंस-वध के अनन्तर कृष्ण ने उद्धव को गोपियों का कुशल पूछने एवम् उपदेशार्थ गोकुल भेजा। उद्धव ने गोपियों को सान्त्वना दी तथा गोपियों के साथ "मय सर" (मय-निर्मित) आये। गोपियों के शोक को ज्ञात कर कृष्ण "मय सर" आये जिससे गोपियां अति प्रसन्न हुईं। कृष्ण की आज्ञा से गोपियों ने अन्य सर का निर्माण किया। गोपी-निर्मित होने से इस सर का "गोपी-सर" नामकरण हुआ।

अग्रिमाध्यायों में क्रमशः ब्रह्मसर, इन्द्रसर, कालिन्दीसर, चक्रतीर्थ, कुशराक्षस आख्यान के साथ ही रुक्मिणी-पूजन माहात्म्य लिखित है।

(२३-२८ अ.) (कृष्णकथाफलश्रुति, द्वारका-नगरी-माहात्म्य) कृष्ण कथा के श्रवण, कृष्ण-दर्शन, रुक्मिणी-दर्शन, द्वारका-महत्व, तुलसी धारण-माहात्म्य, गोपीचन्दनमाहात्म्य, भगवद्भक्तलक्षण एवं द्वादशी-जागरण-माहात्म्य (जहां द्वादशी को जागरण होता है वहां सभी देवता तथा तीर्थ स्वयं उपस्थित होते हैं) वर्णित है।

(२६-४४ अ.) (द्वारका एवं स्कन्दपुराण फलश्रुति माहात्म्य) पापियों के संग से गौतमी अशुद्ध हो गयी। गौतमी ने अपनी शुद्धि का उपाय नारद से पूछा पर नारद ने इसका उपाय बतलाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। तभी आकाशवाणी ने गौतमी को द्वारका जाने का उपदेश दिया। नारद गौतमी के साथ द्वारा आये तथा मूर्तिमती द्वारका का दर्शन किया। यहां द्वारका यात्रा, द्वारका नाम, द्वारका-दर्शन, गोमती-सरित्संगम-स्नान, द्वारका क्षेत्रस्थ चक्रादि अन्य तीर्थों के वर्णन के साथ ही द्वादशीव्रत, चक्रतीर्थ तथा गोमती में स्नान दानादि का माहात्म्य, वृषोत्सर्ग तथा द्वारकायात्रा का माहात्म्य प्रतिपादित है। अन्तिमाध्याय (अ. ४४) में स्कन्दपुराण के श्रवण, पठन तथा पुस्तक दानादि का वर्णन है।

भविष्यपुराण[1]

भविष्यपुराण नाम का हेतु-प्राचीन धर्मशास्त्रीय तथा नवीन ऐतिहासिक विषयों के समावेश के कारण भविष्य पुराण का पुराण-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। विषयवस्तु प्रतिपादन, वर्णनशैली तथा काव्यात्मकता की दृष्टि से भी यह पुराण अन्य पुराणों से भिन्न है। भविष्यपुराण सात्त्विक पुराण के रूप में परिगणित है[2]। सात्त्विक पुराणों में विष्णु की स्तुति विशेष रूप से की गयी है (सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः-(मत्स्यपु. ५३.६८) परन्तु पद्मपुराण के अनुसार भविष्यपुराण राजस पुराण है-(भविष्यं वामनं ब्रह्मं राजसानि निबोध मे। -पद्मपु. उ.ख. १६३.८४)। वस्तुतः भविष्यपुराण सौर-प्रधान-पुराण है। इसमें प्राधान्येन सूर्य की उपासना तथा सूर्य की महिमा का विस्तृत विवेचन प्राप्त है। सूर्य को जगत्स्रष्टा, पालक तथा संहारक कहा गया है। सूर्य की पूजा-विधि, सूर्य-रथयात्रा, सूर्य नमस्कार, सूर्य प्रदक्षिणा-विधि, सौर धर्म, दीक्षा-विधि, सूर्य का स्वरूप तथा सूर्य की द्वादशमूर्तियों आदि का वर्णन प्राप्त है। एतदतिरिक्त इस पुराण में धर्मशास्त्रीय विषयों (व्रत-दानादि) का प्रतिपादन विस्तृत रूप से किया गया है। आधुनिक इतिहास के ज्ञान हेतु इसमें वर्णित ऐतिहासिक विषयों का परिशीलन आवश्यक है। हिन्दू तथा मुगल राजाओं का उल्लेख कालक्रमानुसार है।

शिवपुराण के अनुसार भविष्य का वर्णन होने के कारण इसका नाम भविष्य पुराण हुआ-भविष्योक्तेर्भविष्यकम्।

मत्स्य पुराण (५३.३०-३१) के अनुसार जिसमें अधिकांश भविष्य चरित वर्णित है, वह भविष्यपुराण है-

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम्।।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्।
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।।
भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते।

नारदपुराण (१.१००. अ.) के अनुसार-

अथातः संप्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम्।
भविष्यं भवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम्।।

---

१. प्रस्तुत निबन्ध वेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई (सम्वत् १९६७) के प्रकाशित 'भविष्यपुराण' पर आधृत है।

२. पुराण-विमर्श : बलदेव उपाध्याय (तृ.सं. १९८७) पृष्ठ-१०

चतुर्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम्।
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम्।।

पुराणसूची में स्थान तथा श्लोक परिमाण-अष्टादश पुराणों की गणना में भविष्यपुराण (विष्णुपु. ३.६.२०-२४ एवं भागवत १२.१३.३-८ के अनुसार) नवम पुराण के रूप में परिगणित है। स्वयं भविष्यपुराण भी-भविष्यं नवमं स्मृतम् (१.६२) कहता है। ब्रह्मा द्वारा प्रोक्त इस पुराण में पाँच पर्व हैं-१) ब्राह्म, २) वैष्णव, ३) शैव, ४) त्वाष्ट्र तथा ५) प्रतिसर्ग पर्व। सम्प्रति उपलब्ध भविष्यपुराण चार पर्वों में विभक्त है-१) ब्राह्म, २) मध्यम, ३) प्रतिसर्ग, ४) उत्तर। (ब्राह्मपर्व २. २-३)

मध्यमपर्व-तीन तथा प्रतिसर्गपर्व चार अवान्तर खण्डों में विभक्त हे। जिसमें ब्राह्मपर्व में २१५ अ., मध्यम में ६२, प्रतिसर्ग में १०० तथा उत्तरपर्व में २०८ अ. हैं। इसप्रकार इसके कुल अध्यायों की संख्या ५८५ है।

भविष्यपुराण के अनुसार इसके श्लोकों की संख्या ५० हजार है-भविष्यमेतदृषिणां लक्षार्द्धं संख्यया कृतम्-ब्रा. १.१०५ भागवत (१२.१३); देवीभागवत (१.३) तथा मत्स्यपुराण (५३ अ.) के अनुसार भविष्य की श्लोक संख्या १४५०० है। परन्तु अग्निपुराण (२७२ अ.) के अनुसार इसमें १४००० श्लोक हैं। उपलब्ध भविष्यपुराण में लगभग २८ हजार श्लोक हैं।

भविष्यपुराण से निःसृत ग्रन्थ

१. **वेतालपञ्चविंशतिका**-प्रतिसर्गपर्व के द्वितीयखण्ड के २३ अध्यायों में वेताल-विक्रम-संवाद के रूप में यह कथा प्राप्त है। लोक में वेताल-पचीसी (हिन्दी अनुवाद) के रूप में यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। यही कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में भी संगृहीत है।
२. **सत्यनारायण व्रत कथा**- प्रतिसर्ग पर्व के ही द्वितीय खण्ड के २४ से २६ तक छह अध्यायों (२४० श्लोकों) में प्राप्त, यह कथा धार्मिक अनुष्ठान के रूप में विशेषकर उत्तर भारत में अत्यन्त प्रचलित है।
३. **आल्ह-उदल-आख्यान**- प्रतिसर्ग पर्व के तृतीय खण्ड में प्राप्त यह आख्यान लोक में लोक गायकों द्वारा लोकभाषा में गाया जाने वाला ओजस्वी आख्यान है।
४. **सूर्यव्रत अनुष्ठान**-ब्राह्मपर्व में प्राप्त सूर्यार्चन, सूर्य की पूजा-विधि, व्रत तथा व्रतोद्यापन की विधि वर्णित है। यह अनुष्ठान भी लोक में प्रचलित है।

एतदतिरिक्त दुर्गासप्तशती (आदि, मध्य तथा उत्तरचरित) माहात्म्य (प्रतिसर्गपर्व द्वितीयखण्ड ३३-३५) के साथ ही उत्तरपर्व में प्राप्त अनेक व्रतादि का माहात्म्य पृथक्ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित है।

भविष्यपुराण के संस्करण-भविष्यपुराण के निम्नलिखित संस्करण हैं -

१. वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण, मुम्बई सम्वत् १६६७

२. आनन्दाश्रम प्रेस, पूना

३. नवलकिशोरप्रेस, लखनऊ

४. मोरप्रकाशन संस्करण, कलकत्ता

५. गीताप्रेस गोरखपुर, हिन्दी अनुवादमात्र संक्षिप्त संस्करण (१६६२)

भविष्य पुराण का रचना काल-भविष्य पुराण का काल निर्धारण अत्यन्त दुरुह है क्योंकि इसमें भविष्यकथन के नाम पर अनेक कथाएँ तथा ऐतिहासिक विषय कालान्तर में सम्मिलित कर लिये गये हैं। इसकी पूर्ववर्ती कालसीमा का निर्धारण डॉ. हाजरा नक्षत्रों के क्रम-वर्णन के आधार पर ५०० ई. सन् निश्चित करते हैं। साथ ही कतिपय तन्त्रविषयक अध्यायों की रचना लगभग १२०० ई. में मानते हैं[1]। आपस्तम्ब ने भी इसके कतिपय श्लोकों को उद्धृत किया है। इस पुराण की अनुक्रमणी नारदीय (१०० अ.), मत्स्य (५३.३०-३१)-तथा अग्निपु. (२७२.१२) में प्राप्त है। परन्तु यह उपलब्ध भविष्यपुराण के विषयों से भिन्न है। अपरार्क, बल्लालसेन तथा हेमाद्रि ने अपने निबन्ध-ग्रन्थों में इसके अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है[2]।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस पुराण के काल निर्धारण के विषय में विस्तृत विवेचन कर इसके रचनाकाल की पूर्ववर्ती सीमा दशम शती सुनिश्चित की है[3]।

भविष्यपुराण में उपलब्ध सुभाषित-

१. **न तथा शशी न सलिलं न चन्दनरसो न शीतलच्छाया।**
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।। ब्रह्मपर्व ४.१२८।।

२. **श्रद्दधानः शुभां विद्यामाधीयीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।**
-ब्राह्मपर्व ४.२०७

३. **विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्।।**
ब्राह्मपर्व ४.२०८

४. **आचारहीनान् न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सह षडभिरङ्गैः।**
शिल्पं हि वेदाध्यनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु।। ब्राह्मपर्व ४१.८।।

५. **श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामध्यान्तसंस्थितः। श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठश्च धर्मः श्रद्धा प्रकीर्तिता।। ब्राह्मपर्व १८७.६।।**

---

१. Puranic Records : Dr. Hazara (Reprint 1987) page 172

२. Puranic Records : Dr. Hazara Page-332

३. पुराण विमर्श : बलदेव उपाध्याय (तृतीयसंस्करण १६८७), पृ. ५५३

६. श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाः यज्ञाहुतं तपः। श्रद्धामोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धासर्वमिदं जगत्।।

७. सर्वस्व जीवितं वापि दद्यादश्रद्धया च यः। नाप्नुयात् स फलं किञ्चित् तस्माच्छ्रद्धापरो भवेत् (ब्रा. प. १८७.१२-१३)।

८. यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽयं निष्फलं खग।। (ब्राह्मपर्व १८७.२०)

९. शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत्।
अशुभैः कर्मभिर्जन्तुस्तिर्यग्योनिषु जायते।। (उत्तरपर्व ४.६)

१०. प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्म विनिश्चये।
पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा।। (उत्तरपर्व ४.७)

११. यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतु निष्ठाश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः।। (उत्तरपर्व १२२.३-४)

भविष्य पुराण में वर्णित विषयों का सार

प्रथम ब्राह्मपर्व

(१-२ अ.) (कथा-प्रस्ताव, सृष्टिवर्णन) राजा शतानीक की सभा में एक समय सुमन्तु, वसिष्ठादि ऋषि आये। इनसे राजा ने धर्मशास्त्र (चातुर्वर्ण्यधर्मादि) की कथा सुनने का अनुरोध किया। ऋषियों ने उन्हें वेदव्यास से कथा सुनने हेतु निवेदन करने का उपदेश दिया। शतानीक द्वारा वेदव्यास से प्रार्थना किये जाने पर वेदव्यास ने अपने शिष्य सुमन्तु से धर्मशास्त्र के विषय में जिज्ञासा की। सुमन्तु ने राजा के कथन पर भविष्यपुराण की कथा राजा को सुनायी। यहाँ अष्टादश पुराणों के नाम-भविष्य-पुराण की श्लोक संख्या तथा इसके प्रतिपाद्य विषय भी दिये गये हैं, साथ ही चारों वेद, चतुर्दश विद्याओं तथा सृष्टि का वर्णन है।

(३-१५ अ.) (संस्कार, स्त्रीलक्षण तथा धर्मादि का वर्णन) गर्भाधान, पुसंवन, सीमन्तोन्नयनादि संस्कारों का काल, विधि तथा आश्रम धर्म का वर्णन है। ब्राह्मण-शरीर के दाहिने भाग में स्थित पाँच तीर्थों (१. दैव, २. पितृ, ३. ब्रह्म, ४. प्राजापत्य, ५. सौम्य) का उल्लेख, वेदाध्ययन विधि, प्रणव-माहात्म्य, अभिवादन-विधि, स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षण, विवाह विधि, गृहस्थाश्रम में स्त्री एवं धन का महत्त्व, समान कुल में विवाह की प्रशंसा, विवाह के भेद, विवाह योग्य कन्या के लक्षण, अष्ट प्रकार के विवाह (ब्राह्म, दैव, आर्षादि), स्त्रियों के दुष्टादुष्ट भाव, इनके दुर्वृन्त तथा स्त्रियों के धर्म का प्रतिपादन है।

(१६-२० अ.) (प्रतिपदा-माहात्म्य, ब्रह्मार्चन, द्वितीय कल्प (पुष्यद्वितीया-च्यवन कथा)) प्रत्येक तिथि को विहित कर्मों का वर्णन (यथा-प्रतिपदा को दूध तथा द्वितीया को लवणरहित भोजन आदि) एवं प्रतिपत्कल्पनिरूपण में ब्रह्मा की अर्चना, ब्रह्मा की रथयात्रा (कार्तिकपूर्णिमा के दिन) कर प्रतिपदा के दिन प्रातः काल पूजन करने का विधान है।

गङ्गा के तटपर च्यवन मुनि तपस्यारत थे। एक दिन वहाँ महाराज शर्याति सेना तथा परिजनों के साथ गङ्गास्नान हेतु आये। अचानक राजा की सेना व्याकुल हो उठी। राजा द्वारा परिजनों से आश्रम में अनिष्ट किये जाने की जिज्ञासा पर शर्याति-पुत्री सुकन्या ने एक वल्मीक में देदीप्यमान दो छिद्रों में कुश के अग्रभाग से बीधने की बात बतलायी। वहाँ जाकर देखने पर राजा को वल्मीक से ढँके च्यवनऋषि दिखलायी पड़े। राजा ने च्यवन से अपनी पुत्री को क्षमा करने हेतु कहा। ऋषि ने सुकन्या को क्षमा तो कर दिया परन्तु स्त्री रूप में सुकन्या को राजा से माँग लिया। सेवाभाव से रहती हुई सुकन्या ने ऋषि को तपस्या के प्रभाव से सुरूप-प्राप्ति हेतु कहा। उसी मार्ग से जाते हुए अश्विनी कुमारों ने सुकन्या को देखा तथा यथास्थिति का ज्ञान प्राप्त कर ऋषि को स्नान करा कर यौवन प्रदान किया एवं ऋषि से देवों की भाँति यज्ञभाग प्राप्त किया। उस दिन द्वितीया तिथि थी। यहाँ अशून्यशयन द्वितीय-तिथि व्रत का माहात्म्य भी लिखित है। इस व्रत के प्रभाव से पति-पत्नी का वियोग नहीं होता है।

(२१-३१ अ.) (तृतीय-कल्प (गौरी तृतीया व्रत) एवं चतुर्थी-कल्प-व्रत) तृतीया के व्रत से प्रसन्न गौरी स्त्रियों को रूप, सौभाग्य तथा लावण्य प्रदान करती हैं। इन्द्राणी ने पुत्र प्राप्त्यर्थ इस व्रत का अनुष्ठान किया था, जिससे जयन्त नामक पुत्र हुआ था। इसी व्रत के प्रभाव से अरुन्धती ने उत्तम स्थान, पति वसिष्ठ सहित प्राप्त किया था। वैशाख, भाद्र तथा माघ की तृतीया विशेष फलदात्री है।

चतुर्थी-तिथि में निराहार व्रत का विधान है। एक समय लक्षणशास्त्र के अनुसार कार्तिकेय स्त्रियों एवं पुरुषों के लक्षणों की रचना कर रहे थे, उसी समय गणेश ने विघ्न डाला। क्रुद्ध कार्तिकेय ने गणेश का एक दाँत उखाड लिया तथा मारने को उद्यत हुए। शंकर द्वारा कारण पूछे जाने पर कार्तिकेय ने कारण बतलाया। लक्षणशास्त्र के अनुसार स्वयं का लक्षण पूछे जाने से कार्तिकेय ने उन्हें कपाली कहा। क्रुद्ध शिव ने उस लक्षणशास्त्र को समुद्र में फेंक दिया। शिव ने समुद्र को बुलाकर उससे स्त्री-पुरुषों के लक्षणों को कहने को कहा। समुद्र द्वारा कथित शास्त्र 'सामुद्र शास्त्र' नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गणेश की पूजा के बिना कोई भी कार्य प्रारम्भ नहीं करने के उल्लेख के साथ ही पुरुषों, राजाओं तथा स्त्रियों के शरीरावयव के आधार पर लक्षण प्रतिपादित हैं।

अन्त में विनायक पूजा का माहात्म्य तथा गणेश-गायत्री महाकर्णाय एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नों दन्तिः प्रचोदयात् भी लिखित है। शिवा (भाद्रपद शुक्ल

चतुर्थी) शान्ता (माघशुक्लचतुर्थी) तथा सुखा (भौमवारयुक्तशुक्लाचतुर्थी) चतुर्थी व्रतों का महत्त्व भी वर्णित है।

(३२-३८ अ.) (पञ्चमी व्रत) पञ्चमी तिथि नागों की प्रिय तिथि है। इस तिथि को जो नागों को दूध से स्नान कराता है उसके कुल को वासुकि, तक्षकादि नाग अभय प्रदान करते हैं। समुद्रमन्थन के समय श्वेतवर्णवाला उच्चैःश्रवा नामक एक अश्व निकला, जिसे देखकर नागमाता कद्रू ने अपनी सपत्नी विनता से श्वेत अश्व के बालों को श्यामवर्ण वाला कहा। विनता ने इसका प्रतिवाद किया। कद्रू ने अश्व के शरीर में अपने पुत्रों को लिपट जाने को कहा जिससे अश्व श्यामवर्णीय दिखायी पड़े। नागों ने यह छल करने से मना कर दिया, जिससे क्रुद्ध कद्रू ने उन्हें जनमेजय के याग में भस्म हो जाने का शाप दे दिया। नागों द्वारा ब्रह्मा से प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मा ने यायावर वंशीय जरत्कारु नामक ऋषि से अपनी बहन जरत्कारु का विवाह करने को नागों से कहा, जिससे उत्पन्न आस्तीक नामक पुत्र जन्मेजय के सर्प-सत्र को रोकेगा। ब्रह्मा ने पञ्चमी के दिन ही नागों की रक्षा की थी। यहाँ सर्पों का लक्षण, स्वरूप तथा जातियों; नागों की उत्पत्ति, उनके विष के लक्षण, सर्प-दंश की चिकित्सा तथा पञ्चमी तिथि को नागों के पूजन का फल एवं विधान का उल्लेख है।

(३९-४६) (स्कन्दषष्ठी व्रत एवं वर्णव्यवस्था-वर्णन) कार्तिक मास की षष्ठी को फलाहार पूर्वक व्रत करने का विधान है। यह कार्तिकेय वन व्रत है। इसी तिथि को कृत्तिका पुत्र कार्तिकेय का प्राकट्य हुआ था। यहाँ ब्राह्मण के संस्कार तथा आचारादि का वर्णन है। ब्राह्मण का मुख्य लक्षण सदाचार है। शील से युक्त शूद्र भी ब्राह्मण से प्रशस्त होता है। भाद्रपद मास की षष्ठी को होने वाला व्रत भी कार्तिकेय को विशेष प्रिय है। कार्तिकेय के पूजन से मनुष्य इन्द्रलोक में निवास करता है।

(४७-५१ अ.) (शाकसप्तमी-व्रत, आदित्यमाहात्म्य) सप्तमीतिथि को सूर्य का आविर्भाव हुआ था। दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या रूपा (अपरनाम संज्ञा) को सूर्य को स्त्रीरूप में प्रदान किया था। अण्ड में स्थित रहते ही इन्हें यमुना एवं यम नामक सन्तानें हुई थीं। सूर्य-तेज से संत्रस्त उनकी स्त्री ने अपनी छाया से एक स्त्री को उत्पन्न कर सूर्य के समीप रख, स्वयं उत्तरकुरु में घोड़ी रूप में तपस्या करने लगी। सूर्य ने छाया को ही अपनी स्त्री समझा जिससे शनैश्चर तथा तपती नामक सन्तानें हुईं। छाया अपनी सन्तानों पर विशेष स्नेह रखती थी। परस्पर विवाद के कारण तथ्य ज्ञात होने पर सूर्य अपनी पत्नी से मिलने उत्तरकुरु गये। वहाँ अश्व रूप धारण कर अश्वी रूपी पत्नी से मिले। परपुरुष-संसर्ग की आशंका से अश्वी ने अपने नासिका छिद्रों से सूर्य तेज को बाहर कर दिया। जो अश्विनीकुमार हुए। सूर्य को सप्तमी तिथि के दिन ही पत्नी प्राप्त हुई थी। राजा कुरु ने इस सप्तमी का व्रत किया था तथा शाक का भोजन किया था। इस लिए इसका नाम शाक सप्तमी हुआ। यहाँ कृष्ण-साम्ब-संवाद के माध्यम से सूर्यपूजन विधि, व्रतोद्यापन, द्वादश आदित्य नाम (फाल्गुन में सूर्य, चैत्र में वैशाख, वैशाख में धाता आदि) का वर्णन है।

(५२-६३ अ.) (सूर्यरथयात्रा-माहात्म्य) यहाँ सूर्य रथयात्रा का विधान, सूर्यरथ के निर्माण की विधि, सूर्य के सारथि अरुण तथा उनके रथ पर आरुढ होने वाले देवों, ऋषियों, नागों, अप्सराओं आदि का उल्लेख; सूर्य की महिमा, सूर्य के अभिषेक, अभिषेक के समय प्रयाग, पुष्करादि तीर्थों के स्मरण का विधान, रथयात्रा की विधि, (उत्तर दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम का भ्रमण), रथयात्रा का फल (रथयात्रा का सम्पादन करने वाला सूर्यलोक को प्राप्त करता है), भगवान् सूर्य द्वारा योग का वर्णन तथा ब्रह्मा द्वारा दिण्डी को दिये गये क्रियायोग को उपदेश वर्णित है। दिण्डी को ब्रह्महत्या का दोष लग गया था सूर्य की आधारना कर वे दोष मुक्त हुए थे। सूर्य के आदेश पर दिण्डी द्वारा ब्रह्मा के क्रियायोग का रहस्य प्राप्त करने का वर्णन है।

(६४-७१ अ.) (उपवास-माहात्म्य, सप्तमीव्रत तथा सूर्यकल्पवर्णन) उपवास से सूर्य प्रसन्न होते हैं। सभी पापों से उपावृत होने तथा सद्गुणों का आश्रयण कर सभी भोगों का परित्याग ही उपवास है-(६४.४)। सप्तमी का व्रत करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता है। रहस्यसप्तमी व्रत के दिन त्याज्य पदार्थ (तेल का स्पर्श, नीला वस्त्र धारण, आँवला से स्नान-ये निषिद्ध कर्म हैं)

शंखद्विज; वसिष्ठ-साम्ब तथा याज्ञवल्क्य-ब्रह्मा संवाद के माध्यम से आदित्य का स्वरूप, सूर्य के प्रिय पुष्प (मल्लिका, श्वेत कमल, कुटज आदि) सिद्धार्थसप्तमी व्रत-माहात्म्य तथा ब्रह्मोक्त सूर्य-नाम-स्तोत्र (७१ अ.) वर्णित है।

(७२-८१ अ.) (सूर्योपासना के दिव्यस्थान, सांब-कथा) जम्बूद्वीप में सूर्य के तीन (१. इन्द्रवन, २. मुण्डीर तथा ३. कालप्रिय (कालपी)) प्रमुख स्थान है। एक बार दुर्वासा द्वारकापुरी आये। जहाँ उनके कृश शरीर को देखकर साम्ब द्वारा उनके शरीर का परिहास पूर्वक अनुकरण किया गया। जिसे देखकर दुर्वासा ने साम्ब को कुष्ठी होने का शाप दे दिया। सूर्य की उपासना कर साम्ब रोग मुक्त हुए थे। यहाँ सूर्य की द्वादश मूर्तियों (इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण तथा मित्र) का वर्णन, साम्ब द्वारा रोग के निवारणार्थ कृष्ण से उपाय पूछे जाने पर कृष्ण द्वारा सूर्य आराधना करने एवम् उसकी शिक्षा नारद से प्राप्त करने का उपदेश वर्णित है। साम्ब के पूछने पर नारद ने सूर्य के परिवार, उनके विराट् रूप, सूर्य-नमस्कार तथा प्रदक्षिणा का वर्णन किया। यहाँ विजयासप्तमी (शुक्लपक्ष की सप्तमी को रविवार हो तो विजया) व्रत की विधि भी बतलायी गयी है।

(८२-९३ अ.) (आदित्यवार-माहात्म्य) सूर्य के द्वादशवार इस प्रकार परिगणित हैं- नन्द (माघ शुक्लषष्ठी); भद्र (भाद्रपदशुक्लषष्ठी), सौम्य (रोहिणी नक्षत्रयुक आदित्यवार) कामदवार (मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष षष्ठी), पुत्रद (हस्तनक्षत्रयुक्त) जय (दक्षिणायन के दिन), जयन्त (उत्तरायण के दिन रविवार), विजय (शुक्लपक्ष में रोहिणी नक्षत्र युक्तसप्तमी,

आदित्याभिमुख (माघमास के कृष्णपक्ष की सप्तमी), हृदयवार (संक्रान्ति के दिन रवि हो तो),. रोगहावार (आदित्यवार को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र पड़े।) महाश्वेतवार (सूर्यग्रहण के दिन रविवार हो) सूर्यभक्त राजा सत्राजित् द्वारा अपने ऐश्वर्य प्राप्ति का कारण ब्राह्मणों से पूछे जाने पर सूर्य के परमभक्त ब्राह्मण परावसु द्वारा राजा को पूर्व जन्म में शूद्र होने तथा भगवान् सूर्य के मन्दिर में सपत्नीक पूजा अर्चना के फल से ही ऐश्वर्यशाली होना बतलाया गया।

शाकद्वीपीय राजा प्रियव्रत के पुत्र ने सूर्यमन्दिर का निर्माण कराया। सूर्यप्रतिमा-प्रतिष्ठा तथा इसके पूजन हेतु योग्य ब्राह्मणो की चिन्ता में संलग्न राजा को सूर्य ने दर्शन देकर मग ब्राह्मणों की स्वयं के शरीर से सृष्टि करने तथा इन्हें ही (भोजक ब्राह्मणों को ही) सूर्य पूजा का अधिकार बतलाया। यहाँ विष आदि की शान्ति हेतु सूर्य का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१२१-१३८ अ.) (सूर्य को सौम्यरूप की प्राप्ति, साम्बोपाख्यान) एक समय विश्वकर्मा ने देवों की प्रार्थना कर सूर्य के शरीर को तराश कर उनके तेज को कम किया। इसी तेज से विष्णु का चक्र, अन्य देवों के शूल, शक्ति आदि का निर्माण हुआ। सूर्य का आयुध व्योम चार श्रङ्गों से युक्त तथा स्वर्ण निर्मित है।

साम्ब का आख्यान यहाँ विस्तार से वर्णित है। साम्ब द्वारा सूर्य की उपासना, कुष्ठ-रोग-मुक्ति, सूर्य-प्रतिमा-प्राप्ति, प्रतिमा-लक्षण, सूर्य-प्रतिमा-स्नान-कर्म-विधि तथा ध्वजारोहण की विधि विहित है।

(१३९-१५६ अ.) (मगभोजक ब्राह्मणों तथा अव्यङ्गों की उत्पत्ति) साम्ब द्वारा नारद से सूर्य प्रतिमा पूजन आदि के अधिकारी के विषय में जिज्ञासा किये जाने पर नारद ने उन्हें उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख के समीप भेजा। गौरमुख ने स्वयं देव प्रतिग्रह लेने से मना कर साम्ब को मग ब्राह्मणों, (जो सूर्य तथा निक्षुभा की सन्तानें हैं) हेतु निर्देशित किया। साम्ब ने शाकद्वीपीय, अव्यङ्ग धारण करने वाले मग ब्राह्मणों को पूजा हेतु तैयार किया। यहाँ अव्यङ्ग की उत्पत्ति तथा उसका माहात्म्य वर्णित है।

श्रीकृष्ण की जिज्ञासा पर व्यास ने भोजकों की उत्पत्ति तथा योग का लक्षण प्रतिपादित किया। यहाँ सूर्य के प्रिय उत्तम एवं अप्रिय (अधम) भोजकों का लक्षण, सूर्य चक्र का वर्णन, सूर्य दीक्षा-विधि, सौरधर्म, ब्रह्मादि देवों द्वारा कृत सूर्य स्तुति तथा वर-प्राप्ति का वर्णन है।

(१५७-१६० अ.) (सूर्यावतार-कथा) शतानीक की जिज्ञासा पर सुमन्तु ने सूर्य उत्पत्ति की कथा कही। सूर्य की उत्पत्ति कश्यप एवम् अदिति से हुई थी। अदिति के पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। दुःखी अदिति ने कश्यप से इसके निदान का उपाय ज्ञात करने हेतु प्रेरित किया। कश्यप ब्रह्मा के समीप गये। तदनन्तर ब्रह्मा कश्यप के साथ भास्कर के स्थान पर गये तथा लोक कल्याण हेतु अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने की प्रार्थना की। जिसे भास्कर ने स्वीकार कर लिया तथा कालान्तर में सूर्य अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। ब्रह्मादि देवों ने सूर्य के विराट् स्वरूप का दर्शन कर उनकी स्तुति की।

(१६१-१७२ अ.) (सूर्य पूजा-फल, सूर्यषष्ठी व्रत तथा निक्षुभार्क व्रत) सूर्य की पूजा करने से अमरत्व की प्राप्ति तथा सूर्य सामीप्य प्राप्त करने का उल्लेख है। विविध पुष्पों द्वारा सूर्यपूजा फल, सूर्यषष्ठी व्रत (वर्षपर्यन्त कृष्णपक्षीय षष्ठी) उभयसप्तमी व्रत (पौषमास के उभ्यपक्ष की सप्तमी-धर्मार्थकाममोक्ष-प्रदायिनी) निक्षुभार्क-(सूर्य-पत्नी निक्षुभार्क के नाम पर) सप्तमी व्रत तथा कामप्रदस्त्रीव्रत (कार्तिकमास के दोनों पक्षों की षष्ठी एवं सप्तमी को एकभुक्तव्रत) तथा सूर्य के प्रसन्न करने हेतु गोदानादि का वर्णन तथा दान के पात्र अपात्र व्यक्तियों का लक्षण प्रतिपादित है।

(१७३-१८२ अ.) (सौरधर्म-माहात्म्य, शान्तिकर्म, अभिषेक विधि तथा पञ्चविध धर्म) सूर्योपासक को क्षुधार्थ व्यक्ति, दीनहीन जनों की सेवा तथा उनका पोषण, सभी व्यक्तियों पर दया भाव रखना तथा प्रिय वाणी बोलना चाहिए। सौरधर्म पापनाशक तथा सूर्य-प्रिय है। ब्रह्मचर्य, तप, मौन, क्षमा तथा अल्पाहार ये तपस्वियों के गुण हैं। यहाँ दान, कन्यादान, वस्त्रदान तथा चान्द्रायण व्रत की विधि बतलायी गयी है।

ब्रह्मवादिनी के शाप से नष्ट अपने पंखों को पुनः प्राप्त करने हेतु गरुड़ को सूर्य स्तुति तथा उनके अभिषेक की विस्तृत विधि बतलायी। तदनन्तर भास्करप्रोक्त धर्मों (१. वेद, २. आश्रम, ३. वर्ण, ४. गुण, ५. नैमित्तिक) का संस्कारपूर्वक वर्णन है।

(१८३-१८७ अ.) (पञ्चमहायज्ञ-श्राद्ध-विधि तथा खखोल्कमन्त्र-माहात्म्य) पञ्चमहायज्ञों (भूत,सिद्ध, ब्रह्म, दैव तथा मनुष्य), द्वादशश्राद्धों (नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, सपिण्डन, पार्वण, गोष्ठ, शुद्धि, कर्माङ्ग, दैविक, औपचारिक एवं सांवत्सरिक) रात्रिश्राद्ध निषेध, मातृश्राद्ध-(माता, प्रमाता, वृद्ध प्रमाता, पितामती, प्रपितामही वृद्धप्रपितामही को छह पिण्ड देने तथा कुल नौ ब्राह्मणों (आठ तथा एक) को भोजन कराने का विधान है।), शुद्धि प्रकरण तथा खखोल्क मन्त्र (ओम् नमः खखोल्काय) का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१८८-१९३ अ.) (भोजक-सत्कार, पात्रापात्रदानफल, पातकभेद, आचार प्रशंसा) गृहस्थजीवन में कृषि, वाणिज्य, क्रोध एवम् असत्यादि तथा पञ्चसूना दोष से पाप होते हैं- इनके शमन हेतु पञ्चमहायज्ञ किये जाते हैं। सूर्य के दर्शनमात्र से ही 'गङ्गा स्नान' एवं प्रणाम करने से सभी तीर्थों का फल प्राप्त होता है। सौर भक्तों को भोजन कराने से पितृगण तृप्त होते हैं। दान सत्पात्र को ही देना चाहिए। उदारता, स्वागत, मैत्री, अनुकम्पा एवम् अमत्सर रीति से दिया गया दान अत्यन्त फलदायी होता है।

मानसिक, वाचिक तथा कायिक भेद से पाप अनेक प्रकार का होता है। महापातकों (नगर ग्रामादि में आग लगाना, सुरापानादि), उपपातकों (ब्राह्मण को वचन देकर अर्थ न देने वाला, सदाचारिणी स्त्री का त्याग करने वाला आदि) तथा यममार्ग एवं यमपुरी में प्राप्त होने वाली यातनाओं का वर्णन एवम् आचार प्रशस्त तथा सप्तसप्तमियों (अर्क सम्पुटिका, मरीचि, निम्न, फल, अनोदत्र, विजय तथा कामिका) को दन्तधावन हेतु उपयुक्त दातुन का विधान बतलाया गया है।

(१६४-२१६ अ.) (सप्तमी दृष्टस्वप्नफल तथा सप्तमी व्रत) सूर्य, इन्द्रध्वज तथा चन्द्रमा के दर्शन से समृद्धियाँ, शृङ्गार चवरादि के दर्शन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। शतानीक सुमन्तु एवं व्यास-भीष्म संवाद के माध्यम से सूर्य-महिमा, उन्हें अर्घ्य प्रदान करने, सूर्यपूजन की विधि, उपर्युक्त सप्तसप्तमियों के व्रत की विस्तृत विधि एवं फल, कौथुमि आख्यान (कौथुमि द्वारा एक ब्राह्मण का वध हो गया, जिससे उनका ब्राह्मणों ने परित्याग कर दिया उन्हें कुष्ठ रोग भी हो गया। पिता हिरण्यनाभ के उपदेश पर कौथुमि सप्तमी व्रत तथा सूर्यार्चन से रोगमुक्त हुए), द्वादशमास सप्तमी व्रत-विधान वर्णित है; और अन्त में ब्राह्म पुराण-श्रवण-माहात्म्य, पुराण श्रवण-विधि तथा पुराण वाचक की महिमा प्रतिपादित है।

द्वितीय मध्यमपर्व

प्रथम भाग

(१-४ अ.) (मङ्गलाचरण, सृष्टि क्रमवर्णन) सूर्योपासना विषयक मङ्गलाचारण के उपरान्त भविष्यपुराण की प्रशंसा, पूर्व में सबकुछ अन्धकारमय तथा रुद्र में समाहित था। सर्वव्यापक ने मन, अहंकार, पञ्चतन्मात्र, पञ्चमहाभूतादि की सृष्टि की। यहाँ सात लोकों (भू, भुवः, स्वः, जनः, तपः, सत्यः तथा ब्रह्म), सात पातालों (पाताल, वितल, अतल, तल, तलातल, सुतल तथा रसातल) के साथ ही भूगोल तथा ज्योतिश्चक्र का वर्णन है।

(५-११ अ.) (त्रैवर्णिक प्रशंसा, पुराणेतिहास-माहात्म्य, वृक्षारोपण-विधि) ब्राह्मण को तीनों वर्णों से श्रेष्ठ कहा गया है। देवता इन्हीं के मुख से 'हव्य' तथा पितर 'कव्य' प्राप्त करते हैं। अड़तालीस संस्कारों से युक्त व्यक्ति ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है। यहाँ नरकगामी पुरुषों के छब्बीस दोष (अधम, विषमादि) माता, पिता एवं गुरु का माहात्म्य, पुराण-श्रवण का फल एवं पुराण वाचक का महत्त्व, वृक्षारोपण-विधि, प्रासाद, उद्यान तथा कूपादि-निर्माण का महत्व प्रतिपादित है।

(१२-१५ अ.) (देवप्रतिमा लक्षण तथा कुण्डनिर्माण विधि) उत्तम लक्षणों से युक्त प्रतिमा की ही पूजा करनी चाहिए। प्रतिमा पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका, रत्नादि से निर्मित की जा सकती है। यहाँ प्रतिमा की माप, उसके आभूषण (मस्तक पर मुकुट, कण्ठ में हारादि) आदि का वर्णन है। कुण्ड के दस प्रकार (चतुर्भुज, वृत्त, पद्‌म, अर्द्धचन्द्र, योनि-आकृति, चन्द्राकार, पञ्चकोण, सप्तकोण, अष्टकोण तथा नौ कोणात्मक), भूमि शोधन तथा कुण्डों के संस्कार का वर्णन है।

(१६-२१ अ.) (अग्निपूजन, त्रिविधयज्ञ, होमयज्ञ, पात्रनिर्माण, पूर्णाहुति-विधि) अग्निदेव की षोडशोपचार पूजाविधि, अग्नि के नाम (काश्यप, विष्णु, वनस्पति, ब्राह्मण, हरि आदि),

हवन में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों (घी, दुग्ध, पञ्चगव्य, दधि, मधु आदि), हवन में सहायक यज्ञपात्रों (स्रुवा, स्रुक, दर्वी, आज्यस्थाली) का स्वरूप तथा पूर्णाहुति की विधि वर्णित है।

द्वितीय भाग

(१-५ अ.) (मण्डलनिर्माण विधि, दक्षिणाविधान तथा कलश निर्माण) मण्डल-निर्माण व्यक्ति हाथ से माप कर करे, तदुपरान्त उसमें रंग भरे। मण्डल निर्माण श्रेष्ठ ब्राह्मण से ही कराने का विधान है। यहाँ क्रौञ्च मण्डल के प्रकार (१. महाक्रौञ्च, २. मध्य क्रौञ्च तथा ३. कनिष्ठ क्रौञ्च) पक्षियों के दर्शन का पुण्य, यज्ञ में दक्षिणा का माहात्म्य (बिना दक्षिणा के कोई भी यज्ञ नहीं कराना चाहिए), दक्षिणा की मात्रा (पारिश्रमिक के अनुसार) कलश की स्थापना तथा पूजन करने की विधि वर्णित है।

(६-१३ अ.) (चतुर्विधमास स्वरूप, तिथिनिर्णय, गोत्रप्रवरादि का वर्णन तथा वास्तुयाग) चान्द्र, सौर, सावन तथा नाक्षत्र भेद से मास चार प्रकार के बतलाये गये हैं। चारो मासों में करणीय कर्मों की विवेचना, अधिकमास में निषिद्ध कार्यों का उल्लेख, काल का विभाजन, तिथि-निर्णय एवं वर्ष पर्यन्त विशेष पर्वों तथा तिथियों का वर्णन गोत्रप्रवरादि के ज्ञान का महत्त्व तथा वास्तुयाग की विधि वर्णित है।

(१४-२१ अ.) (अग्निकर्मविधि, अग्नि-जिह्वा-वर्णन) वेदादि शाखा के अनुरूप गृह्याग्नि विधि कुशकण्डिका तथा स्थालीपाक का विधान प्रतिपादित है। यहाँ अग्नि की सात जिह्वाओं (हिरण्या, कनका, रक्ता, आरक्ता, सुप्रभा, बहुरूपा, सती) का नामोल्लेख, यज्ञकर्म में उपयुक्त ब्राह्मणों का स्वरूप, प्रतिष्ठा मुहूर्त, जलाशय आदि की प्रतिष्ठा विधि एवं गृह्यवस्तु प्रतिष्ठा का प्रतिपादन है।

तृतीय भाग

(१-१० अ.) (उद्यानादि-प्रतिष्ठा-विधि) उद्यानादि की प्रतिष्ठा की विशेष विधि, वृक्ष-पूजन, उद्यान की रक्षा हेतु मेढों का निर्माण करने, गोचरभूमि के उत्सर्ग के समय की जाने वाली पूजा तथा उसका महत्त्व एवं छोटे उद्यानों की प्रतिष्ठा-विधि; अश्वत्थ-वट तथा बिल्व वृक्ष की प्रतिष्ठा विधि के साथ ही पुष्करिणी एवं जलाशय की प्रतिष्ठा विधि भी प्रतिपादित है।

(११-२० अ.) (मण्डपादि-प्रतिष्ठा-विधि) याग हेतु निर्मित मण्डपों की प्रतिष्ठा-विधि, महायूप (चार हाथ से लेकर सोलह हाथ तक), पौसला एवं कूपादि की प्रतिष्ठा, पुष्पवाटिका, तुलसी आदि की प्रतिष्ठा विधि, एकाह-प्रतिष्ठा (एक दिन में प्रतिष्ठा) विधि काली आदि महाशक्तियों की प्रतिष्ठा, दिव्य (ग्रहनक्षत्रादिजन) अन्तरिक्ष (उल्कापातादि) तथा भौम-(जलाशय, वृक्ष, पर्वत तथा पृथ्वी) जन्य उत्पातों का वर्णन एवम् उनकी शान्ति के उपाय भी प्रतिपादित हैं।

तृतीय प्रतिसर्ग पर्व

प्रथम खण्ड

(१-२ अ.) (कृत एवं त्रेतायुगीय-भूप-वर्णन) सत्ययुग के राजाओं के विषय में शौनक के प्रश्न पर सूत ने वैवस्वत मनु से प्रारम्भ कर अन्त तक के राजाओं का वर्णन किया। ये राजा हैं-वैवस्वत, मनु, इक्ष्वाकु, विकुक्षि, रिपुञ्जय, ककुत्स्थ, अनेना, पृथु, विश्वगश्व, अद्रि, भद्राश्व, युवनाश्व, श्रावस्त, बृहदश्व, कुवलयाश्व, दृढाश्व, निकुम्भक, संकटाश्व, प्रसेनजित्, रणाश्व, मान्धाता, पुरुकुत्स, त्रिंशदश्व, अनरण्य, पृषदश्व, हर्यश्वनाम आदि। त्रेतायुग के सूर्यवंशीय-सुदर्शन, दिलीप (द्वितीय), रघु (इनके नाम पर सूर्यवंशीय रघुवंशीय कहलाये), अज, दशरथ, राम, कुश, अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा तथा चन्द्रवंशीय-चन्द्रमा, बुध, पुरुरवा, आयु, नहुष आदि का वर्णन है।

(३-४ अ.) (द्वापरयुगीय राजा वर्णन तथा न्यूहवंश (म्लेच्छ) वर्णन) द्वापर युग के राजाओं के वर्णन में महाराज संवरण से प्रारम्भ कर उनके पुत्र अर्चाज्ञ, सूर्यजापी, सूर्ययज्ञ, आदित्यवर्द्धन, द्वादशात्मा, दिवाकर आदि राजाओं के वर्णन के साथ ही म्लेच्छवंशीय राजाओं के वर्णन में आदम नामक पुरुष एवं हव्यवती (हौआ) नामकी स्त्री से म्लेच्छवंश की वृद्धि हेतु ब्राह्मी भाषा को अपशब्दवाली भाषा के रूप में निर्मित किया। यहाँ न्यूह के तीन पुत्रों सिम, हाम, याकूत तथा याकूत के सात पुत्रों जुम्र, माजूज, मादी, यूनान, तूवलोम, सक तथा तीरास का वर्णन है।

(६-७ अ.) (काश्यपवंश-वर्णन, क्षत्रियोत्पत्ति तथा विक्रमचरित) ब्रह्मावर्त में सरस्वती के प्रभाव से म्लेच्छ नहीं आ पाये थे। यहाँ काश्यप नामक ब्राह्मण की पत्नी आर्यावती से दसपुत्र- उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड्य तथा चतुर्वेदी हुए। काश्यप ने कश्मीर जाकर सरस्वती की पूजा की। सरस्वती की कृपा से उन्होंने म्लेच्छों को द्विज बनाया। यहाँ मगधदेशीय राजाओं के वर्णनपूर्वक गौतम की उत्पत्ति, बौद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन, कान्यकुब्जीय ब्राह्मण द्वारा अर्बुदाचल (आबू) पर किये गये होत्र के कारण प्रमर (परमार-सामवेदी), चपहानि (चौहान-कृष्णयजुर्वेदी) त्रिवेदी-(गहरवार-शुक्लयजुर्वेदी), परिहारक (परिहार-अथर्ववेदीय) क्षत्रियों की उत्पत्ति तथा परमार-वंशीय राजाओं की उत्पत्ति के वर्णन के साथ ही विक्रमादित्य के समीप वेताल के आने की कथा तथा उसके द्वारा इतिहासपूर्ण आख्यान राजा को सुनाने का वर्णन है।

द्वितीय खण्ड

(१-२३ अ.) (वेताल-विक्रम संवाद)[1] प्रस्तुत अध्यायों में वेताल द्वारा विक्रमादित्य को कथा सुनाते हुए प्रत्येक कथा के अन्त में पूछे गये नीतिपरक प्रश्नों का राजा द्वारा दिये गये समुचित उत्तरों का वर्णन है। ये कथाएं क्रमशः हैं-पद्मावती-कथा, कामांगीकन्याकथा, त्रिलोकसुन्दरीकथा, कुसुमदादेवी चिरंजीव कथा, कामलसाख्यवैश्यकन्याकथा, गुणशेखरराजपत्नीकथा, धर्मवल्लभबुद्धिप्रकाशमन्त्रिकथा, ब्राह्मणहत्याकथा, सुखभाविनीवैश्य कथा, चन्द्रावली कथा, जीमूतवाहन शंखचूडगरुडकथा, कामवरुथिनी वैश्यकन्या कथा, गुणाकरद्विजसुतयक्षिणीकथा, मोहिनी विप्रपत्नी कथा, विप्रपुत्रकथा, अनंगमञ्जरीकथा, विष्णुस्वामिचतुष्पुत्रकथा तथा क्षत्रसिंहनृपति की कथा (प्रतिपादित हैं)।

(२४-२९ अ.) (सत्यनारायण-कथा) लोक में प्रसिद्ध सत्यनारायण कथा का वर्णन है। इसके प्रथम अध्याय में सत्यनारायण व्रत की विधि, ध्यान, जप (नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि। चतुःपदार्थ दात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः।।- प्रतिसर्ग पर्व २.२४.३०) हवन, प्रसाद वितरण की विधि; द्वितीय अध्याय में काशीस्थ शतानन्द ब्राह्मण की कथा (निर्धन शतानन्द सत्यनारायणव्रत से भगवान् की अनन्य भक्ति प्राप्त किये थे), तृतीय अध्याय में- चन्द्रचूड राजा की कथा (धार्मिक चन्द्रचूड म्लेच्छों से युद्ध में परास्त होकर काशी आये। जहाँ सत्यनारायण की कथा शतानन्द ब्राह्मण से सुनकर एवं तदनुसार सम्पन्न कर पुनः अधिपति हुए।); चतुर्थ अध्याय में भिल्ल-कथा (एक लकडहारा विष्णुदास (शतानन्द) के आश्रम में गया। वहाँ सत्यनाराण के व्रत का प्रभाव ज्ञात कर स्वयं तथा स्वजनों से व्रत कराकर उसके फल से धनधान्य युक्त होकर अन्त में विष्णुलोक को प्राप्त किया); पञ्चम अध्याय में साधुवणिक् तथा उसके जामाता शंखपति की कथा (निःसन्तान साधु वणिक् को सत्यनारायण व्रत के प्रभाव से एक पुत्री हुई, जिसका विवाह उसने शंखपति से कर दिया। पुत्र प्राप्ति पर करणीय व्रत के संकल्प को विस्मृत करने के कारण साधु दुर्दशा को प्राप्त हो गया।) षष्ठ अध्याय में लीलावती (साधु वणिक्पत्नी) तथा कलावती की कथा (जिनके द्वारा सत्यनारायण के व्रत के प्रभाव से साधु तथा शंखपति मुक्त हुए तथा धनधान्य युक्त हुए) वर्णित हैं।

(३०-३५ अ.) (पितृशर्मा की कथा, बोपदेव चरित्र, तथा दुर्गासप्तशती-माहात्म्य) पितृशर्मा नामक ब्राह्मण ने भगवती देवी को पूजन एवं स्तुति से प्रसन्नकर आशीर्वाद रूप में चार पुत्रों- ऋक्, यजुष, साम तथा अथर्वा को प्राप्त किया। ऋक् के पुत्र व्यादि, यजुष् के मीमांस, साम के पाणिनि तथा अथर्वा के पुत्र वररुचि हुए। यहाँ पाणिनि द्वारा शिव की

---

१. प्रस्तुत कथाएं 'वैतालपञ्चविंशतिका' नाम से कथा साहित्य में प्राप्त है। इसका हिन्दी अनुवाद भी 'वेतालपचीसी' के रूप में जनसामान्य में प्रचलित है।)

तपस्या कर अ इ उ ण् आदि सूत्रों को प्राप्त करने की कथा का उल्लेख है। तोताद्रि निवासी बोपदेव (जिन्होंने 'हरिलीलामृतम्' नाम से पुनः मोक्षप्रदायिनी हरिकथा का वर्णन किया) का चरित एवं दुर्गासप्तशती के आदि मध्य एवम् उत्तरचरित के वर्णन प्रसङ्ग में पतञ्जलि का चरित भी वर्णित है।

तृतीय खण्ड

(१-६ अ.) भविष्य नामक महाकल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें द्वापर युग के अन्त में कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। अट्ठारह दिनों में कौरवों पर पाण्डवों ने विजय प्राप्त की। काल की गति ज्ञात कर कृष्ण ने शिव से पाण्डवों की रक्षा करने की प्रार्थना की। मध्यरात्रि में अश्वत्थामा भोज (कृतवर्मा) और कृपाचार्य ने रुद्र की स्तुति कर तथा शिविर में प्रवेश पाकर धृष्टद्युम्नादि की हत्या कर दी। पाण्डवों ने आने पर शिव को ही दोषी मानते हुए उनसे युद्ध किया। शिव ने पाण्डवों को शाप दे दिया। कृष्ण की प्रार्थना पर शिव ने युधिष्ठिर, अर्जुनादि को कलियुग में उत्पन्न होने तथा अपने पापों को भोग कर मुक्त होने का वर दिया। युधिष्ठिर को वत्सराज बलखान का पुत्र होने, भीम को वीरण, अर्जुन को ब्रह्मानन्द होने, धृतराष्ट्र के अंश से अजमेर में पृथ्वीराज होने तथा द्रौपदी को पृथ्वीराज की कन्या के रूप में 'वेला' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करने का वर दिया। कृष्ण ने स्वयं को उदयसिंह के रूप में तथा वैकुष्ठधाम का अंश आहताद नाम से उत्पन्न होने का उल्लेख किया।

मुनियों द्वारा सूत से पूछे जाने पर सूत ने विक्रमाख्यान तथा अन्यराजाओं एवं राज्यों का वर्णन किया। तत्कालीन भारत के अट्ठारह राज्यों का वर्णन (इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, कम्पिल, अन्तर्वेदी, व्रज, अजमेर, मरुधन्व (मारवाड), गुर्जर, महाराष्ट्र, द्रविड, कलिंग, अनन्ती, उडुप (आन्ध्र), वंग, गौड, मगध तथा कौशल); विक्रमादित्य के पौत्र राजा शालिवाहन के सिंहासनासीन होने तथा शक आदि देशों पर विजय पाने का वर्णन है। यहाँ ईसामसीह की उत्पत्ति की कथा भी प्राप्त है।

शालिवाहन के वंश में दशम नृपति भोजराज हुए, जिन्होंने दिग्विजय की। भोजराज के वंश के अनेक राजाओं के वर्णन के साथ ही जयचन्द्र पृथ्वीराज की कथा भी वर्णित है। जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज की प्रतिमा का वरण करने एवं पृथ्वीराज द्वारा राजाओं से युद्ध करने का वर्णन है।

(७-१५ अ.) परिमलराज द्वारा शिव की उपासना कर उन्हें अपने गृह में निवास करने का वर प्राप्त करने तथा लक्ष्मणराज की तपस्या से प्रसन्न जगन्नाथ द्वारा उन्हें ऐरावती दान देने; सहदेव के अंश जम्बुकराज का वर्णन, कृष्णाशचरित्र, मल्लक्रीडादि वृन्तान्त, पृथ्वीराज द्वारा गुर्जर राज्य प्राप्त करने के वृतान्त तथा धर्मांश बलखानि के विवाह

के वर्णन के साथ ही जानकी के शाप से इन्द्रपुत्र जयन्त की कलि में उत्पत्ति एवं इन्दुल नाम से प्रसिद्धि की कथा भी वर्णित है।

(१६-१६ अ.) कृष्णांश रूप बलखानि के सत्रह वर्ष की आयु पर विवाहित होने, बलखानि का वृतान्त, पृथ्वीराज का कौरवांश सप्तपुत्रों की प्राप्ति, ब्रह्मानन्द-विवाह, इन्दुल को हंस द्वारा पद्मिनी का वृतान्त बतलाने, इन्दुल एवं पद्मिनी के विवाह का वर्णन है।

(२०-३२ अ.) पाञ्चालदेशीय बलवर्द्धन राजा के पुत्र मयूरध्वज के स्कन्दप्रासाद एवं उसके भाई लहर के वरुणप्रसाद का वर्णन, सुयखानि के विवाह का वृतान्त, सिन्धुदेशीय मयूरध्वजराज की पुत्री, पुष्पवती के साथ कृष्णांश के विवाह, चित्ररेखा के साथ इन्दुल के विवाह का वृतान्त, पृथ्वीराज के समक्ष चन्द्रभट्ट द्वारा भावा ग्रन्थ के वर्णन, अनेक राजाओं द्वारा परस्पर युद्ध करने, दाक्षिणात्य बिन्दुगढ के शारदानन्दनराजा की कन्या का स्वयंवर-वर्णन, कच्छदेशीय-युद्ध-वर्णन, कृष्णांश का शोभा वेश्या के साथ समागम एवं उससे मुक्ति का वर्णन है।

बौद्धराज्य-चीनराज तथा श्यामराज्य के साथ परस्परयुद्ध, कश्मीर देशीय केकयराज की कथा, प्रभावती, पुण्ड्रदेशीय नागवर्मन की पुत्री सुवेला, मद्रकेश-कन्या कान्तिमती के विवाह के वर्णन के साथ ही म्लेच्छराजा के दिल्ली आगमन आदि देश में म्लेच्छ आगमन, चन्द्रवंशीय सभी राजाओं के मध्य युद्ध का वर्णन, सभी राजाओं के क्षय होने, पृथ्वीराज की मृत्यु तथा सहोद्दीन (मुहम्मद गोरी) द्वारा देहली में अपने दूत कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन) को स्थापित करने की कथा वर्णित है।

चतुर्थ खण्ड

(१-३ अ.) (प्रमरवंशवर्णन) अग्निवंश वर्णनप्रसङ्ग में विक्रमवंशीय राजाओं-देवदूत, गन्धर्वसेन, देवभक्त, शालिवाहन, शालिहोत्र, शक्तिवर्द्धन, सुहोत्र, हविर्होत्र, इन्द्रपाल, माल्यवांन्, शम्भुदत्त, भीमराज, वत्सराज, भोजराज, शम्भुदत्त, विन्दुपाल आदि का क्रमशः वर्णन है।

अजमेर (अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता। तया च नगरं रम्यमजमेरमजं स्मृतम्।। प्रतिसर्गपर्व ३.४.२.२) के उल्लेख पूर्वक तोमरवंश के वर्णन के साथ ही चपहानि क्षत्रिय स्त्रियों जट्ट, जाट्य मेहन आदि के वृत्तान्त का वर्णन है, शुक्लनामक अग्निवंशीय राजाओं के वंश के वर्णन, शुक्लब्राह्मण द्वारा बौद्ध विजय के कारण द्वारका पर राज्य करने; तथा सिन्धु, कच्छ, भुज, उदयपुर, कान्यकुब्जदेश आदि का वर्णन प्राप्त है। यहाँ परिहारवंशीय राजाओं के वंश का वर्णन एवं देहलीस्थ म्लेच्छराजाओं का भी वर्णन है। सहोज्जीन द्वारा देवतातीर्थ को नष्ट करने, मोङ्गल-तैमूरलङ्ग के राज का वर्णन के साथ ही सूर्य का माहात्म्य भी प्रतिपादित है।

(७-१४ अ.) (महापुरुष-चरित-वर्णन) रामानन्द, निम्बादित्य, मध्वाचार्य, श्रीधराचार्य, विष्णुस्वामि, वाणिभूषण, भट्टोजिदीक्षित, वराहमिहिर, धन्वन्तरी, सुश्रुत, जयदेव, कृष्णचैतन्य, शंकराचार्य, आनन्दगिरि, वनशर्मा, पुरीशर्मा, भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्रशर्मा, ढुण्ढिराज, अधोरपन्थी, हनुमन, बालशर्मा तथा रामानुज प्रभृति महापुरुषों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(१५-२० अ.) वसु अवतार वर्णन प्रसङ्ग में कुबेरावतार त्रिलोचन एवं वैश्यों की उत्पत्ति का वर्णन है। नामदेव, रंकणवैश्य, कबीर, मरश्री, पीपा, नानक, नित्यानन्दसाधु, रैदास, बलभद्र, विष्णुस्वामि, मध्वाचार्य, की उत्पत्ति के वर्णन के साथ ही जगन्नाथ का माहात्म्य भी वर्णित है।

(२१-२६ अ.) कण्व एवम् उनकी पत्नी आर्यावती से दसपुत्र- उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड, चतुर्वेदी, हुए। यहाँ इनकी वंशावली प्राप्त है।

दिल्ली राज्यवृतान्त वर्णन में अकब्बर वंश वर्णन, दाक्षिणात्य देवपक्षवर्धक सेवाजीय (शिवाजी) के राज्य, मुकुल (मोङ्गल) वंश-ह्रास, नादरादि राज्यवर्णन, राम द्वारा प्रदत्त वानरों को दिये गये वर के कारण गुरुण्डवंशीयों (गुरुण्डा वानराननाः) का वाणिज्य हेतु आर्यदेश (भारत) आने; कलिकातानगरी वृत्तान्त, अष्टकौशल्य (पार्लमेण्ट)- राज्य वृत्तान्त गुरुण्डराज्य (बौद्धमार्गी) समाप्ति, तथा मौनराज्य वृत्तान्त का वर्णन है। वैदिक धर्मप्रवर्तक तीर्थ क्षेत्रोद्धारक पुष्यमित्र राज की उत्पत्ति- सोमनाथराज की उत्पत्ति, राहुराज्य महमदीयमत के प्रचार का वृत्तान्त, म्लेच्छों का क्षेत्रविस्तार, कलि के द्वितीय एवं तृतीय चरण का वर्णन, कल्कि अवतार की कथा, कल्कि की पूजा का माहात्म्य, कल्कि विजय का वृत्तान्त तथा अन्त में प्रतिसर्ग पर्वोवसंहार-फल वर्णित है।

उत्तरपर्व

(१-६ अ.) (भुवनकोशवर्णन, विष्णु-माया-स्वरूप, अधर्मपाप भेद, यमयातना प्रकार) एक समय युधिष्ठिर के समीप व्यास-मार्कण्डेयादि ऋषि आये। युधिष्ठिर ने इनसे बान्धववधजन्य पाप के निवारण का उपाय पूछा, जिसको उपस्थित ऋषियों ने कृष्ण से पूछने का उपदेश युधिष्ठिर को दिया। युधिष्ठिर ने कृष्ण से जगत् की उत्पत्ति विषयक प्रश्न किया, जिसका उत्तर कृष्ण ने विस्तृत रूप से दिया।

एक समय नारद ने विष्णु से माया के विषय में जिज्ञासा की। विष्णु ने नारद को अपनी माया का स्वरूप दिखलाया। यहाँ संसार के दोषों, अनेक विध पापों, यमदूतों द्वारा दी जाने वाली प्रताडनाओं एवं पुण्यकर्मो के फल का विस्तृत विवेचन है।

(७-२८ अ.) (विविध-व्रत (द्वितीया-तृतीया) का माहात्म्य) शकटव्रत, तिलक व्रत, अशोक, करवीर, कोकिला, बृहत्तपो व्रत, जातिस्मर, यमद्वितीया, अशून्यशयन, मधूक तृतीया, मेघपाली तृतीया, रंभा तृतीया, गोष्पदतृतीया, हरिकाली तृतीया, ललिता तृतीया,

अवियोगतृतीया, उमामहेश्वर व्रत, रंभाव्रत, सौभाग्याष्टक तृतीया, रसकल्याणिनी, आर्द्रानन्दकरी तृतीया, चैत्रभाद्रपद-माघ तृतीया, आनन्तर्य तृतीया एवं अक्षयतृतीया व्रत की विधि तथा माहात्म्य प्रतिपादित है।

(३०-६४ अ.) (चतुर्थी से दशमी पर्यन्त) अंगारकचतुर्थी विनायकस्नपनचतुर्थी, शान्तिव्रत, सारस्वत, नागपञ्चमी, श्रीपञ्चमी, विशोकषष्ठी, कमलषष्ठी, मन्दारषष्ठी, ललिताषष्ठी, कार्तिकेयपूजाषष्ठी, विजयसप्तमी, आदित्यमण्डल दानविधि, त्रयोदशवर्ज्यसप्तमीव्रत, कुक्कुटमर्कटीव्रत, उभयसप्तमी, कल्याणसप्तमी, अपलासप्तमी, बुधाष्टमी, जन्माष्टमी, दूर्वाष्टमी, कृष्णाष्टमी, अनघाष्टमी, सोमाष्टमी, श्रीवृक्ष (विल्व) नवमी, ध्वजनवमी, उल्कानवमी, दशावतारचरित तथा आशादशमी व्रत की विधि वर्णित है।

(६५-१०० अ.) (द्वादशी-त्रयोदशी-चतुर्दशी-पौर्णमासीव्रत) तारकद्वादशी, अरुणाद्वादशी, रोहिणीचन्द्र एवं अवियोग व्रत, गोवत्सद्वादशी, गोविन्दशयनी तथा देवोत्थापनद्वादशी, नीराजनद्वादशी, भीष्मपञ्चक, मल्लद्वादशी, भीमद्वादशी, श्रवणद्वादशी, विजयश्रवणद्वादशी, उल्काद्वादशी, सुकृतद्वादशी, धरणीव्रत, विशोकद्वादशी, विभूतिद्वादशी, मदनद्वादशी, अबाधकव्रत, मन्दारनिम्बार्ककरवीरमाहात्म्य, यमदर्शनत्रयोदशी, पालीव्रत, रंभाव्रत आग्नेयीचतुर्दशी, अनन्तचतुर्दशी, श्रवणिकाव्रतमाहात्म्य, नक्तोपवासविधि, शिवचतुर्दशी, फलत्यागचतुर्दशी, विजयपौर्णमासी, वैशाखी-कार्तिकी-माघी-पौर्णमासी व्रत की विधि तथा इनका माहात्म्य वर्णित है।

(१०१-१४६ अ.) (अन्यव्रत तथा महोत्सववर्णन) युगादितिथिव्रत, वटसावित्री, कृत्तिकाव्रत, पूर्णमनोरथव्रत, विशोकपूर्णिमा, अनन्तव्रत, सांभरायणी, नक्षत्रपुरुषव्रत, शिवनक्षत्रपुरुष, सम्पूर्ण व्रतमाहात्म्य, कामदानवेश्याव्रत, ग्रहनक्षत्रव्रत, शनैश्चरव्रत, आदित्यदिननक्तव्रत, सक्रान्ति उद्यापनविधि, विविधव्रत, अगस्त्यार्ध्यपूजा, व्रतपञ्चाशीति-माहात्म्य, माघस्नानविधि, रुद्रस्नान, चन्द्रादित्यग्रहणस्नानविधि, अपरसांभरायणीय व्रत, वापीकूपतडागोत्सर्गविधि, वृक्षोद्यानविधि, देवपूजाफल, दीपदानविधि, वृषोत्सर्गविधि, फाल्गुनपूर्णिमोत्सव, रथयात्रामहोत्सव, मदनमहोत्सव, भूतमात्रुत्सव, महेन्द्रध्वजमहोत्सव, दीपालिकोत्सव, नवग्रहलक्षविधि, कोटिहोमविधि, महाशान्तिविधि, गणनाथशान्ति, नक्षत्रहोमविधि, अपराधशतव्रत, कांचनपुरीव्रत, कन्याप्रदानमाहात्म्य तथा ब्राह्मणशूश्रूषा का माहात्म्य प्रतिपादित है।

(१५०-२०८ अ.) (विविधदानविधि एवं माहात्म्य) वृषदान, धेनुदान, तिलधेनु, जलधेनु, घृतधेनु, लवणधेनु, काञ्चनधेनु, रत्नधेनु, उभयमुखीगोदान, गोसहस्रदान, वृषभदान, कपिलादान, महिषीदान, अविदान, भूमिदान, सौवर्णपृथिवीदान, हलपंक्तिदान, आपाकदान, गृहदानविधि, अन्नदान, स्थालीदान, दासीदान, प्रपादान, अग्नीष्टिकादान, विद्यादान, तुलापुरुषदान, हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्षदान, कल्पपताकादान, गजरथाश्वरथदान, कालपुरुषदान, सप्तसागरदान, महाभूतघटदान, शय्यादान, आत्मप्रतिकृतिदान, हिरण्याश्वदान, हिरण्याश्वरथ,

कृष्णाजिनदान, हेमन्तहस्तिरथदान, विश्वचक्रदान, भुवनप्रतिष्ठामाहात्म्य, नक्षत्रदानविधि, तिथिदान, वराहदान, धान्यपर्वतदान, लवणपर्वत, गुडाचलदान, हेमाचलदान, तिलाचलदान, कार्पासाचलदान, घृताचलदान, रत्नाचलदान, रौप्याचलदान, शर्कराचलदान, सदाचारधर्मवर्णन, रोहिणीचन्द्रशयनव्रत की विधि तथा माहात्म्य वर्णित है। युधिष्ठिर को उपर्युक्त व्रतों का विस्तृत उपदेश देकर कृष्ण मथुरा को चले गये।

अन्त में उत्तरपर्वस्थ विषयानुक्रमणिका का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण

अष्टादश महापुराणों के क्रम वर्णन में ब्रह्मवैवर्त दसवें स्थान पर परिगणित है। यह वैष्णवपुराण है। सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण-१. ब्रह्मखण्ड, २. प्रकृतिखण्ड, ३. गणपतिखण्ड, ४. कृष्णजन्म खण्ड इन चार खण्डों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त इसमें काशी रहस्य भी है। इसकी अध्याय संख्या २६६ तथा श्लोक संख्या अठारह हजार हैं। नारदीय पुराण में ब्रह्म वैवर्तपुराण की जो श्लोक संख्या तथा जो विषय दिए गए हैं, वे वर्तमान उपलब्ध ब्रह्म वैवर्तपुराण में न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होते हैं।

इस पुराण के प्रमुख प्रतिपाद्य देवता विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण तथा उनकी शक्ति श्रीराधा हैं। सम्पूर्ण पुराण के दो तिहाई भाग में श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा का वर्णन है तथा शेष तिहाई भाग में अन्य विषयों का विवेचन है। इसमें श्रीकृष्ण के रूप में एकमात्र परमसत्य तत्त्व भगवान् का तथा श्रीराधा के रूप में एकमात्र परम सत्य तत्त्वमयी भगवती का प्रतिपादन किया गया है। शक्ति और शक्तिमान् वस्तुतः एक ही हैं। इनमें तात्विक दृष्टि से सर्वथा अभेद है। श्रीकृष्ण ने अपनी पूर्ण ब्रह्म स्वरूपताको विवृत (प्रकट) कर दिया है। इसीलिए पुराणवेत्ता इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं।[1]

यह सारा जगत् ब्रह्म (परमात्मा श्रीकृष्ण) का विवर्त है। अर्थात् श्रीकृष्ण में ही भ्रम से इसका आरोप हुआ है। इस बात को बताने वाला पुराण ब्रह्मवैवर्त है। परब्रह्म परमात्मा नाम से श्रीकृष्ण का ही इस पुराण में प्रतिपादन हुआ है।

"वन्दे कृष्णं गुणातीतं परमब्रह्माच्युतं यतः। (ब्र.ख. १/४)

प्रकृति, ब्रह्म, विष्णु और शिव आदि देवों का आविर्भाव श्रीकृष्ण से ही हुआ है।[2]

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् एक ही अद्वय परमसत्ता के लीलानुरूप तीन नाम हैं। ये ही परमात्मा अथवा ब्रह्म ही ब्रह्म वैवर्तपुराण में श्रीकृष्ण बतलाये गए हैं। ये ही श्रीकृष्ण महाविष्णु, नारायण, शिव, तथा गणेशादि रूप में प्रकट हुए हैं और प्रेम तथा प्राणों की अधिदेवी श्रीराधा ही दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, काली आदि रूपों में प्रकट हैं। कभी श्रीकृष्ण महादेव का स्तवन करते हैं, उन्हें परमतत्त्व तथा अपने से अभिन्न बताते हैं, कहीं तो महादेव श्रीकृष्ण का स्तवन करते हुए उन्हें परम आदि तत्व और अपने से अभिन्न बताते हैं। कहीं श्रीराधाजी, दुर्गा एवं श्रीपार्वती का स्तवन करती हैं तथा उन्हें

---

१. विवृतं ब्रह्मकात्स्र्न्यञ्च. कृष्णेन यत्र शौनकः।
ब्रह्म वैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।। ब्र.ख. १/५८. ५६

२. आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः। ब्र.ख. १/४

सर्वदेवी स्वरूपा बतलाती हैं। कहीं तो श्रीदुर्गा श्रीराधा जी को सर्वदेवीस्वरूपा तथा आदेश देने वाली आदि स्वरूपा महादेवी बतलाती हैं। तात्पर्य यह है कि एक ही परम तत्व तथा उनकी शक्ति अनेक रूपों में आविर्भूत है। सृष्टि के अवसर पर भगवान श्रीकृष्ण दो रूपों में प्रकट होते हैं-प्रकृति तथा पुरुष। उनका दाहिना अंग पुरुष तथा वाम अंग प्रकृति। वही मूल प्रकृति राधा हैं। वही ब्रह्मस्वरूपा, नित्या तथा सनातनी हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण मोर प्रकाशन कलकत्ता से प्रकाशित है।

ब्रह्मखण्ड-ब्रह्मवैवर्त के प्रथम ब्रह्मखण्ड में ३० अध्याय हैं। शौनकजी के ब्रह्मवैवर्तपुराण विषयक प्रश्न पूछने पर सूतजी ने सर्वप्रथम उन्हें ब्रह्मखण्ड की कथा का श्रवण कराया। इसमें परब्रह्म का वर्णन, जिसका ध्यान वैष्णव, योगिराज तथा सन्त करते हैं, इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

सन्तो भवन्ति सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः।। (ब्र.ख. १/४७)

इसी ब्रह्मखण्ड में देवी, देव तथा सर्वजीवों की उत्पत्ति का वर्णन है। सृष्टि निरूपण शौनकजी के ब्रह्म विषयक प्रश्न करने पर सौति ने ब्रह्म को सृष्टि का उपादान कारण बतलाकर नाना लोकों की सृष्टि का वर्णन इस प्रकार किया, सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्य, निर्जन्तु और अन्धकारपूर्ण था। न कहीं वृक्ष थे, न पर्वत और न नदी नदादि का कहीं नाम था। जब महान् हिरण्यगर्भ ने अपने आपको अकेला देखा तो स्वेच्छा से उनमें "एकोऽहं बहु स्याम्" की भावना का प्रस्फुरण हुआ। उसके साथ ही सृष्टि के कारण स्वरूप मूर्तिमान तीनों गुण आविर्भूत हुए। फिर महान अहंकार पंचतन्मात्रा- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, और शब्द के साथ उत्पन्न हुआ। फिर भगवान नारायण स्वयं आविर्भूत हुए। वे भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। साथ-साथ वाम पार्श्व से पांच मुख एवं तीन नेत्र वाले शंकर जी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शंकर जी की वहीं स्तुति की। फिर भगवान् श्रीकृष्ण के नाभिकमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा वक्षस्थल से धर्म का आविर्भाव हुआ। वाम पार्श्व से कन्या आविर्भूत हुई, जो साक्षात् सरस्वती ही थी। उनके मन से महालक्ष्मी जी तथा परमात्मा की बुद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी मूल प्रकृति का आविर्भाव हुआ, उनसे निद्रा, तृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि उत्पन्न हुईं। वह आदिशक्ति समस्त पार्षद और आयुधों के साथ श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी और वहीं विराजमान हो गयीं। सृष्टि-निरूपण ब्रह्मवैवर्त के अध्याय ३ से १० में विशदरूप से वर्णित है।

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण

तुम मोक्ष मत मांगना, केवल लोकव्यवहार की परम्परा के लिए विवाह करो, बाद में अपनी भक्ति और दास्य मैं तुम्हें दूंगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरों की मानसी कन्या को उसे दिया। उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से वज्र से भी भय नहीं रहता। वैष्णव ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं।

पूर्वजन्म में नारद जी ने पिताजी के साथ विरोध कर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिए शौनकजी की प्रार्थना पर सौत्ति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के शाप देने से नहीं होती है। इसीलिए ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान लोग नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुजनों के शाप से गन्धर्व हुए उसकी कथा अध्याय १२ में वर्णित है।

उपबर्हण वृत्तान्त

गन्धर्वराज के पुत्र उपबर्हण को एक बार गन्धर्वों की ५० पत्नियों ने उस युवक को इस प्रकार सुन्दर वेष में देखकर मूर्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर चित्ररथ की कन्याओं के रूप में जन्म लिया। बड़ी होने पर उन्होंने उपबर्हण गन्धर्व को अपना पति वर लिया। जब वह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर भगवान् में मन लगाकर बैठा था, तब उसका मन विचलित हो गया। इस पर ब्रह्माजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का शाप दिया। उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी पचास रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया।

ब्राह्मणबालक के वेष में भगवान विष्णु का मालावती के पास आना और उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ संवाद होने के प्रसंग में कर्मफल का कथन अध्याय १४ में वर्णित है।

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताकर उसके दूर करने के उपाय बताये। मालावती के सामने कालपुरुष को प्रकट किया गया। व्याधिसमूह और यमराज सभी उपस्थित हुए। मालावती ने उनसे पूछा- 'आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये'। यमराज ने इस पर ईश्वराज्ञा द्वारा व्याधिरूप में मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का कारण बताया।

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने का उपाय बताइये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ बताया और वेदाङ्ग के रूप में ही चिकित्सा को एक अंग कहकर उसकी विशेष प्रशंसा की। इसका विस्तृत वर्णन अध्याय १६ में है।

मालावती के साथ ब्राह्मण वेष में विष्णु देवताओं की सभा में गये और उपबर्हण की मृत्यु का स्पष्टीकरण करने के लिए देववृन्द से पूछा। ब्रह्माजी ने उपबर्हण के शापग्रस्त होने का कारण बताया और महेश्वर ने तथा धर्म ने देवताओं के आगे विष्णु को न देखकर

उस ब्राह्मण से कटाक्ष करते हुए कारण पूछा। इस पर भगवान् ने स्वयं को विष्णु बतलाकर उस गन्धर्व को जिलाने का आदेश दिया।

ब्रह्माण्ड को पवित्र करने वाले श्रीकृष्ण के कवच वर्णन के साथ ही सौतिजी ने शंकर कवच का वर्णन किया और बाणेश्वर के द्वारा कहे गये शंकरजी का समस्त पाप ताप को दूर करने वाला स्तोत्र सुनाया।

उपबर्हण का जन्म किस प्रकार हुआ, उसका निरूपण अ. २० में बृहद् रूप से वर्णित है। जब उपबर्हण बालक होकर पांच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर बनी रही और वह निरन्तर ही जहां भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता था, वहां अवश्य ही पहुंचता था। उसे जब माता भी बुलाती तो वह यही कहता कि आता हूं, भगवान् की थोड़ी पूजा कर लूं। यही बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। उसे जिस कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन भी है। इसके बाद नारद जी शाप से छुटकारा पा गये।

ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दरव्युत्पत्तियों का वर्णन अ. २२ में है।

भगवान् ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारद जी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान है और पुण्यशील है। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है, वह बड़ी तपस्या का फल है। देव, पितर, और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं। इसलिए गृहस्थ धर्म का पालन आवश्यक है। नारद जी ने प्रत्युत्तर में कहा कि गृहस्थ जीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका सारा का सारा जीवन ही व्यर्थ है। आगे उन्होंने कहा कि जीवन में स्त्री का पाणिग्रहण दुःख के लिए है, सुख के लिए नहीं। साथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिए बड़ी भारी रुकावट है। इस प्रकार पिता से क्षमापूर्वक नारद जी ने तपस्या के लिए आज्ञा मांगी। ब्रह्माजी ने उन्हें अनेक प्रकार से रोकने की, चेष्टा की परन्तु नारदजी के न मानने पर उन्हें महेश्वर के पास भेजा। इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये। इसकी कथा अध्याय २३-२४ में है। शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख अपना भाव कहकर उनसे अपने को दीक्षित करने की प्रार्थना की।

जब शिवजी ने सम्पूर्ण स्तोत्र, कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह दिया तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसंग के सम्बन्ध में उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में शय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया। नारद जी भक्ष्याभक्ष्य एवं कर्तव्याकर्तव्य के विषय में प्रश्न करने पर भगवान् महादेव ने उन्हें बृहद्रूपेण उपदेश दिया।

साकार निराकार ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने पर भगवान शंकर ने ब्रह्मा का निरूपण किया। पांचों प्राण साक्षात स्वयं विष्णु हैं। मन ब्रह्मा प्रजापति हैं। सम्पूर्ण ज्ञान स्वरूप मैं हूं। शक्तिरूपा प्रकृति ईश्वरी है। आत्माधीन ही हम सब हैं। इस प्रकार भगवान् शंकर से ज्ञान प्राप्त कर नारद जी ने विदा ली।

वे भगवान नारायण के पास गये। जब उन्होंने श्रीकृष्ण को ध्यान में मग्न देखा तो निम्नलिखित प्रश्न पूछे। हे प्रभो ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता, इन्द्र और मुनिजन किसका ध्यान करते हैं ? सृष्टि किससे होती है और कहां लीन हो जाती है ? सम्पूर्ण कारणों को करने वाला विष्णु कौन है ? उनका स्वरूप और कर्म क्या है ? यह आप बतलाने की कृपा करें।

भगवान नारायण ने उन देवाधिदेव भगवान् पूर्ण कलावतार श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द की स्तुति करते हुए श्री नारदजी से उन्हीं के चरणों में ध्यान लगाने का आदेश दिया।

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्-काशीरहस्यम्

किसी शिष्य ने भगवती काशी की महिमा, स्वरूप और प्रभाव आदि के लिए गुरु से बतलाने की प्रार्थना की। गुरु ने काशी को साक्षात ब्रह्म कहकर यह भी कहा कि काशी का विवर्त यह सम्पूर्ण संसार का विस्तार है, इसीलिए इसे अविवर्त नाम से ब्रह्मवादी कहते हैं।

काशी माहात्म्य –काशीवास के आठ योग प्रसिद्ध हैं-१. काशीवास २. सज्जन पुरुषों से शास्त्र चिन्तन का शुभ प्रसंग, ३. गंगा स्नान, ४. पाप कर्मों में अरुचि ५. पुण्यकर्मों में प्रीति, ६. स्वेच्छा लाभ में ही सुख प्राप्त करना, ७. शक्तिभर दान देना और ८. किसी से कुछ न ग्रहण करना। काशी में रहकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक आचरण करना इष्ट है। इसलिए मनुष्य को काशीवास का व्रत ग्रहण करना चाहिए। दैववश अन्य स्थानों में देहपात होने पर अस्थियों का काशी में गंगा में प्रवाह हो तो उस प्राणी की काशी के माहात्म्य से तत्काल मुक्ति हो जाती है। वराहकल्प में प्रलयकाल में जब पृथ्वी रसातल मग्न हो गई तो ऋषिमहर्षि वृन्द तथा देवगण ने आश्चर्य से पृथ्वी के जलमग्न होने पर भी छत्राकार ज्योतिरूप भाग को देखा तथा उसका कारण पूछा। विष्णु ने गगनेचर ज्योतिरूप छत्राकृति स्थान को काशी संज्ञा देते हुए उसके गुण, प्रभाव, माहात्म्य और नाम की अपूर्व प्रशंसा की और पृथ्वी को दैत्य को मारकर निकाल लाने का आश्वासन दिया जिससे फिर से सब लोग वर्णाश्रमधर्म का यथावत पालन कर सकें। ऋषियों ने काशी की इस पृथककृति का कारण जानना चाहा तो विष्णु ने कहा एक महाकल्प में धर्म परायण साधुपुरुष मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना तप आदि करते थे, परन्तु उन्हें विघ्न सताते थे। इस पर सब मेरे पास आए और उपाय पूछा तो मैंने हृदय में ज्योतिर्लिंग रूपी महादेव का स्मरण किया। अपने स्वरूपसे वे हृदय से बाहर प्रगट हुए। अपने आपको पंचक्रोशात्मक विस्तार वाला किया, ऊपर वैकुण्ठ

तथा नीचे पाताल तक वह ज्योतिर्लिंग में प्रकट हुए। शम्भु पार्वती समेत कैलाश से आकर इस ज्योतिर्लिंग को देखे। यही सम्पूर्ण सृष्टि का मूल कारण होने से एवं काशी भगवती में इसकी स्थिति होने से चैतन्यरूप ज्योतिर्लिंग के साथ पृथ्वी से इसका पृथककरण हुआ। यही छत्राकृति काशी मेरे हृदय देश से निःसृत ज्योतिर्लिंग की वासभूमि है। काशी के सभी निवासी भगवान् की साक्षात्प्रतिमूर्ति हैं। दूसरे स्थानों पर ब्रह्महत्यादि पाप करने पर काशीवास से प्रायश्चित है। परन्तु काशी में किये गये पापों का तो कोई प्रायश्चित नहीं। परन्तु काशी के चारों ओर पंचक्रोश में विस्तृत क्षेत्र की प्रदक्षिणा और शिव के पाताल से उत्थित शिवलोक से ऊपर तक व्याप्त ज्योतिर्लिंग विश्वेश्वर की प्रदक्षिणा से यह सब पाप भी छूट जाते हैं। यह अविमुक्त क्षेत्र शुद्ध ब्रह्म का निवास स्थान है, इसमें शिव, विष्णु का वास है। अतः यहां रहने वाले को परम गति उसी प्रकार होती है जैसे गंगा में मिले हुए सुराप्रवाह का रूप भी गंगाकार हो जाता है। ब्रह्मा के यह पूछने पर कि एक ही निरंकुश ज्योति जो तमोगुण से परे है, उसका परिच्छेदयुक्त होकर काशी में वास, किस प्रकार हुआ? शंकर जी ने कहा-जैसे तेज महाभूत रूप होने से प्रकाशक है और उपाधिभेद से सूर्य एवं दीपक में उसका भास है, अधिष्ठान के अनुसार वैसे ही हिरण्यगर्भ एवं जीवों में अधिकृत भेद है, यही बात इस अविमुक्त के विषय में समझिये। बस आज से यही नियम राजाज्ञा के रूप में समझिये कि जो काशी में स्मरण, पूजन, कीर्तन, स्नान आदि कर अपनी आत्मशुद्धि के साधनों प्रवृत्त होता है वह कैसा भी हो ब्रह्मलोक क्या शिव और विष्णुलोक तक का अधिकारी हो जाता है। ब्रह्म, अग्नि स्वरूपा काशी सभी के ज्ञाताज्ञात पापों का नाश कर देती है। इसको विशेष रूप से बताने और पुष्टि करने के लिए शंकर जी, ब्रह्माजी, स्वयम्भुव मनु और यमराज को साथ लेकर काशीपुरी में गये और उन्होंने प्रत्यक्ष अपनी आंखों से अविमुक्तक्षेत्र का चमत्कार देखा और कृतार्थ हो गये। इसकी कथा अ. १४ में वर्णित है।

सत्सङ्ग महिमा

यहां सत्संग द्वारा वेश्या भी मोक्ष को प्राप्त करती है, इसकी कथा अ. १८ में है। उत्तमवस्तु को पाने पर नीच पुरुष का भी मन अधम वस्तु में नहीं लगता इसलिए काशी जैसी महिमामयी शिवकी चिच्छक्तिरूपा महानगरी में व्यक्ति भगवद्भक्ति कथाश्रवण, गुरुसेवा, धर्मज्ञान आदिमें मन लगावे, विषासक्ति में मन न लगावे, काशी का स्मरण, दर्शन और वास सर्वथा मंगलकारी है। गंगा का माहात्म्य, गंगा के माहात्म्य के विषय में पाण्ड्य देशाधिपति पुण्यकीर्ति का कथानक अ. २२ में द्रष्टव्य है। काशी का सेवन पापरहित होकर किया जाय तो अवश्य ही आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। इस सन्दर्भ में धर्मराज द्वारा काशी माहात्म्य का वर्णन अ. २२ में वर्णित है। सूत से ऋषियों ने विष्णु और महादेव के बीच काशी रहस्य के विषय में जो वार्तालाप हुआ, उसको सुनने की इच्छा प्रकट की तो

विष्णुमुख से कहे गये विषय को बताते हुए सूत ने कहा-विशेष रूप से काशी में निवास सदैव पापशून्य है इसके साथ सदा ही जो धन और स्त्री पुत्र से विरक्त होकर रहता है, उसका तो कहना ही क्या ! धर्माचरण, गुरु सेवा, शास्त्रसेवा और काशी के निवास के लिए सदाचार सम्पन्नता, विश्वनाथ और अन्नपूर्णा की भक्ति में विशेष संरंभ से साधक को प्रवृत करती है जो उसका एकमात्र इष्ट है। काशीवास को कभी न छोड़े। विष्णुमुख से काशी माहात्म्य का बृहद् वर्णन अ. २४ में वर्णित है। सूतजी ने महापाशुपत हिरण्यगर्भ नामक शिवभक्ति जितेन्द्रिय व्यक्ति की कथा अ. २५ में सुनायी।

द्वितीय प्रकृति खण्ड

ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृति खण्ड में देवियों का शुभ चरित्र, जीव कर्म विपाक, शालग्राम निरूपण, कवच, स्तोत्र, मंत्र, पूजा, कीर्ति निरूपण, पुण्यात्मा, पापी, नरकों का और रोगों के मोक्षण आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमें ६७ अध्याय हैं।

प्रकृति-सृष्टि विधि में राधा, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री, पांच प्रकार की प्रकृति मानी गयी है। (प्र = प्रकृष्ट, कृति = सृष्टि) अर्थात सृष्टि में प्रकृष्टा देवी को प्रकृति कहते हैं।

प्र = प्रकृष्ट सत्व, कृ = रजस्, ति = तमस्। त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न तथा सृष्टि करने में प्रधान शक्ति को प्रकृति कहते हैं। सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय होने से स्त्रीपुरुष में भेद नहीं है। विराट के दक्षिण भाग में पुरुष, तथा वामभाग से प्रकृति पैदा हुई है जो विभिन्न नामों से ख्यात है।

प्रकृति के बिना परब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता है। भक्ति दास्य प्रदाता, सम्पूर्ण बीजों के अधिष्टाता श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। राधा के साथ विहार कर श्रीकृष्ण ने प्राण, अपान, समान, उदान, ब्यान रूप पंच प्राणों की रचना की। उनकी जिह्वा के अग्रभाग से वीणा, पुस्तक, रत्न आदि से विभूषित शुक्ल वर्ण की सरस्वती की उत्पत्ति हुई, जो शास्त्रों की अधिदेवता थीं। श्रीकृष्ण के आदेशानुसार इनका विवाह नारायण के साथ हुआ था। राधाकृष्ण के विहार से एक सुवर्णमय डिम्ब की उत्पत्ति हुई जिसे राधा ने क्रोध से समुद्र में फेंक दिया। उस डिम्ब ने ब्रह्मा के सम्पूर्ण वय तक (सुदीर्घकाल) जल में रहकर दो रूप में परिणत होकर बीच में क्षुधा से पीड़ित करोड़ों सूर्यों के समान महाविराट रूप में श्रीकृष्ण के १६वें अंश से अपना रूप धारण किया, जिसके रोमकूप में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड सुरक्षित है, प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। पाताल से ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है, उससे ऊपर वैकुण्ठ है, उसके ऊपर गोलोक है, सात द्वीप वाली पृथ्वी सात सागर युत ४६ द्वीप उपद्वीप सहित विद्यमान है। पर्वतों के साथ। ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, नीचे सात पाताल, तलातल रसातल आदि है।

उस ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोलोक, सत्यलोक तथा ब्रह्मलोक स्थित है। विराट्, कृष्ण का ध्यान कर वर प्राप्त कर सृष्टि निर्माण में लग गया। नारायण ने सरस्वती पूजा का विधान बताया, जिसे करने से मूर्ख भी पण्डित बन जाता है। कृष्ण की आज्ञा से सरस्वती नारायण की पत्नी बनकर माघशुक्ल पञ्चमी में विद्यारम्भ से पूजित हुईं। यहां सरस्वती के मूलमन्त्र, कवच आदि का वर्णन है। जिस कवच के प्रभाव से साधक बृहस्पति के समान वाग्मी बन जाता है। यह कवच वाञ्छित वस्तु को देने वाला है। याज्ञवल्क्य ने सरस्वती को स्तोत्र से प्रसन्न किया, उससे सूर्य के आदेश से सिद्धि मिली।

सरस्वती गंगा के शाप से भारत में नदी के रूपमें अवतीर्ण हुई। लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा ये नारायण की स्त्रियां हैं। सरस्वती ने गंगा को भी शाप दिया। नारायण ने महालक्ष्मी को तुलसी के रूप में रहने की आज्ञा दी। गंगा को शिव स्थान के लिए, सरस्वती को ब्रह्मा के स्थान के लिए रहने का आदेश देकर स्त्री के वशीभूत पति के पतन का वर्णन करते हुए सरस्वती, गंगा, लक्ष्मी को आधे अंश से अपने पास रखकर अवशिष्ट आधे अंश से जनकल्याण हेतु मर्त्यलोक में रहने का आदेश दिया।

भगीरथके प्रयत्नों द्वारा पृथ्वी में गंगावतरण, शिव द्वारा मस्तक पर धारण, सम्पूर्ण प्रवाहों से हिमालय में आगमन आदि का सुन्दर वर्णन है। महालक्ष्मी पद्मावती नाम से पुनः तुलसी रूप में जनकल्याण हेतु आयी हैं। कलि में काशी, बृन्दावन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहां रहेंगे। सभी सदाचार विहीन होंगे। श्रीकृष्ण ही कालकालेश्वर हैं। अनाचार से कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए सत्य, त्रेता, द्वापर कलियुग का वर्णन है। नारद जी के पूछने पर नारायण ने श्रीकृष्ण को ही सबकी उत्पत्ति, स्थिति लय का कारण बतलाया है।

मेदिनी तथा तद्वाचक शब्दों की व्युत्पत्ति-मधु कैटभ के मेद से उत्पन्न होने से इसका नाम मेदिनी पड़ा है। भूमिदान का फल तथा भूमि के हरण से नरक गामी होने का वर्णन है। समस्त जीवों को आवास देने से भूमि शब्द की निरुक्ति मानी गयी है। वसु (धन) रत्नादि देने से वसुन्धरा, हरि के उरु से जानी गयी इससे उर्वी सम्पूर्ण प्राणी को धारण करने से धरा, धरित्री, धरणी शब्द से कही जाती है। भगीरथ द्वारा गंगावतरण के प्रसङ्ग में सगर वंश का वर्णन है। भगीरथने कौथुम शाखा से गंगा की स्तुति की है। गंगाके वायु सेवन से दशगुण पुण्य होता है। स्नान से असंख्य पाप नष्ट होते हैं, गंगा नाम स्मरण से सारूप्य मुक्ति मिलती है।

गंगा महिमा-राधाकृष्ण के शरीर से गंगा की उत्पत्ति, गंगा के रूप से मोहित कृष्ण के प्रति राधा का उपालम्भ, राधा द्वारा गंगा जलपान की इच्छा, देवों द्वारा स्तुति, राधा कृष्ण का द्रवरूप में अन्तर्हित होना, पुनः देवों की प्रार्थना पर शंकरजी की सत्यप्रतिज्ञा से श्रीकृष्ण एवं राधिका का आविर्भाव, इस प्रकार गंगा की उत्पत्ति और महिमा का विशद वर्णन है। जब गंगा को पान करने के लिए राधा अधीर हो गयीं तब गंगा भयभीत होकर श्रीकृष्ण

के चरणों में समा गयीं। विष्णु ने अपने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से बाहर निकाल दिया। पुनः उसे राधिका मन्त्र की दीक्षा देकर ब्रह्मा ने नारायण को गान्धर्व विवाह से ग्रहण करने के लिए आग्रह किया। लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा तथा तुलसी नारायण की ये चार प्रिया हैं।

वेदवती का सीता रूप में जन्म, तपस्या से राम के साथ विवाह

सीता कथा-सम्पूर्ण रामकथा का सार, अग्नि में सीता का न्यास, रावण द्वारा छाया सीता का हरण, सुवर्ण मृग का वर्णन, रावण वध, पुनः अग्नि परीक्षा से सीता प्राप्ति, छाया सीता की तपस्या से लक्ष्मी रूप की प्राप्ति, सत्ययुग में कुशध्वज की कन्या। वेदवती त्रेता में रामपत्नी सीता ही द्वापर में द्रौपदी के रूप में वर्णित है। अग्नि से निकलकर ५ बार पति दो ऐसा शंकर से कहने पर सीता रूप द्रौपदी को पञ्चपति प्राप्ति आदि का भी वर्णन है।

तुलसी माहात्म्य

तुलसी जन्म, शंखचूड (सुदामा गोप) के साथ विवाह, शिव के साथ शंखचूड का युद्ध, देवों के साथ शंखचूड का युद्ध, कालिका के साथ युद्ध, शिव के साथ युद्ध में शंखचूड का भस्मीकरण, युद्ध के समय वृद्ध ब्राह्मण के रूप में विष्णु का शंख चूड़ से कवच भिक्षा, इसी कवच को पहनकर माया से शंखचूड बनकर विष्णु का तुलसी के पास जाकर गर्भाधान, शंखचूड के अस्थि का शिव द्वारा समुद्र में विसर्जन, शंख जाति का निर्माण, मरने के बाद शंखचूड का सुदामा के रूप में कृष्ण के पार्षद रूप में वर्णन है।

सावित्री कथा

सावित्री उपाख्यान, सावित्री ध्यान, पूजा विधान। राजा अश्वपति ने सावित्री को प्रसन्न करने से रानी मलयवती राजा अश्वपति के इच्छानुरूप द्वितीय सावित्री का जन्म, विवाह आदि का वर्णन, यम से कर्मविपाक के विषय में सावित्री का प्रश्न, प्रश्न से मुग्ध यम का वरदान, शुभ कर्म विपाक प्रकथन, नरक निरूपण, पापिकुण्ड निर्णय, कुण्डों का मान लक्षण, कृष्णगुण कीर्तनादि वर्णित है।

लक्ष्मी का उपाख्यान, इन्द्र के प्रति दुर्वासा शाप, लक्ष्मी का सिन्धुकन्या के रूप में प्रादुर्भाव, हरिगुण श्रवण से इन्द्र की ज्ञान प्राप्ति (बिना भोगे कर्म करोड़ों जन्म तक क्षीण नहीं होते हैं इनका भोग अवश्यंभावी है। विष्णु भक्ति हीन का लक्ष्मी द्वारा त्याग) इन्द्र के द्वारा पुनः लक्ष्मीपूजन आदि का वर्णन है। सृष्टि के आदि काल में देवताओं के अपने आहार के लिए निवेदन करने पर ब्रह्मा ने स्वाहा के रूप में आहूति को प्रदान किया। स्वाहा के षोडश नाम को पढ़ने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। स्वधा शब्दों से पितरों की तृप्ति होती है।

ब्रह्मा की प्रार्थना से दक्षिणा का प्रादुर्भाव हुआ है। कर्मानन्तर दक्षिणा का प्रदान तथा फल कथन वर्णित है।

षष्ठी देवी मंगल चण्डी तथा मनसा देवी

षष्ठी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छठें अंश से है। राजा प्रियव्रत को पुत्रेष्टि यज्ञ से मृत पुत्र प्राप्ति से दुःखी राजा को देवी का दर्शन मिला। पुनः पुत्र प्राप्ति हुई। प्रत्येक मास में शुक्ल षष्ठी में षष्ठी का पूजन किया जाता है। मंगल चण्डी का उपाख्यान है। त्रिपुरासुर के वध के अवसर विष्णु की प्रेरणा से शंकरजी ने मंगलचंडी की पूजा की थी। मङ्गलचण्डी का स्तोत्र, मूल मंत्रादि वर्णित है। इस देवी की उपासना उत्कल देश में अधिक है। मनसा देवी का उपाख्यान है। कश्यप की मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इन्द्र ने मनसा देवी की पूजा की। गौरी तथा नागभगिनी के रूप में इनकी पूजा होती है।

एक दिन श्रीकृष्ण को राधा के साथ क्षीरपान की इच्छा हुई। अपने वाम पार्श्व से लीलासे ही बछड़ा सहित सुरभी को उत्पन्न किया। सुदामा ने रत्नभाण्ड से दूध दुह लिया। श्रीकृष्ण के पीने के बाद क्षीरभाण्ड के उलट जाने से क्षीरसागर (सरोवर) नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रभु की कृपा से लक्ष कोटि गायें हो गईं। (राधा सम्पूर्ण मुक्ति देने वाली हैं। राधा ही गृहलक्ष्मी, महालक्ष्मी हैं।) सुदामा के शाप से राधा ने वृषभानु के घर में जन्म लिया। सुदामा ने भी शंखचूड होकर तुलसी को पत्नी के रूप में प्राप्त किया था। सुयज्ञ राजा का उपाख्यान है जिसमें वर्णित है कि अभिवादन न करने वाले का अपराध क्षमा योग्य नहीं है। हर-गौरी-संवाद में कर्म विपाक का वर्णन है। राधा पूजास्तोत्र तथा राधा कवच का वर्णन है।

श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। उनके ध्यान से सब कुछ मिलता है। श्रीकृष्ण ही परमतत्व हैं। बाकी ब्रह्मादिस्तम्भ पर्यन्त मिथ्या है। प्रकृति श्रीकृष्ण की अनुगामिनी है। दुर्गोपाख्यान में राधा के १६ नामों का वर्णन है।

तारा वृतान्त

तारा का उपाख्यान तथा बृहस्पति द्वारा पतिव्रताधर्म तथा गृहस्थधर्म का वर्णन है। स्त्रीमूल ही समस्त गृह व्यवस्था है। गुरुपत्नी को पुनः वापस लेने के लिए ब्रह्माजी शुक्राचार्य के यहां जाते हैं। प्रह्लाद आदि की मध्यस्थता से चन्द्रमा द्वारा क्षमा मांगने पर तारा को बृहस्पति को दिला देते हैं। बालक बुध को चन्द्रमा को दिला देते हैं। बुध के चित्र से चैत्र उत्पन्न हुआ।

सुरथ-समाधि-वृत्तान्त

चैत्र को राजा अधिरथ तथा उसको सुरथ हुआ। इसी सुरथ ने वैश्य समाधि के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की। राजा को मेधस मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति मिलती है। फिर राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दुर्गास्तोत्र एवं प्रकृतिकवच परनाम ब्रह्माण्डमोहन-कवच का वर्णन है।

तृतीय गणपति-खण्ड

गणेशखण्ड में गणेश जी का जन्म, अपूर्वचरित्रों का वर्णन, गणेश-भृगु संवाद, कवच, मन्त्र, स्तोत्र आदि का निरूपण है। इसमें छियालीस अध्याय हैं।

गणपति खण्ड के प्रथम अध्याय में स्कन्द के जन्म का वर्णन है। श्रीकृष्ण की कृपा से गणेश की उत्पत्ति होती है। नारद ने प्रकृति खण्ड के वर्णन से प्रसन्न होकर नारायण से गणेशखण्ड के लिए सादर निवेदन किया। गणेश का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ, सभी देवों के विद्यमान रहते हुए उनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है ? हाथी के मुख वाले और एकदन्त क्यों हुए ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में नारायण ने कहना आरम्भ कियाः-दक्ष कन्या अपने पति की निन्दा सहन न कर सकी और यज्ञ में शरीर त्याग कर दिया। पुनः योग से हिमालय के यहां कन्या रूप में उत्पन्न हुई। हिमालय ने उनका विवाह भगवान शंकर से कर दिया। शंकर पार्वती सुदीर्घकाल पर्यन्त रतिलीलामें मग्न हो गये। चिन्तित देवगण ब्रह्मा को नेता बनाकर नारायण के पास गये और उनसे सारी बातें ब्रह्मा के द्वारा कहलवायीं। नारायण ने कहा-आप सब मिलकर एक उपाय कीजिए कि शंकर का वीर्य पृथ्वी पर गिरे, नहीं तो पार्वती के पेट में गर्भाधान होने से वह सन्तान देव तथा असुर दोनों के लिए घातक सिद्ध होगी।

इस प्रकार सभी देवता शंकरजी को पार्वती से पृथक करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु पार्वती के डर से सम्भोग अवस्था में उठने का प्रयत्न शंकरजी न कर सके। परन्तु पुनः देवगणों की स्तुति करने को उद्यत देखा तो उन्होंने पार्वती को छोड़कर अलग होने का प्रयत्न किया, उसी बीच उनका वीर्य भूमि पर गिरा उससे स्कन्द पैदा हुए।

गणेश की उत्पत्ति

द्वितीय अध्याय से १० अध्याय तक गणेश उत्पत्ति का वर्णन है। शंकर जी सभी देवताओं को परामर्श देते हैं कि आप सब यहां से भाग जाइये नहीं तो पार्वती क्रुद्ध हो जायेंगी। पार्वती जी जब उठी तब उन्होंने क्रोध से शाप दिया कि आज से देवतागण व्यर्थवीर्य हो जायं। शंकर पार्वती को मधुर वचनों से सान्त्वना देते हैं। पार्वती शंकर से सत्पुत्र की कामना करती हैं।

महादेव पार्वती को पुण्यक नामक व्रत के द्वारा हरि की आराधना करने का परामर्श देते हैं। सम्पूर्ण व्रत विधान तथा विस्तार से इस व्रत का वर्णन करते हैं। साथ ही पार्वती से इस पुण्यक व्रत के माहात्म्य का भी वर्णन करते हैं। भगवती पार्वती ने शंकर की आज्ञा से पुण्यक व्रत को आरम्भ किया। एक वर्ष बाद व्रत की समाप्ति दिवस पर पुरोहित ने पार्वती से पति को दक्षिणा रूप में मांगा। भगवती पार्वती इस पर मूर्छित होकर गिर पड़ीं। तब शंकर जी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलहानि का भय बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को समझाया। तब भगवती ने पति को दक्षिणा रूप में मांगने पर आपत्ति उठायी कि पति के देने पर स्त्री के पास क्या रह जायेगा ? भगवान् कृष्ण ने शंकर को देकर फिर उचित मूल्य द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय बताया। पार्वती ने एक लाख गौओं को बदले में देकर फिर शंकर को मांगा। उन्होंने भगवान से उनके समान ही पुत्ररत्न प्राप्ति की कामना की।

भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारण कर शंकर-पार्वती के पास आये, और गणेश की उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई है, इतना कहकर अन्तर्ध्यान हो गये।

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में विष्णु के बिना पूजा लिए ही चले जाने पर भगवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की, पर कहीं पता न चला, इस पर आकाशवाणी हुई कि हे पार्वति ! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे हुए सुपुत्र को देखिए। यह आपके द्वारा किये हुए पुण्यक व्रत का फल है। इस पर पार्वती जी अपने भवन में लौट आईं और अपने पुत्र को 'उमा-उमा' कहकर स्तनपान के लिए रोते हुए देखा। पार्वती शंकर जी के पास गईं और उनसे गणेश जन्म का वृतान्त कहा।

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर पार्वती और शंकर जी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक वर्ग को दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में दान किया। सभी देव ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि ने मंगलासन पूर्वक शुभाशीर्वाद दिया।

जब गणेश जन्म के उपलक्ष्य में शकरजी के यहां देवगण उत्सव मना रहे थे, उसी समय सूर्य पुत्र शनैश्चर वहां पहुंच गये। अन्दर जाकर गणेश की मंगल कामना करे हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिर कर वहीं बैठ गये। जब पार्वती ने इसका कारण पूछा तो शनैश्चर ने अपनी स्त्री के शाप देने की बात बतायी कि किसी को देखने से वह नाश हो जाता है।

पार्वती ने हंसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने का आग्रह किया। शनि ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आंख के कोण से बालक के शिर को देखा, वैसे ही उसका शिर अलग हो गया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहां चला गया। इस दुर्घटना से पार्वती जी को बड़ा शोक हुआ। विष्णु ने गरुड पर चढ़कर पुष्पभद्रा नदी के किनारे एक वन में गजेन्द्र का सिर सुदर्शन चक्र से छेदकर पार्वती जी को देकर शिशु को गोद में रख उसके हाथी का

शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। शंकर जी ने मृत जीवित बालक की शान्ति के लिए ब्राह्मणों को दान दिया।

पार्वती जी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को अङ्गहीन होने का शाप दिया। ब्रह्माजी के समझाने बुझाने पर पार्वती ने शाप छुड़ाने का और वर देने का उपक्रम किया। इस पर शनि को ग्रहराज होने, चिरंजीव और हरिभक्ति परायण होने का वरदान दिया गया। शाप के अमोघ होने से थोड़ा-थोड़ा खञ्ज होओगे, यह भी कहा।

विष्णु ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा की और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वपूज्य होने का वरदान दिया। विष्णु ने गणेश का स्तोत्र और कवच पाठ किया।

शंकरजी के प्रथम पुत्र स्कन्द कृत्तिकाओं द्वारा पालित पोषित होने के कारण कार्तिक कहलाये। विष्णु ने शुभलग्न में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बैठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त (तीर्थों के जल से स्नान) कराया, समय आने पर भगवान शंकर ने कार्तिकेय और गणेश का विवाह कर दिया। नारद जी ने नारायणसे गणेश के मस्तक छेदन को लेकर प्रश्न किया। इस पर नारायण ने समाधान करते हुए कहा कि पुरा कल्प में शंकर ने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया, कश्यपजी ने इसे देखकर शंकरजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र की छाती में प्रहार कर उसे छिन्न किया है, वैसे ही तुम्हारे पुत्र का शिर छिन्न होगा। जब शंकर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान द्वारा सूर्य को उसी क्षण जिला दिया। आगे सूर्य पूजा तथा कवच का वर्णन है। इस कवच के पाठ से अनन्त फल की प्राप्ति होती है तथा सभी रोगों से छुटकारा प्राप्त होता है।

फिर नारद जी ने गणेशजी के हाथी के मुंह को लगाने के विषय में पूछा। एक बार रम्भा के साथ देवराज इन्द्र रमण कर रहे थे। एक दिन दुर्वासा संयोग से आ गये, उन्होंने विष्णु के यहां से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्प धारण का माहात्म्य कहा -देवराज ने इस पुष्प को रम्भा को दे दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तक पर रख दिया और हाथी जंगल में चला गया। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से उसका मस्तक गणेश के मस्तक के स्थान पर लगाया।

ब्रह्माजी के शाप से देवता तथा इन्द्र लक्ष्मीहीन हो गये। पुनः लक्ष्मी प्राप्ति हेतु लक्ष्मी स्तोत्र, कवच एवं ऐश्वर्य वर्धन मन्त्र का जप किया। यहां लक्ष्मी कवच तथा महालक्ष्मी चरित्र का वर्णन है।

परशुराम चरित

नारद ने नारायण से गणेशजी की एकदन्त होने के सम्बन्ध में पूछा। उत्तर में नारायण ने परशुराम चरित्र का वर्णन किया। कार्तवीर्य राजा एक बार जमदग्नि ऋषि के

आश्रम पर गया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सभी बातें बतायीं-उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री प्रस्तुत की। उस लोभ से राजा ने जमदग्नि से कामधेनु की याचना की। मुनि ने बहुत टाल-मटोल किया। महर्षि ने कामधेनु से अपना दुःख कहा। उसने कई अस्त्रशस्त्र और बड़ी भारी सेना रच डाली। कपिला कामधेनु के प्रताप से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। ब्रह्माजी ने आकर बीच-बचाव किया और उनके कहने पर वह घर लौट गया। पुनः राजा ने जमदग्नि के आश्रम को घेर लिया। उसने मुनि को ऐसा बाण मारा कि उनके प्राण उड़ गये। कपिला भी गोलोक चली गयी। इधर रेणुका ने पति दिवंगत सुनकर महर्षि जमदग्नि के शव के पास जाकर उसे गोद में लेकर विलाप किया। रेणुका ने अपने पुत्र परशुराम को याद किया। योग के प्रभाव से परशुराम ने पुष्कर में जाकर विलाप किया और चिता तैयार की। उन्होंने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य करने की प्रतिज्ञा की। रेणुका पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गयी परशुराम ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर शिवलोक को गये। शंकर जी ने परशुराम जी को लिवा लाने की आज्ञा दी। उन्होंने शिवजी, माता पार्वती आदि को देखकर विनम्रभाव से प्रणाम किया। भगवान् शंकर ने परशुराम जी को आशीर्वाद प्रदान किया। परशुराम ने मन्त्र सिद्धि कर शंकर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया। इसके बाद त्रैलोक्य विजय कवच का पाठ एवं फलश्रुति है। परशुराम ने पुनः नर्मदा के किनारे आकर पृथिवी को २१ बार क्षत्रियों से रहित करने की प्रतिज्ञा राजा को सुनाने के लिए दूत भेजा। राजा भी सेना लेकर आ गया। युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया। मत्स्यराज तथा सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र का भी परशुराम ने सेना समेत वध कर दिया। यहां कालीकवच का वर्णन है। सुचन्द्र के युद्ध में मारे जाने पर उसके पुत्र पुष्कराक्ष ने युद्ध किया। उसने लक्ष्मीकवच की साधना की थी, नारायण ने उससे कवच लाकर परशुराम को दे दिया, जिससे वह विजयी बने। यहां दुर्गाकवच का अविकल वर्णन है। कार्तवीर्य स्वयं युद्ध में आया, शंकरजी ने कार्तवीर्य से मांगकर कृष्णकवच परशुराम को दे दिया, और परशुराम द्वारा मारा गया। उन्होंने इस प्रकार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन बना दिया।

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर परशुराम कैलाश पर शिव को नमस्कार करने गये। शंकर अभी निद्रित हैं, यह कहकर गणेश ने उन्हें रोका और कुछ समय तक ठहरने की सलाह दी। इसी बीच परशुराम जी ने जाने की शीघ्रता की, परन्तु गणेश ने उन्हें पुनः रोका। इस पर गणेश पर अपने फरसे से परशुराम ने आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली। गणेश ने इस प्रकार फरसे को अपने बायें दांत में लगाया और वह अव्यर्थ अस्त्र उनके दांत को समूल उखाड़ लाया। वह दांत गिरा। भगवती पार्वती और शंकर ने गणेश के दांत को देखा और पार्वती ने स्कन्द से इसका कारण पूछा। पार्वती ने गणेश के दांत को टूटा देखकर और परशुराम को इसके लिए उत्तरदायी जानकर उन्हें उलाहना दिया। पार्वती क्रुद्ध हो गईं।

इस पर परशुराम ने श्रीकृष्ण को मन से प्रणाम कर स्मरण किया। तब एक सुन्दर बालक उनके सामने उपस्थित हुआ। शंकर एवं पार्वती ने उन्हें प्रणाम किया। श्रीकृष्ण ने परशुराम और गणेश के बीच विवाद को एक दैवी घटना बताकर उन्हें शान्त किया। पार्वती को इस प्रकार समझाकर विष्णु ने परशुराम को समझाया और गणपति का पूजन करने को कहा। परशुराम ने गणेश और दुर्गा जी की पूजा की।

गणेश जी को तुलसी नैवेद्य का भोग क्यों नहीं लगता ? इस प्रश्न पर नारायण ने ब्रह्मकल्प का वृत्तान्त सुनाया।

तुलसी वृतान्त

एक बार तुलसी गणेश जी की हंसी करने लगीं। इस पर जब गणेशजी का ध्यान भंग हुआ तो उन्होंने तुलसी से पूछा कि तुम कौन हो ? तुमने तपस्वी गण का ध्यान भंग करने में क्या पाप नहीं समझा ? इस पर श्रीगणेश से तुलसी ने अपने स्वामी बनने की प्रार्थना की। गणेश ने विवाह कर स्त्री के साथ जीवन बिताने में दुःख व क्लेश बतलाया और इसे संसार में बन्धन का कारण बतलाया। साथ ही तुलसी को शाप दिया कि तुम असुर ग्रस्ता बनोगी। इसके बाद महान लोगों के शाप से वृक्ष बनोगी। यही कारण है तुलसी गणेशजी के ऊपर नहीं चढ़ती।

चतुर्थ-श्रीकृष्ण जन्म खण्ड

इस ब्रह्मवैवर्त श्रीकृष्णखण्ड में १३१ अध्याय हैं जिसमें श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र चित्रित है। नारायण ने नारद जी से श्रीकृष्ण चरित्र का विस्तार से वर्णन किया है। राधा के शाप से श्रीदाम शंखचूड हो जाता है तथा श्रीदामा के शाप से राधा मानवीय योनि में व्रज में व्रजांगना के रूप में जन्म लेती है। श्रीकृष्ण भी भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र में कंस के कारागार में जन्म लेते हैं।

कृष्णजन्म

उन्होंने पिता वसुदेव से कहा कि मुझे व्रज के यशोदा भवन में स्थापित कर वहां से माया को यहां लाकर स्थापित करो। तदनन्तर वसुदेवजी कृष्ण को लेकर नन्दजी के यहां गये और सोई हुई यशोदा को देखकर वहां पर स्थित कन्या को उठाकर श्रीकृष्ण को वहीं छोड़ वापस कारागृह में आ गये। प्रसंगतः जन्माष्टमी व्रत के माहात्म्य का विशद वर्णन किया गया है। रोहिणी वसुदेव जी की भार्या थीं एवं वसुदेव जी की आज्ञा से संकर्षण की रक्षा के लिए गोकुल में चली गयीं। उधर देवकी के सप्तम गर्भ का माया द्वारा आकर्षण एवं रोहिणी के गर्भ में स्थापन होता है। कुछ काल के बाद वलदेवजी का जन्म होता है।

पूतना प्रसंग

कंस की आज्ञा से पूतना शिशु श्रीकृष्ण को मारने नन्द भवन आती है। श्रीकृष्ण उसके स्तन के विषयुक्त दुग्ध का अमृत की तरह उसके प्राणों के साथ पान करते हैं एवं पूतना मर जाती है। पूतना का मोक्ष हो जाता है। तृणावर्त नामक असुर बालक श्रीकृष्ण को उड़ाते हुए ले जाता है तथा कृष्ण के चरणस्पर्श से प्राण त्यागकर मुक्त हो जाता है। (अ. ११ में इसका वर्णन है) क्रोधित श्रीकृष्ण शकट को गिरा देते हैं। गर्ग श्रीकृष्ण और बलराम के नामकरण के लिए आते हैं। श्रीकृष्ण यमलार्जुन वृक्ष को गिराकर नलकूबर नामक कुबेर पुत्र का उद्धार करते हैं। नन्द श्रीकृष्ण को साथ ले वृन्दावन गमन करते हैं। राधा का आगमन होता है। ब्रह्मा राधा की स्तुति करते हैं। राधा और श्रीकृष्ण का विवाह होता है। श्रीकृष्ण की रासक्रीडा एवं श्रीकृष्ण का अन्तर्ध्यान और राधा के विरह का वर्णन है। विप्रपत्नियों के पास एक समय श्रीकृष्ण अपने साथी गोपों को भेजते हैं। भगवान को अन्न देने से विप्रपत्नियों को मोक्ष होता है। (इसकी कथा अ. १८ में है) श्रीकृष्ण कालिय नाग का उद्धार करते हैं। अ. १६ में इसकी कथा है। ब्रह्म गोवत्सों एवं बालकों का हरण कर लेते हैं, भगवान श्रीकृष्ण अन्य वत्सादिकों का निर्माण कर देते हैं।

गोवर्धन पूजा

कृष्ण जी इन्द्र की पूजा बन्द कराकर गोवर्धन की पूजा करवाते हैं। इन्द्र याग न होने से व्रज पर इन्द्र का प्रकोप होता है तथा मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो जाती है। कृष्ण गोवर्धन धारण कर लेते हैं, व्रजवासियों की वर्षा से रक्षा करते हैं। इन्द्र अपने कृत्य से लज्जित हो श्रीकृष्ण की शरण में आते हैं। धेनुक नामक गर्दभ असुर से श्रीकृष्ण युद्ध करते हैं। धेनुक की मृत्यु हो जाती है, इसकी कथाएं. अ. २२.२३.५ तथा २४ में है।

दुर्वासा-अम्बरीष वृत्तान्त

पचीसवें अध्याय में दुर्वासा एवं अम्बरीष की कथा वर्णित है। एकादशी व्रत का माहात्म्य एवं विधान यहीं बहुत सुन्दर वर्णित है। हेमन्त के प्रथम महीने में गोपियां यमुना नदी के किनारे मिट्टी की पार्वती बनाकर कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पूजन करने लगीं। गोपियां व्रत के दिन नग्न हो जल में स्नान करने गयीं। नग्न स्नान शास्त्रों में निषिद्ध है। इसलिए कृष्ण गोपियों का वस्त्र अपहरण कर लेते हैं। गोपियों द्वारा स्तुति करने पर कृष्ण गोपियों को वस्त्र दान करते हैं।

रासक्रीडा

श्रीकृष्ण वृन्दावन में रासक्रीडा प्रारम्भ करते हैं। मुरली के शब्द से अगणित गोपियां कृष्ण के पास आती हैं। रास क्रीडा का वर्णन अ. ५३ तक है।

कंस ने धनुर्मेध यज्ञ किया, उसमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को बुलाया। वहां पर श्रीकृष्ण ने रजक, चाणूर, मुष्टिक, गज और कंस को मारकर माता-पिता को बन्धन से मुक्त कर कुब्जा के साथ शृङ्गार किया। मालाकार का उद्धार किया तथा उद्धव द्वारा गोपियों को आश्वासन दिया। सान्दीपनि गुरु से विद्याग्रहण की। यवनेश्वर तथा जरासन्ध को मारकर उग्रसेन को राज्य प्रदान किया। उन्होंने द्वारकापुरी का निर्माण कराया। रुक्मिणी का हरण किया। कालिन्दी, लक्ष्मणा, सत्या, जाम्बवती, मित्रविन्दा, तथा नाग्नजिती का कृष्ण के साथ विवाह हुआ। इन्द्र को जीतकर कल्पवृक्ष ले आए, शंकर जी को जीतकर बाणासुर की भुजाओं का कृन्तन किया। सुदामा के शाप की मुक्ति के बाद राधा का मिलन हुआ। चौदह वर्ष तक राधा के साथ रास क्रीडा की। इस प्रकार पृथ्वी का भार हरण किया तथा स्वधाम गमन किया। यशोदा, वृषभानु, राधामाता कलावती को सामीप्य मोक्ष प्रदान किया।

भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं। उन्होंने ब्रह्मा, शेष, शिव, धर्म, यम आदि का दर्प भंग कर राधा का भी दर्प भंग किया। जिनकी कथाएं अ. ५६ से ६२ तक वर्णित हैं।

कंस ने धनुषयज्ञ का आयोजन किया तथा उसमें नन्द, कृष्ण एवं बलराम को व्रज से बुलवाया। श्रीकृष्ण जी राधा को सान्त्वना देकर मथुरा पुरी को अक्रूर के साथ प्रस्थान करते हैं। मार्ग में अत्यन्त वृद्धा कुब्जा को देखा। उसने श्रीकृष्ण का चन्दन, पुष्प से सत्कार किया, जिससे कुब्जा का सुन्दर रूप हो गया। भगवान् ने उसे आश्वासन देकर आगे माली को देखा। उसने श्रीकृष्ण को माला देकर वरदान प्राप्त किया। श्रीकृष्ण ने एक रजक से वस्त्र मांगे। रजक के न देने पर कृष्ण ने बलपूर्वक वस्त्र ले लिया। बाद में कृष्ण के साथ कुब्जा का प्रेम मिलन होता है।

श्रीकृष्ण ने धनुष तोड़कर मल्लों को मारकर कंस को लीलामात्र से स्वर्ग धाम पहुंचा दिया। श्रीकृष्ण अपने माता-पिता का बन्धन तोड़ते हैं। कृष्ण के वियोग में नन्दजी रुदन करते हैं। श्रीकृष्ण नन्द जी को ज्ञान प्रदान करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण का यह संवाद अ. ७३ से अ. ९२ तक वर्णित है। श्रीकृष्ण जी उद्धव को व्रजवासियों तथा राधा जी को आध्यात्मिक ज्ञान देने के लिए व्रज भेजते हैं।

उद्धव संदेश

श्रीराधा और उद्धव का परस्पर कथोपकथन होता है। यह संवाद अ. ९३ से अ. ९७ तक है। राधा का सन्देश मथुरा में उद्धवजी श्रीकृष्ण को सुनाते हैं। कृष्ण का उपनयन संस्कार सम्पन्न होता है। वे विद्या अध्ययन के लिए सान्दीपिनि गुरु के पास जाते हैं और उन्हें भक्तिपूर्वक उनके मृतपुत्र को अर्पण कर दशकोटि सुवर्ण देते हैं। बलराम सहित श्रीकृष्ण मथुरा आते हैं। विश्वकर्मा से द्वारकापुरी निर्माण के लिए आज्ञा देते हैं। द्वारकापुरी में उग्रसेन के राज्याभिषेक का वर्णन है। राजा ककुद्मी ब्रह्मलोक से आकर कन्या रेवती

का विवाह बलराम के साथ कर देते हैं। श्रीकृष्ण रुक्मिणी से विवाह करने के लिए कुण्डिनपुर जाते हैं। भयंकर युद्धं के बाद रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ होता है। कृष्णपुत्र प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नामक बालक ब्रह्माजी के अंश से हुआ। अनिरुद्ध ने स्वप्न में एक स्त्री को देखा और उससे विवाह करने की कामना की। बाणपुत्री उषा भी स्वप्न में अनिरुद्ध को देखती है और उनसे विवाह की कामना करती है। चित्रलेखा योगमायाद्वारा द्वारका से निद्रित अनिरुद्ध को रथ में बैठाकर शोणितपुर ले आती है। अनिरुद्ध और उषा का गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो जाता है। रक्षक द्वारा यह समाचार बाणासुर को ज्ञात होता है। इस समय उषा गर्भवती है, इस प्रकार अन्यान्य बातें सुनकर क्रोधित बाणासुर ने शंकर, गणेश, स्कन्द और पार्वती के रोकने पर भी युद्ध की इच्छा की। श्रीमहादेव ने बाणासुर से कहा-पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है, उन्हीं का पुत्र अनिरुद्ध है। उसे कोई भी जीत नहीं सकता है। परन्तु क्रोधित बाणासुर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। कृष्णजी भी अपनी सेना के साथ बाणासुर से युद्ध करने के लिए शोणितपुर आते हैं। अन्त में भयंकर युद्ध के बाद बाणासुर पराजित होता है। बाणासुर अपनी कन्या उषा को श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अर्पित करता है। श्रीकृष्ण उसे वरदान देकर शंकर की आज्ञा से द्वारका में प्रस्थान करते हैं।

इसके पश्चात राधा-यशोदा-संवाद, शृगाल राजा का मोक्ष, एवं तीर्थों में भ्रमण, ब्रह्मशाप से यादवों का संहार, पाण्डवों का मोक्ष, नारद का विवाह, और अग्नि और सुवर्ण की उत्पत्ति बताई गई है।

मार्कण्डेयपुराण

पुराणों में मार्कण्डेय पुराण का स्थान और उसकी श्लोक संख्या

पुराणों में मार्कण्डेय पुराण सप्तम है, यह बात स्वयं मार्कण्डेयपुराण के उपसंहार में कही गयी है। जैसे-

अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः।
तेषां तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम्।।

शिवपुराण के उत्तर खण्ड में भी इसे सप्तम ही कहा गया है-

यत्र वक्ताऽभवत् खण्डे मार्कण्डेयो महामुनिः।
मार्कण्डेयपुराणं हि तदाख्यातं च सप्तमम्।।

किन्तु देवीभागवत १.३.३ के अनुसार यह द्वितीय पुराण है।

इस पुराण की श्लोक संख्या के बारे में भी मतभेद है। मत्स्यपुराण के अनुसार (५३।२५-२६) यह नवसहस्र श्लोकात्मक है। किन्तु मार्कण्डेय-पुराण के १३७वें अध्याय में उल्लिखित श्लोक संख्या कुल ६९०० है। अर्थात् ९००० में २१०० श्लोक कम हैं। नारदीय पुराण की विषयानुक्रमणिका से ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय पुराण में नरिष्यन्त-चरित्र के बाद इक्ष्वाकु, तुलसी, श्रीकृष्ण, राम, पुरूरवा, नहुष और ययाति के चरित्रों के अलावे सांख्यतत्व-विवेचन-प्रपंच की सत्ता और मार्कण्डेयचरित्र भी वर्णित है। उस स्थिति में नव सहस्र श्लोकसंख्या संभव है। किन्तु सभी समालोचक विद्वान् वर्तमान में उपलब्ध मार्कण्डेयपुराण की प्रति को ही पूर्ण मानते हैं, और इस उपलब्ध प्रति के अनुसार इसमें ६९०० श्लोक संख्या ही है (द्र. १३७।३८३९)।

महाभारत से सम्बन्धित चार प्रश्नों का स्पष्ट रूप में उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में हुआ है जिससे इस पुराण की रचना महाभारत रचनाकाल के बाद सिद्ध होती है। एवं महाभारत सम्बन्धी चार प्रश्नों के कर्ता जैमिनि की दृष्टि से विचार करने पर जैमिनि के बाद इस पुराण की रचना हुई प्रतीत होती है। एवं मार्कण्डेयपुराण को सप्तम या द्वितीय बताने वाले शिव या देवीभागवत पुराणों के पूर्व मार्कण्डेय पुराण रचित हुआ था, इतना निश्चय किया ही जा सकता है। अतः पुराणों के अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर मत्स्य-नारद-ब्रह्म वैवर्त-शिव-देवी भागवत एवं श्रीमद्भागवत पुराणों के पूर्व में मार्कण्डेयपुराण का काल मानना युक्तिसंगत है।

मार्कण्डेयपुराण नामकरण

मार्कण्डेय पुराण एक महापुराण है। इसमें सर्ग-प्रतिसर्ग आदि सभी पुराणलक्षण घटित होते हैं, जिसका बड़ी स्पष्टता के साथ इसमें वर्णन किया गया है। इसकी रचना मार्कण्डेय ऋषि के उपदेशों के आधार पर हुई है। जिसका प्रारम्भ मार्कण्डेय ऋषि के प्रति व्यासशिष्य जैमिनि के महाभारत से सम्बन्धित चार प्रश्नों एवं विन्ध्यनिवासी पिंगाक्ष-विबोध-सुमुख तथा सुपुत्र नाम के चार पक्षियों द्वारा किये गये प्रश्नों के समाधान से होता है एवं आगे चलकर मार्कण्डेय ऋषि और क्रौष्टुकि के उपदेशपूर्ण संवाद से अन्त तक यह पुराण ग्रथित है। इसी कारण यह पुराण 'मार्कण्डेय-पुराण' नाम से अभिहित एवं प्रसिद्ध है। मृकण्डु-शब्द एवं मार्कण्डेय शब्द की व्युत्पत्ति शान्तनवी-गुप्तवती आदि इसकी टीकाओं में विशद रूप से दी गयी है।

अध्यायानुसार मार्कण्डेयपुराण के प्रतिपाद्य विषय

(अ. १) इस अध्याय में महाभारत को एक साथ धर्मशास्त्र-अर्थशास्त्र-कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है। तथा मार्कण्डय ऋषि के प्रति व्यासशिष्य जैमिनि द्वारा उपस्थापित महाभारत सम्बन्धी चार प्रश्नों का उल्लेख है। एवं उनके समाधान के लिये विन्ध्यनिवासी चार पक्षियों के पास जाने का निर्देश किया गया है। वे चार प्रश्न हैं -

१. जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण वासुदेव ने निर्गुण होते हुए भी क्यों मनुष्य का रूप धारण किया ?
२. द्रुपद की एक पुत्री द्रौपदी क्यों पाण्डु के पांचों पुत्रों की पत्नी हुई ?
३. महाबली बलदेव ने तीर्थयात्रा के प्रसंग में ब्रह्महत्या की निवृत्ति का उपाय क्यों किया ?
४. सभी महारथी एवं महात्मा द्रौपदी पुत्र क्यों बिना व्याहे मृत्यु को प्राप्त हो गये ?

(अ. २- ७) तार्क्षी नामक यक्षिणी का जन्म, विवाह तथा उससे चार पक्षियों का जन्म वृत्तान्त वर्णित है। इसके अतिरिक्त पक्षियों द्वारा शमीक ऋषि को अपनी जन्मकथा तथा जैमिनि के प्रति उनके चारों प्रश्नों के उत्तरों का वर्णन है।

(अ. ८-९) राजा हरिश्चन्द्र के शेष जीवन की श्मशान से सम्बन्धित कथा एवं राजा को विश्वामित्र के कारण हुए घोर कष्ट का वर्णन है एवं राजा के कष्ट के लिये दोषी विश्वामित्र को वशिष्ठ द्वारा बकपक्षी होने का शाप तथा विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ को सारस पक्षी होने का प्रतिशाप के अनन्तर बक-सारस का संग्राम एवं ब्रह्मा द्वारा उनका युद्ध बन्द कराने का वर्णन है।

(अ. १०) जैमिनि द्वारा पक्षियों सें प्राणियों के जन्म-मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न, उसका उत्तर, रौरव नरक का स्वरूप तथा नरकभोग के बाद विविध योनियों में पुनः जन्मग्रहण का वर्णन है। साथ ही पुण्यकर्मियों के स्वर्गगमन और नरक से आगमन का प्रकार वर्णित है।

(अ. ११-१२) गर्भस्थ जीव के शरीर एवं मन के विकास का तथा जीवों के जन्म-मृत्यु चक्र का तथा महारौरव आदि छह नरकों का विशद वर्णन है।

(अ. १३-१५) सुमति का वृत्तान्त वर्णित है। जिसके अन्तर्गत उसके सात पूर्वजन्मों की घटनाओं के वर्णन के साथ यमदूत द्वारा सुमति के प्रश्नों का उत्तर तथा नरक में विभिन्न कर्मों के विभिन्न फल प्राप्त होना एवं भोग से ही कर्मों का क्षय होना वर्णित है। साथ ही नरक से निकल के प्राणियों के विभिन्न योनियों में जाने सम्बन्धी प्रश्न का यमदूत द्वारा दिया उत्तर वर्णित है। पुनश्च राजा सुमति के शरीर से लगी वायु के स्पर्श से नरकवासियों को प्राप्त सुख का वर्णन तथा नरकवासियों के सुख हेतु सुमति का अपने नरक में ही रहने का आग्रह एवं उसके इसी पुण्य के प्रभाव से सभी नरकवासियों को उत्तम योनि प्राप्त होता वर्णित है।

(अ. १६-१७) कोढ़ी पति की पतिव्रता स्त्री द्वारा अपने पति को बचाने के लिये सूर्योदय-स्थगन का संकल्प तथा अनसूया द्वारा संकल्पत्याग के लिये उसे समझाना और स्वयं उसके पति को स्वस्थ सुन्दर रूप में जीवित कर देना वर्णित है। इससे प्रसन्न देवताओं द्वारा अनसूया को उसका अभिलषित वर प्रदान करना, वर प्रदान के फलस्वरूप ब्रह्मा का सोमरूप में-विष्णु का दत्तात्रेय रूप में और महेश का दुर्वासा रूप में अनसूया के गर्भ से उत्पन्न होना आदि कथानक तथा पातिव्रत्य का माहात्म्य वर्णित है।

(अ. १८-१९) कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन (सहस्रार्जुन) द्वारा राजसिंहासन ग्रहण करने की अस्वीकृति तथा दत्तात्रेय के निकट आकर चक्रवर्ती सम्राट होने का आशीर्वाद प्राप्त करना आदि वर्णित है।

(अ. २०-२७) शत्रुजित् के पुत्र ऋतध्वज द्वारा सूकर रूपधारी पातालकेतु को मारकर उससे विश्वावसु की कन्या मदालसा का उद्धार एवं मदालसा के साथ ऋतध्वज का विवाह, तदुपरान्त कालान्तर में पातालकेतु के अनुज तालकेतु द्वारा भ्रातृवध के प्रतिशोधस्वरूप ॠतध्वज के मृत्यु समाचार को जानकर मदालसा को भी प्राण त्याग, किन्तु मुनियों की रक्षा में ॠतध्वज के मारे जाने से शत्रुजित एवं उसकी पत्नी का अपने का धन्य मानना तथा जीवित राजकुमार ॠतध्वज के राजधानी जाने पर मदालसा की मृत्यु सुन राजकुमार द्वारा आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेना वर्णित है।

इस घटना की जानकारी होने पर नागराज अश्वतर अपने पुत्रों द्वारा ॠतध्वज को बुलवाकर उसे अपने यहां प्रेम से रखता है। वहां अश्वतर द्वारा सरस्वती की आराधना

के प्रभाव से शंकर प्रसन्न होते हैं और वरदान स्वरूप मदालसा पुनः जीवित हो उठती है और नागराज अश्वतर पुनः मदालसा को उसके पति ऋतध्वज से मिला देते हैं। अनन्तर राजा शत्रुजित् की मृत्यु, ऋतध्वज का राज्यगद्दी आरोहरण, मदालसा से विक्रान्त नामक पुत्र की उत्पत्ति एवं मदालसा द्वारा शिशु विक्रान्त को अध्यात्मज्ञान का उपदेश आदि का वर्णन है।

(अ. २८-४४) मदालसा द्वारा द्वितीय पुत्र अलर्क को प्रवृत्तिमार्ग के अन्तर्गत राजनीति का उपदेश, वर्णाश्रमधर्म का उपदेश, गृहस्थों द्वारा कर्तव्य विविध श्राद्धकल्पों का उपदेश तथा सदाचार, वर्ज्यावर्ज्य तथा स्त्रीधर्म आदि का उपदेश वर्णित है। पुनः दत्तात्रेय द्वारा अलर्क के योगसम्बन्धी विविध प्रश्नों के उत्तर स्वरूप योगसम्बन्धी उपदेश तथा राजकाज में अत्यन्त आसक्त अलर्क का मोक्षमार्ग से विमुख होना आदि का वर्णन है। अलर्क के ऊपर काशिराज का आक्रमण तथा उससे क्षीण अवस्था को प्राप्त हुए अलर्क को मदालसा के उपदेशों का स्मरण एवं धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने के अनन्तर अपने पुत्र को राज्य सौंप कर अपने पिता माता के समान ही अलर्क का भी स्वयं वन चला जाना आदि वर्णित है।

(अ. ४५-६०) पक्षियों ने जैमिनि का जगत् की उत्पत्ति और प्रलय से सम्बन्धित मार्कण्डेय मुनि और क्रौष्टुकि के संवाद को सुनाना आरम्भ किया। उस संवाद में कहा गया है कि पूर्वकाल में ब्रह्मा के मुखों से वेद और पुराण प्रकट हुए, जिन्हें क्रमशः सप्तर्षियों ने तथा भृगु आदि मुनियों ने ग्रहण किया। पुराण को भृगु से च्यवन ने, च्यवन से ब्रह्मर्षियों ने, ब्रह्मर्षियों से दक्ष ने और दक्ष से मार्कण्डेय मुनि ने ग्रहण किया। आगे के अध्यायों में मार्कण्डेय द्वारा क्रौष्टुकि को सृष्टि के उद्भव एवं प्रलय के सम्बन्ध में बताया गया। वहां ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में एक ही परमेश्वर द्वारा सृष्टि-स्थिति और प्रलय का होना बताया गया है। इसके साथ काल के भेदों का तथा सृष्टि अवान्तर भेदों का निरूपण किया गया है।

(अ. ६१-६८) स्वारोचिष मन्वन्तर से सम्बन्धित स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति आदि विभिन्न विषयों का उल्लेख है। इसी के अन्तर्गत पद्मिनी विद्या के वर्णन प्रसंग में उस विद्या की अधिदेवता लक्ष्मी के आश्रित पद्म-महापद्म-मकर-कच्छप-मुकुन्द-नन्दक-नील और शंख नामक आठ निधियों का महत्व सहित वर्णन है।[1] इन निधियों सात्विक, कुछ राजस और कुछ तामस हैं। अपने अपने गुणों के अनुसार इनके विभिन्न फल और व्यवहार हैं।

(अ. ६९-७६) क्रमशः औत्तम-तामस-रैवत और चाक्षुष मन्वन्तरों से सम्बन्धित वृत्तान्तों के साथ इनके देवता, इन्द्र, ऋषि और राजवंशों का वर्णन है।

---

१. कुन्द नाम की एक और निधि होती है।

(अ. ७७-७८) वैवस्वत मन्वन्तर के वर्णन-प्रसंग में विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र वैवस्वत के साथ यम, यमुना, सावर्णिक, शनैश्चर तथा तपती के जन्म की विशद वर्णन है। इनमें प्रथम तीन की उत्पत्ति सूर्य की पत्नी संज्ञा से, जो विश्वकर्मा की पुत्री थी, हुई। अन्तिम तीन की उत्पत्ति उनकी उपपत्नी छाया से हुई थी। इसके अनन्तर अश्वा के रूप में तपस्या करती हुई संज्ञा की नासिका से दो अश्विनीकुमारों की तथा उसी अवसर पर पृथ्वी पर गिरे सूर्यवीर्य से रेवन्त की उत्पत्ति का वर्णन है।

इनमें वैवस्वत ने मनु का पद, यम ने धर्मराज का पद, यमुना ने पवित्र नदी का पद, अश्विनीकुमारों ने देवताओं के चिकित्सक का पद और रेवन्त ने गुह्यकराज का पद प्राप्त किया। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के बाद छाया-पुत्र सवर्णिक के भावी मनु होने का वर्णन है। छाया के द्वितीय पुत्र शनैश्चर को ग्रहों के मध्य स्थान प्राप्त हुआ। छाया की अन्तिम सन्तान तपती कुरुक्षेत्र के राजा संवरण की पत्नी हुई।

(अ. ७९) वैवस्वत मन्वन्तर के देवता, इन्द्र, ऋषि और प्रमुख राजवंशों का वर्णन है।

(अ. ८०) भावी सावर्णिक मन्वन्तर काल के देवता, इन्द्र, ऋषि और प्रमुख राजाओं का वर्णन है।

(अ. ८१-९३) प्रसिद्ध 'दुर्गासप्तशती' है, जिसमें दुर्गा के तीनों चरित्र वर्णित है। अन्तिम अध्याय में सुरथ राजा और समाधि नामक वैश्य की तीन वर्षों तक निरन्तर आराधना से प्रसन्न हुई देवी द्वारा सुरथ को राज्य प्राप्ति का और समाधि को ज्ञान प्राप्ति का वर्णन है। साथ ही सुरथ राजा को उनके मरणोपरान्त सूर्य से जन्म पाकर सावर्णि नामक मनु का पद प्राप्त होने का देवी द्वारा वरदान-वर्णित है।

(अ. ९४) नवम मनु दक्षपुत्र सावर्णि, दशम मनु ब्रह्मपुत्र धीमान्, एकादश मनु धर्मपुत्र सावर्णि, द्वादश मनु रुद्रपुत्र सावर्णि तथा तेरहवें मनु रौच्य का वर्णन तथा इन सभी मनुओं के देवता, इन्द्र, ऋषि और राजवंशों का वर्णन हुआ है।

(अ. ९५-९८) यहां रौच्यमनु की जन्मकथा तथा प्रजापति रुचि और पितरों के संवाद में पितरों द्वारा गार्हस्थ्य के प्रति अनासक्त रुचि को गृहस्थाश्रम की महिमा बतायी गयी है। इसके अतिरिक्त वृद्धता एवं अस्वस्थता के कारण विवाह हेतु कन्या की प्राप्ति सम्भव न देखकर सौ वर्ष तक कठिन तपस्या करना तथा तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा द्वारा पितरों की स्तुति करने का सुझाव देना और स्तुति से प्रसन्न पितरों के आशीर्वाद से एक परम सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति उससे उत्पन्न तेरहवां रौच्य नामक मनु होने का वर्णन है।

(अ. ९९-१००) चौदहवें भौत्य मनु का सविस्तार वर्णन है। (अ. १०१ से १०३) बृहत् अण्ड के भेदन से चतुर्मुख ब्रह्मा का प्रकट होना और उनके मुख से सर्वप्रथम ओम् शब्द का प्रकट होना तथा उसी समय चार मुखों से ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेद के प्रकट होने का वर्णन है। तेजः पुंजस्वरूप ओम् कार ही आदित्य कहलाये।

(अ. १०४-१०८) ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से उत्पन्न कश्यप का दक्ष प्रजापति की तेरह कन्याओं के साथ विवाह का वर्णन हुआ है। उन कन्याओं में अदिति से देवता, दिति से दैत्य, दनु के दानव, विनता से गरुड आदि की उत्पत्ति का वर्णन है। दैत्यों के साथ युद्ध में देवताओं की पराजय होती है। अनन्तर अदिति द्वारा सूर्यदेव की प्रार्थना किये जाने पर सूर्यदेव आदित्य के रूप में अदिति का पुत्र होकर प्रकट होते हैं और युद्ध में दैत्यों और दानवों का संहार करते हैं, यह वर्णन हुआ है। इस विजय से प्रसन्न होकर विश्वकर्मा द्वारा अपनी पुत्री संज्ञा का आदित्य के साथ विवाह तथा उससे वैवस्वत आदि छह, दो अश्विनीकुमार एवं रेवन्त इन नौ सन्तानों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(अ. १०९-११०) सूर्यदेव की महिमा के वर्णन प्रसंग में दमपुत्र राज्यवर्धन एवं उनकी पत्नी मानिनी की कथा में राजा-प्रजा दोनों को दस सहस्र वर्ष की आयु प्राप्ति का महत्वपूर्ण वर्णन है।

(अ. १११ से १३६) वैवस्वत मनु की पुत्री इला के अद्भुत उपाख्यान के अतिरिक्त पृषघ्र-नाभाग-भलन्दन-वत्सप्रीत तथा उसकी पत्नी विदुरथ पुत्री मुदावती से उत्पन्न खनित्र-विविंश-खनीनेत्र-करन्धम-अवीक्षित-मरुत्त-नरिष्यन्त तथा दम नामक विशिष्ट नृपतिओं की कथाएं वर्णित हैं।

(अ. १३७) मार्कण्डेय पुराण के श्रवण पठन के माहात्म्य वर्णन के साथ इस पुराण का समापन होता है।

मार्कण्डेयपुराण की दृष्टि में देवीतत्त्व एवं सूर्यतत्त्व

देवीतत्त्व-मार्कण्डेयपुराण में देवीतत्व का प्रतिपादन अनेक रूपों में हुआ है। जिससे भगवती देवी की सर्वव्यापकता, सर्वमयता एवं सर्वशक्तिता प्रकट होती है। भगवती देवी जगत्पति विष्णु की शक्ति है। इसी से विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं। इसे विष्णु की महामाया भी कहते है। यह महामाया ही विष्णु की योगनिद्रा के रूप में प्रतिपादित हुई है। विष्णु का योग (समाधि) ही निद्रा है और योगनिद्रा उनकी महामाया ही है। उस महामाया का प्रभाव ही संसार भाव का कारण है। वह चराचर जगत् को उत्पन्न करने वाली और प्रसन्न होकर वर प्रदान करने वाली है। वही मुक्ति का हेतुभूत सनातनी विद्या है तथा संसार बन्धन का भी हेतु है। इसीलिये वह सर्वेश्वरी है। महामाया संसार बन्धन का और परममुक्ति का भी हेतु है।

ब्रह्मा द्वारा देवीस्तुति के प्रसंग में कहा गया है-हे देवि ! तुम स्वाहा (अर्थात् देवता के निमित हविदान मन्त्र) हो। स्वधा (अर्थात् पितरों के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्म में स्वधा मन्त्र) हो। तुम वषट्कार (अर्थात् 'वषडिन्द्राय' इस वषट्कार का भागी इन्द्ररूपा इन्द्राणी) हो। तुम ही स्वर्गरूप या अनुदात्तादि स्वररूपा हो। तुम सुधा हो। तुम ही

ह्रस्वदीर्घप्लुतरूप त्रिमात्रात्मक स्वर हो, और अर्धमात्रात्मक व्यजंन वर्ण भी तुम ही हो। तुम ही सन्ध्या अर्थात् पितरों की माता हो। तुम ही सावित्री अर्थात् व्याहृति रहित ऋक् हों। तुम ही वेदों की जननी गायत्री हो। सबका धारण करने वाली स्रष्ट्री, पालयित्री और अन्त में संहार में सत् या असत् जो भी वस्तु है, उस सबकी शक्ति तुम ही हो। तुम्हारे ही द्वारा विष्णु, शंकर और ब्रह्मा को शरीरधारण करना पड़ता है। इस प्रकार देवी के उपर्युक्त सभी स्वरूप है।

सप्तशती के पंचम अध्याय में 'या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता' से आरम्भ कर 'चितिरूपेण या कृत्स्नम्' तक बताये गये सभी स्वरूपों में देवीतत्व प्रस्फुटित हुआ है।

सप्तशती के ग्यारहवें अध्याय की नारायणी स्तुति में भगवती को जगत् का आधारभूत पृथ्वी रूप में, जगन्मात्र को आप्यायित करने वाले जलरूप समस्त स्त्रियों के रूप में, सबके हृदयस्थ बुद्धिरूप में, त्र्यम्बक रूप में, सोम, सूर्य और अग्निरूप त्रिनेत्र के रूप में, महावृषभवाहिनी माहेश्वरी, कौमारी तथा वैष्णवी के रूप में, वाराही-नृसिंही-ऐन्द्री-शिवदूती रूप में तथा चामुण्डा रूप में, एवं पूर्वोत्त लक्ष्मी-लज्जा आदि रूपों में सर्वतः पाणिपादादि वाली विराट् रूप में प्रतिपादित किया गया है, जिससे देवी का विश्वात्मक तत्व स्पष्ट होता है।

सूर्यतत्व-आधिभौतिक-आधिदैविक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से सूर्यतत्व प्राणीमात्र के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आधिभौतिक दृष्टि से भगवान् सूर्य जगत् के एकमात्र चक्षु हैं और जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण हैं। सूर्य का यह भौतिक तत्व सर्वानुभवगम्य है। आधिदैविकरूप में सूर्य ब्रह्मा-ईशान विष्णुस्वरूप हैं। तथा आध्यात्मिक रूप में ॠक्, यजुः और साम में सम्यक् प्रकार से गान किये गये भगवान् सूर्य भुर्भुवः स्वः के एकमात्र प्रकाशक सर्वान्तर्यामी साक्षात् परंब्रह्मरूप हैं।

मार्तण्ड के आधिदैविक स्वरूप को बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि अव्यक्तजन्मा चतुर्मुख ब्रह्मा के सर्वप्रथम प्रथम आनन से ऋक् की उत्पत्ति हुई, दक्षिण आनन से यजुः की, पश्चिम आनन से साम की तथा उत्तर मुख से अथर्व की उत्पत्ति हुई। ऋक् रजोगुणात्मक, यजुः सत्वगुणात्मक, साम तमोगुणात्मक और अथर्व तमः- सत्वगुणात्मक हुआ। उपर्युक्त ऋगादि चतुर्विध मन्त्र अपने अपने अप्रतिम तेज से पृथक् देदीप्यमान थे। ये सभी तेज 'ओम्' शब्द से कटे जाने वाले आद्यतेज से आच्छादित होते हुए परतेज के साथ एकी भाव को प्राप्त कर जाते हैं। उस स्थिति में तमः के पूर्णतया नष्ट हो जाने से यह विश्व नीचे, ऊपर और तिर्यक् सर्वतोभावेन अत्यन्त निर्मल रूप में भासित हो जाता है। इस प्रकार मण्डलीभूत उत्तम छान्दस तेज पर तेज के साथ एकीभूत होकर आदित्य संज्ञा को प्राप्त करता है। चूंकि यह आदि में हुआ इसलिये इसको आदित्य संज्ञा हुई। सृष्टि में ब्रह्मा ऋक्मय है, स्थिति में विष्णु यजुर्मय हैं, और संहार में रुद्र साममय हैं। इसीलिये त्रयीमय आदित्य ब्रह्मा-विष्णु-महेशात्मक है।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार जगत् की सृष्टि करने की कामना से ब्रह्मा प्रजापति ने अपने दक्षिण अंगुष्ठ से उनकी पत्नी को उत्पन्न किया। इसीलिये पुरुष को दक्षिणांग और स्त्री को वामांग कहा जाता है। दक्ष को अपनी स्त्री से अदिति नामक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। उसी अदिति और कश्यप के द्वारा आराधित सर्वात्मा भास्वान् अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। क्रौष्टुकि द्वारा पूछे जाने पर मार्कण्डेय ने भास्वान् का स्वरूप एवं आविर्भाव इस प्रकार बताया-

विस्पष्ट सर्वोत्कृष्ट विद्या-तेज-शाश्वत प्रकाश -कैवल्य-ज्ञान-प्राकट्य-प्राकाम्य-चित्-बोध-अवगति-स्मृति और विज्ञान उस विवस्वान के रूप हैं। उनका आविर्भाव इस प्रकार है-प्रभा और आलोक से शून्य सर्वतोभावेन तमः से आच्छादित जगत् में सबका कारणीभूत अक्षर स्वरूप एक बृहत् अण्ड उत्पन्न हुआ। उस बृहत् अण्ड का भेदन कर उससे जगत् स्रष्टा भगवान् प्रपितामहब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए। उनके मुख से पहले ओम् यह महान् शब्द हुआ। उसके बाद भूः भुवः और स्वः क्रमशः हुए। ये तीनों व्याहृतियां सूर्य के स्वरूप हैं ओम् स्वरूप से उत्पन्न ये तीनों व्याहृतियां रवि का सूक्ष्म रूप हैं। उससे स्थूल महः, उससे स्थूलतर जन, उससे तप और उससे सत्य हुआ। इस प्रकार रवि के सात स्थूल (मूर्त) रूप हुए। और जो 'ओम्' है, वह अत्यन्त सूक्ष्म रूप तथा विवस्वान् का परंब्रह्मात्मक स्वरूप है।

आदित्यमय सब है और आदित्य सर्वमय है।, वह विश्वमूर्ति स्वरूप एवं योगियों द्वारा ध्येय परःज्योतिः है। त्रयीमय है, सूक्ष्म अर्धमात्रा रूप है। पृथ्वी जलादिपंच रूप में रवि ही जगत् का पालन करते हैं तथा आदित्य ही गगन रूप में सर्वत्र व्याप्त है। यज्ञों द्वारा विष्णुरूप आदित्य की ही पूजा परमात्मवेत्ता लोग करते हैं। मुक्ति की कामना करने वाले यम नियमादि से सम्पन्न यति लोग सर्वेश्वर आदित्य का ही ध्यान करते हैं।

सूर्य देवताओं और पितरों को तृप्त करने वाले हैं वे वीरुधों के लिये अमृतभूत सोमात्मक हैं। इस प्रकार अर्क और सोम के रूप में विश्वमय सूर्य अग्निसोमात्मक हैं। ऋक् यजुः, साम के रूप में सूर्य ही त्रयी हैं और 'ओम्' सूर्य का ही परमसूक्ष्मरूप है। वस्तुतः आदित्य ही धाता के रूप में सृष्टि करते, विष्णु के रूप में रक्षा करते तथा महेश के रूप में अन्त में सबका लय करते हैं। यही विवस्वान् आदि में अण्ड को मारित किया था, भेदन किया था। इसीलिये सूर्य का नामान्तर मार्तण्ड भी है (१०५।१६)

मार्कण्डेयपुराण परिचय के अन्तर्गत दुर्गासप्तशती पर विशेष वक्तव्य

मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' उसकी आत्मा है-ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी। यही अंश मार्कण्डेय पुराण को पुराणान्तरों विशिष्टता प्रदान करता है। यद्यपि विश्व के समस्त प्रबुद्ध वर्ग में गीता के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण श्रद्धा और गौरव के साथ स्मरणीय हैं, किन्तु दुर्गा तो भारत के प्रत्येक हिन्दू घरों में प्रबुद्ध अप्रबुद्ध आपामर स्त्रीपुरुष सभी

की आराध्य देवी के रूप में पूजी जाती है। दुर्गासप्तशती का पाठ वर्ष के दोनों नवरात्रों में घर घर में होता है। कोई भी गांव ऐसा नहीं, जहां दुर्गा मन्दिर या दुर्गा स्थान न हो। भगवद्गीता के समान दुर्गा सप्तशती पर भी अनेक व्याख्यायें हुई हैं। मूल के रूप में इसके अगणित संस्करण निकल चुके हैं। यहां दुर्गासप्तशती की गुप्तवती आदि सप्तटीकाओं के सम्बन्ध कें संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

सप्तशती पर १. दुर्गाप्रदीप, २. गुप्तवती, ३. चतुर्धरी, ४. शान्तनवी, ५. नागोजी भट्ट, ६. जगच्चन्द्र चन्द्रिका एवं दशोद्धार नामक सात टीकायें महत्वपूर्ण हैं और सम्प्रति उपलब्ध भी हैं। इनका एक साथ प्रथम प्रकाशन क्षेमराज द्वारा बम्बई स्थित 'वेंक्टेश्वर स्टीम' प्रेस से शक सवंत् १८३६ में हुआ था। इसका फोटोस्टेट प्रकाशन भी हाल में हुआ है।

सप्तशती टीकाकारों का संक्षिप्त परिचय तथा टीकाओं की विशेषता

१. दुर्गासप्तशती के उपर्युक्त सात टीकाओं में 'दुर्गाप्रदीप' टीका के कर्ता का नामोल्लेख खेमराज द्वारा वेंक्टेश्वर स्टीम प्रेस से प्रकाशित उक्त ग्रन्थ में नहीं है। इसलिये इस टीकाकार का परिचय देना यहां सम्प्रति संभव नहीं है। प्रदीप टीका केवल कवच-अर्गला-कीलक पर ही है।

'शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।
भवत्येव समग्राऽपि ततः प्रारभ्यमेव तत्।।"

कीलक के इस श्लोक की 'प्रदीप' में की गयी व्याख्या मनोरम है। वह यों है-शनैः -स्वकर्णगोचरं यथा स्यात् तथा पाठे यत्किंचित् सम्पत्तिरेव भवति। उच्चकैस्तु पाठे समग्राऽपि भवत्येवेति उच्चकैरेवैतत् प्रारम्भमिति।' उक्त श्लोक में पाठ के दो भेद हैं-एक शनै 'पाठ और दूसरा उच्चकैः पाठ। फल के भी दो भेद हैं-कुछ सम्पत्ति की प्राप्ति तथा समग्रसम्पत्ति की प्राप्ति।

२. **गुप्तवती**-इस टीका के कर्ता ने टीका के अन्त में अपना परिचय देते हुए लिखा है- "श्रीमत् पद वाक्य प्रमाण पारावारीणधुरीण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र श्रीमद् गम्भीर राय भारती दीक्षितात्मज भास्कररायभारतीदीक्षितमहाग्निचिता विरचिता 'गुप्तवती' समाख्या सत्तशती व्याख्या समाप्ता' इति। अतः 'गुप्तवती' टीका के रचयिता 'भास्कर रायभारती दीक्षित है। तन्त्र के इतिहास में काशी का नाम उजागर करने वाले भास्कर राय एक जाज्वल्यमान विभूति थे। भास्कर राय दीक्षित, भासुरानन्द, भास्करानन्द नाथ इनके अपर नाम हैं इनके पिता का नाम था गम्भीर राय दीक्षित तथा माता का नाम कोनाम्बिका। पिता ने ही किशोरावस्था में इन्हें सारस्वत मन्त्र का उपदेश दिया था, जिसकी आराधना से समस्त विद्यायें एवं कलाएं इनके स्वायत हो गयी। इनके ग्रन्थ तन्त्र साहित्य के उज्ज्वल हीरक है।

जिनमें मुख्य हैं-गुप्तवती (दुर्गा सप्तशती की व्याख्या) वरिवस्यारहस्य (तान्त्रिकी पूजा का रहस्य प्रकाशन ग्रन्थ) सेतुबंध (वामकेश्वर तन्त्र के अन्तर्गत 'नित्या षोड की व्याख्या) सौभाग्य भास्कर ('ललितासहस्रनाम' का गम्भीरार्थ-प्रतिपादक भाष्य रचनाकाल १७२८ ई.) भावनोपनिषद् भाष्य तथा कलोपनिषद् भाष्य। इनका समय १८वीं शती का मध्यकाल निश्चित होता है।

कोई तो 'ॐ नमश्चण्डिकायै' इस प्रारम्भिक वचन ही पृथक् मन्त्र मानते हैं। किन्तु यह पक्ष 'गुप्तवती' टीकाकार को मान्य नहीं है। क्योंकि उक्त पद में' मकरादि नुकारान्त' (अर्थात् 'मार्कण्डेय उवाच' से प्रारम्भ कर 'भवितामनुः') यही सप्तशती का मन्त्रभाग है- इस सिद्धान्त के साथ विरोध होता हे। 'ॐ नमश्चण्डिकायै' यह अंश तो सप्तशती मन्त्र के बाहर का है। उपर्युक्त यामल-वचन के अनुसार भी दुर्गा-सप्तशती मन्त्रों की सात सौ होम संख्या पूरी हो जाती है। इस सम्बन्ध में गुप्तवती टीकाकार का विशिष्ट विचार स्पृहणीय है। व्याख्या करने में इनकी तान्त्रिक दृष्टि भी अभीष्ट प्रतीत होती है।

(३) **चतुर्धरी**-इस टीका के कर्ता श्री चतुर्भुजधर हैं। उन्होंने टीका के प्रारम्भ में लिखा है 'श्री चतुर्भुजधरामृतान्धसा चण्डिकासुचरितं विविच्यते। धीरसार्थ इह तुष्यतां यतः क्षीरगोरपि सतां विनोदिनी।। इति। इनका भी विशेष परिचय अप्राप्त है।' सावर्णिः सूर्यतनयो .... (१।१)। इस श्लोक की चतुर्धरी व्याख्या में 'सावर्णि' शब्द की व्याख्या अन्य टीकाओं से उत्कृष्ट हुई है।

(४) **शान्तनवी**-इस टीका के कर्ता श्रीशन्तनु चक्रवर्ती हैं। उन्होंने टीका के अन्त में अपना परिचय देते हुए स्वयं लिखा है-'ति श्री मार्कण्डेयपुराणं श्रीराजाधिराजतोमरान्वय श्रीमदुद्धरणात्मज शन्तनु चक्रवर्ति विरचितायां देवीमाहात्म्य टीकायां ....

इस टीका में टीकाकार ने व्याकरण की दृष्टि को विशेषतया अपनाया है, जिसके आधार पर श्लोकगत पदों की अनेकविध व्युत्पत्ति कर अनेक अर्थ प्रस्तुत किये गये हैं। जैसे-

'सा विद्या परमामुक्तेहेर्तुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी।। ' (स.श. अ. १ श्लोक ४४)

यहां की शान्तनवी टीका विविधार्थ गर्भित एवं अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण है तथा पाठकों के लिये विशेष ज्ञानप्रद है।

इसी प्रकार राजोवाच - **'भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।**
ब्रवीति, कथमुत्पन्ना सा, कर्मास्याश्च किं द्विज!।।'

यहां का ? कथम् ? किम् ? ये तीन प्रश्न देवी के (स.श.अ. १ श्लो. ४५) स्वरूप-उद्‌भव एवं प्रभाव विषयक हैं। यह गुप्तवती व्याख्या है। जबकि शान्तनवी में तृतीय

प्रश्न का रूप किम् कर्म ?' यह दिया है। अर्थात् तीसरा प्रश्न देवी पराक्रम विषयक है।

'तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।।' (अ. १ श्लोक ५०)

इसमें मधु और कैटभ शब्दों की व्युत्पत्ति शान्तनवी में विशिष्ट है। वहीं द्रष्टव्य है।

'सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि।।' (अ. ५-७४)

यहां शान्तनीव की विविध प्रकार की व्याख्या निश्चित ही अन्य व्याख्याओं सें उत्कृष्ट है। एवं 'हे धूम्रलोचनाशु त्वम् ......। तामानय .... केशाकर्षणविह्वलाम्।।' यहां की भी शान्तनवी व्याख्या चमत्कारपूर्ण है।

(५) **नागोजीभट्ट**-इस टीका के कर्ता सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नागोजीभट्ट (नागेश भट्ट) हैं। इन्होंने सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के अन्त में पुष्पिका में लिखा है-'शिवभट्टसुत सतीगर्भज नागोजीभट्ट कृते सप्तशती व्याख्याने .... अध्यायः' इति। श्लोकार्थ लगाने में यह व्याख्या सर्वगम्य एवं प्रामाणिक है।

(६) **'जगच्चन्द्र चन्द्रिका**- इस टीका के रचयिता पण्डित भगीरथ हैं। इन्होंने टीका के प्रारम्भ में अपना परिचय देते हुए कहा है कि राजा ज्ञानचन्द्र के पुत्र श्री कुमार जगच्चन्द्र की सेवा में रहने वाले उनके पुरोहित कुल में उत्पन्न पण्डित भगीरथ इस टीका के कर्ता हैं। जो हर्षदेव के पुत्र थे। इस टीका का उद्देश्य है - सप्तशती मन्त्रों से होम का विभाजन। अपने इस अभिप्राय को स्वयं टीकाकार ने कहा है -

अष्टसप्तत्युत्तराणाम् ....।
...........................।।
विभज्य जुहुयान्मन्त्रैरिति कात्यायनीमतम्।।

अर्थात् सप्तशती स्तोत्र में श्लोकों की संख्या कुल पांच सौ अठहत्तर है। अतः इन्हें सात सौ सख्या में विभक्त कर हवन करना चाहिये। यह कात्यायनी तन्त्र का मत है। इसी मत को पं. भगीरथ ने टीका के प्रारम्भ में पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के द्वारा प्रदर्शित किया है। इस टीका की अन्तिम पुष्पिका है-'इति कण्वगोविन्द कृत सप्तशतीहोममन्त्र विभागकारिकाणां भगीरथविरचिता जगच्चन्द्रचन्द्रिका सम्पूर्णा' इति।

इस पुष्पिका से यह भी विदित होता है। कि कण्व-गोविन्द द्वारा विरचित सप्तशती मन्त्र होमों को विभाजन करने वाली कारिकाओं का एक कोई संग्रह था, जिसके आधार पर पण्डित भगीरथ से सप्तशती के पृथक् पृथक् प्रत्येक अध्याय के मन्त्रहोमों का विभाजन

अपनी जगच्चन्द्रचन्द्रिका टीका में किया। और यह विभाजन कात्यायनी तन्त्र की पद्धति से किया।

(७) **दशोद्धार टीका** - इस टीका के रचयिता ने अपने सम्बन्ध में कोई स्पष्ट निर्देश दिये बिना टीका के प्रारम्भ में इतना ही कहा है -

विद्वत्कुलशिरोरत्नं नत्वा तातं समासतः।
दशोद्धारं सप्तशत्यास्तनोमि विदुषां मुदे।।

टीका के 'दशोद्धार' इस नामकरण का अभिप्राय भी अस्पष्ट है।

मार्कण्डेय पुराण की दृष्टि में योग

मार्कण्डेय पुराण की दृष्टि में योग में ज्ञानियों की वह शक्ति निहित है, जिससे परम निःश्रेयस (मुक्ति) की प्राप्ति हो जाती है।

'योगे च शक्ति, विदुषां येन श्रेयः परं भवेत्।' (अ. ३६। २)

यहां तक कि वही ज्ञान ज्ञान है, जो मुक्ति के लिये हो। अन्यथा वह ज्ञान भी अज्ञान ही है। 'यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञान मन्यथा' (अ. ३६ । ५)। यह वचन भी यही संकेत करता है कि ज्ञानपुरःसर योग ही मुक्ति का साधन है। 'मुक्तिर्योगात्तथा योगः सम्यग् ज्ञानान्महीयते।' इस पुराण में प्राणायामादि योगों पर विशेष बल (३६।१) दिया गया है। इसमें वर्णित प्राणायाम की चार अवस्थायें भी अपूर्व हैं। वे हैं-घ्वस्ति-प्राप्ति-संवित् और प्रसाद इनका विशद विवेचन वहीं द्रष्टव्य है।

योग का फल बताते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार तपाने से दोष नष्ट हो जाने पर एक कनक खण्ड दूसरे के साथ मिलाकर एकीभाव को प्राप्त कर जाता है, जैसे एक अग्नि दूसरी अग्नि में डाल देने पर समानभाव को प्राप्त कर जाती है, जिस प्रकार जल में डाल देने पर समानभाव को प्राप्त कर जाती है, जिस प्रकार जल में डाला गया जल ऐक्य को प्राप्त कर जाता है, वैसे ही योगद्वारा मलरहित यति ब्रह्म के साथ एकीभाव को प्राप्त कर जाता है।

'परेण ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्विषः।
योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ! ।। ' (अ.४०-४१)

इससे इस पुराण के अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ अपृथग्भाव ही मुक्ति का स्वरूप सिद्ध होता है। वाग्दण्ड (वाग्योग), कर्मदण्ड (कर्मयोग) और मनदण्ड अर्थात् मनयोग, जिसके ये तीनों दण्ड सिद्ध हैं वे ही वस्तुतः त्रिदण्डी हैं, यह इस पुराण की मान्यता है (द्रष्टव्य-४२-४२)।

मार्कण्डेय पुराण और वर्णाश्रमधर्म

वर्णधर्म-इस पुराण की दृष्टि में दान-अध्ययन और यज्ञ ये ही तीन ब्राह्मण के धर्म हैं, इनके अलावे अन्य कोई चतुर्थधर्म नहीं है। शुद्ध याजन और अध्यापन तथा शुद्ध प्रतिग्रह ये ही तीन ब्राह्मण की जीविका हैं (२८।३४) क्षात्रिय के भी वे ही दान-अध्ययन और यज्ञ तीन धर्म हैं, किन्तु वैश्य की जीविका है-वाणिज्य-पशुपालन और कृषि। शुद्र के तीन धर्म हैं-दान, यज्ञ और द्विजातियों की सेवा।

कारीगरी तथा द्विजाति की सेवा इसकी जीविका हैं।

आश्रमधर्म-जब तक द्विजातिका उपनयन नहीं हो जाता, तब तक वह चेष्ठा, उक्ति तथा भक्षण में यथेच्छ आचरण कर सकता है। किन्तु उपनयन हो जाने पर ब्रह्मचारी गुरुगृह में रहे, स्वाध्याय, अग्निशुश्रूषा, भिक्षाटन, गुरुसेवा में रत हो एक या दो या सब वेद पढ़ें। गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। अथवा वानप्रस्थाश्रम में रहे। चतुर्थ तो अनिवार्य नहीं है, स्वेच्छाधीन है।

गृहस्थाश्रम में आकर 'ततो समानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम्। उद्वहेन्यायतोऽव्यग्यां गृहस्थाश्रमकारणात्।।' (२८।१८) स्वविहित कर्मानुसार धनार्जन कर देव-पितृ और अतिथि को भक्तिपूर्वक सुख दे तथा पुत्र भृत्यादि आश्रितों का पोषण करे।

वानप्रस्थाश्रम-अपत्य की सन्तति पौत्रादि को देखकर वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे, अरण्य में रहे, तप करे, ब्रह्मचर्यपूर्वक देवपितृअतिथिक्रिया करे। होम, त्रिकालस्नान, जटा वल्कलधारण, योगाभ्यास पापशुद्धि हेतु करे। उसके बाद संन्यास ग्रहण करे। संन्यास आश्रम में सर्वसंगपरित्याग, कर ब्रह्मचर्य, अक्रोध, इन्द्रियसंयम, भ्रमण से, और भिक्षान्न, एककाल भोजन, करता हुआ आत्मज्ञानावबोधेच्छा करे।

'सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा।
आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाष्टमो गुणः।। (अ. २८।३२)

ये आठ तो सभी वर्णों एवं आश्रमों के सामान्य धर्म हैं। पुत्र के प्रति मदालसा का गृहस्थ धर्मोपदेश - हे वत्स ! गृहस्थ सबका आधारभूत त्रयीमयी धेनु है। इसी पर विश्व प्रतिष्ठित है। ऋक् इसकी पीठ है, यजुः भाल है, साम वक्त्र और ग्रीवा है। इष्टापूर्त ही इसके दो विषाण हैं। इसकी साधु उक्तियां ही रोम हैं। शान्ति और पुष्टि ही इसकी विष्ठा और मूत्र हैं। यह चार्तुवर्ण्य रूप चार पैरों पर प्रतिष्ठित है। यह सभी का अक्षय उपजीव्य है। स्वाहाकार-स्वधाकार-वषट्कार और हन्तकार यही इसके चार स्तन हैं। इनमें स्वाहाकार स्तन को देवता, स्वधाकार स्तन को पितर, वषट्कार स्तन को मुनिगण तथा हन्तकारस्तन को मनुष्य पान करते हैं। इस प्रकार यह गृहस्थरूपी त्रयीमयी धेनु सबको तृप्त करती है। जो इसके स्तनों का उच्छेद करता है, वह घोर अन्धतामिस्र में डूबता है। (अ. २९)।

मार्कण्डेय पुराण की भाषा

इस पुराण की भाषा बहुत शुद्ध और विषयोचित गाम्भीर्य से युक्त है। कहीं कहीं अपाणिनीय प्रयोग मिल जाता है, जैसे त्राहि (१५।६८), यतिष्यामि (१०।४१), मातृपितृसंमतम् (१०।६३) आदि। पौरुष के स्थान पर पौरुष्य का प्रयोग १२५।१० में मिलता है। अकारान्त छन्द शब्द १।३६ में है।

सुभाषित

इस पुराण में कुछ सुभाषित मिलते हैं जैसे -

(१) **ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता । (४।१४)**

(२) **पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः।**
धिग् जन्म तस्य यः पित्रा लोके विज्ञायते नरः।। (२१।६६)।

(३) **नाविज्ञातं नचागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा।**
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम्।। (२१।३७)।

(४) **विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत्। (७७।३२)।**

मार्कण्डेयपुराण का रचनाकाल

विद्वानों की यह मान्यता है कि यह पुराण प्राचीनतम पुराणों में अन्यतम है, जो इसकी भाषा, तथा इसमें वर्णित विषयवस्तु को देखने से सिद्ध होता है। इस पुराण में बुद्ध का नाम नहीं है, यह भी इसकी अत्यन्त प्राचीनता का ज्ञापक है। डा. हाजरा का कहना है कि इसमें नक्षत्रों का जो क्रम (अ. ३३ में) दिखाया गया है, वह ५वीं शती से बाद का नहीं है, अतः इस पुराण की रचना ३-४ शती में हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है (पुराणिक रेकर्ड्स, पृ. ११-१३)। बाद में इस पुराण में कुछ अंश यथाकाल प्रक्षिप्त हुये है। इसमें संशय नहीं है। किस देश में यह पुराण रचित हुआ था, इसका कोई संकेत नहीं मिलता।

इस पुराण का देवी माहात्म्य-अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। पर्जिटर आदि कई विद्वान इसको नवीं शती के पूर्व की रचना मानते हैं और यह संभवतः ५-६ शती में रचित हुआ है, ऐसा कहते हैं। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार इसका रचनाकाल ७वीं शती से पूर्व होना चाहिये। (द्र. उनके द्वारा सम्पादित देवीमाहात्म्य की भूमिका)। यह मत विण्टरनिट्ज का भी है। इस विषय पर डा. मिराशी ने सूक्ष्म विचार कर यह दिखाया है कि इसकी उत्तरसीमा ६वीं शती का प्रथम चरण है (द्र. पुराणम् ६।१ में प्रकाशित उनका लेख)।

मार्कण्डेय पुराण के संस्करण और अनुवाद

इस पुराण के कई संस्करण प्रचलित हैं-जीवानन्द, वेंक्टेश्वर प्रेस, वाराणसी, बिबलियोथिका इन्डिका आदि। खेद है कि इसकी कोई संस्कृत टीका नहीं है (सप्तशतीअंश की कई टीकायें हैं, जैसा कि यथास्थान कहा गया है)।

इसके तीन अंग्रेजी अनुवाद प्रसिद्ध हैं -(१) के.एम. बैनर्जी कृत, (२) एम. एन. राय कृत तथा (३) एफ. ई. पर्जिटरकृत। इनमें पर्जिटर-कृत अनुवाद विशद टिप्पणियों के कारण उपादेय माना जाता है।

इसके कई हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं - (१) भारतधर्म-महामण्डल के द्वारा तथा (२) गीताप्रेस के द्वारा (रामनारायणदत्त पाण्डेय कृत) उर्दू के साथ हिन्दी अनुवाद भी लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। रघुराजदुबे तथा गोविन्दशास्त्री दुगूवेकर कृत हिन्दी अनुवाद भी है। महेश चन्द्र पाल तथा पंचानन भट्टाचार्य के द्वारा कृत दो बंगला अनुवाद प्रसिद्ध है।

वामनपुराण

संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित है। आस्तिक जगत् में श्रुति एवं स्मृतियों के बाद पुराणों का ही प्राधान्य स्वीकृत किया गया है। क्योंकि पुराणों में वेदोपबृंहण के साथ कर्मकाण्ड-धर्मशास्त्र-उपनिषदादि सिद्धान्तों को सरलातिसरल भाषा एवं कथानकोपकथानक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। जिससे साधारण बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति भी वैदिक सिद्धान्तों को जानकर शुभकर्मों के अनुष्ठान से सद्गति पा सकता है।

प्रायः प्रतिपुराणों में अष्टादश पुराणों का उल्लेख है। उनमें वामनपुराण गणना क्रम से चौदहवाँ महापुराण माना गया है जिसकी श्लोक संख्या १०,००० दश हजार है। जैसा कि शौनक के प्रति सूत का कथन है-

ततस्तु वामनं नाम चतुर्दशतमं स्मृतम्।
संख्यया दशसाहस्रं प्रोक्तं कुलपते पुरा।।

(स्क.पु. रे. ख. १/४१)

स्वयं वामनपुराण ने भी फलश्रुति के साथ ऐसा ही श्लोक संख्या का निर्देश किया है, जिसके श्रवण मात्र से बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं–

चतुर्दशं वामनमाहुरग्र्यं श्रुते च यस्याघचयाश्च नाशम्।
प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे महान्ति पापान्यपि नारदाशु।।

(वामन. पु. ६६/११)

अखिललोक नियन्ता भगवान् विष्णु के वामनावतार का विस्तार पूर्वक रुचिर चरित्र के चित्रण करने के कारण इस पुराण का नाम वामनपुराण हुआ। नारदीयपुराण में वामनपुराण के लक्षण निरूपण के प्रसङ्ग में कहा गया है कि-जिस पुराण में लोक पितामह ब्रह्मा ने त्रिविक्रम भगवान् वामन के चारु चरित्र को लक्ष्य करके कूर्मकल्पानुसार धर्मार्थ कामविषयक कथानक का निर्देश किया है वही दश सहस्र श्लोकवाला, श्रोता एवं वक्ता के लिये सुखकारी दो भागों में विभक्त है। उसे लोग वामन पुराण कहते हैं -

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम्।
त्रिविक्रम-चरित्राढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम्।।
कूर्मकल्प-समाख्यानं वर्गत्रयकथानकम्।
भागद्वय-समायुक्तं श्रोतृ -वक्तृ सुखावहम्।।

(नारदीय पुराण १/१०५/१.२)

परन्तु मत्स्य पुराण में तथा स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में वामनपुराण का नाम निर्देश इस प्रकार किया गया है कि जिस पुराण में चतुरानन ब्रह्मा ने कूर्म कल्पानुसार भगवान् वामन के माहात्म्य को आधार मानकर त्रिवर्ग अर्थात् धर्मार्थ काम विषयों का वर्णन किया है, वही वामनपुराण के नाम से कहा जाता है, जिसमें श्लोकों की संख्या १०,००० (दश हजार) है।

त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।
त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्।।
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्।।
(म.पु. ५३/४४-४५, स्क. पु.प्र.ख. ७/२/६३-६४)

इसी प्रकार वामन पुराण में पूर्व तथा उत्तर के भेद से दो भाग हैं। नारदीय पुराण के अनुसार उत्तर भाग का नाम बृहद्वामन है। उसमें चार संहिताएं हैं–१. माहेश्वरी संहिता, २. भागवती संहिता, ३. सौरी संहिता, ४. गाणेश्वरी संहिता। माहेश्वरी संहिता में भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों का कीर्तन है। भगवती संहिता में भगवती जगदम्बा की अवतार-कथा निरूपित है। सौरी-संहिता में सर्व पापनाशक भगवान् भास्कर की महिमा वर्णित है और गाणेश्वरी संहिता में विघ्नव्यूहविनाशक भगवान् विनायक के विचित्र चरित्र चर्चित हैं। इन चारों सहिता में प्रति संहिताओं की श्लोक संख्या १०००-१०००। इस प्रकार चारों संहिताओं की श्लोक संख्या ४००० हैं–

शृणु तस्योत्तरं भागं बृहद्वामनसंज्ञकम्।
माहेश्वरी भागवती सौरी गाणेश्वरी तथा।
चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया।।
(नारदीय पु. १/१०५/१३, १४)

वामनपुराण का रचनाकाल

पुराणों के विकासक्रम में मुख्यतः दो धाराऐं परिलक्षित होती हैं। एक व्यासपूर्वधारा और दूसरी व्यासोत्तर धारा। जिस प्रकार व्यास के पूर्व वेद एक ही था ठीक वैसे ही पुराण एक ही था, जिसमें शतकोटि श्लोक थे। बाद में भगवान व्यास ने उनके अभिप्रायों को चार लक्ष श्लोकों में संकलित करके अट्ठारह भागों में विभक्त किया, जिन्हें आज भी प्रचलित अट्ठारह पुराणों के नाम से कहा जाता है। जिनका स्पष्ट उल्लेख हमें विभिन्न पुराणों में मिलता है।

स्कन्दपुराण में लिखा है कि व्यास के पहिले पुराण एक ही था जो त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) का साधन था तथा जिसमें शतकोटि श्लोक थे। कल्प के आरम्भ में चतुर्मुख ब्रह्मा ने उनका

स्मरण करके ऋषियों से कहा। अतः पुराण के प्रति सभी शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई। समय के परिवर्तन से इतने विशालकाय पुराणसाहित्य का ग्रहण स्वल्पसामर्थ्यशाली तथा अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों के लिए साध्य नहीं था। इसलिये द्वापर के अन्त में भगवान विष्णु व्यासरूप से अवतरित होकर मानवों के कल्याणार्थ उस विशाल पुराण साहित्य को चार लक्ष श्लोकों में संक्षिप्त कर अट्ठारह भागों में विभक्त किया, जो आज भी इस भूतल पर उपलब्ध है। शतकोटि श्लोकों से परिपूर्ण विशाल काय वाला आदि पुराण आज भी देवलोक में विद्यमान है -

पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे मुनेः।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।।
स्मृत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवश्चतुर्मुखः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः।।
कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो मुनिः।
व्यासरूपं विभुः कृत्वा संहरेत् स पुनः पुनः।।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते।।
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम्।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्।।

(स्क. पु. रे.ख. १/२४-२६)

इसकी पुष्टि विभिन्न पुराणों ने भी कुछ शब्दों के परिवर्तन के साथ किया है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि लोकपितामह ब्रह्मा ने सभी शास्त्रों के निर्माण के पूर्व पुराणों का स्मरण किया, उसके बाद उनके मुखों से वेदों का आविर्भाव हुआ। जब ब्रह्मा ने पुराण का स्मरण किया उस समय शतकोटि श्लोक विस्तार वाला पुण्यप्रद एवं धर्मार्थकामप्रद वह पुराण एक ही था। आगे लोगों की अभिरुचि पुराणों में देखकर स्वयं परब्रह्म परमात्मा ने द्वापरान्त में व्यास रूप में अवतरित होकर जो शतकोटि श्लोकों से विशाल पुराण था, उसे चार लाख श्लोकों में परिवर्तित करे अट्ठारह भागों में विभक्त कर पृथ्वी पर प्रकाशित किया। किन्तु शतकोटि श्लोकों से परिपूर्ण विशाल पुराण आज भी देवलोक में विद्यमान है[1]-

प्राचीन मान्यतानुसार यह लोकविश्रुत है कि द्वापर के अन्त में व्यासरूपधारी भगवान् विष्णु ने ही अट्ठारह पुराणों की रचना की। इसकी पुष्टि पुराणों की प्राचीनतम होने से भी होती है क्योंकि वेदों, आरण्यक-ग्रन्थों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, सूत्र-ग्रन्थों, स्मृति-ग्रन्थों, रामायण, महाभारत, व्याकरण, दर्शनशास्त्रों, ज्योतिष-ग्रन्थों, नीतिशास्त्रों, पञ्चदशी, अर्थशास्त्रादि में इनके नाम आने से इनकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं।

---

१. मत्स्य पुराण ५३/३-४, ६-११

किन्तु आधुनिक मनीषी गण उपर्युक्त मत को न मान कर तत्तत्पुराणों के रचनाकाल के विषय में अपने कुशाग्रबुद्धियों का प्रदर्शन किये हैं :-

पुराणों में निर्दिष्ट चरित्रों के तुलनात्मक अध्ययन से उनके रचनाकाल निर्णय में पर्याप्त सहायता मिलती है। जिस पुराण में जिस चरित्र का जहाँ तक अल्प वर्णन है, वह चरित्र उस पुराण को उतना ही प्राचीन सिद्ध करता है। प्राचीन पुराणों में भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रों की कितनी ही घटनायें उल्लिखित हैं। किन्तु नवीन पुराणों में उस चरित्र की नवीन-नवीन घटनाएँ जोड़कर उसे विस्तृत किया गया है। जैसे विष्णुपुराण के पञ्चमअंश में श्रीकृष्णचरित्र केवल १-३८ अध्यायों में अंकित है, परन्तु हरिवंश में नवीन घटनाओं का उल्लेख कर उसमें अधिक वृद्धि की गयी है। श्रीमद्भागवत में तो श्रीकृष्णचरित्र का दूसरे ही प्रकार से पल्लवन किया गया है, जिससे विष्णुपुराण के वह नीरस घटना प्रधान श्रीमद्भागवत में रसप्रधान होता हुआ विलक्षण माधुर्य का आस्वाद कराता है। इन दोनों पुराणों में सूक्ष्मरूप से संकेतित राधाचरित्र भी ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्णचरित्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार श्रीकृष्ण चरित्र के विकासक्रम को ध्यान में रखकर पं. बलदेव उपाध्याय ने इन चारों पुराणों के काल निर्णय इस प्रकार किया है-सर्व प्राचीन विष्णुपुराण, उसके बाद हरिवंश, उसके बाद श्रीमद्भागवत फिर उसके बाद ब्रह्मवैवर्त पुराण।[1]

पुराणों की अन्तरङ्ग परीक्षा से भी उसके रचना काल निर्णय में सहयोग प्राप्त होता है। जैसे अग्निपुराण के ३३७, ३४६, ३४७ अध्यायों में काव्य विवेचन दण्डी के काव्यादर्श में ही आश्रित होने से इस अंश को विद्वानों ने दण्डी के उत्तरकाल की कृति स्वीकृत किया है। गरुड़पुराण के ६३-१०६ अध्यायों में जो धर्मशास्त्रीय विषयों का विवरण उपस्थापित है, वह याज्ञवल्क्य-स्मृति से आधारित होने के कारण यह भाग द्वितीय तृतीय शताब्दी में याज्ञवल्क्य स्मृति के निर्माण के बाद मिश्रित मालूम पड़ता है।

पुराणों में प्रायः पाणिनि व्याकरण के नियमों का पालन अधिक दिखाई देता है। अतः सिद्ध होता है कि पुराण पाणिनि व्याकरण के निर्माण के बाद निर्मित हुए हैं। महर्षि पाणिनि का समय चौथी शताब्दी मानी गई है। विभिन्न पुराणों में राजवंशावलियों से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुप्तकाल पर्यन्त उनमें आवश्यकतानुसार कुछ कुछ समावेश हो रहा था। उनमें नियन्त्रण के अभाव होने से जिसे जो विषय अभिप्रेत था, उसने वही विषय पुराणों में स्थापित कर दिया। श्री स्वामी शङ्कराचार्य-रामानुजाचार्य-मध्वाचार्य-वल्लभाचार्यादि के सिद्धान्तों का समावेश प्रायः पुराणों में निश्चित रूप से हुआ है। परन्तु इस दृष्टि से अग्निपुराण, वायुपुराण तथा मत्स्यादि पुराण पूर्णतया अछूते हैं।

---

१. पुराण विमर्श पृ. ५३५

बहिरङ्ग परीक्षण के आधार पर भी पुराणों का रचनाकाल का निर्णय किया जा सकता है। महाभारत के वनपर्व में वायुप्रोक्त पुराण का उल्लेख है[1] तथा वह अतीत-अनागत विषयों का प्रतिपादक कहा गया है। वर्तमान वायुपुराण में अतीत कालीन घटना के वर्णन के साथ भविष्यत्कालीन राजाओं के चरित्र भी वर्णित हैं। महाकवि बाण भट्ट ने अपने कादम्बरी ग्रन्थ में 'पुराणेषु वायुप्रलपितम्'' ऐसा संकेत किया है। हर्ष चरित में वायुपुराण के स्वरूप तथा प्रचलित उसके प्रवचन का भी उल्लेख है। इस प्रकार सातवीं शताब्दी में लिखित हर्षचरित तथा दूसरी शताब्दी में रचित महाभारत से पूर्व ही वायुपुराण का समय दूसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध न्यायसंगत प्रतीत होता है।

विभिन्न विषयों की पुष्टि के लिए धर्मशास्त्रीय निबन्धों में पुराणों के जो वचन मिलते हैं, उनसे भी पुराणों के रचनाकाल का निर्धारण किया जा सकता है। जैसे बारहवीं शताब्दी में वर्तमान जयचन्द्र के सभापण्डित विद्वान् लक्ष्मीधर भट्ट का "कृत्यकल्पतरु" नामक निबन्ध ग्रन्थ सर्वप्राचीन माना गया है। उसमें उद्धृत पुराणों का समय उससे पूर्व होने का अनुमान लगाया जा सकता है। बल्लाल सेन ने अपने निबन्ध ग्रन्थ दानसार में पुराणों की प्रामाणिक समीक्षा की है, जिससे उनके स्वरूप परिभाषा तथा रचना काल का परिचय पाठकों को मिल सकता है।

पुराणों में कलियुगीय विभिन्न राजाओं का चरित्र वर्णन भी के कालनिर्णय में सहायक होता है। विष्णुपुराण में मौर्य वंश का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। मत्स्यपुराण में आन्ध्रवंशीय राजाओं का सत्य इतिहास उल्लिखित है तथा वायुपुराण में गुप्तवंशीय राजाओं के प्रारम्भिक साम्राज्य का वास्तविक इतिवृत्त उपस्थापित किया गया है। इसलिये इन पुराणों का रचनाकाल गुप्तवंश के बाद हो सकता है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य समालोचक पार्जिटर महोदय ने इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन करके भविष्यपुराण में अंकित कलियुगीय राजाओं का वृत्त ही मूल एवं प्राचीनतम है, ऐसा माना है। इसका ही विस्तार मत्स्य-वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों के भविष्य वर्णन में किया गया है। विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवत में उपलब्ध यह संक्षिप्त विवरण भविष्यपुराण के आधार पर ही उपस्थापित किया गया है। भविष्यपुराण के कलियुगीय राजाओं का ऐतिहासिक इतिवृत्त का संकलन आन्ध्र नरेश श्रीयज्ञमद्धश्री के समय, दूसरी शताब्दी के अन्त में किया गया। कालान्तर में जब यह विवरण अन्य पुराणों में संगृहीत हुआ, तब उसे अपने समय पर्यन्त ले आने का प्रयास किया गया। जैसे जब भविष्यपुराणीय आन्ध्रवंश का इतिवृत्त मत्स्यादि पुराणों में संगृहीत हुआ, तब आन्ध्रवंश के अन्त २६० ई. में दिखाया

१. एतत्ते सर्वमाख्यातमतीतानानागतं ततः।
वायुप्रोक्तमनुसृत्य पुराणमृषिसंस्तुतम्।। म. व.प. १६१/१६

गया। पुनः ब्रह्माण्ड और वायुपुराणों में लेने के वक्त उसी विवरण को गुप्तसाम्राज्य के आरम्भिकोदय ३२५ ई. पर्यन्त जोड़ा गया। आगे विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतपुराण में उसी का संक्षिप्त रूप संगृहीत हुआ।

यह इतिहास प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष में आंध्र-शक यवन-म्लेच्छ आभीरादिकों का शासन कुषाणराज्य के अन्त दूसरी शताब्दी के बाद में हुआ। मत्स्यपुराण में आन्ध्र राजाओं का विश्वसनीय इतिहास मिलता है। आंध्र वंश की समाप्ति २३६ ई. में हुई। इसलिये मत्स्यपुराण का रचनाकाल इससे आगे नहीं जा सकता। वायु तथा ब्रह्माण्डपुराणों में विस्तृत रूप से तथा विष्णु और श्रीमद्भागवत में संक्षिप्त रूप से गुप्त नरेशों की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये पुराण समुद्रगुप्त के दिग्विजय से ३३० ई. पूर्ववर्ती गुप्त नरेशों के संकेत करते हैं। यदि ये पुराण समुद्रगुप्त से परिचित होते तो प्रयाग-साकेत-मगध पर्यन्त ही गुप्त राज्य की सीमा को न बताते।[1] इस प्रकार इतिहासवेत्ता विद्वानों का मत है कि भविष्य पुराण का निर्माण काल दूसरी शताब्दी के अन्त में मानना चाहिए तथा मत्स्य पुराण की रचना तीसरी शताब्दी के आरम्भ काल २३६ ई. पर्यन्त हुई। वायु और ब्रह्म पुराण गुप्त साम्राज्य के आरम्भ में लिखे गये। विष्णुपुराण कलिवृत्त प्रकरण भी इसी युग की कृति है और श्रीमद्भागवत गुप्त काल की रचना है जो छठी शताब्दी पर्यन्त पूर्ण हुआ।

इस प्रकार फलतः वायु-ब्रह्माण्ड-मत्स्य-मार्कण्डेय-विष्णु-ये सभी पुराणों की रचना १-४०० ई. में हुई। श्रीमद्भागवत कूर्म-स्कन्द-तथा पद्मपुराणों का रचनाकाल ५००-६०० ई. पर्यन्त माना जा सकता है। इसी प्रकार पं. बलदेव उपाध्याय ने पुराणों को तीन कोटि में पुराण विभक्त किया है-१. प्राचीन पुराण, २. मध्यकालीन पुराण तथा ३. अर्वाचीन प्राचीन पुराणों में वायु-ब्रह्माण्ड-मार्कण्डेय-मत्स्य तथा विष्णुपुराण माने गये हैं। मध्यकालीन पुराणों में श्रीमद् भागवत-कूर्म-स्कन्द तथा पद्मपुराण माने गये हैं। अर्वाचीन पुराणों में शेष सभी पुराण माने गये हैं। इन सभी पुराणों में वायु तथा विष्णु पुराण को सर्वप्राचीन पुराण माना गया है।[2] इसी प्रकार ब्रह्म-वायु-मत्स्य-विष्णु पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर चार पुराण महाभारत कालीन हैं, ऐसा स्वीकार करने पर कोई आपत्ति नहीं।

यदि तर्क की कसौटी और बुद्धिवाद की सहायता से पुराणों की रचनानुसार काल निर्णय के लिये प्रयत्नशील हम हों तो इसे स्वीकार करने के लिये हमें बाध्य होना चाहिये कि उन पुराणों का निर्माण भिन्न-भिन्न समय में तत्कालीन वातावरण की छाया में ही हुआ।

आधुनिक समालोचक और इतिहासकार पुराणों के रचनाकाल ईसा के प्रथम शताब्दी स्वीकार करने पर भी सङ्कोच करते हैं। कुछ पुराणों को तो वे सर्वथा नवीन ही मानते

---

१. अनुगङ्गमं प्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा। एतान् जानपदान् सर्वान्, भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः।। (वा.पु. ९९/३८३)

२. द्रष्टव्य पुराणविमर्श पृ. ५३७

हैं। ऐसा निर्णय वे साधारणतया उन घटनाओं को पढ़कर करते हैं अथवा वैदिककाल-यवनकाल-मराठाकाल या अंग्रेजी राज्य से सम्बद्ध हैं। वैसे ही यहाँ परस्पर पुराणों में भिन्न भिन्न वंशानुक्रम भी सहायक होता है। वस्तुतः पुराणों में कथानकों का परस्पर असामञ्जस्य और वैषम्य का यही कारण प्रतीत होता है कि महर्षि व्यास ने इधर-उधर बिखरे हुए कथानक को संगृहीत कर उसे मूल पुराण संहिता का रूप प्रदान कर अपने शिष्य रोमहर्षण सूत को पढ़ाया तथा उनसे वैशम्पायनादि ने पढ़कर अपनी सुविधा के अनुसार विभाजन कर उन कथानकों को अपनी बुद्धि के अनुसार प्रचार तथा प्रसार किया। इसी प्रकार उनके शिष्य-प्रशिष्यादि की परम्परा से पुराणों के कथानक अनियन्त्रित तथा अमर्यादित हो गये।

आधुनिक आलोचक यह भी मानते हैं कि द्वितीय शताब्दी से दशमी शताब्दी तक पुराणों का संकलन-संवर्द्धन तथा संशोधन हुए। इसलिये ही इनके विषय निरूपण में उत्तरोत्तर विकास और परिमार्जन हुए। के.एम. पणिक्कर के लेखानुसार महाभारत और पुराण ये सभी गुप्तकाल की कृतियां हैं। प्राचीनतम परम्पराओं के प्रतिनिधित्व करने वाले श्रीमद्भागवत-स्कन्द-शिव-मत्स्य-वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुप्तकाल में पुनः लिखे गये।[1] तथ्यतः पुराणों का समय निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। पुराणों में कतिपय स्थल अति प्राचीन हैं तथा कुछ अत्यन्त नवीन हैं। पुराणों में प्रदत्त वंशावली में हर्षवर्द्धनादि प्रसिद्ध राजाओं का उल्लेख नहीं है।[2] एम.ए. महेन्द्र ळे महोदय ने लिखा है कि पुराणों का बीज वैदिक साहित्य में खोजे जा सकते हैं, परन्तु उनकी वास्तविकी स्थिति सूत्रग्रन्थों में प्राप्त होती है। गौतम धर्मसूत्र में स्रोत रूप से विधि-विधानों का निरूपण प्राप्त होता है, किन्तु आपस्तम्ब में भविष्यपुराण का भी निर्देश है। महाभारत में संकलित जिन पौराणिक विषयों का निर्देश मिलता है, उससे भी ईसवीय वर्ष से पूर्व पुराणों की स्थिति सिद्ध होती है।[3]

इतिहासकारों के मत से जब सामाजिक प्रतिष्ठा और लोक ख्याति के लिये जैनियों और बौद्धों के द्वारा ब्राह्मणधर्म के विरोध होने पर साहित्य निर्माण करने के लिये आरम्भ हुआ, तब ब्राह्मणधर्म विरोधीधर्म की प्रतिस्पर्धा और तीव्र समालोचना से सर्वाङ्गीणता को छोड़कर समाज के सामने परिष्कृत रूप में उपस्थित होकर ६००-७०० ई. पूर्व तक उन दोनों जैनियों और बौद्धों के साथ निरन्तर प्रतिद्वन्द्वि रूप से संघर्ष करता हुआ उन दोनों को अपने में मिला लिया। परिणामस्वरूप सर्वसुलभ भक्तिप्रधान पौराणिक धर्म का उदय और अभ्युदय हुआ। इसी बौद्धिक विकास और विचारस्वातन्त्र्य के महत्त्वपूर्ण युग में जैन बौद्ध-हिन्दू दर्शनों का निर्माण हुआ। जातकावदात गाथाओं की रचना हुई। यही रामायण

---

१. भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण पृ. ५३-५४।

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद) पृ. ७६।

३. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल्स, पृ. ७८।

और महाभारत के अन्तिम संस्कार का युग था। नन्दराज और चन्द्रगुप्त ३२१-२९६ ई. पू. के कारण जैन धर्म का महान विकास हुआ तथा उनके साहित्य लिखे गये। सम्राट अशोक के प्रचुर प्रश्रय को पाकर २९२-२३० ई.पू. में बौद्धधर्म तथा उसके साहित्य की अपूर्व प्रगति हुई। अनेक लोकप्रिय धर्म-ग्रन्थों, विचार प्रधान दर्शन ग्रन्थों, संस्कृत साहित्य के काव्य-नाटक-चम्पू आदि के निर्माण का सूत्रपात इसी युग में हुआ।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ब्राह्मणधर्म के कर्मकाण्डप्रवृत्ति के विरोध में जैनियों और बौद्धों ने अलग-अलग धार्मिक परम्परा की प्रतिष्ठा की। परन्तु उनके मूल में वेदविरोधपूर्वक नास्तिकता थी। अतः दोनों की विकारभावना समाज में अधिक दिनों तक नहीं टिक सकी। जनसाधारण को आकर्षित करने के लिए दोनों की दुरूह धारणा ध्यान-समाधि-गृहत्याग-उपासना तथा दुःखवादादि लोकप्रिय सिद्ध न हुईं। अतः समाज ब्राह्मणधर्म की सुगम पद्धति की ओर मुड़ गया। ब्राह्मणधर्म और शैवधर्म ने निरीश्वरवादी जैनियों और बौद्धों को तेजहीन कर दिया। यह सब पौराणिक धर्म की प्रतिष्ठा का ही फल था। ऐसी स्थिति प्रायः द्वितीय शती तक अक्षुण्ण बनी रही। इसी प्रकार ६०० ईशा पूर्व से द्वितीय शताब्दी तक जैन और बौद्ध धर्म का ब्राह्मणधर्म के साथ निरन्तर संघर्ष चल रहा था, किन्तु ब्राह्मण धर्म ने इसी बीच में अपना परिष्कार कर एक नवीन रूप अपनाया, जिससे उसके सामने उसके प्रतिद्वन्द्वी जैन और बौद्ध धर्म पराभूत हुआ। अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर ब्राह्मण धर्म द्वितीय शती से निरन्तर आगे चलता हुआ उत्कर्ष को पा लिया। उसका यह उत्कर्ष बारहवीं शती तक अक्षुण्ण था। यही पुराणों के निर्माण और संस्करण का समय था।

भारतीय साहित्य में पौराणिक युग का आविर्भाव एक नवीन दिशा सूचक सिद्ध हुआ। भारतीय संस्कृति में समुपस्थित सामाजिक परिवर्तन की प्रतिक्रियान केवल तत्कालीन सामाजिक धरातल के परिवर्तन में सीमित थी, अपितु आध्यात्मिक जीवन की मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ। प्रगतिशील इस पौराणिक समाज ने न केवल वेदोक्त दैवी स्थापना अपनी आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित किया अपितु आचार-विचार-धर्म-अनुष्ठान-व्रत-पूजा-उपासनादि के कर्मक्षेत्र में भी नवीनता की मान्यता प्रदान की।

ऐतिहासिक दृष्टि से पौराणिक युग में भारतीय संस्कारों में महान् परिवर्तन हुए। पुराणों में धर्म-कर्म-साधना-आराधना-रीति व्यवहारादि की दृष्टि से वेद की अपेक्षा परिवर्तित परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं।

गुप्तकालीन भारत में हिन्दू धर्म सभी क्षेत्रों में समुन्नत अवस्था में था। हिन्दुधर्म प्रतिपादक स्मृतिग्रन्थ इसी युग में निर्मित हुए तथा भारतीय संस्कृति का विशाल वटवृक्ष स्वरूप पुराणों के भी संस्कार हुए। बहुत से स्मृति मर्मज्ञ धर्माचार्यों ने महत्त्वपूर्ण स्मृतिग्रन्थों के द्वारा सभी प्रकार के समृद्ध गुप्त साम्राज्य के समुज्चल यश को चिरस्थायी बनाया। इसी प्रकार धार्मिक-साहित्य के निर्माण-अर्जन तथा सम्बर्द्धन में पुराणों की एक प्रमुख भूमिका रही।

वस्तुतः पुराणों की रचना एक ही समय में नहीं हुई और न वे सभी पुराण किसी एक व्यक्ति की रचना भी नहीं हैं। वेदकाल से बारहवीं शती तक निरन्तर उनकी रचना-संस्करण-संकलन तथा सम्पादन हुए, ऐसा वाचस्पति गौरेला आदि का मत है।[१] राखालदासबनर्जी महोदय के मतानुसार गुप्तशासन की अनुकूल परिस्थिति में पुराणों के संस्करण हुए।[२] बी. के. आचार्य की धारणा है कि स्कन्दपुराण का नामकरण गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के नाम से हुआ।[३] वाचस्पति गौरेला महोदय का अनुमान है कि वायु-विष्णु-भविष्य-श्रीमद् भागवतादि पुराणों में गुप्तवंश का पर्याप्त उल्लेख है, अतः स्पष्ट है कि इन चारों पुराणों का संस्करण गुप्त युग में ही हुआ।[४] डा. काशीप्रसाद जायसवाल के मत से पुष्यमित्र का समय ४६६ ई. ही पुराणों की रचना की समाप्ति युग था। उसमें जो संशोधन परिष्करणादि हुए, वह पांचवी शती से आगे चला गया।[५]

लोकमान्य तिलक का मत है कि पुराणों का समय द्वितीय शतक के बाद कदापि नहीं हो सकता।[६] पुराण साहित्य और भारतीय परम्परा के सन्तुलित अध्ययन के आधार पर पर्टिजर महोदय का कथन है कि समस्त पुराणों की रचना मूलरूप से प्रथम शताब्दी के बाद हो सकती है। पुराणों में अग्निपुराण सब से प्राचीन है।[७] अग्निपुराण का समय इतिहासकारों ने चौथी शताब्दी या उससे पूर्व का कहा है।[८]

अग्निपुराण की रचना के सम्बन्ध में विद्वानों का एक मत नहीं है। सुशील कुमार दे महोदय के मत से अग्निपुराण का अलङ्कार प्रकरण का संग्रह दण्डी तथा भामह के बाद तथा आनन्दवर्द्धनाचार्य के पूर्व नवमी शताब्दी के आस-पास मालूम पड़ता है।[९] काणे महोदय ने अग्निपुराण का समय सप्तमी शती तथा उसके काव्य विषयक अंश का रचनाकाल नवमशती को माना है।[१०] इन दोनों के मतों को खण्डन करते हुए कन्हैयालाल पोद्दार ने अग्निपुराण के काव्य प्रकरण को दण्डि भामह आनन्दवर्द्धनादि आचार्यों से विलक्षण देखकर काव्य के विकास क्रम के आधार पर नाट्य शास्त्र के बाद भामहादि से पूर्व या मध्यकालीन होने का निर्णय किया है।[११]

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. ३१०
२. इम्पीरियल गुप्त पृ. ११२
३. डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्चिटेक्चर पृ. ३१०
४. सं.सा.आ. इतिहास पृ. २६६
५. जनरल आफ दि बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसायटी ख. ३ पृ. २४७।
६. गीता रहस्य भूमिका ५६६
७. जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी पृ. २५४-२५५ (१६२१)
८. हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास। पृ. ५७
९. हि.आ.सं. पोइटिक्स जि. १ पृ. १०२-१०४
१०. साहित्यदर्पणस्यांग्रेजी भूमिका पृ. ५७
११. सं.सा.का. इतिहास भा. १ पृ. ७४

डा. आर.सी. हाजरा महोदय ने कालक्रम से प्राचीनतम महापुराणों में मार्कण्डेय-ब्रह्माण्ड-विष्णु-मत्स्य-भागवत-तथा कूर्मपुराणकी गणना की है[1]। प्रथम उसने दो पुराणों की रचना विष्णुपुराणयसे पूर्व माना है। अवशिष्टों में विष्णु ४०० ई. वायु ५०० ई. भागवत ६०० ई. कूर्मपुराण ७०० ई. शती में रचना काल माना है[2]। उन्होंने हरिवंश का रचनाकाल चतुर्थ शती को माना है[3] । उनके ही मतानुसार अग्निपुराण का रचनाकाल यद्यपि ८०० शती को माना गया है, किन्तु उनकी कुछ सामग्री इससे पूर्व तथा कुछ बाद में संगृहीत है।[4] नारदीय पुराण की रचना दसवीं शताब्दी में हुई, बाद में उसके कलेवर की वृद्धि प्रक्षेपों से हुई।[5] इसी प्रकार ब्रह्मपुराण की रचना दशवी शताब्दी में हुई[6] कुछ सामग्री बाद में जोड़ी गई। स्कन्दपुराण की कुछ सामग्री आठवीं शती में अधिकांश बाद में संग्रहीत हुई।[7] गरुड़पुराण की रचना दसवीं शती में हुई।[8] ब्रह्मवैवर्त की रचना यद्यपि सातवीं शती में हुई तथापि उसका वर्तमान रूप सोलहवीं शती का है।[9] पद्मपुराण की रचना १२००-१५०० के बीच में हुई।[10]

ब्रह्मवैवर्त पुराण की रचना के विषय में पत्र पत्रिकाओं में भी विवाद प्रचलित है। उनमें कुछ लोगों के मत में-

ब्रह्मवैवर्त सोलहवीं शती की रचना है क्योंकि उसमें गीतगोविन्दकार पीयूष वर्षी जयदेव का प्रभाव लक्षित होता है। इसी प्रकार सोलहवीं शती की सामाजिक अवनति तथा तत्कालीन दुर्नीतिपरायण वातावरण का भी संकेत मिलता है। तत्कालीन सामाजिक चरित्रहीनता का दिग्दर्शन भी ब्रह्मवैवर्त में विद्यमान है। इसी प्रसङ्ग में ही भागवत का अन्तिम संस्करण दशवीं शती में माना गया है। इस मत के विपक्ष में बोलने वाले विद्वानों ने ब्रह्मवैवर्त की रचना कालिदास से भी पूर्व मानी है।

उपर्युक्त विद्वानों के बुद्धिवैभव के विषय में हमें केवल इतना ही कहना है कि-

कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञान-वैराग्य-विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थम्।।[11]

---

१. पुराण रेकार्ड्स शक १६४०
२. इण्डियन कल्चर भा.२ पृ. २३७
३. न्यू इण्डियन ऐंटिकेरी भा. १ पृ. ५२२
४. न्यू इण्डियन ऐंटिकेरी भा. १२ पृ. ६८३
५. इण्डियन कल्चर भा. ३ पृ. ४७७
६. इण्डियन कल्चर पृ. २३५
७. पुराणिक रेकाड्स पृ. १६५
८. पुराणिक रेकार्ड्स पृ. १७४
९. इण्डियन कल्चर भा. ४ पृ. ७३
१०. पुराणिक रेकार्ड्स पृ. १६६
११. श्रीमद्भाग. १२/३/१४

जैसा कि श्रीशुकदेव जी ने परीक्षित से कहा कि-लोक में यश को फैलाकर परलोक गत महानुभावों की जो कथा मैंने तुम्हें सुनायी उसे व्यासादि महर्षियों के बालविलासादि मात्र आप जाने। वे कथाएं परमार्थोपयोगी नहीं हैं चूँकि ये कथाएँ ज्ञान वैराग्यादि प्रकट करने की इच्छा से ही कही गई हैं। परमार्थोपयोगी तो केवल श्रीकृष्ण कथा ही है।

ठीक इसी प्रकार उपर्युक्त विद्वानों के बुद्धिवैभव प्रदर्शनार्थ ये विस्तार किये गये हैं। केवल ४००-५००-६००-७००, १२००, १६०० शताब्दी कथन मात्र से अब सिद्ध नहीं होता कि किस वर्ष किस दिनाङ्क तथा कहां पर और किसके द्वारा इन पुराणों की रचना हुई आदि। अतः प्राचीन मत ही "अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः" विष्णु के अवतार होने के कारण सत्य प्रतीत होता है। वैसे वामनपुराण तथा कुमार-सम्भव का कथानक तथा कतिपय श्लोकों के साम्य को देखकर अर्वाचीन विद्वान कालिदास के बाद वामन पुराण का समय छठी शती से नवी शती के बीच माना है जिसे उपर्युक्त श्लोक के द्वारा हम अन्तिम तथ्य विद्वानों के सामने उपस्थित कर चुके हैं।

पाण्डुलिपि एवं संस्करण

चार हजार श्लोक वाले चार संहिताओं से समन्वित 'बृहदवामन' नामक वामन पुराण का उत्तरभाग वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं है। किन्तु केवल लघुभागवतामृत वीरमित्रोदयादि निबन्ध ग्रन्थों में तथा वृन्दावनस्थ गोस्वामियों के कृष्णभक्ति विषयक ग्रन्थों में वृहद्वामन के कुछ श्लोक देखने को मिलते हैं। रूपगोस्वामी के 'उज्जवल नीलमणि' में मुनियों के गोपीभाव प्रसङ्ग में तथा जीवगोस्वामी के भागवत सन्दर्भ अथवा कृष्णलोक वर्णन प्रसङ्ग में बृहद्वामन का निर्देश है। परन्तु केवल इस समय वामनपुराण का पूर्व भाग ही उपलब्ध है, जिसमें वेंकटेश्वर संस्करण के अनुसार प्रायः छः हजार श्लोक और पञ्चानवे अध्याय हैं। नारदपुराण की अनुक्रमणिका के अनुसार वामनपुराण के पूर्व भाग के विषय पञ्चानवे अध्यायों में विभक्त हैं जो वेंकटेश्वर संस्करण में यथार्थ रूप से उपलब्ध हैं। किन्तु उसका उत्तर भाग के ४००० श्लोकों का अस्तित्व किसी मुद्रित पुस्तकों में देखने को नहीं मिलता और न हस्तलिखित पुस्तकों में भी उपलब्ध, और भी वामनपुराण के अध्यायों के निर्णय के सम्बन्ध में बङ्गाल-काश्मीर-दक्षिणोत्तर भारतीय हस्तलेखों में प्रायः अनेक भिन्नता देखने को मिलती है। देवनागरी हस्त लेख में ८४ अध्याय हैं। तेलगू हस्तलेख में ८६ अध्याय हैं। शारदालिपि हस्तलेख में ८५ अध्याय हैं। आधारहस्तलेख और शृंगेरी मठ के हस्तलेख में ६७ अध्याय हैं।

इसी प्रकार कलकत्ता से महेशपाल के द्वारा सम्पादित, पञ्चानन तर्करत्न सम्पादित बङ्गाक्षर संस्करण में, जगत् हितेच्छु प्रेस पूना से एवं वेङ्कटेश्वरप्रेस बम्बई से मुद्रित

देवनागरी संस्करण में वामन पुराण के श्लोक संख्याओं में भी भिन्नता दिखाई देती है। इसलिये वामन पुराण के स्वरूप निर्धारण करना असम्भव तो नहीं कहा जा सकता है, दुरूह अवश्य है।

वामन पुराण की कथावस्तु

वामन पुराण में देवर्षि नारद के प्रश्न करने के बाद महर्षि पुलस्त्य के द्वारा वामन का उपक्रम, शरद् वर्णन, दक्ष के यज्ञ में सती का शरीर त्याग, हिमालय के माध्यम से मेना में भगवती पार्वती का प्रादुर्भाव, पार्वती के द्वारा भगवान शिव को पतिरूप में पाने के लिए तपश्चर्या, वटुवेषधारी भगवान शिव के साथ पार्वती का वार्तालाप, पार्वती के साथ श्री शिवजी का विवाह, गणेश की उत्पत्ति, कार्तिकेय का रुचिर चरित्र चित्रण, दैत्यराज प्रह्लाद का नैमिषतीर्थ यात्रा निरूपण, प्रह्लाद का बदरिकाश्रम में नरनारायण के साथ युद्ध, कुरुक्षेत्र गत तीर्थों की महिमा वर्णन, दान की महिमा, व्रतों के अनुष्ठान करने की विधि, भगवान् शिव के अङ्गों में कौन-कौन से सर्प अलंकार के रूप में वर्णित हैं- उनका विशद विवेचन, सुकेशि के प्रसङ्ग में जम्बूद्वीपों के वर्षों का रोचक निरूपण, भुवन कोश वर्णन प्रसंग में भारत वर्ष के वन-पर्वत-नद-नदी तथा जनपदों का विशद वर्णन, कात्यायनी देवी का प्रादुर्भाव, देवी के द्वारा महिषासुरादि का वध निरूपण, अन्धकासुर की उत्पत्ति का वर्णन, शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी विद्या का प्रयोग, मलय पर्वत पर दानवों के साथ इन्द्र का युद्ध, देवता तथा असुरों के विविध वाहनों का वर्णन, तथा वामनावतार की विशद रूपरेखादि महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का विवेचन किया है। और भी निबन्धग्रन्थों में वामनपुराण के नाम समुद्धृत श्लोक पाये जाते हैं जो वर्तमान वामन पुराण में उपलब्ध नहीं हैं। वामन पुराण से ही करवाचतुर्थी की कथा, गङ्गा की महिमा, गंङ्गा में मानसिक स्नान करने का विधान, वाराह का माहात्म्य आदि लघु कलेवर वाले अनेक ग्रन्थ निकले हैं।

पुराणों में विशेषकर श्रीमद्भागवत तथा वामनपुराण में राजा बलि के प्रसंग में वामनावतार का विशद वर्णन हमें प्राप्त होता है। स्वर्ग को जीतकर दैत्यराज बलि स्वयं इन्द्र बनकर देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया। उससे दुःखित हुए देवताओं की विनम्र प्रार्थना से उनकी कामना पूर्ति के लिये भगवान विष्णु कश्यप के माध्यम से अदिति के गर्भ से वामन के रूप में आविर्भूत होकर बलि की यज्ञशाला में जाकर उनसे तीन पग पृथ्वी की याचना की। गुरु शुक्राचार्य के द्वारा बार-बार मना करने पर भी बलि ने अपने आप को धन्यतम मानकर तथा हाथ में कुश और जल लेकर सहर्ष संकल्प पूर्वक उनकी याचना पूर्ण कर दी।

संकल्प हो जाने पर स्वयं भगवान् वामन विराट् रूप धारणकर अपने एक ही डग से समस्त पृथ्वी तथा दूसरे में अन्तरिक्ष को नाप कर तीसरे चरण को अपने आपको

समर्पित करने पर शिर पर रखकर अपने त्रिविक्रम नाम को चरितार्थ किया। पृथिवी बलि के इन्द्र को दे दी गई, देवगण अभय कर दिये गये।

वामनावतार का मूल स्रोत

जैसे प्रत्येक शास्त्रों का अपना वैशिष्ट्य तथा विषय की विशेषता होती है, जिनका मुख्यरूप से प्रतिपादन उन-उन शास्त्रों में किया जाता हैं, वैसे ही पुराणों की भी अपनी विशेष विशेषता विषयों की है उनमें एक विशेषता सृष्टि-प्रक्रिया का विवेचन है, दूसरी विशेषता आख्यानों का कथन है। जैसे सृष्टिविषयक सिद्धान्तों के ज्ञान के लिए विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का ज्ञान परमावश्यक है, वैसे ही पौराणिक आख्यानों के यथार्थ रहस्य-ज्ञान के लिये उन आख्यानो के मूलभूत वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन करना अत्यावश्यक है, जिनमें उन-उन आख्यानों के बीज सन्निहित हैं। इसलिये वैदिक आख्यानों के आधार पर पौराणिक आख्यानों का अर्थ करना नितान्त आवश्यक है।

वामनावतार कथा का मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय में प्रामाणिकता पूर्वक प्राप्त होता है। ऋग्वेद के ही विष्णुसूक्त के विभिन्न मन्त्रों में (१/२२/१७, २८) वामनावतार का सङ्केत है। शतपथ ब्राह्मण में भी (१/२/५-७) वामन का प्रसङ्ग है। इसी प्रकार ऋग्वेद के उरुगाय-त्रिविक्रम-भगवन्त-विष्णु, शतपथ का वामनाख्यान को मिलाकर पुराणों में वामनावतार का पूर्ण प्रसङ्ग प्रस्तुत किया गया है। भेद इतना ही है कि जहाँ शतपथ ब्राह्मण में असुरों से भूमि ग्रहण कहा गया है, वहीं पुराणों में बलि का बल और पृथिवी का हरण कहा गया है।

और भी शतपथ का कथानक जहाँ असुरों की भूमि पर यज्ञ का विस्तार कर उसे अपना ली गई है, वहीं पुराणों में तीन डेगों के माध्यम से पृथ्वी-स्वर्ग तथ बलि के शरीर को नाप कर वामन ने असुरों से समस्त भूमि को लेकर देवताओं को दे दी है। इन दोनों शतपथीय और पौराणिक आख्यान भगवान विष्णु की महिमा को अभिव्यक्त करते हैं।

वामनपुराण के अवतरण परम्परा के प्रदर्शन में नारदीय पुराण का कथन है कि-सर्वप्रथम वामन पुराण का कथन पुलस्त्य ने नारद से किया, नारद ने व्यास को बताया, व्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षण सूत को बताया, सूत ने नैमिषारण्य में शौनकादि मुनियों से कहा-इसी परम्परा के अनुसार यह वामनपुराण लोक प्रसिद्ध हुआ।

इत्येतद् वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम्।
पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने।।
ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना।
व्यासात्तु लब्धवान् वत्स ! तच्छिष्यो लोमहर्षणः।।

स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च।
एवं परम्परा-प्राप्तं पुराणं वामनं शुभम्।।
(वा.पु. १/१०५/१७-१८)

इस प्रकार नारदीय पुराण के अनुसार इस वामनपुराण को वक्ता महामुनि पुलस्त्य हैं, प्रश्नकर्ता और श्रोता देवर्षि नारद हैं।

वामनपुराण का सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व

वामन पुराण के कर्म-विपाक, प्रह्लाद के द्वारा बलि को दिया गया उपदेश, इनके ही द्वारा बलि को दी गई शिक्षा, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा, तथा शुक्र बलि सम्वादादि में पर्याप्त रूप से सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। हम स्थालीपुलाक न्याय से कुछ प्रसंग यहाँ दे रहे हैं -

देव-वेद-द्विजाति-पुराण-इतिहास-गुरु-इनकी निन्दा न करें। धार्मिक यज्ञों में विघ्न-बाधा न करें, दानदाताओं को दान देने में मना न करें। मित्रों, पति-पत्नी, भाई-भाई, स्वामि-भृत्य, पिता-पुत्र, याज्य-अध्यापक में भेद न डालें, कन्या एक को देकर पुनः दूसरों को न दें। दूसरों को ताप न पहुँचावें चन्दन-खस, चँवर की चोरी न करें। दूसरे से निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन न करें, वह भी दैव कार्य और पैतृक कार्य में। साधु-सज्जनों के मर्म को तिखी वाणी से पीड़ा न पहुंचावे, उनकी बुराई न करें। माता-पिता तथा गुरु का अनादर न करें। देवता-अतिथि-भृत्य तथा अभ्यागतों को बिना भोजन कराये न खाये। एकपंक्ति में बैठे हुए लोगों में भेद न करें। जूठे मुँह तथा हाथ से गौ-ब्राह्मण-अग्नि का स्पर्श न करें। ऐसी स्थिति में सूर्य-चन्द्र-तारागणों का अवलोकन न करें। इतना ही नहीं मित्र, पत्नी, बड़े भैया, पिता, बुआ, गुरु तथा वृद्धों का स्पर्श जूठे हाथ से न करें। पियाऊ मन्दिर, बगीचा-ब्राह्मण का घर, सभी स्थल, बावली-कूप तथा सरोवरों को नष्ट भ्रष्ट न करें। शरणागतों की तथा धरोहर वस्तु की रक्षा करें। पराई स्त्रियों के साथ रमण न करें। गुरु को नीचे बैठाकर विद्याध्ययन न करें। वेद, अग्नि, गुरु, माता-पिता का त्याग न करें। चण्डाल-अन्त्यजादि से दान न लें। इनके यहाँ पूजा पाठ न करें। सुवर्ण की चोरी न करें, ब्राह्मण हत्या न करें, सुरापान न करें, गुरुपत्नी के साथ रमण न करें, गौ तथा भूमि को न हड़पें, गौ-स्त्री-बालकों की हत्या न करें। उपर्युक्त ये सभी बातें अपनी भारतीय संस्कृति की पोषक हैं। ऐसा करने से समाजिक उत्थान होना अवश्यम्भावी हैं।

सामाजिक महत्त्व तभी हो सकता है जब समाज में दाम्पत्य जीवन सुखमय हो। इसके लिये वामन पुराण में अशून्य शयन व्रत का निरूपण किया है। इस व्रत में त्रिविक्रम भगवान जगन्नाथ से प्रार्थना की गई है कि हे भगवान् जैसे आप भगवती लक्ष्मी से युक्त रहते हैं, वैसे ही इस संसार में हमारा गार्हस्थ्य जीवन सुखमय हो। देवताओं का पूजन करना हमारे

भारतीय संस्कृति का अभिन्न अङ्ग हैं, इस व्रत में लक्ष्मी के साथ भगवान विष्णु की पूजा का विधान है। साथ में यह व्रत आषाढ़ में होता है। वर्षा ऋतु में अधिक तैलादि का उपभोग नहीं करना चाहिए। इसीलिये "नक्तं भुञ्जीत देवर्षे तैलक्षारविवर्जितम्" ऐसा निर्देश किया गया है।

देव दानवों के युद्ध में देव पराजित हुए। बलि को इन्द्र पद प्राप्त हुआ। उस समय बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद को उचित शिक्षा देने के लिये प्रार्थना की, इसका अनुमोदन करते हुए शुक्राचार्य ने भी बलि को शिक्षा देने के लिये प्रह्लाद को प्रेरित किया। प्रह्लाद ने बलि को जो शिक्षा दी है उसमें भारतीय संस्कृति की दिव्य झांकी दिखाई देती है, साथ ही उस शिक्षा का अक्षरशः पालन करने से सामाजिक उन्नति अवश्यम्भावी है। यथा- हे राजन् ! धर्मानुकूल अर्थोपार्जन करना तथा सभी सत्त्वों का अनुगम करना ही धमार्थ काम का फल माना गया है। हे पुत्र ! तुम ऐसा कर्म करो जिससे परलोक में भी कल्याण की प्राप्ति हो और इस लोक में सुख प्राप्त हो। जिस प्रकार लोक में तुम श्लाघनीय हो तुम्हारी कीर्ति चारों ओर फैले ऐसा कर्म करो। ध्यान रहे ऐसा कोई भी कार्य न करो जिससे तुम्हारी निन्दा हो। इसीलिये श्रेष्ठ पुरुष उत्तम लक्ष्मी के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। यदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों से भूमि सुशोभित होती है, वीर क्षत्रियों से भूमि यदि युक्त होती है, वह राजा समृद्धि को प्राप्त करता है। श्रुतिशास्त्र सम्पन्न ब्राह्मण जिसके राज्य में यज्ञयागादि करते कराते हैं तो यज्ञाग्नि के धूम से राजा को शान्ति प्राप्त होंती है। तुम अपने राज्य में ऐसा प्रबन्ध करो कि विप्रगण तपोऽध्ययन सम्पन्न होकर भजन और अध्यापन कार्य में संलग्न हो, क्षत्रियगण उनका आदर करें। क्षत्रिय गण स्वाध्याय तथा यज्ञ में निरत होकर शस्त्रविद्या में पारङ्गत प्रचुर दाता तथा प्रजा पालन करने वाले हों। व्यापारकार्य में कुशल वैश्य जन यज्ञाध्ययन सम्पन्न कृषि कर्म एवं पशुपालन में दक्ष हों। शूद्रगण तुम्हारी आज्ञा पालन करते हुए त्रैवर्णिक सेवा में संलग्न हो। जब सभी वर्ण अपने अपने धर्म का पालन करने वाले होते हैं तो धर्म में वृद्धि होती है। धर्म की वृद्धि होने पर राजा समृद्धशाली होता है। इसलिये तुम्हारा यह कर्तव्य है कि सभी वर्ण अपने-अपने धर्मों का पालन करें ऐसी तुम व्यवस्था करो।

उपर्युक्त उपदेश में सर्वत्र भारतीय संस्कृति का दर्शन होता है साथ ही उपर्युक्त बातों का पालन किया जाय तो सामाजिक महत्त्व अपने आप प्रकट हो सकता है। (वा.पु. ७५/३६-४६)

इसी प्रकार भगवान वामन जब माता अदिति के गर्भ में आये, उस समय सभी दैत्य निस्तेज हो गये। बलि ने दैत्यों के निस्तेज होने का कारण प्रह्लाद से पूछा। पौत्र के वचन को सुनकर प्रह्लाद ध्यान मग्न होकर विचार करने लगे कि विष्णु इस समय कहां हैं ? सर्वत्र ध्यान लगाने पर देव जननी को जब उसने समस्त तेजों से परिपूर्ण देखा, वे समझ

गये कि देवों को अभय प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु इस समय वामन रूप में विराजमान हैं। उसने कहा-भगवान् के वामनावतार में परिणत होने के कारण समस्त दैत्यों का तेज अपहृत्य हो गया है। प्रह्लाद के वचन को सुनकर भावी से प्रेरित होकर बलि ने कहा- ये वासुदेव कौन हैं ? उनसे भी अधिक बलवान हमारे दैत्य हैं। जिन्होंने सभी देवों को जीतकर उनके दर्प को चूर-चूर कर दिया हैं। बलि के ऐसा कहने पर उसे धिक्कारते हुए प्रह्लाद ने कहा- अरे मूर्ख ! साधुओं से निन्दनीय और शोचनीय तुम हो गये क्योंकि त्रैलोक्य गुरु विष्णु की तुम निन्दा कर रहे हो। मेरे अतिशय प्रियतर जनार्दन को जानते हुए साथ ही तुम्हारे गुरु अर्थात् पिता के गुरु मैं अर्थात् उनके पिता और मेरे गुरु पूज्य विष्णु को अरे मूढ़ ! तुम निन्दा कर रहे हो। अतः अपने अधःपात कर रहे हो। तुम्हारे जैसे राजा के होने से सभी दैत्य शोचनीय हो गये। तुम्हारे जैसे पुत्र को पाकर तुम्हारे पिता भी शोचनीय हो गये। पूज्य और अर्चनीय विष्णु की तुमने निन्दा की। अतः मन-वचन कर्म से तुम राज्य से भ्रष्ट हो जाओ।

बाद में बलि ने अपना अपराध स्वीकार किया। तब प्रह्लाद ने कहा-हे पुत्र, मोह ने मेरा ज्ञान और विवेक को नष्ट कर दिया, जिससे मैंने तुम्हें शाप दे डाला। कोई बात नहीं अवश्यम्भावी कार्य होता ही है। बुद्धिमान मनुष्य पुत्र-मित्र-कलत्रादि के लिये विषाद नहीं करते। हे दैत्येन्द्र, पूर्व नियोजित कर्म के विधान से जो सुखदुःखादि आते हैं, उसे प्राज्ञ नर को सहन कर लेना चाहिए। धीर व्यक्ति आपत्ति को देखकर दुःखी नहीं होते। उन्हें धनागम में प्रसन्न तथा धनक्षय में दुःखी नहीं होना चाहिए। एक हितकर बात और सुनो, तुम पुरुषोत्तम भगवान् के शरण ग्रहण करो, वे ही तुम्हें भय से बचावेंगे। तुम्हें शाप देकर जो मुझसे पाप हो गया है, उसके शमनार्थ मैं भी तीर्थयात्रा में जा रहा हूँ। (वा.पु. ७७)

उपर्युक्त प्रसंग में अपने ही पौत्र बलि को शाप देकर तथा उसके उद्धारार्थ उपाय बताकर भारतीय संस्कृति की पूर्ण रक्षा की गई है। उच्छृंखल व्यक्ति को प्रह्लाद जैसे व्यक्ति ही रोक सकता है यदि समाज में प्रह्लाद जैसे व्यक्ति हों तो सामाजिक महत्त्व में चार चांद लग सकते हैं।

वामनपुराण का ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्त्व

वामन महापुराण में ऐतिहासिक और भौगोलिक महत्त्व अकिञ्चित कर प्रतीत होता है। केवल वेन चरित में कुछ ऐतिहासिक झलक इस प्रकार से प्राप्त होती है- स्थावर जङ्गम के नष्ट हो जाने पर विष्णु की नाभि से पितामह ब्रह्मा हुए, ब्रह्मा से मरीचि हुए, मरीचि से कश्यप हुए, कश्यप से भास्वान् सूर्य हुए, सूर्य से मनु हुए, मनु से क्षुव हुए, मनु की भार्या कालात्मजा भया से वेन की उत्पत्ति हुई। वेन ने अपने राज्य में घोषणा की कि कोई दान-यज्ञ-हवन न करें। मैं ही एकमात्र वन्दनीय एवं पूज्य हूँ, इत्यादि। ऋषियों ने उसे

समझाया कि धर्म का प्रमाण यज्ञ है। यज्ञ के बिना स्वर्गवासी देवगण प्रसन्न नहीं होते। तब कुपित होकर वेन ने पूर्ववत पुनः घोषणा की। उसकी घोषणा से कुपित होकर ऋषियों ने मन्त्रपूत वज्रसमन्वित कुशों से उसे मार डाला। अराजकता से भयभीत प्रजाओं की प्रार्थना से ऋषियों ने वेन के मृत शरीर का मन्थन किया तो निषाद हुआ। पुनः मन्थन करने पर धनुर्बाणअङ्कित सर्वलक्षण समन्वित उत्पन्न हुए वैन्य अर्थात पृथु उनको लोगों ने राजा बनाया। पिता को पाप से मुक्त करने के लिए उसने नारद से पूछा। नारद ने संनिहित सरोवर में जाने को कहा। वैन्य उत्तर देश में कुष्ठ रोग से युक्त म्लेच्छों को रोग से मुक्त किया इत्यादि वर्णन (वामन पुराण अ. ४७ श्लोक १-१६३)

इसी प्रकार मरुदुत्पत्ति प्रसंग में मनुओं का नाम निर्देश किया गया है। नारद ने पूछा कि जो आपने मरुतों को कहा, वे मरुत् मार्ग में कौन थे ? तो पुलस्त्य ने कहा कि स्वायम्भू मनु के पुत्र हुए प्रियव्रत। उसका पुत्र हुआ सवन। उसकी पत्नी सुवेदा अनपत्य के कारण रोने लगी तो आकाशवाणी हुई कि तुम रोदन मत करो, तुम्हारे सात पुत्र होंगे। तब वह चिता में चढ़ गई। बाद में भार्या के साथ वह पुनः उत्पन्न हुआ। उसे पञ्च पुत्र मिला। छठे दिन राजा ने पत्नी के साथ रमण किया। उसका वीर्यपात हुआ उसे अमृत समझ कर ऋषि पत्नियों ने पान कर लिया, जिससे सात पुत्र हुए और रोने लगे तो ब्रह्मा ने उनसे कहा तुम लोगों का नाम मरुत होगा। वे स्वायम्भुव मन्वन्तर में सप्त मरुत् हुए।

स्वारोचिष मनु का पुत्र ऋतध्वज हुआ। उसके आदित्य के समान पराक्रमशील सात पुत्र हुए। वे ऐन्द्र पद पाने के लिए तप करने लगे तो विपश्चित् नाम के इन्द्र ने तपस्या भङ्ग करने के लिए पूतना अप्सरा को भेजा। अप्सरा को देखकर उनका वीर्यपात हुआ। अप्सरा ने उसे पी ली और सात पुत्रों को उत्पन्न की। वे स्तन पानार्थ रोने लगे तो ब्रह्मा ने कहा आप सभी वायुस्कन्ध में विचरण करने वाले होंगे, कहकर अपने भवन चले गये। ये ही स्वारोचिष मन्वन्तर में सात मरुत् हुए।

उत्तम मनु के पुत्र निषधाधिप वपुष्मान् हुए। उसका पुत्र धार्मिक ज्योतिष्मान हुआ। ये पत्नी के साथ पुत्र प्राप्ति के लिये तपस्या करने लगे। सप्तर्षियों ने पूछा कि क्यों तप कर रहे हो, तो दोनों ने उत्तर दिया पुत्रार्थ। ऋषियों ने कहा तुम्हारे पुत्र होंगे तो दोनों अपने नगर में आ गये। रानी गर्भवती हुई। राजा की मृत्यु हो गई। वह राजा के शव के साथ चितारोहण की। तब आग के बीच से जल से ठंडा वीर्य सात भागों में विभक्त हुआ, जो उत्तम मन्वन्तर के मरुत हुए।

तामस मनु का पुत्र दन्तध्वज हुआ। वह पुत्रार्थी होकर अपने मांस का हवन करना प्रारम्भ किया और वीर्य पात आग में हुआ। बाद में वह मर गया। अग्नि से सात पुत्र हुए वे रोने लगे तो ब्रह्मा ने उन्हें तामस मन्वन्तर के मरुत देव बनाये।

रैवत का पुत्र रिपुजित् हुआ, उन्होंने सूर्य की आराधना की। आराधना से सुरति कन्या को प्राप्त किया। पिता के मरने पर वह भी शरीर त्यागने की इच्छा की सप्तर्षियों

ने मना किया और उसी कन्या में आसक्त हो गए। वे ही अग्नि में सात पुत्र रूप में प्रगट होकर बिना माता के रोने लगे। ब्रह्मा ने उन्हें रैवतान्तर का मरुत बना दिया।

चाक्षुष मन्वन्तर में भङ्क्कि नाम के तपस्वी ने सप्त सारस्वत तीर्थ में तपस्या की। तुषिता विघ्नार्थ वहाँ आई। ऋषि उसे देखकर क्षुभित हुए। उनका वीर्यपात हुआ। बाद में ऋषि ने उसे शाप दे दिया। तब सप्त सरस्वती से सात पुत्र हुए जो उस मन्वन्तर के मरुत् हुए। केवल इतना ही ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होता है। (वामन पु. अ. ७१-७२)

वामन पुराण में भौगोलिक महत्त्व भी नहीं के बराबर है। सात द्वीपों में जो मानव निवास करते हैं उनके धर्म सुनें-यह पृथ्वी जल के ऊपर स्थित है। उसके ऊपर ब्रह्मा ने सुमेरु पर्वत को कर्णिका के समान रखा है। सभी के बीच में जम्बूद्वीप विद्यमान है। वह एकलक्ष योजन विस्तार वाला है। वह क्षार समुद्र से घिरा हुआ है। उसके द्विगुण प्लक्ष नामक का द्वीप है जो ईक्षु रसोद समुद्र से घिरा हुआ है। इससे दुगुना शाल्मलि द्वीप है जो अपने से दोगुने सुरोद समुद्र से घिरा है। इससे दोगुना कुश द्वीप है जो अपने से दो गुना अधिक घृतोद समुद्र से घिरा हुआ है। इससे दोगुना क्रौञ्च द्वीप है जो अपने से दो गुना अधिक दध्योद समुद्र से घिरा है। इससे दो गुना अधिक पुष्कर द्वीप है जो अपने से दो गुना अधिक स्वादूदक समुद्र से घिरा हुआ है। जम्बू द्वीप से लेकर क्षीर सागर पर्यन्त चार करोड़ नब्बे लाख योजन विस्तार है (वामन पु. अ. ११ श्लोक ३०-४०)

इसके अतिरिक्त तीर्थों का नाम निर्देश है जिसकी सीमा का निर्धारण नहीं है।

वामन पुराण में दार्शनिक महत्त्व

सृष्टि और प्रलय के विचार करने पर आदि और अन्त में एक प्रकृति ही अवशिष्ट रह जाती हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष का कोई कार्य नहीं है और उनके मत में प्रकृति ही एकमात्र कर्मी है पुरुष तो पुष्करपत्र वत् निर्लेप है। उसकी छाया पड़ने से जड़ प्रकृति में चेतनता आ जाती है, जिससे वह चेतन के समान जगत् के निर्माण कार्य में प्रवृत्त होती है।

सांख्य शास्त्रानुसार तत्त्व निवास क्रम निम्नाङ्कित है-

त्रिगुणात्मिका प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है, महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती हैं। अहङ्कार से शब्द-स्पर्श-रूप-रस तथा गन्ध इन तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है और पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा पञ्चकर्मेन्द्रिय एवं मन ये ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु-तेज-अनिल तथा पृथिवी नामक पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं।

उनमें शब्दतन्मात्रा से शब्दगुणक आकाश उत्पन्न होता है। शब्दतन्मात्र के साथ स्पर्श तन्मात्रा से शब्द और स्पर्श दोनों गुण वाला वायु उत्पन्न होता है। शब्द-स्पर्श तन्मात्राओं

साथ रूपतन्मात्रा से शब्द-स्पर्श-रूप गुण वाला तेज (अग्नि) उत्पन्न होता है। शब्द-स्पर्श-रूप-तन्मात्रा के साथ रस तन्मात्रा से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गुण वाला आप (जल) उत्पन्न होता है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्रा के साथ शब्द-स्पर्श-रूप-रस तथा गन्ध पांचों गुणों से युक्त पृथिवी की उत्पत्ति होती है।[1]

इसी क्रम से पूर्व पूर्व प्रवेश के माध्यम से एक-दो-तीन-चार तथा पांच गुण वाले क्रमशः आकाश से लेकर पृथिवी पर्यन्त पांच महाभूत उत्पन्न होते हैं। जिसे सांख्याकारिका में बताया गया है -

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकार-स्तस्मात् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।।२२।।

वामनपुराण के माहात्म्य में सांख्यरीति का अनुसरण करके ही सृष्टिक्रम वर्णन किया गया है-

सत्वोद्रिक्त ब्रह्मा ने समस्त लोकों को शून्य देखा। रजोगुण से मोहित होने ब्रह्मा सृष्टि के विषय में विचार करने लगे तो रजोगुण को सृष्टि गुण, सत्व को स्थिति गुण तथा संहार के समय तमोगुण प्रवर्तित होता है। (वामन पुराण ४३/१६-२०)

यहीं पर वेदान्तदर्शन की भी छटा दिखाई देती है। भगवान् त्रिगुणातीत एवं सर्वव्यापक हैं। उन्हीं से समस्त जगत व्याप्त है जिसने उन्हें जान लिया यही सर्वविद और मोक्षविद हैं। आत्मा ही नदी है संयमादि पुण्यतीर्थ है। शील शमादि से युक्त सत्य है। जल है जिसने उसमें स्नान किया, उसकी अन्तरात्मा शुद्ध हो जाती है। आत्म ज्ञान होने पर प्राणी समस्त कामनाओं का त्याग कर देता है। इस प्रकार संक्षेप में मैंने ब्रह्म का निरूपण किया।[2]

---

१. सत्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत। सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च।।
रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं बिदुः। उपसंहारकाले च प्रवर्तेत तमोगुणः।। वा.पु. ४३/१६-२०

२. गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः। तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किञ्चिज्जीव संज्ञितम्।।
स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः। यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद निश्चितम्।।
गुणातीतः स पुरुषः परमात्मा सनातनः।
यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेदमोक्षवित्।।
किं तेषां सकलैस्तीर्थैं सश्रमै र्वा प्रयोजनम्।
येषां चानन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम्।।
आत्मा नदी संयमपुण्यमतीर्था सत्योदका शीलशमादि युक्त।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा।।
एतत् प्रधानं पुरुषस्य कर्म यदात्मसम्वोधं सुखं प्रविष्टम्।
ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्तस्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान्।।
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता समता सत्यता च।
शीलं स्थितिं दण्डविधानमार्जवं ततश्चोपरमः क्रियासु।।
अपि ब्रह्म समासेन यदुक्तं ते द्विजोत्तम।।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न संशयः।। (वा.पु. ४३/२१-२८)

"एतत् प्रधानं पुरुषस्य कर्म" तथा नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वितां[1] इन दोनों श्लोकों में योगदर्शन की झलक भी हमें मिलती है -

योगाभ्यास के अनुष्ठान से शरीर में उत्तरोत्तर उत्कर्षता प्रकट होती है तथा सभी अङ्गों में सामर्थ्य और नीरोगता का सञ्चार होता है, बुद्धि में विचार वैशम्य, मन में शान्ति एवं चित्त की चञ्चलता नष्ट होती है। जीवन में अभिनव शक्ति, नवीन स्फूर्ति अपूर्व तेज का आविर्भाव-ये सभी योगसाधन का फल है। योगाभ्यास में अचिन्तनीय शक्ति, अगाध गाम्भीर्य तथा अद्भुत रहस्य छिपा हुआ है।

शास्त्रों में ऐसे बहुत से वर्णन हैं जिनमें मानव योग द्वारा किये गये अद्भुत कार्यों के वर्णन प्राप्त करता है।

न केवल इतना ही अपितु साधक योग-साधना के माध्यम से विषयों से इन्द्रियों को खींचकर मन, में मन को आत्मा में स्थापित कर शरीर के भीतर ही ज्ञान गम्य आत्मा को देख सकता है। अगम्य ब्रह्मलोक को भी पा सकता है। मतङ्ग ऋषि ने कहा है कि अग्निष्टोमादि यज्ञों के अनुष्ठान को छोड़कर योगाभ्यासरत शान्त व्यक्ति परं ब्रह्म को पा सकता है।[2]

यह संसार रूपी विष विषूचिका का वेग जो महान दुःसह है उसे भी योगरूपी गारूड मन्त्र से ही शान्त किया जा सकता है

ऐसे ही योगबीज पार्वती-महादेव सम्वाद में भगवती पार्वती भगवान् शिव से पूछी कि भगवन् ! यदि केवल ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है तो "योग ही मोक्षदायक" है ऐसा ज्ञानियों का मत है कैसे माना जा सकता है। उत्तर देते हुए भगवान शिव ने कहा - यद्यपि "ज्ञान से ही मोक्ष होता है अन्य साधन से नहीं" ऐसा ज्ञानियों का कहना सत्य है, तो भी खड्ग से ही शत्रु पराजित होता है, इसकी सत्यता होने पर भी क्या युद्ध और पराक्रम के बिना शत्रु-पराजय सम्भव है ? कदापि सम्भव नहीं। ठीक वैसे ही केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। और भी ज्ञाननिष्ठ विरल धर्मज्ञ जितेन्द्रिय देवता भी योग के बिना मोक्ष नहीं पा सकता-[3]

भारतवर्ष में पूर्व से ही चिन्तन शील व्यक्तियों ने आत्मतत्त्व के अनुसन्धान किये हैं। साधनसम्पन्न योगी योगबल से अन्तःकरण और बाह्येन्द्रियों के समुत्कर्ष को साधकर आत्मतत्त्व को जानने में समर्थ हुए हैं। लौकिक प्रत्यक्ष के माध्यम से सत्य आत्मतत्त्व का

---

१. वामन पु. ४३ / २६-२७

२. अग्निष्टोमादिकान् सर्वान् विहाय द्विजसत्तम ! । योगाभ्यासरत, शान्तः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

३. ज्ञाननिष्ठो विरलोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ! ।। (योग बीज १/२४)

सम्पादन या साक्षात्कार सम्भव नहीं अतएव समाधि का अभ्यास और विविध साधन प्रणालियों का अनुशीलन करना परमावश्यक है। यम-नियम-आसन-प्राणायाम- प्रत्याहार -धारणा-ध्यान-समाधियों से अन्तःकरण की शुद्धि होने पर चित्तरूपी दर्पण में आत्म-बिम्ब प्रतिफलित होता है। इसलिये योग साधन द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि परमावश्यक है ऐसा योगवेत्ताओं का मत है। श्रवण-मनन-निदिध्यासन ये तीन साधन ही साधारण रूप्प से भारतीय दर्शनों में आत्मदर्शन के कारण हैं। जैसा कि कहा गया है–

श्रुति वाक्यों का श्रवण करना चाहिए, उपपत्तियों से मनन करना चाहिए और मनन करके सतत ध्यान करना चाहिए, क्योंकि ये ही आत्मदर्शन के कारण हैं।[1]

न्याय कुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्य ने भी श्रवण के बाद ही दार्शनिक आलोचना का स्थान निर्धारित किया है-

ईश की पदचर्चा ही मनन है, श्रवण के बाद उपासना ही की जाती है।[2]

योगांजन योगबल से मन को स्थिर करके देह के भीतर कहाँ क्या है ? उसे अच्छी तरह से जानकर मानसिक अवस्थाओं का विचार प्रारम्भ करते हैं और लौकिक जन योगसाधन के माध्यम से शरीर को स्वस्थ बनाकर अपने कर्तव्य कर्म को करते हुए देश और राष्ट्र के रक्षोचित समाज का निर्माण तथा साहित्य का निर्माण करना, ये दोनों ही योग की उपयोगिता है। इस समय भयावह राष्ट्र के संकट काल में व्यावहारिक दृष्टि से योग की महती आवश्यकता है। उससे हम अपने शरीर इन्द्रिय-मन तथा बुद्धि को संशोधित करके शत्रुओं के द्वारा दिये गये संकट को दूर कर सकते हैं।

योग भूमि में आरूढ़ होने के लिए आठ सोपान हैं। जिनका वर्णन परम कारुणिक महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र में किया है। उनमें बहिरिन्द्रिय नियामक यम प्रथम है, अन्तरिन्द्रिय नियामक नियम दूसरा है, स्थूल शरीराधिपत्य स्थापन तीसरा आसन है, प्राणक्रियाधिपत्य प्रवर्तक चौथा प्राणायाम है, बाहर से भीतर प्रवेश कराने वाली पांचवी क्रिया प्रत्याहार कही गयी है, अन्तःस्थैय विधायिका छठीं क्रिया का नाम धारणा है, आत्मानुसन्धान कराने वाली सातवीं क्रिया को ध्यान कहते हैं, जीवात्म परमात्म के एक करने वाली समाधि कहलाती है। यही अष्ट सोपानात्मक समाधि राजयोग का साध्य विषय है। आचारवान योगी क्रमशः किसी एक योगमार्ग में चलता हुआ इसी अभ्यर्हित आठवीं समाधि रूप सोपान में आकर विश्राम प्राप्त करता है।

ये आठ सोपान योग के आठ अंग कहे गये हैं। इन योगाङ्गों के अनुष्ठान से शरीरगत अशुद्धि के दूर होने पर विवेक ख्याति पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है।[3]

---

१. श्रोतव्या श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः। मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः।।

२. पदयर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्। उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता (न्यायकुसुमञ्जलिः।।)

३. योगाङ्गानुवाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योगसूत्र २/२८

इसी बात का स्पष्टीकरण वामन पुराण में किया गया है कि सन्त आत्मबोध को प्रधान बताये हैं, आत्मबोध होने पर क्षमता-सत्यता-शीलादि अपने आप आते हैं।[1]

भाषा शैली

वामन पुराण की भाषा अतीव सुबोध तथा शैली हृदय को छू लेने वाली है। कोई भी ग्रन्थकार अपने प्रतिपाद्य विषय का निरूपण किसी भाषा या शैली के माध्यम से ही करता है, क्योंकि लेखक जिस भाषा शैली में अपना अभिमत प्रकट करने में समर्थ होता है वह उसी भाषा शैली का अधिग्रहण अपने ग्रन्थ में करता है। इस लिए दर्शन शास्त्र का सभी सूत्र-भाष्य-वार्तिक तथा व्याख्याकार आचार्यों के, दार्शनिक के अनुरूप ही भाषा शैली होती है। वैसे ही सरस विषयों के निर्माण के लिए कवियों में माधुर्य मण्डित कोमल कान्त पदावली के माध्यम से अनुकूल भाषा शैली का प्रयोग किया है।

उसी प्रकार अर्थ प्रधान पुराणों की भाषाशैली का एक विशिष्ट स्थान है। जैसे कोई मित्र अपने मित्र की कल्याण कामना से प्रेरित होकर उसे कथोपदेश के द्वारा अपने वक्तव्य को हृदयङ्गम कराता है, वैसे ही पुराण भी समस्त मानवों के हित की भावना से अपने उपदेशप्रद कथानक के माध्यम से सुहृद के समान अपने मन्तव्य का बोध कराता है।

काव्य और इतिहास के परस्पर भिन्नता को व्यक्त करते हुए यूनानी समालोचक अरस्तू ने कहा है कि कवि और ऐतिहासिक का प्रार्थक्य गद्य-पद्य तथा ले में नहीं होता है, किन्तु इन दोनों का मुख्य अन्तर यह है कि इतिहास कहता है कि क्या हुआ, शाश्वत काव्य कहता है क्या हो सकता है ? इसी प्रकार काव्य इतिहास की अपेक्षा विशेष रूप से तत्त्व प्रधान और उदात्त है, क्योंकि काव्य सार्वभौम और सार्वजनीन भाव को अभिव्यक्त करता है तथा इतिहास विशेष करके एककालिक तत्त्व को प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार पुराण न केवल इतिहास है और न काव्य है, अपितु दोनों से भिन्न होने से पुराणों की वर्णन शैली तथा भाषा की विभिन्नता स्वाभाविक है। अपनी वर्णन शैली की विशेषता से ही विश्व वाङ्मय में विशिष्ट स्थान पुराणों का हैं। पुराणों का प्रमुख उद्देश्य है कि सर्वसाधारण के हृदय को खींचकर उन्हें धर्म में प्रवृत्त करना तथा वैदिक तत्वों को उनके सामने रखना। इस लिये पुराण आदेशप्रद प्राचीन कथाओं के वर्णन के माध्यम से श्रोताओं के मन को पाप से हटाकर पुण्य के ओर अग्रसर करवाते हैं।। अपने धार्मिक प्रवृत्ति को लक्ष्य करके पुराण प्रवर्तित होते हैं। वे पाप और पुण्य के परिणाम को दिखाकर पाप से बचाना और पुण्य को ग्रहण करने के लिये सुहृद् सम्मित उपदेश प्रदान करते हैं, किन्तु

---

१. एतत् प्रधानं पुरुषस्य कर्म मदात्म सबोधसुखं प्रविष्टम्। ज्ञेयं तदेव प्रवदन्ति सन्तस्तत्प्राप्यदेही विजहाति कामान्।। नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्ते यथैकता समता सत्यता च।
शीलं स्थितिं दण्डविधानमार्जवं ततस्ततश्चोपरमः क्रियासु।। (वामन पु. ४३/२६-२७)

प्रभु सम्मितवेद के समान पुराणों में काव्यगत सी रसों का स्थान स्थान में उपयोग किया गया है। विशेष रूप से पुराणों में वीररस का बाहुल्य देखने में मिलता है। इसका कारण यही मालूम पड़ता है कि सर्वसाधारण जनता इसका आदर करती है। इसलिये वैष्णव पुराणों में देवासुर संग्राम का भयावह चित्रण किया गया है। पौराणिक वर्णनों में अलंकारों का अधिक समावेश है। वैदिक वाङ्गमय में जिन कथाओं का बीज प्राप्त होता है उन कथाओं का उपबृंहण पुराणों में किया गया है। इन्द्र के द्वारा वृत्रवध की कथा वेदों में संकेत मात्र है। पुराणों में वह विस्तार रूप से प्रदर्शित है। त्रिपुर की कल्पना भी वेद में निगूढ़ है। अगस्त्य-उर्वशी की कथा वेद से ही आई है। इन्द्र-वरुण-कुबेर-सूर्य-चन्द्रादि की स्वरूप कल्पना भी वेद से ही समागत है। उनमें गुणानुरूप कल्पना की गयी है। तीर्थ-दान तथा श्राद्धादि की महिमा तथा सीमा पर ध्यान नहीं दिया गया है। इनका मुख्य उद्देश्य सरलता पूर्वक जनता में धार्मिक प्रवृत्ति को जागृत करना है।

भूगोल तथा खगोल के वर्णन में भी एक प्रकार की पद्धति पुराणों में समादृत हैं मत्स्य-विष्णु तथा श्रीमद्भागवतादि पुराणों में द्वीपों का वर्णन विचित्र रूप से किया गया है। इस भौगोलिक कल्पना में प्रत्येक द्वीपों के चारों दिशाओं में कोई रक्षात्मक समुद्र है। पृथिवी के बीच में लोकालोक नामक पर्वत है जहाँ सूर्य उदित होता है। सूर्य के ऊपर चन्द्र है। सुवर्णमय सुमेरु की महत्ता प्रायः समस्त पुराणों में है। क्रोश का विचित्र प्रमाण पुराणों में मिलता है। यदि चार क्रोश का एक आधुनिक योजन मान लिया जाय तो वर्तमान में पृथिवी की सीमा अल्प हो जायेगी।

पुराणों के अनुसार सुमेरु के निम्नप्रदेश में भारतवर्ष की स्थिति बतायी गयी है किन्तु आज सुमेरु की अच्छी तरह पहचान नहीं है। यदि उसके स्थान पर आधुनिक पामीर पठार को मान लिया जाय तो कुछ संगति बैठ सकती है। द्वीपों के साथ वहां के निवासियों के आचार-विचार का उल्लेख पुराणों में किया गया है। परन्तु आज भौतिक जगत को उससे कोई फायदा नहीं। द्वीपों और समुद्रों के वर्णन को देखकर यदि कोई कहे कि सूतों ने पुराणों में इस प्रकार की कल्पना अपनी कपोलकल्पना से की है। अथवा इनके सम्बन्ध में अतीन्द्रिय जगत है कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं माना जा सकता।

पुराणों की भाषा उपदेशात्मिका और व्यावहारिक है। पं. बलदेव उपाध्याय ने पुराण भाषा की तुलना उस पुण्य सलिला भगवती भागीरथी से की है जो अपने मूल प्रवाह में आग्रह करती हुई भी इधर उधर से आने वाली जलधाराओं का तिरस्कार नहीं करती, परन्तु उन्हें भी आत्मसात करती हुई अपने गन्तव्य स्थल को प्राप्त करती है।

इसीलिये पुराण की भाषा में पाली प्राकृतादि का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराणों में संशोधकों ने पाणिनीय व्याकरण के अनुसार जो संशोधन किया है, उसकी आवश्यकता को स्वीकार न करते हुए पं. बलदेवोपाध्याय ने अपना मत व्यक्त किया है कि व्यावहारिक

संस्कृत का प्रयोग करने वाले पुराणों के लिये अपाणिनीय प्रयोगों की सत्ता भूषण ही है न कि दूषण।[1]

उनके अनुसार पुराणों में अनेक ऐसे अस्पष्टार्थ वाले पद्य मिलते हैं जिनका एकाएक यथार्थ अर्थ जानना मुश्किल होता है। अतः उनकी वास्तविक व्याख्या के लिये प्रामाणिक टीकाओं का अवलोकन नितान्त आवश्यक है। यथा-

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होत्रात्मने नमः।। (वा.पु. २६/१,)

नीलकण्ठ ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है- "आश्रवय" इसमें चार अक्षर हैं "अस्तु वौषट्" इसमें चार अक्षर हैं "यज्ञ" इसमें दो अक्षर हैं "ये यजामहे" इसमें पांच अक्षर हैं दो अक्षर वाला वषट्कार है। इस प्रकार गणना से सत्रह अक्षरों से हवन किया जाता है, उस होत्रात्मा विष्णु को नमस्कार है।

उपसंहार

वामन पुराण के उपक्रम और उपसंहार पर विचार करने पर यह मालूम पड़ता है कि यह पुराण वैष्णव धर्म से पूर्णतया सम्बद्ध है। इसके आरम्भ और समाप्ति में वैष्णव धर्म, विष्णु मन्दिर तथा उन मन्दिरों के निर्माताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। विभिन्न पुष्पों और पत्रों से भगवान विष्णु की पूजा का विशद वर्णन मिलता है। और भी वैष्णव धर्म का अति प्रसिद्ध मङ्गलाचरण वामनपुराण के आरम्भ में ही हमें प्राप्त होता है-

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

और भी वामन पुराण के दान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति को उल्लेख से इस पुराण की वैष्णव धर्म प्रतिपादकता स्वतः सिद्ध होती है - **"यः शरद्विषुजे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौपदम्।।** (म.पु. ५३/४५)

पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में पुराणों को भगवान् विष्णु के विभिन्न अङ्ग बताए गये हैं। जैसा कि यह वामनपुराण भगवान विष्णु की त्वचा है, ऐसी कल्पना की गयी है। इस कल्पना से यह मालूम पड़ता है कि जैसा समस्त शरीर त्वचा से घिरा रहता है, वैसे ही यह वामन भी व्यापक होने से भगवान विष्णु के महत्त्व के अभिव्यञ्जक है।

---

१. व्यावहारिकशब्दौघान् पुराणादिः प्रयुञ्जते। अपाणिनीयप्रयोगस्तु भूषणं न तु दूषणम्। (पुराण विमर्श पृ. ५८३)

इतना ही नहीं वामनपुराण में स्तोत्रों की संख्या २५ है। उसमें सबसे अधिक १२ स्तोत्र भगवान् विष्णु के ही हैं, जिसमें एक रहस्यात्मक श्लोक का निरूपण हम वामन पुराण की भाषा शैली प्रसंग में दे चुके हैं जो अत्यन्त मननीय है।

उपर्युक्त सभी विवेचनों से यह पुराण रत्न वैष्णव पुराण होने से "सात्विकाः मोक्षदाः प्रोक्ताः" पद्मपुराण के वचनानुसार मुक्तिदायक है इसमें कोई सन्देह नहीं।

वराहपुराण

अष्टादशमहापुराणों में वराहपुराण का श्रेष्ठ स्थान है। महापुराणों की सङ्ख्या अट्ठारह ही है। इस विषय में किसी की विप्रतिपत्ति नहीं है। महापुराणों की सभी सूचियों में वराहपुराण की स्थिति दृष्टिगत होती है। यह एक वैष्णव महापुराण है। प्रत्येक महापुराण का लक्षण पुराण वेत्ताओं ने लिखा है। इस सन्दर्भ में वराह महापुराण का भी लक्षण मत्स्य पुराणकार ने इस प्रकार लिखा है -

महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।
विष्णुनाऽभिहितं क्षोण्यै तद्वराहमिहोच्यते।।
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसप्तमाः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते।।[1]

इसका तात्पर्य यह है कि महावराह भगवान् के माहात्म्य को अधिकृत करके विष्णु ने पृथ्वी से जो पुराण कहा है वही वराहपुराण कहा जाता है। इसमें मानवकल्प के प्रसङ्ग से कथाओं का उन्मीलन है। वराहमहापुराण का कलेवर चौबीस हजार श्लोकों में निबद्ध था, परन्तु आज इतने श्लोक इस महापुराण में प्राप्त नहीं होते हैं। एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से प्रकाशित वराहपुराण में १०,७०० श्लोक मिलते हैं।[2] इसमें २१८ अध्याय हैं। किसी-किसी संस्करण में अध्यायों की सङ्ख्या २१७ तथा ९,६५४ श्लोक प्राप्त होते हैं।[3] पाठ भेद के आधार पर वराहपुराण के दो संस्करण उपलब्ध होते हैं -

(i) गौडीय संस्करण
(ii) दाक्षिणात्य संस्करण[4]

गौडीय संस्करण में २१८ अध्याय तथा दाक्षिणात्य संस्करण में २१७ अध्याय प्राप्त होते हैं। बी.आई. संस्करण में २१७ अध्याय हैं, यही दाक्षिणात्य संस्करण हो सकता है। इसके अतिरिक्त वराहपुराण का एक संस्करण खेमराज श्रीकृष्णदास वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस बाम्बे से प्रकाशित हुआ है। पुनः इसी का पुनर्मुद्रण प्रो. के.वि. शर्मा के सम्पादकत्व में मेहरचन्द्र लछमनदास प्रकाशक दिल्ली के माध्यम से १९८४ में किया गया है। इसमें अध्यायों की संख्या २१८ ही है। नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से वराहपुराण का संक्षिप्त हिन्दी भाषानुवाद भी प्रकाशित हुआ था। वराहपुराण का एक पाठालोचनात्मक सम्पादन

---

१. मत्स्यमहापुराण ५३/३४/३६ तथा स्कन्दमहापुराण ७/१/२/५७-५८
२. पुराणविमर्श पृ. १५४
३. धर्मशास्त्र का इतिहास-चतुर्थ भाग, पृ. ४२३
४. पुराणविमर्श, पृ. १५३

वाराणसी से १९८१ ई. में श्री आनन्द स्वरूप गुप्ता ने प्रकाशित किया है। नारदमहापुराण में वराहपुराण के दो भाग तथा चौबीस हजार श्लोकों की चर्चा की गयी है।[1] अग्निपुराण में यह श्लोक सङ्ख्या घटकर चौदह हजार लिखी गयी है –

चतुर्दशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम्।
भूमौ वराहचरितं मानवस्य प्रवर्त्तितम्।।[2]

परन्तु आज वराहपुराण के पूर्व तथा उत्तर भागों का विभाजन प्राप्त नहीं होता है। चौदह हजार श्लोक संख्या भी घटकर नौ-दश हजार के मध्य आ गयी है। इससे प्रतीत होता है कि वराह महापुराण का अधिकांश भाग आज प्राप्त नहीं हो रहा है। चौबीस हजार श्लोकों वाला वराहपुराण तथा चौदह हजार श्लोकों वाला वराहपुराण में दोनों आज दृष्टिगत नहीं होते हैं। वराहपुराण में पद्यों के अतिरिक्त गद्य भी प्राप्त होते हैं।

वराह पुराण का काल

वराह पुराण के काल विषयक प्रश्न पर सर्वप्रथम यह देखना उपयुक्त होगा कि इस पुराण का उल्लेख कहीं अन्यत्र निबन्धकारों ने किया है अथवा नहीं। इस महापुराण में धर्मशास्त्रीय विषयों की प्रचुरता है। अतः 'कल्पतरु' में वराहपुराण से १५०० श्लोक व्रत पर, ४० श्राद्ध पर, २५० तीर्थ विषयक, १७ नियत काल पर, ५ दान पर तथा ४ श्लोक गृहस्थ पर उद्धृत किये गये हैं।[3] अपरार्क ने भी वराह पुराण से कतिपय श्लोक अनेक विषयों पर उद्धृत किये हैं।[4] ब्रह्मपुराण ने वराहपुराण का उल्लेख करते हुए लिखा है कि जब कन्याराशि में सूर्य हो तो उस पौर्णमासी को पितृ श्राद्ध किया जाता है।[5] भविष्योत्तर पुराण में भी वराह का नामोल्लेख है।[6] वराह पुराण में चन्द्रवर्धन नामक शक राजकुमार[7] तथा एक शक राजा का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] वराहपुराण में लोहार्गल तथा स्तुतस्वामी नामक तीर्थों का उल्लेख मिलता है। इन तीर्थों का नाम अन्य पुराणों में दृष्टिगोचर नहीं होता है।[9] वराहपुराण में भविष्यपुराण का नाम दो स्थानों पर आया है–

---

१. नारदमहापुराण, पूर्व भाग अध्याय १०३/१-१४
२. अग्निमहापुराण २७२/१६
३. धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. ४२३
४. धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. ४२३
५. धर्मशास्त्र का इतिहास-चतुर्थभाग, पृ. ४२३
६. भविष्योत्तर पुराण ३२/१२
७. राजपुत्रस्ततोऽप्यत्र शकानां नन्दवर्द्धनः।। (वराहपुराण १२२/३६)
८. ततो वधूवचः श्रुत्वा शकानामधिपो नृपः। (वराहमहापुराण १२२/६१)
९. धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. ४२३

भविष्यत्पुराणमिति तव वादाद्भविष्यति।।[1]
भविष्यमिति विख्यातं ख्यातं कृत्वा पुनर्नवम्।
साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्ववित्।।[2]

इससे भविष्यमहापुराण की रचना, वराहमहापुराण से कदाचित् पूर्व हुई होगी, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। वराहपुराण में लिखा है कि सूर्य के मन्दिर यमुना नदी के दक्षिण में, कालप्रिय अर्थात् कालपी में तथा पश्चिम के मूलस्थान जिसे मुल्तान कहा जा सकता है, में विद्यमान हैं। भविष्य महापुराण में भी इसी प्रकार सूर्य के तीन विशिष्ट मन्दिरों का समुल्लेख है।[3] इस पुराण के मथुरा माहात्म्य में राधा का नाम आया है। भागवतपुराण में राधा का उल्लेख नहीं है।

वराह महापुराण एक वैष्णव महापुराण है। श्रीरामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत जिन विषयों तथा सिद्धान्तों की मान्यता है, वे सभी प्रायः वराह महापुराण में प्राप्त हो जाते हैं। नारायण विष्णु की परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठा, ज्ञान-कर्म का समुच्चयवाद, विष्णुपूजन की प्रक्रिया तथा पाञ्चरात्र आगम का प्रामाण्य आदि विषय वराहपुराण में देखे जा सकते हैं। वेदान्त देशिक के निक्षेपरक्षा में वराहमहापुराण के दो श्लोकों को समुद्धृत किया है। वैष्णव सम्प्रदाय में इन्हें चरम श्लोक की सञ्ज्ञा प्राप्त है –

स्थिते मनसि सुस्वस्थे शरीरे सति यो नरः।
धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मामजम्।।
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसन्निभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्।।[4]

इसके अतिरिक्त श्रीरामानुज सिद्धान्त अर्थात् विशिष्टाद्वैत के सम्बन्ध में अनेकों विषय वराहपुराण में उपलब्ध होते हैं। पुराण पत्रिका के व्यासपूर्णिमाङ्क में प्रकाशित "श्रीवराहपुराणं श्रीरामानुजसम्प्रदायश्च" नामक लेख इस सन्दर्भ में दर्शनीय है।[5] इससे यह ज्ञात होता है कि श्रीरामनुज अथवा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत विषयक सिद्धान्त यद्यपि पहले से विद्यमान थे, परन्तु उनका समुन्मीलन दशम शताब्दी में हुआ। अतः वराह पुराण भी दशम शताब्दी से पूर्व ही रचा गया होगा। पी.वी. काणे ने पुराण का यही समय बतलाया है।[6] धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में वराहपुराण से श्लोक उद्धृत किये गये हैं। कल्पतरु,

---

१. वराहमहापुराण १७७/३६
२. वराहमहापुराण १७७/५५
३. पुराणविमर्श, पृ. ५५८
४. निक्षेपरक्षा, पृ. १६२
५. पुराणपत्रिका (व्यासपूर्णिमाङ्क-जुलाई १९६२, पृ. ३६०-३८३)
६. धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ. ४२३

हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि तथा वल्लालसेन के दानसागर में वराहमहापुराण के श्लोक प्राप्त होते हैं। अतः इन सब साक्ष्यों के आधार पर इस महापुराण का समय नवम शताब्दी स्वीकार किया जा सकता है।[1] आचार्य बलदेव उपाध्याय भी वराह महापुराण का समय नवम-दशम शताब्दी स्वीकार करते हैं।[2]

वराहमहापुराण का कर्तृत्व तथा रचना-स्थल

वराहपुराण, महापुराणों के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। महापुराणों के कर्ता व्यास कृष्णद्वैपायान माने जाते हैं। अतएव वराहमहापुराण के रचयिता व्यास ही हैं, इस विषय में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। रचनास्थल के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। परन्तु इस महापुराण में जिन तीर्थस्थलों का वर्णन प्राप्त होता है वे प्रायः सभी उत्तर भारत में विद्यमान हैं। कोकामुख जिसको बदरी भी कहा जाता है, इसका माहात्म्य वराहपुराण में दृष्टिगत होता है। मथुरा, द्वारावती, गोवर्द्धन, गया, चक्रतीर्थ, प्रयाग तथा वाराणसी आदि का उल्लेख होने से यह सम्भव है कि इस पुराण की रचना उत्तर भारत में बदरिकाश्रम अथवा मथुरा में की गयी हो, क्योंकि इन दोनों स्थलों की माहात्म्य, वराहपुराण में सातिशय वर्णित है।

बराहमहापुराण का कलेवर तथा वर्ण्यविषय

वराह महापुराण में २१८ अध्याय हैं तथा लगभग १०,७०० श्लोक प्राप्त होते हैं। किसी-किसी संस्करण में २१७ अध्याय तथा श्लोकों की संख्या ६६५४ है। यह पहले बतलाया जा चुका है। नारद पुराण में वराहमहापुराण की अनुक्रमणिका बतलायी गयी है और इसे दो भागों में विभक्त स्वीकार किया गया है –

(i) पूर्व भाग
(ii) उत्तर भाग

नारद पुराण के अनुसार वराहमहापुराण भागद्वय में विभक्त विष्णु महात्म्य का परिसूचक है। इसमें मानव कल्प के प्रसङ्ग को लेकर साक्षात् नारायण स्वरूप श्रीव्यास ने इसे चौबीस सहस्र श्लोकों में परिपूर्ण किया। इसमें भूमि और वराह का संवाद, रैभ्यचरित, श्राद्धकल्प, महातपा का आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक, नाग गणोत्पत्ति, कार्तिकेय, आदित्य गण संवाद वर्णन, देवी अनद तथा वृष का आख्यान, सत्यतपा का व्रत, अगस्त्य गीता, रुद्रगीता, महिषासुरवध, पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, व्रत, तीर्थ कथा, शारीरिक

---

१. पुराणसाहित्यादर्श, पृ. ११२
२. पुराणविमर्श, पृ. ५५६

प्रायश्चित, मथुरामाहात्म्य, यमलोक वर्णन, कर्मविपाक, विष्णुव्रत तथा पापनाशक गोकर्णक्षेत्र का माहात्म्य वर्णित है। यह पूर्व भाग का वर्ण्य विषय है।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्मसूचकम्।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा। निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके।।
व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठ साक्षान्नारायणो भुवि। तत्रादौ शुभसंवादः स्मृतो भूमिवराहयोः।।
अथादिकृतवृत्तान्ते रैभ्यस्य चरितं तथा। दुर्जयाय च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः।।
महातपस आख्यातं गौर्य्युत्पत्तिस्तथा परम्। विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्योरपि।।
गणानां च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च। आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम्।।
अगस्त्याङ्गिरसोः पश्चाद् रुद्रगीता प्रकीर्त्तिता। महिषासुर विध्वंसे माहात्म्यञ्च त्रिशक्तिजम्।।
पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम्। इत्यादिकृत वृत्तान्तं प्रथमोद्देशनामकम्।।
भगवद्धर्मके पश्चात् व्रततीर्थकथानकम्। द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरकम्।।
तीर्थानां चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्। मथुरायां विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्तथा।।
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम्। इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य निरूपितः।।

(नारदीयपुराणपूर्वभाग १०३/१-११)

वराहपुराण के उत्तर भाग में पुलस्त्य-कुरुराज का संवाद है। इसके अतिरिक्त सभी तीर्थों के माहात्म्य पृथक-पृथक् वर्णित हैं। सम्पूर्ण धर्म का विवरण तथा पौष्कर और पुण्यपर्व का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[1]

नारदीय पुराण के द्वारा दी गयी विषयानुक्रमणिका में पूर्व भाग के विषय आज प्रकाशित वराहपुराण में उपलब्ध होते हैं। परन्तु उत्तर भाग के विषय उपलब्ध ही नहीं हैं। आज कल प्रचलित वराहमहापुराण में केवल २१८ अध्याय प्राप्त होते हैं। इसमें पूर्व तथा उत्तर भाग का विभाजन है ही नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि वराह महापुराण का उत्तर भाग आज उपलब्ध नहीं है। हेमाद्रि के चतुवर्गचिन्तामणि में दानसागर में वराहपुराण से श्लोक उद्धृत हैं। ये बहुत से श्लोक प्रचलित वराहमहापुराण में प्राप्त नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त चातुर्मास्य माहात्म्य, त्र्यम्बकमाहात्म्य, भगवद्गीतामाहात्म्य, मृत्तकाशौचविधान, विमानमाहात्म्य, वेङ्कटमाहात्म्य, व्यतिपातमाहात्म्य तथा श्रीविष्णुमाहात्म्य नाम से लघु संस्कृत पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं, जिनका मूल वराहमहापुराण है।[2] इनमें से अधिकांश उपलब्ध वराहपुराण में प्राप्त नहीं होती हैं। अतः बराहमहापुराण का उत्तरभाग अवश्य रहा होगा जो आज उपलब्ध नहीं है।

---

१. उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्य कुरुराजयोः संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात्पृथक्। अशेष धर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्वच।। इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम्।। (नारदीय पुराण पूर्व भाग-१०३/१२-१३)

२. अष्टादशपुराणदर्पण, पृ. २६१

प्रचलित वराहमहापुराण के विषय

प्रचलित तथा प्रकाशित वराहमहापुराण में अध्यायानुसार विषयों का विवरण वहाँ उपलब्ध कराया जाता है -

प्रथम अध्याय में मङ्गलाचरण, सूत कृत पुराणारम्भ, पृथिवी द्वारा परमेश्वरस्तुति, द्वितीय अध्याय में बराह कृत पुराण लक्षण, सृष्टिकथा, आदि सर्ग, पृथिवी द्वारा प्रश्न, आदि सर्ग वर्णन, सनत्कुमार, मरीचिकथा, रुद्रोत्पत्ति, प्रियव्रत कथा, तथा प्रियव्रत नारद संवाद वर्णित है। तृतीय अध्याय में नारदकर्तृक ब्रह्मपार कथन, चतुर्थ अध्याय में वराह द्वारा दशावतारवर्णन, नारायणरूपवर्णन, अश्वशिरा आख्यान, पञ्चम अध्याय में अश्वशिरा कपिल संवाद, रैभ्योपाख्यान तथा यज्ञतनु स्तोत्र का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में पुण्डरीकाक्षपारस्तोत्र तथा धर्मव्याधोपाख्यान, सप्तम में रैभ्यसनत्कुमारसंवाद और गदाधरस्तोत्र, अष्टम में धर्मव्याध का उपाख्यान तथा धर्मव्याध कृत पुरुषोत्तमस्तोत्र, नवम अध्याय में आदिकृत युगवृत्तान्त, दशम में विराट्रूपदर्शन तथा सुप्रतीकोपाख्यान और एकादश अध्याय में गौरमुख उपाख्यान वर्णित है। द्वादश अध्याय में दुर्जयकृत नारायणस्तोत्र, त्रयोदश में गौरमुखमार्कण्डेयसंवाद, श्राद्धकाल तथा पितृगीता, चतुर्दश और पञ्चदश अध्यायों में श्राद्ध भोजनयोग्यब्राह्मण, श्राद्धानुष्ठान, गौरमुख का पूर्वजन्मवृत्तान्त तथा नारायणस्तोत्र का वर्णन है। षोडश अध्याय में दुर्जयकर्तृक स्वर्गविजय, सप्तदश में प्रजागण चरित्र, अष्टादश में अग्नि की उत्पत्ति कथा, उन्नीसवें अध्याय में तिथि माहात्म्य, बीसवें में अश्विनीकुमारोत्पत्ति कथा, द्वितीयाकृत्य इक्कीसवें में गौरीप्रादुर्भाव कथा, यज्ञदत्तवृत्तान्त तथा रुद्रसर्ग, बाइसवें में दक्षयज्ञविनाश, रुद्रस्तोत्र, पार्वती जन्मवृत्तान्त, शिवपार्वती परिणय तथा तृतीयाकृत्य, तेईसवें अध्याय में गणेशजन्मादिवृत्तान्त, गणेशस्तोत्र तथा चतुर्थी कृत्यों का सम्पादन है। चौबीसवें अध्याय में नागोत्पत्तिकथा तथा पञ्चमीकृत्य, पच्चीसवें में कार्त्तिकेय की उत्पत्ति तथा महादेवस्तोत्र, छब्बीसवें अध्याय में षष्ठीमाहात्म्य, आदित्योत्पत्तिवृत्तान्त, सप्तमीकृत्य तथा सत्ताईसवें अध्याय में अन्धकासुर वध कथा, मातृगणोत्पत्ति और अष्टमीकृत्य का प्रतिपादन किया गया है। अट्ठाइसवें अध्याय में कात्यायिनी की उत्पत्ति कथा, वृत्रासुर कथा, कात्यायिनीस्तोत्र और नवमी कृत्य, उन्तीसवें अध्याय में दिगुत्पत्ति कथा तथा दशमी कृत्य, तीसवें में कुबेरोत्पत्ति कथा, एकादशीकृत्य तथा इकतीसवें अध्याय में नारायणद्वारा मनुरूपग्रहण तथा द्वादशी कृत्य वर्णित है। बत्तीसवें अध्याय में धर्मोत्पत्तिकथा तथा त्रयोदशी कृत्य, तेंतीसवें अध्याय में रुद्रोत्पत्तिवृत्तान्त, रुद्रस्तोत्र, रुदपशुपतिकथा, चतुर्दशीकृत्य, चौतीसवें अध्याय में पितृसम्भव कथा, अमावस्या कृत्य, पैतीसवें में चन्द्र को दक्ष का शाप, पूर्णमासीकृत्य, छत्तीसवें में मणिजनृपतिगण का वृत्तान्त, गोविन्दस्तोत्र, विष्णु आराधना विधि प्रकार सैतीसवें में आरुणिकवृत्त, अड़तीसवें में सत्यतपोव्याधवृत्तान्त, उन्तालीसवें में व्रतोपाख्यान तथा चालीसवें में पौषशुक्लदशमीव्रत कथा वर्णित है। एकतालीसवें

अध्याय में माघशुक्लद्वादशीव्रतकथा, बयालीसवें में फाल्गुनशुक्लएकादशीव्रत कथा, तैतालीसवें अध्याय में चैत्रशुक्ल एकादशी व्रत कथा, चौवालीसवें में वैशाख शुक्लद्वादशीकृत्य तथा जामदग्न्यव्रत कथा, पैंतालीसवें अध्याय में ज्येष्ठमासीय रामद्वादशीव्रत कथा, छियालीसवें में आषाढ़मासीय द्वादशी व्रत कथा, सैतालीसवें अध्याय में श्रावणमासीय बुद्धद्वादशीव्रत कथा, अड़तालीसवें अध्याय में भाद्रपदमासीय कल्किद्वादशीव्रत कथा, उन्चासवें अध्याय में आश्विनमासीय पद्मनाभद्वादशीव्रत कथा तथा पचासवें अध्याय में कार्तिकद्वादशी व्रत कथा वर्णित है। इक्यावन से पचपन अध्याय पर्यन्त अगस्त्य गीता, उत्तमपतिलाभव्रत कथा, शुभव्रत कथा, तथा वत्सश्रीराजकृत नारायणस्तव कथित है। छप्पनवें अध्याय में अन्य व्रत कथा, सत्तावनवें अध्याय में कान्तिव्रत कथा, अट्ठावनवें में सौभाग्यव्रत कथा, उन्सठवें में विघ्नहरव्रत कथा, साठ से तिरसठ अध्याय तक पुत्रप्राप्तिव्रत कथा, चौसठवें में शौर्यव्रत कथा, पैसठवें में सार्वभौमव्रत कथा, छाछठवें में नारद विष्णुसम्वाद, सरसठवें में चन्द्रसूर्यादि की रहस्यकथा, अड़सठवें में युग में धर्मभेदकथा, गम्यागम्य निरूपण, अगम्यागमन का प्रायश्चित्त, उन्हत्तरवें में अगस्त्यशरीरवृत्त, सत्तरहवें अध्याय में अगस्त्य का योगदान, इक्हत्तर तथा बहत्तर अध्याय में त्रिदेवता भेदप्रसङ्ग में रुद्रोपदेश गौतम आदि का शाण्डिल्य से संवाद वर्णित है। तिहत्तरवें अध्याय में रुद्रकर्तृकनारायणमाहात्म्य तथा नारायणस्तोत्र, चौहत्तरहवें में भूमिप्रमाणादिकथन, जम्बूद्वीपप्रमाणादिकथा, पचहत्तरवें तथा छिहत्तरवें अध्याय में अमरावतीवर्णन, सतहत्तरवें अध्याय में मेरुमूलवर्णन, अट्ठहत्तरवें अध्याय में चैत्ररथादि शैलचतुष्टय का वर्णन, उन्नयासी नब्बे पर्यन्त अध्यायों में देवगणों का अवकाशवर्णन, निषधाचल पश्चिमवर्ती पर्वतादि वर्णन, तथा भुवनकोश का वर्णन और अन्धकासुर की वध कथा वर्णित है। इक्यानवे से चौरान्नवे तक अध्यायों में वैष्णवी की उत्पत्ति कथा, चरित्र तथा महिषासुर का वधवृत्तान्त वर्णित है। पञ्चान्नवे में रौद्री चरित तथा रुरु दैत्य का उपाख्यान, छियान्नवे में रुरुदैत्यवध तथा कालरात्रि स्तोत्र, चामुण्डा भेदकथन, सत्तान्नवे अध्याय में रुद्र का कपालित्व, कपालव्रत का फलवर्णन, अट्ठान्नवें में सत्यतपा की सिद्धि और निन्नयानवें में चैत्रासुर कथा, विष्णुपूजा वर्णन तथा वराहमहापुराण के श्रवण का फल निरूपित है। इसक अतिरिक्त इसमें तिलधेनु का दान वर्णित है।

१०० से ११२ अध्यायों में जल धेनु, रस धेनु, गुड़ धेनु, शर्करा धेनु, मधु धेनु, क्षीर धेनु, दधि धेनु, नवनीत धेनु, लवण धेनु, कार्पास धेनु, धान्य धेनु, कपिला धेनु तथा उभयमुखी धेनु के दान इत्यादि का फल निरूपित है। ११३वें में पृथ्वी तथा सनत्कुमार का संवाद, ११४वें में पृथिवी के प्रति नारायण की प्रसन्नता, ११५ से ११८वें अध्यायों में नारायण तथा पृथ्वी का संवाद, ११९वें में विष्णु की आराधना के प्रकार, सुखदुःख भेद कथा, द्वादश प्रकार के अपराध की कथा, भक्तस्वरूप कथा, अपराध भञ्जन प्रायश्चित्त, प्रापणानिर्माणविधि, १२०वें अध्याय में त्रिसन्धविष्णु के आराधन की विधि और १२१वें

अध्याय में पुनर्जन्मवारण कर्मविधि, १२२वें में सनातन धर्म स्वरूप कथन, तिर्यग्योनि निपतनवारण कर्मविधि तथा कोड्कामुखक्षेत्र माहात्म्य निरूपित है। १२३ से १२४ अध्यायों में गन्धपुष्प के द्वारा दान माहात्म्य, ऋतूपकरणदानफल, १२५वें में मायास्वरूपवर्णन, १२६वें में कुब्जाम्रकमाहात्म्य तथा १२७वें में संसारमोक्षकर्म वर्णन प्राप्त होता है। १२८ तथा १२६ में क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रों की दीक्षा विधि, दीक्षित के कर्तव्य, इनके द्वारा श्रीविष्णु की पूजा विधि, १३० से १३६ अध्यायों में अपराधादि विभिन्न कुकृत्यों के प्रायश्चित वर्णित हैं। १३७वें अध्याय में प्रायश्चित कर्म का सूत्र, १३८वें में सौकर क्षेत्रमाहात्म्य, गृध्र और शृगाली का इतिहास, वैवस्वततीर्थ का माहात्म्य वर्णन, खञ्जरीरोपाख्यान, चाण्डाल वज्रराक्षस संवाद, १४०वें अध्याय में कोकामुख का माहात्म्य, १४१वें में बदरिकाश्रम का महत्त्व, १४२वें अध्याय में रजस्वला कर्त्तव्य, गुह्य कर्माख्यान, १४३वें में मथुराक्षेत्रमाहात्म्य, तथा शालग्राम माहात्म्य वर्णित है। १४४ से १४५ में शालड्कायनक उपाख्यान, १४६-१४७ वें अध्यायों में रुरु का उपाख्यान, रुरु क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन, गोनिष्क्रमणमाहात्म्य तथा १४८वें में स्तुतस्वामितीर्थ का माहात्म्य प्रतिपादित है। १४६ में द्वारावती माहात्म्य, १५० में सानन्दूकामाहात्म्य, १५१ तथा १५२ में लोहार्गलतीर्थ माहात्म्य और पञ्चशरक्षेत्रमाहात्म्य वर्णित है। १५३-१५४ अध्यायों में मथुरामण्डल माहात्म्य, १५५ वें अध्याय में मथुरामण्डल में अक्रूरतीर्थ का माहात्म्य, १५६ तथा १५७वें अध्यायों में मथुरामण्डल के यमलार्जुन तीर्थ का माहात्म्य निरूपित है। १५८ में मथुरा परिक्रमण का फल, १५६ में विश्रान्तितीर्थ का माहात्म्य, १६०वें में देववनप्रभाव तथा १६१-१६२ में चक्रतीर्थ का माहात्म्य वर्णित है। १६३वें अध्याय में वैकुण्ठादितीर्थमाहात्म्य, कपिलचरित, १६४में गोवर्द्धनमाहात्म्य, १६५ में माथुर मण्डल में कूप माहात्म्य, १६६ में असिकुण्डमाहात्म्य और १६७ में विश्रान्ति क्षेत्र का वर्णन किया गया है।

१६८वें अध्याय में क्षेत्रपालगणकथन, १६६ में अर्धचन्द्रक्षेत्रमाहात्म्य, १७० में मथुरामण्डल में गोकर्ण माहात्म्य, शुक्रेश्वर माहात्म्य, महानस प्रेत संवाद तथा १७१वें अध्याय में, सरस्वती यमुना सङ्गम में विष्णुपूजा का फल, कृष्ण गङ्गा का माहात्म्य, पाञ्चाल ब्राह्मणों का इतिहास और साम्बोपाख्यान वर्णित है। १७२ से १७८ अध्यायों में रामतीर्थ में द्वादशीव्रत का माहात्म्य और १७६ में प्रायश्चित निरूपण विधि का वर्णन है। १८० अध्याय में ध्रुव तीर्थ माहात्म्य,, १८१ में काष्ठप्रतिमा स्थापन विधि, १८२ में शैलप्रतिमास्थापन विधि, १८३ में मृण्मय प्रतिमास्थापन विधि, १८४ में ताम्रप्रतिमा स्थापन विधि, १८५में कांस्य प्रतिमा तथा १८६ अध्याय में रजतप्रतिमा स्थापन विधि का वर्णन है।

अध्याय १८७ से १६० तक श्राद्धोत्पत्ति, अशौचनिरूपण, मेधातिथि- पितृसंवाद तथा पिण्डसङ्कल्प प्रकार का निरूपण है। १६१ अध्याय में मधुपर्क विधि, मधुपर्क दान प्रकार तथा १६२ अध्याय से १६६ अध्याय यमालयादिस्वरूप कथन, नाचिकेत यमालय से

प्रत्यागमनवृत्तान्त, १६७ अध्याय में यमनगर का प्रमाण निरूपण, १६८ में यमसभा का वर्णन, १६६ अध्याय में पापियों की गति का वर्णन, २०० अध्यायमें नरक वर्णन, २०१ में यमदूत स्वरूप वर्णन तथा २०२ अध्याय में चित्रगुप्त के प्रभाव का वर्णन प्राप्त होता है। २०३ अध्याय में चित्रगुप्त द्वारा प्रायश्चित निरूपण, २०४ में चित्रगुप्तकर्तृक दूतादिवृत्त तथा यमचित्रगुप्त संवाद, २०५ और २०६ अध्यायों में चित्रगुप्त द्वारा शुभाशुभ कर्मफल का निरूपण, २०७ में नारदसन्देश तथा पुरुषविलोभनगुण और २०८ में पतिव्रतोपाख्यान निरूपित है।

२०६ अध्याय में यमनारद संवाद, २१० में भास्कर कृत धर्मोपदेश, २११ तथा २१२ अध्यायों में प्रबोधिनीमाहात्म्य, २१३ तथा २१४ अध्यायों में गोकर्णेश्वरमाहात्म्य, नन्दिकेश्वरवरप्रदान, २१५ में जलेश्वरमाहात्म्य, २१६ अध्याय में शृङ्गेश्वरतीर्थ माहात्म्य, २१७वें अध्याय में फलश्रुतिकीर्तन और २१८वें अध्याय में विषयानुक्रमणिका का प्रतिपादन किया गया है।

वराहमहापुराण का वैशिष्ट्य

बराहमहापुराण एक प्राचीन महापुराण है। इसीलिए धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों ने इससे प्रभूत श्लोकों के उद्धरण अपने-अपने धर्मशास्त्र सम्बद्ध ग्रन्थों में अवतरित किये हैं। बराहपुराण के लिखित कलेवर से विदित होता है कि इस ग्रन्थ का एक बहुत बड़ा अंश लुप्त हो चुका है। आज उपलब्ध बराह महापुराण के वैशिष्ट्य का यदि उल्लेख किया जाय तो निश्चित रूपेण प्राप्त होता है। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित रूपी पुराण की पञ्चलक्षणी विधा बराहमहापुराण में यत्र-तत्र न्यूनाधिक रूपेण उपलब्ध ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त इस महापुराण की संक्षिप्त विशेषताएं अधोलिखित सन्दर्भों में देखी जा सकती हैं -

(१) वैष्णव महापुराण तथा विष्णुपूजा माहात्म्य :- पद्म महापुराण के उत्तरखण्ड में महापुराणों का सात्त्विक, राजस तथा तामस इन तीन प्रकार से विभाजन किया गया है। इस विभाजन के अनुसार वराहमहापुराण सात्त्विक पुराण है।[1]

सात्त्विक पुराणों में भगवान् विष्णु का माहात्म्य अधिकतया कीर्तित रहता है -

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।।[2]

---

१. वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारूडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शनम्।।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।। (पद्ममहापुराण, उत्तरखण्ड १६३/८२-८३)

२. मत्स्यमहापुराण ५३/६८

अतः वराहपुराण में विष्णु का माहात्म्य वर्णित होना स्वाभाविक है। इस पुराण के अन्तिम फलश्रुति श्लोकों से पता चलता है कि यह पुराण श्रीविष्णु की महिमा का गान करता है। पुराण के पठन-श्रवण तथा विष्णु के पूजन से व्यक्ति विष्णु सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है –

यश्चैतच्छृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः।
श्रुत्वा तु पूजयेच्छास्त्रं यथा विष्णुं सनातनम्।।
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।।[1]

वराहमहापुराण में प्रतिमा-प्रतिष्ठा का उल्लेख किया गया है। पत्थर, मिट्टी, ताम्र, कांसा तथा चांदी की मूर्तियां बनाने का वर्णन यहाँ प्राप्त होता है।[2] विष्णु के विग्रह को स्थापित करने की विधि तथा लौकिक मन्त्रों का उल्लेख इस महापुराणयमें प्राप्त होता है। 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र का विशेषतया उल्लेख मिलता है।[3] पूजा के लिए महापुराण में पुष्पों का चयन किया गया है जिन्हें मासानुरूप पूजन में प्रस्तुत किया गया है।[4] इसके अतिरिक्त विष्णु पूजन तथा प्रतिष्ठा से सम्बद्ध अनेक मन्त्रों का समुल्लेख वराहमहापुराण में प्राप्त होता है। अतः इस पुराण में वैष्णव-पूजन तथा एतद्विषयक भक्ति का पूर्णतया प्रतिपादन है और इसी कारण से इस महापुराण की वैष्णव पुराणों में गणना की जाती है।

२. देवीपूजन का माहात्म्य-वराहमहापुराण में देवी का माहात्म्य भी विशेष रूपेण वर्णित है। मार्कण्डेय महापुराण के देवीमाहात्म्य के अनुरूप यहां भी देवी की उत्पत्ति देवताओं के तेज से हुई है। अन्धकासुर के वध करने में भगवान् शिव अत्यन्त क्रोधित हुए तब उनके मुख से एक ज्वाला निकली, यही ज्वाला रूपधारिणी योगेश्वरी देवी के रूप में प्रख्यात हुई। पुनः अन्य देवताओं का तेज भी देवी में सम्मिलित हुआ, जिससे देवी अत्यन्त तेजस्विनी हो गयीं।[5] देवी के आठ रूपों का उद्भव भी देवताओं के विकारों से हुआ है। काम योगेश्वरी, क्रोध माहेश्वरी, लोभ वैष्णवी, मद ब्रह्माणी, मोह कौमारी, मात्सर्य ऐन्द्री, पैशुन्य यमदण्डधरा तथा अनसूया वाराही देवी हैं –

कामो योगेश्वरीं विद्धि क्रोधो माहेश्वरीं तथा।
लोभस्तु वैष्णवी प्रोक्ता ब्रह्माणी मद एव च।।

---

१. वराहमहापुराण २१८/२१-२४
२. वही १८१-१८६ अध्याय
३. वही १२६/८६
४. वही १२३/२२-३०
५. वही २७/२६-३२

मोहः स्वयम्भूः कौमारी मात्सर्यं चेन्द्रजां विदुः।
यमदण्डधरा देवी पैशुन्यं स्वयमेव च।।
अनुसूया वराहाख्या इत्येताः परिकीर्तिता।।[1]

देवी की उत्पत्ति से सम्बद्ध कथाएं पढ़ने तथा सुनने से क्षेम, आरोग्य तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है।[2] दुर्गादेवी की उत्पत्ति कथा का कीर्तन वराहपुराण में प्राप्त होता है।[3] इसमें महिषासुर का देवी द्वारा वध भी वर्णित है। अष्टमी तथा नवमी देवी की तिथियों का उल्लेख है।[4] नवम्यां च सदा पूज्या इयं देवी समाधिना। (वराहमहापुराण २८/४२) इस महापुराण में देवी का त्रिशक्ति विभाजन प्राप्त होता है। रौद्री देवी के द्वारा रुरु राक्षस के वध का भी उल्लेख मिलता है।[5] इस प्रकार इस महापुराण में देवी का माहात्म्य विशदतया समुल्लिखित है।

३. शिवमाहात्म्य का प्रतिपादन - वराहमहापुराण वैष्णवमहापुराण होते हुए भी शिव पूजन और उनके माहात्म्य से ओत-प्रोत दृष्टिगत होता है। वराह पुराण में शिव की पत्नी गौरी की उत्पत्ति, विवाह, सर्पोत्पत्ति, कार्तिकेयोत्पत्ति तथा रुद्रोत्पत्ति का विस्तार से वर्णन है।[6] इन कथाओं के पढ़ने-सुनने का फल रुद्रलोक की सम्प्राप्ति कहा गया है -

पश्येतच्छृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात्।।[7]

इसके अतिरिक्त अश्विनू, अग्नि, आदित्य, सोम तथा धर्म इत्यादि देवताओं से सम्बद्ध कथाएं भी इस महापुराण में प्राप्त होती हैं। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव की एकता का प्रदर्शन भी किया गया है। ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर (शिव) में भेदराहित्य बतलाया गया है-

न तस्मात्परतो देवो भविता न भविष्यति।।
यो विष्णुः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्माऽसौ महेश्वरः।।[8]
यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम।
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं गतिमाप्नुयात्।।[9]

---

१. वराहपुराण २७/३५-३७
२. वही २७/४३, २८/४८-४६
३. वही अध्याय-२८
४. ब्रह्माणा दत्ता त्वष्टमी तिथिरुत्तमा। (वराहपुराण २७/४२)
५. वराहपुराण अध्याय ६६
६. वराह पु.अ. २१-२५
७. वराहपुराण अध्याय २१-२५
८. वराहमहापुराण ७०/२६
९. वराहमहापुराण ७०/२७-२८

वराहपुराण तीनों देवताओं तथा देवीमाहात्म्य का वर्णन करके यह प्रमाणित करता है कि कहीं भी कट्टर शैववाद, वैष्णववाद अथवा शाक्तवाद का प्रचलन नहीं था। वैष्णव, शैव तथा शाक्त सम्प्रदाय वाले लोग आपस में लड़ रहे होंगे, अतः उन सबमें एक सामञ्जस्य की स्थापना हेतु वराहपुराण का त्रिदेवत्त्व में भेदराहित्य एक सात्त्विक तथा उदात्त प्रयास है। भगवान् विष्णु के माहात्म्य का निदर्शक महापुराण होने पर भी यह अन्य देवताओं को समुचित स्थान प्रदान करता है।

४. तीर्थ माहात्म्य, व्रत तथा दान-वराहमहापुराण में तीर्थों के माहात्म्य पर विशेष रूपेण प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त व्रत तथा दान के सन्दर्भ में वराहपुराण की अपनी दृष्टि परिलक्षित होती है। उत्तर भारतके अनेक पवित्र तीर्थों का उल्लेख तथा वर्णन वराह महापुराण में प्राप्त होता है। इस पुराण में विशेष रूप से मथुरा-वृन्दावन का माहात्म्य १५२ से १८० अध्यायों में बतलाया गया है। मथुरा मण्डल की अत्यन्त प्रशंसा इस पुराण में प्राप्त होती है, वहाँ पूजन, तर्पण, व्रत तथा दान का अप्रतिम महत्त्व बतलाया गया है। मथुरामण्डल में निवास करने का माहात्म्य बतलाते हुए यह कहा गया है कि जो मथुरा में निवास करते हैं, वे साक्षात् चतुर्भुज विष्णुरूप हैं-

मथुरावासिनो लोकान् पश्यन्ति च चतुर्भुजान्।
मथुरायां ये वसन्ति विष्णुरूपा हि ते नराः।।[1]

मथुरा तीर्थ की प्रशंसा में ही माथुर ब्राह्मणों की कीर्ति मानी गयी है और वे भगवान् विष्णु (कृष्ण) के स्वरूप वाले हैं - ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है -

माथुराणां च यद्रूपं तद्रूपं मे विहङ्गम।
ये पापास्ते न पश्यन्ति मद्रूपा माथुरा द्विजाः।।[2]

यमुना में स्नान करने से मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से विमुक्त हो जाता है।[3] मथुरा वर्णन में वराहपुराणकार ने अत्यन्त उदात्तता का परिचय दिया है। यहाँ के व्यापारी समृद्ध हैं तथा लोकसामान्य भी धन-धान्य से समन्वित दिखलाये गये हैं। गोकर्णसरस्वतीमाहात्म्य के प्रसङ्ग में मथुरा पुरी की समृद्धि, उद्यान तथा सुन्दर रमणियों का वर्णन प्राप्त होता है।[4] पुनश्च मथुरापुरी में वणिककर्म तथा समुद्रयान के द्वारा व्यापार का उल्लेख मिलता है।[5]

---

१. वराहमहापुराण १६५/६७
२. वही १६६/३०-३१
३. कालिन्द्यां तु नरः स्नातो मुच्यते सोऽतिसङ्कटात्। (वराहमहापुराण, १६६/३६)
४. वराहमहापुराण १७० अध्याय-द्रष्टव्य।
५. वही - १७१ अध्याय-द्रष्टव्य

मथुरामाहात्म्य के अतिरिक्त अनेक तीर्थस्थलों का विवरण वराहमहापुराण में उपलब्ध होता है। प्रमुख रूपेण कोकामुख, लोहार्गल, सौकरक, कुब्जाम्रक, बदरी, सानन्दूर, शालग्राम, द्वारका तथा गोकर्ण आदि तीर्थों का वर्णन वराहपुराण में प्राप्त होता है।६ (वराहमहापुराण, अध्याय १२२, १५०, १५१, १३७, ५५, १२६, १५०, १४१, १४५)

वराहमहापुराण में अनेक प्रकार के व्रतों का उल्लेख किया गया हैं इन व्रतों की तिथि तथा विधि का साङ्गोपाङ्ग निरूपण इस महापुराण में प्राप्त होता है। अध्याय १८ से ३३ तक प्रतिपदा से चतुर्दशी पर्यन्त सभी तिथियों के व्रत बतलाये गये हैं। ३४वें अध्याय में अमावस्या का व्रत और ३५वें अध्याय में पौर्णमासी का व्रत कहा गया है। द्वादश मासों की द्वादशी तिथियों में विष्णु से सम्बन्धित द्वादशी व्रत का विस्तार से वर्णन है। मत्स्य द्वादशी, कूर्म द्वादशी, वराहद्वादशी, नृसिंहद्वादशी, वामनद्वादशी, जामदग्न्यद्वादशी, रामद्वादशी, कृष्णद्वादशी, बुद्धद्वादशी, कल्किद्वादशी, तथा पद्मनाभद्वादशी आदि के सन्दर्भ में व्रत का सविधि वर्णन प्राप्त होता है।[1] इसके अतिरिक्त धरणीव्रत, शुभव्रत, धन्यव्रत, क्रान्तिव्रत, सौभाग्यव्रत, विघ्नहरव्रत, शान्तिव्रत, कामव्रत, आरोग्यव्रत, शौर्यव्रत, सार्वभौमव्रत तथा उत्तमभर्तृप्राप्ति आदि व्रतों का सविधि वर्णन वराहपुराण में प्राप्त होता है।[2]

इस महापुराण में दान का सविधि प्रतिपादन किया गया है। धेनुदान का इतना माहात्म्य है कि तिल, जल, रस आदि में धेनु की कल्पना करके उसके दान का विधान बतलाया गया है। तिलधेनु, जल धेनु, रस-धेनु, गुड़ धेनु, शर्करा धेनु, मधु धेनु, क्षीर धेनु, दधि धेनु, नवनीत धेनु, लवण धेनु, कार्पास धेनु तथा धान्य धेनु के दान का विधि सहित वर्णन किया गया है।[3] यह तत्तद्द्रव्यों से प्रकल्पित धेनु का दान था। उदाहरणार्थ गुड़ धेनु दान की विधि कहते हैं कि अनुलिप्त भूमि पर, कृष्णमृगचर्म तथा कुश बिछा कर उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर उस पर धेनु की आकृति बनाकर गुड़ से आपूरित कर दें। धेनु के चतुर्थांश से वत्स को बनाना चाहिए। कभी-कभी धेनु के अर्द्धभाग से वत्स का निर्माण भी सम्भव है। कांस्य पात्र की दोहनी, मुख तथा श्रृङ्ग में स्वर्ण लगायें तथा मणि और मोतियों से दांत बनायें। ग्रीवा रत्नमयी तथा घ्राण गन्धमयी होनी चाहिए। सींगों में अगरु की लकड़ी तथा पीठ ताम्र धातु से निर्मित करें, सभी प्रकार के आभूषणों से युक्त पूंछ रेशम से बनानी चाहिए। गन्नों से पैर, खुर, चांदी से तथा कम्बल को पट्टसूत्र के रूप में यथा स्थान विनिवेश करें। रेशमी वस्त्र से उसे ढककर घण्टा, चँवर आदि से विभूषित करके, नवनीत के स्तन तथा पत्तों से श्रवण (कानों) का और नाना प्रकार के फलों से श्रृङ्गार करें। इस प्रकार वित्तानुसार गुड़ धेनु के दान का विधान बतलाया गया है। गुड़

१. वराहमहापुराण-अध्याय-३६ से ४६
२. वही अध्याय-५० से ६५
३. वही-अध्याय-६६ से ११०

धेनु के दान से अनृतजन्य पाप का निराकरण होता है। यहां तक कि जो इस प्रकार धेनुदान का दर्शन करते हैं वे भी परमपद को प्राप्त कर लेते हैं -

> अनृतं नाशमायातु गुड़धेनो द्विजार्पिता।
> दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम्।।[1]

इसके अतिरिक्त इस महापुराण में वास्तविक धेनु का दान बतलाया गया है। कपिला धेनु का दान विस्तृत रूपेण पुराण में कहा गया है।[2] वराहमहापुराण में देवताओं को मधुपर्कदान तथा सामान्य निर्धन जनों को अन्नदान का विधान बतलाया गया है।[3] इस महापुराण में प्रसङ्गवश, हेमकुम्भदान, तिलदान तथा अन्यान्य दानों का उल्लेख मिलता है।

५. भुवन कोश का वर्णन – वराहमहापुराण के लगभग १५ अध्यायों में भुवन कोश का वर्णन प्राप्त होता है। भुवन कोश पुराणों का विषय है जिसे आधुनिक काल में भूगोल कहा जा सकता है। सम्पूर्ण संसार के द्वीपों, पर्वतों और नदियों की स्थिति का विवरण भुवन कोश में प्राप्त होता है। वराहपुराण में भुवन-कोश का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें मेरुवर्णन, जम्बूद्वीप, मन्दरादिपर्वत, कैलासपर्वत, भारत में नवखण्डवर्णन, सप्तकुलपर्वतवर्णन, नदीवर्णन, शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाल्मलिद्वीप आदि द्वीपों का सपरिमाण विवरण उपलब्ध होता है। द्वीपों के वर्णन में प्रायः गद्य का ललित प्रयोग द्रष्टव्य है।[4]

६. धर्मशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन – वराह पुराण में धर्मशास्त्रीय अनेक विषयों का विवरण सृष्टु प्रकारेण उपलब्ध होता है। अध्याय ११६में दुःखसुख का निरूपण किया गया है। दुःख का वर्णन करने वाले कतिपय श्लोक अत्यन्त रमणीय हैं -

> हस्त्यश्वरथ यानानि गम्यमानानि पश्यति।
> धावन्त्यस्याग्रतः पृष्ठे ततो दुःखतरं न किमू।।
> अश्नन्ति पिशितं केचित्केचिच्छालिसमन्वितम्।
> शुष्कान्तं केचिदश्नन्ति ततो दुःखतरं न किमू।।[5]
> सुरूपो दृश्यते कश्चित्पुरुषश्चात्मकर्मभिः।
> कश्चिद्विरूपादृश्यन्ते ततो दुःखतरं नु किमू।।[6]

---

१. वराह महापुराण १०२/१६-१७
२. वही - द्रष्टव्य अध्याय १११-११२
३. वही - द्रष्टव्य, अध्याय १६१-१६२ तथा अध्याय ६६
४. वही - द्रष्टव्य, अध्याय ७४-८६
५. वराहमहापुराण ११६/१५-१७
६. वराहमहापुराण ११६/१८-१६

द्विभार्यः पुरुषो यस्तु तयोरेकां प्रशंसति।
एका तु दुर्भगा तत्र ततो दुःखतरं नु किम्।।[1]

इसी प्रकार कई श्लोक दुःख को प्रकट करने के सन्दर्भ में लिखे गये हैं। सुख को प्रकट करने वाले भी श्लोक वराहमहापुराण में समुल्लिखित हैं। उनमें से कतिपय यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं –

उभयोरपि भार्यासु यस्य बुद्धिर्न नश्यति।
समं पश्यति यो देवि ततः सौख्यतरं नु किम्।।
परभार्यां सुरूपां तु दृष्ट्वा दृष्टिर्न चाल्यते।
यस्य चित्तं न गच्छेत्तु ततः सौख्यतरं नु किम्।।
मौक्तिकादीनि रत्नानि तथैव कनकानि च।
लोष्ठवत्पश्यति यस्तु ततः सौख्यतरं नु किम्।।[2]

भगवान् विष्णु के प्रति ३२ अपराधों का वर्णन भी इस महापुराण में प्राप्त होता है।[3] जन्माभाव प्राप्ति हेतु धर्मशास्त्रीय सदाचार का वर्णन किया गया है।[4] अध्याय १६४ में सत्य की महिमा का कीर्तन किया गया है। यमलोकस्थ पापियों का वर्णन १६५ अध्याय में प्राप्त होता है। अध्याय १९८ से २११ अध्यायों तक अर्थात् १४ अध्यायों में कर्मविपाक का वर्णन प्राप्त होता है। इस संसार में शुभ अथवा अशुभ कर्म करने से स्वर्ग अथवा नरक में किस प्रकार का बर्ताव किया जाता है, इसका बड़े विस्तार से समुल्लेख इस पुराण में किया गया है। यहीं पर स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म का निरूपण किया गया है। १४२वें अध्याय में स्त्रियों के रजस्वला धर्म का निरूपण प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी तथा राजा के धर्मों तथा प्रायश्चित धर्म का वर्णन वराहपुराण में सम्यक् रूपेण उपलब्ध है।

धर्मशास्त्र का एक गम्भीर विषय श्राद्ध का निरूपण वराहपुराण में मिलता है। मृतक के उद्देश्य से प्रतिवर्ष श्राद्ध तथा पिण्डदान सनातन धर्म का एक प्रसिद्ध कृत्य है। अध्याय ७, १३, १४ तथा ३४ में श्राद्धकल्प का निरूपण किया गया है। रैभ्य के द्वारा गयातीर्थ में श्राद्ध तथा पिण्डदान करने से अपने पिता को स्वर्ग पहुँचाने का उल्लेख है।[5] वराहमहापुराण के त्रयोदश अध्याय में अत्यन्त विस्तार के साथ श्राद्ध का काल निरूपित है।[6] आश्विन कृष्णपक्ष में प्राप्त होने वाली मघा नक्षत्र युक्त त्रयोदशी के श्राद्ध की प्रशंसा की गयी है –

१. वही, ११६/२१-२२
२. वही, ११६/३३-३४, ३५-३७
३. वही ११७/१-३६
४. वही - द्रष्टव्य अध्याय, १२१
५. वराहमहापुराण, अध्याय-७ द्रष्टव्य।
६. वही १३/३३-४७

गायान्ति चैतत्पितरः कदा तु, त्रयोदशीयुक्तमघासु भूयः।।
वर्षासितान्ते शुभ तीर्थतोयै-र्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः।।[1]

अध्याय १४ में श्राद्ध योग्य ब्राह्मणों का उल्लेख तथा श्राद्ध और पिण्डदान की विधि बतलायी गयी है। ३४वें अध्याय में पितृगणों की सर्ग स्थिति का वर्णन प्राप्त होता है। अध्याय १८०, १८७, १८८, १८६ तथा १६० में भी श्राद्ध कल्प का विस्तार से वर्णन मिलता है। इन अध्यायों में प्रेत कर्म के संस्कार, श्राद्ध, पिण्डदान, श्राद्ध में निमन्त्रणयोग्य ब्राह्मण, बलिकर्म तथा बलिवैश्वदेव कर्म का निरूपण साङ्गोपाङ्ग किया गया है।

इसके अतिरिक्त सूर्य के तीन मन्दिरों का उल्लेख वराह पुराणय में प्राप्त होता है, जो उदयाचल, कालप्रिय तथा मूलस्थान में स्थित है।[2] वृक्षों के आरोपण का विशेष महत्त्व वराहमहापुराण में प्राप्त होता है। इससे पर्यावरण की सुरक्षा का परिचय प्राचीनकाल में भी देखा जा सकता है। वृक्षारोपण की प्रवृत्ति हेतु अर्थवाद का आश्रय लेकर कहा गया है कि भूमिदान तथा गोदान से जिन लोकों की सम्प्राप्ति होती है वही लोक वृक्षों के समारोपण से मिलते हैं –

भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः।
ते लोकाः प्राप्यन्ते पुंभिः पादपानां प्ररोहणे।।[3]

मनुष्य को अपने जीवन में एक पीपल, एक पिचुमन्द, एक बरगद तथा दश चमेली आदि के पेड़ों को लगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दो अनार तथा दो मातुलिङ्ग और पांच आम्र के पेड़ लगाने चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति नरक को नहीं जाता है। जैसे सुपुत्र अत्यन्त कष्टपूर्ण अपने नियमों तथा प्रयत्नों से कुल का उद्धार करता है, उसी प्रकार फल-पुष्पयुक्त वृक्ष अपने स्वामी को नरक से उद्धार कर देते हैं –

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं, न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलिङ्गे, पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति।।
यथा सुपुत्रः कुलमुद्धरेद्धिः, यथाऽतिकृच्छ्रान्नियमप्रयत्नात्।
तथाऽत्र वृक्षाः फलपुष्पभूताः स्वं स्वामिनं नरकादुद्धरन्ति।।[4])

वराहमहापुराण में विभिन्न वस्तुओं से निर्मित भगवदर्चाविग्रह के अर्चन का विधान बतलाया गया है। इसके अन्तर्गत काष्ठ, प्रस्तर, मिट्टी, ताम्र, कांस्य, चांदी तथा स्वर्ण की

१. वही १३/४७
२. वही १७७/३०-५७
३. वही १७२/३८
४. वराहमहापुराण १७२/३६-४०

प्रतिमाओं का अर्चन विधान स्थापना के साथ कई अध्यायों में उल्लिखित है।[1] इस तरह धर्मशास्त्रीय समस्त विषय वराहमहापुराण में न्यूनाधिक रूपेण उपलब्ध हो जाते हैं। वैष्णवों के सम्प्रदाय पाञ्चरात्र का माहात्म्य वराहपुराण में प्राप्त होता है। पाञ्चरात्र में कथित विधान से भगवदर्चन करने पर विष्णु भगवान् का साक्षात्कार सम्भव है। यहीं पाञ्चरात्र शास्त्र को दुर्लभ कहा गया है –**यदिदं पाञ्चरात्रं मे शास्त्रं परमदुर्लभम्।**[2]

इसी प्रकार दक्षिण भारत में प्रवर्त्तित वैष्णवसम्प्रदाय पाञ्चरात्र के उल्लेख से इसे वैष्णवपुराण की सञ्ज्ञा दी गयी है तथा पाञ्चरात्र की भी प्राचीनता सिद्ध होती है। वराहमहापुराण धर्मशास्त्रीय विषयों का आकर ग्रन्थ है। ऐसा कहना अत्यन्त समीचीन होगा।

७.पुराण पञ्च लक्षण का समावेश – वराहमहापुराण में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित इन पञ्च पुराण लक्षणों का यथा सम्भव समावेश किया गया है। इस पुराण के प्रारम्भ में यह प्रसिद्ध पञ्चलक्षणात्मक श्लोक दिया भी गया है –

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।[3]

सर्ग का विस्तार से वर्णन द्वितीय अध्याय में मिलता है। यहाँ नव प्रकार की सर्गों का उल्लेख किया गया है। पांच प्रकार के वैकृतसर्ग, तीन प्रकार के प्राकृत सर्ग तथा प्राकृतवैकृत नामक एक सर्ग कहा गया है। इस प्रकार सर्गों की संख्या नव बतलायी गयी है।[4] इसके अतिरिक्त सर्ग के वहाँ भेदोपभेद बतलाये गये हैं। प्रतिसर्ग का वर्णन इस महापुराण में प्रत्यक्षतया दृष्टिगत नहीं होता है। वंश के अन्तर्गत अनेक वंशों के राजाओं तथा ऋषि वंशों का समुल्लेख इस महापुराण में प्राप्त होता है। मरीचिवंश, सोमवंश, सर्पवंश, ऋषिवंश तथा देववंशों का विस्तार से वर्णन वराह महापुराण में प्राप्त होता है। इन्हीं वर्णनों के अन्तर्गत वंशानुचरित के भी कथानक देखे जा सकते हैं। स्वायम्भुवमनु के प्रसङ्ग में मन्वन्तर का वर्णन भी दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित को अनेक आख्यानों, उपाख्यानों तथा कल्पवृत्तान्तों के द्वारा मण्डित किया गया है। पुराण पञ्चलक्षण का यथास्थान विनिवेश वराह महापुराण के विषयों को एक गति प्रदान करता है।

---

१. वही - अध्याय १८१-१८६ द्रष्टव्य।
२. वराहमहापुराण ६६/१८
३. वराहमहापुराण २/४
४. पञ्चैते वैकृताः सर्गा प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः। प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।। (वराहपुराण २/४०)

८. वराहमहापुराण की भाषा तथा साहित्यिकता–वराहमहापुराण की भाषा अत्यन्त सरल तथा सहज है। इस महापुराण में कठिन भाषा का प्रयोग प्रायः नहीं देखा जाता है। पुराण का अधिकांश भाग अनुष्टुप् छन्द के द्वारा लिखा गया है। कहीं कहीं इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा तथा उपजाति आदि वृत्तों का रमणीय प्रयोग किया गया है। पुराण में यत्र तत्र गद्य-शैली का प्रयोग भी लालित्य प्रदान करता है।

पुराणों में सुलभ यत्र तत्र आर्ष प्रयोग भी देखे जा सकते हैं। लम्बे समास वाली भाषा का प्रयोग बहुत ही कम है। यद्यपि महापुराणों में साहित्यिक सुन्दरता प्रायः कम ही मिलती है। परन्तु वराहमहापुराण में साहित्यिक भाषा का प्रयोग भी देखा जा सकता है। मङ्गलाचरण में ही भाषा का सौन्दर्य दर्शनीय है –

> **नमस्तस्यै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।**
> **खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते।।**[1]

भगवान् वराह की स्तुति करते हुए कहा गया है कि प्राक्तन काल में विशाल तथा विस्तृत शरीर वाले, अनन्तरूप धारी जिन भगवान् ने अपनी दाढ से समुद्रमण्डित पृथ्वी को पर्वत, तथा नदियों के साथ एक मिट्टी के ढेले के समान उठा लिया था। वही कंस, मुर, नरकासुर तथा रावण नामक असुरों का नाश करने वाले, कृष्ण तथा विष्णुरूप वाले भगवान् आदि वराह मेरे शत्रुओं को नष्ट कर दें –

> **दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः।**
> **साकं मृत्पिण्डवत्प्राग्बृहदुरुवपुषाऽनन्तरूपेण येन।।**
> **सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत्सर्वसंस्थः।**
> **कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः।।**[2]

उपर्युक्त श्लोकद्वय साहित्यिक सौन्दर्य के परिचायक हो सकते हैं। कृष्ण की रमणियों ने जब साम्ब जैसे अप्रतिम सुन्दर पुरुष को देखा तो उस पर मोहित हो गयीं। यहाँ उन कामिनियों की गन्धादि उद्दीपन विभाव का कार्य कर रही है। वराह पुराणकार ने उद्दीपन विभाव जैसे काव्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया है –

> **साम्बं दृष्ट्वैव ताः सर्वा अनङ्गेन प्रपीडिताः।**
> **उद्दीपनविभावोऽयं तासां गन्धादिकं यथा।।**[3]

---

१. वराहमहापुराण १/१
२. वराहमहापुराण १/२
३. वही १७७/२६

यहाँ पर रसाभास का वर्णन स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि साम्ब का श्रीकृष्ण की प्रियाओं के साथ रति का वर्णन अनौचित्य प्रवर्त्तित है। यमराज के पुर का वर्णन करते हुए पुराणकार ने रमणियों के जलक्रीडा का मनोरम वर्णन किया है जिसमें काव्यात्मकता की अनुपम झलक है –

प्रमदाश्च जले तत्र कामरूपाः सुमेखलाः।
रमयन्त्यो नरांस्तत्र यथा कामं यथा सुखम्।।
तां नदीं क्षोभयन्त्यस्ताः क्रीडन्ति सहिताः प्रियैः।
गायन्ति सलिलं काश्चिन्मधुरं मधुविस्वलाः।।
जलतूर्यनिनादेन भूषणानां स्वनेन च।
भाति सा निम्नगा दिव्या दिव्यरत्नैरलङ्कृता।।[1]

इस प्रकार वराहमहापुराण में रस तथा अलङ्कारों का प्रयोग अतीव चमत्कारी है। ऐसे स्थल किसी श्रेष्ठ काव्य के परिचायक सिद्ध हो सकते हैं। वहाँ यमलोक में मनोहर कन्याओं के सुभाषित यमराज के उद्यानों में भी मानों अपनी स्वर लहरी से हर्ष का सञ्चार कर देते हैं। वहां स्वर्ग में देवताओं की मनोज्ञ रूप वाली अप्सराएं हैं। तन्त्री, मृदङ्गनाद, बांसुरी तथा गीत ध्वनि से युक्त महलों की वाटिकाओं में विहार करने वाली रमणियाँ, इस प्रकार संतृप्ति को नहीं प्राप्त करती हैं अर्थात् निरन्तर विहार करने में ही मन लगा रहता है–

कन्याकुलानां मृदुभाषितानि मनोहराणां च वनेषु तेषु।
कुर्वन्ति संहर्षमिव स्वनेन मनोज्ञरूपा दिवि देवतानाम्।।
मृदङ्गनादश्च सुतन्त्रियुक्तो गीतध्वनिश्चैव सुवंशयुक्ताः।
प्रासादकुञ्जेषु विहार्यमाणा न तृप्तिमेवं बहु ताः प्रयान्ति।।[2]

ऐसे स्थलों पर काव्यात्मकता तथा साहित्यिक दृष्टि पूर्णतया फलवती हुई है। श्रृङ्गार रस के अतिरिक्त यमराज के दूतवर्णन प्रसङ्गों में भयानक रस का प्रयोग मिलता है।[3] भगवत्स्तोत्रादि के प्रसङ्ग में शान्तरस का प्रयोग देखा जा सकता है।[4] देवी के द्वारा राक्षसों के साथ युद्ध करने में वीररस का दृश्य अवलोकनीय है।[5] इस प्रकार वराह महापुराण में

---

१. वराहमहापुराण १६६/२१-२३
२. वराहमहापुराण १६६/३१-३३
३. वही १६६/२२-२४
४. वही ५५/३३-४३
५. वही - द्रष्टव्य अध्याय ६६

भाषा तथा साहित्य की उत्कृष्ट विद्या का प्रवर्तन किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से वराहपुराण का यदि अध्ययन किया जाय तो निश्चित रूपेण चमत्कारी परिणाम प्राप्त होंगे।

अट्ठारह महापुराणों में वराहमहापुराण एक सात्त्विक महापुराण की कोटि में रखा गया है। इस महापुराण का नाम भगवान् विष्णु के एक अवतार वराह के अभिधान पर केन्द्रित है। विष्णु के अवतार रूप वराह भगवान् ने पृथिवी से इस पुराण का कथन किया है। कदाचित् इस महापुराण की रचना नवम-दशम शताब्दी में की गयी होगी, ऐसा विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पूर्व ही लिखा जा चुका है। धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों के वराहमहापुराण से श्लोक समुद्धृत किये गये हैं। वैष्णव महापुराणों की श्रेणी में आने पर भी यह महापुराण शिव तथा देवी के चरित और पूजन का वर्णन करता है तथा वैष्णव शैव और शाक्त सम्प्रदायों में सामञ्जस्य बनाने का प्रयास करता है। पुराण पञ्च लक्षणों के समावेश के साथ-साथ तीर्थ, व्रत, दान, श्राद्ध, भुवन कोश तथा अन्य धर्मशास्त्रीय विषयों आदि का सुष्ठु विवरण इस महापुराण की विशेषता है। यह पुराण, भाषा तथा साहित्य की दृष्टि से भी समृद्ध है। आख्यानोपाख्यानों से मण्डित इस पुराण में कर्मकाण्ड अथवा कल्पशुद्धि का विनिवेश देखा जा सकता है। गाथाओं के माध्यम से प्राचीन इतिहास निदर्शन इस पुराण की विशेषता है। तीर्थों में मथुरा, द्वारिका, गोकर्ण, कोकामुख तथा कुब्जाम्रक आदि का विशेषतया वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है। विशिष्टाद्वैत दर्शन तथा पाञ्चरात्र आगम के सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन भी इस महापुराण की विशेषता है। इस प्रकार वराहमहापुराण सभी दृष्टियों से पुराणवाङ्मय की विभूति है।

मत्स्यपुराण[1]

पुराणवाङ्मय के अन्तर्गत मत्स्यपुराण परिमाण तथा विषय-वैविध्य की दृष्टि से विशिष्ट माना जाता है। इसके उपदेष्टा भगवान् मत्स्य तथा मुख्य श्रोता मनु हैं। इसका प्रारम्भ भी मनुमत्स्य-कथा से होता है। अतः वक्ता एवं प्रारम्भिक-विषय-प्रतिपादन के कारण इसका "मत्स्य" नामकरण सुसंगत है। शतपथब्राह्मणोक्त (१.८.१.१-२) मनुमत्स्य-कथा द्वारा प्रवर्तन, मत्स्यपुराण का श्रुतिमूलकत्व ज्ञापित करता है। मत्स्य-नामकरण का एक अन्य कारण भी विद्वान बतलाते हैं। सूर्यमण्डल के क्रान्तिवृत्त में तीन ऋषि माने जाते हैं- वशिष्ठ, मत्स्य और अगस्त्य; उत्तर दिशा में वशिष्ठ, दक्षिण में अगस्त्य तथा मध्य में मत्स्य हैं। ये ऋषि सृष्टि में सहायक हैं। मध्य में स्थित मत्स्य विशेष भाग ग्रहण करता है। इस मत्स्य का निरूपक "मत्स्य-पुराण" है (द्र. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी : पुराण परिशीलन)। धर्मशास्त्रीय विषयों की बहुलता के कारण भारतीयसंस्कृति के प्रतिपादन में इसका विशेष महत्त्व है। मत्स्यपुराणोक्त राजधर्म से कौटिलीयअर्थशास्त्र भी प्रभावित है-ऐसा ज्ञात होता है।

नारदपुराण (अ. ४.२६-३०) में मत्स्यपुराण का परिचय इस प्रकार दिया गया है-

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम।
यत्रोक्तसप्तकल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले।।
व्यासेन वेदविदुषा नरसिंहोपवर्णनम्।।
उपक्रम्य तदुद्दिष्टं चतुर्दशसहस्रकम्।।

(हे द्विजोत्तम अब मैं तुम्हारे प्रति "मत्स्य पुराण" का वर्णन करता हूँ। इस पुराण में व्यास ने नरसिंह वर्णन से प्रारम्भ कर सात कल्पों का वृत्तान्त संक्षिप्त से वर्णित किया है। इसकी श्लोकसंख्या चौदह हजार है।) मत्स्यपुराण (५३.४९-५०) के अनुसार-

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्यर्थं जनार्दनः।
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्।।
अधिकृत्याऽब्रवीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणिचतुर्दश।।

---

१. प्रस्तुत निबन्ध के लिए मोर प्रकाशन, कलकत्ता (१९५४) से प्रकाशित मूल "मत्स्यपुराण" का उपयोग किया गया है।

जिसमें कल्प के प्रारम्भ में जनार्दन ने मत्स्य रूप धारण कर श्रुत्यर्थ तथा नरसिंह-वर्णन के सन्दर्भ में सातकल्पों के वृत्तान्तों का वर्णन किया है-उसे मत्स्यपुराण जानना चाहिए।

पुराणसूची में स्थान तथा श्लोकपरिमाण

यह सोलहवाँ पुराण है। वामनपुराण इसे प्रधान पुराण मानता है-(मुख्यं पुराणेषु मात्स्यम्-१२.४८)। पद्मपुराण (उत्तर. २६३.८१-८४) के अनुसार यह तामसपुराण है। तमिल ग्रन्थों में पुराणों के पञ्चविध विभाजन में इस पुराण को शिव-वर्ग में रखा गया है। मत्स्यपुराण (५३.६८) के अनुसार तमोगुणप्रधान पुराणों में शिवमाहात्म्य का होना बतलाता है। स्कन्दपुराण (२.३०.३५) शिवरहस्य खण्ड, सम्भवकाण्ड के अनुसार भी मत्स्यपुराण शैव पुराण है। रेवामाहात्म्य, भागवत, ब्रह्मवैवर्त तथा मत्स्यपुराण में इस पुराण की श्लोकसंख्या १४००० उल्लिखित है। परन्तु देवी-भागवत इसके श्लोकों की संख्या १६००० बतलाता है। इसका नारदपुराणोक्त सूची से साम्य है इसमें भी इसकी श्लोकसंख्या १४००० बतलायी गयी है। इसके अध्यायों की संख्या २९० है। कतिपय संस्करणों में २९१ अध्याय भी परिलक्षित हैं। रघुनन्दनकृत स्मृतितत्त्व के अन्तर्गत वृषोत्सर्ग तत्त्व में स्वल्पमत्स्यपुराण का उल्लेख भी प्राप्त है। "पुराणम्"- पत्रिका में स्वल्पमत्स्यपुराण का प्रकाशन डॉ. राघवन् के सम्पादकत्व में हुआ है।[1]

मत्स्यपुराण के संस्करण

मत्स्यपुराण के अनेक संस्करण प्रकाश में आ चुके हैं। कतिपय प्रमुख संस्करण हैं-

१. आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९०७
२. वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई
३. काशिराज न्यास संस्करण रामनगर फोर्ट, वाराणसी (१९६२) सं डॉ. वी. राघवन् (प्रारम्भिक अंश मात्र)
४. गुरुमण्डल ग्रन्थमाला प्रकाशन (मोर प्रकाशन) कलकत्ता, १९५४
५. गीता प्रेस गोरखपुर से "मत्स्यपुराणाङ्क" हिन्दी अनुवाद सहित दो विशेषाङ्कों के मध्य एक तथा बाद में चार मासिक अङ्कों में प्रकाशित (१९८४)
६. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सानुवाद)।

---

१. पुराणम् : वर्ष ६ अङ्क-१ तथा आगे
२. पुराणम् : ए सैम्पल एडीसन आफ द मत्स्यपुराण टेक्स्ट : वी. राघवन् वाल्यूम-४ सं. २: १९६२, पृ. ४०६-१०.

मत्स्यपुराण का बंगलिपि में सानुवाद संस्करण (बंगवासी प्रेस) तथा इस पुराण के कन्नड और तेलुगु संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं।

मत्स्यपुराण की मातृकाएँ[1] (Manuscripts)

१. ओडिया, उत्कल यूनिवर्सिटी, भुवनेश्वर
२. नेवारी (Nevari), रामनगर फोर्ट, वाराणसी
३. मलयालम, लन्दन इण्डिया आफिस लाइब्रेरी तथा ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में।
४. शारदा, सिन्धिया ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट उज्जैन।
५. भण्डारकर इन्स्टीच्यूट पूना में ४, सरस्वती महल लाइब्रेरी, तन्जोर में १०, ओ.एम. लाइब्रेरी में १, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट मैसूर में ४ मातृकाएँ हैं- जिनमें देवनागरी में २ तथा तेलुगुलिपि में २ हैं।
६. 'सरस्वती भवन' सं.वि.वि. में, जिनमें पूर्ण दे. नागरी लिपि में।

मत्स्य-पुराण की भाषा

मत्स्य-पुराण की भाषा सरल एवं बोधगम्य है। इसमें कोई गद्यवाक्य नहीं है। मत्स्यपुराण में अपाणिनीयप्रयोग भी प्राप्त होता है, यथा-

१. दुहितां प्रशशंस च (१५४.२६) दुतिरं के स्थान पर दुहितां का प्रयोग।
२. नमः के योग में सप्तमी का प्रयोग-प्रणवे ऋग्यजुः साम्ने स्वाहाय च स्वधाय च। वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्म ने नमः (४७.१५५)
३. मृगेन्द्र : स्वातिकर्णस्य भविष्यति समास्त्रयः (२७३.७)। समा : विशेष्य के योग में संख्या विशेषण के द्वारा स्त्रीलिङ्ग द्वितीय बहुवचन में तिस्र : शुद्ध पाठ होगा।
४. अष्टाविंशति तथा वर्षा पालको भविता नृपः- वर्षाणि (शुद्ध) के स्थान पर वर्षा का प्रयोग (२७२.३)।
५. प्रवर्तयित्वा सं सर्वमृषिं वाजसनेयकम् (५०.६४) उपसर्ग पूर्व में रहने पर ल्यप् (य) आदेश विहित है पर क्त्वा का प्रयोग।
६. कहीं-कहीं उपसर्ग रहित होने पर भी ल्यप् का प्रयोग यथा-वेष्ट्य ८१.१८ (वेष्टयित्वा के स्थान पर)।
७. अजनयत् के स्थान पर जनयत् का प्रयोग ५०.४४, ४५, ४७

मत्स्यपुराण का देश तथा काल

मत्स्यपुराण की रचना के स्थान के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पार्जिटर-महोदय आन्ध्र मानते हैं जबकि प्रो. वी.आर.आर. दीक्षितार-महोदय दक्षिण भारत में इस

१. पुराणम् : सैम्पल एडीशन आफ द मत्स्यपुराण टेक्स्ट : वी. राघवन् वाल्यूम-८ सं. २ :१९६२ पृ. ४०६-१०

पुराण की रचना होना स्थिर करते हैं। डॉ. हरप्रसाद शास्त्री विभिन्न उदाहरणों के द्वारा महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नासिक नगर को इस पुराण की रचना का स्थान मानते हैं। इस मतहेतु वे मत्स्यपुराण में गोदावरी नदी के उल्लेख "सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी" (११६.३७) का उदाहरण देते हैं। पर डॉ. हाजरा इस अपुष्ट या दुर्बल मत के आधार पर इस पुराण का देश नासिक निश्चित करना उचित नहीं मानते हैं।

डॉ. हाजरा मत्स्यपुराण की रचना का स्थान नर्मदा-नदी-घाटी को मानते हैं। अपने मत की स्थापनाहेतु हाजरा ने मत्स्यपुराण में उल्लिखित नर्मदामहात्म्य के विशदवर्णन को आधार माना है। नर्मदानदी को कहीं-कहीं पवित्र गङ्गा से भी अधिक महत्व दिया गया है। प्रलय-काल में भी इस नदी का अस्तित्व विद्यमान रहता है (२.१२-१४)। नर्मदा-माहात्म्य ६ अध्यायों (१८६-१६५ अ.) में तथा नर्मदा, कावेरी (दक्षिण भारतीय प्रसिद्ध कावेरी नहीं) सङ्गम का वर्णन (आख्याहि भगवंस्तथ्य कावेरी सङ्गमो महान् १८६.२) रचनाकार ने विस्तृत रूप से किया है। नर्मदा के तटवर्ती अप्रसिद्ध स्थानों की रचयिता द्वारा चर्चा उसके प्रत्यक्ष सम्बन्ध को द्योतित करता है।

ए.एम.टी. जैक्वस, रामप्रताप त्रिपाठी, डॉ. वी. राघवन्, डॉ. एस.जी. कॉटावाला आदि विद्वान भी डॉ. हाजरा से सहमत हैं।[१] आचार्य बलदेव उपाध्याय भी मत्स्यपुराण का रचना क्षेत्र नर्मदाप्रदेश को ही मानते हैं (द्र.- पुराणविमर्श प्र.सं. ५६५ पृ.)। इस दृष्टि से वर्तमान "मध्यप्रदेश" मत्स्यपुराण का स्थान निर्धारित किया जा सकता है।

मत्स्यपुराण का काल

मत्स्यपुराण का काल ई. द्वितीय शताब्दी से पूर्व है। यह सुनिश्चित है, परन्तु आधुनिक विद्वानों का मत है कि मत्स्यपुराण के विभिन्न भागों की रचना अनेक कालों में हुई है। इस पुराण में शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों को समन्वित रूप से स्थापित करते हुए दोनों को समान महत्त्व दिया गया है। इसमें धर्मशास्त्रीय सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। मत्स्यपुराण (२७२.१७-२६ अ.) में आन्ध्र, शक, मुरुण्ड, यवन, म्लेच्छ, आभीर आदि का उल्लेख प्राप्त है; इनका शासन कुषाण राज्य की समाप्ति के अनन्तर हुआ। आन्ध्रराज्य का पतन २३६ ई. में हुआ। इस काल तक का इतिहास इस पुराण में वर्णित है। आन्ध्र-शासकों का प्रामाणिक इतिवृत्त यह पुराण प्रस्तुत करता है।

डॉ.आर. मॉकड ने मत्स्यपुराण १६३ अ. तथा वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड ३१.४२ में उपलब्ध भुवनकोश के परस्पर अत्यन्त साम्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि मत्स्यपुराण वाल्मीकीय रामायण से प्राचीनतर है।[२] विभिन्न मतों

---

१. Purana, Home of t he Matsypurana by Kantawals, Vol. III, No. 1, pp. 115-119.

२. Purana, the Matsya and the Ramayana : D.R. Manked Vol. VIII, No. 1, pp. 159-167.

की समीक्षा करके आचार्य बलदेव उपाध्याय ने मत्स्यपुराण का काल २०० ई. से ४०० ई. तक के मध्य माना है (द्र.- पुराणविमर्श, पृ. ५६६)

मत्स्यपुराण में उपलब्ध वैदिक मन्त्र तथा सूक्त

धर्मशास्त्रीय आचारों यथा- व्रत, श्राद्ध, दानादि के वर्णन में मत्स्यपुराण में अनेक वैदिक मन्त्रों तथा सूक्तों का बहुशः उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ संक्षेप में इनको प्रस्तुत किया जा रहा है- अपराजितादेवी- सूक्त (२६५.२६), इन्द्र-सूक्त (१६५.२४, २५), कूष्माण्ड-मन्त्र (६३.१२६-१३२), गायत्री (२६७.५;१७१.२४), नीलरुद्र (अथर्ववेदीय तत्ततसंज्ञक-मन्त्र २६५.२४), पुरुष-सूक्त ५८.३३-३५, २६५.२६-२७, सहस्रशीर्षा पुरुष : ६३.४३), पौष्टिकसूक्त (६३.१२६-१४२), ब्रह्मसूक्त (४.१०), मण्डलाध्याय (२६५.२६), मैत्र (६६.४०), रक्षोघ्न (२६५.२४, २६८.३४), रात्रिसूक्त (६३.१२६-१३२), रौद्र-सूक्त (५६. ३३, ६३.१२६-१३२, २६५.२७, २८; ६६.४३), रुद्र-संहिता (५८.३५; ६३.१३१), शाक्र-सूक्त (५८.३४), शान्तिक (शान्तिकाध्याय अथवा शान्ति-सूक्त ५८.३७; ६३. १२६-१३२, २६५.२४-२५, २७४.५६, ६३.१२६-१३२), शुक्रिय (२६५.२६), श्लोकाध्याय (२६५.२६), सुमङ्गलसूक्त (२६५.२४) सौम्य-सूक्त (२६५.२४) सौर-सूक्त (५८.३४, ६३.१३२) आदि। (द्रष्टव्य-पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन; (डॉ. रामशङ्कर भट्टाचार्य कृत) यहाँ इन वैदिक मन्त्र सूक्तों का परिचय भी दिया गया है।)

मत्स्य एवं पद्मपुराण का साम्य

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि मत्स्य एवं पद्म पुराणों में परस्पर अतिशय समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों पुराणों में अनेक अध्यायों का पाठ समान है। उदाहरणार्थ-

	मत्स्यपुराण	पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड)
अध्याय	५-६	अ. ६
अध्याय	७-६	अ. ७
अध्याय	१०-१२	अ. ८
अध्याय	१३ (१-१०श्लोक)	अ. ८
अध्याय	१४-१७	अ. ६
अध्याय	१८-२१	अ. १०
अध्याय	२२	अ. ११
अध्याय	२३	अ. १२ (१-१०८ श्लोक)

अध्याय	२४ (१-५६ श्लोक)	
अध्याय	४३	अ. १२ (११० श्लोक से अन्त तक)
अध्याय	४४	अ. १३ (१-२८४ श्लोक)
अध्याय	४५-४६	
अध्याय	४७ (१-१८ श्लोक)	
अध्याय	१००-१०२	अ. २० (४-१७६ श्लोक)
अध्याय	८१-६२	अ. २१
अध्याय	७४-८०	
अध्याय	६१-६४	अ. २२
अध्याय	६६	
अध्याय	६०-७०	अ. २३
अध्याय	७१-७२	अ. २४
अध्याय	५५	अ. २४
अध्याय	५७-५८	अ. २४
अध्याय	५६-६०	अ. २४
अध्याय	१६४-१६८	अ. ३६
अध्याय	१६६-१७३	अ. ३७
अध्याय	१७४-१७८	अ. ३८
अध्याय	१४६ (४१ श्लोक. से अन्त तक)	अ. ३६
अध्याय	१४७-१४८	
अध्याय	१५३ (२२२-२२८ श्लोक)	अ. ३६ (१०३ से अन्त तक)
अध्याय	१५४	अ. ४०
अध्याय	१५५-१६०	अ. ४१
अध्याय	६१	
अध्याय	६२	अ. ४२
अध्याय	६३	
अध्याय	१७० (१-१३ श्लोक)	अ. ४३ (छठे श्लोक का द्वि.च. ६वें का प्र.च. तथा ७७ से ८५२ श्लोक तक)

उपर्युक्त स्थलों में कहीं-कहीं अत्यन्त साधारण पाठभेद मिलते हैं, अर्थ की दृष्टि से जिनमें कोई अन्तर नहीं आता।

(द्र.- Puranic Records on Hindu Rites and Customs by R.C. Hazra, pp. ३३.३४)

मत्स्यपुराण में वर्णित विषयों का सार

मत्स्यपुराण में कुल २९० अध्याय हैं। (कतिपयसंस्करणों में २९१ अध्याय भी हैं)। आलोच्यपुराण को छोटे-छोटे प्रकरणों में विभक्तकर विषयों का सार प्रस्तुत किया जा रहा है-

(१-२ अ.) मङ्गलाचरण के अनन्तर शौनिकादि ऋषियों द्वारा सृष्टि, विष्णु के मत्स्यावतार, शंकर के भैरवत्व और पुराधित्व-पद प्राप्ति एवं वृषभध्वज, कपालमालाधारी होने से सम्बन्धित प्रश्न किये जाने पर सूतजी ने मत्स्यपुराण का वर्णन किया। एक बार आश्रम में पितृ-तर्पण करते समय मनु की अञ्जलि में एक मत्स्य आ गिरा। मनु ने उसे कमण्डलु में डाल दिया, अतिशीघ्र बढ़ते हुए मत्स्य को उसके द्वारा रक्षा की प्रार्थना किये जाने पर मनु उसे क्रमशः घड़े, कूप, सरोवर, गङ्गा तथा समुद्र में डालते गये। मनु द्वारा मत्स्य के स्वरूप से सम्बन्धित प्रश्न किये जाने पर मत्स्य ने प्रलय-काल में नौकारूढ़ होकर तथा स्वयं द्वारा कर्षित नौका से स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज जीवों की रक्षा का उपदेश दिया। मनु द्वारा प्रलय सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में मत्स्य ने प्रलय के कारण एवं स्वरूप का स्पष्ट विवरण दिया तथा मनु से कहा कि तुम वेदरूपी नौका में समस्त बीजों एवं जीवों को लादकर तथा मेरे द्वारा प्रदत्त रस्सी से मेरी सींग में नौका बाँध कर सुरक्षित स्थान पर ले जाना। प्रलय-काल आने पर मत्स्य द्वारा आदिष्ट मनु ने वैसा ही किया। मनु द्वारा विविध प्रश्न किये जाने पर मत्स्य ने प्रकृत पुराण के विषयो पर विस्तुत वर्णन किया।

(३-७ अ.) मनु द्वारा सृष्टि-विषयक प्रश्न किये जाने पर मत्स्य ने निम्नोक्त विषयों का वर्णन किया। ब्रह्मा से वेद, सरस्वती, ब्रह्मा के पञ्चमुख, मनु आदि की उत्पत्ति, ब्रह्मा द्वारा मानसीसृष्टि में मरीचि आदि ऋषियों का प्रादुर्भाव, मैथुनीसृष्टि, सरस्वती का वणर्न, कामदेव को ब्रह्मा का शाप, दक्ष की उत्पत्ति, दक्ष एवं पाञ्चजनी स्त्री से हर्यश्वों और शबलाश्व का जन्म तथा दक्ष की साठ कन्याओं से सृष्टि की रचना का वर्णन है। कश्यपवंश के वर्णनप्रसङ्ग में अदिति से देवों, दिति से दैत्यों, दनु से दानवों एवं अन्य से पशु, पक्षी, सर्प, गन्धर्व और अप्सरादि की सृष्टि का वर्णन है। दिति से उत्पन्न उनचास मरुद्गणों की उत्पत्ति, देव-दानव-युद्ध में दैत्यों की मृत्यु, दिति द्वारा कश्यप से पुत्र-याचना पर पुत्रप्राप्त्यर्थ "मदनद्वादशी" के व्रत का उपदेश उल्लिखित है।

(८-१० अ.) पृथु पृथ्वी के अधिपति हुए। ब्रह्मा ने सर्गारम्भ के समय सृष्टि के चराचरजगत् का पृथक्-पृथक् लोगों को अधिपति बनाया। यहाँ चौदहमन्वन्तरों तथा

सप्तर्षियों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। तदनन्तर पृथु का चरित्र वर्णित है। स्वायम्भुवमनु के वंश में अङ्गनामक प्रजापति का विवाह मृत्यु की कन्या सुनीथा से हुआ। सुनीथा के गर्भ से अधर्मी वेन की उत्पत्ति हुई। वेन को महर्षियों ने शाप देकर मार डाला। उसकी पृथु (मोटी) भुजा से पृथु नामक पुत्र का जन्म हुआ था। पिता के राज्य पर उसका अभिषिञ्चन हुआ। पृथ्वी की अनुमति से पृथ ने स्वायम्भुवमनु को बछड़ा बना कर अपनी हथेली में गोरूपा पृथ्वी का दोहन किया। बाद में ऋषियों, देवताओं, अन्तक (यम), नागों, असुरों, यक्षों, प्रेतों, राक्षसों आदि ने भी पृथ्वी का दोहन किया। पृथ्वी पृथु की कन्या रूप में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। अतः इसका पृथ्वी नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ।

(११-१२ अ.) सूर्यवंश का विस्तृत वर्णन है। विवस्वान् (= सूर्य) के पुत्र वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र थे। उनमें इल दिग्विजय हेतु समस्त पृथ्वी का भ्रमण करते हुए "शरवण" नामक स्थान पर पहुँचे। शिव द्वारा पहले ही दिये गये शाप के कारण इल सपरिवार स्त्रीत्व को प्राप्त हो गये। वह इला, नारी बन घूमती हुई, सोमपुत्र बुध द्वारा देखे जाने पर कामासक्त दोनों ने बहुत दिनों तक रमण किया। राजा को खोजते हुए उनके भाइयों ने उन्हें स्त्रीरूप में देखकर वशिष्ठ से कारण ज्ञात कर शिवाराधन से शिव को प्रसन्न कर निदान पूछा। शिव ने अश्वमेघयज्ञ का पुण्य इल को समर्पित कर देने से "यह किन्नर हो जायेंगे"- ऐसा कहा। इक्ष्वाकु द्वारा यज्ञ कर पुण्य प्रदान कर देने पर इल एक मास स्त्री तथा द्वितीय मास में पुरुष हो जाते थे। बुध के भवन में रहते हुए इल ने गर्भ धारण कर लिया था। समय आने पर इल ने एक पुत्र को जन्म दिया। तभी से इल के नाम पर उस वर्ष का नाम 'इलावृत' पड़ा।

(१३ अ.) पितृवंश का वर्णन तथा सती के प्रसङ्ग में भगवती के १०८ नामों तथा सिद्धपीठों का विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवती के कुछ नाम ये हैं-विशालाक्षी, लिङ्गधारिणी, ललितादेवी, कामाक्षी, कुमुदा, विश्वकाया, गोमती, कामचारिणी, गौरी, रम्भा, कीर्तिमयी, विश्वा, पुरुहूता, मार्गदायिनी, नन्दा, भद्रकर्णिका, बिल्वपत्रिका, माधवी आदि (प्रत्येक पीठ में एक-एक नाम, जैसे वाराणसी में विशालाक्षी)।

(१४-१५ अ.) पितृवंशानुकीर्तन में अग्निष्वात्तादि पितरों का वर्णन प्राप्त है। अच्छोदा तथा अमावस्या की कथा वर्णित है। अमावस्या में कृत श्राद्धादि कार्य अक्षय होते हैं। पितरों द्वारा अच्छोदा को नदी रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने की तथा वरदान की कथा भी प्रतिपादित है। पीवरी का वृत्तान्त भी वहीं उल्लिखित है। पितरों की मानसी कन्या पीवरी ने कठोर तपस्या कर हरि से वर रूप में योगी, सौन्दर्यसम्पन्न, जितेन्द्रिय तथा श्रेष्ठावक्ता पति की याचना की। विष्णु ने कहा- व्यास के पुत्र शुक्र की पत्नी के रूप में तुम्हें कृत्वी नाम वाली कन्या उत्पन्न होगी, कृत्वी ब्रह्मदत्त की माता होकर गौ नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करेगी। कृष्ण, गौर, प्रभु तथा शम्भु तुम्हारे चार पुत्र होंगे और अन्त में तुम मोक्ष को प्राप्त करोगी।

(१६-२२ अ.) श्राद्ध का प्रकरण है। इसमें श्राद्ध के तीन भेदों (नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य) की विवेचना की गयी है। इनके वर्णन में ही पार्वण, साधारण, आभ्युदयिक, एकोदिद्ष्ट और सपिण्डीकरण, श्राद्धादि की विधि, श्राद्धकर्त्ता एवं श्राद्ध भोक्ता हेतु नियम बतलाये गये हैं। श्राद्ध में प्रदत्त पितरों के लिए कव्यप्राप्ति का विवरण, कौशिक पुत्रों का वृत्तान्त, कामासक्तपिपीलिका का वृत्त, ब्रहदत्त के समस्त प्राणियों की भाषा के ज्ञाता होने का उल्लेख, चक्रवाकों की गति आदि का वर्णन है। श्राद्ध करने का काल, स्थान (तीर्थ) तथा कतिपय विशिष्ट विधान प्रतिपादित हैं। श्राद्ध-स्थान उल्लेख के प्रसङ्ग में अनेक तीर्थों यथा- बदरी, गया, शुक्र, श्रीपति, रैवत, शारदा, भद्रकालेश्वर, वैकुण्ठ आदि का उल्लेख किया गया है।

(२३-२४ अ.) सोमवंश का आख्यान वर्णित है। सोम की उत्पत्ति, सोम की विष्णु से वर-प्राप्ति, सोम के अपचार का कथन, तारा का वृत्तान्त, शंकर के साथ सोम का युद्ध तथा तारा एवं बृहस्पति का संयोग वर्णित है।

(२५-४२ अ.) ययाति के आख्यान का प्रारम्भ तथा कचदेवयानी संवाद, देवयानी और शर्मिष्ठा का विवाद, देवयानी को शर्मिष्ठा द्वारा कूप में गिराया जाना, ययाति द्वारा देवयानी को कूप से निकालना, शुक्र का वनागमन, शुक्र देवयानी का संवाद, शुक्र के उपदेश का देवयानी द्वारा खण्डन, शर्मिष्ठा का देवयानी का दास्यभाव स्वीकारना, देवयानी का ययाति के साथ विवाह, शर्मिष्ठा की प्रार्थना पर ययाति का शर्मिष्ठा को भी पत्नी रूप में स्वीकार करना, शर्मिष्ठा से तीन पुत्रों की उत्पत्ति, ययाति पर देवयानी का क्रोध करना, शुक्राचार्य द्वारा ययाति को शाप देना, शाप के कारण ययाति का वृद्ध होना, बाद में शुक्र का यह कहना कि किसी पुत्र द्वारा युवावस्था प्रदान किये जाने पर ही शाप से मुक्ति। ययाति का अपने पुत्रों से युवावस्था की याचना। पूरू द्वारा ययाति को यौवन-दान देना, ययाति द्वारा हजार वर्षों तक विषयों का भोग करना, बाद में राज्य के लिए पूरू का अभिषेक करना तथा स्वयं-वन को जाना। ययाति का स्वर्गगमन, इन्द्र से विवाद, ययाति का पतन देखकर अष्टक द्वारा प्रश्न, ययाति-अष्टक-संवाद, ययाति द्वारा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रमों की अवस्थाओं की चर्चा, प्रतर्दन, वसुमान, और शिवि का ययाति से संवाद, ययाति का उनके दौहित्रों द्वारा उद्धार तथा उनके परम-पद प्राप्ति की कथा विस्तृत रूप से वर्णित है।

(४३-४७ अ.) यदुवंश का वर्णन। यदु के पाँच पुत्र थे, जिनमें कार्तवीर्य ने दत्तात्रेय की आराधना से चार वर- १) सहस्रभुजा, २) अधर्मरत मनुष्य का सज्जनों से निराकरण, ३) युद्धपूर्वक पृथ्वी जीतकर उसका पालन, ४) संग्राम में बलवान् से मृत्यु प्राप्त होना। यहाँ क्रोष्टु, विदर्भ तथा अन्धकवंश का विवरण है। स्यमन्तकमणि की कथा में कहा गया है- प्रसेन के पास स्यमन्तकमणि थी। आखेट हेतु गये प्रसेन गुफा से आती ध्वनि को सुनकर

वहाँ गया । जहाँ उसे एक भालू ने मार कर स्यमन्तकमणि ले ली। प्रसेन की मृत्यु का दोष कृष्ण को लगा। उस कलंक के विमोचन हेतु कृष्ण पुनः वन को गये। ऋक्षराज जाम्बवान् ने उन्हें मणि प्रदान की। वह मणि सत्राजित् को प्रदान कर कृष्ण कलंक से मुक्त हुए। वृष्णिवंशीय कंस की बहन देवकी के गर्भ से कृष्ण की उत्पत्ति; यहाँ भगवान् के दस अवतारों का भी उल्लेख है।

(४८-५१ अ.) ययाति के पुत्रों, तुर्वसु तथा बलि वंश का वर्णन प्रतिपादित है। पूरु वंशीय दुष्यन्त, भरत, कुरु, विभिन्न अग्नियों तथा अग्निवंश का वर्णन है।

(५२ अ.) कर्मयोगी का महत्त्व उसके प्रतिपादक आचार्यों के नाम के साथ बतलाया गया है तथा कर्मयोग की श्रेष्ठता सिद्ध की गयी है। ज्ञानयोग, कर्मयोग जन्य है। इस हेतु आठ आत्म गुणों का प्राधान्य बतलाया गया है यथा-दया, क्षमा, दुःखी के प्रति संवेदना और रक्षा, ईर्ष्या न करना, बाह्य-आभ्यन्तर पवित्रता, किसी भी कार्य को आचारपूर्वक करना, दुःखी जनों की सहायता में उदारता, पराये धन, पर-स्त्री के प्रति निस्पृह होना। गृहस्थ द्वारा की जाने वाली हिंसा के प्रायश्चित्त हेतु पाँच यज्ञों का विधान भी विहित है।

(५३ अ.) पुराण तथा उपपुराणों की नामावलि तथा संख्या का संक्षिप्त वर्णन है। पुराणों का लक्षण, पुराण की पुस्तकों के दान का फल एवम् इनकी महिमा भी प्रतिपादित है। पुराण के सात्त्विक, राजस तथा तामस भेद भी कहे गये हैं।

(५४-८० अ.) विभिन्न व्रतों का विस्तृत विवेचन उल्लिखित है। व्रतों में नक्षत्रपुरुषव्रत, आदित्यशयन, कृष्णाष्टमी, रोहिणीचन्द्रशयन, सौभाग्यशयन आदि का माहात्म्य एवं विधि विशेष रूप से प्रतिपादित है। व्रतों के मध्य ही तडाग, कूप, उपवन, पुष्करिणी, देवमन्दिर की प्रतिष्ठा तथा वृक्षों को लगाने की विधि भी वर्णित है।

(८१-६१ अ.) विभिन्न दानों का वर्णन है। दानों द्वारा प्राप्त होने वाले फल तथा उनके माहात्य की विवेचना की गयी हैं प्रमुख दान ये हैं- गुडधेनु, धान्यशैल, लवणाचल, गुडपर्वत, सुवर्णाचल, तिलपर्वत, घृताचल, रौप्याचल, शंर्कराचल आदि।

(६२-६३) नवग्रहों की शान्ति का वर्णन है। लक्ष तथा कोटि यज्ञों का विधान, नवग्रहों का स्वरूपवर्णन तथा पूजन एवं पूजन फल के साथ ही शान्तिक तथा पौष्टिक कर्मों का विधान भी प्रतिपादित है।

(६४-१०१ अ.) अनेक व्रतों का विधान किया गया है उनकी विधि, माहात्म्य तथा उद्यापन भी वर्णित है। प्रमुख व्रत हैं-माहेश्वर, सर्वफलत्याग, आदित्यवार, संक्रान्ति, विभूतिद्वादशी तथा षष्टिव्रत। अन्त में स्नान-विधान प्रतिपादित है। त्रिकाल स्नान, सन्ध्या, तर्पण, सूर्यनमस्कार तथा परिक्रमा की विधि उल्लिखित है।

(१०२-१११ अ.) प्रयाग-माहात्म्य (मार्कण्डेय ऋषि द्वारा युधिष्ठिर के प्रति उपदिष्ट)। युधिष्ठिर जब भाइयों के वियोग से दुःखी थे और प्रायश्चित्त-स्वरूप नियम आदि के विषय

में विचार कर रहे थे, उसी समय मार्कण्डेय ऋषि ने हस्तिनापुर में उपस्थित होकर युधिष्ठिर को समस्त पापों से मुक्ति-प्राप्ति हेतु प्रयाग-गमन का उपदेश दिया था। प्रयाग में पाँच कुण्ड हैं। उन्हीं के मध्य में गंगा बहती है इसलिए प्रयाग में प्रवेश करते ही तत्काल पापक्षय होता है। प्रयाग में मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा वहाँ गोदान करने का विशेष महत्त्व प्रतिपादित है। प्रयागस्थित अन्य गौण तीर्थों का वर्णन भी प्राप्त होता है। प्रयाग में अनशनव्रत तथा मासपर्यन्त निवास की विधि, अन्य तीर्थों की तुलना में प्रयाग का महत्व, प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण देवों के वास का उल्लेख तथ वासुदेव द्वारा प्रयाग का माहात्म्य विस्तृतरूपेण वर्णित है।

(११२-११३ अ.) भूगोलवर्णन के प्रसङ्ग में सप्तद्वीप, समुद्र, मेरु, हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, गन्धमादन, अमरगण्डिक, पूर्वगण्डिका, शृङ्गवान् आदि पर्वत, इलावृत, रम्यक्, हरिवर्श, हिरण्यक, शृङ्गशाक आदि वर्ष (खण्ड), (हिमवान् पर्वत से सम्बन्धित वर्ष भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध है) तथा नदियों की विस्तृत विवेचना की गयी है। भारतवर्ष के भी नौ भेद हैं (इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप गान्धर्वद्वीप और वारुणद्वीप तथा नौवॉं समुद्र से व्याप्त भारतवर्ष); विभिन्न पर्वतों से निस्सृत नदियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है; साथ ही भारतवर्ष तथा किम्पुरूषवर्ष का वर्णन भी प्रसङ्गतः प्राप्त है।

(११४-११५ अ.) पुरूरवा के पूर्व जन्म की कथा वर्णित है। पुरुरवा पूर्वजन्म में ब्राह्मण था। यही उत्तर जन्म में राजा पुरूरवा के रूप में प्रसिद्ध हुआ, ब्राह्मण पुरूरवा राज्य कामना से द्वादशी का व्रत करता था, जिसके कारण उसे मद्र देश का निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ। हिमालय से निस्सृत हैमवती (ऐरावती) आदि नदियों की सुषमा भी वर्णित है।

(११६-१२० अ.) हिमवत्प्रदेश तथा अत्रि के आश्रम का वर्णन है। मद्रेश्वर पुरूरवा की तपस्या तथा क्रीडा-विहार वर्णित है (११६ अ.)। शंकर के निवास कैलासपर्वत का एवम् अन्य पर्वतों तथा नदियों का उल्लेख है।

(१२१-१२२ अ.) शाक, कुश, क्रौञ्च तथा शाल्मल, गोमेदक, पुष्कर द्वीपों का वर्णन उपलब्ध है। प्रत्येक द्वीप की स्थिति, विस्तार तथा वैशिष्ट्य प्रतिपादित है।

(१२३-१२७ अ.) पृथिवी तथा आकाश का परिमाण बतलाया गया है। इसके साथ ज्योतिष सम्बन्धी विषय वर्णित है। इसमें सूर्यरथ तथा चन्द्ररथ का वर्णन विस्तार से किया गया है। शुक्ल-पक्ष में चन्द्र की कला में वृद्धि होती है तथा कृष्ण में क्षय। ग्रहों तथा नक्षत्रों की गति, शिशुमार चक्र (चौदह नक्षत्रों में स्थित, इन्हीं के मध्य ध्रुव स्थित है) तथा इसके अनन्तर सूर्य, चन्द्र, भीम, बुधादि ग्रहों की गति उल्लिखित है।

(१२८-१३६ अ.) (मयासुर-आख्यान) मय द्वारा त्रिपुर-निमार्ण, दानवों के अत्याचार से संत्रस्त देवों का ब्रह्मा के समीप जाना, ब्रह्मा द्वारा देवताओं को शिव की स्तुति का उपदेश, महादेव द्वारा देवताओं को वर प्रदान करना, युद्धार्थ-रथ-निर्माण, त्रिपुर में नारद का जाना,

नारद की मय से वार्ता, देव-दानव-युद्ध, भगवान् का वृष रूप से वापी का जल पीना, विद्युन्माली-नन्दीश्वर-युद्ध तथा शंकर द्वारा मय के संहार की कथा वर्णित है।

(१४० अ.) अमावस्या तथा पितृमहत्त्व का वर्णन है। सूर्य की किरणों के साथ पितर नीचे आते हैं तथा अपने वंशजों के द्वारा स्वधाशब्दरूपी अमृत से तृप्त होते हैं। पितरों के सोमप एवम् उष्मप दो प्रकार के भेद बतलाये गये हैं।

(१४१-१४४ अ.) काल का विशिष्ट विभाजन उल्लिखित है। सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग की परिस्थितियों का तथा धर्म का क्रमेण ह्रास आदि विषयों का उल्लेख है। चतुर्दश-मन्वन्तरों की विभिन्न कल्पों में जो स्थिति रहती है, उसकी विवेचना की गयी है।

(१४५-१५३ अ.) तारकासुर के आख्यान का उल्लेख है साथ ही वज्राङ्ग दानव का आख्यान भी वर्णित है। वराङ्गी तथा वज्राङ्ग से तारक की उत्पत्ति बतलायी गयी है। तारकातुर से पीड़ित देवता ब्रह्मा की स्तुति करते हैं, ब्रह्मा द्वारा देवताओं को यह बतलाया जाता है कि तारक की मृत्यु, शिव और पार्वती के सप्तवर्षीय बालक द्वारा होगी। तत्पश्चात् इन्द्र का हिमालय के पास नारद को प्रेषित करना, पुनः नारद का इन्द्र के पास गमन। हिमालय का देवर्षि से कन्या विषयक दुःख प्रकट करना, कामदेव का शंकर के पास जाना, काम को शङ्कर का वरदान, कामदेव की "अनङ्ग" नाम से प्रतिष्ठा एवं पार्वती की तपश्चर्या आदि का विवेचन है।

(१५४-१५६ अ.) शिव-पार्वती-संवाद के अन्तर्गत पार्वती के रूप के प्रति शङ्कर का परिहास, पार्वती का सुन्दर रूप की प्राप्ति हेतु तपस्या के लिए उद्यत होना। आग्रह करने पर वीरक को किसी अन्य स्त्री को अन्दर न आने देने हेतु द्वाररक्षक के रूप में रखना। पार्वती की तपस्या का वर्णन, ब्रह्मा से वर प्राप्त कर पार्वती का हिमालय के समीप गमन। वीरक द्वारा पार्वती को शंकर के पास जाने से रोकना, पार्वती द्वारा वीरक पर क्रोध करना, रहस्य-ज्ञात होने पर पार्वती का पश्चाताप करना तथा क्रोध की निन्दा का वर्णन प्राप्त है। पार्वती के दक्षिण कुक्षि से कुमार की उत्पत्ति (जिनकी लोक में स्कन्द, विशाल, षण्मुख और कार्तिकेय नाम से प्रसिद्धि है), तारकासुर-कुमार-युद्ध, स्कन्द द्वारा तारकासुर पराजय का वर्णन है।

(१६०-१६२ अ.) प्रारम्भ में हिरण्यकशिपु की तपस्या तथा ब्रह्मा द्वारा उसे अद्‌भुत वर प्रदान करने का उल्लेख है; हिरण्यकशिपु से पीड़ित देवताओं द्वारा विष्णु की प्रार्थना, विष्णु द्वारा नरसिंह रूप में दैत्य को मारने की बात कहना। हिरण्यकशिपु के साथ नरसिंह का युद्ध। नरसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु को नखों से विदीर्ण कर मार डालना, प्रसन्न देवताओं द्वारा नरसिंह की स्तुति उल्लिखित है।

(१६३-१७८ अ.) प्रलय में निमग्न सृष्टि की पुनः उत्पत्ति कैसे हुई ? एतद्विषयक प्रश्न मनु द्वारा किये जाने पर मत्स्य द्वारा उत्तर देना। सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि-चारों

युगों की गति, विशिष्टता तथा व्यवस्था बतलायी गयी है। महाप्रलय के वर्णन प्रसङ्ग में सूर्यरूपी नारायण द्वारा समस्त समुद्रों, नदियों, पातालादि का जल शोषण कर लेने के अनन्तर वृक्षों की शाखाओं में परस्पर घर्षण के कारण संवर्तक अग्नि की उत्पत्ति से समस्त पदार्थों के भस्म होने के अनन्तर मूसलाधार वृष्टि से समस्तजगत् के जलप्लावन तथा नारायण का स्वरूप में स्थित होकर एकार्णव जल में योगपूर्वक शयन की कथा वर्णित है। भगवान् की नाभि से कमल की उत्पत्ति तथा उसके मध्य में ब्रह्मा की उत्पत्ति; ब्रह्मा की तपस्या, मधु-कैटभ द्वारा ब्रह्मा की तपस्या में विघ्न डालना; भगवान द्वारा आत्ममाया द्वारा आकर्षित दैत्यों को उन्हें स्वयं भगवान् द्वारा मारे जाने का वर देना तथा ब्रह्मा से मानस पुत्रों तथा दक्षादिकों की उत्पत्ति वर्णित है। तारकादि-असुरों के अत्याचार से दुःखी देवताओं की विष्णु से प्रार्थना; विष्णु का उन्हें आश्वस्त करना दैत्यों द्वारा अपनी सेना को विस्तृत करना, मय, विरोचन, हयग्रीव, वाराह, खर, त्वष्टा, विप्रचित्ति, बलिपुत्र, अरिष्ट, लम्ब, स्वर्भानु आदि दैत्यों की युद्ध हेतु विशिष्ट तैयारी। देवों द्वारा भी अपनीसेना का विस्तार; दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य तथा देवों के गुरु बृहस्पति द्वारा शिष्यों के कल्याण हेतु आशीर्वाद देना। देवों तथा दानवों का युद्ध, मय की तामसी माया द्वारा देव सेना का जलना, इन्द्र द्वारा वरुण को और्वाग्नि की उात्पत्ति का रहस्य बतलाना (उर्व की जाँघ से उत्पन्न होने के कारण-"और्वाग्नि" नाम), चन्द्रमा की सहायता से और्वाग्नि-माया को प्रशमित करना। कालनेमि का युद्ध भूमि में आगमन, कालनेमि द्वारा देवसेना को परास्त करना, बाद में विष्णु से युद्ध, विष्णु द्वारा कालनेमि का वध, शिव के साथ अन्धकासुर का युद्ध, शिव द्वारा मातृकाओं की सृष्टि तथा अन्धक की मृत्यु, मातृकाओं की विध्वंस-लीला तथा नृसिंह द्वारा निर्मित मातृकाओं द्वारा मातृकाओं को पराजितकरना तथा नृसिंह की स्तुति वर्णित है।

(१७६-१८४ अ.) वाराणसी-माहात्म्य। शंकर ने पार्वती को बतलाया कि नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, पुष्कर तथा प्रयाग से अधिक महत्वशाली वाराणसी है। यक्षपुत्र हरिकेश ने यहीं तपस्या कर गणत्व की प्राप्ति की थी। शंकर ने बतलाया कि इस पुण्य क्षेत्र में किया हुआ सत्कर्म अनन्तफल का प्रदाता होता है, यहाँ पर किया गया ध्यान, अध्ययन, दान सभी अक्षय होते हैं। यह स्थान सभी गुह्य स्थानों में अन्यतम है। इस क्षेत्र में जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक एक मास व्यतीत करता है उसे इच्छित सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ गङ्गा उत्तरवाहिनी हैं। यहाँ समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सिद्धियाँ यहाँ सदैव विद्यमान रहती हैं। यहाँ पर की गयी तपस्या एवं साधना से मनुष्य मुक्त हो जाता है। वाराणसी-माहात्म्य-वर्णन प्रसङ्ग में भी व्यास की तपस्या का भी वर्णन है। एक बार द्वादशवर्ष पर्यन्त तपस्या के अनन्तर व्यास को क्षुधा ने सताया। छह मास तक उदरपूर्ति हेतु कुछ भी न मिलने के कारण व्यास ने शाप दिया कि यहाँ तीन पीढ़ी तक विद्या, धन एवं मित्रता नहीं रहेगी। इस शाप के प्रभाव को समाप्त करने हेतु पार्वती एवं शंकर मनुष्य रूप में व्यास के समीप आये तथा

उन्हें भिक्षा के द्वारा तृप्त किया। वाराणसी के पाँच तीर्थ विशेष महत्वशाली हैं- १. दशाश्वमेघ, २. लोलार्क, ३. केशव, ४. बिन्दुमाधव, ५. मणिकर्णिका।

(१८५-१६३ अ.) नर्मदा तथा उसके तटवर्ती तीर्थों का महत्व। अमरकण्टकपर्वत से निस्सृत नर्मदा सम्पूर्ण नदियों में श्रेष्ठ बतलायी गयी है। सरस्वती के जल में तीन दिन स्नान करने से यमुना में एक सप्ताह तथा गङ्गा में स्नान करने से तत्काल शुद्धि होती है। परन्तु नर्मदा के दर्शन मात्र से शुद्धि सम्भव है। यहाँ जप, व्रत, तपादि का अखण्डफल प्राप्त होता है। ज्वालेश्वरतीर्थ का महत्त्व भी उल्लिखित है। ऋषिगण जब बाणासुर से संत्रस्त होने लगे तब शिव के समीप जाकर अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन किये, जिसे सुनकर शिव ने नारद को असुरों की बुद्धि भ्रमित करने हेतु भेजा। नारद तथा बाण-पत्नी अनौपमी के संवाद के कारण असुरपत्नियों की बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण त्रिपुर में छिद्र होने की कथा वर्णित है। शंकर के क्रोध से भस्म होते त्रिपुर को देखकर बाण द्वारा शिव की स्तुति तथा शिव द्वारा बाण को देवों से न मारे जाने का वर वर्णित है।

(१६४-२०३ अ.) भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, कुशिक, कश्यप, वशिष्ठ आदि ऋषियों के वंश तथा प्रवर आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। भृगु वंश के गोत्र-प्रवर्तक हैं-भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद आदि (लगभग ६० से अधिक ऋषियों का उल्लेख है)। साधारणतः इनमें से पाँच प्रकार कहलाते हैं- भृगु, च्यवन, आप्नुवान्, और्व तथा जमदग्नि। भृगुवंशीय अन्य ऋषि हैं- जमदग्नि, विद पौलस्त्य, बैजभृत्, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय और मारुत। इनके तीन शुभ प्रवर हैं- भृगु, च्यवन और आप्नुवान्। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। इनके अतिरिक्त अनेक ऋषियों का उल्लेख है। यथा- अङ्गिरा वंश- मरीचि की कन्या सुरूपा का विवाह अङ्गिरा से हुआ था। उससे दस पुत्र-आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत और सत्य उत्पन्न हुए। बृहस्पति, गौतम, संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य तथा ऋषिज-ये सभी गोत्र प्रवर्तक हैं। अङ्गिरा वंशीय आत्रेयायणि आदि लगभग शताधिक ऋषियों का वर्णन क्रमपूर्वक दिया गया है। इन ऋषियों में प्रवर-प्रथम अङ्गिरा द्वितीय बृहस्पति तथा तृतीय भरद्वाज कहे गये हैं। अत्रिवंश में उत्पन्न कर्दमायन तथा शारायणशाखीय गोत्रकर्ता मुनि हैं। इनके प्रवर श्याश्व, अत्रि और आर्चनानश तीन हैं। इसके अनन्तर अत्रि की पुत्री आत्रेयी से उत्पन्न प्रवरकर्ता ऋषियों का भी वर्णन है। अत्रि के पुत्र श्रीमान् सोम हुए इनके वंश में प्रसिद्ध विश्वामित्र हुए जिन्होंने तप के द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। इनके वंश में मधुच्छन्दा, देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभयादि ऋषि हुए। इनमें विश्वामित्र, देवरात तथा उद्दालक ऋषि प्रवर माने गये हैं। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, कश्यप कुल में आश्रायति, मेषकीरिटकायन, उदग्रज, माठरभोज आदि ऋषि हुए इनमें वत्सर, कश्यप तथा निध्रुव ये तीन प्रवर माने जाते

हैं। इसके अनन्तर वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मणों का वर्णन है। वशिष्ठ गोत्रीयों का एकमात्र प्रवर वशिष्ठ ही है। पराशर वंश के वर्णन प्रसङ्ग में निमि का आख्यान भी उल्लिखित है। वशिष्ठ ने नारद की बहन अरुन्धती से विवाह किया। उसके गर्भ से शक्ति नामक पुत्र हुआ, शक्ति के पुत्र पराशर हुए। गोत्रप्रवरानुकीर्तन के रूप में अगस्त्य, पुलह, पुलस्त्य और क्रतु की शाखाओं का भी वर्णन है।[1]

वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर धर्म ने दक्ष की कन्याओं के संयोग से देव-वंश को विस्तृत किया। धर्म के द्वारा अरुन्धती के गर्भ से पर्वतादि की उत्पत्ति हुई। धर्म से सोमपायी अष्ट वसुओं- धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभाव की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार मुहूर्त, साध्यगण तथा विश्वेदेव आदि का भी उल्लेख यहाँ प्राप्त है। धर्म के वंश में उत्पन्न ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन के विशेष पात्र माने गये हैं। अन्त में श्राद्धकर्म-विधि तथा पितृगाथा का वर्णन एवं महत्त्व प्रतिपादित है।

(२०४-२०६ अ.) धेनुदान, कृष्णमृगचर्मदान तथा वृषोत्सर्ग की विधि और माहात्म्य का वर्णन है। स्वर्णजटित सींग एवं चाँदी से जड़ी खुरयुक्त सवत्सा गाय ही दान में दी जानी चाहिए। वैशाख पूर्णिमा, चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण पर; माघ, आषाढ़ एवं कार्तिक की पूर्णिमा तिथि पर सूर्य के उत्तरायण रहते हुए द्वादशी तिथि को कृष्णमृगचर्म दान का विधान है। वृषोत्सर्ग- हेतु चयनित वृष के लक्षण, भी उल्लिखित हैं।

(२०८-२१३ अ.) सावित्री का उपाख्यान। इस उपाख्यान में सावित्री एवं सत्यवान् की कथा को आदर्श रूप में चित्रित किया गया है, जो हमारी संस्कृति का वैशिष्ट्य प्रतिपादन करती है। सावित्री को सत्यवान् द्वारा वन-शोभा का दर्शन कराना, यमराज द्वारा सावित्री को क्रम से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर प्रदान करना, सत्यवान् की यम से मुक्ति, सत्यवान् को जीवन-प्राप्ति, राजा की स्त्री सहित नेत्र ज्योति की तथा राज्यश्री की प्राप्ति की विस्तृत कथा वर्णित है।

(२१४-२१६ अ.) राज्यकृत्यवर्णन। अभिषिक्त राजा के प्रारम्भिक-कर्त्तव्य-विषयक प्रश्न करने पर मत्स्य ने मनु को बतलाया कि राजा को अभिषेक का जल सिर पर पड़ते ही तत्काल सुयोग्य मन्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। सहायकों के गुणों का भी विस्तृत रूप से वर्णन है। इसी प्रकार सेनापति, सारथि, भोजनाध्यक्ष, सान्धिविग्रहिक, देशरक्षक, वैद्य, गजाध्यक्ष, द्वारपाल, धनाध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, अस्त्राचार्य, अन्तःपुर का अध्यक्ष आदि पदों पर नियुक्त होने वाले व्यक्तियों के लक्षण तथा योग्यताएं बतलायी गयी हैं। युद्ध-विमुख न होना, प्रजापालन तथा ब्राह्मणशुश्रूषा-ये तीन राजा के कल्याणकारी धर्म हैं। इसके अनन्तर

---

१. इस प्रकरण में जो नाम कहे गये हैं उनमें कुछ भ्रष्ट पाठ हैं, ऐसा प्रतीत होता है। गोत्रप्रवर परक ग्रन्थों के आधार पर इन नामों को शुद्ध करना चाहिए।

राजकर्मचारियों के धर्म लिखित हैं। दुर्गनिर्माण की विधि दुर्गोपयोगी स्थान आदि की विशेषता प्रारम्भ में बतलायी गयी है। दुर्ग छह प्रकार के होते हैं। यथा- धन्व या धनु दुर्ग (जिसके चारों ओर मरुभूमि स्थित हो), महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा पर्वतदुर्ग।

(२१९-२२६ अ.) राजधर्म तथा राजनीति के सामान्य नियम प्रतिपादित हैं। राजकुमारों को धर्म-काम-अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, रथ, व्यायाम, शिल्प आदि की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। राजा के लिए करणीय तथा निषिद्ध कर्मों की विवेचना की गयी है। मित्रों के तीन प्रकार भी बतलाये गये हैं-१) जो पिता, पितामह आदि पूर्वजों के काल से चले आ रहे हैं; २) शत्रु का शत्रु; ३) जो बाद में किन्हीं कारणों से मित्र बनते हैं। राज्य के सात अङ्ग भी बतलाये गये हैं- स्वामी (राजा स्वयं), अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, कोश तथा मित्र। दैव तथा पुरुषार्थ का भी वर्णन किया गया है। साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल-इन सात प्रकार के प्रयोग राजनीतिज्ञों के लिए विहित हैं। राजा देवांश के कारण प्राणियों की रक्षा हेतु दण्ड का प्रयोग करने में स्वतन्त्र है। राजकर्तव्य के रूप में अग्नि, पार्थिव, इन्द्र, सूर्य तथा मारुत-व्रत भी बतलाये गये हैं।

(२२७-२३७ अ.) शान्ति-विधान का वर्णन है। दिव्य, अन्तरिक्ष, भौम त्रिविध उत्पातों के निवारण का भार राजा पर होता है। स्वयं का उत्कर्ष चाहने वाले को अन्तरिक्ष की-अभया एवं दिव्य की सौम्यशान्ति भी करणीय है। यज्ञार्थ सौम्यशान्ति प्रशस्त है। इसी प्रकार विभिन्न उपद्रवों के शमनार्थ अनेक शान्तियाँ बतलायी गयी हैं।

(२३८ अ.) ग्रहयज्ञादि का विधान वर्णित है। सुयोग्यब्राह्मणों से परामर्श कर कुण्डादि का निर्माण कराना चाहिए। ग्रहयज्ञ में एक हाथ गहरा, लक्षहोम में दो हाथ, कोटिहोम में चार हाथ गहरे कुण्ड का विधान है। यह यज्ञ दीर्घकालिक होता है।

(२३९-२४२ अ.) शकुन-विचार। राजा को अपनी यात्रा कब प्रारम्भ करनी चाहिए, यह उल्लिखित है। अङ्गस्फुरण विषयक शुभाशुभ शकुनों का विचार भी किया गया है। ललाट में स्फुरण होने पर पृथ्वीलाभ, अपाङ्गदेश के स्फुरण से स्त्री-भोग, नासिका से प्रीति-सौख्य, कुक्षि से प्रीति, पृष्ठ से पराजय, वक्षस्थल से शीघ्रविजय तथा पैरों के स्फुरण से उत्तमस्थान की प्राप्ति होती है। अनिष्ट की आशङ्का होने पर सुवर्ण के दान का विधान विहित है। स्वप्न-दर्शन-विचार (२४१ अ) स्वप्नों का विश्लेषण, यात्राकालिक मङ्गलामङ्गलसूचक शकुनों का विचार है।

(२४३-२४५ अ.) वामनावतारचरित असुरों द्वारा जब इन्द्रादि देव पराभूत हो गये तब अदिति ने भगवान् के अवतार हेतु तपस्या की। प्रसन्न होकर भगवान् ने अदिति से वरयाचना हेतु आग्रह किया। "इन्द्र त्रैलोक्य का राजा बने" ऐसा वर अदिति ने माँगा। कश्यप के अंशभूत तुम्हारे गर्भ से अवतार ग्रहण करूँगा- ऐसा भगवान् ने कहा। बलि के पितामह प्रह्लाद ने असुरों के निस्तेज होने का कारण बलि को बतलाया। भगवान् के

अवतार की बात प्रह्लाद द्वारा बतलाये जाने पर बलि ने कृष्ण की निन्दा की, जिसके कारण प्रह्लाद ने ऐश्वर्यहीनता का शाप दिया। बलि द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् की भक्ति का उपदेश दिया। इसके अनन्तर वामनावतार की कथा वर्णित है। भगवान् को बृहस्पति, वशिष्ठ आदि ने कृष्णमृगचर्म, कमण्डलु, दण्ड, अक्षसूत्र तथा श्वेत वस्त्र प्रदान किये। वामन बलि के यज्ञ में सम्मिलित होने हेतु प्रस्थान किये। इनके प्रस्थान के कारण पृथ्वी की अस्थिरता को देखकर बलि ने शुक्राचार्य से इसका कारण पूछा। शुक्राचार्य ने विष्णु के अवतार की कथा बलि को बतलायी तथा वामन को कुछ भी देने हेतु मना किया। परन्तु बलि ने कहा भगवान् के याचक रूप में आने पर मैं मना कैसे कर सकता हूँ, तदनन्तर वामन के द्वारा अग्निकार्य हेतु तीनपाद भूमि (ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्, २४५.४८क) माँगने पर बलि ने तीनपाद भूमि दे दी। वामन ने तीन पद में तीनों लोकों को माप लिया। इन्द्र को तीनों लोकों का अधिपति बनाया तथा बलि को सुतल नामक पाताल में स्थापित किया।

(२४६-२४७ अ.) वराहावतार-वर्णन। पृथ्वी के उद्धार के विषय में अर्जुन के प्रश्न का शौनक द्वारा समाधान। क्रम से प्रलय का विवेचन तथा संसार की सृष्टि का विस्तृत वर्णन है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय के कारण भगवान् ही हैं। प्रलय के सहस्रों वर्षों बाद तक पृथ्वी जल में निमग्न रही। प्रारम्भ में पृथ्वी अण्डाकृति थी। जगत् की संरचना हेतु इसके ऊर्ध्व एवम् अधोभाग का भेदन किया गया। उसका अष्टधा विभाजन हुआ। आकाश, पातालादि तथा पृथ्वी का वर्णन यहाँ किया गया है। विशाल पर्वतों के भार से जब पृथ्वी क्रमशः नीचे जाने लगी तब उसके उद्धारार्थ भगवान ने वराह रूप धारण किया। पृथ्वी द्वारा की गयी स्तुति में विष्णु, नारायण, हृषीकेश आदि नामों का निर्वचन उपलब्ध होता है। भगवान् ने पृथ्वी की रक्षा कर समस्त लोक की रक्षा की।

(२४८-२५० अ.) क्षीरोदमंथन। प्रारम्भ में अमृत की कथा वर्णित है। शङ्कर से शुक्राचार्य द्वारा सञ्जीवनी विद्या प्राप्त कर लेने के कारण दानवों का वर्चस्व तथा देवों का अपकर्ष होने लगा। तब ब्रह्मा ने देवों को उपदेश दिया कि दानवों के साथ मैत्री करके क्षीर-समुद्र का मंथन करो, जिससे अमृत की प्राप्ति होगी। ऐसा सुनकर देव बलि के समीप गये तथा कहा कि आप कृपया हमारा विरोध न करें अब हम आपके अनुचर हैं, हम लोग चलकर समुद्र का मंथन करें। इससे अमृत की प्राप्ति होगी, जिसका पान कर हम अमरत्व की प्राप्ति करें। देवों की बात मानकर दानव भी समुद्र-मंथन हेतु तत्पर हुए। तदनन्तर मन्दराचल की प्रार्थना की, साथ ही विष्णु की भी प्रार्थना देवों एव दानवों ने मिलकर की। मन्दराचल को मथानी तथा वासुकि नाग को रस्सी स्वरूप बना कर समुद्र-मंथन प्रारम्भ किया। पहले विष निकला। विष से भीत देवों ने पुच्छ की ओर तथा मुख की ओर दैत्यों ने लग कर शतवर्ष-पर्यन्त समुद्र का मंथन किया, जिससे क्रमेण चौदह वस्तुएँ (सोम, श्री,

सुरा, तुरग, कौस्तुभमणि, अमृत, पारिजात, कालकूट-हलाहल, धन्वन्तरि, मोहिनी, गजेन्द्र आदि) उत्पन्न हुई। देवों तथा दानवों ने शङ्कर की स्तुति की, शङ्कर ने कालकूट का पान कर उसे कण्ठ देश में स्थित कर लिया। राहु ने अमृत का पान देवों के मध्य बैठ कर किया। जिसे सूर्य एवं चन्द्र ने भगवान् को बतला दिया। भगवान् ने चक्र द्वारा राहु का शिर छेदन किया। देव-दानवों में युद्ध हुआ। अमृत को विष्णु के संरक्षण में दिया गया।

(२५१-२५६ अ.) वास्तु-यज्ञ विधान का वर्णन है। अन्धक के साथ युद्ध में शिव के मस्तक से निकले स्वेद-कणों से भयानक आकृति वाले वास्तु की उत्पत्ति हुई। तब शिव ने उसे शान्त किया। शिव एवं ब्रह्मा ने देवों से घर की प्रतिष्ठा के समय वास्तु देवता के रूप में वास्तु पूजा का सम्मान दिये जाने का वरदान दिया। गृह-निर्माण के काल के विनिश्चयन में मास, वार, नक्षत्रादि का विधान बतलाया गया है। भवन का निर्माण शुभ काल में ही किया जाना चाहिए। यह गृहनिर्माण के प्रारम्भ में भूमि का शोधन करना चाहिए। उसके अनन्तर वास्तु की कल्पना करनी चाहिए। भिन्न-भिन्न भवनों के लक्षण तथा गुण दोषादि विस्तृत रूप से उल्लिखित हैं। इसके साथ स्तम्भमान तथा भवन के किस ओर कौन सा शुभ वृक्ष लगाना चाहिए, इसकी भी व्यवस्था बतलायी गयी है। चतुःशाल, त्रिशाल, द्विशाल तथा एकशाल के साथ ही नन्द्यावर्त (पश्चिम द्वार हीन), वर्धमान (दक्षिण-द्वारहीन), स्वस्तिक (पूर्वद्वारहीन) तथा रुचक (उतरद्वारहीन) का भी वर्णन है। यदि भवन का विस्तार करना हो तो चतुर्दिक् करें, अन्यथा किस दिशा में करने से कौन सी हानि होती है ? इसका भी उल्लेख किया गया है। गृहनिर्माण में कौन सी लकड़ी उपर्युक्त होती है, इसकी भी विवेचना की गयी है।

(२५७-२६६ अ.) विष्णु की प्रतिमा का लक्षण तथा उसके आकार का स्वरूप वर्णित है। शंख-चक्र-गदा, पद्‌म लक्षणयुक्त; शिर, ग्रीवा, नासिका, कर्ण की स्पष्ट आकृति; अष्टभुज, चतुर्भुज, द्विभुज विष्णु की प्रतिमा निर्मित की जानी चाहिए। स्वर्ण, रजत, ताम्र, प्रस्तर, दारु तथा लौह से विष्णुप्रतिमा का निर्माण विहित हुआ है। प्रतिमा के अङ्गुलीमान से किस अङ्ग का परिमाण कितना हो, इसकी विस्तृत विवेचना की गयी है। इसी प्रकार वराह, वामन, मत्स्य, कूर्म, रुद्र आदि की प्रतिमाओं के आकार का प्रमाण वर्णित है। इसके अनन्तर अर्द्धनारीश्वर के विग्रह तथा अन्य देवों की प्रतिमाओं के आकार का प्रमाण प्राप्त होता है। पीठिका का लक्षण तथा लिङ्ग का लक्षण वर्णित है। प्रासाद के प्रमाण से ही लिङ्गमान का विधान विहित हुआ है। यहाँ लिङ्गों के नौ भेद भी परिगणित हैं।

(२६३-२६६ अ) देवप्रतिष्ठा-विधि का वर्णन है। प्रारम्भ में कुण्ड, मण्डप, वेदी आदि का प्रमाण, तदनन्तर प्रतिमा-प्रतिष्ठापनार्थ शुभ मास तथा तिथियों आदि की सूचियाँ दी गई हैं। आचार्य का लक्षण २६४ अ. में है। आचार्य को सभी अवयवों से पूर्ण, वेद मन्त्रों का ज्ञाता, पुराणतत्त्ववेत्ता, दम्भ तथा लोभ रहित, शौच-आचार-सम्पन्न, पाखण्डरहित, शत्रु-मित्र

में समभाववाला होना चाहिए। २६४वें अ. में अनेक वैदिकमन्त्रों (यथा-त्र्यम्बकं यजामहे), श्रीसूक्त, पवमानसूक्त, पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्तादि का उल्लेख है। देवाधिवास के विधिपूर्वक अनुष्ठान के लिए प्रतिष्ठा-विधि का निरूपण तथा प्रतिष्ठा में अन्नवस्त्रादि का दान एवं नृत्यगीतपूर्वक त्रिरात्रि, एक रात्रि अथवा पञ्चरात्रि, सप्तरात्रिपर्यन्त अधिवासोत्सव का विधान है। इससे सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त होता है। देव-स्नान की विधि भी वर्णित है।

(२६७-२६९ अ.) प्रासाद के निर्माण की विधि का वर्णन है। प्रारम्भ में प्रासाद के जीर्णोद्धार, उद्यान तथा गृह एवं नवीनप्रासाद के निर्माण तथा प्रासादपरिवर्तन के समय वास्तु-शान्ति अवश्य करने की विधि का विधान है। प्रासाद के परिमाण, नाम, स्वरूप, मण्डपलक्षण का निर्देश तथा २७ मण्डपों के नाम (यथा-पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, गजभद्र, श्रीवत्स, विजय, यज्ञभद्र, सिंहभद्र, श्यामभद्र, सुभद्र आदि) का कथन है। तदनन्तर इसके लक्षण तथा फल का उल्लेख है।

(२७०-२७२ अ.) कलियुग के भावी नृपों का विवरण है। पुलकादि वंशों के राज्य का कथन तथा उनके वंशनामों का विवेचन है। आन्ध्र, यवन, म्लेच्छ आदि राजाओं के राज्य का ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। अन्त में युगक्षय तथा कलियुग की उत्पत्ति वर्णित है।

(२७२-२८८ अ.) षोडश महादानों का प्रतिपादन है। ये दान हैं तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, कल्पपाद, गोसहस्र, हिरण्यकामधेनु, हिरण्याश्व, अश्वरथाख्य, हेमहस्ति, पञ्चलाङ्गल, विश्वचक्राख्य, हेमधरा, महाकल्पलता, सप्तसागर, रत्नधेनु, महाभूतघट। इन दानों की विधि तथा फल का कथन किया गया है।

(२८९-२९० अ.) कल्पों के नामोल्लेखपूर्वक उनकी संख्या, ब्राह्म, पाद्मपुराणों के श्रवण का फल एवं माहात्म्य का कथन है। अन्त में मत्स्य के अन्तर्धान होने की कथा वर्णित है। अन्तिमाध्याय में मत्स्यपुराण के समस्त विषयों का संक्षिप्त कथन तथा इस पुराण के पाठ का फल भी उल्लिखित है।

मत्स्यपुराण में उपलब्ध सुभाषित-

मौर्ख्यात् कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसन्ततिः।
अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जन्तुषु।।११.१६।।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।। ३४.१०।।

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः।
स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्तते पितृमातृषु।।३४.२१।।

सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं दैवाधीनं विन्दति नात्मशक्त्या।
तस्माद् दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित्।।३८.७।।

तपश्च दानं च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम्।।३९.२२।।

आचार्यो ब्रह्मणों मूर्त्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता वै मूर्त्तिरात्मनः।।२१०.२१।।

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम्।
धर्महीनस्य कामार्थौ बन्ध्यासुत समौ प्रभो।।२११.३।।

अकार्यः क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः।।१५७.३ ख।।
क्रोधेन नश्यते कीर्त्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।।१५७.४ क।।

कूर्मपुराण

संस्कृत वाङ्मय में पुराणों का एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। आस्तिक जगत् में श्रुति स्मृति के बाद पुराणों का ही प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है। क्योंकि इनमें वेदार्थ के उपबृंहण के साथ ही कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, उपनिषदादि के सिद्धान्तों का सरल भाषा में कथानकोपकथानक द्वारा स्पष्टीकरण किया गया है। जिससे सामान्य बुद्धिवाला व्यक्ति भी वैदिक सिद्धान्तों को जानकर शुभकर्मानुष्ठान द्वारा सद्गति को प्राप्त कर सकता है।

महापुराण, उपपुराण, औपपुराण, स्थलपुराणादि भेदों से पुराण वाङ्मय अत्यन्त विशाल है। उनमें व्यास द्वारा संग्रहित होने के कारण महापुराणों का विशिष्ट महत्त्व है, जिनकी संख्या अट्ठारह हैं। कूर्मपुराण इनमें अन्यतम है। पुराणगणना क्रम में इसका क्रम पन्द्रहवां है। नारद पुराण एवं मत्स्य पुराण में इसका क्रम १५, इसके अध्याय ९९ तथा इसकी श्लोक संख्या क्रमशः १७ तथा १८ हजार बतलायी गयी है। किन्तु देवीभागवत एवं श्रीमद्भागवत में इसका क्रम १७वां बतलाया है और श्लोक संख्या १७ हजार है।[1] कूर्मपुराण स्वयं अपना क्रम पन्द्रहवां स्वीकार करता है। (कू.पु. पूर्वा. १।१३-१५)

पुराणों के वर्गीकरण की दृष्टि से पद्मपुराण ने कूर्मपुराण को तामस पुराण कहा है। (मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च। आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।। पद्म उ.ख. २३६।१७), गरुडपुराण ने मत्स्यपुराण के साथ इसकी गणना सात्विक अधम के रूप में की है। मत्स्यपुराण ने इसकी गणना शिव के प्राधान्य के आधार पर तामस पुराण के रूप में तथा स्कन्द पुराण केदार खण्ड के अनुसार यह शिवमहिमा प्रकाशक पुराण है। भविष्यपुराण ने ६ राजसपुराणों के अन्तर्गत इसकी गणना की है। (भवि. पु. प्रति. पर्व २८/१२)। कुछ आधुनिक विद्वानों ने पुराणवर्णित विषयों के आधार पर पुराणों का विभाजन कर पुराणों के छः वर्ग स्वीकार किये हैं। जिसके अनुसार इसे वाराह और मत्स्य इन दो पुराणों के साथ छठे वर्ग में रक्खा है जिनमें पाठ परिवर्तन के आधिक्य से इनका मूल ही सन्दिग्ध हो गया है। (कल्याण संस्कृति अङ्क पृ.० ५२२-५५३)

कूर्म-पुराण चार संहिताओं में विभक्त है - (१) ब्राह्मी संहिता (२) भागवती संहिता (३) सौरी संहिता और (४) वैष्णवी संहिता जिनमें धर्मार्थ मोक्ष की चर्चा है-

इदं तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः।।

---

१. सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम्-दे.भा. १।३।११, श्री.भा. १२।०७।२३-२४, १२।१३।०८

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिता।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थ मोक्षदाः।। (कू.पु. पूर्वार्द्ध १।२१-२२)

इनमें प्रथम ब्राह्मी संहिता के दो भाग हैं-पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। द्वितीया भागवती संहिता पांच पादों में विभक्त है। इस कारण इसे पञ्चपदी भी कहते हैं। तीसरी सौरी संहिता और चौथी चार पादों में विभक्त वैष्णवी संहिता है जो चतुष्पदी भी कहलाती है। इसके ब्राह्मी संहिता में ६०००, भागवती में ४०००, सौरी संहिता में २००० और वैष्णवी संहिता में ५००० इस प्रकार कुल १७००० श्लोक हैं जिनमें पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्ति के उपाय निर्दिष्ट हैं।

वर्तमान में इन चार संहिताओं में से केवल एक ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है। दुर्भाग्य से अन्य तीन भागवती सौरी और वैष्णवी संहिता दृष्टिगोचर नहीं है। उपलभ्यमान ब्राह्मी संहिता के दो भाग हैं-पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध, जिसमें पूर्वार्द्ध में ५१ तथा उत्तरार्द्ध में ४४ कुल मिलाकर ६५ अध्याय और ६००० श्लोक हैं[1]। यह एक शैवपुराण है।

नामकरण का अभिप्राय-पुराणों का नामकरण प्रायः उनके वक्ता, श्रोता या प्रतिपाद्य देवता के नाम पर किया गया है। भगवान् विष्णु ने समुद्रमन्थन के समय कूर्मरूप धारण कर इन्द्रद्युम्न नामक विष्णुभक्त राजा की कथा प्रसङ्ग में मुनिजनों के प्रति इस पुराण के कथन के कारण यह वक्ता के नाम पर कूर्म पुराण इस नाम से प्रख्यात हुआ।

इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा।
उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः।।
(कू.पु. पूर्वा. १।१३१)

एतत् पुराणं सकलं भाषितं कूर्मरूपिणा।
साक्षाद् देवाधिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना।।
(कू.पु. उत्तरार्द्ध ४६/१२२)

मत्स्य एवं नारदीय पुराणों के अनुसार जहाँ लक्ष्मीकल्पीय विषयानुसार राजा इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग में कूर्मरूपी भगवान् विष्णु ने धर्मार्थकाममोक्ष विषयक माहात्म्य ऋषियों के प्रति अनुकम्पा करते हुए कहा है, वह कूर्मपुराण है।[2] इस प्रकार [illegible] ण यह नाम कूर्मरूपी विष्णु के वक्तृत्व के आधार पर रक्खा है यह बात उपर्युक्त पुराणों के प्रमाणों से स्पष्ट है।

---

१. किसी किसी संस्करण में पूर्वार्द्ध में ५३ तथा उत्तरार्द्ध में ४६ इस प्रकार कुल ९९ अध्याय हैं। इन अध्यायों की संख्या में अन्तर होने का कारण अध्यायगत विषयों का एक या एक से अधिक अध्यायों में बांटकर कहीं कहीं विवेचन किया गया है।

२. मत्स्यपुराण ५३।४६-४७, नारदीयपुराण १०६/१-२ १/२

कूर्मपुराण की अवतरण प्रक्रिया - इस कूर्मपुराण के आदिवक्ता स्वयं नारायण हैं। नारायण से नारद ने, नारद से गौतम ने, गौतम से पराशर ने और पराशर से हरिद्वार में मुनीश्वरों ने सुना है। एक दूसरी परम्परा के अनुसार इस पुराण को प्रथम ब्रह्मा ने अपने मानस पुत्र सनक् को, सनक् ने सनत्कुमार को और योगवेत्ता देवल को और देवल से पञ्चशिख को प्राप्त हुआ। दूसरी तरफ सनत्कुमार से व्यास को, व्यास से सूत को और सूत ने शौनक को सुनाया -

श्रुत्वा नारायणाद् देवान्नारदो भगवान् ऋषिः।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः।
पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वरान्।
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्।।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते।
सनत्कुमाराय च तथा सर्वपापप्रणाशनम्।।
सनकाद् भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः।
अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम्।।
सनत्कुमारात् भगवान् मुनिः सत्यवती सुतः।
एतत् पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसञ्चयम्।।
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम्।
ऊचिवान् वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने।।

कू.पु. उत्त. ४६।१४०-१४५

कूर्मपुराण का देशकाल - कूर्म पुराण के रचनाकाल के विषय में कुछ पाश्चात्य एवं आधुनिक विद्वानों का अभिमत है कि इसमें भैरव, वाम, यामल तन्त्रशास्त्र का उल्लेख होने से यह पुराण तान्त्रिकों से पीछे का बहुत आधुनिक है। विष्णुपुराण का काल ई.पू. दूसरी शताब्दी से ई. की प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ५वीं शताब्दी में जब भारतीयों ने यवद्वीप में पदार्पण किया तब वे रामायण, महाभारत, ब्रह्माण्डपुराणादि ग्रन्थ अपने साथ लाये थे। इस ब्रह्माण्डपुराण का बालि द्वीप के शैव ब्राह्मणों में वेद के समान अत्यधिक आदर है और यहाँ की कितनी ही भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है। डा. फ्रेड्रिक ने ओलन्दाज भाषा में सबसे पहले विस्तृत विवरण भी प्रकाशित किया है - 'अग्रे ससर्ज भगवान् मानसानात्मनः समान्।'' यह श्लोक ब्रह्माण्डपुराण में ६/६७ तथा ''ततो देवासुर पितृन् मनुष्याख्यो ऽसृजत् प्रभुः।।'' यह श्लोक ब्रह्माण्डपुराण के ८/२ में है। (अष्टादश पुराण दर्पण, पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र पृ. २३) वर्तमान ब्रह्माण्डपुराण की उस समय के ब्रह्माण्डपुराण से अभिन्नता है। इसका अर्थ है कि दो हजार वर्ष से भी

पहले यह पुराण विद्यमान था। विष्णुपुराण में सभी अट्ठारह पुराणों के नाम हैं और ब्रह्माण्ड का क्रम अठारहवां है तो शेष पुराण भी निश्चय ही प्राचीन हैं। इसी प्रकार आपस्तम्ब धर्मसूत्र (डा. व्हूलर के अनुसार तीसरी शताब्दी) के आधार पर भी उपर्युक्त अष्टादशपुराण दर्पण ग्रन्थ में भविष्य पुराण का उदाहरण देकर पृथक १८ पुराणों का होना प्रमाणित किया है।[1] अनेक प्रमाणों के आधार पर इसी ग्रन्थ में शङ्कराचार्य का समय २२०० वर्ष से भी अधिक प्राचीन सिद्ध किया है।[2] मठ परम्परा से भी आचार्य शङ्कर का काल कुछ इसी प्रकार माना जाता है।

वैसे तो पुराणों की परम्परा बहुत प्राचीन है किन्तु वेद की ही तरह इसकी भी मौखिक ही परम्परा रही है। कालान्तर में इन्हें लिखा गया और इसके मूल रूप में कुछ अंश जोड़े या घटाये भी गये हो सकते हैं। कुछ अंश जो एक पुराण में हैं वैसे ही दूसरे में भी मिल जाते हैं।

यहाँ हम कूर्म-पुराण में तन्त्र सम्बन्धी विषय आने के कारण मात्र से इसे अर्वाचीन नहीं मान सकते। शङ्कराचार्य जी के समय ६४ तन्त्र विद्यमान थे जिनका उल्लेख उनके आनन्द लहरी ग्रन्थ में मिलता है- (चतुः षष्ठयाः तन्त्रैः सकलमभिधाय भुवनम्'।)। इतना ही नहीं ईसा के दूसरी शताब्दी में विद्यमान प्रसिद्ध विद्वान् नागार्जुन ने अपने लक्षापुरी नामक ग्रन्थ में पच्चीस तन्त्रों का उल्लेख किया है –

शाम्भवे यामले शाक्ते मौले कौलीय डामरे।
स्वच्छन्दे नाकुले शैवे राजतन्त्रेऽमृतेश्वरे।।
इत्येतदागमोक्तश्च वक्त्रात् वक्त्रेण यच्छ्रुतम्।
तत् सर्वं समुधृत्य दध्नो घृतमिवादरत्।। – लक्षापुरी ६।७०

इससे सिद्ध होता है कि तन्त्र प्राचीन समय में वैसे ही विद्यमान एवं समादृत थे।

बारहवीं शताब्दी में गौडाधिप बल्लाल सेन द्वारा उनके ग्रन्थ दानसार में ब्रह्म, मत्स्य, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, वराह, विष्णुधर्मोत्तर, कालिका, नन्दी, नरसिंह और साम्बादि पुराणोपपुराणों से वचन उद्धृत किये हैं वहीं कूर्मपुराण के भी वचन उद्धृत है। तथा हेमाद्रि में भी प्रायः समस्त पुराणों के वचन उद्धृत हुए हैं। (अष्टा.पुरा. दर्पण पृ. २४) अतः इस पुराण की निम्न सीमा १२वीं शताब्दी से पीछे की नहीं हो सकती।

आचार्य विश्वरूप ने (८०० से ८५० ई.) ने याज्ञवल्क्य स्मृति की स्वप्रणीत बालक्रीडा टीका में पुराणों के विषय में दो महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति

१. "आभूत संप्लवास्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गे बीजार्था भवन्तीति" भविष्यतपुराणे-आप. धर्मसूत्र २।२४।५।६
२. पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत अष्टादश पुराण दर्पण पृ. २८-३०

(३।१७०) में विश्व के परिणाम के विषय में सांख्य सिद्धान्त का वर्णन किया गया है। इस विषय में विश्वरूप का कथन है–'एषा प्रक्रिया सृष्टि प्रलयवर्णनादौ सर्वत्र पुराणादिष्वपि।।' ५८ कूर्म पुराण १।४।६ में भी यही बात कही गयी है।

आचार्य शङ्कर ने शारीरक भाष्य के अनेक स्थलों पर पुराण तथा उसके विषय का निर्देश किया है। पुराण स्मृति शब्द द्वारा ही सर्वत्र निर्दिष्ट है -

(५०) स्मृतिरपि -

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।। शां.भा. १।३।२८

यह वचन कूर्मपुराण (१।२।२८) में भी उपलब्ध होता है जिसमें केवल अन्तर इतना है, 'आदौ वेदमयी भूतामतः' जो स्पष्टतः अशुद्ध प्रतीत होता है।

इसी प्रकार – (५१) **नामरूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।**
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः।।

यह श्लोक कूर्म पुराण (१।७।६७) में भी किञ्चित शब्द परिवर्तन के साथ विद्यमान है:-

नामरूपञ्च भूतानां प्राकृतानां प्रपञ्चनम्।
वेद शब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः।।

कूर्मपुराण की ईश्वरगीता और व्यासगीता के श्लोक श्रीशङ्कराचार्य जी ने अपने विष्णुसहस्रनाम भाष्य एवं सनत्सुजातीय भाष्य में प्रमाण रूप से लिये हैं। ईश्वरगीता के ऊपर विज्ञानभिक्षु का भाष्य भी है।

आचार्य शङ्कर ने १।३।३० के भाष्य में प्रतिपादित किया है कि धर्म और अधर्म की फलरूपा उत्तरा सृष्टि उत्पन्न होने के समय पूर्व सृष्टि के समान ही निष्पन्न होती है। इस प्रसङ्ग में स्मृतिवचन (पुराणवचन) के रूप में दो श्लोकों को उद्धृत किया है-

(५२) तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद् भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते।।

ये श्लोक कूर्म पुराण में भी प्राप्त होते हैं –

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टौः प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद् भाविताः प्रपद्यन्ते तस्माद् तत् तस्य रोचते।।
कू.पु. १।७।६४-६६

उपर्युक्त दोनों श्लोकों में अक्षरशः साम्य है। कूर्मपुराण की ईश्वरगीता और व्यासगीता के श्लोक श्रीशङ्कराचार्य जी ने अपने विष्णु सहस्रनाम भाष्य एवं सनत्सुजातीय भाष्य में प्रमाणरूप से लिये हैं। ईश्वरगीता के ऊपर विज्ञान भिक्षु का भी भाष्य है।

उपर्युक्त विवेचन से कूर्म पुराण की उपरी सीमा यदि शङ्कराचार्य के काल को ७वीं शताब्दी मानते हैं तो भी उससे पूर्व की होगी।

जहाँ तक कूर्म पुराण के रचना स्थल का प्रश्न है यह हिमालय का ही क्षेत्र रहा होगा। वर्तमान कुमायूँ मण्डल जिसका प्राचीन नाम कूर्माञ्चल रहा है। स्कन्दपुराणान्तर्गत मानस-खण्ड के ६३ ६४ अध्यायों में कूर्माचलाख्यान वर्णित है-

यत्र कूर्मस्वरूपेण देवदेवो जनार्दनः।
तस्थौ चान्द्वत्रयं विप्रा महेन्द्राद्यैर्निषेविनः।
ततः प्रभृति वै विप्राः कूर्मपादाङ्कितो गिरिः।
कूर्माचलेति विख्यातो दशयोजन विस्तृतः।।- मा.ख. ६४/२-३

यहीं भगवान् विष्णु ने कूर्म रूप में प्रकट होकर ऋषियों के प्रति उपदेश किया था। आज भी वह स्थान कूर्मशिला या कानदेव के नाम से विख्यात है। कूर्म पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण की कैलाश जाकर तपस्या करने का भी वर्णन है। (अ. २५ कू.पु.) कृष्ण के पास मार्कण्डेय का आना, जिनका आश्रम हिमालय के पुण्पभद्रा नदी के तट पर है, शिव की आराधना, शिवलिङ्ग की महिमा कथन ये सब इस पुराण का रचना स्थल हिमाचल क्षेत्र विशेष कर कूर्मांचल क्षेत्र की ओर होने का सङ्केत करता है जिसकी मानसखण्ड के अनुसार प्राचीन सीमा कैलास मानसरोवर तक थी। वस्तुतः कैलास मानसरोवर इसका केन्द्र बिन्दु ही है। भीम, अर्जुन, कर्ण, हिडिम्ब आदि कई महाभारत के पात्रों का इस क्षेत्र से सम्बन्ध रहा है। हरिवंश में भी कृष्ण का इस क्षेत्र में आकर तपस्या करने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है।

हिमालय का वैदिक काल में हैमवत नाम से प्रसिद्ध होने के कारण ही कूर्मपुराण में ग्यारहवें अध्याय में हैमवती माहात्म्य में देवी का हैमवती नाम होगा, हिमालय द्वारा देवी की स्तुति, देवी द्वारा हिमालय को उपदेश, तेरहवें अध्याय में पृथु के पौत्र 'सुशील' का हिमालय के 'धर्मपदवन' में जाना, वहाँ श्वेताश्वतर मुनि का उपदेश प्राप्त कर पाशुपत होना, चौदहवें अध्याय में हरिद्वार में दक्ष द्वारा यज्ञ किया जाना, पुनः उन्नीसवें अध्याय में सूर्यवंशीय राजा वसुमना का ऋषियों की आज्ञा पाकर हिमालय जाना, वहां तप कर शिवपद की प्राप्ति,

बाईसवें अध्याय में चन्द्रवंशीय राजा दुर्जय का उर्वशी की खोज में हिमालय पार कर हेमकूट और सुदूर महामेरु पर जाना वहाँ से लौटकर पुनः मानसरोवर आकर उर्वशी को प्राप्त करना, हिमालय पर उपमन्यु के आश्रम में श्रीकृष्ण का जाना, गरुड की द्वारका से श्रीकृष्ण की खोज में हिमालय यात्रा, ये सब आख्यान कूर्म पुराण की रचना हिमालय क्षेत्र में होने की पुष्टि करते हैं।

कूर्म पुराण और पञ्चलक्षण -

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्'

इन पञ्चलक्षणात्मक साहित्य को ही पुराण वाङ्मय कहा जाता है। जिसमे सर्गसृष्टि (जगदुत्पत्ति), प्रतिसर्ग-समस्त दृश्यमान प्रपञ्च का प्रलय, वंश-देवर्षिमनुष्यों की उत्पत्ति परम्परा, मन्वन्तर- सृष्ट्यादि का कालव्यवस्थापन, वंशानुचरित - उन उन वंशों में उत्पन्न मनुष्य, राजर्षि, महर्षि के विषय में वक्तव्य। कूर्म पुराण में ये सभी लक्षणसम्यक रीति से घटते हैं।

सर्ग - कूर्म पुराण में दूसरे अध्याय में ब्रह्मा द्वारा नौ मानस पुत्रों तथा चार वर्णों की सृष्टि, ६वें अध्याय में सांख्य सिद्धान्त से ब्रह्माण्ड की सृष्टि, ७वें अध्याय में नवविधा सृष्टि, ८वें अध्याय में मनु-शतरूपा की सृष्टि, १०वें अ. सनकादि, रुद्र सृष्टि, १५वें दक्ष सृष्टि, १८वें में कश्यप पुलस्त्यादि की सृष्टि, ४८वें अध्याय में अव्यक्त से सृष्टि और भी अन्य अध्यायों में सृष्टि का विस्तार वणित है।

प्रतिसर्ग - कूर्म पुराण के ५वें अध्याय में प्रतिसर्ग का वर्णन विशेष कर प्राकृत प्रलय का वर्णन प्राप्त होता है। प्रकारान्तर से अन्यत्र भी वर्णन है।

वंश - इसमें १२वें अ. भृगु, मरीचि, पुलस्त्य, अत्रि तथा १८वें अ. कश्यप, वसिष्ठादि से उत्पन्न देव, मनुष्य, ऋषि, दानवादि वंशों की चर्चा है। २३वें अ. में यदुवंश वर्णन है।

मन्वन्तर - कूर्म पुराण के ५वें अ. मन्वन्तर तथा काल की गणना, ४६वें अ. में स्वारोचिव से वैवस्वत मन्वन्तर तक के देवता, सप्तर्षि इन्द्रादि का वर्णन, ८वें में स्वायम्भुव मन्वन्तर की चर्चा है। इसी प्रकार १३वें अध्याय में स्वायम्भुव और चाक्षुष मनु की उत्पत्ति वर्णित है।

वंशानुचरित - प्रह्लाद, अन्धक, बलि, वामन, व्यास, शुकदेव, युवनाश्व, वसुमना, श्रीराम, जयध्वज, दुर्जय, उपमन्यु, श्रीकृष्ण, शङ्कुकर्ण, अर्जुन, सती और देवी सीता, सनत्कुमार, इन्द्रद्युम्न आदि राजर्षि, महर्षि और मनुष्यों के चरित्र वर्णित हैं।

इसी प्रकार भागवत, ब्रह्मवैवर्तादि में दिये गये दश लक्षण भी घटित हो सकते हैं। स्थान लक्षण से सम्बद्ध भूगोल-खगोल वर्णन इसके पूर्वार्द्ध में ३८ से ४८ अध्यायों में प्राप्त है। आश्रय तत्व के रूप में शिव की चर्चा सर्वत्र उपलब्ध है। वही प्रत्यक्ष शिव रूप से या

नारायण के रूप में इसके प्रतिपादन हैं। विसर्ग सृष्टि विस्तार भी अनेक अध्यायों में देखा जा सकता है। माया जनित अन्यथा रूप त्यागकर स्वस्वरूप में स्थित होकर मुक्ति प्राप्ति के उपाय भी ईश्वर गीता व अन्यत्र भी वर्णित हैं।

कूर्मपुराण संस्करण तथा पाण्डुलिपि

१. कूर्मपुराण प्रकाशक गुरुमण्डल ग्रन्थमाला सीरीज नं. XXII
मनसुखराय मोरे ट्रस्ट, ५ क्लाइव रोड कोलकत्ता सन् १६६२

२. कूर्मपुराण आंग्लानुवाद पाठसमीक्षात्मक संस्करण, काशीराजट्रस्ट दुर्ग, रामनगर वाराणसी।

३. कूर्मपुराण श्लोकानुक्रमणी सहित मूल मात्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

४. ,, ,, पाठ समीक्षात्मक संस्करण श्री आनन्दस्वरूप गुप्त ,,

५. ,, ,, आंग्लानुवाद सहित श्री जी.व्ही. टैगोर ,,

६. कूर्मपुराण - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृतसंस्थान, वेद नगर, बरेली

७. कूर्मपुराण - करुणा एस. त्रिवेदी, मोतीलाल बनारसी दास

८. कूर्मपुराण - (लूवम २०-२१) ,, ,,

६. कूर्मपुराणम् - नाग प्रकाशन ,, जवाहर नगर, दिल्ली

१०. कूर्मपुराणाङ्क - मूल हिन्दी अर्थ सहित - गीता प्रेस गोरखपुर

पाण्डुलिपि - सरस्वती भवन पुस्तकालय सं.सं. वि.वि. वाराणसी

हस्तलिखित ग्रन्थविवरण पञ्जिका खण्ड ४

क्र.	ग्रन्थ संख्या	पत्र संख्या	आकर	पंक्ति	अक्षर	लिपि	लिपिकाल	पूर्णपूर्ण
१.	१४२७८	१-६० ६-२३८	१०" x ६.३"	१३	३८	देवनागरी	श.सं. १८३६	पूर्ण
२.	१५४७०	१-१०३	१३.४" x ६.३"	११	४१	देवनागरी	-	पूर्ण
३.	१५७२६	१-४० ४०-२२२	१२.१" x ६.५"	११	३२	देवनागरी	श.सं. १८२६	पूर्ण
४.	१५७६१	५६-१२३ १२२-१४३ १६८	१३.७" ग ५.७"	१२	४०	देवनागरी	-	अपूर्ण

कूर्म पुराण की कथा वस्तु - जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वर्तमान में कूर्म पुराण की चार संहिताओं में से केवल एक संहिता ब्राह्मी ही उपलब्ध होती है जो दो भागों में विभक्त है। जिसकी कथा वस्तु इस प्रकार है- भारत वर्ष के अधिष्ठाता भगवान नर-नारायण, वाणी की अधिष्ठात्री भगवती देवी सरस्वती, भगवान् लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण

और पुराण विद्या के आचार्य भगवान व्यासादि को नमस्कार कर जय (रामायण, महाभारत पुराणादि) का पाठ करना चाहिये। इस श्लोक से मङ्गलाचरण के बाद मूल कथा प्रारम्भ होती है।

अ. १ से अ. ५ तक-इसके प्रथम अध्याय में सूत जी की उत्पत्ति, अपनी कथा से अपने गुरु व्यास देव को रोमाञ्चित करने से रोमहर्षण नाम पड़ना, (१३-१५ श्लोकों में) ब्रह्म से ब्रह्माण्ड पर्यन्त अठारह महापुराणों एवं श्लो. १७ से २० तक सनत्कुमार से भार्गव पर्यन्त अठारहउपपुराणों की परिगणना की है। उसके बाद समुद्र-मन्थन से विष्णुमाया के प्राकट्य की कथा है। दुर्वासा के शाप से श्रीविहीन देवताओं का ब्रह्मा के पास जाना, ब्रह्मा का उनको लेकर नारायण के पास जाना, नारायण के आदेश से समुद्रमन्थन दैत्यों की सहायता से सम्पन्न करना, मन्दराचल जिसका मथनी के रूप में प्रयोग किया गया था जब नीचे जाने लगा तब भगवान् महाविष्णु ने विशालकाय कूर्म रूप धारण किया है। भगवान का यह रूप एक लाख योजन जम्बू द्वीप के समान विस्तृत था। (कू.पु. २।६।२७-२८) यहाँ कुल चौदह रत्न अमृत सहित निकले हैं। इन्हीं कूर्म-भगवान् ने नारदादि ऋषियों तथा इन्द्रादि देवताओं को समस्त कूर्मपुराण सुनाया है। यही प्रसन्नवदना मङ्गलमयी दिव्य शोभा से सुसम्पन्न मूलप्रकृति रूपा महामाया नारायणी भगवती लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन है। इसी अध्याय में इन्द्रद्युम्न का आख्यान वर्णित है। जन्मान्तर के विष्णु के कूर्मरूप के उपासक एक भगवद्भक्त राजा, भगवान् के परम प्रिय धाम श्वेतद्वीप में दुर्लभभोगों को भोगने के बाद शेषपुण्य से इन्द्रद्युम्न ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुए। पूर्व संस्कार से इस जन्म में भी भगवद् आराधन में ही उनका समय व्यतीत होता था। उन पर प्रसन्न होकर लक्ष्मी ने प्रगट होकर अपनी ममता प्रकट की तो नारायण के ज्ञानोपदेश से, ब्रह्मादि लोकों को जाते हुए अन्त में सूर्यमण्डल में प्रवेश कर मुक्त हो गये। उसके बाद कूर्म पुराण को आगे मोक्ष प्रदान करने वाला बतलाकर इसकी महिमा का गान किया गया है।

द्वितीय अध्याय में विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा का प्रादुर्भाव, भगवान् रुद्र तथा लक्ष्मी का प्रादुर्भाव, ब्रह्मा द्वारा भृग्वादि नौ मानसपुत्रों तथा ब्राह्मणादि चार वर्णों की सृष्टि, वेद ज्ञान की महिमा, ब्रह्मसृष्टि का वर्णन, वर्ण तथा आश्रम धर्म, सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गृहस्था श्रम का माहात्म्य, चारों पुरुषार्थों में धर्म की महिमा त्रिदेवों का ऐक्य, त्रिपुण्ड, तिलक तथा भस्म धारण की महिमा वर्णित है। यहाँ शिवभक्तों को शिवलिङ्ग और श्वेतभस्म का त्रिपुण्ड्र तथा विष्णु भक्तों को चन्दन कस्तूरी आदि के जल से सुगन्धित जल से त्रिशूलाकृति तिलक धारण करना चाहिये। (कू. पु. १।२।१००-१०२)

तीसरे अध्याय में आश्रम धर्म का वर्णन, सन्यास ग्रहण करने का क्रम, ब्रह्मार्पण का लक्षण और निष्काम कर्मयोग की महिमा बतलायी गयी है।

चौथे अध्याय में सांख्य सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड की सृष्टि का क्रम, पञ्चीकरण प्रक्रिया तथा परमेश्वर के विविध नामों का निरूपण करते हुए अन्त में 'सर्व ब्रह्ममयं जगत्' का प्रतिपादन किया है।

पाँचवें अध्याय में ब्रह्माजी की आयु, युग, मन्वन्तर, कल्प, आदि काल की गणना, प्राकृत प्रलय तथा काल की महिमा का वर्णन किया गया है।

६ अध्याय से १० अध्याय तक - छठे अध्याय में नारायण नाम के निर्वचन के साथ वाराह रूप धारी नारायण द्वारा पृथ्वी का उद्धार, और सनकादि ऋषियों द्वारा उनकी स्तुति का वर्णन है।

सातवें अध्याय में प्राकृत वैकृत भेद से नवधा सृष्टि, ब्रह्माजी के मानस पुत्रों का आविर्भाव, ब्रह्माजी के चारों मुखों से चारो वेदादि की उत्पत्ति का वर्णन है।

आठवें अध्याय में सृष्टि क्रम में ब्रह्माजी से मनु एवं शतरूपा का प्रादुर्भाव स्वयम्भुव मनु के वंश का वर्णन, दक्ष प्रजापति की कन्याओं का वर्णन तथा उनका विवाह, धर्म तथा अधर्म की सन्तानों का विवरण दिया गया है।

इसका नौवाँ अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है इसमें शिव और विष्णु के एकत्व का प्रतिपादन किया गया है। (एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनुः। कू.पु. १।९।७७) इसके पूर्व शेषशायी नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्माजी का प्राकट्य, विष्णु माया से मोहित होकर ब्रह्मा का विष्णु से विवाद, भगवान् शङ्कर का प्राकट्य, विष्णु द्वारा ब्रह्मा के प्रति शिव महिमा का वर्णन तथा ब्रह्मा द्वारा शिव की स्तुति का वर्णन है।

दसवें अध्याय में भगवान् विष्णु द्वारा मधु-कैटभ का वध, नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनके द्वारा सनकादिकों की सृष्टि, ब्रह्मा से रुद्रोत्पत्ति रुद्र की आठ मूर्तियों, आठ नामों और आठ पत्नियों का वर्णन, रुद्र, द्वारा अनेक रुद्रों की उत्पत्ति और वैराग्य ग्रहण, ब्रह्मा द्वारा रुद्र स्तुति पूर्वक उनकी महिमा का गान, रुद्र द्वारा ब्रह्मा को ज्ञान की प्राप्ति, महादेव का त्रिमूर्तित्व (स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टि हेतोर्विनिर्मितः। ममैव दक्षिणादङ्गत वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः।। (कू. पु. १।१०।७६) और ब्रह्मा के द्वारा कृत विविध सृष्टि का वर्णन है।

११ अध्याय से १५ अध्याय तक - इन अध्यायों में देवी का विशिष्ट चरित्र वर्णित है। ग्यारहवें अध्याय में प्रथम सती और पार्वती के रूप में पुनः आविर्भाव, देवी माहात्म्य, हैमवती माहात्म्य, देवी का अष्टोत्तर सहस्रनाम स्तोत्र, हिमवान् द्वारा देवी की स्तुति तथा उसे देवी का उपदेश और देवी सहस्रनाम स्तोत्र के जप की महिमा वर्णित है।

बारहवें अध्याय में सृष्टि वर्णन को आगे बढ़ाते हुए दक्ष की अन्य कन्याओं से भृगु, मरीचि, पुलस्त्य तथा अत्रि द्वारा उत्पन्न सन्तानों का वर्णन उञ्चास अग्नियों, पितरों एवं गङ्गा के आविर्भाव की कथा वर्णित है।

कूर्म पुराण की ब्राह्मी संहिता के पूर्वार्द्ध के इस तेरहवें अध्याय में, स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन, चाक्षुष मनु की उत्पत्ति, महाराज पृथु का आख्यान, पृथु का वंश वर्णन, पृथु के पौत्र सुशील का रोचक आख्यान, सुशील को हिमालय के 'धर्मपद' नामक वन में महापाशुपत श्वेताश्वतरमुनि के दर्शन तथा उनसे पाशुपत व्रत की दीक्षा ग्रहण, दक्ष के पूर्व जन्म का वृत्तान्त, पुनः दक्षप्रजापति के रूप में आविर्भाव, दक्ष द्वारा शिव का अपमान, सती द्वारा देह त्याग तथा शङ्कर का दक्ष को शाप इन विषयों का वर्णन किया है।

चौदहवें अध्याय में हरिद्वार में दक्ष द्वारा यज्ञ का आयोजन, यज्ञ में शङ्कर का भाग न देखकर दधीचि द्वारा दक्ष की भर्त्सना तथा यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणों को शाप, देवी पार्वती के कहने पर शङ्कर द्वारा रुद्रों, भद्रकाली तथा वीरभद्र की उत्पत्ति, वीर भद्रादि द्वारा दक्षयज्ञ विध्वंस, शिव पार्वती का यज्ञस्थल में प्राकट्य, भयभीत दक्ष द्वारा शिव पार्वती की स्तुति कर वर प्राप्त करना ब्रह्मा द्वारा दक्ष को उपदेश, शिव विष्णु के ऐक्य का प्रतिपादन और दक्ष द्वारा शिव की शरण जाने की कथा का वर्णन है।

पन्द्रहवें अध्याय में अन्धकासुर का दिव्य आख्यान वर्णित है। इसके पूर्व दक्षकन्याओं दिति आदि की सन्ततियों का वर्णन, आदि दैत्यों हिरण्य कशिपु का नृसिंह द्वारा तथा हिरण्याक्ष का वराह द्वारा उद्धार, भक्तराज प्रह्लाद चरित्र, गौतम द्वारा दारुवन निवासी मुनियों को शाप, अन्धक के साथ भगवान् शिव का युद्ध एवं अपने स्वरूप का उपदेश, अन्धक द्वारा महादेव की स्तुति तथा महादेव द्वारा अन्धक को गाणपत्य पद प्रदान करना, अन्धक द्वारा देवी की स्तुति और देवी द्वारा अन्धक को पुत्र रूप में ग्रहण करना, विष्णु द्वारा उत्पन्न माताओं से अपनी तीनों मूर्तियों का प्रतिपादन ये प्रसङ्ग वर्णित हैं।

अध्याय १६ से अध्याय १८ तक – सोलहवें अध्याय में मुख्य रूप से बलि एवं वामन का दिव्य चरित वर्णित है। इसके आरम्भ में सनत्कुमार द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर प्रह्लाद पुत्र विरोचन का योग में संलग्न होना, विरोचन पुत्र बलि द्वारा देवताओं का पराभव, दुःखी देवमाता अदिति की भगवदाराधना और पुत्र रूप में विष्णु को प्राप्त करने का वरदान पाना, अदिति के गर्भ में विष्णु का प्रवेश एवं वामन के रूप में आविर्भाव, बलि के यज्ञ में जाकर तीन पग भूमि की याचना, तृतीय पद से अतिक्रमण करते समय ब्रह्माण्ड भेदन, गङ्गोत्पत्ति तथा बलि का पाताल प्रवेश वर्णित है।

सत्रहवें अध्याय में बलि पुत्र बाणासुर के सुन्दर वृत्तान्त के साथ दक्षप्रजापति की दनु, काष्ठा, सुरसा आदि कन्यायों की सन्तानों का वर्णन किया है।

अठारहवें अध्याय में महर्षि कश्यप तथा पुलस्त्य आदि ऋषियों के वंश का वर्णन, रावण-कुम्भकर्ण-आदि की उत्पत्ति, महर्षि वसिष्ठ के वंशवर्णन में व्यास शुकदेव आदि की कथा तथा भगवान् शङ्कर के ही शुकदेवके रूप में आविर्भूत होने की कथा का वर्णन किया गया है।

द्वैपायनाच्छुकोजज्ञे भगवानेव शङ्करः।
अंशाशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम्।। (कू.पु. १।१८।२५)

अध्याय १६ से अध्याय २० तक - इन दो अध्यायों में सूर्यवंश का वर्णन किया गया है। सूर्यवंश वर्णन में वैवस्वतमनु की सन्तानों का वर्णन, युवनाश्व को गौतम का उपदेश, महातपस्वी राजा वसुमना की कथा, वसुमना के अश्वमेध यज्ञ में ऋषियों तथा देवताओं के आगमन, ऋषियों की आज्ञा से वसुमना का हिमालय जाकर तप करना और अन्त में शिव पद प्राप्ति का वर्णन है।

बीसवें अध्याय में इक्ष्वाकु वंश वर्णन प्रसङ्ग में श्रीरामकथा का प्रतिपादन, सेतुबन्धन और रामेश्वर लिङ्ग की स्थापना, शिव पार्वती का प्राकट्य और रामेश्वर लिङ्ग माहात्म्य का वर्णन, श्रीराम को लवकुश के रूप में पुत्र प्राप्ति और अन्त में इक्ष्वाकुवंश के अन्तिम राजाओं का वर्णन किया गया है।

अध्याय २१ से अध्याय २६ तक - इक्कीसवें अध्याय में चन्द्रवंश के राजाओं का वृत्तान्त वर्णित है। यदुवंश वर्णन क्रम में कार्तवीर्यार्जुन के पांच पुत्रों का आख्यान, परम विष्णु भक्त राजा जयध्वज की कथा, विदेह दानव का पराक्रम, तथा जयध्वज द्वा विष्णु के अनुग्रह से उसका वध, विश्वामित्र का जयध्वज को विष्णु आराधना का उपदेश और विष्णुदर्शन होने का वर्णन किया है।

बाईसवें अध्याय में जयध्वज वंशवर्णन क्रम में राजा दुर्जय का आख्यान, महामुनि कण्व द्वारा दुर्जय को वाराणसी के विश्वेश्वर लिङ्ग का माहात्म्य बतलाना, दुर्जय का वाराणसी जाकर पापमुक्त होना तथा अन्त में सहस्राजित वंश का वर्णन किया गया है।

तेइसवें अध्याय में क्रोष्टुवंशी राजाओं का वृत्तान्त, राजा नवरथ की कथा, सात्वव वंश वर्णन में अक्रूर की उत्पत्ति, राजा आनकदुन्दुभि का आख्यान, कंस एवं वसुदेव-देवकी की उत्पत्ति, वसुदेव का वंश वर्णन, देवकी के अन्य पुत्रों की उत्पत्ति, रोहिणी से बलराम एवं देवकी से श्रीकृष्ण का आविर्भाव और अन्त में वासुदेव कृष्ण के वंश का वर्णन किया है।

चौबीसवें अध्याय में पुत्र प्राप्त्यर्थ श्रीकृष्ण का उपमन्यु आश्रम में जाना, महामुनि उपमन्यु से पाशुपत योग की प्राप्ति, तपस्या रत श्रीकृष्ण को शिव-पार्वती दर्शन, श्रीकृष्ण द्वारा उनकी स्तुति, शिव-पार्वती द्वारा पुत्र प्राप्ति सहित अनेक वर प्राप्त कर, शिव के साथ श्रीकृष्ण की कैलास यात्रा का वर्णन है।

पच्चीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण का कैलाश पर्वत पर विहार, द्वारका बुलाने के लिये गरुड़ का आगमन, श्रीकृष्ण का द्वारका लौटना, उनके दर्शनार्थ देवताओं, मार्कण्डेय आदि मुनियों का आगमन, कृष्ण का उनको शिवतत्त्व और लिङ्गतत्त्व के बारे में उपदेश तथा स्वयं शिवपूजन करना, ब्रह्मा विष्णु द्वारा शिव के महालिङ्ग का दर्शन, लिङ्स्तुति तथा लिङ्गार्चन का प्रवर्तन वर्णित है।

छब्बीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में साम्ब की प्राप्ति, कंसादि का वध, भृगु आदि मुनियों का द्वारका में आना और श्रीकृष्ण का उनसे स्वधामगमन की बात बतलाना, शिवद्वेषियों को नरक प्राप्ति वर्णन, तथा शिव की अद्‌भुत महिमा का गान, नारायण का कुल संहार कर स्वधाम गमन तथा वंश वर्णन के उपसंहार के साथ यह अध्याय पूर्ण होता है।

अध्याय २७ से अध्याय ३३ तक-सत्ताइसवें अध्याय में व्यासदेव द्वारा कृतादि चारों युगों के धर्मो का उपदेश, एक वेद संहिता का चतुर्धा विभाजन, चारों युगों में चतुष्पाद धर्म की स्थिति का निदर्शन एवं कलियुग में धर्म के ह्रास का प्रतिपादन किया गया है।

अट्ठाइसवें अध्याय में कलियुग के धर्मों का वर्णन, कलि में शिवपूजन की महिमा, व्यासकृत शिव स्तुति, व्यास प्रेरित अर्जुन का शिवपुरी जाना और व्यास द्वारा शिवभक्त अर्जुन की महिमा का गान किया गया है।

उनतीसवें अध्याय में व्यास का वाराणसी गमन, व्यास शिष्यों जैमिनी आदि का धर्म विषयक प्रश्न, व्यास द्वारा शिव पार्वती संवाद कथन, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसी का माहात्म्य और वाराणसी सेवन का विशेष फल बतलाया गया है।

तीसवें अध्याय में शिव के दो वाराणसीस्थ प्रख्यात लिङ्गों ओंकारेश्वर एवं कृत्तिवासेश्वर की महिमा का गान तथा शिव के कृत्तिवास नाम पड़ने का कारण बतलाया गया है।

इकतीसवें अध्याय में वाराणसी के कपर्दीश्वर-लिङ्ग की महिमा, पिशाचमोचनतीर्थ माहात्म्य वहाँ स्नानादि से पिशाचयोनि से मुक्ति, शङ्कुकर्ण की कथा तथा उसके द्वारा की गई स्तुति 'ब्रह्मपारस्तव' की अद्‌भुत महिमा बतलायी गयी है।

बत्तीसवें अध्याय में वाराणसी के मध्यमेश्वर-लिङ्ग एवं मन्दाकिनी-तीर्थ की महिमा व्यास द्वारा बतलाई गयी हैं।

तैतीसवें अध्याय में वाराणसी माहात्म्य के प्रसङ्ग में व्यास द्वारा विभिन्न तीर्थों का शिष्यों सहित दर्शन, ब्रह्मतीर्थ आख्यान, काल द्वारा विश्वेश्वर लिङ्ग का पूजन तथा वहाँ रहते हुए शिवाराधना, एक दिन भिक्षा न मिलने पर क्रोधाविष्ट व्यास द्वारा काशीवासियों को शाप देने के लिए उद्यत होना, देवी पार्वती का प्रकट होकर व्यास को काशी त्यागने का आदेश देना, पुनः स्तुति से प्रसन्न किये जाने पर चतुर्दशी एवं अष्टमी को वाराणसी में रहने की अनुमति प्राप्त करने का वर्णन है।

अध्याय ३४ से अध्याय ३७ तक-इन चार अध्यायों में प्रयागराज की महिमा का गान किया गया है। ३४वें अध्याय में प्रयाग माहात्म्य, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवाद एवं प्रयाग में सङ्गम स्नान का फल बतलाया गया है। ३५वें अध्याय में प्रयाग-माहात्म्य, प्रयाग के विभिन्न तीर्थों की महिमा तथा त्रिपथगा गङ्गा का माहात्म्य एवं गङ्गास्नान का फल वर्णित है।

३६वें अध्याय में प्रयाग-माहात्म्य, माघ-मास में सङ्गम स्नान का फल, त्रिमाघी की महिमा और प्रयाग में प्राणत्याग की महिमा का वर्णन किया है। ३७वें अध्याय में यमुना की महिमा, यमुना के तटवर्ती तीर्थों का वर्णन, गङ्गा में सभी तीर्थों की स्थिति, और प्रयाग राज के विशिष्ट माहात्म्य वर्णन के साथ मार्कण्डेय युधिष्ठिर संवाद की समाप्ति होती है।

अध्याय ३८ से अध्याय ४८ तक - इन अध्यायों में भुवनकोश का वर्णन किया गया है। ३८वें अध्याय में राजा प्रियव्रत के वंश का वर्णन, आग्नीध्र के वंश का वर्णन, जम्बू आदि सप्तद्वीपों तथा वर्षों उनमें नाभि, किम्पुरुषाथि नौ पुत्रों का आधिपत्य ३९वें अध्याय में 'भू' आदि सात लोकों का वर्णन, ग्रह नक्षत्रों की स्थिति, इनका परिमाण, सूर्यरथ का वर्णन, पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देवों की अमरावती आदि पुरियों का वर्णन, सूर्य की महिमा की चर्चा की गयी है। ४०वें अध्याय में सूर्य-रथ तथा द्वादश आदित्यों के नाम, सूर्यरथ के अधिष्ठातृ देवता और सूर्य की महिमा का वर्णन है। ४१वें अध्याय में सूर्य की प्रधान सात रश्मियों के नाम, इनके द्वारा ग्रहों का आप्यायन, सूर्य की अन्य हजारों नाडियों का वर्णन तथा उनका कार्य, बारह महीनों में बारह सूर्यों के नाम, छ ऋतुओं में उनका वर्ण, आठ ग्रहों का वर्णन, सोम के रथ का वर्णन, देवों द्वारा चन्द्रकलाओं का पान, पितरों द्वारा अमावस्या को चन्द्रकला पान, बुध आदि अन्य ग्रहों के रथों का वर्णन किया गया है। ४२वें अध्याय में महः आदि सात लोकों तथा सप्तपातालों और वहाँ के निवासियों का वर्णन किया है। इसी अध्याय में वैष्णवी तथा शाम्भवी शक्तियाँ वर्णित हैं। ४३वें अध्याय में सप्तमहाद्वीपों एवं सप्त महासागरों का परिमाण, जम्बूद्वीप तथा मेरुपर्वत की स्थिति, भारत तथा किम्पुरुषादि वर्षों का वर्णन; वर्षपर्वतों की स्थिति, जम्बूद्वीप नाम करण का कारण। जम्बूद्वीप के नदियों, पर्वतों एवं वहाँ के निवासियों का वर्णन किया गया है। ४४वें अध्याय में, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, वरुणादि देवताओं की पुरियों वहां के निवासियों तथा गङ्गा की चार धाराओं एवं आठ मर्यादा पर्वतों का वर्णन प्राप्त होता है। ४५वें अध्याय में केतुमाल, भद्राश्व, रम्यक-वर्ष, वहाँ के निवासियों का वर्णन, हरिवर्ष स्थित विष्णु के विमान का वर्णन, तथा जम्बूद्वीप में भारतवर्ष की महानदियों, कुलपर्वतों, जनपदों एवं वहाँ के निवासियों का वर्णन तथा भारतवर्ष में चार युगों की स्थिति का प्रतिपादन किया है। ४६वें अध्याय में विभिन्न पर्वतों पर स्थित देवताओं के पुरों का वर्णन, तथा वहाँ के निवासियों नदियों, सरोवरों और भवनों के वर्णन के साथ जम्बूद्वीप वर्णन का उपसंहार किया गया है। ४७वें अध्याय में प्लक्ष आदि महाद्वीपों, वहाँ के पर्वतों, नदियों-निवासियों का वर्णन, श्वेत द्वीप में स्थित नारायणपुर का वर्णन, वहाँ वैकुण्ठ में रहने वाले लक्ष्मीपति शेषशायी नारायण की महिमा ख्यापित है। ४८वें अध्याय में पुष्कर-द्वीप की स्थिति तथा विस्तार वर्णन और संक्षेप में अव्यक्त से सृष्टि का प्रतिपादन किया गया है।

४६ अध्याय से ५१ अध्याय तक - उनचासवें अध्याय में स्वारोचिष से वैवस्वत मन्वन्तर तक के देवता, सप्तर्षि, इन्द्रादि का वर्णन, नारायण द्वारा ही विभिन्न मन्वन्तरों में सृष्टि का प्रतिपादन, भगवान् विष्णु की चारमूर्तियों का विवेचन और विष्णु माहात्म्य वर्णित है। पचासवें अध्याय में २८ व्यासों का वर्णन, कृष्ण द्वैपायन द्वारा वेद संहिता विभाजन, पुराणेतिहास की रचना, वेदशाखा विस्तार, विष्णु माहात्म्य एवं इक्यावनवें अध्याय में कलियुगीन शिवावतारों एवं उनके शिष्यों का वर्णन, भविष्य के सात मन्वन्तरों के नाम परिगणित हैं। अन्त में कूर्मपुराण के पूर्व विभाग के उपसंहार के साथ यह अध्याय विराम लेता है।

कूर्म-पुराण की ब्राह्मी संहिता को उत्तर भाग में सर्वप्रथम प्रथम ग्यारह अध्यायों में ईश्वर-गीता का तथा बाद के अध्यायों में व्यास-गीता का उपक्रम प्राप्त होता है। इसको प्राचीन काल में सनत्कुमारादि प्रमुख मुनीश्वरों के द्वारा पूछने पर स्वयं शूलपाणि महादेव ने कहा था। इस सम्पूर्ण कार्य-जगत् का कारण तत्त्व कौन है ? कौन नित्य गतिशील रहता है ? आत्मा कौन है ? मुक्ति क्या है ? संसार की रचना का प्रयोजन क्या है ? इस संसार को चलाने वाला परात्पर ब्रह्म कौन है ? शासक कौन है ? मुनीश्वरों की इन जिज्ञासाओं के प्रत्युत्तर में स्वयं भगवान् शिव प्रकट होकर सदुपदेश द्वारा आत्म तत्त्व का निरूपण करते हैं, आत्मसाक्षात्कार के साधनों का वर्णन करते हैं। यही सदुपदेश ईश्वर-गीता के नाम से विख्यात है।

अध्याय १ से अध्याय ११ तक - प्रथम अध्याय में ईश्वर तथा ऋषियों के संवाद में ईश्वरगीता का उपक्रम वर्णित है। द्वितीय अध्याय में आत्मतत्त्व के स्वरूप का निरूपण, सांख्य एवं योग के ज्ञान का अभेद तथा आत्मसाक्षात्कार के साधनों का वर्णन किया है। तीसरे अध्याय में अव्यक्त शिव-तत्त्व से सृष्टि का कथन, परमात्मा के स्वरूप का वर्णन प्रधान पुरुष एवं महदादि तत्त्वों से सृष्टि का क्रम वर्णन एवं शिवस्वरूप का भी निरूपण किया गया है। चौथे अध्याय में शिव-भक्ति की अपार महिमा, शिवोपासना की सुगमता, ज्ञान-रूप शिव स्वरूप वर्णन। शिव की तीन प्रकार की शक्तियों का प्रतिपादन तथा शिव के परमतत्त्व का निरूपण है। पाँचवें अध्याय में ऋषियों को दिव्य नृत्य करते हुए भगवान शङ्कर का आकाश में दर्शन तथा मुनियों द्वारा भगवान महेश्वर की भावपूर्ण स्तुति वर्णित है। छठे अध्याय में ईश्वर (शङ्कर) द्वारा ऋषिगणों को अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाते हुए अपनी भगवत्ता और ज्ञान प्राप्ति से मुक्ति का निरूपण किया है। सातवें अध्याय में शिव की विभूतियों का वर्णन, प्रकृति महतत्त्व आदि चौबीस तत्त्वों, तीन गुणों एवं पशु, पाश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश), तथा पशुपति आदि का सुन्दर विवेचन है। आठवें अध्याय में महेश्वर का अद्वितीय परमेश्वर के रूप में निरूपण, सांख्य सिद्धान्तों से तत्त्वों का सृष्टिक्रम, महेश्वर के छः अङ्ग (सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतंत्रता, नित्य अलुप्त

शक्ति एवं अनन्त-शक्ति-ये महेश्वर के छः अङ्ग हैं) (महेश्वर के स्वरूपज्ञान से परम-पद-प्राप्ति) का वर्णन है। नौवे अध्याय में महादेव के विश्वरूपत्व वर्णन और ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान का प्रतिपादन किया है। दसवें अध्याय में परम तत्त्व तथा परम ज्ञान के स्वरूप का निरूपण और उसकी प्राप्ति के साधन का वर्णन है। अन्तिम ग्यारहवें अध्याय में योग की महिमा, अष्टाङ्ग योग, यम नियमादि लक्षण, प्राणायाम का विशेष प्रतिपादन, ध्यान के विविध प्रकार, पाशुपत योग का वर्णन, वाराणसी में प्राण त्याग की महिमा, शिवाराधना विधि, शिव-विष्णु अभेद प्रतिपादन, शिवज्ञान योग की परम्परा का वर्णन किया गया है। अन्त में ईश्वर गीता की फलश्रुति के साथ उपसंहार किया गया है।

ब्राह्मी संहिता के उत्तर भाग में बारहवें अध्याय से व्यासगीता वर्णित है।

अध्याय १२ से अध्याय १४ तक - बारहवें अध्याय में ब्रह्मचारी का धर्म, यज्ञोपवीतादि के सम्बन्ध में विविध विवरण, अभिवादनकी विधि, माता, पिता एवं गुरु की महिमा, ब्रह्मचारी के सदाचार का वर्णन, तेरहवें अध्याय में ब्रह्मचारी के नित्यकर्म की विधि, आचमन का विधान, हाथों में स्थित तीर्थ, उच्छिष्ट होने पर शुद्धि की प्रक्रिया, मूत्र-पुरीषोत्सर्ग के नियम तथा चौदहवें अध्याय में ब्रह्मचारीके आचार का वर्णन, गुरु से अध्ययन की विधि, ब्रह्मचारी का धर्म, गुरु तथा गुरुपत्नी के साथ व्यवहार का वर्णन, वेदाध्ययन और गायत्री की महिमा, अनध्यायों का वर्णन, ब्रह्मचारी धर्म का उपसंहार आदि विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

अध्याय १५ से अध्याय १९ तक-पन्द्रहवें अध्याय में-गृहस्थ धर्म, गृहस्थ के सदाचार का वर्णन, धर्माचरण एवं सत्यधर्म की महिमा, सोलहवें अध्याय में- सदाचरों का विस्तार से वर्णन, सत्रहवें अध्याय में-भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों का वर्णन, अठारहवें अध्याय में - गृहस्थ के नित्य कर्मों का वर्णन, प्रातः स्नान की महिमा, छः प्रकार के स्नान, सन्ध्योपासन की महिमा तथा सन्ध्योपासन-विधि, सूर्योपस्थान का माहात्म्य, सूर्यहृदयस्तोत्र, अग्निहोत्र की विधि, तर्पण की विधि, नित्य किये जाने वाले पञ्चमहायज्ञों की महिमा का विधान, तथा उन्नीसवें अध्याय में भोजन विधि, ग्रहणकाल में भोजन का निषेध, शयन विधि और अन्त में गृहस्थ के नित्य कर्मानुष्ठान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

अध्याय २० से अध्याय २३ तक - इन अध्यायों में मुख्य रूप से श्राद्ध प्रकरण का विचार किया गया है। बीसवें अध्याय में - श्राद्ध के प्रशस्त दिन, विभिन्न तिथियों, नक्षत्रों एवं वारों में किये जाने वाले श्राद्धों का विभिन्न फल, श्राद्ध के आठ भेद, श्राद्ध के लिये प्रशस्त स्थान, श्राद्ध में विहित तथा निषिद्ध पदार्थ, इक्कीसवें अध्याय में - श्राद्ध में निमन्त्रण योग्य पंक्ति पावन ब्राह्मणों तथा त्याज्य पंक्ति दूषकों के लक्षण, बाईसवें अध्याय में-श्राद्ध हेतु ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने की विधि, निमन्त्रित ब्राह्मण के कर्तव्य, श्राद्धविधि, श्राद्ध में प्रशस्तपात्र, पितरों की प्रार्थना, श्राद्ध के दिन निषिद्धकर्म, वृद्धि श्राद्ध का विधान,

श्राद्ध प्रकरण का उपसंहार तथा तेईसवें अध्याय में -अशौच प्रकरण वर्णित है, इसमें जननाशौच और मरणाशौच की क्रियाविधि, शुद्धि विधान, सपिण्डता, सद्यःशौच, अन्त्येष्टि संस्कार, सपिण्डीकरण विधि, मासिक तथा सांवत्सरिक श्राद्ध आदि का वर्णन किया गया है।

अध्याय २४ से अध्याय २६ तक - चौबीसवें अध्याय में अग्निहोत्र का माहात्म्य, अग्निहोत्री के कर्तव्य, श्रौत एवं स्मार्त रूप द्विविध धर्म, तृतीय शिष्टाचार धर्म, वेद, धर्मशास्त्र और पुराण से धर्म का ज्ञान, इन पर श्रद्धा रखने की आवश्यकता, पचीसवें अध्याय में - गृहस्थ ब्राह्मणों की मुख्य वृत्ति, आपत्काल की वृत्ति, गृहस्थ के साधक तथा असाधक दो भेद, न्यायोपार्जित धन का विभाग एवं उसका उपयोग तथा छब्बीसवें अध्याय में दान-धर्म का निरूपण, नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल - चतुर्विध दान भेद, दान के अधिकारी तथा अनधिकारी, कामना भेद से विविध देवताओं की आराधना का विधान, ब्राह्मण की महिमा वर्णन के साथ दान-धर्म-प्रकरण का उपसंहार किया गया है।

अध्याय २७ से अध्याय २६ तक - सत्ताइसवें अध्याय में वानप्रस्थ आश्रम तथा वानप्रस्थ धर्म का वर्णन और वानप्रस्थी के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। अट्ठाइसवें अध्याय में सन्यास धर्म का प्रतिपादन, सन्यासियों के भेद, तथा सन्यासियों के कर्तव्य का वर्णन एवं उन्नतीसवें अध्याय में-सन्यासाश्रम धर्म निरूपण में यतियों की भैक्ष्यवृत्ति का स्वरूप, यतियों के लिये महेश्वर के ध्यान का प्रतिपादन, व्रतभङ्ग में प्रायश्चित विधान, तथा पुनः यथास्थिति में आने की विधि, वर्णन के साथ ही सन्यास धर्म प्रकरण की समाप्ति होती है।

अध्याय ३० से अध्याय ३३ तक - इन अध्यायों में प्रायश्चित्त प्रकरण की चर्चा की गयी है। तीसवें अध्याय में प्रायश्चित का स्वरूप निरूपण, पञ्चमहापातकों के नाम ब्रह्महत्या के प्रायश्चित का संक्षिप्त निरूपण, इकतीसवें अध्याय में कपालमोचन तीर्थ का आख्यान, बत्तीसवें अध्याय में - महापातकों के प्रायश्चित का विधान एवं उपपातकों से शुद्धि के उपाय, एवं तैंतीसवें अध्याय में - चोरी तथा अभक्ष्य भक्षण का प्रायश्चित्त, प्रकीर्ण पापों का प्रायश्चित्त, समस्त पापों की एकत्र मुक्ति के विविध उपायों, पतिव्रता स्त्री को पाप न लगना, पतिव्रता माहात्म्य में देवी सीता का आख्यान सीता द्वारा अग्नि स्तुति, ज्ञान योग की प्रशंसा के साथ ही इस प्रायश्चित्त प्रकरण का उपसंहार किया गया है।

अध्याय ३४ से अध्याय ४२ तक - ये सभी अध्याय तीर्थ माहात्म्य प्रकरण से सम्बन्धित हैं। चौंतीसवें अध्याय में प्रयाग, गया, एकाम्र तथा पुष्कर आदि विविध तीर्थों की महिमा का वर्णन, सप्तसारस्वत तीर्थ वर्णन के प्रसङ्ग में मङ्कणक मुनि का आख्यान, पैंतीसवें अध्याय में - विविध तीर्थों का माहात्म्य, कालञ्जर तीर्थ महिमा प्रसङ्ग में शिवभक्त राजा श्वेत की कथा, छत्तीसवें अध्याय में - विविध तीर्थों की महिमा के साथ देवदारुवन तीर्थ का माहात्म्य, सैंतीसवें अध्याय में - देवदारुवन स्थित मुनियों का वृत्तान्त, शिवलिङ्ग पतन, मुनियों को ब्रह्मा का उपदेश, शिव की प्रसन्नता के लिए ऋषियों की तपस्या एवं स्तुति

तथा शिव द्वारा सांख्य का उपदेश, अडतीसवें अध्याय में मार्कण्डेय-युधिष्ठिर संवाद के अन्तर्गत मार्कण्डेय द्वारा नर्मदा तथा अमरकण्टक तीर्थ के माहात्म्य का प्रतिपादन, उन्तालीसवें अध्याय में - नर्मदा के तटवर्ती तीर्थों का विस्तार से वर्णन, चालीसवें अध्याय में - नर्मदा तथा उसके समीपवर्ती तीर्थों की महिमा का वर्णन, मार्कण्डेय-युधिश्ठिर संवाद की समाप्ति, इकतालीसवें अध्याय में-नैमिषारण्य तथा जप्येश्वर तीर्थ की महिमा, जप्येश्वर में शिलाद् पुत्र नन्दी की तपस्या तथा उनके गणाधिपति होने का आख्यान, तथा बयालिसवें अध्याय में - विविध शैव तीर्थों के माहात्म्य निरूपण के साथ, तीर्थों के अधिकारियों का वर्णन करते हुए तीर्थ माहात्म्य का उपसंहार किया गया है।

अध्याय ४३ से अध्याय ४४ तक - तैंतालीसवें अध्याय में-चतुर्विध प्रलय का प्रतिपादन, नैमित्तिक प्रलय का वर्णन तथा विष्णु द्वारा अपने माहात्म्य का निरूपण किया गया है। चौवालीसवें अन्तिम अध्याय में - प्राकृत प्रलय, शिव के विविध रूपों एवं शक्तियों का वर्णन, शिव की आराधना विधि, मुनियों द्वारा कूर्म रूपी विष्णु की स्तुति, कूर्म पुराण की विषयानुक्रमणिका पुराण की फलश्रुति, वक्तृश्रोतृ परम्परा और महर्षि व्यास तथा नारायण की वन्दना के साथ पुराण की पूर्णता होती है।

नारदपुराण के अनुसार कूर्ममहापुराण की कथा वस्तु -

श्री नारद पुराण में कूर्म पुराण की कथा वस्तु इस प्रकार दी है। जिसके अनुसार ब्रह्माजी ने लक्ष्मीकल्प की कथा जिसमें भगवान् ने कूर्मरूप धारण कर ऋषिजनों को राजा इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से करुणावश धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का माहात्म्य पृथक-पृथक् सुनाया था, वही माहात्म्य मरीचि को सुनाया है। (ना.पु. पू.ख. १०६/१-२) जहाँ सनत्कुमारों ने मनुष्यों को सत्गति देने वाले नाना प्रकार के धर्मों को नाना कथा प्रसङ्गों के माध्यम से सुनाया था जो सत्रह हजार श्लोकों की कूर्म संहिता है। (१०६/३) इसके अनुसार कथा वस्तु इस प्रकार है -

१. ब्राह्मी संहिता (पूर्व भाग) - लक्ष्मी इन्द्रद्युम्न संवाद, कूर्म-ऋषिगण संवाद, वर्णाश्रमाचार कथा, जगदुत्पत्तिवर्णन, प्रलय वर्णन, प्रलयान्त में भगवद् स्तवन, संक्षेप में सृष्टि वर्णन, शिवचरित्र, पार्वती सहस्रनाम, योग निरूपण, भृगु एवं स्वायम्भुव वंश वर्णन, देवतादि की उत्पत्ति, दक्षयज्ञध्वंस, दक्षसृष्टि, कश्यपवंशवर्णन, आत्रेय-वंश-कथन, श्रीकृष्ण का शुभ मङ्गलमय चरित्र, मार्कण्डेय-श्रीकृष्ण संवाद, व्यास-पाण्डव संवाद, युगधर्म निरूपण, व्यास-जैमिनि संवाद, वाराणसी एवं प्रयाग माहात्म्य वर्णन, त्रैलोक्य वर्णन एवं वेदशाखा निरूपण ये विषय मुख्य रूप से वर्णित हैं।[1]

१. ना.पु. पू. अ. १०६।४-११

उत्तरभाग-इसके उत्तर भाग में पहले ईश्वर गीता और पश्चात नानाधर्म प्रबोधिनी व्यास गीता वर्णित है। तीर्थों के प्रकार और उनकी महिमा और प्रतिसर्ग कथन के साथ ही ब्राह्मी संहिता का उत्तर भाग पूर्ण होता है। ना.पु. २ भा. १०६।११-१२)

२. **भागवती संहिता** - आगे भागवती संहिता का निरूपण किया गया है -

'कथिता यत्र वर्णानां पृथक् वृत्तिरूदाहृता।
पादेऽस्या प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः।।
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्य-विवर्धिनी।
द्वितीये क्षत्रियाणां तु वृत्तिः सम्यक् प्रकीर्तिता।।
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेत् ध्रुवम्।
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा।।
यया चरितया सम्यक् लभते गतिमुत्तमाम्।
चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता।।
यया सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयो विवर्द्धनः।
पञ्चमेऽस्यास्ततः पादे वृत्तिः सङ्करजोदितः।।'[1]

इस प्रकार पञ्चपादात्मिका इस संहिता में ब्राह्मणादि चार वर्णों तथा सङ्करजाति की वृत्तियों की चर्चा की गयी है जिनके आश्रय से वे सदाचारी बन भोग, सौख्य एवं उत्तमगति को प्राप्त करते हैं।

३. **सौरी संहिता** - तीसरी सौरी संहिता कही गयी है -

तृतीयाऽत्रोदिता सौरीनृणां कार्यविधायिनी।
षोढा षट्कर्मसिद्धिं बोधयन्ती च कामिनाम्।।[2]

इसमें कामी पुरुषों के लिये मंत्र पढ़ते हुए अङ्गों के स्पर्श के छः प्रकारों सहित षट् कर्म सिद्धि का निरूपण है।

४. **वैष्णवी संहिता** - चौथी चार पादों वाली द्विजातियों को मोक्ष देने वाली साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी वैष्णवी संहिता है -

चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता।
चतुष्पदी द्विजातीनां साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी।।[3]

---

१. ना.पु.पू. अ. १०६।१३-१६
२. ना.पु.पू. १०६।२०
३. ना.पु.पू. अ. १०६। २१

इस प्रकार कूर्म पुराण की ६०००, ४०००, २००० और ५००० श्लोकों वाली ये संहिताएं क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग प्रदायिनी श्रवण तथा पठन से सर्वोत्कृष्ट गति देने वाली कही गयी हैं। अपने हाथ से लिखकर स्वर्णकच्छप सहित श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देने से परमगति प्रदान करने वाला कूर्मपुराण है।[1]

कूर्मपुराण का सांस्कृतिक महत्त्व - अन्य पुराणों की ही तरह कूर्मपुराण भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करने पर शैव शाक्त एवं वैष्णवों में समन्वय स्थापित करने की प्रवृत्ति का द्योतक होने से इस ग्रन्थ को धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक माना जा सकता है। शैव पुराण होने पर भी इसका उपक्रम एवं उपसंहार विष्णु संबंधी मङ्गलाचरण से किया गया है -

उपक्रमश्लोक -

नमस्कृत्वा प्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना।[2]

उपसंहार श्लोक -

यस्मात् सञ्जायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते।
नमस्तस्मै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।।[3]

कूर्म पुराण में भगवान् सदाशिव प्रधान देवता रूप से वर्णित हैं, उन्हें ही देवाधिदेव कहा है और वही जगत् की सृष्टि-स्थिति-संहार करते हैं, वही ब्रह्मा को उत्पन्न कर वेदज्ञान प्रदान करते हैं। इन्हीं की दूसरी मूर्ति भगवान् विष्णु भी हैं जिसके बारे में स्वयं भगवान् विष्णु कहते हैं -

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलःशिवः।
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भगवन्तं सनातनः।
वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शङ्करः।।
अस्यैवचापरा मूर्तिः विश्वयोनिं सनातनीम्।
वासुदेवाभिधानं मामवेहि प्रपितामह।।[4]

---

१. ना.पु.पू. अ. १०६।२२-२४
२. कू.पु. ब्रा. १।१
३. कू.पु. ब्रा. २।४८
४. कू.पु. ब्र. १।६.-६१-६२

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इत्थं जगत् सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम्।। (कू.पु. १।१४-८९-९०)
अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी।
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः (कू.पु. १।१५।१५२)

ये शिववचन इन तीनों शिव, शक्ति और नारायण की अभिन्नता को दर्शाने वाले हैं। श्रीराम द्वारा रामेश्वर लिङ्ग की स्थापना (ब्रा. १।२०), राजा जयध्वज, विश्वामित्रादि की विष्णु भक्ति (ब्रा. १।२१), दुर्जय द्वारा विश्वेश्वर आराधन (१।२२), कृष्ण की शिवाराधना (ब्रा. १।२४३), वैष्णवी तथा शाम्भवी शक्तियाँ का वर्णन (ब्रा. १।४२), श्वेत द्वीपस्थ नारायण का वर्णन (ब्रा. १।४७), विष्णु के अवतार २८ व्यासों तथा महादेव के अवतारों का वर्णन (ब्रा.सं. १।५०-५१ अ.), हरि-हर की समान रूप से महत्ता और एकता इन अध्यायों में प्रदर्शित की है। इसी प्रकार अ. ११ एवं १४ में सती, पार्वती, देवी माहात्म्य, हैमवती माहात्म्य, देवी सहस्रनाम स्तोत्रादि द्वारा हरि-हरसे शक्ति का ऐक्य प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार ब्रा.सं. पू. ३९ से ४१ अध्यायों तक सूर्य की विशिष्ट महिमा का गान कर उनके साथ भी ऐक्य प्रदर्शित किया गया है। उत्तरखण्ड में भी जहां आरम्भ से ग्यारह अध्यायों तक ईश्वर-गीता है वहीं आगे के अध्याय व्यास-गीता के रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में पञ्चदेवोपासना के रूप में जो समन्वयवादी दृष्टिकोण है वह कूर्मपुराण में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

श्रुति प्रामाण्य यह भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता है। ऐसे तो पुराण वेदों के उपबृंहण करने वाले होने से श्रुति का प्रामाण्य एवं श्रुति सम्मत धर्माचरण पर सभी पुराणों में बल दिया है। कूर्मपुराण भी इससे अछूता नहीं है।

कूर्मपुराण में भगवती स्वयं कहती हैं - ऐश्वरयोग में स्थित अपने भक्तों का मैं इस संसार सागर से शीघ्र उद्धार कर देती हूँ। मैं ध्यान, कर्मयोग, भक्ति एवं ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त हूँ। श्रुति तथा स्मृति शास्त्रों में सम्यक् जो वर्णाश्रम धर्म बतलाया गया है उसका सम्यक् पालन करना चाहिये। धर्म से भक्ति और भक्ति से परमतत्त्व की प्राप्ति होती है। श्रुति एवं स्मृति द्वारा प्रतिपादित यज्ञादि कर्म को धर्म कहा गया है। धर्म किसी अन्य से उत्पन्न नहीं होता, वेद से ही धर्म निर्गत है। इसलिये धर्मार्थी एवं मुमुक्षु को वेद का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। मेरी ही यह वेद नाम वाली पुरातन परा शक्ति, ऋक, यजुष् तथा सामवेद के रूप में सृष्टि के आदि में प्रवर्तित होती है। उन्हीं वेदों की रक्षा के लिये ब्रह्मा ने ब्राह्मणादि को उत्पन्न कर अपने-अपने कर्मों में लगाया। ब्रह्मा द्वारा बताये गये

उन वेद विहित वर्णाश्रम धर्म का जो पालन नहीं करता उसके लिये नीचे के लोकों में स्थित तामिस्रादि नरको को बनाया है। (कू.पु.ब्रा.सं.पू. अ. ११।२६१-२७१)

कूर्म पुराण में वर्णाश्रम धर्म एवं सदाचारों का विस्तृत एवं सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है जो इसे सांस्कृतिक सामाजिक दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण बना देता है। हमारी संस्कृति सदाचार के लिये ही ख्यात है। कूर्मपुराण के प्रारम्भ में द्वितीयाध्याय में वर्णाश्रमधर्म, सामान्य विशेष धर्मों की चर्चा है। वहीं चतुर्विध पुरुषार्थों में धर्म की महत्ता बतलायी गयी है।[1] कूर्मपुराण की ब्राह्मी संहिता के उत्तरार्द्ध में ब्रह्मचारी के सदाचारों (अ. १२।१४), गृहस्थ के सदाचार (१५-१६ अ.), वानप्रस्थधर्म (अ. २७) एवं संन्यास धर्म (अ. २८-२६) में प्रतिपादित है। देव कार्य की तरह ही पितृकार्य का भी उतना ही नहीं बल्कि उससे ज्यादा महत्त्व है।[2] देवपितृकार्याभ्यांन प्रमदितव्यम्' यह श्रुति वचन है। कूर्मपुराण में चार अध्यायों (अ. २०-अ. २३) में श्राद्ध प्रकरण की चर्चा की गयी है। यज्ञ, दान और तप इन तीनों का बड़ा ही महत्त्व है। इनके बिना कोई व्रतोत्सव सम्पन्न नहीं होते जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर और उसके प्रमुख अङ्ग हैं। कूर्मपुराण में उत्तरार्ध के २४वें अध्याय में जहां अग्निहोत्र की महिमा, अग्निहोत्री के कर्तव्य, श्रौत-स्मार्त द्विविधिधर्म तथा १८वें अध्याय में पञ्चमहायज्ञों का माहात्म्य वर्णित है, वहीं २५वें अध्याय में गृहस्थ की वृत्ति न्यायोपार्जित धन के विभाग की चर्चा के साथ २६वें अध्याय में दान धर्म का निरूपण तथा नित्यनैमित्तिक काम्य तथा विमल चतुर्विध दान भेद के वर्णन के साथ अधिकारी अनधिकारी की भी चर्चा की गयी है। इस पुराण के अन्तिम अध्यायों में पातकादि की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त का स्वरूप, अनेक आख्यानों से तप एवं तीर्थों की महिमा बतलायी है। जो सांस्कृतिक गौरव एवं सामाजिक एवं उच्चनैतिक मूल्यों की स्थापना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मानवजीवन की शुचिता एवं पारदर्शिता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक भी हैं। पृथु पौत्र सुशील, प्रह्लाद, बलि, वसुमना, श्रीराम, जयध्वज, दुर्जय, उपमन्यु, श्रीकृष्ण, वामन, सती, सीता, इन्द्रद्युम्न आदि के दिव्य चरित्रों के माध्यम से ज्ञान, ध्यान, कर्म, भक्ति, तप, सत्यनिष्ठा, दया, पातिव्रत्य आदि सद्गुणों को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है जो व्यक्ति एवं समाज की उन्नति में सहायक है।

सामाजिक दृष्टि से कूर्मपुराण का महत्त्व - एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का स्वरूप परिवारके सदस्यों के परस्पर व्यवहार, कर्त्तव्यनिष्ठा और शास्त्रानुसार आचरण पर निर्भर करता है। कूर्म पुराण माता-पिता, गुरु, अतिथि, अन्य जनों के प्रति कर्तव्यों, परस्पर ब्राह्मणादि वर्णों के आपसी व्यवहार के विषय में भी निर्देश करता है। आज उपभोक्तावादी

---

१. धर्मात् सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः। कू.पु. १।२।५८

२. तस्मात् सर्व प्रयत्नेन श्राद्धं कुर्यात् द्विजोत्तमः।
आराधिते भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः।। कू.पु. ।१।२२।८५)

पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभाव से टूटते परिवार, माता-पिता की उपेक्षा, गुरु के प्रति श्रद्धा का अभाव, अतिथि अभ्यागत का अनादर, कर्तव्य की अवहेलना आदि से परिवार तथा समाज को बचाने, परस्पर सहयोग सहिष्णुता और समरसता लाने की दृष्टि से भी ये विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

कूर्म पुराण में लोगों के परस्पर मिलने पर ब्राह्मण से कुशल, क्षत्रिय से अनामय, वैश्य से क्षेम और शूद्र से आरोग्य पूछने की बात कही गयी है। (कू.पु. १।१२।२५)। माता-पिता के समान कोई दूसरा देवता और गुरु नहीं है। माता पिता की सेवा से पुत्र सम्पूर्ण धर्म को प्राप्त कर लेता है, उनकी प्रसन्नता से ही वह पुण्य प्राप्त कर सकता है (१।१२।३४-३६)। उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, ससुर, रक्षक, मातामह, पितामह, अपने से श्रेष्ठ वर्ण वाले और चाचा ये सभी गुरु कहे गये हैं। इसी प्रकार माता, मातामही, पितामही, गुरुपत्नी, बुआ, मौसी, चाची, सास, ज्येष्ठ भगिनी, शैशवावस्था में पालन करने वाली धात्री ये सभी स्त्रियाँ गुरु कोटि में आती हैं। मन, वाणी और कर्म द्वारा इनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। पितृवद् ज्येष्ठभ्राता को मूर्ख समझने वाला घोर नरक को जाता है। (१।१२।२६-२८, ४०)। द्विजातियों के गुरु अग्नि, सभी वर्णों का गुरु ब्राह्मण, स्त्री का गुरु पति एवं अतिथि सबका गुरु होता है। विद्या, कर्म, वय, बन्धु और धन ये सम्मान प्राप्ति के पांच स्थान कहे गये हैं। जिनमें ये पांच गुण प्रबल हो वह मान्य होता है (१।१२।४८-४६-५०)।

किसी व्यक्ति को दूसरे के रहस्यों को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिये और जानने पर उसे छिपाना चाहिये। किसी पर भी मिथ्यारोपण नहीं करें। मिथ्यादोषारोपणयुक्त व्यक्तियों के रोने से जो अश्रु गिरते हैं, वह मिथ्यारोपण करने वाले व्यक्ति के पुत्रों का नाश कर देते हैं। (ब्रा. सं. १।१६।४१-४३)। पहले की गयी प्रतिज्ञा या नियम को कभी भी तोड़ना नहीं चाहिये। जल, वायु या धूप द्वारा किसी दूसरे को बाधा नहीं पहुँचानी चाहिये। अपने कार्यों को करवाने के बाद शिल्पियों, मजदूरों आदि को ठगना नहीं चाहिये (ब्रा. सं. १।१६।८१-८२), भोजन तथा निवास के समय सहयात्री को छोड़ना नहीं चाहिये। (आवासे भोजने वापि न त्यजेत् सहयायिनम्। कू.पु. ब्रा. १।१६।५७)

बहुत लोगों के साथ और बन्धु बान्धवों के साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिये तथा स्वयं के प्रति जैसा आचरण प्रतिकूल हो, वैसा आचरण दूसरों के प्रति न करें -

न कुर्याद् बहुभिः सार्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।। कू.पु. ब्रा. १।१६।३५

इस प्रकार के समाज व परिवार को सुसंस्कारित करने वाले अनेक वचन और आख्यान कूर्म पुराण में वर्णित हैं।

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टि से कूर्मपुराण का महत्त्व

पुराणों में लौकिक इतिहास अधिकतर अनुमेय है। विशेषतः ऐतिहासिक सामग्री प्रतीकात्मक है। प्रतीकात्मक सामग्री का अन्य ऐतिहासिक सामग्री के साथ समन्वय स्थापित कर किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। राजवंश वर्णन का ही कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। कूर्म पुराण के २२वें अध्याय में वर्णित राजा दुर्जय का कण्व ऋषि के आदेश से हिमालय पर जाना वहाँ मार्ग में गन्धर्वों से युद्ध, अप्सरा उर्वशी की खोज में हिमालय के पार्श्वभाग को पारकर हेमकूट पर्वत पर पहुँचना, वहाँ से महामेरु पर जाना और वहां से मानसरोवर पर अप्सरा को देखना वर्णित है। यहाँ हिमालय क्षेत्र और उससे परे गन्धर्व और अप्सराओं के निवास की बात का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी हो सकता है।

पौराणिक भूगोल प्रारम्भ में पाश्चात्य और उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों द्वारा भी उपेक्षित या कपोलकल्पित माना जाता रहा किन्तु कैप्टनस्पीक द्वारा पौराणिक वर्णनों के आधार पर नील नदी का स्रोत जानने के बाद विद्वानों का इस ओर ध्यान गया और इसे मान्यता मिली। यह सत्य है कि निरन्तर प्राकृतिक परिवर्तनों के चलते आज उस वर्णन के आधार पर तत्काल उन स्थानों का निश्चय कर लेना कठिन है। किन्तु पुराणों का विवरण आज भी हमारे लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सहायक है।

कूर्म पुराण में विशेष रूप से हिमालय के तीर्थों की चर्चा आख्यानों के माध्यम से की गयी है। सभी पुराणों में नगाधिराज हिमालय का माहात्म्य विशेषतया वर्णित है। इसे शिव की वास भूमि कहा जाता है। कैलासपर्वत की तदाकारिता ने मानों शिव का स्वरूप ग्रहण कर लिया हो, जिसके फलस्वरूप कैलास पर्वत पर्यन्त यात्रा का प्रसङ्ग विविध पुराणों का वर्ण्य विषय रहा है। हिमालय की पर्वत श्रेणियां पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई हैं।[1] वैदिक काल में हैमवत नाम से प्रसिद्ध इस भूभाग के मध्य हैमवतमें कूर्मांचल एवं गढ़वाल दोनों मण्डल सम्मिलित थे। पुराणोक्त उक्त मानस केदार क्षेत्र को उत्तराखण्ड की संज्ञा दी जाती है। नन्दा पर्वत श्रृङ्खला दोनों भूखण्डों की विभाजक है। इस पर्वत श्रृङ्खला का पश्चिम का पर्वतीय भाग केदार खण्ड के नाम से विख्यात है। इसका आरम्भ इसकी पश्चिम सीमा हरिद्वार (गङ्गाद्वार) से होता है।

कूर्म-पुराण में ब्राह्मी संहिता के पूर्वार्द्ध में ग्यारहवें अध्याय में हैमवती माहात्म्य वर्णित है। जिसके अनुसार शङ्कर के आधे शरीर में स्थित रहने वाली माहेश्वरी देवी शिवा, सती तथा हैमवती के रूप में देवताओं एवं असुरों द्वारा पूजित हैं। यह ज्ञानरूप उत्कृष्ट इच्छारूप,

---

१. पाश्चिमाभिमुखः साक्षात् हिमाद्रिः कथ्यते बुधैः।
तस्य दक्षिणभागे वै नाम्ना नन्दागिरिः स्मृतः।। - स्क. पु. मा.ख. अ. २२

व्योमनाम वाली पराकाष्ठा रूप माहेश्वरी शक्ति हैं। शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति ये उस देवी की चार शक्तियाँ हैं। (कू.पु. ब्रा. १।११।१३, २१, २७)

पूर्वोक्त हैमवत क्षेत्र शिवरूप माने जाने के कारण इसी आधार पर उनकी शक्ति स्वरूपा भगवती को हैमवती कहा गया है, ऐसा प्रतीत होता है। पौराणिक आख्यानों के अनुशीलन से भी यही प्रतीत होता है कि शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति परक क्षेत्र होने से ही हिमालय ऋषि मुनियों, एवं साधकों को आकृष्ट करता रहा है।

कूर्म पुराण के १४वें अध्याय में हरिद्वार में दक्ष द्वारा यज्ञ के आयोजन का वर्णन, दक्ष की शिवशरणागति, १५वें अध्याय में नृसिंहावतार, वाराहावतार, प्रह्लाद चरित्रादि की चर्चा की गयी है। केदारनाथ के नीचे तप्तकुण्ड (अग्नितीर्थ) है। इसके नीचे पञ्चशिलाओं में नरसिंह शिला, वाराही शिला एवं गङ्गा में प्रह्लादकुण्ड है। कूर्म पुराण के प्रवक्ता स्वयं कूर्मरूपी भगवान विष्णु हैं। कूर्मावतार का स्थान भी गङ्गाकाली प्रदेश में कूर्माञ्चल में है। इस अवतार के कारण ही यह कूर्मांचल कहलाता है-

'यत्र कूर्म स्वरूपेण देवदेवो जनार्दनः।
तस्थौ चाब्दत्रयं विप्रा महेन्द्राद्यैर्निषेवितः।।
ततः प्रभृति वै विप्राः कूर्मपादाङ्कितो गिरिः।
कूर्माचलति विख्यातो दशयोजनविस्तृतः।।
स्क. पु. मा. खं. अ ६४।२-३

यह स्थान वर्तमान में कानदेव या कालीकूंर्मू के नाम से प्रसिद्ध है। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार भगवान् यहाँ इन्द्रादि देवताओं के साथ तीन वर्ष तक स्थिर रहे। कूर्मपुराण के अनुसार भी इन्द्रादि देवताओं सहित भगवान विष्णु ने कूर्मरूप से ऋषियों को इस पुराण का उपदेश दिया था। कूर्म-पुराणके १३वें अध्याय में पृथु के पौत्र सुशील के आख्यान में हिमालय के 'धर्मपद' नामक वन में महापाशुपत श्वेताश्वतर मुनि के दर्शन और उनसे पाशुपत व्रत ग्रहण करने की चर्चा हैं। कूर्म-पुराणयके अनुसार यहाँ निर्मल जल वाली मन्दाकिनी नामक नदी प्रवाहित होती थी। राजा सुशील द्वारा मन्दाकिनी के जल से पितरों को तर्पण करने की बात भी वर्णित है। इस 'धर्मपद' वन की स्थिति का अनुमान हम स्कन्दपुराण में वर्णित मन्दाकिनी के वर्णन के आधार पर कर सकते हैं। मानस खण्ड के अ. १८ के अनुसार मन्दाकिनी का वर्णन करते हुए भगवान शिव कहते हैं कि मानसरोवर के उत्तरीभाग में कैलाश पर्वत की अधित्यकाओं में मानसरोवर की लहरों से टकराती गुफाऐं हैं। वहाँ सात ब्रह्माण्डों का भेदन कर मेरे मस्तक में छिपी हुई स्वधावास रूपा पितरों को कल्याण करने वाली मन्दाकिनी नदी है-

मानसस्योत्तरे भागे कैलासाख्यो महागिरिः।
यत्र में विद्यते वासस्त्वया सह महेश्वरि।।
अधित्यकासु पुण्यासु तस्याद्रेर्वरवर्णिनि।
सेविता बहवः पुण्या मानसाख्यस्य वीचिभिः।।
त्रयस्त्रिंशच्छताख्याताः पातालसदृशाःगुहाः।
तासु मे विद्यते वासस्त्वया सह न संशयः।।
सप्त ब्रह्माण्ड निर्भेद्य संगूढा मम मस्तके।
स्वधावासा, स्वधापूर्णा शिवदा च स्वधा शिवाम्।।
सूर्यवंशप्रदीपेन धनुषाग्रेण वै शुभे।
दर्शिताध्वा सरिच्छ्रेष्ठा नाम्ना मन्दाकिनी सरित्।।

उपर्युक्त दोनों विवरणों के आधार पर यह धर्मपद वन मानसरोवर कैलास के आसपास होना चाहिए।

इसी प्रकार कूर्मपुराण के १६वें अध्याय में सूर्यवंशीय राजा वसुमना के हिमालय के देवदारु वन में जाकर तप करने का भी प्रसङ्ग आया है।

कूर्मपुराण के २२वें अध्याय में चन्द्रवंशीय राजा दुर्जय का कथानक आया है। जिसके अनुसार यमुना-किनारे बैठी उर्वशी को देखकर उस पर मुग्ध होकर चिरकाल तक उसके साथ रमण किया। बाद में अपनी पतिव्रता पत्नी से भयभीत होकर प्रायश्चित हेतु महामुनि कण्व का मार्गदर्शन पाकर हिमालय की ओर गया। वहाँ मार्ग में गन्धर्वों से युद्ध कर उनसे दिव्यमाला लेकर उर्वशी को ढूंढने लगा। इसी क्रम में वह हिमालय के पार्श्व भाग को पार कर 'हेमकूट' पर्वत पर चला गया। वहाँ भी उसे न पाकर वह राजा महामेरु पर गया। अपने बाहुबल के प्रभाव से गिरिशिखरों को पार करता हुआ व त्रिलोक विख्यात मानस सर पर पहुँचा जहाँ उसे अप्सरा उर्वशी मिली और उसने वह माला उसे दे दी।

अब यहाँ मेरु के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। विद्वानों का यह कथन है कि समग्र भूमण्डल में वही मेरु होना चाहिये, जहाँ से पर्वत श्रेणियां का चतुर्दिक विकास होता हो। अतः पामीर पर्वत को मेरु समझा है। डा. हर्षे ने अल्ताई पर्वत के क्षेत्र में मेरु की स्थिति मानी है।[१] यह एशिया में हिमालय के उत्तर में स्थित है तथा इसके और हिमालय के मध्य पुराणों के अनुसार 'कुदनलून' (हेमकूट) तथा थिएनशान (निषध) पर्वतों के साथ समन्वय स्थापित किया है। मंगोलियायी भाषा में आलताई (आल्तेन उना) सुवर्ण पर्वत ऐसा होता है। कूर्मपुराण का उपर्युक्त आख्यान इस सन्दर्भ में विचार करने में सहायक हो सकता है।

१. मेरु होमलैण्ड ऑफ द आर्यन्स - डा. हर्षे, प्रकाशक विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, पंजाब सन् १६६४

कूर्म-पुराण के २४वें अध्याय में श्रीकृष्ण का उपमन्यु के आश्रम पर गमन तथा २५वें अध्याय में शिव के साथ कैलास पर विहारादि का वर्णन भी हिमालय सम्बन्धी अध्ययन में भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार नर्मदा क्षेत्र का विवरण और अन्य तीर्थों के विवरण भी महत्त्वंपूर्ण हैं।

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से कूर्म-पुराण का महत्त्व-यद्यपि हम वर्तमान में पर्यावरण के रूप में केवल बाह्य पर्यावरण को ही शुद्ध रखने की बात करते हैं किन्तु पुराणों में बाह्याभ्यन्तर दोनों के संरक्षण की बात है। सदाचार वर्णन प्रसङ्ग में जहां उच्चनैतिक मूल्यों पर जोर दिया है, वहीं अग्नि, जल, वायु आदि की शुद्धि, वृक्ष पशु पक्षी आदि के संरक्षणपर भी जोर दिया है।[1] यहाँ सार्वजनिक स्थान पर मल मूत्र त्यागने का कितना बड़ा दण्ड विधान किया गया हैं। सार्वजनिक स्थानों पर मूत्रोत्सर्ग करने पर चान्द्रायण व्रत करने सहित मूत्रेन्द्रिय कर्तन तक का आदेश है।

देवोद्यानेषु वा कुर्याद् मूत्रोच्चारं सकृद्विजः।
छिन्द्याच्छिश्नं विशुध्यर्थञ्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्।।
देवतायने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः।
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत्।।
- कू.पु. उ. ३४।८८-८६

कूर्मपुराण का आध्यात्मिक दार्शनिक महत्त्व-कूर्मपुराण मुख्य रूप से पाशुपत मत का निरूपण करता है, किन्तु डा. आर.सी. हाजरा महोदय का कथन है कि यह पुराण पाञ्चरात्र मत का प्रतिपादक है। ईश्वर के सम्बन्ध में इस पुराण की मान्यता है कि वह एक ही है उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, उसने अपने को ही दो रूपों में विभक्त किया है १. नारायण और २. ब्रह्मा - (कू.पु. पू. ६/४०) और भी तीनों रूपों में एक शिव ही अपने को तीन रूपों में विभाजित कर विराजता है।

ब्रह्मविष्णु शिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः।।

यह पुराण विष्णु और शिव में भेद नहीं मानता। (कू.पु. ब्रा. सं.पू. २६/१६-२०) कूर्म पुराण में भगवान् महेश्वर की शक्ति चार प्रकार की बतलायी गयी है। - १. शान्ति, २. विद्या, ३. प्रतिष्ठा, ४. निवृत्ति। तन्त्रशास्त्र में इन्हें ही कला कहा गया है।

इन शक्तियों के कारण ही परमेश्वर चतुर्व्यूह कहलाता है -

---

१. कू.पु. उ. १६।१, २, ७, ८, ६, २५, २६, ५०, ५६, ६०, ६१, ७४, ७५, ८०, ६२, ६३

शान्तिर्विद्याप्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः।। (कू.पु. पू. १२/१८)

इसी प्रकार नारायण को भी चतुर्व्यूहात्मक कहा गया है। प्रथम ज्ञानरूपा मूर्ति जिसे वासुदेव कहते हैं। २. दूसरी तामसी मूर्ति जिसकी काल संज्ञा है। ३. सत्वाधिक्यवाली तीसरी मूर्ति प्रद्युम्न और ४. चौथी रजोमयी मूर्ति ब्रह्मा कहलाती है-

एका भगवतो मूर्तिर्ज्ञानरूपा शिवाऽमला।
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिश्चला।
द्वितीया कालसंज्ञाख्या तामसी शिव-संज्ञिता।
सत्वोद्रिक्ता तृतीयाऽन्या प्रद्युम्नेति च संज्ञिता।।
चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्तिर्ब्रह्मेति संज्ञिता।। (कू.पु. उ. ५१/३९-४२)

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से कूर्मपुराण के उत्तर भाग में स्थित 'ईश्वरगीता' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमें ११ अध्याय हैं साथ ही शेष अध्यायों में भी एक गीता है जिसे व्यास-गीता कहते हैं। वहाँ ईश्वरगीता में श्रीमद्भागवद्गीता की ही तरह ध्यानयोग द्वारा भगवान शिव के साक्षात्कार हेतु आध्यात्मिक ज्ञान का मार्मिक विवेचन किया गया है। यहाँ शैव-दर्शन विषयक तत्त्वों का विवेचन तथा पाशुपत-योग का महत्त्वपूर्ण विवरण उपस्थापित है।

प्राचीन काल में सनत्कुमारादि प्रमुख मुनीश्वरों द्वारा पूछने पर स्वयं शूलपाणि भगवान् महादेव ने जिसे कहा था, इसी का ब्रह्मविषयक ज्ञान की जिज्ञासा करने पर व्यासजी ने प्रतिपादन किया।

इस सम्पूर्ण जगत का कारण तत्त्व कौन है ? कौन नित्य गतिशील रहता है ? आत्मा कौन है ? मुक्ति क्या है ? संसार की रचना का प्रयोजन क्या है ? इस संसार को चलाने वाला शासक कौन है ? परात्पर ब्रह्म क्या है ? मुनीश्वरों के इस प्रकार जिज्ञासा करने पर अपने सदुपदेश द्वारा आत्मतत्त्व का निरूपण करते हुए आत्म साक्षात्कार के साधनों का वर्णन करते हैं। यही सदुपदेश ईश्वरगीता के नाम से विख्यात है।

ईश्वरगीता के अनुसार आत्मा केवल शुद्ध सनातन सच्चिदानन्द स्वरूप है। उसी से विश्व की उत्पत्ति स्थिति और नाश सम्भव है। वह पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतों, तथा देहेन्द्रियप्राणान्तःकरण समस्त अनात्म वस्तुओं से अतीत है। परस्पर विलक्षण प्रकाश और तम, छाया और धूप की ही तरह प्रपञ्च और पुरुष में सम्भव नहीं है। (कू.पु. ब्रा. २/१०-११)

मैं कर्ता सुखी-दुःखी कृश-स्थूल हूँ-इस प्रकार की मति अहङ्कार कृत होने से आत्मा आरोपित है। निर्विकार निरञ्जन आत्म त्रिगुणमयी प्रकृति के सङ्गत होकर अनात्मा में आत्म विज्ञान आरोपित कर सुखदुःखात्मक संसार को प्राप्त होता है। जैसे धूम के सम्पर्क

से आकाश मलिन नहीं होता उसी प्रकार अन्तःकरण समुद्भूत इच्छा द्वेषादि भावों से आत्मा लिप्त नहीं होता। (कू.पु. ब्रा. २/२४)। आत्मा में देहेन्द्रियादि की उपाधि से मलिनता परिलक्षित होती है। आत्मा शुद्ध अक्षर, अव्यय और व्यापक है तथा मुमुक्षुओं के द्वारा श्रोतव्य, मन्तव्य और उपासितव्य है।

जो विश्वरूपिणी माया को वश में करने वाला तत्त्वयोगी है, वही मेरे साथ परम विशुद्ध निर्वाण को प्राप्त होता है। शतकोटि कल्पों में भी उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है। (कू.पु. २/५४-५५)। योग और ज्ञान से युक्त व्यक्ति पर परमात्मा प्रसन्न होता है। योग दो प्रकार है - १. अभाव योग और २. महायोग। जहाँ आभासरहित सब शून्य है ऐसा चिन्तन किया जाता है। वहाँ अभाव योग और आत्मा को नित्यानन्द निरञ्जन परमात्मा जानना महायोग या ब्रह्मयोग है। यह नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि-ये अष्टाङ्ग योग हैं। यम चित्तशुद्धि प्रद हैं। ये पांच हैं - मनसा वाचा कर्मणा किसी को क्लेश न देना अहिंसा, यथार्थ कथन सत्य, बलपूर्वक पर धन का अपहरण न करना अस्तेय, सभी अवस्थाओं में मैथुन त्याग, ब्रह्मचर्य, धन (द्रव्य) आपात काल में भी न ग्रहण करना अपरिग्रह है। शौच सन्तोष स्वध्याय, तप और ईश्वर प्रणिधान ये नियम हैं। मिट्टी जल से वाह्य शुद्धि तथा अकाम, अक्रोधसे अन्तःशुद्धि शौच, यदृच्छा प्राप्त वृत्ति को पर्याप्त मानना, सन्तोषा कृच्छ्रचान्द्रायणादि उपवास तप, वाचिक, उपांशु और मानस भेद से प्रणवादि का जप स्वाध्याय, कायेन मनसा वाचा स्तुति तथा भगवादाराधन ईश्वर प्रणिधान है। स्वस्तिक पद्मादि आसन, स्वदेहज वायु प्राण का निरोध आयाम (कू.पु. पू. २/११/३०), विषयों में विचरण करती इन्द्रियों का निग्रह प्रत्याहार (११/३८), हृदयकमल नाभि, मूर्धा, पर्व, मस्तकादि स्थानों में चित्तबन्धन धारणा (२/११/३६), देशावस्थिति का आलम्बन लेकर बुद्धिवृत्ति संतति का जो वृत्यन्तर से असंसृष्ट प्रवाह है, वह ध्यान है (२/११/४०) तथा देशालम्बन वर्जित वृत्ति को अर्थ मात्र में एकाकारता समाधि है (एकाकारः समाधिः स्यात् देशालम्बन वर्जितः। प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम् (कू.पु. ब्रा. २/११/४१)।

इसमें कुल ग्यारह अध्याय हैं, जिनमें शिवभक्ति का माहात्म्य, शिवोपासना की सुगमता, ज्ञान रूप शिव का वर्णन, शिव की त्रिविध शक्तियाँ, विभूतिवर्णन, चौबीस तत्त्वों, तीन गुणों तथा पशु, पाश और पशुपति आदि का विवेचन, महादेव का विश्वरूपत्व, परम तत्व, परम ज्ञानस्वरूप वर्णन प्राप्ति के साधन आदि पर प्रकाश डाला है। योग के अष्टाङ्गों की चर्चा, पाशुपतयोग वाराणसी में तनुत्याग की महिमा, शिवाराधन विधि, हरिहर अभेद प्रतिपादन के साथ ईश्वर गीता की फलश्रुति वर्णन के साथ उपसंहार किया गया है।

उपसंहार - पुराणों की वेद के निगूढ अर्थों का स्पष्टीकरण, ज्ञान-कर्म और उपासना के सरलतम विस्तार के साथ कथोपकथन के माध्यम से जन साधारण को भी गूढ़तम विषयों को हृदयङ्गम कराने की जो अद्भुत क्षमता, वह कूर्मपुराण में भी परिलक्षित होती है। पुराण

वाङ्मय में कूर्मपुराण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि चार में से इसकी केवल एक ही संहिता उपलब्ध है फिर भी इसकी महत्ता का कारण इसमें महापुराणों के पाँच मुख्य विषयों सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित्र का पूर्ण विवेचन है, तीनों प्रमुख सम्प्रदायों शैव, वैष्णव और शाक्त का बहुत ही प्रशस्तरूप में इसमें समन्वय किया गया है, जब कि यह एक शैव पुराण है। यह त्रिदेवों की एकता को प्रतिपादित करता है। शक्ति और शक्तिमान में अभेद मानता है। इसके साथ ही यह शिव और विष्णु का परमैक्य स्वीकार करता है। इसमें वर्णित ईश्वरगीता का श्रीमद्भगवद्गीता की ही तरह धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व है। तभी तो न केवल भगवद्पाद शङ्कराचार्य जी ने विष्णु सहस्रनाम, एवं सनत्सुजातीय भाष्यों में ईश्वर एवं व्यासगीता के श्लोक प्रमाण रूप में दिये हैं, बल्कि विज्ञानभिक्षु आदि के भी भाष्य उपलब्ध हैं। इसकी व्यासगीता में भी सांसारिक कर्म करने वालों के लिये धर्म पालन का विधान और चारों वर्णाश्रमियों के कर्तव्यों का सविस्तर दिग्दर्शन भी है। इसमें हिमालय, नर्मदा के समीपवर्ती तीर्थों के वर्णन के साथ ही काशी और प्रयाग इन दो मूर्धन्य तीर्थों की महिमा विस्तार से दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म-दर्शन, भूगोल-इतिहास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक-नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्त्वपूर्ण योगदान देने के कारण कूर्म पुराण पुराणवाङ्मय में गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

ब्रह्माण्डपुराण

वेदों के साथ पुराण वाङ्मय भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। ये ग्रन्थ प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन की परम्परा को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इनमें ज्ञान का इतिवृत्त उपलब्ध है जो भारतीय दर्शन एवं संस्कृति की नींव है। वेदों की परम्परा श्रुति रूप में गुरु से शिष्य तक चली आती थी ठीक इसी तरह सूत परम्परा पुराणकाल में जागरित हुई एवं वेदों के दुरुह अर्थों को कथा के माध्यम से आम जनता तक पहुँचाने का कार्य किया। इसके साथ लिखित परम्परा भी चल पड़ी थी। आज इन पुराणों की गाथा व्यास परम्परा एवं सूत परम्परा के माध्यम से सम्पूर्ण भारत वर्ष में किसी न किसी रूप में जीवित है।

अष्टादश पुराणों के गणनाक्रम में ब्रह्माण्ड पुराण का नाम सबके अन्त में आता है। श्रेष्ठ वैष्णव पुराणों, श्रीमद्भागवत एवं विष्णु में उक्त क्रम निर्दिष्ट है-

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्।।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा।
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम्।।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कन्दं चात्र त्रयोदशम्।
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्।।[1]

नामकरण

ब्रह्माण्ड के विषय में स्वयं ब्रह्मा उक्त पुराण को वर्णित करते हैं। अतः इस पुराण का नाम ब्रह्माण्ड पुराण है-

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्।।
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद् ब्रह्माण्डपुराणं च ब्रह्मणा समुदाहृतम्।।[2]

---

१. विष्णुपुराण ३/६/२१-२४, श्रीमद्भागवत १२/७/२३-२४
२. मत्स्य पुराण ५३/५४-५५

इस बात का समर्थन शिवपुराण भी करता हुआ कहता है कि इसमें ब्रह्माण्ड के चरित का विस्तार से वर्णन है एवं पुराणों में यह अतीव ही पुण्यकारक है-

ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद् ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्।
ब्रह्माण्डं चाति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः।।[1]

नारद पुराण के वचन से यह ज्ञात होता है कि व्यास जी को वायु ने इस पुराण का उपदेश दिया था। इसलिए इसका वायु प्रोक्त ब्रह्माण्ड पुराण नाम पड़ना भी उचित होता है-

व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत् प्रभञ्जनमुखोद्गतम्।
प्रमाणीकृत्य लोकेऽस्मिन् प्रावर्तयदनुत्तमम्।।

इस पुराण का प्रथम खण्ड में ही जम्बू द्वीप एवं उसके पर्वत, नद-नदियों का वर्णन अ. ६६ से ७२ तक विस्तृत रूप में है। भद्राश्व केतुमाल, चन्द्रद्वीप, किपुरुषवर्ष, कैलास शाल्मलि द्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाक द्वीप एवं पुष्कर द्वीप आदि का वर्णन भिन्न भिन्न अध्यायों में उपलब्ध है। इसलिए इस पुराण का नाम ब्रह्माण्ड पुराण होना सर्वथा सङ्गत है।

रचनाकाल

पण्डित बलदेव उपाध्याय जी का कहना है कि ईस्वी सन् ५वीं शताब्दी में इस पुराण को ब्राह्मण लोग जावा द्वीप ले गये थे जहाँ उसका जावा की प्राचीन 'कविभाषा' में अनुवाद आज भी उपलब्ध होता है, इस प्रकार इस पुराण का समय बहुत ही प्राचीन सिद्ध होता है।[2]

इसे मार्कण्डेय, वायु एवं विष्णु पुराण के समकालीन पुराण मान सकते हैं। इनमें दी गई वंशावलियों की समानता आदि अनेक तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके डॉ. आर. सी. हाजरा इस का रचना काल ईशवीय ४०० शताब्दी मानते हैं।[3]

इस पुराण में परशुराम की महिमा एवं गौरव वर्णन अत्यन्त गरिमामण्डित है। परशुराम का सम्बन्ध महेन्द्र पर्वत से है। इस पुराण की एक और विशेषता यह है कि इसमें राधा का वर्णन उपलब्ध है एवं बह तान्त्रिक प्रभाव भी अनुस्यूत है। इन विषयों को ध्यान में रखकर गवेषक एस.एन. राय ने इस पुराण के रचना काल को १००० शताब्दी तक ले आते हैं।[4]

---

१. शिव पुराण ४४/१४३
२. पुराण विमर्श, बलदेव उपाध्याय पृ. १६२
३. Studies in the Puranic Records on Hindu's rites and customs, R.C. Hazra, Dacca - 1940, P.18.
४. पुराण ५ (१९६३) Dates of Brahmanda Purana, S.N. Ray Pp.-305-19.

उक्त पुराण के विषय में कान्यकुब्ज का भूप निर्देशित है (३/४१/३२) जो निश्चय रूप से गुप्त नरेशों के उत्तरकालीन मौखरी राजा का सूचक माना जा सकता है। कालिदास काल में प्रसिद्ध वैदर्भी रीति का प्रभाव भी इस पुराण में है। अतः इन सब प्रमाणों से इस पुराण की रचना गुप्तोत्तर काल में हुई होगी।

कथावस्तु

नारदीय पुराण में पाद संख्या ४ एवं अध्याय संख्या १०६ में ब्रह्माण्ड पुराण का विषय वस्तु संक्षिप्त रूप में पद्यात्मक वर्णित है।

शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डाख्यं पुरातनम्।
तत्र द्वादशसाहस्रं भाविकल्पकथायुतम्।।
प्रक्रियाख्योऽनुषङ्गाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः।
चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि।।
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः।
तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरो मतः।

पूर्वभागेप्रक्रियापादे

आदौ कृत्यसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः।
हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च।।
एष वै प्रथमःपादो द्वितीयं शृणु नारद।

पूर्वभागेऽनुषङ्गपादे

कल्पमन्तन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम्।
मानससृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम्।।
महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम्।
अग्निना विचयश्याथ कालसद्भाववर्णनम्।।
प्रियव्रताश्च योद्देशः पृथिव्यायामविस्तरः।
वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम्।।
जम्ब्वम्ब्यादिसप्तद्वीपाख्या ततोऽधोलोकवर्णनम्।
उर्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचरणस्ततः परम्।।
आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्तनम्।
नीलकण्ठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम्।।

अमावस्यानुकथनं युगतत्त्वनिरूपणम्।
यज्ञप्रवर्त्तनञ्चाथ युगयोरन्त्ययोः कृतिः।।
युगप्रजालक्षणञ्च ऋषिप्रवरवर्णनम्।
वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायम्भुवनिरूपणम्।
शेषमन्वान्तराख्यानं पृथिवीदोहनन्ततः।
चाक्षुषेऽद्यतने सर्गो द्वितीयोऽङ्घ्रिपुरोदले।।

मध्यभागे उपोद्घातपादे

अथोपोद्घातपादे सप्तर्षिपरिकीर्तनम्।
राजापत्यचयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः।
ततो जयाभिव्याहारा मरुदुत्पत्तिकीर्तनम्।
काश्यपेयानुकथनमृषिवंशनिरूपणम्।।
पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम्।
वैवस्वतसमुत्पत्तिस्सृष्टिस्तस्य ततः परम्।।
मनुपुत्रान्वयश्चातो गान्धर्वस्य निरूपणम्।
इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः।।
अमावस्यारात्रयश्च रवेश्चरितमद्भुतम्।
ययातिचरितञ्चाथ यदुवंशनिरूपणम्।।
कार्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम्।
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ सम्भवः।।
भार्गवस्यानुचरितं तथार्यकवधाश्रयम्।
सगरस्याथचरितं भार्गवस्य कथा पुनः।।
देवासुराहवकथाः कृष्णाविर्भाववर्णनम्।
इनस्य च स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः।।
विष्णुमाहात्म्यकथनं बलीवंशनिरूपणम्।
भविष्यराजचरितं सम्प्राप्तेऽथकलौ युगे।।
एवमुद्घातपादोऽयं तृतीये मध्यमे दले।

उत्तरभागे उपसंहारपादे

चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे।।
वैवस्वतान्तराख्यानं विस्तरेण यथातथम्।
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते।।

भविष्याणां मनूनां च चरितं हि ततः परम्।
कल्पप्रलयनिर्देशः कालमानं ततः परम्।।
लोकाश्चतुर्दश ततः कथिता मानलक्षणैः।
वर्णनं नरकाणाञ्च विकर्माचरणैस्ततः।
मनोमयपुराख्यानं लयः प्राकृतिकस्ततः।
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनञ्च ततः परम्।।
त्रिविधाद् गुणसम्बन्धाज्जन्तूनां कीर्तिता गतिः।
अनिर्देश्याप्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम्।
इत्येष उपसंहारः पादो वृत्तः स चोत्तरः।।

उक्त पुराण की श्लोक संख्या विभिन्न पुराणों की मान्यता के अनुसार पृथक् पृथक है। श्रीमद्भागवत, नारद, अग्नि एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार १२००० (बारह हजार) हैं, जबकि स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड के अनुसार १२८०० (बारह हजार आठ सौ), एवं देवी भागवत के अनुसार १२१०० (बारह हजार एक सौ) हैं। समग्र कथावस्तु चार पादों में विभक्त है।

प्रक्रियापाद में द्वादश-वार्षिक यज्ञ वर्णन, सृष्टिवर्णन, प्रतिसन्धिवर्णन, देवासुरोत्पत्ति, योग धर्म, योगोपवर्ग, योगैश्वर्य, पाशुपत योग, शौचाचार लक्षण, यतिप्रायश्चित, अरिष्टलक्षण, ओंकार प्राप्ति लक्षण, कल्पनिरूपण, कल्पसंख्या, युगभेद से माहेश्वरावतार, ब्रह्मोत्पत्ति, कुमारोत्पत्ति, विष्णु कर्तृकशिवस्तव, स्वरोत्पत्ति, रुद्रोत्पत्ति, सप्तर्षियों की उत्पत्ति, अग्निवंश वर्णन, दक्षकन्या एवं दक्ष शापवर्णन, दक्षकर्तृक शिवस्तुति, देववंश, प्रणव, युग निर्णय, भरतवंश, जम्बू द्वीप, वर्णपर्वत, देवकूटादि पर्वत वर्णन, कैलास, निषध, केतुमाल, चन्द्रद्वीप, भारतवर्ष, गंगावतरण नदी वर्णन, लक्षद्वीप वर्णन, शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, चन्द्रसूर्यादि ज्योतिनिर्णय, ग्रहनिर्णय, नीलकण्ठस्तव, लिंगोत्पत्ति, पितृवर्णन, द्वापर कलियुगादि वर्णन, देवासुरादि शरीरपरिमाण, धर्माधर्म विचार, ऋषिवंश, वेदविभाग, शाक्त्यवृत्तान्त, संहिताकार ऋषिवंशवर्णन, मन्वन्तर, पृथुवंश, स्वायंभुव, वैवश्वत आदि सर्ग वर्णन प्रमुख हैं।

मध्यभाग के उपोद्धात पाद में प्रजापति वंशानुकीर्तन, काश्यपीय प्रजासर्ग, ऋषिवंशानुकीर्तन, श्राद्धकल्प, ब्राह्मणपरीक्षा, दान फल, श्राद्धफल, नक्षत्र विशेष में श्राद्धफल, गयाश्राद्धादिवर्णन, वरुणइक्ष्वाकु - मिथिलावंशवर्णन, राजयुद्ध, भार्गव चरित, कार्तवीर्यचरित, ज्यामघचरित, वृष्णिवंशानुकीर्तन, समरचरित, भार्गव कथा, देवासुर कथा, कृष्णाविर्भाव, इला स्तव, भविष्य कथा, वैवस्वत मनुवंश, गन्धर्व मूर्च्छना लक्षण, गीतालंकार, सोम जन्म, चन्द्रवंश, ययातिचरित विष्णुवंश, विष्णु माहात्म्य एवं भविष्य राज वंश वर्णन प्रमुख है।

उत्तर भाग के उपसंहार पाद में चौदह मनुओं का वर्णन, भविष्य मनुओं का वर्णन, कालमान, चौदह लोक का वर्णन, नख, मनोमयपुराख्यान, प्राकृतिकलय, शिवपुरादिवर्णन,

गुणों के अनुसार जन्तुओं की गति, अन्वय व्यतिरेक के अनुसार पुनः सृष्टिवर्णन आदि इस भाग के प्रमुख वर्णनीय विषय हैं।

ब्रह्माण्डपुराण का वैशिष्ट्य

सात्त्विक राजस एवं तामस भेद से पुराणों का विभाजन हुआ है। वैष्णव पुराणों को सात्त्विक, ब्रह्म सम्बन्धित पुराणों को राजस एवं शैवपुराणों को तामस पुराण कहते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा ब्रह्माण्ड के वर्णन इस पुराण का मुख्य विषय होने यह एक प्रमुख राजस पुराण है। पुराण रूपी पुरुष का यह पुराण अस्थि है। अन्य पुराणों में वे पद्म-हृदय, ब्रह्म-मस्तिष्क, विष्णु-दक्षिणहस्त, शिव-वामहस्त, भागवत-जंघा, नारदीय-नाभि, मार्कण्डेय-दक्षिणपाद, अग्नि वामपाद, भविष्य-दक्षिण सक्थि, ब्रह्मवैवर्त वाम सक्थि, लिंग-दक्षिण गुल्फ, वाराह-वामगुल्फ, स्कन्द-रोम, वामन-त्वचा, कूर्म-पीठ, मत्स्य स्नायु एवं गरुड-मज्जा हैं। जैसे अस्थि के बिना किसी भी व्यक्ति दण्डायमान नहीं हो सकता है ठीक उसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण के अभाव में पुराण वाङ्मय अपूर्ण सा है।

प्राचीनकाल से इतिहास पुराणशब्द से प्राचीन कथा अर्थ ही लिया जाता था। सायण ने भी अथर्व वेद भाष्य में पुराणशब्द का अर्थ पुरातन वृत्तान्त कथन रूप आख्यान किया है।[1] किन्तु सायण के पूर्व 'इति ह आस' इस व्युत्पत्ति के आधार पर भूतकालीन कथा तक को इतिहास कहा है। शौनक ने भी पुरातन वृत्तान्त को इतिहास कहा है।

इतिहासः पुरावृत्तम् ऋषिभिः परिकीर्त्यते।[2]

कौटिल्य इतिहास के अन्तर्गत पुराण को मानते हैं। **पुराणमितिवृत्तमाख्यानकोदाहरणं धर्मशास्त्रं चेतिहासः।**[3]

ब्राह्मण आदि प्राचीन ग्रन्थों में कथा के अर्थ में आख्यान, आख्यायिका, अन्वाख्यान आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इन सबको आधार मानकर महर्षि व्यास ने पुराणसंहिता की रचना की है। विष्णुपुराणयके अनुसार -

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः।।[4]

इन आख्यान, उपाख्यान गाथा एवं कल्पशुद्धियों के द्वारा भगवान वेदव्यास ने पुराणों की रचना की।

विस्ताराय तु वेदानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले।।[5]

---

१. पुराणं पुरावृत्तान्तकथनरूपमाख्यानम्, अथर्ववेद, सायणभाष्य ११/४/६
२. बृहद् देवता ४/४६ ३. कौटलीय अर्थशास्त्र १/५/१३ ४. विष्णुपुराण ३/६/१५
५. ब्रह्म पु. १/१५

ब्रह्माण्ड पुराण में में इस आख्यान एवं उपाख्यान आदियों के द्वारा विषयवस्तुओं का विस्तार किया गया है। अतः इनके सामान्य परिचय नीचे दिये गये हैं।

आख्यान

महर्षि पतञ्जलि आख्यान, आख्यायिका, इतिहास एवं पुराणों को पृथक् पृथक् मानते हैं। उन्होंने आख्यानको काल्पनिक कथा बताया है। आख्यानों के अन्तर्गत **यावत्क्रीतिक** एवं **यायातिक** एवं आख्यायिका में वासवदत्ता एवं सुमनोत्तरा आदि का उदाहरण दिये हैं।[1] इसकी व्याख्या करने से यह ज्ञात होता है कि आख्यानों में देवता एवं देवर्षि आदियों के अत प्राचीन कथायें एवं आख्यायिका में लौकिक कथायें एवं ऐतिहासिक किवदन्तियाँ आती हैं। आख्यायिका में दिव्य चरित्र पात्र नहीं होते हैं।

उपाख्यान

विष्णु पुराण की श्रीधरी टीका में आख्यान एवं उपाख्यानों में भेद दर्शाया गया है -

स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।।[2]

अर्थात् स्वयं के द्वारा अनुभूत दृष्ट घटनाओं का वर्णन आख्यान एवं अन्य से सुनी हुई घटनाओं का वर्णन उपाख्यान होते हैं। परन्तु सामान्य अर्थ में मुख्य विषयवस्तु आख्यान है एवं तदन्तर्गत वर्णित लघुकथाओं को उपाख्यान कहते हैं जैसे रामायण में रामकथा आख्यान एवं अहल्या सुग्रीवादि प्रसंग उपाख्यान हैं। इसी तरह महाभारत में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक आख्यान एवं नलदमयन्ती कथा उपाख्यान हैं।

गाथा

किसी भी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक वीर पुरुषों की यशःकथा वर्णन ही गाथा है जिसे ऋग्वेद में नाराशंसी से जाना जाता है। शतपथ ब्राह्मणों में ताराशंसी कथाओं को गाथा कहते हैं।[3] ऐतरेय ब्राह्मण ईश्वरीय रचना को ऋक एवं मानव कृत रचना को गाथा मानता हैं।[4] इसमें अनेक गाथायें उद्धृत हैं। इसमें विशेषतः महापुरुषों की वीरता, दानशीलता एवं शौर्य वर्णित है।

---

१. महाभाष्य ४/२/६०, ४/३/८७
२. विष्णु पु. ३/६/१५ (श्रीधरी टीका)
३. नाराशंस्यो गाथा १०/५/६/८
४. ऐतेरेय ब्राह्मण-७/१८

कल्पशुद्धि

इसमें धर्मशास्त्रीय विषय वर्णित हैं जिसमें भिन्न भिन्न शुद्धियाँ वर्णित हैं। कहीं-कहीं पर कल्पशुद्धि के स्थान पर 'कल्पज्योक्तिभिः' पाठ मिलता है। इस पाठ के अनुसार भिन्न भिन्न कल्पों में होने वाले विषयों का विवरण प्रस्तुत करना है। अतः कल्प भी पुराणों का वर्ण्य विषय है।

इन आख्यान, उपाख्यान, गाथा एवं कल्पशुद्धियों के द्वारा समस्त पुराणों की रचना की गई है एवं इसका प्रचार प्रसार का अधिकार सूत रोमहर्षण को दिया गया था एवं इसी प्रकार शिष्य परम्परा से पुराण विद्या का प्रवर्तन हुआ है। ब्रह्माण्ड पुराण में उपर्युक्त समस्त विषय सांगोपांग वर्णित हैं।

पञ्चलक्षणसंगति

पुराण के पांचलक्षण ब्रह्माण्डपुराण में पाये जाते हैं। अपि च पञ्च लक्षण का उल्लेख इस पुराण में उपलब्ध है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।[1]

सर्ग (सृष्टि) ब्रह्माण्ड पुराण में १३ अध्यायों में (१.३-५, ८, ८-१३ एवं २. १-४) वर्णित हैं। इसके अनुसार ब्रह्म का विवर्त संसार है, इससे प्रधान की उत्पत्ति, प्रधान से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से तन्मात्रायें, उनसे ग्यारह इन्द्रिय (पञ्चज्ञानेन्द्रिय + पञ्चकर्मेन्द्रिय + मनः)। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार इसे **प्रकृति सर्ग** कहते हैं। द्वितीय प्रकार की सृष्टि का नाम है **वैकारिकसर्ग** जिसके अन्तर्गत स्थावर, तिर्यक्, उर्ध्व स्रोत एवं अनुग्रह सर्ग आते हैं। इसके अनुसार ब्रह्माजी की **मानसी** सृष्टि वर्णित है। उपर्युक्त नौ प्रकार की सृष्टि से ब्रह्मा जी को सन्तुष्टि नहीं हुई, क्योंकि इनके द्वारा उत्तरोत्तर सृष्टि की सम्भावना नहीं थी। अतः वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों से नौ पुत्रों की उत्पत्ति की। परन्तु वे लोग भी सृष्टि करने में असमर्थ रहे। अतः वह अपने शरीर को दो हिस्सा में बांटकर पुरुष एवं स्त्री की उत्पत्ति की। अपनी स्त्री रूपी हिस्सा से उन्होंने स्वायंभुव मनु एवं शतरूपा को पैदा कर मानव समुदाय की सृष्टि की।

प्रतिसर्ग - प्रतिसर्ग का अर्थ प्रलय है जो उक्त पुराण के १.७ एवं ३.३ में वर्णित है। इस क्रम में सभी महाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओं में विलीन हो जाते हैं। पुनः तन्मात्राओं अहंकार में, अहंकार महत् में, महत् प्रधान में और अन्त में प्रधान ब्रह्मा में

---

१. ब्रह्माण्ड पुराण - १/१/३७-३८

विलीन हो जाता है। यह प्रत्येक मन्वन्तर के अनन्तर होता है। इसी प्रकार चौदह मन्वन्तर समाप्त हो जानेके पश्चात एक कल्प की रचना होती है। इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। ब्रह्माजी के लिए एक कल्प एक दिन की आयु होती है। ब्रह्मा अपने आयु के मान से सौ वर्ष जीवित रहते हैं। इसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। जब उपर्युक्त तीन प्रकार का प्रलय समाप्त हो जाते हैं तब एक आत्यन्तिक प्रलय होता है। ब्रह्माण्ड पुराण में उक्त प्रलय अध्याय ३.३ में विस्तृत रूप में वर्णित है।

वंश - ब्रह्माण्ड पुराण में प्रजापतियों के वंश अति विस्तार से वर्णित हैं। उनका प्रमुख वंश इस प्रकार का है। वैवस्वत मनु अध्याय (२/५६-६१, प्रजापति १/१३, २.२ अगिंरस २.१, अत्रि २/८, भृगु २.१, कश्यप २-५,७, मरीच १.३८, वसिष्ठ २-८, सूर्यवंश की वर्णना २/६३, चन्द्रवंश२.६५-६६, यदुवंश २-६६, कोष्टु वंश २.७०, प्रियव्रतवंश १.१४, पृथु १.३७, निमि २/६४, आयु २/६७, मरुत २-६८ नहुष २.६ एवं तुर्वसु २-७४ में विस्तार से वर्णित हैं। दैत्यों में से दिति पुत्र हिरण्यकशिपु २.५ बलि २.७४ एवं दानव में से दनु एवं सिंहिक २.६ में वर्णित है।

मन्वन्तर - मन्वन्तरों का वर्णन अति विस्तार से अध्याय १.६ एवं ६ में किया गया है। जिसे चतुर्युग कृत त्रेता, द्वापर एवं कलि वर्णित है। इसी प्रकार ७१ (इक्हत्तर) एक मन्वन्तर की सृष्टि करता है।

इस क्रम में चौदह मन्वन्तर मिलकर एक कल्प को बनाता है। एक एक मन्वन्तर में एक एक मनु होते हैं जिनका नाम इस प्रकार है -१. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. रौच्य, ६. भौत्य फिर पञ्चसार्वणि है १०. सूर्य सार्वणि, ११. दक्ष सार्वणि, १२. ब्रह्मसार्वणि १३. धर्मसार्वणि एवं १४. रुद्रसार्वणि हैं। वर्तमान छः मन्वन्तर व्यतीत होकर वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इन मन्वन्तरों के अन्तर्गत विभिन्न मनु एवं इनके पुत्र पौत्रादि के शासन वर्णित हैं।

वंशानुचरित - इसके अन्तर्गत विभिन्न ऋषिवंश एवं राजवंशों का विस्तार किया गया है। एक एक वंश के प्रमुख राजाओं के चरित एवं उनकी वंशावली दी गई है। जिस में प्रमुख रूप में परशुराम का कार्तवीयिर्जुन के साथ संघर्ष वर्णित है। सगर वंश का विस्तृत वर्णन एवं भगीरथ द्वारा गंगावतरण २/२१-५८ में आता है। इस पर्याय में ललितोपाख्यान चालीस अध्यायों में वर्णित है। जिस के अन्तर्गत ललिता देवी के राक्षसों के साथ युद्ध वर्णन किया गया है। इन अध्यायों में साहित्यिक मूल्य अत्यन्त स्पृहणीय है।

ब्रह्माण्ड पुराण का साहित्यिक अनुशीलन

ब्रह्माण्ड पुराण केवल सर्ग प्रतिसर्ग आदि का वर्णन नहीं करता है अपितु विभिन्न प्रसङ्गों के माध्यम में इसका साहित्यिक मूल्य किसी भी काव्य से कम नहीं है। अध्याय

२.२२.७-४३ में हिमाचल की शोभा अत्यन्त काव्यिक शैली में वर्णित है। समालोचकों ने उक्त पुराण की रचना गौड़ी शैली मानी है। ललिता देवी एवं भाण्डासुर के युद्ध वर्णन में वीर रस का अद्भुत वर्णन उपलब्ध है। (३.१८. १-१६)

इस प्रकार परशुराम एवं कार्तवीर्यार्जुन का युद्धप्रसङ्ग भी अत्यन्त स्पृहणीय है एवं वीर रस का वर्णन स्वतः स्फूर्त है। कालिदास के कुमारसंभव में पार्वती का तपोवर्णन का स्रोत ब्रह्माण्ड पुराण ही माना जा सकता है। शिव के ब्रह्मचारी वेष में पहुंचना एवं पार्वती के साथ युक्ति करके शिव की निन्दा करना आदि प्रसङ्ग के तुलनात्मक अध्ययन से परस्पर का प्रभाव स्पष्ट है। इसी प्रकार विभिन्न उपाख्यानों के वर्णन के माध्यम से ब्रह्माण्ड पुराण का साहित्यिक मूल्यबोध अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड पुराण के विषयवस्तु परवर्ती साहित्य एवं कवि सृष्टि के लिए स्रोत बन गये हैं जिनके कतिपय दृष्टान्त प्रदत्त हैं।

वामनावतार का प्रसङ्ग

इस पुराण के अनुसार बलि को पहले ही ज्ञात हो गया है वामन और कोई नहीं है अपितु स्वयं विष्णु हैं। फिर भी वह प्रसन्नता पूर्वक कहते हैं कि मैंने आपको अभिलषित भूमि प्रदान कर दी। तब भगवान वामन ने एक पग में पृथ्वी, द्वितीय में आकाश एवं तृतीय में आकाश के उपरि भाग स्वर्ग को नापा।

स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः।
त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रमत प्रभुः।[1]

वामन ने दयापूर्वक बलि से अपने शरीर में ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया। इस से भी ब्रह्माण्ड पुराण का नाम की सार्थकता सिद्ध है। उक्त पुराण की कथावस्तु का प्रभाव डॉ. इच्छाराम द्विवेदी के द्वारा रचित वामन महाकाव्य पर पड़ा है।

ज्योतिर्लिङ्गोत्पत्ति का प्रसङ्ग

भगवान् शंकर के लिङ्ग रूप में आविर्भाव होने की कथा ब्रह्माण्ड पुराण में अति विस्तृत वर्णित है।[2] इसके अनुसार जब अपनी अस्मिता को लेकर ब्रह्मा एवं विष्णु में टक्कर की स्थिति पैदा हो जाती है तब शिव दोनों के सामने आदि अन्त-विहीन ज्वाला के रूप में प्रकट हो जाते हैं। ब्रह्मा और विष्णु ने शर्त लगाकर ज्योतिर्लिङ्ग के आदि और अन्त

१. ब्रह्माण्ड पुराण - ३/७३/७८
२. ब्रह्माण्ड पुराण - २/२६

का पता लगाने का प्रयास किया। ब्रह्मा ऊपर की ओर गये और विष्णु नीचे की ओर। परन्तु कुछ भी सफलता नहीं मिली।

दोनों ने हार मानकर शङ्कर की स्तुति की। शंकर प्रसन्न हुए दोनों को अविरल भक्ति का वरदान दिया। उक्त पुराण के अनुसार विष्णु एवं ब्रह्मा भगवान शंकर के अंग विशेष हैं। ब्रह्मा शंकर के दक्षिण बाहु एवं विष्णु बाम वाहु से प्रकट हुए थे।

कृष्ण प्रसङ्ग

उक्त पुराण वसुदेव की पत्नियों की लम्बी सूची प्रस्तुत करती है। जिसके अनुसार देवकी की अन्य छः बहिनों का विवाह वसुदेव से हुआ था। यह वर्णन अन्य पुराणों में प्रायः उपलब्ध नहीं है।

पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः।
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा।।
तथैव भद्रवैशाखी सुनाम्नी पञ्चमी तथा।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता।
धृतदेवापदेवा च देवकी सप्तमी तथा।।[1]

मन्दमति कंस को मारने के लिए स्वयं विष्णु देवकी गर्भ में जन्म लिए थे। यहाँ अवतार के प्रयोजन का एक अपूर्व वर्णन मिलता है।

नष्टे धर्मे तथा यज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम्।
कर्तुं धर्मव्यवस्थापनमसुराणां प्रणाशनम्।।[2]

श्रीकृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा एवं जाम्बवती आदि अष्ट पट्टमहिषियों के अतिरिक्त षोडश सहस्र पत्नियाँ थीं। वे सब स्वर्ग की अप्सरायें थीं जो इन्द्र से प्रभावित होकर राजकुमारियों के रूप धारण कर धरातल पर अवतरित हुईं एवं श्रीकृष्ण की पत्नियाँ बन गईं।

विचार्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह प्रेषिताः।
पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु।।[3]

---

१. ब्रह्माण्ड पुराण -३/७१/१६०-१६२
२. ब्रह्माण्ड पुराण - ३/७१/१४१
३. वही - ३/७१/२४४

गङ्गावतरण प्रसङ्ग

अन्य पुराण में गङ्गावतरण की कथा भिन्न भिन्न रूप में वर्णित है परन्तु। सन्दर्भित महापुराण में उक्त कथा कुछ भिन्न है जो निम्नोक्त है।

भगीरथ ने अपने पूर्वजों को मुक्ति दिलाकर स्वर्गलोक भेजने हेतु गङ्गाजी को धरती पर अवतरित कराने हेतु तपस्या की थी। गङ्गा प्रसन्न होकर जब अवतरित होने लगीं तो उनके मन में अभिमान हुआ कि मैं अपनी लहरियों से शंकर जी को प्रवाहित करती हुई पाताल को चली जाऊँगी।

भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शंकरम्।।[1]

परन्तु उनके अभिमान को जानकर योगमाया के प्रभाव से शंकर जी उसे जटाओं में बांध लिया। फिर भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उन्होंने गंगा को मुक्त किया एवं गङ्गा प्रवाह सात भाग में विभक्त होकर नलिनी, ह्लादिनी, पावनी नाम से पूर्व दिशा में, सीता चक्षु एवं सिन्धु बनकर पश्चिम दिशा में, एक धारा (सप्तमी) भगीरथ का अनुगमन करती हुई दक्षिण की ओर चल पड़ी जो भागीरथी-गङ्गा नाम से ख्यात है।

नारद कथा प्रसङ्ग

नारद कथा ब्रह्माण्ड पुराण में कुछ न्यारी है। उनको ब्रह्मा के मानस पुत्र न बताकर कश्यप का मानसपुत्र कहा गया है। किन्हीं कारण वश दक्ष ने उन्हें शाप दिया एवं कहा कि उनका वह उनका शरीर हो जायेगा एवं वे पुनः दक्षपुत्री एवं ब्रह्मा की औरस से पुनर्जन्म लाभ करेंगे। इस प्रकार नारद जी के आविर्भाव प्रकार कुछ अलग सा वर्णित है।

मानसः कश्यपस्यासीत् दक्षशापवशात् पुनः।
तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयो मानसोऽभवत्।।[2]
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति।
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने।।
तस्मात् स नारदो जज्ञे भूयः शापवशादृषिः।।[3]

नीलकण्ठ प्रसङ्ग

विष्णु का शरीर गौर वर्ण से कृष्ण वर्ण होने एवं शिव का कण्ठ नील वर्ण में परिणत

१. वही-२/११८/१३३
२. वही-३/२/१४
३. वही-३/२/१८

होने का दिव्य प्रसङ्ग ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है जो अनेक स्तोत्र काव्यों का उपजीव्य है। समुद्र मन्थन के बाद जब पहले हालाहल विष निकलने लगा, तब सबसे पहले वहाँ विष्णु गये। वे पहले गौर वर्ण थे एवं विष के प्रभाव से कृष्ण वर्ण हो गये। यह देखकर समस्त देव भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में गये। और ब्रह्मा की स्तुति से शंकर हलाहल विष पान किया एवं अपने कण्ठ में ही रख दिया। तब उनका कण्ठ नीलवर्ण सा हो गया; वे नीलकण्ठ कहलाये।

विर्दग्धो रक्तगौराङ्गं कृतः कृष्णो जनार्दनः।
तं दृष्ट्वा रक्तगौराङ्गो कृतं कृष्णं जनार्दनम्।।[1]
पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयप्रदम्।
कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो वै वरवर्णिनि।।[2]

नृसिंहावतार प्रसङ्ग

ब्रह्माण्ड पुराण में नृसिंह अवतार की कथा साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। कश्यप पत्नी दिति के दो पुत्र हुए - हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु। हिरणाक्ष भगवान वराह के द्वारा मारा गया एवं हिरण्यकशिपु ब्रह्मा को तपस्या में संतुष्ट कर अपनी मृत्यु को पेचीला बना दिया, जैसा रात्रि में न मरूं, दिन में न मरू, शस्त्र में न मरूं, अस्त्र से न मरूं आदि। जब हिरण्यकशिपु का कुकृत्य बढ़ने लगा ऋषि व देवताओं को सताया एवं उसका अत्याचार शिखर को प्राप्त हो गया, तब भगवान नरसिंह अवतार ग्रहण कर ब्रह्म प्रदत्त वर के अनुसार अपने नखों से उसे विदीर्ण कर दिया।

ततः स बाहुयुद्धेन दैत्येन्द्रं तं महाबलम्।
नखैर्विभेद संक्रुद्धो नार्द्राः शुष्का नखा इति।।[3]

परशुरामावतार प्रसङ्ग

ब्रह्माण्ड पुराण के वर्ण्य विषयों में से परशुरामकथा अहं भूमिका रखती है जिसका साहित्यिक वर्णन अत्यन्त मनोरम है। इसमें अनेक आलङ्कारिक छन्दों का सन्निवेश हुआ है।

---

१. वही-२/२५/५७
२. वही-२/२५/८६
३. वही-३/३/२६

हैहयनरेश सहस्रार्जुन एक दिन शिकार से लौटते समय नर्मदा तटवासी महर्षि जमदग्नि के आश्रम को देखने उत्सुक हुए। महर्षि के आग्रह से उनका आतिथ्य स्वीकार करके कामधेनु सुरभि के अलौकिक एवं अद्भुत कार्य से प्रभावित होकर उन्हें राज सम्पत्ति मानकर राजगृह में प्रेषित करने का निर्देश दिया। परन्तु जमदग्नि ने उक्त प्रस्ताव को ठुकरा दिया -

जीवन्नाहं तु दास्यामि वासवास्यापि दुर्मते।
गुरुणा याचितं किं ते वचसा नृपतेः पुनः।।[1]

महर्षि के उक्त उत्तर से उनकी धारणा का अनुभव कर सहस्रार्जुन के मन्त्री ने बल से कामधेनु को ले जाने की कोशि, की, परन्तु सुरभी अपनी सींग से समस्त सैनिकों को मार कर गोलोक में चली गई। युद्ध में जमदग्नि प्राणशून्य हो गये थे। ऋषि पत्नी रेणुका पति की दुर्दशा देखकर इक्कीस बार छाती पीट पीट कर विलाप किया। जंगल से वापस आये जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने पिता माता के करुण दृश्य को देखकर इक्कीस बार अवनी को क्षत्रियविहीन करने की प्रतिज्ञा की।

यस्मादुरः प्रतिहतं त्वया मातर्ममाग्रतः।
एकविंशतिवारं हि भृशं दुःखपरीतया।।
त्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रां करिष्ये पृथिवीमिमाम्।[2]

इस समय भृगु आश्रम में उपस्थित हुए एवं मृतसंजीवनी विद्या से जमदग्नि को जीवित किया। तत्पश्चात् शक्ति संग्रह करने हेतु परशुराम ने कैलास शिव की आराधना की। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें जगन्मङ्गल कृष्णकवच एवं पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। इस प्रकार शक्तिसम्पन्न परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध किया।

परशुराम कथा के अन्तर्गत गणेश प्रसङ्ग अत्यन्त रमणीय है। जब परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन का वध करके शिवजी को अपनी भक्ति समर्पित करने हेतु कैलास पहुंचे, तब गणेश जी ने पितामाता का विश्राम समय होने के कारण उन्हें कैलास प्रवेश नहीं दिया। तब दोनों में तुमुल संग्राम हुआ एवं गणेशजी ने उन्हें पृथिवी में फेंक दिया। इससे अपमानित होकर गणेश के ऊपर उन्होंने परशु से घात किया जिसको उन्होंने रोका। फलतः उनका बायां दांत टूट गया।

---

१. वही - ३/२८/७२
२. वही - ३/३०/७२-७३

गणेशस्त्वभिवीक्ष्याथ पित्रा दत्तं परश्वधम्।
अमोघं कर्तुकामस्तु वामे तं दशनेऽग्रहीत्।।[1]

ब्रह्माण्डपुराण स्तोत्र साहित्य का आकर है। विभिन्न देव-देवियों को उपासना कर उनसे वर पाने हेतु की गई स्तुतियों का संग्रह इस पुराण में पर्याप्त है। उक्त स्तोत्रों विधा कभी अष्टक, दशक, नामावली, कवच एवं पुष्पाञ्जलि आदि है। विष्णु एवं ब्रह्मा के द्वारा की गई शिवस्तुति २/२६/३१-५० तक वर्णित है। इस प्रकार शिवजी के लिए पृथक् रूप में ब्रह्मा जी के द्वारा १.२५.६४-७६, दारुवण के द्वारा २.७.६३-१०० एवं परशुराम के द्वारा २.२४.२५-३१; २.२५. ५-३१, २.३२. २५-३२ स्तुति अत्यन्त कमनीय रूप में की गई है। नामावली स्तोत्रों में से परशुराम द्वारा की गई पार्वती स्तुति २.४३.३-१०, भद्रकाली स्तोत्र २.३६-३५-४५, देवों के द्वारा किया गया ललिता सतवराजः ३.१३-१-२८ ब्रह्मा के द्वारा की गई ललितास्तुति ३.३०.११-४२ प्रमुख हैं। उक्त पुराण में वर्णित त्रैलोक्यविजयकवचस्तोत्र (२.२३.१-३७) जो वसिष्ठ के द्वारा सगर को उपदिष्ट है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है –

मन्त्रं साधयतो भद्रे न च तत्सिद्धिरेति हि।
तत्रास्ति कारणं भक्तिः सात्र वै त्रिविधा मता।।
उत्तमा मध्यमा चैव कनिष्ठा तरलेक्षणे।
शिवस्य नारदस्यापि शुकस्य च महात्मनः।।
अम्बरीषस्य राजर्षे रन्तिदेवस्य मारुतेः।
बलेर्विभीषणस्यापि प्रह्लादस्य महात्मनः।।
उत्तमाभक्तिरेवास्ति गोपीनामुद्धवस्य च।
वसिष्ठादिमुनीशानां मन्वादीनां शुभेक्षणे।।[2]

वेदोपबृंहण

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इस पद्यांश से पुराण प्रयोजन स्पष्ट रूप में वर्णित है। उक्त पुराण भी वेदार्थ का उपबृंहण करता है। विभिन्न वेदों की शाखा इसमें (१.३३) में स्पष्ट सूचित है। अध्याय १.३४ में वेदों का विभाजन किया गया है। राजा की उपस्थिति में ऋषियों के बीच मन्त्रों की अभ्यासपरक प्रतियोगिता का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक एवं वेदांगों के विस्तृत परिचय दिया गया है। वैदिक

१. वही - २/४२/३
२. वही - २/३४/३७-४०

आख्यानों के उपबृंहण, वैदिक देवताओं की पौराणिक विश्लेषण, वेदों में अवतार बीजों के पल्लवन पुराणधर्मिता का श्रेष्ठ निदर्शन है। वैदिक वाङ्मय का उपबृंहण करता हुआ उक्त पुराण रामायण कथा का भी विस्तार करता है जिसके अन्तर्गत अध्यात्म रामायण एवं परशुराम चरित्र वर्णन विशेष रूप से आता है।

भूगोल एवं खगोल वर्णन

नामकरण से ही स्पष्ट है कि उक्त पुराण में ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत समस्त स्थावर एवं जंगम वर्णित हैं। प्रथम वाद के १५ से २० अध्यायों में सम्पूर्ण भूगोल वर्णित है। जिसमें सप्त द्वीपों के वर्णन प्रमुख हैं। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शक एवं पुष्कर यह सप्तद्वीप हैं जिनके वर्णन अत्यन्त विस्तृत रूप में उपलब्ध हैं। इसके कुल पर्वतों का वर्णन भी मिलता है। नदियों एवं वनस्पतियों के वर्णन से उक्त पुराण ओतप्रोत है। भारत वर्ष का वर्णन अति विस्तृत रूप में (१.१५-१६) वर्णित है। इसके अनन्तर अध्याय १.२० में सप्त पाताल लोकों का वर्णन है। अन्य पुराणों में दिये गये नामों, यह नाम एवं क्रम में कुछ फरक है। ब्रह्माण्ड पुराण का क्रम कुछ इस प्रकार है - १. तत्त्वल, २. सुतल, ३. तलातल, ४. अतल, ५. अर्वाकृतल, ६. रसातल एवं ७. पाताल। इन लोक में उपलब्ध भूमि के वर्ण निम्नवत् हैं -

तत्त्वल	-	कृष्ण वर्ण	सुतल	-	बादमी वर्ण
तलातल	-	नील वर्ण	अतल	-	पीला वर्ण
अर्वाकृतल	-	सस्य वर्ण	रसातल	-	पर्वतीय/पाषाण वर्ण
पाताल	-	सुवर्ण वर्ण			

इसके बाद भूलोक के उर्ध्व छः लोकों का वर्णन है - भुवः स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यलोक। उक्त लोकों में देवता निवास करते हैं। इसमें विभिन्न नरकों के भी वर्णन मिलता है। मनुष्य अपने उदात्त कर्मों से स्वर्गलोक एवं पाप कर्मों से नरक लोक को प्राप्त करता है।

धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्तयः।
उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः।।'[1]

कल्पशुद्धि

जैसा कि उपर सूचित है उक्त पुराण में वेदांगों का भी विस्तार किया गया है, उसी तरह तीर्थों के भी वर्णन उपलब्ध हैं। कल्प के अन्तर्गत धर्म सूत्र भी आता है जिसमें गृहस्थ

१. वही - ३/२/१६२

धर्म के साथ श्राद्ध आदि सांगोपाङ्ग वर्णित है। श्राद्धों में विश्वेदेव श्राद्ध एवं पिण्डदान विधि के वर्णन ध्यानाकर्षणीय हैं। धर्मशास्त्र के दृष्टिकोण से उक्त पुराण इतना महत्त्वपूर्ण है कि इनके उदाहरण मिताक्षरा, अपरार्क, कल्पतरु, स्मृतिचन्द्रिका, निर्णयसिन्धु एवं हेमाद्रि प्रभृति धर्मशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ लिये गये हैं।

पौराणिक निरुक्ति

यद्यपि विभिन्न शब्दों का निर्वचन करना निरुक्त शास्त्र का धर्म है तथापि उक्त दिशा में उक्त पुराण का प्रयास कुछ कम नहीं है। स्थालीपुलाक न्याय से दृष्टान्त दिये गये हैं।

असुर - असु : प्राणः स्मृतो विज्ञैस्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः १.८.५
देव - ततः सुखात् समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः।
अतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः।। १.८.६
धातुर्दिव्येति यः प्रोक्तः क्रीडायां च विभाव्यते।
तस्मात्तन्वास्तु दिव्याया जज्ञिरे तेन देवताः। १.८.१०
यजुर्वेद - यच्छिष्टं तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमयुञ्जत।
यजनात् स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः।। २.३४.२२
पुराण - यस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं पुराणं तेन कथ्यते। ३.४.५४

उपसंहार

पुराण लक्षण को चरितार्थ करता हुआ यह पुराण अन्य ऐसे विषयों के कुछ परिवर्तित रूप के साथ ऐसा परिवेषण करता है कि अपने आप यह एक अनवद्य कृति बन जाती है। ब्रह्माण्ड के विस्तृत वर्णन, स्तोत्र साहित्य का संग्रह, खगोल एवं ज्योतिष शास्त्र का सन्निवेश, विभिन्न शब्दों के निर्वचन, तीर्थों के वर्णन एवं अवतारों के उपबृंहण से सन्दर्भित पुराण महापुराणत्व को चरितार्थ करता है।

इस पुराण के बारे में नारद पुराण में दी गयी फलश्रुति उक्त पुराण की उपादेयता एवं युगधर्मिता को सिद्ध करती है।

य इदं कीर्तयेद् वत्स ! शृणोति च समाहितः।
स विधूयेह पापानि याति लोकमनामयम्।।
लिखित्वैतत् पुराणन्तु स्वर्गसिंहासनस्थितम्।
पात्रेणाच्छादितं यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति।।
स याति ब्रह्मणो लोकं नात्र कार्या विचारणा।

उपपुराण

गणेशपुराण

वेद-पुराण-उपपुराण सभी के आदि में, मध्य में और अन्त में 'गणेशतत्त्व' का प्रतिपादन मिलता है। ब्रह्मा के चारों मुखों से अष्टलक्ष पुराणों का प्रादुर्भाव हुआ। उसके पश्चात द्वापरान्त में व्यास देव एवं उनके शिष्य तथा अन्यान्य ऋषि मुनियों ने कलियुगीय मन्दप्राणियों के बोधार्थ अष्टादशपुराणोपपुराणों का निर्माण किया। उनमें पहला ब्रह्मपुराण है, उसमें निर्गुण एवं बुद्धि तत्त्व से परे गणेश तत्त्व का वर्णन है। मध्य के ब्रह्मवैवर्तपुराण में स्वतंत्र 'गणेश खण्ड' ही है, जिसके ४६ अध्यायों में गणेश के विविध चरित्र एवं आख्यान वर्णित हैं। अन्तिम ब्रह्माण्डपुराण है, उसमें सगुण गणेश का माहात्म्य प्रतिपादित है, क्योंकि वह विशेष रूप से प्रणवात्मक प्रपञ्च का प्रतिपादन करने वाला है।

उपपुराणों में भी पहला उपपुराण 'गणेशपुराण' है, जो कि सगुण-निर्गुण गणेश की एकता का प्रतिपादन करने वाला है, और गजवदनादि मूर्तिधर गणेश का भी प्रतिपादन करता है। मध्य के 'गणेशभागवत' में भी विभिन्न आख्यानोपाख्यानों के माध्यम से गणेशतत्त्व की विशद चर्चा की गयी है। 'मौद्गल' यह अन्तिम उपपुराण है, इसमें 'योगमय गणेश' का माहात्म्य प्रतिपादित है।

'गणेशपुराण', गणपति सम्प्रदाय में शिरोधार्य यह पुराण केवल 'गणेशदैवत' सम्बन्धी स्वतंत्र बड़ा उपपुराण है। इसके दो मुख्य भाग हैं-१. उपासना खण्ड, एवं २. क्रीडाखण्ड-उपासना खण्ड में गणेश माहात्म्य, व्रत पूजा, अनुष्ठान, विधि-विधान एवं तत्सम्बन्धी पौराणिक आख्यान दिये गये हैं। क्रीडाखण्ड में गणेश के चार युगों के चार अवतारों की क्रीडा (लीला) एवं उनसे सम्बन्धित कथाओं का विस्तृत विवरण है।

यद्यपि महापुराण या उपपुराणों की परम्परागत प्राप्त सूची में इसका नाम कहीं भी समाविष्ट नहीं है किन्तु गणेशपुराण स्वयं को प्रथम उपपुराण मानता है। यथा-

'अन्यान्युपपुराणानि वर्तन्तेऽष्टादशैव च।
गाणेशं नारदीयं च नृसिंहादीन्यथापि च।।

- गणेशपुराण ०१/०१/०८

गणपति सम्प्रदाय में उपासना की अत्यन्त गोपनीयता के कारण इस सम्प्रदाय का प्रधान पुराण होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके प्रकाशित होने के पूर्व तक इसकी मौखिक परम्परा ही प्रचलित थी और इस कारण यह भिन्न भिन्न नामों से प्रचलित था। प्रख्यात संस्कृत मनीषी प्रो. रामकरण शर्मा जी ने इसके वक्ता भृगु होने के कारण इसे भार्गव पुराण माना है और यह सम्भावना व्यक्त की है कि उपपुराणों की सूची में वर्णित भार्गव पुराण ही 'गणेशपुराण' है। जबकि म.म. पं. विश्वनाथ शास्त्री दातार जी का अभिमत

है कि जिस प्रकार महापुराणों की सूची में उल्लिखित 'भागवत' इस नाम से श्रीमद्भागवत एवं देवी भागवत दोनों भागवतों का अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार ग्रहण करते हैं, वैसे ही उपपुराणों की सूची में या औपपुराणों की सूची (धर्म विवेक) में प्राप्त मुद्गलपुराण इससे भी गणेश एवं मौद्गल दोनों का ग्रहण किया जाना चाहिए, क्योंकि मुद्गल एक महान गणेश भक्त हो गये हैं जिनकी विशद चर्चा मुद्गल पुराण के साथ साथ गणेश पुराण में भी हुई है और ये दोनों ही पुराण गाणपत्य सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ हैं।

पौराणिक साहित्य के अनुशीलनकर्ता विद्वान श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार महोदय ने पुराणों के महापुराण, उपपुराण, आदिपुराण एवं पुराण इस प्रकार चार भेद स्वीकार किये हैं, जिनमें प्रत्येक में १८-१८ पुराण हैं। इनमें आदिपुराणों की सूची में गणेश पुराण का भी नाम प्राप्त होता है। सूची इस प्रकार है - आदि पुराण - कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वसिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी यह विवरण सुदर्शन बुक एजेन्सी, वाराणसी द्वारा प्रकाशित एवं डा. जगदीश नारायण दूबे द्वारा संपादित आदिपुराण के आत्म प्रकाश (प्राक्कथन) में प्रकाशित है।

पुराण कथा परम्परानुसार इस पुराण का भी आरम्भ सूत शौनक संवाद से होता है। यह पुराण सर्वप्रथम ब्रह्मा ने व्यास को, व्यास ने भृगु को और भृगु ने सौराष्ट्र के देवनगर के राजा सोमकान्त को उसकी कुष्ठ रोग से मुक्ति के लिए सुनाया है। इतर पुराणों की कथाओं का इसमें गणेश से सम्बन्ध जोड़ा है। गाणपत्य सम्प्रदाय के महान् प्रवर्तक गृत्समद्, भ्रुशुण्डी और वरेण्य इनका इतिहास इस पुराण में वर्णित है। प्रत्यक्ष भगवान् गणेश द्वारा त्रिपुरासुर के साथ युद्ध के समय शिव को सुनाया गया 'गणेशसहस्रनाम' स्तोत्र एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है।। दूसरे यानी क्रीडा खण्ड में गणेश चरित्र दिया है, जिस पर श्रीमद्भागवत के कृष्ण चरित्र की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। महोत्कट (विनायक), मयूरेश (गुणेश) एवं गजानन (गणेश) गणपति के कृतादि युगों में होने वाले इन तीन अवतारों की कथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इसी खण्ड में भगवान् गणेश द्वारा राजा वरेण्य को सुनाई गई 'गणेशगीता' साम्प्रदायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अभ्यसनीय है। इस पर श्रीमद्भगवद्गीता का अत्यन्त प्रभाव दिखायी देता है।

गणेशपुराण के पूर्वार्द्ध उपासना खण्ड में अध्याय ९२ और श्लोक संख्या ४०९३ तथा उत्तरार्द्ध क्रीडाखण्ड में अध्याय १५५ और श्लोक संख्या ६९८६ है। इस प्रकार गणेश पुराण में कुल अध्याय २४७ एवं श्लोक संख्या ११०७९ है। इस पुराण पर (स्कन्द पुराण) काशीखण्ड एवं श्रीमद्भागवत का विशेष प्रभाव दिखायी देता है। प्रायः सभी उपपुराण किसी विशिष्ट देवता को लेकर महापुराणों की छाया में ही लिखे गये हैं।

नामकरण का अभिप्राय

प्रायः सभी पुराणों का नाम उनके वक्ता, श्रोता या प्रतिपाद्य देवता विशेष के नाम पर होता है। वर्तमान में गणेशपुराण इस नाम से विख्यात 'गणेशपुराण' में गणेश सम्बन्धी उपासनाओं, गणेश के लीला चरित्रों एवं गणेश तत्त्व का प्रतिपादन होने से गणेश के नाम पर इसका नामकरण उचित ही प्रतीत होता है। जैसा कि विद्वानों का अभिमत है कि इसका प्राचीन नाम भार्गव या मुद्गल पुराण हो सकता है तो यह नाम भी उचित ही है। इसके मुख्य वक्ता भृगु ऋषि हैं। जिन्होंने सोमकान्त राजा को यह पुराण सुनाया। भृगु के वक्ता होने के कारण हो सकता है इसका प्राचीन नाम भार्गव पुराण रहा हो जो प्राचीन सूचियों में प्रायः उपलब्ध होता है। इसी प्रकार महान् गणेश भक्त मुद्गल के नाम पर इसका नामकरण मुद्गल भी संभावित है जैसा कि कुछ विद्वानों का अभिमत है। अल्बरूनी की सूची जिसमें पुराण उपपुराण दोनों के नाम सम्मिलित हैं, उसमें एक नाम 'सोमपुराण' ऐसा भी आता है। किन्तु इस नाम का कोई पुराण सम्भवतः वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। अतः ऐसी भी संभावना की जा सकती है कि हो सकता है उस समय गणेशपुराण के श्रोता सोमकान्त के नाम से यह जाना जाता हो। एक इसके नामकरण की यह भी संभावना है कि प्रारम्भ में यह आदि पुराण के नाम से गणेश के आदिपूज्य होने के कारण जाना जाता हो और इसीलिये पूर्व में दी गयी १८ आदि पुराणों की सूची में यह सम्मिलित है। गणेश सम्प्रदाय की गोपनीयता एवं उसके प्रधान ग्रन्थ होने से इन नामों को नकारा नहीं जा सकता। जो भी हो लेकिन वर्तमान में गणेश पुराण अपना नाम 'गाणेशं नारदीयञ्च नृसिंहादीन.....' इस उक्ति से अपना नाम गणेशपुराण ही स्वीकार करता है जो उसके गणेश तत्त्व का प्रतिपादक होने से सर्वथा सार्थक है।

देशकाल निर्धारण

सभी पुराणों का मूल विषय तो निःस्सन्देह अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु पुराणों में समय समय पर परिवर्तन, परिवर्धन एवं पुनर्लेखन होते रहे हैं। इस कारण इसका निश्चित काल निर्धारण करना निश्चय ही कठिन है। उसमें भी गणेश ये देवता स्वयं रहस्यपूर्ण हैं। सर्वपूज्य आदिपूज्य होने पर भी कुछ विद्वानों की धारणा के अनुसार इनका प्रवेश अन्य देवताओं के साथ काफी बाद में माना जाता है। पुरातात्त्विक साक्ष न केवल भारत में बल्कि सुदूर देशों में भी प्राप्त होते हैं जिनसे गणेशोपासना की व्यापकता सिद्ध होती है।

गणेशपुराण के काल निर्धारण के विषय में अनेक विद्वानों ने प्रयास किये हैं किन्तु आन्तरिक एवं बाह्य साक्षों के आधार पर प्रो. हाजरा ने जो अपना अभिमत व्यक्त किया है वह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। प्रो. हाजरा ने गणेशपुराण को मुद्गल पुराण के बाद का स्वीकार करते हुए इसके रचना काल के विषय में कहा है कि यह पुराण ११०० A.D.

के पूर्व का नहीं हो सकता। पं. त्र्यम्बक ओक के आचार्र भूषण जो श.सं. १७४१ (१८६७ A.D.) में गणेश पुराण की एक पाण्डुलिपि का श.सं. १६८५ का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार पं. हरप्रसाद शास्त्री गणेश पुराण में निहित श. सं. १६१६ में लिखित गोविन्द सूरि के पुत्र नीलकण्ठ द्वारा 'गणपतिभाव दीपिका' टीका युक्त पाण्डुलिपि का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार एक अन्य विद्वान् आर.एल. मित्र श. सं. १५४६ की पं. गोपालभट्ट राव की गणेश सहस्रनाम पर की गई टीका का उल्लेख करते हैं। इन आधारों पर हाजरा महोदय ने गणेश पुराण का रचना काल ११०० A.D. से १४०० A.D. के बीच का माना है।[1] किन्तु गणेश पुराण एवं मुद्गल पुराण की कथा वस्तु एवं आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर और गणेश सम्प्रदायों में प्रचलित मान्यताओं के आधार पर गणेश पुराण मुद्गल पुराण से प्राचीन सिद्ध होता है। इस मत के पक्ष में एक अन्य विद्वान् J.N. Farquhar ने अपनी सहमति व्यक्त की है। उन्होंने गणेश पुराण का रचनाकाल ६०० A.D. और १३५० A.D. के बीच स्वीकार किया है।[2] एक अन्य विद्वान् डा. स्टीवेन्सन इसे काफी बाद की रचना मानते हैं। उनके अनुसार इस पुराण के दोनों खण्ड अलग अलग लिखे गये हैं। सत्रहवीं शताब्दी एवं उसके बाद की रचना मानते हैं।[3]

गणेश पुराण में बार-बार पञ्च देवताओं का ऐक्य प्रतिपादित किया गया है। इस पर स्कन्द पुराण एवं श्रीमद्भागवत की लीला कथाओं तथा श्रीमद्भगवदगीता का अत्यधिक प्रभाव दिखता है जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है। बौद्ध ऐतिहासिकों के लेखों से पता चलता है कि माहायान सम्प्रदाय पर गीता, श्रीकृष्ण और गणेश का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। श्री तारानाथ नामक बौद्ध विद्वान् का ग्रन्थ अति प्राचीन न होने पर भी प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखा होने से प्रामाणिक है। कोई भी बौद्ध ग्रन्थकार अपने धर्म के तत्त्वों को बतलाते समय बिना किसी प्रबल कारण के परधर्मियों का इस तरह उल्लेख नहीं कर सकता। इसके सिवाय एक दूसरे तिब्बती ग्रन्थ में भी यही उल्लेख पाया जाता है।[4] प्रख्यात संस्कृत विद्वान् प्रो. रामकरण शर्मा जी द्वारा नाग प्रकाशन से प्रकाशित गणेश पुराण की भूमिका में कहा गया है कि जिस प्रकार वेद की विभिन्न शाखाओं को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में हस्तान्तरित किया जा रहा है वैसे ही पुराण एवं उपपुराणों का भी हस्तान्तरण मौखिक रूप से ही होता रहा है। बहुत बाद में लेखन कर ये लिखे गये। गणेश सम्प्रदाय

---

१. R.C. Hazra viz The Ganesh Purana (Journal of Ganga Nath Jha Research Institute (Vol. X P.P. 72-99) and Ganapati Worship and Upapuranas electing with (Vol. V Part 4 P.P. 263-276

२. Outline of the Religious Literature of India P. 270- J.N. Farquhar

३. J. R.A.S. VIII P. 319

४. डा. कने मेन्युअल ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म पृ. १२२ (धर्म और दर्शन, बलदेव उपाध्याय पृ. १४८

में भी गोपनीयता की दृष्टि से यह परम्परा रही है, ऐसा इसके बहुत ज्यादा मात्रा में पाठभेद उपलब्ध होने से भी प्रतीत होता है। जहाँ तक तांत्रिक विषय आने से इसे बाद के काल में लिखा गया है ऐसा कहना भी पूर्णरूपेण ठीक नहीं होगा, क्योंकि शङ्कराचार्य के समय में भी अनेक तांत्रिक ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः गणेश पुराण का रचनाकाल उससे भी पूर्व का होना चाहिए जब यह मौखिक रूप से प्रचलित रहा होगा। जो छठी सातवीं शताब्दी भी हो सकता है।

डा. हाजरा ने गणेशपुराण का रचना स्थल काशी को माना है। उनका कहना है कि गणेशपुराण की कोई भी पाण्डुलिपि अथवा बंग साहित्य में कहीं भी इसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता। उनका यह भी कहना है कि गणेशपुराण के लेखक को न तो बंगाल के बारे में ज्ञान है और न ही सहानुभूति।[1] इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी पुराण या उपपुराण के रूप में इसकी कहीं भी प्रसिद्धि नहीं है।[2] जबकि काशी काशीराज दिवोदास, उनके यहाँ पुत्र विवाह में गणेश (विनायक) का आगमन, काशी के छप्पन विनायकों की चर्चा और ढुण्ढिराजाख्यानादि के आधार पर इसके काशी में लिखे जाने की प्रबल संभावना दिखाई देती है।

किन्तु गणेश सम्बन्धी पुराणों विशेषकर गणेश पुराण में वर्णित नगरों, स्थानों, तीर्थों आदि के विवरण जिनमें से अधिकांश वर्तमान महाराष्ट्र राज्य में प्रसिद्ध हैं और गणेश उपासना का भी वहाँ विशेष प्रचार है और इसी प्रकार इसमें सौराष्ट्र के देवनगर के राजा सोमकान्त की भी विशेष चर्चा है। राजा के द्वारा कुष्ठ मुक्ति हेतु भृगु ऋषि से इस पुराण का श्रवण और उसकी कुष्ठ मुक्ति तथा दिव्यलोक गमन की कथा उसके पूर्वजन्म की कथा आदि विस्तार से वर्णित है। भृगु ऋषि के स्थान 'भृगुकच्छ' का सौराष्ट्र में होना, इसकी रचना सौराष्ट्र या महाराष्ट्र (विदर्भ) आदि क्षेत्र में होने की भी संभावना हो सकती है। अतः उपर्युक्त दोनों मतों के समन्वय से यह कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र के उस विशाल भूभाग से परिचित तथा उससे लगाव रखने वाले तथा काशी के प्रति आकर्षण रखने वाले किसी गणेश भक्त विद्वान् ने इसकी रचना काशी में की हो।

संस्करण तथा पाण्डुलिपि– 'गणेश-पुराण' का सर्वप्रथम प्रकाशन संस्कृत मूलपाठ एवं उसके मराठी अनुवाद के साथ पूर्वार्द्ध श.सं. १८२७ एवं उत्तरार्ध श.सं. १८२८ में 'वाई' महाराष्ट्र से प्रकाशित हुआ था। इसके भाषान्तरकार व सम्पादक वे.शा.सं. विष्णुशास्त्री बापट एवं प्रकाशक श्री दामोदर लक्ष्मण लेले हैं। ग्रन्थ वाई के मोदवृत्त छापाखाना (प्रेस) से मुद्रित है। आकार दो.प.डे. पृष्ठ संख्या ६३३ है। पूर्वार्द्ध उपासना खण्ड में

---

१. ग.पु. १/७४/६-१३ १/६

२. Burnell, Classified Index Page 187

अध्याय ६२ श्लोक ४०६३ तथा उत्तरार्द्ध क्रीडा खण्ड में अध्याय १५५ और श्लोक संख्याय६६८६ इस प्रकार कुल श्लोक संख्या ११०७६ है।

दिल्ली स्थित नाग प्रकाशन ने भी सन् १६६३ में आचार्य प्रो. रामकरण शर्मा, (पूर्व कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी एवं कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय तथा पूर्व निदेशक राष्ट्रिय संस्थान) द्वारा लिखित अंग्रेजी भूमिका सहित गणेश पुराण प्रकाशित किया गया है। यह मूलभाग है और दोनों खण्ड पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध एक साथ प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त भी एकाध जगह से इस पुराण का मूल प्रकाशित हो चुका है।

गणेशपुराण की अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं कुछ का विवरण इस प्रकार है। यहाँ वाराणसी में उपलब्ध कुछ पाण्डुलिपियों का विवरण दिया जा रहा है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में कुल छः पाण्डुलिपियाँ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है -

क्र.	आकार	लिपि	लिपिकाल	ग्रन्थ की स्थिति
१४५७७	१२.८ x ६.३ १४ x ७.५	देवनागरी	सं. १८२७	अपूर्ण (पूर्वोत्तरार्द्ध रूप)
१४६८०	६.६ x ५.६	"	-	पूर्ण
१४६८१	१३.५ x ६.१	"	-	अपूर्ण उत्तरार्द्ध
१५१३६	१२.८ x ५.८	"	-	अपूर्ण (पूर्वोत्तरार्द्ध रूप)
१६५१४	१२.२ x ४.७	"	-	अपूर्ण (१-७ अध्याय)
१६५१५	१२.४ x ४.८	"	-	अपूर्ण (१-७७ अध्याय)

उपर्युक्त विवरण का स्रोत है– (A Descriptive Catalouge of Sanskrit Manuscripts Volume IX Govt. Sanskrit College, Saraswati Bhawan Library, Varanasi.)

इसके अतिरिक्त वाराणसी में गणेशघाट स्थित पेशवाओं द्वारा लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्थापित गणेश मन्दिर अमृत विनायक संस्थान में एक पाण्डुलिपियों है। इसका लेखन काल वि.स. १८७३ श्रा.शु. ८ गुरुवार श.सं. १७३८ है। पुण्यपत्तन के त्र्म्बक शंकर गोधूलिकर इसके लेखक हैं।

एक और पाण्डुलिपि वे.मू. गणेश शास्त्री पालन्दे, दुर्गाघाट वाराणसी के पास व्यक्तिगत संग्रह में है। इसका पूर्वार्द्ध सं. १८६८ श.सं. १७३३ का.शु. १ शुक्रवार और

उत्तरार्द्ध सं. १८७५ श.सं. १७४० ज्ये.शु. ३ शनिवार चित्रभानु संवत्सर में महादेव रामचन्द्र घाटे द्वारा लिखा गया है।

डा. माधव जनार्दन रटाटे जी के व्यक्तिगत संग्रह में भी एक गणेश पुराण है, जिसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का लिपिकाल क्रमशः श.सं. १८२। इन पाण्डुलिपि के अतिरिक्त गोयनका लाइब्रेरी ललिताघाट, मुमुक्षुभवन पुस्तकालय अस्सी एवं साङ्गवेद विद्यालय रामघाट में भी इस पुराण की पाण्डुलिपियां होने की बात कही जाती है।

१. गणेश पुराणम् - B १६५२/ D १०५७१ - 'दि तंजाबर महाराज सर्फोजीज, सरस्वती महल लायब्रेरी तञ्जावर कर्नाटक।

२. गणेश पुराणम् - बा १८१४ श्रीसमर्थ वागूदेवता मन्दिर धुले महाराष्ट्र।

गणेश पुराण की संक्षिप्त कथा वस्तु– अन्य पुराणों की ही तरह गणेश पुराण का भी प्रारम्भ मङ्गल श्लोक के उपरान्त सूत शौनक के संवाद से होता है। नैमिषारण्य में शौनकादि महात्माओं द्वारा किये जाने वाले द्वादशवर्षीय यज्ञ सत्र में पधारे सूतजी से ऋषिजनों ने महापुराणों के श्रवण करने के पश्चात अब उपपुराणों के श्रवण की इच्छा व्यक्त की है। महात्माओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर सूतजी ने उन्हें अठारह उपपुराणों में से सर्वप्रथम गणेश पुराण सुनाने की बात कही है–

'गणेशस्य पुराणं यत् तत्रादौ कथयाम्यहम्।
दुर्लभं श्रवणं यस्य मर्त्यलोके विशेषतः।।

ब्रह्मा-व्यास-भृगु इस क्रम से गणेश पुराण की कथन परम्परा भी यहाँ बतलायी गयी है।

इस पुराण की केन्द्रभूत मुख्य कथा सौराष्ट्र के देवनगर के राजा सोमकान्त के गुणों एवं ऐश्वर्य वर्णन से प्रारम्भ होती है।

अचानक राजा को कुष्ठ प्राप्त होता है जिसके कारण राजा अपने मंत्री, प्रजाजन एवं परिजनों के निवेदनों के बाद भी राज्यत्याग का निश्चय करता है। राजा, पुत्र हेमकण्ठ की इच्छा न रहते हुए भी उसे अपना उत्तराधिकार सौंपता है और स्वयं अपनी पत्नी सुधर्मा और अपने दो मंत्रियों सुबल और ज्ञानगम्य के साथ वन को प्रस्थान करता है। राजा के सो जाने पर उसके दोनों मंत्री आहार की खोज में फल आदि लाने जाते हैं। इसी क्षण एक तालाब के किनारे एक बुद्धिमान एवं तेजस्वी बालक से राजपत्नी सुधर्मा की भेंट होती है और वह अपने पति को अकस्मात कुष्ठ प्राप्त होने की सम्पूर्ण कथा उस बालक को बताती है।

वह बालक और कोई नहीं अपितु भृगु का पुत्र च्यवन है, जो यह सारी कथा अपने पिता को बताता है। भृगु के पूछे जाने पर राजा सोमकान्त उन्हें अपने और अपने जीवन

में घटित घटनाओं के बारे में सब कुछ ठीक-ठीक बता देता है। सर्वज्ञ भृगु राजा के पूर्व जीवन (जन्म) घटित सारी बातों को दिव्य दृष्टि से देखकर उसे ही इस जन्म में प्राप्त होने वाले दुःखों का कारण बताते हैं–

सोमकान्त पूर्व जन्म में कामन्द नाम का एक वैश्य था। पिता की मृत्यु के बाद वह बिगड़ गया एवं अवांच्छनीय गतिविधियों में संलग्न रहने लगा। बार बार मना करने पर भी जब नहीं माना तब उसकी पत्नी कुटुम्बिनी ने उसका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात वह जङ्गल चला गया एवं ब्राह्मणों सहित निर्दोष लोगों को लूटने एवं मारने लगा। एक बार गुणवर्द्धन नामक ब्राह्मण को पकड़ लिया। ब्राह्मण द्वारा अभी अभी नवीन विवाह होने की बात बतलाकर बार बार छोड़ने की प्रार्थना करने पर भी उसने उसे नहीं छोड़ा अपितु मार डाला, जिस कारण शाप प्राप्त हुआ। इस प्रकार अनेक ब्राह्मणों के शाप उसको प्राप्त हुए। कालान्तर में वृद्ध होने पर उसे बहुत पछतावा हुआ और उसने अपनाा सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को दान देना चाहा। किन्तु उसके द्वारा पूर्व में किये गये पापकर्मों के कारण किसी ने भी उसका धन स्वीकार नहीं किया। तब उसने अपना सम्पूर्ण धन एक जीर्ण शीर्ण गणेश मन्दिर के जीर्णोद्धार में व्यय कर दिया। जब उसकी मृत्यु हुई तक यह यमराज के पास ले जाया गया। जहाँ उससे पूछा गया कि वह पहले पुण्य भोगेगा अथवा पाप ?

मातङ्ग ने पहले पुण्य भोगने की इच्छा व्यक्त की जिस कारण वह सुन्दर, सुखी और सम्मानित राजा बना और पश्चात बुरे कर्मों का पाप फल भोगने के लिये उसे यह कुष्ठरोग प्राप्त हुआ।

इस प्रकार भृगु ने सोमकान्त राजा को उसके पूर्वजन्म और उसमें किये गये पाप पुण्य के फल भोग के बारे में बतलाया। सोमकान्त को इस पूर्व जन्म की कथा में सहसा विश्वास नहीं हुआ। मुनि वचन में अविश्वास करने के कारण अचानक उस पर पक्षियों ने आक्रमण कर दिया और उसके शरीर का मांस नोच नोच कर खाने लगे। तदुपरान्त भृगु ऋषि के हुङ्कार मात्र से पक्षी उड़ गये। इस पर राजा को अपने द्वारा मुनि वचनों के प्रति किये गये सन्देह पर बड़ा पश्चाताप हुआ और वह महात्मा भृगु के चरणों पर गिर पड़ा, उनके कहने पर स्नानार्थ उसने सरोवर में प्रवेश किया। भृगु ऋषि ने एक सौ आठ बार गणेश नाम का उच्चार कर अभिमंत्रित जल राजा के ऊपर डाला जिससे शीघ्र ही एक पाप पुरुष राजा के शरीर से बाहर निकला। जिसे भृगु ने निकटस्थ वृक्ष में प्रवेश करने को कहा। जैसे ही उसने वृक्ष में प्रवेश किया वह वृक्ष तत्काल भस्म हो गया। राजा पाप मुक्त हो गया। इसके उपरान्त भृगु ऋषि ने राजा को गणेशपुराण श्रवण करने का परामर्श दिया और साथ ही यह भी कहा कि यदि वह श्रद्धा से उन्हें सुनता है तो धीरे धीरे और क्रमशः विनष्ट वृक्ष में अङ्कुरण होने लगेगा और जैसे ही यह वृक्ष पूर्ण रूप से फल पुष्प से समृद्ध हो जायेगा वैस ही वह पूर्णतः पाप मुक्त होकर शुद्ध हो जायगा। उन्होंने फिर

से यह भी बताया कि व्यासदेव ने ब्रह्माजी से यह कथा प्राप्त की थी और व्यास से मैंने। यहाँ भृगु, व्यास और ब्रह्मा के संवाद के रूप में यह कथा सुनाते हैं।

यहाँ जैसे ही व्यास जी ने अष्टादश पुराणों पर कार्य करना आरम्भ किया वैसे ही गणेश का स्मरण न करने के कारण वह अपनी योजना में आगे नहीं बढ़ सके-

औषधीभिश्च मन्त्रैश्च भग्नवीर्य इवाहिराट्।
तस्तम्भे स्वात्मनि भृशं तद्धेतुं नाध्यगच्छत्।। ग.पु. पू. १०/०६

तब वह ब्रह्मा के पास पहुंचे और सहायता की याचना की। ब्रह्मा ने व्यास को बतलाया कि भगवान गणेश का स्मरण पूजन न करने से ही ऐसे विघ्न उपस्थित हुए हैं। (स्मरणं वा गणेशस्य प्ररम्भेन्यस्य वा तथा। न कृतं च त्वया व्यास तेन भ्रान्तिस्तवाभवत्।।) ऐसा बतलाकर भृगु ने आरम्भ में ब्रह्मा द्वारा व्यास को सुनाये गये गणेश पुराण को राजा को पुनः सुनाया।

सोमकान्त राजा ने श्रद्धा से गणेशपुराण का श्रवण किया। व्यास, गणेश आदि का पूजन कर परमपद लाभ का वरदान भी प्राप्त किया। इस प्रकार राजा न केवल कुष्ठमुक्त हुआ अपितु सौराष्ट्र देश के देवनगर के सभी निवासियों एवं परिजनों के साथ दिव्य विमान में आरोहण कर; 'स्वानन्दभुवन' (गणेश लोक) प्राप्त किया। इस आवरण कथा के अन्तर्भूत गणेशपुराण की केन्द्रीय विचारधारा विद्यमान है। सामान्यतः इस मूल कथा के अन्तर्गत अनेक आख्यानों, उपाख्यानों एवं अन्य आख्यानों द्वारा गणेश को पूर्ण-अधिकार, सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। इतना ही नहीं महान देवत्रयी ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के कार्यों का विभाजन भी करने के लिये गणेश को उत्तरदायी माना है। गणेशपुराण में वर्णित प्रमुख विषय इस प्रकार हैं। -

अ. १ से ११ तक- इन अध्यायों में सोमकान्त राजा की कथा विस्तार से वर्णित है। जिसमें उपर्युक्त सारे विषयों की विवेचना की गयी है।

अ. १२ से १८ तक- इन अध्यायों में ब्रह्मा द्वारा व्यास को गणेश मन्त्र का उपदेश, ब्रह्मा की सृष्टि हेतु गणेशाराधना, मधु कैटभोत्पत्ति, विष्णु द्वारा शिव को 'हुं वक्रतुण्डाय' इस षडक्षरमन्त्र का उपदेश और सिद्ध क्षेत्र की उत्पत्तिकथा वर्णित है।

अ. १९ से २६ तक- इन अध्यायों में महाख्यान वर्णित है जो सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें विदर्भ देश के कौडिन्य नगर के निवासी राजा भीम द्वारा अपनी पत्नी चारुहासिनी के साथ पुत्र प्राप्ति हेतु तप करने की बात कही गयी है। पूर्व जन्म कृत पाप के विषय में राजा को विश्वामित्र ने बतलाया एवं गणेशाराधना हेतु प्रेरित किया है। इसमें राजा भीम को पत्नी कमला से पुत्र प्राप्ति, कमला पुत्र दक्ष द्वारा गणेश दर्शन, मुद्‌गल ऋषि के अनुग्रह से दक्ष द्वारा गणेशमन्त्र जप, बल्लाल

की भक्ति, बल्लाल गणेश महिमा, वैश्य कल्याण की कथा, राजा चन्द्रसेन की मृत्यु और दक्ष के राज्य प्राप्ति और वंश विस्तार का वर्णन है।

अ. २७ से ३८ तक– इन बारह अध्यायों में गृत्समदोपाख्यान विस्तार से वर्णित है। राजा रुक्माङ्गद का राज्याभिषेक, वाचकनवि मुनि के आश्रम पर उसका जाना एवं जल याचन, कामातुरा मुनि पत्नी मुकुन्दा द्वारा रुक्माङ्गद को कामेच्छा पूर्ण न करने के कारण शाप, नारद का उपदेश और चिन्तामणि तीर्थ की महिमा बतलाई गई है। इन्द्र द्वारा रुक्माङ्गद राजा के रूप में मुनिपत्नी मुकुन्दा के साथ संयोग से गृत्समद की उत्पत्ति वर्णित है। चिन्तामणि तीर्थ की महिमा बतलाने हेतु इन्द्र द्वारा पूर्व में गौतम पत्नी अहिल्या के साथ व्यभिचार करने, शाप प्राप्त करने और फिर षड्क्षरमन्त्र के अनुष्ठान से पापमुक्ति की कथा वर्णित है। गृत्समद द्वारा तप एवं गणेश दर्शन तथा उनसे वरप्राप्ति भी वर्णित है।

अ. ३९ से ४७ तक– इन नौ अध्यायों में त्रिपुराख्यान बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित है। गृत्समद को त्रिपुरासुर की प्राप्ति, उसकी तपस्या और गणेश दर्शन, त्रिपुर द्वारा इन्द्र, ब्रह्मादि देवों का पराभव, दिव्य विमान प्राप्ति, शिव के साथ युद्ध, शिव की पराजय एवं पुनः गणेश भगवान् द्वारा त्रिपुर वध हेतु शिव को दिये गये दिव्य गणेश सहस्रनाम का उपदेश और शिव द्वारा त्रिपुरदाह की कथा का बड़ा ही सजीव सुन्दर वर्णन है। साधना की दृष्टि से गाणपत्य सम्प्रदाय में इस सहस्रनाम स्तोत्र का अपना महत्व है।

अ. ४८ से ५७ तक– इन दस अध्यायों में पार्थिव गणेश व्रत की महिमा बताने हेतु राजा चन्द्राङ्गद का आख्यान विशेष रूप से वर्णित है। भाद्र शुक्ल चतुर्थी पर्यन्त होने वाले इस व्रत वर्णन प्रसङ्ग में पार्वती हिमालय संवाद, पार्थिव पूजा विधान, राजा नल का पूर्व वृत्तान्त, राजा चन्द्राङ्गद की कथा, नारद का उपदेश और रानी इन्दुमती द्वारा व्रत का अनुष्ठान, पार्वती शङ्कर मिलन, गणेश नाम स्मरण से पापी जुलाहे का भ्रूशुण्डि रूप धारण कर उच्चकोटि का गणेश भक्त होने की कथा वर्णित है।

अ. ५८ से ७६ तक– इन उन्नीस अध्यायों में चतुर्थी एवं कार्तवीय आख्यान विशेष रूप से वर्णित है। साथ ही गणेश सम्प्रदाय में दूर्वा की क्या महिमा है यह भी विभिन्न उपाख्यानों के माध्यम से बतलाया गया है। कृतवीर्य द्वारा संकष्ट चतुर्थी व्रत, अङ्गारकी चतुर्थी की महिमा, चन्द्रमा को शापानुग्रह, सङ्कष्ट चतुर्थी की साङ्गोपाङ्ग महिमा पूर्व में किन-किन लोगों को यह व्रत करने पर क्या-क्या मिला इसका विवरण, चतुर्थी व्रतोद्यापन विधि वर्णन के साथ ही ६२ से ६७ अध्यायों में क्षत्रिय पत्नी समुद्रा और ब्राह्मण मधुसूदन का परस्पर शाप, कालानलासुर का उपाख्यान, कौण्डिण्य का उपाख्यान, विरोचना त्रिशिर द्वारा प्रदत्त दूर्वा से गणेश तृप्ति, जनक राजा, कौण्डिण्य पत्नी आश्रया आदि की कथाओं से दूर्वा की अद्भुत महिमा बतलायी गयी है।

अ. ७७ से ८२ तक– इन छः अध्यायों में रामोपाख्यान वर्णित है। राजा सहस्रार्जुन का जमदग्नि के आश्रम पर आना, भोजन प्रसङ्ग, कामधेनु को बलात् ले जाने का प्रयास, गाय से उत्पन्न सैनिकों के हाथों पराभव, जमदग्नि का राजा द्वारा वध, रेणुका का देहत्याग, दत्तात्रेय की स्तुति, माता पिता का और्ध्वदेहिक कृत्य और परशुराम द्वारा मयूरेश क्षेत्र में तपस्या, गणेश दर्शन एवं परशु प्राप्ति की कथा वर्णित है।

अ. ८३ से ९२ तक– इन अध्यायों में तारकोपाख्यान मुख्य रूप से वर्णित किया है। तारकासुर की उत्पत्ति, शिव के समीप कामदेव दहन, स्कन्द कार्तिकेय की उत्पत्ति, उन्हें गणेश व्रत का उपदेश, लक्षविनायक क्षेत्र में आराधन और वर प्राप्ति तथा तारकासुर वध का प्रसङ्ग वर्णित है। कामदेव की तपस्या, शेषनाग की तपस्या उनके द्वारा गणेश स्तुति और वरदान प्राप्ति का वर्णन किया है। अन्तिम अध्याय में सुमुखादि बारह प्रख्यात नामों की महिमा के साथ ही गणेश पुराण का उपासना खण्ड पूर्ण होता है।

गणेश पुराण के १५५ अध्यायों में निबद्ध उत्तर खण्ड या क्रीडा खण्ड में गणेश के विभिन्न अवतारों और उनके लीला चरित्रों का बड़ा ही मञ्जुल वर्णन किया गया है। जिनका विवरण इस प्रकार है–

अ. १ से ७२ तक– इन अध्यायों में अनेक उपाख्यानों के साथ गणेश के कृतयुगीय विनायक या महोत्कट अवतार के लीला चरित्रों का विशद वर्णन है। एक से चार अध्यायों तक शारदा और ब्राह्मण रौद्रकेतु के पुत्रों देवान्तक और नरान्तक को नारदोपदेश, तपस्या, शिव से वर प्राप्ति और उनकी देवादि पर विजय के प्रसङ्ग वर्णित हैं। इसके पूर्व सिंहारूढ सुवर्णकान्ति दशभुज विनायक (महोत्कट), मूयरारूढ षड्भुज रजतकान्ति मयूरेश (गुणेश) और मूषकारूढ सिन्दूरवर्ण चतुर्भुज गणेश एवं अश्वारूढ द्विभुज धूम्रवर्ण हेरम्ब का क्रमशः कृतादि चतुर्युगों के अवतारों का स्वरूप वर्णित है। ५ से २१ अध्यायों में देवमाता अदिति द्वारा गणेशाराधन से वर प्राप्ति उनके पुत्र के रूप में विनायकावतार और उसके पश्चात् भागवतीय श्रीकृष्ण लीलाओं की तरह विनायक द्वारा सम्पन्न विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। विरजा राक्षसी, नक्र, विघट, दन्तुर, जृम्भा राक्षसी कपटी दैत्य, कूप, कन्धर, अम्भ, अन्धक, तुङ्ग, अन्ध, भ्रमरी राक्षसी आदि के उद्धार, इन्द्रगर्व भञ्जन, हाहाहूहू गन्धर्व भ्रमनिरासादि का वर्णन है। १६, २२ एवं २३ अध्यायों में भ्रुशुण्डी एवं शुक्ल ब्राह्मण पर अनुग्रह कर भक्ति के प्रभाव को दर्शाया है। साथ ही सनकादि महात्माओं को बोध भी कराया है। आगे के पाँच अध्यायों में भीमा राक्षसी उद्धार, विरोचन वध, साम्ब दुराचरण एवं बलि एवं वामन चरित्र का दिव्य वर्णन है। ३२ से ३७ अध्यायों में शमी, मन्दार की महिमा उनकी उत्पत्ति की कथा और प्रभाव विभिन्न आख्यानों से बतलाया गया है। आगे ३८ से ५३ अध्यायों में ढुण्डिराजाख्यान और दिवोदास काशिराज का उपाख्यान वर्णित है। दैत्य दुरासद चरित्र, शिव का काशी प्रयाण, पार्वती के तेज से पुत्रोत्पत्ति, दुरासद की पराजय

एवं काशी के छप्पन आवरण विनायकों की चर्चा के साथ ही काशी नरेश राजा दिवोदास का दिव्य चरित्र वर्णित है। दिवोदास का राज्य परित्याग विमानारोहण एवं स्वानन्दभुवन (गणेश धाम) प्राप्ति का वर्णन है। ५४ से ७० अध्यायों तक अष्ट सिद्धियों सहित देवान्तक और नरान्तक के साथ विनायक के युद्ध और उनके उद्धार का प्रसङ्ग वर्णित है। अन्तिम दो अध्यायों में विजयी विनायक का आश्रम आगमन और पश्चात् अवतार लीला का समारोप कर स्वलोक स्वानन्दभुवन गमन का वर्णन है।

गणेश पुराण के ७३ से १२६ अध्यायों तक गणेश के त्रेतायुगीन मयूरेशावतार की कथा विस्तार से वर्णित है। ७३वें अध्याय में मिथिल देश की गण्डकी नगरी के राजा चक्रपाणि और उसकी पत्नी उग्रा को शौनक ऋषि द्वारा बतलाये सौर व्रत से गर्भधारण किया। किन्तु उसे धारण करना असह्य होने से वह समुद्र में फेंक दिया। समुद्र ने वह बालक पुनः राजा को ले जाकर वापस दिया। उसका नामकरण सिन्धु ऐसा किया गया। पिता की आज्ञा से उसने वन जाकर भगवान् सूर्य की आराधना की जिस पर प्रसन्न होकर सूर्य ने उसे अभयदान और एक अमृत पात्र दिया। साथ ही यह भी बताया कि इस पात्र को जो तुमसे अलग करेगा, उसी के हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी। शक्ति सम्पन्न सिन्धु द्वारा देवताओं का पराभव एवं विष्णु का देवों सहित गण्डकी नगरी में वास किये जाने पर भगवान् बृहस्पति द्वारा गणेश आराधना का उपदेश और गणेश का प्रसन्न होकर शिव पार्वती के घर मयूरेश नाम से अवतरित होने की कथा आयी है। आगे के तीन अध्यायों में पार्वती का मन्त्र जप, तप, वर प्राप्ति और गणेशावतार की कथा वर्णित है। आगे ८२ से १०३ अध्यायों तक सिन्धु दैत्य की ईश्वर आराधना और गृध्रासुर, बालासुर, व्योमासुर, कमठासुर, शलभ, अविजय, शैल, चञ्चल, वृक, भगासुर एवं कमलासुर के वध की कथाएँ वर्णित हैं। इस बीच ८५वें अध्याय में गणेश कवच, ६२वें अध्याय में पार्वती को विश्वरूप दर्शन, ६४वें गौतम का मोह निरूपण, मयूर के गणेश वाहन होने की कथा ६८वें अध्याय में वर्णित है। आगे के १०४वें, १०७वें एवं १०८वें अध्यायों में क्रमशः ब्रह्मा, इन्द्र और यम के गर्व परिहार का वर्णन प्राप्त होता है। आगे के ११० अ. से १२३ अध्याय तक युद्ध के विभिन्न प्रसङ्गों की चर्चा है। जिसमें युद्धार्थ नन्दी का सिन्धु के समीप गमन, मयूरेश का युद्ध निश्चय, मित्र, कौस्तुभ, सिन्धु पुत्रादि का वध, सिन्धु का पिता से संवाद और अन्त में सिन्धु वध का प्रसङ्ग वर्णित है। इस प्रकरण के अन्तिम तीन अध्यायों में क्रमशः मयूरेश का गण्डकी नगर प्रवेश, ब्रह्मा की पुत्रियों से विवाह और मयूरेश चरित्र की फलश्रुति बतलायी गई है।

गणेश पुराण के क्रीडाखण्ड के १२७ अध्याय से १३७ अध्याय तक इन ग्यारह अध्यायों में गणेश के द्वापरयुगीन अवतार गजाननावतार की चर्चा की गई है। इसके १२७वें अध्याय में एक बार शङ्कर द्वारा निद्रस्थ ब्रह्मा को जगाए जाने और क्रोध में ब्रह्मा के द्वारा

जम्हाई लेने पर उससे एक लालरङ्ग के बालक की उत्पत्ति की कथा आई है। बालक द्वारा अपने को ब्रह्मा का पुत्र बताने पर ब्रह्मा ने इसे सिन्दूर ऐसा नाम सभी से अभय और क्रोध से किसी का भी आलिङ्गन करने पर उसकी मृत्यु होने जैसा दुर्लभ वरदान भी दिया। सिन्दुर ने जब इस वर की परीक्षा करने की इच्छा से ब्रह्मा का आलिङ्गन करना चाहा तब ब्रह्मा ने उसे असुर होने और उसके जैसे रक्तवर्ण व्यक्ति के हाथों उसके मृत्यु होने का शाप दिया। आगे के अध्यायों में मदान्ध सिन्दुर द्वारा ब्रह्मा, विष्णु से युद्ध करने की इच्छा व्यक्त करने पर दोनों ने शिव से युद्ध करो ऐसा उसे निवेदन किया। कैलास पर शिव को तपस्यारत देखकर सिन्दुर पार्वती का हरण करता है। पार्वती द्वारा मयूरेश का स्मरण किये जाने पर ब्राह्मण रूप से गणेश का प्रकट होकर सिन्दुर से शिव के साथ युद्ध में विजयी होने पर पार्वती देने की बात कहना और शिव से उसके युद्ध का वर्णन है। आगे ऋषि मुनि देवताओं की प्रार्थना पर पार्वती के गर्भ से गणेश के गजानन रूप में आविर्भाव की कथा १३०वें अध्याय में आयी है। आगे राजा वरेण्य, पराशर मुनि को पूर्व में दिये वचनों के अनुसार बालक गणेश का वहाँ पुत्र रूप में जाना, सौभरि ऋषि के शाप से मूषक योनि को प्राप्त गन्धर्व का गणेश वाहन बनने की कथा आयी है। सिन्दुरासुर द्वारा पार्वती पुत्र को नर्मदा में फेके जाने वहाँ के जल लाल होने व नर्मदा गणेश के नाम से वहाँ के पाषाणं होने की कथा भी आई है। अन्त में ६ वर्ष की आयु के पार्वती पुत्र द्वारा धुसृणेश्वर के समीप सिन्दुरवाड नामक स्थान पर विश्वरूप प्रकट कर गुणेश द्वारा सिन्दुरासुर के वध का प्रसङ्ग वर्णित है।

गणेश गीता– क्रीडाखण्ड के १३८ से १४८ तक इन ग्यारह अध्यायों में गणेश गीता की चर्चा है। राजा वरेण्य को पुत्र रूप से प्राप्त गणेश के समक्ष राजा द्वारा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा व्यक्त किये जाने पर गणेश गीता का उपदेश किया है। इसमें क्रमशः सांख्यसारतत्व, कर्मयोग, ज्ञान प्रतिपादन, कर्म संन्यास, योग प्रवृत्ति, बुद्धियोग, उपासना, विश्वरूप दर्शन, क्षेत्रज्ञातृज्ञेय विभाग, योगोपदेश, विविध वस्तु निरूपण- इन विषयों की नर्चा की गई है। इनमें समस्त उपनिषदों और दर्शन का सार है। इस पर श्रीमद्भगवद्गीता की स्पष्ट छाप दिखती है। अध्याय १४६ से १५० में व्यास को गणेश दर्शन और वर प्राप्ति का वर्णन है। अ. १५१ से १५३ तक सोमकान्त को विमान प्राप्ति, देवनगरगमन एवं देव पद प्राप्ति वर्णित है। १५४वें अध्याय में काशी के सप्तावरण स्थित छप्पन विनायकों के नामों का स्मरण किया गया है। अन्त में १५५वें अध्याय में गणेश पुराण की फलश्रुति बतलायी गयी है। जिसके अनुसार इस पुराण के श्रवण से जन्ममरणबन्धन मुक्ति, इहलोक के सुख, भोग और मोक्ष सब कुछ प्राप्त होता है। इसके श्रवण से लोमश को बृहस्पति जैसी वाणी, इक्ष्वाकुवंशीय संवरण को पुत्र प्राप्ति, उसकी बहन को संतति प्राप्ति, सगर पुत्र को गणेश लोक प्राप्त होने की बात कही है। गणेश महिमा ब्रह्मादि के लिये भी अगम्य होने पर भी इस पुराण के कथन या श्रवण से समस्त कामना-सिद्धि प्राप्त होती है।

गणेश पुराण का आध्यात्मिक धार्मिक महत्व– गाणपत्य सम्प्रदाय में यह पुराण अत्यन्त समादृत है। उपासना के विविध प्रकारों में प्रमाण स्वरूप मान्य है। गणेश पुराण उपासना खण्ड अ. १३ का गणपतिस्तव, गणेशाष्टक, गणेश पुराण क्रीडाखण्ड बालचरित्र का मयूरेशस्तोत्र एवं गणेश कवचादि अनेक सिद्धस्तोत्र है। इसके अतिरिक्त गणेश पुराण का गणेश सहस्रनाम स्तोत्र अत्यन्त मान्य है। उपर्युक्त गणेश सहस्रनाम गणेश देवता व्यूह के प्रधान महागणपति का है। जिनकी उपासना विभिन्न ग्रन्थों में है; विशेषतः परशुराम कल्पसूत्र में श्रीविद्या के साथ जिनका विधान उपवर्णित है। अतः गणेश मूर्तियों में महागणपति की तरह अनेक सहस्र नामों में यही श्रेष्ठ है।

यह सहस्रनाम प्रधान अवतार की उपासना का अङ्ग है। शास्त्रीय परिभाषा में यह क्रत्वर्थ और पुरुषार्थ दोनों है अर्थात् महागणपति के पूजन का अङ्ग होने से क्रत्वर्थ और स्वतन्त्र पाठ से भी फलदायक होने से पुरुषार्थप्रद है। त्रिपुर से परास्त होकर ध्यानस्थ शिव ने इस प्रश्न को जब आत्मा से पूछा तब आत्म चैतन्य रूप गणेश उनके मुख से प्रादुर्भूत हुए और इस सहस्रनाम मन्त्र का उपदेश शिवजी को दिया जिससे शिव विजयी हुए। 'मूलमन्त्रादपि स्तोत्रमिदं प्रियतरं मम' ऐसा कहकर गणेश ने स्वयं इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की है।

गणेश सहस्रनाम पर भगवती श्रीविद्या के साक्षात् पुरुषावतार, अशेष शास्त्रों के ज्ञाता, अलौकिक प्रज्ञा सम्पन्न महापुरुष आचार्य श्री भास्कर राय भारती ने 'खद्योतभाष्य' इसे नाम से पद्यबद्ध टीका लिखी है। यह टीका इतनी मान्य और प्रामाणिक है कि इस गणेश सहस्रनाम वार्तिक के नाम से भी जाना जाता है। इनके पूर्व भी कोई टीका लिखी गयी थी किन्तु प्रमाद और भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली होने से, गणेश भक्तों को खेद मुक्त करने हेतु सत्रहवीं शताब्दी में यह टीका लिखी गयी। गणेश सहस्रनाम के १७२ श्लोकों पर ६०७ श्लोकों में खद्योतभाष्य पद्यरूप में लिखा गया शेष फलश्रुति के ४३ श्लोकों पर गद्यात्मक टीका है। काशी में त्रिलोचनेश्वर के सान्निध्य में यह टीका लिखी गयी है।

१. गणेश सहस्रनाम का खद्योतभाष्य आचार्य प्रो. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते द्वारा सम्पादित, प्राच्य प्रकाशन वाराणसी से १९९१ में प्रकाशित हुआ है।
२. दूसरी मुद्रित पुस्तक पं. नारायण राम आचार्य द्वारा सम्पादित, निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से १९५१ ई. में प्रकाशित है।

गणेश सहस्रनाम पर हेरम्बराज की टीका की पाण्डुलिपि १७७ कसबा पेठ पुणें के सरदार गं.ना. मुजुमदार इनके पुस्तक संग्रह में है।

गणेश गीता– जिस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के महाभारत में होने पर भी उसका स्वन्तन्त्र महत्व और वैशिष्ट्य है, वैसे ही गणेश पुराण के क्रीडाखण्ड के १३८ से १४६ अध्यायों में वर्णित गणेश गीता भी गाणपत्य सम्प्रदाय में अपना एक पृथक् विशिष्ट स्थान

रखती है। भगवान् गणेश द्वारा राजा वरेण्य को किया गया यह उपदेश अत्यन्त तेजस्वी व मार्मिक है। यद्यपि भगवद्गीता के अनुकरण से पौराणिक काल में लगभग १७ गीताएँ लिखी गयी, किन्तु गणेश गीता ने भगवद्गीता के तत्वज्ञान को कहीं भी किसी दृष्टि से छोड़ा नहीं है। इस कारण गीता के जिन कई श्लोकों का अर्थ विवाद्य है, उनका भी स्पष्टीकरण गणेश गीता की सहायता से होता है। कर्मयोग मोक्ष साधक है, यह गणेश गीता का दृढ उद्घोष है। इतना ही नहीं– "स्व स्व कर्मरता एते मय्यर्प्याखिलकारिणः"। मत्प्रसादात् स्थिरं स्थानं यान्ति ते परमं नृप'।। इसमे 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः' इसका गणेश गीता ने निःसन्दिग्ध अभिप्राय बतलाया है। इसमें ११ अध्याय एवं ४१२ लोक हैं। गणेश चतुर्थी को, विधिपूर्वक गणेश पूजा कर इसके ७ पाठ करने से पुत्र पौत्र, ऐश्वर्य और कल्याण की प्राप्ति होती है। इस पर प्रसिद्ध भाष्य 'गार्ग्य भाष्य' है और उस पर १. चतुर्धरी, २. निरञ्जनी, ३. नीलकण्ठ गोविन्दकृत टीका, ४. श्रीगणेशयोगीन्द्रकृत और ५. हेरम्बराज कृत ये विशिष्ट टीकाएँ है। गणेश गीता गार्ग्य भाष्य पुणे के श्रीमुजुमदार इनके व्यक्तिगत पुस्तक संग्रह में है। गणेश सम्प्रदाय के आद्यपीठ, 'भूस्वानन्दभुवन' मयूरेश क्षेत्र (मोरगाँव) के मयूरेश मन्दिर के ग्रन्थ संग्रह में उपर्युक्त गार्ग्यभाष्य एवं उस पर लिखी सभी पाँच टीकाएँ विद्यमान है।

गणेश पुराण का साहित्यिक दृष्टि से महत्व– गणेश देवता सम्बन्धी प्रचुर साहित्य गणेश पुराण में प्राप्त होता है। इसकी स्तुतियाँ बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। उनमें अनेक छन्दो, गुण, अलङ्कार, रसादि का दर्शन होता है। श्रीमद्भागवत से प्रभावित होने के कारण गणेश पुराण में वर्णित बाललीलाओं में वात्सल्य रस का विशेष दर्शन होता है। भक्ति रस की सभी धाराएँ इसमें दृष्टिगोचर होती हैं। इसके आख्यानों में करुण रस का भी विवेचन है। इसकी स्तुतियों पर भी दार्शनिक प्रभाव स्पष्ट दिखता है। अभीष्ट अर्थ को प्रकट करने में ही इस पुराण का भी आग्रह होने से अभिधा शक्ति का ही प्राधान्य है। गणेश पुराण भी सुहृतसम्मित भाषा का प्रयोग कर, मानव को स्वहित में प्रेरित करने के लिये अनेक सुन्दर कथानकों, सूक्तियों और उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात हृदयङ्गम कराता है। इसकी भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। व्यावहारिकता का पुट अधिक होने से इस पुराण में भी व्याकरण के नियमों में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है।

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक वैशिष्ट्य– गणेश पुराण का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। प्रत्येक युग में वनों, पर्वतों, तीर्थों पर साधकों ने आध्यात्मिक चेतना को जन्म दिया है। गणेश देवता के उद्भव, विकास और अग्रस्थान प्राप्त करने के इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। काशीराज दिवोदास का आख्यान जो इस पुराण में विस्तार से वर्णित है, स्कन्द, कूर्मादि अन्य पुराणों में भी प्राप्त होता है। इनका तुलनात्मक अध्ययन कर, काशी के छप्पन विनायकों के स्कन्द पुराणीय वर्णन के साथ अनुशीलन करने से काशी के

तत्कालीन इतिहास पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इसी प्रकार ब्रह्मकमण्डल तीर्थ यानी मयूरेश्वर तीर्थ जिसकी चर्चा ब्रह्म पुराण में भी आयी है, गणेश पुराण में वर्णित है। इनके तुलनात्मक विचार से इस क्षेत्र के भी इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। भौगोलिक दृष्टि से भी गणेश पुराण वर्णित विभिन्न गणेश तीर्थों का इस पुराण की सहायता से विवेचन किया जा सकता है।

सामाजिक राजनैतिक वैशिष्ट्य– गणेश पुराण की कथाएँ उनमें कई ऐसी बातें देखने को मिलती है जिससे सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का तात्कालिक दर्शन होता है। कमला पुत्र दक्ष, कल्याण वैश्य पुत्र बल्लाल, शुक्ल ब्राह्मण आदि के आख्यान, बाल शोषण, स्त्री की अकारण उपेक्षा, विकलाङ्ग एवं निर्धन का उपहास आदि की समाज में व्याप्त बुराइयों की ओर आकर्षित करता है और सावधान रहकर विचारपूर्वक समाधान भी देता है। आज आतङ्कवाद, राजनैतिक अस्थिरता और सांस्कृतिक आक्रमण की भयावह स्थिति हमारे सामने खड़ी है। यह कोई नई बात नहीं है गणेश पुराण के आख्यानों में भी इन स्थितियों को दर्शाते हुए समाधान दिया है जो आज भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है। इसमें महोत्कट या विनायक के कृतयुगीन अवतार वर्णन के प्रसङ्ग में बतलाया गया है कि शारदा और चित्रकेतु इस ब्राह्मण दम्पति के दो पुत्र देवान्तक और नरान्तक इन्हें नारद, भूतस्थान (भूटान) यहाँ शिव के पाशुपत विद्या का मन्त्र देकर शस्त्र विद्याभ्यास हेतु ले गये। यहीं असुर राक्षस संस्कृति के सम्पर्क में आने से बली होकर इन दो बुद्धिमान बालकों ने देव एवं मानव संस्कृति पर आक्रमण शुरू कर दिया। इससे दो भारतीय तरुणों का पराक्रम परकीय सत्ता को सुदृढ़ करने वाला सिद्ध हुआ। राज्य सत्ता पर भारतीयों के होने पर भी प्रत्यक्ष सत्ता परकीय विचारधारा के हाथ में थी। ऐसी ही स्थिति आज भी है। कश्यप जैसे बुद्धिजीवी महात्मा ने आगे आकर तपस्या के एवं त्याग तथा उपासना के बल पर अदिति से महोत्कट विनायक जैसे पुत्र प्राप्त किया और देवान्तक, नरान्तक इन दोनों का अन्त कर परकीय सत्ता का अन्त कर स्वजनों को वास्तविक स्वतन्त्रता, स्वराज्य, सौख्य और स्वास्थ्य उपलब्ध कराया।

गणेश पुराण में विनायक के काशीराज के पुत्र के विवाह निमित्त काशी जाने की कथा आयी है। इस पर दृष्टिपात करें तो यहाँ राजनैतिक कौशल, पुरुष पराक्रम के दर्शन होते है। यहाँ नरान्तक द्वारा शूर और चपल इन दो राक्षसों को काशी भेजना उनके द्वारा बालकों के बीच असुर धर्म की श्रेष्ठता का प्रचार कर भ्रमित करने की प्रक्रिया को विनायक ने नष्ट कर राजनैतिक कौशल का परिचय दिया है। जो सांस्कृतिक आक्रमण का एक प्रकार है। आगे नरान्तक को मारने के बाद देवान्तक से महोत्कट का युद्ध हुआ है जिसमें विनायक ने सिद्धि देवी के नेतृत्व में अणिमादि आठ व्यूह सुसंगठित कर युद्ध किया है। तीन दिन चले इस युद्ध में स्त्री सेना ने असुर सैन्य का पराभव किया है जो एक अनुपम उदाहरण

है। बाद में देवान्तक का भी अन्त होता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा है– 'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षो वधायैव न केवलं विभो।।' के अनुसार गणेश पुराण का यह वर्णन आज हमारे लिये और भी प्रासङ्गिक हो गया है। इसी प्रकार त्रिपुराख्यान, वामनाख्यान, मयूरेश्वर और गणेशाख्यानादि भी सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गणेश पुराण का सांस्कृतिक महत्व– प्रायः सभी पुराण समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है। अनेकता में एकता यह अद्वैत दृष्टि ही पुराणों में सर्वत्र देखने को मिलती है। यद्यपि गणेश पुराण गणेशोपासना को जानने के लिये गाणपत्यों का प्रधान पुराण है जिसमें गणेश को परब्रह्म माना गया है और शेष को उनका अनुयायी। एक ही परमतत्व का सत्, चित्, शक्ति, तेज और ज्ञान मय भावों को प्राधान्य से क्रमशः शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेश के रूप में वर्णन किया गया है अतः तत्वतः इनमें कोई भेद नहीं यही भारतीय संस्कृति का दर्शन है जिसके प्रचार प्रसार में पुराणों की महती भूमिका रही है। गणेश पुराण में भी स्थान-स्थान पर इसके उदाहरण मिलते है। सर्वप्रथम प्रातः स्मरण सदाचार वर्णन प्रसङ्ग में पाँचों देवताओं का (अ. ३ श्लोक ७-११ तक) स्मरण किया गया है। इसी प्रकार क्रीडाखण्ड के अ. ६ में हाहा, हूहू, तुम्बुरु आदि गन्धर्वो के कैलास जाते समय कश्यपाश्रम में आने की कथा आयी है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि इन सबका स्वरूप वैष्णवों वाला है, शिव दर्शन हेतु जा रहे हैं और कश्यप के घर पूजन पाँचों देवताओं का करते है। यथा–

एकस्मिन् समये हाहा हूहू स्तुम्बुरुरेव च।
वीणागानरता, वीणाहस्ता, हरिपरायणाः।।
शङ्खचक्रगदापद्मतुलसीदामभूषणाः।
गोपीचन्दनलिप्ताङ्गाः पीताम्बरधराः शुभाः।।
–ग.पु.क्री.ख. ६/२-३

अनुजानीहि गच्छामो गिरिशं द्रष्टुमुत्सुकाः। ग.पु.क्री.ख. ६/६

इत्युक्तवन्तो ददृशुर्बालकं पञ्चधाऽपि ते।

शिवाशिवेनवीशेभाननरूपं तमेव हि।। ग.पु.क्री.ख. ६/३८

यहाँ गणेश को ही व पाँचों रूपों में देखते हैं और उनका भ्रम टूट जाता है। इसी प्रकार हम गणेश सहस्रनाम पर दृष्टिपात करें तो वहाँ जहाँ इन पाँचों देवताओं के नाम प्राप्त हो जाते है यथा– ब्रह्मा विष्णुः शिवो रुद्रः इन्द्रः शक्तिः सदाशिवः। त्रिदशा पितर सिद्धा

यक्षा रक्षांसि किन्नराः। साध्या विद्याधरा.....शैवं पाशुपतं कालामुखं भैरवशासनम्। शाक्तं वैनायकं, सौर जैनमार्हत संहिता।। (ग.पु.उपा.खं. अ. ४६ श्लो. १२२ से १२६ तक) इसी प्रकार क्री.ख. १४६वें अध्याय में विभिन्न पुराणों में आयी गणेशोत्पत्ति की कथाओं का समन्वय करते हुए किसी के भी प्रति संशय न करने को कहा है। वहाँ स्पष्ट कहते है कि– क्वचिर्च्छिवात् सृष्टिरुक्ता ब्रह्मणश्च क्वचिद्धरेः भगवत्या क्वचित् प्रोक्ता क्वचित् सूर्याद् गजाननात्। क्वचिच्च ब्रह्मणः प्रोक्ता सर्वं तच्छास्त्रसम्मतम्। (ग.पु.क्री.ख. १४६/२-१३)

गणेश पुराण के अनुशीलन से काशी, विदर्भ, सौराष्ट्र आदि की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का भी ज्ञान होता है। इस पुराण में वर्णित दक्ष (कमला पुत्र), बल्लाल, परशुराम, दत्तात्रेय, कौण्डिण्य, गृत्समद, भ्रुशुण्डी, शुक्ल, मुद्गल, दिवोदास, बली आदि के दिव्य चरित्रों से सत्य, तितीक्षा, क्षमा, दया, तप, दान, शम, दम, अहिंसा और भगवद्भक्ति जैसे भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ मानवीय गुणों को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। सार्वजनिक गणेशोत्सव के माध्यम से लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक ने जो राष्ट्रिय चेतना जगाने एवं सांस्कृतिक जागरण का प्रयास किया था उसके बीज भी गणेश पुराण में विद्यमान है जो महोत्कट विनायक के चरित्र प्रसङ्ग में देखा जा सकता है।

उपसंहार– इस प्रकार गणेश पुराण गणपति तत्व का प्रतिपादन करने, गणेश की विभिन्न प्रकार की उपासनाओं मन्त्र, व्रत (चतुर्थी), पूजन (पार्थिव), स्तुतिपाठ (सहस्रनामादि) आदि पर विभिन्न आख्यानों के माध्यम से प्रकाश डालने, गणेश के दिव्य चरित्रों का वर्णन कर भावुकों को भक्ति रसावगाहन कराने, श्रेष्ठ भक्त चरित्रों एवं गणेश के लीला चरित्रों से सद्गुणों और मानवीय मूल्यों की स्थापना करने, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक विषयों को उद्घाटित करने और भव्य वैदिक सांस्कृतिक धारा को निर्बाध प्रवाहमान रखने में सक्षम होने के कारण यह उपपुराण रत्न उपलब्ध उपपुराणों की सूची से बाहर रहकर भी पुराण वाङ्मय में गणेश की ही तरह सर्वमान्य स्थान रखता है।

आदिपुराण

अष्टादश महापुराणों की ही भांति अष्टादश उप-पुराण और औपपुराण भी हैं, जिनका निर्माण महापुराण के आधार पर हुआ है। प्राचीनकालीन विभिन्न मुनियों द्वारा अष्टादश महापुराणों की छाया में ही उपपुराणों की रचना की गई है। विस्तार भय से इन उप या औपपुराणों में महापुराणों की कथा कहीं घटायी है, कहीं छोड़ दी गयी है, कहीं चमत्कार लाने की दृष्टि से विलक्षण कथाओं का समावेश किया गया है तो कहीं मूल कथा में किञ्चित् परिवर्तन कर प्रस्तुत किया गया है। इन परिवर्तनों के होने पर भी महापुराणों के समान ही उपपुराण भी उतने ही स्पृहणीय, मान्य एवं श्रद्धेय हैं क्योंकि वे भी उन-उन महापुराणों से भाव संगृहीत कर उन-उन मुनियों के द्वारा प्रणीत हैं; जिसका सङ्केत पुराणों में भी प्राप्त होता है–

अष्टादशेभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदृश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्।। –म.पु. ५३/६३

इस प्रकार अष्टादश महापुराणों के व्यतिरिक्त जो भी अन्य पुराण उपलब्ध होते हैं, वे विभिन्न मुनियों द्वारा रचित है। जिसका समर्थन विष्णुपुराण और गरुड़पुराण भी करते हैं–

महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च।। –विष्णु. ३/६/२४
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।। –गरुड़ ११५/१६

उपपुराणों का स्रोत महापुराणों को ही मानने के कारण उपपुराणों की संख्या भी १८ ही मानी गयी है। (ब्र.वै.श्री.ख. १३१/२२) इतना ही नहीं मत्स्य पुराण ने तो उपपुराणों को स्वतंत्र ग्रन्थ न मानकर महापुराणों के उपभेद के रूप में ही स्वीकार किया है–

उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।। –मत्स्य. ५३/५६

कूर्म पुराण में निम्नलिखित उपपुराणों के १८ नाम दिये है। १. सनत्कुमारोक्त आदिपुराण, २. नरसिंहपुराण, ३. स्कन्दपुराण (संहितात्मक), ४. नन्दीश भाषित शिवधर्मपुराण, ५. दुर्वासा द्वारा कथित आश्चर्यपुराण, ६. नारदीयपुराण, ७. कपिलपुराण, ८. वामनपुराण, ९. औशनसपुराण, १०. ब्रह्माण्डपुराण, ११. वरुणपुराण, १२. कालिकापुराण, १३. माहेश्वरपुराण, १४. साम्बपुराण, १५. सौरपुराण, १६. पाराशरपुराण, १७. मारीचपुराण और १८. भास्करपुराण, (कूर्म पुराण पूर्वार्द्ध अ.

१/१७-२० श्लोक)। इसी प्रकार किञ्चित् शब्दान्तर से और नामान्तर से देवी-भागवत में (३/१३/१६), स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में (१/४८-५२), मत्स्य पुराण में (५३/५७-६२) और गरुडपुराण में (२१५/७-२०) में भी उपपुराणों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। उपपुराणों की इन भिन्न-भिन्न सूचियों में केवल बारह पुराण ऐसे हैं जिनके नाम उपर्युक्त सभी महापुराणों की सूची में प्राप्त होते हैं, जिनमें से "आदि-पुराण" भी अन्यतम है, जिसका सभी सूचियों में प्रथम स्थान है जो इसके आदि नाम को सार्थक करता है। उपपुराणों के नामों से सम्बन्धित कुल उपलब्ध २२ सूचियों में से 'आद्यं सनत्कुमारोक्तम्' ऐसा पन्द्रह सूचियों में, 'सनत्कुमारोक्तं' पाँच में और केवल 'आद्यं' ऐसा एक सूची में उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें दो सूचियाँ ऐसी है जिनमें आदि पुराण का नाम नहीं है और उनमें भी सनत्कुमारोक्त एक में है, लेकिन वह वैष्णव पुराण के वक्ता न होकर वहाँ दो सौर पुराणों की गणना है, जिसमें एक के वक्ता सनत्कुमार और दूसरे के सूर्य हैं। बृहद्विवेक-३ में औप-पुराणों की सूची में 'आद्यं सनत्कुमारञ्च' ऐसा १८ उपपुराणों के नामों के साथ दिया है। इन सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि सनत्कुमारोक्त वैष्णव 'उपपुराण' है और 'सनत्कुमार' इस नाम से कोई पृथक् औपपुराण है। इसी प्रकार केवल 'आद्यं' से भिन्न पुराणों का ग्रहण सम्भव है जो उप या औप कोटि में आते हो।

इस प्रकार उपपुराणों में सर्वप्रथम माना जाने वाला 'आदिपुराण' अपने को श्रीमद्भागवत का सारभूत ग्रन्थ बतलाता है। आदिपुराण के अनुसार भगवान् कृष्णद्वैपायनव्यास ने वेदवृक्ष को विषय एवं प्रयोजनानुसार बाँट कर अपने पैलादि शिष्यों को एक-एक शाखा का अध्यापन कर के, वैदिक वाङ्मय में विद्यमान आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं तथा कल्पशुद्धि का संग्रह करके 'पुराण संहिता' का प्रणयन किया। प्रारम्भ में वैदिक संहिताओं की तरह पुराण संहिता भी मन्त्र ब्राह्मणात्मक रही। वैदिक वाङ्मय का अर्थ निर्णय करने के लिये व्यास जी ने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की। 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य ही भागवत महापुराण है। आदि-पुराण श्रीमद्भागवत महापुराण का ही सारभूत ग्रन्थ है–

'वेदवृक्षं प्रविभज्य स्वशिष्येभ्यः प्रदाय च।
इतिहासं तदन्तःस्थं समुद्धृत्य मनीषया।।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थ-विशारदः।
तदर्थानां निर्णयाय ब्रह्मसूत्रमकल्पयत।
तद् भाष्यभूतं पुराणं भागवतं वै विदुर्बुधाः।।
तद् सर्वं सारभूतं हि पुराणन्त्वादिसंज्ञितम्।
विदधे परमेशांशः व्यासरूपी सनातनः।।' –आदि पुराण १/११-१३

वास्तव में ब्रह्मसूत्र और भागवत की भाषा में इतना साम्य है कि कई स्थानों पर तो अनेक सूत्र ज्यों के त्यों मिलते है। चैतन्य महाप्रभु ने इसी कारण श्रीमद्‌भागवत को ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानकर और किसी भाष्य की रचना नहीं की जैसा कि गरुडपुराण में भी लिखा है। इनसे आदि-पुराण के उपर्युक्त कथन की पुष्टि ही होती है।

आदि पुराण अपने को इस भागवत का सर्वसार बतलाता है। श्रीमद्‌भागवत के कथन क्रम में प्रथम स्कन्ध के प्रथमाध्याय में शौनकादि ऋषियों ने ६ प्रश्न किये है जिनमें श्रेय क्या है ?, शास्त्रसार क्या है ?, भगवान् के अवतार का प्रयोजन क्या है ?, कर्म क्या है?, कौन से अवतार है ? और धर्म किसकी शरण में गया ? इनके प्रत्युत्तर में सूत ने बतलाया कि 'कृष्णभक्तिः परं श्रेयः' कृष्ण भक्ति ही परम श्रेय है और शास्त्रसार भी वही है, सत् की रक्षा अवतार प्रयोजन, सृष्टि आदि कर्म, अनन्तावतार और भागवत में धर्म की स्थिति होती है। भागवत यह भक्ति शास्त्र है, आदि पुराण में इसी को सार रूप में व्यक्त किया है। श्रीमद्‌भागवत के ११वें स्कन्ध में हंसगीता के १३वें अध्याय में भगवान् सनकादि महात्माओं से कहते हैं कि तुम लोग तत्त्व दृष्टि से यह समझो कि मन से, वाणी से, दृष्टि से तथा दूसरी इन्द्रियों से भी जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं। (मनसा, वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः। अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा।। श्री.भा. ११/१३/२४), इस प्रकार स्थूल-सूक्ष्म, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, विशेष-निर्विशेष से सभी पदों का वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ श्रीकृष्ण ही है।

श्रीमद्‌भागवत में सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रस की लीलाओं का वर्णन हुआ है। समस्त ब्रह्माण्डों का अधिपति, यज्ञों का भोक्ता, प्रेम पर वश होकर किस प्रकार ग्वालों से खेलता है, गौंए चराता है, माता की गोद में बालोचित क्रीडा करता है, दूध पीना चाहता है, डाँटने पर डरता है, रोता है और ऊखल में बंध जाता है, इन सबका बड़ा ही सुन्दर वर्णन भागवत की ही तरह सार रूप में 'आदिपुराण' में भी हुआ है। यहाँ भगवान् की ये लीलाएँ ऐश्वर्य सूचक न होकर दयालुता की ही सूचक हैं। इन लीलाओं के बीच पूतना, तृणावर्त आदि असुरों के वध से रस की अभिवृद्धि ही होती है।

भागवत के उपर्युक्त सभी छ प्रश्नों का सार आदिपुराण में देखने को मिलता है। इसके चतुर्थ अध्याय में हरि-भक्ति को ही श्रेयस्कर परम पुरुषार्थ और शास्त्रसार बताया है। अवतारों के प्रतिनिधि रूप में कथा में प्रकारान्तर से चर्चा को लाकर रामावतार का भी वर्णन किया है। दसवें अध्याय में ब्रह्मा की उत्पत्ति, सृष्टि निर्माणादि की चर्चा, सत् की रक्षा के क्रम में वर्णाश्रम धर्म की चर्चा चौदहवें अध्याय में वर्णित है। इस प्रकार भागवत में जिन छ प्रश्नों का उत्तर है, उस सबका सार आदिपुराण में है। 'आदिपुराण' में सामान्य दृष्टि से देखने पर एक जो भिन्नता दिखती है वह यह कि आदि पुराण के ११वें अध्याय

में भगवान् की सखियों के यूथों का परिगणन, राधा, विशाखा, ललिता आदि सखियों का कथन, राधिका का ऐतिहासिक वृत्त १२वें अध्याय में तथा १३वें अध्याय में कृष्ण और राधा का पूर्व वृत्तान्त वर्णित है, ये सब प्रसङ्ग भागवत में नहीं हैं। भागवत में राधा की चर्चा ही नहीं है तो यह सार कहाँ का है ?

लेकिन वस्तुतः ऐसा है नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी स्वरूपभूता आह्लादिनी-शक्ति श्रीराधाजी सर्वथा अभिन्न और एक हैं। श्रीकृष्ण राधा स्वरूप है और राधा श्रीकृष्ण स्वरूप। वस्तुतः भेद में अभेद और अभेद में भेद, यही लीला का स्वरूप है। यह लीला प्राकृत नहीं है। भागवत की भाषा समाधि भाषा है। भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप होने से उनकी सत् शक्ति से कर्मलीला, चित् शक्ति से ज्ञान लीला और आनन्द शक्ति से विहार लीला होती है। भागवत में पूर्ण ग्रन्थ होने के कारण आनन्दांश भी है। वेणुगीत, युगलगीतादि और सबसे बढ़कर रासलीला में इन ललिता, विशाखादि आठ प्रधान गोपियों और एक श्रेष्ठ गोपी राधा का वर्णन है। इस दृष्टि से देखने पर श्रीमद्भागवत में देश, काल, वस्तु से परे होने वाली मधुर लीला का स्पष्टतः उल्लेख है और उसमें गोपियों तथा राधाजी का वर्णन है जिसे भागवत पर अनेक श्रेष्ठ आचार्यों द्वारा लिखी गयी टीकाओं में भी देखा जा सकता है। इसी आनन्द प्रधान गूढ लीला के सार को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार 'आदिपुराण' में वर्णित किया है।

आदिपुराण में कुल २६ अध्याय एवं २०३६ श्लोक हैं। इस पुराण की कथा का आरम्भ भी अन्य पुराणों की तरह नैमिषारण्यस्थ महात्मा शौनक और व्यास के पुराण विद्या के शिष्य सूत के संवाद से होता है। श्रीमद्भागवत की तरह 'अतः सारं समुद्धृत्य गोपीकान्तकथाश्रयम्। ब्रूहि भद्राय भूतानां येनात्मा सुप्रसीदती।' इस प्रश्न से कथा श्रवण की इच्छा व्यक्त की है। शौनक के साथ ही दाल्भ्य, गृत्सपाद, वात्स्यायन, शततपा, स्थूलशिरा गौतम, जाबालि, जातूकर्ण और उष्मपादि ऋषियों ने भी सूत से कथा सुनाने का निवेदन किया है। प्रथम तीन अध्यायों में मङ्गलाचरणादि के बाद चौथे अध्याय से यह कथा प्रारम्भ होती है और यमलार्जुन मोक्ष वर्णन के साथ २६वें अध्याय पर पूर्ण होती है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि आदि पुराण अपूर्ण है। इसमें और भी अध्याय होने चाहिये। आदि पुराण के षष्ठ अध्याय में (२० से २३ श्लोक पर्यन्त) आगे की सारी द्वारिका लीला तक के सङ्केत दिये हैं। इनका भी वर्णन होना चाहिये तभी भागवत का सार होने की बात पूर्ण रूप से उचित प्रतीत होगी।

आदि पुराण में श्रीमद्भागवत के कई श्लोक उसी रूप में और कई श्लोक किञ्चित् परिवर्तन के साथ विद्यमान है। यथा—आदि पुराण के ४ अध्याय का २५वाँ श्लोक श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के १२वें अध्याय का अन्तिम ६८वाँ श्लोक है। इसी प्रकार आदि पुराण के पाँचवे अध्याय के श्लोक ३४ एवं ३५ श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के

तीसरे अध्याय के ३८वाँ एवं ३६वाँ श्लोक है। इसी अध्याय के २०वें श्लोक का उत्तरार्द्ध और २१वें श्लोक के तीन चरण भागवत के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय के प्रथम श्लोक का उत्तरार्द्ध एवं ५वें श्लोक से मिलता है–

इत्थं ऋषिवचः श्रुत्वा सूतो हरिपरायणः।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे।। –आदि. ४/२०

इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः।
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे।। –श्री.भा. १/२/१

ऋषयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम्।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो भवनिस्तारणः परः।। –आदि. ४/२६

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम्।
यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्वा सुप्रसीदति।। –श्री.भा. १/२/५

इस प्रकार अनेक श्लोक हैं जो आंशिक रूप से भागवत के श्लोकों से साम्य रखते हैं।

इस प्रकार आदि पुराण श्रीमद्भागवत की छाया में या उसके आश्रय से लिखा गया पुराण है। जैसा कि उपपुराण गणना प्रसङ्ग में 'आद्यं सनत्कुमारोक्तं' इससे स्पष्ट है कि यह सनत् कुमारों द्वारा कहा गया पुराण है। इस विषय में स्वयं आदि पुराण कहता है– 'सनत्कुमारोक्तमिदं पुराणं यतो न किञ्चित् परमस्ति पूर्वम्। मया श्रुतं नारदतो बदर्य्यां श्रद्धालुना चादिपुराणसंज्ञम्।।' –(आ.पु. ५/२), इसके प्रथम वक्ता सनत्कुमार और श्रोता नारद, द्वितीय वक्ता नारद और श्रोता व्यास, और तृतीय वक्ता सूत और श्रोता शौनकादि महात्मा हैं। यह एक वैष्णव धर्म प्रधान पुराण है।

नामकरण का अभिप्राय–प्रायः पुराणों का नामकरण उसके वक्ता, श्रोता या प्रतिपाद्य देवता के ऊपर होता है, किन्तु इसमें यह तीनों ही बातें न होकर इसे आदि पुराण कहा है। ध्यान से विचार करने पर हम यह कह सकते हैं कि इसका भी नामकरण वक्ता के नाम पर ही है। सनत्कुमार ब्रह्माजी की सर्वप्रथम सृष्टि है। उनके द्वारा कथित होने से आद्यसनत्कुमार पुराण ऐसा कहा है अथवा भगवान् वेदव्यास ने समस्त सत्रह पुराण निर्माण कर, मनः सन्तोष के लिये नारद के कहने पर भागवतपुराण की रचना की जो समस्त पुराणों में तिलकभूत होने सकलपुराणसारभूत मूर्धन्य यानि प्रथम स्थान रखता है। सर्वप्रथम इसके वक्ता नारायण हैं जिन्होंने इसे चतुःश्लोकी रूप में ब्रह्माजी में प्रकाशित किया। उसी भागवत का सार आदिपुराण अपने को कहता है। आदि पुराण के अध्याय समाप्ति पर

पुष्पिका में भी 'इति श्रीसकलपुराणसारभूत' ऐसा प्रयोग किया है। सकल पुराणों का सार निरूपित करने वाला प्रथम वैष्णव उपपुराण होने से आदि पुराण ऐसा नाम सर्वथा उचित ही प्रतीत होता है।

यह भागवत के आश्रय (छाया) में लिखा होने से निश्चय ही पुराण माना जा सकता है जहाँ तक पुराण के पञ्च लक्षणों की बात है तो इसमें भी आंशिक रूप से यह लक्षण देखे जा सकते है। यथा सर्ग यानी सृष्टि– आदि पुराण के १०वें अध्याय में ब्रह्मोत्पत्ति ७वें अध्याय में जीवोत्पत्ति विकास आदि का वर्णन सृष्टि के अन्तर्गत आ सकता है। पूतनादि दानवों का निरोध यह प्रतिसर्ग का आंशिक रूप हो सकता है, द्वादशाध्याय में श्रीकृष्ण कुल और राधिका कुल वर्णन में वंश वंशानुचरित और रामावतार कृष्णावतार आदि की चर्चा आंशिक रूप से मन्वन्तर का अङ्ग मान सकते हैं। अतः इसका आदिसनत्कुमार या आदि पुराण नामकरण समीचीन ही प्रतीत होता है।

आदि पुराण का देशकाल– आदि पुराण अपने को श्रीमद्भागवत पुराण का सार निरूपित करने वाला बतलाता है। इससे निश्चय ही यह भागवत के बाद की रचना हैं। स्वामी दयानन्द द्वारा अपने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ (पृ. ३३५) में तथा पं. नीलकण्ठ शास्त्री ने देवी भागवत की टीका में (.....विष्णु भागवतं बोपदेवकृतमिति वदन्ति) श्रीमद्भागवत को भ्रमवश बोपदेव कृत लिखा हैं जिनका काल १३वीं शताब्दी माना जाता है। किन्तु यह मत नितान्त भ्रामक है क्योंकि बोपदेव के जन्म से दो तीन सौ वर्ष पूर्व की वङ्गलिपि में लिखी श्रीमद्भागवत की एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय (सं.सं.वि.वि.) वाराणसी में रखी गयी है। द्वैतवाद के आचार्य पूर्णप्रज्ञ माधवाचार्य (सन् ११९९), विशिष्टाद्वैत के प्रधान आचार्य श्री रामानुजाचार्य (सन् १०१७), चित्सुखाचार्य (९वीं शताब्दी), विद्यारण्यस्वामी के गुरु श्री शङ्करानन्द (१३वीं शताब्दी), अभिनवगुप्तपादाचार्य (१०वीं शताब्दी), सांख्य कारिका की माठराचार्य कृत टीका (ई. सन् ५५९-५६९), द्वैतवाद के प्रसिद्ध आचार्य शङ्कराचार्य (७वीं शताब्दी) एवं उनके दादा गुरु गौडपादाचार्य (६वीं शताब्दी), अलवरुनी (सन् १०३०) और पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्दबरदाई (१२वीं शताब्दी) इन सब महानुभावों की क्रमशः भागवत टीका, गीता पर की गयी टीकाओं, यात्रा विवरणों, अन्य ग्रन्थ की टीकाओं, स्रोतों आदि का अनुशीलन करने से भागवत का काल कम से कम ५वीं शताब्दी के पूर्व का सिद्ध होता है।

इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में राधाकृष्ण की चर्चा होने पर उसको ६वीं से १५वीं शताब्दी का माना जाता है। किन्तु यह मानना कि राधाकृष्ण की उपासना आधुनिक है, नितान्त भ्रम पूर्ण है। राजशाही जिले में जमालगञ्ज स्टेशन के पास ३ मील दूर पहाड़पुर ग्राम है। शोध के आधार पर उसका प्राचीन नाम सोमपुर धर्मपाल विहार है। सन् १९२७ की खुदाई में वहाँ अनेक स्तूप, मूर्तियाँ और शासन पत्र प्राप्त हुए हैं। पुरातात्विक प्रमाणों के आधार

पर वहाँ प्राप्त सभी वस्तुएँ ५वीं सदी या उसके पूर्व की हैं। उनमें राधाकृष्ण की युगल मूर्ति भी है जो कम से कम ५वीं सदी की तो निश्चय ही है। आधुनिक कुछ विद्वानों का मत है कि भागवत में राधा की चर्चा न होने से भागवत प्राचीन है। इस आधार पर भी श्रीमद्भागवत ५वीं शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ सिद्ध होता है।

जहाँ तक उपपुराणों के रचना काल का प्रश्न है विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न माना है। श्री विण्टरनित्स ६वीं से १०वीं शताब्दी तक, डा. वयुलार ५वीं शती का उत्तरार्द्ध और डा. आर.सी. हाजरा ईसा से ५०० वर्ष पूर्व उपपुराणों का रचनाकाल मानते हैं।

आदि-पुराण भागवत का सार होने से उसमें राधा कृष्ण की चर्चा होने के कारण तथा विद्वानों के उपर्युक्त मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में आदि पुराण की रचना ५वीं शताब्दी या ६वीं शताब्दी में हुई होगी।

आदि पुराण के देश का जहाँ तक प्रश्न है, इसके नौंवे अध्याय में मथुरा मण्डल उसके अन्तर्गत आने वाले द्वादश वनो और राधाकृष्ण की वहाँ सम्पन्न लीलाओं की विशेष चर्चा इनको महिम मण्डित करने के कारण इस उपपुराण की रचना निश्चय ही इसी क्षेत्र में की गयी होगी ऐसा प्रतीत होता है।

आदि पुराण संस्करण तथा पाण्डुलिपि

१. आदि पुराण हिन्दी अनुवाद सहित — खेमराज श्रीकृष्ण दास, मुम्बई
२. आदि पुराण मूलमात्र — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
३. आदि पुराण हिन्दी अंग्रेजी भूमिका सहित — डा. जगदीश नारायण दुबे
(प्रकाशक- सुदर्शन बुक एजेन्सी नवापुरा, वाराणसी)

पाण्डुलिपि– सरस्वती भवन पुस्तकालय सं.सं.वि.वि., वाराणसी, हस्त लिखित ग्रन्थ विवरण पञ्जिका खण्ड ४

क्र.	पु.क्र.	पत्र	आकार	पंक्ति	अक्षर	लिपि	लिपिकाल	पूर्ण/अपूर्ण
१.	१४३३०	३-४८ ५१-१४७	१२" x ६"	१२	४२	दे.ना.	-	अपूर्ण
२.	१५३०३	३८-४३ ५६-८२	१२.८" x६.६"	१२	५६	दे.ना.	-	अपूर्ण
३.	१५५१४	(१-५१)	६.६" x६.१"	१६	४१	दे.ना.	-	पूर्ण
४.	१५७६६	(१-२५)	१३.३"x६.६"	६	४०	दे.ना.	-	अपूर्ण

आदि पुराण की कथावस्तु– उन्तीस अध्यायों में निबद्ध आदि-पुराण का कथासार इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय–आरम्भ में चार श्लोकों में सच्चिदानन्द स्वरूपी परमात्मा का मङ्गलाचरण किया है। भागवत की ही तरह यहाँ भी श्रीकृष्ण का नाम नहीं लिया गया है। आगे भगवान् के कथामृत पान से ही जीवन की सफलता बतलाते हुए, पुराण विद्या के प्रवर्तक भगवान् वेदव्यास की वन्दना के साथ उनके द्वारा किया गया वेद शाखा प्रणयन पुराण संहिताओं का निर्माण, ब्रह्मसूत्र की रचना और उसके भाष्य के रूप में भागवत के सृजन की चर्चा की है। उसी भागवत पुराण के सार रूप में इस आदि पुराण को बतलाया है। अनेक दृष्टान्तों से महात्माओं की भगवत् कथा में सहज प्रवृत्ति को दर्शाते हुए, प्रसिद्ध विष्णु क्षेत्र नैमिषारण्य में चल रहे शौनकादि महात्माओं के द्वादश वर्षीय यज्ञ सत्र में पधारे सूत जी से प्रश्न के रूप में इस पुराण के विषय में जिज्ञासा के साथ प्रथम अध्याय विराम लेता है।

द्वितीय अध्याय में शौनकादि ऋषियों और सूतजी के मध्य हुए सामान्य शिष्टाचार स्वागताभिनन्दन क्रम में ही सदाचारों, पवित्र ऋषि जीवन और संसार चक्र की विवेचना की गयी है।

तृतीय अध्याय में विस्तार से कलियुग की महिमा एवं प्रभाव का वर्णन करते हुए, स्त्री पुरुषों की स्थिति और उससे रक्षार्थ शौनकादि महात्माओं द्वारा सूत से गोपीकान्त श्रीकृष्ण कथा के सार तत्व को भुक्तिमुक्ति की इच्छा से सुनाने की प्रार्थना की है।

चतुर्थ अध्याय में शौनक के साथ ही वहाँ उपस्थित अन्य दाल्भ्य, गृत्सपाद, वात्स्यायन, शततपा, गौतम, जाबालि आदि नौ महात्माओं द्वारा भी हरि भक्ति का पुरुषार्थ रूप में वर्णन करते हुए उसकी प्राप्ति का उपाय पूछा गया है। सूत ने भगवन्नाम (कृष्णनाम) की मधुरता एवं अद्‌भुत महिमा दर्शाते हुए परमात्मा, व्यास एवं शुक देव की वन्दना के साथ कथा सुनाना प्रारम्भ किया। सृष्टि के आदि में प्रणवात्मक वेद का विस्तार, द्वापर में उसका चार भागों में विभाजन और सर्वशास्त्रसार रूप यह आदि पुराण बतलाया है।

पाँचवें अध्याय में यशोदा नन्दन के स्मरण के साथ व्यास ने इस आदि पुराण की वक्तृत्व परम्परा बतलायी है। इसके आदि वक्ता सनत्कुमार होने से सनत्कुमारोक्त आदि पुराण कहलाता है। (आ.पु. ५/२) नारद के सहज व्यासाश्रम में आने वहाँ यज्ञकर्ता व्यास शिष्यों द्वारा संसार स्वरूप, माया स्वरूप, माया संतरणोपाय के बारे में पूछे जाने पर नारदजी ने सत्सङ्ग और उससे प्राप्त होने वाली भक्ति से ही माया प्रभाव से मुक्त होकर भगवद् साक्षात्कार की बात बतलायी है। निष्कपट भगवदनुकूल आचरण करते हुए निष्काम भक्ति से ही भगवद् साक्षात्कार सम्भव है।

छठे अध्याय में संक्षेप में भगवान् श्रीकृष्ण की आविर्भाव लीला वर्णित है। इसमें वसुदेव-देवकी विवाह, कंस का पहुँचाने जाना, आकाशवाणी द्वारा कंस की मृत्यु की घोषणा, कंस का देवकी को मारने के लिये उद्यत होना, वसुदेव की पुत्र देने की प्रतिज्ञा, वसुदेव

देवकी उग्रसेनादि को कंस द्वारा कारागार में डाला जाना, षट् पुत्रों का वध, सातवें पुत्र के रूप में बलराम का प्राकट्य, योगमाया द्वारा रोहिणी के उदर में स्थापन, देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् का कारागृह में ही प्राकट्य, गोकुल में श्रीकृष्ण को पहुँचाना और योगमाया को लाना, योगमाया का हाथ से छूट कर जाना एवं कंस के वध की घोषणा, कंस का भयभीत होकर कृष्ण को मारने हेतु पूतना, तृणावर्तादि असुरों का प्रेषण, मृदा भक्षणादि अनेक बाल लीलाओं का प्रस्तुतीकरण और यमलार्जुन मोक्ष का वर्णन है। प्रस्तुत आदि पुराण यहीं पर पूर्ण होता है। किन्तु यहाँ वृन्दावन आगमन, बाल्यलीला, प्रावृड्क्रीडा गोवर्धन धारण, शरत्क्रीडा, वस्त्रहरण, रासलीला, मथुरा लीला और अन्त में द्वारिका लीला का भी सङ्केत हैं। वात्सल्यादि प्रकाशार्थं ऐश्वर्य मिश्रित नरलीला है। साधुओं का परित्राण, दुष्कृतों का विनाश एवं धर्म संस्थापना के साथ-साथ भगवद्-भक्ति साफल्य हेतु इन लीलाओं का प्राकट्य है।[1]

सातवें अध्याय में स्त्री के रूप का मोहकत्व वर्णन कर देहगेहासक्त व्यक्ति की दुर्दशा का वर्णन किया है। नारदादि महात्माओं के लोक कल्याणार्थ सतत भ्रमण की बात करते हुए जीव की उत्पत्ति और गर्भावासादि दुःखों की चर्चा करते हुए भगवतच्छरणागति को ही परम कल्याण का साधन बतलाया गया है।

आठवें अध्याय में भक्तों के लक्षण, भक्ति महिमा, भक्तों के कार्य, हरि सम्बन्ध में ही इन्द्रियों की सार्थकता और जीवन की धन्यता दर्शायी गयी है।

नौवे अध्याय में श्रीकृष्ण के धाम का रमणीय वर्णन है। मथुरा मण्डल २० योजन परिमाण में व्याप्त है। उसके ऊपर सुदर्शन चक्र विराजमान है। यहाँ हरि का नित्य वास है। भगवान् का सर्वाधिक प्रिय यह स्थान योगियों एवं याज्ञिकों के लिये भी दुर्लभ है। यमुना और गोवर्धन अत्यन्त श्रेष्ठ हैं जिन्हें भगवान् के दिव्य करकमलों के मङ्गलमय सौगन्ध्य रसास्वादन का परम सौभाग्य प्राप्त है। मथुरा मण्डल में मधुवन, कुमुदवन, तालवन, बहुल, खदिर, बिल्व, लौह, भाण्डीर, भद्रक, क्रामिक, छत्र एवं वृन्दावन है, जो रमणीयतम है। जो भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। भक्तों को भक्ति देकर वह अपने को ऋण मुक्त मानते हैं। इसी अध्याय में विष्णु एवं नारद का श्वेतद्वीप में समागम तथा भगवद् व्यूहों का वर्णन है। नारद की स्त्री देह प्राप्ति का भी एक मनोरम उपाख्यान इस अध्याय में वर्णित है।

दसवें अध्याय का प्रारम्भ सनातन सत्यलोक में ब्रह्मा के पास नारद के आगमन से होता है। इसमें ब्रह्मा द्वारा अपने आविर्भाव एवं सृष्टि निर्माण शक्ति प्राप्त करने का वर्णन किया गया है। इसमें विष्णु के दो रूपों का वर्णन है। एक रूप से वह नित्य विहार तथा

१. इससे ऐसा आभास होता है कि इस उपपुराण का कुछ अंश और भी रहा होगा जो वर्तमान में अभी तक उपलब्ध नहीं है। यह अनुसन्धान का विषय है।

दूसरे रूप से सृष्टि कार्य में रत हैं। विष्णु के नाभि कमल से ही ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ है। इस अध्याय में कीर-भृङ्ग के संवाद के माध्यम से विष्णु लीला का वर्णन है। विष्णु ने ही ब्रह्मा का नामकरण एवं कार्य निर्देश किया है।

ग्यारहवें अध्याय में भृङ्गरूपी विष्णु ने अपनी सखियों के ३०० यूथों का वर्णन किया है। राधा, ललिता, विशाखा आदि सखियों का भी उद्देश्य क्रम से वर्णित है। वस्तुतः कृष्ण की सखियों के नाम परिगणन भक्ति मार्ग के आचार्यों का सङ्केत है, इसका दार्शनिक दृष्टि से चिन्तन अपेक्षित है।

बारहवें अध्याय में राधिका का ऐतिहासिक वृत्त वर्णित है। कीर द्वारा भृङ्ग से राधिका के कुल के विषय में प्रश्न किये जाने पर, भा.शु. ८ रविवार ज्येष्ठानक्षत्र अन्तिम चरण रात्रि के उत्तरार्द्ध में राधा का प्रादुर्भाव, वैशाख शुक्ल तृतीया रोहिणी नक्षत्र में विवाह, पिता वृषभानु, माता मानवी, श्रीदामादि चार भ्राता, वृषभानु की वंश परम्परा का वर्णन किया है। राधिका के कुल वर्णन के बाद कृष्ण के कुल का भी वर्णन किया है। आभीर जाति में भानु नामक गोपवृन्दों के मुखिया चन्द्र उनके सुरभि फिर इस क्रम से सुश्रवा, कालमेघ के पुत्र प्राणनन्द जिनकी पत्नी यशोदा थी, की अनन्य भक्ति के कारण भगवान् आये। कृष्ण का देवकी के गर्भ से कायिक आविर्भाव का सङ्केत भी यहाँ किया गया है। इसी अध्याय में विस्तार से श्रीकृष्ण के मित्रों की भी परिगणना की गयी है।

तेरहवें अध्याय में नारदजी के स्त्री रूप प्राप्ति का कारण बतलाया गया है। भगवान् को देखकर गोपाङ्गनाएँ पादसेवन नृत्यगीतादि करने लगती हैं। राधिका के वक्ष में श्रीकृष्ण के होने के कारण पुरुष शरीर से उनका दर्शन दुर्लभ है। राधिका के पास दर्शन हेतु नारद को स्त्री रूप प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्ण के काञ्चनमय निवास के वर्णन के साथ राधा कृष्ण के विलास और दिव्य विलास भूमि का मनोहारी वर्णन है। क्षणमात्र के लिये भी राधाकृष्ण का परस्पर वियोग असम्भव है।

इस अध्याय में राधाधव के लोकोत्तर प्रेम का वर्णन है। नारद से स्वयं श्रीकृष्ण गोप, गोपी, गोवर्धन, यमुना, वृन्दावनादि के नित्यत्व की बात करते हैं। कलि के दोषों एवं वर्णाश्रम धर्म की चर्चा, कलि के उन पर प्रभाव को देख चिन्तित ब्रह्मा का क्षीरसागर जाना भी वर्णित है।

पञ्चदश अध्याय में क्षीर सागर पहुँचे ब्रह्मा द्वारा वैदिक सूक्तों से की गयी स्तुति से प्रसन्न होकर भूभार हरण हेतु अवतार लेने का आश्वासन, वसुदेव-देवकी के दिव्य संयोग से श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव, गोकुल आगमन से सर्वत्र सुख समृद्धि, कृष्ण द्वारा वसुदेव की पूर्व तपस्या का वर्णन, प्राकृत बालक बन गोकुल जाना एवं बालक्रीडा करना वर्णित है।

सोलहवें अध्याय में नन्द महोत्सव, नन्द द्वारा अभ्यागतों का स्वागत तथा बालक को आशीर्वाद देकर उनका अपने घरों को लौटना वर्णित है। यहाँ नन्द के स्वप्न के रूप में

संक्षेप में रामकथा का वर्णन और नन्द द्वारा अपने पुत्र के विष्णु का अवतार होने की बात समझ में आने का भी वर्णन है।

सत्रहवें अध्याय में पूतना की मुक्ति का वर्णन है। इसमें पूतना को कंस का आदेश, पूतना द्वारा दुःस्वप्न निवेदन, कंस का उसे प्रोत्साहित करना, बाल हत्या हेतु पूतना की स्वीकृति, राक्षस-धर्म कथन, पूतना का व्रज प्रवेश, पूतना का श्रीकृष्ण द्वारा प्राणहरण, पूतना के मूल देह का वर्णन, गोपिकाओं द्वारा अरिष्टोपशमोद्योग, कृष्णाङ्गस्पर्श से मोक्ष तथा पूतना के द्वारा किये गये पूर्व सुकृत विषय में नारदजी की श्रीकृष्ण के प्रति की गयी जिज्ञासा इसके वर्णन के साथ यह अध्याय पूर्ण होता है।

अष्टादश अध्याय में १५० श्लोकों में विस्तार से पूतना का पूर्वजन्म वृत्तान्त बतलाया गया है। यहाँ श्रीकृष्ण नारद को अपने एक अनन्य भक्त ब्राह्मण कक्षीवान् का आख्यान सुनाते हैं। कक्षीवान् एक संयमशील तपस्वी ब्राह्मण थे। उन्होंने कालभीरु नामक ब्राह्मण की कन्या चारुमती से विवाह कर कृष्ण भक्ति पूर्वक अपना गार्हस्थ्य आरम्भ किया। एक बार वह प्रोषित भर्तृका धर्म का अपनी पत्नी को उपदेश देकर तीर्थयात्रा के लिये चले गये। इस बीच वह एक शूद्र के वाग्जाल में फंसकर कामातुर हो पतित हो गयी। पति के लौटने पर पति का शाप प्राप्त हुआ और वही पूतना हुई। पूर्व में की गई कृष्ण भक्ति के कारण कृष्ण ने उसका उद्धार किया। यह कथा अन्यत्र देखने में प्रायः नहीं आती।

इसी अध्याय में श्रीकृष्ण के पूर्व व्रज के अन्य बालक जो पूतना का स्तनपान कर मृत हुए थे उनके पूर्व जन्म के बारे में भी एक कथा आयी है। एक बार महर्षि च्यवन जब अपने आश्रम में भगवान् की उपासना कर रहे थे तभी पातालवासी साठ हजार दैत्यों ने उन पर आक्रमण कर दिया। तब च्यवन ने अपने तपोबल से अपने शरीर से देवताओं को उत्पन्न किया जिन्होंने उन दैत्यों को मार डाला। तत्पश्चात् च्यवन के आदेश से शिव दर्शन हेतु गये। जहाँ पार्वती के अद्भुत सौन्दर्य को देख वह कामातुर हो गये। किन्तु बाद में उन्हें पश्चाताप हुआ और वे शिव आराधन में लग गये। दस हजार वर्ष बाद शिव समाधि से जागे और उन्होंने उन देवताओं से कहा कि तुम्हें मनुष्य योनि में जन्म लेना होगा वहाँ पूतना का स्तनपान करने पर मृत्यु को प्राप्त कर मुक्त होगे। इस अध्याय में पत्नी त्याग में दोष, पत्नी के गुण-दोष, प्रोषित भर्तृका धर्म, भोगवाद तथा दुःसङ्ग से पतनादि का सम्यक् वर्णन किया गया है। नन्द वसुदेव समागम, पूतना भगिनी वृकोदरी-कंस संवाद, अघासुर, बकासुर, तृणावर्तादि को पुनः भेजने का आश्वासन, नन्द यशोदा का बाल-व्यामोह वर्णित है।

उन्नीसवें अध्याय में निर्गुण निराकार निर्विकार, योगिध्यानगम्य उस परब्रह्म परमात्मा की सगुण साकार रूप में की जाने वाली बाल लीलाओं के दर्शनार्थ ब्रह्मा, शिव आदि के कृष्णजन्मोत्सवार्थ आगमन का वर्णन है। शकटासुर भञ्जन कथा भी यहाँ वर्णित है।

पूतना की मृत्यु के बाद उसके पति घटोदर का अघासुर और बकासुर के साथ कंस के पास आना, कंस से प्रश्नोत्तर और क्रुद्ध होना, कंस का उनको सान्त्वना देकर व्रजनाश के लिये तृणावर्त को भेजा जाना यहाँ वर्णित है।

बीसवें अध्याय में कंस द्वारा तृणावर्त को भेजा जाना, वायु रूप से कृष्ण का हरण और प्रभु हाथों से उसकी मुक्ति का वर्णन है। यहाँ तृणावर्त के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा गया है कि द्रविड़ देश के विद्वान्, बलशाली, भगवद् भक्त राजा विश्वरथ को अनुचरों द्वारा रात्रि में किसी अभ्यागत ब्राह्मण को संकीर्तन से लौटते समय पकड़ कर मारते हुए कारागृह में डालने और प्रातः भगवद्भक्त जानकर छोड़ देने पर भगवद् भक्त तिरस्कार रूपी पाप के कारण तृणावर्त होना पड़ा।

इक्कीसवें अध्याय में कंस द्वारा योगमाया को देवकी की आठवीं सन्तान जानकर मारने का प्रयत्न, उसका अदृश्य होना, उसके पूर्व कंस के वध की सूचना देना, कंस द्वारा वसुदेव-देवकी को कर्मफल की महत्ता बतलाते हुए मुक्त करने और गर्गाचार्यजी द्वारा राम और कृष्ण के नामकरण संस्कार किये जाने का वर्णन है।

बाइसवें अध्याय में नामकरण और श्रीकृष्ण की बाल चेष्टाओं का वर्णन है। यहाँ गर्गाचार्य ने बालक के विषय में भविष्यवाणी भी की है।

तेइसवें अध्याय में भी श्रीकृष्ण की बाल सुलभ चपलताओं का मनोहारी वर्णन है। गोपियों का यशोदा को उपालम्भ, यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण के सभी का बालक होने की बात कहना, श्रीकृष्ण का गोपिकाओं के यहाँ उत्पात, मित्रों के साथ गोपिकाओं को आनन्दित करने उपद्रव करने जाना, पकड़ा जाना और फिर छूटने की लीला वर्णित है।

चौबिसवें अध्याय में विभिन्न गोपिकाओं के घर अपने मित्र ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण का पहुँचकर दूध, दही, मक्खन आदि चुराना, खाना और मित्रों को खिलाना, गोपियों द्वारा पूछने पर अलग-अलग बहाना बताना, गोपिकाओं द्वारा यशोदा को उलाहना देना, किन्तु मन से फिर इस लीला को देखने की इच्छा करना आदि वर्णित है।

पच्चीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण की माधुर्य पूर्ण वात्सल्य लीलाओं का ही वर्णन है। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा मित्रों के साथ मिलकर दूध दही चुराना, वस्त्र फाड़ना, बछड़े खोल देना, मूत्र त्याग कर देना आदि। उत्पातों से व्याकुल होकर गोपियाँ जब यशोदा के पास आकर उलाहना देते हुए व्रज छोड़कर चले जाने की बात कहती हैं तो श्रीकृष्ण प्रत्युपालम्भ उपस्थित कर देते हैं और सारा दोष गोपियों पर ही मढ़ देते हैं। कृष्ण कहते हैं कि ये गोपियाँ बड़ी धूर्त हैं, सब कुछ स्वयं ही हमसे कराती है और स्वयं उलटा आरोप हमारे ऊपर लगाती हैं।

छब्बीसवें अध्याय में भी एक प्रौढ़ गोपी की कथा है। श्रीकृष्ण चौर्य लीला हेतु जाते है। गोपी द्वारा पकड़ने का प्रयत्न करने पर उसे ढकेल देते हैं जिससे उसकी चूड़ी टूट कर हाथ में धस जाती है। उसके द्वारा यशोदा से शिकायत करने पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि इसने

हाथों से हमारी पीठ पर मारा, हम भागे जिससे यह गिर पड़ी और चूड़ी धस गयी। अब यह झूठी शिकायत लेकर आयी है। इस पर यशोदा ने उसे डाँट कर भगा दिया। यहाँ श्रीकृष्ण द्वारा अपने घर में भी चोरी करने से यशोदा द्वारा बन्दर का भय दिखाये जाने पर कहते हैं कि ये सब मेरा कुछ नहीं कर सकते। ये तो मेरे मित्र हैं। ऐसा कहकर यशोदा को मौन कर देते हैं।

सत्ताइसवें अध्याय में श्रीकृष्ण द्वारा मल्लक्रीडा करने की इच्छा व्यक्त करने पर जब कोई ग्वालबाल तैयार नहीं हुए तो बलराम ने श्रीकृष्ण के साथ मल्लक्रीडा की है और श्रीकृष्ण ने परास्त होकर उनकी मर्यादा रख ली। यहीं पर श्रीकृष्ण द्वारा मृदा भक्षण लीला, बलरामादि के द्वारा शिकायत करना और सत्यता सिद्ध करने हेतु अपना मुख खोल उसमें समग्र ब्रह्माण्ड दिखलाया जाना वर्णित है।

अट्ठाइसवें अध्याय में श्रीकृष्ण की ऊखल बन्धन लीला वर्णित है। यशोदा द्वारा अङ्क में श्रीकृष्ण को लेकर स्तनपान कराना, दूध में उफान देख उसे उतारने जाना जिससे नाराज होकर श्रीकृष्ण का दधिभाजन फोड़कर गोरस वानरों को खिलाना, यशोदा द्वारा बालक के उत्पात हेतु दण्डित करने के लिये बाँधने का प्रयास उसमें असफलता, माँ की परेशानी देखकर स्वयं बन्धन में बँध जाना आदि के वर्णन द्वारा श्रीकृष्ण की भृत्यवश्यता दिखलायी गयी है। यशोदा कृष्ण को ऊखल में बाँध कर गृहकार्य में लग जाती है और भगवान् नारद के वचन सत्य करने हेतु यमलार्जुन वृक्ष के रूप में खड़े कुबेर पुत्रों का उद्धार करने निकल पड़ते हैं। यही यमलार्जुन आख्यान का उपक्रम वर्णित है।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः– सम्प्रति उपलब्ध आदि पुराण का यह अन्तिम अध्याय है। इसमें नलकूबरमणिग्रीव इन कुबेर पुत्रों के आख्यान (यमलार्जुनोद्धार की कथा) से विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता और उसके परित्याग से दुर्गति का वर्णन है। एक बार कुबेर पुत्रों द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने कहा था कि विष्णु भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है और उनकी उपासना से भोग-मोक्ष सब कुछ प्राप्त हो सकता है और उसमें सभी का समान अधिकार है। ब्रह्मा के मुखारविन्द से विष्णु भक्ति की महिमा सुन कर वे दोनों विष्णु की भक्ति करने लगे। एक बार अलकापुरी को आये भगवान् शिव के गण नन्दी को देखकर उन्होंने उससे पूछा कि आप किसकी उपासना करते हो सत्य-सत्य बतलाओ। इस पर नन्दी ने कहा हम शिवोपासक हैं। भगवान् शिव आशुतोष हैं। वे हमारे समस्त मनोरथ पूर्ण करते हैं।

यह सुनकर कुबेर के दोनों बालक विष्णु भक्ति छोड़कर शिव भक्ति करने लगे। बुद्धि में भ्रम होने से भ्रष्ट हो गये। मन्दाकिनी में मदान्ध होकर इन्हें स्त्रियों के साथ अमर्यादित रूप से जलक्रीड़ा करता देख नारद ने वृक्ष योनि प्राप्त होने का शाप दे दिया। वृक्ष योनि में होने से दुष्कर्म रुक गया और शीतातपवर्षादि सहने से तप भी। ऊखल बद्ध श्रीकृष्ण ने इन दोनों वृक्षों के बीच आकर नारद वचनों को सत्य करते हुए इनका उद्धार किया। इन्होंने स्तुति की और श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त कर मुक्त हो गये।

आदि पुराण का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्त्व– राधाकृष्ण की युगल उपासना कब प्रारम्भ हुई इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। नौवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के बीच इसके प्रादुर्भाव की बात कही जाती है। किन्तु पाँचवी शताब्दी की युगलमूर्ति मिलने से इसका समय और पीछे जाता है। आदि पुराण में राधा कृष्ण की उत्पत्ति, उनकी युगल लीलाओं, उनके यूथों, क्रीड़ास्थली आदि की विशेष चर्चा होने के कारण इस युगल पूजा के प्रारम्भ होने के ऐतिहासिक तथ्यों को अध्ययन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसके अनुशीलन से युगल उपासना के विषय में पड़े आवरण का निस्तरण हो सकता है।

जहाँ तक इसके भौगोलिक महत्व की बात है इसमें अन्य किन्हीं स्थानों का वर्णन नहीं है। यह वैष्णव सम्प्रदाय का पुराण होने से श्रीकृष्ण भक्ति की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादन करना इसका उद्देश्य हैं। इसमें मथुरा मण्डल का ही मुख्यतः वर्णन किया गया है। मधुवन, तालवन, कुमुदवन, खदिर, बिल्वक, लौह भाण्डीर, भद्रक, कामिक, बहुल, छत्रवन और वृन्दावन ऐसे बारह वनों की चर्चा है, जिनमें गोवर्धन, यमुना, नन्दग्रामादि के सान्निध्य से वृन्दावन की श्रेष्ठता बतलायी गयी है। यहाँ इस पुराण के आरम्भ में अन्य तीर्थों की अपेक्षा नैमिष की श्रेष्ठता बतलायी गयी है और मनोमय चक्र से इसकी उत्पत्ति कही गयी है।

आदि पुराण का सामाजिक दृष्टि से महत्त्व– सामाजिक दृष्टि से इस पुराण का विशेष महत्व है। सदाचार एवं नैतिकता जो किसी भी सभ्य समाज के लिये आवश्यक तत्व है उन पर विशेष जोर दिया गया है। शान्ति, विनय, सद्बुद्धि, संज्ञान, भक्ति, प्रेम, आत्मशुद्धि, विद्या आदि से सन्ताप, औद्धत्य, दुष्प्रवृत्ति, मोहत्तिम, अन्तर्मलनिवृत्ति, पाप एवं असन्तोष को दूर करने की बात कही गयी है।

स्त्री शिक्षा, स्त्रैण्यत्व दोष, पुरुषार्थ कथन, आतिथ्य महत्व, साम्प्रदायिक पाखण्ड, समाज शोषण वृद्धि कारण, धराभार वृद्धि, धर्मह्रास जनित हानि, पत्नी त्याग में अधर्म, पत्नी के गुण-दोष, प्रोषित भर्तृका नियम, भोगवाद के दोष, वर्ण जाति कुल-मर्यादा त्याग से हानि, दुःसङ्ग से पतन, धन गर्व से पतन आदि ऐसे अनेक विषयों की चर्चा है जो सामाजिक समरसता, परस्पर प्रेम, सौहार्द और आत्मबल एवं नैतिक उत्थान को प्रोत्साहित कर समाज के सर्वाङ्गीण विकास में सहायक हो सकते है। इसमें वर्णित कंस, पूतना, तृणावर्त आदि के चरित्र उनके पूर्व जन्म वृत्तान्त के प्रसङ्ग न केवल सामाजिक अपितु राजनैतिक दृष्टिकोण से भी उपयोगी हो सकते है।

आध्यात्मिक सांस्कृतिक महत्व– राधाकृष्ण के उपासक वैष्णवों के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। यद्यपि यह विशुद्ध रूप से विष्णु सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, इस कारण इसमें अन्य देवताओं की उपासना की चर्चा नहीं मिलती। केवल एक स्थान पर नन्दी द्वारा

शिव पूजा की महत्ता बतलायी गयी है। लेकिन वह भी विष्णु पूजा का श्रेष्ठत्व और सर्वजनहितकारित्व का प्रतिपादन करने के लिये। राधाकृष्ण की सत् (कर्मलीला), चित् (ज्ञानलीला) और आनन्द (विहारलीला) के सम्यक् दर्शन भी होते है। वैष्णव पुराण होने पर भी अन्य सम्प्रदायों का विरोध तो नहीं है। किन्तु सम्प्रदाय परिवर्तन की भयावहता अवश्य दिखलायी है। इसमें मथुरा वृन्दावन की समृद्ध रसमयी संस्कृति पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। सत्कथाश्रवण, तप, पूजा आदि समस्त भक्ति प्रकारों की चर्चा कर आध्यात्मिक उन्नति हेतु 'सर्वे भक्त्यधिकारिणः' पर जोर देकर भक्ति का श्रेष्ठत्व और सर्व सुलभत्व प्रतिपादित किया है।[1]

दार्शनिक दृष्टि से भी यह ग्रन्थ मननीय है।

आदि पुराण की भाषा शैली– आदि पुराण २६ अध्यायों में निबद्ध है जिसमें कुल २०३६ श्लोक हैं जिनमें १६८६ अनुष्टुप छन्द में निबद्ध तथा शेष ४७ श्लोक अन्य वृत्तों में है। सूक्तियों का तो भण्डार है। पग-पग पर सूक्तियों के दर्शन होते हैं। इसकी भाषा शैली अत्यन्त सरल और बोधगम्य है। पुराणों का उद्देश्य ही हितकारी बातों को सरल सुबोध भाषा में कथानकों के माध्यम से सर्व साधारण जन को हृदयङ्गम कराना होता है। इस उद्देश्य को इन सुन्दर-सुन्दर छोटी-छोटी सूक्तियों के माध्यम से बड़ी-बड़ी बातें कह दी गयी है। कुछ सूक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

'शान्तेरुदयतो यद्वद् हृदयं राजते नृणाम्।'[2]
विनयस्योदयेनैव शोभन्ते सद्गुणा यथा।।
विनयो हि यौवनस्य त्यागो वृद्धस्य भूषणम्।[3]
विद्या च नरलोकस्य तथा साधुवचः परम्।।
बन्धुष्वासक्तचित्तस्य न पोषण-परस्य च।[4]
अहर्निशं क्लेशवतः कुतो ज्ञानं कुतः सुखम्।।
दुष्टसङ्गो न कर्तव्यः आत्मनः श्रेय इच्छता।
सतां सङ्गाद्धि मनुजो लोकद्वयसुखं व्रजेत्।।[5]

---

१. स्वभक्तेभ्यः सदा तुष्टः स्वात्मानमपि यच्छति। निष्कामैश्च सकामैश्च सेवनीयः प्रभुः स हि।।
सर्वेऽधिकारिणो वर्णा आश्रमाः शिशवः स्त्रियः। अन्त्यजाः पुल्कसा म्लेच्छा ये चान्ये पापयोनयः।।
(–आदि पुराण २८/५१-५२)

२. आदि.पु. १/२३

३. आदि.पु. ७/२४

४. आदि.पु. ४/७

५. आदि.पु. १८/५१

उपसंहार– इस प्रकार आदि पुराण आकार में लघुकाय होने पर भी भागवत के सार को उपस्थित करने, अनेक नूतन कथाओं का समावेश कर कतिपय नवीन तत्वों का उद्घाटन कर धर्म एवं श्रीकृष्ण की भक्ति के गूढ रहस्यों की ओर इङ्गित करने वाला उप-पुराण है। सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान देने में सक्षम होने के कारण पुराण वाङ्मय में न केवल महत्वपूर्ण स्थान रखता है अपितु अपने आद्य होने को भी प्रमाणित करता है।

नरसिंहपुराण

पुराण संस्कृत-वाङ्मय के आकर ग्रन्थ हैं। प्राचीन भारतीय निखिल विद्याओं को सुरक्षित एवं संरक्षित करने के कारण विश्वकोष हैं। वेद प्रतिपादित पारस्परिक एवं पारम्परिक पुरातन परम्पराओं तथा मान्यताओं के प्रतिष्ठापक हैं। अनेक कालिक दार्शनिक, धार्मिक, भौगोलिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और अनुष्ठानों का संविधान हैं। आचार-संहिताओं का नियामक है, धार्मिक क्रिया-कलापों का विज्ञान है। धराधाम से गोलोकधाम तक सोपान है। आर्य-अनार्य संस्कृति का शाश्वत सङ्गम है। मानव-दानव-देव-संस्कृति का वर्तमान हैं। साहित्यशास्त्र का विधान है। भूत, वर्तमान एवं भविष्यकालीन, लौकिक-अलौकिक घटिताघटितघटनाओं का रूपात्मक तथा तथ्यात्मक पुरावृत्त-प्रवृत्तियों का निधान है। सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-वंशानुचरित-मन्वन्तर-भुवनकोशादि पञ्चम वैदिक आख्यान है। निगमात्मक एवं तज्जन्य ज्ञान-विज्ञान-प्रवाह का समन्वयात्मक समाधान है। ऋषियों, मुनियों, शिष्यों-प्रशिष्यों, ग्रहों, नक्षत्रों, राजाओं, प्रजाओं की वंशावलियों का अक्षय भण्डार है। तीर्थों, पर्वतों, वन-वनस्पतिओं, जीवन-सञ्जीवनी महौषधियों एवं पाप-पुण्यों का सङ्गणनात्मक सङ्कलन केन्द्र है।

उपपुराणों की प्राचीनता एवं उनके संख्या विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कतिपय प्रारम्भिक महापुराणों में भी इनका उल्लेख किया गया है। मत्स्य पुराण में–नारसिंह, नन्दी, आदित्य एवं साम्ब को उपपुराण की संज्ञा प्रदान की गयी है तथा नारसिंह उपपुराण की कुल श्लोक संख्या–१८००० वर्णित है।[1] एवमेव कूर्म,[2] पद्म,[3] तथा देवी भागवत[4] में अठारह उपपुराणों का नामोल्लेख है। वामन, स्कन्द, ब्रह्माण्ड, नारदीय, प्रभृति महापुराण नामों से साम्य रखते हैं। गरुड़[5] तथा बृहद्धर्म पुराणों[6] की सूचियों में उपपुराण के रूप में वर्णित है, जब की शेष सभी पुराण-सूचियों में इसे महापुराण बताया गया है। मात्र कूर्म पुराण[7] में इसे महापुराण एवं उपपुराण दोनों कहा गया है।

हाजरा महोदय[8] ने उपपुराणों की संख्या विषयक २३ विभिन्न सूचियाँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें १०० उपपुराणों के नाम सङ्कलित हैं। इनमें से कुछ का ही प्रकाशन सम्भव हो सका

---

१. स्टडीज इन द उपपुराणाज (हाजरा), भाग-१, पृष्ठ- ४-१३, मत्स्य पुराण, ५३.५६.६२

२. कूर्म पुराण, १.१.१६-२०

३. पद्म पुराण, ४.१११.६५-६८

४. देवी भागवत, १.३.१३-१६

५. गरुड पुराण, १.२१५, १५-१६

६. वृहद्धर्म पुराण, १.२५.२०-२२

७. कूर्म पुराण, १.१.१३-२०

८. स्टडीज इन द उपपुराणाज (हाजरा), भाग-१, पृष्ठ- ४-१३

है, शेष उपपुराण अप्रकाशित हैं और उनकी पाण्डुलिपियाँ भारतीय विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों के अलङ्करण मात्र हैं। मत्स्य पुराण में स्पष्ट सङ्केत है कि सभी उपपुराण अष्टादश अथवा प्रमुख पुराणों के उपभेद हैं तथा इन्हीं से समुद्भूत हैं। कूर्म पुराण में इस तथ्य की परिपुष्टि ही की गयी है। मुनियों ने अष्टादश पुराणों के सम्यक् परिशीलनोपरान्त महापुराणों के संक्षिप्त स्वरूप प्रदान करने के लिए उपपुराणों की संरचना की है।[1] प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रो. काणे का अभिमत नितान्त समीचीन प्रतीत होता है कि विभिन्न ग्रन्थों में उपपुराण सूचियों के नाम एवं क्रम में परस्पर भिन्नता परिलक्षित है।[2] ब्रह्मवैवर्त पुराण में उपपुराणों की अष्टादश संख्या निर्दिष्ट है। परन्तु उनके नामों का उल्लेख नहीं किया गया है।[3] पद्म पुराण के पाताल खण्ड में १८ उपपुराणों का नामों का मात्र विवरण प्रस्तुत है।[4] देवी भागवत पुराण में भी अठारह उपपुराणों की सूची मिलती है।[5] सूत-संहिता में विंशति (२०) उपपुराणों का नामोल्लेख किया गया है।[6] जो इस प्रकार हैं–

	पद्म पुराण	देवी भागवत	सूत-संहिता
१.	सनत्कुमार	सनत्कुमार	सनत्कुमार
२.	नृसिंह	नारसिंह	नरसिंह
३.	अण्ड	नारदीय	नान्दी
४.	दुर्वासा	शिव	शिवधर्म
५.	नारदीय	दुर्वासस्	दुर्वासा
६.	कपिल	कपिल	नारदीय
७.	मानव	मानव	कपिल
८.	उशनस्	औशनस्	मानव
९.	ब्रह्माण्ड	वारुण	उषनस्
१०.	वरुण	कालिका	ब्रह्माण्ड
११.	कालिका	साम्ब	वरुण
१२.	महेश	नन्दी	कालिका
१३.	साम्ब	सौर	वशिष्ठ
१४.	सौर	पाराशर	लिङ्ग
१५.	पाराशर	आदित्य	माहेश्वर

१. कूर्म पुराण, १.१.१६ "अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु। अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः।।"
२. वायु पुराण, १.६०-६१, काणे. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-४, पृष्ठ-३८५
३. हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लिटरेचर (विण्टरनित्ज), भाग-१, पाद-टिप्पणी- १
४. पद्म पुराण, पाताल खण्ड, १११.६५-६७
५. विष्णु पुराण का अनुवाद, भाग-१, भूमिका, (विल्सन), पृष्ठ-१३७
६. सूत संहिता, १.१३-१८

१६.	मारीच	माहेश्वर	साम्ब
१७.	भार्गव	भागवत	सौर
१८.	कौमार	वाशिष्ठ	पाराशर
१६.	-	-	मारीच
२०.	-	-	भार्गव

प्राचीनता एवं काल-निर्णय

श्री नारसिंह में कुल ६८ अध्याय हैं और श्लोक परिमाण-संख्या-३५८४ है।[1] वस्तुतः यह वैष्णव उपपुराण है, जिसमें विष्णु के समस्त अवतारों और विशेषतः नृसिंहावतार का सम्यक् साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। मत्स्य पुराण में नरसिंह पुराण का उल्लेख है।[2] प्रो. पी.वी. काणे महोदय ने इसकी रचना तिथि २०० ई. एवं ४०० ई. के मध्य स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि नरसिंह पुराण, मत्स्य पुराण से पूर्व की रचना है।[3] इसी प्रकार, कूर्म,[4] पद्म[5] तथा देवी भागवत[6] में भी प्रस्तुत पुराण का नामोल्लेख किया गया है। पद्म पुराण के आदि खण्ड की रचना, हाजरा के मतानुसार ६५० ई. के लगभग और उत्तर खण्ड की रचना ६०० से १५०० ई. के मध्य प्रतिपादित है।[7] प्रो. काणे ने देवी भागवत की तिथि ५वीं शती से १००० ई. तक निर्धारित की है।[8] उक्त पुराणों में उल्लेख होने के कारण श्री नरसिंह पुराण, पूर्ववर्ती है, स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस विषय में सभी विद्वान् मतैक्य हैं कि पौराणिक वाङ्मय की विकास प्रक्रिया अनेक शताब्दियों तक सतत् प्रवाहमान थी। परन्तु पुसाल्कर के अनुसार महापुराणों की तुलना में उपपुराणों की रचना बाद में हुई तथा उनका स्वरूप बहुधा साम्प्रदायिक माना जा सकता है। ऐतिह्य महत्त्व के अभाव के कारण वे उन्हें विशेष उल्लेखनीय नहीं मानते हैं।[9] सभी उपपुराण ऐतिह्य महत्त्व से रहित हैं, पुसाल्कर की धारणा समीचीन प्रतीत नहीं होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि कतिपय उपपुराण-नृसिंह, विष्णु धर्मोत्तर एवं देवी भागवत प्रभृति ७वीं-८वीं शती के मध्य लिखित माने जाते हैं तथा वर्ण्य विषय-निरूपण की दृष्टि से भी उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत

---

१. श्री नरसिंह पुराण (महर्षि वेदव्यास प्रणीत)-हिन्दी-अनुवाद सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०६१
२. मत्स्य पुराण, ५३.५६-६२
३. धर्मशास्त्र का इतिहास (काणे), खण्ड-४, पृष्ठ-४१५
४. कूर्म पुराण, १.१.१६-२०
५. पद्म पुराण, ४.१११.६५-६८
६. देवी भागवत पुराण, १.३.१३-१६
७. स्टडीज इन दॅ पुराणिक रिकार्ड्स ऑन् हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृष्ठ-१११-११४
८. धर्मशास्त्र का इतिहास (काणे), चतुर्थ भाग, पृष्ठ-४१६
६. स्टडीज इन दॅ इपिक्स एण्ड पुराणाज, ए.डी. पुसाल्कर, पृष्ठ-४८

सन्दर्भ में प्रो. काणे महादेय का यह विचार विशेष समीचीन प्रतीत होता है कि विभिन्न ग्रन्थों में प्रदत्त उपपुराणों के नाम एवं क्रम में परस्पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है तथा मत्स्यपुराणोक्त उपपुराण चतुष्टय (नारसिंह, नन्दी, आदित्य एवं साम्ब) इस पुराण की रचना तिथि लगभग ८०० ई. तक निर्धारित की जा सकती है।[1] अधिकांश उपपुराण पश्चात्कालीन हैं, क्योंकि उनका उल्लेख ११वीं-१२वीं शताब्दी के टीकाकारों एवं निबन्धकारों (मिताक्षरा, अपरार्क आदि) के ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हो पाता। फलतः, मेरे विचारानुसार, नरसिंह पुराण का रचनाकाल ४०० ई. से ८०० ई. के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। इस पुराण के "नृसिंह", "नारसिंह" और "नरसिंह" नाम प्राप्त होते हैं। परन्तु सर्व प्रचलित एवं सर्वमान्य नाम "नरसिंह" पुराण है। इसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

संक्षिप्त परिचय

मङ्गलाचरणान्तर, भगवान् नरसिंह का स्तवन, नाना दिग्दिगन्त भागों (हिमालय, नैमिषारण्य, अर्बुदारण्य, पुष्करारण्य, धर्मारण्य, दण्डकारण्य, श्रीशैल, कुरुक्षेत्र, कुमार पर्वत आदि) से वेदपारङ्गत, त्रिकालज्ञ, मुनिगणों का परम पावन प्रयाग तीर्थ में समागम होता है। महर्षि वेदव्यास के शिष्य अतीव तेजस्वी और पुराणज्ञ लोमहर्षण नामक सूत का आगमन होता है। वराह-संहिता, नरसिंह पुराण-संहिता, सृष्टि-निर्माण, चराचरात्मक जगत् की उत्पत्ति, सृष्टि का आरम्भ एवं अवसान, युगों की गणना, चतुर्युग स्वरूप तथा अन्तर, कलियुग-प्रभाव, पुण्य क्षेत्रों, पावन पर्वतों, नदियों, देवोत्पत्ति, मनु, मन्वन्तर, विद्याधर-सृष्टि, यज्ञकर्ता, उत्तमोत्तमसिद्धि-प्राप्तिकर्ता एवं राजाओं के विषय में अनेकानेक प्रश्न, काल-गणना (काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, मास, पक्षद्वय, अयनद्वय, वर्ष) आदि विषयों का वर्णन है।

नैमित्तिक काल में शयनशील भगवान् नारायण की नाभि में एक महान् कमल की उत्पत्ति होती है। उसी से वेद-वेदाङ्गों के पारगामी ब्रह्मा जी की उत्पत्ति होती है। उन्होंने सम्पूर्ण लोक को शून्यमय देखा। भगवन्नारायण का स्मरण किया।[2] उनकी असावधानता के कारण तमोगुणी सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्म से तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तामिस्र (क्रोध) और अन्ध तामिस्र (अभिनिवेश) नामक पञ्चपर्वा अविद्या उत्पन्न होती है। तत्पश्चात्, वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध् एवं तृण रूप स्थावरात्मक सृष्टि होती है। तिर्यक्स्रोत, सत्त्वगुणोपेत देवसर्ग, अर्वाक् स्रोता सर्ग (मानव सर्ग) एवं रुद्र सर्ग–प्रजापति से नव सर्ग उत्पन्न हुए।

---

१. हिस्ट्री ऑव् इण्डियन लिटरेचर, भाग-१, पाद-टिप्पणी-१

२. श्रीनरसिंह पुराण, अध्याय-३, श्लोक-१४ "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।"

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महातेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, नारद और वसिष्ठ-ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा ने की। एकमात्र नारद को छोड़कर शेष सभी मुनि प्रवृत्ति धर्म में नियुक्त हुए। ये सभी ब्रह्मा जी की मानस सन्तान और अनुसर्ग के स्रष्टा हैं।

नारायण ने पुरुष रूप को–अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, कपाली, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत–एकादश स्वरूपों में विभक्त किया। पुरुष की भाँति स्त्री रूप के भी एकादश विभाग किया। भगवती उमा ही अनेक रूप धारण कर इन सबकी पत्नी हैं।

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा प्रसूति नामक पुत्री की उत्पत्ति होती है। दक्ष और प्रसूति से–श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, कीर्ति, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि-कन्याएँ उत्पन्न होती है। धर्म की इन श्रद्धादि पत्नियों से काम आदि पुत्रों का जन्म होता है। शेष एकादश कन्याओं–सम्भूति, अनसूया, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, सत्या, ऊर्जा, ख्याति, स्वाहा और स्वधा-के नाम हैं। मरीचि और सम्भूति से कश्यप, अङ्गिरा और स्मृति से सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति-चार कन्याएँ, अत्रि और अनुसूया से सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय, अग्नि और स्वाहा से पावक, पवमान और शुचि, पितरों और स्वधा से मेना तथा धारिणी उत्पन्न हुईं। दक्ष ने देव, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प की उत्पत्ति के बाद वीरण-कन्या असिक्नी से ६० कन्याएँ उत्पन्न की। धर्म को १०, कश्यप को १३, चन्द्रमा को २७, अरिष्टनेमि को ४, बहुपुत्र को २, अङ्गिरा के २ और कृशाश्व को २ कन्याएँ समर्पित किया।

अदिति और कश्यप से भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु उत्पन्न हुए। कश्यप और दिति से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु उत्पन्न हुए। कश्यप और अरिष्टा से गन्धर्व, सुरसा से अनेक विद्याधर और सुरभि से गायों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार, सृष्टि-विस्तार के लिए ब्रह्मा तथा अन्य प्रजापतियों द्वारा सर्ग और अनुसर्ग का सम्पादन हुआ।

दक्ष की त्रयोदश कन्याओं (दिति, अदिति, दनु, काला, मुहूर्ता, सिंहिका, मुनि, इरा, क्रोधा, सुरभि, विनता, सुरसा, रवसा, कद्रू और सरमा), अदिति के द्वादश पुत्रों (भग, अंशु, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु) के आख्यान के पश्चात्, विश्व सुन्दरी उर्वशी के अलौकिक सौन्दर्य से अनुरक्त मित्र और वरुण की कथा है, जिसमें मित्रावरुण के तीन स्थलों पर गिरे हुए वीर्य में से, जो भाग कमल पर गिरा था उससे वसिष्ठ उत्पन्न हुए, स्थल पर गिरे हुए रेतस् से अगस्त्य और जल में गिरे हुए शुक्र से अतीव कान्तिमान् 'मत्स्य' की उत्पत्ति होती है क्योंकि मित्रावरुण का वीर्य तीनों स्थानों पर बराबर गिरा था, अतएव, वसिष्ठ और अगस्त्य जी 'मित्रावरुण' के पुत्र कहलाते हैं।

भृगु और ख्याति से 'मृकण्डु' नामक एक पुत्र हुआ। मृकण्डु और सुमित्रा से मेधावी मार्कण्डेय जी उत्पन्न हुए। ज्योतिषी ने यह कहा था कि '१२वाँ वर्ष पूर्ण होते ही इस बालक की मृत्यु हो जायेगी।' उन्होंने माता-पिता को आश्वस्त किया कि वह ऐसी तपस्या करेगा कि चिरजीवी हो सके। पितामह भृगु जी ने कहा–पुत्र! कठोर तपस्या के द्वारा भगवान् नारायण की आराधना बिना कौन मृत्यु को जीत सकता है। अतएव, उन्हीं की अर्चना करो। सह्य पर्वतस्थ तुङ्ग भद्रा नदी के तट पर स्थित भद्रवट वृक्ष के नीचे ब्रह्म स्वरूप श्रीहरि का ध्यान करते हुए वे "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षरात्मक मन्त्र का जप करने लगे। महामति मार्कण्डेय जी भगवान् विष्णु में चित्त लगाए देवाधिदेव जर्नादन की स्तुति करते हैं।[1] मृत्यु देव वहाँ से पलायन करते हैं। इस प्रकार मार्कण्डेय जी ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की।[2]

नरकलोक में यातना से पीड़ित जीवों से यमराज ने कहा कि नरसिंह स्वरूपधारी भगवान् हृषीकेश के स्मरण मात्र से ही मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त हो जाती है, नरक की ज्वाला तत्काल शान्त हो जाती है। नरकस्थ सभी जीव कहते हैं–हे गोविन्द ! आपको भूरि-भूरि प्रणाम है। आप इस दुर्गन्धपूर्ण नरक से हम लोगों का उद्धार करें। दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित सभी नरकस्थ जीवों को विष्णुदूत विष्णुलोक में ले जाते हैं। उन गुरुदेव नरसिंह भगवान् को मैं सदा प्रमाण करता हूँ।[3]

यमराज अपने किङ्करों से कहता है कि–मेरी प्रभुता मात्र मनुष्यों पर ही चलती है, वैष्णवों पर मेरा कोई प्रभुत्व नहीं है। जो मनुष्य असंख्य पुण्यों के फलस्वरूप इस मानव-शरीर को पाकर भी जागतिक विषय सुखों में व्यर्थ ही रमण करते हैं, मोक्ष पथ का अनुसरण नहीं करते, वे मानों राख के लिए शनैः शनैः चन्दन काष्ठ को प्रज्जविल कर रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय 'यमाष्टक' के नाम से प्रसिद्ध है।

भृगु जी के विशेष आग्रह से मार्कण्डेय जी धर्मपूर्वक विवाह करते हैं। उनको "वेदशिरा" नामक पुत्र की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् प्रयाग में जाकर वहाँ के श्रेष्ठतम तीर्थ त्रिवेणी में स्नान करके वह अक्षयवट के नीचे बैठकर तपस्या करते हैं। महातेजस्वी मार्कण्डेय जी विष्णु के ध्यान में तल्लीन 'नमामि विष्णुं पुरुषं पुरातनम्', 'नमामि गोविन्दमनन्तवर्चसम्', 'नमामि लोकत्रय कर्म साक्षिणम्' एवं 'नमामि भक्तप्रियमीश्वरं हरिम्'

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-७, श्लोक-६३ "नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम्।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेषं किं मे मृत्युः करिष्यति।।"

२. वही, अध्याय-७, श्लोक-७४-७५ "नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः"
"मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव।"

३. वही, अध्याय-८, श्लोक-१८ "नरसिंह महादेवं ये नराः पर्युपासते।
तेषां पार्श्वे न गन्तव्यं युष्माभिर्मम शासनात्।।"

एतत्प्रकारक उनकी स्तुति करते हैं। भगवान् जनार्दन, स्वयं उपस्थित होकर, उन्हें मुक्ति प्रदायिनी अविचल वैष्णवी भक्ति एवं चिरकालिक आयु प्रदान करते हैं।

मार्कण्डेय जी शेषशय्याशयनशील भगवान् विष्णु को प्रणाम करके उनका स्तवन करते हैं– आपकी माया से मोहित होकर मैं अत्यन्त दुःख से पीड़ित हूँ। शीत, आतप, जरा, व्याधि, शोक और तृष्णा से अतीव कष्ट पा रहा हूँ। महामायी कमल लोचन ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। आप विश्व की उत्पत्ति के स्थान, विशाल लोचन, विश्वोत्पादक और विश्वात्मा हैं। आप कृपालु, आश्रयहीन के महाश्रय हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु– "आपके चरणारविन्दों का पूजन करता हुआ जन्म-मृत्यु रहित होकर यहाँ ही नित्य निवास करना चाहता हूँ"–वे ऋषि प्रवर को वरदान प्रदान करते हैं।

बारहवें अध्याय में यम-यमी का अतीव रोचक संवाद है। बहन यमी और भाई यम, विवस्वान् सूर्य की सन्तान थे। कामातुरा बहन यमी, भाई यम को अपना स्वामी बनाना चाहती है। कहती है कि काम की वेदना असह्य होती है। कामाग्नि से मैं अतीव सन्तप्त हूँ। मैं काम पीड़िता स्त्री हूँ। शीघ्र ही अपने शरीर से मेरे शरीर का संयोग होने दो। यम कहता है कि– शुभे ! यह तिर्यग्-योनि में पड़े हुए पशुओं का धर्म है– देव या मनुष्य का नहीं।[1] यमी कहती है कि– 'निर्ऋति' नामक राक्षस तो अपनी बहन के साथ नित्य ही समागम करता है।[2] वह कहता है कि–"जो बहन को ग्रहण करता है, उसे मुनियों ने 'पापी' कहा है।"[3] वह अपनी भुजाओं से आलिङ्गन करना चाहती है। यम कहता है– "मेरा निर्मल चित्त विष्णु और शिव-चिन्तन में रत है। यह पाप कर्म नहीं करना चाहता।"

पुनश्च **प्रस्तुत अध्याय में** एक ब्रह्मचारी और एक पतिव्रता स्त्री का संवाद वर्णित है। वेद-वेदाङ्ग पारङ्गत, महानीतिज्ञ, शास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, व्याख्यान कला प्रवीण एक कश्यप नामक ब्राह्मण थे। उनकी परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता, पतिशुश्रूषा संलग्न सावित्री नामक धर्मपत्नी थी। उधर कोशल देशवासी यज्ञ शर्मा और उनकी सती-साध्वी धर्मपत्नी रोहिणी थी। उन दोनों का देव शर्मा नामक एक पुत्र था। अल्पायु में ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया। भिक्षाटन द्वारा जीवन-निर्वाह करता था। एक दिन कौआ और बगुला उसके धौत वस्त्र को अपवित्र करते हैं। उसके क्रोधपूर्वक देखने पर वे भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। ब्रह्मचारी अभिमानी हो जाता है। भिक्षाटन करता हुआ वह सावित्री के पास पहुँचता है। याचना करने पर वह मौन रहती है। स्वामि-सेवा के बाद वह भिक्षा देने प्रस्तुत होती है। वह अपने तपोबल से भस्म करने की इच्छा प्रकट करता है। हँसती हुई सावित्री

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-१२, श्लोक-१९ "महापातकमित्याहुः स्वसारं योऽधिगच्छति। पशूनामेष धर्मः स्यात् तिर्यग्योनिवतां शुभे।।"

२. नरसिंह पुराण, अध्याय-१२, श्लोक-२१ "स्वसारं निर्ऋती रक्षः संगच्छति च नित्यशः।"

३. नरसिंह पुराण, अध्याय-१२, श्लोक-२७ "मुनयः पापमाहुस्तं यः स्वसारं निगृह्णति।"

कहती है कि– क्रोधी ब्राह्मण ! मैं कौआ और बगुला नहीं हूँ कि जलकर राख हो जाऊँगी। शान्त मन से भिक्षा-ग्रहण करो। मैं अहर्निश पति-सेवा में लीन रहती हूँ। मुझे समस्त घटना का ज्ञान हो जाता है। जाकर विधवा माता की सेवा करो और क्रोध को त्याग दो, क्योंकि वह तुम्हारे दृष्ट-अदृष्ट सभी कर्मों को नष्ट करने वाला है। आत्म शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करो। भगवान् नरसिंह की कृपा से तुम्हें विष्णु-पद की प्राप्ति होगी।

पुनः वेदशास्त्र विशारद ब्राह्मण का वर्णन है। वह तीर्थाटन एवं भिक्षाटन के द्वारा जीवन-निर्वाह करता है। वह गङ्गा, यमुना, सरस्वती, वितस्ता (झेलम) और गोमती आदि पवित्र नदियों में स्नान करता है। वह गया में अपने पिता-पितामह आदि का तर्पण करके महेन्द्र पर्वत पर जाता है। वहाँ परशुराम का दर्शन करता है। दीर्घकालिक पूजा से प्रसन्न भगवान् नृसिंह ने कहा कि– किसी आश्रम धर्म को स्वीकार न करना, गृहस्थाश्रम-मर्यादा-भङ्ग का कारण होता है। आश्रम रहित वेद पारङ्गत विद्वान् पर भी अनुग्रह नहीं करता हूँ। वनवासी वह निर्दोष गायत्री-मन्त्र का जप करता हुआ भगवान् नृसिंह-विग्रह का पूजन करता है। कुशासनस्थ सत्य स्वरूप परमेश्वर का निरन्तर चिन्तन करता हुआ परमात्म स्वरूप को प्राप्त हो गया।

संसार-वृक्ष का वर्णन है। इसकी उत्पत्ति अव्यक्त परमात्मा रूपी मूल से है। बुद्धि (महत्तत्त्व) उसका स्कन्ध है। इन्द्रियाँ, अङ्कुर और कोटर हैं। पञ्च महाभूत उसकी विशाल शाखायें हैं। विशेष पदार्थ उसके पत्ते हैं। सुख और दुःख नाम फल हैं। यह संसार-वृक्ष, ब्रह्म की भाँति भूतों का आश्रय है। अपरब्रह्म और परब्रह्म भी इस वृक्ष का कारण है। देहाभिमानी, पापी, अज्ञानी जीव, मुक्ति नहीं प्राप्त करता है। ज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाता है।

मानव, काम, क्रोध, लोभ और रागादि विषयों से आबद्ध है। पुत्रैषणा, लोकैषणा, दारैषणा आदि से भी आबद्ध है। वह संसार-पङ्क में, कीचड़ में फँसी हुई गाय की भाँति डूब-डूब जाता है। जो सम्पूर्ण पापों से रहित, निरन्तर भगवान् विष्णु-नाम का कीर्तन करने वाले पुरुष, जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर वैष्णवी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

"ॐ नमो नारायणाय" नामक अष्टाक्षर मन्त्र और उसके माहात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। इस मन्त्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, परमात्मा देवता है। ॐकार शुक्लवर्ण, 'न' रक्तवर्ण, 'मो' कृष्णवर्ण, 'ना' रक्तवर्ण, 'रा' कुङ्कुमवर्ण, 'य' पीतवर्ण, 'ण' कृष्णवर्ण और 'य' कार विविध वर्णों से युक्त है। यह सनातन मन्त्र, वेदों के प्रणव से सिद्ध, मन्त्रों में सर्वोत्तम, श्रीसम्पन्न और सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है। मोक्ष और स्वर्गप्रद है।

दक्ष-कन्या अदिति से आदित्य की उत्पत्ति हुई। आदित्य का विवाह त्वष्टा प्रजापति की कन्या संज्ञा से हुआ। उन दोनों से क्रमशः मनु, यम और यमी उत्पन्न होते हैं। पति-ताप से सन्तप्त संज्ञा अपनी छाया स्वरूपा एक स्त्री को उत्पन्न करती है। उसे अपने स्थान पर रखकर, स्वयं अश्वा का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रान्त में जाती है। सूर्य और छाया

से– मनु, शनैश्चर तथा तपती-नामक सन्तानत्रय की उत्पत्ति होती है। छाया, संज्ञा की सन्तानों से सौतेला व्यवहार करती है। वह यम को प्रेतराज और यमी को यमुना हो जाने का शाप देती है। उसके इस क्रूरतापूर्ण व्यवहार को देखकर सूर्य भी शनैश्चर को मन्दगामी और तपती नदी होने का शाप देता है। सूर्य अश्वा स्वरूपा संज्ञा से पुनः समागम करता है, जिससे अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति होती हैं। वे दोनों पुत्र देवों के वैद्यराज हैं।

विश्वकर्मा ने आदित्य, सविता, पूषा, खग, कपिल, मार्तण्ड, आतपी, मण्डली, मित्र, गोपति, प्रभाकर, तरणि आदि १०८ नाम वाले सूर्य का स्तवन करता है। भगवान् भुवन भास्कर ने विश्वकर्मा को वरदान प्रदान किया।

देवासुर संग्राम में दैत्यों की पराजय होती है। अपमानित दिति अपने पति कश्यप की आराधना करती है। ऋषि दिति में गर्भाधान करता है। वृद्ध विप्रस्वरूपधारी इन्द्र अपने वज्र से गर्भ के सात टुकड़े करता है। गर्भस्थ शिशु रुदन करते हैं। इन्द्र ने 'मा रोदीः' कहते हुए पुनः प्रत्येक के सात-सात टुकड़े करता है। वे सातों खण्ड "मारुत" के नाम से सुविख्यात हुए।

सर्ग, अनुसर्ग एवं विचित्र कथाओं के पश्चात्, राजवंशों में सर्वप्रथम सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन है– ब्रह्मा-मरीचि-कश्यप-सूर्य-मनु-इक्ष्वाकु-विकुक्षि-द्योत-वेन-पृथु-पृथाश्व-असंख्याताश्व-मान्धाता-पुरुकुत्स-दृषद-रोहिताश्व-अंशुमान्-भगीरथ-सौदास-शत्रुंदम-अनरण्य-दीर्घबाहु अज-दशरथ-राम-लव-पद्म-अनुपर्ण-वस्त्रपाणि-शुद्धोदन-बुध आदि ३१ राजाओं का उल्लेख है। बुध से सूर्यवंश समाप्त हो जाता है।

पुनः चन्द्रवंशीय राजाओं का वर्णन है– **ब्रह्मा**-मानसपुत्र **मरीचि** + दाक्षायिणी, **कश्यप** + अदिति, **सूर्य** + सुवर्चला (संज्ञा), **मनु** + सुरूपा, **सोम** + रोहिणी, **बुध** + इला, पुरूरवा+ **उर्वशी,** आयु + रूपवती, **नहुष** + पितृवती, **ययाति** + शर्मिष्ठा, **पूरु** + वंशदा, **सम्पाति** + भानुदत्ता, **सार्वभौम** + वैदेही, **भोज** + लिङ्गा, **दुष्यन्त** + शकुन्तला, **भरत** + नन्दा, **अजमीढ** + सुदेवी, **पृश्नि** + उग्रसेना, **प्रसर** + बहुरूपा, **शंतनु** + योजनगन्धा, **विचित्रवीर्य** + अम्बिका पाण्डु + कुन्ती, **अर्जुन** + सुभद्रा, **अभिमन्यु** + उत्तरा, **परीक्षित्** + मातृवती, **जनमेजय** + पुण्यवती, **शतानीक** + पुष्पवती, **सहस्रानीक** + मृगवती, **उदयन** + वासवदत्ता, **नरवाहन** + अश्वमेधा-क्षेमक की उत्पत्ति होती है। यह क्षेमक ही वंश का अन्तिम राजा था।

तदनन्तर चौदह मन्वन्तरों का वर्णन है– स्वायंभुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत (वर्तमान है), सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रुचि और भौम। मन्वन्तरों के साथ-साथ तत्कालीन राजाओं का भी वर्णन है। प्रत्येक मन्वन्तर में मनु, सप्तर्षि, देवता और भूपाल तथा इन्द्र-ये अधिकारी होते हैं। इनके व्यतीत होने पर एक हजार चतुर्युग का समय व्यतीत होता है। यह समय ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतने ही प्रमाण की रात्रि होती है।

सरयू नदी के तट पर अमरावती के समान सुन्दर अयोध्या नामक दिव्य पुरी है। वहाँ मनुपुत्र प्रतापी राजा इक्ष्वाकु थे। वेदज्ञ विप्रों के साथ धर्म और न्याय पूर्वक समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का पालन करते थे। समस्त राजाओं पर विजयश्री प्राप्त की थी। वे अपनी दोनों भुजाओं द्वारा पृथ्वी का, जिह्वाग्र भाग से सरस्वती का, वक्षस्थल से राजलक्ष्मी का और हृदय से भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु का भार धारण करते थे। त्रिकाल सन्ध्या, भगवद्दर्शन, तपस्यानुरक्त चित्तवान् थे। गुरु वशिष्ठ के निर्देशानुसार, सरयू के तट पर पूर्व और दक्षिण भाग में एक पवित्र स्थान है, जो गालव आदि ऋषियों का आश्रम है। वृक्षों, लताओं और विविध पुष्पों से परिपूर्ण है। नृपति इक्ष्वाकु ने अर्जुन नामक मन्त्री पर राज्यभार सौंपकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' नामक द्वादशाक्षरात्मक मन्त्रों का जप, पुष्पों द्वारा गणेश-पूजन तथा स्तवन करके तपस्या करने का दृढ़ निश्चय करके अयोध्या नगर से प्रस्थान किया।

गणेश-वन्दन के पश्चात्, राजा तपस्वी का वेष धारण करके तपस्या में प्रवृत्त हो जाता है। वह ग्रीष्मर्तु में पञ्चाग्नि, वर्षर्तु में निरालम्ब और शीतर्तु में जल में खड़े होकर तपस्या करते थे। तपस्या से प्रसन्न कमल योनि ब्रह्मा जी प्रकट होते हैं। उन्होंने कहा कि एक बार मैं भी भगवद्दर्शन करना चाहता था। तीव्र तपस्या में तल्लीन था। आकाशवाणी से ज्ञात होता है कि तपस्या से दर्शन नहीं प्राप्त हो सकता है। भजन, पूजन और ध्यान द्वारा ही माधव-दर्शन सम्भव है। प्रजाओं का पालन करना ही राजाओं का धर्म तथा तप है। राजा इक्ष्वाकु पुनः अयोध्यापुरी लौट आते हैं। वहाँ यज्ञों का अनुष्ठान, पृथ्वी का पालन, केशव-पूजन, श्राद्धादि द्वारा पितृ गणों की तृप्ति एवं ब्रह्म चिन्तन करते हुए ध्यान द्वारा शरीर का परित्याग तथा विष्णु पद की प्राप्ति की।

इसके बाद इक्ष्वाकु-सन्तति का वर्णन है। उनका ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि था। विकुक्षि से सुबाहु-उद्योत-युवनाश्व-मान्धाता-पुरुकुश्य (पुरुकुत्स) दृषद-अभिशम्भु-दारुण-सगर-हर्यश्व-हारीत-रोहिताश्व-अंशुमान्-भगीरथ-सौदास-सत्रसव-अनरण्य-दीर्घबाहु-अज-दशरथ-भगवान् राम का अवतार होता है। पिता की आज्ञा से सीता और लक्ष्मण के साथ वनगमन, सीतापहरण, सुग्रीव से मैत्री, सेतुबन्धन, बन्धु-बान्धवों सहित रावण-वध। पुनश्च, राम, लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या में लौट आते हैं। भरत ने राजपद पर राम का अभिषेक किया। राम ने विभीषण को लङ्का-राज्य और विष्णु प्रतिमायुक्त विमान देकर वहाँ से प्रेषित किया। भगवान् नारायण की उपस्थिति से वह स्थान वैष्णव तीर्थ हो गया, जो आज भी श्रीरङ्गक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। राम से लव-पद्म-ऋतुपर्ण-अस्त्रपाणि शुद्धोदन-बुध-की उत्पत्ति हुई। बुध से इस वंश की समाप्ति हो जाती है।

योगनिद्राश्रित, शेषशय्या पर शयनशील भगवान् की नाभि से कमलोत्पत्ति होती है। उससे चतुर्मुख ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उनसे मानस पुत्र अत्रि और अनसूया से चन्द्रोत्पत्ति होती है। दक्ष प्रजापति की रोहिणी आदि ३३ कन्याओं के साथ चन्द्रमा का विवाह होता है।

रोहिणी से (**बुध** से इला) से **पुरुरवा** से उर्वशी से आयु रूपवती **नहुष** से पितृमती **ययाति** से शर्मिष्ठा **पुरु** से वंशवदा **संयाति** से भानुदत्ता **सार्वभौम** से वैदेही **भोज** से कलिङ्गा **दुष्यन्त** से शकुन्तला **भरत** से आनन्दा **अजमीढ** से सुदेवी **वृष्णि** से उग्रसेना **प्रत्यञ्च** से बहुरूपा **शान्तनु** की उत्पत्ति होती है।

अठारहवें अध्याय में शान्तनु का चरित्र वर्णित है। भगवान् नरसिंह के निर्माल्योल्लंघन के कारण राजा शान्तनु, देवों द्वारा प्रदत्त उत्तम रथ पर चढ़ने में असमर्थ हो जाता है। कारण के उल्लेख में एक कथा है, जो इस प्रकार है– अन्तर्वेदी में रवि नामक एक माली था। उसका वृन्दावन नामक तुलसी का उपवन था। मालाओं से परिवार का पालन-पोषण करता था। इन्द्र पुत्र जयन्त प्रतिदिन रात्रि में समस्त पुष्पों को चुरा लेता था। माली अतीव दुःखी था। उसको भगवान् का स्पष्ट आदेश था कि उपवन के समीप मेरा निर्माल्य लाकर छीट दो। पूर्व की भाँति जयन्त पुष्प को तोड़ता है और भूमि पर पड़े हुए निर्माल्य का उल्लंघन करता है। सारथी कहता है कि अब आप भूतल पर ही रहिये। रथारूढ नहीं हो सकते हो। जयन्त शीघ्र ही पाप-निवारण चाहता है। वह कुरुक्षेत्र में परशुराम के द्वादशवर्षीय यज्ञ में सम्मिलित होता है और प्रतिदिन विप्रोच्छिष्ट की सफाई करता है। शापान्त के पश्चात्, जयन्त पुनः स्वर्गलोक चला जाता है। नारद के निर्देशानुसार, शान्तनु भी द्वादश वर्ष पर्यन्त विप्रोच्छिष्ट की सफाई करता है। फलतः, वह (शान्तनु) उस दिव्य रथ पर चढ़ने में समर्थ हो जाता है।

२९वें अध्याय में शान्तनु की सन्तति-परम्परा का सविस्तर वर्णन है। शान्तनु + योजनगन्धा-**विचित्रवीर्य** + अम्बालिका-**पाण्डु** + कुन्ती-**अर्जुन** + सुभद्रा-**अभिमन्यु** + उत्तरा-**परीक्षित** + मातृवती-**जनमेजय** + पुष्पवती-**शतानीक** + फलवती-**सहस्रानीक** + मृगवती-**उदयन** (कौशाम्बी नरेश) + वासवदत्ता-**नरवाहन** + अश्वमेध दत्ता-**क्षेमक** की उत्पत्ति होती है। उनके राज्य काल में म्लेच्छों का आक्रमण होता है और उनके द्वारा समस्त जगत् पद दलित हो जाता है।

तीस अध्याय में भूगोल तथा स्वर्गलोक का वर्णन है। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर– ये सप्तद्वीप हैं। ये द्वीप क्रमशः लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और शुद्धोदक नाम से प्रसिद्ध सप्त वलयाकार समुद्र से घिरे हुए हैं। मनुपुत्र 'प्रियव्रत' सप्तद्वीपों का अधिपति था। जम्बूद्वीप के अधिपति 'अग्नीध्र' के नव पुत्र– नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्मय, कुरु, भद्र और केतुमान्– थे। राजा नाभि से ऋषभ की उत्पत्ति होती है। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ, जिनके द्वारा चिरकाल तक धर्मपूर्वक पालित होने के कारण इस देश का नाम "भारतवर्ष" पड़ा। इलावृत वर्ष के बीच में मेरु नामक सुवर्णमय पर्वत है। इसी के मध्य भाग में ब्रह्मा जी की पुरी है। पूर्व भाग में इन्द्र की 'अमरावती' है, अग्निकोण में अग्नि की 'तेजोवती' पुरी है। दक्षिण में यमराज

की 'संयमनी' है। नैर्ऋत्य कोण में नैर्ऋति की 'भयङ्करी' नामक पुरी है। पश्चिम में वरुण की 'विश्वावती', वायव्य कोण में वायु की 'गन्धवती' और उत्तर में चन्द्रमा की 'विभावती' पुरी है।

महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और पारियात्र– ये सात कुल पर्वत हैं। नर्मदा, सुरसा, ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णावेणी, चन्द्रभागा तथा ताम्रपर्णी– ये सात नदियाँ हैं। गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू– ये छः महानदियाँ हैं। तत्पश्चात् स्वर्गलोक का सविस्तर वर्णन है।

स्वायम्भुव मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद थे। उनके दो पुत्र– सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र 'उत्तम' और सुनीति के गर्भ से उत्पन्न 'ध्रुव' - थे। सिंहासनासीन राजा की गोद में ध्रुव भी बैठना चाहता था। बड़ी माता सुरुचि ने इसका विरोध किया। ध्रुव की आँखें आँसुओं से भर गईं। माता सुनीति कहती है कि समस्त सांसारिक पद एवं पदार्थ भगवान् विष्णु की कृपा से ही सुलभ हैं। बालक ध्रुव अपनी माता से विष्णु की आराधना के लिए आज्ञा माँगता है। वह एक उपवन में प्रवेश करता है। वहाँ सप्तर्षियों से भेंट होती है। उन्होंने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' - द्वादशाक्षरात्मक महामन्त्र-जप की शिक्षा देते हैं। वह तपस्या के लिए प्रस्थान करता है। वह यमुना तटस्थ मधुवन में श्रद्धापूर्वक महामन्त्र जप में तल्लीन हो जाता है। भगवान् विष्णु साक्षाद्दर्शनार्थ स्वयं प्रकट होकर वरदान प्रदान करते हैं। भगवान् के शङ्खस्पर्श से उसके अन्तःकरण में ज्ञानसूर्योदयजन्य पूर्ण प्रकाश होता है। वह उनकी स्तुति करता है।

उत्तम ब्राह्मणों ने राजकुमार सहस्रानीक का राज्याभिषेक किया। उसकी भगवान् नृसिंह में भक्ति उत्पन्न होती है। वह भृगु मुनि से श्रीहरि के समस्त पुण्यावतारों को सुनना चाहता है और नृसिंह की स्थापना करके उनकी आराधना भी करना चाहता है। भृगु मुनि ने भगवान् नरसिंह की आराधना के विषय में सम्यक् वर्णन किया और बताया कि– जो सुरेश्वर का प्रतिदिन पूजन करता है, वह स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।

भगवान् नृसिंह-मन्दिर में जो प्रतिदिन झाडू लगाता है, गोमय, मिट्टी तथा जल से लेपन करता है, वह विष्णुलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है। पूर्वकाल में युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा अपने अन्य भाइयों के साथ वन में विचरण करते हैं। कष्टमय मार्ग को पार करके उत्तम तीर्थ की ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ बहुरोमा नामक दानव तथा मुनिवेषधारी स्थूलशिरा नामक दूसरा दानव भी वहीं आता है। आकाशवाणी के द्वारा रहस्योद्घाटन होता है। अर्जुन द्रौपदी की रक्षा करते हैं। भीम ने कठोर मुष्टिका प्रहार से स्थूल मस्तक का छेदन किया। अर्जुन द्रौपदी का अपहरण करने वाले दानव की पीछा करता है। दानव कहता है कि मैं विष्णु नहीं बहुरोमा नामक दानव हूँ। पूर्व कर्म के प्रभाव से भगवान् विष्णु का सारूप्य प्राप्त किया है। वह पूर्व जन्म में चन्द्रवंशोत्पन्न जयध्वज नामक प्रख्यात राजा था। इसके पूर्व वह

रैवत नामक ब्राह्मण था। स्वेच्छाचारिता के कारण, ब्राह्मण की पत्नियों को अपहरण करके मन्दिर में ले जाता है। अपने ही वस्त्र से देवालय की सफाई करता है और दीप जलाता है। नगर रक्षकों ने खड्ग प्रहार से उसका शिरोच्छेदन करते हैं। भगवान् के पार्षदों से युक्त दिव्यविमानाधिरूढ होकर वह स्वर्गलोक प्रस्थान करता है। मन्दिर में झाडू लगाने से ही जयध्वज नामक राजा बनता है। देवर्षि नारद का उपहास करने से मैं इस स्वरूप को प्राप्त किया है। शापानुग्रह के रूप में– "जिस समय द्रौपदी का अपहरण करके तुम रेवातटवर्ती मठ में चले जाओगे, उस समय शापान्त होगा।" हे अर्जुन ! मैं वही राजा जयध्वज हूँ। वह गरुडारूढ होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है।"

नृसिंह स्वरूप भगवान् केशव का जलाभिषेक करने से मनुष्य सब पापों से मुक्ति और विष्णु धाम को प्राप्त करता है। विष्णु की एक बार की गयी परिक्रमा, समस्त पृथ्वी की परिक्रमा के समान है। जिस ग्राम में विष्णु मन्दिर के समीप प्रतिदिन घृत और तिल से होम होता है। वहाँ अनावृष्टि, अतिवृष्टि, महामारी, अग्निदाहादि का भय और अकालमृत्यु नहीं होती है।

लक्ष होम और कोटि होम के लिए सर्वप्रथम प्रशस्त भूमि, गङ्गाजल और पञ्चगव्य से शोधित कुण्ड होना चाहिए। यजमान के द्वारा एक दिन और एक रात्रि उपवास करके दस सहस्र गायत्री जप, हवन, गन्ध आदि के द्वारा पूजन, गृह्यसूत्रोक्त विधि से भूमि पर कुशा से रेखा करके सिञ्चन और अग्नि-स्थापन करना चाहिए। गायत्री मन्त्र द्वारा स्वाहोच्चारण पूर्वक भूर्भूवः तीन व्याहृतियों सहित केवल तिल का हवन करना चाहिए। नियमानुसार, होम का अनुष्ठान करने से पुर, नगर, जनपद और समस्त राष्ट्र की समस्त बाधा को दूर करने वाली शान्ति निरन्तर बनी रहती है।

जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने मत्स्य रूप धारण करके वेदोद्धार, मधु-कैटभ को मारकर, कूर्म रूप से मन्दराचल पर्वत धारण किया और महाकाय वराहावतार में पृथ्वी को उठाया, हिरण्याक्ष का वध किया। नृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का वध, वामनावतार में बलि-बन्धन, पुनः इन्द्र को त्रिभुवन का अधीश्वर बनाया। रामावतार में रावण-वध, परशुरामावतार में क्षत्रियकुलोच्छेद, कृष्णावतार में कंस-वध, कलियुग में बुद्ध रूप धारण, कलियुग की समाप्ति पर कल्कि रूप धारण करके म्लेच्छों का विनाश करेगें।

अनन्त शय्या पर भगवान् विष्णु योगनिद्रा का आश्रय लेकर सोये हुए थे। उनके कर्ण से स्वेद की दो बूँदें जल में गिरती हैं, जिससे मधु-कैटभ नामक दैत्यद्वयोत्पत्ति होती है। नाभि के मध्य भाग में बृहत्कमल प्रकट होता है, जिससे ब्रह्मोद्भव होता है। वेदों और शास्त्रों की सहायता से ज्यों ही वे सृष्टि-संरचना के लिए उद्यत होते हैं, त्यों ही मधु और कैटभ उनके वेद और शास्त्र ज्ञान को लेकर चले गये। वह शोकाकुल हो गये। ब्रह्माजी, पुरुषोत्तम का शास्त्रानुकूल स्तवन करते हैं। भगवान् विष्णु ने पूर्ण ज्ञानमय मत्स्य रूप धारण किया

और वेदों का उद्धार किया। क्रुद्ध उन दोनों ने भगवान् केशव को युद्ध के लिए ललकारा! अपने शार्ङ्ग धनुष के तीक्ष्ण प्रहारों से उन दोनों का प्राणान्त हो गया। दानवद्धय के मेदे से इस पृथ्वी का निर्माण किया। अतएव, इस वसुन्धरा का नाम "मेदिनी" हुआ।

देवासुर-सङ्ग्राम में पराजित देव-समुदाय, विष्णु के शरण में जाते हैं। भगवान् ने दानवों के साथ सन्धि की और समुद्र-मन्थन की वार्ता की। मन्थन के प्रारम्भ में ही मन्दराचल जलमग्न हो गया। विष्णु ने समस्त लोकों के कल्याणार्थ, सहसा कूर्म रूप धारण करके सर्वप्रथम मन्दर पर्वत को स्थिर किया। कालकूट, ऐरावत, ऊच्चैःश्रवा, उर्वशी, पारिजात, चन्द्रमा प्रभृति दिव्य रत्न, आभूषण और सहस्रों गन्धर्व उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् भगवान् धन्वन्तरि अमृत घट लेकर प्रकट होते हैं। उस अमृतपूर्ण घट लेकर दानववृन्द इच्छानुसार अग्रेसर होकर प्रस्थान करते हैं। भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके उस अमृतकलश को देवों को प्रदान किया। पान करके देववृन्द महावीर्यवान् हो गये। फलतः, युद्ध में विजयश्री प्राप्त की।

कश्यप से दिति-पुत्र के रूप में 'हिरण्याक्ष' की उत्पत्ति होती है। वह अतीव पराक्रमी था। उसका मानना था कि मर्त्य लोक में रहने वाले पुरुष यदि देवों का यजन करेंगें तो उनका बल, वीर्य और तेज का वर्धन होगा। इस विचार से वह पृथ्वी को जल के भीतर ही भीतर लेकर चला जाता है। श्रीहरि ने वराह रूप धारण करके युद्ध में उसको पराजित किया। अपनी शक्तिशाली दाढों के अग्र भाग से पृथ्वी का उद्धार करते हुए उसकी पुनः स्थापना की। कोकामुख तीर्थ में वराह स्वरूप का परित्याग किया। वह वराह क्षेत्र उत्तम एवं गुप्त तीर्थ है।

प्राचीन काल में दिति पुत्र हिरण्यकशिपु अतीव प्रतापी दानव था। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट श्रीहरि ने उसे किसी वस्तु से न मरने का दुर्लभ वरदान दिया। वर प्राप्त वह मदोन्मत्त होकर युद्ध में देवों को पराजित करके स्वर्गलोक को आवास बनाता है। उसके विनाश के लिए समस्त देव समुदाय ने मुनि श्रेष्ठों द्वारा स्वस्ति वाचन और मङ्गलपाठ करके दैत्य-विनाश और स्वकीय ऐश्वर्य वृद्धि के लिए महादेव के नेतृत्व में क्षीर सागर के उत्तरी तट की ओर प्रस्थान किया तथा नानाविधात्मक स्रोतों द्वारा स्तवन और पूजन किया। भगवान् शङ्कर जी ने भी जनार्दन के पवित्र नामों द्वारा उनकी स्तुति की। श्रीहरि प्रसन्न होते हैं और हिरण्यकशिपु-वध का आश्वासन देते हैं।

हिरण्यकशिपु को तपस्यारत देखकर ब्रह्मा जी चिन्तित हो गये। नारद और पर्वत मुनि कलविङ्क पक्षी का स्वरूप धारण करके हिमालय पर्वत पर आते हैं, जहाँ वह तपस्या कर रहा था। वहीं एक वृक्ष की शाखा पर बैठकर नारद ने 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके मौन हो गये। वह कुपित होकर धनुष और बाण सन्धान करके जैसे ही प्रहार करना चाहा, पक्षि द्वय उड़कर अन्यत्र चले गये। हिरण्यकशिपु भी उस आश्रम को त्यागकर अपने नगर को लौट जाता है।

कयाधू के गर्भ से विष्णु भक्त प्रह्लाद की उत्पत्ति होती है। वैष्णवी भक्ति के कारण हिरण्यकशिपु बाल्यकाल से ही प्रह्लाद से द्वेष करता था। वह पुत्र से कहता है कि– सम्पूर्ण जगत् के सम्राट् का पुत्र होकर तू दूसरे को स्वामी बनाना चाहते हो। जो शूर-वीर हैं, वही लक्ष्मी का उपयोग करता है तथा वही प्रभु है, वही महेश्वर है, वही सबका देवाध्यक्ष है। जिस प्रकार वह त्रिजगज्जयी है। तुम ऐसे लोगों की स्तुति कर रहा हो, जो मेरी स्तुति करने वाले हैं। श्रीहरि की स्तुति विडम्बनामात्र है।

कुमारयोगी प्रह्लाद कालक्रम में समस्त विद्याओं के ज्ञान के साथ कुमारावस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में संसार के अन्य लोग प्रायः नास्तिक विचार और आचरण हीनता के पोषक बन जाते हैं। परन्तु प्रह्लाद को वैराग्य प्राप्त होता है। पिता ईश्वर-विरोधी स्वर एवं वक्तव्य को प्रह्लाद से सुनना चाहता है। प्रह्लाद कहता है कि भगवान् विष्णु का जिसमें गुणगान किया जाता हो, वही वचन नीतियुक्त है, वही सदुक्ति है, वही सुनने योग्य कथा और श्रवणीय काव्य है, वही शास्त्र है, वही अर्थशास्त्र है, जिसमें श्रीहरि का गुणानुवाद है। यह सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधानल से काँप उठता है। वह उनके यातनाओं से पीड़ित करने का आदेश देता है। वस्तुतः ये समस्त प्राकृत शास्त्र भगवद् भक्त का क्या कर सकते हैं। उनको व्याधि, राक्षस और ग्रह पीड़ित नहीं करते हैं। भयङ्कर गरलायुध सर्प भी काटने में समर्थ नहीं हो सके। जब तक हृदयगुहा में सूक्ष्मस्थ भगवान् विष्णु को नहीं प्राप्त कर लेता है। दैत्यराज, प्रह्लाद की कोई भी हानि नहीं कर सका। उसके पुरोहितों ने कहा कि– आपको क्रोध का परित्याग करके बालक पर दया करनी चाहिए, क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, परन्तु माता-पिता कभी भी कुमाता अथवा कुपिता नहीं होते।

प्रह्लाद, दैत्य पुत्रों से कहता है कि– धन, जन और स्त्री-विलास आदि से अत्यन्त रमणीय प्रतीत होने वाला सांसारिक वैभव, दूरतः त्याज्य है। शयनशील गर्भस्थ जीव को बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था में भी सुख नहीं है। दीपक पर मरने वाले पतंगों की भाँति सांसारिक भोगों में समासक्त होते हैं। किन्तु दुःखमय संसार में साधु पुरुष आसक्त नहीं होते हैं। अतएव, इस क्षणिक संसार का आश्रय क्यों लिया जाय। क्योंकि सबके भीतर भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं। भगवन्नामोच्चारण ही उनकी वास्तविक पूजा है। प्रह्लाद को राक्षसों ने नागपाशों से बाँधकर समुद्र में डाल दिया। प्रह्लाद के ऊपर पर्वतीय चट्टानें रख दी। समुद्र की तरङ्गों ने उसको सागर तट पर पहुँचा दिया। भगवान् की आज्ञा से गरुड ने सभी सर्पों को समाप्त कर दिया। प्रह्लाद श्रीहरि का स्तवन करता है। उनका साक्षात्कार होता है और देखते ही देखते प्रह्लाद के समक्ष ही वह तिरोहित हो जाते हैं। रोमाञ्चित एवं प्रसन्न चित्त प्रह्लाद शनैः शनैः गुरुगृह लौट आते हैं।

हिरण्यकशिपु को प्रह्लाद के जीवित लौटने का समाचार प्राप्त होता है। वह प्रह्लाद को बुलाता है और चन्द्रहास नामक अपनी अद्भुत तलवार खींचता है। प्रहार करते समय वह पुनः कहता है कि तेरा विष्णु कहाँ है ? आज वह तेरी रक्षा करे, यदि वह सर्वत्र विद्यमान है, यदि विष्णु को इस खम्भे में देख लूँगा तो तुझे नहीं मारूँगा। वह परमेश्वर का ध्यान करता है। दैत्यराज तलवार के आघात से स्तम्भ फट जाता है। उसके भीतर अत्यन्त रौद्र एवं महाकाय नरसिंह का भयानक स्वरूप परिलक्षित होता है। भगवान् नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का हृदयदेश विदीर्ण कर दिया। ब्रह्मादि समस्त देवों ने भगवान् नरसिंह के मस्तक पर पुष्पवर्षा करते हैं। ब्रह्मा जी प्रह्लाद को दैत्यराज के पद पर अभिषिक्त किया। नृसिंह भगवान् श्रीशैलशिखर पर चले जाते हैं।

विरोचनपुत्र बलि महान् शक्तिशाली और पराक्रमी राजा था। उसके कारण समस्त देवगण श्रीहीन हो गये थे। अदिति ने कश्यप से गर्भ धारण किया। उस गर्भ से वामन रूप में साक्षात् भगवान् प्रकट होते हैं। देवमाता की आज्ञा से ब्रह्मचारी स्वरूपधारी भगवान्, राजा बलि की यज्ञशाला में जाते हैं। चलते समय उनके चरणों के आघात से पृथ्वी काँप उठती थी। शुक्राचार्य ने बताया कि इस समय का होम मन्त्र असुरों की सम्पत्ति को नष्ट कर रहा है। देवों का उत्तम वैभव श्रीसम्पन्न हो रहा है। वामनदेव को कुछ देने की प्रतिज्ञा मत करना। राजा बलि ने कहा कि वह माँगने पर सर्वस्व प्रदान करेगा। भगवान् वामन ने उसकी यज्ञशाला में प्रवेश किया। राजा बलि ने सहसा उठकर पूजन-सामग्रियों से उनकी पूजा की। भगवान् को कुछ याचना के लिये कहा। भगवान् वामन ने अग्निशाला के लिए मात्र तीन पग भूमि माँगी। राजा बलि सहर्ष स्वीकार कर लेता है। वामन जी ने क्षणमात्र में ही अपना विराट् स्वरूप धारण किया। एक पग से सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, द्वितीय पग से अन्तरिक्ष लोक तथा तृतीय पग से स्वर्गलोक को आक्रान्त कर लिया। अनेक दानवों का संहार करके त्रिभुवन राज्य का राज्य छीन लिया और बलि को उत्तम पाताल लोक का राज्य प्रदान किया। त्रिभुवन का राज्य इन्द्र को समर्पित करके भगवान् क्षीर सागर को चले जाते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में परशुरामावतार की कथा वर्णित है। दुष्ट राजाओं के विनाश के लिए, जमदग्नि मुनि के पुत्र के रूप में परशुराम का अवतार होता है। एक बार जमदग्नि के आश्रम में कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ आता है। मुनि ने यथायोग्य स्वागत किया। प्रातःकाल कार्तवीर्य ने अपने पुरोहित से पूछा कि– यह महात्मा जमदग्नि मुनि के तप की शक्ति थी अथवा कामधेनु गौ की। पुरोहित ने बताया कि– 'राजन् ! मुनि में भी सामर्थ्य है। परन्तु यह सिद्धि तो गौ की ही थी। आप लोभवश उस गौ का अपहरण न करें, अन्यथा विनाश हो जायेगा। मन्त्री ने उस मुनि का वध करके गौ को ज्यों ही ले जाना चाहा, वह आकाश मार्ग से चली गई और राजा क्षुब्ध होकर माहिष्मती नगरी में लौट आता है।'

माता से समस्त घटित घटना को जानकर "इस भूमण्डल के क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करूँगा"- और इस प्रकार प्रतिज्ञा करके माहिष्मती पुरी में जाकर राजा कार्तवीर्य अर्जुन को ललकारा। दोनों में भयानक एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होता है। उसकी समस्त भुजाएँ काटकर, मस्तक भी शरीर से पृथक् कर दिया। इस प्रकार इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करके सम्पूर्ण पृथ्वी महात्मा कश्यप जी को दान कर दी।

प्रस्तुत अध्याय में श्रीराम के जन्म से लेकर विवाह पर्यन्त चरित्र-चित्रण है। विश्रवा का पुत्र राक्षसाधिपति रावण लङ्कापुरी का राजा था। समस्त चराचरात्मक जगत् उसके भय से भयभीत एवं आक्रान्त था। देववृन्द, ब्रह्मा और शङ्कर जी को आगे करके भगवान् वासुदेव विष्णु की आराधना तथा स्तवन किया। आप ही उस दुरात्मा रावण का वध करने में समर्थ हैं। अतः आप ही उसका वध करें।

अयोध्या नरेश दशरथ से उनके तीनों रानियों के गर्भ से-राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के रूप में प्रकट हुए। अल्पकाल में ही वेदशास्त्र और अस्त्रविद्या भी सीख ली थी। महातपस्वी विश्वामित्र ने अपनी यज्ञशाला के रक्षणार्थ दशरथ से माँगकर राम और लक्ष्मण को अपने साथ लेकर गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। सर्वप्रथम विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को 'बला' तथा 'अतिबला' नाम की दो विद्याएँ प्रदान की। समस्त अस्त्र-समुदाय की शिक्षा दी। ताड़का वन में मुनि की आज्ञा से राम ने 'ताड़का' नामिका महाभयङ्करी राक्षसी का वध किया। तत्पश्चात्, राम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र अपने सिद्धाश्रम पर पहुँचते हैं। मुनि ने दोनों राजकुमारों को विशेष रूप से शिक्षा देकर यज्ञ की रक्षा के लिए नियुक्त किया। रावण के द्वारा नियुक्त मारीच, सुबाहु तथा अन्य यज्ञ-विध्वंसक दानवदल का, दोनों राजकुमारों ने अन्त कर दिया। सन्तुष्ट देवों ने भगवान् राम पर पुष्पवृष्टि करते हैं। वन मार्ग में स्थित, पति गौतम द्वारा अभिशप्त, प्रस्तरमयी अहल्या की शाप से विमुक्ति, विश्वामित्र का दोनों राजकुमारों के साथ मिथिला की ओर प्रस्थान, सीता-स्वयंवर में सम्मिलित, मिथिलाधिपति जनक द्वारा-"राजकुमारों ! जिसके खींचने से यह शैव धनुष टूट जायेगा, सर्वाङ्गसुन्दरी-सीता उसी की धर्मपत्नी होगी"- की गयी घोषणा, राम के द्वारा धनुष-भङ्ग, अन्य असफल, असन्तुष्ट राजाओं द्वारा राम पर आक्रमण, श्रीराम का लक्ष्मण के साथ लीलापूर्वक सामना करना, भयभीत राजाओं का वहाँ से पलायन आदि महत्त्वपूर्ण घटनाएँ वर्णित हैं। राजा जनक ने महावीर श्रीराम और लक्ष्मण को राजभवन में प्रवेश कराया। अपनी रानियों और पुत्रों के साथ अयोध्या में दशरथ की उपस्थिति में विधिपूर्वक राम-सीता का तथा अन्य तीन कन्याओं का लक्ष्मण आदि तीन भाइयों के साथ, पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न होता है।

"राम अपनी प्रबल सेना के साथ अयोध्यापुरी लौट रहे हैं" सुनकर परशुराम मार्गावरोध करते हैं। राम ने उन्हीं के समक्ष धनुष-प्रत्यञ्चा का टङ्कार करते हैं। परशुराम के शरीर से वैष्णव तेज निकलकर समस्त लोगों की उपस्थिति में श्रीराम के मुख में समा

गया। परशुराम जी कहते हैं– प्रभो ! आप साक्षात् विष्णु हैं, अपने देव-कार्यसिद्धि, दानव-विनाश और साधु पुरुषों का पालनादि महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न कीजिए तथा स्वयं तपोवन महेन्द्राचल की ओर प्रस्थान करते हैं। अयोध्यापुरी में प्रवेश करके विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को समर्पित करके अपने श्रेष्ठ सिद्धाश्रम की ओर चले गये।

राजधानी अयोध्या पहुँचने पर सम्पूर्ण पुरवासी सीता सहित श्रीराम का स्वागत करते हैं। रघुकुल नायक राम सभी भाइयों के साथ प्रसन्नतापूर्वक अयोध्या में सानन्द निवास कर रहे हैं। उधर उनके राज्याभिषेक की पूर्ण तैयारी हो रही है। विश्वसुन्दरी नवोढा की भाँति अयोध्यापुरी सुसज्जित है, पुरवासी परम प्रसन्न हैं; राजमाताएँ अतीव प्रफुल्लित हैं, भृत्य और मन्त्री-समवाय कार्यरत हैं, चतुर्दिक् हर्षोल्लास है, वहीं दूसरी ओर, दासी मन्थरा की कुमन्त्रणा से समुत्प्रेरित कैकेयी उदास है। उस कलह प्रिया ने– "श्रीराम कल प्रातः ही १२ वर्षों तक वनवास और अब राज्य एवं राज्याभिषेक भरत का होगा-पति दशरथ से दो वरदानों की माँग की।"

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रथम मिलन गुह के साथ होता है। नाव द्वारा पुण्यसलिला गङ्गा को पार करके प्रयागस्थ भरद्वाज आश्रम पर आगमन, पुत्र शोक सन्तप्त दशरथ की मृत्यु, भरत द्वारा और्ध्व देहिक संस्कार, श्रीराम का अन्वेषण करने के लिए सेना सहित भरत का प्रयाण, महामुनि भरद्वाज के द्वारा– 'श्रीराम इस समय चित्रकूट की वनखण्ड में निवास कर रहें हैं'– भरत को सङ्केत, वहाँ पहुँचकर, भरत, मन्त्री, राजमाताएँ एवं स्नेहिल प्रजा समुदाय द्वारा शोकविह्वल होकर रुदन, राम का भरत को आदेश महामते, भरत ! शीघ्र अयोध्या जाओ और राजा से विहीन हुई उस अनाथ नगरी का पालन करो। दुःखी भरत भगवान् राम को बारम्बार प्रणाम और उनकी चरण-पादुकाएँ अपने सिर पर रखकर अयोध्या की ओर उन्मुख होते हैं। वहाँ पहुँचकर विशुद्ध हृदयवाले भरत श्रीराम के आदेश का पालन करते हुए नन्दिग्राम में रहकर पृथ्वी के शासन-भार वहन करने लगे।

तपोनिष्ठ राम एक दिन चित्रकूट पर्वत के वन में सीता जी की गोद में कुछ देर तक सोये रहे। एक दुष्ट कौआ ने सीता पर चञ्चु प्रहार किया, जिससे घाव हो गया। वह दुष्ट काक वृक्ष पर बैठ जाता है। श्रीराम रक्त-स्राव का कारण पूछते हैं। सीता जी ने बताया कि इसी अधम ने ऐसा किया है। सींक का बाण बनाकर ब्रह्मास्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके लक्ष्य की ओर श्रीराम ने प्रेरित किया। वह काक इन्द्रलोक आदि स्थानों में जाता है। कहीं शरण स्थल नहीं प्राप्त करता है। वह राम के शरण में आता है। उनके कहने से वह अपना एक नेत्र प्रदान करता है। एक नेत्र को भस्म करके वह अमोघ बाण लौट जाता है। तभी से सभी काक एक आँख से ही देखते हैं।

चिरकाल तक चित्रकूट में निवास के पश्चात्, सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ 'अश्मकुट्ट' 'दन्तोलूखली' कहे जाने वाले मुनियों, पञ्चाग्नि का प्रतिदिन सेवन करने वाले ऋषियों का दर्शन करके श्रीराम ने साष्टाङ्ग प्रणाम और उनका अभिनन्दन किया। वहाँ से शरभङ्ग मुनि, सुतीक्ष्ण और अगस्त्य मुनि के आश्रम में श्रीराम जाकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। वहाँ से आकर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के साथ पञ्चवटी में रहने लगे। सीता की रक्षा का भार जटायू पर है। एक बार वहाँ कामपीड़िता शूर्पणखा आती है। अपने विवाह का प्रस्ताव करती है। लक्ष्मण के द्वारा उसका नाक और कान का उच्छेद, शूर्पणखा का अपने भाई खर-दूषण और त्रिशिरा के पास जाना और अपनी व्यथा-कथा प्रकट करना, श्रीराम के द्वारा समस्त राक्षसों का वध, शूर्पणखा का भाई रावण के पास जाना, रावण द्वारा मामा मारीच के साथ सीतापहरण की योजना, स्वर्णिम माया मृग रूपधारी मामा की सहायता से सन्यासी वेषधारी रावण के द्वारा सती सीता का विमानारोहण, सीता का अरण्यरोदन सुनकर गृध्रराज जटायु का सहायतार्थ आगमन, रावण के द्वारा 'चन्द्रहास' नामक विशाल खड्ग से जटायु पर प्रहार, सीता के द्वारा समस्त आभूषणों को उतारकर पृथ्वी पर गिराना, राम और लक्ष्मण के द्वारा सीता का अन्वेषण, सूर्यकुमार वानरराज सुग्रीव के साथ राम की मैत्री, राम के द्वारा शबरी का उद्धार आदि महत्त्वपूर्ण घटित घटनाओं का सविस्तर वर्णन किया गया है। भगवान् राम सीता के वियोग से अतीव दुःखी होकर दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं।

सन्यासी वेषधारी हनुमान् जी का ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीराम के साथ मिलन, श्रीराम के द्वारा वालि-वध, श्रीराम की नीलकण्ठ नामक पर्वत पर वसति, सुग्रीव के द्वारा सीता के अन्वेषण में भिन्न-भिन्न दिशाओं में वानरों का सम्प्रेषण, समस्त पर्वतों के उपत्काओं और शिखरों पर, सभी नदियों के तटों पर, महामुनियों के आश्रमों में, वनों और उपवनों में, वृक्षों और वृक्षगुल्मों में, कन्दराओं और शिलाओं में, सह्यपर्वत, विन्ध्याचल तथा सामुद्रिक तटों पर, हिमालय पर्वत पर किम्पुरुष आदि देशों में, समस्त मानवीय प्रदेशों में, सातों पातालों में, सम्पूर्ण तीर्थ स्थानों में तथा सातों कोङ्कण देशों में भी यत्र-तत्र-सर्वत्र सीता का अन्वेषण, जाम्बवान्, अङ्गद और हनुमान् आदि वानर राजाओं के साथ गृध्रराज सम्पाति का मिलन, 'सीता जी लङ्का में अशोक वन के भीतर अवस्थित हैं' ऐसा सम्पाति के कथन पर सभी का पूर्ण विश्वास, सघन विचार-विमर्शोपरान्त अञ्जनी कुमार हनुमान् जी का निशाचरपुरी लङ्का में जाने का निश्चय आदि घटनाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख है।

पवनपुत्र हनुमान् जी, लक्ष्मण सहित राम का स्मरण करके, महेन्द्र पर्वत को पैरों से पीड़ित करके शिखर से आकाश की ओर उद्गमन किया। समुद्र-मध्यस्थ मैनाक पर्वत से वार्तालाप करते हुए मार्ग में सिंहिका नाम की राक्षसी के मुखछिद्रों से बाहर निकलकर, समुद्रोल्लंघन करते हुए त्रिकूट पर्वत के सुरम्य शिखर पर एक महान् वृक्ष के ऊपर स्थित

होते हैं। सायंकालीन सन्ध्योपासना के पश्चात् रत्नमयी लङ्कापुरी में प्रवेश किया। वहाँ हनुमान् जी ने– विविध आभूषणों से समलङ्कृत सहस्र सुन्दरियों के साथ शयनशील रावण, बहुत सी स्त्रियों के साथ कामपीड़ित रावण का सीता जी को अपने पक्ष में आकर्षिक करना और न मानने पर मार डालने की चेतावनी के साथ उसका गमन, भयभीता सीता जी को त्रिजटा नामक राक्षसी के द्वारा आश्वासन आदि दुःखप्रद दृश्यों को-देखा।

परिस्थिति को अनुकूल देखकर हनुमान् जी ने सीता जी को रामनामाङ्कित अंगूठी को प्रदान किया और समस्त समाचारों से भी अवगत कराया। उन्होंने सीता जी को नमस्कार करने के पश्चात् वहाँ से प्रस्थान किया।

रावण के क्रीड़ावन को नष्ट-भ्रष्ट करके, राक्षस सेना, सेनापतियों और अक्षकुमार का संहार करके सम्पूर्ण लङ्का को जलाकर भस्म कर दिया। पुनश्च समुद्र के इस पार आकर, भगवान् राम और लक्ष्मण को प्रणाम पूर्वक सीता जी के शील, सदाचार तथा कुशलता के समाचार को विनम्र भाव से निवेदन किया। मणिमय चूड़ामणि आभूषण को भी प्रदान किया। धर्मपत्नी सीता जी के वृत्तान्त को सुनकर भगवान् राम हनुमान् जी को गले से लगाकर रुदन करते हैं।

भगवान् राम का लक्ष्मण और वानर सेना के साथ समुद्र तट पर गमन, विभीषण की शरणागति और लङ्का राज्य की प्राप्ति, सेतुबन्ध के पश्चात् समुद्र का श्रीराम को लङ्का प्रवेश के लिए मार्ग देना, वानर सेना के साथ श्रीराम का सुवेल पर्वत पर निवास, लक्ष्मण की प्रेरणा से श्रीराम का अङ्गद की प्रशंसा करना, अङ्गद को वीरोचित उद्गार और दौत्यकर्म, वानर सेना के द्वारा राक्षसों का संहार, कुम्भकर्ण का वध, रावण की शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण का हनुमान् जी के द्वारा पुनर्जीवन, राम-रावण-युद्ध, रावण-वध, देवों द्वारा श्रीराम की स्तुति, सीता के साथ अयोध्या में आगमन, श्रीराम का राज्याभिषेक और अन्ततः पुरवासियों के साथ श्रीराम का परम धाम गमन प्रभृति वृत्तान्त का प्रस्तुत अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

आगे के अध्याय में बलराम और श्रीकृष्ण-अवतार के विषय में वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम, ब्रह्मा जी द्वारा अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य, अविनाशी और सर्वान्तर्यामी भगवान् केशव की स्तुति की गयी है। देवाधिदेव श्रीहरि ने सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का संहार करने के लिए अपनी गौर (बलराम) और कृष्ण (भगवान् श्रीकृष्ण)– दो महाशक्तियों की उत्पत्ति की।

बाल्यकाल में ही राम ने एक पक्षीरूपधारिणी राक्षसी को मारा और कृष्ण ने 'पूतना' का संहार किया था। राम ने तालवन में उसके गणों सहित 'धेनुक' नामक राक्षस को और श्रीकृष्ण ने भी 'यमलार्जुन' नामक वृक्ष द्वय को उखाड़ दिया था। राम ने 'प्रलम्ब' नामक राक्षस का और श्रीकृष्ण ने विषैले सर्प 'कालिय' का दमन किया। उन्होंने अरिष्टासुर और

अश्वरूप धारी असुर केशी का भी वध किया था। राम और कृष्ण ने मिलकर 'कुवलयापीड' नामक हाथी को मार गिराया था। रङ्गभूमि में बलराम जी ने पर्वताकार 'मुष्टिक' और श्रीकृष्ण ने 'चाणूर' नामक मल्ल को मार डाला। वहीं श्रीकृष्ण ने 'कंस' का वध और बलराम ने उसके भ्राता 'सुनाभ' को यमलोक भेज दिया। इसी प्रकार, मगधराज जरासन्ध और राजा शृगाल का वध तथा राजा मुचुकुन्द को वरदान प्रदान कर द्वारकापुरी में पदार्पण करते हैं। बलराम जी 'रेवती' और श्रीकृष्ण 'रुक्मिणी' के साथ सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

पुनः अगले अध्याय में कल्किचरित्र और कलि-धर्म पर प्रकाश डाला गया है। जब पृथ्वी पर धर्म-विनाश, पाप-वर्धन, रोगपीडित जनसमुदाय, वर्णचतुष्टय में, संस्कार, विचार और आहार, आचरण तथा वर्णसङ्कर प्रभृति मानवीय गुणों का पूर्ण अभाव होगा, अश्वारोही, खड्गधारी 'कल्कि' नाम से सुप्रसिद्ध, भगवान् विष्णु के अंशभूत, विष्णुयशा के पुत्र रूप से अवतरित होगें और म्लेच्छों का विनाश करेगें।

सर्वत्र समाज में वैपरीत्यभाव का राज्य होगा। पुरुषों की संख्या कम और स्त्रियों की संख्या अधिक, श्वानों की अधिकता और गोवंश का ह्रास, लोकैषणा, धनैषणा अधिक और अध्यात्म के प्रति नगण्य होगी। पुत्र पिता से, शिष्य गुरु से, स्त्रियाँ अपने पतियों से द्वेष करेंगी। वेद-विरूद्ध आचरण, स्वधर्म-परित्याग, वर्ण विपरीत आजीविका और परस्पर धनापहरण होगा।

कलियुग के दोष-वर्णन के साथ-साथ कलियुग के महत्त्व पर भी विचार प्रस्तुत है। सत्ययुग में तपस्या प्रधान है और त्रेता में ध्यान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान का महत्त्व है। इसी प्रकार, जहाँ सत्ययुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञों द्वारा यजन, द्वापर में पूजन और वहीं कलियुग में मात्र भगवत्कीर्तन से सर्वस्व की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि भगवान् विष्णु का नामकीर्तन, समस्त दुःखों को दूर करने वाले और सम्पूर्ण पुण्यफलों को देने वाला है।

पूर्वकाल में भगवान् वामन ने दैत्यगुरु शुक्राचार्य की एक आँख छेद डाली थी। वह अनेक तीर्थों का भ्रमण और भगवच्चिन्तन में तल्लीन हो जाते हैं। शुक्राचार्य जी, परम शान्त, सनातन, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं। देवदेवेश्वर जनार्दन भगवान् ने उनके फूटे हुए नेत्र का स्पर्श किया और वह पूर्ववत् निर्मल हो गयी।

आगे अध्याय में चक्रपाणि भगवान् विष्णु की मूर्ति-स्थापन-विधि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रों में भूमि-शोधन-कार्य, प्रस्तर, इष्टक अथवा मृण्मय से वास्तुशास्त्र विद्या पारङ्गत शिल्पी से भव्य भगवन्मदिर का विनिर्माण, पूर्वाभिमुख द्वार पर, चित्र शिल्पकारों के द्वारा फलयुक्त वृक्ष, कुमुद तथा कमलदल चित्रित चित्र, पुराणोक्त दिव्य प्रतिमा-निर्माण, दक्षिणा भुजा में सूर्य सदृश चक्र,

वाम भुजा में चन्द्र सदृश श्वेत, कान्तिमय पाञ्चजन्य शङ्ख, कल्याणप्रद सुन्दर हाथ, त्रिवली चिह्न से चिह्नित कण्ठ में भव्य हार, समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर और सम, कटि प्रान्त पर वाम हस्त, दक्षिण हस्त में कमल, बाहुओं में भुजदण्ड, त्रिवली से युक्त सुन्दर नाभि, पीतवस्त्र विभूषित मेखला से युक्त कमर, शुभ मुहूर्त में प्रतिमा-स्थापन करनी चाहिए। मन्दिर के समक्ष उत्तम यज्ञ-मण्डप, पुरुषसूक्त, देवसूक्त अथवा पवमान सूक्त-वाचन, विष्णु भक्तों द्वारा प्रतिमा-शृङ्गार एवं विप्रों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करना चाहिए।

इस प्रकार जो भगवान् विष्णु की मूर्ति-प्रतिष्ठा करता है, वह सर्वपाप-विमुक्त, भगवत्तत्त्वज्ञान सम्पन्न होकर विष्णु स्वरूप में लीन हो जाता है।

जो परोपकारी, गुरुशुश्रूषा में सदैव तल्लीन, वर्णाश्रमाचार से सम्पन्न, प्रियंवद, वेद-वेदार्थतत्त्वज्ञ, क्रोधरहित, परम शान्त, सौम्यवदन, नित्य धर्मपरायण, सर्व सांसारिक कामना विमुक्त, यथाशक्ति अतिथि-सेवा-संलग्न, बहुश्रुत, क्षमावान् हैं, भगवन्नामकीर्तन-श्रवण करते समय रोमाञ्चित, विष्णु-पूजन में तत्पर एवं समादर रखने वाले हैं, वस्तुतः ऐसे महात्मा विष्णु भक्त हैं। वर्णाश्रम से सम्बन्धित सनातन धर्म-वर्णन, नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्मों का अनुष्ठान आदि विषयों पर विशद प्रकाश डाला गया है।

राज्यपद पर स्थित क्षत्रिय राजा का प्रधान धर्म प्रजापालन है। भलीभाँति वेदाध्ययन, विधिपूर्वक यज्ञ, यथाशक्ति दान, स्वकीय स्त्री में अनुरक्ति, परदाराओं में विरक्ति, नीतिशास्त्र, सन्धि-विग्रह के तत्त्वों को जानने वाला, पितृ-पूजन एवं श्राद्धादि कर्मों में निपुण होना चाहिए। वैश्य को चाहिए कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि, व्यापार, दान, गुरु-सेवा, जीविका के लिए कृषिकर्म, धर्मपालन एवं भगवान् श्री नृसिंह देव का पूजन करना चाहिए। शूद्र को प्रयत्नपूर्वक वर्णत्रय की सेवा, जीविका के लिए कृषिकर्म और तन-मन-धन से सदाचरण करना चाहिए।

उपनयन-संस्कार हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचर्यव्रती बालक को सदैव गुरुकुल में निवास, मन, वाणी और कर्म से गुरु का प्रिय और हितकार्य, गुरुपूजा एवं शुश्रूषा ब्रह्मचर्यपालन, भूमिशयन, मृगचर्म-धारण, पलाशदण्ड, मेखला और उपवीतधारण, नृत्य-गीत-कथालाप-मैथुनादि का परित्याग, वेदाध्ययन प्रभृति कार्य करना चाहिए। यदि ब्रह्मचर्यवान् ब्राह्मण हो तो वह विवाह न करके सन्यास ले सकता है। समावर्तनसंस्कार से युक्त होना चाहिए। वर्णधर्मानुसार विवाह, प्रातःकालजागरण, सन्ध्योपासन, वन्दन, कुश और तिलों द्वारा देव, ऋषि और पितरों का तर्पण, एकाग्रतापूर्वक कुशासनस्थ होकर शास्त्रोक्तनियमानुसार प्राणायाम और त्रैकालिक सन्ध्योपासन करना चाहिए। गृहस्थ को विधिपूर्वक स्वर्णदान, गोदान अथवा भूमिदान करना चाहिए।

प्रस्तुत अध्याय में वानप्रस्थ-धर्म का वर्णन है। गृहस्थ पुरुष को समस्त गृहस्थ-जीवन सम्बन्धित भार को सौंप कर अपने शिष्यों के साथ वन में प्रवेश करना चाहिए। त्रिकाल

में सन्ध्योपासन, जटा-चीर-वस्त्र-नख, लोमादि धारण, ग्रीष्मर्तु में पञ्चाग्निसेवन, वर्षर्तु में आकाशतलसमययापन, संयम-नियमपूर्वक समाधिस्थ होकर तप का अनुष्ठान करना चाहिए।

पुन आगे यतिधर्म का उल्लेख है। वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश, देव-ऋषि एवं पितरों के लिए दिव्य श्राद्ध-सामग्री का दान, कौपीन, आच्छादन, शीतनिवारिणी कुशा और चरणपादुका आदि सामग्री का सेवन तथा अन्य वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए। पूर्वाभिमुख होकर मौनपूर्वक 'पूरक', 'कुम्भक' और रेचकादि प्राणायाम, गायत्री-जप, सन्ध्याकाल में भिक्षाटन, पर्णपात्र में भोजन एवं नित्य-नैमित्तिक कर्म करना चाहिए। कांसे के पात्र में भोजन करने वाले सभी यति 'पलाश' कहलाते हैं। वह गृहस्थ के समान ही होता है। यथासयम, सान्ध्यकालिक नियमों का पालन करते हुए देवालय में रात्रि-वास करना चाहिए और अपने हृदयकमलासन पर भगवन्नारायण का ध्यान करना चाहिए।

वर्णचतुष्टय और आश्रमचतुष्टय के धर्म-स्वरूप वर्णन के पश्चात् योगशास्त्र का उत्तम सारांश प्रस्तुत है जिसके अभ्यास से मुमुक्षु पुरुष इसी जन्म में मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। योगाभ्यास-परायणपुरुष के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अतएव, प्रतिदिन प्राणायाम के द्वारा वाणी को, प्रत्याहार से इन्द्रियों को और धारणा के द्वारा दुर्धर्ष मन को वशीभूत करना चाहिए। आत्मसाक्षात्कार जन्य सुखप्रतीति अनुभव करते हुए श्रौत और स्मार्त कर्मों का आचरण करना चाहिए। तपस्वी के तप और विद्या की सिद्धि परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। ज्ञान और कर्म से सनातन ब्रह्म-प्राप्ति सम्भव है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को वर्णोचित कर्मों का, वर्णाश्रमधर्म का पूर्णप्रतिपालन और वर्णधर्मानुसार भगवान् नरसिंह का पूजन और योगाभ्यासपूर्वक सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

ज्ञानियों और योगियों के लिए अपने-अपने हृदय में ही भगवान् की स्थिति है। अतएव, अग्नि, सूर्य, हृदय, स्थण्डिल और प्रतिमा- इन सभी आधारों में भगवान् का विधिपूर्वक मुनियों द्वारा पूजन करना चाहिए। पुरुषसूक्त की प्रथम ऋचा से आवाहन, दूसरी ऋचा से आसन, तीसरी ऋचा से पाद्य, चौथी ऋचा से अर्घ्य, पाँचवी ऋचा से आचमन, छठी ऋचा से स्नान, सातवीं से वस्त्र, आठवीं से यज्ञोपवीत, नवमी से गन्ध, दसवीं से पुष्प, ग्यारहवीं से धूप, बारहवीं से दीप, तेरहवीं से नैवेद्य, चौदहवीं से स्तुति, पन्द्रहवीं से प्रदक्षिणा और सोलहवीं ऋचा से विसर्जन करना चाहिए।

विद्वान् पुरुष अग्नि में आहुति के द्वारा, जल में पुष्प के द्वारा, हृदय में ध्यान द्वारा और सूर्यमण्डल में जप के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन करते हैं।

पूर्वकाल की बात है कि देवराज इन्द्र के लिए देवलोक राज्य ही वैराग्य का कारण बन गया। एक दिन इन्द्र कैलास पर्वत पर यक्षराज कुबेर की प्राणवल्लभ चित्रसेना को देखता है। वह उसके अलौकिक एवं लावण्यमय शारीरिक सौष्ठव पर मुग्ध हो जाता है।

कामदेव अपने पुष्पमय धनुष पर बाण रखकर मोहन-मन्त्र का स्मरण करता है। वह कामासक्त होकर देवराज के कण्ठ का आलिङ्गन करती है। इन्द्र उसे लेकर देव-असुरों से अदृष्ट मन्दराचल की कन्दराओं में चला जाता है। उसकी सङ्गिनी स्त्रियाँ कुबेर को सूचित करती हैं। वह अपने भाई विभीषण के पास जाता है। ज्येष्ठ भ्राता विभीषण इस कार्य में मायाविनी 'नाडीजंघा' को नियुक्त करता है। वह अतीव मोहिनी स्वरूप को धारण करती है। उसके मधुर गीतलहरी को सुनकर देवेन्द्र कामातुर हो जाता है। वह इन्द्र की समस्त स्त्रियों को देखना चाहती है। वह माँग के अनुसार सभी स्त्रियों को दिखाता है। वह कहती है कि मात्र एक युवती को छोड़कर, आपने सभी को दिखा दिया। देवराज मन्दराचल की ओर उस रमणी के साथ जाते हैं। मध्यमार्ग में देवर्षि नारद का दर्शन होता है। वह उस रमणी को पहचान लेते हैं। इन्द्र, नाडीजंघा को मारना ही चाहते थे कि इतने में महात्मा तृणबिन्दु अपने आश्रय से निकलकर वहाँ आ जाते हैं। महात्मा के मना करने भी इन्द्र उसे मार डालता है। महात्मा ने इन्द्र को 'स्त्री' हो जाने का अभिशाप दिया। देव समुदाय ब्रह्मा जी से "जैसे पति के बिना नारी, सेनापति के बिना सेना और श्रीकृष्ण के बिना व्रज की शोभा नहीं होती है, उसी प्रकार, इन्द्र के बिना अमरावती सुशोभित नहीं होती है– ऐसी प्रार्थना करता है। ब्रह्मा जी ने उपाय बताया कि अष्टाक्षरमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के द्वारा भगवान् विष्णु की पूजा करो। इन्द्र एकाग्रचित्त से 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र का जप करो। इस मन्त्र का दो लक्ष जप हो जाने पर भगवान् विष्णु की कृपा से स्त्रीभाव से इन्द्र मुक्ति को प्राप्त किया। राजा सहस्रानीक भगवान् नृसिंह की आराधना करके विष्णु के अविनाशी पद को प्राप्त हो गये।"

सत्य, तपस्या, पवित्रता, सांख्य, योग, ज्ञान, क्षमा, दया, सरलता, दान, सम्यक् ज्ञान, वैराग्य अथवा अग्निष्टोम को ही पुरुषार्थ चतुष्टय मानते हैं। इसकी परिपुष्टि में एक कथा का उल्लेख है, जो इस प्रकार है– महामति पुण्डरीक जी एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे सदा ब्रह्मचर्याश्रमपालन, नियमानुसार सन्ध्योपासन, ब्रह्मविद्यापरायण, प्राणायाम-अभ्यास, गङ्गा-यमुना-गोमती-गण्डकी-सरस्वती-पयोष्णी आदि महानदियों के तट पर, विन्ध्याचल एवं हिमालय के तीर्थों में विधिपूर्वक भ्रमण, यम-नियम-आसनबन्ध-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान तथा समाधि के द्वारा योगाभ्यास करते थे। महात्मा पुण्डरीक को शालग्रामक्षेत्र में देवर्षि नारद को देखकर अतीव प्रसन्नता हुई। नारद जी ने बताया कि नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परमतत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। उनका ध्यान ही सर्वोत्तम ज्ञान है। वही ही वासुदेव, स्वयंभू, विष्णु, विज्ञान स्वरूप, परब्रह्म, सनातन जीव, परमात्मा, निरामय तत्त्व, क्षेत्रज्ञ, पुरुषोत्तम एवं सर्वेश्वर हैं। इस प्रकार, महात्मा पुण्डरीक ने निरन्तर "ॐ नमो नारायणाय" महामन्त्र का जप करते हुए परमोत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। भगवान् नारायण का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर महातेजस्वी ने भगवान्

पद्मनाथ का स्तवन किया। आप इस त्रिभुवन के गुरु और परमेश्वर हैं। अतः मैं आपकी शरण में आया हूँ।

भगवत्सम्बन्धी तीर्थों और उन तीर्थों से सम्बन्धित भगवन्नाम का उल्लेख है। कोकामुख क्षेत्र में वराह स्वरूप का, मन्दराचल पर मधुसूदन का, कपिलद्वीप में अनन्त, प्रभास क्षेत्र में सूर्यनन्दन, माल्योद पानतीर्थ में भगवान् वैकुण्ठ, ऋषभतीर्थ में महाविष्णु, द्वारका में श्रीकृष्ण, वल्लीवट में महायोग, चित्रकूट में भगवान् राम, नैमिषारण्य में पीताम्बर, वृन्दावन में गोपाल, मथुरा में स्वयंभू, केदारतीर्थ में माधव, वाराणसी में केशव, पुष्करतीर्थ में पुष्कराक्ष, देवशाला में त्रिविक्रम, दशपुर में पुरुषोत्तम, प्रयाग में योगमूर्ति, लोहित में हयग्रीव, उज्जयिनी में त्रिविक्रम, लिङ्गकूट पर चतुर्भुज और भद्रा के तट पर भगवान् हरिहर का दर्शन करके मानव सब पापों से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार, कुरुक्षेत्र में विश्वरूप, मणिकुण्ड में हलायुध, अयोध्या में लोकनाथ, चक्रतीर्थ में सुदर्शन, शूकरक्षेत्र में शूकर, त्रिकूट पर्वत पर नागमोक्ष, केरलतीर्थ में बाल स्वरूप, माहिष्मती में हुताशन, क्षीर सागर में पद्मनाभ, विमलतीर्थ में सनातन और गया में गदाधर का स्वरूप विद्यमान है।

गङ्गा, यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा और चर्मण्वती– ये पवित्र नदियाँ हैं। कुरुक्षेत्र, गया, पुष्करत्रय, अर्बुद और नर्मदा–ये परमपावन तीर्थ हैं। श्रीसह्य पर्वतस्थ आमलकतीर्थ, चक्रतीर्थ, शङ्खतीर्थ, कुण्डिकातीर्थ, पिण्डस्थानतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, धनुःपाततीर्थ, शरबिन्दुतीर्थ, वराहतीर्थ, आकाशगङ्गातीर्थ, प्रभृति तीर्थों का उल्लेख है। वस्तुतः, गङ्गा में सम्पूर्ण तीर्थ हैं, भगवान् विष्णु में सभी देव वर्तमान हैं, गीता सर्वशास्त्रमयी हैं और सभी धर्मों में जीवदया श्रेष्ठ है।[1]

जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और त्रयोदशी को रात्रि में उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तु की प्राप्ति होती है। एकादशी को दिन-रात उपवास करने का विधान है। यदि हस्त नक्षत्र से युक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रि में उपवास करके सौरनक्त-व्रत का पालन करना चाहिए। बृहस्पतिवार को त्रयोदशी तिथि होने पर अपराह्णकाल में स्नान करके तिल और तण्डुलों द्वारा देवता, ऋषि पितरों का तर्पण करना चाहिए। देवदेवेश्वर नरसिंह के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण पापों का विनाश और मानव को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्रस्तुत परम पावन 'नरसिंह पुराण' सर्वपापहर, सर्वदुःखनिवारण, सर्वयज्ञफलप्रद एवं सर्वकामद है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त से गोविन्द-गुण-गान करते हैं, उनको तीर्थ-सेवन,

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-६७, श्लोक- ४०-४१ "सकृत्तीर्थाद्रितोयेषु गङ्गायां तु पुनः पुनः। सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः।। ४० ।।" "सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वधर्मो दयापरः।। ४१ ।।"

गोदान, तपस्या और यज्ञानुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं। इसके पारायण से ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल एवं विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।

भाषा एवं शैली

सम्प्रति समुपलब्ध समस्त महापुराण एवं उपपुराणों के प्रचलित पाठ संस्कृत भाषा में ही प्राप्त हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी इसी भाषा में हैं। परन्तु पार्जीटर सदृश कुछ विद्वानों का अभिमत है कि इनमें यदा-कदा प्राकृत भाषा का भी प्रयोग किसी न किसी संस्करण में किया गया है।[1] यह कथन ऐकान्तिक, नितान्त भ्रामक एवं कपोल-कल्पित प्रतीत होता है। कीथ, जैकोबी, पुसाल्कर तथा बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों ने इस मत को असमीचीन माना है।[2] पुराणों को प्राचीनकाल से ही पञ्चम वेद के रूप में स्वीकृति प्राप्त है।[3] इनमें वैदिक-ब्राह्मण परम्पराओं, आख्यानों, धर्मशास्त्रादि विषयों को सर्वत्र सम्मिलित किया गया है। छन्दोऽनुशासनों का अनुपालन एवं व्याकरणात्मक नियमों का परिपालन, पौराणिक वंशानुचरितात्मक विषय-वस्तु-निष्पादन की तुलना में गौण लक्ष्य प्रतीत होता है। छन्दोभङ्गता तथा व्याकरणात्मक त्रुटियाँ अर्थ-सम्प्रेषणता के कारण नगण्य-सी हैं। यह दूषण नहीं, अपितु भूषण ही हैं। निष्कर्षतः, पुराणों की मूल भाषा संस्कृत थी और आचार्य बलदेव उपाध्याय ने उसे वेदों एवं काव्यों की भाषा से पृथक् ही माना है।[4] अर्थ प्राधान्य ही पुराण का प्राण तत्त्व है, क्योंकि इनका अर्थ सम्प्रेषण पर ही सर्वस्व आग्रह है।

कथनोपकथनात्मक, सूत एवं व्यास परम्परा-सम्पृक्त भाषा-शैली में अतिशय रोचकता, सरसता, सरलता, समुत्सुकता एवं समाकर्षण और कथात्मक, परिसंवादात्मक मनोवैज्ञानिक आधार शिला को विकसित, संवर्धित, पल्लवित तथा पुष्पित करने की अद्भुत, विलक्षण प्रातिभशक्ति विद्यमान है। मूलतः, पुराणों का प्रधान लक्ष्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म वैदिक एवं औपनिषदिक धर्म, दर्शन और मानवीय लौकिक आचार-विचार और संस्कार आदि गहन, गम्भीर, रहस्यमय आध्यात्मिक कथ्यों तथा तथ्यों को जनसाधारण मानस स्थल तक सम्प्रेषण था। एतदर्थ, पुराणकारों ने सरल, सुबोध, नितान्त व्यावहारिक तथा अल्पाक्षरीय संस्कृत भाषा को माध्यम बनाकर वर्णनात्मक शैली का समाश्रयण ही प्रचार-प्रसार का विशेष मूलाधार था। जहाँ एक ओर, लोकानुरञ्जनात्मक नानाविध समुपयुक्त समुपवृंहणात्मक कथाओं का साधु सम्मेलन है, वहीं दूसरी ओर पाप-पुण्य, दुःख, लाभ-हानि सदृश द्वन्द्वात्मक उपदेशात्मक तथा सङ्गणनात्मक मिश्रण भी है।

---

१. डायनेस्टीज ऑव् दॅ कलि एज –पार्जीटर, पृष्ठ- ७७-८३

२. पुराण-विमर्श, –उपाध्याय, पृष्ठ- ५८२

३. छान्दोग्योपनिषद्, ७.१.२ "इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्"

४. पुराण-विमर्श, –उपाध्याय, पृष्ठ- ५८०

यद्यपि पुराणों की वर्णनात्मक शैली में अतिरञ्जना अथवा अतिशयोक्ति पूर्ण कथन बाहुल्य है, तथापि प्रस्तुत वर्णन-पद्धति पुराणों की विशिष्ट शैली मानी जा सकती है। उसे अतिशयोक्ति कथन शैली, रूपक कथन शैली एवं उपदेशात्मक कथन शैली के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सूर्य की किरणों में विद्यमान सप्त वर्णों को रङ्ग न कहकर सप्ताश्वों का रूपक प्रस्तुत किया गया है। अतिशयोक्ति शैली, वर्ण्य विषयों के प्रति रोचकता एवं उत्सुकता जागृत करने में सफल शैली मानी जा सकती है। अतिशयोक्ति पूर्ण कथन में अभिप्राय-ग्रहण ही यौक्तिक माना जाता है, न कि वर्णन-वस्तुतः, पौराणिक शैली की विशेषता को ध्यान में रखकर उनमें सम्प्रेषित अर्थ अथवा अभिप्राय को ग्रहण करने पर ही अधिक अभिरुचि रखनी चाहिए, जो चिरकाल तक भारतीय समाज के बहुसंख्यक जनमानस को समाकर्षित करने में सफल रही है।

नरसिंह पुराण में पञ्चलक्षणों की सङ्गति

नरसिंह पुराण में पञ्चलक्षण का निर्देशकात्मक श्लोक नैक बार आया है। जो इस प्रकार है–

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम्।।"[1]

वहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि पुराणों का लक्षण बताने के लिए यह एक श्लोक साधारणतया सभी पुराणों में कहा गया है।[2] यह श्लोक प्रायः सभी महापुराणों और उपपुराणों– वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, वामन, कूर्म एवं भविष्य प्रभृति-में प्राप्त होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद की सृष्टि), वंश-वर्णन, मन्वन्तर-वर्णन और वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र, कश्यप, दक्ष आदि के वंशों का सम्यक् निरूपण) पञ्चलक्षण कहलाता है।

अर्थात् सत्त्व, रज एवं तम गुणों की साम्यावस्था में जब क्षुब्धता पैदा होने लगती है तब महत् तत्त्व का प्रादुर्भाव होता है। इससे तीनों गुणों के अहङ्कार जागृत होते हैं। अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा (भूतमात्र) की उत्पत्ति होती है। इस प्रादुर्भाव-क्रम को 'सर्ग' कहा जाता है।

नरसिंह पुराण में वर्णन है कि उस ब्रह्म से प्रधान (मूल प्रकृति) का आविर्भाव हुआ। प्रधान से महत्तत्त्व (सात्विक, राजस, तामस) अहङ्कार शब्दतन्मात्र (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी), पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय एवं मन की उत्पत्ति होती है। प्रधानतत्त्व

१. नरसिंह पुराण, अध्याय- १, श्लोक- ३४ एवं अध्याय- ६८, श्लोक- १८
२. भविष्य पुराण, १.२.५-६, २.१.२५, ४.२.११

के अनुग्रह से एक अण्ड की उत्पत्ति होती है। पर्वत, द्वीप, समुद्र और ग्रह-ताराओं सहित समस्त लोक, देव, असुर और मनुष्यादि प्राणी सभी उसी अण्ड से ही प्रकट हुए हैं। ब्रह्मा रूप से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, रामादि अवतार धारण करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में रुद्र रूप में समस्त जगत् का विनाश करते हैं।[1] प्रस्तुत पुराण का प्रथम अध्याय ही "सर्ग निरूपणं नाम" से प्रसिद्ध है।

२. प्रतिसर्ग—पञ्चलक्षण में इसका मुख्य तात्पर्य प्रलय अथवा विलय से ही है, जिसमें सभी गुणों में समरूपता आ जाती है तथा उनकी क्षुब्धता समाप्त हो जाती है—"गुणानां साम्यावस्था विलयः।" नरसिंह पुराण के द्वितीय अध्याय में "नैमित्तिक प्रलय"[2] तृतीय अध्याय में 'प्राकृत एवं वैकृत' आदि नव सर्गों,[3] चतुर्थ[4] एवं पञ्चम[5] अध्याय में अनुसर्गों का वर्णन है।[6]

३. वंश—ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न भूत, भविष्य तथा वर्तमानकालिक नृपति कुलपरम्परा 'वंश' अभिधा प्रदान की गयी है।[7] इसके अन्तर्गत नृपति गणों के अतिरिक्त, प्रमुख देवों, कुलपतियों के वंश का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यह स्कन्द, ब्रह्मवैवर्त और भविष्य पुराण को छोड़कर सभी पुराणों में सविस्तर वर्णन है। नरसिंह पुराण के षष्ट अध्याय में अगस्त्य तथा वसिष्ठ के मित्रावरुण के पुत्र के रूप में उत्पन्न होने का प्रसङ्ग,[8] अष्टादश अध्याय में सूर्य द्वारा संज्ञा के गर्भ से मनु, यम, यमी, छाया के गर्भ से मनु, शनैश्चर एवं तपती की उत्पत्ति तथा अश्वारूप धारिणी संज्ञा से अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति,[9] बीसवें अध्याय

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय- १, श्लोक- ४१-६७ "तस्मात् प्रधानमुद्भूतं ततश्चापि महानभूत्। सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान्।। रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः। ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टौ प्रवर्तते।। सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना। नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत्।।"
२. नरसिंह पुराण, अध्याय- २ "सृष्ट्वा जगद्व्योमचराप्रमेयः, प्रजाश्च सृष्ट्वा सकलास्तथेशः। नैमित्तिकारण्ये प्रलये समस्तं, संहृत्य शेते हरिरादिदेवः।। २८ ।।"
३. वहीं, अध्याय-३ "प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।। २७।।"
४. वहीं, अध्याय-४ "देवाश्च दानवाश्चैव गन्धर्वोरगपक्षिणः। सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः।।६।।" "अनुसर्गस्य कर्तारो मरीच्याद्या महर्षयः। वसिष्ठान्ता महाभाग ब्रह्मणो मानसोद्भवाः।। ८।।"
५. वहीं, अध्याय- ५ "वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रि भुवनेश्वराः।। १०।।"
६. वहीं, अध्याय- १, आदिसर्गोऽनुसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव वक्ष्याम्यनु समासतः।। ३५।।—अर्थात् प्रतिसर्ग के स्थान पर "अनुसर्ग" का प्रयोग किया गया है।
७. भागवत, १२.७.१६ "राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।"
८. नरसिंह, अध्याय- ६ "स तत्र जातो मतिमान् वसिष्ठः, कुम्भे त्वगस्त्यः सलिलेऽथ मत्स्यः। स्थानत्रये तत्पतितं समानं, मित्रस्य यस्माद्वरुणस्य रेतः।। ३६।।"
९. वहीं, अध्याय-१८ "आदित्योऽपि संज्ञेयमिति मत्वा तस्यां जायां पुनरपत्यत्रयमुत्पादयामास। मनुं शनैश्चरं तपतीं..... ।। १४-१५ ।।"

में मारुतों की उत्पत्ति,[1] इक्कीसवें अध्याय में सूर्यवंश का वर्णन[2] एवं बाइसवें अध्याय में चन्द्रवंशीय नृपतियों का वर्णन है।[3]

४. मन्वन्तर–भागवत पुराण[4] के अनुसार मनु, देवता, इन्द्र, सप्तर्षि तथा भगवान् अंशावतार की घटनाओं एवं उनके कालमान को मन्वन्तर कहा जाता है–

"मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते।।"

पौराणिक परम्परा में एक कल्प में १४ मनु के प्रादुर्भाव को उल्लिखित किया गया है। इनके द्वारा क्रमशः भुक्तकाल को मन्वन्तर कहा जाता है। मन्वन्तरों के नाम और घटनाओं का उल्लेख प्रायः सभी पुराणों में उपलब्ध है। नरसिंह पुराण के तेइसहवें अध्याय में–(i) स्वायम्भुव, (ii) स्वारोचिष, (iii) उत्तम, (iv) तामस, (v) रैवत, (vi) चाक्षुष, (vii) वैवश्वत, (viii) सावर्णिक, (ix) दक्षसावर्णि, (x) ब्रह्मसावर्णि (xi) धर्मसावर्णि, (xii) रुद्रसावर्णि, (xiii) रुचि (देवसावर्णिक), (xiv) भौम (इन्द्रसावर्णिक)– चौदह मन्वन्तरों का श्लोक– प्रथम से लेकर ३४वें श्लोक तक वर्णन है। इक्कीसवें अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि– 'सर्ग' और 'अनुसर्ग' का वर्णन किया गया, विचित्र कथाएँ सुनाई गईं। इसके बाद, राजाओं के वंश, 'मन्वन्तर' तथा 'वंशानुचरित' का वर्णन किया जायेगा।[5] अब तक छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं, सातवाँ 'वैवस्वत' इस समय वर्तमान है।[6]

५. वंशानुचरित–ब्रह्मा द्वारा सृजित सृष्टि के प्रमुख वंशों में उत्पन्न विशिष्ट व्यक्तियों एवं नृपतियों के चरित्र-चित्रण को 'वंशानुचरित' कहा जाता है। भागवत पुराण (२४) में इसी आशय को इस प्रकार कहा गया है–"वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये।।" नृसिंह पुराण के २१वें अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि–

---

१. वहीं, अध्याय-२० "साम्प्रतं मारुतोत्पत्तिं वक्ष्यामि द्विजसत्तम।। १ ।।"
२. वहीं, अध्याय-२१ "सूर्यवंशभवा ये ते प्राधान्येन प्रकीर्तिताः।
यैरियं पृथिवी भुक्ता धर्मतः क्षत्रियैः पुरा।। १६।।"
३. वहीं, अध्याय-२२ "सोमवंशं शृणुष्वाथ भरद्वाज महामुने। पुराणे विस्तरेणोक्तं संक्षेपात् कथयेऽधुना।।१।।"
४. भागवत पुराण, १२.७.१५
५. नरसिंह पुराण, अध्याय- ५ "प्रतिसर्गं मुनीनां तु विस्तराद्वदतः शृणु।। ३ ।।" एवं "अनुसर्ग मरीच्यादेः कथयामि निबोध मे।। १६ ।।" नरसिंह पुराण, अध्याय- ४ "अनुसर्गस्य कर्तारो मरीच्याद्या महर्षयः।। ८ ।।", अध्याय- ५ "सर्गानुसर्गौ कथितौ मया ते।। ६७ ।।" नरसिंह पुराण, अध्याय- २३ "प्रथम तावत् स्वायम्भुवं मन्वन्तरं तत्स्वरूपं कथितम्।। १ ।।"
६. वही, अध्याय- २३ "सप्तमो वैवस्वतो मनुः साम्प्रतं वर्तते। तस्य पुत्र इक्ष्वाकुप्रभृतयः क्षत्रियाः भूभुजः।। १४ ।।"

"राज्ञां वंशः पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तितः।
संक्षेपात्कथयिष्यामि वंशमन्वन्तराणि ते।। २ ।।
वंशानुचरितं चैव शृणु विप्र महामते।
श्रृण्वन्तु मुनयश्चेमे श्रोतुमागत्य ये स्थिताः।। ३ ।।"

वस्तुतः, नरसिंह पुराण के २१वें अध्याय में 'सूर्यवंश-वर्णन', २२वें और २७वें अध्यायों में 'चन्द्रवंश-वर्णन', २६वें अध्याय में 'इक्ष्वाकु-सन्तति-वर्णन', २९वें अध्याय में 'शान्तनु-सन्तति-वर्णन', ३६वें अध्याय से लेकर ५४वें अध्यायों तक मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, श्रीकृष्णावतार एवं कल्कि-अवतार आदि का विशद वर्णन द्रष्टव्य है। प्राचीन भारतीय ऐतिह्य परम्परा के सङ्ग्रहण एवं ज्ञान के लिए पुराणोक्त वंशानुचरित विवरण अतीव महत्त्वपूर्ण उपयोगी साक्ष्य माने जाते हैं।[1]

कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि सभी उपपुराण अष्टादश अथवा प्रमुख पुराणों के उपभेद हैं तथा उन्हीं से समुद्भूत हैं, सर्वथा असमीचीन प्रतीत होता है। ब्रह्मवैवर्त पुराणानुसार दशलक्षण महापुराण के तथा पञ्चलक्षण क्षुल्लक पुराण के प्रतीक हैं।[2] परन्तु इस पुराण का यह सन्दर्भित अंश बाद का मालूम पड़ता है। अतः, इस उल्लेख के आधार पर महापुराण अथवा उपपुराण का निर्धारण समुचित नहीं प्रतीत होता है। अल्बेरुनी महोदय ने पुराणों को प्राथमिकता देते हुए इन्हें शाश्वत मानते हैं तथा पुराणों की सूची प्रस्तुत करते हुए 'नृसिंह पुराण' को पाँचवें स्थान पर रखा है।[3] इस पुराण में भी बार-बार पुराण पञ्चलक्षण की पुनरावृत्ति से भी ध्वनित होता है कि यह उपपुराण न होकर 'पुराण' संज्ञा से समलङ्कृत किया जा सकता है।[4]

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिशीलन

१. कर्मकाण्डीय विषय—नरसिंह पुराण में कर्मकाण्ड का सविस्तर वर्णन सम्प्राप्त है।

---

१. वही, अध्याय- २४ "अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितं शुभम्। शृण्वतामपि पापघ्नं सूर्य सोमनृपात्मकम्।। १ ।।" एवं वही, अध्याय- ६७ "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम्।। ८।।"

२. भागवत पुराण, १२.१०.१-७ एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण, ४.१३१.६-१०

३. अल्बेरुनी का भारत, पृष्ठ-१३० (i) आदि पुराण, (ii) मत्स्य पुराण, (iii) कूर्म पुराण, (iv) वाराह पुराण, (v) नृसिंह पुराण, (vi) वामन पुराण, (vii) वायु पुराण, (viii) नन्द पुराण, (ix) स्कन्द पुराण, (x) आदित्य पुराण, (xi) सोम पुराण, (xii) साम्ब पुराण, (xiii) ब्रह्माण्ड पुराण, (xiv) मार्कण्डेय पुराण, (xv) तार्क्ष्य पुराण, (xvi) विष्णु पुराण, (xvii) ब्रह्म पुराण, (xviii) भविष्य पुराण

४. नरसिंह पुराण, अध्याय- ६७, श्लोक- १८ "सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव सर्वमेव प्रकीर्तितम्।।"

इसमें सम्पूर्ण वैदिक यज्ञों के विधि-विधान, वास्तु सम्बन्धी हवन एवं कर्मकाण्डीय क्रिया, संस्कार, देवालय-निर्माण, प्रतिमा-स्थापन सम्बन्धी कृत्य, पितृकर्म और श्राद्ध आदि का वर्णन है। ऐसा आज के किसी कर्मकाण्ड के ग्रन्थ में नहीं मिलता है। श्राद्ध की विधि वेदों से लेकर श्रौतसूत्रों, ब्राह्मग्रन्थों, गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में भी सविस्तर सुलभ है और उसके सभी अङ्गों पर विचार किया गया है।

देवदेवेश्वर चक्रपाणि भगवान् विष्णु की मूर्ति-स्थापना में सर्वप्रथम स्थिर संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रों में भूमिशोधन का कार्य किया जाता है।[1] साढ़े तीन हाथ अथवा दो हाथ नींव खोदकर जल से भीगी हुई कंकण और बालू सहित शुद्ध मिट्टी भरना चाहिए। वास्तुविद्या में कुशल कारीगरों के द्वारा ईंट, पत्थर अथवा मिट्टी से चौकोर मन्दिर का निर्माण करना चाहिए। उसका द्वार पूर्व दिशा की ओर, चित्रशिल्पकारों के द्वारा फलयुक्त वृक्ष कुमुद तथ कमलदल से चित्रित करना चाहिए। सुकपाट, पुराणोक्त विश्वकर्मा के द्वारा प्रतिष्ठित पद्धति के अनुसार दिव्य, मुख सौम्य, सुन्दर कर्ण, नासिका और नेत्र, विस्तृत ललाट, कोमल कपोल, मनोहर कण्ठ से युक्त भव्य प्रतिमा का निर्माण, प्रतिमा की दो भुजाएँ और दो उपभुजाएँ, दाहिनी उपभुजा में सूर्याकार सदृश चक्र, वाम उपभुजा में चन्द्र सदृश श्वेतकान्तिमय पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, कमर में मेखला और पीताम्बर से सुसज्जित प्रतिमा की पूर्व पक्ष में शुभ समय पर स्थापना करना चाहिए। चार कपाट, चार तोरणों से आवृत समस्त मण्डप से युक्त मन्दिर के समक्ष सर्वोत्तम यज्ञमण्डप, विद्वानों के द्वारा ३६ घड़े के जल से अभिषेक, वेदपारङ्गत विप्रों के साथ प्रवेश, पञ्चगव्यों तथा शीतल एवं कवोष्ण जल से स्नान, हरिद्रा और कुङ्कुममिश्रित चन्दनलेप, सुगन्धित पुष्पमालाओं से विभूषित करके वस्त्र धारण करना चाहिए। भेरीनिनाद और वैदिक मन्त्रों के गभीर घोष के साथ विष्णु भक्तों के द्वारा प्रतिमा का अलौकिक शृङ्गार कराना चाहिए। षोडश ऋत्विज विप्रों को विधिपूर्वक भोजन, चार ब्राह्मणों के द्वारा वेद-पुराणादि का अजस्र स्वाध्याय, चार ब्राह्मणों के द्वारा भगवद्विग्रह की अभिरक्षा में संलग्न, ब्राह्मणों के साथ पुरुषसूक्त, देवसूक्त, विष्णुसूक्त अथवा पवमानसूक्त का निरन्तर पाठ, आचार्य को चाहिए कि प्रत्येक क्रिया में चार-चार बार विशुद्ध घृत की आहुति, अस्त्राय फट्-बोलकर दिग्बन्ध, ॐ त्रातारमिन्द्रम् इत्यादि मन्त्र (शुक्ल यजुर्वेद, २०/५०) से अग्निवेदी पर पूर्व की ओर घृत की आहुति, 'परो दिवा.' इत्यादि मन्त्र (शुक्ल यजुर्वेद, १७/२६) से दक्षिण दिशा में और 'निषसाद.' इत्यादि मन्त्र (शुक्ल यजुर्वेद, १०/२७) से पश्चिम दिशा में, 'या ते रुद्र.' (शुक्ल यजुर्वेद, १६/२) इस मन्त्र से उत्तर दिशा में, 'परो मात्रया.' (ऋग्वेद, ७.६.६६) इत्यादि सूक्तद्वय से समस्त दिशाओं में घृत की आहुति देनी चाहिए। 'यदस्या.' (शुक्ल यजुर्वेद, २३/२८) इस मन्त्र का

१. नरसिंह पुराण, अध्याय- ५६, श्लोक- ३ "कर्तुं प्रतिष्ठां यश्चात्र विष्णोरिच्छति पार्थिव। सपूर्वं स्थिरनक्षत्रे भूमिशोधनमारभेत्।।" एतदर्थ, अध्याय- ५६ द्रष्टव्य है।

जप और घृत से 'स्विष्टकृत्' संज्ञक होम, ऋत्विजों को अनेक सम्मान के अनुकूल दक्षिणा, यजमान आचार्य को वस्त्रद्वय, स्वर्णिम कुण्डलद्वय और स्वर्णिम अँगूठी दक्षिणा में प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार, जो विष्णु-प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है, वह समस्त पापों से विमुक्त, मृत्यु के पश्चात् विष्णु-नित्य धाम और पुनरागमन से मोक्ष को प्राप्त होता है।[1]

मनुष्य, काम, क्रोध, मद, लोभादि लौकिक विषयों से पीड़ित, पुत्रैषणा, दारैषणा, लोकैषणा आदि गौण बन्धनों से आबद्ध, भोगैश्वर्य मदोन्मत्त और ब्रह्मतत्त्वज्ञान से विमुख, पङ्कपङ्किल जीर्ण-शीर्ण गो की भाँति संसार रूपी पाप समुद्र में आकण्ठ समाहित और रेशम के कीट की भाँति स्वकीय कर्म-बन्धनों से निगड़ित है। अतएव, एकाग्रमनसा विश्वस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप, आत्मचैतन्यस्वरूप, सर्वहृदयस्थ भगवान् विष्णु का सदैव भलीभाँति आराधन और ध्यान करना चाहिए।[2] जो मनुष्य, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय अर्पण करने से, दुग्ध, दधि, मधु, पञ्चगव्य, विल्वपत्र, रत्न-स्वर्ण-कपूर-अगरुमिश्रित-मल्लिका-मालती-जाती-केतकी-अशोक-चम्पा, पुंनाग-नागकेसर-बकुल-उत्पल-तुलसी-करवीर-पलाश प्रभृति पुष्पमिश्रित जलाभिषेक, हविष्य-घृत-शर्करा मिश्रित यावकीय पायस से भोग और शङ्ख तुरही आदि वाद्यों से नरसिंह स्वरूप भगवान् विष्णु का पूजन करता है, वह विष्णुलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक की प्राप्ति एवं समस्त सांसारिक द्वन्द्वात्मक दुःखों से विमुक्ति, स्वर्ण तथा मोक्ष-प्राप्ति होती है।[3] वस्तुतः, ज्ञानियों और योगियों के लिए अपने-अपने हृदय में ही भगवान् की स्थिति है तथा जो अल्पज्ञ हैं, उनके लिए प्रतिमा में भगवान् का निवास है।[4] अतएव, अग्नि, सूर्य, हृदय, स्थण्डिल (वेदी) और प्रतिमा–इन सभी आधारों में भी विधिपूर्वक भगवत्पूजन उत्तम है। शुक्ल यजुर्वेदीय रुद्राष्टध्यायीस्थ पुरुषसूक्त की प्रथम ऋचा से भगवान् पुरुषोत्तम का, द्वितीय ऋचा से आसन, तृतीय से पाद्य, चतुर्थ से अर्घ्य, पञ्चम से आचमनीय, षष्ट से स्नान, सप्तम से वस्त्र, अष्टम से यज्ञोपवीत, नवम में गन्ध, दशम से पुष्प, एकादश से धूप, द्वादश से दीप, त्रयोदश से नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि पूजन-सामग्री, चतुर्दश से स्तुति, पञ्चदश से प्रदक्षिणा और षोडश से विसर्जन करना

---

१. वही, अध्याय-५६, श्लोक-५० "तदा ह्यसौ याति हरेः पदं तु, यत्र स्थितोऽयं न निवर्तते पुनः।।"

२. वही, अध्याय- १६, श्लोक-१५-३६ "ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं, हृत्पद्ममध्येष्वथ कीर्तयन्ति ये। उपासकानां प्रभुमीश्वरं परं, ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम्।।"

३. वही, अध्याय-३४, श्लोक-१८-२० "मल्लिका-मालती-जाति-केतक्यशोकचम्पकैः, पुन्नाग नागबकुलैः पद्मैरुत्पल-जातिभिः। तुलसी-करवीरैश्च पालाशैः सानुकुम्बकैः। एतैरन्यैश्च कुसुमैः प्रशस्तैरच्युतं नरः।। ..... वायुलोके समोदित्वा पश्चाद्विष्णु पुरं व्रजेत्।।" "विष्णुलोकमवाप्नोति" ३६"

४. वही, अध्याय- ६२, श्लोक- ५-६ "अग्नौ क्रियावतां देवो हृदि देवो मनीषिणाम्। प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः। अतोऽग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च। एतेषु च हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम्।।"

चाहिए।[1] स्नान, वस्त्र, नैवेद्य और आचमनीय आदि विधियों से पूजन-यजन करने वाला पुरुष छः मास में सिद्धि और इसी क्रम से यदि एक वर्ष तक कोई विष्णु-पूजन करता है तो वह भक्त सायुज्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।[2] विद्वान् पुरुष अग्नि में आहुति के द्वारा, जल में पुष्प के द्वारा, हृदय में ध्यान द्वारा और सूर्यमण्डल में जप के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन करते हैं।[3]

अष्टाक्षर एवं द्वादशाक्षर-मन्त्रोपासना तथा माहात्म्य

हृदयकमल के मध्यभाग में शङ्ख-चक्र-गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु का, जनशून्य स्थान में एकाग्रमन से मूर्ति के सम्मुख अथवा जलाशय के निकट, अष्टाक्षर "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र का जाप करना चाहिए।[4] साक्षात् भगवान् नारायण ही इस मन्त्र के ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, 'ॐकार' शुक्लवर्ण है, 'न' रक्तवर्ण है, 'मो' कृष्णवर्ण है, 'ना' रक्त है, 'रा' कुङ्कुमवर्ण है, 'य' पीतवर्ण है, 'णा' अञ्जन के समान कृष्णवर्ण है और 'य' विविध वर्णों से युक्त समस्त प्रयोजनों का साधक और स्वर्ग-मोक्षफल प्रदाता भी है।[5] सिद्धिदायक, दुःस्वप्न, असुर, पिशाच, सर्प, ब्रह्मराक्षस, चोर और मानसिक व्याधियों से मुक्ति, आयु, धन, पुत्र, पशु, विद्या, यश एवं पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति होती है।[6] अतएव, प्रत्येक मास की द्वादशी तिथि को पवित्र भाव से सहस्र अथवा लक्ष मन्त्र का जप करना चाहिए।[7] मनुष्य के लिए अन्य बहुत से मन्त्रों और व्रतों की क्या आवश्यकता है, केवल 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र ही सर्वार्थसाधक है।[8] इस मन्त्र के जाप-प्रभाव से इन्द्र

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-६२, श्लोक-८-१३ "अर्चितं स्याज्जगत्सर्वं तेन वै सचराचरम्। आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्।। चतुर्दश्या स्तुतिं कृत्वा पञ्चदश्या प्रदक्षिणम्। षोडश्यो द्वासनं कुर्याच्छेषकर्मांणि पूर्ववत्।।"

२. वही, अध्याय-६२, श्लोक-१४-१५ "षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति देवदेवं समर्ययन्।" "संवत्सरेण तेनैव सायुज्यमधिगच्छति।"

३. वही, अध्याय-६२, श्लोक-१६-१६ "हविषग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम्। अर्चन्ति सूरयो नित्यं जपेन रवि मण्डले।।" "भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे, मुक्त्यै किमर्थं क्रियते न यत्नः। अनेन नित्यं कुरु विष्णुपूजां, प्राप्तुं तदिष्टं यदि वैष्णवं पदम्।।"

४. वही, अध्याय-१७, श्लोक-३-३६ "हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं शङ्खचक्रगदाधरमा एकाग्रमनसा ध्यात्वा विष्णुं कुर्याज्जपं द्विजः।।" एकान्तेन निर्जनस्थाने विष्णग्रे वा जलान्तिके। जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं चित्ते विष्णुं निधाय वै।।"

५. वही, अध्याय-१७, श्लोक-८ "ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः। भक्तानां जपतां तात स्वर्ग-मोक्षफलप्रदः।।"

६. वही, अध्याय-१७, श्लोक-२४-२५ "आयुष्यं धनपुत्रांश्च पशून् विद्यां महद्यशः। धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते च जपन्नरः।।"

७. वही, अध्याय-१७, श्लोक-१५ "मासि मासि तु द्वादश्यां विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः।।"

८. वही, अध्याय-६३, श्लोक-६ "किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।"

स्त्री योनि से मुक्त हो गया।[1] इस प्रकार वासुदेव स्वरूप द्वादशाक्षर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" मन्त्र से भगवान् विष्णु आराधना करनी चाहिए।[2] पितामह ब्रह्मा[3] और वैष्णव भक्त ध्रुव[4] ने भी मनोवाञ्छित समृद्धि प्राप्त की। इस की मन्त्र के जाप से पुनरागमन-विमुक्ति,[5] मुनियों ने सिद्धि और भगवद्दर्शन सुलभ हो जाता है।[6] मृत्यु कुछ भी नहीं कर सकती है।[7] शीत और धूप की भाँति एकदेशीय विघ्न भी व्यथित नहीं कर पाते हैं।[8] चलते, साते-जागते, लेटते, बैठते हुए भगवन्नारायण का स्मरण करना चाहिए, जिससे मनुष्य पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है- इसमें संशय नहीं है।[9]

सूर्य-माहात्म्य

प्रजापति दक्ष-कन्या अदिति के गर्भ से "आदित्य" नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[10] त्वष्टा प्रजापति ने अपनी पुत्री संज्ञा का विवाह आदित्य से किया। वह भी रूपवती और मनोरमा पत्नी पाकर सुखपूर्वक रहने लगा। पति की सेवा करना ही युवती स्त्रियों का परमोत्तम धर्म है।[11] सूर्य के प्रचण्ड ताप को सहती हुई वह पतिगृह में लौट आती है। कुछ दिनों पश्चात् सूर्य और संज्ञा से क्रमशः मनु, यम, यमी- सन्तानत्रय का जन्म होता है। सूर्य-ताप को न सहने के कारण वह अपनी छाया (प्रतिबिम्ब) स्वरूपा एक स्त्री को उत्पन्न करती

---

१. वही, अध्याय-६३, श्लोक-१० "पुरा पुरन्दरो राजन् स्त्रीत्वं प्राप्तोऽपधर्मतः।
तृणबिन्दुमुनेः शापान्मुक्तो ह्यष्टाक्षराज्जपात्।।"

२. वही, अध्याय-३१, श्लोक- ६८ "द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च। ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः।।"

३. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ६६ "पितामहेन चाप्येष महामन्त्र उपासितः।
मनुना राज्यकामेन वैष्णवेन नृपात्मज।।"

४. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ७१ "वासुदेवमना भूत्वा ध्रुवोऽपि तपसे ययौ।"
"ध्रुवः सर्वार्थदं मन्त्रं जपन् मधुवने तपः।।"

५. वही, अध्याय- ३१, श्लोक-४२

६. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ४१

७. वही, अध्याय-७, श्लोक- ६८ "वाराहं वामनं विष्णुं नरसिंहं जनार्दनम्। माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति।।" "नारायणं सहस्राक्षं पद्नाभं पुरातनम्। प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति।। ६३ ।।"

८. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ७५ "शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि।
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्ते।।"

६. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ६६-६७ "तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा। शयानेनोपविष्टेन वैद्यो नारायणः सदा।।" पुत्रान् कलत्रं मित्राणि राज्यं स्वर्गापवर्गकम्। वासुदेवं जपन् मर्त्यः सर्वं प्राप्नोत्य संशयम्।। ६७ ।।

१०. वही, अध्याय- १८, श्लोक-७ "दक्षकन्यादितिः। अदितेरादित्यः पुत्रः।।"

११. नरसिंह पुराण, अध्याय-१८, श्लोक- १२ "युवती स्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान्।"

है। स्वयं अश्वी होकर उत्तर कुरु प्रदेश में चली जाती है।[1] सूर्य ने उस छाया से भी– मनु-शनैश्चर तथा तपती– सन्तानत्रय को उत्पन्न किया। छाया यम और यमी को अभिशप्त करती है। उसके पक्षपातपूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध सूर्य ने भी शनैश्चर को मन्दगामी ग्रह और तपती को 'तपती' नदी हो जाने का अभिशाप दिया।[2] पुनश्च सूर्य ने अश्वीरूप धारिणी संज्ञा के गर्भ से "अश्विनी कुमारों" को उत्पन्न किया।[3] विश्वकर्मा ने सर्वपापहारी भगवान् सूर्यदेव के १०८ नामों– का उन्नीसवें अध्याय के श्लोक-संख्या- ०२ से १४ तक स्तवन किया है। सूर्यवंश-परम्परा में सर्वप्रथम ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु, विकुक्षि, द्योत, वेन, पृथु, पृथाश्व, असंख्याताश्व, मान्धाता, पुरुकुत्स, दृषद, अभिशम्भु, दारुण, सगर, हर्यश्व, हारीत, रोहिताश्व, अंशुमान्, भगीरथ, सौदास, शत्रुंदम, अनरण्य, दीर्घबाहु, अज, दशरथ, राम, लव, पद्म, अनुपर्ण, वस्त्रपाणिका, शुद्धोदन से बुध (बुद्ध) की उत्पत्ति हुई। बुध से सूर्यवंश समाप्त हो जाता है।[4] सूर्यदेव, स्वभावतः अपनी उर्ध्वगत किरणों द्वारा लोकों में ताप और अधोगत किरणों से भूलोक को प्रकाशित करते हैं। वे ही प्रत्येक युग में त्रिभुवन की काल-संख्या निश्चित करते हैं।[5] सूर्यमण्डल के नीचे भुवर्लोक प्रतिष्ठित है।[6] अन्य पुराणों में भी सूर्यस्वरूप, सूर्योत्पत्ति-विवरण, सूर्यकुटुम्ब, सूर्य-विराट् स्वरूप, सूर्योपासना और माहात्म्य एवं सूर्य-प्रतिमा-लक्षण आदि विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[7]

गणेश

हिन्दू संस्कृति गणेश को प्रधान देव मानती है। वे प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में गौरी-गणेश की पूजा करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में गणेश-गायत्री का उल्लेख है।[8] ऐतरेय ब्राह्मण में भी गणेश का स्पष्ट उल्लेख है।[9] नरसिंह पुराण में गणनायक, विनायक

---

१. वही, अध्याय-१८, श्लोक-१३ "छायां भर्तुरुपभोगाय स्वप्रज्ञाबलेनोत्पाद्य तत्र संस्थाप्य गत्वोत्तर कुरूनधिष्ठा याश्वीभूत्वा विचचार।।"

२. वही, अध्याय- १८, श्लोक- १६-२० "पुत्र शनैश्चर त्वं ग्रहो भव क्रूरदृष्टिर्मन्दगामी च पापग्रहस्त्वं च। पुत्र तपती नाम नदी भवेति।"

३. वही, अध्याय-१८, श्लोक- २२ "तस्यामेवादित्याद्यश्विनावुत्पन्नौ तयोरतिशयवपुषोः साक्षात् भिषजत्वं दत्वा जगाम।।"

४. वही, अध्याय- २१, श्लोक- १५ "वस्त्रापाणेः शुद्धोदनः। शुद्धोदनाद्बुधः। बुधादादित्यवंशो निवर्तते।।"

५. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- १०६ "कालसंख्यां त्रिलोकस्य स करोति युगे युगे।"

६. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ११० "आदित्यमण्डलाधस्ताद् भुवर्लोकं प्रतिष्ठितम्।।"

७. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्वस्थ, अध्याय- ६६-६७, ब्रह्म पुराण, २३५/३०, गीता, १३/१३, वामन पुराण, १३/६५ आदि

८. तैत्तिरीयारण्यक, १०/१ "एकदन्ताय विद्महे महाकराय धीमहि, तन्नो दन्ती प्रचोदयात्"

९. ऐतरेय ब्राह्मण, १/१२

एवं गणाध्यक्ष के रूप में स्तुति की गई है। गणेश चतुर्थी के दिन त्रिकाल स्नान, रक्तवस्त्र धारण और रक्तचन्दन लगाकर, रक्तपुष्प तथा रक्तचन्दनमिश्रित जल से गणेश जी की विधिवत् पूजा की जाती है। घृत और चन्दन मिला हुआ धूप निवेदन किया जाता है। हल्दी, घृत और गुड़खण्ड से निर्मित मधुर नैवेद्य अर्पण किया जाता है।[१] पूजोपरान्त गणेश-स्तवन किया है।[२] वे ज्ञान के देवता, एक, दो तथा चार दाँतों वाले,[३] चार भुजाओं वाले तथा त्रिनेत्रधारी हैं।[४] पार्वती-पुत्र गणेश जी रक्तनेत्रों वाले, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले और सूर्पाकार कानों वाले हैं।[५] हुतप्रिय पार्वतीनन्दन भीमकाय और उग्र स्वभाव वाले गणेश जी प्रथम पूजित न होने पर मनुष्यों के सभी कार्यों में विघ्नकारक हैं।[६] रक्तवर्णाभ, मेरुमन्दर स्वरूप वाले, गजानन जी विरूपधारी ब्रह्मचारी हैं।[७] ऐसे सर्वविघ्नेश्वर और सर्वज्ञ गणपति को प्रणाम है।[८] भविष्य,[९] याज्ञवल्क्य स्मृति,[१०] अग्नि पुराण,[११] नारद पुराण,[१२] वृहत्पराशर स्मृति,[१३] आदि ग्रन्थों में सविस्तर वर्णन सम्प्राप्त है।

इन्द्र

देवराज इन्द्र एक वैदिक देव हैं। परन्तु वैदिक काल से ही इनका चरित्र सन्दिग्ध रहा है। पुराण काल में तो उनके और उनके सुपुत्र जयन्त के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। नरसिंह पुराण में एक आख्यान का वर्णन है, जो इस प्रकार है–विमानरूढ इन्द्र भगवान् शङ्कर की आराधना के लिए कैलास पर्वत पर आता है। उसके मन में उस समय मात्र मोक्ष प्राप्ति की कामना थी। एक दिन वह पार्वती जी के युगलचरणारविन्दों का पूजन करती हुई कुबेर की प्राणवल्लभा चित्रसेना को देखता है। वह उसके सौन्दर्य पर आसक्त हो जाता है। कामवेदना से पीड़ित चित्रसेना भी देवराज के कण्ठ का आलिङ्गन करती है।

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय- २५, श्लोक- ४ "नैवेद्यं चैव हारिद्रं गुडखण्डघृतप्लुतम्। एवं सुविधिना पूज्य विनायकमथास्तवीत्।।"

२. वही, अध्याय- २५, श्लोक- ५ "नमस्कृत्य महादेवं स्तोष्येऽहं तं विनायकम्।।"

३. वही, अध्याय- २५, श्लोक- ६१

४. वही, अध्याय-२५, श्लोक- ७

५. वही, अध्याय- २५, श्लोक- ८

६. वही, अध्याय- २५, श्लोक- ८

७. वही, अध्याय- २५, श्लोक- ९

८. वही, अध्याय-२५, श्लोक- १०-१५

९. भविष्य पुराण, १.१७.२-३, १.२३.५-११, १.१७.१७, १.१७.१८, १.१७.३८ आदि

१०. याज्ञवल्क्य स्मृति, १/२६६-२६४

११. अग्नि पुराण, २६६.१-२०

१२. नारद पुराण, पूर्वभाग, ५१.५८-८१

१३. वृहत्पराशर स्मृति, ११.१-२५

कामोपभोग में परम चतुर वह परस्त्री के आलिङ्गन और समागम-सुख को मोक्ष से भी बढ़कर मानता है।[१] उसकी सङ्गिनी स्त्रियों ने कुबेर से बताया कि आपकी भार्या चित्रसेना को किसी अज्ञात पुरुष ने पकड़कर विमान पर बिठा लिया और वह तस्कर (इन्द्र) बड़े वेग से कहीं चला गया है।[२] मन्त्री कण्ठ कुब्ज उसको समझता है कि– स्त्री-वियोग में शरीर-त्याग करना आपके लिए उचित नहीं है।[३] जैसे श्री रामचन्द्र जी ने प्राण नहीं त्यागा था।[४] कुबेर अपने अनुज विभीषण के पास जाता है और कहता है कि यदि वह प्राणवल्लभा न मिली तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा।[५] विभीषण इस कार्य में "नाडीजङ्घा" नामकी निशाचरी को नियुक्त करता है। वह मायामय रूपवती रमणीयाकृति धारण करती है। इन्द्र उस पर भी आसक्त हो जाता है। वह कहती है कि आज आप अपनी समस्त भार्याओं को मुझे दिखाइये। मैं देखना चाहती हूँ कि आपकी कोई भी स्त्री मेरे रूप के सदृश है या नहीं।[६] इन्द्र केवल एक युवती को छोड़कर सभी स्त्रियों को दिखाता है। उस रमणी (चित्रसेना) को दिखाने के लिए देवराज इन्द्र उसके साथ आकाश मार्ग से मन्दराचल की ओर प्रस्थान करता है। मार्गस्थ महामुनि देवर्षि नारद ने उस नाडीजङ्घा को पहचान लिया और पूछा कि तुम्हारे भाई विभीषण तो सुखपूर्वक हैं न? वह नाडीजङ्घा राक्षसी के केश को पकड़कर उसे मारना ही चाहता था कि महात्मा तृणबिन्दु अपने आश्रम से निकलकर वहाँ आ गये और कहा कि हमारे तपोवन में इस महिला को मत मारो, छोड़ दो।[७] मना करने पर भी इन्द्र उसे मार डालता है। कुपित महात्मा ने कहा कि तू मेरे शाप से निश्चत ही स्त्री हो जायेगा।[८] दीना शची ब्रह्मा के कहने पर कुबेर की पत्नी को पुनः पति को समर्पण और देवराज इन्द्र भी प्रति त्रयोदशी और चतुर्दशी को नन्दनवन में यक्ष और राक्षसों की पूजा करेंगे।[९] चित्रसेना अपने पतिगृह में आती है। सभी देवगण पुनः ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं कि– "जैसे पति के बिना नारी, सेनापति के बिना सेना और श्रीकृष्ण के बिना गोकुल,

---

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-६३, श्लोक-४० "मोक्षाधिकं स्नेहरसातिमृष्टं, पराङ्गनालिङ्गन-सङ्गसौख्यम्।।"
२. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ४२ "विमानमारोप्य जगाम कश्चिद्, विगृह्य वेगादिह सोऽपि तस्करः।।"
३. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ४६ "आकर्ण्यतां नाथ न चास्ति योग्यः, कान्तावियोगे निजदेहघातः।।"
४. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५०
५. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ६३ "प्राणान् वै घातयिष्यामि अनासाध्य च वल्लभाम्।।"
६. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ७८ "मम रूपसमा रामा कान्ता ते चास्ति वा न वा।।"
७. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ६३ "जगाद पुरतः स्थित्वा मुञ्चेमां महिलां वने।।"
८. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ६५ "यदेषा युवती दुष्ट निहता में तपोवने, ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात् स्त्रीभविष्यति।।" वही अध्याय- ६३, श्लोक- १०५ "तेन कर्म-विपाकेन स्त्रीभावं वासवो गतः।।"
९. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- १०८ "त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां देवराजः। नन्दने चार्चनं कर्ता सर्वदा यक्षरक्षसाम्।।"

उसी प्रकार इन्द्र रहित अमरावती सुशोभित नहीं होती।"[१] इन्द्र के लिए कोई जप, क्रिया, तप, दान, ज्ञान और तीर्थ-सेवन आदि उपाय बताइये, जिससे स्त्रीभाव से इनका उद्धार हो सके।[२] इन्द्र ने एकाग्रचित्त से "ॐ नमो नारायणाय" महामन्त्र को दो लाख जप किया और भगवान् विष्णु की कृपा से स्त्रीभाव से मुक्ति प्राप्त की।[३] इसी प्रकार से इनके पुत्र जयन्त ने "यथा पिता तथैव पुत्र" की भाँति ही कार्य किया है। नरसिंह पुराण के २८वें अध्याय में "शान्तनु चरित्र" के प्रसङ्ग में एतत्सम्बन्धिनी कथा गुम्फित है। जयन्त प्रतिदिन रात्रिकाल में स्वर्ग से अप्सराओं के साथ रथारूढ होकर आता था और सुगन्धित पुष्पों को माली के उपवन से तोड़कर और लेकर चला जाता था। माली के क्षुब्ध होने पर स्वप्न में भगवान् नृसिंह ने कहा कि मेरा निर्माल्य लाकर छींट दो। उस दुष्ट इन्द्र पुत्र को रोकने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।[४] वह प्रतिदिन की भाँति पुष्प चौर्य प्रवृत्ति के कारण आता है। वहाँ भूमि पर पड़े निर्माल्य को लाँघ जाता है। फलतः, वह स्वर्गलोक में न जाकर भूतल पर ही विचरण करता रहा। इधर, इन्द्र पुत्र जयन्त कुरुक्षेत्र में सरस्वती के तट पर आता है और परशुराम के यज्ञ में ब्राह्मणों का उच्छिष्ट भोजन स्वच्छ करो। इससे तुम्हारी शुद्धि होगी।[५] वह १२ वर्ष तक नित्य उच्छिष्ट को स्वच्छ करता रहा। अन्ततः, वह स्वर्गलोक को चला जाता है।

एक दिन भगवान् राम चित्रकूट पर्वत के वन में सीता जी की क्रोड में कुछ विलम्ब तक शयन कर रहे थे। काकरूपधारी जयन्त ने उनके स्तनों के मध्य चञ्चु मारकर घाव कर दिया और वृक्ष पर जा बैठा। क्रोधित राम ने सींक का बाण बनाकर उसे ब्रह्मास्तमन्त्र से अभिमन्त्रित किया और उस कौए को लक्ष्य करके चला दिया।[६] भयभीत वह शरणार्थ इन्द्रलोक में जाता है। शरण न पाकर वह पुनः भगवान् राम के पास आता है और क्षमा माँगता है। वह अमोघ अस्त्र उसके एक नेत्र को भस्म करके लौट आता है।[७] उसी समय से सभी कौए एक नेत्र वाले हो गये। इसी कारण, वे एक आँख से ही देखते हैं।[८]

---

१. वही, अध्याय-६३, श्लोक- ११३ "पतिहीना यथा नारी नाथहीनं यथाबलम्।
गोकुलं कृष्णहीनं तु तथेन्द्रेणामरावती।।"

२. वही, अध्याय-६३, श्लोक- ११४ "जपः क्रिया तपो दानं ज्ञानं तीर्थंच वै प्रभो।
वासवस्य समाख्याहि यतः स्त्रीत्वाद्विमुच्यते"

३. वही, अध्याय- ६३, श्लोक- ११७-११८ "ॐ नमो नारायणायेति जप त्वमात्मशुद्धये।
स्त्रीभावाच्च विनिर्मुक्तस्तदा विष्णोः प्रसादतः।।"

४. नरसिंह पुराण, अध्याय- २८, श्लोक- २३ "इन्द्रपुत्रस्य दुष्टस्य नान्यदस्ति निवारणम्।।"

५. वही, अध्याय- २८, श्लोक- २६-३० "रामसत्रे कुरुक्षेत्रे द्वादशाब्दे तु नित्यशः।
द्विजोच्छिष्टापनयनं कृत्वात्वं शुद्धिमेष्यसि।।"

६. वही, अध्याय- ४६, श्लोक- ८-६ "इषीकास्त्रं समाधाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमन्त्रितम्।
काकमुद्दिष्य चिक्षेप सोऽप्यधावद्भयान्वितः।।"

७. वही, अध्याय- ४६, श्लोक- १५ "अस्त्रं तन्नेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ।।"

८. वही, अध्याय- ४६, श्लोक- १५ "ततः प्रभृति काकानां सर्वेषामेकनेत्रता।।"

इस पुराण में ब्रह्मा, कुबेर, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शरभङ्ग एवं सुतीक्ष्ण प्रभृति देवों, ऋषियों और महर्षियों की आध्यात्मिक एवं धार्मिक कथाएँ हैं, अपितु भगवान् के सभी– मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, श्रीकृष्णावतार एवं कल्किचरित्र और कल्किधर्म आदि– अवतारों के साथ-साथ सूर्य-स्तवन, विष्णु-स्तवन, रामवन्दनम् एवं केशव-स्तुति का भी वर्णन है।

इस पृथ्वी पर– जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर सात द्वीप हैं।[1] ऋषभोत्पन्न भरत के नाम से इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा।[2] इसी के मध्यभाग में ब्रह्मा जी की पुरी है, पूर्वभाग में इन्द्र की 'अमरवती' है, अग्निकोण में अग्नि की 'तेजोवती' पुरी है; दक्षिण में यमराज की 'संयमनी' है, नैर्ऋत्यकोण में निर्ऋति की 'भयङ्करी' नामक पुरी है, पश्चिम में वरुण की 'विश्वावती' है, वायव्यकोण में वायु की 'गन्धवती' नगरी है और उत्तर में चन्द्रमा की 'विभावरी' पुरी है। नौ खण्डों में सम्पृक्त यह जम्बूद्वीप पुण्य पर्वतों तथा पवित्र नदियों से युक्त है। किम्पुरुष आदि आठ वर्ष पुण्यवानों के भोग स्थान हैं; केवल एक भारतवर्ष ही चारों वर्णों से युक्त कर्मक्षेत्र है।[3] यहाँ कर्म करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं और ज्ञान साधकों को निष्काम कर्मों से मुक्ति भी प्राप्त होती है।[4] अतएव, इस द्वीप में यह भारतवर्ष ही सबसे श्रेष्ठ स्थान है।[5]

भारतवर्ष में–महेन्द्र, मलय, शुक्तिमान्, ऋष्यमूक, सह्य, विन्ध्य और पारियात्र– ये सप्त कुलपर्वत हैं।[6] नर्मदा, सुरसा, ऋषिकुल्या, भीमरथी, कृष्णावेणी, चन्द्रभागा तथा ताम्रपर्णी–ये सात नदियाँ[7] एवं गङ्गा, यमुना, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, कावेरी और सरयू– ये छः महानदियाँ हैं,[8] जो समस्त पापों को नष्ट करने वाली हैं। इस द्वीप में भारतवर्ष ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है। जहाँ, कोकामुख क्षेत्र में बाराहस्वरूप का, मन्दराचल पर मधुसूदन का,

---

१. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- २ "जम्बुप्लक्षशाल्मलकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञाः सप्तद्वीपाः"

२. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- ७ "ऋषभाद् भरतो भरतेन चिरकालं धर्मेण
पालितत्वादिदं भारतं वर्षमभूत्।।"

३. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- ९ "साक्षाद् भारतवर्षमेकं कर्मभूमिश्चातुर्वर्ण्ययुतम्।।"

४. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १० "तत्रैव कर्मभिः स्वर्गं कृतैः प्राप्स्यन्ति मानवाः।
मुक्तिश्चात्रैव निष्कामैः प्राप्यते ज्ञानकर्मभिः।।"

५. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १४ "जम्बुनामा च विख्यातं जम्बुद्वीपमिदं शुभम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णमिदं श्रेष्ठं तु भारतम्।।"

६. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १२ "महेन्द्रो मलयः शुक्तिमान् ऋष्यमूकः सह्यपर्वतो विन्ध्यः पारियात्रः
इत्येते भारते कुलपर्वताः।।"

७. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १३ "नर्मदा सुरसा ऋषिकुल्या भीमरथी कृष्णा वेणी चन्द्रभागा ताम्रपर्णी
इत्येताः सप्तनद्यः।।"

८. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १३ "गङ्गा यमुना गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी
सरयूरित्येता महानद्यः पापहन्यः।।"

कपिल द्वीप में अनन्त का, प्रभास क्षेत्र में सूर्य नन्दन का, माल्योद पान तीर्थ में भगवान् वैकुण्ठ का, महेन्द्र पर्वत पर राजकुमार का, ऋषभनाथ तीर्थ में महाविष्णु का, द्वारका में श्रीकृष्ण का, वसुरूढ तीर्थ में जगत्पति का, चित्रकूट में भगवान् राम का, नैमिषारण्य में पीताम्बर का, सकलतीर्थ में गरुडध्वज का, वृन्दावन में गोपाल का, मथुरा में स्वयंभू भगवान का, केदारतीर्थ में माधव का, वाराणसी में केशव का, पुष्करतीर्थ में पुष्कराक्ष का, कुब्जकतीर्थ में वामन का, वाराह तीर्थ में धरणीधर का, प्रयाग में योगमूर्ति का, कुमारतीर्थ में कौमार का, उज्जयिनी में त्रिविक्रम का, कुरुक्षेत्र में विश्वरूप का, अयोध्या में लोकनाथ का, चक्रतीर्थ में सुदर्शन का, आढ्यतीर्थ में विष्णुपद का, शूकर क्षेत्र में भगवान सूकर का, मानसतीर्थ में ब्रह्मेश का, दण्डकतीर्थ में श्यामल का, केरल तीर्थ में बालरूप भगवान का, क्षीरसागर में भगवान् पद्मनाथ का, विमलतीर्थ में सनातन का, गया में गदाधर का और सर्व ही परमात्मा का जो दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है।[1] यहाँ ही गङ्गा, यमुना, गोमती, सरयू, सरस्वती, चन्द्रभागा, चर्मण्वती, ताप्ती, पयोष्णी, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, दक्षिण गङ्गा, कृष्णा, कावेरी, प्रभृति पावन नदियाँ हैं।[2] जो मनुष्य निष्काम भाव से अपने-अपने वर्ण धर्म का आचरण करते हुए भगवान् नृसिंह का यजन करते हैं, वे कर्माधिकार के क्षर होने पर मोक्ष प्राप्त करते हैं।[3] अहिंसा धर्म का पालन करने वाले, दान देने वाले, यज्ञ और तप का अनुष्ठान करने वाले हैं, सर्वथा क्रोधरहित हैं, वे सर्वदा स्वर्ग में निवास करते हैं।[4] जिसने गोविन्द चरणारविन्दों के परागरस का आस्वादन नहीं किया है, वह परमोज्ज्वल मोक्षफलप्राप्ति नहीं कर सकता है।[5] प्रत्येक युग का अपना नैजिक वैशिष्ट्य है। सत्ययुग में तपस्या प्रधान है तो त्रेता में ध्यान, द्वापर में यज्ञ-माहात्म्य है तो कलियुग में एक मात्र दान महान् है।[6] कपिला गौ का दान करने से 'परमार्थ' नामक स्वर्ग, उत्तम गोवृष का दान करने से 'मन्मथ' नामक स्वर्ग, माघ मास में तिलमयी धेनु का दान करने से 'उपशोभन'

१. नरसिंह पुराण, अध्याय-६६, श्लोक- ७-२४, "कोकामुखे तु वाराहं मन्दरे मधुसूदनम्। अनन्तं कपिलद्वीपे प्रीभासे रविनन्दनम्।।"
२. वही, अध्याय- ६६ श्लोक- २-८ "गङ्गा त प्रथमं पुण्या यमुना गोमती पुनः। सरयूः सरस्वती च चन्द्रभागा चर्मण्वती।।" "तत्र तीर्थान्यनेकानि सर्वपापहराणि वै। येषु स्नात्वा च पीत्वा च पापान्मुच्यति मानवः।।"
३. वही, अध्याय- ३०, श्लोक- १५ "निष्कामा ये स्वधर्मेण नरसिंहं यजन्ति ते। तत्र निवसन्ति। अधिकार क्षयान्मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति।।"
४. वही अध्याय-३०, श्लोक- २८ "अहिंसादानकर्तारो यज्ञानां तपसां तथा। तत्तेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्जिताः।।"
५. वही, अध्याय- ३१, श्लोक- ५७ "अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरजोरसः। मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत्फलम्।।"
६. वही अध्याय- ५५, श्लोक- ५१-५२ "तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव हि। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।"

नामक स्वर्ग, धर्मपालनार्थ जल में प्रविष्ट होकर प्राण-दान करने से 'आनन्द'' नामक स्वर्ग, धर्मरक्षार्थ प्राणदान से 'प्रमोद' नामक स्वर्ग, धर्मार्थ पर्वत शिखर से प्राणदान करने पर 'सौख्य' संज्ञक स्वर्ग, युद्धस्थल में प्राण दान से 'अतिनिर्मल : नामक स्वर्ग, स्वर्ण दान से 'सौभाग्य' नामक स्वर्ग, शीतर्तु में अलावदान से 'अप्सरा' नामक स्वर्ग, गोदान से 'निरहङ्कार' नामक स्वर्ग, भूमिदान करने से 'शान्तिक' नामक स्वर्ग, रजतदान से 'निर्मल' नामक स्वर्ग, अश्वदान से 'पुण्याह' नामक स्वर्ग एवं वस्त्रदान करने से 'श्वेत' नामक स्वर्ग तथा कन्यादान से 'मङ्गल' नामक स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[1] वस्तुतः मनुष्य जिस-जिस भावना से जो-जो दान देता है और उससे जो-जो फल चाहता है, तदनुकूल ही विभिन्न स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है। कन्या, गौ, भूमि तथा विद्या इन दानचतुष्टय को 'अतिदान' कहा गया है।[2] जिस पुरुष ने गृह, स्त्री, पुत्र और क्षेत्र आदि जागतिक भोगों को वैराग्य और ज्ञानपूर्वक त्याग दिया है, उसके समान पुण्यवान् इस संसार में कोई नहीं है।[3] तपस्या से शङ्ख, गदा, चक्र, धारण करने वाले भगवान विष्णु को प्राप्त किया जा सकता है।[4] शीत और धूप की भाँति ये एकदेशीय विघ्न भी उस तपस्वी को व्यथित नहीं कर सकते हैं।[5] प्रतिदिन शास्त्रोक्त नियमानुसार हवन करना चाहिए। इससे नगर जनपद और समस्त राष्ट्र की समस्त बाधाएँ दूर और शान्ति बनी रहती हैं।[6] स्वान्तः सुखाय एकाग्रचित्त से गायत्री मन्त्र का जप परमावश्यक है।[7] यजन करने से बल, वीर्य और तेज में वृद्धि होती है।[8]

१. वही अध्याय-३०, श्लोक- २६-४० "हिरण्यगोप्रदाने हि निरहंकारमाप्नुयात्। भूमिदानेन शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम्।।" "अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम्। रौप्यदानेन स्वर्गं तु निर्मलं लभते नरः।।" "कपिला गोप्रदानेन परमार्थे महीयते। गोवृषस्य प्रदानेन स्वर्गं मन्मथमाप्नुयात्।।"

२. वही अध्याय-३०, श्लोक ४२-४३ "येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति। तत्तत्स्वर्गमवाप्नोति यद्यदिच्छति मानवः।। चत्वारि अतिदानादि कन्या गौर्भूः सरस्वती।।"

३. नरसिंह पुराण, अध्याय-२४, श्लोक- ३०, ''वेश्मदारसुतक्षेत्र संन्यस्तं येन दुःखदम्। वैराग्यज्ञानपूर्वेण लोकेऽस्मिन् नास्ति तत्समः।।''

४. वही अध्याय-२४, श्लोक- ३२ एवं अध्याय-२५, श्लोक-२७ "ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थोऽतपत्काले महातपाः। वर्षाकाले निरालम्बो हेमन्ते च सरो जले।।" अर्थात् ग्रीष्मर्तु में पञ्चाग्नि के मध्य स्थित होकर, वर्षाकाल में खुले मैदान में और शीतर्तु में सरोवर जल में खड़े होकर तप किया जाता था।

५. वही अध्याय-३१, श्लोक-७३-७४, "क्षुत्तर्षवर्षघनवातमहोष्णतादि, शारीरदुःखकुलमस्य न किञ्चनाभूत्।।" "शीतातपादिदिव विष्णुमयं मुनिं हि, प्रादेशिका न खलु घर्षयितुं क्षमन्ते।।" एवमेव वही, अध्याय-६१, श्लोक-६ "यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्चाश्वैर्विना यथा। एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः।।"

५. वही, अध्याय-३५, श्लोक- २३ "एवं कृते तु होमस्य पुरस्य नगरस्य च। राष्ट्रस्य च महाभाग राज्ञो जनपदस्य च।।" "सर्वबाधाप्रशमनी शान्तिर्भवति सर्वदा।।"

७. वही अध्याय-३६, श्लोक-१८ "गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनिः प्रतिष्ठिता। सविता देवता तस्या विश्वामित्रस्तथा ऋषिः।।"

८. वही, अध्याय-३६, श्लोक-७ "तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति।।"

शुद्धचित्त एवं ध्यानयोग में तत्पर होकर यम-नियम, आसन-बन्ध, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान तथा समाधि के द्वारा निरालस्य भाव से भलीभांति योगाभ्यास करना चाहिए।[1] मानव जीवन में व्रत और उपवास का भी महत्त्व है। जो चतुर्थी, चतुर्दशी, सप्तमी, अष्टमी और त्रयोदशी को रात्रि में उपवास करता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तु की प्राप्ति होती है।[2] पूर्णिमा और अमावस्या को एक ही बार भोजन करना चाहिए।[3] एकादशी को अहर्निश उपवास करने का विधान है। उस दिन भगवान विष्णु का पूजन करके मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है।[4] यदि हस्त नक्षत्र से युक्त रविवार हो तो उस दिन रात्रि में उपवास करके सौरनक्त-व्रत का पालन करना चाहिए।[5] उस दिन स्नान के पश्चात सूर्यमण्डल में भगवान विष्णुका ध्यान करके मनुष्य आरोग्य हो जाता है। जब सूर्य अपनी द्विगुनी छाया में स्थित हो, उस दिन सौर नक्तव्रत का समय है। उस समय से लेकर रात्रिकाल तक भोजन नहीं करना चाहिए।[6] बृहस्पतिवार को त्रयोदशी तिथि होने पर अपराह्ण काल में जल में स्नान करके तिल और तण्डुलों द्वारा देव ऋषि एवं पितरों का तर्पण करता है तथा भगवान नरसिंह का पूजन करके उपवास करता है, वह समस्त पापों से विमुक्त विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है।[7]

प्रस्तुत पुराण में वर्ण चतुष्टय और पुरुषार्थ चतुष्टय तथा आश्रम चतुष्टय के विषय में भी प्रकाश डाला गया है। ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम ब्राह्मणों को अपने मुख से प्रकट किया, क्षत्रियों को भुजाओं से, वैश्यों को जाँघों से और चरणों से शूद्रों की सृष्टि की। कमलोद्भव ब्रह्माजी ने क्रमशः उन्हीं ब्राह्मणादि वर्णों के धर्मोपदेश करने वाले शास्त्र और वर्णों की मर्यादा

---

१. वही, अध्याय- ६४, श्लोक- ३२-३४ "शाकमूलफलाहारः सन्तुष्टः समदर्शनः। यमैश्च नियमैश्चैव तथा चासनबन्धनैः।। प्राणायामैः सुतीक्ष्णैश्च प्रत्याहारैश्च संततैः। धारणाभिस्तथा ध्यानैः समाधिभिरतन्द्रितः।। योगाभ्यासं सदा सम्यक् चक्रे विगतकल्मशः।।"

२. वही अध्याय- ६७, श्लोक- ६ "चतुर्थ्यां तु चतुर्दश्यां सप्तम्यां नक्तमाचरेत्।
अष्टम्यां तु त्रयोदश्यां स प्राप्नोत्यभिवाञ्छितम्।।"

३. वही, अध्याय- ६७, श्लोक- ५ "पूर्णमास्याममावास्यामेकभुक्तं समाचरेत्।
तत्रैक भुक्तं कुर्वाणः पुण्यां गतिमवाप्नुयात्।।"

४. वही, अध्याय- ६७, श्लोक- ७ "उपवासो मुनिश्रेष्ठ एकादश्यां विधीयते।
नरसिंह समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।।"

५. वही अध्याय- ६७, श्लोक- ८ "हस्तयुक्तेऽर्कदिवसे सौरनक्तं समाचरेत्।
स्नात्वार्कमध्ये विष्णुं च ध्यात्वा रोगात्प्रमुच्यते।।"

६. वही, अध्याय- ६७, श्लोक- ९ "आत्मनो द्विगुणां छायां यदा संतिष्ठते रविः।
सौरनक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्।।"

७. वही, अध्याय- ६७, श्लोक- १०-११ "गुरुवारे त्रयोदश्यामपराहणे जले ततः।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च तिलतन्दुलैः।।
नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते।।"

का वर्णन किया है।[1] सद्वंशोत्पन्न ब्राह्मणों के छः कर्म- अध्ययन, अध्यापन, दान करना, दान लेना, यजन (यज्ञ करना), और याजन (यज्ञ कराना) है।[2] अध्ययन भी - धर्म के लिए, धन के लिए, अपनी सेवा कराने के लिए - प्रकार त्रय होता है।[3] योग्य शिष्यों को अध्यापन, योग्य यजमानों का यज्ञ कराना, और गृहस्थ धर्म की सिद्धि के लिए दान-ग्रहण करना चाहिए।[4] प्रतिदिन वेदाभ्यास, प्रयत्नपूर्वक नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों का अनुष्ठान एवं प्रातः, सायं विधिपूर्वक अग्नि सेवन एवं गुरुजनों की सेवा करनी चाहिए।[5] गृहस्थ ब्राह्मण को प्रतिदिन बलि वैश्वदेव तथा अतिथि-सेवा करना चाहिए। स्वदारानुरक्ति, परदाराननुरक्ति, सत्यवादी, जितक्रोध स्वधर्मासक्ति, तथा सत्य प्रिय तथा हितकारिणी वाणी का प्रयोग करना चाहिए।[6]

राजस्थ क्षत्रिय को धर्मपूर्वक प्रजापालन, वेदाध्ययन, विप्रों का दान, परस्त्री का त्याग, नीतिशास्त्रार्थनिपुण, सन्धि एवं विग्रह के तत्त्व को जानने वाला और धर्मपूर्वक विजयेच्छा करनी चाहिए।[7]

---

१. वही, अध्याय- ५७, श्लोक- १५-१६ "स चोक्तस्तेन देवेन ब्राह्मणान् मुखतोऽसृजत्।
असृजत्क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यां स्तु ऊरुतोऽसृजत्।। शूद्रास्तु पादतः सृष्टास्तेषां चैवानुपूर्वशः।
धर्मशास्त्रं च मर्यादां प्रोवाच कमलोद्भवः।।"
प्रस्तुत पुराण ने "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रोऽजाययत्।।" वेदोक्त कथन का ही समर्थन किया है।

२. नरसिंह पुराण, अध्याय- ५७, श्लोक- २०-२१ "षट्कर्माणि च यान्याहुर्ब्राह्मणस्य मनीषिणः।
तैरेव सततं यस्तु प्रवृत्तः सुखमेधते।। अध्ययनाध्यापनं च यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चेति कर्मषट्कमि होच्यते।।"

३. वही, अध्याय- ५७, श्लोक- २२ "अध्यापनं च विविधं धर्मस्यार्थस्य कारणम्।
शुश्रूषा कारणं चैव त्रिविधं परिकीर्तितम्।।"

४. वही अध्याय-५७, श्लोक-२३ "योग्यानध्यापयेचिछण्यान् याज्यानपि च याजयेत्।
विधिना प्रतिगृह्णंश्चगृहधर्म प्रसिद्धये।।"
वही अध्याय-५८, श्लोक-१०८-११० "महानवम्यां द्वादशां भरण्यामपि चैव हि।
तथाक्षय्यतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद् बुधः।।"
"माघमासे तु सप्तम्यां रथ्यामध्ययनं त्यजेत्।
अध्यापनमथाभ्यज्य' स्नानकाले विवर्जयेत्।।"
अर्थात् महानवमी (आश्विन शुक्ला नवमी) और द्वादशी तिथि, भरणी नक्षत्र, और अक्षय तृतीयायमें विद्वान् पुरुष शिष्यों को न पढ़ायें। माघ मास की सप्तमी को अध्ययन न करें, मार्ग पर चलते समय, स्नान करते समय भी अध्ययन-अध्यापन का त्याग करना चाहिये।

५. वही, अध्याय-५७, श्लोक-२४-२५ "वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं शुभे देशे समाहितः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्प्रयत्नतः।।
गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायतन्द्रियः।
सायं प्रातरुपासीत विधिनाग्निं द्विजोत्तमः।।"

६. वही, अध्याय-५७, श्लोक-२७-२६

७. वही, अध्याय-५८, श्लोक-१-५

वैश्यों को चाहिए कि वह विधिपूर्वक गोरक्षा, कृषि, व्यापार, दानधर्म, प्रतिदिन यज्ञ, अध्ययन और दान करें।[१] स्वधर्म का प्रतिपालन करने वाले वैश्य के लिए यही कर्त्तव्य कर्म है।

शूद्र को यत्नपूर्वक तीनों वर्णों की सेवा, जीविका के लिए कृषिकर्म, न्याय धर्मानुसार पूजन, एवं सदाचरण का पालन करना चाहिए।[२]

पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष) की प्राप्ति वेदों और श्रुतियों के कथनानुसार धर्मसम्मत तथा सत्य है।[३] आश्रम चतुष्टय[४] एवं सन्ध्योपासनादि शास्त्रोक्त धार्मिक कृत्यों पर सविस्तर वर्णन किया गया है।[५] आश्रमों एवं सदाचार विषयक तत्त्वों पर भी पूर्ण प्रकाश है। महर्षि गालव,[६] भारद्वाज[७], विश्वामित्र[८], सुतीक्ष्णाश्रम, अगस्त्याश्रम एवं शरभङ्गादि[९] ऋषियों एवं महर्षियों के सिद्धाश्रमों का मनोरम वर्णन किया गया है। जातकर्म[१०] निष्क्रमण,

१. वही, अध्याय-५८, श्लोक-६-१० "गोरक्षा कृषि वाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि। दानधर्म यथाशक्त्या गुरुशुश्रूषणं तथा।।"
२. वही अध्याय-५८, श्लोक-११-१५ "इत्थं कुर्वन् शूद्रो मनोवाक् काय कर्मभिः। स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापस्तु पुण्यभाक्।।"
३. वही, अध्याय- १७, श्लोक- २७ "धर्मार्थकाममोक्षांश्चलभते च जपन्नरः। एतत्सत्यं च धर्म्यं च वेदश्रुति निदर्शनात्।।"
वही, अध्याय- ३४/३४, अध्याय- ४१/३३, अध्याय- ६४/५ "धर्मार्थ काममोक्षाणां चतुर्णामिह केवलम्। उपायः पदभेदेन बहुधैव प्रचक्ष्यते।।"
भगवान हृषीकेश की आराधना करने से पुरुषार्थ चतुष्टय दूर नहीं रहते हैं- वही, अध्याय- ३१ श्लोक- ६३ "तमाराध्य हृषीकेशं चतुर्वर्गो न दूरतः।।"
४. वही, अध्याय- १४/८-९, अध्याय- ६१/२०, अध्याय- ५८/१६
५. वही, अध्याय- ५८, श्लोक- ६२
६. वही, अध्याय- २४, श्लोक- ३६-३७ "पूर्व दक्षिणदिग्भागे सरयूतीरगे नृप। गालवप्रमुखानां च ऋषीणामस्ति चाश्रमः।। पञ्चयोजनमध्वानं स्थानमस्मात्तु पावनम्। नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्प-समाकुलम्।।" वही अध्याय-४७, श्लोक- ८६-८७ "नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्। नानानिर्झरतोयाढ्यं विन्ध्यशैलान्तरस्थितम्।।" "शाकमूलफलोपेतं दिव्यं सिद्धाश्रमं स्वकम्। रक्षार्थं तावुभौ स्थाप्य शिक्षयित्वा विशेषतः।।"
७. वही, अध्याय- ४८, श्लोक- ६४ "उत्तीर्य भगवान् रामो भरद्वाजाश्रमं शुभम्। नानाद्रुमलताकीर्णं पुण्यतीर्थमनुत्तमम्।।"
८. नरसिंह पुराण, अध्याय- ४७, श्लोक-१५६ "पुनः पुनः श्राव्य हसन्महामतिर्जगाम सिद्धाश्रममेवमात्मनः।।"
९. वही, अध्याय- ४६/२५, २६, २८ "शिलाभिश्छाद्य गतवाञ्शरभङ्गाश्रमं ततः। तीक्ष्णा श्रममुपागम्य दृष्टवांस्तं महामुनिम्।।"
"ततोऽगस्त्याश्रमाद्रामो भ्रातृभार्यासमन्वितः। गोदावर्याः समीपेतु पञ्चवट्यामुवास सः।।"
१०. वही, अध्याय-१३, श्लोक-११

नामकरण, अन्नप्राशन[1] चूडाकर्म[2] उपनयन[3] पुंसवन[4] समावर्तन[5] विवाह,[6] एवं और्ध्वदैहिक[7] प्रभृति षोडश संस्कारो का भी उल्लेख किया गया है। प्रायः ब्रह्मज्ञान से विमुख प्राकृत मनुष्य सदा सुख-दुःख से युक्त होकर इस असार संसार में मीनवत फँसा रहता है।[8] ब्रह्मज्ञानी विद्वान् इस संसार विष वृक्ष को काटकर कल्पवृक्ष तुल्य मोक्ष को प्राप्त करता है।[9] काम, क्रोध, लोभ, मोह ईर्ष्या, द्वेषादि से प्रपीडित, पुत्रैषणा, लौकेषणा, लौकेषणा, वित्तैषणा एवं दारैषणादि कर्ममय मुख्य बन्धनो में समस्त जागतिक मानव का मोक्षमार्ग मात्र ब्रह्मज्ञान ही है।[10]

भारतीय सनातन समाज में मात्र श्रद्धास्वरूपा नारी का सर्वोच्च स्थान हैं वह कभी कन्यास्वरूप में दुर्गा की भांति, पतिव्रता पत्नी के रूप में समी अनसूया की भाँति, वात्सल्य भावभूमि में ममतामयी माता के रूप में यत्र-तत्र सर्वत्र जगन्माता सीता की भांति समादृत है। मानव समुदाय जिसे वरणीय कल्याणमयी, सर्वाङ्गसुन्दरी और सुसंस्कृता कहते हैं, उसके लिये भी विद्वान् पुरुष कभी दूषित कर्म नहीं करते हैं।[11] पतिव्रता धर्म का पालन करना ही उसका सर्वस्व है।[12] वह अपरिचित पर विश्वास नहीं करती है।[13] नारी पर सदैव

१. वही, अध्याय-१३ श्लोक-१२, १३
२. वही, अध्याय-१३ श्लोक-१४
३. वही, अध्याय-६ श्लोक-४२
४. वही, अध्याय-५८ श्लोक-३६
५. वही, अध्याय- ५८ श्लोक- ४०, ४१
६. वही, ४५/८ ४८/१०५, १०६, १२७, १२६, ४६/१२६, ५०/१५७
७. वही, अध्याय- १४ श्लोक- १३, एवं अध्याय- १५ श्लोक- ६-१०
८. वही, अध्याय- १५ श्लोक-१२
९. वही, अध्याय- १६ श्लोक- २, अध्याय- २४, श्लोक- ३०-३४, एवं अध्याय- ६४ श्लोक- १४
"ब्रह्मविद्यामधीयानाः प्राणायामपरायणाः। तस्य सर्वार्थभूतस्य संसारेऽत्यन्तनिःस्पृहाः।।"
१०. वही, अध्याय- १२ श्लोक- ३२-३३ "तत्कृतेऽपि सुविद्वांसो न करिष्यन्ति दूषणम्।।"
११. वही, अध्याय- १३ श्लोक- ३६ "स्त्रीणां तु पतिशुश्रूषा धर्म एषः परिस्थितः।।"
वही, अध्याय- १८, श्लोक- १२ "युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान्।।"
वही, अध्याय- ४७ श्लोक- १८७ "भर्तृभक्तिं कुरु शुभे श्वश्रूणां श्वशुरस्य च।।"
वही, अध्याय- ४८, श्लोक- ११६ "सीता च तत्र वैदेही नियमव्रतचारिणी।
पतिव्रता महाभागा सर्वलक्षणसंयुता।।"
वही, अध्याय- ५१ श्लोक- ५३ "शीलवृत्तसमायुक्ता तत्रापि जनकात्मजा।
सर्वत्रान्वेषमाणेन मया दृष्टा पतिव्रता।।"
वही, अध्याय-५२ श्लोक-११६, "दर्शयित्वागतो देवः सीता शुद्धेति कीर्तयन्।।"
१२. वही, अध्याय-५० श्लोक-११५, "नान्यथा विश्वसेत्सीता इति मे मनसि स्थितम्।।"
१३. वही, अध्याय-३३ श्लोक-६६

दयाभाव रखना चाहिए। क्योंकि पुत्र भले ही कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता-पिता कभी कुमाता अथवा कुपिता नहीं होते हैं।[१] नारी सदैव अवध्य है।[२]

जहां एक ओर नरसिंह पुराण' का पौराणिक धार्मिक, भौगोलिक एवं सामाजिक महत्त्व है, वहीं दूसरी ओर साहित्यिक सौष्ठव भी अनल्प है। अनुप्रास[३] उपमा,[४] रूपक[५] उत्प्रेक्षा[६] एवं अतिशयोक्ति[७] आदि शब्दालङ्कारों तथा अर्थालङ्कारों की चाकचिक्य विच्छित्ति प्रवर्तमान है, वहीं भयानक[८] एवं करुण तथा शान्तरस २०५ मूर्तिमान् हैं। भाषा एवं शैली अतीव सरस सरल, मधुर, सर्वसहृदय संवेद्य एवं गद्य-पद्यमयी है। समाससम्पृक्त गद्यात्मक सच्छटा के किञ्चिद दर्शनीय दृश्य समुल्लिखित हैं -"सजलजलधरश्यामः शमित सौभपतिशालव धामा। अभिरामरामातिविनयकृतनदरसरसापहतेन्द्रियसुररमणी विहितान्तःकरणानन्दः...... वनमालाधरवरमणिकुण्डलालंकृतश्रवणः स्वदयति क्रूरनिजजननीगोकुलपालकचतुर्भुज शङ्खचक्रगदापद्मतुलसीनवदलदामहारकेयूरकटकमुकुटालङ्कृतः। सुन्दरसुदर्शनमुदारतरहासं विद्वज्जनवन्दितमिदं ते रूपमतिहृदयमखिलेश्वरं नतोऽस्मि।।[९] पद्यात्मक परिदृश्य का अद्भुत निदर्शन अवलोकनीय है-

"अज्ञानादथवाधिपत्यरभसादस्मत्परोक्षे हृता-
सीतेयं प्रविमुच्यतामिति वचो गत्वा दशास्यं वद।
नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरीं पुत्रैर्वृतो यास्यसि।।"[१०]

---

१. वही, अध्याय-४७ श्लोक-७६, "कथं हि स्त्रीवधं कुर्यामहमद्य महामुने।
स्त्रीवधे तु महापापं प्रवदन्ति मनीषिणः।।"
वही, अध्याय-३३ श्लोक-२८, "द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः।।"
वही, अध्याय-६३ श्लोक-६३, "जगाद पुरतः स्थित्वा मुञ्चेमां महिलां वने।।"
श्लोक-६५, "यदेषा युवती दुष्ट निहता मे तपोवने।
ततस्त्वं मम शापेन निश्चयात् स्त्री भविष्यसि।।"

२. वही, अध्याय-२४ श्लोक-७, ८, ६, १०, ११, ३१/५६ "कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलं यः सुशीलयेत्।।"

३. वही, अध्याय-१२ श्लोक-३०, १६/१४-१५, २५/३६, ४६, ५०, ३१/७५, ७७, ३३/४३, ४१/५६, ४२/४ ४७/७६ एवं ५२/७६

४. वही, अध्याय-१२ श्लोक-१४, १६/५, ६, ३४/१०, ३६, ४१/५६, ४२/६, ४८/१०६

५. वही, अध्याय-३१ श्लोक-७७, '६०, ५२/२३, ६३/१६

६. वही, अध्याय-४२, श्लोक-३३, एव ५१/३६

७. वही, अध्याय-५२ श्लोक-४४. ४५ एवं ६०

८. वही, अध्याय-५२ श्लोक-५३, ३७/२८, ३०, ३१, ३२, ४२/३०, ३१, ४४/१४, १५, ३०, ४७/३४, ३७, ८३ ८४) वीर २०४ (२०४. वही, अध्याय-४६ श्लोक-११७,-१२०, १३७, ५२/५८, ५३/४८-५२

६. वही, अध्याय-३१ पृष्ठ-१०५, १०६, एवं पृष्ठ २२०

१०. वही, अध्याय-५२ श्लोक-३०

श्री नरसिंह पुराणान्तर्गत सूक्तियाँ

१. नरसिंह पुराण, अध्याय - १५, श्लोक-१२,
"ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाञ्छितम्।
तोषणं नरसिंहस्य ज्ञानहीनः पशुः पुमान्।।"

२. वही, अध्याय-१५ श्लोक-१३
"आहारनिद्राभयमैथुनानिसमानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं नराणामधिकं हि लोकेज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।"

३. वही, अध्याय-१८ श्लोक-१२
"युवतीस्त्रीणां भर्तुः शुश्रूषणमेव धर्मः श्रेयान्।।"

४. वही, अध्याय-३१ श्लोक-५७
"अनास्वदितगोविन्दपदाम्बुजरजोरसः।
मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत्फलम्।।"

५. वही, अध्याय-३१ श्लोक-५६
"न हि दूरे फलं तस्य सर्वासां सम्पदामिह।
कमलाकान्त कान्ताङ्घ्रिकमलं यः सुशीलयेत्।।"

६. वही, अध्याय-३१ श्लोक-६८
"द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च।
ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः।।"

७. वही, अध्याय-३१ श्लोक-७५
"शीतातपादिरिव विष्णुमयं मुनिं हि,
प्रादेशिका न खलु धर्षयितुं क्षमन्ते।।"

८. वही, अध्याय-३३ श्लोक-२४
"मुनीनां दर्शनं नाथ श्रुतं धर्मोपदेशकम्।।"

९. वही, अध्याय-३३ श्लोक-२७
"भयातुरं नरो जीवं संरक्षेच्छरणागतम्।
तस्यानन्तफलं स्याद्वै किं पुनर्मां द्विजोत्तमम्।।"

१०. वही, अध्याय-३३ श्लोक-२७
"एकतो मेदिनी दानं मेरुभूधर दक्षिणम्।
अन्यतो ह्यार्तजीवानां प्राणसंशय वारणम्।।"

११. वही, अध्याय-३३ श्लोक-२८
"द्विजं धेनुं स्त्रियं बालं पीड्यमानं च दुर्जनैः।
उपेक्षेत नरो यस्तु स च गच्छति रौरवम्।।"

१२. वही, अध्याय-४१ श्लोक-७

"यो भवेन्न्यूनकामो हि तपश्चर्यां करोति सः।।"

१३. वही, अध्याय-४१ श्लोक-१२

"नारायणो जगत्स्वामी मतिं मे सम्प्रदास्यति।।"

१४. वही, अध्याय-४१ श्लोक-५७

"यः शूरः स श्रियं भुङ्क्ते स प्रभुः स महेश्वरः।।"

१५. वही, अध्याय-४२ श्लोक-०६

"नेत्रयोः शत्रुदारिद्रयं श्रोत्रयोः सुतसूक्तयः।
युद्धव्रणं च गात्रेषु मायिनां च महोत्सवः।।"

१६. वही, अध्याय-४२ श्लोक-१२

"नीतिः सूक्तिकथाः श्राव्याः श्राव्यं काव्यं च तद्वचः।
यत्र संसृतिदुःखौघकक्षाग्निर्गीयते हरिः।।"

१७. वही, अध्याय-४२ श्लोक-२३

"नीलाब्जशकलानीव पेतुश्छिन्नान्यनेकधा।
किं प्राकृतानि शस्त्राणि करिष्यन्ति हरिप्रिये।।"

१८. वही, अध्याय-२४ श्लोक-३०

"पीडयन्ति जनांस्तावद् व्याधयो राक्षसा ग्रहाः।
यावद् गुहाशयं विष्णुं सूक्ष्मं चेतो न विन्दति।।"

१९. वही, अध्याय-४२ श्लोक-२६

"न चित्रं विबुधानां तदज्ञानां विस्मयावहम्।।"

२०. वही, अध्याय-४३ श्लोक-८

"यथा यथा साधु विचारयामस्तथा तथा दुःखतरं च विद्मः।
तस्माद् भवेऽस्मिन् किल चारुरूपे दुःखाकरे नैव पतन्ति सन्तः।।"

२१. वही, अध्याय-४४ श्लोक-३० **"दैवे दुर्जनतां गते तृणमपि प्रायोऽप्यवज्ञायते।।"**

२२. वही, अध्याय-५० श्लोक-३० **"वानराणां गतिर्नास्ति वने वर्षति वासवे।।"**

२३. वही, अध्याय-५० श्लोक-४६

"सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्।।"

२४. वही, अध्याय-५० श्लोक-५०

"जनवृत्तविदां लोके सर्वज्ञानां महात्मनाम्।
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृतं प्रतिकरोति यः।।"

२५. वही, अध्याय-५० श्लोक-५१
"शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
कृतघ्नस्य कपे दुष्ट न दृष्टा निष्कृतिः पुरा।।"
२६. वही, अध्याय-५२ श्लोक-२४ "कातरजन मनोऽवलम्बिना किं दैवेन।।"
२७. वही, अध्याय-६३ श्लोक-१४
"ध्रुवं विरागीकृतमानसानां स्वर्गस्य राज्यं न च किञ्चिदेव।।"
२८. वही, अध्याय-६३ श्लोक-१५
"राज्यस्य सारं विषयेषु भोगो भोगस्य चान्ते न च किञ्चिदस्ति।
विमृश्य चैतन्मुनयोऽप्यजस्रं मोक्षाधिकारं परिचिन्तयन्ति।।"
२९. वही, अध्याय-६३ श्लोक-१६
"सदैव भोगाय तपः प्रवृत्तिर्मैत्र्यादिसंयोगपराङ्मुखानां-
विमुक्तिभाजां न तपो न भोगः।।"
३०. वही, अध्याय-६३ श्लोक-२१
"पूर्वं वरं स्यात् सुकुलेऽपि जन्म-ततो हि सर्वाङ्गशरीररूपम्।
ततो धनं दुर्लभमेव पश्चा-दूधनाधिपत्यं सुकृतेन लभ्यम्।।"
३१. वही, अध्याय-६३ श्लोक-२३
"मोक्षोऽमुना यद्यपि मोहनीयो मोक्षेऽपि किं कारणमस्ति राज्ये।
क्षेत्रं सुपक्वं परिहृत्य द्वारे किं नाम चारण्यकृषिं करोति।।"
३२. वही, अध्याय-६३ श्लोक-२४
"संसारदुःखोपहता नरा ये कर्तुं समर्था न च किञ्चिदेव।
अकर्मिणो भाग्यविवर्जिताश्च वाञ्छन्ति ते मोक्षपथं विमूढ़ाः।।"
३३. वही, अध्याय-६३ श्लोक-२६
"पुरा महेशेन कृताङ्गनाशो, धैर्याल्लयं गच्छति को विशङ्कः।।"
३४. वही, अध्याय-६३ श्लोक-३२ "कः कामकोदण्डरवं सहेत।।"
३५. वही, अध्याय-६३ श्लोक-४६
"तद्यौवनं यद्युवतीविनोदो धनं तु चैतत्स्वजनोपयोगि।
तज्जीवितं यत्क्रियते सुधर्म स्तदाधिपत्यं यदि नष्टविग्रहम्।।"
३६. वही, अध्याय-६३, श्लोक-४७ "पराभवोऽस्तीति च को मृतानाम्।।"
३७. वही, अध्याय-६३, श्लोक-४९
"आकर्ण्य तां नाथ न चास्ति योग्यः, कान्तावियोगे निजदेहयातः।।"

३८. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५१

"भृशं न जल्पन्ति रुदन्ति साधवः पराभवं बाह्यकृतं सहन्ते।
कृतं हि कार्यं गुरु दर्शयन्ति।।"

३९. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५३

"ध्रुवं प्रसन्ना न भवन्ति दुर्जनाः, कृतोपकारा हरिवज्रनिष्ठुराः।।"

४०. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५४

"न चोपकारैर्न गुणैर्न सौहृदैः, प्रसादमायाति मनो हि गोत्रिणः।।"

४१. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५५

"परस्परं घ्नन्ति च ते विरुद्धा, स्तथापि लोके न पराभवोऽस्ति।
पराभवं नान्यकृतं सहन्ते, नोष्णं जलं ज्वालयते तृणानि।।"

४२. वही, अध्याय-६३, श्लोक-५६

"स्वबाहुवीर्यार्जितवित्तभोगिनांस्वबन्धुवर्गेषु हि को विरोधः।।"

४३. वही, अध्याय-६४, श्लोक-१७ "अनित्यं यौवनं रूपमायुष्यं द्रव्यसंचयम्।।"

"स्थानाभिकामी तपसि स्थितोऽहं-त्वां दृष्टवान् साधुमुनीन्द्र गुह्यम्।
काचं विचिन्वन्निव दिव्यरत्नं-स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरान्न याचे ।। ३१/९० ।।
अपूर्वदृष्टे तव पादपद्मे, दृष्ट्वा दृढं नाथ नहि त्यजामि।
कामान् न याचे स हि कोऽपि मूढो, यः कल्पवृक्षात् तुषमात्रमिच्छेत्।। ३१/९१ ।।
त्वां मोक्षबीजं शरणं प्रपन्नः, शक्नोमि भोक्तुं न बहिः सुखानि।
रत्नाकरे देव सति स्वनाथे विभूषणं काचमयं न युक्तम्।। ३१/९२ ।।
अतो न याचे वरमीश युष्मत्- पादाब्जभक्तिं सततं ममास्तु।
इमं वरं देववर प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे।। ३१/९३ ।।

कपिलपुराण

अष्टादश महापुराणों की भाँति अष्टादश उपपुराण और अष्टादश औपपुराण भी प्राप्त होते हैं। वस्तुतः उपपुराणों की रचना महापुराणों के आधार पर ही की गई है।[1] प्राचीनकालीन अनेक मुनियों ने महापुराणों की छाया का आश्रय लेकर अनेक उपपुराण, औपपुराणादि की रचना की हैं। विस्तारभय से उपपुराणों एवं औपपुराणों में कहीं महापुराणों की कथाएँ सूक्ष्म की गई हैं, कहीं कुछ कथाएँ छोड़ दी गई हैं तो कहीं पर चमत्कार लाने की दृष्टि से विलक्षण कथाओं का समावेश किया गया है, तो कहीं-कहीं पर किञ्चित् परिवर्तन के साथ कथाएँ दृष्टिगोचर होतीं हैं। इतना होते हुए भी उपपुराण भी महापुराणों के समान ही हमारे लिये आदरणीय, स्पृहणीय मान्य एवं श्रद्धास्पद हैं। उपपुराणों को गरुड़पुराण एवं विष्णुपुराण जहाँ अन्य ऋषियों द्वारा कथित बतलाते हैं वहीं स्कन्दपुराण उपपुराणों को साक्षाद् ब्रह्मा द्वारा कथित मानता है।[2] यथा-

'तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानि वेधसा' -स्कन्दपुराण रेवाखण्ड १/४५

किन्तु मत्स्यपुराण उपपुराणों को स्वतंत्र ग्रन्थ न मानकर महापुराणों का ही उपभेद मानता है। यथा-

'उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।' -मत्स्य पुराण ५३/५१

यद्यपि अनेक विद्वान् उपपुराणों की संख्या (१८) अठारह ऐसा सीमित नहीं मानते। किन्तु अनेक महापुराणों में उनकी संख्या न केवल अठारह बतलायी गयी है अपितु उनमें प्राप्त उपपुराणों की सूची में भी अठारह ही नाम दिये हैं। यथा-

अष्टादशपुराणानामेवमेवं विदुर्बुधाः।

एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः।। -ब्र.वै. श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३१/२२

और भी

पाराशरं भागवतं कौर्मञ्चाष्टादशं क्रमात्। -स्क.पु.रेवा. १/५८

कपिल पुराण की गणना भी उपपुराणों में की गयी है। यह एक लघुकाय किन्तु महत्वपूर्ण पुराण हैं। विशेषकर उत्कलक्षेत्र का वर्णन करने वाले इस पुराण में कुल इक्कीस अध्याय एवं (१०७६) एक हजार छिहत्तर श्लोक हैं। कपिल पुराण में उत्कल देश की बड़ी

---

१. अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यद् प्रदृश्यते। विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्।। मत्स्य ५३/६३

२. विष्णु पुराण ३/६/२४, गरुड़ पुराण ११५/१६

प्रशस्ति गायी गई है और इसके स्मरण मात्र से समस्त कल्मष नाश की बात कही गयी है। यथा-

कथयामि रहस्यं त्वां शृणुष्वैकमना नृप।
येषां स्मरणमात्रेण कल्मषा यान्ति वै क्षयम्।।
वर्षाणां भारतं श्रेष्ठं देशानामुत्कलः स्मृतः।
उत्कलेन समो देशो देशो नास्ति महीतले।। -कपिल पुराण १/६-७

उपपुराणों की गणना में कूर्म पुराण के पूर्वार्द्ध में कपिलपुराण का सातवाँ क्रम बतलाया गया है। यथा-

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण च भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्।
कपिलं वामनं चैव तथैवोशनसेरितम्।।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भास्कराह्वयम्।। -कूर्म पुराणस्य पूर्वार्द्धे १/१७-२०

इसी प्रकार किञ्चित् शब्दान्तर और नामान्तर से देवी भागवत (१/३/१४), स्कन्द पुराण के रेवा खण्ड (१/४८-५२), मत्स्यपुराण (५३/५७-६२), गरुड़पुराण (२१५/१७-२०) सर्वत्र कपिलपुराण का नाम सम्मिलित है। उपपुराणों की उपलब्ध बाईस सूचियों में से बारह में सातवाँ, चार में छठा और एक-एक सूची में नौवाँ तथा दसवाँ क्रम कपिल पुराण को प्राप्त है। इस प्रकार कपिल पुराण उपपुराणों की गणना में एक मान्य पुराण है।

नामकरण का अभिप्राय

ज्यादातर महापुराणों एवं उपपुराणों के नाम उनके प्रतिपाद्य देवता, वक्ता अथवा उसके श्रोता के नाम पर रखे गये हैं। कपिल पुराण में विविध पुण्यक्षेत्रों के माहात्म्य श्रवण की इच्छा से राजा शल्यजित द्वारा सादर किये गये प्रश्न के प्रत्युत्तर में राजा की जिज्ञासा का समाधान करते हुए महामुनि कपिल ने पुरातन इतिहास वर्णन के व्याज से पुष्कर जैसे पुण्य क्षेत्र में तप हेतु निवास करने वाले महात्माओं के प्रश्न को सुनकर भरद्वाज मुनि के मुखाराबिन्द से निर्गत अनेक उत्कल-नीलाचल-जगन्नाथपुरी-वाराणसी महानदी-गङ्गा (गन्धवती)-मैत्रेयवन-एकाम्रक्षेत्र प्रभृति अनेक पवित्र क्षेत्रों की महिमा तथा तत्सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों का जो वर्णन किया है वही कपिलपुराण में निबद्ध है। अन्य पुराणों की तरह इसका प्रारम्भ सूत शौनक संवाद से न होकर शल्यजिद् राजा और कपिल महामुनि

के संवाद से होता है। इसके मुख्य वक्ता कपिल महामुनि तथा अन्य वक्ता भरद्वाज मुनि तथा मुख्य श्रोता राजा शल्यजित एवं अन्य श्रोता पुष्करस्थ महात्मा हैं। कपिल महामुनि का मुख्य वक्तृत्व होने से इस पुराण का नामकरण कपिल पुराण ऐसा किया गया है जो सर्वथा उपयुक्त ही है। स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्डान्तर्गत उत्कलखण्ड तथा ब्रह्मपुराण पर इसका आंशिक प्रभाव दिखता है।

कपिल पुराण का देशकाल

प्रख्यात विद्वान् विण्टरनित्स ने उपपुराणों का रचनाकाल षष्ठ शताब्दी से दशम शताब्दी के बीच माना है।[1] जबकि डा. वयुलार पञ्चम शताब्दी का उत्तर काल[2] एवं डा. आर.सी. हाजरा ई.पू. पाँचवी शताब्दी मानते हैं।[3]

जिन महापुराणों में उपपुराणों की चर्चा मिलती है उनमें मत्स्य २ से ४ शताब्दी, कूर्म ६-७ शताब्दी, स्कन्द ७ से ९ शताब्दी, देवीभागवत ७ शताब्दी के बाद एवं गरुड़पुराण ९ शताब्दी की रचना मानी जाती है। इन पुराणों में मत्स्य में केवल चार उपपुराणों के ही नाम दिये गये हैं जिनमें कपिल पुराण सम्मिलित नहीं हैं किन्तु उसके अनन्तर कूर्मपुराण की सूची में कपिलपुराण का नाम सम्मिलित है अतः कपिलपुराण निस्सन्देह ६-७ शताब्दी में विद्यमान रहा होगा। स्कन्द पुराणान्तर्गत वैष्णवखण्ड के उत्कलमाहात्म्य में कपिल पुराण की कथाओं का अत्यन्त विस्तार दिखता है जिससे कपिल पुराण स्कन्द से पूर्व का होगा। स्कन्द का रचनाकाल सामान्यतया ७-९ शताब्दी माना जाता है अतः कपिल पुराण का रचनाकाल ५-७ शताब्दी के मध्य होना चाहिए।

कपिल पुराण में वर्णित तीर्थों के विवरण जिनमें उत्कलदेश का श्रेष्ठत्व, पुरुषोत्तम क्षेत्र, नीलाचल, विरजा क्षेत्र, एकाम्रक्षेत्र, बिन्दुसरोवर, पादहरादेवीक्षेत्र के सजीव वर्णन एवं वर्तमान में भी उनकी उत्कल प्रान्त में मान्यता इस पुराण की रचना उत्कल देश में होने की पुष्टि करते हैं। 'सर्वपापहरं देशमौड्रं देवैस्तु कल्पितम्।' (२/२), 'उत्कलेन समोदेशो देशो नास्ति महीतले।' (१/७), 'साक्षात् वैकुण्ठरूपं तत् क्षेत्रं श्री पुरुषोत्तमम्।' (३/६), 'कथयामि महापुण्यं विरजाख्यं सुनिर्मलम्।' (७/२), 'क्षेत्रमेकाम्रकं श्रीमत् परमानन्ददायकम्'। (११/३), 'सर्वतीर्थमयं ह्येतत् एकाम्रवनसंज्ञितम्।' (१३/४), 'स्वर्गेमर्त्ये च पाताले ह्यन्तरिक्षे तथा दिशि। न भूतं न भविष्यं च तीर्थं बिन्दूद्भवाद् परम्।।' (१२/१२) इन श्लोकों में इन उत्कल देशस्थ तीर्थों के प्रति जैसी आस्था एवं निष्ठा प्रकट की गयी है उससे इस पुराण की रचना उत्कल देश (ओडिशा) में होने की पुष्टि होती है।

---

१. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर पृ. ८०
२. इण्डियन इण्टिक्वेरी वा. १९ पृ. ४०८
३. स्टडीज इन दि उपपुराणा वा १ पृ. २१२

संस्करण/पाण्डुलिपि

संस्कृत मुद्रित ग्रन्थ जिसके सम्पादक डा. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी है, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन से १६८१ ई. में प्रकाशित है। जिसमें विस्तृत भूमिका सहित कथा सारांश भी मूल श्लोकों के साथ उपलब्ध है।

इस पुराण की सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वतीभवन-पुस्तकालय में केवल एकमात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसका विवरण इस प्रकार है-

क्र.सं.	पत्र सं.	आकार	पंक्ति सं.	अक्षर सं.	लिपि	लिपिकाल	पूर्ण/अपूर्ण	कुल अध्याय
16404	1–56	11.7x4.9	8	41	दे.नाग.	1967 वि.सं	पूर्ण	1–21 अध्याय

विषयवस्तु

प्रथम अध्याय- उत्कल देश की महिमा, वहाँ स्थित तीर्थ, देवता आदि के बारे में राजा सत्यजित के प्रश्न के प्रत्युत्तर में महात्मा कपिल ने मङ्गलाचरण के रूप में भगवान् श्रीहरि का स्मरण करने के उपरान्त बताया कि जिस प्रकार सभी वर्षों में भारतवर्ष अत्युत्तम है उसी प्रकार भारत में सभी देशों में उत्कल देश सर्वश्रेष्ठ है। उत्कल देश की महिमा बताने के लिये उन्होने पुष्करतीर्थ स्थित महात्माओं और भरद्वाज मुनि के बीच हुए संवाद की चर्चा की। भरद्वाज मुनि ने सर्वप्रथम महात्माओं को बताया कि पुष्कर एक उत्तम तीर्थ, श्रेष्ठ वन तथा अनेक देवताओं से सुशोभित तीर्थों का सङ्गम है। पुष्कर में निवास कर भगवान् जनार्दन की अर्चना करने वाले लोग पापमुक्त होकर धन्य हो जाते हैं किन्तु यहाँ पाप करने पर उन्हे भारतवर्ष में पुनः जन्म भी प्राप्त होना दुर्लभ हो जाता है। अतः यहाँ रहकर पुण्यानुष्ठान ही करना चाहिए। इस पर पुण्यानुष्ठान की दुष्करता देखते हुए महात्माओं ने मुनिवर से प्रार्थना की कि जहाँ किया पाप भी पुण्य हो जाय ऐसा श्रेष्ठ स्थान कौन सा है, यह आप हमें बताएँ। इस पर भरद्वाज मुनि ने महात्मा कुशकेतु के मुख से सुनी बात के माध्यम से बताया कि औण्ड्रदेश (उत्कल) ऐसा देश है, जहाँ पाप भी पुण्य हो जाता है, वहाँ अनेक ऐसे तीर्थ हैं जहाँ थोड़ा सा किया पुण्य भी अधिक हो जाता है। अतः इस पवित्र देश का सेवन करें।

द्वितीय अध्याय- द्वितीय अध्याय में औण्ड्रदेश की महिमा बतलाते हुए भरद्वाज मुनि कहते हैं कि देवताओं ने इस देश का निर्माण किया है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण, सूर्य, भगवती पार्वती और शिवजी सदा निवास करते हैं। यहाँ उत्तमनदी, महानदी प्रवाहमान है जो समस्त पापों को दूर कर अनन्त सुख प्रदान करती है। महानदी की महिमा बताते हुए मुनिवर भरद्वाज ने महात्माओं को बतलाया कि एक बार त्रेतायुग में महात्मा पुलह के पुत्र सुकान्ति ने पिता से आज्ञा और निर्देश लेकर गङ्गा को लाकर उस विन्ध्य क्षेत्र के जलाभाव को दूर करने की इच्छा से घोर तपस्या की। गङ्गाजी ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन देते हुए उसके

तप पूर्ण होने तक विन्ध्यक्षेत्र में रहने के बाद पूर्व समुद्र में प्रवेश करने की बात कही। सुकान्ति ने अपनी घोर तपस्या एवं स्तुति से गङ्गा को प्रसन्न कर लिया जिससे माँ गङ्गा ने उसे अपने गोद में बैठाकर उसका मस्तक चूमते हुए कहा कि आज से तुम मेरे धर्मपुत्र हो और मैं तुम्हारी धर्ममाता हूँ। तुम अपना अभीष्ट वर शीघ्र माँग लो।

इस पर सुकान्ति ने परिश्रम से अर्जित तपस्या की सिद्धि और कीर्ति के विस्तार की याचना करते हुए गङ्गा से पश्चात् पूर्वसागर में जाने को कहा। गङ्गा ने भी उसका तप विभवार्जित हो ऐसा कहकर पूर्वसागर में प्रवेश किया। यहाँ गङ्गा अपने नाम से विख्यात न होकर महानदी के नाम से और उत्कल देश में चित्रोत्पला नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसमें स्नानकर शिवपार्वती के दर्शन करने से सभी पापों से मुक्ति एवं गङ्गास्नान का फल प्राप्त होता है।

तृतीय अध्याय- तीसरे अध्याय में भरद्वाज मुनि ने दारुब्रह्म के पुण्यप्रद नीलाचाल क्षेत्र की महिमा बतलाई है। दस योजन विस्तीर्ण और अर्धयोजन ऊँचे इस क्षेत्र में मरण होने से वैकुण्ठ प्राप्त होता है। महोदधि तीर्थ में स्नान कर भगवान् के दर्शन करने से ब्रह्महत्यादि दोष दूर हो जाते हैं। ऋषियों द्वारा भगवान् के पहले नीले पत्थर के रूप में तथा वर्तमान में दारु रूप में होने के कारण पूछने पर इसका इतिहास भरद्वाज मुनि ने इस प्रकार बताया। शिवपार्वती के विवाह के समय शिव द्वारा ब्रह्मा जी के काटे हुए पाँचवे मस्तक ने अनन्य भगवद् भक्त इन्द्रद्युम्न राजा के रूप में जन्म लिया जो बड़े ही तपस्वी, शान्त, दान्त, अतिथिपूजक, सत्यवादी और वैष्णव थे। राजा ने अपने अन्तःकरण में जब भगवान् के दर्शन करने चाहे तब विष्णु ने स्वप्न में आकर राजा को प्रलय में भी नष्ट न होने वाले दिव्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाने, वहाँ देव तथा योगीजनों को अति दुर्लभ उस क्षेत्र में रोहिण्याख्य तीर्थ में स्नान कर इन्द्रनीलशरीर वाले विग्रह का ध्यान कर, मुक्ति प्राप्त करने की बात कही।

स्वप्न टूटने के बाद प्रभु वियोग में व्याकुल राजा ने समागत मन्त्री, पुरोहित एवं प्रजाजनों के समक्ष प्रभु आदेश से नीलाचल पर्वत पर प्रभुदर्शन हेतु शीघ्र जाने की बात कह कर सबको चकित कर दिया। सभी लोग नीलाचल पर जाने की तैयारी करने लगे। इसी बीच राजा इन्द्रद्युम्न को दलबल सहित प्रजाजनों के साथ आता देखकर, सबके उद्धार से चिन्तित एवं स्वयं के कार्यहीन होने की चिन्ता से सूर्यपुत्र यमराज ने भगवान् वासुदेव के पास जाकर स्नान मात्र से कौओ तक को मुक्ति देने वाले विख्यात रोहिण्याख्य तीर्थ को पाताल भेजने की प्रार्थना की। तदनन्तर भगवान् ने वैसा ही किया और स्वयं भगवान् विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तीन प्रतिमाओं के रूप में नीलाचल पर ही स्थित हो गये।

चतुर्थ अध्याय- इस अध्याय में भगवान् के दारुमय विग्रह की प्रतिष्ठा की चर्चा है। पूर्व स्वप्न में प्राप्त आदेश के अनुसार राजा अपने हितैषी मन्त्री, पुराणज्ञ पुरोहित, श्रद्धालु प्रजा एवं उत्साहित सेना को लेकर जगन्नाथ जी के दर्शन के लिये चल पड़े। नील पर्वत

के शिखर को नमस्कार कर उसके समीप पहुँचे। स्वर्णकूट से आगे नीलशैल पर विराजमान शङ्खचक्रगदाधारी भगवान् श्रीहरि के दर्शन कर अकस्मात् अपने दक्षिण नेत्र और वामाङ्ग को एक साथ फड़कता देखकर वहाँ उपस्थित देवर्षि नारद से कुतूहल वश इसका कारण पूछा। इस पर नारद जी ने कहा कि आज भगवान् तथा रोहिण्याख्यतीर्थ पाताल चले गये हैं। इतना सुनते ही राजा मूर्छित हो कर गिर पड़े। उनके परिकरों के प्रयत्न से पुनः राजा को चेतना आने पर नारद जी ने कहा कि राजन् आप चिन्ता न करें, मुझे आपके पास ब्रह्माजी ने यह सन्देश देकर भेजा है कि अभी भगवान् जगन्नाथ जी यहाँ पुनः आएँगे इसी कारण आपको शुभ अशुभ दोनों शकुन हो रहे हैं। इसी बीच मनुष्यों का कोलाहल सुनायी दिया। उन्होंने राजा से शङ्खचक्र चिह्नांकित एक दारु (लकड़ी) के जल में आकर तैरने की सूचना दी। राजा ने आनन्दित होकर उस दारुकाष्ठ को देखा और तत्काल देवशिल्पी भगवान् विश्वकर्मा को बुलाकर श्रीकृष्ण, बलभद्र एवं सुभद्रा तथा सुदर्शन स्तम्भ ऐसे चार विग्रह बनवाये। मण्डप में इन प्रतिमाओं की विधिवत् प्रतिष्ठा, वैष्णव राजा इन्द्रद्युम्न की प्रार्थना पर स्वयं ब्रह्माजी ने आकर की। देवताओं ने भी 'जितं ते' इस मन्त्र से स्तुति की। शङ्खचक्रगदाधारी भगवान् श्रीहरि ने अन्य पुण्यक्षेत्रों को त्यागकर परार्द्ध तक इसी क्षेत्र में रहने का वचन देकर राजा को गुडीचाख्य महोत्सव करने का आदेश दिया। महोदधि में स्नान कर भगवान् जगन्नाथ जी के पूजन से वैकुण्ठलोक प्राप्त होने की बात बतलाकर विष्णु मौन हो गये, ब्रह्मा अपने सत्यलोक पधार गये और राजा इन्द्रद्युम्न वहीं भगवदाराधन कर मुक्त हो गये। तभी से इन्द्रनील स्वरूप भगवान् दारुरूप हो गये।

पञ्चम अध्याय- पाँचवें अध्याय में पुरुषोत्तम क्षेत्र के समीप स्थित अन्य तीर्थो एवं लिङ्गों की चर्चा की गई है। महोदधि स्नान के अनन्तर पुरुषोत्तम दर्शन से न केवल ब्रह्महत्या जैसे महापाप दूर होते हैं अपितु गङ्गा, सरस्वती, गोदावरी, जैसी पवित्र नदियों की यात्रा का भी फल प्राप्त होता है। वहीं परम पावन देवोद्धारक मार्कण्डेयतीर्थ है जहाँ मार्कण्डेय के हितार्थ भगवान् श्रीकृष्ण निर्मित मार्कण्डेय वट है जहाँ स्नान कर शिव दर्शन से कोटिजन्म कृत पाप दूर होते हैं। आगे यमेश्वर देवराज के दक्षिण में स्थित हैं, जिनके भक्तिपूर्वक दर्शन करने से यमदण्ड से मुक्त होकर जीव शिवत्व प्राप्त करता है। आगे पश्चिम में लाम्वीश्वर एवं कपालमोचनेश्वर लिङ्ग है। जिनके दर्शन से क्रमशः पुत्र, सौन्दर्य प्राप्ति तथा ब्रह्महत्या दोष शमन होता है। वटमूल स्थित वटेश्वर के दर्शन पूजन से भी समस्त पाप दूर होते हैं। त्रिलोकी वाराणसी के समान कोई दूसरा क्षेत्र है तो वह पुरुषोत्तम क्षेत्र ही है जहाँ भगवान् पुरुषोत्तम के दर्शन, पूजन, वन्दन से आत्ममुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। तप और मुक्ति हेतु यहाँ स्थित यमेश्वर का स्थान सर्वोत्कृष्ट कहा गया है।

षष्ठ अध्याय- छठे अध्याय में मैत्रेय वन, सूर्यतीर्थ और वहाँ स्थित अन्य महत्त्वपूर्ण तीर्थों की चर्चा है। महामुनि भरद्वाज ने इस क्षेत्र की महिमा बतलाते हुए कहा कि यहाँ द्वापर

युग में कृष्णवन में श्वेतगङ्गा नाम की पवित्र नदी थी, जहाँ भगवान् माधव रूप से विराजते थे वहीं मत्स्यमाधव विराजमान है, जिनके दर्शन से समस्त महापाप दूर हो जाते हैं। वहीं इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान से इन्द्रलोक प्राप्ति, नीलकन्धर नृसिंह और ज्योतिर्लिङ्ग के मध्य पितृगणों हेतु पिण्डदान करने से सूर्यलोक प्राप्ति बतलाई गयी है। वहीं दारुवन के पास कल्पवट, वटमूल में मङ्गलदायिनी देवी, वट के पश्चिम में विमलादेवी तथा आगे नरसिंह का स्थान है जिनका दर्शन करने से क्रमशः ब्रह्महत्या दोष निवृत्ति, मोहबन्धमुक्ति, ज्ञान एवं मुक्ति प्राप्त होती है।

उसके आगे शङ्खचक्राङ्कित क्षीरशायी जगन्नाथ हैं। जिनके चरणतल में लक्ष्मी, कान के पास सरस्वती, नाभिपद्म में ब्रह्मा और शेष देह में शिव व्याप्त हैं। पर्वत पर शेषशायी भगवान् अनन्त विराजमान हैं। यह पुरुषोत्तम क्षेत्र के नाम से विख्यात है। भगवान् जगन्नाथ को समर्पित अन्न का प्रसाद ग्रहण करने से महापाप मुक्ति और कोटि कपिला गोदान का पुण्य प्राप्त होता है।

आगे जाम्बवती नन्दन श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब को पिता के शाप से कुष्ठ प्राप्ति और पश्चात् मैत्रवन में भगवान् भास्कर की आराधना से कुष्ठ मुक्ति का वर्णन है। भगवान् जगन्नाथ द्वारा द्वापर में कृष्ण के रूप में अवतार लेकर गोपगोपियों के संग विविध क्रीड़ा, कंसवध, उग्रसेन की राज्यप्राप्ति, कालयवन आक्रमण भय से द्वारका गमन, पाण्डवों के हितार्थ धर्मराज युधिष्ठिर से राजसूय यज्ञ कराना, उन्हें चक्रवर्ती सम्राट बनाकर द्वारका लौट आने की संक्षिप्त कथा सुनाकर श्रीकृष्ण के जाम्बवती से उत्पन्न, कामदेव जैसे सुन्दर साम्ब की उत्पत्ति बतलायी है।

एक बार जलक्रीड़ा करते समय पुत्र साम्ब के अद्भुत लावण्य से मुग्ध होकर स्त्रियों के रजःस्राव होने से उनके सतीत्व को धिक्कारते हुए श्रीकृष्ण ने साम्ब को कुष्ठी होने का शाप दिया। जिससे साम्ब के समस्त शरीर में कुष्ठ हो गया। पुनः अपनी दुरवस्था को देखकर क्षमापूर्वक श्रीकृष्ण से कुष्ठ दूर करने का उपाय पूछने पर श्रीकृष्ण ने उसे मैत्रेयवन में सूर्यनारायण की आराधना करने को कहा। साम्ब ने संयम नियमपूर्वक ध्यान दानादि द्वारा १२ वर्ष तक कठोर तप करते हुए स्तुति से सूर्य को प्रसन्न कर लिया। स्वप्न में साम्ब को दर्शन देकर सूर्यनारायण अदृश्य हो गये। साम्ब ने चन्द्रभागा; देवनदी में स्नान करते समय सूर्य प्रतिमा देखी। उसे विधिवत् स्थापित कर उसकी आराधना से वह कुष्ठमुक्त हो गया। इस सूर्यलोक प्रदान करने वाले तीर्थ के अतिरिक्त मङ्गलतीर्थ, शाल्मली, भाण्डतीर्थ, राम द्वारा स्थापित रामेश्वर लिङ्ग, अर्कवट आदि अनेक तीर्थ हैं जहाँ आराधना करने से सूर्यलोक या मोक्ष प्राप्त होता है।

सप्तम अध्याय- सातवें अध्याय में पार्वती क्षेत्र का माहात्म्य विषयक ऋषियों के प्रश्न के प्रत्युत्तर में महामुनि भरद्वाज ने विरजक्षेत्र की महिमा सुनायी है। इस पुण्य क्षेत्र में स्थित

विरजादेवी साधकों को भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है। इसके दर्शन मात्र से दस हजार वर्ष तक किये गये तप तथा हरिद्वार या कुरुक्षेत्र में किये स्नान जैसा फल प्राप्त होता है। यहीं मुक्तिदाता वाराह भगवान् एवं सर्वपापहरमुक्ति प्रद आखण्डलेश शिव तथा मुक्तिदाता मुक्तीश्वर लिङ्ग भी है। देवी से ईशानकोण में पितृमुक्तिदात्री गयानाभि, वैतरणी नदी, भवपापविमोचक शिव, कपिल तीर्थ गोग्रहतीर्थ तथा हिमांशु तीर्थ भी है जो क्रमशः कोटिकपिलगोदान, गोलोक तथा विष्णुलोक प्रदान करते हैं। आगे राजा मान्धाता के आख्यान के माध्यम से विरज क्षेत्र के एक अतिविशिष्ट तीर्थ कल्पाम्बुतीर्थ की महिमा का वर्णन है। सूर्यवंश के प्रख्यात राजा मान्धाता द्वारा शिकार के समय एक अजगर को मारे जाने से उसकी पतिव्रता पत्नी के शाप से उन्हें श्रृगाल योनि प्राप्त हुई। पुनः क्षमायाचना के उपरान्त उसी अजगरी द्वारा बताने पर गुरु वशिष्ठ के साथ इस कल्पाम्बु तीर्थ स्नान करने से राजा शाप मुक्त हुए। यहाँ किया थोड़ा पुण्य भी बहुत अधिक हो जाता है। इस आख्यान के श्रवण मात्र से परमगति प्राप्त होती है।

अष्टम अध्याय- आठवें अध्याय में अनेक गुह्य तीर्थों की चर्चा है। मृत्युञ्जयतीर्थ जहाँ मृकण्डु पुत्र मार्कण्डेय ने स्नान कर मृत्यु को जीत लिया था, क्रोड़ तीर्थ जहाँ वाराह भगवान् स्वयं तीर्थ बन गये यहाँ मन्त्र जपने से वाराह रूप में विलीन हो जाता है। वहीं वासुदेव पद प्रापक शुकतीर्थ, सिद्धिदायक सिद्धतीर्थ, जहाँ स्नान से तीनों लोकों में स्नान का फल मिलता है। वैशाख, श्रावण एवं आश्विन मास में विरज क्षेत्र जाने से सिद्धि, चतुर्दशी, मङ्गलवार एवं बृहस्पतिवार को विरज क्षेत्र के दर्शन से भक्ति, मन्त्र पढ़ने से मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। पञ्चोपचार से स्थण्डिल, प्रतिमा या शालग्राम में पूजन करने से छ मास में मनोनुकूल वर और मरने के बाद विष्णुपद प्राप्त होता है। इस विरज क्षेत्र में एक हजार योजन तक जप करने वाले को विरजादेवी इच्छित फल प्रदान करती है।

नवम अध्याय- नौवें अध्याय में कैलास पर्वत की महिमा बतलाई है। दुरात्मा रावण द्वारा कैलास को उठाये जाने पर उसका एक शिखर टूट कर यहाँ गिरा जिसे भूकैलास कहते हैं यहाँ केवल कर्मफल भोगा जाता है। इसके दर्शन से समस्त पाप दूर हो जाते हैं। यहाँ कैलास के ईशानकोण में स्थित पयोमृत तीर्थ में स्नानकर सूर्यवंशी राजा सौदास ने मुक्ति प्राप्त की थी। एक बार राजा सौदास मन्त्र साधना की इच्छा से उपयुक्त स्थान जानने हेतु वसिष्ठ के पास गये। वसिष्ठ के कहने पर वे मन्त्र सिद्धि हेतु त्रिलोक विश्रुत भोगमोक्ष प्रदात्री वाराणसी आकर गङ्गा, मणिकर्णिका स्नानपूर्वक तप करने लगे। कुछ दिन बाद शिव ने स्वप्न में आकर कहा राजन् आप मुक्ति क्षेत्र में आकर धन्य हो गये। अब आप तप हेतु कैलास जाय जहाँ मैं स्वाभाविक रूप दिखाकर मुक्ति दूँगा। यहाँ चारों पुरुषार्थ सुलभ हैं। यहाँ सत्यादि चारों युगों में तप और दर्शन से ही सिद्धि देता हूँ। यहीं जम्भकुनु नामक तीर्थ भी है जहाँ स्नान करने से मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है। शिव के आदेश से राजा मान्धाता ने इस कैलास पर आकर तप कर मुक्ति प्राप्त की थी।

दशम अध्याय- इस अध्याय में हरिहर क्षेत्र की महिमा का गान किया गया है। यद्यपि कैलास दोषरहित तप हेतु अत्यन्त उत्तम स्थान है फिर भी वहाँ कोलाहल करने से मनुष्य नरकगामी होता है। अतः उसी पर्वत पर गुह्य से गुह्य, पर से परतर, अत्यन्त गोपनीय प्राणियों को मुक्ति देने वाला, देवताओं के लिये जयवर्द्धक निर्मल निराकर हरिहर क्षेत्र है। प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण वृक्ष, पशु, पक्षी गणों से व्याप्त, विष्णु का प्रिय महान् वन शीतल एवं मनोहर है। इस एकाग्र स्थान में नीलपाषाण रूप से शङ्खचक्रधारी वनमालाविभूषित जगन्नाथ जी विराजमान हैं वहीं नारायणात्मक भगवान् शम्भु भी है। यहाँ सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।

एकादश अध्याय- ग्यारहवें अध्याय में ऋषिजनों की प्रार्थना पर भरद्वाज मुनि ने एकाम्र वन की अपार महिमा और शिव के वाराणसी छोड़ एकाम्र वन में निवास करने की कथा सुनायी है। एकाम्रक क्षेत्र मूलतः विष्णुक्षेत्र है किन्तु भगवान् शिव, करोड़ों शिवलिङ्गों से व्याप्त इस परमानन्द दायक क्षेत्र में अपने प्रमथगणों के साथ साधक मनुष्यों को मुक्ति तथा सिद्धि देने के लिये परमानन्द रूप में स्थित हैं। शिव के वाराणसी छोड़ एकाम्र क्षेत्र में जाने का बड़ा विस्तृत वर्णन यहाँ किया गया है। पार्वती की प्रसन्नता के लिये निर्मित वाराणसी नगरी को नास्तिक, विवेकहीन, अधार्मिकजनों से आकीर्ण देख शिव ने नारद जी से जब तपयोग्य एकान्त स्थान के बारे में पूछा तब नारद ने, नीलशैल से उत्तर, एकाम्रक क्षेत्र के बारे में बताया जो ब्रह्मादि देवों के लिये भी अगम्य एवं रमापति विष्णु का प्रिय स्थान है, जहाँ वे अनन्त के साथ विराजते हैं। यहाँ भगवान् जनार्दन विग्रहवान् होकर अनन्त के साथ सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का विचार करते हैं। इस स्थान को लक्ष्मी भी नहीं जानती केवल शङ्कर जानते हैं। नारद, शेष और वासुदेव इन तीनों का यहाँ सहवास होता है।

नारदजी इस स्थान के बारे में जानने के बाद शिव जी पूरे राजसी ठाठबाट से नन्दी, पार्वती और अन्य गणों के साथ इस स्थान पर पहुँचे। शिव ने वासुदेव से स्तुति प्रार्थना पूवक अपने रहने के लिये स्थान माँगा है। तब विष्णु ने पुनः काशी वापस न जाने की शर्त पर शिव को स्थान देने की बात कही। उत्तरवाहिनी गङ्गा और महातीर्थ मणिकर्णिका के मोह से शिव ने कहा यह कैसे हो सकता है। इस पर वासुदेव ने कहा कि मेरे चरणों से निर्गत गङ्गा, मुनिगङ्गा के रूप में मेरे पीछे आग्नेय कोण में विद्यमान है तथा अन्यान्य अनेक गुप्त तीर्थ हैं, जिनके बारे में कोई नहीं जानता इस पर शिव ने वाराणसी सहित कहीं अन्यत्र न जाने की बात स्वीकार करते हुए विष्णु से दक्षिण दिशा में दिगम्बर रूप से रहने लगे। वहाँ त्रिभुवनेश्वर लिङ्ग मूल में स्फटिक समान, मध्य में महानीलमणि के सदृश तथा समग्र माणिक्य के तुल्य है। तभी से कोटिलिङ्गों से आवृत भगवान् सदाशिव एकाम्रक्षेत्र में विराजते हैं और वासुदेव उनके पालक हैं।

द्वादश अध्याय- बारहवें अध्याय में मुनि भरद्वाज ने बिन्दुसर तीर्थ एवं पादहरादेवी की महिमा ऋषिजनों को बतलाई है। भगवान् शिव के एकाम्रक्षेत्र में रमण करते कुछ दिन बीतने पर एकाएक सर्वत्र अहर्निश जलबिन्दु स्रवित होने लगे जिससे देवताओं ने इस स्थान का नाम बिन्दुसर रख्खा। गङ्गा, नर्मदादि सभी प्रमुख नदियाँ, मानस, पुष्कर आदि सरोवर, बदरिकादि तीर्थ, क्षीरादि सप्त समुद्र बिन्दु तीर्थ में एकाम्रक वन में विद्यमान हैं। यहाँ स्नानादि कर शिवदर्शन से शिव सायुज्य प्राप्त होता है। यहीं पादहरादेवी हैं जिनके पाद (पैर) के पास हर है; बिन्दु तीर्थ में स्नान कर पादहरा तथा शिव का तथा पुरुषोत्तम एवं पादहरादेवी का दर्शन करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। देवी के साथ त्रिभुवनेश्वर लिङ्ग का दर्शन करने से मोक्ष प्राप्त होती है। अतः बिन्दु तीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है।

त्रयोदश अध्याय- तेरहवें अध्याय में एक बार पुनः एकाम्र क्षेत्र की महिमा का विस्तार एवं कोटिलिङ्ग तीर्थ का माहात्म्य बतलाया गया है। इस अध्याय में अनेक बड़े-बड़े पापों की निवृत्ति, मनोरथ सिद्धि के साथ ही देह त्याग की बड़ी महिमा है। जब प्राणी एकाम्रक क्षेत्र में तनुत्याग करता है, तब भगवान् शङ्कर उसके कान में कहते हैं- तुम अत्यधिक पूर्व पुण्य के कारण यहाँ देह त्याग कर रहे हो अतः ओंकार का उच्चारण कर सनातन वैष्णव पद को प्राप्त करो। कर्णमूल में ओंकार का उच्चारण कर भगवान् शङ्कर अपने गुणों द्वारा उसे ब्रह्मलीन करा देते हैं। यहाँ शिव और वासुदेव का प्रिय करने वाला लगाया आमलक वृक्ष भी है। एकाम्रवन में शिव को अर्पित नैवेद्य पाप नाशक और ब्रह्मादि देवताओं के लिये भी भोग्य है। सामान्यतया अन्यत्र शिव नैवेद्य अग्राह्य होने पर भी, ऋषियों ने उसे सर्वथा ग्राह्य महाप्रसाद कहा है और उसका अनादर करने से नरक होता है। विभिन्न वाद्यों से शिवाराधन करने पर भक्त को शिवलोक की प्राप्ति होती है। कोटिलिङ्गेश्वर साक्षात् ब्रह्म है जिसके समान तीनों लोकों में कोई दूसरा लिङ्ग नहीं है। यहीं एकाम्रकेश्वर नामक बड़ा आम्र वृक्ष है, इस वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल तथा वृक्ष क्रमशः धर्मादि चार पुरुषार्थ हैं। वहाँ शैलजाग्रा देवी के अग्र भाग में तिक्तशाक वृक्ष है। एक बार प्रबल असुरों से पराजित देवराज इन्द्र ने गुरु बृहस्पति के द्वारा बताये जाने पर एकाम्रक वन में आकर, सनातन देव का दर्शन कर तिक्तशाक वृक्ष के नीचे तपस्या कर भगवान् शिव के दर्शन और वरदान प्राप्त किया। शिव के आदेश से हवन कर सिद्धि प्राप्त इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त की। तभी से शिव रूप यह तिक्तशाक वृक्ष परम सिद्धिप्रद माना जाता है।

चतुर्दश अध्याय- चौदहवें अध्याय में वैकुण्ठ छोड़कर एकाम्र क्षेत्र में पाषाण रूप से रहने वाले जगद्गुरु वासुदेव की महिमा का वर्णन विशद रूप से किया गया है। इसकी महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि दारुशरीर हरि कभी नीलाद्रि का त्याग कर सकते हैं लेकिन पाषाणरूपी वासुदेव एकाम्र क्षेत्र को कभी नहीं त्यागते। इनके दर्शन, पूजन, वन्दन, कीर्तन, नामस्मरणादि से समस्त पाप दूर कर ईप्सित भोग या मोक्ष प्राप्त किया जा सकता

है। 'शंखचक्र...' इस मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति एक सौ योजन तक दुर्लभ गति को प्राप्त कर सकता है इसीलिये इस मन्त्र को मन्त्रराज कहते हैं। जो अनधिकारियों के लिये सर्वथा गोपनीय एवं गुहय है।

इस पुण्य एकाम्रक वन में, ब्रह्मलोकप्रद ब्रह्मेश्वर लिङ्ग, कैलासप्रद भास्करेश, मेघेश, गोकर्णेश्वर और स्वर्णकूटेश्वर लिङ्ग, पापहर सूक्ष्मेश्वर लिङ्ग, काशीवासफल प्रदायक आम्रातकेश्वर और मध्यमेश्वर लिङ्ग, पितरोद्धारक सूक्ष्मेश्वर लिङ्ग, सर्वकामनाप्रद कपिल मुनि द्वारा स्थापित कपिलेश्वर लिङ्ग, कपिलकुण्ड, एकादशलक्षलिङ्ग दर्शन फलदायक उग्रेश्वर, यमदण्डनाशक यमेश्वर और यमतीर्थ, ऐन्द्रपददायक ईशानेश्वर आदि प्रमुख लिङ्ग है, समस्त लिङ्गों की गणना स्वयं भगवान् शेष भी नहीं कर सकते। शिवतुष्टि हेतु मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को यम और वरुण के दर्शन का विशेष विधान है।

पञ्चदश अध्याय- पन्द्रहवें अध्याय में भी उन अनेक प्रमुख लिङ्गों की चर्चा है जो एकाम्र वन में स्थित हैं। यहाँ देवाधिदेव महेश्वर के उत्तर भाग में रामेश्वर लिङ्ग है। देव तथा मुनिगणों से सेवित अति रमणीय प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण तपस्या में वृद्धि करने वाले इस स्थान पर जानकीनाथ प्रभु श्रीरामचन्द्र शिवाराधन करते रहते हैं। इस लिङ्ग से पश्चिम में पृथ्वी पर का सबसे पुण्यप्रद तीर्थ यज्ञोद्भूत अशोकवार तीर्थ है। शुक्ल अष्टमी को यहाँ स्नान का विशेष महत्व है। वहीं उत्तर दिशा में अनेक वृक्षों से पूरित मुक्तिदायक सिद्धेश्वर लिङ्ग है। यहाँ चतुर्दशभुवनों के शिव एक साथ विराजमान हैं। उसके दक्षिण में पापप्रणाशन कुण्ड तथा मुक्तीश्वर लिङ्ग है। इस सिद्धेश्वर लिङ्ग की पूजा इन्द्र ने की थी। असुरों से परास्त इन्द्र द्वारा शिव की आराधना करने पर शिव ने इन्द्र की रक्षा की थी। इन्द्र ने सिद्धेश्वर के समीप इन्द्रेश्वर की स्थापना की थी। जो व्यक्ति दूर्वाङ्कुरों से इस की अर्चना करता है वह तेजस्वी होकर विमल स्थान प्राप्त करता है। यहाँ वाचिक पूजा का भी विधान है।

षोडश अध्याय- सोलहवें अध्याय में इस क्षेत्र के प्रमुख लिङ्ग केदारेश्वर की चर्चा है। सिद्धेश्वर के दक्षिण में केदारेश्वर लिङ्ग है। भक्तिपरायण मनुष्यों को ईप्सित फल देने वाले इस लिङ्ग के पास दक्षिणामूर्ति हैं जिनके दर्शन से अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। यहीं आराधकों को अभीष्ट वर देने वाली त्रैलोक्यसुन्दरी देवी है। राजा नहुष इन्हीं की उपासना से राजा हुए थे। यहाँ स्थित बिन्दूद्रवतीर्थ में शरीर त्यागने से, श्रीसूक्ष्मेश्वर में पितरों को पिण्डदान करने से और गौरी द्वारा निर्मित केदारकुण्ड का जल पीने से पुनर्जन्म नहीं होता। केदारेश्वर में जिसे मन्त्र सिद्धि नहीं होती उसे बीस जन्मों तक सिद्धि नहीं मिलती। यहाँ शिवगौरी के दर्शन से भक्त कृतकृत्य हो जाता है।

केदारेश्वर का प्राचीन वृत्तान्त सुनाते हुए महामुनि भरद्वाज ने ऋषियों से कहा कि प्रजापति दक्ष के यज्ञ में जहाँ अन्य देव हविर्भाग ग्रहण कर रहे थे वहाँ शङ्कर को यज्ञ भाग मिलता न देखकर दाक्षायणी सती क्रुद्ध हुई और उसने योगाग्नि से देह त्याग कर

दिया। इस पर शिव के क्रुद्ध होने पर उनके द्वारा उत्पन्न वीरभद्र को भेजकर दक्षयज्ञ का विनाश कर दिया और स्वयं तप करने हिमालय चले गये। इधर सती ने भी हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से पार्वती के रूप में जन्म लिया। कामदेव शिव की तपस्या भङ्ग करने के कारण भस्म हुए। उधर पार्वती जो पुनः शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिये तप कर रही थी उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उससे विवाह कर लिया और वहीं हिमालय पर रहने लगे। माता मेना द्वारा पार्वती को अपने पति के घर जाने के लिये बार-बार कहने पर क्रुद्ध होकर उसने शिव से अपने घर ले चलने की प्रार्थना की। शिव ने पार्वती की इच्छा से वाराणसी नगरी का निर्माण किया और वहीं रहने लगे। वाराणसी में गङ्गा, मणिकर्णिका एवं शिवजी के तारकमन्त्र दान से सभी लोगों की मुक्ति हो जाती है।

कालान्तर में अनेक जनों से काशी के व्याप्त हो जाने से एकान्तवास की इच्छा से शिवजी नारदजी के कहने पर परम पवित्र एकाम्र क्षेत्र में आये और पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार कर वहीं रहने लगे। कुछ दिन बाद हिमाचल सपरिवार शिवदर्शन की लालसा से वहाँ पहुँचे। वहाँ के तीर्थों में स्नानदानादि कर शिवस्तुति पूर्वक वहाँ पार्वती सहित शिव के वास और शिवलिङ्ग दर्शन की कामना की। तब भगवान् शिव ने उन्हें गौरीकुण्ड में स्नान से कैलास प्राप्ति और केदारेश्वर लिङ्ग की अद्भुत महिमा और दर्शन पूजन का दिव्य फल बतलाया। शिव के आदेश से दक्ष ने अपने द्वारा लाये गये मणिमाणिक्य से दिव्य प्रासाद बनवाया और वहाँ गन्धवती गङ्गा को छोड़ अपने धाम चले गये।

सप्तदश अध्याय- कपिल पुराण के सत्रहवें अध्याय में मुख्य रूप से गन्धवती गङ्गा की चर्चा है। एकाम्र क्षेत्र में भगवान् केदारेश्वर के पूजन से कृतकृत्य हुए हिमाचल ने अपने साथ लाई गङ्गा से कहा कि इस क्षेत्र में मेरी कीर्ति स्थापित करने हेतु तुम यहीं वास करो। पहले गङ्गा नौ प्रकार की कही गई थी अब दस प्रकार की हो जाओ। १. गोदावरी, २. पुनपुन, ३. रेवा, ४. जाह्नवी, ५. कावेरी, ६. गोमती, ७. कृष्णा, ८. ब्राह्मी, ९. वैतरणी और १०. महासरित् गङ्गा (गन्धवती)। एकाम्र वन के केतकीपुष्परस, पद्मकेसर चम्पक पराग और फलों के वायु संसर्ग से गन्ध प्राप्त करने से गन्धवती तुम्हारा नाम होगा। तेरे ऊपर मेरी और शिव की महती प्रीति होगी। तभी से गङ्गा गन्धवती के नाम से दक्षिण समुद्र में बहने लगी। एक बार बदरिकाश्रम में ऋषियों ने नारदजी से पूछा कि किस क्षेत्र में धर्म अक्षय हो जाता है, किस समुद्र तट पर शिवजी हैं और किस पुण्य क्षेत्र में मुक्ति मिलती है। इसके प्रत्युत्तर में नारदजी ने बताया कि इन गुणों से विभूषित एक ही क्षेत्र है एकाम्रक्षेत्र। यहाँ अन्नदान करने की श्रेष्ठता और महिमा बतलाई गयी है। प्रयाग, पुष्कर, काशी, स्वर्णकूट और एकाम्रक ये पाँचो पाँच गया है। वाराणसी में सहस्रों वर्षों का वास फल एकाम्र क्षेत्र में एक दिन में और वहाँ जैसी सिद्धि स्वर्णकूट में एक वर्ष में प्राप्त हो जाती है।

भगीरथ की तपस्या से सन्तुष्ट शिव द्वारा अपने जटाकलापों से मुक्त उस आद्यागङ्गा को ही मुनिजनों ने गन्धवती कहा है। सत्ययुग में भागीरथी, त्रेता में जह्नुतनया, द्वापर में

विष्णुपादाब्जसंभूता के नाम से विख्यात गङ्गा ही कलि में गन्धवती नाम से जानी जाती है। गुप्तगङ्गे नमस्तुभ्यं.... इस मन्त्र के उच्चारमात्र से मनुष्य पापमुक्त होकर स्वर्ग जाता है। गन्धवती के तीर पर मेधेश्वर, मध्यमेश्वर, ब्रह्मयज्ञोद्भवतीर्थ, गोकर्णेश्वर, उत्पलकेश्वर, भूमीश्वर, सूक्ष्मेश्वर आदि अनेक लिङ्ग हैं जो शिवलोक, ब्रह्मलोक, मंत्रसिद्धि, मुक्ति, ब्रह्मसायुज्य, पितृमुक्ति, ब्रह्मपद प्रदान करने वाले हैं। मुनिगण गन्धवती स्नान कर इन लिङ्गों का दर्शन पूजन कर सत्रहसौ कुलों के साथ ब्रह्मलोक चले गये।

अष्टादश अध्याय- अठारहवें अध्याय में शिवस्थान स्वर्णकूट में किये जाने वाले चातुर्मास्य व्रत का विस्तृत वर्णन किया गया है। उसके पूर्व त्रैलोक्य फलप्रद तीर्थ की चर्चा करते हुए भरद्वाज ने बताया कि दुर्मिल नामक असुर के दो दुर्दान्त पुत्रों कीर्ति और वास को उनके द्वारा भगवती के समक्ष सहवास की इच्छा व्यक्त किये जाने पर युद्ध करते हुए देवी ने अपने बाँये पैर से गिराकर उन दैत्यों को मार डाला। तब देवताओं ने प्रसन्न होकर वहाँ त्रैलोक्य फलप्रद तीर्थ बनाया। फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को यहाँ देवीपूजन करने से गोपालन करने के बराबर पुण्य प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वहाँ अघहारी, स्वर्णकूट, रसाल, मध्योष्य, शिरसद्म, लघ्वार्जित, सिद्धशैल और स्वर्गस्थ तपस्थली इन तीर्थों का स्मरण करने से भी मनुष्य निष्पाप हो जाता है। आगे इस अध्याय में स्वर्णकूट में चातुर्मास्यव्रत के विधान को बतलाते हुए कहते हैं कि कुरु क्षेत्र में सूर्यग्रहण स्नान, गोदावरी गङ्गा में तप, काशीवास, केदार और पुरुषोत्तम वास से सहस्र सांख्ययोग मार्ग से प्राप्त होने वाली गति प्रदान करता है।

चातुर्मास्य व्रती को आषाढ शुक्ल नवमी को बिन्दुसरोवर स्नान पूर्वक वासुदेव का ध्यान, वायव्य दिशा में त्रिभुवनेश्वर दर्शन, ईशानकोण में गङ्गायमुनानदी, पूर्व दिशा में ब्रह्मेश्वर, त्रिभुवनेश का दर्शन कर मेघेश, अलाम्बुक तीर्थ, रामेश्वर, सर्वपापहर ज्योतिर्लिङ्ग की इन आठ तीर्थों की यात्रा करनी चाहिये। दशमी को संकल्प लेकर एकभुक्त नक्तव्रत करते हुए भूमिशयन करना चाहिए। पुनः एकादशी को बिन्दुतीर्थ में स्नान तथा रमापति की वन्दना कर पूर्वाभिमुख होकर विष्णु का ध्यान करें जगन्नाथ की प्रार्थना कर संकल्प लें। निर्विघ्नता हेतु 'गणानां त्वेति' मन्त्र से सर्वप्रथम गणेश आराधन करे। प्रतिदिन बिन्दुसरस्नान, पादहरा, ब्रह्महर और अनन्त में अभेद बुद्धि से दर्शन करना चाहिए। प्रथम मास श्रावण में शाक, भाद्रपद में दही, आश्विन में दूध और कार्तिक में माँस वर्जित होता है। यहाँ व्रती के लिये अन्नदान की महिमा बताते हुए नित्य अन्नदान करने को कहा है। ब्राह्मणादि वर्ण क्रमशः चातुर्मास्य व्रत करने से वेदज्ञान, विजय, धनसमृद्धि और सुखसमृद्धि प्राप्त करते हैं। अन्य क्षेत्र में किया पाप यहाँ नष्ट हो जाता है किन्तु यहाँ किया पाप वज्रलेप हो जाता है किन्तु माघकृष्णचतुर्दशी (शिवरात्रि) को संयमपूर्वक इस क्षेत्र की प्रदक्षिणा करने से वह पाप भी दूर हो जाता है। प्रदक्षिणा में रुकना, हँसना, रोना सर्वथा निषिद्ध है। एक-एक प्रदक्षिणा से एक-एक जन्म का पाप नष्ट हो जाता हैं।

एकोनविंश अध्याय-उन्नीसवें अध्याय में भरद्वाज मुनि ने एकाम्र क्षेत्र की प्रमुख यात्राओं का वर्णन किया है। एकाम्र क्षेत्र की सात प्रमुख यात्राएँ हैं। मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को प्रथम वरुणेश्वर की यात्रा होती है। यहाँ स्नान जप दानादि से पाप निवृत्ति होती है। माघ शुक्ल सप्तमी को द्वितीय सूर्ययात्रा होती है, यहाँ तिल दान पूर्वक भास्करेश की पूजा से मुक्ति मिलती है। फाल्गुन शुक्ल रविवार को कपिलेश्वर की यात्रा का विधान है। अभ्यङ्ग स्नान, कपिल तीर्थ में मन्त्र पूर्वक करने से ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं। फिर कपिलेश्वर का दर्शन करने से समस्त मनोरथ पूर्ण होते हैं। चौथी यात्रा के क्रम में चैत्र की अष्टमी तिथि को रामेश्वर लिङ्ग की यात्रा करने से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को मदन कामदेव ने शिवपूजन किया था। इस क्षेत्र की यात्रा से शिवलोक प्राप्त होता है। छठी यात्रा श्रीरामपूजित एवं परशुराम से सम्मत रामेश्वरलिंग की जो आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को होती है। इसी प्रकार कार्तिक शुक्ल द्वितीया को रामेश्वर के पास सप्तमी कामप्रदा यात्रा होती है। आगे कपिल मुनि ने बतलाया है कि भरद्वाज से एकाग्र का माहात्म्य सुनकर उन पुष्कर-वासी मुनियों ने एकाम्र क्षेत्र की यात्रा की। इस आख्यान श्रवण से धर्मकार्य में मति स्थिर होती है।

विंशति अध्याय- बीसवें अध्याय में पूर्व वर्णित तीर्थों की परम्पराओं का वर्णन है। भरद्वाज और पुष्करस्थ महात्माओं के संवाद के माध्यम से उत्कल और वहाँ स्थित तीर्थों की महिमा बतलाने के बाद कपिलमुनि ने राजा सत्यजित् को उन तीर्थों की परम्परा बतलाते हुए कहते हैं कि भृगु की तपस्या से लाई गई भार्गवी नाम से विख्यात दक्षिणगङ्गा महानदी की पुत्री है जहाँ स्नान करने से सहस्रगोदान का फल मिलता है। उसी के तट पर स्थित शिवलिङ्ग के पास उसे मोक्षदा कहा जाता है जो गङ्गा समान फलदायक है। उसकी पुत्री कृष्णा नाम से विख्यात पूर्व देश में प्रसिद्ध पुष्पभद्रा नदी है जिसमें कार्तिक माघ, फाल्गुन और आषाढ़ मास में स्नान करने का विशेष फल है। उसकी दूसरी पुत्री दधिचि मुनि द्वारा लाई गई दधिनादा नदी है, जहाँ किया स्नान सोमलोक प्रदान करता है। यहीं व्योमकेश लिङ्ग है। एकाम्र वन के पूर्व अन्त में प्राची या सरस्वती नदी है, जिसका स्नान इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करने वाला है। वही विघ्नहर्ता विघ्नेश्वर लिङ्ग है। आगे ब्रह्महत्या निवारक कल्पवृक्ष सदृश 'विघ्नशाखी' है। माघ मास में विशेषकर अमावस्या को स्नानजनित फल देने वाला वही त्रिवेणीसङ्गम है। वहीं शिवलोकप्रदायक प्रसिद्ध पाण्डवतीर्थ है। उसी के तट पर अमरेश्वर और कपिल द्वारा पूजित कपिलेश्वर महालिङ्ग भी हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय- कपिल पुराण के अति महत्त्वपूर्ण इस अन्तिम अध्याय में राजा सत्यजित् की विशेष प्रार्थना पर कपिल महामुनि ने सदाशिव एवं नन्दिकेश्वर संवाद के माध्यम से ज्ञान योग का उपदेश किया है और वैष्णवों के लक्षण बतलाए हैं। सांसारिक प्राणी कर्मबन्धन से कैसे मुक्त होते हैं, नन्दिकेश्वर के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महादेव ने कहा कि जो मनुष्य कामादि विकारों, अहङ्कारादि दोषों से मुक्त होकर मुझे

भजता है, उसे परामुक्ति देता हूँ। उसके शुद्धहृदय में ज्ञान का प्रकाश होकर वह मुक्त हो जाता है। मनसा, वाचा, कर्मणा संकल्प का त्याग कर हरिनाम जप से ही भवाब्धि को पार कर जाता है।

आगे अन्य पुराणों की ही तरह हरि हर के अभेद का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् शिव नन्दीश्वर से कहते हैं कि विष्णु जिस प्रकार जगन्नाथ हैं वैसे ही मैं जगत्पति हूँ। हम दोनों में वायु और आकाशकी तरह कोई अन्तर नहीं है। शङ्कर, नीलकण्ठ, श्रीधर, नीलविग्रह, गौरीश, गोपिकाकान्त का एक चित्त से ध्यान करो। माधव एवं उमाधव में कोई भेद नहीं है। मूढ़ लोग भेद कर नरक जाते हैं।

नन्दीश्वर के द्वारा पुनः वैष्णवों के स्वरूप के विषय में प्रश्न किये जाने पर भगवान् सदाशिव ने कहा कि वैष्णव शङ्खचक्रचिह्नाङ्कित, तुलसीमाला से अलङ्कृत और काम क्रोध रहित होते हैं। उनके शरीर पर कौपीन, मुख में मधुर वाणी और हृदय में सर्वानन्द रहता है। दया, सत्य से युक्त ममता और अहङ्कार से मुक्त तथा देव, ब्राह्मण और प्राणिमात्र का सम्मान करने वाले ही सच्चे वैष्णव हैं।

इस प्रकार ज्ञानयोग का उपदेश कर भगवान् शिव गौरीक्रीडा गुफा में चले गये। यह संवाद अत्यन्त गुह्य सर्वशान्तिकर पुण्यप्रद एवं दुष्टों को सर्वथा दुर्लभ है। इसी अन्तिम उपदेश के साथ भगवान् कपिलोक्त कपिलपुराण का विषय यहाँ पूर्ण होता है।

कपिलपुराण की भाषाशैली

यह उपपुराण भी व्याकरण बन्धन का अक्षरशः पालन नहीं करता। स्थान स्थान पर सन्धि विषमता, लिङ्गव्यत्यय एवं अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। किन्तु 'आपाणिनीय प्रयोगस्तु भूषणं न तु दूषणं' इस न्याय से वे सभी श्लाघ्य ही हैं। यथा-

सन्धि अभाव	-	मन्त्रेण अस्तुवन् (४/२४), केदारे उदकम् (१६/१०), स्थित्वा इमं (१८/४२)
लिङ्गस्वर व्यत्यय	-	आश्रमाणि च रम्याणि (१४/६५), दक्षिणे दिशि (१४/६५)
उपसर्ग के बिना क्त्वः	-	एनं पूज्य (१६/७८), पितृन तर्प्य (१४/६०)
विभक्ति व्यत्यय	-	आश्विने शस्यमावस्यम् (१४/५०)

इस पुराण का कथानक अति मनोरम, शैली अतिशय हृदयग्राहिणी भाषा अतिसरल, सुबोध, भावगम्य और प्राञ्जल है। प्रकृति चित्रण अत्यन्त मनोह्लादक है। यहाँ पादहर-बिन्दुसर सिद्धेश्वर-एकाम्र आदि की व्युत्पत्ति भी अतिशय सरल रूप से प्रदर्शित की गयी है। यथा-

अत्र चैव द्विजश्रेष्ठा देवी पादहरा श्रुता।
पादे देव्या हरो यस्मात् पादहरा स्मृता।। (१२/१५)

ऐतिहासिक-भौगोलिक विशेषताएँ

यद्यपि कपिल पुराण का कलेवर विशेष बड़ा नहीं है किन्तु ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों ही दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण है। इसमें वर्णित विभिन्न चरित्रों के अनुशीलन से तत्कालीन इतिहास का बहुत कुछ ज्ञान होता है। साम्प्रदायिक संघर्ष के स्थान पर साम्प्रदायिक ऐक्य, हरिहर के अन्य देवताओं के साथ दृढ़ता से प्रतिपादन तत्कालीन ऐतिहासिक दृष्टि से निश्चित की महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास की ही तरह भौगोलिक दृष्टि से भी यह पुराण अपने महत्त्व को दर्शाता है। इसमें वर्णित उत्कलमाहात्म्य, एकाम्रक्षेत्र, विरजक्षेत्र, बिन्दुसर आदि तीर्थों, नदियों, पर्वतों और देवायतनों का विवरण उत्कल क्षेत्र की प्रकृति वहाँ के भूगोल को जीवन्त कर देता है। प्राकृतिक पर्यावरण की उत्कृष्टता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

सांस्कृतिक सामाजिक महत्त्व

कपिल पुराण के प्रसङ्गों का सम्यक अनुशीलन करने से उड़ीसा की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का चित्र उपस्थित हो जाता है। भगवान् जगन्नाथ का पुरुषोत्तम क्षेत्र, एकाम्र क्षेत्र, बिन्दुतीर्थ, विरजक्षेत्र ये सब महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर हैं जो आज भी हमारे लिये उतने ही गौरवपूर्ण हैं। कपिलपुराण में वर्णित, राजा सत्यजित्, इन्द्रद्युम्न, सौदास, मान्धाता, साम्ब, सुकान्ति, मार्कण्डेय, आदि के दिव्य चरित्रों के माध्यम से सत्य, अक्रोध, तप, दान, आतिथ्य, शम, दम, अहिंसा, भगवद्भक्ति, दया आदि सद्गुणों को प्राप्त करने के लिये प्रेरणा मिलती है जो समाज की उन्नति के लिये परम आवश्यक है। इसी प्रकार अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, मद, मत्सर आदि का परित्याग कर भगवद्भक्ति, सत्सङ्ग, ज्ञान प्राप्ति पर जोर दिया है जो श्रेष्ठ समष्टि और व्यष्टि के निर्माण में सहायक है।

उपसंहार

इस प्रकार उत्कल क्षेत्र के इतिहास, भूगोल एवं संस्कृति का संवाहक, पुरुषोत्तम क्षेत्र, एकाम्र क्षेत्र, विरजा क्षेत्र, बिन्दुतीर्थ आदि सांस्कृतिक धरोहरों का परिचायक तथा ज्ञान, कर्म, भक्ति, धर्म, सत्सङ्ग आदि सद्मार्गों का संक्षिप्त किन्तु सम्यक विवेचन करने वाला यह कपिल पुराण अपने लघु कलेवर में गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ करता है। निश्चय ही उत्कल या पुरुषोत्तम क्षेत्र की महिमा को लक्ष्य कर लिखा गया यह पुराण उपपुराणों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस उप पुराण को उपजीव्य मानकर नीलाद्री महोदय एवं स्वर्णाद्रि महोदय आदि अनेक संस्कृत काव्य लिखे गये हैं। अतः पुराण वाङ्मय के प्रति कपिल पुराण का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कालिकापुराण

पुराणसाहित्य में कालिकापुराण सुप्रसिद्ध है। प्रस्तुत संस्करण (चौ. सं. सीरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् २०२६) के अनुसार इसमें कुल ६० अध्याय हैं जो दो खण्डों में विभक्त हैं। पूर्वार्द्ध के ४५ अध्यायों में कथानक की प्रधानता है, तथा विष्णु शिव एवं महामाया से सम्बद्ध अनेक स्तुतियां है। उत्तरार्द्ध के ४५ अध्यायों में प्रधानरूप से कामरूप में स्थित कामाख्यादेवी के अनुष्ठान तथा साधना-पद्धति का विस्तृत वर्णन है।

कथावस्तु-अ. १, विष्णु एवं महामाया की स्तुति, प्रश्नकर्ता ऋषिगण एवं उत्तरदाता श्रीमार्कण्डेय जी हैं। (१-२६) ब्रह्मा की मानसी कन्या सन्ध्या की उत्पत्ति उनके रूप का वर्णन (४१-४५)। अ. २, कामदेव द्वारा ब्रह्मा के मोह का वर्णन। अ.३, दक्ष की कन्या रति का जन्म तथा काम द्वारा उसका परिग्रहण (१-३८) रति के सौन्दर्य का वर्णन (३९-४२) अ. ४, कामदेव की सहायता हेतु ब्रह्मा के निः श्वास से वसन्तऋतु का प्रादुर्भाव (१-२५) वसन्तवर्णन (२६-४२)। अ.५, शिव को मोहित करने हेतु ब्रह्मा द्वारा विष्णुमाया की स्तुति (१-५०) योगमाया का स्वरूपवर्णन एवं अनेक प्रकार की स्तुतियां (५१-७१)। अ. ७, काम द्वारा शिव को मोहित करने हेतु अपने गुणों को उद्बुद्ध करना। अ. ८, दक्ष द्वारा महामाया की स्तुति (१-२६) तपस्या से दक्ष का महामया को प्रसन्न करना और सती के रूप में महामाया का दक्ष की पुत्री बनना (२७-७३। अ. ९ सती द्वारा शिवप्राप्ति हेतु तपस्या (प्रतिमास की आराधना की विधि का यहाँ क्रमशः उल्लेख है) पत्नी के रूप में सती को स्वीकार करने के लिये ब्रह्मा द्वारा शिव की आराधना (२३-४३)। अ. १०, दक्ष से सती को शिव की पत्नी बनाने के लिये ब्रह्मादिक देवों की प्रार्थना। शिव द्वारा दक्ष से सती की याचना करना। अ. ११, ब्रह्मा, विष्णु और महेश का एकत्व वर्णन। अ. १२, सृष्टि का विस्तृत वर्णन, त्रिदेवों के एकत्व का वर्णन तथा काल एवं माया का वर्णन आदि। अ. १३, ब्रह्मा पर शिव का क्रुद्ध होना तथा विष्णु द्वारा त्रिदेवों का एकत्व सम्पादन कर शान्त करना आदि वर्णित हैं। अ. १४, शिव और पार्वती के विहार का वर्णन। अ. १५, वर्षाकाल का वर्णन, हिमालय का शोभा-वर्णन। अ. १६, दक्ष के यज्ञ में शिव के भाग को न देखकर पति के घोर अपमान से सती का क्रुद्ध होना, होमाग्नि में कूदकर भस्म होना, सती की सखी विजया द्वारा करुण-क्रन्दन करना आदि वर्णित है। अ.१७, दक्षा के यज्ञ का शिवगणों द्वारा विध्वंस करना आदि वर्णित है।

अ. १८, सती के दाह को सुनकर शिव का दुःखी होना, शिव की अश्रुधारा रोकने के लिये देवों द्वारा शनैश्चर की स्तुति, आंसुओं को रोकने में शनि की असफलता, पर्वतों की विदीर्ण कर आंसुओं को समुद्र में जाकर शान्त होना, सती का शव लेकर उन्मत शिव का चारों ओर घूमना, ब्रह्मा एवं विष्णु का सती के शव में प्रवेश एवं विभिन्न स्थानों पर

काट-काट कर गिराना, सती के अङ्गों के गिरे स्थानों पर तीर्थों की प्रतिष्ठा (यथा देवीकूट पर दोनों पैरों के गिरने से महाभागा, उड्डीयान पर दोनों जांघे गिरने से कात्यायनी, कामरूप में कामगिरि पर योनिमण्डल गिरने से कामाख्या, जालन्धर में सुवर्णहार-भूषित स्तनयुगल के गिरने से चण्डी, कामरूप से आगे पूर्णगिरि पर स्कन्ध, ग्रीवा तथा शिर गिरने से दिक्करवासिनी ललितकान्ता देवी) यह अध्याय भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार पूर्वोक्त देवी पीठों में शिवलिङ्गों की स्थापना का वर्णन तथा सती के शिरवाला पीठस्थल यानी पूर्णगिरि पर शिव का स्थिर हो जाना आदि कथायें वर्णित हैं।

अ. १६, शिव को शान्त करने की इच्छा से ब्रह्मा द्वारा शिव को हिमालय के पश्चिम भाग में ले जाना, शिप्रसरोवर पर जाकर शान्ति का उपेदश देना आदि वर्णित है। अ. २०, दो अवान्तर कथाओं का वर्णन -

१. क्षिप्रा नदी के उद्गम से सम्बद्ध कथा तथा
२. अरुन्धती, जो ब्रह्मा की मानसी कन्या थी, के जन्म की कथा। अ. २१-२२, दक्ष द्वारा चन्द्रमा को यक्ष्मारोग होने के शाप देना, ब्रह्मा द्वारा उसे रोगमुक्त करना, सीता नामक नदी का प्रादुर्भाव, जो बृहत्सरोवर में गिरने के कारण चन्द्रभागा नाम से प्रसिद्ध हुयी आदि कथाओं की उत्पत्ति का वर्णन। अ. २१३, अरुन्धती की तपस्या एवं वसिष्ठ के साथ अरुन्धती का विवाह वर्णन। अ. २४, योगमाया शिव के हृदय में निवास न करे-एतदर्थ ब्रह्मा द्वारा योगमाया से प्रार्थना, विष्णु द्वारा शिव को आश्वस्त करना और शिव का तपस्या में लीन होना- आदि कथायें वर्णित है। अ. २५, वाराह की उत्पत्ति। अ. २३-२६, सृष्टि का वर्णन एवं सृष्टि से सम्बद्ध छोटी-छोटी कथाओं का वर्णन है।

अ. ३०, देवताओं द्वारा विष्णु की प्रार्थना करना, वराह द्वारा किये गये संकट से स्वर्ग की रक्षा हेतु शरभ रूप धारण करना आदि कथायें वर्णित हैं। अ. ३१, वराह के शरीर से यज्ञ के विभिन्न अङ्गों की उत्पत्ति तथा वराह को यज्ञवाराह नाम से प्रसिद्ध होना वर्णित हैं अ. ३२, मत्स्यावतार का वर्णन, अ. ३३, अकालिक प्रलय का वर्णन। अ. ३४, अकालप्रलय के अवान्तर पदार्थों की सृष्टि का वर्णन। अ. ३५, शिव द्वारा वराह के उपद्रव से जगत् की रक्षा कर अपने शरभ रूप का परित्याग करना। अ. ३६-४०, पृथ्वी और वराहपुत्र नरक की कथा, अभिषेक की कथा एवं माहात्म्य, नरक की तपस्या, राज्य विस्तार एवं नरक के चरित्र आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। अ. ४१-४५, (शिवपार्वती कथा) हिमालय की पुत्री के रूप में पार्वती का जन्म, नारद क. जाकर पार्वती को भावि पति के सम्बन्ध में हिमालय से कहना, शिव की समाधि भङ्ग के लिये कामदेव का प्रस्थान, उसकी सहायता हेतु वसन्त का आगमन, मदन दहन से निराश होकर पार्वती द्वारा घोर तपस्या करना, परीक्षा हेतु शिव का पार्वती के पास जाना तथा पार्वती को पत्नी रूप में स्वीकार करना आदि वर्णित है।

कथा भाग के उत्तरार्द्ध में सगर और और्व का संवाद है। इन्हीं दोनों के प्रश्नोत्तर रूप में शक्तिपूजा से सम्बद्ध अनेक विषयों का वर्णन है। अ. ४६, शिवपुत्र के रूप में भैरव और वेताल की उत्पत्ति, अ. ४७-५०, पौष्यराज के पुत्र चन्द्रशेखर और तारावती के रूप में शिव-पार्वती की उत्पत्ति, दोनों का विवाह तथा कपोत मुनि की कथा का वर्णन है। अ. ५१, वसिष्ठ द्वारा शिवपूजन का विधान, पञ्चवक्त्र शिव के पूजन के पांच प्रकार के मन्त्रों के वर्णन तथा शिव के ध्यान करने की विधि वर्णित है। अ. ५२-५५, देवी पूजन की विधि। इसे वैष्णवीतन्त्र भी कहा गया है। अ. ५६, देवीकवच का वर्णन, अ. ५७, उत्तरतन्त्र के अनुसार पूजन विधि कामराज मन्त्र तथा वाग्भवबीज मन्त्र का उल्लेख है। अ. ५८-६१, -तिथि विशेष में देवी का विशिष्ट द्रव्यों द्वारा पूजन विधि, कामाक्षा देवी की प्रधानता तथा उनके रूपों का वर्णन है। चण्डिका का पूजन विधान तथा आठ शक्तियों (उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनाभिका, चण्डा, चण्डवती, चामुण्डा तथा चण्डिका) से समन्वित देवी के पूजन का माहात्म्य वर्णित है।

दुर्गातन्त्र के अनुसार महानवमी तिथि को दुर्गोत्सव का विधान और महिषमर्दिनी के पूजन का विधान वर्णित है। इसी क्रम में अष्टादशभुजा उग्रचण्डा, षोडशभुजा भद्रकाली तथा दशभुजा दुर्गा के शारदीय उत्सव का भी वर्णन किया गया है। अ. ६२, नीलगिरि पर्वत पर स्थित कामाख्यादेवी के पूजन का विधान एवं माहात्म्य, उनकी स्तुति तथा कामाख्यापूजा तन्त्र वर्णित है। अ. ६३, - त्रिपुरा तन्त्र के अनुसार कामेश्वरी पूजापद्धति वर्णित है। अ. ६५, - नवरात्रि में शारदा का विशेषपूजन, माहात्म्य एवं शारदातन्त्र का वर्णन है। अ. ६६ - त्रिकोण, षट्कोण, अर्धचन्द्र, प्रदक्षिण, दण्ड, अष्टाङ्ग तथा उग्र इन सात नमस्कार करने की सात विधियों एवं मुद्राओं का वर्णन किया गया है। अ. ६७, - बलिदान का वर्णन, बलिदेने योग्य सभी पक्षियों तथा कच्छप, ग्राह, मत्स्य, महिष, गोधिका, गौ, छाग, रुरु, शूकर, खड्ग, मृग, शार्दूल आदि पशुओं की बलि विधि का वर्णन तथा इन बलियों के प्रयोजनों का उल्लेख है। इसी अध्याय में वर्णों के अनुसार विभिन्न प्रकार के नरमेधों = (नरबलियों) का भी वर्णन है।

अ. ६८-७१, षोडशोपचार से पूजन विधि, आसन निर्माण विधि, पूजनोपयोगी वस्त्रों का वर्णन, अर्घ्यपात्र, दीपक जलाने की विधि नैवेद्यविधि, परिक्रमा एवं नमस्कार आदि विधियों का सविस्तार विवेचन है। अ. ७२-७५, - कामाख्या की महिमा ७२, मातृकान्यास ७३, नाना देवों के मन्त्र, यन्त्र, जप तथा ध्यान ७४, पुरश्चरण की विधि, त्रिपुरा कवच और त्रिपुर भैरवी के पूजन का विधान ७५, वर्णित है। अ. ७६, मन्त्रों द्वारा सिद्धि का वर्णन, सिद्ध सुसिद्ध, साध्य तथा शात्रव-चार प्रकार के मन्त्रों का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में वेताल तथा भैरव द्वारा महामाया कामाख्या के पूजन का भी वर्णन है। अ. ७७-८१, - कामरूप मण्डल का भौगोलिक वर्णन, नानादेवों की पूजा, वसिष्ठमुनि के शाप

से कामरूप में वामाचार के प्रचार का शाप वर्णित है। अ. ८२,- लौहित्यनद (ब्रह्मपुत्र) की उत्पत्ति। अ. ८३,- परशुरामचरित्र, अ. ८४,- सदाचार वर्णन, साधारण नीति का वर्णन तथा नृपधर्म आदि का वर्णन है। अ. ८५,- राजा के कर्तव्य तथा राजा के विशेष उत्सवों का वर्णन है। अ. ८६, - पुष्य स्नान की विधि, पौषी तृतीया को देवी पूजन का विधान तथा राजा के विशिष्ट कार्यों का विशेषरूपेण उल्लेख है। अ. ८७ शक्रध्वज के उत्थापन का वर्णन है।

अ. ८८, - जेष्ठ दशहरा में राजा द्वारा विष्णु की इष्टि (यज्ञ) करने का विधान, कुन्द पुष्पों से लक्ष्मी की पूजापद्धति तथा राजा के निषिद्ध कर्मों का उल्लेख किया गया है और इसी क्रम मे अनेक प्रकार के पुत्रो में राजा की सम्पत्ति क अधिकारी पुत्र का विधान वर्णित है। अ. ८९-९०, - भैरव तथा वेताल का वर्णन, खाण्डवदाह की कथा, भैरव और वेताल की सन्तानों का वर्णन तथा अन्त में कालिकापुराण की प्रशंसा करते हुये विष्णु और महामाया की स्तुति की गयी है।।

दार्शनिक विवेचन

पुराण साहित्य में कालिका पुराण का दार्शनिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान है। ग्रन्थ के अन्त में लिखा गया है (१०-१२) यह शुद्ध यन्त्र-मन्त्र मय पुराण है, जो ज्ञान और काम दोनों प्रदान करता है-''मन्त्रयन्त्रमयं शुद्धं ज्ञानदं कामदं तथा''।।

महामाया तथा उसकी प्रतिनिधिभूता कामाख्या, त्रिपुरा, चण्डिका आदि देवियों की उपासना विधि एवं पूजन का आध्यात्मिक रहस्य बतलाया गया है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को एक ही परमात्मा का स्वरूप मानकर यह पुराण अपने उदार भाव एवं अभेद सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है। यथा -

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽ भिन्नत्वं सनातनम्।।
शिरोग्रीवादिभेदेन यथैकस्यैव धर्मिणः।
अङ्गानि मे तथैकस्य भागत्रयमिदं हर।। (११/५१,५५)

योगमाया जगत् की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति उभयरूपा है, चराचर जीवों की सनातनी शक्ति है तथा समस्त जगत् को मोहित करने वाली है (५/५४) योगियों के हृदय में प्रमिति (ज्ञानरूपा) वे ही हैं तथा विविध विषयों का अवलम्बन देने वाली विद्या हैं (५/५६) सत्व, रज एवं तम-इन तीनों गुणों की विकारहीन सम्भव स्थिति है। अशेष जगत् की बीजरूपा ज्ञेय तथा ज्ञान रूपिणी संसार के हितार्थ अवतीर्ण होने वाली विष्णुमाया वे ही हैं (५/५९) मन्त्र के माध्यम से अन्तस्तत्व का बोध कराने वाली, परमानन्दस्वरूपा, योगियों के अन्तस्तल में शुद्ध विद्या रूपिणी योगमाया ही है -

मन्त्रान्तर्भाविनपरा परमानन्दरूपिणी।
योगिनां सत्वविद्यान्तः सा निगद्या जगन्मयी।। ६/६१।।

वह नित्या है तथा जगत् के गर्भ में नित्य रूप से प्रकाशित होती है। इस जगत् के बाहर भी वे ज्योतिस्वरूप से विराजमान हैं, जो ज्योति व्यक्त (कार्य जगत्) अव्यक्त (कारण जगत्) दोनों को प्रकाशित करती है। (द्र . ६/६६) योगमाया परा, परात्मिका, शुद्ध मलरहित लोक को मोहित करने वाली संसार की गति तथा वार्ता दोनों है -

परा परात्मिका शुद्धा निर्मला लोकमोहिनी।
त्वं त्रिरूपा त्रयी कीर्तिर्वार्तास्य जगतो गतिः।। ८/१६।।

इस अचिन्त्य शक्ति सम्पन्ना योगमाया की नाना अभिव्यक्तियाँ देवी के रूप में जगत् के हितार्थ विद्यमान है। उनमें भगवती कामाख्या सर्वश्रेष्ठा है। यही महामाया तथा मूलमूर्ति है-

मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी।
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता।।
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते।। ५८/४८,५१।।

यथा एक ही विष्णु नित्य होने से सनातन दुष्टों का दमन करने से जनार्दन आदि अनेक नामों से विख्यात है, उसी प्रकार एक ही भगवती तत्त्व कामगिरि पर कामसम्पादन हेतु उत्पन्न होने से कामाख्या नाम से विख्यात हुआ - (द्र. ७२/६३) एक श्लोक में देवी का ध्यान वर्णित है, जो दार्शनिकता की दृष्टि से परिपूर्ण है -

कामाख्यामक्षमालाभयवरदकरां सिद्धसूत्रैकहस्तां,
श्वेतप्रेतोपरिस्थां मणिकनकयुतां कुङ्कुमापीतवर्णाम्।
ज्ञानध्यानप्रतिष्ठामतिशयविनयां ब्रह्मशक्रादिवन्द्याम्
अग्नौ विद्धन्तमन्त्रप्रियतमविषयां नौमि सिद्ध्यै रतिस्थाम् (१२/६०)

एकमेवाद्वितीय ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन-आदि उपनिषद् प्रतिपादित अद्वैतभाव इस उपपुराण में पदे-पदें परिलक्षित होता है। इसी अभेद भाव के कारण त्रिदेवों एवं देवियों में अभेद माना जाता है।

रचनाकाल एवं रचना स्थान

कालिकापुराण के अन्तरंग अध्ययन से इसके रचना काल के सम्बन्ध में निर्णय करना कठिन है। अतः बाह्य साक्ष्य के आधार पर विचार किया जा सकता है। कालिका

पुराण का प्राचीनतम निर्देश नान्यदेव के भरतभाष्य में प्राप्त होता है :- "इति रोविन्दकं समाप्तम्। कालिकाख्यपुराणे। ....स्यादुत्तरमतः परम्।। (द्र. कालिकापुराण, प्रस्तावना, - पृ. २६, ले. आचार्य बलदेव उपाध्यायः)

भरतभाष्य के लेखक नान्यदेव मिथिलापति नान्यदेव से भिन्न हैं, जिसका राज्यकाल ईस्वी १०९७ से लेकर ११३३ है। अतः कालिकापुराण का रचनाकाल १०५० ई. के बाद ही हो सकता है। पूर्वतन मर्यादा का उल्लेख हेमाद्रि के उस उद्धरण के द्वारा किया गया है, जिसमें कालिकापुराण ही वास्तव में भागवत पुराण माना गया है -'यदिदं कालिकारव्यं च मूलं भागवतं स्मृतम्'। इस पुराण का उल्लेख वंगीय निबन्धकार (समय १४ वीं शती) शूलपाणि और कवि विद्यापति द्वारा किया गया है। शूलपाणि ने 'दुर्गोत्सवविवेक' तथा विद्यापति ने 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' में पूजा विषयक श्लोकों को उद्धृत किया है।

अन्तरंग साक्ष्य के आधार पर भी इसे दशम शती के उत्तरार्ध की ही रचना कही जा सकती है, क्योंकि इस पुराण का लेखक कालिदास और माघ से अपरिचित नहीं है। कालिकापुराण के ७७वें अध्याय में कामरूप क्षेत्र में विद्यमान नदियों, सरोवरों, कुण्डों तथा पर्वतों का बड़ा सूक्ष्म तथा विस्तृत वर्णन किया गया है अतः इसका भौगोलिक क्षेत्र भारतवर्ष का पूर्वांचल-कामरूप का प्रदेश ही रहा होगा। विद्यापति ने 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' में देवी के नैवेद्य के लिये स्थानीय फलों के नाम प्रस्तुत करने वाले श्लोकों को कालिकापुराण (अ. ७०/४-१२) से उद्धृत किया है -

अक्षोडं पिण्डखर्जूरं करुणं श्रीफलं तथा।
औदुम्बरञ्च पुन्नागं माधवं कर्कटीफलम्।। अ. ७०/६

'करुण' गौडदेश का प्रसिद्ध फल है-'करुणं गौड देशे प्रसिद्धम्'। अतः स्पष्ट है कि लेखक बंगाल के इस प्रसिद्ध फल से परिचित हैं। अतः इसका रचना स्थल आसाम का कामरूप प्रदेश या आसाम का वह भाग है, जो बंगाल के समीप है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण

कृष्णद्वैपायनं व्यासं सर्वलोकहिते रतम्।
वेदान्तभास्करं वन्दे शमादिनिलयं मुनिम्।।

इस प्रकार महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास का वर्णन भगवत्पूज्यपाद आद्यशङ्कराचार्य करते हैं। जहाँ एक ओर महर्षि वेदव्यास ने अखण्ड वेद का चार भागों में विभाजन कर अपना 'वेदव्यास' यह नाम अन्वर्थ किया, उसी प्रकार वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के मूल जिज्ञास्य-तत्त्व परब्रह्म का निरूपण करने के लिए 'ब्रह्मसूत्रों' की रचना की। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का विस्तृत व्याख्यान करने के उद्देश्य से उन्होंने अठारह (१८) महापुराण और इतने ही उपपुराणों की सृष्टि की। जहाँ महर्षि वाल्मीकि ने रामायण का प्रणयन किया वहाँ दूसरी ओर महर्षि-वेदव्यास ने महाभारत का। जिसका अनुपम रत्न 'श्रीमद्भगवदगीता' है। आद्यशङ्कराचार्य ने महत्त्वपूर्ण १० (दश) उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता को परब्रह्म तक पहुंचने का पाथेय मानकर उनका निर्देश 'प्रस्थानत्रयी' के रूप में किया है और उन्हीं की आधारशिला पर अपने अद्वैत-वेदान्त दर्शन का महाप्रासाद खड़ा किया है।

प्रस्तुत निबन्ध का विषय "श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण" का अनुशीलन है। इसका समावेश उपपुराणों के अन्तर्गत होता है। पुराण का पञ्चविध स्वरूप सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित हैं; जबकि उसके दशविध स्वरूपों की गणना की गयी है-

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।'

अर्थात् सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति तथा आश्रय इनका दशविध पुराणलक्षण में समावेश किया गया है।

पंचमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, अन्तःकरण मन, महत्तत्त्व (बुद्धि), इनका जन्म 'सर्ग' कहलाता है।

त्रिगुणात्मिका पुरूषकृत सृष्टि 'विसर्ग' कहलाती है। इसी प्रकार-वैकुण्ठ विजय स्थिति, भगवदनुग्रह 'पोषण', कर्मवासना 'ऊति', सद्धर्म-'मन्वन्तर', भगवदवतार एवं उनके अनुयायियों का वर्णन "ईशानुकथा", इनका (परमेश्वर का) अपनी शक्तियों के साथ-सुप्तस्थिति 'निरोध', जीवात्मा का अपना स्वरूप छोड़कर परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप में रहना 'मुक्ति' और जहाँ से आभास और निरोध दोनों अध्यवसित होते हैं उस परब्रह्म परमात्मा को

---

१. भागवत महापुराण २-१०-१

'आश्रय' कहते हैं। यह दशविध लक्षण द्वितीय-स्कन्ध के दशम अध्याय के अनुसार है। द्वादश स्कन्ध के सातवे अध्याय में दशविध पुराण लक्षण का भिन्न स्वरूप से निरूपण किया गया है, जो इस प्रकार है-

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।।
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया।।[1]

तदनुसार पञ्चविध पुराणलक्षण उपपुराणों में तथा दशविध लक्षण महापुराणों में मिलते हैं। जहाँ दशविध पुराणलक्षण के अन्तर्गत सर्ग और विसर्ग आते हैं वहीं पञ्चविध पुराण लक्षण में सर्ग और प्रतिसर्ग भी आते हैं, प्रतिसर्ग का अर्थ चतुर्विध प्रलय (नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक) है।

दशविध पुराणलक्षण में पञ्चविध पुराण लक्षण के वंश और वंशानुचरित का शब्दशः उल्लेख नहीं है। वंशानुचरित का अर्थ है-सूर्यवंश और चन्द्रवंश से उत्पन्न विविध राजवंशों में जन्म लेने वाले राजाओं का परिचय। दोनों प्रकार के पुराण लक्षणों में मन्वन्तर का उल्लेख है। अमरकोश के अनुसार इकहत्तर दिव्य महायुगों का एक मन्वन्तर होता है।[2] भागवत महापुराण के अनुसार श्रीहरि का मन्वन्तर षड्विध होता है-

"मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते।।"

संक्षेप में मन्वन्तर का तात्पर्य एक मनु के दिव्य महायुग से होता है, जिसमें इकहत्तर दिव्ययुग अर्थात् ३०६७२ X १०५ सौरवर्ष होते हैं।

स्वायम्भुव मनु प्रथम मन्वन्तर के स्रष्टा और पालनकर्ता थे, तदन्तर स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष मन्वन्तर हुए। सम्प्रति वैवस्वतमन्वन्तर चल रहा है। आगे आने वाले मन्वन्तरों में सावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रौच्यसावर्णि और भौत्य सावर्णि कुल मिलाकर चौदह मन्वन्तरों की परिगणना की गयी है। भागवत के अनुसार षड्विध मन्वन्तर के अन्तर्गत श्रीहरि के अंशावतार की गणना की गई है। जिसका वर्णन ही 'ईशानुकथा' कहलाता है, उसका संकेत दशविध पुराण लक्षण के अन्तर्गत हुआ है।

---

१. श्रीमद्भागवत् १२-७-८-१०
२. मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानां एकसप्ततिः। इत्यमरः

यतः इसमें दशविध पुराणलक्षण नहीं मिलते अपितु पञ्चविध पुराणलक्षण मिलते हैं। अतः इसका समावेश उपपुराणों में होता है। इसके तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में २६९ अध्याय, द्वितीय खण्ड में १८३ अध्याय तथा तृतीय खण्ड में ३५५ अध्याय हैं।

कृतवर्मा, भोज इत्यादि राजगण द्वारा प्रेरित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र चक्रवर्ती सम्राट् श्रीवज्र ने मार्कण्डेय मुनि से यह जिज्ञासा की कि इस घोर कलियुग में मुक्ति किस प्रकार सम्भव है जिसके समाधान के रूप में उन्होंने वैष्णव धर्म का प्रतिपादन किया है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' यह नाम यह इंगित करता है कि इसके पूर्व भी किसी पुराण में वैष्णवधर्म का वर्णन है।

यद्यपि भगवान् नारायण अशरीरी हैं तथापि उन्होंने लोक सिसृक्षा से सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मदेव का, पालनकर्ता के रूप में विष्णु का और संहारकर्ता के रूप में रुद्र का अवतार लिया। सर्वप्रथम भगवान् नारायण ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और उसके मध्य वे ब्रह्मदेव के रूप में विराजित हुए। ब्रह्मदेव के नेत्रोन्मीलन को ब्राह्म दिवस और उनके निमीलन को ब्राह्मरात्रि कहते हैं, ब्रह्मा का अहोरात्र कल्प नाम से सम्बोधित होता है। वस्तुतः भगवान् नारायण की कोई इयत्ता नहीं है, अतः वह अनन्त है, वह गुणातीत है, किन्तु सृष्टि, स्थिति और संहार के समय यथाक्रम सत्त्व, रज और तमोगुण के उद्रेक से भगवान् नारायण त्रिदेव के रूप में अवतीर्ण होते हैं। भगवान् नारायण से अव्यक्त, उससे आत्मा, उससे बुद्धि, बुद्धि से मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, और जल से हिरण्यमय ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, जिसके मध्य ब्रह्मदेव विराजमान हैं।

उनकी सृष्टि में ऊर्ध्वस्थित सप्तलोक और अधः स्थित सप्त पाताल और सप्त द्वीप सप्त सागरों से वेष्टित वसुन्धरा विराजमान है। सृष्टि के समय भगवान नारायण यज्ञवाराह के रूप में अवतीर्ण होकर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार करते हैं[1]।

चतुर्थ अध्याय में सप्त पाताल और उनके निवासियों का वर्णन है। प्रारम्भ में त्रसरेणु, लिक्षा, राजसर्षप, गौरसर्षप, यव, अङ्गुल, शङ्कु, हस्त और धनु को यथाक्रम परिभाषित करते हुए अनन्तर, क्रोश, योजन की परिभाषा दी गई है। आठ क्रोश का एक योजन और तदनुसार एक सौ पचास लाख (१,५०,००००) योजन परिमाण में शेष स्थान अवस्थित है जो वाराहलोक है और वह छत्राकार है, जो सभी लोकों के नीचे विराजमान है, उसके ऊपर कालाग्नि रुद्रलोक है जिसमें भगवान् कालाग्नि विराजते हैं। उसके ऊपर पाताल है जिसमें शेषमूर्ति जनार्दन विराजमान हैं। उसके ऊपर रुक्म भौम पाताल है जिसमें शेषशायी भगवान् विराजमान हैं। उसके ऊपर सुतल पाताल है, जिसमें भगवान् बलि हैं। उसी में

---

१. ब्रह्माऽतो सृष्टिकाले तु जलमध्यगतां महीम्। दृष्ट्वोद्धरति यज्ञात्मा वाराहीममास्थितस्तनुम्।। (विष्णुधर्मो. १-२-१९)

भगवान वामन के रूप में विराजते हैं, उसके ऊपर आभास तल नामक पाताल है, जहाँ पर कामधेनु रहती है। उसके अतिरिक्त सुभद्रा वह्निरूपा, विश्वरूपा और रोहिणी नामक गौंए रहती हैं जिनकी दुग्धधारा से क्षीरसागर बना। उसी में विष्णुपुर भी है जहाँ अग्निज्वालाओं से वेष्टित लक्ष्मी-नारायण विराजमान हैं। उसके ऊपर गभस्तितल नामक पाताल है जिसमें हयग्रीव के रूप में भगवान् निवास करते हैं, वहीं गरुड़लोक भी है और वहीं असुरराज प्रहलाद और महात्मा वाष्कलि भी रहते हैं। उसके ऊपर महातल नामक पाताल है जिसमें एक लाख योजन विस्तीर्ण सरोवर के मध्य भगवान् कूर्म विराजते हैं, षष्ठ पाताल भीमतल के नाम से विख्यात हैं, जो मत्स्यावतार भगवान् की निवासभूमि है। भीमतल नामक सप्तम पाताल में वासुदेव कपिल विराजमान हैं, वहीं अश्वतल नामक वरुणपुर भी है तथा अनेक दानववीरों के पृथक्-पृथक् नगर हैं। वहीं रावण ने भगवान् विष्णु का दर्शन किया था, वहीं पर वासुकि नाग द्वारा रक्षित भोगवती नामक नागराजों की राजधानी है। यह ब्रह्माण्ड के आधे भाग का वर्णन हैं। जिनमें चन्द्र और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता।[1]

ऊर्ध्वस्थित सात लोक ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्वभाग में विराजमान हैं जिनमें सबसे नीचे भूर्लोक है, उसमें पशु-पक्षी-कीट-मनुष्य किन्नर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाचादि वास करते हैं जो अन्नभक्षी हैं। उनमें सात वायुमार्ग हैं। (१) विद्याधर (२) सिद्ध (३) पक्षी (४) गन्धर्व (५) विनायक (६) करी और (७) सिद्ध हैं - अपने-अपने वायुमार्ग में विचरण करते हैं। भूर्लोक के ऊपर भुवर्लोक है जिसमें वे देवता रहते हैं, जो अपने-अपने मन्वन्तर के अधिकार में शासन करने वाले हैं, उसके ऊपर स्वर्गलोक हैं, जिसमें सोमपान करने वाले इन्द्रादि देवता रहते हैं। उसके ऊपर महर्लोक है, जिसमें पदनिवृत्त देवता और सिद्ध महात्मा रहते हैं। उसके ऊपर सिद्ध जनलोक है जहाँ पर गौंए रहती हैं और ब्राह्म रात्रि में जीव वास करते हैं। उसके ऊपर तपलोक है जिसमें प्राणेश अर्थात् प्राणायाम पर अधिकार रखने वाले तपश्चर्या में लीन योगी रहते हैं। इसके ऊपर सत्यलोक है, जहाँ ब्रह्मदेव की स्थिति है। यतः इनको सविता की सप्तविध किरणें आलोकित करती हैं अतः इन्हें सप्तलोक कहा जाता है। ब्रह्मलोक के ऊपर रुद्रलोक है जहाँ सपत्नीक शिव विराजमान हैं, उसके ऊपर विष्णुलोक और उसके ऊपर हिरण्मय ब्रह्माण्ड है।

अवतारों की दृष्टि से विभिन्न लोको में विभिन्न अवतारों का निवास है-(१) वामन (भुवर्लोक), (२) वैकुण्ठ (स्वर्लोक), (३) नृवराह (महर्लोक), (४) नृसिंह (जनलोक), (५) त्रिविक्रम (तपोलोक), (६) सन्तानक (सत्यलोक)। विष्णुलोक स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित है और उसके ऊपर वराह स्थान है जिसके चारों ओर चन्द्रतल है।

---

१. वि ७१/१-४

समस्त ब्रह्माण्ड अपने दशगुणित जल से वेष्टित है और वह भी दशगुण तेज से, तेज भी दशगुण पवन से और पवन भी दशगुण आकाश से वेष्टित है और वह आकाश मन से, मन बुद्धि से, बुद्धि आत्मा से, आत्मा अव्यक्त से और वह अव्यक्त अनादि अनन्त नारायण पुरुषोत्तम से आवृत है जो अपरिमित है। ब्रह्माण्ड के अन्तर्वर्ती सभी अण्डों के काल संख्या समान ही है, इस प्रकार चतुर्थ एवं पञ्चम अध्यायों में सर्ग का वर्णन उपलब्ध होता है जिसके अन्तर्गत दशविध पुराणलक्षण का 'विसर्ग' भी समाविष्ट है।

भूमण्डल का वर्णन - इसके केन्द्र में योजनसहस्र परिमित सुमेरु नाम सुवर्ण पर्वत है। उसके चारों ओर जम्बूद्वीप है और वह लवण समुद्र से घिरा हुआ है, सप्तद्वीपा वसुन्धरा में दूसरा स्थान शाकद्वीप का है। वह भी लवण समुद्र से घिरा हुआ है। तृतीय कुशद्वीप क्षीरसागर से घिरा हुआ है, क्रोञ्च द्वीप दोनों ओर से घृत समुद्र से घिरा हुआ है। उसके पश्चात् शाल्मलि द्वीप दधिसागर से दोनों ओर से वेष्टित है, उसके पश्चात् पुष्करद्वीप एक ओर सुरासागर से और दूसरी ओर गोमेद से घिरा हुआ है। उसके उत्तर में मानसोत्तर पर्वत है। केन्द्र में मेरु पर्वत को मानकर मानसोत्तर की शिखर की ओर इन्द्र की अमरावती, पूर्व दक्षिण कोण में अग्नि की प्रभावती, दक्षिण भाग में यम की संयमनी, दक्षिण-पश्चिमकोण में विरूपाक्ष की विक्रान्ता, पश्चिम में वरुणदेव की सुखप्रभा, पश्चिमोत्तरकोण में पवनदेव की शिवा, उत्तर में चन्द्र की विभावरी और पूर्वोत्तरकोण में ईशान की शर्मदा ये नगरियाँ प्रसिद्ध हैं। पुष्करद्वीप के चारों और स्वादु जलसागर है। उसके पश्चात् सुवर्णभूमि है। इसके अतिरिक्त देवोद्यान में एक शिलाभूमि, लोकालोक पर्वत है जिसमें लोकपाल प्राची आदि दिशाओं की रक्षा करते हैं, उनके सुदामा आदि विभिन्न नाम इस पुराण में निर्दिष्ट हैं। सुमेरु के पूर्व की ओर लवण सागर के बीच में विष्णुलोक हैं, जिसमें शेषशायी लक्ष्मीनारायण विराजमान हैं। आषाढ़ी एकादशी तिथि से चातुर्मास्य व्रत इसी की उपासना में भक्त जन करते हैं और कार्तिक के शुक्ल पक्ष में अन्तिम पाँच दिन विष्णुप्रबोधोत्सव सम्पन्न किया जाता है।

श्वेतद्वीप के पूर्वोत्तरकोण में क्षीरसागर के मध्य वैजयन्त नामक सुवर्ण पर्वत है, उसके बीच में पाँच सहस्र (५०००) योजन परिमित गुहा में तिमिरावती नाम की नगरी में विष्णु शयन करते हैं, उनके निकट निद्रा, कालरात्रि और लक्ष्मी ये तीन देवियाँ तथा भृगु आदि ऋषिगण उनकी उपासना करते हैं। उस समय सुप्तावस्था में स्थित भगवान् विष्णु के उच्छ्वास से प्राणियों को जन्म और उनके निश्वास से उनकी मृत्यु होती है। घृतसमुद्र के मध्य गोवर्धन, दधिसमुद्र के मध्य केशव, सुरासमुद्र के मध्य संकर्षण का निवास माना जाता है। इस प्रकार सप्तद्वीपा वसुन्धरा षष्ठ अध्याय में वर्णित है। सप्तम अध्याय में जम्बूद्वीप का वर्णन है जिसमें पूर्व और पश्चिम दो सागर हैं। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, मेरु और शृङ्गवान् ये छह कुल पर्वत हैं; जिनमें समस्त रत्नों की खानें हैं, सबके मध्य सुमेरु

नामक सुवर्ण पर्वत है जो अत्यंत विस्तृत है। इसके अतिरिक्त जम्बूद्वीप में माल्यवान् और गन्धमार्दन पर्वत विशेष रूप से परिगणित हैं। गन्धमादन पर्वत के श्वेत आदि और ब्राह्मण आदि वर्ण, पूर्व आदि दिशा भेद से वर्णित हैं। इसलिए ब्राह्मणों की उत्तर दिशा, क्षत्रियों की पूर्व दिशा, वैश्यों की दक्षिण दिशा और शूद्रों की पश्चिम दिशा (निवास योग्य) मानी जाती है।

सुमेरु पर्वत के पृष्ठभाग की ओर पूर्वादि दिशा क्रम से इन्द्र आदि आठ दिक्पाल, अमरावती आदि अपनी-अपनी राजधानियों में यथाक्रम विराजमान हैं। मानसोत्तर पर्वत के शिखर पर विराजमान महादेव नित्य सुमेरु पर्वत स्थित अपनी नगरी का अवलोकन करते हैं। शृङ्गवान पर्वत के उत्तर अर्धभाग में दक्षिण की ओर कुरु-वर्ष, शृङ्गवान और श्वेतद्वीप के मध्य हिरण्यगर्भ वर्ष तथा श्वेतद्वीप और नील पर्वत के मध्य रम्य वर्ष है। निषध और नील पर्वत के मध्य पश्चिम की ओर आधेभाग में गन्धमादन तथा आधेभाग में केतुमाल वर्ष है। निषध और नील पर्वत के मध्य माल्यवान् गिरि के पूर्व की ओर रुद्रमुख वर्ष तथा सुमेरु पर्वत की चारों दिशाओं में इलावृत वर्ष है, जिसके चार भाग हैं, भद्राश्व, जम्बूमाल, (गन्धमाल्य) केतुमान और कुरु। उस जम्बूमाल में पूर्व की ओर योजन सहस्र तक विस्तृत जम्बू (जामुन) का वृक्ष है, जिसके फलों से जम्बूनदी का उद्गम है। अतएव यह द्वीप जम्बूद्वीप नाम से विख्यात है। इलावृत वर्ष नित्त्य सुमेरू पर्वत की सौवर्णप्रभा से आलोकित है, वहाँ सूर्य, चन्द्र और तारकाओं का प्रकाश नहीं पहुँचता। हेमकूट से उत्तर हरिवर्ष और उससे दक्षिण किम्पुरुष वर्ष है। हिमाचल से दक्षिण की ओर हमारी कर्मभूमि भारत है जिसमें वर्तमान युग भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रवर्तित है। हिमालय यक्षों की, हेमकूट दैत्त्यों की, निषध गन्धर्वो की, नील नागों की, श्वेत पितरों की, शृङ्गवान् सिद्धों की तथा सुवर्ण पर्वत सुमेरु देवराज इन्द्र सहित देवताओं की पर्वतीय विहारभूमि (हिलस्टेशन) है।

भारतवर्ष-यह हिमालय पर्वत से समुद्र तट तक उत्तर से दक्षिण तक हिमालय आदि आठ पर्वतों द्वारा नौ भागों में विभक्त है, वे आठ पर्वत हैं- स्वमाली, हेममाली, सुवर्ण पर्वत, वैदूर्य पर्वत, राजत पर्वत, मणिपर्वत, इन्द्रद्युम्न और कद्रेता। इस (वैवस्वत) मन्वन्तर में नवम मध्यमद्वीप चारों ओर से समुद्र वेष्टित है। हिमाचल से उत्तर वैदूर्य पर्वत है, सुवर्ण पर्वत के पश्चिम की ओर लवण-द्वीप के उत्तर की ओर चारों ओर से सागर है, जिसमें नाना प्रकार के जन्तु रहते हैं। हिमाचल का और दो देशों का निर्माण समुद्रों से हुआ है, लवण द्वीप के उत्तर पार्श्व में, सागर के दक्षिण में लंकापुरी समाविष्ट है, जहाँ रावण मारा गया था। भारत वर्ष में दृश्य हिमालय के भाग में महात्मा पाण्डवों ने गन्धमादन, श्वेत पर्वत और मन्दराचल पर्वत शिखरों को देखा था। हिमालय पर्वत पर ही नर-नारायण आश्रम और बदरिकावन है, जहाँ गरमजल की गंगा प्रवाहित होती है। स्वच्छ जलधारा से सुशोभित दूसरी गंगा भी वहाँ विराजित है, वहाँ सुवर्णमय बालुका तट है। इनके अतिरिक्त भी सैकड़ो हजारों

द्वीप हैं, जिनका वर्णन असम्भव है। इस पौराणिक युग में भारत वर्ष में सभी सन्मार्गरत होने के कारण वहाँ कोई दाण्डिक राजा की आवश्यकता नहीं होती थी। कल्पवृक्ष स्त्रियों के मनोरथ पूर्ण करते थे। सत्य कहा है सुकर्म से ही भारत में जन्म प्राप्त होता है।

जनपद- भारतवर्ष के मध्य पाञ्चाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, वटश्चर, कुन्ति और शूरसेन जनपद, पूर्व में वृषध्वज, अञ्जन, पन्न, सुह्म, मगध, चेदि, काशि, विदेह, कौशल, कलिङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र, अङ्ग, विदर्भ और मूलक जनपद; पूर्व दक्षिण की ओर विन्ध्याचल मध्यवर्ती जनपद हैं, जिसमें पुलिन्द, अश्मक और जीमूत जातियाँ वास करतीं हैं। दक्षिण पथ में कर्णाटक और भोजकट, दक्षिण-पश्चिम में अम्बष्ट, द्रविड़, नाग, काम्बोज, स्त्री-प्रधान शक और आनन्त विराजमान हैं। पश्चिम की ओर स्त्रीराज्य, सिन्धु जनपद, म्लेच्छ, नास्तिक, और यवनों का वास है, जिनका व्यवसाय पट्टू, मान और औषधिविक्रय है। उत्तर-पश्चिम की ओर माण्डव, तुषार मूलिक, मुख और खश जनपद हैं, जिनके निवासियों के लम्बे-लम्बे केश और बड़ी-बड़ी नाक होती है। उत्तर की ओर लम्चग, तालनाग, मरु, गान्धार, जाहुस, जनपदों में हिमाचलनिवासी म्लेच्छ जातियाँ हैं। पूर्वोत्तर की ओर त्रिगर्त, मीन, कुलूत, ब्रह्मपुत्र, सतीगण, अभिसार और काश्मीर प्रदेश हैं।[1]

पर्वत औरं नदियाँ- भारतवर्ष में सात कुल पर्वत हैं जिनमें महेन्द्र पर्वत से त्रिसामा, ऋषिकुल्या, इक्षुगा, त्रिदिवालया, लाङ्गूलिनी और वंशधरा नामक नदियाँ, **मलय पर्वत** से कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, उत्पलावती, शीतोदका और गिरिवहा, ये नदियाँ, **सह्याद्रि** से दक्षिणापथ के मध्य प्रवाहित होने वाली तुङ्गभद्रा, सुप्रकारा, व्राह्मा और कावेरी ये नदियाँ, **शुक्तिमान** पर्वत से ऋषिका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दबासिनी, नृपमाल और शिरी ये नदियाँ, **ऋक्षवान** पर्वत से मन्दाकिनी, दशार्णा, शोण, देवी, तमसा आदि नदियाँ, विन्ध पर्वत से वेणा (वीणा), वैतरणी, नर्मदा, कुमुद्वती, तोया और सेतुशिला, ये नदियाँ तथा **पारियात्र** पर्वत से चर्मण्वती, पादा, विदिशा, वेणुवती, (वेत्रवती) क्षिप्रा, अवन्तिका और कुन्ती, ये नदियाँ निर्गत और प्रवाहित हैं।[1]

हिमालय की नदियाँ- कौशिकी, गण्डकी, लौहित्यनद, दृषद्वती, बहुदा, बाहुदा, गोमती, वितस्ता, चन्द्रभागा, सरयू, इरावती, विपाशा, शतद्रु और यमुना ये हिमालय से उद्भूत मुख्य नदियाँ हैं, वहाँ से उत्पन्न **सरस्वती** नदी की विभिन्न सात धाराएँ इन विभिन्न नामों से सात देशों में प्रवाहित होती हैं- सुप्रभा (पुष्कर) कातराक्षी (नैमिष), विशाला (गया), मानसह्रदा (कोशल), सरस्वती (कुरुक्षेत्र), ओघनादा (गङ्गाद्वार) और सुवेणु (हिमालय)। उसमें भी त्रिपथगा होने पर भी **भगीरथ** द्वारा आराधित भारतवर्ष में प्रविष्ट **भागीरथी गङ्गा** का अत्यधिक महत्त्व है।

१. वि. ध. ङ १/१/६
२. वि. ३-१/१/१०

पौराणित इतिहास-भारतवर्ष में पूर्व की ओर कोशल जनपद[1] है, जिसमें सरयूतट पर वैवस्वत मनु ने दश योजनों तक फैली हुयी और तीन योजन तक चौड़ी **अयोध्या** नगरी बसाई। उन्होंने चिरकाल तक शासन किया और अपना राज्य अपने पुत्र इक्ष्वाकु पर छोड़कर वे सशरीर स्वर्ग चले गये। पश्चाद् इसी इक्ष्वाकु के कुल में विकुक्षि, ककुत्स्थ, पृथु, विश्वदास, श्रावस्तीपुरी बसाने वाले श्रावस्तक, दृशदश्व, धुन्धुमार, कुवलाश्व, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ आदि प्रसिद्ध राजा हुए।

भारतभूमि में ही सदधर्म स्थापना के लिए भगवान विष्णु ने दत्तात्रेय का अवतार लिया। भगवान् दत्तात्रेय को प्रसन्न करके ही चन्द्रवंशी चक्रवर्ती सम्राट् सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन ने सप्तद्वीपा वसुन्धरा पर पचासी हजार वर्षों तक एकच्छत्र धर्मसाम्राज्य स्थापित किया। अनन्तर अधार्मिक राजाओं से भाराक्रान्त होने पर शोकाकुल वसुन्धरा, स्वर्गलोक ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक तक गयी। अन्त में विष्णु ने पुनः परशुराम अवतार लेकर कार्तवीर्यार्जुन के वंशज क्षत्रिय शासकों का २१ (इक्कीस) बार वध किया। फलतः वसुन्धरा निःक्षत्रिय हो गयी। परशुराम के पराक्रम से प्रसन्न भगवान् शङ्कर ने उन्हें ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र, आग्नेय आदि शस्त्र अस्त्र, प्रदान किये और उनकी सञ्चालनविधि का उपदेश दिया। भगवान् शङ्कर ने परशुराम को जो उपदेश दिया था वह **"शंकरगीता"** (५२ से ६५ अध्याय) के नाम से विख्यात है। वस्तुतः विष्णु और शिव में कोई अन्तर नहीं है। अपनी स्तुति से प्रसन्न वरुणदेव में भगवान् परशुराम को रुद्रात्मक काल की अतिसूक्ष्मता के साथ ग्रहगति के अनुसार मास वर्ष आदि से तथा निमेष से लेकर युगपर्यन्त तक काल के अवयवों से परिचित कराया। साथ ही मनुष्य का आयुप्रमाण धार्मिक बुद्धि और वेद-विभाग और ब्रह्मा की आयु का भी प्रतिपादन किया (७२-७३ अध्याय)। प्रत्येक युग का अन्त परस्पर कलह से होता है। ब्रह्मा के सौ वर्ष पूर्ण होने पर समस्त बाह्य जगत् जलधारा में लीन होता है, उस समय वह जलधारा ज्योतिःपुञ्ज में, ज्योतिः पुञ्ज वायु में, वायुपुञ्ज आकाश में, आकाश मन में, मन बुद्धि में बुद्धि आत्मा में और आत्मा का अव्यक्त परम पुरुष में विलय होता है। एक मन्वन्तर (७१ दिव्ययुग) बीत जाने पर यह स्थिति आती है। किन्तु उस समय भी कुलपर्वतों का विनाश नहीं होता।

महर्षि मार्कण्डेय कल्पान्तजीवी हैं, जिन्होंने देवाधिदेव महादेव के कृपाप्रसाद से अनेक मन्वन्तरों का विनाश होने पर नौकारूढ़ होकर समाधि की स्थिति में समययापन किया और कल्पान्त होने पर वे जनलोक चले गए। दाहकाल के उपस्थित होने पर वे जनलोक से पृथ्वीलोक में समुद्र में गिर पड़े और भगवत्कृपा से जीवितावस्था में उन्होंने वट-वृक्ष पर रत्नपर्यङ्कशायी बालमुकुन्द का साक्षात्कार करते हुए उसके मुख में समस्त स्थावर जंगमात्मक विश्व का दर्शन किया।

---

१. १-१-११

पुराणोपदेशकाल- महर्षि मार्कण्डेय द्वारा श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र को **"विष्णु-धर्मोत्तर पुराण"** का उपदेश करते समय ब्रह्मदेव के कालमान से आठ वर्ष, पाँच मास और चार अहोरात्र अर्थात् छः मन्वन्तर उनके छः सन्धिकाल। वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के सत्ताईस महायुग और वर्तमान महायुग के तीन युग सत्य, द्वापर और त्रेता बीत चुके थे, वर्तमान कलियुग के ग्यारहवें संवत्सर में श्रीकृष्ण के प्रपौत्र राज्यारूढ़ थे। महर्षि मार्कण्डेय ने उन्हें भावी घटनाओं का भी संकेत किया। तदनुसार महाराज परीक्षित् स्वर्ग सिधार गये। महाराज वज्र नागलोक चले गए, नागपुर में परीक्षित् पुत्र जनमेजय ने और मथुरा में वज्र पुत्र अचल ने शासन किया। मय की सभा हिमाचल के बिन्दुसरोवर पर स्थापित हुई।

मुक्तिरहस्य- परम पुरुष कालात्मा है और पौरुष अहोरात्र का स्वामी परम पुरुष है। स्वायम्भुव आदि चतुर्दश मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। प्रतिकल्प के अधिष्ठाता देव 'ब्रह्मदेव' हैं। तीन कल्प हैं और प्रतिकल्प का समान आकार है। इन चतुर्दश मन्वन्तरों की आवृत्ति प्रत्येक कल्प में होती है। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, रुद्रलोक और श्वेतद्वीप में पहुंचने वाले जीवों का पुनर्जन्म नहीं होता, उनके स्थान पर ब्रह्मदेव अन्य जीवों की सृष्टि करते हैं, जिससे संसार चलता है। महर्षि वाल्मीकि ने जिस रामायण का चित्रण किया था, वह घटना छः मन्वन्तरों के बीत जाने पर सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेतायुग में घटी थी। वर्तमान श्वेतवाराह कल्प में घटित इतिहास को महर्षि मार्कण्डेय ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर को सुनाया था। वैष्णव चतुर्व्यूह के अन्तर्गत भगवान् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये यथाक्रम सत्त्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग के अधिष्ठाता देवता हैं।

संवत्सरचक्र- जिस समय संवत्सरचक्र का प्रारम्भ हुआ उस समय माघमास का शुक्लपक्ष था। चन्द्र एवं सूर्य ज्येष्ठा नक्षत्र में थे, मंगलवार था। फलतः राम द्वारा रावण और कुम्भकर्ण का संहार हुआ। संवत्सरचक्र का प्रवर्तन प्रभव संवत्सर से हुआ, जिसके अन्तर्गत साठ संवत्सर आते हैं, वे इस प्रकार हैं- प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद और प्रजापति (वैष्णव युग में), अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता (वृहस्पति युग में), ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम और वंश (इन्द्र युग में) वह्नि, स्वर्भानु, तरण, वारिद-(पार्थिव), अव्यय (आग्नेय युग में) सर्वजित् सर्वधारी, विरोधी, विकृति और खर (त्वष्टा का युग) नन्दन, विजय, जय, काम और दुर्मुख (अहिर्बुध्न्य युग), हेममाली, विलम्बी, विकारी, शर्वरी और प्लव (पैत्र्ययुग में), शोककृत, शुभकृत, क्रोधी, विश्वावसु और परावसु (वैश्वदेवयुग), प्लवंग, कीलक, सौम्य, सोम और रोधकृत (चन्द्रयुग में) धावन, मंथन, वीर, राक्षस और अनिल (इन्द्राग्नियुग)। पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति (अश्विनी कुमार) दुन्दुभि, अंगारक, रक्त, क्रोध और क्षय (भग का युग)।

बृहस्पति बारह वर्षों में बारह नक्षत्रों का संक्रमण करता है। उन बारह वर्षों के अधिपति भिन्न-भिन्न हैं और उनका पृथक्-पृथक् फल है। (उ- अ.- ८२)। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को जो वार होता है, उस ग्रह को उस संवत्सर का, प्रत्येक संवत्सराधिप, नाग, निशाचर और गंधर्व भिन्न-भिन्न होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

संवत्सर का स्वामी	नाग	गंधर्व	निशाचर
१. सूर्य	अनन्त	चित्रांगद	दीर्घभद्र
२. चन्द्र	वासुकि	चित्रसेन	पूर्णभद्र
३. मंगल	तक्षक	चित्ररथ	मणिभद्र
४. बुध	कर्कोटक	तुम्बुरू	यक्षभद्र
५. गुरु	पद्म	शालिशिर	दीर्घबाहु
६. शुक्र	महापद्म	नारद	महाबाहु
७. शनि	शङ्ख	ऊर्णायु	महाकर्ण।

आदित्यादि संवत्सराधिपतियों का वर्षकाल भिन्न-भिन्न वर्णित हैं इनके अतिरिक्त पाँच अन्य संवत्सर होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

वर्षनाम	वर्षाधिपति	वर्षफल
१. संवत्सर	अग्नि	समा वृष्टि
२. परिवत्सर	अर्क	प्रचुर जल
३. इडवत्सर	शशाङ्क	पश्चाद् वृष्टि
४. अनुवत्सर	ब्रह्मा	अवृष्टि
५. इड्वत्सर	शिव	स्वल्प वृष्टि

अयन, ऋतु, मास, पक्ष, वार और नक्षत्रों के भी भिन्न-भिन्न देवता हैं, जो इस प्रकार हैं-

अयन-उत्तरायण (दैव) दक्षिणायन (पैत्र्य)

ऋतु- वसन्त (अग्नि), ग्रीष्म (इन्द्र), वर्षा (वैश्वदेव) शरत् (प्रजापति) हेमन्त (विष्णु) और शिशिर (मरुत्)।

मास- (शुक्लपक्ष)- चैत्र (त्वष्टा), वैशाख (अग्नि) ज्येष्ठ (अज) आषाढ़ (विश्वेदेव) श्रावण (विश्वेदेव) भाद्रपद (अज), आश्विन (अश्विनीकुमार) कार्तिक (अग्नि) मार्गशीर्ष (चन्द्र) पौष (बृहस्पति), माघ (पितर्) और फाल्गुन (भग)।

मास-कृष्णपक्ष- चैत्र (यम) वैशाख (अग्नि) ज्येष्ठ (रुद्र) आषाढ़ (सर्प) श्रावण (पितर) भाद्रपद (सविता) आश्विन (मित्र), कार्तिक (इन्द्र), मार्गशीर्ष (निऋति), पौष (विष्णु) माघ (वरुण) फाल्गुन (पूषा)।

नक्षत्र-कृत्तिका (अग्नि), रोहिणी (सूर्य), मृगशिरा (चन्द्र), आर्द्रा (रुद्र), पुनर्वसु (आदित्य), पुष्य (गुरु), आश्लेषा (सर्प), मघा (पितर), पूर्वा फाल्गुनी (भग), उत्तराफाल्गुनी (अर्यमा), हस्त (सविता), चित्रा (त्वष्टा), स्वाती (वायु), विशाखा (इन्द्राग्नि), अनुराधा (मित्र) ज्येष्ठा (इन्द्र) मूल (निऋति), पूर्वाषाढा (वरुण) उत्तराषाढा (विश्वेदेव), अभिजित (ब्रह्मा) श्रवण (विष्णु) धनिष्टा (इन्द्र) शतभिषा (वरुण) पूर्वाभाद्रपदा (अज) उत्तराभाद्रपदा (अहिर्बुध्य) रेवती (पूषा) अश्विनी (अश्विनीकुमार) भरणी (यम)।

प्रतिपदा से लेकर तिथियों के ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं। इसके पश्चात् ८३वें अध्याय में करणों का परिचय हैं। अहोरात्र में २४ होराएँ होती हैं, इसके पश्चात् अतिरिक्त प्रत्येक बेला में राहु का भोग इस अध्याय में चित्रित है। इसके अतिरिक्त ३० मुहूर्त्तों का भी विचार इस अध्याय में है, नक्षत्र और देवताओं के साथ उनके देवता भिन्न हैं, संक्षेप में दिन का और रात्रि का पन्द्रहवाँ भाग मुहूर्त्त कहलाया है। इस प्रकार इस अध्याय में कालपुरुष के अवयव और उनके देवताओं का परिचय कराया गया है।

अनन्तर महर्षि मार्कण्डेय ने महाराज वज्र को जन्मलग्न, उनके देवता, होरा, द्रेष्काण, नवांश, राशीश्वर और त्रिशांश से परिचित कराते हुए ग्रह नक्षत्रों के कारण प्राणियों के शुभाशुभ फल का वर्णन किया। इसके साथ ही प्रत्येक देश में ग्रहनक्षत्रजन्य पीड़ा का भी वर्णन किया महर्षि ने ग्रहमण्डल और नक्षत्रमण्डलों के निर्देश के साथ ही नक्षत्रस्थान, ग्रहनक्षत्र पूजाविधि, मण्डलकल्पना, आवाहन मन्त्र, अनुलेपन, ग्रहनक्षत्रों को समर्पणीय और असमर्पणीय पुष्प, धूप, दीप, देय और अदेय नैवेद्य, देय और अदेय पानक, होमद्रव्य, होममन्त्र, दक्षिणा, ग्रहयागः फल, ग्रहों और नक्षत्रों की उत्पत्ति, उसी प्रसंग से उत्तानपाद ध्रुव का इतिहास, सप्तर्षिमण्डल, असुर, सुर, आदि की परिभाषा, सन्ध्योपासना का हेतु, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व आदि की उत्पत्ति, स्वधर्म में निष्ठ-ब्राह्मणों को पुण्य फल प्राप्ति, प्रजापति के अङ्गुष्ठ से दक्ष प्रजापति और उसकी पत्नी की उत्त्पत्ति, दक्षयज्ञविध्वंस, सती देहत्याग, दक्ष को शिव का शाप आदि इतिहास का वर्णन किया।

ध्रुव के वंश में अधार्मिक राजा वेन हुआ। उसके द्वारा ऋषियों का अनादर करने के कारण उसे प्राण देने पड़े। मन्त्रपूत कुशोदक से वेन की दोनों जंघाओं से 'निषाद' और 'पृथु' का जन्म हुआ। पृथु का राज्याभिषेक किया गया, उसके द्वारा राज्यविस्तार किये जाने के कारण 'पृथ्वी' का नाम सार्थक हुआ। पृथु के प्रपौत्र प्राचीनबर्हि ने लवणसमुद्र की कन्या सुवर्णा से विवाह किया। जिससे प्रचितस (प्राचेतस्) नाम के दस पुत्र हुए। उन्होंने समुद्र में रहकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की, फलतः उस काल में पृथ्वी अरक्षित रह गयी, चारों ओर जंगल ही जंगल हो गया। लोग मरने लगे, हवा का बहना रुक गया। फलतः क्रुद्ध प्राचेतस राजाओं में अपने मुखों से मरुत और अग्नि को जन्म दिया, जिससे जंगलों में आग लग गयी और सभी जंगल नष्ट हो गये। अनन्तर सोम के कहने पर शान्त प्राचेतसों ने

वृक्षकन्या 'मारिषा' से विवाह किया, जिससे शंकर के शाप से दग्ध दक्ष प्रजापति का पुनर्जन्म हुआ।

मानससृष्टि में असमर्थ दक्षप्रजापति ने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी से विवाह किया, जिसके द्वारा उसे हजार पुत्र हुए। ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद के उपदेश से वे पृथ्वी की ओर छोर नापते हुए लोकालोक के पार गर्भोदक तक पहुँच गये, और झंझावात में पड़कर नष्ट हो गए। दक्ष प्रजापति ने पुनश्च उसी प्रकार मैथुनी सृष्टि की और वे भी नारद के कहने पर भटक गये और नष्ट हो गये। दक्ष प्रजापति के शाप से देवर्षि नारद ने कश्यप के पुत्र के रूप में जन्म लिया। दक्ष के अश्वमेघ यज्ञ करने पर शंकर ने उसमें बाधा डाली। दक्ष प्रजापति ने शाप दिया कि 'शिव के नाम से कोई यज्ञ नहीं करेगा।' फिर उसने साठ कन्याओं को जन्म दिया, और बाहुपुत्र के साथ दो, अरिष्टनेमि के साथ चार, कृशाश्व के साथ दो, धर्म के साथ दस, कश्यप के साथ चौदह, तथा चन्द्रमा के साथ अट्ठाईस कन्याओं का विवाह कर दिया।

महादेव से अभिशप्त मुनियों का स्वायंभुव मन्वन्तर में भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, मरीचि, वसिष्ठ, आदि नामों से गोत्र प्रवर्तक ऋषियों के रूप में जन्म हुए। भार्गव गण के ऋषियों में कुछ ऋषियों के पांच प्रवर होते हैं, और कुछ गोत्रों के त्रिप्रवर होते हैं जिनका परस्पर विवाह नहीं होता। इसी प्रकार महर्षि मार्कण्डेय ने अङ्गिरा और अत्रिगोत्र के प्रवरों की गणना करते हुए उनके परस्पर विवाह का निषेध किया। जब विश्वामित्र ने तपश्चरण से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, तब उनको भी गोत्र प्रवर्तक ऋषि के रूप में मान्यता मिली। इसी प्रकार उन्होंने अगस्त्य, पराशर, मरीचि और कश्यप-गण और गोत्र-प्रवरों को विस्तार से प्रतिपादित किया। महर्षि कश्यप की दो पत्नियाँ थीं जिनके नाम दिति और अदिति थे। अदिति के धाता आदि बारह देवपुत्र आदित्य कहलाये। इन्द्र और विष्णु नर-नारायणी वन गए। दिति के दो पुत्र थे-हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। हिरण्याक्ष का वध नारायण ने और हिरण्यकशिपु का वध नरसिंह भगवान् ने किया। वामन अवतार में विष्णु ने भक्त प्रह्लाद के पौत्र बलिराज को वचनबद्ध किया।

कृष्ण ने युद्ध में बाणासुर को कार्तिकेय और रुद्र के साथ पराजित किया। मय, तारक आदि दैत्यों से पराजित देवता बृहस्पति के पास आये। उन्होंने अग्निदेव की स्तुति की। बृहस्पति ने वायु की स्तुति की।। अग्नि और वायु से पराजित दैत्य पाताल लोक चले गये। विष्णु ने कालनेमि का वध किया।

दनु से दानव और कद्रू से नाग उत्पन्न हुए। उसी प्रकार अप्सराओं का भी प्रादुर्भाव हुआ। इन अप्सराओं में जन्मी उर्वशी और राजा पुरुरवा की प्रणयकथा का सुन्दर चित्रण कवि कुलगुरु - कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में है। उर्वशी के विरह से संतप्त पुरूरवा के तपस्या करने पर गन्धर्वों ने उन्हें अग्निस्थाली दी। उर्वशी के साथ समागम से

उसे विश्ववान् नामक बालक की प्राप्ति हुई। विश्वावसु को लेकर आते समय अग्निस्थाली का गन्धर्वों ने मार्ग में अपहरण किया। उस समय अग्नि ने शमी के गर्भ में प्रवेश किया, पुरूरवा ने अरणीमन्थन से त्रेताग्नि प्राप्त की, जिसमें आहवनीय अग्नि वासुदेव, दक्षिण अग्नि सङ्कर्षण, और गार्हपत्य अग्नि प्रद्युम्न हैं। इस प्रकार त्रताग्नि प्रभु विष्णु का ही अंशावतार है। पुरुरवा ने सैकड़ों अश्वमेध, हजारों बाजपेय, अग्निष्टोम, अतिरात्र, आदि यज्ञसम्पादन पूर्वक सप्तद्वीपा वसुन्धरा पर एकच्छत्र साम्राज्य किया। पश्चात् उन्होंने नर-नारायण आश्रम में तीन वर्षों तक तपस्या की और फलतः उर्वशी से मिलने से शरीर स्वर्ग सिधार गये। उस समय सूर्य और चन्द्र प्रत्येक अमावस्या तिथि में पुरूरवा से मिलने आते थे। उर्वशी के साथ पौत्र का दर्शन कर चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न होते और अमृतवर्षा करते। अतः प्रति अमावस्या को श्राद्ध करना चाहिए। क्योंकि देवकार्य से भी पितृकार्य श्रेष्ठ होता है।

इसी प्रसङ्ग में महर्षि मार्कण्डेय ने महाराज वज्र को सप्त पितृगणों से परिचित कराया। इनमें सुभासुर, बर्हिषद और अग्निष्वात्त ये तीनों पितृगण मूर्तिमान् (साकार) तथा क्रव्याद, उपहूत, आज्यप, और सुकाली ये चार अमूर्तिक (निराकार) हैं। इनमें प्रथम तीन क्रमशः ब्रह्मलोक, चन्द्रलोक और विभ्राज लोक में वास करते हैं, और अन्तिम चार पितृगण विश्वेदेवों के साथ श्राद्धभोजी होते हैं। हिरण्याक्ष के वध के उपरान्त नरवाराह ने धरणी को प्रतिष्ठित किया। वराहपर्वत पर मिट्टी का पिण्ड बनाया और दाहिने हाथ में लिया, पसीने से तिलों का और रोमों से दर्भों का निर्माण किया। और उनके साथ गन्धपुष्पादि से पिण्डपूजा की। उनमें पितृपिण्ड प्रद्युम्नस्वरूप, पितामहपिण्ड सङ्कर्षणस्वरूप और प्रपितामहपिण्ड वासुदेवस्वरूप होता है। इस प्रकार पिण्डपूजा का प्रवर्तन हुआ। इसी प्रसङ्ग में महर्षि ने श्राद्धविधि को विस्तार से समझाया।

आगे समझाते हुए कहते हैं-कि अज्ञानजन्य कर्मों से संसार मिलता है और ज्ञानपूर्वक किये गये कर्मों से मुक्ति। वृष धर्मस्वरूप होता है। अतः प्रायश्चितस्वरूप गोदान और वृषोत्सर्ग करना चाहिए। इसका विस्तार से वर्णन महर्षि मार्कण्डेय ने किया। साथ ही महाराज वज्र की जिज्ञासा करने पर उन्होंने पुरुरवा के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया। इसी प्रसंग में रूप सत्र, द्वादशीव्रत, विष्णु मन्दिरों में मार्जनादिसेवा, विभिन्न नदियों में विभिन्न पर्वों पर स्नान का फल, कार्तिक और मार्गशीर्ष मास के नक्षत्रपूजाविधि समझायी। ब्रह्मदेव के मानसपुत्र स्वयंभूमनु के स्वायम्भुव मन्वन्तर और स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, रौच्यसावर्णि और भौत्यसावर्णि मन्वन्तरों का तथा प्रतियुग में विष्णु के विभिन्न अवतारों का वर्णन तथा हाहा-हूहू गन्धर्वों की कथा सुनाई।

इसी खण्ड में रामभ्राता भरत के पराक्रम का विस्तार से वर्णन है, जिन्होंने दुष्ट गन्धर्वों पर युद्ध में विजय प्राप्त की। शंकरगीता के अन्तर्गत शंकरकृत विष्णु स्तुति, गणेश-

स्तुति, कार्तिकेयस्तुति, विष्णुपञ्जरस्तोत्र, नारायणकवच, और षड्ऋतुवर्णन प्रथम खण्ड में विशेष रूप से अवलोकनीय है। अनेक आख्यानों में मधुकैटभवधोपाख्यान, धुंधुमार उपाख्यान, सगरोपाख्यान, रेणुकोपाख्यान, गङ्गावतरण, जह्नूपाख्यान, त्रिविक्रमोपाख्यान, कार्तवीर्यार्जुनोपाख्यान, वृत्रवधोपाख्यान, दत्तात्रेयोपाख्यान, त्रिपुरदाह, परशुरामोपाख्यान, आदि उल्लेखनीय हैं। प्रथम खण्ड का २२३वाँ अध्याय खण्डित है और २२४वाँ अनुपलब्ध है।

द्वितीय खण्ड

इस खण्ड का प्रारम्भ महाराज वज्र की अवशिष्ट कथाभाग की श्रवण जिज्ञासा से होता है। उसके समाधान में महर्षि मार्कण्डेय उस राजधर्म का उपक्रम करते हैं जिसका उपदेश भार्गव परशुराम को वरुणलोक में वरुणपुत्र पुष्कर ने दिया था।

राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य यह होता है कि वह सर्वप्रथम अपने राष्ट्र में राजा का राज्याभिषेक करे अन्यथा राष्ट्र में अराजकता फैलती है। वर्णाश्रम, धर्मव्यवस्था अस्तव्यस्त होती है। विवाहसंस्था टूट जाती है, आर्थिक व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। मात्स्य न्याय फैल जाता है। अध्ययन-अध्यापन गड़गड़ा जाता है, छात्र उच्छृंखल हो जाते हैं। यजन-याजन बन्द पड़ता है, फलतः अनावृष्टि होती है। इहलोक और परलोक दोनों संशयग्रस्त होते हैं, अतः प्रजा का रक्षण करने के लिए राजा की आवश्यकता होती है, जो विष्णु का ही तेजपुञ्ज-स्वरूप है। इसी प्रसंग में राजा, सांवत्सरिक पुरोहित, मंत्री, पट्टमहिषी, श्रेष्ठपुरुष, श्रेष्ठस्त्री, हाथी, अश्व, चामर, छत्र, भद्रासन, धनुष, बाण, अग्नि से खड्ग की उत्पत्ति, राज्याभिषेककाल, पुरन्दरशान्ति, राज्याभिषेकविधि, उसके मन्त्र, सेनापति, प्रतीहारी, दूत, रक्षक, सान्धिविग्रहिक, लेखक, कोशधारी, सारथी, सूदाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष आदि का वर्णन किया गया है। दुर्गसम्पति राक्षस और विष से रक्षा के उपाय, विषपरीक्षा, गृहनिर्माणोपयोगी वास्तुविद्या, और वनोपयोगी वृक्षायुर्वेद भी इस दृष्टि से इस खण्ड के महत्व को बढ़ाता है।

राजा को सदा गो-ब्राह्मण प्रतिपालक होना चाहिए, और इस खण्ड में गो-ग्रास गो-सेवा और गोचिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है। राजा की सेना में अश्व और गज का स्थान होता है। अतः अश्व चिकित्सा, अश्व शान्ति, गजचिकित्सा, गजशान्ति, जैसे उपाय इसमें समाविष्ट हैं। उनकी रक्षा के लिये गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष का भी विचार किया गया है; साथ ही आयुधाध्यक्ष प्रकरण भी इसमें प्रविष्ट है। साम, दान, भेद, और दण्ड भी राजधर्म में विचारणीय है। त्रिवर्ग-पादप का मूल धर्म, शाखा अर्थ और काम फल होता है। अतः अन्तःपुर का रक्षण करना भी राजधर्म है, फलतः स्त्रीचिकित्सा, प्रसूतिशास्त्र आदि विषय भी इसमें प्रतिपादित हैं।

वर्णाश्रम, धर्मरक्षा राजा का कर्तव्य होता है अतः ब्राह्मण का माहात्म्य और पतिव्रता स्त्री का प्रशंसा के साथ यहाँ सावित्री उपाख्यान चित्रित है। साथ ही गर्भाधान, जातकर्म,

नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन आदि संस्कार और विविध आरोग्यव्रत भी चित्रित हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थधर्म के उपयुक्त विवाहभेद, तीर्थादिस्नान, माल्यादिधारण, देवपूजा, और वैश्वदेव, प्रेतकर्म, वर्णसंकर धर्म, आपदूध, और विशेष धर्म भी इस खण्ड में प्रतिपादित हैं।

इस खण्ड में राज्यमण्डल के सन्दर्भ में शत्रुराष्ट्र उनकी दण्डव्यवस्था, युद्ध का विचार, षाड्गुण्य, राजाकी दिनचर्या, राजोचित अन्य धर्मकृत्य, राजा का चातुर्मास्य, इन्द्रध्वजमहोत्सव, आश्विन की नवरात्रि में भद्रकालीपूजन, शस्त्रपूजन, गजः नीराजनविधि, संवत्सराभिषेक, यात्रा में शकुन-अपशकुन, और उसका शुभाशुभफल, तत्सम्बन्धी ज्योतिषशास्त्रविचार, युद्धप्रसंग में चतुरङ्गिणी सेना का संचालन और धनुर्वेद का विचार भी किया गया है।

'तृतीय खण्ड'

मनुष्य को किस कर्म से सुख प्राप्त होता है इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि मार्कण्डेय ने अन्तर्वेदी और बहिर्वेदी देवपूजा का विधान इस खण्ड में निरूपित किया है। अन्तर्वेदी देवपूजन का अर्थ है- यज्ञ-यागादि का अनुष्ठान; और बहिर्वेदी देवपूजा का अर्थ है उपवास, व्रत आदि का संपादन। कलियुग में देवालयों के निर्माण का विशेष महत्त्व है। चित्रसूत्रविधान से वहाँ देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा कर यथाविधि पूजन से चतुर्वर्गफलप्राप्ति होती है। चित्रसूत्र का ज्ञान बिना नृत्यशास्त्र ज्ञान के सम्भव नहीं होता, और नृत्यशास्त्र का ज्ञान वाद्यसंगीत कला को अवगत किये बिना संभव नहीं है। वाद्यसंगीत का ज्ञान भी बिना कण्ठसंगीत ज्ञान के नहीं होता। कण्ठसंगीत भी गीत रचना के अधीन होता है, जो त्रिविध है - संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। विविध देश और विविध भाषाओं की दृष्टि से गीतसाहित्य भी अनन्त है। पाठ के द्वारा गीत का ज्ञान होता है, जो द्विविध है-गद्य और पद्य। पद्य छन्दःशास्त्रसापेक्ष है, जो विविध और गेय होते हैं। इस प्रकार एक शास्त्र दूसरे शास्त्र पर आश्रित होता है।

इसी का निरूपण करते हुए इस खण्ड में गायत्री आदि छन्द, विविध मन्त्र, सूत्रलक्षण प्राकृत भाषा, अभिधानकोष, अलंकाराध्याय, प्रहेलिका, द्वादशरूपक, गीतलक्षण, नायक-नायिका भेद, शृङ्गारादि रस, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, चतुर्विध वाद्य, तालवाद्य, गायक और वादक, नाट्य नृत्य, लास्य मण्डपादि किया गया है।

चित्रसूत्रप्रकरण में मूर्ति का अवयवप्रमाण, विविध वर्ग, भूमिसंस्कार, सुवर्ण-रजत आदि रंग द्रव्य, उनमें रसदृष्टि, विष्णु-महादेव, अश्विनीकुमार, इन्द्राणी-इन्द्र आदि प्रतिमा-चित्र आदि की निर्माणविधि विशेष रूप से चित्रित है। सत्ययुग में देवताओं की प्रत्यक्ष पूजा होती थी। त्रेतायुग में प्रत्यक्ष पूजा के साथ ही प्रतिमा पूजन घर में प्रारम्भ हुआ। वह पूजन द्वापर युग में अरथों में होती थी। कलियुग में नगरों में होने लगी। (अ. ७३)।

इस खण्ड में देवालयों में देवता प्रतिष्ठा विधि और उसके पूजनविधि की विस्तार से चर्चा है। पूजाकाल के प्रसंग से मासपूजा और नक्षत्रपूजा का भी विधान दिया गया है। तृतीय खण्ड के २२७ से ३४२वें अध्याय तक हंसगीता है।

इस खण्ड के अन्तिम अध्यायों में कश्यपकृत विष्णुस्तव (३४४) वसुकृत गरुड़स्तोत्र (३४६) वासुदेवस्तोत्र (३४७), नारदकृत स्तोत्र (३५०) और विश्वरूपदर्शन (३५१) और अन्तिम अध्याय में श्रीनृसिंहस्तोत्र है। प्रति अध्याय का पुष्पिका इस प्रकार है-"इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयभागे श्री विष्णुधर्मोत्तरे-खण्डे मार्कण्डेयवज्रसंवादे xxx नाम अध्यायः।

इससे यह प्रतीत होता है कि विष्णुधर्मोत्तरपुराण उपपुराण न होकर श्रीविष्णुमहापुराण का द्वितीय भाग है। प्रत्येक पुराण और उपपुराण विषय विस्तार की दृष्टि से विश्वकोष होता है; अतः विष्णुधर्मोत्तर पुराण भी इसका अपवाद नहीं है।

सौरपुराण

पुराणों के परिशिष्ट के रूप में उपपुराणों की रचना की गयी है। (द्र. ६.५) उपपुराणों मे सौरपुराण का विशेष महत्त्व है। अपने को ब्रहमाण्डपुराण का परिशिष्ट कहता है-

इदं ब्रह्मपुराणस्य खिलं सौरमनुत्तमम्।
संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयम्।। ६.१३।।

सौर-उपपुराण में शिवकथा विस्तार से वर्णित है। इसके प्रथमवक्ता सूर्य हैं। (द्र.-१.६), इसलिये इसका नाम वक्ता के आधार पर सौर-उपपुराण रखा गया है। किन्तु सौर-उपपुराण के (६.१४-१५) के अनुसार इसके प्रथम वक्ता सनत्कुमार हैं तथा द्वितीय सूर्य, जिन्होंने वैवस्वत मनु के लिये कहा था। फिर भी प्रथम अध्याय के श्लोक ६ के अनुसार शौनक आदि ऋषियों ने सूत को सूर्योक्त उपपुराण (शिवकथा से संबंधित) कहने की ही प्रार्थना की है। अतः सूर्योक्त होने के कारण इसकी सौर नाम संगत ही है।

सौर-उपपुराण के अध्याय एवं श्लोकों की संख्या

पुराणगत-श्लोक-परिमाण की सूचियों के अनुसार इसकी श्लोक-संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है, तथा आधुनिक प्रचलित सौर-उपपुराण में भी श्लोकों की कोई प्राथमिकता नहीं है। किन्तु आनन्दाश्रम मुद्रणालय द्वारा सन् १९६६ में प्रकाशित सौर-उपपुराण के संस्करण के अनुसार इसमें ६९ अध्याय हैं तथा श्लोकों की संख्या- ३८९६ हैं।

प्रामाणिकता एवं महत्त्व

उपपुराणों को पुराणों के परिशिष्ट होने से इनकी भी प्रमाणिकता एवं महत्त्व है। माधवाचार्य विरचित "कालमाधव" नामक धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थ के तिथिनिर्णयप्रकरण में सौर-उपपुराण के अनेक श्लोक उद्घृत मिलतें है। (द्र. कालमाधव तिथिनिर्णयप्रकरण) चतुर्वर्गचिन्तामणि के परिशेषखण्ड के काल निर्णयप्रकरण में (अध्याय-३,४,११) तथा अन्य अध्यायों में भी इसके उद्धरण मिलते हैं।

सौर-पुराण-रचना के काल के सम्बन्ध में प्राप्त उद्धरण (द्र. काल माधव पृ. २४०) तथा चतुर्वर्गचिन्तामणि के प्राप्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि इसकी रचना बारहवीं शताब्दी से पूर्व हो चुकी थी और यह सभी के प्रकाश में आ चुका था, क्योंकि माधवाचार्य (कालमाधव के प्रणेता) सायणाचार्य के अग्रज थे (द्र. ऋग्वेद-सायणभाष्य का मंगलाचरण) सायण का समय १४वीं १५वीं के आसपास माना जाता है। हेमाद्रिविरचित चतुर्वर्ग चिन्तामणि में भी इसके उद्धरण मिलते हैं, हेमाद्रि का समय ११ वीं १२ वीं के लगभग है।

सौर उपपुराण में वर्णित विषयों का संक्षिप्तसार

इस उपपुराण के प्रत्येक अध्याय में जिन मुख्य विषयों को प्रतिपादन किया गया है उसका एक संक्षिप्तसार यहाँ दिया जा रहा है। नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों की सभा में सूत का अकस्मात् आगमन होता है। शिव की कथा से सम्बन्धित सौर-उपपुराण सुनने हेतु ऋषियों की प्रार्थना से सूत, मनु के लिये सूर्योक्त सौर उपपुराण की कथा सुनाते हैं।

(अ. १-३) अ.१ में नैमिषारण्य की प्रशंसा, सूत का आगमन, शौनक आदि ऋषियों द्वारा सूत की प्रशंसा, सौर उपपुराण की प्रशंसा, मनु की स्तुति से प्रसन्न सूर्य का आगमन और आदित्य-मनु संवाद का वर्णन है। अ.-२ में सूर्य का मनु से शिव की महिमा कहना, महादेव के द्वारा ब्रह्मा आदि की सृष्टि का वर्णन, वेदों द्वारा शिव की महिमा का वर्णन, शिव द्वारा वेदों को लोकपूजित होने का आशीर्वाद प्राप्त होना आदि का वर्णन किया गया है। अ.३ में सूर्य द्वारा शिव के ऐश्वर्य का वर्णन, महादेव के नाम स्मरण करने का माहात्म्य, राजा तृणबिन्दु और सुद्युम्न की कथा, सुद्युम्न के पास महर्षि-तृणबिन्दु का आगमन, सुद्युम्न का तृण बिन्दु से अपने पूर्व-जन्म की कथा कहना आदि का वर्णन किया गया है।

(अ-४-८) अ. ४ में जालेश्वरमाहात्म्य, वाराणसी की महिमा, गंगा की महिमा तथा मणिकर्णिका आदि प्रसिद्ध तीर्थों के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ कलियुग का वर्णन किया गया है। अ. ५ में काशीस्थ विश्वेश्वरलिंग की महिमा, व्यास द्वारा शिव की स्तुति करना और शिव का प्रसन्न होकर व्यास के लिये आशीर्वाद प्रदान करना आदि वर्णित है। अ. ६ में ज्ञानवापी में स्नान करने का फल वर्णित है, जो वाराणसी में अविमुक्तेश्वर महादेव के आग्नेयकोण में स्थित है। इसी अध्याय में लांगलीश का वर्णन, शूलपाणि महादेव की महिमा का वर्णन, तारकेश्वरमाहात्म्य, शुक्रेश्वरमाहात्म्य, ओंकारेश्वरमाहात्म्य, कृत्तिवासेश्वरलिंग महिमा का वर्णन, हंसतीर्थ वर्णन, रत्नेश्वरमाहात्म्य, वृद्धकालेश्वरमाहात्म्य, मध्यमेश्वरमाहात्म्य, घण्टाकर्ण नामक ह्रद का वर्णन, कपर्दीश्वरवर्णन तथा पिशाचमोचनतीर्थ का वर्णन किया गया है। अ. ७ में दक्षेश्वर माहात्म्य, दक्षप्रजापति की कथा, दक्ष द्वारा किये गये यज्ञ का वर्णन, शिव को छोड़कर सभी देवताओं का उनके यज्ञ में उपस्थित होना यज्ञ में शिव को नहीं बुलाये जाने के सम्बन्ध में ब्रह्मा का दक्ष से वार्तालाप, ब्रह्मा द्वारा शिव की महिमा का वर्णन, दधीचि और दक्ष का संवाद, शिव के दक्ष के यज्ञवृत्तान्त की सूचना, दक्ष के यज्ञ को देखकर शिव और पार्वती का क्रोध, वीरभद्र की उत्पत्ति एवं वीरभद्र द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस, वाराणसी में दक्षप्रजापति द्वारा दक्षेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा आदि का वर्णन किया गया है। अ. ८ में त्रिलोचन माहात्म्य वर्णन, कामेश्वर-माहात्म्य वर्णन, प्रसन्नशिव द्वारा दुर्वासा को वर-प्रदान करना, व्यास द्वारा विशालादेवी की स्तुति देवी का प्रकट होकर दर्शन देना एवं देवी की महिमा का वर्णन, वाराणसी-महिमा एवं उसके पाठ करने के महत्त्व का विस्तृत वर्णन किया गया है।

(अ. ९-१०) अ. ९ में पुराण का लक्षण बतलाया गया है। क्रम के अनुसार अठारहों पुराणों, उनके परिशिष्ट रूप में लिखे गये उपपुराणों का वर्णन किया गया है। पुराणग्रन्थों के दान करने के फल का भी वर्णन है।

अ. १० में दान की महिमा तथा दान देने योग्य ब्राह्मणों का लक्षण बतलाया गया है। नित्यदान, नैमित्तिकदान, काम्यदान तथा विमलदान दान के इन चारों भेदों का वर्णन है। इसी प्रकार अधिक दान, भूमिदान, विद्यादान, अन्नदान, जलदान, गोदान आदि करने का महत्व एवं फल बतलाया गया है। संक्रान्ति आदि पर्वों के शुभ-अवसर पर दान देने की विधि, दानग्रहीता की योग्यता-काल एवं इन दोनों के देने के फल का विवेचन किया गया है। यहाँ यह भी बतलाया गया है कि किस वस्तु को किस तिथि में दान करने से कौन सा रोग नष्ट होता है।

(अ. ११-१३) अ. ११ में शिव और स्कन्द के संवाद में शिव ने अपने भक्तों तथा भक्ति की महिमा बतलायी है। स्कन्द के प्रश्न करने पर शिव ने स्वयं अपने ऐश्वर्य का परिचय दिया है।

अ. १२ में विस्तार के साथ योगसाधन का निरूपण किया गया है। इसके अन्तर्गत यम, नियम, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप, स्वाध्याय, सन्तोष एवं शौच का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसी अध्याय में ईश्वर-पूजा-विधि एवं उसके फल, सताईस आसनों की विधि एवं उनका उपयोग, प्राणायाम एवं उसके भेद तथा अन्त में समाधि का विस्तृत वर्णन है।

अ. १३ में उपसर्ग (योग साधना की अवस्था में आने वाले विघ्न) का वर्णन है। योगी के लिये होने वाले सात्विक, राजस और तामस आदि विघ्नों को भी कथन किया गया है। इसके साथ ही साधना में बाधक अन्तरायों के नाश-हेतु नाना-प्रकार के उपाय और ईश्वर के ध्यान आदि का विस्तृत विवेचन है।

(अ. १४-१६) अ. १४ में कृष्णाष्टमीव्रत करने की विधि तथा उसके अधिकारी एवं फल का वर्णन है। पन्द्रहवें अध्याय में श्रावण-द्वादशीव्रत की विधियों का वर्णन है एवं सोलहवें में अनंगत्रयोदशीव्रत का विधान बतलाया गया है।

(अ. १७-२०) अ. १७ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आदि वर्णभेद का वर्णन, इन वर्णों के आचारभेद एवं उनके आचरण की विधि, ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास-चारों वर्णाश्रमों की विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में अनधीत,अर्थात् सांगवेद नहीं पढ़ने वाले ब्राह्मण के दोष का विचार किया गया है। साधु के स्वभाव का वर्णन, पुण्यदेशविचार एवं निषिद्ध-देशविचार भी विवेचिंत है।

अ. १८ में द्विजधर्म तथा महायज्ञों का वर्णन, उन्नीसवें में श्राद्ध करने की विधि तथा बीसवें अध्याय मे वानप्रस्थधर्म और संन्यास धर्म का विस्तृत उल्लेख है।

(अ. २१-२२) अ. २१ में प्राकृतसर्ग का कथन तथा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का उल्लेख है। बाइसवें अध्याय में वाराहावतार, वाराहकल्प एवं ब्रह्म सृष्टि का वर्णन है।

(अ. २३-२५) अ. २३ में सनातन, सनक, सनन्दन एवं सनत्कुमार आदि की सृष्टि का वर्णन शिव की उत्पत्ति एवं उनकी आठ मूर्तियों का वर्णन, ब्रह्माकृत शिव-स्तुति तथा स्तुति से प्रसन्न शिव का ब्रह्मा पर प्रसन्न होकर वर देने का विवेचन है।

चौबीसवें अध्याय में विष्णु और ब्रह्मा का संवाद, विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, शिव से विष्णु को वरप्राप्ति तथा शिव की महिमा का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में शिव द्वारा अपने को ब्रह्मा के पुत्र-रूप में आने का आशीर्वाद तथा शिव और विष्णु के अभेद आदि का शिव और विष्णु के संवादरूप में विवेचन प्रस्तुत है।

पचीसवें अध्याय में शिवमहिमा वर्णन के अन्तर्गत ब्रह्माकृत गौरीस्तुति का वर्णन तथा सृष्टि-हेतु पृथक् रूप से गौरी को दक्षप्रजापति की सन्तति होने के संकल्प का वर्णन है।

(अ. २६-३२) छब्बीसवें अध्याय में मरीचि आदि ऋषियों की उत्पत्ति दक्षकन्या का सन्ततिविस्तार आदि का वर्णन है।

सत्ताइसवें अध्याय में उत्तानपाद की सन्तति का वर्णन, सुशील की तपस्या और उनकी तपस्या से प्रसन्न शिव-द्वारा पाशुपतास्त्र प्रदान करने का वर्णन किया गया है।

अट्ठाइसवें अध्याय में सुरों और असुरों की उत्पत्ति, नृसिंहावतार तथा नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु के वध का वर्णन है। उन्तीसवें में हिरण्याक्षवध, ब्रह्मा-द्वारा प्रहलाद को शाप, अन्धकासुर का वध, अन्धकासुर कृत शिवस्तुति तथा शिव के प्रसाद से अन्धकासुर का गाणपत्य की प्राप्ति आदि का वर्णन किया गया है।

तीसवें अध्याय में अन्धक की मृत्यु के बाद प्रह्लाद का राज्यारोहण, कुछ समय बाद राज्यपद पर पुत्र विरोचन को अभिषिक्त कर प्रह्लाद की विरक्ति, तपोवनगमन, प्रह्लाद वंशविस्तार, पुलस्त्यवंशविस्तार, अत्रि की सन्तति-विस्तार, कश्यपवंशविस्तार, इक्ष्वाकुवंश, रघुवंश तथा रामचरित एवं कुशलव आदि राम की सन्तानों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

इकतीसवें अध्याय में पुरूवंश और यदुवंश विस्तार, विश्रुत का चरित्रवर्णन, नारद-विश्रुतसंवाद, वसुदेववंशवर्णन तथा शिव से जनार्दन को वर प्राप्त करना आदि का वर्णन है।

बत्तीसवें अध्याय में शिवि नामक राजा के चरित्र का वर्णन किया गया है, जिसमें प्रसंगतः गुरुबृहस्पति-इन्द्र संवाद तथा चण्ड नामक गण का भी वर्णन किया गया है।

(३३) तैतीसवें अध्याय में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन है।

(अ. ३४-३५) चौतीसवें अध्याय में त्रिपुरासुर का वर्णन है। इसमें त्रिपुरासुर के आतंक से देवताओं का विष्णु के पास जाना, विष्णु-द्वारा त्रिपुरदाह के लिये भूतों को नियुक्त करना तथा असुरों-द्वारा उनका पराजित होना, भयविह्वल इन्द्र आदि देवों का पुनः विष्णु के पास जाना, विष्णु-द्वारा माया को भेजना, दानवों को संमोहन तथा अपने धर्म का त्याग, त्रिपुर के वध के लिये विष्णु द्वारा शिव की स्तुति करना, शिव और विष्णु का संवाद आदि वर्णित है।

पैंतीसवें अध्याय में त्रिपुर के वध-हेतु शिव के प्रस्थान करने का वर्णन, शिव के रथ एवं अस्त्रों का वर्णन है। त्रिपुरवध के लिये देवताओं का प्रस्थान, त्रिपुर को जलाने हेतु ब्रह्मा का शिव के प्रति शुभ मुहूर्त (पुण्य नक्षत्र) का निर्देश करना तथा अन्त में त्रिपुरदहन का रोचक वर्णन है।

(अ. ३६-३८) सवें अध्याय में उपमन्यु की कथा वर्णित है। सैंतीसवें में जालन्धर नामक दैत्य के वध की कथा है। अड़तीसवें अध्याय में शिव की महिमा, प्रतर्दन की कथा, क्षपणक प्रदर्दन-संवाद, राजा प्रतर्दन के राज्यकाल में वर्णाश्रम-व्यवस्था, बृहस्पति और इन्द्र का संवाद, प्रतर्दन की प्रजा को सन्मार्ग से विचलित करने के लिये बृहस्पति द्वारा देवताओं को उपाय बतलाना, किन्नरों के प्रति इन्द्र का आदेश देना, शिव और विष्णु को उद्देश्य कर प्रतर्दन और वैष्णवाभास के संवाद आदि का वर्णन है।

(अ. ३९-४२) उनतालीसवें अध्याय में कलि का प्रवेश, कलि के प्रवेश पर प्रतर्दन की प्रजा की अवस्था का वर्णन, शिव के सम्बन्ध में लक्ष्मी-नारायण का संवाद, लक्ष्मी और नारायण का कैलासप्रस्थान, प्रतर्दन के चरित्र के संबंध में शिव और ब्रह्मा आदि देवों का संवाद तथा ब्रह्मा द्वारा भविष्य के सम्बन्ध में कथन का वर्णन है।

चालीसवें अध्याय में शौनक आदि ऋषियों द्वारा सूत के प्रति महेश और विष्णु की समानता के सम्बन्ध में प्रश्नकरना, शिव और विष्णु के सम्बन्ध में सूत और शौनक आदि ऋषियों का वार्तालाप, रति और वसन्त आदि का संवाद, काम की मृत्यु के सम्बन्ध में ब्रह्मा और मोह का संवाद, कलि और मोह का संवाद, सूत द्वारा भविष्यवाणी, मध्याचार्य का बृहस्पति द्वारा वसन्त को अपने ज्ञान के सिद्धान्त-पक्ष को भूल जाने का शाप देना, कलि की महिमा, कलि के मित्र मोह आदि के द्वारा रति को आश्वासन देना आदि का विवेचन है।

इकतालीसवें अध्याय में विष्णु के सुदर्शन चक्र के संबंध में सूत-शौनक संवाद, विष्णु द्वारा ललिताख्य-शिवलिंग की स्थापना का वर्णन है। विष्णु द्वारा उक्त शिवसहस्रनामस्त्रोत्र, दैत्यों के विनाश हेतु शिव से विष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति, शिव-द्वारा विष्णु को अपने में स्थिर भक्ति के लिये आशीर्वाद देना, विष्णु-कथित शिवसहस्रनामस्तोत्र की महिमा आदि का वर्णन है।

बयालीसवें अध्याय में शिवपूजन की विधि का उल्लेख किया गया है।

(अ. ४३-४६) तैतालीसवें अध्याय में उमामाहेश्वराख्यव्रतविधान, दूर्वागणपातिव्रत-विधान, शिवालय बनाने का फल, शिवालय में किये गये कर्म का फल, शिवालय में सम्मार्जन का फल, स्नानफल, वर्षमण्डलपूजन की विधि, अहिंसा का फल एवं रुद्रपूजन की महिमा आदि का विस्तार से विवेचन है।

पैंतालीसवे अध्याय में भगवान-शिव के दर्शन के हेतु ब्रह्मा आदि देवों को मन्दराचल पर प्रस्थान, महेश्वर-सुर-संवाद, देवताओं द्वारा शिव की स्तुति, पाशुपतव्रतविधान, पाशुपतव्रत का माहात्म्य एवं भस्म-धारण करने की विधि एवं उसके माहात्म्य का वर्णन किया है।

छियालीसवें अध्याय में शिवमाहात्म्य का वर्णन किया गया है।

(अ. ४७-५०) सैतालीसवें अध्याय में अरुन्धती और सावित्री का संवाद है। शिवमूर्ति के स्नान कराने का फल, शिवपूजन का माहात्म्य, वैश्रवण-द्वारा शौनक आदि ऋषियों को सूत से प्रश्न, सूत द्वारा वैश्रवण के पूर्वजन्म से कुबेरत्व-प्राप्ति तक की सम्पूर्ण कथा को सुनना, कुबेरकृत-शिवस्तोत्र, कुबेर का शिव से तीन वरों को प्राप्त करना, शिव के पूजन का माहात्म्य तथा कुबेरकृत शिवस्तोत्र के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

अड़तालीसवें अध्याय में शिवमाहात्म्य, शिवधर्ममाहात्म्य, शिवार्चन करने का फल, नरवर्मन और राजमहिषी सुदेवी का उपाख्यान, शिव के दर्शनादि करने का माहात्म्य वर्णित है।

उनचासवें अध्याय में धर्म की संस्थापना करने के लिये पार्वती का अवतार, रक्तासुर के पराक्रम का वर्णन, रक्तासुर के मन्त्रियों के नाम, रक्तासुर का अपने को असुरों से ईश्वर कहलवाना, लोकधर्म की हानि, देवताओं को दैत्यों से हारना, इन्द्रादि-देवों का बृहस्पति के पास जाना, देवों को अपनी दुर्दशा कहना, इन्द्रादि देवों के प्रति बृहस्पति का शान्ति-उपदेश, बृहस्पति की बात सुनकर इन्द्र का पुनः अपनी विपत्ति कहना, देवों की विपत्ति दूर करने हेतु बृहस्पति का इन्द्र को पार्वती की शरण में जाने का आदेश देना, ब्रह्मा-द्वारा पार्वती की प्राप्ति का उपाय बतलाना, देवों सहित इन्द्र का हिमालय-प्रस्थान, पार्वती की शरण में जाना, अपनी दुर्दशा का निवेदन करना, पार्वती-द्वारा रक्तासुर का वध, शत्रुवध के बाद इन्द्र के लिये देवी द्वारा ऐश्वर्य प्रदान करना, आदि का वर्णन किया गया है।

पचासवें अध्याय में शत्रुवध के बाद इन्द्र का सिंहासनारूढ़ होना, इन्द्र को देखते हेतु देवताओं का आगमन, अंगिरा आदि मुनियों का आगमन, अंगिरा से देवी की आराधना करने की विधि के सम्बन्ध में इन्द्र का प्रश्न, भवानी के पूजन का माहात्म्य, उल्कानवमीव्रत की विधि एवं माहात्म्य तथा गिरिजापूजन के माहात्म्य-आदि का वर्णन है।

(अ. ५१-५२) इक्यावनवें अध्याय में तिथि-निर्णय, संक्रान्ति आदि पुण्यकाल का निर्णय, युगादि का वर्णन तथा मन्वन्तर का वर्णन किया गया है। तथा बावनवें अध्याय में विविध ज्ञात-अज्ञात दुष्कर्मों के प्रायश्चित की विधि का उल्लेख है।

(अ. ५३-५८) तिरपनवें अध्याय में सूर्यमनु संवाद, शिवस्मरण की महिमा, तारकासुर की कथा, तारकासुर के भय से त्रस्त देवों का ब्रह्मा की शरण जाबा, ब्रह्मा द्वारा तारकासुर को वर-प्रदान करना, ब्रह्मा और देवों का संवाद, इन्द्र और काम का संवाद, तारकासुर को मारने हेतु देवताओं की योजना, शिव को मोहित करने के लिये काम का कैलास-प्रस्थान तथा मदनदहन की कथा का वर्णन है।

चौवनवें अध्याय में शिव को वररूप में प्राप्त करने के लिये पार्वती द्वारा स्तुति करना, शिव द्वारा पार्वती को विवाह हेतु वर प्रदान करना आदि का वर्णन किया गया है।

पचपनवें और छप्पनवें अध्याय में पार्वती द्वारा पिता हिमालय के पास शिव के ज्ञान की प्रशंसा करना, पार्वती और शिव के विवाह की तैयारी, विवाहमण्डप का निर्माण, विवाहमण्डप के सम्बन्ध में हिमालय और विश्वकर्मा का संवाद तथा विवाहमण्डप की शोभा आदि का वर्णन किया गया है।

सत्तावनवें अध्याय में शिव का विवाह, शिव-विवाह में काल, अग्नि आदि का आवाहन, विवाहमण्डप में काल तथा अग्नि आंदि का प्रवेश, शिव के रूप का वर्णन, देवताओं और दैत्यों का प्रवेश तथा गंगा, सिन्धु आदि नदियों के प्रवेश का विवेचन किया गया है।

अठ्ठावनवें अध्याय में कन्यादान करने के लिये हिमालय का मन्दर के पास जाना, शिव और हिमालय का संवाद, हिमालय-द्वारा शिव के लिये पार्वती को देना तथा शिव-विवाह का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

(अ. ५९-६३) उनसठवें अध्याय में मार्ग की शोभा का वर्णन, शिवपार्वती की आगवानी में आयी हुयी अप्सराओं और दिव्यस्त्रियों का वर्णन, पार्वती के लिये शिव द्वारा आभूषण प्रदान करना, शिवपार्वती के क्रीडास्थल का वर्णन, पार्वती के सम्बन्ध में शिव और हिमालय का संवाद, ब्रह्मा के शुक्र का स्खलन, बाल्लखिल्यों की उत्पत्ति, बाल्लखिल्यों के रूपादि का वर्णन, ब्रह्मा आदि देवों का शिव से वर-प्राप्त करना, शिवपार्वती के विवाह की कथा के श्रवण करने का माहात्म्य आदि का विवेचन है।

साठवें अध्याय में शिवगणों के रूप का वर्णन, शिव के क्रीडा करने से उत्पन्न उत्पात का वर्णन, उत्पात देखकर नारद और इन्द्र का संवाद, उत्पात के कारण का वर्णन, शंकर की क्रीडा के सम्बन्ध में विष्णु का देवताओं के साथ संवाद तथा इसी प्रकार विष्णु-अग्नि-संवाद का वर्णन किया गया है।

इकसठवें अध्याय में अग्नि की स्तुति, अग्नि का शिव के गृह में प्रवेश, नन्दी के रूप का वर्णन, शिव को देखने के लिये अग्नि की चिन्ता, हंस का रूप धारण कर अग्नि का महादेव की क्रीडास्थली में प्रवेश, पार्वती के वाहन का वर्णन, सिंह के हुंकार से बधिर होकर अग्नि का शिव के गृह से विनिर्गमन, अग्नि को अपने कार्य में सफल देखकर देवताओं का अग्नि के साथ संवाद, मुनियों के साथ देवताओं का मन्दराचल पर जाना, देवताओं द्वारा शिव की स्तुति, अग्नि द्वारा शिव तेज को धारण करना, स्कन्द के सम्बन्ध में पार्वती-शिव संवाद आदि का वर्णन किया गया है।

बासठवें अध्याय में देवताओं के गर्व होने का वर्णन है। गर्व देखकर शिव और देवताओं का संवाद, शिव के तेज के माहात्म्य का वर्णन, कुमार की उत्पत्ति, कुमार को देखकर शिवपार्वती संवाद, स्कन्द की बाललीला, स्कन्द के वध के लिये इन्द्र का प्रस्थान, भूतों के प्रति इन्द्र की प्रत्युक्ति आदि का वर्णन किया गया है।

तिरसठवें अध्याय में नारद और इन्द्र का युद्ध, बृहस्पति और इन्द्र का संवाद, प्रसन्न होने के लिये इन्द्र द्वारा स्कन्द की प्रार्थना, स्कन्द-इन्द्र संवाद, स्कन्द का सेनापति पद पर नियुक्त होने, तथा तारकासुर के वध की कथा का वर्णन है।

(अ. ६४-६६) चौसठवें अध्याय में शिव के भक्ति-योग का माहात्म्य, शिवभक्ति की महिमा, लिंगार्चन की महिमा, सत्यध्वज के पुत्र वसुश्रुत की कथा, वसुश्रुत के सम्बन्ध में यम तथा यम किंकरो का संवाद, शिवभक्तों का माहात्म्य आदि का वर्णन किया गया है।

पैंसठवें अध्याय में शिवपंचाक्षरमन्त्र की महिमा, बिल्ववृक्ष की महिमा, शिवार्चन का फल, अनेक प्रकार के पुष्पों द्वारा शिवपूजन करने का फल, कूप, तडाग आदि बनवाने का फल तथा शिवक्षेत्र का परिमाण आदि का वर्णन है।

छियासठवें अध्याय में शिव में प्रीति करने का, शिव का भजन करने का, शिवस्मरण करने का, शिवनिर्माल्य चढ़ाने का फल वर्णित है। शिव के निर्माल्य लंघन का दुष्परिणाम, शिवलिंग की व्याख्या, शिव की श्रेष्ठता के विषय में ब्रह्मा और विष्णु क विवाद, विष्णु और ब्रह्मा के दर्प-नाश के लिये लिंग का प्रादुर्भाव, ब्रह्मा और विष्णु को श्रेष्ठ रहने के लिये शिव की उक्ति, सर्वोत्कृष्ठ होने का विष्णु को शिव द्वारा आशीर्वाद, शिव द्वारा ब्रह्मा को ब्रहमाण्ड में आदरणीय होने का आशीर्वाद, ब्रह्मा-नारदसंवाद, समुद्रदर्शन का माहात्म्य, सप्तकोटिशिव लिंगों की महिमा आदि का वर्णन किया गया है।

सड़सठवें अध्याय में उज्जयिनी महाकाल के लिंग का माहात्म्य, ओंकारेश्वर माहात्म्य, अगस्त्येश्वर प्रादुर्भाव, शक्तिभेदाख्यलिंग की महिमा, स्थाणुलिंग की महिमा, प्रयाग माहात्म्य, गया तीर्थ माहात्म्य आदि का वर्णन किया गया है।

अडसठवें अध्याय में प्रतिपद आदि तिथियों का निर्णय, शिवसूत्र प्रदक्षिणाविधि, गुरूशब्द की व्युत्पत्ति, गुरु का त्याग करने से दोष, श्राद्धकर्ता के सम्बन्ध में निर्णय,

साग्निक और निराग्निक की व्याख्या, एक हाथ से प्रणाम करने पर पापकथन, अक्षरगणकथन, आदि का वर्णन किया गया है।

उनहत्तरवें अध्याय में राजाश्वेत की कथा, कालकालाख्याप्राप्ति, जलेश्वर आदि शिवलिंगों की महिमा, ब्रह्मा नारदसंवाद तथा ग्रन्थान्त में सौर उपपुराण के श्रवण की महिमा का विशद विवेचन किया गया है।

विशिष्टदार्शनिक मत एवं सम्प्रदाय

सौर-उपपुराण में शिव के ऐश्वर्य का विवेचन है। यों तो इसमें यत्र-तत्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी दर्शनों के सिद्धान्तों का उल्लेख है, लेकिन प्रधान रूप से इसमें शैव-सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। इसमें यह बतलाया गया है कि शिव ही विश्व है (२६. ३२-३५) इसमें शिव के विश्वात्मक रूप का निर्देश है। चराचर-ब्रह्माण्ड का कर्ता शिव को माना गया है - ''यं एकं बहुधा बीजं करोति स महेश्वरः (२४.३३) इसमें जीव को ज्ञाता के रूप में तथा परमतत्त्व को ज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है ''ज्ञाताऽहं ज्ञानरूपस्त्वं। मन्ताऽहं मतिहरिः (२४.७०) इस उपपुराण में ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'' इस वैदिक-सिद्धान्त को शब्दान्तर से प्रतिपादित किया गया है। ''एकमेव महादेवं वदन्ति बहुधा जनाः (३४.४१) शैवदर्शन में प्रतिपादित-शिवतत्त्व का उल्लेख इसमें यत्र-तत्र परिलक्षित होता है (द्र ४६.१,७)। शैवदर्शन प्रतिपादित चौबीस-तत्त्वों का इसमें उल्लेख है (द्र. ४६.१२) सद्योजात आदि शैवदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है (द्र. ४८. ४६,४३) नास्तिकदर्शन के प्रति उपेक्षाभाव हैं (द्र. ५.२५) इसमें शिव के अर्धनारीश्वर रूप की ओर संकेत है और भगवती से सम्बन्धित स्तोत्र भी हैं, जिससे शक्तिवाद का भी समर्थन होता है। मूलरूप से इस उपपुराण में शिव के प्रकाश और विमर्श रूप का बीज निहित है।

इसके अ. १७ में वर्णाश्रम का वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शूद्र के धर्मों तथा कर्मों का उल्लेख है। इसी प्रकर ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास-इन चारों आश्रमों का उल्लेख तथा इनके कार्य एवं निषिद्ध-कर्मों का वर्णन है तथा स्व वर्णानुसार कार्य नहीं करने पर प्रायश्चित्त का भी विधान बताया गया है।

सौर उपपुराण की भाषा एवं इसमें प्रयुक्त छन्द

इसकी भाषा सरल तथा सरस है। अर्थबोध में सहजता है। भाषा में प्रायः उपमा तथा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग है। यत्र-तत्र वैदिक-शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ भाषा पाणिनीय व्याकरण सम्मत ही है। (द्र. २४.१४-३३,३२) आदि। एक दो स्थलों पर अपाणिनीय प्रयोग दिखाई पड़ते हैं (यथा पतिना-४७.४)।

इसमें अधिकांशतः अनुष्टुप छन्द का प्रयोग है। कुछ स्थलों पर अन्य छन्दों के भी प्रयोग हैं। जैसे- इन्द्रव्रजा-२६ अध्याय के २८-४० श्लोंको में, द्रुतविलम्बित ३५ अध्याय के केवल २६ वें श्लोक में, भुजंङ्गप्रयात ४६ अध्याय में १२३-१२६ श्लोकों में, वसन्ततिलका - ५० अध्याय के ४२-६४ श्लोकों में हैं। इन छन्दो का इन स्थलों के अतिरिक्त भी प्रयोग है। एक स्थल पर वैदिक छन्द का भी प्रयोग है (द्र. ४५.४६,६०)

अन्य ग्रन्थों का प्रभाव-इसके ऊपर वेदों और उपनिषदों का प्रभाव है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का प्रभाव यत्र-तत्र शब्दतः है। (द्र. २४.१४,३३.३२) गणपतिमन्त्र को एक जगह ज्यों का त्यों रख दिया गया है। (द्र. ४३.४६,४५.२६,२८) मनुस्मृति के 'नारायण' शब्द की व्युत्पति शब्दतः यहाँ मिलती है (द्र. २२.१४) गीता के श्लोकों का अनुकरण भी परिलक्षित होता है (द्र. २४.५५) इसके अन्य-स्थल भी अवलोकनीय हैं। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती का एक श्लोक शब्दशः इसमें भी मिलता है (द्र. ४८.८०)। इसी प्रकार अन्यत्र भी देखा जा सकता है।

अवतार एवं स्तोत्र-यों तो इसमें मुख्य रूप से शिव का प्रतिपादन है, किन्तु एक स्थल पर दशों अवतारों का उल्लेख है-

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश।। (५.२४, २५)

इसमें अनेक लौकिक-मन्त्र भी हैं (द्र. ४३.४२-५३) अन्यत्र भी मन्त्र देखे जा सकते हैं।

सौर-उपपुराण में बारह स्तोत्र हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं-

आदित्य-स्तुति,	अध्याय-१,	श्लोक ७,	३१-३७	तक,
विशालाक्षिस्तुति	अध्याय-२,	श्लोक १२,	१५-२६	तक
शिवस्तुति	अध्याय-२,	श्लोक २६,	२०-४६	तक,
शिवस्तुति	अध्याय-२,	श्लोक १२,	२४-४०	तक,
देवकृतशिवस्तुति	अध्याय-१२,	श्लोक १३,	५३-६६	तक;
विष्णुकृतशिवसहस्रनामस्तोत्र,	अध्याय-४१,	श्लोक १३८,	१२-१४०	तक;
देवकृत-शिवस्तुति,	अध्याय-४५,	श्लोक ३८,	२१-६२	तक;
कुबेरकृत-शिवस्तुति,	अध्याय-४८,	श्लोक २०,	६३-८३	तक;

शक्रकृत-पार्वतीस्तुति,	अध्याय-४६,	श्लोक ०७,	४५-५२	तक;
विष्णुकृत अग्निस्तुति,	अध्याय-६०,	श्लोक ११,	५६-६७	तक;
देवकृत-अग्निस्तुति	अध्याय-६१,	श्लोक २४,	०१-२४	तक;
देवकृत-शिवस्तुति	अध्याय-६१,	श्लोक २६,	३३-५६	तक;

इसमें अनेक व्रतों का भी उल्लेख है। जैसे-कृष्णाष्टमीव्रत, (अध्याय-१४) श्रावणाष्टमीव्रत, (अ. १५,) अनन्तत्रयोदशीव्रत, (अ.१६) गुरुगणपतिव्रत, (अ. ४३) पाशुपतव्रत अ. ४५) आदि।

इस पुराण के कुछ सुभाषित नीचे दिये जा रहे हैं –

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्।
दानमेव न चैवान्यदिति देवोऽब्रवीद्रविः।। १०.६।।

दानानामुत्तमं दानं विद्यादानं विदुर्बुधाः।। १०.३।।

संसारविषवृक्षो यः सर्वतोऽति भयंकरः।
तव भक्तिकुठारेण च्छिद्यते नान्यथा शिवः।। ३२.४४।।

आदीप्ते भवने कूपं खनितुं नैव शक्यते।। ४८.७।।

इनके अतिरिक्त अन्य सूक्तियां भी ग्रन्थ में हैं।

भार्गवपुराण

अष्टादश महापुराणों के अनन्तर व्यास की परम्परा के अन्तर्गत उपपुराणों का प्रणयन हुआ। यद्यपि उपपुराणों की सङ्ख्या सर्वत्र अष्टादश बतलायी गयी है, परन्तु विभिन्न स्थानों पर प्राप्त उपपुराणों की सूची में नाम पृथक्-पृथक् उल्लिखित है। नामों की पृथकता से उपपुराणों की सङ्ख्या शताधिक हो जाती है। डॉ. आर.सी. हाजरा महोदय ने उपपुराणों की सूचियां एकत्र की हैं।[1] परन्तु महापुराण भिन्न सभी पुराणशब्दवाच्य ग्रन्थों को यदि उपपुराण के अन्तर्गत रखा जाय तो यह अत्यधिक उचित नहीं होगा। डॉ. हाजरा महोदय ने प्रायः ऐसी पद्धति अपनायी है। परन्तु उपपुराण, औपपुराण, तथा स्थलपुराण के आधार पर यदि ऐसे पुराणों का विभाजन कर दिया जाय तो किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति से निवृत्त हुआ जा सकता है।[2]

भार्गव पुराण, एक उपपुराण है। उपपुराणों की प्रत्येक सूची में प्रायः भार्गवपुराण का नाम रखा गया है। सर्वप्रथम यह देखना होगा कि उपपुराण के रूप में कहाँ-कहाँ भार्गव पुराण का नामोल्लेख प्राप्त होता है ? इस तथ्य को स्पर्श करने के लिए गरुड महापुराण,[3] पद्ममहापुराण,[4] स्कन्दमहापुराण,[5] ब्रह्मवैवर्तपुराण,[6] कूर्ममहापुराण,[7] बृहद् धर्मपुराण,[8] पराशरोपपुराण,[9] मुद्गल-पुराण,[10] वारुणोपपुराण[11] तथा बृहदौशनसोपपुराण[12] के उन स्थलों का अवलोकन किया जा सकता है जहां भार्गवपुराण का नाम उपपुराण की सूची में रखा गया है। इससे यह निश्चितरूपेण प्रमाणित होता है कि भार्गवपुराण एक उपपुराण है।

---

१. Studies in the Upapuranas, Volume I, P- 4-13.
२. पुराणसाहित्यादर्शः-द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय।
३. पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम्। (गरुडमहापुराण, पूर्व खण्ड २१५/२०
४. सौरं पराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम्। (पद्ममहापुराण, पातालखण्ड ११५/६७)
५. पराशरोक्तं परमं मारीचं भार्गवाह्वयम्। (स्कन्दमहापुराण प्रभास खण्ड, २/१५
पाराशर्यं च मारीचं भार्गवं मुनिपुङ्गवाः। (स्कन्दपुराणीय सौरसंहिता)
भार्गवाख्यं ततः प्रोक्तं सर्वधर्मार्थसाधकम्। (स्कन्दपुराण सूतसंहिता, शिव माहात्म्य खण्डे १!१८)
६. अष्टादशं भार्गवाख्यं सर्वधर्मप्रवर्तकम्। (ब्रह्मवैवर्तपुराण उद्धृत, वीर मित्रोदय, परिभाषाप्रकाश, पृ. १४)
७. पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्। (कूर्ममहापुराण, पूर्वार्द्ध १/२०)
८. नारसिंह भार्गवं च बृहद्धर्मं तथोत्तमम्। (बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, २५/२६)
९. पराशरसमाख्यं च मारीचं भार्गवाह्वयम्। (पराशरोपपुराण)
१०. कालिकेयं च मारीचमौशनसं च भार्गवम्। (मुद्गलपुराण, द्वितीयखण्ड, ३४/२१)
११. वसिष्ठ लैङ्गं मारीचं नान्दाख्यं भार्गवं तथा। (वारुणोपपुराण - गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैन्यूस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास का कैटेलाग (पुराण)
१२. माहेश्वरं भार्गवाख्यं वसिष्ठं च सविस्तरम् (विन्ध्यमाहात्म्य - वृहदौशनसोपपुराणा-द-स्टडीज् इन दि उपपुराणाज्, भाग-१, पृ. ११)

उपपुराणों की सङ्ख्या इतनी अधिक है कि प्रायः सभी उपपुराण प्रकाशित अवस्था में अभी प्राप्त नहीं होते हैं। एक ही उपपुराण उसी नाम से भिन्न-भिन्न विषयों का वर्णन करता है। कतिपय उपपुराण केवल पाण्डुलिपि के रूप में ग्रन्थगारों की शोभा बढ़ा रहे हैं। भार्गवपुराण भी अभी तक प्रकाशित अवस्था में विद्यमान नहीं था। भार्गवोपपुराणम् के नाम से डॉ. बृजेश कुमार शुक्ल ने एक भार्गवोपपुराण का सम्पादन विभिन्न मातृकाओं से करने के पश्चात सर्वप्रथम १९९४ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद लखनऊ से प्रकाशित किया है। तत्पश्चात् उन्होंने भार्गवोपपुराण को अध्ययन के साथ नागप्रकाशक दिल्ली से १९९७ में पुनः प्रकाशित किया है। प्रकाशित अवस्था में आज यही भार्गवपुराण सर्वजनसुलभ है। इसमें वैष्णव आचार्यों तथा आलवारों का वर्णन प्राप्त होता है। इसके सम्बन्ध में आगे विस्तृत रूप में लिखा जायगा। इस भार्गवपुराण के अतिरिक्त अन्य दो भार्गवपुराण भी संस्कृत-वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं जो अभी अप्रकाशित अवस्था में पाण्डुलिपि के रूप में अवस्थित हैं। इन दोनों भार्गवपुराणों का संक्षिप्त विवरण अपेक्षित होगा। उपर्युक्त प्रकाशित भार्गवपुराण को सम्मिलित करने से भार्गवपुराण नाम से प्राप्त ग्रन्थों की संख्या तीन हो जाती है –

१. भार्गवपुराण (परशुराम सम्बद्ध) - अप्रकाशित
२. भार्गवपुराण (शैव) - अप्रकाशित
३. भार्गवपुराण (वैष्णव) - प्रकाशित

१. भार्गवपुराण (परशुरामसम्बद्ध) – यह भार्गवपुराण अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के सरस्वती भवन पुस्तकालय के हस्तलिखित विभाग[1] में इस भार्गवपुराण की एक बृहत्कलेवर वाली पाण्डुलिपि विद्यमान है। इस पाण्डुलिपि का लेखन सुस्पष्ट अक्षरों में देवनागरी लिपि के द्वारा किया गया है। यह पाण्डुलिपि इस पुराण को ९४ अध्यायों में विभक्त करती है। यह पुराण साहित्यिक भाषा में हिरण्यनाभ तथा जैमिनि के संवाद के रूप में लिखा गया है। पुराण का आद्य मङ्गलाचरणात्मक श्लोक द्रष्टव्य है –

विश्वोत्पत्त्यादिषु गुणतया यत्कलाशा च मूर्ते-
रन्तर्व्यामोहयति सततं शक्तिलेशो यदीयः।।
शश्वच्छान्तं सकलभुवनव्यापि नारायणाख्य-
प्रत्यग् ज्योतिः स्फुरतु हृदये सच्चिदानन्दरूपम्।।[2]

---

१. हस्तलिखितग्रन्थविवरणपञ्जिका-सरस्वती भवनपुस्तकालय हस्तलिखितग्रन्थागार सङ्ख्या १५२००-भार्गवपुराणम्।
२. तदेव, पत्र संत्र १

इस पुराण का भार्गव नाम इसलिए रखा गया होगा कि इसके अन्तिम अध्यायों में भार्गववंशी परशुराम का पराक्रम तथा चरित वर्णित है। इसके अतिरिक्त सगर आदि राजाओं के वंश, व्रत तथा तीर्थ आदि का माहात्म्य भी विस्तृततया विवेचित है। इस पुराण के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में यह लिखा हुआ प्राप्त होता है- इतिश्री भार्गवपुराणे हिरण्यनाभजैमिनिसंवादेऽमुकसङ्ख्योऽध्यायः।' यह पुराण उपपुराण के अन्तर्गत रखा जाय अथवा औपपुराण के अन्तर्गत स्वीकार किया जाय इस सन्दर्भ में कोई प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। 'पुराणसाहित्यादर्शः' में यह पुराण औपपुराण के रूप में अङ्गीकार किया जा सकता है, ऐसी सम्भावना व्यक्त की गयी है।[1] पुराण के विद्वज्जन इस पुराण का सम्पादन करके यदि प्रकाशित कर दें तो यह भार्गव पुराण सर्वजन सुलभ हो सकेगा और पौराणिक वाङ्मय में एक नवीन शृङ्खला जुड़ सकेगी।

२. भार्गवपुराण (शैव)–भार्गवपुराण के नाम से यह पुराण मातृका रूप में गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल मैन्यूस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास विश्वविद्यालय, चिन्नई[2] में सुरक्षित है। अभी तक इस पुराण का प्रकाशन नहीं हुआ है। यह शैव पुराण है क्योंकि इसमें भगवान् शिव से सम्बद्ध वर्णन प्राप्त होता है। इस पुराण के मङ्गलाचरण से भी इसका शैव होना प्रमाणित होता है –

वन्दे शङ्करमम्बिकासहचरं व्याघ्राजिनालङ्कृतम्।
वाणीमापतिपूजिताङ्घ्रिकमलं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
कैलासाचलसंस्थितैर्मुनिजनैर्नित्यं सदा सेवितम्।
बालार्काऽमलवीक्षणं (सु) वदनं मृत्युञ्जयं भावये।।[3]

इस भार्गवपुराण में दश अध्याय हैं, यह पुराण स्वयं इस बात को प्रमाणित करता है–

एतदुक्तं दशाध्यायं पुराणं परमेश्वरम्।
यस्मिन् युक्तानि सर्वाणि उपाख्यानानि सत्तम।।[4]

इस पुराण की मातृका में ३२ पृष्ठ प्राप्त होते हैं। पुराण का नाम भार्गव क्यों पड़ा? इस सन्दर्भ में पुराण के प्रथम अध्याय में ही एक कथा निर्दिष्ट की गयी है। कथा यह है

१. पुराणसाहित्यादर्शः, पृ. २६१-२६२
२. डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स इन दि गवर्नमेण्ट ओरिएण्टलय लाइब्रेरी, मद्रास सं. १५६६५ - भार्गव पुराण।
३. तत्रैव द्रष्टव्य मङ्गलाचरण श्लोक।
४. भार्गवपुराण - उपर्युक्त पाण्डुलिपि - अन्तिम पत्र।

कि भगवान् विष्णु ने छल से भृगु की पत्नी को तलवार से काट दिया था। इस कृत्य से क्रोधित भृगु ने विष्णु को शाप दे दिया ऐसी कथा भृगु के मुख से निःसृत हुई है अतः यह पुराण भृगुप्रोक्त होने के कारण भार्गव नाम से अभिहित हुआ।

इस पुराण में भृगु के द्वारा दिये गये विष्णु शाप का कथन, पञ्चाक्षरमन्त्र की महिमा, भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण का माहात्म्य, रुद्राक्ष के मुखादि का वर्णन, रुद्राक्षधारण फल का कथन, शिव लिङ्गपूजा निरूपण, बाणलिङ्ग की उत्पत्ति तथा विष्णु के पञ्चावतार का निग्रह, इत्यादि कथाएं प्रमुखतया वर्णित हैं।[1] इस पुराण की कथाएं सूत तथा मुनियों के संवाद के रूप में और भृगु तथा ऋषियों के वार्तालाप के रूप में प्राप्त होती हैं। यदि यह पुराण सम्पादित करके प्रकाशित हो जाय तो अवश्य पौराणिक वाङ्मय की श्रीवृद्धि होगी।

३. भार्गव पुराण (वैष्णव) – यह भार्गव प्रकाशित अवस्था में विद्यमान है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन डॉ. बृजेशकुमार शुकल ने १९९४ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद लखनऊ से किया, तत्पश्चात् अध्ययन के साथ इसका पुनः प्रकाशन १९९७ में नागप्रकाशन, दिल्ली से हुआ है। यह अपने को उपपुराण के रूप में उल्लिखित करता है, जैसा कि इस उपपुराण की पुष्पिका से स्पष्ट होता है- "इति श्रीमद् भार्गवे उपपुराणे उत्तरखण्डे नर नारायणसंवादे महायोगिमाहात्म्ये.... ऽध्यायः।" इस उपपुराण का केवल उत्तरखण्ड ही प्राप्त होता है। इस उत्तरखण्ड में वैष्णवभक्त द्वादश आलवारों तथा श्रीनाथ, यामुनाचार्य और रामानुजाचार्य का चरित वर्णित है। उत्तर खण्ड के कथन से इसके पूर्वखण्ड की स्थिति का पता चलता है परन्तु पूर्वखण्ड कहीं प्राप्त नहीं हो रहा है। उत्तर खण्ड भी इतना ही हैं अथवा उत्तरखण्ड में भी अन्य कथाएं रही होंगी, इसका भी कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। इस पुराण में ४० अध्याय प्राप्त होते हैं।[2] 'पुराणसाहित्यादर्शः' में इस भार्गवपुराण को उपपुराण की श्रेणी में रखा गया है।[3]

भार्गवोपपुराण का लुप्त पूर्वखण्ड

भार्गवोपपुराण अपने को उत्तरखण्डात्मक प्रदर्शित करता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस उपपुराण का कोई पूर्व खण्ड अवश्य रहा होगा इस तथ्य की चर्चा पूर्व की जा

१. मच्छापपीडा च हरे रुद्राध्यायानुवर्णनम्। पञ्चाक्षरस्य महिमा कथितोऽयं समासतः।।
भस्मनो वीर्यवत्ता च त्रिपुण्ड्रस्य प्रशंसनम्। रुद्राक्षकथनं......तन्मुखानां च कीर्तनम्।।
देवदारुवनस्थानामृषीणामपि निग्रहः। बाणलिङ्गस्य चोत्पत्तिर्वा............था।।
हरेः पञ्चावताराणां निग्रहः परिकीर्त्तितः। एतद्दिव्यकथाख्यानं श्रवणात्पापनाशनम्।।
Descriptive Catalogue of Sanskrit MSS Government Oriental Library, Madras No. 15665 Bhargavapuranam

२. श्रीमद्भार्गवोपपुराणम् - अध्ययनं सम्पादनञ्च, पृ. ७

३. पुराणसाहित्यादर्शः; पृ. १७८-१७९

चुकी है। इस भार्गवपुराण के प्रारम्भ में आये श्लोकों से भी इसके पूर्वखण्ड की संस्तुति मिलती है –

> सर्व धर्मार्थतत्त्वज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद।
> तत्त्वार्थविदुषां श्रेष्ठ ! सूत द्वैपायनप्रिय।।
> यानि कर्माणि लोकेषु चरित्राण्यपि शार्ङ्गिणः।
> तव प्रसादादस्माभिः श्रुतानि वदतां वर।।[1]

इन श्लोकों से पता चलता है कि भार्ववोपपुराण के पूर्वखण्ड में विष्णु भगवान् के चरित्र वर्णित थे। उत्तरखण्ड में महायोगियों अर्थात् आलवारों आदि के चरित वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त इस पुराण के पूर्वखण्डत्व के प्रतिपादन में एक अन्य तर्क भी दिया जा सकता है। वह यह है कि भार्गर्ववोपपुराण के इस उत्तरखण्ड में मङ्गलाचरण के रूप में विष्वक्सेन की स्तुतिपरक वह प्रसिद्ध श्लोक प्राप्त होता है,३ (यस्य द्विरदवक्त्राद्याः पारिषद्याः परःश्शतम् विघ्नान्निघ्नन्त भजतां विष्वक्सेनं तमाश्रये।। (भार्गवोपपुराण १/१) जो श्लोक प्रायः सभी वैष्णव ग्रन्थों के आदि में लिखा मिलता है। इससे यह हो सकता है कि लिपिकार ने ऐसा मङ्गलाचरणात्मक श्लोक जोड़ दिया हो और यहाँ इस उपपुराण का मङ्गलाचरण न करके इसके पूर्वखण्ड में मङ्गलाचरण विहित हुआ हो। इसीलिए उत्तरखण्डात्मक भार्गवोपपुराण के प्रारम्भ में न्यूनाधिक रूपेण पृथक-पृथक् मङ्गलाचरण श्लोक प्राप्त होता है। अतएव ये मङ्गलाचरण के वास्तविक श्लोक नहीं हैं। वास्तविक मङ्गलाचरण भार्गव पुराण के पूर्वखण्ड के प्रारम्भ में किया गया होगा, जो उसके अप्राप्त होने से अज्ञात है।

इस भार्गवोपपुराण के उत्तरखण्ड में पुष्पिका को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी भार्गवोपपुराण का नाम नहीं आया है। इस उपपुराण का नाम भार्गव कैसे हुआ ? क्यों हुआ ? इन प्रश्नों का उत्तर कदाचित् पूर्व खण्ड में दिया गया होगा। उत्तर खण्ड में केवल एक भार्गव मुनि का वर्णन आया है। भार्गव मुनि कनकाङ्गी नामक अप्सरा पर मोहित हो गये और उनके संयोग से भक्तिसार नाम आलवार मुनि का जन्म हुआ।[2] इस आधार पर यदि भार्गवमुनि की कथा वर्णन से इस उपपुराण का नाम भार्गव हुआ, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु उत्तरखण्ड में इसका प्रमाण कुछ भी नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार भार्गवोपपुराण का पूर्वखण्ड आज कहीं भी पाण्डुलिपि के रूप में दृष्टिगत नहीं होता है। यदि पूर्ववर्णित परशुराम सम्बद्ध भार्गवपुराण तथा शैव भार्गव पुराण को इस पूर्व खण्ड

---

१. भार्गवोपपुराण १/२-३
२. भार्गवोपपुराण - द्रष्टव्य - नवम अध्याय।

स्वीकार कर लिया जाय तो भी प्रामाणिकता का अभाव है क्योंकि परशुरामसम्बद्ध भार्गवपुराण अपने को पूर्वखण्ड के रूप में नहीं दिखाता है और शैव भार्गव पुराण भी पूर्वखण्ड के रूप में दृष्टिगत नहीं होता है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन दोनों भार्गवपुराणों में विष्णु के चरित्र विशेषतया वर्णित नहीं हैं। अतः इन्हें इसका पूर्वखण्ड स्वीकार नहीं किया जा सकता है। पूर्वखण्ड के अभाव में केवल उत्तरखण्ड को ही भार्गवोपपुराण का सम्पूर्ण रूप अङ्गीकार करना ही पड़ेगा। यह भी हो सकता है कि उत्तरखण्ड में महायोगि माहात्म्य के अतिरिक्त अन्य विषय भी रहें हों, परन्तु आज उनकी उपलब्धि नहीं हो रही है।

भार्गवोपपुराण का कलेवर

भार्गवोपपुराण, जो प्रकाशित हुआ है, उसमें ४० अध्याय तथा सम्मिलित रूपेण श्लोकों की संख्या २११६ है। इसमें अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य छन्द भी प्राप्त होते हैं। इसमें द्वादश आलवार भक्तों, गोदादेवी, लक्ष्मी, श्रीनाथ, यामुन तथा रामानुज आचार्यों के चरित्र वर्णित हैं। डॉ. बर्नल महोदय ने तञ्जौर महाराजा सरस्वतीमहल हस्तलिखित पुस्तकालय में एक भार्गव पुरण की मातृका देखी थी। उन्होंने लिखा है कि इसमें ४२ अध्याय हैं तथा श्लोकों की संख्या २५०० है। परन्तु यह उपपुराण ४२ अध्यायों का नहीं है और २५०० श्लोक भी नहीं हैं, ऐसा इसकी पाण्डुलिपियों से प्रमाणित होता है। तेलुगू भाषा में नित्यसूरिचरित्रम्' नामक शीर्षक वाला एक भार्गवपुराण भी प्राप्त होता है। इसमें सात आश्वास हैं जिसमें द्वादश आलवारों की कथाएं वर्णित हैं। इस पुराण के रचयिता कन्दूरिवेङ्कटदास कवि हैं। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी माना जाता है। इस तेलुगू पुराण के पांच आश्वासों में वही कथावस्तु है जो संस्कृत के भार्गवोंपपुराण में प्राप्त होती है। इससे यह ज्ञात होता है कि तेलुगू भाषा में लिखित भार्गवपुराण संस्कृत भाषा के भार्गवोपपुराण का अनुवाद हो सकता है।[१]

भार्गवोपपुराण का काल

श्रीमद्भार्गवोपपुराण का काल निर्धारण एक कठिन विषय है क्योंकि इस पुराण का समुल्लेख किसी निबन्धकार ने किया ही नहीं है। किसी टीकाकार ने भी इसके उद्धरण नहीं दिये हैं। यह एक वैष्णव सम्प्रदाय का उपपुराण है, परन्तु वेदान्तदेशिक आदि वैष्णव आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं किया है। भार्गवोपपुराण के कुछ श्लोक

---

१. Burnell sures a copy of this Purana in Tanjore Palace library. He said the extent of it was 2500 Ślokas. It has an uttarakhand in 42 Chapters. (Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the collection of the Asiatic Society of Bengal-Shastri Preface- P-CCIX

'नारायणसारसङ्ग्रह' में उद्धृत हैं।[1] किन्तु यह ग्रन्थ अर्वाचीन है क्योंकि इसमें प्रपन्नामृत आदि ग्रन्थों के श्लोक भी समुद्धृत हैं। एक हस्तलिखित ग्रन्थ 'प्रमाणसङ्ग्रह' में भार्गवोपपुराण के श्लोक उद्धृत हैं।[2] परन्तु यह ग्रन्थ कब रचा गया है और किसके द्वारा लिखित है, इसका कोई विवरण ज्ञात नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त श्रीविष्वक्सेन त्रिदण्डीस्वामी द्वारा रचित 'श्रीवचनभूषण' की 'चिन्तामणि', नामक हिन्दी टीका में भार्गवोपपुराण के श्लोक उद्धृत हैं।[3] यह टीका भी अर्वाचीन है, अतः इससे भार्गवोपपुराण के कालनिर्धारण में सहायता नहीं मिल सकती है। भार्गवोपपुराण के अन्तः तथा बहिः साक्ष्य के आधार पर इसका समय निम्नलिखित प्रकारेण निर्धारित किया जा सकता है -

(i) भार्गवोपपुराण में वैष्णव भक्त आलवारों का चरित्र वर्णित है। आलवारों का काल सप्तम अष्टम शताब्दी स्वीकार किया जाता है।[4]

(ii) इस पुराण में रामानुजाचार्य से पूर्व आचार्यों के नाम आये हैं - यथा- ईश्वरमुनि, पुण्डरीकाक्ष, कुरुकेश, श्रीराममिश्र, यामुनाचार्य, श्रीशैलपूर्ण, काञ्चीपूर्ण, महापूर्ण, गोष्ठीपूर्ण, श्रीमाल्यधर तथा यादवाचार्य।[5] श्री रामानुज के चरित्र का वर्णन तथा श्रीभाष्यप्रणयन का उल्लेख भी इस उपपुराण में प्राप्त होता है। श्रीमद्रामानुज का समय १०१७-११३६ शताब्दी स्वीकार किया जाता है।[6]

(iii) रामानुज के परवर्ती आचार्यों जैसे वात्स्यवरदाचार्य, आत्रेयरामानुज तथा वेदान्त देशिक आदि का उल्लेख भार्गवोपपुराण में नहीं है। पाण्ड्य तथा चोल राजाओं का उल्लेख इस पुराण में प्राप्त होता है जो इतिहास की दृष्टि से ११वीं तथा १२वीं शताब्दी के समीप है।

(iv) इस उपपुराण में बौद्ध जैन सम्प्रदाय के लोगों का उल्लेख है। परकालमुनि ने शास्त्रोक्तियों से बौद्ध-जैन आचार्यों को पराजित करके पाण्ड्यराज की सभा में सम्मान प्राप्त किया था।[7] इस वृत्तान्त का काल अष्टम शताब्दी है जब पाण्ड्य देश में वैष्णव सम्प्रदाय पल्लिवित हो रहा था।[8]

---

१. नारायणसारसङ्ग्रह ६/५६ पत्र सं. ३७ तथा ६/६७, ६८, ६६ पत्र सं. ३७-३८ (हस्तलिखित)
२. नारायणात्परं तत्त्वं नास्ति नास्ति नृपात्मज। इदं सत्यमिदं सत्यं सत्येनैव वदाम्यहम्।।
डिस्क्रिप्टिव कैटालाग आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास सं. १५२८७ प्रमाणसङ्ग्रहः।
३. श्री वचनभूषण - चिन्तामणि हिन्दीटीका -सूत्र २४१
४. श्रीभाष्य - इन्ट्रोडक्शन, पृ. १८
५. भार्गवोपपुराणय- द्रष्टव्य ३५ अध्याय
६. श्रीभाष्य-इन्ट्रोडक्शन, पृ. १३) (श्रीभाष्य-इन्ट्रोडक्शन, पृ. १३)
७. पाण्ड्यराजसभां गत्वा सर्वान् बौद्धजिनानपि। निगमान्तोक्तिभिर्जित्वा नृपेण परिपूजितः।।
(भार्गवोपपुराण ३३/२५-२६)
८. श्रीभाष्य, - इन्ट्रोडक्शन, पृ-१३

(v) भार्गवोपपुराण में रसायन विद्या का उल्लेख प्राप्त होता हैं आयुर्वेद की रसायन विद्या सप्तम अष्टम शताब्दी से प्राचीन नहीं है।[1]

(vi) इस पुराण में योगनिष्ठ भार्गवमुनि के वर्णन प्रसङ्ग में सिद्ध तथा नाथ सम्प्रदाय की योग प्रक्रिया का उल्लेख है।[2] सम्प्रदाय का काल द्वादश शताब्दी माना जाता है।[3]

(vii) भार्गवोपपुराण से १६वीं शताब्दी के तेलुगू कवि कन्दूरिवेङ्कटदास कवि ने आलवारसम्बद्ध सामग्री लेकर तेलुगू भाषा में भार्गव पुराण की रचना की है।[4]

(viii) भार्गवपुराण की मातृकाएं तेलुगू तथा ग्रन्थलिपि में ताड़पत्रों पर लिखी हुई प्राप्त होती हैं।

(ix) धर्मशास्त्रीय निबन्ध ग्रन्थों में भार्गवोपपुराण के श्लोक, उद्धृत नहीं हैं तथा वेदान्तदेशिक आदि वैष्णव आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में इसके उद्धरण नहीं दिये हैं।

(x) तमिल भाषा की मणिप्रवाल शैली में लिखित आलवारों से सम्बद्ध दो ग्रन्थ 'दिव्यसूरिचरितम्' तथा 'गुरुपरम्पराप्रभाव' की रचना पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई थी।[5]

(xi) वरवरमुनि के द्वारा रचित 'उपदेशरत्नमाला' नामक ग्रन्थ में आलवारों के जन्म नक्षत्रादि का वर्णन संक्षिप्ततया किया गया है। यह ग्रन्थ भी पन्द्रहवीं शताब्दी से उत्तरकालीन है।

(xii) अनन्ताचार्य के द्वारा रचित 'प्रपन्नामृत' नामक ग्रन्थ में आलवारों की कथाएं आयी हैं। इस ग्रन्थ की रचना पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई।[6] प्रपन्नामृत में भार्गवोपपुराण का उल्लेख है। आजकल अनुपलब्ध वृद्धपाद्मपुराण में भी आलवारों की कथाएं थीं ऐसा प्रपन्नामृत कार ने लिखा है।[7] प्रपन्नामृत के श्लोकों और भार्गवोपपुराण के श्लोकों में पर्याप्त साम्य है। अतः भार्गवोपपुराण को देखकर 'प्रपन्नामृतम्' की रचना की गयी होगी ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यों के अनुसार भार्गवोपपुराण की रचना श्रीरामानुजाचार्य के बाद एकादश शताब्दी से पञ्चदश शताब्दी के मध्य हुई होगी। इस उपपुराण में श्रीवेदान्तदेशिक का उल्लेख नहीं है। जबकि पन्द्रहवीं शताब्दी के 'प्रपन्नामृत' में वेदान्तदेशिक का उल्लेख किया गया है। अतः जब 'दिव्यसूरिचरित' की रचना द्वादश शताब्दी में हो रही

---

१. भार्गवोपपुराण १०/१३-१६ तथा संस्कृतसाहित्य का इतिहास (तृतीय भाग) - पृ.६०६)
२. भार्गवोपुराण ६/५३-५६
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. १४८
४. तेलुगू वर्जन्स आफ पुराणाज् (भार्गवपुराण) - पुराणपत्रिका, जुलाई १६६२, पृ.-४०३-४०४
५. दि ओरजिन एण्ड ग्रोथ आफ श्रीब्रह्मतन्त्र परकालमठ, पृ. १३
६. प्रपन्नामृत-द्रष्टव्य-आमुखम्
७. श्रीमद्भागवते चैव वृद्धपाद्मे तथैव च। अन्येष्वपि पुराणेषु भविष्यद्भार्गवादिषु।
अत्रैवोदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्। शृणु वक्ष्यामि तत्सर्वं वृद्धपाद्मे च भार्गवि।।
(प्रपन्नामृत ७३/२६, ७५/६)

थी उसी समय इस भार्गवोपपुराण की रचना हुई होगी। प्रपन्नामृत में इसकी कथाओं का विस्तार किया गया है। इस प्रकार भार्गवोपपुराण संस्कृत भाषा में आलवार साहित्य का सर्वप्राचीन ग्रन्थ स्वीकार किया जा सकता है।

भार्गवपुराण का कर्तृत्व तथा रचनास्थल

सामान्य रूपेण महापुराणों तथा उपपुराणों के रचयिता व्यास ही माने जाते हैं। अतः भार्गवोपपुराण के प्रणेता व्यास ही हैं। ऐसा कहना यद्यपि काल भेद से उपर्युक्त प्रतीत नहीं होता, परन्तु यह समझना चाहिए कि उपपुराण का कोई भी प्रणेता क्यों न हो, उसे व्यास की परम्परा के अन्तर्गत स्वीकार जाता है। उपपुराणों का जहाँ-जहां पुराणों में वर्णन आया है, प्रायः यह वाक्य लिखा हुआ मिलता है-**अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।**[1]

इससे ज्ञात होता है कि उपपुराणों के रचयिता विभिन्न काल में उत्पन्न मुनिगण हैं। बृहद्धर्मपुराण में भी कहा गया है कि उपपुराणों के रचयिता व्यास हैं तथा अन्य लोग भी हैं-**कर्त्ता चोपपुराणानां व्यासोऽप्यन्येऽपि केचन।**[2]

इस प्रकार भार्गवोपपुराण के रचयिता भी व्यास हैं अथवा अन्य कोई मुनि हैं। भार्गवोपपुराण में ऐसा कोई समुल्लेख नहीं है। यदि किसी मुनि के द्वारा यह पुराण रचा गया है तो अवश्य ही उनका नाम भार्गव रहा होगा और उन्होंने अपने नाम के अनुसार इस उपपुराण का नाम भार्गवपुराण रखा, जैसे मुद्गलपुराण के रचयिता मुनि मुद्गल हैं। इस उपपुराण में भक्तिसार मुनि के पिता का नाम भार्गव बतलाया गया है, वही इस उपपुराण के कर्ता हो सकते हैं।[3] परन्तु जो लोग महापुराण तथा उपपुराण के रचयिता व्यास को स्वीकार करते हैं उनके अनुसार तो भार्गवोपपुराण के प्रणेता व्यास ही होंगे।

भार्गवोपपुराण में द्वादश आलवार भक्तों की कथाएं वर्णित हैं। दक्षिण भारत की नदियों तथा विष्णु के अर्चा विग्रहों का वर्णन बहुशः प्राप्त होता है। यद्यपि भारत के उत्तरीय क्षेत्रों का वर्णन भी प्राप्त होता है परन्तु दक्षिण भारतीय स्थलों का प्रधान रूपेण वर्णन है। अतः इस पुराण की रचना दक्षिण भारत में हुई होगी, ऐसी सम्भावना अधिक है।[4]

भार्गवोपपुराण का वर्ण्य विषय

भार्गवोपपुराण का प्राप्त उत्तरखण्ड मुख्यतया वैष्णवसम्प्रदाय के द्वादश आलवारों का वर्णन करता है। इसमें ४० अध्याय हैं जिनकी संक्षिप्त वर्ण्य सामग्री यहाँ उपस्थापित की जाती है-

---

१. स्कन्दमहापुराण (प्रभासखण्ड) २/१०)
२. बृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड) १६/२२)
३. श्रीमद्भार्गवोपपुराणम् अध्ययनं सम्पादनञ्च, पृ. १२
४. श्रीमद्भार्गवोपपुराणम् अध्ययनं सम्पादनञ्च, पृ. १२

प्रथम अध्याय में ६० श्लोक हैं। मङ्गलाचरण, बदरिकाश्रम में नर नारायण के प्रसङ्ग से कथाश्रावण, सूत शौनक संवाद, अयोध्या में सिंहासनस्थ भगवान् का वर्णन, प्राणिमात्र को सायुज्यप्रदान करने की कृपा हेतु श्रीलक्ष्मी के द्वारा विष्णु के लिए निवेदन वर्णित है। **द्वितीय अध्याय** में ४५ श्लोक हैं। इसमें मोक्षसाधनवर्णन, काञ्चीपुरी में सरोवर के अन्तर्गत सरोयोगी का जन्म न्यासयोग का वर्णन तथा भगवदाज्ञा से सरोयोगी का क्षेत्रयात्रा हेतु प्रस्थान उल्लिखित है। **तृतीय अध्याय** में २८ श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें मध्वपुर (मल्लपुर) के सरोवर में भूतयोगी का जन्म, भगवान् के द्वारा उन्हें पोषण तथ सम्बन्धज्ञानोपदेश, पतिपत्नीसम्बन्धप्रशंसा, सरोयोगी की क्षेत्रयात्रा में प्रवृत्ति आदि विषय हैं। **चतुर्थ अध्याय** के ८१ श्लोकों में मयूरनगर के सरोवर में महद्‌योगी का जन्मवर्णन, भगवत्पोषण, न्यासयोग का उपदेश, भगवान् के द्वारा उन्हें तत्त्वत्रय का ज्ञानोपदेश तथा सरोभूतमहद्‌योगियों का क्षेत्रयात्रा वर्णन वर्णित है। **पञ्चम अध्याय** में ७४ श्लोक हैं। प्राणायामपरायण तीनों योगियों की ध्यानावस्थिति, भगवदङ्गसौन्दर्यध्यान, नारायण की आज्ञा से ब्रह्मा के द्वारा इन योगियों का माहात्म्य वर्णन तथा हरिविग्रहपूजन करते हुए पुण्यकृद् लोगों को अभीष्ट वर प्रदान करके भगवत्क्षेत्रयात्रा का वर्णन लिखित है। **षष्ठ अध्याय** में ६२ श्लोक हैं। तीनों योगियों का क्षेत्रयात्रा वर्णन, श्रेष्ठ ब्राह्मण हरिदास को सम्बन्धज्ञानोपदेश तथा न्यासयोग का उपदेश प्रदान करना तथा भगवत् पूजन कृत्य वर्णित है। **सप्तम अध्याय** में ६३ श्लोक प्राप्त होते हैं। तीनों मुनियों की तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में श्रीरङ्गनाथ का सौन्दर्यवर्णन, श्रीरङ्गनाथस्तुति, किसी क्षत्रिय के कुष्ठरोग को दूर करना, क्षत्रिय योगिदास का चोल राजा की सौ पुत्रियों के साथ विवाह, उसे राज्य की प्राप्ति, योगिदास के सौ पुत्रों की उत्पत्ति तथा योगिदास का योगियों के समीप आश्रय लेकर मुक्ति की प्राप्ति करना आदि वर्णित है। **अष्टम अध्याय** में ४६ श्लोक हैं। इसमें सरोभूतमहद्‌योगियों की क्षेत्रयात्रा तथा तीनों मुनियों की कथा श्रवण, पठन आदि का फल निरूपित है। **नवम अध्याय** में ६७ श्लोक मिलते हैं।

इस अध्याय में महीसारा नगरी में भार्गवमुनि की तपस्या वर्णन, इन्द्र की आज्ञा से मुनि के तप में विघ्न डालने हेतु कनकाङ्गी नामक अप्सरा का आगमन, उसके साथ मुनि का समागम, कनकाङ्गी के गर्भ से पुत्र की उत्पत्ति, पुत्र को लतागृह में रखकर उसका देवलोकगमन, सामवेद के स्वर से बालक का रुदन सुनकर यह नारायण है ऐसा जानकर के महीसारनगरी के राजा के द्वारा उसका पूजन, वेणुलाविक के द्वारा उस शिशु को अपने घर ले जाना तथा उसका पोषण, वेणुलाविक की पत्नी को खनिकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति, विष्णु भगवान् का प्रकट होकर शिशु का भक्तिसार ऐसा नामकरण, पार्वती शिवसंवाद तथा उनके द्वारा भक्तिसार की परीक्षा, भक्तिसार के प्रभाव से शिवनेत्रोद्‌भूत अग्नि की शान्ति तथा शिवजी के द्वारा भक्तिसार की प्रशंसा आदि विषय उपनिबद्ध हैं। **दशम अध्याय** में

८१ श्लोक हैं। भक्तिसार की महिमा के वर्णन में सिद्धपुरुष के साथ उनका समागम, सरोभूत महद् योगियों से भक्तिसार का मिलन, श्वेतमृत्तिका की प्राप्ति हेतु श्री रंगनाथ की स्तुति, भगवत्सौन्दर्यवर्णन तथा भक्तिसार का काञ्ची प्रस्थान आदिविषय वर्णित हैं। **एकादश अध्याय** में ४८ श्लोक मिलते हैं। इसमें भक्तिसार का खनिकृष्ण से समागम, उन्हें अष्टाक्षरमन्त्र का उपदेश, भक्तिसार की सेवा से किसी वृद्धनारी को अक्षय यौवन तथा राजपत्नीत्व की प्राप्ति आदि कथाएं वर्णित हैं। **द्वादश अध्याय** में श्लोकों की संख्या ७० है। इसमें खनिकृष्ण, भक्तिसार तथा काञ्ची के राजा से सम्बद्ध कथाएं, शार्दूलपुर गमन, विस्मृत वेद वाले ब्राह्मणों को वेदज्ञान प्रदान करना आदि का वर्णन है। **तेरहवें अध्याय** में ४६श्लोकों के अन्तर्गत भक्तिसार मुनि के साथ हरिपाद नामक ब्राह्मण की कथा वर्णित है। **चौदहवें अध्याय** में ५२ श्लोक हैं। ताम्रपर्णी नदी के किनारे स्थित पुण्डरीकापुरी में काटिनामक धार्मिक का नाथनायकी नामक कन्या के साथ विवाहवर्णन, सन्तति के लिए वनगमन और तपस्या, भगवान् विष्णु के वरदान से उन्हें पुत्र की प्राप्ति, पुत्र की अलौकिकता को देखकर उसे चिञ्चामूल में स्थापित करना आदि विषय हैं। **पञ्चदश अध्याय** में ७५ श्लोक हैं। इसमें काटिपुत्र का वेदज्ञानोपदेश, मधुरकवि चरित, शठकोप का दिव्यसौन्दर्यवर्णन तथा मधुरकवि और शठकोप का समागम वर्णित है। **सोलहवें अध्याय** में ४८ श्लोक मिलते हैं। इसमें कुलशेखर का जन्मवर्णन, राजचरितवर्णन तथा उसकी वैष्णव सेवा प्रतिपादित है। **सप्तदश अध्याय** में ३६ श्लोकों में राजा कुलशेखर का राजधर्म वर्णन प्राप्त होता है। अट्ठारहवें अध्याय में ४३ श्लोक हैं। इसमें कुलशेखर के भूषणों का धौर्यवर्णन, तथा वैष्णवापराधराहित्यसिद्धि का प्रतिपादन है। **उन्नीसवें अध्याय** में ७४ श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें राजाकुलशेखर द्वारा रामचन्द्र का दर्शन, श्रीरामसौन्दर्यवर्णन, श्रीरङ्गनाथ के साथ राजा की पुत्री का विवाह, रामकथा श्रवण में अभिरत राजा कुलशेखर का रावणवध के लिए उपक्रम, सीता लक्ष्मण के साथ राम का प्रादुर्भाव तथा श्रीकुलशेखर को परमपद की प्राप्ति का वर्णन है। **बीसवें अध्याय** में ५६ श्लोक हैं। इसमें लक्ष्मीचरित, पद्मा जन्मवर्णन, लक्ष्मीसौन्दर्यवर्णन, पाण्ड्यदेश के राजा के द्वारा लक्ष्मी को घर में लाकर पोषण करना तथा उसका श्रीरङ्गनाथ के साथ विवाह वर्णन आदि कथाएं निरूपित हैं। **इक्कीसवें अध्याय** में ४६ श्लोक हैं। इसमें मुनिवाहन के जन्मचरित्र आदि का वर्णन है। **बाइसवें अध्याय** में ५६ श्लोक उपलब्ध होते हैं। इसमें भक्ताङ्घ्रिरेणु मुनि का जन्मादि वर्णित है। भगवान् की माया से देवदेवी नामक वेश्या का अपनी भगिनी के साथ मुनि को मोहित करने हेतु आगमन, सफलता न देखकर वेश्या का संन्यासिनी रूप धारण करके मुनि के आश्रम में रहना तथा दैववश मुनि से उस संन्यासिनी का समागम आदि कथाएं हैं। **तेइसवें अध्याय** में ४३ श्लोक हैं। इसमें भक्ताङ्घ्रिरेणु मुनि को लेकर वेश्या का स्वगृहगमन वहाँ विष्णु की माया का वर्णन तथा श्रीभगवत्कैङ्कर्यवर्णन आदि का उल्लेख है। **चौबीसवें**

अध्याय में ४६ श्लोक हैं। इस अध्याय में श्रीविष्णुचित्तसूरि का जन्मचरित वर्णित है। **पच्चीसवें अध्याय** में ४८ श्लोक हैं। विष्णुचित्त का शास्त्रार्थ हेतु पाण्डुराज की सभा में प्रवेश, तथा विजयी होना, विष्णुचित्त का सम्मान, विष्णु का मङ्गलाशासन, तथा भगवत्सेवा का वर्णन है। **छब्बीसवें अध्याय** में ३८ श्लोक हैं। विष्णुचित्त का खनित्र लेकर तुलसीमूलखनन, उससे एक कन्या की उत्पत्ति, उसका गोदा नामकरण, तथा गोदादेवी का भगवदर्चावतारों की श्रवण जिज्ञासा वर्णित है। **सत्ताइसवें अध्याय** में ४८ श्लोकों में भगवान् के अर्चाव्यूहों का वर्णन है। **अट्ठाइसवें अध्याय** में ६१ श्लोकों में पुनः भगवदर्चाव्यूहों का वर्णन किया गया है। **उन्तीसवें अध्याय** में गोदादेवी के साथ भगवान रङ्गनाथ का विवाह वर्णित है। इसमें १६ श्लोक हैं। **तीसवें अध्याय** में श्लोकों की संख्या ४० है। इसमें परकाल मुनि का जीवन चरित, दिव्यकन्या के साथ विवाह, सहस्रहरि भक्तों के नित्य भोजन में श्रीपरकाल का सम्पूर्ण धन व्यय होना, परकाल का राजा के साथ युद्ध तथा राजा की पराजय और काञ्ची में राजा से धन की प्राप्ति इत्यादि विषय वर्णित है। **इक्तीसवें अध्याय** में २५ श्लोक हैं। इसमें परकाल मुनि का चौर्यकर्म से वैष्णवाराधन वर्णित है। **बत्तीसवें अध्याय** में ३८ श्लोक मिलते हैं। इसमें परकाल मुनि के समक्ष भगवान् रङ्गनाथ का वररूप धारण करके वरयात्रापूर्वक आगमन, परकाल के द्वारा उनके धन को लूटने का उपक्रम, लुण्ठित धन के भार को ले जाने में असमर्थ परकाल का भगवान् से कहना कि तुमने मन्त्रप्रयोग किया है, मुझे भी वह मन्त्र बतलाओ, अन्यथा मैं तुम्हें मार डालूँगा। भगवान् का परकाल को अष्टाक्षर मन्त्र का उपदेश। परकाल के द्वारा भगवान् की स्तुति और भगवान् का स्वलोकगमन आदि वर्णित है। **तैतीसवें अध्याय** में ३० श्लोक हैं। इसमें नृसिंहाष्टभुज विप्र के साथ काञ्ची में श्रीपरकाल का मिलन, स्वर्णमयी बौद्धप्रतिमा का आहरण करके परकाल के द्वारा सप्तशाला का निर्माण, शिल्पियों को मोक्ष, पाण्ड्य राजा के द्वारा आहूत श्री परकाल मुनि के द्वारा बौद्ध और जैन सम्प्रदायों के आचार्यों को शास्त्रोक्तियों से हराना, परकाल का वैराग्य धारण तथा समाधि आदि विषयों को चित्रित किया गया है। **चौतीसवें अध्याय** में ५३ श्लोक हैं। इस अध्याय में श्री रामानुजाचार्य का जन्मचरित, चोलराजा की ब्रह्मराक्षसग्रस्त पुत्री को रामानुज के द्वारा स्वस्थ करना तथा श्री रामानुज की ख्याति वर्णित है। **पैतीसवें अध्याय** के ३१ श्लोकों में महापूर्ण, नाथमुनि, पुण्डरीकाक्ष, यामुनाचार्य, कुरुकेश, श्रीराममिश्र इत्यादि का अतिसंक्षिप्त जन्मादि निरूपण है। **छत्तीसवें अध्याय** में ६२ श्लोक हैं। श्रीरामानुजचरितवर्णन प्रसङ्ग के अन्तर्गत, कावेरीसरिद् वर्णन, भगवत्सौन्दर्यवर्णन, श्रीरङ्गनाथस्तुति तथा विरोधिमतनिराकरण आदि विषय वर्णित हैं। **सैंतीसवें अध्याय** में ३५ श्लोक प्राप्त होते हैं। इसमें श्री रामानुजाचार्य के द्वारा विष्णु के अर्चास्थलों का परिभ्रमण तथा श्रीजगन्नाथ की स्तुति लिखी गयी है। **अड़तीसवें अध्याय** में ५६ श्लोक हैं। श्रीरामानुज चरित से सम्बद्ध विषय यथा उनका अर्चाव्यूह दर्शन,

श्रीभाष्यप्रणयन, बौद्ध चार्वाक आदि के मतों का निराकरण, पराशर के मतानुसार वैष्णवमत की स्थापना तथा रामानुज को परमपद प्राप्ति इत्यादि का वर्णन है। **उन्तालीसवें अध्याय** में ५२ श्लोक उपलब्ध होते हैं। इसमें नर-नारायण संवाद के अन्तर्गत कामुक दुःशील का वृत्तान्त, स्त्री अङ्गों का वीभत्स वर्णन, द्वादश मुनियों के प्रति दुःशील की शनैःशनै आसक्ति, ज्ञानप्राप्ति तथा दुःशील की मृत्यु समय यमदूत और वैष्णवदूतों का आगमन और वैष्णवदूतों के द्वारा यमदूतों की निर्भत्सना और दुःशील का विष्णु लोकगमन आदि वर्णित है। **चालीसवें अध्याय** में श्लोकों की संख्या ६२ है। इसमें यमराज द्वारा दुःशील का विष्णुलोकगमन के कारण का अपने दूतों से निवेदन, द्वादश आलवार तथा वैष्णवाचार्यों के पूजन आदि का फल, शङ्खचक्राङ्कित पुरुष के अपूजन से अपुण्यत्व की प्राप्ति, शालग्राम शिला के तुलसीपत्रार्चन का फल तथा महायोगियों के माहात्म्य के श्रवण, पठन तथा पुस्तकदानादि का फल निरूपण आदि विषय चर्चित हैं।

इस प्रकार भार्गवोपपुराण में द्वादश आलवारों तथा श्रीरामानुजाचार्य के जीवनचरित और भगवान् विष्णु के अर्चाविग्रहों इत्यादि का माहात्म्य सुष्ठु प्रकारेण प्रतिपादित है।

भार्गवोपपुराण का वैशिष्ट्य

वैष्णवसम्प्रदाय में आलवार भक्तों का अत्यन्त सम्मान है। इन्हें भगवान् के समान पूजा जाता है। आलवारों ने तमिल में जो भगवद्भक्ति से ओतप्रोत रचनाएं की हैं, उन्हें दक्षिण भारत में वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'द्रविडाम्नाय' अथवा 'द्रविड वेद' कहा जाता है। इन रचनाओं का महत्त्व वेदों के समान ही स्वीकार किया गया है। अतः इन आलवार भक्तों से सम्बद्ध जो भी वाङ्मय उपलब्ध है वह तमिल भाषा में लिखा है। ऐसी अवस्था में भार्गवोपपुराण इन वैष्णव भक्तों की संस्कृत भागीरथी को प्रवाहित करने वाला कदाचित् एकमात्र सर्वप्राचीन ग्रन्थ है जिसे उपपुराण की सञ्ज्ञा प्राप्त है। उपपुराण के लक्षण की दृष्टि से इसमें आलवारों के जन्मचरित ईशानुकथा के आधार पर चित्रित है। महापुराणों के दश अथवा पञ्च लक्षणों में से यदि कोई लक्षण घटित होता हो तो वह उपपुराण की श्रेणी में रखा जा सकता, ऐसा लेखक का मन्तव्य है। अतः उपपुराण का लक्षण भार्गवपुराण में घटित होने से यह उपपुराण की कोटि में रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पौराणिक शैली अर्थात् सूत शौनक के संवाद के रूप में यह उपपुराण लिखा गया है। अधिकतर अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है। स्थान-स्थान पर फलश्रुति का कथन है। अतः प्रायः सभी पौराणिक विशेषताएं इसमें दृष्टिगत होती हैं।

प्रपत्ति और भक्ति से समन्वित वैष्णवसम्प्रदाय में श्रीरामानुज के द्वारा श्रीभाष्य में प्रतिष्ठापित विशिष्टाद्वैतदर्शन की स्पष्ट झलक इसमें दिखायी देती है। प्रपत्ति या शरणागति तो वैष्णव सम्प्रदाय का प्राण है। भार्गवोपपुराण में न्यासयोग का वर्णन प्राप्त होता है। यह

न्यास योग प्रपत्ति ही है।[1] इसमें न्यास योग के दो रूप बतलाये गये हैं - भरन्यास तथा आत्मन्यास। भरन्यास के पाँच अङ्ग हैं–अनुकूलता का सङ्कल्प, प्रतिकूलता का वर्जन, ईश्वर रक्षा करेगा' ऐसा विश्वास, गोप्तृत्व का वरण तथा कार्पण्य। यही भरन्यास के पाँच अङ्ग हैं जो प्रपत्ति के भी अङ्ग कहे गये हैं –

भरन्यासस्तु तत्राद्य आत्मन्यासो द्वितीयकः।
भरन्यासस्तु पञ्चाङ्गस्तस्याङ्गानि वदाम्यहम्।।
सङ्कल्पश्चानुकूल्यस्य प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
कार्पण्यं चैव योगीन्द्र ! पञ्चास्याङ्गान्यनुक्रमात्।।[2]

भोग शेष कहलाता है और भोगी शेषी कहा जाता है। यह शेष शेषित्व का सम्बन्ध वैष्णव दर्शन का मूल मन्त्र है। इसमें शेषत्व की स्थिति ही आत्मन्यास है। यह अत्यन्त गुह्य है।[3] जीव शेष है और ब्रह्म शेषी है। जैसे भगवान् के वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि विद्यमान है, उसी प्रकार भगवान् के वक्षःस्थल अर्थात् हृदय में अपने हृदय का सम्प्रेषण ही आत्मन्यास है –

"तस्माज्जीवश्शेषभूतस्त्वहं शेषीति विश्रुतः।
आत्मानं कौस्तुभ इति–न्यसनं मम वक्षसि।।
आत्मन्यास इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः।।[3]

यह न्यास योग केवल एक बार यदि कोई व्यक्ति ग्रहण कर ले तो वह परम गति को प्राप्त हो जाता है।[4] वाचिक तथा मानस के भेद से न्यास के पुनः दो प्रकार बतलाये गये हैं।[5] इसी प्रकार आर्त्त तथा दृप्त प्रपत्ति के भेद से प्रपत्ति के दो प्रकार कहे गये हैं।[6]

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में प्राप्त होने वाले तत्त्वत्रय का उल्लेख भार्गवोपपुराण में प्राप्त होता है।[7] इसी प्रकार सम्बन्धज्ञान प्रशंसा भी द्रविडाम्नाय की एक परम्परा है जिसका

---

१. निक्षेपापरपर्यायो न्यासः पञ्चाङ्गसंयुतः।
संन्यासस्त्याग इत्युक्तः शरणागतिरित्यपि।। (लक्ष्मीतन्त्र-१७/७५)
२. भार्गवोपपुराण २/२६-२८
३. आत्मन्यासो गुप्ततमः शेषत्वमिति लक्ष्यते। भोगः शेष इतिप्रोक्तो भोगीशेषीति कथ्यते।।
(भार्गवोपपुराण २/२८-२६)
४. तदुक्तं न्यासयोगं तं ये गृह्णान्ति जना भुवि।
सकृद्गृहीतमात्रेण यान्त्येव परमां गतिम्।। (भार्गवोपपुराण १/५६)
५. भार्गवोपपुराण २/२४
६. भार्गवोपपुराण ७/५६
७. भार्गवोपपुराण ४/६-१४

उल्लेख भार्गवोपपुराण करता है। यहाँ पति-पत्नी के सम्बन्ध को श्रेष्ठ कहा गया है। भगवान् ने स्वयं रामावतार के रहस्य को दर्शनात्मक रूप देते हुए कहा है कि रावण का नाश करने हेतु ही राम का अवतार हुआ, ऐसा समझना उचित नहीं है। राम परमात्मा हैं, सीता जीव है। अयोध्या वैकुण्ठ और दण्डक वन ही प्रपञ्च है। दण्डक वन में परमात्मा की लीला करने हेतु ही प्रवेश हुआ है। आत्मा को सीता के सदृश तथा मन को रावण के सदृश समझें। सीता को मेरे पास से मृग रूपी प्रकृति के द्वारा हरण करके विज्ञान सञ्ज्ञक वन में स्थित लङ्का रूपी शरीर में वह रावण ले गया, तत्पश्चात् विषय रूपी दश शिरों से बांधकर उसने उसका उपभोग किया। तब वे सीता वन में मेरे विग्रह का अनुभव करके स्थित रहीं। उसी प्रकार से जीव को भी ज्ञानवान् होना चाहिए।[1] यही सम्बन्ध ज्ञानोपदेश है।

भार्गवोपपुराण में दुःशील नामक कामुक के वृत्तान्त का वर्णन करते हुए स्त्रियों के अङ्गों का ऐसा जुगुप्सित वर्णन किया है जो साधारण व्यक्ति को भी कामिनियों की ओर से विरक्ति उत्पन्न कर देता है–

मोहं विहाय पश्यस्व स्त्रियो देहं जुगुप्सितम्।
चर्ममांसास्थिमेदो - सृग्विण्मूत्रनखरोमभिः।।
मज्जाशुक्रादिभिः पूर्णं सामयं व्याधिसंयुतम्।
वदनं श्लेष्मसदनं नेत्रे तूङ्गीर्णदूषिते।।
निःश्वासनिर्गमान्तस्थविट्दुर्गन्धा तु नासिका।
दन्तस्थविड्मला जिह्वा व्याप्ताऽशुचियुताधरः।।
ईदृशेषु स्त्रियोऽङ्गेषु निन्दितेषु महात्मभिः।
त्वां विना कामुकं लोके को मोहयति बुद्धिमान्।।[2]

इस प्रकार भार्गवोपपुराण में दर्शन से सम्बद्ध विषयों का वर्णन करके संसार की निःसारता, कामुकत्व की निन्दा तथा मन और आत्मा के संस्कार तथा पवित्रता की बात बतलायी गयी है।

भार्गवोपपुराण में प्राचीन तथा अर्वाचीन विष्णु के अर्चास्थलों का वर्णन किया गया है। इससे भौगोलिक दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है और श्रीविष्णु के विस्मृत अर्चाव्यूहस्थलों की भी जानकारी हो जाती है।

---

१. रामोऽहं परमात्मा वै सीता जीव इति स्मृता। अयोध्या मम वैकुण्ठं प्रपञ्चं दण्डकं वनम्।।
तस्मिन् प्रविष्टममलं लीलार्थं परमात्मनः। सीता सदृशमात्मानं मनः सदृशरावणः।।
मत्सकाशादपाहृत्य प्रकृत्या मृगरूपया। देहाख्यप्रलङ्कामाविश्य वने विज्ञानसञ्ज्ञके।।
बध्वा स्वराज्यं बुभुजे शिरोभिर्विषयात्मकैः। तदा सीता वने तस्मिन् विग्रहानुभवं मम।।
कुर्वती संस्थिता तद्वत् तथा त्वं ज्ञानवान् भव। (भार्गवोपपुराण ३/१७-२१)

२. भार्गवोपपुराण ३६/१६-२४

इस पुराण में एक स्थान पर प्राणायाम के भेद तथा चक्रभेदन का उल्लेखन किया गया है जिससे योग और तन्त्र से सम्बद्ध सामग्री उपस्थित हो गयी है।[1] इसी तरह एक सिद्ध के प्रसङ्ग से पारदगुटिका बनाने की विधि लिखी है। यह गुटिका धातु को स्वर्ण में परिवर्तित कराने की क्षमता रखता है।[2]

भार्गवोपपुराण में ज्ञानविज्ञान के अतिरिक्त साहित्यिक सौन्दर्य तथा भाषा की प्रवणता भी दृष्टिगत होती है। श्रीविष्णु के ध्यानपरक अधोलिखित श्लोक में साहित्यिक सौन्दर्य देखा जा सकता है –

रक्तारविन्दाञ्चितपादपद्मं विद्युच्चलत्कुण्डलकर्णयुग्मम्।
भ्रूयुग्मसौन्दर्यतिरस्कृताभ-प्रसूनचापं सुकपोलयुग्मम्।।
चञ्चच्छरच्चन्द्रलसन्मुखाम्बुजं शुचिस्मितं सान्द्र कृपावलोकनम्।।[3]

उपर्युक्त श्लोकों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, तथा व्यतिरेक आदि अलङ्कारों का उत्तम प्रयोग है। इसी प्रकार अन्यत्र भी भगवान् के सौन्दर्य वर्णन में साहित्यिकता का विन्यास किया गया है।[4] भगवान् श्रीराम का वर्णन करते हुए पुराणकार ने कहा है कि श्रीराम के दोनों उरु कामदेव के लीलावन के मध्य स्थित कदली के स्तम्भ के समान सुन्दर हैं, जिस पर रमा (सीता) के कर कमलों की रक्तकान्ति से अरुणित जानु तथा जङ्घायें सुशोभित हैं।

पुष्पेषु लीलावनमध्यरम्भा-स्तम्भद्वयोदञ्चितसुन्दरोरुम्।
रमाकराम्भोरुहरक्तकान्त्या-रुणीकृतभ्राजितजानुजङ्घम्।।[5]

अधोलिखित श्लोक में यमक अलङ्कार का सुष्ठु प्रयोग देखा जा सकता है -

लङ्कालङ्कारहरण ! सङ्गराङ्ग-क्षोभण ! सर्वराक्षससन्दाहदावाग्निशमनाम्बुद।।[6]

यहाँ 'लङ्कालङ्कार' में दोनों 'लङ्का' का अर्थ भिन्न-भिन्न है। वैष्णवसम्प्रदाय में भगवान् का मङ्गलाशासन किया जाता है। यहाँ भगवान् विष्णु के अतिरिक्त उनकी महिषी भगवती लक्ष्मी का भी मङ्गलाशासन विहित है–

---

१. भार्गवोपपुराण ६/५३-६२
२. भार्गवोपपुराण १०/१३-१६
३. भार्गवोपपुराण ५/१२, १४
४. तत्रैव ७/६-१२, १०/६४-७३
५. तत्रैव १६/११
६. तत्रैव १६/३६

सुमङ्गलं श्रीधररङ्गशायिने, पादारविन्दाय च मङ्गलं च ते।
सुमङ्गलं माधव ते महिष्यै, सुमङ्गलं मङ्गलमस्तु ते विभो।।[1]

भगवान् विष्णु के लिए जो स्तुतियाँ की गयी हैं उनमें, वेद तथा विशेषतः पुरुष सूक्त की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।[2] वैष्णवसम्प्रदाय में श्रीसूक्त, लक्ष्मीसूक्त तथा पुरुषसूक्त का विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर अर्थपञ्चक पञ्चसंस्कार तथा पञ्चावस्था शब्दों से वैष्णवदर्शन की भागीरथी का सूक्ष्म प्रवाह दृष्टिगत होता है। पुराण के अन्तर्गत भक्ति और शान्त रस की मन्दाकिनी प्रवाहित की गयी है। प्रसिद्ध अर्चाव्यूहों में भगवान् वेङ्कटेश[3] (तिरुपति) तथा भगवान् जगन्नाथ[4] (पुरी) और भगवान रङ्गनाथ[5] (श्रीरङ्गम्)

नमस्ते नमस्ते प्रपन्नाघहारिन् नमस्ते नमस्ते श्रिताभीष्टदायिन्।। (भार्गवोपपुराण ३६/४६) की स्तुति की गयी है और उनकी शरणागति की याचना भी अत्यन्त रम्य है। (नमस्ते नमस्ते त्रयीनाथ विष्णो, नमस्ते नमस्ते नमो रङ्गशायिन्।

अन्य पुराणों उपपुराणों के समान इस उपपुराण के पाठ तथा श्रवण इत्यादि की फलश्रुति बतलायी गयी है। इस पुराण को पढ़ने सुनने से सम्पूर्ण चिन्तित कार्य पूर्ण हो जाते हैं। अन्त में मुक्ति की प्राप्ति होती है।[5]

---

१. भार्गवोपपुराण २५/४०
२. ब्राह्मणास्त्वन्मुखाज्जाता बाहुभ्यां क्षत्रियाः कृता।
उरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्राः प्रजज्ञिरे।।
त्वत्पद्भ्यामेव पृथिवी शिरसो द्यौरजायत। मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषो जायते रविः।।
(भार्गवोपपुराण ३८/३०-३१)
३. प्रसीद शेषाचलनित्यवास ! प्रसीद लक्ष्मीश ! जगन्निवास।
प्रसीद विश्वाधिप वेङ्कटेश ! प्रसीद नारायण ! सर्वशेषिन्। (भार्गवोपपुराण ३८/४४)
४. प्रसीद मे श्रीपुरुषोत्तमाथ प्रसीद नीलाचल नीलमेघ।
प्रसीद लक्ष्मीश परापरेश ! प्रसीद मां पालय ते प्रपन्नम्।। (भार्गवोपपुराण ३७/३५)
५. भार्गवोपपुराण ४०/५५-६२

पाराशरपुराण

पाराशरोपपुराण की गणना अठारह उपपुराणों में की गई है। इसमें कुल अठारह अध्याय हैं। श्लोकों की संख्या इसमें १०१८ कही गई है। मुख्य रूप से इस पुराण में शिव की महिमा वर्णित है। यथा -

> अष्टोत्तरसहस्रेण श्लोकेनैव विनिर्मितम्।
> इदमष्टादशाध्यायैः शिवोऽत्रैव च दर्शितः।। (पारा. १८, १३५)

उपपुराणों में पाराशरोपपुराण का स्थान

डा. आर.सी. हाजरा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ-'स्टडीज इन द उपपुराणाज' में पुराणों, उपपुराणों, निबन्ध ग्रन्थों आदि बीस ग्रन्थों से उद्धृत कर उपपुराणों की एक विस्तृत तालिका दी है। इसमें परस्पर महान भेद दिखाई देता है। इसको देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपपुराण केवल १८ ही नहीं हैं, अपितु उससे बहुत अधिक हैं। इन सभी ग्रन्थों की सूची में केवल एक को छोड़कर सब में पाराशरोपपुराण की गणना है। कहीं पर 'प्रथमम्' कहीं पर 'अपरम्' और कहीं पर 'प्रवरम्' विशेषण के साथ पाराशर उपपुराण का उल्लेख है। इससे इसकी विशिष्टता सुतरां द्योतित होती है। सूत संहिता के शिवमाहात्म्यखण्ड में (१।१३।१८) पाराशर पुराण को 'परमम्' विशेषण से अभिहित किया गया है। इससे भी इस पुराण की वरीयता द्योतित होती है।

पाराशरोपपुराण की प्राचीनता

यह पुराण महर्षि पराशर द्वारा प्रणीत एवं संज्ञित है। इससे उसकी प्राचीनता परिलक्षित होती है। जैसे पराशर प्रणीत धर्मसंहिता, मनु, याज्ञवल्क्य संहिताओं की तरह प्रतिष्ठित एवं मूर्धन्य है, जैसे 'कृषिपाराशर' नामक ग्रन्थ प्राचीन भारत के कृषिशास्त्र के रहस्य को उद्घाटित करता हुआ सभी को आकृष्ट करता है, उसी तरह पाराशरोपपुराण भी सभी उपपुराणों में शीर्ष स्थान पर विराजमान है।

इस पुराण में ऐसा उल्लेख है कि अठारहों उपपुराण मुनियों द्वारा लिखित होने के कारण साधारण नहीं हैं, अपितु अपने आप में विशिष्ट हैं। भगवान् शिव की आज्ञा से और व्यास जी की प्रेरणा से अठारहों उपपुराण मुनियों ने लिखे हैं। यथा-

> एवमाज्ञापितास्तेन शिवेन मुनयः पुरा।
> श्रुत्वा सत्यवतीसूनोः पुराणं सकलं मुदा।
> अन्यान्युपपुराणानि चक्रुः सारतराणि वै।।

अतः यह कहा जा सकता है कि भगवान् शंकर के साथ परम्परा सम्बन्ध से तथा भगवान् विष्णु के अवतार स्वरूप व्यास जी के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने से उपपुराणों की पुष्कल महिमा है।

विष्णुपुराण के वक्ता पराशर हैं और पाराशरोपपुराण के वक्ता भी पराशर ही हैं। 'पराशरोक्तमपरम्' लिखकर इस बात का स्पष्टीकरण भी किया गया है। अर्थात् दोनों पुराणों का अस्तित्व प्राचीन काल से है। हेमाद्रिकृत चतुर्वर्गचिन्तामणि ग्रन्थ में कूर्मपुराण से उद्धृत उपपुराणों वाली सूची में 'पराशरोक्तं प्रवरम्' लिखा है। इससे भी इसकी श्रेष्ठता एवं प्राचीनता सिद्ध होती है।

निबन्ध ग्रन्थों तथा दर्शनादि के ग्रन्थों में पाराशरोपपुराण का उल्लेख है तथा पाराशरोपपुराण को प्रामाणिक एवं श्रेष्ठ पुराणों की कोटि में प्राचीन निबन्धकारों ने भी माना है। माधवाचार्य ने पराशर संहिता के अपने भाष्य में प्रायश्चित काण्ड द्वादश अध्याय में आदर के साथ इस पुराण के श्लोकों को उद्धृत किया है। यथा -

शरीरारम्भकं कर्म योगिनो भोगिनोऽपि च।
विना फलोपभोगेन न च नश्यत्यसंशयम्।।
वर्तमानशरीरेण संपन्नं कर्म देहिनः।
इह वाऽमुत्र वाऽज्ञस्य ददाति स्वफलं शुक।। - इत्यादि।
(पारा. अ. १८२ श्लो. ७६-८०)

इसी तरह सांख्यसूत्र-विज्ञानभिक्षुभाष्य में प्रथमाध्याय के प्रथम सूत्र में पाराशर पुराण के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये गए हैं :-

अक्षपादप्रणीते च काणादे सांख्ययोगयोः।
त्याज्यः श्रुतिविरुद्धोंऽशः श्रुत्येकशरणैर्नृभिः।।
जैमिनीये च वैयासे विरुद्धांशो न कश्चन।
श्रुत्वा वेदार्थं विज्ञानं श्रुतिपारङ्गतौ हि तौ।। (पारा. अ. ८।२६, ३०)

वैद्यनाथ पायगुण्डे कृत महाभाष्य (नवाह्निक) की छाया नामक टिप्पणी में सूत्र, भाष्य, वार्तिक आदि के निरूपण-प्रसंग में इस पुराण के अध्याय १८ से कई श्लोक उद्धृत किये गये हैं, जो बड़े प्रसिद्ध हैं। यथा -

सूत्र - अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः।।
वार्त्तिक- उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः।।

भाष्य- सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यं सूत्रानुकारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः।।

व्याख्यान-पदच्छेदः पदार्थश्च विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम्।।

प्रकरण- शास्त्रैकदेशसंसिद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम्।
आहुः प्रकरणं नाम शास्त्रभेदविचक्षणाः।।
सूत्रभाष्यादिभिः शास्त्रं साक्षाद् वेदनसाधनम्।
श्रोतव्यं स्वगुरोः स्वात्मस्वरूपप्रतिपत्तये।।
आत्मलाभात्परं नास्ति किंचिन्मात्रमपि द्विज।
पराशरपुराणे वै स्पष्टमेतन्निबोधत।।
जीर्णैरनुक्तमत्रोक्तं सूत्रार्थप्रतिपत्तये।।

भट्टोजिदीक्षित कृत 'तत्वकौस्तुभं' ग्रन्थ में उद्धृत श्लोक भी अधिक प्रसिद्ध हैं। यथा-

पाणिनीयं महाशास्त्रं पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन।। (परा. ८।२६)

त्र्यम्बक ओक विरचित 'आचारभूषण' नामक ग्रन्थ में पराशर-पुराणोक्त वचन भी द्रष्टव्य है :-

तदयं निर्मलितार्थैः पराशरपुराणे भगवता पराशरेण दर्शितः-

भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्।
वर्णधर्मतया प्राज्ञाः प्रवदन्ति मनीषिणः।
आश्रमाणां च सर्वेषां धर्मत्वेनाहुरास्तिकाः।।

(अ. ४२ श्लो. ४२, ४३)

'स्मृतिमुक्ताफल' ग्रन्थ में वैद्यनाथ दीक्षित ने आह्निक काण्ड के क्रियास्नान प्रकरण में त्रिपुण्ड्र की महिमा बताते हुए पराशर पुराण का वचन उद्धृत किया है :-

श्रौतं लिंङ्ग च विज्ञेयं त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम्।
अत्रोतमूर्ध्वपुण्ड्रादि नैव तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्।।
नराणामुत्थिता जातिर्येषां तन्त्रोक्तवर्त्मना।
ललाटे तैः सदाधार्य मृदापुण्ड्रान्तरं द्विज।।

जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपन्थानमाश्रितः।
पुण्ड्रान्तरं भ्रमाद् वापि ललाटे नैव धारयेत्।। (४।६, ६।१३-१४)

उक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि इस उपपुराण का पठन-पाठन और जनप्रियता सदैव रही है। यही कारण है कि इसकी मातृकायें (पाण्डुलिपि) बहुतसे स्थानों पर और बहुतसी लिपियों में प्राप्त होती हैं।

पाराशरोपपुराण का प्रकाशन

इस पुराण का प्रथम प्रकाशन वि. सं. २०४६ में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की 'सरस्वती भवन अध्ययन माला' के अन्तर्गत हुआ है। इसका समीक्षात्मक संपादन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के उपाचार्य डा. कपिलदेव त्रिपाठी ने किया है। संपादन देवनागरी लिपि में लिखित ६ हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। उनमें दो प्रतियां अपूर्ण हैं। और चार प्रतियां पूर्ण हैं, जो सरस्वती भवन ग्रन्थागार में सुरक्षित हैं। उन सबों का आलोचन कर पाठभेदों को प्रदर्शित करते हुए यथाविधि संपादन किया गया है। विस्तृत भूमिका में पुराणगत विषयों का विवेचन किया गया है। उनमें सृष्टिक्रम, वाराणसी वैभव, प्रायश्चित विचार, अह्निककृत्य विमर्श, मुक्तिस्वरूप, शिवस्वरूप, भस्म-त्रिपुण्ड्र-रुद्राक्ष महिमा आदि मुख्य हैं। यहीं पर संपादक ने पुराणों और उपपुराणों का परिचय प्रस्तुत करते हुए पराशरपुराण की विशेषता का भी प्रतिपादन किया है।

काल निर्धारण

पाराशरीय पुराण के काल निर्धारण में डा. आर.सी. हाजरा के मत का उल्लेख करना पर्याप्त है। उनके मत से सम्पूर्ण उपपुराण वाङ्मय एक कालिक नहीं है। भिन्न-भिन्न कालों में उनकी रचना हुई है। कूर्मपुराण के अठारह उपपुराण विषयक श्लोकों को उद्धृत कर उन्होंने विचार किया है कि कूर्मपुराण के ये श्लोक रघुनन्दन के स्मृतितत्व में और हेमाद्रिकृत चतुर्वर्ग चिन्तामणि में उद्धृत हैं। उक्त सूची की तरह ही दूसरी सूची स्कन्दपुराण की सारसंहिता में तथा शिवमाहात्म्य खण्ड में भी प्राप्त होती है। बल्लाल सेन कृत दानसागर में भी कूर्मपुराण और आदिपुराण की उपपुराणसूची मिलती है। इसी तरह अन्य साक्ष्यों से भी यह स्पष्ट होता है कि १८ उपपुराणों का निर्माण काल ८५० ई. से उत्तरकालिक नहीं है।

इससे भी अधिक उपपुराणों की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए मत्स्यपुराण के ५३वें अध्याय के वे श्लोक हैं, जिनके अनुसार नारसिंह, नान्दी, साम्ब और आदित्य उपपुराण तत्कालीन मानव समाज में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुके थे। उक्त अध्याय की संभावित काल हाजरा महोदय के अनुसार ५५०-६५० ई. उ. हो सकता है। तथा ५९ से ६३ श्लोक,

जिनमें उपर्युक्त उपपुराणों का उल्लेख है, ६५०-८५० ई.उ. के हो सकते हैं। उपपुराणों के सम्बन्ध में निर्धारित उक्त कालक्रम अन्य व्यक्तिगत रूप से लिखे गए उपपुराणों के विषय में मान्य नहीं हैं।

नारसिंह-नान्दी-साम्ब-आदित्य इन चार उपपुराणों, जिनकी चर्चा मत्स्यपुराण के ५३वें अध्याय में की गई है, का निर्माण उपपुराण समूह के निर्माणके पूर्व में ही हो चुका था। कालान्तर में ये भी चारों उपपुराण उनमें सम्मिलित कर लिये गए। इस प्रकार यह अनुमान है कि उपपुराणों की रचना का आरम्भ इससे पूर्व ही है।

पराशर पुराण में लिखा है कि उपपुराणों की रचना, व्यासमुनि से अठारह पुराणों को सुनकर, अन्य मुनियों ने की। उसी समय मुनिवर पराशर ने यह पुराण भगवान् शिव की आज्ञा से निर्मित किया।

इससे यह सिद्ध होता है कि अठारह महापुराणों की रचना के अनन्तर ही उपपुराणों की रचना प्रारम्भ हुई। अतः यदि महापुराणों का रचनाकाल ईसा की षष्ठ शताब्दी पर्यन्त माना जाता है, तो उसके पश्चात् ही उपपुराणों का निर्माण काल स्वीकार किया जाना उचित है। अर्थात् ईसा की षष्ठ शताब्दी से लेकर ८५० ईसवी पर्यन्त उपपुराणों का रचनाकाल माना जा सकता है।

उनमें पाराशरोपपुराण की रचना का काल निर्धारण करना है। इसके लिए यह विचारणीय है कि इस पुराण का उल्लेख किस प्राचीन ग्रन्थ में हुआ है। जैसा कि ऊपर वर्णित है सबसे प्राचीन सायण भ्राता माधवाचार्य हैं, जिन्होंने अपने ग्रन्थ पराशरसंहिता की टीका में इस पुराण के श्लोकों को बड़े आदर के साथ उद्धृत किया है। माधवाचार्य का काल १३०० से १३८० ई. है। अतः इसके पूर्व ही इसका निर्माण काल होना निश्चित है। अन्य भाष्यकारों एवं निबन्धकारों ने भी इसके वचनों को उद्धृत किया है। इस पुराण में सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक, पाणिनीय व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त आदि के नाम भी आये हैं। तन्त्र और आगम शब्द भी आये हैं। अतः इसका निर्माणकाल ई. उ. ८५० से १००० ई. तक मानना उचित है।

अध्याय सारांश

प्रथम अध्याय

भगवान् साम्ब शिव को प्रणाम कर मुनिवर शुकदेव ने मेरुशृंग पर समासीन पराशर जी से पूछा-भगवन् भवपाश में आबद्ध जीवों की मुक्ति हेतु कोई उपाय बताइये। पराशर जी ने भगवान शंकर का ध्यान कर कहा-पहले कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने पुराणों का निर्माण कर जब मुनियों को दिखाया, तब मुनियों ने उनके रचनानैपुण्य की प्रशंसा की।

उसी समय परम कारुणिक भगवान शंकर जी भवानी के साथ वहां प्रकट हुए। मुनियों ने उनकी अर्चना एवं स्तुति की। उससे प्रसन्न हो भगवान शंकर ने कहा-व्यास जी ने मेरे प्रसाद से लोक कल्याणार्थ सभी पुराणों (महापुराणों) की रचना की है। इससे मैं प्रसन्न हूं। अब आप लोग उनसे पुराणों को सुनकर उपपुराणों की रचना कीजिये। यह कह कर वह वहीं पर अन्तर्हित हो गए। तदनन्तर मुनियों ने वक्ष्यमाण १८ उपपुराणों की रचना की। उसी समय मैंने (पराशर जी) भी पाराशर उपपुराण की रचना की। उपपुराणों के नाम निम्नलिखित हैं :-

१. सनत्कुमार, २. नारसिंह, ३. नान्दी, ४. शिवधर्म, ५. दौर्वास, ६. नारदीय, ७. कापिल, ८. मानव, ९. औशनस, १०. ब्रह्माण्ड, ११. वारुण, १२. कालिकापुराण, १३. वाशिष्ठ लैङ्ग, १४. साम्ब, १५. सौर, १६. पाराशर, १७. मारीच तथा १८. भार्गव।

यह पाराशर उपपुराण शिवप्रीतिकारक है।

द्वितीय अध्याय (सृष्टि)

प्रलयकाल में यह चराचर जगत् अपने कारण रूप मायाभिन्न परमेश्वर में रहता है। सृष्टि के समय माया से महान् आत्मा की उत्पत्ति होती है। महानात्मा स्रष्टव्य विषयक सत्वज ज्ञान है। महान् आत्मा को सृष्ट कर शिव स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गए। इस प्रकार महानात्मा ज्ञान की प्रधानता से 'सर्वज्ञ' तथा ईक्षणोपाधि से 'प्रधान' कहा गया है। वह सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों को अपने में आत्मसात् करके रजोगुण से जगत् की सृष्टि, सत्वगुण से पालन तथा तमोगुण से संहार करता है। वही स्रष्टा के रूप में ब्रह्मा, गोप्ता के रूप में विष्णु एवं संहर्ता के रूप में शिव के नाम से पुकारा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सृष्टि के अनन्तर माया से शब्दपूर्विका भूतसृष्टि होती है। शब्दादि पंच महाभूतों के सात्त्विक अंश से ज्ञानशक्ति (ज्ञानेन्द्रियां), राजस अंश से कृतिशक्ति (कर्मेन्द्रियां) उत्पन्न होती हैं। वही ज्ञानशक्तियां स्वकारण रूप माया (अविद्या) से कवलित होती हुई एकाकारता को प्राप्त होकर कालकर्म विपाक से अन्तःकरणों (मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार) के व्यष्टि-समष्टि रूप में प्रवृत्त होती हैं। इसी तरह कृतिशक्तियां भी पंचविध प्राणों के व्यष्टि-समष्टि रूप में प्रवृत्त होती हैं। इसके अभिमानी देवता भगवान् साम्ब शिव हैं। उसी साम्ब शिव की माया से सभी ब्रह्माण्डों, लोकों, देवताओं, वर्णों, आश्रमों आदि की उत्पत्ति हुई है। वही सबके कारण हैं। अन्य कोई नहीं। अतः उन्हीं की उपासना श्रौत एवं स्मार्त विधि से करनी चाहिए। वही देवाधिदेव महादेव संसार के मुक्तिदाता हैं। वही शिवशंकर हैं, अतः उन्हीं का ध्यान करना चाहिए। यही अथर्ववेद का कथन है -

सर्वमन्यत् परित्यज्य शिव एव शिवंकरः।
ध्येय इत्याह परमा श्रुतिराथर्वणा खलु।।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में जीवों का तारतम्य बताते हुए मनुष्यों में द्विजों तथा देवों में साम्ब शिव को श्रेष्ठ माना गया है।

चतुर्थ अध्याय

इस अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि के लिंगों (चिह्नों) का निर्देश करते हुए शैव लिंग-तिर्यक् त्रिपुण्ड्र की विशेषता बताई गई है, जो विधि-पूर्वक भस्म द्वारा धारण किया जाय। अन्य लिंग (चिन्ह) ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि की भर्त्सना की गई है। भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण से शिव आदि देवता एवं पार्वती आदि देवियां प्रसन्न होती हैं। यही श्रौत लिंग है। अतः धारणीय है। इसके बिना मुक्ति संभव नहीं है।

पंचम अध्याय

मानवों की वरिष्ठता का क्रम बताते हुए यहां पर स्पष्ट किया गया है कि सभी मानवों में जम्बूद्वीप निवासी वरिष्ठ हैं। उनमें भी प्रतिलोमज से अनुलोमज और अनुलोमज से वर्णसंभव मनुष्य श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण मनुष्यों में देवता हैं। इसी से वह 'भूसुर' कहा गया है। ब्राह्मणों से श्रेष्ठ देव हैं। इनमें भी ब्रह्मा से विष्णु और विष्णु से शिव की श्रेष्ठता कही गई है। दो वरिष्ठों में ही सम्बन्ध उचित एवं श्लाघ्य होता है। अतः शिव के साथ विप्र का सम्बन्ध प्रशंसनीय है। सभी देवता शंकर हैं। पुरन्दर, वृषल, ब्रह्मा वैश्य, विष्णु, क्षत्रिय तथा रुद्र ब्राह्मण हैं। अतः वेदज्ञ ब्राह्मण को शिव की उपासना करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं करता, उसमें अवश्य ही सांकर्य है। आदिभूत शिव द्वारा चारित भस्म त्रिपुण्ड्र का अनुसरण ब्राह्मण का नित्यधर्म है।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय में वेद का गूढार्थ बताते हुए पराशर जी कहते हैं कि वेदों का प्रत्यक्षसिद्ध अर्थ सभी के लिए ग्राह्य है, किन्तु अप्रत्यक्षसिद्ध अर्थ मुनीश्वर लोग अधिकारी विशेष के लिए कभी-कभी प्रकट करते हैं। वेद में कहीं शैवागम के अनुसार, कहीं वैष्णवागम के अनुसार, कहीं ब्राह्मतंत्र के अनुसार वर्णाश्रम धर्म की बात कही गयी है। स्मृतियां, पुराण, महाभारत आदि इतिहास भी कहीं पर कभी भ्रष्टों के लिए वैदिक धर्म का उपदेश कर देते हैं। उक्त धर्म में भी महादेव की ही पूजा प्रधान रूप से कही गई है, अन्य की नहीं। तात्पर्य यह है कि शिवतत्त्व की प्राप्ति हेतु विष्णु आदि देवों की पूजा करनी चाहिए। वैदिक धर्म में त्रिपुण्ड, भस्म धारण, शिवलिगांर्चन मुख्य है। साथ ही रुद्राक्ष-धारण का भी महत्त्व है।

सप्तम अध्याय

इस अध्याय में ब्राह्मण का वैभव बताया गया है। ब्राह्मण तीन प्रकार के होते हैं-(१) जन्मब्राह्मण (२) वेद ब्राह्मण तथा (३) ब्रह्म-ब्राह्मण। ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न प्रथम, वेदघोषपूर्वक जिसका जन्म होता है, वह द्वितीय तथा महादेव के प्रसाद से जिस ब्राह्मण की उत्पत्ति होती है, वह ब्रह्मज्ञाननिष्ठ तृतीय (ब्रह्मब्राह्मण) हैं। यह उत्तम कोटि का ब्राह्मण है। इन्द्र के प्रसाद से शूद्रकुल में, ब्रह्मा के प्रसाद से वैश्य कुल में, विष्णु के प्रसाद से क्षत्रिय कुल में तथा महादेव के प्रसाद से ब्राह्मण कुल में जन्म होता है। महादेव के ही प्रसाद से क्षत्रिय राजा होता है। जैसे देवों में श्रेष्ठ महादेव हैं, वैसे ही मनुष्यों में श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है। ब्राह्मण की तपस्या से यह जगत स्थित है। अतः ब्राह्मण की निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिए। जो ब्राह्मण ब्रह्मविद्या का ज्ञाता हो, उसकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण का चिह्न-यज्ञोपवीत, उदकयुक्त कमण्डलु, दण्ड तथा भस्मत्रिपुण्ड्र है। ब्राह्मण स्पर्श से यह भूमि पवित्र होती है। उसके दर्शन मात्र से सभी पाप धुल जाते हैं। जैसे माता के आश्रय में सन्तान का वर्धन होता है, वैसे ही ब्राह्मण के आश्रय से ही जगत वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। अधिक क्या कहा जाय, ब्राह्मण साक्षात् देवता है। उसका अपमान कदापि नहीं करना चाहिए।

अष्टम अध्याय

इस अध्याय में वेद का रहस्यार्थ बतलाया गया है। वेद-वेदान्त प्रतिपादित ज्ञान और कर्म में ज्ञान की प्रधानता है। ज्ञान दो प्रकार के होते हैं-(१) साक्षात् परमतत्त्व का ज्ञान (२) कारण से उत्पन्न ज्ञान। कारणोत्पन्न ज्ञान दो प्रकार के हैं-(१) तत्त्वावेदक, (२) मृषार्थक। उसमें तत्त्वावेदक ज्ञान वेदान्तभावोत्पन्न हैं। उसी को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। उसकी प्राप्ति शान्ति-प्रव्रज्या-एकाग्रमति-भस्मोद्धूलन आदि से ही संभव है। मृषार्थ विषयक ज्ञान अतत्त्वावेदक है। वही व्यवहार दशा में मिथ्याज्ञान कहा जाता है। वेद में ही विज्ञान है। अन्यत्र नहीं। इसलिए वेदों और तन्मूलक मन्वादि शास्त्रों तथा पुराणों का आश्रय लेना श्रेयस्कर है। वेद में भी जो विरुद्ध अंश है, वह त्याज्य है। सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक आदि में भी वेदविरुद्ध अंश त्याज्य है। किन्तु पाणिनीय व्याकरण शास्त्र सभी ग्राह्य हैं। मीमांसा और वेदान्त में कोई वेदविरुद्ध अंश नहीं है, अपितु वेदार्थ विज्ञान में वे सर्वथा उपयोगी हैं। बौद्ध-जैन-चार्वाक शास्त्र सर्वथा त्याज्य हैं।

नवम अध्याय

इस अध्याय में आह्निक कृत्यों का विचार किया गया है। प्रातःकाल सायंकाल और मध्याह्नकाल के कृत्यों का विशद विवरण दिया गया है।

दशम अध्याय

इस अध्याय में ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि के आचारों का विधि एवं निषेध द्वारा वर्णन किया गया है।

एकादश अध्याय

इस अध्याय में कहा गया है कि महादेव, विष्णु, आदि देवताओं के निन्दक, साम्ब शिव को जगत् का मूल कारण न मानने वाले, भस्मत्रिपुण्ड्र को छोड़कर त्रिशूल आदि लिंगों को ललाट में धारण करने वाले, वेद-शास्त्र विरुद्ध निषिद्ध कार्य करने वाले, पांचरात्र-कापालिक आदि में दीक्षित और वशीकरण मारण आदि में लिप्त मनुष्य पापकर्मी हैं।

द्वादश अध्याय

इस अध्याय में अभक्ष्य अन्नों का विस्तृत वर्णन करते हुए अन्न-दोष से चित्त के कालुष्य का उल्लेख है और कहा गया है कि दूषित अन्न से अधर्म ही धर्मरूप से भासित होता है और स्वतः प्रकाशित ब्रह्म का आभास नहीं होता है। अतः बुद्धिमान् को अभक्ष्य अन्न का सर्वथा परित्याग करना चाहिए। यहां पर निषिद्ध अन्न की लम्बी सूची दी गई है। रोगियों के लिए सुरा को छोड़कर अभक्ष्य अन्न भी भक्ष्य कहा गया है।

त्रयोदश अध्याय

इस अध्याय में प्रायश्चित्त का निरूपण है। ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय तथा गुरुदाराभिगमन को महापाप कहा गया है तथा इनके शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तों को यथावत् उल्लेख किया गया है। अन्त में कहा गया है कि सभी पापों के अपनोदन हेतु साम्ब शिव का ध्यान करना चाहिए और प्रणव सहित पंचाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का जप करना चाहिए।

चतुर्दश अध्याय

इस अध्याय में भी पापों के प्रायश्चित्त का निरूपण किया गया है। पाप-कानन के विनाश के लिए ज्ञानदावानल की आवश्यकता है। ज्ञान प्राप्त होने पर क्षण मात्र में ही सभी पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रदीप्त अग्नि द्वारा काष्ठपुंज नष्ट हो जाता है। किन्तु सुदीप्त अग्नि भी चन्द्रकान्त मणि, मन्त्र, औषधि आदि प्रतिबन्धक कारण होने पर काठ को नहीं जला पाती, उसी तरह ज्ञान के प्रतिबन्धक कारण असंभावना और विपरीत भावना के होने पर पाप नष्ट नहीं होते। वे दोनों ही शास्त्रों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा निवृत्त हो जाते हैं और ज्ञान उदीप्त हो जाता है और पापों का समूलोन्मूलन कर देता है।

यह सम्पूर्ण जगत् मायामय है। आत्मा ही सबका अवभासक है। इस प्रकार जो आत्मतत्त्व को जानता है, वही व्यक्ति ब्रह्मविद् कहलाता है। इस प्रकार का ज्ञान जिसको होता है, वह पाप-पुण्य से लिप्त नहीं होता। एक-एक पाप के जो प्रायश्चित्त कहे गए हैं, उसे बड़े-बड़े लोग भी नहीं कर सकते। यह अद्वैत ज्ञान ही एकमात्र सभी पापों का उन्मूलन करने में समर्थ है। उस निर्मल ज्ञान की प्राप्ति भगवान् साम्ब शिव की भक्ति से ही संभव है। अतः श्रद्धापूर्वक उसका आश्रयण करना चाहिए।

पंचदश अध्याय

इस महत्वपूर्ण अध्याय में वाराणसी क्षेत्र की महिमा का विस्तृत वर्णन है, जिसे पार्वती जी के पूछने पर स्वयं भगवान शंकर ने स्पष्ट किया है। अविमुक्त नाम से विख्यात यह उत्तम क्षेत्र संसार रूपी विषवृक्ष का कुठार है। इसकी स्थिति आध्यात्मिक, आधिदैव तथा आधिभूत तीनों में है। यह सभी पापों का विनिवर्तक है। अधिभूत स्थित ब्रह्माण्ड स्वरूप मायी विराडात्मा के दोनों भौहों के बीच में यह अवस्थित है। वाराणसी सेवन से सर्वपापविनिर्मुक्त प्राणी शिवत्व को प्राप्त करता है। यह क्षेत्र ब्रह्म-सदन है और सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है। इसके सेवन से सभी तीर्थों के सेवन का फल मिलता है। यहां पर एक मास गंगास्नान करने से बुद्धिपूर्वक किए गए पाप नष्ट होते हैं। एक बार भी यहां पर गंगा स्नान कर विश्वेश-लिंग के दर्शन से, उपवास तथा श्रद्धापूर्वक दान करने पर ब्रह्महत्यादि सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। यहां जप, हवन, दान आदि का अनन्तफल है।

यहां पर मरने वाले प्राणी को भगवान् शंकर कृपा करके अपना तारक मंत्र प्रदान करते हैं, जिससे वह महाकष्टकर संसार को छोड़कर परानन्द स्वरूप हो जाता है। अतः यह अविमुक्त क्षेत्र सर्वदा सेवनीय है। इसका अपूर्व महात्म्य है। इसका वर्णन साक्षात् शिव भी नहीं कर सकते हैं। जाबालोपनिषद् भी इस क्षेत्र का वैभव जानती है, इसमें सन्देह है। 'वाराणसी' नामक यह क्षेत्र देही के दोनों भौहों एवं प्राण के सन्धि में संस्थित है। उसमें ही मुमुक्षुओं को अविमुक्त का चिन्तन करनाा चाहिए। यहां पर भगवान् शिव अम्बा पार्वती के साथ सदा निवास करते हैं। यहां पर क्षणमात्र भी चिन्तन सभी पापों का प्रायश्चित्त है।

षोडश अध्याय

इस अध्याय में शिव की पूजा का वर्णन है। सच्चिदानन्द स्वरूप परिपूर्ण रुद्र की पूजा केवल ज्ञान है। यह ज्ञानपूजा आवाहन-विसर्जन-क्रियाकलाप से विनिर्मुक्त है। यह परमानन्दप्रद पूजा योगियों के लिए सार्वकालिक है। प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय-प्रमिति चारों ही चैतन्य स्वरूप हैं। यह चराचर जगत् महादेव का ही विग्रह है, यह ज्ञान ही परमेश्वर की महती पूजा है। जो योगी नहीं है, उन्हें लिंग में शिवार्चन करना चाहिए। इस प्रकार सभी शुद्ध कर्म ज्ञान के उत्पादक हैं। ज्ञान हो जाने पर सभी क्रियायें स्वतः विनष्ट हो जाती हैं।

शिव की पूजासे ही परा मुक्ति तथा शुद्ध ज्ञान, ब्रह्मा, विष्णु आदि के पद की प्राप्ति, आठों ऐश्वर्यों की प्राप्ति, देवत्व की प्राप्ति, चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति, सार्वभौमिकता, सुन्दर स्त्री, उत्तम भवन आदि की प्राप्ति होती है। विष्णु ने शिलामय लिंग की पूजा से ही परम पद प्राप्त किया और लक्ष्मी जी उनकी वल्लभा बनीं। ब्रह्मा जी ने शिवलिंग के अर्चन से ही भारती को प्राप्त किया। शची शिवलिंगार्चन से ही इन्द्राणी बनीं।

जिस प्राणी की इन्द्रियां पूजा में संलग्न रहती हैं, उनका जीवन सफल है। अतः एक समय, दो समय अथवा तीनों समय प्रतिदिन शिवलिंग का सविधि पूजन श्रद्धा से करना चाहिए।

सप्तदश अध्याय

इस अध्याय में परमतत्त्व का विवेचन किया गया है। यह दृश्य जगत् किसी अधिष्ठान में, अज्ञान के द्वारा शुक्तिका में रजत की तरह, कल्पित है। कल्पित जगत् का जो अधिष्ठान है, वह कल्पित पदार्थ से अतिरिक्त तद्भिन्नलक्षण है। अर्थात् असत्य जगत् का अधिष्ठान सत्य ही है। जैसे असत्य शुक्ति-रजत का अधिष्ठान शुक्ति सत्य ही है, न कि शुक्ति-रजत सदृश असत्य। यहां पर दृष्टान्त रूप शुक्ति में जो सत्य गृहीत है, वह सत्य व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं; किन्तु जगदधिष्ठान रूप में वह सत्यत्त्व व्यावहारिक न होकर पारमार्थिक है। क्योंकि उस सर्वसाक्षिस्वरूप का जन्म और नाश नहीं होता है। सभी दृश्यजगत् के अवभासक होने से वह अधिष्ठानभूत चैतन्य सर्वावभासक, स्वयंप्रभ एवं स्वप्रकाशक है। वह चैतन्य स्वसत्ताप्रकाश रूप प्रिय अंश से जगत् में व्याप्त होकर विराजमान है। वस्तुतः उस चैतन्य के बिना जगत की प्रतीति ही नहीं हो सकती है, अपितु उसी से जगत् की सत्ता है। वह सत्य, ज्ञान, सुखस्वरूप और अनन्त है। सजातीय-विजातीय स्वगत भेदशून्य होने से उसका कोई धर्म नहीं होता है। यह द्वैत दृश्य जगत् माया मात्र है, वस्तुतः वह अद्वैत ही है, यही सत्यार्थवादिनी श्रुति का कथन है। उक्त परमतत्व का विशेष नाम शिव, शम्भु, परब्रह्म, ईशान, ईश्वर आदि हैं। वास्तविकता यह है कि उस परब्रह्म की मूर्ति शुद्ध और स्वतंत्र है। उसी का ध्यान ब्रह्मादि देवता करते हैं। वही शिव मूर्ति जगत् की सृष्टि तथा पालन में अम्बा के साथ रहती है तथा संहार में केवल रहती है। उसी शुद्ध परमेश्वर-मूर्ति का ध्यान ज्ञानी को करना चाहिए। अज्ञानी को ज्ञानोदय पर्यन्त उसकी वैदिक विधि से पूजा करनी चाहिए।

अष्टादश अध्याय

इस अध्याय में पहले 'शास्त्र' शब्द का अर्थ संक्षेप में कहा गया है। तदनन्तर मुक्ति के स्वरूप का विवेचन किया गया है। शासन और शंसन दोनों ही कारणों से शास्त्र को शास्त्र कहा गया है। यथा-

'शासनाच्छंसनाच्चैव शास्त्रमित्युच्यते बुधैः।'

यहां पर शासन द्विविध कहा गया है-१-विधि से और २-निषेध से। शंसन का तात्पर्य केवल मूलवस्तु विषयक है। उक्त शास्त्र का अधिकारी अज्ञ ही होता है प्राज्ञ नहीं। यह शास्त्र आपाततः अनेक हैं, किन्तु न्यायतः एक हैं न्याय ही शास्त्र का निर्णायक है। उस न्याय का स्फुरण शिव की आज्ञा से 'सूत्र' रूप में हुआ है। 'सूत्र' उसे कहते हैं जो अल्पाक्षर, असंदिग्ध, सारवत्, विश्वतोमुख (व्यापक अर्थ वाला) अस्तोम (निरर्थक शब्द हीन) तथा अनवद्य (दोषरहित) हो। उन सूत्रों का अर्थ भगवान् शंकर की कृपा से मुनि और मनुष्य भाष्य रूप में प्रकट करते हैं। भगवान शंकर के ही प्रसाद से कुछ लोग उक्त भाष्य का व्याख्यान भी करते हैं। व्याख्यान-पदच्छेद, पदार्थकथन, विग्रह, वाक्ययोजना, आक्षेप का समाधान भेद से पांच प्रकार का होता है। कुछ लोग 'वार्तिक' रूप में भाष्य का व्याख्यान करते हैं। वार्त्तिक उसे कहते हैं, जिसमें उक्त, अनुक्त तथा दुरुक्त का चिन्तन किया गया हो। कुछ मनीषी भाष्य का विवरण 'प्रकरण' रूप में करते हैं। प्रकरण वह कहलाता है, जो शास्त्र के एक देश से सम्बद्ध होते हुए भी उसके कार्यान्तर में स्थित हो। इस प्रकार शास्त्र सूत्र, भाष्य आदि के द्वारा, साक्षात् आत्मज्ञान का साधन है। उसे गुरु से सर्वदा सुनना चाहिए। आत्मा की उपलब्धि से बढ़कर कोई उपलब्धि नहीं है। वही आत्मानन्द है तथा वही आत्मज्ञान है।

मुक्तिस्वरूप

भारतीय चिन्तन में मोक्ष को ही परम पुरुषार्थ कहा गया है। मोक्ष का ही पर्याय मुक्ति है। पाराशरपुराण में मुक्ति के स्वरूप का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया गया है :-

'स्वस्वरूपस्य लाभेन स्वात्मानन्दो महत्तमः।
अपरोक्षतया भाति सा परा मुक्तिरात्मनः।।
'स्वभावादेव यः साक्षी स एव परमः शिवः।
तदैक्यं हि परा मुक्तिजीवसंशस्य देहिनः।।'
''विश्वमायानिवृत्तिस्तु मुक्तिः परतरा मता।'' (अ. १८।२६, ५८, ६८)

उक्त श्लोकों का यह आशय है कि आत्मा समस्त जगत् में व्याप्त है। स्वरूप के लाभ से महान आत्मानन्द प्राप्त होता है और वही परामुक्ति है। जैसे सूर्य का बिम्ब प्रतिबिम्ब की अपेक्षा विशिष्ट है, उसी तरह ईश्वर भी जीव से श्रेष्ठ एवं विशिष्ट है। क्योंकि वह जीव का स्वाभाविक साक्षी है। वही परम शिव है। उसके साथ ऐक्य होना ही देही की परम मुक्ति है। विश्व माया निवृत्ति को भी परम मुक्ति कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भोग से जब प्रारब्ध कर्म क्षीण हो जाता है, तो विद्या के द्वारा माया की निवृत्ति हो

जाती है। विद्या का तात्पर्य वेदान्त विद्या से है। वेदान्त विद्या-प्राप्त मुमुक्षु विद्वान् को परम पद की प्राप्ति होती है। यही परम मुक्ति है। यहां पर भगवान् पराशर ने जिस मुक्ति का उल्लेख किया है, वह वेदान्त मूलक है। उपनिषद् भी इसी का समर्थन करती है। यथा-

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति (मुण्डक उ. ३।२।९)
तरति शोकमात्मवित् (छा. उ. ७।१।३)

उपसंहार

उक्त कथन के बाद शक्तिपुत्र पराशर जी सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म में निमग्न हो गए। उसी समय वहां पर भगवती पार्वती देवी का प्राकट्य हुआ। किन्तु आत्मानुभव में लीन होने से पराशर जी ने उन्हें नहीं जाना। पराशर जी को आत्मलीन जान कर देवी ने शुकदेव जी से कहा-

मुनिवर पराशर ने जो कहा है, वह सब सत्य है। तुम इनके पौत्र तथा व्यास जी के पुत्र हो, अतः तुम्हें क्या नहीं सिद्ध है ? मेरे प्रसाद से वेदान्त का ज्ञान तुम्हें प्राप्त हो गया। यह ज्ञान सद्यः मुक्तिदायक है। अतः मेरी प्रसन्नता के लिए आलस्यरहित होकर हृदयाम्भोज में, वाणी में, ब्रह्मरन्ध्र में, मूलाधार में अथवा भ्रूमध्य में आदरपूर्वक मेरी पूजा करनी चाहिए। यह कहकर पार्वती देवी अन्तर्हित हो गईं। तदनन्तर पराशर जी ने शुकदेव जी को देखकर गणेश, षडानन और नन्दीश्वर सहित साम्ब शिव को प्रणाम करते हुए कहा-

महादेवः परं तत्त्वं विद्या वेदान्तवाक्यजा।
विद्याङ्गेषु समस्तेषु वरिष्ठं भस्मधारणम्।।
गुरुः संसारिणां नृणां संसारोदधितारकः।
श्रद्धाधर्मस्य मोक्षस्य कारणं सकलस्य च।। दि. ६।६।६१

देवीपुराण

उपक्रम–भारत में अनादिकाल से परब्रह्म परमात्मा की उपासना पञ्चरूपों में होती चली आ रही है, जिसके संकेत वेदों में भी प्राप्त होते हैं। इसमें शक्तिभाव प्रधान परब्रह्म की देवी रूप में मान्यता है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी भारत में देवी पूजा बहुत प्राचीन है, वैदिक संहिताओं के साथ-साथ सिन्धु सरस्वती सभ्यता के अवशेषों से भी इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानों के अनुसार ब्रह्मस्वरूपा देवी का विकास परवर्तिकाल में हुआ है जिससे अन्य सभी देवियों का प्रादुर्भाव माना जाता है। यद्यपि प्राचीन पुराण उपपुराणों में देवी के माहात्म्य, व्रत, उत्सवादि से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। महापुराणों में मार्कण्डेय पुराण, वामन पुराण, वराह पुराणादि में तथा बृहद्धर्म एवं भविष्योत्तर आदि उपपुराणों में भी देवी से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, परन्तु इन महापुराणों की छाया में लिखे गये देवी तत्त्व के प्रतिपादक उपपुराण अथवा अन्य स्वतन्त्र महापुराण भी अर्वाचीन माने जाते हैं। पूर्ववर्ति प्राचीन महापुराणों में स्वतन्त्र रूप से शाक्तमत का प्रतिपादन न होने से कालान्तर में देवीभागवत (महापुराण), देवीपुराण, महाभागवत, कालिकापुराण, चण्डीपुराण, सरस्वतीपुराण लक्ष्मीपुराण जैसे महापुराण एवं उपपुराणों की रचना की गई। इनमें मुख्यरूप से देवीस्वरूपों का वर्णन, महोत्सव, पीठ, व्रतादि की विशेष चर्चा की गई है; इन ग्रन्थों में किसी एक देवी को मुख्य मानकर शेषरूपों का अवतार रूप में वर्णन किया जाता है, ये पुराण शाक्तमत एवं उसके प्रचार प्रसार का विस्तृत वर्णन करते हैं। प्राचीन निबन्धकारों के निबन्धग्रन्थों में उद्धृत शक्ति सम्बन्धी अनेक श्लोक जो वर्तमान प्रकाशित पुराणग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि देवीतत्त्व का प्रतिपादन करने वाले अन्य पौराणिक ग्रन्थ भी रहे होंगे।

वेदवर्णित पृथ्वी, भूदेवी, देवमाता अदिति, सूर्यवधू ऊषा, सरस्वती, वाग्देवी, इला, श्रीआदि वैदिक देवियों के स्वरूप को आधार मानकर परवर्तिकाल में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि देवीस्वरूपों में विकसित किया गया है। कुछ पाश्चात एवं भारतीय विद्वानों के अनुसार शिव, गणेश, की ही तरह देवी को आर्येतर या अवैदिक कहा जाता है, आदिमजाति में न केवल भारत में अपितु मैसोपोटामिया एशिया-माईनर, सीरिया एवं वलखान आदि देशों में में मातृपूजा का क्रम प्रचलित था। जिनकी पर्वत शिखरों वृक्षादि में पूजा की जाती थी, कन्यारूप विशेष महत्त्वपूर्ण रहा है। दुर्गा या दुर्गा रूप में पर्वत देवी का वर्णन तैत्तरीय आरण्यक एवं महाभारत में मिलता है, जिसका सम्बन्ध हिमालय से रहा है। विन्ध्यवासिनी देवी सभी स्थानों पर कुमारी रूप में ही पूजी जाती हैं। पर्वत अरण्यों एवं निर्जन प्रदेशों में निवास करने वाली जातियाँ अपनी मातृदेवता की पूजा जातिगत आचार

के आधार पर वही करते थे इनमें मदिरा मांस एवं निषिद्ध पदार्थों का प्रयोग, पशुबलि मानवबलि और भैरवचक्र का विधान था।

उपपुराणों में देवीपुराण का अन्यतम स्थान माना जाता है, इसे भारतीय शाक्त-धर्मों का आगम माना गया है। यह पुराण तन्त्रों को प्रामाणिक मानते हुए भी वेदों का अत्यधिक समादर करता है, गायत्री मन्त्र के साथ ही अन्य वैदिक मन्त्रों को भी शक्तिपूजा में स्थान दिया गया है, जिसमें तीन प्रकार की अग्नि की स्थापना यज्ञों का विधानादि वैदिक प्रभाव का समर्थन करते हैं, इनमें वेदी के विभिन्न स्वरूपों और अवतारों के बारे में बहुत ही मूल्यवान सामग्री एकत्रित है, इसमें वर्णित अनेक दैत्यों के नाम भ सर्वथा नये हैं, यह पुराण धर्म की प्रायोगिक साधना का अधिक वर्णन करते हुए भी देवी विन्ध्यवासिनी के विजययुद्ध एवं शाक्त पीठों का विस्तार से वर्णन करता है। वर्तमान देवीपुराण में १२८ अध्याय एवं ५८२० श्लोक हैं। इस पुराण का प्रारम्भ ऋषियों के पूछे जाने पर महर्षि वशिष्ठ के प्रवचन से होता है।

(१) **प्रथमपाद (त्रैलोक्यविजयपाद)**-इसमें देवी का उद्भव एवं सृष्टि के विकास का वर्णन किया गया है।

(२) **त्रैलोक्याभ्युदयपाद**-इसमें देवराज इन्द्र की कथा, दुन्दुभि दैत्यवध, घोरासुर अभ्युदय, और विन्ध्याचल में देवी के अवतरण की कथा वर्णित है।

(३) **शुम्भ-निशुम्भमथनपाद**-इस पाद में भगवती द्वारा दोनों असुर-बन्धुओं के विनाश का वर्णन है।

(४) **चतुर्थपाद**-इसमें अन्धकासुर के साथ युद्ध, देवासुर संग्राम, कार्तिकेय तारकासुर युद्ध, उमा और काली का उद्भव, मातृकाओं का वर्णन, कुमार का जन्म, शकर की आराधना, उमा द्वारा पति की प्राप्ति और ग्रहयाग का वर्णन है। कुछ विद्वान देवी पुराण को अपूर्ण मानते हैं।

नामकरण का अभिप्राय-प्रायः सभी महापुराणों उपपुराणों के नाम उनके वक्ता, श्रोता अथवा प्रतिपाद्य देवताओं के आधार पर रक्खे गये हैं, इस उपपुराण में देवीतत्त्व का वैदिक एवं आगमानुरूप प्रामाणिक वर्णन होने से 'देवीपुराण' ऐसा इसका नामकरण सर्वथा समुचित है।

देशकाल-किसी भी पुराण या उपपुराण की प्राचीन सूचियों में इसका नाम उपलब्ध न होने पर भी इसे अर्वाचीन नहीं माना जा सकता। क्योंकि बहुत से प्राचीन निबन्धकारों ने इससे बहुत उदाहरण दिये हैं, रघुनन्दन, मित्रमिश्र, नरसिंहवाजपेयी, शैवनीलकण्ठ तथा एकाम्रपुराण ने इसे उपपुराण स्वीकार किया है। बृहद् विवेक ३ में दी गई औपपुराणों की सूची में भी इसका नाम उपलब्ध है- **(मुद्गलं कालिक देव्यौ च महाभागवतं ततः)**

हेमाद्रि, वल्लालसेन, अनन्तभट्ट, लक्ष्मीधर, जीमूतवाहनादि लगभग बीस निबन्धकारों के ग्रन्थों में भी प्रमाणस्वरूप इसके श्लोक उपलब्ध हैं, जो इसकी प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों के आधार पर भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है, २००-६०० ए.डी. तक भारत में प्रचलित ब्रह्मा की पूजा का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है जिससे निश्चय ही इस पुराण की रचना छठी शताब्दी के पूर्व हुई होगी, वाराहमिहिर की बृहत्संहिता से देवी पुराण में एक श्लोक का उद्धरण, याज्ञवल्क्य स्मृति से लिया गया देवी पुराण का ६९ (उन्हत्तरवां) अध्याय, और चरक संहिता से लिये गये देवीपुराण के अध्याय १०८-११० तक, बौद्धधर्म की अवनतदशा का वर्णन (देवीपुराण ६/३२-३३-६१), शैव और पाशुपत इन दो शैव सम्प्रदायों का वर्णन, वाम और दक्षिण दो शाक्त सम्प्रदायों का वर्णन, और हूणों म्लेच्छों द्वारा मन्त्रों के प्रयोग के आधार पर इस पुराण की पूर्वसीमा पञ्चम शताब्दी एवं अवर सीमा नवमशताब्दी मानी जा सकती है। इसका रचना स्थल, विन्ध्यक्षेत्र के प्रति अधिक आकर्षण होने के आधार पर विन्ध्याचल माना जा सकता है।

इस पुराण की बहुत ही कम पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं कुछ प्रमुख पाण्डुलिपियों का विवरण इस प्रकार है-

क्र.	प्राप्ति स्थान	पु. संख्या	लिपि	लिपिकाल	तिथि	अन्य विवरण
१.	कलकत्ता संस्कृत पुस्तकालय	३०८	देवनागरी	-	-	१३८ अध्याय
२.	राष्ट्रीय अभिलेखागार	१६५	देवनागरी	-	-	काठमाण्डू नेपाल
३.	राष्ट्रीय अभिलेखालय	४४२	"	-	-	काठमाण्डू नेपाल
४.	महाराजा लायब्रेरी	६१९६-४३३	देवनागरी	-	-	बीकानेर
५.	इंडिया आफिस लंदन	-	बंग लिपि	-	-	-
६.	सरस्वती भवन पुस्तकालय संपूर्णानन्द सं. विवि. वाराणसी	१५३०७	देवनागरी	१७६५	-	१ से २५० पृष्ठ १२.८ x ५ आकार ग्रन्थ पूर्ण।
७.	पुस्तकालय सरस्वती भवन सं.सं.वि.वि., वाराणसी	१५३११	नेवारी	१६०६	-	२४८ पृष्ठ ४.१ x ३.७ आकार है ग्रन्थ अपूर्ण है

इसका मुद्रित संस्करण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली से सन् १६७६ में किया गया है, जिसके सम्पादक प्रो. पुष्पेन्द्र कुमार शर्मा संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय हैं।

देवीपुराण की कथावस्तु–देवी पुराण का प्रारम्भ सूत शौनक संवाद से न होकर वशिष्ठ और ऋषियों के परस्पर संवाद से होता है, बिना किसी भूमिका के देवी नमस्कार के अनन्तर पुराण आरम्भ कर दिया जाता है, ऋषियों के प्रशन के प्रत्युत्तर में ब्रह्मा से प्राप्त इस पुराण को वशिष्ठ ऋषिजनों को सुनाते हैं।

इसके प्रथम अध्याय में वशिष्ठ द्वारा देवी वर्णन, देवीपुराण का परिचय, देवी के ६० अवतार, पुराण के विभिन्न विषय, त्रैलोक्य विजय, त्रैलोक्याभ्युदय, शुम्भ-निशुम्भमथन, एवं देवासुरयुद्ध इन चार पादों की चर्चा है।

द्वितीय अध्याय में कामिका विद्या की प्रसंशा एवं उपदेश, घोरासुर द्वारा विष्णु से वर प्राप्त कर दिग्विजय प्रस्थान का वर्णन है। तृतीय अध्याय में घोरासुर की पृथ्वी-विजय, वज्रदण्ड द्वारा पाताल लोक पर अधिकार और शुक्राचार्य का शिष्यत्व प्राप्त करने का वर्णन। चतुर्थ अध्याय में शुक्राचार्य की असहमति होने पर भी वज्रदण्ड द्वारा स्वर्ग पर आक्रमण किया जाना और इन्द्र का विष्णु के शरण जाना बतलाया गया है। पाँचवें अध्याय में बृहस्पति द्वारा धर्मनीति का उपदेश तथा नारद का वज्रदंण्ड एवं विष्णु और बृहस्पति का ब्रह्मलोक गमन वर्णित है। छठे अध्याय में विष्णु द्वारा चामुण्डा स्तवन सातवें में विन्ध्याचल में देवी का प्रादुर्भाव एवं महिमा का वर्णन, आठवें में नारद का कुशद्वीप जाकर वज्रदण्ड को धर्मपथ से विमुख कराना, नवें अध्याय में पद्ममालिनी मंत्रविद्या एवं दसवें अध्याय में शैवयोग का विशद वर्णन किया गया है।

आगे ग्यारहवें अध्याय में अपराजिता विद्या का माहात्म्य, बारहवें में इन्द्रध्वज महोत्सव, तेरहवें में धर्मच्युत घोर का विन्ध्याचल हेतु प्रस्थान। चौदहवें में जया और विजयादेवी से युद्ध में काल और भैरव दैत्यों का विनाश, पंद्रहवें में देवी जया द्वारा वज्रदण्ड का वध, सोलहवें में देवी द्वारा अवतार लेकर घोर वध की प्रतिज्ञा, सत्रहवें में सप्तमातृकाओं का वर्णन अट्ठारहवें में सुषेण वध, उन्नीसवें अध्याय में अजिता एवं अपराजिता देवियों द्वारा राक्षसों के वध का वर्णन है।

देवीपुराण के बीसवें अध्याय में भाग्य की महिमा, घोर का महिषरूप धारण एवं भगवती के हाथों उसका वध का प्रसंग, इक्कीसवें अध्याय में देवताओं द्वारा देवी स्तवन तथा महाष्टमी एवं महानवमी की पूजा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। बाईसवें अध्याय में देवीरथयात्रा महोत्सव, तेईसवें में नवरात्रियों में देवीपूजा का फल, चौबीसवें में द्विजाति, चाण्डाल और चौरों द्वारा देवी पूजा का विधान बतलाया गया है। आगे पच्चीसवें से सत्ताईस अध्याय तक वसुधारादान फल, देवीहोमविधान, और अग्नि की लपटों द्वारा साधक का हिताहित जानने का विधान बतलाया गया है।

२८ से ३२ अध्यायो तक क्रमशः मन्दिरों पर्वतों शिखरों पर देवी पूजा की महिमा, देवता मन्त्र-तन्त्र मुद्रादि, पराशक्ति से प्रादुर्भाव, देवीप्रतिमा निर्माण, रथयात्रा महोत्सव का विधान एवं इस अवसर पर बन्दियों को क्षमादान, देवीपीठों का वर्णन तथा भूततन्त्र, ग्रहविद्या एवं गरुडविद्या का वर्णन किया है।

३३ से ३७ अध्यायों तक शिवपूजा का माहात्म्य दुर्गाव्रत देवीमंदिरों को सजाने की विधि एवं फलध्वजदान महोत्सव, शिव द्वारा देवी का स्तवन तथा देवी के पचास नामों का निर्वचन एवं एकत्त्व प्रतिपादन है।

अध्याय ३८ से ४२ तक देवी के विभिन्न स्वरूपों एवं पीठों का विशद वर्णन, सुबल एवं दुन्दुभि का वध, मत्स्य मांस मदिरादि से क्षेमङ्करी देवी का पूजन, सम्पत्ति पत्नी एवं आत्मा का दान, विद्याओं की प्रशंसा देवी द्वारा अग्रसेन एवं महाधर्मासुर का वध, तथा जालन्धर, मलय, सह्य, विन्ध्य, हिमालय, कामरूप, कान्यकुब्जादि स्थानों का वर्णन किया गया है।

अध्याय ४३ से अध्याय ४९ तक पुष्पक विद्या की प्रशंसा, गजानन द्वारा अभयासुर का वध, युद्ध विद्या विभिन्न व्यूहों का वर्णन, परशुराम द्वारा अयोध्या में कालिका देवी की स्थापना, नक्षत्रपूजा के लिए शुभ दिन स्कन्द, सूर्य, विष्णु, विनायक, उमा आदि के पूजा के विधान, नक्षत्रों का भारत के विभिन्न प्रदेशों पर प्रभाव उनके नाम एवं स्थिति, सप्तलोकों के अधिष्ठातृ देवता पूर्णिमा और अमावस्या का विचार, एवं सूर्य-चन्द्र ग्रहणों का वर्णन प्राप्त होता है।

देवीपुराण के ५० से ५७ अध्यायों में देवी के सात्त्विक, राजस, तामस स्वरूपों का विभाजन, देवी प्रतिमाओं का वर्णन एवं मान, निर्माण विधि, एवं पूजा, देवीपूजक को शिव, सूर्य, ब्रह्मा और विष्णु की पूजा की आवश्यकता, पूजा पात्रों का चयन, आदित्ययाग, ग्रहयाग, एवं मातृयाग का माहात्म्य एवं विधान, विभिन्न प्रकार के उत्पात मातृका, ग्रह, सूर्यादि पूजा, नक्षत्र होम, कोटिहोम एवं दानादि द्वारा उनका शमन, तथा हवन करने के विविध प्रकारों का वर्णन किया गया है।

अध्याय ५८ से ६६ तक शिव और देवी की एकात्मस्थापना, भाग्यनामक राजा द्वारा द्वादशी के दिन विष्णु तथा उमामहेश्वर के पूजन से वैभव प्राप्ति, विभिन्न मासों में देवी पूजा का फल आश्विन नवरात्रों में देवी रथयात्रा एवं दीपदान, वृषोत्सर्ग गो विवाह देवालय जीर्णोद्धार का फल, उमा-शङ्कर, हरि-हर, अर्द्धनारीश्वर का पूजन, उमा-महेश्वर का दोला पूजन, नाना प्रकार के पुष्पों से शिवपूजा का फल, शिव के मान्य तीर्थों एवं उनके ६८ नाम, अलङ्कृत गाय एव बैल का शिवभक्त को दान कर गोरत्नव्रत, गुग्गुलव्रत, पुष्यस्नान का माहात्म्य, कलशोत्पत्ति, सप्तसमुद्र द्वीप नक्षत्र ग्रहादि का वर्णन किया गया है।

अध्याय ६७ से ७१ तक इन अध्यायों में राजा का ब्राह्मणों द्वारा अभिषेक, ब्राह्मण, दीनों एवं कन्याओं को दान, बंदियों को क्षमादान, मन्त्रसिद्धि के उपयुक्त स्थान, विनायकयाग, गणयाग, सूर्यपूजा और अम्बिकापूजा का विधान, विनायक कवच देवताओं के रक्षाबीज एवं उनकी पूजा, मधुसूदन के नाम में चतुर्व्यूहों का वर्णन किया गया है।

अध्याय ७२ एवं ७३ में दुर्ग-निर्माण की विधि, भूमि का निर्वाचन, दुर्ग में देवीपूजन, नगर निर्माण, सिंहमार्ग, राजपथ, रथ्यादि का निर्माण, अधोदुर्ग, कृत्रिम दुर्ग की निर्माण विधि तथा तदर्थ शुभ मुहूर्त एवं शिव-दुर्गा मातृकाओं और विनायक की पूजा वर्णित है।

अध्याय ७४ से ८० तक इन अध्यायों में ग्रहण एवं पर्वकाल पर स्नानार्थ पवित्र नदियाँ स्थान एवं वन तथा पर्वत, वसुधारा होम, कपोततीर्थ की महिमा, षोडश मुद्राओं के साथ तान्त्रिक मन्त्रों से देवी पूजा, कृष्णाष्टमी एवं शिवरात्रि, व्रत, देवि के द्वादशस्वरूपों की पूजा का विधान, उमा-महेश्वर, विष्णु-शङ्कर, लक्ष्मी-पर्णा, ब्रह्म-सावित्री, एवं चन्द्ररोहिणी व्रतों का विधान, देवी मन्दिर सम्मार्जन का फल, रानी कुङ्कुमा की कथा देवी की व्यापकता एवं महामाया का प्रभाव वर्णित है।

अध्याय ८१ से ९० तक इन अध्यायों में कालाग्नि रुद्र का वर्णन एवं काली से एकात्मकता विशिष्ट नरकों का वर्णन कार्तिकेय के मयूर से रुरु की उत्पत्ति और देवताओं से युद्ध, ब्रह्माणी ग्रहों एवं मातृकाओं की उत्पत्ति, विष्णु द्वारा गीता का उपदेश, देवताओं द्वारा देवी स्तुति एवं रुरु का वध, अन्त्यजों, पापियों, पाखण्डियों द्वारा देवी की प्रशंसा, शाक्तागम, शैवागम, गरुड़तन्त्र, भूततन्त्र और काल का वर्णन, कृष्णाष्टमी से शुक्ल नवमी तक सर्वमङ्गला देवी का पूजन का विधान, पशुबलि, रथयात्रा, कन्यापूजन एवं ब्राह्मण भोजन का विधान तथा वैदिक मन्त्रों द्वारा देवी पूजन का वर्णन किया गया है।

अध्याय ९१ से १०० तक इन अध्यायों में शूद्रों एवं स्त्रियों द्वारा देवी की पूजा देवी भक्तों को पुस्तक, छत्र आदि दान, देवी का विन्ध्याचल निवास, नन्द अवतार, नन्दातीर्थ माहात्म्य, नन्दापुरी का वर्णन उनके प्रिय स्थान मन्त्र-द्रव्य-क्रिया और ध्यान की महिमा, सुनन्दा देवी के स्थान, नन्दा एवं शिव की एकरूपता, वेदों का अध्ययन एवं उसके प्रकार एवं नियम, यज्ञों में पशुबलि का विधान, पवित्रारोपण एवं आनन्दोत्सव, देवी व्रतों में ब्राह्मण-भोजन दान एवं कन्यापूजन की आवश्यकता तथा विजय व्रत के विधान के साथ देवी की प्रशंसा की गई है।

अध्याय १०१ से ११० तक इन अध्यायों में नक्षत्र व्रत का विधान, भूमि स्वर्ण गो एवं अन्नदान का फल गोदान विधि, गौ में देवी पूजा, पृथक्-पृथक मासों में अलग-अलग द्रव्यों का दान, स्वर्णधेनु, तिल धेनु, घृतधेनु एवं जलधेनु की दानविधि, देवी का वेद-मातृत्व, वेदों का विभाजन, ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की शाखाओं का वर्णन, उपवेदों का वर्णन, आयुर्वेद की प्रशंसा, रोग के कारण, विभिन्न प्रकार के भोजनों का विवरण एवं उनका मानव शरीर

पर प्रभाव, कन्द-मूल फलादि का नाम निर्देश, मानव शरीर के लिए लाभप्रद और हानिप्रद औषधियों के नाम निर्देश के साथ, आयुर्वेद की प्रशंसा की गई है।

अध्याय १११ से १२० तक इन अध्यायों में खट्वासुर की उत्पत्ति, तपस्या एवं देवताओं के साथ युद्ध, विष्णु द्वारा गजानन की उत्पत्ति, उनके शरीर में समस्त देवताओं का निवास, विष्णु द्वारा गजानन की स्तुति, महेश द्वारा गजानन को देवताओं के कष्ट निवारण हेतु विनायक नामकरण के साथ देवताओं का सेनापति बनाकर भेजना, ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा श्रीगणेश की विभिन्न द्रव्यों से पूजा, विनायक का उदयाचल आकर विघ्नासुर का वध, ब्रह्मा से विघ्नासुर की उत्पत्ति, विष्णु द्वारा देवी स्तुति मातृ पूजा का महत्त्व, सूर्य के कन्या राशि में स्थित होने का विशेष महत्त्व, देवी के नूतन मन्दिरों का निर्माण पुरातन मन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं उसका विशिष्ट महत्त्व, प्रतिमा एवं मन्दिर संस्कार के मन्त्र, शिव का भैरव रूप ग्रहण करना पदमाला के उच्चारण से शरीर शुद्धि, यम-नियमादि के पालन का महत्त्व एवं विभिन्न प्रायश्चितों की चर्चा की गई है।

अध्याय १२१ से १२८ तक इन अध्यायों में पवित्राग्नि की स्थापना, वामाचारी, दक्षिणाचारी एवं वेदान्तियों का वर्णन, हवन विधान, आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि का उपयोग, देवी पूजा में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पुष्पों एवं नैवेद्यों का वर्णन, देवी पूजा एवं गुरु पूजा की विधि और महत्त्व तथा पूजार्थ उपयुक्त स्थान, गुरु की शिव के साथ एकात्मता, अग्नि संस्कार विधि, हवन प्रक्रिया, विभिन्न मुद्राओं एवं मन्त्रों का वर्णन किया गया है। अन्तिम दो अध्यायों में राजाओं द्वारा देवी पूजा, उनके आचरण का जनता पर प्रभाव, राजकुमारों को अच्छी शिक्षा, श्राद्धों का विधान, देवी स्तवराज स्तोत्र एवं अनेक स्थानों तथा नामों का वर्णन किया गया है। अन्त में देवीपुराण की पूजन विधि, पुराण का वाचन, कथावाचक का आदर आदि विषयों के साथ पुराण फलश्रुति से देवीपुराण को विराम दिया गया है।

देवीपुराण की भाषा शैली

देवीपुराण भी अन्य उपपुराणों की तरह व्याकरण बन्धन का अक्षरशः पालन नहीं करता, स्थान-स्थान पर संधि विषमता लिङ्ग व्यत्यय अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं यथा-

(१) देवी शब्द के स्थान पर 'देव्या' इस आकारान्त रूप का बाहुल्य से प्रयोग किया गया है।

(२) हकारान्त शब्दों को प्रायः आकारान्त प्रयोग किया गया है (भूतिकर्तायनमः- दे.पु. २६/३४)

(३) मातृ के स्थान पर माता, मातरः, मातारा आदि का प्रयोग हुआ है।

(४) हलन्त शब्दों को भी आकारान्त प्रयुक्त किया गया है। (सम्पदा धर्मभोगः हि- दे.पु. ८/२५)

(५) अन्तिम व्यञ्जन का कई स्थानों पर लोप किया गया है जैसे- अथर्वन्, भस्मन्, आदि के स्थान पर अथर्व, भस्म, आदि का प्रयोग किया गया है, इसके अतिरिक्त शब्दों का लिङ्ग परिवर्तन समास सम्बन्धी त्रुटि वचन या संख्या का गलत प्रयोग, कारक प्रयोग की त्रुटियाँ, आत्मनेपदी परस्मैपदी का परस्पर प्रयोग छन्दोभङ्ग आदि भी देखने को मिलता है।

किन्तु **"अपाणिनीय प्रयोगस्तु भूषणं न तु दूषणम्"** इस न्याय से ये सभी दोष श्लाघ्य ही हैं।

देवीपुराण का साहित्यिक महत्त्व- देवीपुराण में संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं, विद्याओं एवं शास्त्रों के बारे में महत्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध होते हैं, इतिहास, काव्य, नाटक, आख्यायिका, ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद, वीणाशास्त्र आदि का उल्लेख मिलता है, इसके अतिरिक्त देवीशास्त्र का पुनः पुनः उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि देवीपुराण के निर्माण के पूर्व ही देवीसम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, ऐसे पुराणों का भी उल्लेख है जिनमें देवी का वर्णन है, अर्थात् देवी पुराण के अतिरिक्त अन्यपुराणो में भी देवी सम्बन्धी सामग्री मिलती थी। देवी पुराण में "पौराणिकादेव्यः" यह पद पौराणिक और तान्त्रिक देवियों को पृथक रूप में स्वीकार करने की ओर संकेत करता है।

देवी पुराण का आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्त्व

देवी पुराण अनेक योग एवं मन्त्र विद्याओं का वर्णन करता है, यथा- कामिका विद्या, पदमाला, अपराजिता, मोहिनी, मृत्युञ्जय, आदि। इन विद्याओं के प्रयोग से न केवल अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है, अपितु मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है, पुराण में गुरु को बहुत ही आदर दिया गया है। गुरु की देवी एवं शिव के साथ एकात्मकता सिद्ध की गयी है।

पूजा पद्धति पर तन्त्रों का व्यापक प्रभाव दिखता है, तान्त्रिक प्रक्रियायें तान्त्रिक मन्त्र, मुद्रा, न्यास, योग, मांस-मदिरादि का सेवन भी परिकल्पित है। पूजा के माध्यमों के रूप में प्रतिमा, वेदी, खड्ग, त्रिशूल, चक्र, पद्म, पुस्तक, लिङ्ग, पादुका, पट, छूरिका, जल, अग्नि आदि को स्वीकृत किया है।

देवी पुराण में जो देवी 'पूजा' पर प्रामाणिक शास्त्र के रूप में मान्य है, वहाँ देवी प्रधानतया युद्ध की देवी के रूप में वर्णित है

(दे.पु. ६-११)। यहाँ चामुण्डा को सृष्टि रक्षण एवं संहार करने में समर्थ बतलाया है, देवी पुराण में देवी मातृस्वरूपा हैं, लोकमाता, देवमाता, इन्द्रजननी, स्कन्दमाता, भूतमाता आदि से विख्यात मातृत्वशक्ति को प्रेम, स्नेह, वात्सल्यादि की साक्षातमूर्ति एवं पराकाष्ठा स्वीकार किया है। देवताओं की सम्मिलित शक्ति के रूप में तेजस्वरूप देवी सर्वत्र आभासित होती है-

"देव्याः व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्
(श्लो. ३७/८८)

देवीपुराण में ६० से भी अधिक देवी अवतारों की चर्चा है, जिनमें कनकेश्वरी जया देवी, सर्वमङ्गला, विन्ध्यवासिनी, नन्दादेवी, उमा, क्षेमङ्करी, एवं दुर्गा देवी के विशेष चरित्र वर्णन के साथ पूजा विधान बतलाए गये हैं।

सामाजिक, सांस्कृतिक महत्त्व

अन्य पुराणों उपपुराणों की ही तरह सांस्कृतिक दृष्टि से भी देवी पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, देवी का प्राधान्य होते हुए भी समस्त सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने के कारण धार्मिक सहिष्णुता का ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके अध्याय ६१ में ब्रह्मा, शिव, देवी, अग्नि, आदि के पूजन का विधान, अध्याय ६० में हरिहर, उमा-शङ्कर, अर्द्धनारीश्वर के पूजन का विधान, अध्याय ६३ में शिव के मान्य तीर्थों एवं नामों की चर्चा, अनेक स्थानों पर शिव और उमा की एक साथ पूजा, विष्णु पूजा, आदित्ययाग, विनायक याग, ब्रह्मा-विष्णु द्वारा गणेश पूजन एवं विनायक चरित्र का कई अध्यायों में वर्णन इसके समन्वयवादी दृष्टिकोण की ओर इङ्गित करता है। देवी के रथोत्सव, ध्वजोत्सव और नवरात्रोत्सवों का वर्णन भी सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

सामाजिक दृष्टि से भी देवीपुराण को क्रान्तिकारी माना जा सकता है, यह पुराण स्त्रियों एवं दलितवर्ग के लोगों को उदारतापूर्वक समाज में एवं धार्मिक कृत्यों में उचित स्थान देता है। यह पुराण शूद्रों, चाण्डालों, जनजातियों को न केवल देवी व्रतों को करने की आज्ञा देता है अपितु विद्यागुणसम्पन्न शूद्र को गुणरहित द्विजाति से भी श्रेष्ठ स्वीकार करता है (अ. २२/५-६१, २४/१८-२४, २६/४३-४६, ५१/४-६)। इस पुराण में स्त्रियों और शूद्रों को देवी सम्बन्धी हवन, व्रत, उपवास, पूजा, जप, आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है, विवाहिता स्त्रियों एवं कन्याओं को देवीस्वरूपा मानकर प्रत्येक उत्सव में उनके सम्मान पूजन, एवं भोजन की व्यवस्था की गई है। यह पुराण लोकमानस को चित्रित करता है, इसमें स्त्री शिक्षा का भी प्राचुर्य दिखायी देता है। मन्त्र, जप, हवन, देवीशास्त्र वाचन, आदि में भी स्त्रियाँ निष्णात दिखलाई देती हैं (दे.पु. ६०/२२, ६१/५१)।

साम्बपुराण

पुराणवाङ्मय भारतीय धर्म, दर्शन, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों को सम्यक् रूप से उद्घाटित करता रहा है। वैदिक परम्परा के साथ-साथ चलने वाली पौराणिक परम्परा का वास्तविक स्वरूप ईसा पूर्व तृतीय चतुर्थ शताब्दी से प्रारम्भ होकर १४वीं-१५वीं शताब्दी तक अविरत रूप से निरन्तर विकसित होता रहा है ऐसा विद्वानों का मानना है। इस बीच अनेक परम्पराएँ सम्प्रदाय एवं व्यवस्थाएँ इससे जुटती गयी और यह वाङ्मय अपने मूलस्वरूप को सुरक्षित रखते हुए उत्तरोत्तर नवीन कलेवर के साथ 'पुरा नवं भवति' इति पुराणं इसको चरितार्थ करता रहा है। इसी कारण भारत के प्राचीन इतिहास, राजनीति, धर्म, दर्शन और संस्कृति की विभिन्न प्रवृत्तियों एवं परम्पराओं का दर्शन इस विशालकाय पुराणसाहित्य में देखा जा सकता है।

उपपुराण साहित्य भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान के लिये महापुराणों जितने ही महत्वपूर्ण हैं। इन्द्र से उपेन्द्र जिस प्रकार किसी भी अंश में न्यून नहीं है वैसे ही उपपुराण अपने मूलरूप में कम प्रचार होने के कारण महापुराणों से अधिक सुरक्षित हैं। उपपुराणों में प्रायः पञ्च लक्षणों का विस्तार न्यून होने से इसे महापुराण के 'उप' यानी समीप अर्थ में लेना उपयुक्त होगा। महापुराणों की छाया में देव विशेष का वर्णन करने के कारण इन्हें पुराणों का उपभेद भी माना है। सामान्यतया उपपुराण १८ माने गये हैं परन्तु इनकी लगभग विभिन्न पुराणों में २२ सूचियाँ प्राप्त होती है। कूर्म, स्कन्द, देवीभागवत, गरुडादि पुराणों में प्राप्त होने वाली सभी सूचियों में समान रूप से प्राप्त बारह उपपुराणों में साम्बपुराण का समावेश है।

सौरोपासना भारतीय धर्म-साधना की एक अति प्राचीन परम्परा है। पञ्चदेवोपासना में परब्रह्म के तेजोमय भाव को ही सूर्य यह अभिधान दिया गया है। 'सूर्य आत्मा जगतः तस्युषश्च' आदि वचनों से सूर्य की महत्ता स्वयं सिद्ध होती है। पञ्चदेवों में से शेष देवों की उपासना तो तत्तद युगों में अधिक फलकारी बतलायी गयी हैं किन्तु सूर्योपासना समान रूप से सभी युगों में कल्याणकारी है।

ऐतिहासिकों के अभिमत से नवीनपाषाण काल से लेकर हिन्दुकाल की समाप्ति तक अनेक प्रजातियों, भाषाभाषियों एवं परम्पराओं ने प्राचीन सूर्यपूजा परम्परा को समृद्ध बनाया है। वैदिक धर्म में सूर्य के नैसर्गिक रूप की उपासना ऋचाओं और यज्ञ के माध्यम से विभिन्न नामों से होती थी। वेदोत्तर काल में दो नवीन प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर सूर्यपूजा का एक साम्प्रदायिक स्वरूप प्रकट हुआ। महाभारत में सौर सम्प्रदाय की उत्पत्ति एवं विकास के सङ्केत मिलते हैं। इसी समय ईरान से मग 'पुरोहितों' का आगमन हुआ जो सूर्य-अग्नि के संयुक्त उपासक थे। भारतीय धर्म की समन्वयवादी प्रवृत्ति से वैदिक एवं अवैदिक इन

दो धाराओं के सम्मिश्रण से वर्तमान् सूर्यपूजा अस्तित्व में आयी ऐसा विद्वानों का मानना है।

जिस प्रकार सौर सम्प्रदाय का विवरण भविष्य, वराह, स्कन्द, मार्कण्डेय, अग्नि आदि महापुराणों में विशेष रूप से प्राप्त होता है उसी प्रकार सूर्य, सौरधर्म, सौरधर्मोत्तर, सौरोपपुराण, भास्कर, आदित्य, वह्नि, भविष्योत्तर एवं साम्बपुराण में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार एक विशाल साहित्य जो सौर धर्म पर प्रकाश डालता है उसमें साम्बपुराण अतिशय महत्वपूर्ण एवं प्राचीन है।

नामकरण का अभिप्राय– पुराणों की नाम परम्परा के अनुसार वक्ता, श्रोता अथवा पुराण में प्रतिपाद्य देवता के नाम पर ग्रन्थ का नामकरण किया जाता है। श्रीकृष्ण के सुपुत्र जाम्बवतीनन्दन साम्ब ने शापवश प्राप्त कुष्ठरोग की मुक्ति के लिए चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्य के शाश्वत स्थान साम्बनगर में सूर्य की आराधना की थी; अपने भक्त साम्ब के प्रति अत्यधिक स्नेहभाव होने के कारण संसार के कल्याण के लिए मैत्रीपूर्ण दृष्टि से विद्यमान रहते हैं, इसे मूलस्थान मैत्रवन, काश्यपपुर, हंसपुर, भगपुर, प्रह्लादपुर आदि नामों से भी जाना जाता है दैवयोगवश साम्ब द्वारा देवर्षि नारद की निरन्तर अवज्ञा किये जाने से कुष्ठरोग की प्राप्ति हुई थी, इससे मुक्ति के लिए साम्ब ने देवर्षिनारद से सूर्योपासना का प्रतिपादन करने वाला यह पुराण श्रवण किया था। भक्त के प्रति अत्यधिक अनुग्रह होने से इस पुराण को इसके प्रमुख श्रोता साम्ब के नाम पर 'साम्बपुराण' ऐसा नाम दिया गया है, इसका विवरण साम्बपुराण के तीसरे अध्याय से प्राप्त होता है।

देशकाल– विद्वानों का अभिमत है कि साम्बपुराण की रचना एक स्थान पर न होकर भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई होगी। साम्बपुराण के प्रथम भाग की रचना पंजाब के मुल्तान स्थान में हुई होगी, जबकि उत्तरकालीन भाग का सम्बन्ध उड़ीसा से है, इस सिद्धान्त के पक्ष में विद्वानों ने अपने-अपने तर्क दिये हैं। साम्बपुराण का प्रथम भाग भविष्यपुराण में संग्रहीत है किन्तु द्वितीय भाग का एक भी श्लोक भविष्यपुराण में नहीं मिलता, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि दोनों भाग विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समयों पर लिखे गये होंगे। प्रथम समूह के अध्यायों का सम्बन्ध चन्द्रभागा तट पर स्थित मित्रवन से है, जिसकी स्थिति पंजाब में मुल्तान से स्थापित की जाती है परन्तु द्वितीय समूह के अध्यायों में समुद्र तट पर स्थापित मित्रवन का उल्लेख है, जिससे उड़ीसा का कोणार्क से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। साम्बपुराण के प्रथम समूह के अध्यायों में सूर्य पूजा के स्थान को मित्रवन कहा गया है, परन्तु द्वितीय समूह के अध्याय में इसे तपोवन, सूर्यकानन, रविक्षेत्र और सूर्यक्षेत्र कहा गया है। ब्रह्मपुराण में कोणार्क को रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र आदि कहा गया है साम्बपुराण के प्रथम अध्याय समूह में साम्ब द्वारा मित्रवन में सूर्यमूर्ति की स्थापना का उल्लेख है, जबकि द्वितीय समूह में सूर्यमूर्ति की समुद्र से प्राप्ति और लोगों द्वारा उसके स्थापित होने का विवरण, इसी

प्रकार प्रथम समूहों के अध्याय पर जहाँ वैदिक प्रभाव स्पष्ट दिखता है वहीं द्वितीय समूह पर तान्त्रिक प्रभाव।

जहाँ तक साम्बपुराण के रचनाकाल की बात है, इस पर अनेक विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये है, किन्तु प्रोफेसर आर.सी. हाजरा जिन्होंने उपपुराणों पर विशिष्ट मान्य कार्य किया है, उनके द्वारा निश्चित किया गया साम्बपुराण का तिथिक्रम सामान्यतः अधिक मान्य है, उनका मानना है कि पुराण की रचना के दृष्टिकोण से कई इकाईयाँ हैं और समय-समय पर प्रक्षेपों के कारण पाठवृद्धि होती रही है। सम्पूर्ण पुराण एक काल में एक व्यक्ति की लिखी रचना नहीं हो सकती। इसके मुख्यरूप से दो भाग देखे जा सकते हैं, प्रथम समूह में अध्याय एक (श्लोक १७ से २५ को छोड़कर), अध्याय २ से १६, १८ से २१, २५ से ३२, ३४ से ३८, ४६ और ४४ अध्याय यह साम्बपुराण का मूलभाग है जिसकी रचना ५०० ईसवी से ८०० ई. के मध्य की गई थी इसी समूह के अध्याय १७, २० से २३ का समय ९५० ई., अधयाय ३३ की रचना ७०० से ९५० ई. तथा अध्याय ४४, ४५ का रचनाकाल ९०० से १०५० ई. माना है।

द्वितीय समूह के अध्याय ३९ से ४३ एवं ४७ से ८३ का रचनाकाल १२५० से १५०० ई. के मध्य माना है, यद्यपि पाश्चात्त्य विद्वान् स्टेटिस्कॉन हाजरा महोदय के इस क्रम विभाजन को स्वीकार करते हैं किन्तु साम्बपुराण के मूलभाग को पाँचवी शताब्दी के बाद का नहीं मानते। हाजरा महोदय के अनुसार साम्बपुराण के मूलस्वरूप में विद्यमान अनेकों श्लोक वर्तमान में उपलब्ध नहीं होते।

पाण्डुलिपि तथा संस्करण– विभिन्न संस्थानों में उपलब्ध साम्बपुराण की पाण्डुलिपियों का विवरण इस प्रकार है–

क्र.	प्राप्ति स्थान	कैटलाक पु. संख्या	लिपि	तिथि आकार	लिपि काल	अन्य विवरण
१.	इण्डि आफिस पुस्तकालय लंदन	३६१९	दे.ना.	–	–	केवल ७० अध्याय
२.	इण्डि आफिस पुस्तकालय लंदन	३६२०	दे.ना.	–	–	केवल ७० अध्याय
३.	एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता	४०९१	दे.ना.	११.७५ x ५.७५	–	पं. हर प्रसाद शास्त्री ने १९२८ में उल्लिखित किया है।
४.	एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता	४०९२	मैथिल	१२ x ४½ ८८ पत्र	१७६४ शक सं.	२८८६ श्लोक है

क्र.	प्राप्ति स्थान	कैटलाक पु. संख्या	लिपि	तिथि आकार	लिपि काल	अन्य विवरण
५.	एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता	४०६३	दे.ना.	१२½x ६.० १०० पृ.	१६३० वि.सं.	३२०० श्लोक ८३ अध्याय हैं।
६.	एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता	४०६४	७४४	१८७६ वि.सं.		
७.	सरस्वती महल लायब्रेरी तञ्जौर	१०५८४ १६३०	दे.ना.	१३½x६½ १६३ पृष्ठ	-	पी.सी. शास्त्री कैट. वर्नर
८.	इण्डिया ऑफिस लाय.	६८३६	ग्रन्थ लिपि	-	१८वीं शताब्दी	कीथ द्वारा उल्लिखित
९.	कलकत्ता संस्कृत कॉलेज पुस्तकालय कोलकता	२१४		१२x६	-	३५०० श्लोक शास्त्री एवं गुई कैट.

साम्बपुराण का प्रकाशित संस्करण मूलमात्र चौखम्बा संस्कृत सिरीज में उपलब्ध है। इण्डोलॉजिकल पब्लिकेशन इलाहाबाद से डा. विनोदचन्द्र श्रीवास्तव द्वारा किया गया साम्बपुराण का एक हिन्दी रूपान्तर (मूल श्लोक नहीं है) १९७५ में प्रकाशित है।

साम्बपुराण की कथावस्तु– साम्बपुराण के प्रथम अध्याय का प्रारम्भ ("नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे जगत् प्रसूति स्थिति नाश हेतवे। त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे, विरंचि नारायण शङ्करात्मने नमः।।") इस मङ्गलाचरण से होता है इसके उपरान्त पितामह कृष्ण, मुनीश्वर व्यास, विधाता ब्रह्मा तथा इन्द्रादि समस्त दिक्पालों को नमस्कर किया गया है। इसका प्रारम्भ भी द्वादशवर्षीय यज्ञसत्र में विराजमान नैमिषारण्यस्थ महात्मा शौनक और महर्षि वेदव्यास के पुराणविद्या के शिष्य सूत के संवाद से होता है, कथा की शुरूआत करते हुए श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब द्वारा सुनी गई कथा को सुनाने का आग्रह किया गया है। प्रथम अध्याय में साम्ब पुराणान्तर्गत आये हुए समस्त विषयों की अनुक्रमणिका वर्णित होने से इसे अनुक्रमणिका अध्याय कहा जाता है।

द्वितीय अध्याय में रघुवंशीय राजा बृहद्बल और महर्षि वशिष्ठ के संवाद के माध्यम से सूर्य की परब्रह्मता और सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए सभी आश्रमियों के लिए सूर्य आराधन की अनिवार्यता प्रतिपादित की गई है।

साम्बपुराण के तृतीय अध्याय में राजा बृहद्बल के प्रश्न के प्रत्युत्तर में सूर्य के आदि निवासस्थान और शास्त्रीय विधि द्वारा की गई सूर्यपूजा को सूर्य द्वारा ग्रहण करने की बात कृष्णपुत्र साम्ब के आख्यान द्वारा बतलायी गई है, दैवयोगवश जाम्बवतीनन्दन साम्ब द्वारा

यौवन के गर्व में नारद के शाप से कुष्ठ प्राप्ति का वर्णन किया गया है, इस अध्याय में मुख्यरूप से साम्ब को शाप प्राप्त होने का विस्तृत वृत्तान्त है।

चतुर्थ अध्याय में सूर्य के बारह स्वरूपों की चर्चा की गई है, सहस्र किरणों वाले अव्यक्त पुरुष परब्रह्म ने ही अपने को अदिति के गर्भ से बारह रूपों में प्रगट किया है इनमें इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान, विष्णु, अंशु, वरुण और मित्र क्रमशः शासन सृष्टि, वृष्टि, पोषण, वनस्पतियों, औषधि एवं वायुसंचार, पृथ्वी तथा प्राणियों में स्थिति, अन्नपाचन, विध्वंस शक्तियों का विनाश, जीवों का आह्लाद, संवरण और संसार का कल्याण करने के लिए मूलस्थान में मित्र नाम से विराजमान हैं।

पाँचवे अध्याय में सनातन आदि देवता होने पर भी सूर्य द्वारा की जाने वाली तपस्या का रहस्य नारद को स्वयं सूर्य ने बतलाया है, सूर्य के इस दार्शनिक विवरण पर सांख्यदर्शन की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

छठे अध्याय में साम्ब द्वारा अपने पिता श्रीकृष्ण से शापमुक्ति का उपाय पूछने पर भगवान श्रीकृष्ण ने सूर्य भक्ति से समस्त मनोरथ पूर्ण होने के बात करते हुए सूर्योपासना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

अध्याय ७ से १६ तक सातवे में सूर्य के त्रिदेवत्व का कारण, सूर्य की सर्वत्र गति, सूर्य किरणों के प्रकार और उनके रूप सूर्य के विभिन्न नामों की व्युत्पत्ति बताई गई है, चैत्रादि मासों के सूर्य के नाम तथा उनकी किरणों का विवरण आठवे अध्याय में प्राप्त होता हैं। नवमे अध्याय में सूर्य निगमन, दसवें अध्याय में सूर्य पत्नी निक्षुभा की उत्पत्ति कथा तथा ग्यारहवें अध्याय में सूर्य के सन्तानों की चर्चा की गई है, जिनमें श्राद्धदेव, यम और यमी, दूसरी पत्नी से सावर्णि मनु, शनैश्चर तथा तपती नाम की कन्या एवं वडवा से देववैद्य अश्विनीकुमारों की चर्चा की गई है, बारहवे अध्याय में सूर्य के स्वरूप का वर्णन, तेरहवे में विश्वकर्मा कृत स्तोत्र तथा आगे के अध्यायों में ब्रह्म कृत स्तोत्रों की चर्चा है, साम्बपुराण के सोलहवे अध्याय में सूर्य के अनुचर दण्डनायक, पिङ्गल, अश्विन, तोष आदि की चर्चा की गई है।

सत्रहवें अध्याय में सूर्य के अनुचर डिण्डी द्वारा सूर्य की स्तुति का वर्णन है। अठ्ठारहवें अध्याय में आकाशोत्पत्ति सुमेरू पर्वत और विविध देवताओं की उत्पत्ति की कथा वर्णित है, मन्वन्तरों की चर्चा, नवग्रह उनके मण्डल और विस्तार की चर्चा की गई है, उन्नीसवें अध्याय में आकाश के विविध नाम द्वीपादि की चर्चा की गई है, बीसवे अध्याय में इन्द्र, यम, वरुण और सोम की नगरियों अमरावती, यमनीपुरी, सुखापुरी और विभापुरी की चर्चा है, ज़हाँ क्रमशः सूर्य मध्यगामी, उदित, अर्द्धरात्रिस्थ और अस्त को प्राप्त होता है। इक्कीसवे अध्याय में सूर्य के संवत्सरात्मक रथ का विवरण है, इसी अध्याय में प्रतिमास, सूर्य रथ पर विद्यमान रहने वाले देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, ग्रामणी और

राक्षस, इनके नाम और कार्य बतलाए गये है। बाईसवे अध्याय में सूर्य द्वारा होने वाले चन्द्रमा की वृद्धि क्षय आदि का वर्णन है, तेईसवे अध्याय में सूर्य चन्द्र ग्रहण की चर्चा की गई है, चौबीसवे अध्याय में सूर्याराधन से कृष्णपुत्र साम्ब की कुष्ठ मुक्ति और विविध वरदान प्राप्ति तथा सूर्य मन्दिर स्थापन की महिमा बतलाई गई है। २५वें अध्याय में सूर्य के २१ विशिष्ट नाम वाले 'सूर्यस्तवराज' की चर्चा है जिसके पाठ का फल, सूर्य सहस्रनाम के पाठ से भी अधिक बतलाया गया है।

२६वें अध्याय में सूर्य द्वारा शाकद्वीप से सूर्योपासक 'मग' नामक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को लाने का आदेश तथा सत्ताईसवें अध्याय में मग और याजक तथा भोजक ब्राह्मणों की चर्चा की गई है, अठ्ठाईसवे अध्याय में वशिष्ठ ने राजा के समक्ष मोक्षज्ञान की चर्चा की है, सूर्य के प्रातः, मध्याह्न और सायङ्कालीन स्वरूपों को क्रमशः राजस, सात्त्विक और तामस ऋग्-यजुस-साम-स्वरूप कहा है, इसके अतिरिक्त तुरीय सूर्य-मण्डल जिसको प्रणवयुक्त निष्पाप योगी ही प्राप्त कर सकते हैं वही सूर्य का परम पद है।

उन्नीसवे अध्याय में सूर्य प्रतिमा लक्षण, तीसवे में दारू परीक्षण, ३१वें में प्रतिमा लक्षण, ३२वें में प्रतिमा कल्प, ३३वें ध्वजारोपण, ३४-३५ में देवयात्रा विधि, ३६ में अग्निधूप विधि, ३७ में अग्निविधान, ३८ में सूर्य पूजा का फल, ३९ में दीक्षामण्डल, ४०वें में यज्ञस्थान की विधि, ४१ में दीक्षाविधान तथा ४२ में यात्रा नियम वर्णित है।

४३वें अध्याय में सूर्य मूर्ति का उदय, ४४ में सूर्य भक्त के आचार, ४५ में छत्र पादुका दान महिमा, ४६ में सप्तमी कल्प, ४७ में सूर्य जप विधि, ४८ में मुद्रा लक्षण तथा ४९वें अध्याय में सूर्यानुष्ठात्मक योगज्ञान की चर्चा है। आगे के दो अध्यायों में पूजाविधान ५२वें में सूर्य रहस्य, ५३ में पूजन विधि, ५४ में अष्ट पुष्पिका, ५५ में संवत्सर वर्णन, ५६ में सूर्य रहस्य, आगे के तीन अध्यायों में बीजोत्तर, बीजप्रसव एवं बीजस्वर प्रसव की चर्चा है।

६०वें अध्याय में सोमसूत्र, ६१ में शरीर साधन, ६२ में कार्यसिद्धि विधान, ६३ में साधक के दारुण रोगों की निवृत्ति, ६४ में अभिचारमन्त्र, ६५ में अङ्ग-प्रत्यङ्ग योग भेद, ६६ में नरा व्रत, ६७ में योग का उपदेश, ६८ में सर्व सामान्य साधन, ६९ में तत्त्वानुसार पथ वर्णन तथा ७०वें अध्याय में ज्ञानदान की चर्चा की गई है, ७१ से ७६ तक इन अध्यायों में बीजप्रसव एवं बीजचक्र वर्णन, ७७ में विसर्जन विधि, ७८ से ८० तक संन्यासमार्ग, ८१ में संवत्सर शरीर पूजा विधि, ८२ में मन्त्रतत्त्व रहस्य, ८३वें अध्याय में ज्ञानमार्ग की चर्चा तथा अन्तिम अध्याय में सूर्य पूजा ज्ञान का वर्णन किया गया है।

(उपर्युक्त विवरण डा. विनोद चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा किये गये साम्बपुराण के हिन्दीरूपान्तर, चौखम्बा संस्कृत के मूलमात्र साम्बपुराण की आधार पर दिया गया है)

साम्बपुराण का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व– सौरधर्म के बारे में प्रामाणिक विवरण एवं सूर्योपासना के विविध स्वरूपों का दर्शन जैसा साम्बपुराण में होता है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता, प्राचीनकाल में सूर्य पूजा के एक विश्वव्यापी परम्परा रही है। वैदिककाल में सूर्य के प्राकृतिक रूप की अर्चना सूर्य, मित्र, विष्णु, पूषन, आदित्यादि नामों से होती थी, कालान्तर में शाकद्वीप से आये हुए मग ब्राह्मणों ने सूर्य का मानवीकरण करते हुए सूर्यमूर्तियों एवं मन्दिरों के माध्यम से प्रारम्भ की। विशेषकर उत्तरभारत में सूर्यमूर्तियाँ ईरानियन विशेषताओं से परिपूर्ण होकर बनने लगीं; जबकि दक्षिणभारत में भारतीय परम्परा पर आधारित सूर्यमूर्तियों का प्रचलन रहा है।

साम्बपुराण में सूर्यपूजा से सम्बन्धित सभी धार्मिक अनुष्ठानों का विवरण विस्तार से प्राप्त होता है, जिसका विवरण विषयवस्तु विवरण में देखा जा सकता है। साम्बपुराण के उत्तरकालीन अध्यायों में सूर्य सम्बन्धी बाह्यक्रियाओं एवं अनुष्ठानों पर तान्त्रिक प्रभाव स्पष्टरूप से दिखता है, जैसे मारण, उच्चाटण, विद्वेषण, वशीकरण आदि का उल्लेख है, तान्त्रिक मन्त्रों एवं बीजों का भी विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों ही प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों की दृष्टि से यह सौरपुराण (साम्बपुराण) महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सांस्कृतिक महत्त्व– भारतीय संस्कृति समन्वयवादिता के लिए प्रसिद्ध रही है, साम्बपुराण में मङ्गलाचरण के श्लोक में ही सूर्य के त्रिदेवात्मक स्वरूप की वन्दना की गई है। इसके उत्तरकालीन अध्यायों में सौर एवं शैव परम्पराओं का सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण पुत्र साम्ब को नारद द्वारा सूर्याराधन का उपदेश आदि से वैष्णवपरम्परा से भी जोड़ता है, इस पुराण में भारतीय एवं 'मग' परम्परा में सामञ्जस्य स्थापित किया गया है।

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक महत्त्व– सामान्यतया यह माना जाता है कि मग ईरान के पुरोहित थे जो सूर्य एवं अग्नि की संयुक्तोपासना मूर्तरूप में करते थे। पूर्वी ईरान स्थित शाकद्वीप से शकों का प्रथम आगमन प्रथम शताब्दी में हुआ ऐसा माना जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार मगों का आगमन कई धाराओं में हुआ, मुख्यतया तीन धाराओं का संकेत प्राप्त होता है प्रथम ई.पूर्वी पाँचवी शताब्दी, द्वितीय ई.पूर्व दूसरी शताब्दी तथा अन्तिम लहर सातवीं शताब्दी में आई। निश्चय ही साम्बपुराण का विवरण इस विषय के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

साम्बपुराण में सूर्यपूजा के तीन प्रसिद्ध स्थानों का नाम आया है जिसमें प्रथम स्थान मूलस्थान या मैत्रवन आदि कहा गया है, जो वर्तमान 'मुल्तान' माना जाता है। साम्बपुराण का द्वितीय स्थान 'कालप्रिय' कहा गया है जिसकी पहचान उत्तरप्रदेश के 'कालपी' से की

जाती है, तृतीय स्थान शुतीर, मुण्डीर, उदयाचल, सूर्याकानन, रविक्षेत्र, सूर्यक्षेत्र कहा गया है, जो 'कोणार्क' के विभिन्न नाम हैं। पुरातात्त्विक दृष्टि से सूर्यमूर्तियों के अध्ययन में भी साम्बपुराण महत्त्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्व– साम्बपुराण में वर्णित सूर्य के विभिन्न स्वरूपों, उनमें विद्यमान किरणों की संख्याएँ सूर्यरथ का विवरण, सोमवृद्धिक्षय, ग्रहणविचार, सूर्य के अनुचर आदि के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है, जिससे नये तथ्य उद्घाटित हो सकते हैं।

उपसंहार– इस प्रकार साम्बपुराण सूर्योपासना का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करने मग आदि के इतिहास को उद्घाटित करने तथा कई आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक बातों पर सम्यक् प्रकाश डालने के कारण विशाल पुराणवाङ्मय का अङ्गभूत एक महत्त्वपूर्ण उपपुराण है।

एकाम्रपुराण

उप पुराणों की सूची में एकाम्र पुराण ही अपने आप को उक्त कोटि में समावेश करता है-

आद्यं बृहन्नारसिंहं बृहद्वैष्णवगारुडे।
बृहत्ततो नारदीयं नारदीयं प्रभासकम्।।
लीलावतीपुराणं च तथा देवी च कालिका।
आखेटकं बृहन्नन्दि नन्दिकेश्वरमेव।।
एकाम्रमेकपादं च लघुभागवतं तथा।
मृत्युञ्जयाङ्गिरसके साम्बं चाष्टादश स्मृता।।[1]

उक्त पुराण का विभाजन अंश नाम से हुआ है। कुल पांच अंश हैं-प्रथम में दस, द्वितीय में बाईस, तृतीय में चौदह, चतुर्थ में सोलह एवं पञ्चम अंश में आठ अध्याय हैं। इसे कुल मिलाकर सत्तर अध्याय हैं। अठारह उप पुराणों की सूची देवी भागवत, बृहद् धर्म, पराशर, स्कन्द, यम, गरुड पुराण, वायु पुराण के रेवा माहात्म्य, वीर मित्रोदय आदि पारम्परिक ग्रन्थों में दी गई है। परन्तु एकाम्र पुराण का नाम उक्त सूक्ति में सन्निविष्ट नहीं है। एकाम्र पुराण ही अपने को उपपुराण की मान्यता देता है।

एकाम्र क्षेत्र में एक विशाल आम्रवृक्ष था। इसीलिये उक्त क्षेत्र का नाम एकाम्र क्षेत्र पड़ा है।[2] कपिल पुराण भी इसका समर्थन करता है-

तस्य सन्निहिते पूर्वे एकाम्रेश्वरसंज्ञकम्।
एकाम्रवृक्षस्तत्रासीत् पुरा कल्पे तु मुक्तितः।।[3]

एकाम्र चन्द्रिका ग्रन्थ भी सामान्य परिवर्तन के साथ इस उक्ति का समर्थन करता है।

एकाम्रवृक्षस्तत्रासीत् पुराकल्पे तपोधनाः।
तस्यैव नाम्ना तत् क्षेत्रमेकाम्रकमिति स्मृतम्।।[4]

---

१. एकाम्र पुराण १/२१-२३
२. ब्रह्म पुराण १/२ Elited by H.N. Apte
३. कपिल पुराण १३/५३
४. एकाम्र चन्द्रिका १/८

भुवनेश्वर स्थित अनन्त वासुदेव मन्दिर में उत्कीर्ण शिलालेखानुसार यहां आम का बागीचा था, अतः आम वृक्षों की बहुलता के कारण उक्त क्षेत्र का नाम एकाम्र क्षेत्र पड़ा है।[१]

एकाम्रपुराण की पाण्डुलिपियाँ

एकाम्र पुराण की पाण्डुलिपियाँ एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के सरस्वती भवन पुस्तकालय, बंगला देश के ढाका विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय की पाण्डुलिपियों में उपलब्ध है। उत्कल में तीन प्रकाशित पाण्डुलिपियाँ ओडिया भाषा में उपलब्ध हैं जिसमें दो अपूर्ण हैं।

प्रथम ओड़िआ पाण्डुग्रन्थ कटक के श्री गोविन्द रथ ने प्रकाशित किया और द्वितीय पाण्डुलिपि श्री रत्नाकर गर्ग वतु के द्वारा श्रीराधारमण प्रेस, कटक से प्रकाशित हुई थी। उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर के आचार्य डॉ. उपेन्द्र नाथ कल अपने सार गर्भित शोध में छः पाण्डुलिपियों के आधार से विस्तृत भूमिका के साथ एकाम्र पुराण का प्रकाशन १६८६ में किया था, जो नाग प्रकाशन, दिल्ली द्वारा किया गया था। उसमें जो पाण्डुग्रन्थ व्यवहृत हुए थे उसका विवरण अंकित है-

अ. ओडिआ एकाम्र पुराण लिखित पाण्डुलिपि उत्कललिपि, संख्या ७५१८१, अड्यार पुस्तकालय एवं शोध संस्थान अड्यार, चेन्नई।

ब. एकाम्रपुराण, उत्कललिपि-७५१८८, अड्यार पुस्तकालय एवं शोध केन्द्र, अड्यार चेन्नई।

स. एकाम्रपुराण, उत्कल लिपि/१८ उत्कल राज्य संग्रहालय, पाण्डुलिपि ग्रन्थालय, भुवनेश्वर।

द. एकाम्र पुराण, उत्कललिपि/४२२, उत्कल राज्य संग्रहालय, पाण्डुलिपि ग्रन्थालय, भुवनेश्वर।

य. एकाम्र पुराण, रत्नाकर गर्गवतु द्वारा प्रकाशित।

र. एकाम्र पुराण पाणुलिपि संख्या ५१/६, परिजा पुस्तकालय, ताड़पत्र ग्रन्थ भाग, उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर।

एकाम्रपुराण का रचनाकाल

उन पुराण के विशिष्ट गवेषक श्री आर.सी. हाजरा ने उक्त पुराण का रचनाकाल दशम शताब्दी अथवा एकादश शताब्दी माना[२] परन्तु डॉ. कल का मानना है उक्त पुराण

१. Anantavasudeva Inscription of Paramarddi Deva. 1278 A.D., Epigraphica Indica Vol. XIII, pp. १५०.१५५

२. Studies in the Upapuranas Vol. 1, P-३४१

का लेखन कार्य पन्द्रहवीं शताब्दी में पूर्ण हुआ है।[1] अपने तर्कों में उन्होंने बताया है कि उत्कल के पूर्व स्मृतिकारों ने एकाम्र पुराण का उल्लेख नहीं किया है। अर्वाचीन स्मृतिकारों में से कालसार के रचयिता गदाधर राजगुरु (१७१५ एडी), कालनिर्णय के लेखक रघुनाथ दाश (१७१०-१७५० एडी) एवं कालसर्वस्व के रचयिता महामहोपाध्याय कृष्णमिश्र (१७५० एडी) ने एकाम्र पुराण से पर्याप्त उदाहरण अपने ग्रन्थ में दिये हैं। अतः एकाम्र पुराण इन आचार्यों के कुछ वर्ष पहले ही लिखा होगा। अतः १५ शतक के पहले उक्त ग्रन्थ के रचनाकाल को लेना उचित नहीं होगा।

एकाम्रपुराण का वर्ण्य-विषय

पांच अंशों में कुल सत्तर अध्याय में भुवनेश्वर स्थित मन्दिर, तीर्थ, पर्व एवं पूजाविधि विशेष रूप से उक्त पुराण में वर्णित हैं।

प्रथम अंश में दश अध्यायों में वस्तु निर्देश, गौरीशंकर संवाद, ब्रह्मगीता, आदि सर्ग युग धर्म, भुवन कोष के अन्तर्गत सप्तद्वीप का वर्णन, विशेष रूप में भारतवर्ष का वर्णन, पाताल एवं सप्त उर्ध्वलोकों का वर्णन है।

द्वितीय अंश में २२ अध्यायों में एकाम्र वर्णन, ब्रह्मदेवता की उद्‌विग्नता, लिंग दर्शन, ब्रह्मेश्वर प्रभव, भास्करेश, यमेश्वर-सिद्धेश्वर आदि महादेव के महत्त्व वर्णित हैं। इसके बाद बिन्दूद्‌भव बिन्दु ह्रद का माहात्म्य, व्रत क्षेत्र माहात्म्य, देवासुर-संग्राम, कालनेमि शक्ति बिद्ध, दैत्य के द्वारा इन्द्रपराभव से महेश का आगमन, हिरण्याक्ष वध, भृगुवाक्य एवं हिरण्यकशिपु की तपस्या जैसे महत्वपूर्ण विषय वर्णित हैं।

तृतीय अंश में चौदह अध्यायों में देवी का अवतरण, कृत्तिवास उपाख्यान, कीर्ति वसासुर का वध, देवी पाद द्वय माहात्म्य, मेघेश्वर माहात्म्य, पापनाशन माहात्म्य, अलावु तीर्थ माहात्म्य, कपिलेश्वर माहात्म्य, कोटिलिंगार्चन विधि एवं सुवर्णजालेश्वर माहात्म्य विस्तृत रूप में वर्णित हैं।

चतुर्थ अंश के सोलह अध्यायों में बालखिल्य-शिव-संवाद, गोकर्णेश्वर एवं परशुरामेश्वर माहात्म्य, रघुवीरागमन, परिप्लव कमठांग वध, रामेश्वर का वर्णन, अष्टायतन विधि, अष्टमूर्ति की अर्चन विधि, आम्रातकेश्वर एवं अटेश्वर का माहात्म्य, सिद्धलिंगानुकीर्तन, चातुर्मास विधान, क्षेत्रपालोत्पत्ति, भीमेश्वरानुकीर्तन एवं शबरेश माहात्म्य वर्णित हैं।

पञ्चमांश में कुल आठ अध्याय में एकाम्र क्षेत्र का प्रदक्षिणा विधान, छायायात्रा, नृपशम्भु संवाद, रथ प्रतिष्ठाविधि, अशोक रथ यात्रा वर्णन चतुर्दश यात्राओं का विस्तृत वर्णन एवं फलश्रुति वर्णित हैं।

---

१. एकाम्र पुराण, Edited by Dr. U.N. Dhal, Nag Publication Delhi. १९८६

एकाम्रपुराण का महत्त्व

शिवपुराण एवं ब्रह्मपुराण आदि में एकाम्र क्षेत्र को द्वितीय काशी कहा गया है। एकाम्रक वन सर्व तीर्थमय है। वहाँ साक्षात् परब्रह्म लिंग रूप में विद्यमान हैं। यह कामद, मोक्षद एवं सभी पुण्यों का विवर्धक है। जो मनुष्य संकल्प करके वहाँ जाता है उसका पाप नष्ट हो जाता है एवं उसके कुल का उद्धार हो जाता है। जो इस क्षेत्र में शरीर त्याग करता है वह देदीप्यमान होकर शिवसाजुज्य प्राप्त करता है। ओंकार का उच्चारण करके सनातन वैष्णव पद को प्राप्त करता है। कर्णमूल में ओंकार का उच्चारण कर भगवान् सदाशिव अपने गणों के द्वारा उसे निराकार ब्रह्म में लीन करा देते हैं। समस्त पापों का विनाश करके परम मुक्ति प्रदान करता है जो मङ्गलस्वरूप है।

अघौघमर्षणं पुण्यं पावनं चिरसंचितम्।
सुकृतोद्बृंहणं पुण्यं मुक्तिदं परमं शिवम्।।[1]

एकाम्र वन में जो लिंग रूपी अव्यय शिव जी का भक्ति पूर्वक दर्शन करता है मुक्ति उसके हाथ में होती है एवं देव को अर्पित नैवेद्य महापातक नाशक है। जो एकाम्र क्षेत्र में कोटिलिंग का अर्चन करता है वह सकल मनोरथ को प्राप्त करता है। बिन्दूद्भव जल से भगवान् शिव की अर्चना करके ब्रह्मा और विष्णु अपने अपने पदों को प्राप्त किये हैं। इस क्षेत्र का माहात्म्य इतना है कि स्वयं भगवान विष्णु वैकुण्ठ को छोड़कर अनन्त वासुदेव के रूप में यहाँ विग्रहवान् हैं। समस्त गङ्गादि नदियाँ क्षीर सागर, निर्झरिणी बिन्दु रूप में एकाम्र क्षेत्र में बहती हैं -

सरांसि ह्रदकूपानि निर्झराः सागराः प्रथाः।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः क्षीरोदाद्यर्णवस्तथा।।
स्रवन्ति यत्र वै सर्वे बिन्दुजालस्वरूपिणः।
बिन्दुं स्रवन्ति विश्वस्य तेन बिन्दुसरः स्मृतम्।।[2]

यहाँ के अधिष्ठाता प्रमुख देव एकाम्रेश्वर लिंगराज हैं एवं पीठाधीश्वरी देवी 'गोपालिनी' हैं। गोपालिनी नामकरण का याथार्थ्य इसी पुराण में वर्णित है। वह देवी समस्त जगत् की रक्षा करती है एवं समस्त जीव जन्तुओं का पालन करती है -

---

१. वही १/३३
२. वही २०/२४-२५

अत्र गोपालिनी भूत्वा संक्षेपार्थं समाश्रिता।
ततः प्रभृति सा देवी गोपालिनी प्रकथ्यते।।
पुष्कराक्षी धरापादा सर्वकामफलप्रदा।
गोपयेन्निखिलान् जन्तून् पालयेन्मातृवत् सदा।।[1]

कपिलपुराण में भिन्न स्थानों में यह वर्णित है कि भगवान् भूतभावन की निवास भूमि काशी जनाकीर्ण हो गयी थी एवं धर्मद्रोही पाखण्डियों के आगमन से हरपार्वती के एकान्त विहार में विघ्न होने के कारण वे काशी छोड़कर एकाम्रक्षेत्र में आ गये थे।[2] मुख्य मन्दिर के अलावा एकाम्रक्षेत्र में अनेक शिव मन्दिर हैं -

उनमें से ब्रह्मेश्वर, भास्करेश्वर, इन्द्रेश्वर (राजराजी मन्दिर) यमेश्वर, वरुणेश्वर, सिद्धेश्वर, नागेश्वर, परशुरामेश्वर, मेघेश्वर एवं विभीषणेश्वर आदि प्रमुख हैं। देवी मन्दिरों में गौरी, द्वारवासिनी, मोहिनी, कात्यायनी, रामायणी, हरचण्डी एवं भूवासिनी आदि प्रमुख हैं।

एकाम्र पुराण का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अनुशीलन

पुरातात्विक दृष्टि से एकाम्र क्षेत्र में स्थित लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्वर एवं शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर अति प्राचीनतम हैं। किन्वदन्ती के अनुसार इन मंदिरों का संबंध रामेश्वर मन्दिर से है। इसका वर्णन एकाम्रपुराण के अतिरिक्त कपिल-संहिता एवं उत्कल में प्रसिद्ध बलराम दास के रामायण में आता है।

एकाम्रपुराण, स्वर्णाद्रि-महोदय, कपिल-संहिता एवं एकाम्र-चन्द्रिका के अनुसार उक्त क्षेत्र एक योजन या चार कोस में फैला हुआ है जिसकी पूर्व सीमा में कुण्डलेश्वर, पश्चिम में खण्डगिरि, दक्षिण में वहिरङ्गेश्वर एवं उत्तर में बलहादेवी मन्दिर हैं।

खण्डाचलं समासाद्य यत्रास्ते कुण्डलेश्वरः।
आसाद्य बलहा देवीं बहिरङ्गेश्वरावधि।।
क्षेत्रमिदं यमादिष्टं चक्राकारं शुभं मुने।
सर्वपापघ्नमतुलं नानातीर्थविभूषितम्।।[3]

वर्तमान (भुवनेश्वर) एकाम्रक्षेत्र में खण्डगिरि मार्ग में भावकुण्डलेश्वर, धउलिगिरिशिखर में बहिरङ्गेश्वर विद्यमान है। परन्तु बलहादेवी का मन्दिर कालगर्भ में विलीन हो गया है, ऐसा प्रतीत होता है। एकाम्र-पुराण में जो आम्र वृक्ष का उल्लेख है वह एककोश व्याप्त था

१. वही ५५/२१-२४
२. कपिल पुराण ११/६-१२
३. एकाम्र चन्द्रिका १/२०-२१

-सुन्दरेश्वर (आधुनिक सुन्दरपदा) से मेघेश्वर मन्दिर (ब्रह्मेश्वर पाटणा स्थित) तक। इसके मूल में लिङ्‌राज एवं चार और एक करोड़ शिवलिंगों का विस्तार था।

उत्कल के ऐतिहासिक एवं पाण्डुलिपि विद्वान् नीलमणि मिश्र का कहना है कि अशोक के कलिङ्ग विजय के पहले कलिङ्ग की राजधानी का नाम तोषाली था। अतः अशोक ने तोषाली के आक्रमण के उद्देश्य से यहाँ आक्रमण किया था, एवं तोषाली के मध्यवर्ती स्थान 'भीमटांगि' में कलिंग युद्ध हुआ था। कलिंग विजय के पश्चात् निकटस्थ धउली पहाड़ के पाद देश में अशोक की वाणी खोदी गयी थी। साथ में अति विशाल पुष्करिणी (आधुनिक नाम कौशल्यागङ्गा) खोदी गयी थी। मगध शासन की ओर से एक अशोकस्तम्भ आधुनिक रामेश्वर (वर्तमान माउसी माँ मन्दिर) प्रांगण में स्थापित किया गया था एवं पास में एक पुष्करिणी खोदी गयी थी जो आज भी "अशोकझर" नाम से ख्यात है-

रामेश्वरं ततो गत्वा कुर्यात्स्नानं विधानतः।
अशोकझरनामात्वं पापं हर नमोऽस्तु ते।

गङ्गवंश के नरपतियों के समय में उक्त एकाम्रक्षेत्र को हरिहर क्षेत्र के रूप में घोषित किया गया था एवं लिङ्गराज मन्दिर के शिखर में लगा हुआ त्रिशूल हटाकर विष्णु के शाङ्‌र्गधनु एवं शिव के पिनाक धनु के प्रतीक रूप में एक धनु का स्थापन किया गया था। उक्त वंश में उत्पन्न नरपति नरसिंह की भगिनी चन्द्रिका देवी के द्वारा 'अनन्त वासुदेव' मन्दिर का निर्माण करवाया गया था एवं एकाम्र क्षेत्र शैव एवं वैष्णवों का महत्व पूर्ण स्थान बन गया।[1]

अशोक के द्वारा कलिङ्ग आक्रमण के बाद बौद्ध-धर्म का प्रभाव दिखाई दिया। कलिंग सम्राट खारवेल ने अनेक लोकहित कार्य करते हुए जैन धर्म का प्रचार प्रसार किया। परन्तु उसके बहुत वर्षों के बाद केशरी वंश के राजाओं ने सनातन धर्म के उद्धार हेतु मन्दिरों का निर्माण करवाया। ययाति केशरी ने एकाम्र पुराण में उल्लिखित (एकाम्रेश्वर) लिंगराज मन्दिर का निर्माण प्रारंभ किया एवं ललाटेन्दु केशरी ने उक्त मन्दिर कार्य समापन करवाया। इसी समय में इन्द्र केशरी ने भी इन्द्रेश्वर (राज राणी) मन्दिर का निर्माण का आरंभ किया। इसके बाद गंग वंश का राजत्व प्रारंभ हुआ एवं इस वंश के राजाओं ने सारंगगढ़, गोसहस्रेश्वर, नागेश्वर, कुकुटेश्वर आदि शिव मन्दिरों का निर्माण किया।

एकाम्रपुराण का सांस्कृतिक अनुशीलन

विभिन्न मन्दिर एवं साम्प्रदायिक मठों में पालित उत्सव तत्कालीन सांस्कृतिक विचारधारा का परिचायक है। स्वर्णाद्रिमहोदय १४ (स्वर्णाद्रिमहोदय, अध्याय/२३) में लिङ्गराज की चौदह (यात्रायें) उत्सव वर्णित हैं -

१. एकाम्र क्षेत्र-भुवनेश्वर, नीलमणि मिश्र, एकाम्र क्षेत्र पुस्तक के पृ. ४२ से ५१ तक

मागशीर्ष में प्रथमाष्टमी, ओड़ण षष्ठी, पुष्याभिषेक, मरकसंक्रान्ति, माघशुक्ल सप्तमी, शिवरात्री, अशोकाष्टमी (चैत्रमाह के शुक्ल पक्ष अष्टमी), मदनभञ्जिका, अक्षय तृतीया, परशुरामाष्टमी, आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी में शयनोत्सव, श्रावण पूर्णिमा में पवित्रारोपण, कार्तिक शुक्ल द्वितीया अर्थात यम द्वितीया एवं चतुर्दशी में उत्थान उत्सव अन्यतम होता है। परन्तु एकाम्र-पुराण में अशोकाष्टमी का उत्सव अतिविस्तृत वर्णित है।

अशोकाष्टमी के अनेक किम्वदन्तियाँ वर्णित हैं-'रामचन्द्र रावण को मारने के लिए सात दिनों तक व्रत रखकर प्रतिदिन पलाश तुलसी आदि पत्ता भक्षण करके आठवें दिन उसका वध किया था। अतः उक्त दिन अशोकाष्टमी नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन राम सीता का शोक दूर करके पृथिवी का भार हरण किये थे। अतः शोक नष्ट करने से 'अशोक' इस नाम से उक्त अष्टमी प्रसिद्ध है। इस उत्सव में श्री लिङ्गराज महाप्रभु की उत्सव मूर्त्ति (लोकभाषा में चलन्ति प्रतिमा) रथ में बैठाकर झर स्थित रामेश्वर मन्दिर तक जाते हैं। जो व्यक्ति रथ के ऊपर भगवान् शिव का दर्शन करता है उसे ब्रह्म लोक प्राप्त होता है।

तदानीं यो नरः पश्येच्छिवं देवं रथोपरि।
ब्रह्मलोकं समासाद्य मोदते ब्रह्मणा सह।।'[1]

इस प्रकार रथस्थ भगवान् के दर्शन से अनेक फल प्राप्ति के बारे में बताया गया है। यह भी फलश्रुति में बताया गया है जो नर-नारी चक्रमार्ग में दण्डवत करते हैं मार्गस्थ रेणु के स्पर्श से उन्हें मन्दाकिनी स्नान का फल मिलता है।

चक्रमार्गे नरो यस्तु दण्डवत् प्रणमेद् भुवि।
रेणुनैकेन देवेशि ! स्वर्गङ्गास्नानजं फलम्।।[2]

ऐसा भी बताया गया है कि जो रथ में शंभु का दर्शन करता है वह तत्सम हो जाता है।[3]

स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड के अड़तीसवें श्लोक में एकाम्र क्षेत्र को कृतिवास-क्षेत्र बताया गया है

कृत्तिवासाभिधं क्षेत्रमुक्तं ते देववित्तमाः।
यः कैलासादपि श्लाघ्यो निवासः कृत्तिवाससः।।

१. एकाम्र पुराण ६८/१४-१६

२. वही ६८/२६

३. पश्येद् रथस्थितं शम्भुं स नरो तत्समो भवेत्।

एकाम्रपुराण के अनुसार उक्त क्षेत्र में प्रमुख आठ तीर्थ (अष्टतीर्थ) हैं जो निम्नवत् हैं-

१. **बिन्दुह्रद**-समस्त तीर्थों का जलबिन्दु बिन्दु होकर स्रवित होने के कारण उक्त तीर्थ का नाम बिन्दुसरोवर है। एकान्तवास उद्देश्य में भगवती पार्वती काशी छोड़कर जब एकाम्र क्षेत्र में पहुंची तब उन्हें अत्यधिक प्यास लग रही थी। तब शिवजी के द्वारा पृथिवी पर त्रिशूल से प्रहार करने से गङ्गा आविर्भूत हुईं। पार्वती की तृष्णा निवृत्ति के बाद गङ्गाजल से जो कुण्ड बना था वह बिन्दुसरोवर नाम से प्रसिद्ध हुआ। कपिलपुराण के अनुसार बिन्दुसरोवर में पिण्डदान का विधान है –

विन्दुह्रदे तनुत्यागात् श्रीसूक्ष्मे पिण्डदानतः।
केदारे भुवनं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

२. **पाप-नाशिनी-तीर्थ**-उक्त तीर्थ लिङ्गराज मन्दिर के पश्चात भाग में अवस्थित है। जिसके तट पर मैत्रेश्वर एवं करूणेश्वर नाम से दो शिव मन्दिर हैं। इस तीर्थ में स्नान करने से मन एवं शरीर ताप नष्ट होकर अनुताप के आग से मुक्त होता है; पापों का विनाश होता है।

३. **गङ्गायमुना तीर्थ**-लिङ्गराज मन्दिर के उत्तर पूर्व कोण में गङ्गेश्वर एवं यमुनेश्वर मन्दिर के निकट एक पुष्करिणी है। ऐसा विश्वास है, दोनों नदियाँ यहाँ आयी थीं। यहाँ स्नान के बाद महादेव के दर्शन से अशेष पाप से मुक्ति मिलती है।

४. **कोटितीर्थ**-अनन्त वासुदेव मन्दिर के निकट केदारगौरी मार्ग में यह तीर्थ आता है। यहाँ पर भी कोटितीर्थेश्वर महादेव हैं। पापविमोचन हेतु यहाँ स्नान किया जाता है।

५. **ब्रह्मकुण्ड-तीर्थ**-लिङ्गराज मन्दिर की उत्तर दिशा में ब्रह्मेश्वर मन्दिर के निकट स्थित पुष्करिणी ही उक्त तीर्थ है। तीर्थ में स्नान के बाद ब्रह्मेश्वर के दर्शन से पुण्य प्राप्त होता है।

६. **मेघेश्वर-तीर्थ**-ब्रह्मेश्वर मन्दिर से कुछ दूरी पर मेघेश्वर मन्दिर अवस्थित है, यहाँ एक पुष्करिणी है। लिङ्गराज मन्दिर में पूजार्चना में त्रुटि होने पर प्रायश्चित स्वरूप मेघेश्वर की पूजा की जाती है। अनावृष्टि होने से मेघेश्वर जी का जलाभिषेक करने से वृष्टि होती है।

७. **अलांबुतीर्थ**-लिङ्गराज मन्दिर के दक्षिण में अलांबुकेश्वर मन्दिर अवस्थित वर्तमान में यह नागेश्वर नाम से जाना जाता है। इस तीर्थ के नाम से एक किवदन्ती है। एक बार एक तपस्वी वहाँ तपस्या कर रहे थे। शिव उन पर प्रसन्न होकर वर मांगने को कहे। तपस्वी ने कहा मेरा यह अलांबु पात्र एक जलाशय में परिणत हो जाय। शिव कृपा से ऐसा ही हुआ एवं शिव अलांबुकेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुये। मनोकामना की सिद्धि हेतु यहाँ भक्तगण स्नान करते हैं।

रामह्रद (अशोककुण्ड) - रामेश्वर मन्दिर के समीप यह रामझर नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्वर एवं शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर भी हैं। तीर्थ में स्नान के बाद रामेश्वर का दर्शन करने से पापों से मुक्ति मिलती है।

एकाम्रपुराण का साहित्यिक अनुशीलन

एकाम्र पुराण का साहित्यक सम्मान भी अत्युन्नत है। एकाम्र पुराण में वर्णित एकाम्रेश्वर के मन्दिर गात्र में निम्न पद्य शिव को मनोरम चरित्र की प्रशस्ति करता है।

संभ्रान्तजम्बरिपुसम्पदुपास्यमान,
लीलालसेन्दुनयनाञ्चलशासनानि।
भिक्षाविलासचरितानि जयन्ति शम्भो-
नेत्रामृतानि सुरराजपुराङ्गनानाम्।।

एकाम्र पुराण में वर्णित शिव स्तुतियाँ विशेषकर स्रोत्र साहित्य के सन्दर्भ में विशिष्ट अवदान हैं। वे अत्यन्त मनोहर एवं प्रसाद गुणों से युक्त हैं -

पञ्चाननं चारुविभूतिभूषितं, नागेन्द्रहारं मणिकुण्डलान्वितम्।
वामेन शैलेन्द्रसुतासमाश्रितं, शिवं भजे पार्वतिवल्लभं हरम्।।

त्रिलोचनं स्निग्धशरद्घनोपमं, द्विपेन्द्रचर्मांशुकधारिणं प्रभुम्।
नागोपवीतं वृषभेन्द्रकेतनं, शिवं भजे पार्वतिवल्लभं हरम्।।

स्थितिस्वरूपं मदनाङ्गनाशनं, पिनाकिनं दक्षमखप्रभेदनम्।
अघौघशुष्केन्धनजातवेदसं, शिवं भजे पार्वतिवल्लभं हरम्।।

सुरापगाधौतजटामनोहरं, नितान्तचन्द्रार्धकपोलशोभितम्।
सिद्धेन्द्रवृन्दैः परिवारितं मृडं शिवं भजे पार्वतिवल्लभं हरम्।।

तापत्रयासक्तजनाभिरक्षकं, बाणप्रियं नृत्यविशारदं भवम्।
युगावसाने किल भीमदर्शनं, शिवं भजे पार्वतिवल्लभं हरम्।।[1]

इस प्रकार एकाम्र पुराण में अनेक मनोरम पद्य हैं जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उक्त पुराण केवल कथाओं का वर्णन नहीं करता है, अपि तु उसके अध्ययन से

---

१. एकाम्र पुराण ३८/३३-३७

विभिन्न छन्द, नवीन शब्द योजना एवं अनुप्रास, उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का प्रतिपादन करता है।

उपसंहार

इस पुराण का एक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इसमें उपपुराणों के नाम गणना प्रसंग में ऐसे पुराणों का नाम है जो अन्य पुराणों में उपलब्ध नहीं है। न ही वास्तव में कहीं दृष्टि गोचर है। जैसे कि प्रभास पुराण, लीलावती पुराण, आखेटक पुराण, नन्दिकेश्वर पुराण, लघुभागवत एवं मृत्युञ्जय पुराण।

उक्त पुराण में पांच अंश एवं सत्तर अध्यायों में कुल छः हजार श्लोक हैं जो विष्णु पुराण के बराबर है। इतना विशालकाय पुराण एकाम्रक्षेत्र (वर्तमान भुवनेश्वर) में विराजमान देव, देवियों, तीर्थ एवं व्रतोत्सव आदि का विस्तार से वर्णन करता है। ऋषियों के साथ सूत के सम्वाद एवं पार्वती के साथ शिवजी के संवाद के माध्यम से समस्त विषय वस्तु वर्णित है। इस पुराण के माध्यम से उत्कल के सांस्कृतिक गौरव का ज्ञान होता है।

एकाम्रक्षेत्र के सम्बन्ध में चार महत्वपूर्ण पुराण उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं-

एकाम्रपुराण, कपिल-संहिता, स्वर्णाद्रिमहोदय एवं एकाम्र-चन्द्रिका। एकाम्रपुराण इन तीनों से विशालकाय एवं महत्वपूर्ण है। यद्यपि चारों के विषयवस्तु में कुछ समानता है फिर भी भाषा, साहित्य, एवं शैली की दृष्टि से यह पुराण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि अन्य पुराणों में भी साहित्यिक वर्णन दृष्टिगोचर होता है किन्तु एकाम्र पुराण की शैली रोचक *आलङ्कारिक एवं सहज प्रसादगुण सम्पन्न होने के कारण अतिशय स्पृहणीय और रमणीय है। उक्त पुराण पर नवीन दृष्टिकोण से विस्तृत शोधकार्य यदि किया जाय तो अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं रहस्यों का उन्मीलन होना निश्चित है।*

पुस्तक सूची

१. एकाम्रपुराण संपादक, डॉ. उपेन्द्रधल, नाग प्रकाशन दिल्ली, १९८६
२. कपिल पुराण, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८१
३. एकाम्र चन्द्रिका, केदारनाथ गवेषणा प्रतिष्ठान, भुवनेश्वर १९९५
४. एकाम्र क्षेत्र, उत्कल पाठक संसद, कटक, १९९३
५. पुराण विमर्श, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९८७

औपपुराण

कल्किपुराण

कल्कि की गणना उपपुराणों में की जाती है। कल्किपुराण की पुष्पिका के अनुसार यह श्रीमद्भागवत-महापुराण का परिशिष्ट है-"इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते .... अध्यायः।। इसमें ३५ अध्याय हैं तथा श्लोकों की संख्या १३१२ है (द्र. अशोकशास्त्री द्वारा सम्पादित, २०२६ वि.सं. में "वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय" से प्रकाशित संस्करण)।

कल्किपुराण तीन अंशो में विभाजित है, प्रथम और द्वितीय अंश में सात-सात अध्याय और तृतीय अंश में इक्कीस अध्याय हैं।

इस ग्रन्थ की रचना के काल और स्थान के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। धर्मशास्त्र के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसके उद्धरण नहीं मिलते। यतः इसमें बौद्धों की पराजय की बात लिखी गयी है और आदिशंकराचार्य के समय में बौद्धों की पराजय हो चुकी थी, अतः इसे सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व की रचना मानी जा सकती है। डॉ. आर.सी. हाजरा ने कहा है कि कल्किपुराण के अधिकतर हस्तलेख बंगलिपि में हैं। अतः इसका रचना-स्थान बंगाल ही हो सकता है। (स्टडीज इन दी उपपुराणज भाग-१, पृ. ३०८) इसका एक हस्तलेख सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय के सरस्वती भवन में भी है। (द्र. अशोकशास्त्री द्वारा सम्पादितकल्किपुराण का १६७ पृष्ठ)।

कथावस्तु-कल्किपुराण में कल्कि के अवतार और इनके द्वारा अधर्माचरण करने वाले दुष्टों तथा बौद्धों के विनाश की कथा वर्णित है, जिसका अध्यायक्रम से कथासार नीचे प्रस्तुत है।

अ. १ में गणेश, सरस्वती और कल्किभगवान की स्तुति की गयी है। इसमें कल्कि के माहात्म्य का वर्णन है। नैमिषारण्य में ऋषियों का सूत से भागवतधर्म सुनने की इच्छा तथा सूत द्वारा कही गयी भागवती कथा का वर्णन है। इसी क्रम में प्रलयकाल के बीतने पर ब्रह्मा द्वारा अपने पीठ से पातक छुड़ाकर फेंकना, पातक से क्रमशः अधर्म-मिथ्या-क्रोध-दम्भ-माया आदि की उत्पत्ति, क्रोध और हिंसा नामक भाई-बहन के संयोग से कलि की उत्पत्ति, कलि के स्वरूप का वर्णन, कलि और दुरूक्ति नामक भाई-बहन के संयोग से भयानक तथा मृत्यु आदिकलिवंश का विस्तार, कलि के प्रभाव से धर्म में परिवर्तन एवं आतंक, देवताओं का दुःखी होना, देवताओं का ब्रह्मलोक जाना एवं ब्रह्मलोक का वर्णन आदि किया गया है।

अ. २ में ब्रह्मा के पास देवताओं का कलि के प्रभाव से धर्म की हानि होने का वृतान्त सुनाना, ब्रह्मा के साथ देवताओं का विष्णु के पास जाना, कलि के अत्याचार को कहना तथा देवताओं के भय, आतंक और पीड़ा की कथा सुनाना आदि वर्णित हैं। इसी अध्याय में ब्रह्मा द्वारा देवताओं की पीड़ा सुनकर विष्णु का सम्भल नामक ग्राम में विष्णुयश की

सुमति नाम की कन्या के गर्भ से उत्पन्न होने की कथा एवं अपने तीनों भाईयो के साथ मिलकर कलि के संहार करने की प्रतिज्ञा करना और देवताओं को अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर अवतार लेने का आदेश देना आदि की कथा वर्णित है। इसी क्रम में लक्ष्मी के सिंहल देश में राजा बृहद्रथ की कौमुदी नामक पत्नी के गर्भ से पद्मा नाम से उत्पन्न होने को बतलाना, ब्रह्मा आदि देवों का स्व स्व स्थान गमन, विष्णु द्वारा सुमति के गर्भ से वैशाखमास शुक्लपक्ष-द्वादशी को अवतरित होना तथा चतुर्भुज-रूप छोड़कर द्विभुज-रूप-धारण करना, सम्भल-ग्राम में महान् उत्सव होना, सभी देवों का आगमन, मुनियों द्वारा विष्णु का कल्कि नामकरण, शास्त्र के सम्बन्ध में कल्कि का प्रश्न, पिता द्वारा वेदादिशास्त्रों का परिचय देना एवं ब्राह्मण की परिभाषा आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ३ में कल्कि का महेन्द्राद्रि पर जाना एवं परशुराम से वेदादिशास्त्रों की शिक्षा-प्राप्त करना, परशुराम द्वारा कल्कि को लोक-कल्याण का सदुपेदश, भगवान् बिल्वोदकेश्वर से कामचारीअश्व, शुकपक्षी तथा खड्ग की प्राप्ति, कल्कि का सम्भलग्राम लौटना एवं वर्णाश्रमधर्म को दृढ़ करना, वेदमार्ग की प्रतिष्ठा करना और कल्कि-द्वारा विशाखयूप नृप से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का तथा ब्राह्मणों के चरित्र का वर्णन करना आदि वर्णित हैं।

अ. ४ में सिंहलद्वीप के निवासी राजाबृहद्रथ की पुत्री पद्मावती (पद्मा) का वर्णन, लक्ष्मी की अवताररूपा पद्मा के पास कल्कि द्वारा शुक भेजना तथा शुक का सिंहल प्रदेश में आकर पद्मा का दर्शन करना और 'यह पद्मा पतिरूप में विष्णु को ही प्राप्त करेगीं ऐसा शिव का वरदान है'- इस वार्ता को पद्मा के मुख से ही सुनना तथा सिंहल से कल्कि के पास आना आदि कथा का वर्णन किया गया है।

अ. ५ में शुक-द्वारा कल्कि के सम्मुख सम्पूर्ण वृतान्त कहना, इस प्रसंग में शुक-पद्मा के विवाह-हेतु माता कौमुदी और पिता बृहद्रथ का चिन्तित होना, इनके द्वारा स्वयंवर आयोजित करना तथा स्वयंवर में आये हुए राजाओं का पद्मावती को देखते ही स्त्री हो जाना आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में पद्मा के माता-पिता के दुखी होने का भी वर्णन किया गया है।

अ. ६ में स्वयंवरजनित अभूतपूर्व घटना से पद्मा का दुःखी होना एवं उनके विलाप का विशद वर्णन किया गया है। पद्मा की मानसिक व्यथा सुनकर कल्कि द्वारा शुक को पुनः सिंहल में पद्मा के पास भेजना, शुक-द्वारा कल्कि के ऐश्वर्य आदि की प्रशंसा करना, पद्मा के द्वारा नारायण को ही पति के रूप में वरण करने की प्रतिज्ञा सुनना आदि-पद्मा और शुक के संवाद का वर्णन किया गया है।

अ. ७ में विष्णु के पूजन की विधि, 'ओं नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षरमन्त्र से विष्णु के जप की विधि तथा हरि-भक्ति की प्रक्रिया का विशद विवेचन किया गया है।

अ. ८ में विष्णु के ध्यान का विशद वर्णन किया गया है। पद्मा के साथ वार्तालाप तथा पद्मा-द्वारा शुक के पास भेजना और शुक-द्वारा पद्मा की पतिरूप में नारायण के प्राप्त करने की इच्छा को सुनकर कल्कि का प्रसन्न होना और सिंहल की राजधानी कारूमती आने की इच्छा प्रकट करना आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ९ में शुक के साथ कल्कि का कारूमती नगरी प्रस्थान; नगर से बाहर एक सरोवर पर कल्कि का ठहरना, शुक का अन्तःपुर प्रवेश, पद्मा की अवस्था का दर्शन, शुक-द्वारा कल्कि से पद्मा को मिलाना, कल्कि-पद्मा-संवाद आदि वर्णित हैं।

अ. १० में कल्कि के दर्शन से पद्मा का विस्वल होना, पद्मा-द्वारा अपने माता-पिता से कल्कि का आगमन निवेदित करना, कल्कि का आगमन सुनकर बृहद्रथ का प्रसन्न होना, कल्कि के स्वागत हेतु राजा द्वारा कारूमती नगरी की सजावट कराना, कल्कि का नगरप्रवेश, पद्मा का पाणिग्रहण, पूर्वस्वयंवर में स्त्रीत्व को प्राप्त राजाओं को रेवानदी में स्नान करने का उपदेश एवं उससे उनके स्त्रीत्व से विमुक्ति, राजाओं द्वारा दशावतार का वर्णन एवं उनकी स्तुति करना आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ११ में कल्कि द्वारा राजाओं के समक्ष वर्णाश्रम-धर्म का उपदेश, राजाओं का अपनी विगत स्त्रीत्व-अवस्था के सम्बन्ध में प्रश्न, कल्कि की इच्छा से अनन्त नामक ऋषि का आगमन, कल्कि और अनन्तमुनि का संवाद, राजाओं द्वारा संवाद का आशय पूछना, अनन्तमुनि द्वारा अपनी कथा सुनाना पुरी नामक नगर में मेरा जन्म हुआ था- मेरे पिता का नाम विद्रुम था। मुझे जन्म से ही नपुंसक समझकर उन्होंने शिव की आराधना शुरू की। शिव के आर्शीवाद से कुछ ही दिनों बाद मुझे पुंस्त्व की प्राप्ति हो गयी। बारहवर्ष की अवस्था में मेरा विवाह होने के बाद माता-पिता की मृत्यु हो गयी। माता-पिता के असामयिक वियोग से खिन्न-चित्त मैंने और्ध्वदेहिक-क्रिया की, और विष्णु की आराधना प्रारम्भ कर दी। धीरे-धीरे मेरा मोह समाप्त हो गया और मैं पत्नीसहित पुरुषोत्तमस्थान को गया और पुरुषोत्तमस्थान के दक्षिण में आश्रम बनाकर निवास करने लगा। इसी क्रम में बारह वर्ष बीतने के बाद द्वादशी तिथि को बन्धुजनों के साथ स्नान करने समुद्र तट पर गया। वहाँ मैंने स्नान हेतु ज्योही गोता लगाया त्यों ही मुझे उठने का सामर्थ्य नहीं रहा। जलचर आदि जीव मुझे व्यथित करने लगे। सौभाग्यवश पवन के एक हिलोरे से बाहर आ गया और मुझे वृद्धशर्मा नामक ब्राह्मण अपने घर ले आया। वहाँ उन्होंने मुझे पुत्र की भाँति स्नेह देना शुरू किया और वेदविद् जानकर अपनी चारुमती नामक कन्या से मेरा विवाह कर दिया। समयानुसार मुझे चार पुत्र हुये। कुछ दिनों के बाद मेरे बड़े पुत्र बुध के विवाह-हेतु धर्मसार नामक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा व्यक्त की, मैनें स्वीकार भी कर लिया। एक दिन आभ्युदयिक क्रिया करने हेतु समुद्र की ओर जा ही रहा था कि समुद्रतट पर सन्ध्योपासनादि-कर्म करते हुए अपने बन्धुओं को देखा। मैं विस्मित हो गया तथा पुरूषोत्तम

के आगमन से आरोग्य हुआ। (इस प्रकार इस अध्याय में विष्णु की माया का वर्णन किया गया है)।

अ. १२ में पुरुषोत्तम-तीर्थवासी जनों का परमहंस से अनन्त मुनि के आरोग्य होने की बात पूछना, परमहंस के द्वारा अनन्त को प्रबोधित करना तथा विष्णु की माया का प्रभाव बतलाते हुये सांख्य-सिद्धान्त का प्रतिपादन करना, अनन्त-द्वारा इन्द्रिय-निग्रह-हेतु तपस्या करना, तप के प्रभाव से इन्द्रियों के अधिपतियों का आगमन तथा उनके द्वारा तप का त्याग कर विष्णु की भक्ति करने की ओर प्रेरित करना और अनन्त-द्वारा पद्मापति कल्कि को मुक्ति का एकमात्र साधन मानकर आराधना करना आदि बातों का वर्णन किया गया है।

अ. १३ में राजाओं का अपने-अपने राज्य में प्रस्थान, सेना और पद्मा के साथ कल्कि का सिंहल से अपने जन्म-स्थान जाने की इच्छा, कल्कि के जन्म-स्थान जाने की इच्छा जानकर इन्द्र-द्वारा विश्वकर्मा को सम्भल ग्राम जाकर भव्यप्रासाद का निर्माण करना, पद्मा-सहित कल्कि का प्रस्थान, बृहद्रथ द्वारा कल्कि का सौप्रस्थानिक अभिनन्दन, सेनाओं-सहित कल्कि का समुद्रस्नान, समुद्र-पार करना तथा कल्कि के आदेश से कीर (शुक) का सम्भलग्राम जाना, कल्कि के आगमन की सूचना देना, नगरवासियों द्वारा नगर की सजावट, सेना-सहित कल्कि का प्रवेश, आत्मीय लोगों का समागम तथा निवास करना। कुछ दिनों बाद कल्कि के जय-विजय नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति, दिग्विजय के निमित्त कल्कि की यात्रा, सर्वप्रथम कीकटपुर प्रस्थान, वहाँ पर बौद्धों के बाहुल्य एवं आतंक से सनातनधर्म का विलोप, कल्कि का आगमन सुन देहात्मवादी बौद्धों का आक्रमण आदि कथाओं का वर्णन किया गया है।

अ. १४ में कल्कि और जिन-सहित बौद्धों के युद्ध का वर्णन, बौद्धों का संहार, शुद्धोदन-द्वारा मायाशक्ति का आवाहन, मायाशक्ति के प्रभाव से कल्कि की सेनाओं का नाश, माया-शक्ति के समक्ष कल्कि के जाने से माया का निस्तेज होना, तथा कल्कि की विजय आदि का वर्णन किया गया है।

अ. १५ में विशाखयूप, कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्रक आदि बौद्धों के साथ कल्कि की सेनाओं का युद्ध, बौद्धस्त्रियों का युद्ध के लिए उद्यत होना, बौद्धस्त्रियों और शस्त्रास्त्रों का संवाद, शस्त्रों द्वारा कल्कि की माया का व्याख्यान करना, बौद्धस्त्रियों और कल्कि का संवाद, बौद्धस्त्रियों द्वारा शस्त्रपरित्याग और कल्कि की शरणागति, कल्कि द्वारा उन्हें ज्ञानभक्ति का उपदेश करना आदि का वर्णन किया गया है।

अ.१६ में कल्कि का कीकटप्रदेश से चक्रतीर्थ आगमन, कुछ दिनों तक निवास काल में उनके समक्ष बाल्यखिल्यों का आगमन, बाल्यखिल्यादि ऋषियों का कल्कि से कुम्भकर्ण की पौत्री एवं निकुम्भ की पुत्री कुथोदरी का आतंक सुनाना, सेना-सहित कल्कि का हिमालयप्रस्थान, दुग्ध की नदी देख कल्कि का आश्चर्य एवं ऋषियों से प्रश्न, ऋषियों द्वारा

कुथोदरी की विशालता एवं उसके स्तन से निकली हुयी दुग्धनदी बतलाना, राक्षसी के दर्शन एवं उसके रूप का वर्णन, सेनाओं द्वारा राक्षसी पर प्रहार, राक्षसी द्वारा कल्कि सहित सम्पूर्ण सेनाओं को निगलना, देवताओं तथा ऋषियों का शोक, कल्कि द्वारा कुथोदरी के उदर में अग्नि प्रज्वलित करना एवं तीक्ष्ण खड्ग से उदर चीर कर ससैन्य बाहर निकलना, राक्षसीपुत्र विकंज का युद्ध के लिये उद्यत होना, कल्कि द्वारा उसका बध कर हरिद्वार आगमन, वहीं स्नान और कुछ दिनों तक विश्राम करना आदि कथाओं का वर्णन किया गया है।

अ. १७ में तटस्थित कल्कि के समक्ष नारदादि ऋषियों के साथ मरु और देवापि का आगमन, कल्कि द्वारा ऋषियों का स्वागत, सूर्यवंशी राजा मरु द्वारा सूर्यवंशीय राजाओं का क्रमशः वर्णन, कल्कि की आज्ञा से मरु द्वारा श्रीराम का विस्तार से आख्यान सुनाना (यहाँ श्रीराम के जन्म से लेकर सरयूतट पर स्वधाम गमन तक की कथा है) आदि कथाओं का वर्णन किया गया है।

अ. १८ में मरु को "शीघ्र" नामक राजा का पुत्र तथा बुध और सुमित्र नाम से प्रसिद्ध बतलाया गया है। कलापग्राम में मरु का तपस्या करना, व्यास द्वारा कल्कि अवतार की बात कहना आदि वर्णित हैं। कल्कि द्वारा देवापि का परिचय पूछने पर देवापि द्वारा अपने चन्द्रवंश का वर्णन तथा अपने को प्रतीप नामक राजा का पुत्र बतलाना आदि कथायें वर्णित हैं। कल्कि द्वारा मरु और देवापि राजाओं के वंश की प्रशंसा, म्लेच्छों का नाश करने, मरु को अयोध्या के राज्य-पद पर अभिषिक्त करने का आश्वासन देना तथा देवापि को पुल्कसों का संहार कर हस्तिनापुर में अभिषिक्त करने का आश्वासन देना, मथुरा के भय को दूर करने का वचन देना तथा इसी क्रम में विशाखयूप की कन्या से मरु का विवाह और रूचिराश्व की पुत्री से देवापि के विवाह की भविष्यवाणी करना एवं तत्क्षण आकाशमार्ग से दो तेजोमय रथों का आगमन, पुष्पवृष्टि और सूर्य-चन्द्र के अंशावतार मरु और देवापि का रथारोहण आदि वर्णित हैं। तथा इसी अध्याय में मस्करी (सन्यासी) के आगमन का वर्णन किया गया है।

अ. १९ में कल्कि द्वारा भिक्षुक का सत्कार एवं उसका परिचय, भिक्षुक द्वारा अपने को सत्ययुग एवं कल्कि को विष्णु का अवतार कहना, भिक्षुक द्वारा स्वायम्भुव आदि चौदहों मनुओं तथा युगों का वर्णन, चारों युगों की अवधि, ब्रह्मा की उत्पत्ति आदि का उल्लेख है। इसी अध्याय में कल्कि द्वारा सत्ययुग के आगमन से सन्तुष्ट होकर विशासन नामकपुरी में संग्राम हेतु सैनिकों सहित प्रस्थान आदि का वर्णन है।

अ. २० में मरु और देवापि आदि अपने विश्वस्त लोगों को साथ लेकर दश अक्षौहिणी सेना के साथ कल्कि का कलि के विनाश के लिये प्रस्थान करना, ब्राह्मणवेश में धर्म का आगमन एवं कल्कि द्वारा धर्म का सम्मान, धर्म द्वारा कलि के अत्याचार और

साधु महात्माओं के कष्ट को दूर करने की प्रार्थना, कलि के नगर का वर्णन, क्रोद्ध, मोह आदि सहयोगियों के साथ कलि का युद्ध के लिये प्रस्थान तथा कल्कि और कलि का भीषण संग्राम वर्णित है।

अ. २१ में कल्कि और कलि का युद्ध, कलि की पराजय एवं गधे पर सवार होकर कलि का दूसरे वर्ष में पलायन, कलि के पक्ष से खश, काम्बोज, शबर, वर्बर, चीन, पुलिन्द, चोल, निषाद तथा कोक-विकोक का युद्ध भूमि में आना, विशाखयूप द्वारा पुलकसों का पराजित होना तथा कल्कि के हाथों कलि का वध आदि वर्णित है।

अ. २२-२७ में कल्कि का भल्लाट नगर में प्रवेश, भल्लाटनरेश शशिध्वज का कल्कि से युद्धारम्भ, शशिध्वज की पत्नी सुशान्ता का शशिध्वज के कल्कि के विष्णुत्व का विवेचन, शशिध्वज का पराजित होना आदि का वर्णन किया गया है।

द्वैताद्वैतदर्शननिष्णात राजा शशिध्वज का अपनी पत्नी सुशान्ता से द्वैताद्वैतमत का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कर कल्कि के साथ अपने युद्ध का समर्थन करना, शशिध्वज का कल्कि द्वारा पराजित होना, और अपनी कन्या रमा के साथ कल्कि का विवाह करना तथा पूर्वजन्म में प्राप्त गृध्रयोनि का विस्तृत वर्णन करना आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

कथाप्रसंग में विष्णु का महत्व, विष्णु की पूजा, विष्णु की भक्ति आदि की विस्तृत व्याख्या की गयी है। राजा शशिध्वज के स्वर्गप्राप्ति की कामना उपदेश के प्रसंग में शशिध्वज के द्वारा श्रीकृष्णकी अपूर्व लीला का वर्णन करना तथा कथाश्रवण से सामाजिकों की प्रसन्नता का वर्णन किया गया है।

अ. २८ में भगवान् कल्कि की दूसरी कथा का वर्णन किया गया है। कल्कि द्वारा काञ्चनपुरी प्रस्थान, विषकन्यावध, कल्कि द्वारा विषकन्या को मुक्ति प्रदान करना, अयोध्या, मथुरा, वारणावती, पुण्ड्र, अंग-बंग तथा कीकट-देश में दुष्टों का संहार कर सिंहासन पर अपने सेवकों को नियुक्त करना आदि का वर्णन किया गया है।

अ. २९ में कल्कि को अपनी जन्मभूमि सम्भल-ग्राम लौटने तथा लुप्तप्राय सत्ययुग एवं सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करना, कोकमुखतीर्थ पर शशिध्वज द्वारा वैष्णवीमाया की प्रशंसा करना, शशिध्वज द्वारा माया की स्तुति आदि का वर्णन किया गया है।

अ. ३० में राजाविष्णुयश द्वारा राजसूय तथा अन्य अनेक यज्ञों को करना, यज्ञस्थल में आकर नारद द्वारा विष्णुयश को माया का स्वरूप और कल्कि का माहात्म्य बतलाना, सम्भलग्राम में भगवान् के अवतारभूत परशुराम का आगमन, विष्णुयश का मोक्ष आदि कथा का वर्णन है।

अ. ३१ में रुक्मिणीव्रतोपाख्यान, इस व्रत के प्रकार-विधि फल आदि का परशुराम द्वारा उपदेश करना आदि का वर्णन है तथा इसी अध्याय में कच, शर्मिष्ठा, देवयानी आदि

का आख्यान है और इसी क्रम में पुत्रप्राप्ति हेतु रुक्मिणीव्रत की अनिवार्यता बतलाई गयी है।

अ. ३२ में भगवान कल्कि का स्त्रियों के साथ केलिकला और प्रेममय विलास का वर्णन किया गया है।

अ. ३३ में ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं का सम्भल ग्राम में आगमन एवं कल्कि के स्वर्गयात्रा तथा निर्वाण का वर्णन किया गया है।

अ. ३४-३५ में जह्नुपुत्री गंगा की स्तुति एवं कल्कि-पुराण का सारांश, कल्किपुराण-पाठ करने का फल एवं अनुक्रमणिका आदि का वर्णन किया गया है।

इस पुराण में अनेक स्थलों पर दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। मायादर्शन नामक अ. ११ में माया के स्वरूप का विवेचन, अनन्तमाया-निरूपणनामक अ. १२ में सृष्टि का वर्णन (१२, १३-१४), मायास्वरूप का वर्णन (१२, १२) संसार के कारणभूत अहंकार का वर्णन (१२, १५) और तन्मात्र और महाभूतों का वर्णन किया गया है (१२, १६) इस पुराण में माया के कारण आत्मविस्मृति (१२, १८), तथा माया की बलवत्ता का वर्णन अत्यन्त हृदयस्पर्शि है। इसमें यह बतलाया गया है कि माया के मोह के कारण जीव आत्मस्वरूप को भूल जाता है (१२, १६)। यहाँ बताया गया है कि इद्रियनिग्रह से मनोनिग्रह स्वाभाविक है। इसी क्रम में यहाँ इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवों के नाम भी बतायें गये हैं।

इस पुराण में वैष्णव धर्म का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ बताया गया है कि चक्रांकित वैष्णव शीघ्र ही वैकुण्ठ को प्राप्त करता है (द्र. २५. १२-१३)। अ. २७ में बताया गया है कि २६ अध्याय के २ मन्त्रों को लिखकर बांधने से ज्वरादि की शान्ति होती है। अ. ७ के दशम-श्लोक के अन्त में तथा नारायणस्तव के आदि में "ॐ नमो नारायणाय (स्वाहा)" मन्त्र उल्लिखित है। इस अष्टाक्षरवैष्णवमन्त्र को पद्मा-कृत बताया गया है।

इस पुराण में वैष्णवी भक्ति की व्याख्या है। गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् प्रसन्न होते हैं। वाक्, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से भावविद् विद्वान् आत्मा को हरि में अर्पित कर दे। इस ग्रन्थ में सेव्य-सेवक-भाव से भक्ति का प्रतिपादन किया गया है (२५.२७-४४)। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी वैष्णव-सम्प्रदायोचित भक्ति का प्रतिपादन किया गया है।

कल्किपुराण में सात स्तुतियाँ हैं

(१) कल्किकृतशिवस्तुतिः (३.१४), (२) पद्माकृत-नारायण (कल्कि) स्तुति (७, ११-३०), (३) स्त्रीभाव को प्राप्त राजाओं द्वारा की गयी नारायण की गद्यमयी स्तुति (१०, २१), (४) सुशान्ताकृत-कल्कि-स्तुति (२४.८), (५) शशिध्वजकृत मायास्तव (२६.६-१२), (६) देवताओं द्वारा की गयी कल्किस्तुति (३३.८), (७) ऋषियों द्वारा की गयी गंगास्तुति (३४.४-१२)। उपर्युक्त इन सभी स्तुतियों में गंगास्तुति अत्यन्त मनोहर एवं सारगर्भित है।

इस पुराण में अनेक व्रतों का विधान है, जिनमें परशुराम द्वारा उपदिष्ट "रूक्मिणीव्रत" महत्त्वपूर्ण है।

इस पुराण में अनेक ऐतिहासिक राजाओं का उल्लेख है। पर इनके काल का कोई निश्चित उल्लेख नहीं है। कल्कि के सम्भलग्राम में उत्पन्न होने का उल्लेख है तथा कल्कि ने मरु और देवापी को क्रमशः अयोध्या और हस्तिनापुर का राजा बनाया, कल्कि के अवतार के समय में विशाखयूप नामक राजा थे, परन्तु उनके वंश का उल्लेख कल्किपुराण में नहीं हैं कल्कि के परशुराम से शिक्षाग्रहण करने तथा बौद्धों और म्लेच्छों को मार कर सनातन धर्म की स्थापना की बात उल्लिखित है। पद्मा के स्वयंवर में आये-रूधिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढ़ाशुग आदि राजाओं का उल्लेख भी ऐतिहासिक तथ्य की ओर इंगित करता है। कल्कि के वाहन के रूप में तुरंग का उल्लेख है, विमान या गरुड़ का नहीं/ इससे ऐसा अनुमान होता है कि कल्कि का अवतार तुरग और खड्ग-युग में हुआ था। कल्कि का कीर द्वारा सन्देश भेजना, कपोतादि-पक्षियों द्वारा सन्देश भेजने वाले युग को द्योतित करना है। इसी प्रकार कल्कि के अवतार के समय बौद्धों और म्लेच्छों का बाहुल्य था, जिसका नाश कर कल्कि ने सनातन धर्म स्थापना की। इससे स्पष्ट है कि बौद्धयुग में कल्कि का अवतार हुआ था।

भौगोलिक दृष्टि से इस पुराण में काफी असंगति प्रतीत होती है। सिंहल में स्त्रीत्व को प्राप्त राजाओं को पुनः पुरुष बनने हेतु कल्कि उन्हें रेवा में स्नान करने का उपदेश करते हैं। (१०.१८) किन्तु सिंहल में रेवा नदी का सर्वथा अभाव है। अयोध्या, मथुरा, हस्तिनापुर आदि स्थलों में बौद्धों का विनाश, मरु आदि राजाओं की स्थापना और खश, काम्बोज, शबर, बर्बर आदि स्थलों का उल्लेख बहुत कुछ असंगत प्रतीत होता है।

इस पुराण की भाषा आधुनिक है तथा काव्य-सौन्दर्य से सुशोभित भी। देवताओं की स्तुतियाँ काव्य-सुषमा-सम्पन्न एवं मनोहारी हैं। अलंकारों में उपमा का विशेष प्रयोग है। दो तीन स्थलों पर रूपक-अलंकार का भी प्रयोग है (१४.३१, १५.७, १४.२)। नवम-अध्याय में कल्कि और पद्मा का संवाद काव्य की दृष्टि से आह्लादक है। सखियों के साथ पद्मा की जलक्रीडा कालिदास के पद्यों की याद दिलाती है। कल्कि द्वारा प्रयुक्त भाषा काव्य-दृष्टि से तो सराहनीय है, परन्तु पुराण की दृष्टि से न्यून। "जगाद कामाकुलितः स कल्किः ६.२५, समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ६.२६, कामाद्रिदष्टस्य विषातुरस्य ६.२७, रम्भोरूसम्भोग सुखाय में स्यात् ६.३१, आदि वाक्य अवतारभूत कल्कि के मुख से अत्यन्त श्लाघ्य नहीं हैं। यहाँ रसाभासरूप दोषस्पष्ट है।

सामान्यतः इसमें अनुष्टप् छन्द ही हैं, जो प्रायः सभी पुराणों की प्रधान शैली है।

महाभागवतपुराण

भारतीय वाङ्गमय में पुराण वेदों के समतुल्य किंवा विशेष महत्त्व रखते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में मतभेद है-

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्।। -पद्मपुराण सृ.खं. १।४५-४६

जहाँ पद्मपुराण के अनुसार सब लोकों में श्रेष्ठ तथा सभी ज्ञानों की उपपत्ति करने वाले पुराणों का ब्रह्मा द्वारा सर्वप्रथम स्मरण किया गया। वहीं विष्णुपुराण के अनुसार पुराणार्थविशारद व्यास ने आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं तथा कल्पशुद्धियों को मिलाकर पुराणसंहिता की रचना की-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदाः।। -वि.पु. ३।६।१५।।

जैसे भी हो वेद ज्ञान ही पुराणों में अपने सरलीकृत रूप में प्रकट हुआ है। जिसका सर्वप्रथम स्मरण, ब्रह्मा ने और सम्पादन व्यास ने किया है। ये सर्वलोकों में उत्तम, सहज सब प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न और सर्वसाधारण के लिए हितावह हैं।

पुराणसाहित्य-महापुराण या पुराण, उपपुराण, औपपुराण, इतिहास, पुराणसंहिता आदि अनेक नाम-रूपों में जाना जाता है। तथापि "अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्" के आधार पर १८ पुराण सर्वविदित हैं।

देवी भागवत का प्रसिद्ध श्लोक-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।। -देवीभागवत १।३।२

भी इसकी पुष्टि करता है। इसी को आधार मानकर-

१८. पुराण- (१) ब्रह्म पुराण (२) पद्म पुराण (३) विष्णु पुराण (४) वायु पुराण (५) भागवत पुराण (६) नारदीय पुराण (७) मार्कण्डेय पुराण (८) अग्नि पुराण (९) भविष्य पुराण (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण (११) लिङ्गपुराण (१२) वाराह पुराण (१३) स्कन्द पुराण (१४) वामन पुराण (१५) कूर्म पुराण (१६) मत्स्य पुराण (१७) गरुड़ पुराण (१८) ब्रह्माण्ड पुराण।

१८ उपपुराण-(१) आदि पुराण (२) नरसिंह पुराण (३) स्कन्द पुराण (४) शिवधर्म पुराण (५) दुर्वासस पुराण (६) नारदीय पुराण (७) कपिल पुराण (८) वामन पुराण (९) औशनस पुराण (१०) ब्रह्माण्ड पुराण (११) वरुण पुराण (१२) कालिका पुराण

(१३) माहेश्वर पुराण (१४) साम्ब पुराण (१५) सौर पुराण (१६) पाराशर पुराण (१७) मारीच पुराण (१८) भार्गव पुराण।

१८ औपपुराण- (१) सनत्कुमार पुराण (२) बृहन्नारदीय पुराण (३) आदित्य पुराण (४) सूर्य पुराण (५) नन्दिकेश्वर पुराण (६) कौर्म पुराण (७) भागवत पुराण (८) वसिष्ठ पुराण (९) भार्गव पुराण (१०) मुद्गल पुराण (११) कल्कि पुराण (१२) देवी पुराण (१३) महाभागवत पुराण (१४) बृहद्धर्म पुराण (१५) परानन्द-पुराण (१६) वह्नि पुराण (१७) पशुपति पुराण (१८) हरिवंश पुराण।

कुछ विद्वान उपर्युक्त पुराण-तालिका में वायु पुराण एवं भागवत पुराण के स्थान पर शिव और श्रीदेवीभागवत पुराण को रखते हैं और इन्हें उपपुराणों का स्थान देते हैं। स्कन्द, नारद, वामन, ब्रह्माण्ड, उप पुराणों की नामावली में भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त एकाम्र पुराण, वासुकी पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण तथा धर्म रहस्य, धर्मोत्तर नामयुक्त अनेक पुराण ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। प्रज्ञा पुराण और गुरुवंश पुराण नामक दो नये पुराणों का भी सम्पादन किया गया है। वस्तुतः १८ महापुराणों के संक्षिप्त संस्करण अथवा प्रारम्भिक रूप में उपपुराणों की रचना की गई। इनमें से कुछ का उद्देश्य देव या स्थान विशेष के महत्त्व का प्रतिपादन था। कालान्तर में पुराण नाम, प्राचीनता और श्रेष्ठता का पर्याय बन गया। यही कारण है कि आज पुराण या उप पुराण नाम से उपलब्ध ग्रन्थों में बहुत से अर्वाचीन ग्रन्थ हैं जिनमें पुराणों की शैली का अनुकरण किया गया है।

महाभागवत का पुराणत्व विवेचन

पुराणों की नामावली में पाँचवाँ भागवत नाम विख्यात है। श्रीमद्भागवत और श्री देवी भागवत महापुराण के उक्त स्थान के प्रतिस्पर्धी तो थे ही, 'महाभागवत' भी अपने आपको महापुराण सिद्ध करने में पीछे नहीं हटता है। इनमें देवी भागवत अपने को महापुराणों की श्रेणी में स्थापित करने से पूर्ण सक्षम है किन्तु श्रीमद्भागवत और महाभागवत स्वयं को अष्टादश पुराणों से अतिरिक्त स्थापित करते हैं।

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिता।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः।।

श्रीमद्भागवत १.४.३१

व्यास का असन्तोष श्रीमद्भागवत की रचना का मूलाधार है। महर्षि व्यास अन्य पुराणों और महाभारत की रचना के वाद भी मनस्तोष का अनुभव नहीं करते तथा श्रीकृष्णभक्ति प्रतिपादक पुराण श्रीमद्भागवत की रचना करते हैं। इसी प्रकार के व्यास के मानसिक असन्तोष की सूचना महाभागवत में सूतजी ने दी है–

"महर्षिर्भगवान् व्यासः सर्ववेदविदां वरः।
अशेषधर्मशास्त्राणां वक्ता ज्ञानी महामतिः।।
कृत्वा त्वष्टादशैतानि पुराणानि महामुनिः।
न तृप्तिमभिलेभे स कथञ्चिदपि धर्मवित्।
महापुराणं परमं यत्परं नास्ति भूतले।
भगवत्याः परं तत्त्वं माहात्म्यं यत्र विस्तृतम्।।-महाभागवत अ. १।१४-१६।।

उक्त कथन से महाभागवत भी अष्टादश पुराणों के बाद रचित, भगवती के परंतत्त्व का प्रतिपादक एक महापुराण सिद्ध होता है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत और महाभागवत दोनों ही अपने इष्टदेव के भक्ति एवं माहात्म्य के प्रतिपादक अष्टादशोत्तर पुराण हैं। दोनों ही महाभारत ग्रन्थ और उसके सूत्रधार श्रीकृष्ण के चरित्र से पूर्णतः परिचित तथा प्रभावित हैं। श्रीमद्भागवत की प्रस्तावना में ही महाभारत की कथा का संकेत है तो महाभागवत में श्रीकृष्ण चरित्र प्रसङ्ग सम्बन्धी ४६-५८ तक के दस अध्यायों में श्रीमद्भागवत और महाभारत का ही सार संक्षेप प्रस्तुत है। फलतः महाभागवत श्रीमद्भागवत से भी अर्वाचीन पुराण प्रतीत होता है। इस दृष्टि से यदि देवी भागवत को पुराण, श्रीमद्भागवत को उपपुराण माने तो यह औपपुराण श्रेणी का ग्रन्थ है। पं. तरणीश झा ने पूर्व वर्णित पुराणों को तालिका में इस औपपुराणों की श्रेणी में रखा भी है। यद्यपि श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन महर्षि व्यास द्वारा श्रीमद्भागवत से पहले भी, ब्रह्मवैवर्त पुराण, महाभारत के खिलभाग, हरिवंश पुराण, पद्मपुराण आदि पुराणों में किया गया था। किन्तु कृष्ण भक्ति का जो स्वरूप श्रीमद्भागवत में स्थापित हुआ वह अपने उद्देश्य की दृष्टि से भी श्रीमद्भागवत के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, देवी भागवतादि पुराणों में भगवती के माहात्म्य और चरित का वर्णन होते हुये भी, राम-कथा के नायक राम और प्रतिनायक रावण की आराध्या, श्रीकृष्ण की मूलरूपा, महाभारत में पाण्डवों की आराध्या जिस भगवती के रूप और माहात्म्य का वर्णन महाभागवत में हुआ है, वह अप्रतिम है।

नाम की दृष्टि से श्रीदेवीभागवत, श्रीमद्भागवत, महाभागवत, लघुभागवत नामक चार भागवत पुराण पाये जाते हैं, किन्तु निःसन्देह महाभागवत भगवती आद्याशक्ति के माहात्म्य और पूजा पद्धति का प्रतिपादक एक महान् पुराण है जो अठारह पुराणों से भिन्न पुराणों की श्रेणी का अधिकारी है।

पुराणों की तालिका के अध्ययन तथा श्रीमद्भागवत का पश्चातवर्ती होने के कारण यह औपपुराण की श्रेणी का सिद्ध होता है। इसका उल्लेख औप पुराणों की श्रेणी में हुआ है किन्तु कूर्म और देवी भागवतादि पुराणों में पुराण और उप पुराण दो ही श्रेणियां हैं। अतः इसे पुराणों से भिन्न उप पुराणों की श्रेणी में रखना ही समीचीन प्रतीत होता है।

महाभागवत उपपुराण का रचना विधान

यह श्रीमद्भागवत और देवी भागवत की भाँति स्कन्धों और अध्यायों के रूप में न होकर मात्र ८१ अध्यायों का एक पुराण है, जिसमें भगवती के सती, पार्वती, गङ्गा के चरितों, भगवती की पूजाविधि, स्तोत्रादि का कथन हुआ है। राम और कृष्ण से सम्बन्धित कथानक, काशी, कामाक्षादि तीर्थ माहात्म्य तथा तुलसी, बिल्वपत्र, रुद्राक्ष, आमलकी आदि पूजोपचार माहात्म्य भी इसी के पोषक रूप में आये हैं या उसे महाभागवतकार की समन्वय भावना का एक रूप भी माना जा सकता है।

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।"

जैसे प्रसिद्ध पौराणिक मङ्गलाचरण से भी पूर्व गणेश वन्दना जो आधुनिक मङ्गलाचरण की प्रमुख विशेषता है, इस पुराण के प्रथम श्लोक में ही दिखाई देती है–

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः।। - महाभागवत १।१

अपने मूल मङ्गलाचरण में पराप्रकृति भगवती द्वारा स्वेच्छा से शिव को पति रूप में प्राप्ति तथा शिव द्वारा शक्ति के चरणों को अपने हृदय पर स्थापन से काली रूप में वन्दना की गई है–

या स्वेच्छयास्य जगतः प्रविधाय सृष्टिं
सम्प्राप्य जन्म च तथा पतिमाप शम्भुम्।
उग्रैस्तपोभिरपि यां समवाप्य पत्नीं
शम्भुः पदं हृदि दधे परिपातु सा वः।। - महाभागवतः १।४

यही इस ग्रन्थ की प्रतिपाद्य है। यद्यपि उनके नाम में काली, और दुर्गा दोनों नामों की परस्पर स्पर्धा सी दिखती है। यहाँ पुराणों की परम्परा के ही अनुसार मङ्गलकामना वन्दना और विषय निर्देशक दोनों प्रकार के मङ्गलाचरण हुआ है।

प्रस्तावना

पुराण के प्रस्तावनाप्रसङ्ग में ही इसकी प्रकटीकरण एवं परम्परा का संकेत दिया गया है। अन्य पुराणों की भांति इसका कथोपकथन भी सूत-शौनक संवाद के रूप में नैमिषारण्य में हुआ है। इसके परम्परा कथन में महेश (भगवान शिव) वक्ता तथा नारद मूल श्रोता हैं। महर्षि व्यास को भगवती ने स्वयं अपने चरण कमलों में स्थित सहस्र दल कमल में महाभागवत का दर्शन कराया था।

ततो भगवती देवी ज्ञात्वा तस्याभिवाञ्छितम्।
स्वपादतलसंलग्नं पङ्कजं समदर्शयत्।
मुनिस्तस्य सहस्रेषु दलेषु परमाक्षरम्।
महाभागवतं नाम पुराणं समलोकयत्।। - महाभागवत १।४८-४९

इस प्रस्तावना के कारण श्रीमद्भागवत से भी श्रेष्ठ अपनी प्रस्तुति के साथ यह एक दिव्य पुराण के रूप में स्थापित पुराण है, जिसकी कथा व्यास से जैमिनि, जैमिनि से सूत और सूत से शौनकादि ऋषियों ने सुनी।

तदाह भगवान् व्यासः श्रद्धया भक्तिशालिने।
स्वयं जैमिनये पूर्वं पुनस्तद्वो ब्रवीम्यहम्।। - महाभागवत १।६

इसकी रचना हेतु व्यास की तपस्या से तुष्ट हो देवी द्वारा ब्रह्मलोक में श्रुतियों के सत्संग हेतु उनका भेजा जाना, श्रुतियों के सत्संग से व्यास की भगवती में श्रद्धा, फलतः भगवती का दिव्य दर्शन, तपः स्वाध्याय से दिव्यज्ञान प्राप्ति का एक व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है।

पुराण का स्वरूप

इस पुराण के ८१ अध्यायों में ४४८५ श्लोक संग्रथित हैं। जिनमें वर्णित तत्त्वों के आधार पर इसे निम्नलिखित खण्डों में बाँटा जा सकता है-

(१) **प्रस्तावना खण्ड**-इसमें प्रारम्भ में १ से ३ तक ३ अध्याय हैं; जिनमें महाभागवत पुराण के प्रयोजन एवं अन्य पुराणों से इसकी विशेषता तथा इसकी नायिका भगवती के स्वरूप और माहात्म्य का वर्णन किया गया है- इसमें भगवती दुर्गा को स्मृति वचनों के आधार पर परंब्रह्म निरूपित किया गया है। इस खण्ड में श्रुतियों द्वारा की गई स्तुति भाव-भाषा और शैली तीनों ही दृष्टियों से प्रभावशाली एवं भक्तों को इष्टदर्शन कराने वाली हैं।

देवी स्वरूप वर्णन

इसमें वर्णित भगवती का स्वरूप यद्यपि मूलतः ज्योति रूप से सभी प्राणियों में अवस्थित है तथापि वे-

स्फुरत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रकोटिसमद्युतिम्।
सहस्रबाहुभिर्युक्तां दिव्यास्त्रैरभिसंवृताम्।।
दिव्यालङ्कारभूषाढ्यां दिव्यगन्धानुलेपनाम्।
सिंहपृष्ठे समारूढां कदाचिच्छववाहनाम्।।-महाभागवत १।४०-४१

के अनुसार हजारों सूर्यों की आभा तथा करोड़ों चन्द्रमा की शोभा से सम्पन्न दिव्य अस्त्र, आभूषण और गन्धादि से युक्त हो सिंह पर सवार हैं। उनकी हजार भुजायें हैं अर्थात् वे सब ओर अप्रतिहत रूप से व्याप्त हैं। वे नये बादल के समान वर्ण वाली हैं। यहाँ नया बादल मनोहर तथा भावी विकास का प्रतीक है। मुख्यतः देवी का वाहन सिंह है अर्थात् वे पराक्रम साध्या हैं तथापि वे ही शववाहना अर्थात् भक्तों के प्रणिपात से ही सुलभ हैं। यहाँ सिंहवाहना से दुर्गा तथा शववाहना से काली दोनों रूपों की एकता दर्शनीय है। वे सामान्यतः चार भुजाओं वाली हैं तथापि वे ही कभी-कभी दो, चार, आठ, दस, अठारह, सौ अथवा अनन्त भुजाओं वाली हो जाती हैं। लक्ष्मी, राधा, वाणी, गौरी रूपों में भी वे ही प्रकट होती हैं।

प्रारम्भ में यह पुराण भगवती के दुर्गा रूप का पोषक दीखता है किन्तु महर्षि जैमिनि की जिज्ञासा तो कालीरूप के प्रति है–

यस्याः पादाम्बुजद्वन्द्वं दधद्धृदयपङ्कजे।
विश्वेशः शवरूपेण ब्रह्मादीनां च दुर्लभम्।। - महाभागवत २।५-६

इसमें देवी का रूप काली का किन्तु नाम दुर्गा का है। वे महादेवी अरूप होते हुए भी लीलामात्र से अनेक देह धारण करती हैं–

सैव स्वलीलया पूर्णा दक्षकन्याभवत्पुरा - महाभागवत ३।५

इसी खण्ड में भगवती द्वारा त्रिदेवों की सृष्टि और उनकी शक्ति के रूप में उनका वरण, तब ब्रह्मा स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रजापतियों की सृष्टि के माध्यम से पुराणों के सर्ग, प्रतिसर्ग एवं मन्वन्तर जैसे लक्षणों की पुष्टि की गई है। इस पुराण की सृष्टि प्रक्रिया में देवी स्वतः अपने तीनों गुणों से चैतन्यरहित एक पुरुष को उत्पन्न करती हैं जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न कर स्वयं जीव और परं ब्रह्म रूप में स्थित हो जाता है। यहां वेदान्त और सांख्य दोनों ही दर्शनों का समन्वय प्रशंसनीय है। तदनन्तर मूल प्रकृति स्वयं ही माया, विद्या, परमा तीन रूपों में विभक्त हो गई पुनः वे ही गङ्गा, दुर्गा, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती नामक पंच प्रकृति रूप होकर अपने ही पुरुषांश से उत्पन्न त्रिदेवों की सहायता करती हैं।

वंश और वंशानुचरित लक्षणों के रूप में प्रजापति दक्ष और उनकी कन्या सती का चरित ही इस पुराण का प्रतिपाद्य है। इस प्रकार यह प्रस्तावना खण्ड पुराण के पांचों लक्षणों को संकेतित करता है।

२. **सती चरित**-यद्यपि भगवती सती का चरित ही आगे चलकर पार्वती एवं गङ्गाचरित्र के रूप में परिवर्धित हुआ है तथापि इसके ४ से १२ तक के ८ अध्याय ही सतीचरित्र नाम से विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि इनमें शिव गेहिनी के रूप में

अवतरित परा प्रकृति के सती शरीर में जन्म लेने, उनके द्वारा शिव का पति रूप में वरण, शिव-सती विहार, पति के अपमान से क्षुब्ध हो अपने ही छाया के माध्यम से दक्ष-यज्ञ विध्वंस, सती (छाया रूप में) दहन, सती वियोगी शिव के इतस्ततः शव सहित भ्रमण का वर्णन किया गया है।

दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के निर्देशानुसार तपस्या कर सती के रूप में परा प्रकृति को प्राप्त करते हैं। अहंकार वश शिव द्वेष में प्रवृत्त हो वे शिव को सती स्वयंवर में आहूत नहीं करते तो भी सती उनके नामोच्चार पूर्वक पृथिवी पर उन्हें जयमाल अर्पित करती हैं। यही पद्धति आज भी अमूर्त्त पूजा के रूप में वेदी पर ही नामेच्चार पूर्वक पूजोपहार समर्पण के रूप में लोक प्रचलन में दिखाई देती है।

शिवाय नम उच्चार्य मालां भूमौ समर्पयत्। -महाभागवत ४।४८

ब्रह्मा के निर्देश से ही दक्ष अनिच्छा पूर्वक सती का शिव से विवाह भी सम्पन्न करते हैं। वह पश्चाताप व्यक्त करता है। दधीचि का उपदेश भी उसे सम्बुद्ध नहीं कर पाता। यहाँ दक्ष अहंमन्य जीव है जो दधीचि जैसे ज्ञानी गुरु के निर्देशों की अवज्ञा करता है। संशयग्रस्तचित्त दक्ष नारद जैसे कूटचरित्र की चाल में पड़कर शिव द्रोही यज्ञ का आरम्भ करता है। नारद ही शिव और सती को दक्ष यज्ञ की सूचना दे उनमें भेद करते हैं तथा सती-दाह की प्रथम सूचना शिव को भेजकर वे ही दक्ष एवं उनके यज्ञ के विनाश के कारण बनते हैं। जो उनके चरित्र एवं धर्म के अनुरूप था।

दक्ष का शाब्दिक अर्थ होता है चतुर अर्थात् अति चतुर। यह सती को उद्योग पूर्वक जन्म देता है, उनसे द्रोह करता है और सती दाह के फलस्वरूप अपने विनाश को भी आमन्त्रित करता है।

अनादृत होने पर शक्ति साथ छोड़ देती है। यही सती चरित का आधार है। इसके प्रारम्भिक चार अध्याय तो मूल सती (काली) चरित की भूमिका ही है। अष्टम तथा नवम अध्याय चरित एवं दसवें-ग्यारहवें अध्याय उपसंहार हैं। अष्टम-नवम में दक्ष-यज्ञ को लेकर शिव-शक्ति संवाद दाम्पत्य जीवन के व्यावहारिक पक्ष को दर्शाता है साथ ही महाविद्याओं की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुये साधकों को साधना का एक नया आयाम देता है। शिव की मान्यता है कि-

अगौरवं चेद्गमनं मरणादतिरिच्यते।
जामाता श्वशुरस्थानेऽपेक्षते परमादरम्।। - महाभावगत ८।८

किन्तु सती का तर्क है-

गन्तुं पितृगृहे कन्या नाह्वानं समपेक्षते।
तस्मात् पितृगृहे नूनं गमिष्याम्यनुमन्यताम्।। -महाभागवत ८।२८

विवाद से क्षुब्ध शिव सामान्य पति भावापन्न होकर तपस्या से अर्जिता पत्नी सती को वाग्बहिर्भूता (बेकहल) कहकर आक्षेप करते हैं–

जानामि वाग्बहिर्भूतां त्वामहं दक्षकन्यके।
यथारुचि कुरु त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे।। –महाभागवत ८।४४

शिव का यही कथन भगवती के चण्डरूप प्रदर्शन का कारण, महाविद्या रहस्य का आधार तथा महाभागवत पुराण की मौलिकता है।

सती का चण्डरूप पुराण के आठवें अध्याय के ५० से ५२ तक के तीन श्लोकों में वर्णित है।

त्यक्त्वा हेमपटीमासीद् वृद्धावस्थासमप्रभा।
दिगम्बरा लसत्केशा ललज्जिह्वा चतुर्भुजा।।
कालानललसद्देहा स्वेदाक्तेन तनूरुहा।
महाभीमा घोररवा मुण्डमालाविभूषणा।।
उद्यत्प्रचण्डकोट्याभा चन्द्रार्धकृतशेखरा।
उद्यदादित्यसङ्काशा किरीटोज्ज्वलमस्तका।।

इसी प्रसङ्ग में भयभीत शिव को रोकने हेतु महाविद्याओं का प्राकट्य उनके पूजा विधान की व्यवस्था हेतु शिव को निर्देश इसी अध्याय के ६१-६४ तक के चौदह श्लोकों में दिया गया है।

आगम और निगम में समन्वय स्थापना महाभागवत के इस खण्ड की एक उल्लेखनीय विशेषता है। जो देवी के इस आत्मकथन में व्यंजित है–

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शङ्कर।
ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।। –महाभागवत ८।७७

यथार्थ रूप दर्शन के बाद शिव का उसी प्रकार मोहभङ्ग होता है जैसे श्रीमद्भगवतगीता में कृष्ण के विराट रूप दर्शन के बाद अर्जुन का। अन्त में वे कहते हैं–

यच्चोक्तं पतिभावेन मया ते ह्यप्रियं वचः
तत्क्षमस्व महेशानि यथारुचि कुरुष्व च –महाभागवत ८।९२

सती पितृगृह में माता से मिलकर यज्ञशाला में जाकर पिता से मिली। पितृ मुख से शिव निन्दा दाक्षायणी नाम युक्त शरीर को छोड़ने का निर्णय किया और उन्होंने छाया सती की सृष्टि की। जो देवी के निर्देशानुसार दक्ष के व्यवहार से क्षुब्ध हो अग्नि में प्रवेश कर

गई। नारद मुख से सतीमरण के समाचार से क्रोधित शिव ने पहले तो वीरभद्र से यज्ञ विध्वंस कराया तदनन्तर ब्रह्मा की प्रार्थना पर दक्षयज्ञ पूर्ण कराया। सती के निर्देश पर ही शिवछाया का सती के शव को लेकर इतस्ततः भ्रमण तथा उसी सन्दर्भ में शक्तिपीठों की उत्पत्ति महाभागवत की अपनी उपलब्धि है। छायासती के विरह में पीड़ित शिव विष्णु को भी रामावतार में वन-वन भटकने का शाप देते हैं। सती के लिए काम रूप में जाकर शिव साधना करते हैं। सती अपने छाया रूप में गङ्गा तथा मूल रूप में पार्वती के रूप में हिमालय के यहाँ जन्म लेती हैं-

सती हिमवतो गेहं द्विधा भूत्वा समभ्यगात्।
एवं दक्षगृहे जाता स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।। -महाभागवत १२।४२

इस प्रकार यह चरित सम्पूर्ण महाभागवत का आधार, अपने महाविद्या एवं पीठ रहस्य, आगम रहस्य के कारण शाक्त साधना का प्राणभूत अंश है।

३. **पार्वती चरित**-सती ही अपने मूल रूप में हिमालय की पुत्री पार्वती के नाम से जन्म लेकर शिव की पत्नी बनती हैं। इस दृष्टि से भगवती का यह चरित सतीचरित का विस्तार है जो इस पुराण के १५ से ३५ तक के २१ अध्यायों में विशद रूप में वर्णित है। देवी हिमालय को अपना परिचय देकर अपने दिव्य रूपों का दर्शन तथा पार्वती गीता के रूप में उन्हें ब्रह्म ज्ञान का उपदेश प्रदान करती है। परिचय हेतु-

जानीहि मां परां शक्तिं महेश्वरकृताश्रयाम्।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिं सर्वप्रवर्तिकाम्।। -महाभागवत १५।१६

रूप दर्शन के क्रम में वे अपने माहेश्वरी, विश्वरूप, चतुर्भुज, नीलश्याम, वनमाली वैष्णव रूप का दर्शन कराती हैं-

नीलोत्पलदलश्यामं वनमालाविभूषितम्।
शङ्खचक्रगदापद्मामभिव्यक्तं चतुर्भुजम्।। -महाभागवत १५।३४

इस अवसर पर भगवती की हिमालयकृत उत्तम स्तुति पुराण के ३७ से ४७ तक के ११ श्लोकों में वर्णित है। साथ ही हिमालयपत्नी माता मेनका भी अनुग्रहार्थ प्रार्थना करती हैं।

महाभागवत के पार्वती जन्म पर भगवान् के कृष्णजन्म का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। दोनों में परमात्मा के इस ऐश्वर्य का दर्शन कर माता-पिता द्वारा स्तुति की जाती है। दोनों में माता-पिता द्वारा तपस्या से सन्तान प्राप्त की जाती है। इस पुराण में जन्म के वैभव का प्रकटीकरण पार्वती द्वारा १४३ श्लोकों में पिता को दिये गये ब्रह्म ज्ञान के उस उपदेश से होता है जिस पर श्रीमद्भगवत् गीता का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है।

१६वें अध्याय में पार्वती के षष्ठी पूजन तथा नामकरण और पार्वती गीता का माहात्म्य वर्णित है। इस प्रकार पार्वती जन्म प्रकरण १५ से १६ तक के चार अध्यायों में सम्पन्न होता है।

पार्वती विवाह प्रकरण में

पार्वती की बाल लीला, शिव पार्वती सम्बन्धों पर नारद द्वारा प्रकाश, भगवान् शङ्कर का काम रूप छोड़कर हिमालय पर तपस्या, तारकासुर से पीड़ित देवताओं द्वारा शिव के तपोभङ्ग के सन्दर्भ में कामदेव के प्रयत्न एवं कामदहन का वर्णन किया गया है। इसी प्रसङ्ग में शिव को मोहित करने के लिए शिव सानिध्य में सती द्वारा किये गये प्रयत्न ही तपोभङ्ग के मूल कारण हैं। शिव की नेत्राग्नि का बडवाग्नि के रूप में समुद्र में वास, पार्वती रूप दर्शन कर काली सहस्रनाम से शिव द्वारा काली (पार्वती) की स्तुति, काम के भस्म का अपने शरीर में लेपन, पार्वती के सुझाव पर हिमालय के पास सप्तर्षियों के माध्यम से शिव विवाह का प्रस्ताव स्थापन, विवाह तथा विवाहोपरान्त शिव पार्वती विहार का ६ अध्यायों में सुन्दर वर्णन हुआ है। शिव के स्वतः प्रस्तुत विवाह प्रस्ताव पर-

असम्प्रदत्ता पित्राहं कथमेनमुपागता।
भविष्यामि ततः पाणिं गृहणातु विधिवद्धरः।। -महाभागवत २४।१३

जैसा कथन भारतीय नारी के दिव्य सोच का परिचायक है। कर्त्तिकेय चरित और गणेश जन्म की कथा इस प्रसङ्ग के उत्तरार्ध में वर्णित है। सम्पूर्ण पार्वती चरित देवी की परम सत्ता का बारम्बार बोध कराया गया है और ऐसा करने में काली रूप की प्रधानता का विशेष ध्यान रखा गया है।

४. **राम चरित**-भगवती की शारदीय महापूजा और उसके इतिहास रूप में राम की शक्ति पूजा का वर्णन उल्लेखनीय है। यह प्रसङ्ग इस पुराण के ३६-४८ तक के १३ अध्यायों में वर्णित है। जहाँ भगवती से रक्षित रावण के शौर्य से भयभीत राम द्वारा १५ दिवसीय अकालबोधन नवरात्र पूजन ब्रह्मा और राम की शक्ति पूजा के प्रसङ्ग और तत्सम्बन्धी स्तुतियाँ इस अंश में वर्णित रामावतार कथानक की अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं। यहाँ ब्रह्मा और वानर वेशधारी शिव, राम की सहायता में सब प्रकार से तत्पर हैं।

५. **कृष्ण चरित**-महाभागवत का कृष्ण चरित कृष्णरूपिणी काली का ही चरित है। इस पुराण के ४६ से ५८ तक के १० अध्यायों में भागवत एवं महाभारत दोनों के ही कृष्ण चरितों का समायोजन शाक्त दृष्टि से हुआ है। यह काली के ब्रह्मत्व का प्रतिपादक पुराण है अतः इस भाव की पुष्टि हेतु ही वृत्रासुर की कथा के माध्यम

से इन्द्र के ब्रह्महत्या विमोचन का प्रसङ्ग इसमें संग्रथित है; जो पाँच अध्यायों में वर्णित है।

६. **गङ्गा चरित**-छाया सती के गङ्गा रूप में पुनर्जन्म तथा शिव-गङ्गा विवाह और नदी रूप में गङ्गावतरण के दो स्थानों पर यह चरित वर्णित है- सती और पार्वती चरितों के मध्य में पहले, तत्पश्चात् पुराण के ६४ से ७५ अध्यायों तक १२ अध्यायों के गङ्गावतरण प्रसङ्ग में। इस अंश में गङ्गा प्रादुर्भाव के सभी प्रसङ्गों का समन्वय सुलभ है। भागीरथ तपोवर्णन प्रसङ्ग में भागीरथ द्वारा शिव सहस्रनाम के रूप में शिव स्तुति, गङ्गा शतनाम, गङ्गा माहात्म्य के अंश, साधकों की दृष्टि से भी उपयोगी बनाते हैं।

इस पुराण का कामाक्षा माहात्म्य भी प्रधान शक्तिपीठ से सम्बद्ध होने के कारण सती के विशद चरित का ही परिशिष्ट है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में तुलसी, बिल्व और आमलकी (आँवला) वृक्षों, रुद्राक्ष तथा शिव पूजन का माहात्म्य समस्त पुराण के माहात्म्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

महाभागवत का प्रतिपाद्य

भगवती की परम सत्ता का बोधन ही इस पुराण का प्रतिपाद्य विषय है। काली जो स्वयं में परा प्रकृति हैं वे ही उस परम सत्ता की प्रतीक हैं। शारदीय पूजा विधि, उनके पूजन की विधि, कामाक्षा और काशी-पूजन क्षेत्र, सती जन्म से प्रारम्भ गङ्गा और पार्वती के चरितों को समादिष्ट करता विशद चरित उनकी लीला है। श्रीमद्भागवत के पूर्णावतार कृष्ण ब्रह्ममयी काली के ही अपर रूप हैं। उनका दर्शन ब्रह्महत्यादि पापों को दूर करने में समर्थ है। शिव भगवती के परम सहाय्य तथा ब्रह्मा विष्णु आदि शिव के सहयोगी है।

महाभागवत पर अन्य पुराणों का प्रभाव

इस पर श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत, कालिका पुराण का प्रभाव है किन्तु उसके प्रस्तुतीकरण की इसकी अपनी मौलिकता है।

महाभागवत की देन

इसका विपुल स्रोत भण्डार भक्तों के लिए हितकर है। यह पुराण शिव, शक्ति, वैष्णव, गाणपत्य सभी हिन्दू सम्प्रदायों में समन्वय का सन्देश देता है। यह पुराण कन्या को माता सम्बोधन कर स्त्री शक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादन करता है। भाषा शैली भाव की दृष्टि से भी इसमें काव्य की रमणीयता अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

देश काल की दृष्टि से यह ग्यारहवीं शती पूर्व पूर्वोत्तर भारत से विशेष रूप से सम्बद्ध है।

परानन्दपुराण

उपक्रम– महापुराणों की ही भाँति उपपुराणों में भी सौर-शैव-शाक्त-गाणपत्य और वैष्णवादि भेद प्राप्त होते हैं। उपपुराणों की रचना प्रायः महापुराणों की छाया में किसी देव विशेष का माहात्म्य वर्णन करने के लिये की गयी है। शिवधर्म, माहेश्वर, पशुपति, स्कन्दोपपुराण की भाँति ही परानन्द पुराण भी शिवतत्व एवं शिव सम्बन्धी उपासनाओं का निरूपण करने वाला एक प्रमुख पुराण है। परानन्द पुराण की गणना अठारह औप पुराणों में है–

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः।।
वृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।

औप-पुराणों की यह सूची वृहद् विवेक नामक ग्रन्थ से प्राप्त होती है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध परानन्द पुराण की पाण्डुलिपि सूची संख्या १५३० एवं पत्र संख्या १-१४, १४-८० और १५१ से १६४ तक प्राप्त है। इसका आकार १२.६" x ५ एवं लिपि देवनागरी है। लिपिकाल संवत् १८३५ उल्लिखित है। इस पुराण की यह प्रति अपूर्ण है। अन्य प्रति एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल तथा बेतिया स्टेट (बिहार) के राजा के पुस्तकालय में होने की सूचना है। इसका कोई मुद्रित संस्करण अभी तक उपलब्ध नहीं है। परानन्द-पुराण के श्रोता उत्तंक मुनि और वक्ता सूत जी हैं।

नामकरण– जो प्रधान पुरुष, व्यक्त और काल संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण है, इन चारों से परे है जिसे पण्डितजन ही देख पाते हैं, वही भगवान् का विशुद्ध 'परानन्द रूप' हैं। जिस प्रकार विष्णु पुराण एक प्रधान ब्रह्म पुरुष का वर्णन करते हुए कहा है कि न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश न पृथिवी, न अन्धकार न प्रकाश और न इसके अतिरिक्त कुछ और ही था। श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का अविषय बस एक प्रधान ब्रह्म पुरुष ही था। (वि.पु. १/२/२३) उसी प्रकार परानन्द पुराण में भी कहा है कि जो अपने कोपाग्नि से त्रिलोक का दहन कर सबको तमोमय बना देता है। इस प्रकार इस प्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति, नाश का कार्य करने के उपरान्त निरञ्जन, परानन्द रूप इसी समाधि, ध्यान या निर्वाण की स्थिति जहाँ बुद्धि का

प्रकाश जरा भी नहीं पहुँचता वहाँ स्थित उस परानन्दमय महेश के विविध रूपों की चर्चा इस पुराण में होने के कारण इसका 'परानन्द पुराण' नामकरण किया गया है ऐसा प्रतीत होता है। जिसका सङ्केत परानन्द पुराण के इस श्लोक में भी प्राप्त होता है। (कोपानलेन– परानन्दमयो महेशो.....स्थितिनाशमेवेषाम्)।

विषयवस्तु– पुराण का प्रारम्भ-"श्री गणेशाय नमः।। नमः शिवाय यन्नेत्रापांगजाज्ञाकरणकृतमतिः सृष्टिमीष्टे विधातुं धातापाता यदिपांगुलिकृत विकृतिं प्राप्य लोकस्य विशनुः।। यद्भ्रूभंगप्रसंगातक्षयमिदमखिलं याति संसारचक्रं युष्मांश्चंद्रार्द्धविषयः सरिताभर्त्तुरूद्धर्त्तुमर्हः।। यदीय पदपंकजस्मरणमात्र निष्कल्मशः प्रयाति परमां गतिं हत्त समस्तजवतन्नरः।। सुरासुरशिरोमणिद्युतिसमर्चितांघ्रि द्वयः। करोतु दुरितोद्क्षयमयं महेशः सताम्।। पुरा सुराणां तरितटिनीतदान्तिके महामतिः सौतिचष्ट कुचत्रचित।। उत्तंक नामामुनिरुछ्रितं द्रुमं विवेशतन्द्देशमुमेशमानसः।। भवत्पदांभो सह रक्तमानसं जगत्पत्ते मां नरकान्निवारय गृणन्निति क्षीणसमस्तपातके विकस्वरस्फीत यशो विशोधिते" से होता है।

सूत जी प्रथम अध्याय में पराशरनन्दन व्यास को प्रणाम करके उत्तंक मुनि को शंकर जी की विशद् महिमा का श्रवण कराने के बाद उनकी आठ प्रकृतियों और सोलह विकारों का वर्णन करते हैं यथा–

"अहंकारान्मनोजज्ञे महाभूतानि पञ्च च
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराश्चैव षोडश।।
शब्दस्पर्शश्च रूपश्च रसोगन्धस्तथैव च
प्राणाऽपानसमानाश्च उदानो व्यान एव च।।"

वर्णन क्रम में महादेव के पाद को करोड़ों सूर्य के समान बताया गया है। उन्हें जगत् रक्षक चिन्ताहर्ता के रूप में भी वर्णित किया गया है। रुद्र के कोप करने से तीनों लोक जलने लगता है–

"कोपानलेन लोकास्त्रीन्दहति द्विजसत्तमः
एवं त्रिजगद्दग्ध्वा कृत्वा सर्व्वान्तमोमयम्
निरंजने परानन्दे निर्व्वाणं चात्मनि व्रजेत्।।
परानन्दमयो महेशो विधाय सृष्टिस्थितिनाशमेषाम्।।"

इसके पश्चात् सूत जी ब्रह्मा, विष्णु, महेश का क्रमशः सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता के रूप में दिखाया है। अध्याय के अन्त में उत्तंक मुनि से सूत जी ने महाभारत के युद्ध के समय धृष्टद्युम्न द्वारा द्रोणाचार्य के सिर के काटने के बाद अश्वत्थामा के अत्यधिक चिन्तित होने का वर्णन किया है। विभिन्न विचार-विमर्श के बाद अश्वत्थामा शंकर

जी को प्रसन्न करने के लिए प्रचुर पूजन सामग्रियों के साथ उनकी पूजा एवं स्तुति करता है यथा– आप उग्र है, 'कल्याणमय है, रुद्र हैं, सकल विद्याओं के अधीश्वर हैं, परमेश्वर हैं, वरदायक हैं, नीलकण्ठ हैं, अजन्मा हैं, सर्वसंहारक हैं, विश्वरूप हैं, श्मशान में निवास करने वाले हैं, बहुरूप हैं, व्यापक हैं। इस प्रकार की विस्तृत स्तुति से प्रसन्न होकर शंकर जी उसे एक तलवार देते हैं जिसके द्वारा वह रात्रि में सोये हुए पाण्डव सैनिकों का और पाण्डवों के पाँचों पुत्रों एवं धृष्टद्युम्न का संहार करता है।'

द्वितीय अध्याय में सूत जी अश्वत्थामा के वंश का वर्णन करते हैं यथा–ब्रह्मा के पुत्र अंगिरा, अंगिरा के बृहस्पति, बृहस्पति के भारद्वाज, भारद्वाज के द्रोण, द्रोण के अश्वत्थामा।

तृतीय अध्याय में दान, यज्ञ, तप, अहिंसा के (विध) प्रकारों एवं अनेक प्रकार की महिमा का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में गवि-अश्वत्थामा का संवाद वर्णित है जिसमें गवि ने विभिन्न आख्यानों के द्वारा पितृशोक को दूर करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ पंचम अध्याय में पैतृक कर्मों का विशद् वर्णन है। पिता के श्राद्ध कर्म में प्रथम द्वितीय पुत्र को ही अधिकार प्रदान किया गया है। इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि शंकर जी का ध्यान करने से सभी प्रकार की बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

दसवें अध्याय में भगवद्गीता की तरह भगवान् की विभूतियों का वर्णन किया गया है। इसमें वक्ता-श्रोता अर्जुन-कृष्ण न होकर उत्तंक-सूत जी हैं। सूत जी कहते हैं कि विष्णु देवों में इन्द्र, रुद्र में शंकर, वेद में ॐकार, कवियों में जैगीषव्य, सभी भूतों के हृदय में स्थित आत्मा, अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु, ज्योतियों में सूर्य, नक्षत्रों के अधिपति चन्द्रमा, इन्द्रियों में मन, यक्ष तथा राक्षसों के स्वामी कुबेर, आठ वसुओं में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों में समुद्र, महर्षियों में भृगु हैं। इस प्रकार की विस्तृत सूची के बाद "इति श्रीमत्परानन्दपुराणे भगवद्गीतायां दशमोध्यायः" कह करके अध्याय को समाप्त करते हैं।

एकादश अध्याय में भैरव-दुर्वासा संवाद है। इस अध्याय का नामकरण "भैरव-गीता" रखा गया है। इसमें भैरव जी के विभिन्न अलौकिक प्रभावों का वर्णन किया गया है– "अहमेको जगत्स्रष्टा ब्रह्म रुपी....."। भैरव जी के स्मरण मात्र से प्राणी समस्त पापों से छूट जाता है और वह शिव लोक को प्राप्त करता है। अध्याय की फलश्रुति में कहा गया "भैरव-गीता" के पढ़ने मात्र से मनुष्य ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाता है।

माहेश्वर सम्प्रदाय में दार्शनिक दृष्टि से माहेश्वर दर्शन के चार प्रमुख भेद हैं– पाशुपत दर्शन, शैव दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, वीरशैव दर्शन। विशेष रूप से शैव पुराणों में सर्वत्र माहेश्वर दर्शन का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। परानन्द पुराण में भी इन सब दर्शनों का यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है। अन्य पुराणों के समान ही परानन्द पुराण में भी विष्णु, शिव, इन्द्र, धर्मराज, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, सरस्वती, दुर्गा, सूर्यादि नवग्रहों, उनचास

मरुद्‌गणों, विश्वकर्मा, तुम्बुरु आदि गन्धर्वगण, कश्यपादि प्रजापति एवं आकाशादि पंचभूतों का वर्णन प्राप्त होता है।

एक लघु लेख में उपलब्ध परानन्द पुराण के सभी विषयों का वर्णन करना असम्भव है। अतः सार रूप में इस पुराण के अन्तर्गत पुराण पंचलक्षण– सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्नवन्तर तथा वंशानुचरित का यत्र-तत्र वर्णन हुआ है। वर्ण– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आश्रम– ब्रह्मचर्य, ग्राह्यस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इनके कर्म एवं नियमों का संक्षेप रूप में वर्णन हुआ है। आचार-विचार, दैनिकचर्या, देवोपासना, व्रतोपवास, दान तथा दान की महिमा का विवेचन किया गया है।

भगवान् के अवतारों के प्राकट्यस्थल, ब्रह्मादि विशिष्ट देवताओं की यज्ञ-भूमियाँ और क्षेत्र, विशिष्ट नदियों के संगम और पवित्र वन, पर्वत, झील, झरने तथा प्रभावशाली संत, भक्त, ऋषि-मुनि, महात्माओं की तपस्थलियों और साधना के क्षेत्र तीर्थ कहे जाते हैं। ऐसे स्थानों में जाने से पाप नष्ट हो जाता है और पुराणों का संचय होता है। परानन्द-पुराण में भी प्रचलित तीर्थों काशी, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, वन, पर्वतों, नदियों इत्यादि का यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता हैं।

अष्टादश महापुराणों की भाँति उपपुराण, औपपुराण भी भारत की अमूल्य निधि हैं। प्राचीन काल में विभिन्न विद्वानों ने अठारह महापुराण की छाया को लेकर ही औपपुराणों की रचना की। सामान्यतः कुछ लोगों को उपपुराण शब्द में लघुता का बोध होने लगता है। परन्तु वास्तव में उपकार, उपासना, उपदेश, उपहार आदि के समान उपपुराणों में भी 'उप' श्रेष्ठता का ही बोधक है। महापुराणों की तरह ये भी भारतीय संस्कृति के प्रचलित ग्रन्थ हैं। उप, औपपुराण भी पुराण पंचलक्षणों से समन्वित हैं तथा विशिष्ट देवता या तीर्थ-माहात्म्य से सम्बन्धित होते हुए ज्ञान-विज्ञान, नीति, सदाचार तथा धर्म आदि की श्रेष्ठ कथाओं से परिपूर्ण हैं। इनमें सर्वत्र कर्म-ज्ञान और भगवद् भक्ति ही प्रवाहित है जिसके स्वाध्याय से मानव जीवन कृतार्थ हो जाता है। इन पुराणों के भी रचयिता श्री व्यास जी ही हैं। विभिन्न पुराणों में उप-औप पुराणों की चर्चा मिलती है। इनकी भी संख्या अठारह ही बतायी गई है।

पौराणिक विषयों के अध्येता एवं मर्मज्ञ वैदेशिक विद्वान पार्जिटर महोदय ने महापुराण, उपपुराण एवं औप पुराणों का कालक्रम निर्धारित किया है, जिसका आधार लिपि, वर्णन शैली, कथानक, आख्यान, ऋषियों का कालक्रम विशेष रूप से माना है। औप-पुराणों का समय जिसमें परानन्द पुराण भी है १००० से १२०० ई. तक स्वीकार किया है। परानन्द पुराण की लिपि, पुराण का प्रारम्भ, विविध आख्यानों का क्रम, स्तुतियों की वर्णन शैली इत्यादि पर मंथन करने से पार्जिटर का उपरोक्त समय समीचीन मालूम पड़ता है।

पुराणों में सात्त्विक, राजस, तामस तीन प्रकार के पुराणों का विभाजन किया गया है यथा–

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यधिकं ब्रह्मणो विदुः।। ७७ ।।

तद्वदग्नेमाहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।। ६८।।
(मत्स्य पु. अ. ५३)

मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अग्नि, छः पुराण, पद्म पुराण के अनुसार तामस पुराण है यथा–

मत्स्यं कौर्मं तथा लैंगं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे।।
(पद्म पुराण, उत्तर खण्ड १६३/८१)

कहने का तात्पर्य यह है कि परानन्द पुराण में शिव की ही महिमा का विशेष रूप से तामस पुराणों के समान वर्णन हुआ है। इसमें भी रौद्री सृष्टि, पितामह ब्रह्मा के भयंकर क्रोध से प्रचण्ड सूर्य के समान प्रकाशमान रुद्र के आविर्भाव का वर्णन है। रुद्र को अर्ध नारीश्वर रूप में देख कर ब्रह्मा ने आदेश किया कि अलग-अलग स्त्री-पुरुष रूप प्रकट करो। आज्ञा पालन के अनुसार पुरुष भाग को ग्यारह भागों में तथा स्त्री भाग को सौम्य-क्रूर, शान्त-अशान्त, श्याम-गौर आदि अनेक रूपों में बाँट दिया।

पुराणों में भूगोल का वर्णन एक प्रमुख विषय है। सप्तद्वीपा, चतुर्द्वीपा वसुमती का विस्तृत वर्णन है। जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौन्चद्वीप, शाकद्वीप एवं पुष्करद्वीपों की पहचान विद्वानों ने कर लिया है। भारतवर्ष के नव खण्डों का विभाजन मत्स्य, मार्कण्डेय इत्यादि पुराणों में हुआ है। जिसका विवरण इस प्रकार है– इन्द्रद्वीप, क़सेरु, ताम्रपर्ण, गभिस्तान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण, भारत–

भारतस्य च वर्षस्य नव भेदान् निबोधत।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्।।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।।
(मत्स्य ११४/६-८)

इन सब द्वीपों की चर्चा परानन्द पुराण में तपश्चर्या यात्रा के सम्बन्ध में आयी है। उपरोक्त द्वीपों के खान-पान रहन-सहन इत्यादि का भी वर्णन है।

पुराणों में पर्वतों के दो प्रकार बताये गये है– वर्ष पर्वत तथा कुल पर्वत। वर्ष पर्वत एक वर्ष को, दूसरे वर्ष को अलग करते हैं। कुल पर्वत देश के अन्तर्गत ही प्रान्तों की सीमा को विभक्त करते हैं। कुल पर्वतों की संख्या सात बतायी गयी है यथा–महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य, परिपात्र।

महेन्द्र– कलिंग से प्रारम्भ होने वाली पूर्वी घाट की पर्वतमालाओं का नाम महेन्द्रगिरि है। वर्तमान समय में यह गंजाम (ओड़िशा) का महेन्द्रमल्लै है।

मलय– यह दक्षिण भारत का नीलगिरि है। इस पर चंदन के वृक्ष अत्यधिक पाये जाते हैं जिसके कारण 'मलयज' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

सह्याद्रि– उत्तर से दक्षिण तक इसकी पर्वत शृंखलाएँ फैली हुई है। महाराष्ट्र तथा कोंकण में ये सह्याद्रि के नाम से ही जानी जाती है।

शुक्तिमान्– सह्याद्रि पर्वत के उत्तरी छोर से पूर्व की ओर इसका विस्तार है। इसके अन्तर्गत खान देश की पहाड़िया, अजन्ता, गोलकुण्डा का पठार सम्मिलित है।

ऋक्ष पर्वत– सतपुड़ा से प्रारम्भ होने वाली पर्वतमालाएँ इसके अन्तर्गत हैं। ताप्ती, वेन, गंगा, ओड़िशा की ब्राह्मणी तथा वैतरणी नदियों का स्रोत स्थल है।

विन्ध्य– विन्ध्य पर्वत प्रसिद्ध अगस्त्त मुनि का शिष्य है। इस पहाड़ से शोण, नर्मदा, महानदी, तमसा आदि नदियाँ निकल कर समुद्र में विलीन हो रही हैं।

पारियात्र– इसके अन्तर्गत आरावली पहाड़ियाँ हैं। पर्णास (वनास नदी), चर्मण्वती (चम्बल), मही, पार्वती, वेत्रवती (वेतवा) आदि नदियाँ इन्हीं पर्वतमालाओं से निःसृत हैं। इन पर्वतों के अतिरिक्त हिमालय, कैलास, मानसरोवर इत्यादि का वर्णन शैव पुराणों में विशेष रूप से मिलता है।

परानन्द पुराण में भी पूर्ववर्ती पुराणों के समान ही पर्वत, नदियों, सरोवरों का वर्णन हुआ है। इसमें भी शंकर जी कैलास पर्वत पर अपने भक्तों यक्ष, गन्धर्व, भूत-प्रेतों इत्यादि से घिरे हुये हैं। इनके अनुचर विविध प्रकार के नाच-गानों, स्तुतियों, पूजन सामग्रियों के द्वारा उनको प्रसन्न करने का उल्लेख हुआ है। गंगावतरण के प्रसिद्ध आख्यान का वर्णन है। कैलास पर्वत का बड़ा रोचक और रमणीय वर्णन प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शैव पुराणों में शिव से सम्बन्धित जितने भी प्रसिद्ध आख्यान हैं ये सब कहीं विस्तृत रूप में, कहीं संक्षेप रूप से परानन्दपुराण में अवश्य ही मिलते हैं।

परानन्द पुराण एक अपूर्ण अप्रकाशित पुराण है। इस पर कहीं भी कुछ लिखा हुआ हमें नहीं मिला है। लिपि की अस्पष्टता, अपभ्रंशता, लिखावट की दुरुहता अध्ययन करने में बाधक है। अतः थोड़े समय में प्राप्त पत्रों को उलटने का प्रयास किया गया है। लघु लेख में उसके अति प्रसिद्ध विषयों की चर्चा की गयी है। शिव की महिमा का दिग्दर्शन

कराते हुए भगवद्गीता, भैरवगीता, पैत्रिक कर्म विधान इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। शैव दर्शन का भी वर्णन है। सात्त्विक, राजस, तामस पुराणों की चर्चा करते हुई परानन्द पुराण को तामस पुराण के अन्तर्गत रखा गया है। वर्णाश्रम, पुराण पंचलक्षण, चतुर्द्वीपा, सप्तद्वीपा, नदियों, पर्वतों का भी विवेचन किया गया है।

शंकर जी की विशद् महिमा का वर्णन करने के साथ ब्रह्मा और विष्णु के महत्व को भी सम्यक् रूप से उल्लिखित किया गया है। पुराण के सभी लक्षणों के आधार पर ही इसकी रचना की गयी है। यह औपपुराण के अन्तर्गत मान्यता होने से इसको महत्वहीन समझना सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार प्रायः सभी शैव पुराणों में वर्णित विषयो, देवों, देवियों का कहीं संक्षिप्त एवं कहीं विस्तृत वर्णन इस पुराण में उपलब्ध होता है। अन्य पुराणों के समान ही इसका भी अतीव महत्वपूर्ण स्थान हैं। इस विषय में किसी तरह का कोई वैमत्य नहीं है।

बृहद्धर्मपुराण

वैदिक साहित्य के अनन्तर जिस साहित्य की अत्यधिक प्रसिद्धि है वह है पुराणवाङ्मय। "अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः" इस कथन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही पुराणों की संख्या १८ है और प्राचीन मान्यता के अनुसार उनके कर्त्ता सत्यवती नन्दन वेदव्यास ही हैं। प्रायः सभी पुराणों में अट्ठारह पुराणों का नाम संकीर्तन किया गया है, जहाँ पर भागवत (श्रीमद्-देवी) तथा वायु-शिवपुराण को छोड़कर शेष नामों में कोई भिन्नता नहीं हैं।

विष्णुपुराण का कथन है कि अट्ठारह महापुराणों के अतिरिक्त पुराण अभिधान से कहे जाने वाले ग्रन्थ मुनियों द्वारा रचे गये है और उन्हें उपपुराण कहा जाता है-

महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च[1]।।

इस प्रकार अट्ठारह महापुराण है, शेष उपपुराण है यह बात सिद्ध हो जाती है। पुराणवाङ्मय में अट्ठारह संख्या अत्यधिक गौरवमयी है क्योंकि सूक्ष्म विचार करने पर ज्ञात होता है कि सर्वसम्मत महापुराणों की संख्या १८, महाभारत के पर्वों की संख्या १८, युद्ध के दिन १८, गीता के अध्यायों की संख्या १८, श्रीमद्भागवतपुराण के श्लोकों की संख्या १८ हजार निश्चित ही निर्हेतुक न होकर सहेतुक हैं। इस प्रकार पुराणवाङ्मय में सब कुछ लगभग अट्ठारह की संख्या में परिगणित है इसलिए उपपुराण भी अट्ठारह ही होने चाहिए।

मत्स्यपुराण के अनुसार अट्ठारह पुराणों से पृथक् जो पुराण प्राप्त होते है उन्हें उन्ही अट्ठारह पुराणों से विनिर्गत जानना चाहिए। यथा-

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदृश्यते।
विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तथा तेभ्यो विनिर्गतम्[2]।।

इस प्रकार इस कथन से स्पष्ट है कि महापुराणों से विनिर्गत होने के कारण उपपुराण भी अट्ठारह ही हैं। १८ महापुराणों के अतिरिक्त पुराण नाम से असंख्य ग्रन्थ प्राप्त होने के कारण सभी उपपुराण है यह कहा जाना ठीक नहीं है, क्योंकि ब्रह्मवैवर्तपुराण में उपपुराणों की संख्या १८ ही स्वीकार की गयी है-

---

१. विष्णुपुराण- ०३.०६.२४
२. मत्स्यपुराण ५३-६३

अष्टादशपुराणानामेवमेवं विदुर्बुधाः।
एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः[1]।।

महापुराणों की संख्या १८ है यह सर्वसम्मत हैं। महापुराणों की छाया का आश्रय लेकर रचे गये उपपुराणों की संख्या भी १८ ही होनी चाहिए। अनेक पुराणों की सूची में उपपुराणों के नाम का कथन किया गया हैं जिसमें किञ्चित् नामान्तर एवं शब्दान्तर को छोड़कर शेष में अवश्य ही साम्य हैं।

पुराणसाहित्य में १८ संख्या सहेतुक है इसलिए श्रीस्वामी ज्ञानानन्द सरस्वती ने अपने धर्मकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में पुराणों के पाँच भेद किये हैं। १. पुराण (महापुराण), २. उपपुराण, ३. औपपुराण ४. उपोपपुराण, ५. उपौपपुराण। इस भेद के अनुसार अवश्य ही प्रत्येक की संख्या १८ हैं। इसके साथ-साथ अन्य विद्वानों का मत है कि अट्ठारह महापुराणों से पृथक सभी उपपुराण हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुछ विद्वानों के मत से बृहद्धर्म उपपुराण हैं तथा धर्मकल्पद्रुमकर्त्ता ज्ञानानन्द सरस्वती महोदय के मत से यह औपपुराण हैं।

उपपुराण की सूची में बृहद्धर्म का नाम नहीं हैं। सूची में न होने से यह पुराण औपपुराण की कोटि में आता हैं। बृहद्विवेक में दी गयी औप-पुराणों की सूची में इस पुराण का अभिधान किया गया हैं–

बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्[2]।।

इस प्रकार महापुराणों से अनुस्यूत होने के कारण उपपुराण भी महापुराणवद् समादरणीय हैं। उपपुराणों के पर्यालोचन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मुनियों ने अट्ठारह महापुराणों की छाया का आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न पुराणों को रचा हैं, निश्चित ही महापुराणों से भिन्न इन पुराणों में कहीं पर महापुराणोक्त कथाओं को सूक्ष्म कर दिया गया है, कहीं-कहीं पर त्याग दिया गया हैं तथा कहीं-कहीं पर चमत्कार के लिए विलक्षण कथा का समावेश भी किया गया हैं। इस प्रकार के वैशिष्ट्य से युक्त होने के कारण इतर पुराण भी महापुराणों की भाँति स्पृहणीय, मान्य तथा श्रद्धेय हैं।

पुराण परम्परा अत्यन्त प्राचीन है इसलिए सभी प्रकार के आस्तिक साहित्य में वेद के अनन्तर पुराण को ही प्रामाणिक स्वीकार किया गया हैं। प्राचीनता के सन्दर्भ में

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण-कृष्णजन्मखण्ड-१३१-२२
२. बृहद्विवेक-३

मत्स्यपुराण का यह कथन महत्त्वपूर्ण हैं- पुराणमेकमेवासीद् पुरा कल्पान्तरेऽनघ'। इति। इस प्रकार सनातन मान्यता प्राचीन होने पर भी यदि रचना तथा भाषा की दृष्टि से विचार किया जाता है तो पुराण साहित्य तथाकथित प्राचीन सिद्ध नहीं होते हैं। परन्तु इसका कारण स्पष्ट है कि प्रति द्वापर में वैदिक संहिता के समान पुराण साहित्य का भी विभाजन एवं रचना सत्यवती सुत कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा की गयी हैं। व्यास ने सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरित आदि पाँच विषयों का आधार लेकर अट्ठारह महापुराणों की रचना की हैं।

महापुराणों की रचना के उपरान्त मुनियों के द्वारा पृथक्-पृथक् महापुराणों की छाया का आश्रय लेकर उपपुराणों की रचना की गयी हैं। इसीलिए उपपुराण का साहित्य निश्चित ही परवर्ती हैं। उपपुराणों के काल के विषय में डा. आर.सी. हाजरा महोदय के विचार अत्यन्त ही तथ्यात्मक प्रतीत होते हैं। हाजरा महोदय का मत है कि उपपुराण वाङ्मय एक कालिक नहीं हैं उनकी रचना भिन्न-भिन्न काल में हुई हैं। इस प्रकार हाजरा महोदय का मत है कि निश्चित ही प्रमुख उपपुराणों का रचना काल ई.पू. ५०० वर्ष है।

उपपुराणों में बृहद्धर्मपुराण का स्थान अत्यन्त ही महनीय हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि महापुराणों की छाया का आश्रय करके उपपुराणों की रचना की गयी हैं। इसीलिए उपपुराणों में किसी एक देव विशेष का उद्देश्य करके उनके माहात्म्य का विशदतया प्रतिपादन किया गया हैं। "आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम्" इत्यादि उपपुराणों की नामावली मात्र से उस पुराण में प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान हो जाता हैं। परन्तु बृहद्धर्मपुराण में देव विशेष का वर्णन न होकर धर्म का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया हैं। जिसके कारण धार्मिक पृष्ठभूमि में इस पुराण का स्थान अति महत्वपूर्ण हैं।

नामकरण– विद्वत्समाज में विश्रुत नामानुसार विशिष्ट धर्म का प्रतिपादन ही इस पुराण का प्रमुख उद्देश्य है। इस पुराण में विषय वैचित्र्यता के साथ सामान्य से विशिष्ट पर्यन्त धर्म का प्रतिपादन किया गया हैं बृहद् अर्थात् महान, धर्म का कथन करने के कारण ही इसे बृहद्धर्मपुराण के नाम से जाना जाता हैं। अन्य उपपुराणों की भाँति इस पुराण में भी सर्गादि पञ्च लक्षण का यत्किञ्चित् वर्णन प्राप्त होता है। विविध व्रत नियम, मातृ-पितृ भक्ति, गुरुनिर्णय तीर्थ प्रादुर्भाव, बिल्व, तुलसी आदि की उत्पत्ति, सती, राम तथा सीता आदि का चरित्र-चित्रण इसमें विशेष रूप से किया गया हैं।

संस्करण/पाण्डुलिपि– किसी भी उपपुराण की सूची में इस पुराण का परिगणन न किये जाने से इसका रचना काल निश्चय कर पाना अत्यन्त कठिन हैं। धर्मशास्त्र का समस्त विषय प्रतिपादित होने पर भी धर्मशास्त्रीयनिबन्धग्रन्थों में इस पुराण का उद्धरण न दिये जाने

१. मत्स्यपुरण-५३-०६

से इस पुराण के रचना काल विषय में संदेह होता हैं। परन्तु इस पुराण में क्रियायोगसारादि ग्रन्थों का उल्लेख किये जाने से डॉ. आर.सी. हाजरा महोदय ने इस पुराण की रचना काल तेरहवीं शताब्दी स्वीकार किया हैं तथा बङ्गीय संस्कृति का विशद प्रतिपादन होने के कारण बङ्गभूमि को ही इसका रचनास्थल स्वीकार किया है।

इस पुराण की पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय वाराणसी में प्राप्त हैं। वैसे महामहोपाध्याय श्री हर प्रसाद शास्त्री महोदय ने १८६७ खिस्तीय वर्ष में चारमातृकाओं का अवलम्बन करके ग्रन्थ का संशोधन किया एवं सर्वप्रथम कलकत्ता से इसका प्रकाशन किया है। ऐसा उक्त संस्करण के पाठ भेद प्रदर्शक टिप्पणी से ज्ञात होता हैं। शास्त्री महोदय के द्वारा मातृका आदि का विवरण तथा भूमिका आदि का उल्लेख न किये जाने से इस विषय में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। उक्त कलकत्ता संस्करण के दुष्प्राप्य होने पर चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन वाराणसी द्वारा पुनः प्रकाशन किया गया है।

भाषागतवैशिष्ट्य– उक्त पुराण में अति सरल सुबोध भावगम्य तथा प्राञ्जल भाषा का प्रयोग किया गया है। अत्यन्त सरल भाषा होने के कारण श्लोक के पठन मात्र से अर्थ की अभिव्यक्ति हो जाती हैं। प्रमुख विषय धर्म के बृहद् प्रतिपादन के साथ-साथ मनोरम शैली में कथानकों एवं उपाख्यानों को प्रस्तुत किया गया हैं। इस प्रकार सर्वजन ग्राह्य होने से हृदयग्राहिणी शैली का प्रतिपादन इस पुराण में किया गया है।

प्रतिपाद्यविषयवस्तु– प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थस्थान नैमिषारण्य के वर्णन से ही इस पुराण का प्रारम्भ होता हैं। बदरिकाश्रम से आये हुए पौराणिकोत्तम सूत जी का सत्कार करके शौनकादि ऋषियों ने व्यासोक्त पुण्यतम कथाओं को सुनाने के लिए निवेदन किया हैं। ऋषियों का निवेदन सुनकर व्यास आश्रम पर व्यास जी द्वारा ऋषि जाबालि के प्रति कही गयी धर्म संहिता कथा का कथन सूत जी ने प्रारम्भ किया है। इस प्रकार सूत जी द्वारा व्यास वन्दनापूर्वक ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है।

इस पुराण में कुल तीन खण्ड तथा ७४ अध्याय है। विषयवस्तु इस प्रकार है। पुराण के प्रथम खण्ड में १ से ३० अध्याय, मध्यम खण्ड में ३१ से ६० अध्याय तथा उत्तर खण्ड में १ से १४ अध्याय हैं।

प्रथम खण्ड के पहले अध्याय में-सूत शौनकादि संवाद तथा व्यास-जाबालि संवाद का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में पितृमातृ-भक्ति, तृतीय अध्याय में तुलाधारोपाख्यान, चतुर्थ में गुरुनिर्णय, पञ्चम में तीर्थप्रादुर्भाव, षष्ठ में भी तीर्थ प्रादुर्भाव, सप्तम में तुलसी उत्पत्ति, अष्टम में तुलसी माहात्म्य, नवम में श्रीफलोत्पत्ति, दशम में बिल्ववृक्ष माहात्म्य, एकादश में पुनः बिल्ववृक्ष माहात्म्य, द्वादश में आमलकी प्रादुर्भाव, त्रयोदश में नैमिषारण्य सम्भव, चतुर्दश में गण्डकीतीर्थ, जलतीर्थ, पञ्चदश अध्याय में कालतीर्थ, षोडश अध्याय में तीर्थकथनपूर्वक अगस्त्यार्ध्यविधि, सप्तदश में श्राद्धनिरूपण, अष्टादश से लेकर द्वाविंशति

पर्यन्त रावणवधोपाय, सीतावृत्तान्त हनुमदागमन रावणवध आदि रामायण का वर्णन, त्रयोविंशति तथा चतुर्विंशति में कालतीर्थ का, पञ्चविशति में रामायणोत्पत्ति, षडविंशति में रामायण उत्कीर्तन, सप्तविंशति में व्यास प्रादुर्भाव, अष्टाविंशति में पराशर व्यास संवाद, एकोनत्रिंशत में वाल्मीकि व्यास संवाद तथा त्रिंशत् अध्याय में जयविजय संवाद का वर्णन किया गया है।

मध्यम खण्ड के अध्यायों की गणना पृथक न करके प्रथम खण्ड से जोड़ दिया गया हैं। मध्यम खण्ड के एकत्रिंशत एवं द्वात्रिंशत् अध्याय में शुक-जैमिनि संवाद के माध्यम से सृष्टिवर्णन, त्रयस्त्रिंशत से सप्तत्रिंशत अध्याय पर्यन्त सतीचरित्र, भिक्षुकागमन, रुद्रद्वेष कथन तथा सतीदेहोत्सर्ग का निरूपण, अष्टत्रिंशत में दक्षयज्ञध्वंस, नवत्रिंशत में दक्षयज्ञसम्भव, चत्वारिंशतम में दक्षपश्चाताप का कथन किया गया है। एकचत्वारिंशततम अध्याय में सती-ब्रह्मा संवाद, द्विचत्वारिंशततम में गङ्गाजन्म, त्रिचत्वारिंशत्तम में शिवगङ्गासमागम, चतुष्चत्वारिंशत्तम में शिवगान, पञ्चचत्वारिंशतम में अदिति वर प्राप्ति, षट्चत्वारिंशतम तथा सप्तचत्वारिंशतम अध्यायों में वामन चरित्र, अष्ठचत्वारिंशत्तम, एकोनपञ्चाशत्तम अध्याय में गङ्गाराधन, पञ्चाशत्तम अध्याय में गङ्गास्तवसहस्रनाम, एकपञ्चाशत्तम अध्याय में गङ्गावतरण, द्विपञ्चाशत्तम अध्याय में सगरपुत्रोद्धार, त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय में उमाचरित, चतुःपञ्चाशत से अष्टपञ्चशत्तम अध्याय पर्यन्त गङ्गाधर्म का निरूपण, उनषष्टितम में मन्वन्तर वंशकथन तथा षष्टितम अध्याय में विष्णुवंश एवं शिववंश का निरूपण किया गया है।

बृहद्धर्मपुराण का उत्तरखण्ड अत्यन्त लघुकाय है। इसमें कुल १४ अध्याय ही है, इस खण्ड के आदि अध्याय में प्रणाम विधि, दूसरे अध्याय में ब्राह्मणधर्म, तीसरे में राजधर्म, चौथे तथा पाँचवें अध्यायों में ब्रह्मचारीधर्म, छठें अध्याय में गृहस्थधर्म तथा सातवें अध्याय से दसवें अध्याय पर्यन्त वानप्रस्थ एवं यति धर्म का विस्तार से वर्णन किया गया है। ग्यारहवें अध्याय में नवग्रहमाहात्म्य, बारहवें अध्याय में युगधर्मो का कथन, तेरहेवें चौदहवें अध्यायों में जाति साङ्कर्म उपाख्यान का वर्णन किया गया हैं।

इस प्रकार इस पुराण के तीनों खण्डों में पौराणिक धर्म तथा यथा सम्भव सर्ग, वंश, उपाख्यान आदि का वर्णन किया गया है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व– इस पुराण में पौराणिक धर्म का विशिष्ट प्रतिपादन किया गया हैं। कलियुग का प्राणी विस्तृत संभारों से साध्य यज्ञों को कर नहीं सकता है तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यज्ञीय उपकरणों का संचय भी दुष्कर है, मेधा एवं शक्ति का स्रोत अत्यल्प होने से तपस्या करने में भी अक्षमता दृष्टिगोचर होती है। ऐसे कलियुग में वैदिक एवं मनुप्रतिपादित धर्म का पालन नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसमें अत्यन्त शुचिता की आवश्यकता हैं। अतः प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सरलतम धर्म का निरूपण इस

पुराण में किया गया है, मातृ-पितृ-गुरुभक्ति, तीर्थयात्रा वर्णश्रम धर्म का पालन कर प्राणीमात्र अपना कल्याण कर सकता है। धर्म का साङ्गोपाङ्ग चित्रण किये जाने से यह पुराण प्राणीमात्र के अन्दर धार्मिक भावना के प्रादुर्भाव में अत्यधिक सहायक हो सकता है।

इस पुराण में तीर्थ का निरूपण विस्तार से किया गया है, पुराण के अनुसार पिता, माता, गुरु सभी तीर्थ है जिनकी सेवामात्र से तीर्थफल की प्राप्ति सम्भव है। इस पुराण में तीर्थों का प्रादुर्भाव तथा उनके माहात्म्य का प्रकाशन करके तीर्थयात्रा के लिए प्रोत्साहित किया गया है। तीर्थयात्रा विधि आदि के निरूपण से इस पुराण का सांस्कृतिक महत्व भी विशिष्ट प्रतीत होता है।

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से बृहद्धर्मपुराण का महत्व– आज जल प्रदूषण विशेषकर महानदियों का प्रदूषण एवं वन संक्षरण, वृक्षसंरक्षण के अभाव में होने वाले ध्वनि प्रदूषण, वायुप्रदूषण, बाढ़, भूस्खलन नदियों के कटाव आदि की समस्याए उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही हैं। बृहद्धर्मपुराण के अनेक अध्यायों में गण्डकीतीर्थ, कालतीर्थादि अनेक तीर्थों की चर्चा की गयी है इसके साथ ही जिस नदी को सर्वोत्तम तीर्थ होने का गौरव प्राप्त हुआ है ऐसी गङ्गानदी से सम्बन्धित, गङ्गोत्पत्ति (अ. ४२), हर-गङ्गासमागम (अ. ४३), गङ्गाराधना (अ. ४६), गङ्गास्तवन एवं गङ्गासहस्रनाम (अ. ५०), गङ्गावतार (अ. ५१), सगरपुत्रोद्धार (अ. ५२) ये आख्यान निरूपित हैं। लेकिन इन सबसे बढ़कर (अ. ५४ से अ. ५८ तक) गङ्गाधर्म निरूपण का जो प्रसङ्ग वर्णित है वह वर्तमान में भी नदी संरक्षण की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बृहद्धर्मपुरार्ण में गङ्गातीर के कर्तव्याकर्तव्य का विमर्श निश्चय ही मननीय है।

बृध्द्धर्मपुराणोक्त तीर्थकृत गङ्गास्तुति के अवलोकन से यह निश्चय होता है कि गङ्गाभक्तों को ही अन्य तीर्थ भी पवित्र करते हैं। जैसाकि इस वाक्य में देखा जा सकता है–

"वयं तु मातः ! परममङ्गलायनवासावगादर्शनस्मरणेन विश्वानि तीर्थानि किल इतरया जातानि च भगवति भवतीमेवाश्रयमाश्रितानि तीर्थत्वेन प्रपञ्चरूपाणि भवत्या एव सर्वरूपायाः। ये पुनस्त्वयि भक्तास्तान् वयं पुनीमहे तद्विभूतिविशेषदिदृक्षया तत्र तत्र भ्रमतः। त्वरयभक्तांस्तु दूरतस्त्यजामहे। त्वं पुनः तत्तन्मयत्वाद्देवानां तीर्थानां (पाठान्तर लोकानां) धर्माणां माता सर्वसाक्षिणी प्रणम्यसे शतशः।" इति (बृ.ध. पुराणे पूर्वखण्ड अ.५ ६१-६२ श्लोकयोर्मध्ये)

बृहद्धर्मपुराण के ५४ अध्याय में गङ्गा में एवं उसके तीरादि पर कर्तव्याकर्तव्य विषय में महर्षि जैमिनि एवं परमभागवत शुकदेवजी के बीच जो संवाद हुआ है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ शुकदेव ने बतलाया है कि गङ्गा के मुख्य प्रवाह से ४ हाथ की दूरी तक किसी व्यक्ति का स्वामित्व नहीं होता यहाँ के स्वामी नारायण होते है यहाँ दान एवं प्रतिग्रह दोनों का सर्वथा निषेध है। यहाँ प्रतिग्रह को जाह्नवी का विक्रय और जाह्नवी के विक्रय

को जनार्दन का विक्रय, जनार्दन के विक्रय से तीनों लोकों का विक्रय कहा गया है। यहाँ मिथ्यावाक्य, प्रतिग्रह, दान, अपारमार्थिक (सांसारिक) चर्चा एवं क्रयविक्रय आदि सबका सर्वथा निषेध है।[1]

गङ्गातट पर कपड़े धोना, शरीर के मैल का त्याग, कटुवाक्य बोलना, दूसरे को पीड़ा देना, दूसरे के द्रव्य से पूजन, ग्राम्यधर्मों का आचरण, भोजन, शास्त्रविरूद्ध बोलना, बिना जानकारी के बोलना, पैर धोना, बिना तिल के तर्पण, अधोवायु छोड़ना, थूकना, खकारना, दूसरे तीर्थों की प्रशंसा, अन्य जल की प्रशंसा, झूठा उच्छिष्ठ फेकना, डण्डे पटकना (जलपर), तेलसाबुन का प्रयोग, बाँध बाँधना, शिर से पैर तक तेल लगाकर स्नान, शपथ लेना, स्वच्छन्द पैरों से जल पर प्रहार, स्थान-अस्थान की कल्पना, अकेले स्नानार्थ जाना या रहना अनेक लोगों के साथ वास करना, कुश-स्वर्ण या रौप्य के बगैर स्नान, आलस्य, दुःख, शोक, मोह, नास्तिकता, पापचिन्तन एवं विषयों की इच्छा करना सर्वथा निषिद्ध है।[2]

गङ्गा अथवा प्रकारान्तर से अन्य नदियों के तट पर कहाँ तक आवासादि का निर्माण करना चाहिये यह जल प्रदूषण को रोकने एवं पर्यावरण के संरक्षण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बृहद्धर्मपुराण में यथा-

भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्।
तावद् गर्भं विजानीयात् तदूर्ध्वं तीरमुच्यते।
सार्धहस्तशतं यावत् गङ्गातीरमिति स्मृतम्।।
तीराद् गव्यूतिमात्रं च परितः क्षेत्रमुच्यते।
तीरक्षेत्रमिदं प्रोक्तं सर्वपापविवर्जितम्।। (बृ.ध.पु. ५४ श्लोक ४५-४७)

अर्थात् भाद्रशुक्लचतुर्दशी को जितने दूर तक गङ्गा का फैलाव रहता है उतने दूर दोनों तटों के भूभाग को गर्भ कहा गया है उसके बाद १५० हाथ तक की दूरी का भूभाग तीर कहलाता है। तीर से एक गव्यूति पर्यन्त का भूभाग क्षेत्र कहलाता है। तीर और क्षेत्र इन सब स्थानों में पूर्वोक्त विधि-निषेध का ध्यान रखकर पापरहित होकर रहना चाहिए। इस भूभाग में केवल दीक्षा, देवपूजा, शुष्कवस्त्र के साथ गायत्री जप, श्राद्ध, तर्पण परोपकार, इष्टदेवता हेतु द्रव्योत्सर्ग, सत्पात्र को दान का संकल्प, केवल जलपान, स्तुति एवं मौन धारण इन सत्कर्मों को ही करना चाहिये।

वृक्षसरंक्षण की दृष्टि से भी बृहद्धर्मपुराण महत्वपूर्ण है। इसमें मुख्यरूप से तुलसी, बिल्व एवं आमलकी के वृक्षो की महिमा एवं कल्याणकारी गुणधर्मो की चर्चा के साथ इनके संरक्षण की बात कही गयी है। बिल्ववृक्ष के फल जिसको श्रीफल भी कहते है इसकी उत्पत्ति का रोचक प्रसङ्ग यहाँ वर्णित है।

---

१. बृ.ध.पु. २/५४
२. बृ.ध.पु. २/५४

यद्यपि आमलकी वृक्ष की उत्पत्ति भगवान् के ष्ठीव से तथा तुलसी की उत्पत्ति जालन्धर आख्यान के अन्तर्गत वृन्दा के भस्म में पार्वती के बीज स्थापन से या अमृत से (समुद्रमन्थन के समय) होने की बात क्रमशः पद्मपुराण एवं स्कन्धपुराण में वर्णित है किन्तु श्रीफल की उत्पत्ति का आख्यान बृहद्धर्मपुराण में बड़े ही रोचक ढंग से उपस्थित किया गया है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु सहस्रसुवर्णकमलसमर्पण का संकल्प लेकर शिवपूजा हेतु बैठे थे। शिव ने परीक्षा लेते हुए एक कमल अदृश्य किया जिस पर पूजा से उठने से पूजा के खण्डित होने और न उठने से संकल्प के खण्डित होने के भय से कमलनयन होने के कारण कमल के विकल्प में अपना नेत्र समर्पित कर दिया जिससे शिव प्रसन्न हुए और बाद में यही सुदर्शन चक्र बना दिया गया। (स्कं.पु.सन.संहिता का.मा.)

इसी प्रकार की कथा यहाँ बृहद्धर्मपुराण में श्रीफलोत्पत्ति के सन्दर्भ में भी आयी है। विष्णु जैसा ही सहस्रकमलार्चन का संकल्प लेकर भगवती लक्ष्मी शिवार्चन के लिये बैठी हैं। शिव द्वारा उनकी भी वैसी ही परीक्षा लिये जाने पर उन्होंने कमल के विकल्प के रूप में अपना स्तन काटकर भगवान् शिव को समर्पित कर दिया। जिससे उनकी भक्ति देखकर शिव प्रसन्न हो गये जो बाद में श्रीफल बना दिया गया। यहाँ इस आख्यान से प्रकृति के प्रदत्त पोषक तत्व के रूप में वृक्षों को दर्शाया गया है और इनके संरक्षण का सन्देश दिया है इसी प्रकार तीर्थों के संरक्षण एवं महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार बृहद्धर्मपुराण पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में भी निश्चय ही मार्गदर्शन करता है।

उपसंहार– इस पुराण में पौराणिक विषयों का वर्णन प्रायः पुराण की शैली में किया गया हैं। धर्म प्रवृत्ति के लिए रोचक वाक्यों का कथन भी इस पुराण में प्राप्त होता है। सृष्टि, वंश आदि के वर्णन से यह पुराण पुराणलक्षण को भी आत्मसात करता है। आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि आदि के द्वारा पुराणसंहिता का निर्माण हुआ है। उक्त पुराण में भी इन पौराणिक अङ्गों का वर्णन प्राप्त होता है। वैसे तो धर्मशास्त्र का सम्पूर्ण विषय इस पुराण में समाहित है परन्तु वर्णाश्रम धर्म का प्राणिमात्र के कल्याण की दृष्टि से विस्तृत वर्णन किया गया है। प्राणिमात्र की बुद्धि धर्मयुक्त हो यह इस पुराण का सर्वश्रेष्ठ उद्घोष है।

इस प्रकार यह पुराण धार्मिक भावना के उदबोधन के लिए एक सशक्त माध्यम है तथा पुराण वाङ्मय में अपना एक विशिष्ट स्थान सुनिश्चित करता है।

बृहन्नारदीयपुराण

नारदपुराण, नारदीय पुराण, बृहन्नारदीय पुराण, लघु बृहन्नारदीय पुराण इस प्रकार ये चार पुराण जिनके नामोल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें नारद महापुराण है, नारदीय उपपुराण है, जिसकी चर्चा कूर्मपुराण में दी गयी उपपुराणों की नामावली में है (कू.पु. पूर्वार्द्ध १/१८ नारदीयमतः परम्') लघुबृहन्नारदीय एक वैष्णव ग्रन्थ है, जबकि बृहन्नारदीय पुराण का उल्लेख, बृहद्विवेक-३ में दी गयी औपपुराणों की सूची में प्राप्त होता है-

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।

(बृ. विवेक-३)

इसमें पुराणों के सर्गादि लक्षण नहीं प्राप्त होते, केवल इसके ३७वें अध्याय में मन्वन्तरों की चर्चा है। लगता है इसी कारण इसकी गणना उपपुराणों में न कर औपपुराण में की गयी है। जैसा कि पुराणों के अनुशीलन से विदित होता है कि महापुराणों की रचना भगवान् व्यासदेव के द्वारा की जाने के बाद अन्यान्य ऋषियों ने इन्हीं पुराणों की छाया में कहीं कथाओं के सङ्कोच या विस्तार से आने वाले दिनों में उपपुराण और औपपुराणादि की रचना की जिनका उद्देश्य कुछ भिन्न होने से प्रायः इनमें सभी पञ्चलक्षण विस्तार से नहीं पाये जाते। बृहन्नारदीय पुराण नारद पुराण की छाया में ही लिखा गया है।

बृहन्नारदीय पुराण के अवलोकन से ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म का प्रभाव समाप्ति की ओर था और वैष्णवादि सम्प्रदाय पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुके थे। इसमें वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा, वेद सम्मत सम्प्रदायों में ऐक्य स्थापन और वेद विरोधियों का निषेध दृष्टिगोचर होता है।

नारद पुराण की ही तरह बृहन्नारदीयपुराण भी वैष्णवधर्म का प्रचारक पुराण है। इसमें वर्णित प्रायः सभी विषय नारदीय पुराण में भी उपलब्ध होते हैं। इसमें विशेष आख्यान नहीं है, मार्कण्डेय जन्म कथा, सगर पुत्रों का विनाश, वामनावतार कथा विशेष रुचिकर रूप में वर्णित है। विष्णुभक्ति का पोषक होने पर भी यह पुराण वैदिक धर्म के सम्प्रदायों के बीच ऐक्य का प्रतिपादक है। अन्य पुराणों की ही तरह इसमें भी शिव विष्णु का ऐक्य प्रतिपादित किया गया है-

शिव एव हरिः साक्षाद् हरिरेव शिवः स्वयम्।
तयोरन्तरकृद्याति नरकान् कोटिकोटिशः।।

(बृ.ना. १४/२१३'२१४)

विष्णुभक्ति प्रधान होने से यह सात्विक पुराण है। नारद सनतकुमार संवाद के माध्यम से विष्णु महिमा, विष्णु स्तवन, विष्णु की भक्ति, एवं विष्णु व्रतों का विशेषरूप से निरूपण इस पुराण में किया गया है। इसमें ३८ अध्याय एवं लगभग ३५०० श्लोक हैं।

नामकरण का अभिप्राय– जैसा कि सभी पुराणों के नाम प्रायः वक्ता, श्रोता या पुराण में वर्णित प्रधान देवता के नाम पर रक्खे जाते हैं उसी प्रकार इस पुराण के वक्ता नारद होने के कारण इसे नारदीय कहा गया है। नारद ने सनत्कुमारों को यह पुराण सुनाया है। वेदार्थ सम्मित स्व तत्त्व का प्रतिपादक होने से इसमें नारदीय के साथ बृहद् शब्द जुड़ा हुआ है। इस विषय में स्वयं बृहन्नारदीय पुराण का यह वचन द्रष्टव्य है। –

पुराणं नारदीयाख्यं बृहद् वेदार्थसम्मितम्।
गीतं सनत्कुमाराय नारदेन महात्मना।।
सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्।
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं भक्तिमुक्तिफलप्रदम्।। बृ.ना. १/३६-३७

बृहद् वेदार्थ प्रतिपादक होने एवं नारद के इस पुराण के वक्ता होने से बृहन्नारदीय यह नाम सार्थक ही है जो इसे नारद महापुराण और नारदीय उपपुराण से पृथक करता है।

देशकाल– जैसा कि पूर्व में कहा है कि बृहन्नारदीय पुराण, नारद पुराण की छाया में बाद में लिखा होना चाहिए। इसके देश काल के विषय में विचार करने के पूर्व बाह्य आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर नारदीय पुराण के देशकाल पर भी विचार करना आवश्यक होगा। नारद पुराण में बौद्धों की बड़ी समालोचना की गयी है। बौद्ध मन्दिरों में प्रवेश करने वाले ब्राह्मणों की प्रायश्चित्त से भी शुद्धि न होने, वेद निन्दक होने से बौद्धों को पाखण्डी कहे जाने का वर्णन इसमें प्राप्त होता है। बौद्धों के प्रति इस प्रकार का आलोचना भाव सातवीं शताब्दी में जागृत था जब वेदसम्मत धार्मिक वातावरण जागृत करने, धार्मिक वातावरण को विशुद्ध करने हेतु आचार्य कुमारिल भट्ट ने बौद्धों का प्रबल खण्डन किया था। इसी प्रकार नारद पुराण का निम्न श्लोक भी शब्दशः एवं अर्थशः किरातार्जुनीयम् के श्लोक से भी मिलता है–

अविवेको हि सर्वेषामापदां परमं पदम्। ना.पु. १/६/५०

इस आधार पर नारदीय पुराण का रचना काल (७-६) शताब्दी के बीच का माना जाता है। बृहन्नारदीय परवर्ति होने से (१०-११) शताब्दी के बाद का हो सकता है। मथुरा एवं यमुना का उल्लेख होने से हो सकता है कि यह पुराण मधुवन में लिखा गया हो। किन्तु इसमें प्रयाग की अत्यन्त प्रशस्ति गायी है साथ ही गङ्गा की अपार महिमा का इतिहास सहित वर्णन इसके रचयिता के गङ्गा प्रेम को व्यक्त करता है अतः यह ग्रन्थ निश्चय ही

गङ्गा तट पर पुण्यतीर्थ में लिखा गया होगा। इसकी पाण्डुलिपियां बङ्ग भाषा में अधिक प्राप्त होने के कारण इसके वङ्ग देश में लिखे जने की भी सम्भावना व्यक्त की जाती है।

बृहन्नारदीय का पुराणत्व– सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित्र इन पाँच लक्षणों के होने पर ही पुराण माना जाता है। इस दृष्टि से देखने पर बृहन्नारदीय पुराण के तृतीयाध्याय के (३२-३६) श्लोक में सर्ग, चतुर्थ अध्याय (४७-४८) श्लोक में प्रतिसर्ग, वंश वंशानुचरित्र के अन्तर्गत बाहू, सगर, अंशुमान्, सौदास, भगीरथ, उत्तङ्क, यज्ञध्वज, गालव, यज्ञमाली सुमाली और बलि आदि के चरित्र तथा ३७वें अध्याय में मन्वन्तरों की चर्चा है। इन सभी लक्षणों का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में एवं आंशिक होने से इसकी गणना औपपुराण में की गयी है। इसी प्रकार पुराणों के उपकरणों आख्यान उपाख्यान के रूप में मार्कण्डेयोपाख्यान, सगरोपाख्यान, अंशुमान, सौदास, गङ्गा, बलि, वामन, भगीरथादि के आख्यान, सुमति, गालव, भद्रशील आदि के आख्यानोपाख्यान एवं कल्पशुद्धि के अन्तर्गत आने वाले धर्मशास्त्रीय विषय, सदाचार, संस्कार एवं षड्विधा शुद्धि के प्रकारों का इसमें विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। अतः इसके पुराणत्व के विषय में कोई सन्देह नहीं है। वैसे सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध मुक्ति और आश्रय इन दस पुराण लक्षणों को भी यत्र तत्र आंशिक रूप से देखा जा सकता है। भगवान् विष्णु ही इसके आश्रय तत्त्व हैं।

संस्करण तथा पाण्डुलिपि

बृहन्नारदीय पुराण की दो पाण्डुलिपियां कलकत्ता संस्कृत कालेज के पुस्तकालय, एक प्रति एशियॉटिक सोसायटी ऑफ बेङ्गाल, एक प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज के पण्डित मधुसूदन स्मृतिरत्न जी के संग्रह में और एक भाटपारा के विद्वान् उनके व्यक्तिगत संग्रह में है इनमें केवल एक देवनागरी (कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय) एवं शेष बांगला लिपि में है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में ७ पाण्डुलिपियां हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है।

क्र.	आकार	लिपि	लिपिकाल	ग्रन्थ की स्थिति	पृष्ठ	विवरण
१४४०६	१६.७ ग ४.५	बङ्ग	-	पूर्ण	६-६१	१.३८
१४६२२	१३.२ ग ३.४	बङ्ग	-	अपूर्ण	१-५०	-
१५०४२	८.० ग ४.२	देवनागरी		-	"	- -
१५२८०	१५.४ ग ३.६	"	-	"	-	-
१५८२७	११.४ २.६	बङ्ग	-	"	-	-
१६४०६	१३.६ ग २.८	"	१५८० शक.	पूर्ण	१-१८५	१-३८ अध.
१६४२२	१०८ ६.१	देवनागरी	१६४६ वि.	पूर्ण	१-१०१	१.३८ "

उपर्युक्त विवरण का स्रोत है- (I Descriptive Catalouge of Sanskrit Manuscripts Volume IX Govt. Sanskrit College, Saraswati Bhawan Library Varanasi)

इन पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी एवं एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से भी सम्भवतः बृहन्नारदीय पुराण मुद्रित है।

बृहन्नारदीय पुराण की कथावस्तु – बृहन्नारदीय पुराण में कुल ३८ अध्याय एवं ३५०० श्लोक हैं जिसके अनुसार इसकी कथावस्तु इस प्रकार है। मङ्गलाचरण के रूप में सर्वप्रथ प्रसिद्ध पौराणिक मङ्गलाचरण नारायणं नमस्कृत्य ....) तथा त्रिदेव वन्दित वृन्दावनासीन, इन्दिरानन्दमन्दिर परमात्मा श्रीकृष्ण की वन्दना से ग्रन्थ आरम्भ होता है। सूत के प्रति नैमिषारण्यस्थ शौनकादि महात्माओं द्वारा हरिकथा विषयक प्रश्न से ग्रन्थ का आरम्भ होता है। सूत के उत्तर के बाद पुनः महात्माओं द्वारा सनत्कुमार नारद संवाद के रूप में इस पुराण की कथा सुनाने की प्रार्थना की जाती है। यह सारा प्रकरण प्रथम दो अध्यायों में वर्णित है।

३ अध्याय से ५ अध्याय – इन अध्यायों में नारायणमाहात्म्य, भक्तिमाहात्म्य, भागवत लक्षण, एवं दिव्य मार्कण्डेयोपाख्यान वर्णित है। मार्कण्डेय द्वारा भगवत्भक्त के लक्षण पूछे जाने पर भगवान् ने सर्वभूतहितकारित्व, अनसूयत्व, अमत्सरता आदि अनेक विशिष्ट गुणों की चर्चा की है।

६ अध्याय से ८ अध्याय – छठे अध्याय में प्रयागराज की महिमा, गङ्गामहिमा और सगर पुत्रों के उद्धार की कथा वर्णित है। आगे सगर चरित्र विस्तार से वर्णित है। इसी में अंशुमान का भी उपाख्यान है।

९ अध्याय से १२ अध्याय– नौवें अध्याय में सौदासोपाख्यान, और गङ्गामाहात्म्य की चर्चा की गयी है। आगे के १०, ११ एवं बारहवें अध्याय में क्रमशः राजा बलि का उपाख्यान, वामनावतार का दिव्य प्रसङ्ग, भूमिदान की प्रशंसा, बलि का नियमन एवं दान फल की विशेष चर्चा की गयी है।

अध्याय १३ से अध्याय १५ – तेरहवें अध्याय में राजा भगीरथ का उपाख्यान, धर्मराज एवं भगीरथ का संवाद, चौदहवें अध्याय में पापों का स्वरूप और उनसे प्राप्त होने वाली विविध यातनाएं, पन्द्रहवें अध्याय में भगीरथ द्वारा की गयी तपस्या, सिद्धिलाभ एवं उनके द्वारा सगर पुत्रों के उद्धार की कथा का सुन्दर निरूपण किया गया है।

अध्याय १६ से अध्याय २१ – आगे के अध्यायों में भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये किये जाने वाले विविध व्रतों की चर्चा है। जिनमें द्वादशी व्रत, पौर्णमासी व्रत, ध्वजारोपणव्रत, हरि पञ्चक व्रत (मार्गशीर्ष एकादशी से पूर्णिमा तक निराहार व्रत) मास व्रत (आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन अथवा किसी मास की शुक्लपक्ष की दशमी तिथि से एक

मास पर्यन्त किया जाने वाला व्रत) और एकादशी व्रत इन व्रतों की महिमा, नियम, विधि विधान एवं प्राप्त होने वाले फलों की चर्चा है। इनसे सम्बन्धित, सुमति, गालव एवं भद्रशील के आख्यान भी वर्णित हैं।

अध्याय २२ से अध्याय २७ तक– इन अध्यायों में वर्णाश्रम विधान, समुद्रयात्रा निषेध, वर्णाश्रमियों के आचार, गृहस्थाश्रम प्रवेशकाल, विवाहार्थ विहित एवं निषिद्ध कन्याएं, शिष्टाचार, गृहस्थ वानप्रस्थ एवं सन्यासियों के आचार, श्राद्धविधि श्राद्ध हेतु विहित एवं निषिद्ध ब्राह्मण, श्राद्धकाल एवं व्रतदानादि के लिए योग्य, तिथियों का वर्णन किया गया है।

अध्याय २८ – बृहन्नारदीय पुराण का अट्ठाईसवां अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें साठ से भी अधिक विभिन्न पापकर्मों के प्रायश्चित्त बतलाये गये हैं। प्रायः पापं विनिर्दिष्टं चित्तं तस्य विशोधनम्'- इसमें प्रायः शब्द का अर्थ है पाप और चित्त शब्द का अर्थ है शोधन। धर्मशास्त्र में जहां आचार प्रकरण, व्यवहार प्रकरण है वहां प्रायश्चित प्रकरण भी है। यह प्रायश्चित्त धर्म शास्त्रों की खास वस्तु है। किस पाप का प्रायश्चितः कैसे होगा इसकी चर्चा की गयी है।

बृहन्नारदीय पुराण के इस प्रमुख अध्याय में प्रायश्यिचत विधि, महापातक भेद, अज्ञानकृतब्रह्महत्या, दीक्षित क्षत्रिय ब्राह्मण वध, आचार्यादि का वध, क्षत्रिय वैश्यशूद्रकृत ब्राह्मणवध, ब्राह्मणी वध, कन्यावध, अनुपनीत, ब्राह्मण पुत्र वध, ब्राह्मणकृत क्षत्रिय वैश्य या शूद्र वध, वृद्धादि के लिए प्रायश्चित आदि का वर्णन किया गया है। आगे मद्यपान जैसे महापाप की चर्चा में, सुराओं के भेद; सुरापान, अज्ञान से या औषधीय सुरापान, सुराभाण्डोदकस्पर्श, मद्यभेद मद्यपान एवं अज्ञानकृतमद्यपानादि से सम्बन्धित प्रायश्चितों की चर्चा की गयी है। चोरी के स्वरूपों के अनुसार प्रायश्चित, त्रसरेणु, निष्क, राजसर्षप, गोसर्षप, यव, कृष्णल, माष, सुवर्णादि के प्रमाण, अनजाने या अज्ञानवश, ब्राह्मण, गुरु, यज्ञकर्ता, धार्मिक, श्रोत्रिय, या स्वामि के यहाँ सुवर्ण चोरी के प्रायश्चित उपर्युक्त विभिन्न प्रमाणों के वजन के सुवर्ण चोरी के प्रायश्चित, सूक्ष्ममात्रा में यानी सुवर्ण से सहस्रनिष्क से अधिक वजन की चांदी चोरी करने पर भिन्न भिन्न प्रायश्चित, तांबा, कांसा, रत्नादि के चोरी के प्रायश्चित वर्णित हैं। आगें गुरुपत्नी, माता, उत्तमवर्णस्त्री, क्षत्रिय, वैश्य-शूद्र स्त्री, मौसी, चाची, भाभी, बुआ, पुत्री, आचार्य पत्नी, पूत्रवधू, मित्र स्त्री, शिष्य पत्नी, चाण्डाली आदि के साथ गमन करने वालों के लिए विभिन्न प्रायश्चितों का वर्णन प्राप्त होता है। आगे हिंसा जनित पापनिवारण हेतु प्रायश्चितों की चर्चा है। मेढक, नेवला, कौआ, सूकर, चूहा, बिल्ली घोड़ा, हाथी, गाय आदि पशुओं तथा सारस, कबूतर चक्रवाक आदि पक्षियों, शिशुमार आदि जलचरों के वध जनित पाप हेतु प्रायश्चित बतलाये गये हैं। आगे रजस्वला चाण्डालादि के स्पर्शास्पर्श एवं अभक्ष्य भक्षणादि के लिये प्रायश्चितों का वर्णन किया है।

२९वें अध्याय में विष्णुस्मरण को सबसे बड़ा प्रायश्चित बतलाया है। इस अध्याय में विष्णुस्मरण के विविध फलों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

३०वें अध्याय में ऋषियों द्वारा यममार्ग के प्रति प्रश्न किये जान पर सूत ने यममार्ग का वर्णन किया है तत्पश्चात पापभोग समाप्तिविषयक जिज्ञासा किये जाने पर पापभोगों का विस्तार से वर्णन है।

३१वें अध्याय में संसार वासना का छेदन करने हेतु संसार के स्वरूप का वर्णन किया गया है, आगे बत्तीसवें अध्याय में ऋषियों की मोक्षोपायविषयक जिज्ञासा का सूतजी ने तद्विषयकयउपायों की चर्चा करते हुए समाधान किया है।

तैतीसवें अध्याय में नारायण की संतुष्टि के उपायों की विशद चर्चा की है, ३४वें अध्याय में नारायण की महिमा का विशद वर्णन है। आगे पैंतीसवें अध्याय में देवमाली ब्राह्मण का सुन्दर उपाख्यान वर्णित है, जिसने धन की आशा का परित्याग करके भगवद्-आराधन से परमात्मा के परमपद को प्राप्त किया। ३६वें अध्याय में कनिक व्याध का उपाख्यान और विष्णुपादोदक धारण का फल बतलाया गया है।

सैंतीसवें अध्याय में उत्तङ्ककृत नारायणस्तोत्र, यज्ञध्वजोपाख्यान एवं इन्द्र बृहस्पति संवाद के माध्यम से विष्णुमन्दिर परिक्रमा की महिमा बतलायी है, अन्तिम ३८वें अध्याय में युग माहात्म्य वर्णन कलिस्वरूपवर्णन के साथ कलियुग में हरिभक्ति की महिमा का प्रतिपादन किया गया है।

बृहन्नारदीय पुराण के महत्त्वपूर्ण आख्यान

(१) मार्कण्डेय उपाख्यान– बृहन्नारदीय पुराण के चौथे पांचवे अध्याय में मार्कण्डेय का दिव्य चरित्र वर्णित है। भक्ति के बिना विधिपूर्वक किये गये कर्म भी व्यर्थ हो जाते हैं, इस बात को बतलाने के लिए देवर्षि नारद ने सनत्कुमारों को ये चरित्र सुनाया है। मृकण्डु नाम के महामुनि ने महातीर्थ शालिग्राम क्षेत्र में घोर तपस्या की जिससे भयभीत होकर सारे देव क्षीरसागर पर नारायण की शरण गये, नारायण देवताओं को अभय देकर मृकण्डुमुनि को दर्शन देने हेतु पहुँचे, समाधिस्थ मृकण्डु ने अपने अन्तस्थित भगवान् के स्वरूप को अदृश्य देख जब आँखे खोली तो सम्मुख साक्षात् नारायण को उपस्थित पाया, और रोमाञ्चित होकर साष्टाङ्ग नमन किया। भगवान् द्वारा वर माँगने की बात कहने पर मृकण्डु ने कहा कि आप मेरे पुत्र बनकर आयें इस पर भगवान् तथास्तु कहकर अन्तर्हित हो गये, कालान्तर में भगवान् स्वयं मृकण्डु के यहाँ मार्कण्डेय के रूप में अवतरित हुए।

मार्कण्डेय शान्त, दान्त, सर्वतत्त्वार्थकोविद, महाज्ञानी, सूर्य जैसे तेजस्वी हुए, उन्होंने भगवत् प्रसन्नता के लिए घोर तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें पुराणसंहिता करने की शक्ति प्रदान की, मार्कण्डेय चिरजीवी एवं महाभागवत हुए, अपना प्रभाव दिखाने

के लिए प्रलयकाल में भी उन्हें नष्ट नहीं किया। चमत्कृत मार्कण्डेय ने भगवान् की स्तुति की, विष्णु ने प्रसन्न होकर कहा कि मै। सर्वदा संसार में भगवद् भक्तों की रक्षा करता हूँ एवं भगवत् भक्त सबकी रक्षा करते हैं, मार्कण्डेय द्वारा पूछने पर भगवान् ने भगवद् भक्तों के सर्वभूतहितकारित्व अनसूयत्त्व एवं अमत्सरत्व आदि श्रेष्ठ गुणों की चर्चा की। मार्कण्डेय भागवतों के श्रेष्ठ गुणों से विभूषित होकर शालिग्राम महाक्षेत्र में घोरतप करते हुए सुदीर्घ काल के उपरान्त निर्वाण को प्राप्त हुए।

(२) **गालवऋषि-भद्रशील-आख्यान-** बृहन्नारदीय पुराण के २१वें अध्याय में भगवान् नारायण के अत्यन्त प्रिय व्रत एकादशी की महिमा बतलायी गई है, महापाप या अतिपाप व्यक्ति भी एकादशी को निराहार रहकर भगवान् के परम पद को प्राप्त कर सकता है इसे बताने के लिए यह आख्यान सुनाया है, - नर्मदा के तट पर पुण्याश्रम में सत्यपरायण गालव नाम के मुनि हुए पूर्वजन्म का स्मर्ता नारायण का अनन्य भक्त भद्रशील नाम का पुत्र हुआ, वो बाल्यावस्था से ही विष्णुप्रतिमा बनाकर पूजा करता, एवं अपने मित्रों को नित्य विष्णुपूजा एवं एकादशी व्रत करने को प्रेरित करता था। पुत्र की भक्ति देखकर चमत्कृत गालव ने शैशवावस्था में भी तुम्हारी धर्मबुद्धि कैसे हुई ? यह प्रश्न पूछा; इस पर उसे अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्तको सुनाया, उसन पिता से कहा कि मैं पूर्वजन्म में सोमवंशीय दत्तात्रेय का शिष्य, धर्मकीर्ति नाम का राजा था, मैंने नौ हजार वर्ष तक धर्माधर्म करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य किया। कालक्रम से ऐश्वर्यमद से कुसङ्ग को प्राप्त होकर अनेक अधर्म कार्य किये जिससे मेरे पूर्वार्जित पुण्य नष्ट हुए मेरे प्रभाव से प्रजा के भी अधार्मिक होने पर मुझे उसका भी षडांश पाप प्राप्त हुआ। एक बार मैं सेना के साथ शिकार करने गया वहां अनेक मृगों का शिकार करने के उपरान्त भूख प्यास से व्याकुल सेना से बिछुड़कर थका हुआ एकाकी नर्मदा तट पर पहुँचा, स्नान करे विश्राम किया किन्तु क्षुधा तृषा से पीड़ित ही था कि सायङ्काल के समय एकादशी व्रत करने वाल लोग वहाँ एकत्रित हुए मैंने भी उनके साथ जागरण किया, भूखे-प्यासे होने के कारण मरण को प्राप्त हुआ, मुझे यमपुरी ले जाया गया वहां पर धर्मराज के द्वारा पूछे जाने पर चित्रगुप्त ने बतलाया कि अतिशय पापी होने पर भी यह एकादशी का व्रत एवं जागरण करते हुए मृत हुआ अतः इसके सारे पाप भस्म हो चुके हैं इतना सुनते ही धर्मराज ने मुझे साष्टाङ्ग दण्डवत कर भक्ति भाव से मेरी पूजा की, और अपने दूतों को बतलाया कि विष्णु भक्तिरत जितेन्द्रिय एकादशी व्रत करने वाले भगवत्सङ्कीर्तन में लगे भक्तों को तुम लोग भूलकर भी मत लाना। उसके बाद मुझे विष्णुलोक भेज दिया गया, करोड़ों कल्पों तक वहाँ रहने के उपरान्त शेष पुण्य से स्वर्ग के भोग भोगने के बाद विशुद्ध ब्राह्मणकुल में आपके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। और इसी जन्मान्तरीय संस्कार के कारण विष्णुपूजा एवं एकादशी व्रत के प्रति मेरी अगाधनिष्ठा है, और मैं अन्य बालकों को भी प्रेरित करता रहता हूँ, पुत्र के ये वचन सुनकर गालव भी अतिप्रसन्न हुए और अपने पुत्र को हरिपूजा का विधान बतलाया।

(३) देवमाल्युपाख्यान– बृहन्नारदय पुराण के तैतीसवें अध्याय में देवाधिदेव जनार्दन की महिमा वर्णन के अन्तर्गत यज्ञमाली -सुमाली का पवित्र चरित्र वर्णित है। रेवत देश में देवमाली नाम के एक अत्यन्त वेदपारग विद्वान् हरिभक्त परयाण होने पर भी, स्त्री-पुत्र मित्रार्थ धनार्जन करने के लोभ में निषद्ध वस्तुओं का विक्रय और चाण्डालादि से भी प्रतिग्रह लेने लगे। उनके यज्ञमाली और सुमाली नाम के दो पुत्र हुए। एक बार ब्राह्मण जब अर्जित प्रभूत धन की गणना कर रहे थे तब उनके मन में आया इतना धन अर्जित करने पर भी मेरी तृष्णा नहीं गई, मेरी सारी इन्द्रियां जीर्ण हो गई, लेकिन तृष्णा बढ़ती ही जा रही है, शाश्वत सुख चाहने वाले व्यक्ति को निश्चय ही आशा और तृष्णा का परित्याग करना चाहिए, आज के बाद में धर्मकार्य में प्रवृत्त होकर अपना परलोक साधूँगा। उसने अर्जित धन के चार भाग किये जिनमें से दो भाग अपने दो पुत्रों में बांट दिये, शेष धन से गङ्गा तट पर अनेक वापी, कूप, तडाग, देवगृहों का निर्माण एवं अन्नदान किया, तदुपरान्त तप करने के लिए बद्रिकाश्रम चला गया, वहाँ महान् तपस्वी समाधिगुण युक्त 'जानन्ति' नामक महात्मा के पास पहुँचकर उनका साष्टाङ्ग दण्डवत पूर्वक पूजन अर्चन कर ज्ञानोपदेश करने की प्रार्थना की। महात्मा ने हंसते हुए संसार मुक्ति का उपाय बतलाया, ब्राह्मण देवमाली ने मैं कौन हूँ ? मेरा कर्म क्या है ? मेरा जन्म क्यों हुआ है ? इत्यादि विषयों का विचार करने पर भी जब कोई निश्चय नहीं हो सका तो महात्मा 'जानन्ति' से पुनः मार्गदर्शन की प्रार्थना की, तब महात्मा ने बताया कि 'मेरा' यह मनुष्य की सबसे बड़ी भ्रान्ति है 'अहंकार' मन का धर्म है न कि आत्मा का। जात्यादि शून्य, निर्गुण अरूप, अप्रतर्क्य, तथा प्रकाशमय आत्मा का नाम या क्रिया कैसे हो सकती है; स्वयं प्रकाश अनन्त और अक्रिय का जन्म कैसा; वह तो ज्ञानैकवेद्य है 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्य ही मोक्ष के साधन हैं। इस उपदेश के बाद अहं 'ब्रह्मास्मि' का साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त किया।

आगे ३४वें अध्याय में देवमाली के पुत्र यज्ञमाली - सुमाली का आख्यान है। ब्राह्मण देवमाली के ज्येष्ठ पुत्र यज्ञमाली ने अपने पिता की सम्पत्ति के दो भाग कर एक भाग छोटे भाई सुमाली को दिया, किन्तु उसने कुसङ्ग एवं व्यसनों में पड़कर सारा धन नष्ट कर दिया। बाद में चोरी कर वेश्यागमन भी करने लगा; उसको इस प्रकार पाप कर्मरत देखकर बड़े भाई ने जब रोकना चाहा तब उसे मारने के लिए उसने खड्ग निकाल लिया, तब लोगों ने कुपित होकर उसको बन्धन में डाल दिया, यज्ञमाली ने भ्रातृ स्नेह के कारण उसको छुड़ाकर अपने धन का आधा भाग उसको पुनः दिया, उसने पुनः नाना दुर्व्यसनों में नष्ट कर दिया, और राजा के भय से वन में रहने लगा, इधर यज्ञमाली अपने धन का धर्म में व्यय करते हुए विष्णु सेवा में तत्पर हुआ। कालान्तर में दोनों का मरण एक साथ ही हुआ, जहाँ पुण्यात्मा ज्येष्ठभ्राता को विष्णुपार्षद दिव्यधाम ले जाने लगे वहीं पापात्मा कनिष्ठ भ्राता सुमाली करुण क्रन्दन करता हुआ यमदूतों द्वारा नरक की ओर ले जाया जाने लगा अपने भाई के कष्ट देखकर यज्ञमाली ने जब दया से द्रवित होकर जब उसके उद्धार का

उपाय पूछा तब भगवान् के पार्षदों ने बताया कि तुम्हारा पूर्वजन्म का बहुत बड़ा पुण्य है। पूर्वजन्म में तुम विश्वम्भर नामक वैश्य थे। व्यापार कर्म से विरत रहने के कारण तुम्हारे माता-पिता एवं बन्धु बान्धवों ने तुम्हारा परित्याग कर दिया, दैवयोग से भूखे-प्यासे भटकते हुए तुम हरिमन्दिर को प्राप्त हुए, वहाँ वृष्टिजनित कीचड़ को दूर करने के लिए उसे चारों तरफ मन्दिर की दीवारों पर फेंक दिया, दिनभर भूखे रहने के बाद रात्रि में सर्पदंश से तुम्हारी मृत्यु हुई, मन्दिर लेपन जनित पुण्य से तुम्हारा विप्रकुल में जन्म होकर हरिभक्ति प्राप्त हुई जिसके प्रभाव से तुम करोड़ों कल्पों तक हरिलोक में वास करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त करोगे। अपने इस पुण्य में से गोचर्म मात्र भूमि के लेपन का पुण्य अपने भाई को देकर उसका उद्धार कर सकते हो, यज्ञमाली ने प्रसन्नता से अपने भ्राता को पुण्यदान करके उसका उद्धार किया, दोनों दिव्य विमान में बैठकर दिव्यधाम को गये। अकस्मात एकबार भी की गई विष्णु पूजा भवबन्धन से मुक्त कर देती है।

इस प्रकार बृहन्नारदीय पुराण में विष्णुभक्ति की महिमा को अभिव्यक्त करने वाले सगरोपाख्यान अंशुमदुपाख्यान, सौदासोपाख्यान, बलिदैत्योपाख्यान, वामन उपाख्यान, भगीरथोपाख्यान, सुमत्युपाख्यान, कनिक व्याधोपाख्यान, यज्ञध्वजोपाख्यान, आदि अनेक उपाख्यान आये हैं जिसमें भगवान् नारायण की विविध उपासनाओं की महिमा प्रकट हुई है।

बृहन्नारदीय पुराण का धार्मिक आध्यात्मिक महत्त्व

बृहन्नारदीय पुराण एक साम्प्रदायिक पुराण है जिसमें विष्णुभक्ति से सम्बन्धित समस्त विधाओं की चर्चा है कलिकाल में हरिभक्ति की महिमा को प्रदर्शित किया गया है इस ग्रन्थ का आरम्भ एवं विराम दोनों ही हरिभक्ति की महिमा से हुआ है, भागवद्धर्मों से सम्बन्धित विविध बातें इसमें वर्णित हैं, एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा जैसी प्रमुख विष्णुप्रिय तिथियों से सम्बन्धित व्रतों के विधान से मासव्रत हरिपंचकव्रत, ध्वजारोपणव्रत, आदि की विशेष चर्चा की गई है, भक्ति का प्राधान्य होने पर भी ज्ञान की प्राप्ति मुक्ति हेतु स्वीकार की गयी है, दोनों के सम्यक् समन्वय से ही आत्यन्तिक मोक्ष बतलया गया है, आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए सदाचारों पर बल दिया गया है।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व

अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति ही धर्म का उद्देश्य है। समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा से ही ऐहिक उन्नति एवं शान्ति सम्भव होती है, वेद सम्मत वर्णाश्रम व्यवस्था जो भारतीय संस्कृति का एक प्रधान अङ्ग है उस पर जोर दिया गया है, समस्त वर्ण एवं आश्रमियों के धर्म आचार एवं कर्तव्यों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। देवकार्य के साथ-साथ श्राद्धादि पितृकार्य का भी विचार किया गया है, साथ ही व्रतदानादि की महिमा वर्णित है, उच्च नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए अनेक प्रकार के महापातकों और

उपपातकों की सूक्ष्म चर्चा के साथ उनके प्रायश्चित्त का भी विधान किया गया है। पुरुषार्थ चतुष्टय की चर्चा करते हुए त्रयी के सेवन के साथ तुरीय पुरुषार्थ मोक्ष की विशिष्ट चर्चा की गई है, इस प्रकार भागवद् धर्मों के साङ्गोपाङ्ग उपदेश के साथ समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की चेष्टा की गई है।

बृहन्नारदीय पुराण का पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्त्व

गङ्गातट पर अथवा उपलक्षण से सभी नदियों के तट पर लोगों को कहां वास करना चाहिये इसका स्पष्ट निर्देश इस पुराण में प्राप्त होता है। जिनका पालन करने से निश्चय ही नदियों की सुरक्षा जल प्रदूषणय से बचाव एवं पर्यावरणय का संरक्षण संभव है। गङ्गातीर गर्भ क्षेत्रादि पारिभाषिक शब्द हैं। जिनका स्पष्ट निर्देश बृहन्नारदीय पुराण में प्राप्त होता है। जिसके अनुसार भा.शु. चतुर्दशी को जितने दूर जल व्याप्त रहता है उस प्रदेश को गर्भ संज्ञा दी गयी है। इतने दूर दन्तधावनादि सर्वथा वर्जित है। वहाँ से डेढ़ सौ हाथ की दूरी तक के भाग को तीर कहते हैं। तीर के चारो तरफ एक गव्यूति पर्यन्त स्थान को क्षेत्र कहा गया है।

मुद्गलपुराण

गणेश तत्त्व का प्रतिपादन करने वाले तीन मुख्य उपपुराणों में से मुद्गल पुराण अन्यतम है। जिनमें पहला गणेश-पुराण, दूसरा गणेश भागवत और तीसरा मुद्गल पुराण है। जहाँ गणेशपुराण दो खण्डों में विभक्त ग्यारह हजार से कुछ अधिक श्लोकों वाला पुराण है वहीं गणेशभागवत बारह स्कन्धों में विभक्त इक्कीस हजार श्लोकों वाला पुराण है तथा मुद्गलपुराण इन दोनों पुराणों से भी बड़ा नौ खण्डों में विभक्त तेईसहजार श्लोकों वाला उपपुराण है। इसमें कुल ४२८ अध्याय हैं। मुद्गलपुराण में योगात्मकगणेश की चर्चा है। गणेशपुराण की ही तरह मुद्गलपुराण का भी नाम प्रायः महापुराणों एवं उपपुराणों की सूची में सम्मिलित नहीं है। इस पुराण का नाम बृहद्-विवेक की औपपुराण की सूची में अवश्य प्राप्त होता है।

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वासिष्ठं भार्गवं तथा।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं तथा।।
बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।। (बृहद्विवेक ३)

दुर्भाग्य से गणेशभागवत आज उपलब्ध नहीं है। उसकी कुछ अनुक्रमणिका और परवर्त्ति मराठी के 'चिन्तामणि विजय' जैसे कुछ ग्रन्थों से उसका अस्तित्व होने का प्रमाण मिलता है।

मुद्गल-पुराण में योगमय-गणेश का प्रतिपादन किया गया है। इस पुराण में वर्णित मत्सरासुर, दम्भासुर, क्रोधासुर, कामासुर, लोभासुर एवं मदासुर-ये मनुष्य के अन्तःकरण में रहने वाले षड्रिपु हैं जिनका नाश विश्वव्यापक सर्वशक्तिमान गणेश ने किया, उन्हें शरण आने को विवश किया यह सारा वर्णन वस्तुतः प्रतीकात्मक है, ऐसा सहज प्रतीत होता है। गणेश-पुराण की प्रायः सारी कथाएँ इसमें आयी हैं साथ ही दूसरे कतिपय पुराणों की कथाओं का सम्बन्ध भगवान् गणेश से जोड़कर उन्हें नवीनरूप से परिवर्तन एवं परिवर्धन के साथ उपस्थित किया है।

गणेश देवता की दृष्टि से मुद्गल-पुराण का महत्त्व अनन्य साधारण है। गणेश-पुराण जैसा गणपति तत्त्व का प्रतिपादक उपपुराण रहते हुए भी गणेशतत्त्व का सर्वाङ्गपरिपूर्ण विचार मुद्गल ऋषि ने विशेष विस्तार से प्रस्तुत किया है उनका यह प्रचण्ड लेखन प्रपञ्च उनकी अहोधन्यता को ही प्रकट करता है। इस पुराण के प्रारम्भ में ही शिव, विष्णु

उपाधि वाले ब्रह्म प्रतिपादक पुराणों के रहते हुए मुद्गल पुराण की क्या आवश्यकता थी, इसका उत्तर भी मुद्गल ऋषि ने दिया है। शिव, विष्णु उपाधि वाला ब्रह्म मुख्य नहीं है, क्योंकि वह महावाक्य में प्रतिपादित नहीं है, जब कि गणेश तत्त्व "तत्त्वमसि" इस महावाक्य में ही प्रकट हुआ है। "त्वं पदं नरश्च तत्पदं गजश्च एतयोरभेदात्मको गणेश देहः प्रत्यक्षब्रह्मात्मकत्वात्" इससे प्रत्यक्ष महावाक्य में ही गणेश ब्रह्मरूप है। मुद्गल द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का लेखन विस्तार से मुद्गल पुराण में नौ खण्डों में किया गया है।

अन्य पुराणों की ही तरह नैमिषारण्य नामक प्रसिद्ध तीर्थ में चल रहे ज्ञान यज्ञ में कुलपति शौनक ऋषि की प्रार्थना पर व्यास शिष्य सूत रोमहर्षण द्वारा कही गयी यह कथा है।

इस पुराण में प्रमुख रूप से दक्ष मुद्गल संवाद है। किन्तु मूलरूप से शिव-पार्वती संवाद से प्रकट गणेश माहात्म्य का ही मुद्गल ऋषि ने दक्ष के समक्ष वर्णन किया है। प्रत्येक खण्ड में एक-इस क्रम से भगवान् गणेश के वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्ण-इन आठ अवतारों के विस्तृत कथानक आठ खण्डों में वर्णित है। इन कथानकों में गणेश के परब्रह्म होने की बात आग्रहपूर्वक कही गयी है।

अनेक रूपककथा, स्तोत्र, स्तुति, तीर्थक्षेत्र और पुण्यक्षेत्रों का समावेश भिन्न भिन्न गणेशोपासकों एवं गणेशावतारों के सन्दर्भ में किया गया है।

सम्पूर्ण वर्ष में शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में आने वाली चतुर्थियों की पूजाविधि, उनसे प्राप्त होने वाले फल, उनकी शास्त्रशुद्ध विधि, इन व्रतों के फल प्राप्त करने वाले भक्तों की विस्तृत कथाएं भी दी हैं।

विशेषकर भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न सिद्ध क्षेत्रों के वर्णन प्रसङ्ग में स्वानन्दभुवन (मयूरेश-क्षेत्र) का विस्तार से किया गया वर्णन उस क्षेत्र की लोकविलक्षण ख्याति का परिचायक है।

धूम्रवर्ण गणेश ने स्वयं मुद्गल-पुराण के अन्त में स्पष्ट किया है कि, 'मुद्गल-पुराण के बिना मेरे यथार्थ रूप का ज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि मुद्गल-पुराण से मेरा पूर्ण एवं सर्व प्रकाशक स्वरूप प्रकट हुआ है। गणेश-पुराण की गणेश-गीता की ही तरह साम्प्रदायिक दृष्टि से मुद्गल-पुराण की योगगीता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध है।

नामकरण का अभिप्राय - 'मुद्गल पुराण' यह इस पुराण का नामकरण महामुनि मुद्गल के कर्तृत्व के आधार पर ही किया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। महापुराणों की अपेक्षा ऋषियों के नाम से प्रख्यात उपपुराणों की संख्या बहुत अधिक है। ये ऋषि तत्तत पुराणों के या तो वक्ता हैं या श्रोता। गणेश-तत्त्व का सर्वाङ्गपरिपूर्ण विचार कर मुद्गल ऋषि ने मुद्गलपुराण के रूप में प्रचण्डलेखन क्रम के माध्यम से विशेष विस्तार से प्रस्तुत किया है। इस कारण गणेश विषयक इस पुराण को गणपति-पुराण कहने के बजाय जिनका

जीवन गणपति मय हो चुका है, ऐसे महागाणपत्य मुद्गल का नाम इस पुराण के साथ होना सर्वथा उपयुक्त ही है। यह पुराण मुख्य रूप से दक्षयज्ञ विध्वंस के बाद स्वयं दक्ष के विघ्न निवारण हेतु मुद्गल ऋषि ने सुनाया है। मुद्गल का मुख्यवक्तृत्व होने के कारण इसका नाम मुख्य वक्ता के नाम पर 'मुद्गल-पुराण' रक्खा गया है।

मुद्गलपुराण का देशकाल – पुराणों की ही तरह उपपुराणों का भी मूल विषय निश्चय ही अत्यन्त प्राचीन है। किन्तु पुराणों की भी प्रारम्भ में मौखिक परम्परा रही है ऐसी विद्वानों की मान्यता है। कालान्तर में पुराणों की लिखने की परम्परा आरम्भ होने पर, वेदों की तरह अपौरुषेय श्रुत न होकर अपौरुषेय स्मृत होने के कारण उसमें समय समय पर परिवर्तन परिवर्धन एवं पुनर्लेखन के कार्य होते रहे हैं, इस कारण इनका काल निर्धारण ठीक ठीक करना निश्चय ही कठिन कार्य है।

प्रो. हाजरा ने गणेश पुराण को मुद्गल पुराण के बाद का स्वीकार किया है और विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि गणेश पुराण ११०० A.D. के पूर्व का नहीं हो सकता।

किन्तु प्रो. हाजरा का यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। मुद्गलपुराण वस्तुतः गणेशपुराण के बाद की रचना है। गणेश सम्बन्धी साम्प्रदायिक उपासना परम्परा में यद्यपि दोनों ही पुराण अत्यधिक समादृत हैं किन्तु मुद्गल पुराण बाद का माना जाता है। दोनों पुराणों का आन्तरिक स्वरूप देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मुद्गलपुराण में गणेशपुराण की प्रायः सारी कथाएँ समाविष्ट हे। किन्तु गणेशपुराण में मुद्गलपुराण में वर्णित इतर कथाओं का वर्णन नहीं प्राप्त होता। गणेशपुराण में दो ही खण्ड हैं और लगभग ११००० हजार श्लोक एवं २४८ अध्याय हैं, जब कि मुद्गल पुराण में २३००० श्लोक, नौ खण्ड एवं ४४८ अध्याय हैं। जहां गणेशपुराण में उत्तरार्ध क्रीडाखण्ड में वर्णित गणेशावतार कथाओं में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का प्रभाव दिखता है वहीं मुद्गलपुराण में प्रायः भागवत की शेष स्कन्धों में आयी कथाओं एवं अन्य पुराणों की कथा का स्पष्ट प्रभाव दिखता है।

मुद्गलपुराण के प्रथम खण्ड के १६वें अध्याय में इक्कीस श्लोकों में गणेश पुराण वर्णित 'गणेशगीता' का सार बतलाया गया है, जो मुद्गलपुराण के बाद में होने को सिद्ध करता है। गणेश पुराण के पूर्वार्द्ध में उपासना खण्ड में चतुर्थी तिथि के व्रत की महिमा बतलायी गयी है, वहीं मुद्गल पुराण में न केवल चतुर्थी तिथि की उत्पत्ति, उससे समस्त अन्य प्रतिपदादि तिथियों का उत्पन्न होना, शुक्ल और कृष्ण इन दोनों चतुर्थियों को चैत्रादि प्रत्येक महीने किये जाने वाले व्रतों की कथानकों सहित महिमा का बतलाया जाना निश्चय ही गणेशोपासना के विस्तार की ओर इङ्गित करता है जिससे मुद्गल पुराण के परवर्ति

होने का सङ्केत मिलता है। विभिन्न महीनों में मुद्गल पुराण के पारयण का फल भिन्न भिन्न आख्यानों के माध्यम से बतलाया गया है। जबकि गणेशपुराण में ऐसा विस्तार नहीं है।

मुद्गलपुराण के अन्तिम नवम खण्ड के ४१वें अध्याय में धूम्रवर्ण गणेश स्वयं कहते हैं कि - मुद्गलपुराण के बिना मेरा सच्चा यथार्थ स्वरूप समझ में नहीं आता क्योंकि उसमें उपनिषदों में बतलाए योग स्वरूप को यथार्थ रूप से कहा है। इसी में पूर्ण और सर्वप्रकाशक स्वरूप प्रकट हुआ है। मुद्गलपुराण का यह कथन स्वयं उसको गणेश पुराण के बाद का सिद्ध करता है। इस आधार पर मुद्गलपुराण का रचनाकाल ९०० से ११०० A.D. या उसके पूर्व का भी माना जा सकता है। कारण यह कि प्रो. हाजरा ने मुद्गल पुराण को गणेशपुराण से प्राचीन माना है और उपर्युक्त काल गणेशपुराण का दिया है, अतः ९०० A.D. से पूर्व का भी हो सकता है। शङ्कराचार्य जी के समय से पञ्चोपासना का प्रचलन हुआ, ऐसा माना जाता है। किन्तु मुद्गलपुराण में भी कई जगह पञ्चदेवों की चर्चा एक साथ आयी है (मु.पु. प्र.ख.अ. ११, ष.ख. अ. ६ आदि) किन्तु यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति और सूर्य का पञ्चदेवों में समावेश है और गणेश को परब्रह्म रूप में वर्णित किया है। कालान्तर में ब्रह्मा की पूजा बन्द होने पर परब्रह्म रूपी गणेश का उनके स्थान पर समावेश कर लिया गया ऐसा प्रतीत होता है। शङ्कराचार्य का काल मठ की परम्परा के अनुसार न मानकर आधुनिक विद्वानों ने जो स्वीकार किया है वह ७वीं शताब्दी है। अतः मुद्गलपुराण उसके पूर्व का होना चाहिये।

मुद्गलपुराण की रचना किस स्थान पर हुई यह प्रश्न विचारणीय है। जैसा कि मुद्गलपुराण में कहा गया है कि यज्ञ विध्वंस के बाद शोकाकुल दक्ष को विघ्नराज के स्मरण द्वारा शोक-निवृत्ति और कार्यसिद्धि का उपाय बताते हुए गणेशचरित्र को पूर्णरूपेण उद्घाटित करने वाला यह पुराण सुनाया है। दक्ष का यज्ञस्थल हरद्वार के समीप कनखल रहा है इसके पूर्व दक्ष का कैलास जाना, वहाँ शिव द्वारा सम्मान में न उठने से रुष्ट होना आदि वर्णन भी पुराणों में प्राप्त होता है। संहितात्मक स्कन्दपुराणान्तर्गत 'मानस-खण्ड' (अ. १७५/श्लोक ३१-३३) में प्राप्त वर्णन के अनुसार नलपर्वत से निर्गत लम्बसीमा और पुलस्त्य द्वारा आहूत कैलास से प्रादुर्भूत शारदा नदी का सङ्गम होता है, वहाँ जहाँ करोड़ों पापों से छुटकारा मिल जाता है दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया था।

इसी मानसखण्ड के १७६वें अध्याय में मुद्गल द्वारा आहूत विष्कम्भ पर्वत से निसृत जटागङ्गा (मौद्गलीया) का शारदा नदी के साथ सङ्गम का वर्णन है। १७७वें अध्याय में यही मुद्गल के आश्रम मं छायाक्षेत्रेश्वर शिव ने बटुरूप में आकर उनसे जलयाचना की थी और उनके सामर्थ्य की परीक्षा ली थी। बटु को वहीं ठहरने का आश्वासन देकर शिव की तपस्या कर मुद्गल अपने आश्रम पर इस जटागङ्गा को लाये थे और शिव को तृप्त

किया था। शिव से वरदान प्राप्त कर मोक्ष लाभ भी प्राप्त किया था। यहाँ मुद्गल के वैकुण्ठ धाम जाने की बात कही गयी है। भागवत के अनुसार ये भर्म्याश्व के पाँच पुत्रों में से एक ब्राह्मणों के मौद्गल्य वंश के जनक, दिवोदास और अहल्या के पिता शाकल्य के शिष्य मन्त्रकृत् ऋषि थे। (भा. ९/२१/३१-३४)

मानस खण्ड के अनुसार मुद्गल सर्वधर्मज्ञ, वेद वेदान्त के ज्ञाता सर्वातिथि प्रपूजक महान् तपस्वी थे। (मा.ख. १७०/६-७)

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कैलास के समीप मुद्गल के आश्रम के होने, दक्ष के वहां अश्वमेध यज्ञादि करने और पूर्व में भी उस क्षेत्र में आते जाते रहने से मूलरूप से यह पुराण इसी क्षेत्र में कहा गया होगा।

इस पुराण के कथन का जो दूसरा संभावित क्षेत्र हो सकता है वह है दण्डकारण्य का मयूरेश्वर क्षेत्र। इस क्षेत्र में भी मुद्गल ऋषिका आवागमन होता रहा है। यहीं एक किरात ने उनकी कृपा से गणेशाराधन कर ऋषित्व प्राप्त किया था। जो भ्रुशुण्डी के नाम से विख्यात महान् गाणपत्य हुए। गाणपत्य सम्प्रदाय के आद्यपीठ के रूप में विख्यात मयूरक्षेत्र भूस्वानन्दभुवन जिसकी चर्चा ब्रह्मपुराण (३/३७-३८) में भी आयी है। मुद्गल पुराण के षष्ठ-खण्ड में लगभग चालीस अध्यायों में सर्वाधिक इस क्षेत्र की उत्पत्ति, महिमा, उपासना फल वगैरह बतलाया गया है इसके वक्ता भी मुद्गल के प्रिय शिष्य भ्रुशुण्डी है। अतः इस स्थान से विशेष लगाव होने से ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्गल पुराण की रचना इस स्थान पर हुई होगी।

संस्करण तथा पाण्डुलिपि - शक सं. १८२२ सन् १९०० में कुरुन्दवाड राज संस्थान से वहाँ के राजा गणपति हरिहर पटवर्धन जी ने प्रकाशित कराया था। आ. ९" x १३" पृ. ३०७ खण्ड ९, अध्याय ४२८ श्लोक २३००० संस्कृत टीका सहित।

पाण्डुलिपि

१. मयूरेश मन्दिर ग्रन्थ संग्रह पुणे से ४० मील लगभग मोरगांव, महाराष्ट्र।
२. गं.ना. मुजुमदार, व्यक्तिगत ग्रन्थ संग्रह १८७ कस्बा पेठ, पुणे ११।
३. गोयनका पुस्तकालय ललिता घाट, वाराणसी।
४. कै. चिन्तामणि शा. बेहरे संस्थापक धनधान्येश्वर संस्कृत पाठशाला। इनके व्यक्तिगत संग्रह में (वर्तमान में पता नहीं) रतनफाटक, वाराणसी।
५. सरस्वती भवन पुस्तकालय सं.सं.वि.वि. वाराणसी क्र. १५९८६ आकार ९.६" x ४.३" देवनागरी (६०, ६४-६५, ६७, १०५) अपूर्ण हस्तलिखित विवरण पञ्जिका ४ भाग पृ. १७६।

६. क्र. १५१२६ सरस्वती भवन सं.सं. वि.वि. (१-१० १००-१०७, १०६, १११-११५, १४२-१५१, १५३ १५५-१६१, ३-१२६, ११६-१३४ पत्र क्र.) आकार १४.४ x ६.४ पंक्ति १० अक्षर ३७ लिपि देवनागरी श.सं. १७१३ अपूर्ण।

मुद्गल पुराण की कथा वस्तु - (प्रथम खण्ड) इस खण्ड में कुल तिरपन अध्याय हैं जिनमें भगवान् गणेश के वक्रतुण्डावतार की कथा वर्णित हैं। सर्व प्रथम सर्वतंत्र स्वतंत्र भगवान् वेदव्यास ने परब्रह्म स्वरूप सर्वसिद्धिप्रदायक बुद्धि प्रकाशक नरकुञ्जररूप श्रीगणेश को वन्दन कर मङ्गलाचरण किया है। तत्पश्चात् विष्णु-शङ्कर, सूर्य, शक्ति, नरनारायण देव, महर्षि, महात्मा इन सभी के पुराणज्ञान की सिद्धि हेतु शरण जाकर पुराण कथन प्रारम्भ किया है।

नैमिषारण्य में कलिदोषनाशक पुराण श्रवण करने की इच्छा से एकत्रीभूत शौनकादि महात्माओं के समक्ष व्यास द्वारा कथित सभी पुराणोपपुराण सुनाने का आश्वासन व्यास शिष्य रोमहर्षण सूत ने दिया है। सर्वसामान्य जन के कल्याण के लिये आपने जो बुद्धि पूर्वक निश्चय किया हो वह आप हमें सुनायें ऐसा शौनकादि द्वारा निवेदन करने पर सूत जी ने यह सारा प्रसङ्ग इस प्रकार सुनाया है।

अध्याय १ से अध्याय ५ तक - प्रथम अध्याय में अपने यज्ञ ध्वंस से शोकाकुल दक्ष को मुद्गल ऋषि ने विघ्नराज का स्मरण करने को कहा है। दूसरे अध्याय में कैलास पर शिवदर्शन हेतु पधारे देव-गन्धर्वादि के बीच शिव द्वारा दक्ष का स्वागत न किये जाने और दक्ष द्वारा शिवनिन्दा तथा नन्दीश्वर से उसके विवाद की चर्चा है। तीसरे अध्याय में नारद के कहने पर दक्ष द्वारा बृहस्पतिसव यज्ञ का किया जाना, उसमें शिव को आमंत्रण न देना, शिव के मना करने पर भी सती का यज्ञ में जाना और शिव का अपमान देख यज्ञ कुण्ड में देहत्याग करना वर्णित है। चौथे अध्याय में संतप्त शिव द्वारा नारद के कहने पर विघ्नराज का स्मरण, उनका सिद्धि बुद्धि सहित शिव को दर्शन, सती का हिमालय कन्या पार्वती के रूप में जन्म लेकर शिव को प्राप्त करने का वरदान एवं शिव का दक्ष के शिरच्छेद सहित यज्ञ विध्वंस और सभी देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर दक्ष को अजमुख करना और दक्ष के द्वारा शिव स्तुति पूर्वक सर्वमान्य होने का वर प्राप्त करने की बात कही गयी है। पाँचवें अध्याय में मुद्गल ऋषिने शिव-पार्वती-संवाद से प्रकट गणेश माहात्म्य की कथा सुनानी प्रारम्भ की है।

अध्याय ६ से अध्याय ११ तक - छठे अध्याय में ब्रह्म माया का स्वरूप बताने के बाद, स्वेच्छा से उत्पन्न प्रकृति-पुरुष द्वारा तपस्या और गणेश की आज्ञा से उनके द्वारा सृष्टि करने का वर्णन किया है। सातवें अध्याय में सत्वादि, शब्दादि तत्त्वों की उत्पत्ति और उनके द्वारा गणेश स्तुति आठवें में उनको भक्ति, निर्विघ्नता का वरदान, नौवे अध्याय में

गणेश द्वारा अपने निश्वास से वेदों को प्रकट किया जाना, वेदस्तुति और अष्टा प्रकृति निर्माण पूर्वक ब्रह्माण्ड का विस्तार किया जाना, दसवें में विराट् पुरुष द्वारा गणेश स्तुति और ब्रह्माण्ड की रचना तथा ग्यारहवें अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति एवं सूर्य इन पञ्चदेवों की उत्पत्ति उनको गणेश द्वारा कार्य, स्थान और परमेश्वरत्व दिये जाने का वर्णन है।

अध्याय १२ से अध्याय १६ तक - बारहवें अध्याय में गणेश द्वारा उत्पन्न किये गये पञ्चदेवों के मन में मत्सर भाव आना, तेरहवें अध्याय में विष्णु और ब्रह्मा का परस्पर सामर्थ्य परीक्षण शिव स्तुति और शिव का उन्हें वरदान देना, चौदहवें अध्याय में सूर्य एवं शक्ति का त्रिदेवों के पास आना और सभी का गणेश ध्यान, पन्द्रहवें अध्याय में वक्रतुण्ड द्वारा पांचों देवताओं को माया मुक्त कर, उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर अपने जैसा मान्य होने का वर देना तथा सोलहवें अध्याय में गणेश-गीता का इक्कीस श्लोकों में सार सुनाकर ज्ञान देने और परस्पर भेदभाव से मुक्त होने का वर्णन है।

अध्याय १७ से अध्याय २२ तक - मोहशून्य पाँचों देवताओं द्वारा गुणमय होकर भी स्वयं के ब्रह्मरूप होने के बारे में पूछे जाने पर भगवान् गणेश ने स्वयं के ही क्रीडार्थ प्रकट होने की बात कहकर उनसे अपना अभेद बताया है। यहीं शिव ने गणेश के आठ अवतारों का उल्लेख कर, पार्वती को पतिरूप में शिव के प्राप्त होने का कारण एवं गणेश ध्यान भी बतलाया है। आगे के पाँच अध्यायों में मुद्गल का अपना इतिहास वर्णित है जिसमें मुद्गल की तपस्या, दुर्वासा द्वारा परीक्षा, अङ्गिरा ऋषि के आश्रम में जाकर ब्रह्मस्वरूप विषय की जिज्ञासा, एकाक्षरी गणेश मन्त्र से हजार वर्ष तक तपस्या, गणेश दर्शन, मुद्गल द्वारा स्तुति, मुद्गल को पूर्ण भक्तोत्तम होने का वरदान देकर गणेश का अन्तर्ध्यान होना वर्णित है।

अध्याय २३ से अध्याय २७ तक - अध्याय तेईस से गणेश के प्रथम वक्रतुण्डावतार की चर्चा शुरू होती है। दक्ष की प्रार्थना पर मुद्गल ने यह आख्यान सुनाया हैं। इन्द्रपद प्राप्ति महोत्सव में कामातुर इन्द्र के रम्भा को देख वीर्यस्खलन से मत्सरासुर की उत्पत्ति, शुक्राचार्य से पञ्चाक्षरी मन्त्र प्राप्त कर शिव से अभयदान प्राप्त करना, चौबीसवें अध्याय में दैत्यों की संगति से देव विजय की इच्छा जागृत होना, पचीसवें अध्याय में शुक्राचार्य द्वारा राज्याभिषेक और सैन्य संगठन, छब्बीसवें अध्याय में दैत्यों के साथ पाताल-विजय और शेषनाग से सन्धि, सत्ताइसवें अध्याय में सभी दिग्पालों पर विजय प्राप्त कर स्वर्ग पर आधिपत्य स्थापित करने का वर्णन है।

अध्याय २८ से अध्याय ३२ तक - इन अध्यायों मे कश्यप, ब्रह्मादि सहित विष्णु का कैलास गमन, मत्सर का शिव के साथ युद्ध, शिव को बन्दी बनाया जाना, वैकुण्ठ और कैलास में अपने पुत्रों को प्रतिष्ठित कर अधर्म पूर्वक शासन, उद्विग्न देवताओं को योगिराज

दत्तात्रेय द्वारा एकाक्षर-मन्त्र का उपदेश और वक्रतुण्ड-गणेश द्वारा मत्सरासुर के नाश का आश्वासन पूर्वक दर्शन देना वर्णित है।

अध्याय ३३ से ३९ तक - इन अध्यायों में वक्रतुण्ड का मत्सरासुर पर आक्रमण, प्रह्लादादि दैत्यों का पराभव, मत्सर के पुत्रों सुन्दर-प्रिय और विषम-प्रिय इनका युद्ध में मारा जाना, मत्सर का स्वयं युद्धार्थ आना, उसे गणेश के स्वरूप का साक्षात्कार होना और भक्तिलाभ होने का वरदान देकर गणेश का अन्तर्ध्यान होना वर्णित है।

अध्याय ४० से अध्याय ४५ तक - इन अध्यायों में षडक्षरी मन्त्र से ब्रह्मा की तपस्या, सृष्टि निर्माण, ब्रह्मा के कम्प से दम्भासुर की उत्पत्ति, उसका राज्याभिषेक, गुरु शुक्राचार्य से गणेश के स्वरूप का उपदेश, उसके गणेश की शरण जाकर भक्ति प्राप्त करने का प्रसङ्ग वर्णित है।

अध्याय ४६ से अध्याय ४७ - इन दो अध्यायों में वामन चरित्र वर्णित है। बलि द्वारा गणेश स्मरण के बिना यज्ञ करने के कारण विघ्न बन इन्द्र के भीतर प्रकट होना, इन्द्र की प्रार्थना पर विष्णु का वामन रूप में कश्यप के यहां अवतार ग्रहण करना, षडक्षर मन्त्र से वामन की गणेश आराधना, वामन द्वारा बलि राज्याहरण, पाताल गमन, बलि का यज्ञ पूर्ण होने का वर्णन है।

अध्याय ४७ से ५३ तक - इन अध्यायों में ढुण्ढिराज का चरित्र वर्णित है। यह चरित्र याज्ञवल्क्य ने कौशिक विश्वामित्र को सुनाया है। इसमें आरम्भ में विश्वामित्र और परशुराम की उत्पत्ति, विश्वामित्र का अहङ्कार त्याग कर तप से ब्रह्मर्षित्व प्राप्त करना, ब्रह्मा द्वारा राजा दिवोदास को काशी राज्य देना और शिव का मन्दराचल गमन, काशी के वियोग में व्याकुल शिव की गणेशाराधना, गणेश का ब्राह्मण और विष्णु का बौद्ध बनकर नगरी को मोहित करना, शङ्कर का काशी में पुनरागमन और दिवोदास का मोक्ष, याज्ञवल्क्य द्वारा विश्वामित्र को अहङ्कार-मत्सर त्याग कर गणेशार्पण बुद्धि से गायत्री जप करने की आज्ञा, विश्वामित्र द्वारा गणेशानुष्ठान से साक्षात्कार कर भक्ति प्राप्त करने की कथा बतलायी गयी है। इसी के साथ यह वक्रतुण्डावतार से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की कथा पूर्ण होती है।

द्वितीय खण्ड - द्वितीय खण्ड में गणेश के एकदन्त अवतार चरित्र का वर्णन किया है। दक्ष को मुद्गल ने यह कथा गणेशभक्त महात्मा गृत्समद और दैत्यराज प्रह्लाद के संवाद के माध्यम से सुनाई है।

अध्याय १ से ८ तक - इन अध्यायों में ब्रह्मा द्वारा सृष्टि, सृष्टि कार्य न करने गणेशभक्ति करने की बात कहने पर नारद को ब्रह्मा का शाप, नारायण के मुखारविन्द से गणेशतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर शाप मुक्ति, नारद का गाणपत्य होना, मधुकैटभोत्पत्ति, विष्णु द्वारा गणेश-स्मरण से उनका वध, मनु शतरूपा और उनकी सन्तानों की उत्पत्ति का प्रसङ्ग

वर्णित है। आगे दत्तात्रेय-चरित्र के अन्तर्गत भोगल स्त्री के कथानक द्वारा भोग-मोक्ष वर्णन एवं दत्तात्रेय की गणेशाराधना, शिव का मित्रत्व प्राप्त करने की चर्चा है।

अध्याय ६ से २६ तक - दुर्वासा चरित्र सुनाने के बाद मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत का आख्यान वर्णित है। नारद से गणेश भक्ति की महिमा जानकर प्रियव्रत की राज्य प्राप्ति, उनके पुत्रों, द्वीपवर्णन, भूगोल, सूर्यमण्डलवर्णन, ग्रहस्थ वर्णन, उर्ध्वलोक वर्णन, सप्तपाताल वर्णन एवं गणेश स्वरूप ब्रह्माण्ड का वर्णन पन्द्रहवें अध्याय तक किया गया है। प्रियव्रत के पौत्र नाभि, उनके ऋषभदेव का वर्णन है। ऋषभ देव ने भगवान् शङ्कर से गणेशतत्व का उपदेश प्राप्त कर गाणेशता प्राप्त की यहाँ ऋषभ देव के भाई नव योगेश्वरों के होने और नाभि के सौ पुत्र होने की बात कही गयी है, जब कि भागवतादि में ये सभी ऋषभ के पुत्र एवं भरत के भाई के रूप में वर्णित हैं। आगे भरत के तीन जन्मों की चर्चा है। भरत का मृग रूप में पुलह ऋषि द्वारा गणेशस्तवन सुन कर उद्धार बतलाया गया है। आगे जड़भरत द्वारा राजा रहुगण को तत्त्वज्ञान एवं गणेश तत्त्व का उपदेश और मुक्ति तथा जडभरत को मयूरेश तीर्थ आकर गणेश दर्शन की बात कही गयी है। यहां जडभरत की दस्युगणों से रक्षा गणेश स्मरण से गाणपत्यों ने चोरों को मारकर की है यह विशेष बात है। जबकि भागवत में देवी ने प्रकट होकर यह कार्य किया है। आगे मनु के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के वंश की चर्चा की गयी है। नारद के उपदेश से ध्रुव को गणेशदर्शन, ध्रुव का पौत्र वेन, उसको विप्रशाप, देह मन्थन से पृथु की उत्पत्ति, पृथ्वी दोहन, सौ अश्वमेधयज्ञ, इन्द्र से मैत्री, सनकादिक महात्माओं द्वारा शिव से प्राप्त गणेश-तत्त्व का पृथु को उपदेश और गाणपत्यत्व प्राप्ति, आगे कर्ममार्गी प्राचीनबर्हि को नारद द्वारा ज्ञानोपदेश एवं गणेश माहात्म्य सुनाया जाना तथा उनके विष्णुभक्त पुत्रों द्वारा नारद से गणेशतत्त्व सुनकर मुक्ति प्राप्त करने का वर्णन है। आगे के २८वें एवं उन्तीसवें अध्याय में काश्यप की सृष्टि, मरीची, पुलस्त्य, पुलह, अत्रि एवं वसिष्ठ के वंश का वर्णन किया गया है।

अध्याय ३० से अध्याय ५५ तक - तीसवें अध्याय में पराशर ने गणेशाराधना कर गणेश को पुत्र रूप में प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया है। आगे गजासुर और पराशर पुत्र की उत्पत्ति, गजासुर सैन्य और गजासुर वध, व्यास माहात्म्य, शुकोपाख्यान, गौतम चरित्र, नृसिंह माहात्म्य, वाराह माहात्म्य, च्यवनोत्पत्ति, अग्निमाहात्म्य, च्यवन की तपस्या, भृगुचरित्र एवं च्यवन-माहात्म्य बयालिस अध्याय पर्यन्त वर्णित है। आगे के अध्यायों में प्रह्लाद -गृत्समद संवाद के माध्यम से मदासुर की उत्पत्ति, युद्ध में इन्द्र शिवादि समस्त देवताओं का पराभव, सनकादिक माहात्माओं द्वारा गणेशोपासना का निर्देश और देवताओं द्वारा की गयी आराधना से प्रसन्न होकर गणेश का एकदन्त रूप में प्रकट होकर आश्वासन दिया जाना, नारद से समाचार पाकर मदासुर का युद्ध हेतु आना, एकदन्त के परशु प्रहार से अपनी पराजय स्वीकार कर शरणागति एवं स्तुति करते हुए लौट जाना, तदनन्तर

देवताओं द्वारा एकदन्त की स्तुति और इस दिव्य चरित्र के श्रवण से भुक्तिमुक्ति लाभ का वर्णन किया गया है।

अध्याय ५६ से अध्याय ६२ तक - इन अध्यायों में विशेष रूप से गृत्समद ने प्रह्लाद को महोत्कट विनायक का चरित्र सुनाया है। गौड नगर में शारदा और चित्रकेतु के यहाँ देवान्तक और नरान्तक की उत्पत्ति एवं उत्पात, देवताओं की प्रार्थना पर कश्यप के यहां गणेश का अवतार लेना, वहाँ अनेक सङ्कटों का आना, काशीराज द्वारा गणेश को अपने पुत्र के विवाह में काशी ले आना, वहाँ भी अनेक सङ्कटों का आना, वहाँ काशीराज द्वारा अपने भक्त भ्रुशुण्डि को बुलाकर गणेश का दर्शन देना, उसकी भक्ति से काशीराज का प्रभावित होना, भ्रुशुण्डी चरित्र की विस्तार से चर्चा करने के बाद राजा के सदेह गणेशलोक गमन की चर्चा की गयी है।

अध्याय ६३ से ६४ तक - इन दो अध्यायों में भुक्ति-मुक्ति प्रद गणेश के पुष्टिपति अवतार की चर्चा की गई है। जब शकुनी पुत्र दुर्मति के द्वारा शक्ति की आराधना कर शक्ति को ही अपनी पत्नी बनाने का कुत्सित प्रयास किया गया तब भगवान् ने शिव-पार्वती के घर उनकी प्रार्थना पर पुष्टिपति अवतार लिया। यहाँ सन्त्रस्त शनि के आने और गणेशोपासना से शान्ति लाभ का भी वर्णन है।

अध्याय ६५ से ६६ तक - इन अध्यायों में अगस्त्य चरित्र और उन पर गणेशानुग्रह का वर्णन है। लोपामुद्रा की इच्छा पूर्ण करने हेतु दिलीप के कहने पर अगस्त्य का वातापीके यहां जाना, भोजन में इल्वल के नष्ट होने पर वातापी का समुद्र में छिपना, ब्रह्मा द्वारा समुद्र शोषण हेतु गणेश आराधना करना और समुद्रशोषण सामर्थ्य षडक्षर मन्त्र से प्राप्त कर द्रव्य लाभ होना वर्णित है। प्रसङ्ग वश राधा-कृष्ण के शाप प्राप्ति और गोलोक से आकर शाप मुक्ति हेतु गणेशाराधना का भी वर्णन है।

अध्याय ६६ से ७४ तक - इन पांच अध्यायों में कपिल चरित्र वर्णित है। विष्णु के अवतार कपिल अपने माता-पिता देवहूति और कर्दम को गणेश तत्त्व ज्ञान देकर गङ्गा के दक्षिण तट आए। वहाँ कपिल के दर्शनार्थ पधारे इन्द्र ने विष्णु से प्राप्त चिन्तामणि प्रसन्न होकर उन्हें दे दिया। यह मणि स्वयं गणेश ने विष्णु को दिया था। एक बार ससैन्य आये गणासुर ने चिन्तामणि का चमत्कारी प्रभाव देखकर उसे बलात छीन लिया। कपिल द्वारा गणेशाराधन करने पर उनके पुत्र के रूप में प्रगट होने का वरदान दिया। साथ ही गणासुर को भी उसे मार वह मणि कपिल को देने की बात स्वप्न में कही जिससे रुष्ट होकर जब वह कपिल को मारने के लिये आया तब यज्ञ कुण्ड से प्रकट होकर अपने परशु से शिरच्छेद कर गणासुर का वध किया। कपिल ने भी भगवान् द्वारा प्राप्त उस चिन्तामणि को एकदन्त को समर्पित कर दिया। अन्तिम ७४वें अध्याय में एकदन्त-तीर्थ की महिमा और वहाँ की गयी साधना के फल निरूपण के साथ द्वितीय खण्ड पूर्ण होता है।

तृतीय खण्ड - तृतीय खण्ड में दक्ष-मुद्गल-संवाद से प्रकट व्यास के मुख से श्रुत महोदर चरित्र को सूत जी ने शौनकादि महात्माओं को सुनाया है। इक्यावन अध्यायों में यह गणेश चरित्र वर्णित है।

अध्याय १ से ५ तक - प्रथमाध्याय में बालखिल्य ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर सूर्य ने गणेश स्वरूप बतलाया। दूसरे अध्याय में सूर्य के कश्यप पुत्र होने, गणेश स्मरण के बिना माली सुमाली दैत्यों को मारने से, शिव द्वारा शिरःच्छेद होने, पुनर्जीवन दान, ब्रह्मा से षडक्षर-मन्त्र प्राप्त कर गणेश-भक्त होने का वर्णन है। देवताओं की प्रार्थना पर पार्वती के रूप में शिवजी के पास जाना और वहाँ मोहासुर का उत्पन्न होना, काम को शिव का शाप, गणेशाराधन से प्रद्युम्न के रूप में जन्म लेने का वरदान, पार्वती से षडानन की उत्पत्ति, उसके द्वारा गणेशोपासना से बल प्राप्त कर तारकासुर के वध का प्रसङ्ग इन अध्यायों में विस्तार से वर्णित है।

अध्याय ६ से ११ तक - मोहासुर का शुक्राचार्य से विद्या, संस्कार प्राप्त कर सूर्य की आराधना से सर्व इच्छा प्राप्ति का वरदान, दैत्यों की सत्ता प्राप्त कर ब्रह्माण्ड विजय, धर्मलोप देख, सूर्यकथन से देवताओं द्वारा गणेश की आराधना कर महोदर से मोहासुर के विनाश की प्रार्थना करना, मोहासुर का युद्ध के लिए प्रस्थान, नारद से गणेश-स्वरूप का बोध, विष्णु के माध्यम से महोदर से सन्धि और उनसे भक्ति का वरदान प्राप्त किया जिससे प्रसन्न होकर देवताओं ने गणेश-स्तुति की।

अध्याय १२ से २१ तक - इसके १२वें अध्याय में सूर्यनारायण द्वारा मार्कण्डेय की तपस्या, शङ्कर के वरदान से कल्पान्त तक आयु, नर-नारायण की जन्म कथा और चतुरक्षरी गणेशमन्त्र से हेरम्ब की भक्ति प्राप्त करने की कथा वर्णित है। मार्कण्डेय की इच्छा पर नरनारायण द्वारा माया वर्णन और उसका विस्तार, कालगति, कलियुग, ब्रह्मचर्याश्रम, आश्रमधर्म, वर्णधर्म और देवपितृकर्म का निरूपण मायामोह निवृत्यर्थ किया गया है। आगे मनुपुत्रों और उनके वंशजों के वर्णन क्रम में पहले सूर्यवंशीय राजाओं सुद्युम्न, अम्बरीष, मुचुकुन्द, सगर, भगीरथ (गङ्गावतरण) और राम का दिव्य चरित्र वर्णित है। इसी प्रकार चन्द्रवंश वर्णन क्रम में चन्द्र, बुध, पुरुरवा, आयु, नहुश और ययाति का चरित्र वर्णन किया है। आगे राजा कार्तवीर्य के दिव्य चरित्र का वर्णन किया है। कृतवीर्य द्वारा एकाक्षर-मन्त्र जप से चतुर्थी व्रत करने से पङ्गुतेजस्वी पुत्र का अपरिमित-बल-पराक्रम वाले पुत्र के रूप में रूपान्तरण, दत्तात्रेयोपदेश, कार्तवीर्य का जमदग्नि आश्रम में आना और कामधेनु का बलात् हरण, जमदग्नि का वध, रेणुका का इक्कीस बाणों से भेदन, दत्तात्रेय द्वारा प्रदत्त गणेश-मन्त्र से दोनों का पुनरुज्जीवन और परशुराम द्वारा अपनी प्रतिज्ञानुसार इक्कीस बार क्षत्रिय संहार की कथा वर्णित है। अध्याय २२ से २७ और २८ से ३७ तक सूर्यचन्द्रवंशीय इन राजाओं द्वारा गणेश भक्ति द्वारा परमपद प्राप्ति वर्णित है।

अध्याय ३८ से ४१ – इन अध्यायों में हरिवंश का वर्णन करते हुए भृगु का विष्णु को शाप, माण्डव्य शाप से धर्मराज का विदुर के रूप में जन्म, कौरव पाण्डवों की जन्म कथा, द्यूत क्रीडा, वनगमन और कृष्ण का धर्मयुक्त राज्य का उपाय बतलाने की चर्चा की गयी है।

अध्याय ४२ से ५१ तक – इन दस अध्यायों में गणेश के पूर्णानन्द अवतार का वर्णन है, जो दुर्बुद्धि राक्षस के पुत्र ज्ञानारि का वध करने हेतु हुआ था। विष्णु को ध्यानस्थ देख लक्ष्मी द्वारा आप परमेश्वर होकर किसका ध्यान करते हो ऐसा पूछा जाना, विष्णु द्वारा गणेश माहात्म्य कथन, लक्ष्मी द्वारा गणेशाराधन से गणेश को पुत्ररूप में प्राप्त करने का वरदान प्राप्त करना, दुर्बुद्धि राक्षस के पुत्र ज्ञानारि द्वारा शुक्राचार्य से पञ्चाक्षरी मन्त्र प्राप्त कर शिवराधन से अभय प्राप्ति एवं त्रैलोक्य विजय, विष्णु के आदेश से देवताओं द्वारा दशाक्षरी मन्त्र से गणेशाराधन, गणेश का लक्ष्मी के यहां पुत्र रूप में आगमन और पूर्णानन्द ऐसा नामकरण, ज्ञानारि के पुत्र सुबोध का गाणपत्य रूप में वर्णन, शुकदेव के साथ माँ के गर्भ में रहते सत्सङ्ग, वेदादि द्वारा गणेश के परब्रह्म होने का प्रमाण दिया जाना वर्णित है। सुबोध की गणपति भक्ति देखकर ज्ञानारि का सर्वव्यापी परमात्मा यदि है तो उसे दिखलाओ ऐसा कहकर खड्ग प्रहारपूर्वक मारने के लिये उद्यत होना और गणेश द्वारा ज्ञानारि का वध कर उसकी रक्षा किया जाना वर्णित है। अन्त में महोदर और पूर्णानन्दावतारों की कथा सुनाकर पाण्डवों को श्रीकृष्ण द्वारा षडक्षर मन्त्र दिया जाना, पाण्डवों की राज्य प्राप्ति और गणेश भक्ति वर्णन के साथ तृतीय खण्ड पूर्ण होता है।

चतुर्थ खण्ड – लोभासुर के नाश हेतु देव ब्राह्मणों द्वारा चतुर्थी व्रत किये जाने से गजानन के प्राकट्य की कथा वर्णित है। **अध्याय १ से अध्याय ३५ तक** – प्रथम अध्याय में सृष्टि निर्माण कर काल निर्धारण हेतु ब्रह्माजी के समाधि लगाने पर उनके देह से चतुर्थी तिथि प्रकट हुई। उसके द्वारा गणेशाराधन करने से सर्व तिथियों का मातृत्व एवं गणेश की जन्मतिथि होने का वरदान प्राप्त किया। इस चतुर्थी तिथि के शुक्ल और कृष्ण भाग को गणेश की वरप्राप्ति और वसिष्ठ द्वारा राजा दशरथ को विभिन्न आख्यानों द्वारा अधिक मास सहित चैत्रादि बारह महीनों की दोनों पक्षों की चतुर्थी व्रत की महिमा और व्रत विधान बतलाया गया है। चतुर्थी व्रत से दशरथ को रामादि पुत्रों की प्राप्ति और चतुर्थी व्रत के उद्यापन की विधि का वर्णन किया है।

अध्याय ३६ से अध्याय ४३ – दक्ष द्वारा लोभासुर की कथा पूछे जाने पर कैलास में आये कुबेर को देख पार्वती के लोभ एवं क्रोधाभिनिवेश से उत्पन्न लोभासुर द्वारा शिवाराधन कर ब्रह्माण्ड प्राप्ति का वरदान प्राप्त करना, विष्णु सहित सभी देवताओं की पराजय, रैभ्य द्वारा देवताओं को गणेशाराधना हेतु प्रेरित किया जाना, शङ्कर द्वारा लोभासुर का गणेश महिमा श्रवण और शुक्राचार्य द्वारा अनुमोदन, लोभासुर का गणेश की शरण जाकर

भक्ति का वरदान प्राप्त करना, गणेश स्तवन ये सारे विषय यहाँ वर्णित हैं। **अध्याय ४४ से अध्याय ४८ तक** - इन अध्यायों में सिन्दुरासुर की कथा वर्णित है। भगवान शङ्कर की जँभाई से सिन्दुर की उत्पत्ति, ब्रह्मा की आराधना कर जिसका आलिङ्गन करूं उसकी मृत्यु-ऐसा वरदान प्राप्त करना, ब्रह्मा विष्णु का उसे अपना बताकर छुटकारा पाना, सिन्दुर का शिव के पास जाना, पार्वती का हरण, गणेश स्मरण से पार्वती का मुक्त होना, पार्वती द्वारा शरीर मल से पुरुष निर्माणकर द्वार रक्षार्थ नियुक्त करना, शङ्कर को रोके जाने पर उसका त्रिशूल से शिरच्छेद, पार्वती का क्रोध, अकस्मात वहाँ आये गजासुर का शिरच्छेद कर मस्तक बालक को लगाया जाना, गजासुर का पूर्व वृत्तान्त, भक्तवचनरक्षण और निर्माल्यरक्षणादि का वर्णन किया है। आगे नारद द्वारा शङ्कर के यहां पुत्र रूप से गणेश का जन्म, युद्ध के लिये सिन्दुर का आगमन और गणेश द्वारा विराट्-रूप से उठाया जाना और देवताओं की स्तुति का वर्णन है।

अध्याय ४६ से अध्याय ५२ - इन्द्र के बिना यज्ञ किये जाने पर इन्द्र द्वारा विघ्न निर्माण, पार्श्व और दीपवत्सलिका के यहाँ गणेश का प्राकट्य, मायाशक्ति से परास्त कर विघ्न को अपना प्रमुख गण नियुक्त करना, गणेश का विघ्नराज नामकरण और गजानन-तीर्थ वर्णन के साथ चतुर्थ खण्ड पूर्ण होता है।

पञ्चम खण्ड - पञ्चम खण्ड में नैध्रुव एवं असित इनके संवाद के माध्यम से मुद्‌गल ऋषि ने प्रजापति दक्ष को क्रोधासुर का शमन करने के लिये गणेश द्वारा लिये गये लम्बोदर अवतार की चर्चा है।

अध्याय १ से अध्याय ११ तक - प्रथमाध्याय में शरीर के कष्ट से तप की श्रेष्ठता, दूसरे में वसिष्ठ, विश्वामित्र को क्रोध मुक्त करने हेतु, भस्मासुर और विष्णु द्वारा मोहिनी रूप से उसे मारने की कथा सुनाई। तीसरे अध्याय में मोहिनी रूप से शिव को मोह होने से क्रोधासुर की उत्पत्ति, शम्बर-सुता प्रीति से विवाह, सूर्याराधना से ब्रह्माण्ड-विजय और राज्य-प्राप्ति, चौथे अध्याय में समस्त देवताओं सहित सूर्यलोक भी जीतकर त्रैलोक्यविजय वर्णन आगे के अध्यायों में देवताओं की प्रार्थना पर लम्बोदर रूप गणेश का प्राकट्य, क्रोधासुर से युद्ध, गणेश प्रभाव से शरण जाकर शान्त होना, लम्बोदर की स्तुति और ब्रह्म स्वरूप का वर्णन है।

अध्याय १२ से अध्याय १५ तक - १२वें अध्याय में ब्रह्मा की प्रार्थना पर गणेश का शक्ति रूप में प्रकट होना, १३वें अध्याय में गणेशाराधन कर शक्ति द्वारा बल प्राप्त कर महिषासुर का वध किया जाना, गणेश के पूज्यत्व को लेकर छिड़े विवाद को देखकर शक्ति द्वारा देवताओं पर क्रोधित होकर गणेश की श्रेष्ठता बतलाना, विष्णु और शिव द्वारा अमान्य किये जाने पर गणेश द्वारा दूर्वाङ्कुर से उनका गर्व परिहार, चौदहवें अध्याय में तथा पन्द्रहवें

अध्याय में देवी भक्त सुरथ का जन्मान्तर में सावर्णी मनु होकर नवार्ण मन्त्र से शक्ति की आराधना करने पर शक्ति और विनायक का एक साथ प्रकट होना, दोनों का अभेद देखकर मनु का गणपति-भक्ति करने का प्रसङ्ग वर्णित है।

अध्याय १६ से अध्याय २१ तक - इन अध्यायों में शेषपुत्र गणेश की चर्चा है। ध्यानस्थ ब्रह्मा के निश्वास से मायाकर की उत्पत्ति, विप्रचित्ति दानव द्वारा शुक्राचार्य के आचार्यत्व में उसका राज्याभिषेक, मदोन्मत्त मायाकर द्वारा पातालादि समस्त लोकों को जीतकर शेष को पीडित किया जाना और शेष के गणेशस्मरण किये जाने पर पुत्र रूप में आना १६वें अध्याय में वर्णित है। १७वें अध्याय में सृष्टि-स्थिति-संहार करने के बाद भी शेष रहने के कारण शेष कहलाया जो, ब्रह्माण्ड को धारण करता है। अगले दो अध्यायों में शेष की तपस्या और गणेश की पुत्र रूप में प्राप्ति का वर्णन है। तत्पश्चात् मायाकरासुर से युद्ध और गणेश द्वारा उसके वध की कथा वर्णित है। बाइसवें अध्याय में महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती स्वरूपा शक्ति के पुत्र के रूप में गणेश-जन्म की कथा है।

अध्याय २३ से अध्याय ३९ तक - इन अध्यायों में मुख्यतः महान् गाणपत्य गृत्समद के चरित्र के माध्यम से मुद्गल ने दक्ष को उपासना से सम्बन्धित अनेक बातें बतलायी हैं। इनमें गाणपत्य दीक्षा विधि, गाणपत्य स्वरूप; शमी मदार स्पर्श महिमा और उत्पत्ति, दूर्वाङ्कुर की उत्पत्ति और महिमा, दूर्वा माहात्म्य, तुलसी निषेध, तुलसी को गणेश का वर प्रदान करना, गणेश की मानस और बाह्य पूजा, गृत्समदकृत ब्रह्मणस्पति मण्डल विधान, गणेश द्वारा 'गणानां त्वा' इस मन्त्र का महत्त्व और फल बतलाना, गृत्समद कृत बाह्य और मानस पूजा की साङ्गोपाङ्ग विधि वर्णित है।

अध्याय ४० से अध्याय ४५ तक - इन अध्यायों में मुख्य रूप से ऐल-चरित्र वर्णित है। ४०वें अध्याय में गार्ग्य-ऋषि ने मुद्गल-कपिल-संवाद के माध्यम से गणेश के निजलोक 'स्वानन्दलोक' का वर्णन किया है। आगे चिन्तामणि-गणेश का स्वरूप, भिन्न युगों में गणेश सेवा के प्रकार, गणेश लोक वर्णन से मुद्गल की कृतार्थता, आगे मुद्गल द्वारा दक्ष को गणेश भक्ति का उपदेश, ऐल कृत दूर्वा शमी युक्त पूजा वर्णन, अन्त में ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन सभी देवताओं द्वारा गणेश कीलक से सिद्धिलाभ प्राप्त करना, ऐल का सदेह सपत्नीक गणेश दर्शन कर ज्योतिरूप होना और गणेश पद प्राप्ति का वर्णन है। अन्तिम ४५वें अध्याय में श्रवण फल सहित लम्बोदर-चरित्र को सुनाकर विराम दिया गया।

षष्ठ खण्ड - छठे खण्ड में गणेश के विकट-अवतार का चरित्र वर्णित है। इस खण्ड में कुल पैंतालिस अध्याय हैं।

अध्याय १ से अध्याय ५ - प्रथम अध्याय में मुद्गल ऋषि द्वारा दक्ष प्रजापति को बताया कि किस प्रकार महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती द्वारा आदिमाया से आप किसका ध्यान करती हैं- ऐसा पूछने पर उसने गणेश का मूलस्वरूप स्पष्ट कर उस परब्रह्म स्वरूप

गणेश का ध्यान करती हूँ ऐसा बतलाया। दूसरे अध्याय में शिव के उग्ररूप को एक बार न पहचानने के कारण इन्द्र ने वज्र प्रहार कर दिया। जिससे शङ्कर क्रुद्ध हुए और उनके तीसरे नेत्र से प्रकट अग्नि राक्षसाकृति होकर शिव की आज्ञा से समुद्र में रहने लगा। धर्मलोप करने वाला त्रैलोक्याधिपति होने का वरदान प्राप्त किया। नारद के कथन पर जब वह जलन्धर पार्वती का हरण करने पहुँचा तब उनके द्वारा गणेश का स्मरणकरने से गणेश कृपा से विष्णु का स्मरण हुआ, वृन्दा का पातिव्रत्य नष्ट करने के लिये स्वयं श्रीविष्णु चल पड़े। वृन्दा ने भी विष्णु का यह कार्य देखकर, आप शिला हो जाँय ऐसा शाप दिया। आगे विष्णु ने गणेशाराधन क्रमशः सिद्धि क्षेत्र एवं दण्डकारण्य में तप कर सुदर्शन चक्र व वृन्दा को वश करने की शक्ति प्राप्त की। विष्णु के वृन्दा के साथ रममाण होने पर शिव ने जालन्धर का वध किया। वृन्दा शोकाकुल हुई, कामयुक्त विष्णु के वीर्य से कामासुर उत्पन्न हुआ। वृन्दा के तुलसी रूप में परिणत होने पर शालग्राम से विवाह हुआ। कामासुर शिवाराधन से अभय प्राप्त कर राजा बना। उसके अधर्म से धर्म नष्ट होने लगा, देवताओं के अधिकार छिन गये। तब मुद्‌गल ऋषिने उन्हें शिव की तपस्थली मयूरेश्वर क्षेत्र में जाकर गणेशाराधना करने को कहा।

अध्याय ६ से अध्याय ३० तक - छठे अध्याय में प्रलयकाल में मयूरक्षेत्र में परब्रह्म के शयन करने, उनके निःश्वास से ॐकार समेत वेदों तथा पञ्चदेवों के प्रकट होने की कथा वर्णित है। साथ ही इस क्षेत्र की महिमा का श्रवण गणेश भक्त भ्रुशुण्डि से करने का गणेश का आदेश भी प्राप्त होता है। सातवें में आनन्दाख्य क्षेत्र वर्णन, ८वें में परिवार देवताओं का वर्णन, मयूरेश द्वार यात्रा, मयूरेश द्वार रहस्य क्षेत्र प्रमाण एवं माहात्म्य, शुभाशुभ कर्मफल, दण्डकारण्य का गणेश क्षेत्र यह नामकरण, चतुर्द्वार यात्रा, सभागृह द्वार यात्रा, गर्भगृह यात्रा, क्षेत्रमुक्ति, गर्भगृह प्रमाण, क्षेत्रवासी जन चरित्र, देवताओं का चरित्र, मयूरेश यात्रा फल, योगोपासना फल, गणेश-कुण्ड माहात्म्य, ब्रह्मकमण्डलाख्यान, ब्रह्मकमण्डल तीर्थ चरित्र, सप्ततीर्थ महिमा, ब्रह्मकमण्डल में तीर्थों का विस्तार, सिद्ध-भैरव-चरित्र, उपासना का प्रकार ये विषय क्रमशः ८ वें अध्याय से २९वें अध्याय तक वर्णित हैं। आगे ३०वें अध्याय में देवताओं द्वारा उस मयूरेश क्षेत्र में गणेशाराधना गणेश-दर्शन तथा गणेश-मुख से तीर्थ माहात्म्य श्रवण कर देवताओं के अपने धाम लौटने की कथा वर्णित है। ये सारी कथा भ्रुशुण्डि ने सुनायी है।

अध्याय ३१ से ३५ तक - एकाक्षर-मन्त्र से शिवादि द्वारा आराधना एवं गणेश से कामविजय का वर प्राप्त करना, कामासुर से विकट-गणेश का युद्ध, युद्ध में कामासुर के पुत्रों शोषण और दुष्पुर का मारा जाना, गणेश का कामातुर को परब्रह्म होने की बात कहना, उनके शरण आना और भक्ति का वरदान प्राप्त करना और देवताओं द्वारा की गयी स्तुति का वर्णन किया है।

अध्याय ३६ से अध्याय ४५ तक - भा.शु. ४ को महोत्सव किया जाना, विकट चरित्र, गणेश चरित्र, बाललीला, कमलासुर वध, विष्ण्वादि देवों का गणेशाधीनत्व, गणेश का सिद्धिबुद्धि से विवाह, सिन्धु दैत्य वध; सूर्यावतार कथा, भानुविनायक-माहात्म्य, आदि-शक्ति द्वारा महाशक्तियों को मयूरक्षेत्र जाकर गणेशाराधन करने को कहा जाना, ये सारी कथाएँ वर्णित हैं। इसी के साथ छठा खण्ड पूर्ण होता है।

सप्तम खण्ड - अन्य खण्डों की तुलना में यह छोटा खण्ड मात्र सोलह अध्यायों में निबद्ध है। इसमें विघ्नराज चरित्र वर्णित हैं

अध्याय १ से अध्याय ५ तक - इसके प्रथम अध्याय में आदि दैत्यों की मृत्यु के उपरान्त दिति की तपस्या इन्द्र द्वारा उसके गर्भ के टुकड़े करना आदि बातों का वर्णन किया है। दूसरे अध्याय में पार्वती की गणेशोपासना एवं शिव से भेंट, तीसरे अध्याय में शिव पार्वती विवाह, पार्वती के हास्य से ममासुर की उत्पत्ति, उसकी गणेशोपासना और वर प्राप्ति का वर्णन हैं ४ अध्याय में, शम्ब्रासुर विवाह, धर्माधर्म पुत्र प्राप्ति, गुरु शुक्राचार्य द्वारा गणेश से द्वेष न करने का परामर्श, गुरु आदेश का उल्लंघन कर युद्ध में जाना, विजयी होना और देवताओं को बंदी बनाने की घटना का वर्णन किया गया है।

अध्याय ६ से अध्याय १० तक - विष्णुमुख से देवताओं द्वारा विघ्नराज की प्रार्थना, ममासुर का कोप, विघ्नराज द्वारा नारद के मुख से अपना स्वरूप बतलाया जाना और शरण आने की आज्ञा न देना, ममासुर की शरणागति और भक्ति प्राप्ति का प्रसङ्ग वर्णित है। देव-ऋषियों द्वारा स्तुति, भक्तियाचना, भा.शु. ४ को गणेशोत्सव, कश्यप के उपदेश से दितिका समाधान विघ्नराज चरित्र से किया है। विष्णु के अवतार की कथा का भी वर्णन है।

अध्याय ११ से अध्याय १६ तक - लक्ष्मी-विनायक चरित्र, शूर्पकर्णावतार, दत्तात्रेय-गीता, कश्यप द्वारा प्रदत्त दशाक्षरी-मन्त्र के अनुष्ठान से दिति को भगवत प्राप्ति की प्रवृत्ति, भगवान् के चतुर्भुजावतार कथन, पराक्रम वर्णन एवं पन्द्रहवें अध्याय में चरित्र की पुरुषार्थ साधकता एवं विराट चरित्र के सुनने के बाद इस खण्ड की पूर्णता होती है।

अष्टम खण्ड - अष्टम खण्ड में मुद्‌गलपुराण में गणेश के धूम्रवर्ण अवतार की चर्चा है। शौनकादि महात्माओं की प्रार्थना सुनकर सूतजी ने व्यास जी के मुखारविन्द से सुनी मुद्‌गल-दक्ष-संवाद के माध्यम से यह चरित्र सुनाया है। यह धूम्रवर्ण-चरित्र अहङ्कार नाशक है।

अध्याय १ से अध्याय ९ तक - ब्रह्मा ने एक बार शेष को बतलाया कि मैं सबके मूलकारण गणेश का ध्यान करता रहता हूँ जिससे अहङ्कार मेरे पास नहीं आता। मैंने सनत्कुमारों को ऐसा ही पूछने पर यह कथा सुनायी थी, जिसे तुम ध्यान से सुनो- एक बार सूर्य को राज्यपद पर बैठाने से अहङ्कार हो गया। उनके छीक से एक पुरुष निकला, जिसने शुक्राचार्य की मदद से गणेशाराधन कर बल एवं राज्य प्राप्त किया। प्रमदासुर ने

अपनी कन्या ममता उसे देकर उसको ब्रह्माण्ड विजय का आदेश दिया। सर्वत्र विजय प्राप्त कर उसने असुरों को वहाँ नियुक्त कर सर्वत्र अधर्म का प्रसार किया। तब देवताओं ने एकाक्षरमन्त्र से आराधन कर गणेश से उस असुर को नियंत्रित करने का वरदान प्राप्त किया। नारद द्वारा स्वप्न में जाकर स्वयं उसको सावधान करने पर भी नहीं माना तब गणेश ने उसके नगर में हाहाकार उत्पन्न किया, जिससे भयभीत होकर गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा से धूम्रवर्ण गणेश की शरण गया और भक्ति का वरदान प्राप्त कर शान्त हो गया देवताओं ने भी स्तुति की।

अध्याय १० से अध्याय १८ तक - दसवें अध्याय में शिवात्मकावतार गणेश-चरित्र, ग्यारहवें अध्याय में नन्दी पर अनुग्रह करने वाले पार्वती गणेश, बारहवें में त्रिपुरवधार्थ प्रकट गणेशावतार, तेरहवें एवं चौदहवें अध्याय में बाणासुर एवं रक्तवर्ण चरित्र, पन्द्रहवें अध्याय में देहात्मवादी बौद्ध शाखा की चर्चा, सोलहवें अध्याय में कलिनिग्रह, कलि की शरणागति और कलिकृत गणेश स्तवन की चर्चा, है जो कलिदोष नाशक है। सत्रहवें अध्याय में प्रत्येक युग में कर्म, एवं अठारहवें अध्याय में युग प्रभाव एवं सिद्धि की चर्चा है।

अध्याय १९ से अध्याय ४१ तक - १९वें अध्याय में ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न बारह अवयव वाले संवत्सर की उत्पत्ति, षडक्षर मंत्र से गणेशाराधन और वर प्राप्ति का वर्णन है। २१वें अध्याय में अधिकमास (मलमास) के देवता और उसका नाम ढोंढ मास होना, २१-२२वें अध्याय में सोमदत्त के चरित्र के साथ कार्तिक महिमा २३-२४ में मार्गशीर्ष मास में शिव को प्रदत्त वज्रपञ्जर स्तोत्र, साधु ब्राह्मण को गणेश दर्शन, २५-२६ स्त्री-रूप-धारी विष्णु द्वारा मोहिनी-रूप से विरोचन-वध एवं माघ-व्रत से अनेक भक्तों का उद्धार, २७-३० वैशाखमहिमा, शिवदत्त को ज्ञान एवं भक्ति की प्राप्ति तथा शुकगीता का वर्णन, ३१-३४ श्रावण मास की महिमा, जालन्धर-वध, विश्वामित्र-गालव संवाद और दधीचीधौम्य संवाद, ३५ में मलमास-माहात्म्य, ३६ में सांवत्सर व्रत, ३७ में चातुर्मास्य व्रत तथा विभाण्डोपदेश, ३८ में दुर्गति स्वरूप वर्णन, ३९वें अध्याय में बल्लालेश्वर माहात्म्य, ४०वें में चातुर्मास्य व्रत और ४१वें में कौण्डिण्य-ब्रह्मा-संवाद से गणेश-नाम की महिमा बतलायी गयी है।

अध्याय ४२ से अध्याय ५० तक - ४२ में भ्रुशुण्डी द्वारा गणेश के नाम-रूपात्मक-वर्णन के साथ रहस्यतत्व कथन, ४३ ब्रह्मवेत्ताओं को पूर्ण श्रद्धा के अभाव में पूर्ण फल प्राप्त न होना, गणेश-योग एवं चतुर्थी-माहात्म्य, ४४वें में सभी देवों की गणेशरूपता एवं दूर्वा-माहात्म्य, ४५वें जरत्कारु ऋषि को कौण्डिल्य ऋषि का मन्त्रोपदेश, ४६ ब्रह्मणस्पति यज्ञ वर्णन, ४७ आश्विनमास में दशहरा देवी युक्त दशमी को शमीपूजन का विधान, ४८ प्रत्येक मास में किस गणेश की पूजा से क्या फल मिलता है इसका वर्णन, ४९ सनकादि के लिये

गणेश-हृदय-स्तोत्र कथन, और ५०वें अध्याय में मूषक वाहन का रहस्य उद्घाटित कर धूम्रवर्ण चरित्र को विराम देते हुए फलश्रुति बतलायी है।

नवम खण्ड-मुद्गल दक्ष संवाद का विस्तार कर इस खण्ड में गणेश-तत्त्व का विशिष्ट प्रतिपादन किया गया है।

अध्याय १ से १६ तक - प्रथमाध्याय में मुद्गल ने स्वानन्द-योग और अयोग की चर्चा करते हुए असत्, सत्, सम और नेति इनकी स्वानन्द से उत्पत्ति बताते हुए, नर कुञ्जर गणेश की स्तुति कर स्वसंवेद्य गणेश स्वरूप का वर्णन किया है। द्वितीय में अयोग चरित्र, तृतीय में संयोगायोगभावस्थ भ्रान्ति वर्णन पूर्वक संयोगात्मा गणेश की चर्चा, चतुर्थ में पूर्णयोग चरित्र, पांचवें में चित्तवृत्तिनिरोध पूर्वक सार्वभौम-योग, पाँचवें से सोलहवें अध्याय तक योगगीता वर्णित है जिसमें १२ अध्याय एवं ६१६ श्लोक हैं। इनमें योगी पुरुष के चित्त को प्राप्त होने वाले अनुभव, शान्ति समाधान और सुख, योगी की स्थिति, योगभ्रष्ट का चरित्र, अज्ञानियों का योग, विभूति वर्णन, तत् पद एवं त्वम् पद विचार, शुक्ल-कृष्ण गति वर्णन, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ ज्ञान, नाना शास्त्रों के नाना मत निरूपण, ब्रह्मसिद्धि में मतैक्य, चित्तलय एवं गणेश रहस्य, सांख्य, योग, भक्ति रहस्य कथन ये सारे विषय विवेचित हैं।

अध्याय १७ से अध्याय ३० तक - १७-१८ में सूत की प्रस्थान की इच्छा, शौनक द्वारा अभिनन्दन तथा १६ में मुद्गल-पुराण श्रवणविधि कथन, २० में मुद्गल-पुराण के प्रमुख श्रोता, २१ में भाद्रपद-मास के पारायण की विधि, २२ में माधव राजा के चरित्र के साथ माघ-मास पारायण का महत्त्व, २३ में सुमति ब्राह्मण की कथा, ज्येष्ठ-मास पारायण महत्त्व, २४ में ब्रह्मणस्पति के देहधारण विषयक शङ्का का निरसन, २५ में देव विजय, २६ में भीम-वैश्य चरित्र कथन पूर्वक माघ मास पारायण का फल कथन, २७ में भाद्रपद-मास पारायण माहात्म्य और पुलस्त्य चरित्र, २८ में गार्ग्य-शम्भु ब्राह्मण चरित्र एवं ज्येष्ठ-मास पारायण फल, २६ में सुग्रीव राजा की कथा सहित वर्ष पारायण का फल, ३० में नित्य मुद्गलपुराण श्रवण करने का फल वर्णित है।

अध्याय ३१ से ३६ तक - इन अध्यायों में पूर्व वर्णित गणेश के आठ अवतारों वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज एवं धूम्र वर्ण चरित्र श्रवण फल एवं नौवें खण्ड का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

अध्याय ४० से अध्याय ४१ तक - चालीसवें अध्याय में नवम खण्ड पूर्ण योग प्रदायक होने कारण उसमें योगपति का चरित्र वर्णित है, ऐसा कहकर मुद्गल-पुराण से बढ़कर कोई दूसरा पुराण नहीं है, यह बात पुनः कहकर शौनक को प्रणाम किया। अन्तिम अध्याय में गणेश-स्मरण विना गणेश वर्णन न कर भी व्यास महाभारत लिखकर कैसे कृतकृत्य हुए इसका समाधान किया है और अन्त में स्वयं धूम्रवर्ण गणेश ने आकर कहा है कि उपनिषदों में वर्णित योग रूप का मुद्गलपुराण में यथार्थ स्वरूप वर्णित होने के कारण

इस पुराण के बिना गणेश स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। इसी के साथ मुद्गल-पुराण पूर्णता को प्राप्त होता है।

मुद्गल पुराण का आध्यात्मिक महत्त्व - गाणपत्य सम्प्रदाय में 'गणेशपुराण' की ही तरह, 'मुद्गल पुराण' भी उपासना की दृष्टि से अत्यन्त आदरणीय है। 'कलौ चण्डीविनायकौ' इस कथन से कलिकाल में चण्डी के साथ साथ विनायक की उपासना का भी बड़ा महत्त्व है। कलि काल में मन्त्र-सिद्धि नहीं होती ऐसा कुछ लोग कहते हैं, परन्तु देवताओं और मन्त्रों को कलिदोष नहीं लगता। किन्तु उपासक के अन्दर यदि दुराचार, अपवित्रता जैसे दोष हैं तो अनधिकार के कारण सफलता नहीं मिल पाती। कहा भी है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'।

निरतिशय सुख प्राप्ति हेतु प्रथम चित्त शुद्ध और शान्त होना चाहिये, तभी वह एकाग्र हो सकता है। चित्त की एकाग्रता के साथ की गयी उपासना निरतिशय सुख यानी मोक्ष में साधक ठहरती है। यदि षड्रिपुओं पर नियन्त्रण है, तो उपासना घर या वन में कहीं भी हो समान रूप से निरतिश फलदायी हो सकती है जैसा कि श्रीमद्भागवत में भी कहा है।[1] मुद्गल-पुराण के प्रथम छः खण्डों में क्रमशः मत्सर, मद, मोह, लोभ, क्रोध, काम इनका शमन, वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर और विकट की उपासना से दर्शाया गया है। इन सभी को असुर कहा है, जिसका तात्पर्य इनके आश्रय से असुर-भाव की प्राप्ति यानी कथनी करनी में अन्तर जो हमें प्रभु से दूर कर देता है। इन कथाओं में गणेश ने कहीं भी इनको मारा नहीं है, अपितु ये शरण आकर शान्त हो गये हैं, अर्थात यदि इन विकारों का भी प्रयोग गणेश से जोड़ने में करें तो भी कल्याण हो जाता है। जैसा कि भागवत में भी कहा है।[2] आगे के दो खण्डों में 'मम' ममता और अहम् अहंता का विघ्नराज और धूम्रवर्ण की शरण जाने से शमन होता है। इन दोषों से निवृत्ति होने पर ही उपासक को 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यस्थ गणेशतत्त्व का साक्षात्कार होता है।

गणेशन्यास, गणेशावतारस्तोत्र, गणेशगीतासारस्तोत्र, गणेशकीलकस्तोत्र और गृत्समदीय-बाह्य-पूजा आदि अनेक स्तोत्र उपासना की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं फलदायी हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से गणेशपुराणकी गणेश गीता की ही तरह मुद्गल-पुराण की १२ अध्यायों में निबद्ध ६८६ श्लोकों वाली 'योगगीता' दार्शनिक एवं उपासना दोनों दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१. त्वं त्वब्जनाभांङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः।
भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान् विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व।। - श्री.भा. ५/१/१९)

२. कामाद् द्वेषाद् भयात् स्नेहात् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः।। - श्री.भाग. ७/१/२९

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्त्व - योगात्मक-गणेश का वर्णन करना अभीष्ट होने के कारण मुद्गल पुराण में प्रतीकात्मक वर्णन ज्यादा है। तथापि इसमें ऐतिहासिक सामग्री भी विद्यमान है। गणेशोपासना की परम्परा और विकास के इतिहास को जानने में मुद्गल पुराण का गम्भीर अनुशीलन निश्चय ही सहायक हो सकता है।

मुद्गल पुराण के प्रथम खण्ड के १० से १५ अध्याय पर्यन्त भूगोल एवं खगोल वर्णन प्राप्त होता है; जो प्राचीन-भौगोलिक-परिवर्तनों के अध्ययन में सहायक हो सकता है। इसके अतिरिक्त छठे खण्ड में स्वानन्दभुवन (मयूर-क्षेत्र) का लगभग ४० अध्यायों में विशेष वर्णन है। गाणपत्य-सम्प्रदाय के इस आद्यपीठ भूस्वानन्दभुवन इस भूमि का, प्रारम्भ में आकार मयूराकार था जिसका उल्लेख ब्रह्मपुराण में भी प्राप्त होता है।[1]

यहाँ मोर भी बहुतायत पाये जाते थे। भौगोलिक और भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से इस विषय में अनुसन्धान अपेक्षित है। ब्रह्मकमण्डलतीर्थ और मयूरक्षेत्र का प्रमाण सहित माहात्म्य मुद्गल पुराण में उपलब्ध है जो अनुसन्धान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

मुद्गल पुराण का सांस्कृतिक महत्त्व - भारतीय संस्कृति के समस्त पुराणों में प्राप्त होने वाले वैशिष्ट्य मुद्गल पुराण में भी पग-पग पर दृष्टिगोचर होते हैं। मुद्गल पुराण में भी समन्वयवादी दृष्टि देखने को मिलती है। यहाँ भी गणेश को परब्रह्म मानने पर भी इतर देवताओं के साथ उनका ऐक्य स्थापित कर अद्वैत-दृष्टि को ही पुरस्कृत किया है। ग्रन्थारम्भ में पञ्च देवताओं के मङ्गलाचरण, प्रथम खण्ड के १६वें अध्याय में पञ्चदेवों का ब्रह्मरूपत्व निरूपण, विभिन्न खण्डों में विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ती, ब्रह्मा आदि द्वारा गणेश ध्यान द्वितीय खण्ड में कपिलोपाख्यान में गणेश द्वारा विष्णु को, विष्णु द्वारा इन्द्र को, इन्द्र द्वारा कपिल को और पुनः कपिल द्वारा गणेश को चिन्तामणि का समर्पण सभी देवताओं के ऐक्य को ही सूचित करता है।

धर्म प्राधान्य, आध्यात्मिकी भावना, पारलौकिकी भावना, सदाचार पालन, वर्णाश्रम व्यवस्था, कर्मवाद, यज्ञ का महत्त्व, मोक्ष की इच्छा, वेद प्रामाण्य, अहिंसा, त्याग, तप, मातृ-पितृ-गुरुभक्ति, देव-ऋषि-पितृपरायणता आदि भारतीय संस्कृति की ये सभी विशेषताएं मुद्गल पुराण में दिखती हैं। इसमें वर्णित गणेश के सभी प्रमुख अवतार धर्मरक्षा एवं लोगों को धर्मपरायण बनाने के लिए हुए हैं। इसके प्रत्येक कथानक में गणेशाराधन से परलोक बनाने यानी निश्रेयस सिद्धि के दर्शन होते हैं। वसिष्ठ, कपिल, दत्तात्रेय, गृत्समद, शुकदेव गौतम, प्रह्लाद, अम्बरीष, मुचकुन्द, मुद्गल, भृशुण्डी आदि महात्माओं के दिव्य चरित्र सदाचार में प्रवृत्त करने के लिए ही हैं। तृतीय खण्ड के १५-२१ अध्यायों में वर्णाश्रम

---

१. तत्र भूमिगुहायां तु शतयोजनविस्तृते।
मयूराकाररूपेण महामाया सनातनी .. बभूव ह।। - ब्रह्म पु. ३/३७-३८

धर्म, देव-पितृ-कार्य का महत्व निरूपित है। भगवद्-भक्ति की सभी विधाओं को मुद्गल पुराण में देखा जा सकता है। जप, व्रत, उपवास, यज्ञ आदि का भी महत्त्व प्रतिपादित है। पञ्चम खण्ड में गृत्समद द्वारा ब्रह्मणस्पति मण्डल का विधान, 'गणानां त्वा' इस मंत्र जप का महत्त्व, गणेशतत्त्व 'तत्वमसि' इस वाक्य में ही प्रतिपादित हुआ ऐसा आग्रह इस पुराण की वेद प्रमाण्यता को ही निरूपित करता है। मुद्गलपुराण में आये विशिष्ट तीर्थों तपोवन (दण्डकारण्य), शमी, मन्दार, दूर्वा, तुलसी आदि की वैशिष्ट्य पूर्ण चर्चा भारतीय संस्कृति की प्रकृति पूजा की ओर ही इङ्गित करती है।

मुद्गलपुराण चतुर्थखण्ड में चतुर्थी तिथि की उत्पत्ति कथा आयी है। जिस प्रकार पद्मपुराण में उत्पन्ना एकादशी की कथा में विष्णु के देह से एकादशी तिथि की उत्पत्ति बतलायी गयी है। वैसे ही यहाँ चतुर्थ खण्ड के प्रथम अध्याय में, सृष्टि निर्माण के बाद कालगणना व्यवस्था की इच्छा से ब्रह्माजी द्वारा समाधि लगाये जाने पर यह चतुर्थी तिथि उत्पन्न हुई है। इसी चतुर्थी ने अपने देह से प्रतिपदा से पौर्णिमा तक की तिथियां निर्माण की हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में मास गणना भिन्न भिन्न तिथियों से होती रही है। स्कन्दपुराणीय सनत्कुमारसंहिता में कार्तिक माहात्म्य में जहाँ गणेशभक्तों का कार्तिकारम्भ चतुर्थी से चतुर्थी तक, विष्णु भक्तों का एकादशी से एकादशी तक, देवी भक्तों का चतुर्दशी से चतुर्दशी तक, सूर्य भक्तों का संक्रान्ति से संक्रान्ति तक और शिव भक्तों के लिये पौर्णिमा से पौर्णिमा तक का विधान है। यह भी एक अनुसन्धान का विषय है।

उपसंहार - इस प्रकार हम देखते हैं कि मुद्गल पुराण समन्वयवादी दृष्टिकोण वाला, अद्वैत प्रतिपादक, पञ्चलक्षणयुक्त, गणेश सम्प्रदाय का महनीय पुराण है। जहाँ प्रतीकात्मक रूप से अहंता, ममता, कामादि षड् रिपुओं का विनाश गणेश आराधन से निर्मूलन करने हेतु आठ खण्डों में गणेश के लम्बोदरादि आठ दिव्य चरित्रों का वर्णन कर 'तत्वमसि' इस महावाक्य से प्रतिपादित योगात्मक गणेश का सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन किया है, वहीं विविध आख्यानों से जप, तप, व्रत, यज्ञ, पूजन, पारायण, ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि विविध साधनों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कर ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विषयों को समेटते हुए योगगीता जैसे दिव्य आध्यात्मिक उपदेश के साथ मुद्गल पुराण के बिना गणेश का यथार्थ रूप प्रकाशित नहीं हो सकता अपने इस कथन को चरितार्थ करता है। अतः निश्चय ही पुराण वाङ्मय में मुद्गलोपपुराण एक विशिष्ट और महनीय स्थान रखता है।

अन्य प्रमुख पुराण

आत्मपुराण

उपक्रम-आत्म पुराण परम्परागत महापुराणों उपपुराणों आदि से कुछ भिन्न है। इसी कारण महापुराणों या उपपुराणों की सूची में इसका उल्लेख प्राप्त नहीं होता, यह काफी बाद में तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है। वेद ज्ञान के ऐसे स्रोत है। जो अतीन्द्रिय विषय का प्रतिपादन करते हैं। धर्म व ब्रह्म दोनों अतीन्द्रिय पदार्थ हैं। जहाँ ब्रह्म जगत का मूल कारण है वहीं धर्म जगद्वैचित्र्य का हेतु है। धर्म व ब्रह्म दोनों ही वेदमात्र से ही जाने जा सकते हैं। सत् का चित् व आनन्द ही रूप है जो मन में ही प्रकट होते हैं। ज्ञान एवं आनन्द कहीं भी बिना सत् के नहीं मिलते तथा ज्ञान व आनन्द में भी आनन्द, बिना ज्ञान रूप हुये नहीं मिलता। अतः सत् जो चित् व आनन्द से अभिन्न है सर्वत्र एकरूप से अन्वित है, यह सच्चिदानन्द ही जगत् का कारण है। यह तत्त्व ज्ञात हो जाना ही सृष्टि का व हमारे जीवन का प्रयोजन है।

जीव भाव का बीज है इच्छा। ऋग्वेद इसीलिये कहता है (कामस्तदग्रे समवर्तत')। ईश्वर सत्यकाम, सत्यसंकल्प होने से उसकी इच्छा उत्पन्न होते ही पूर्ण हो जाती है अतः उसे सामान्य इच्छा नहीं कह सकते। जीव में ज्ञान से क्रिया के मध्य इच्छा आती है व क्रिया इच्छापूर्ति के लिये है। जीव अज्ञात या अप्राप्त की प्राप्ति के लिए इच्छा करता है जब कि ईश्वर में काम या ईक्षण होने पर ज्ञान है इसलिये उसके लिये अज्ञात या अप्राप्त सत्ता का कोई पदार्थ नहीं है। अज्ञान की निवृत्ति ही वेद का प्रयोजन है। वैसे इच्छा की सर्वतोभावेन निवृत्ति तो वासना के क्षय होने पर ही होती है, परन्तु वैराग्य से उद्वेगकारी इच्छाओं से निवृत्ति होकर साधक को अज्ञान निवृत्ति में पूर्ण रूप से संलग्नता का अवसर देती है, जो श्रवणादि के माध्यम से परम कैवल्य दे देती है।

वेद का अन्तिम भाग होने तथा सारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादक होने से 'उपनिषद' ही वेदान्त के नाम से जाने जाते हैं। भारतीय तत्त्व ज्ञान तथा धर्म सिद्धान्तों के मूलस्रोत होने का गौरव उपनिषद् साहित्य को ही प्राप्त है। इतना ही नहीं परवर्ती ग्रन्थ जो इन उपनिषदों के तात्पर्य का स्पष्टीकरण करने में प्रवृत्त हुये वे भी वेदान्त ही कहे जाते हैं। गीता और ब्रह्मसूत्र इन दो ग्रन्थों को उपनिषदों के साथ मिलाकर प्रस्थान त्रयी की संज्ञा दी गयी। भगवान् वेदव्यास ने इनका पुराणों में विस्तार किया। अतः इतिहास पुराण से वेदों के विस्तार की बात कही गयी है। (इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्) इतना ही नहीं आचार्य वल्लभ महाप्रभु ने तो पुराणों के तिलकभूत श्रीमद्भागवत को भी प्रस्थानत्रयी के साथ जोड़कर प्रमाण चतुष्टय स्वीकार किया है।

'वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।

समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।।
एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तत्मानं कथञ्चन। (त.दी. नि. शा.प्र.)

परन्तु कालान्तर में पुराणों में अनेक विषयों के संयोजन से जो विस्तार हुआ उनमें उपनिषदों के किस अर्थ का कहाँ उपबृंहण हुआ है यह पता लगाना मनीषियों को भी दुष्कर हो गया है। संहितात्मक स्कन्दपुराण के सूतसंहिता के ब्रह्मगीतादि में उपनिषदों के स्वरूप को स्पष्ट देखा जा सकता है। उपनिषदों का विषय अत्यन्त गूढ़ एवं सामान्य जनों को नीरसता का अनुभव कराने वाला होने से, पुराणों की रोचक, जनसाधारण में स्वीकृत, गूढ़ रहस्यों का सरल बोधगम्य उपदेश करने की शैली का अवलम्बन लेकर तेरहवीं शताब्दी में स्वामी शङ्करानन्द सरस्वती ने 'आत्मपुराण' की रचना की जिसमें प्रमुख उपनिषदों को सारभूत सिद्धान्तों का वेदक्रम से पुराणों की शैली में विस्तार किया गया है।

आत्मपुराण का पुराणत्व-वैसे इतिहास-पुराण को पञ्चम वेद के रूप में स्वीकार किया ही गया है। (ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः। इतिहासपुराण च पञ्चमो वेद उच्यते।। श्रीभा. १/४/२०) उन्हीं वेदों के सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक उपनिषदों के विषयों को क्रमशः चारों वेदों के क्रम से लेकर पौराणिक शैली में लिखे गये आत्मपुराण को पुराणवाङ्मय में स्वीकार क्यों नहीं किया जा सकता ? इसे उपपुराण माना जा सकता है। आत्म पुराण में पुराण से सम्बन्धित जो बातें आती हैं वह इस प्रकार हैं।

'ऋग्यजुःसामभिस्तद्वत् अथर्वाङ्गिरसा सह।
चातुर्विध्यं समं यत्र इतिहासादिभेदवान्।।
इतिहास इतिप्रोक्त हेति बभूव यत्।
जनको हेत्यादिरूपो वेदेनेकत्रसंस्थितः।।
सृष्टिस्थितिर्लयो यत्र कीर्त्यन्ते मूलकारणात्।
आकाशाद्वायुरित्यादि वंशोऽपि च महानयम्।।
विराजः स्तनयास्यास्य मनोः स्वायम्भुवस्य च।
सृष्टिजानां हि सर्वेषां कर्माणि विविधानि च।।
इदं पुराणं विज्ञेयं पञ्चलक्षणसंयुतम्।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरस्थितम्।
वंशानुचरितं यच्च तत्पुराणमिति स्थितम्। (आ.पु. ७/४०७-४११)

आत्मपुराण में भी सर्ग (सृष्टि) (१/७२-७३-७४), प्रतिसर्ग (प्रलय) (२/२१८-) वंश वंशानुचरित्र (ऋषि राजाओं आदि की चर्चा) मन्वन्तर (सत् धर्म चर्चा) इन सभी लक्षणों का न्यूनाधिक रूप में समावेश है। वृत्राख्यान, नचिकेतोपाख्यान जैसे अनेक आख्यानोपाख्यान भी वर्णित है। अतः इसे उपपुराण या औपादि पुराणों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। नित्य

परमेश्वर 'पुराण' शब्द से व प्रत्यगात्मा 'आत्मा' शब्द से कहा जाता अतः दोनों के अभेद प्रतिपादक होने से इसका यथार्थ ही नाम है। यह अभेद ही वर्ण्य का विषय है। ईश्वरकृत सृष्टि, विराडादिकृतसृष्टि, गुरुपरम्परा, विभिन्न कालिक उपदेशकों की शिक्षाएं एवं साधकों एवं ज्ञानियों के चरित्र इन सबका वर्णन होने से पुराण लक्षण सर्वथा घट जाते हैं। इसलिये इसके पुराण होने में कोई सन्देह करना उचित नहीं है।

नामकरण-जैसा कि पुराणों का नामकरण उन महापुराणों उपपुराणों आदि के वक्ता, श्रोता, के नाम पर या प्रतिपाद्य देव के नाम पर किया जाता है। विशेष रूप से उपपुराणों में देवता विशेष की चर्चा महापुराणों की छाया में लिखकर की जाती है। जैसे शिव, विष्णु, देवी, ब्रह्मा आदि के माहात्म्य का आधार लेकर परब्रह्म के निरूपक महापुराण क्रमश शिव, विष्णु, देवी या ब्रह्मा के नाम से जाने जाते हैं, गणेश, कालिका, नरसिंह, आदित्यादि उपपुराण उन उन देवताओं के माहात्म्य के आधार पर परब्रह्म का वर्णन करने से तत्तत् नामों से जाने जाते हैं उसी प्रकार इस आत्मपुराण में 'आत्मा' के माहात्म्य को लेकर परब्रह्म की महिमा का गान किया गया है, इसलिये इसका नाम आत्म पुराण सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है।

आत्म पुराण का देश काल - आत्म पुराण के रचना काल के विषय में कोई विवाद नहीं है यह तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया है इसके रचयिता परमहंस परिव्राजकाचार्य आनन्दात्मपूज्यपाद के शिष्य भगवान् शङ्करानन्द हैं। जैसा कि इसकी पुष्पिका से स्पष्ट है। (इति श्रीमत्परमहंसपरिवव्राजकाचार्याऽऽनन्दात्मपूज्यपादशिष्येण श्रीशङ्करानन्दभगवता विरचित उपनिषद्रत्न आत्मपुराण..... नाम अध्यायः से स्पष्ट है।

पाण्डुलिपि संस्करण-आत्म-पुराण की चार (पूर्ण अपूर्ण) पाण्डुलिपियाँ सरस्वती भवन पुस्तकालय सं.सं. वि.वि. में विद्यमान हैं जिनमें दो पूर्ण हैं जिनका विवरण हस्तलिखित ग्रन्थ विवरण पञ्जिका खण्ड ४ के अनुसार निम्नलिखित है-

क्र.	ग्रन्थ संख्या	पत्र संख्या	आकार	पंक्ति	अक्षर	लिपि	लिपिकाल	लेखक
१.	१४२८८	१-१८२	१२.० x ५.०	२०	४७	दे.ना.	-	शङ्करानन्द, पूर्ण
२.	१४५३८	५-१३	६.६ ४.६	१२	३२	"	-	अपूर्ण
३.	१५६८६	१-३६६	१२.८ x ६.४	१४	४३	दे.ना.	-	शङ्करानन्द, पूर्ण
४.	१६४५५	१-६०	१२.७ x ६.७	१३	४६	दे.ना.	-	शङ्करानन्द, अपूर्ण

इसका प्राचीन साधुकड़ी हिन्दी में स्वामी चिद्घनानन्द जी ने अनुवाद किया था। ये निर्वाणी अखाड़े के आचार्य महामण्डलेश्वर थे एवं स्वामी गोविन्दानन्द के गुरु थे। इस पर पञ्जाब के प्रसिद्ध पण्डित रामकृष्णजी की 'काका' नाम से प्रसिद्ध विद्वत्तापूर्ण टीका है। काशी स्थित दक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन की ओर से इसका प्रकाशन हो रहा है जिसमें

साम्प्रदायिक ज्ञान की प्रकाशक हिन्दी अनुवाद व टीका का कार्य विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता स्वामी दिव्यानन्द गिरि जी एवं उनके शिवसायुज्य प्राप्ति के अनन्तर स्वामी स्वयंप्रकाश गिरि जी ने इस कार्य को सुसम्पन्न किया।

आत्मपुराण की विषय वस्तु-आत्म पुराण में कुल अट्ठारह अध्याय हैं और ८७०० के लगभग श्लोक हैं। इसके प्रथम तीन अध्यायों में ऋग्वेद से सम्बन्धित, आठ अध्यायों में यजुर्वेद से सम्बन्धित, चार अध्यायों में सामवेद से सम्बन्धित, दो अध्यायों में अथर्ववेद से सम्बन्धित और अन्तिम अध्याय में स्वल्पकाय उन उपनिषदों का संग्रह कर दिया जिनका ब्रह्मसूत्र में विचार नहीं किया गया है।

प्रथम अध्याय में ८८७ श्लोक हैं, इसमें ऋग्वेद के ऐतरेयोपनिषद का विचार किया है। आरम्भ के ६४ श्लोकों में इस उपनिषद के प्रथम खण्ड की व्याख्या की गयी है जिसमें प्रारम्भिक मङ्गलाचरण के बाद गुरुशिष्य के प्रश्नोत्तर के रूप में आत्मज्ञान की ब्रह्मता, ज्ञान की सत्यता सात्विकादि की प्रकृति, आत्म अनात्म व्यवहार भ्रम विचार, सृष्टि, देवताओं की उत्पत्ति, प्राणोत्पादन एवं इन्द्रियादि की उत्पत्ति का वर्णन है। आगे उपनिषद के द्वितीयखण्ड की व्याख्या के क्रम को अन्नार्थ देव प्रार्थना, गाय की उत्पत्ति, मनुष्यदेह से देवादि की प्रसन्नता का वर्णन है। तत्पश्चात उपनिषद् के तृतीय खण्ड के व्याख्या क्रम में आत्मस्वरूप का विचार, त्रय आवसथः" का विवरण, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति विचार, बुद्धि का स्वरूप, ज्ञान की स्वप्रकाशकता अनन्तता एवं आत्मा की सच्चिदानन्दरूपता वर्णित है। सुख का वास्तविक स्वरूप 'इदमदर्शम्, तस्मादिदन्द्रः आदि की व्याख्या की गयी है।

आगे उपनिषद के द्वितीयाध्याय का विस्तार माया से आत्मज्ञान, वैराग्यादि का महत्त्व, जीव का गमनागमन, गर्भ से मरण पर्यन्त की अवस्थाओं के दुःख, परलोक, वामदेव के आख्यान एवं उपदेशों का वर्णन है। उपनिषद् के तीसरे अध्याय के विस्तार में आगे अधिकारियों को वैराग्य, आत्मा का स्वरूप देहादि से भिन्नता 'एष ब्रह्म' आदि तथा 'तत्प्रज्ञानेत्रम्' आदि का विचार कर महावाक्य की व्याख्या के साथ प्रथम अध्याय पूर्ण होता है अध्याय के अन्त में अध्याय का सार भी दिया है।

द्वितीय अध्याय में ५३६ श्लोक हैं। इसमें ऋग्वेद के एक और अन्यतम उपनिषद् कौषीतकी को लिया है। कौषीतकी के पहले दो अध्यायों में सगुण विद्या प्रतिपादित है। सीधे तत्त्व को समझने के लिये सगुण प्रसङ्गों की उपयोगिता न होने के कारण उन दो अध्यायों को छोड़कर इन्द्र-प्रतर्दन-संवाद के माध्यम से तीसरे अध्याय की व्याख्या करते हैं। इस अध्याय के प्रारम्भ में काशी एवं महादेव का वैशिष्ट्य वर्णित है-

'गङ्गायाः सेवनात् नित्यं महादेवस्य वासतः।
सौभाग्यस्य च काशेन काशीत्येषाऽभवत् पुरी।।

(आ. पु. २/२७) इसमें गुरु की महत्ता, 'मां विजानीहि' की व्याख्या, त्वाष्ट्रवध, यति-हत्या, प्राणोपासना का फल, प्राणात्मा से वागादि का जन्म, प्रत्यभिज्ञा, 'तस्यैषा सिद्धिः', 'प्रज्ञया वाचं समारुह्य', 'न वाचं विजिज्ञासीत्' -नो एतन्नाना' आदि की व्याख्या आत्मा शब्द के अर्थ की विवेचना के साथ उपसंहार किया गया है। इस अध्याय में शङ्करानन्द जी ने प्राणप्रज्ञा के द्वारा परमात्मबोध का अतिविस्तृत विवरण कौषीतकी उपनिषद' का अनुसरण करते हुए दिया है। इन्द्र द्वारा राजा प्रदतर्दन को दिये गये इस उपदेश में प्राण तथा प्रज्ञा की महत्ता बतलायी गयी है। प्राण के द्वारा आयु की तथा प्रज्ञा द्वारा सत्य संकल्प की प्राप्ति होती है। इन्द्र का यह महनीय उपदेश जिसके जानने पर आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है।

आत्म-पुराण के तृतीय अध्याय में ३११ श्लोक हैं। इसमें काशीराज अजातशत्रु एवं गार्ग्य वालाकि का दार्शनिक संवाद, ब्रह्मन् के स्वरूप, ज्ञान तथा प्राप्ति के विषय में है। पूर्वाध्याय के अन्त में गुरु ने शिष्य को बताया था कि आत्मविद्या न होने पर गुरु भी शिष्य हो जाते हैं। इसी बात पर शिष्य के मन में उत्पन्न शङ्का का निवारण इस अध्याय में किया गया है। महर्षि कौषीतकी और वाजसनेय शाखा के उपदेशक भगवान् सूर्य ने इस घटना का वर्णन किया है। सूर्योपदिष्ट शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के बृहदारण्यक के मधुकाण्ड में भी यह इतिहास कहा गया है। इसमें आरम्भ में विद्याक्षेत्र में मैं ही विद्वान् हूँ इस अभिमान तथा धन मद से चूर गार्ग्यवलाक, नामक एक युवा विद्वान का आख्यान आया है। अपने विद्या बल से अनेक राजाओं को परास्त कर यह ब्रह्मवादियों में प्रमुख धर्मात्मा काशीराज के पास पहुँचा और राजा को परमात्मतत्त्व से वंचित कहता हुआ इस तत्त्व के उपदेश की बात कही। अभिमानी तरुण ने आदित्यमण्डलादि में उपासना की बात कही जिसे राजा ने पहले से ही जानने की बात कही। इस प्रकार सोलहवें पुरुष को भी पहले से ही जानने की बात जब राजा ने कही और क्या क्या जानते हो ऐसा प्रश्न भी किया। इस पर अभिमानी ने लज्जित होते हुए राजा को गुरु बनाकर उससे ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का निश्चय किया। तदनन्तर राजा द्वारा उसे विभिन्न गूढ़तत्त्वों का उपदेश अभिप्राय के साथ दिया जाता है। अतीन्द्रिय विषयों में वेद प्रमाण, आत्मा से अन्यत्र कहीं भी सुख व प्रज्ञा न होने की बात श्रेष्ठी के दृष्टान्त से बतायी जाती है। अन्त में उपसंहार के तात्पर्य, विषय संक्षेप तथा फल वर्णन के साथ आत्मपुराण का तीसरा अध्याय विराम लेता है।

आत्मपुराण के प्रथम तीन अध्यायों में ऋग्वेद से सम्बन्धित दो उपनिषदों की विवेचना करने के बाद चतुर्थ से सप्तम अध्याय पर्यन्त बृहदारण्यक उपनिषद् के विशिष्ट संवादों के माध्यम से आत्मतत्त्व की विवेना की गयी है। जैसा कि इस उपनिषद के नाम से विदित होता है, यह वस्तुतः आरण्यक ही है; तथा यजुर्वेद से सम्बद्ध है, परन्तु आत्मतत्त्व की विशेष विवेचना के कारण यह उपनिषद् माना जाता है और वह भी मान्यतम एवं प्राचीनतम। यह विशालकाय होने के साथ-साथ तत्त्वज्ञान के प्रतिपादन में भी उतना ही गम्भीर तथा

प्रामाणिक है। इसमें छः अध्याय हैं। इस उपनिषद् के सर्वस्व दार्शनिक हैं याज्ञवल्क्य, जिनकी उदात्त अध्यात्म-शिक्षा से यह ओत-प्रोत है। आत्मपुराण के चतुर्थ अध्याय में मधुकाण्ड का सारार्थ प्रकाशित किया गया है। इसमें बृहदारण्यक के दो अध्याय सम्मिलित किये गये हैं। इसके प्रारम्भ में मधुविद्या की सम्प्रदाय परम्परा बतलायी गयी है। जिनमें पौतिभाष्य, गौपवन, कौशिक, कौण्डिन्य, शाण्डिल्य आदि लगभग पचास आचार्यों के नाम हैं। इस मधुविद्या को ब्रह्मा से परमेष्ठी-सनक्-सनातन-तनारु.....दध्याङ्गाथर्वण से अश्विनीकुमारों ने प्राप्त की। यह मधुकाण्ड का वंश बतलाया गया है। प्राण की श्रेष्ठता, सृष्टिविषयक सिद्धान्तों, आत्मोपासन की आवश्यकता, आत्मार्थ तीन अन्नों का आध्यात्मिक विवेचन, आधिदैविक, आधिभौतिक विस्तार, आत्मा जगदोत्पत्ति याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद के माध्यम से आत्मा का सबसे अभिन्नत्व एवं सर्वाश्रयत्व वर्णित है। इस चतुर्थ अध्याय में दध्यङ्गाथर्वण द्वारा अश्विनीकुमारों को मधुविद्या के उपदेश की आख्यायिका वर्णित है, जिसके द्वारा पृथिव्यादि में मधुदृष्टि-आत्मा का सर्वाधिपतित्व और सर्वाश्रयत्व का निरूपण किया गया है। 'अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु' (बृ.उप. २/५/१७)। इसी में अभिमानी गार्ग्य तथा शान्त स्वभाव काशीराज अजातशत्रु का संवाद है।

आत्मपुराण के पञ्चम अध्याय में ऋषियों के साथ याज्ञवल्क्य का संवाद वर्णित है। आर्तभाग, भुज्यु, उषस्त, कहोल, गार्गी, आरुणि आदि महात्माओं का याज्ञवल्क्य के साथ संवाद वर्णित है। जिसमें ग्रह, अतिग्रह स्वरूप (इन्द्रियों और उनके विषय के बारे में बतलाया गया है) आत्मा की अनिर्वचनीयता, संन्यास सहित आत्मज्ञान निरूपण, अधिष्ठान तत्त्वों का निरूपण, अन्तर्यामी का निरूपण तथा देवताओं आदि से सम्बन्धित प्रश्न किये गये हैं।

आत्मपुराण के षष्ठ अध्याय में याज्ञवल्क्य-जनक संवाद का निरूपण किया गया है। जहां पहले याज्ञवल्क्य के हाथों ब्रह्मवादियों के पराजय के प्रसङ्ग में जनक वैदेह केवल तटस्थ श्रोता रहे हैं वहीं बाद में उन्होंने स्वयं याज्ञवल्क्य से तत्त्वज्ञान सीखा है। इस अध्याय में इसी की चर्चा है। शैलिनी, उदङ्क, बर्कु, गर्दभीविपीत, जाबाल, शाकल्यादि महात्माओं द्वारा बतलाए गये वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और हृदय ब्रह्म की उपासना का वर्णन है। आत्मा का स्वरूप, मुमुर्षु की दशा, निष्काम ब्रह्मज्ञ का मोक्ष, आत्मज्ञ का महत्त्व, आत्मा के स्वरूप उपलब्धि में सन्यासादि का महत्त्व, ब्रह्मस्वरूप और ब्रह्मज्ञ की स्थिति के वर्णन के साथ उपसंहार किया है।

सप्तम अध्याय में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद है। आत्मपुराण के पूर्वोक्त तीन अध्यायों में जहाँ आगम प्रधान मधुकाण्ड ब्रह्मतत्त्व का निश्चय किया गया, युक्तिप्रधान याज्ञवल्कीय काण्ड द्वारा पक्ष प्रतिपक्ष लेकर जल्पीय न्याय द्वारा विचार किया, प्रश्नोत्तर शैली से विस्तारपूर्वक विचार और यहाँ अब निगमन दृष्टिगोचर होता है। इसमें मैत्रेयी द्वारा किये

गये अमृतत्व साधन विषयक प्रश्न का समाधान किया गया है। प्रियतम आत्मा के लिये ही सभी वस्तुओं का प्रिय होना, आत्मा की सर्वरूपकता तथा आत्मा की निर्विशेषता का प्रतिपादन किया गया है।

अष्टम अध्याय-आत्मपुराण के इस अध्याय में कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषद् के विषयों की आत्मतत्त्व प्रतिपादन हेतु पुराण शैली में विवेचना की है। यह ऋषि श्वेताश्वतर वक्ता और तुरीयाश्रयी संन्यासी श्रोता है। उन्होंने चतुर्थाश्रमियों को ही इस विद्या का उपदेश दिया था। (तपः प्रभावाद् देव प्रसादाच्च ब्रह्म, ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्। अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषि संघजुष्टम्।।) इसमें साधन, साध्य, साधक और प्रतिपाद्य विषय के महत्त्व का स्पष्ट और मार्मिक विवेचन किया है। इसमें प्रसङ्गानुसार सांख्य, योग, सगुण,-निर्गुण, द्वैत-अद्वैतादि कई सिद्धान्तों का समुचित वर्णन किया है। इसमें जगत् के कारण की मीमांसा करते हुए भगवान की स्वरूपभूता माया को ही जगत् का कारण माना है। जगत् के अभिन्ननिमित्तोत्पादन कारण भगवान के साक्षात्कार से ही माया चक्र से मुक्त हो सकता है। प्रणव चिन्तनपूर्वक ध्यानाभ्यास ही उसके साक्षात्कार का साधन है। यहाँ क्षर प्रकृति का भोगत्व, अक्षरजीव का भोक्तृत्व और परमात्मा का नियन्तृत्व बतलाया गया है। इस अध्याय में उपर्युक्त उपनिषद के आश्रय से आत्मपुराण में भक्ति तत्व का प्रतिपादन और गुरुभक्ति और देवभक्ति की एकरूपता निरूपित की है।

नवम अध्याय में आत्मपुराण के इस अध्याय में यम-नचिकेता संवाद के माध्यम से आत्मतत्त्व का विशद विवेचन किया है। इस आख्यान के अनुसार विश्वजित् याग करने के बाद ब्राह्मणों को बूढ़ी और निरर्थक गायें दान देते देख पिता का उद्धार करने हेतु 'मुझे आप किसे देंगे ? ऐसा प्रश्न किया नचिकेता ने क्योंकि इस यज्ञ के बाद सर्वस्व दान देना होता है। इस पर क्रोधित होकर पिता वाजश्रवा ने कहा कि तुझे मृत्यु को दूंगा। इसे पिता की आज्ञा मानकर वे यमराज के पास पहुँचे और तीन दिन तक भूखे प्यासे रहकर किसी तरह यमराज के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किये। यमराज ने प्रसन्न होकर तीन वरदान दिये। प्रथम वर में पितृतोष, द्वितीय वर से स्वर्ग प्राप्ति और तृतीय वर से आत्मामृत की याचना की। यमराज ने नचिकेता के समक्ष आत्मज्ञान की दुर्लभता, आत्मज्ञान का फल, ओङ्कारोपदेश, आत्मस्वरूप, आत्मा की आत्मकृपा साध्यता, आत्मा के प्राप्ता प्राप्तव्य भेद, उसकी सूक्ष्म-बुद्धि ग्राह्यता, आत्मज्ञ की सर्वज्ञता, निःशोकतः, और निर्भयता, असङ्गता, आत्मज्ञान का प्रकार और प्रयोजन आत्मोपलब्धि का साधन सद्बुद्धि का विवरण प्राप्त होता है। आत्म पुराण के इस अध्याय का विषय कृष्णयजुर्वेदीय काठकोपनिषद के अनुसार वर्णित है।

दशम अध्याय में आत्मपुराण के ग्यारहवें अध्याय में तैत्तिरीय उपनिषद् के आधार पर आत्मतत्त्व का विवेचन किया गया हैं। संहिती-उपनिषद् (शिक्षावल्ली) एवं वारुणी

उपनिषद (ब्रह्मानन्दवल्ली एवं भृगुवल्ली) के आधार पर ब्रह्मविद्या, चित्तशुद्धि, गुरुकृपा की प्राप्ति, उपासना, शिष्य और आचार्य सम्बन्धी शिष्टाचार का निरूपण है। इसी प्रकार आत्मपुरुष के ग्यारहवें अध्याय में गर्भाद्युपनिषद् के आधार पर आत्मतत्त्व से सम्बन्धित विविध विषयों की विषद् विवेचना की गयी है।

अध्याय बारह से चौदह अध्यायों में आत्म पुराण के इन तीन अध्यायों में सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् के आधार पर आत्मतत्त्व की चर्चा की गई है। इन तीन अध्यायों में इस उपनिषद् की अन्तिम तीन अध्यायों के तीन श्रेष्ठ संवादों के माध्यम से आत्म विद्या का सुन्दर निरूपण है। यह उपनिषद् प्राचीनता गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान प्रतिपादन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक एवं प्रमेय बहुल है। इसके अन्तिम तीन अध्यायों में ब्रह्मविद्या का सोपपत्तिक निरूपण होने से आत्मपुराणकार ने इन्हीं तीन अध्यायों का समावेश किया है। पुराण के १२वें अध्याय में आरुणिउद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सद्रूपब्रह्म का उपदेश अनेक दृष्टान्तों द्वारा किया है। इसमें मुख्य रूप से मन, प्राण, एवं वाक् के क्रमशः अन्नमय, आपोमय और तेजोमय होने जीवका त्रिविध अवस्थाओं में भी अविनाशित्व, विद्वानों के सत् सम्पत्ति का क्रम, बद्धता एवं मुक्तता का कारण निरूपित है। 'तत् त्वमसि' इस महावाक्य का उपदेश भी इसी अध्याय में वर्णित है।

पुराण के १३वें अध्याय में मूलोपनिषद् के सप्तम प्रपाठक के सनत्कुमार तथा नारद का विश्रुत वृत्तान्त है। जिसमें मन्त्रविद् नारद आत्मविद्या की शिक्षा के लिये महर्षि सनत् कुमार के पास जाते हैं, इस उपदेश का पर्यावसान् होता है - "यो वै भूमा तदमृतम्, अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्" इसमें नाम, वाक्, मन, संकल्प, अन्न, आप, तेज, वायु, आकाश, स्मर, आशा और प्राण इनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है। 'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि' 'न पश्यो मृत्युं पश्यति' आदि की सुन्दर विवेचना की है। इसके १४वें अध्याय में इन्द्र तथा विरोचन की कथा है जिसमें आत्मप्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का सुन्दर चित्रण किया है। आत्मा का लक्षण सत्य यह नामकरण उसकी व्युत्पत्ति, दहरविद्या-जप-विधान, अशरीरात्मोपदेश एवं पूर्ण कृतार्थता प्रदर्शित की गयी है।

अध्याय १५ - इसमें सामवेद के तल्पकारोपनिषद् के आधार पर आत्म-तत्त्व विचार किया है। आत्मपुराण के १५वें अध्याय में आत्मा का सर्व नियन्तृत्व, अज्ञेयत्व एवं अनिर्वचनीयत्व, विज्ञानावभासों में ब्रह्म की अनुभूति, आत्मज्ञान ही सार है, आदि बातों का सुन्दर वर्णन है। यक्षोपाख्यान इसका महत्त्वपूर्ण उपाख्यान है जिसमें अग्नि-वायु-इन्द्रादि देवताओं की परीक्षा द्वारा गर्वापहरण तथा उमा के प्रादुर्भावसके साथ उनका उपदेश ब्रह्म विषयक अध्यात्म अधिदैव आदेश विद्याप्राप्ति के साधन वर्णन के साथ उपसंहार है।

सोलहवें एवं सत्तरह वें अध्यायों में क्रमशः अथर्ववेद के मुण्डक एवं प्रश्नोपनिषद् के आधार पर आत्मतत्त्व की चर्चा की गयी है। ब्रह्मा से लेकर शौनकादि पर्यन्त सम्प्रदाय

प्रवर्तक ऋषियों के निर्देश के साथ शौनक और अङ्गिरस गुरु के संवाद के माध्यम से अनेक विषयों की चर्चा की गयी है। ऋग्वेदादि शास्त्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। इसमें कर्मकाण्ड की हीनता एवं ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। 'द्वा सुपर्णा सयुजासखाया' (३/१/१) की विवेचना, वेदान्त शब्द का प्रयोग, काम का अनिष्ट परिणाम विद्वान् परात्पर पुरुष को किस प्रकार प्राप्त होताहै इसके लिये समुद्र में नदियों के मिलन का दृष्टान्त, ज्ञानतृप्त विद्वान् को प्राप्त होने वाला फल आदि विषय वर्णित है। १७वें अध्याय में सुकेशा आदि छः ऋषि कुमारों का मुनिवरपिप्पलाद के साथ संवाद है। मुण्डकोपनिषद् में वर्णित परा एवं अपरा विद्या के प्राप्ति के साधनस्वरूप प्राणोपासना आदि का निरूपण इस अध्याय में है इसमें छः मुनि कुमारों द्वारा छः प्रश्न किये गये हैं। ये पृथक पृथक छः संवाद ही छ प्रश्न हैं, जिनमें रयि और प्राण द्वारा प्रजापति से सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम की उत्पत्ति, दूसरे प्रश्न में स्थूल देह के प्रकाशक और धारण करने वाले प्राण का निरूपण तथा आख्यायिका द्वारा समस्त इन्द्रियों में उसकी श्रेष्ठता, तीसरे में प्राण की उत्पत्ति और स्थिति का विचार, स्वप्नावस्था में भी केवल प्राण की जागृति, पांचवें में ओङ्कार का पर एवं अपर ब्रह्म के प्रतीक के रूप में वर्णन और उसकी अपर ब्रह्म की उपासना से क्रममुक्ति और परब्रह्म की उपासना से परब्रह्म प्राप्ति और उसकी एक दो तीन मात्राओं की उपासना से भिन्न भिन्न फलों की प्राप्ति तथा अन्त में पिप्पलाद ने मुक्तावस्था में प्राप्त होने वाले निरूपाधिक ब्रह्म कायप्राणादि सोलह कलाओं के आरोपपूर्वक प्रत्यगात्म रूप से वर्णन किया है।

अन्त में अन्य सभी मतवादों का संक्षेप में प्रस्तुतीकरण करते हुए सुन्दर समन्वय इस आत्मपुराण में किया है और आचार्य शङ्कर की ही पद्धति को पुराण में उपस्थित किया है।

आत्मपुराण का आध्यात्मिक महत्त्व-शिव के अवतार भूत भगवान् शङ्कराचार्य द्वारा भाष्य लिखकर वेदों के इस अन्तिम ज्ञानकाण्ड जिसमें भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का सच्चा परिचय प्राप्त होता है को गौरवान्वित किया है। किन्तु शङ्करानन्द जी महाराज ने उसे पुराणयशैली में लिखकर रुचिकर एवं बोधगम्य बना दिया है। समस्त प्रमुख सर्वमान्य उपनिषदों का उपबृंहण होने से आत्मपुराण का निश्चय ही आध्यात्मिक दृष्टि से अतिशय महत्त्व है।

उपसंहार-विविध आख्यानों के माध्यम से उपनिषदों में वर्णित गूढ गम्भीर विषयों को पुराण शैली में सहजरूप से वर्णित कर इसमें निहित समुन्नत विचारधारा, उदात्तचिन्तन, धार्मिक अनुभूति तथा आध्यात्मिक जगत् की रहस्यमय अनुभूतियों को रखते हुए 'आत्मतत्त्व' का सम्यक प्रतिपादन करने से 'आत्मपुराण व्यास कृत न होकर, अर्वाचीन होने पर भी वैदिक विषयों का प्रतिपादन एवं पुराण शैली की मर्यादा के कारण 'अभिनव पुराण' के रूप में पुराण वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

नीलमतपुराण

प्रायः समस्त पुराण वाङ्मय में व्यास, समास रूप से नगराज हिमालय का माहात्म्य वर्णित है। भारतवर्ष के उत्तर में स्थित इस पर्वतीय भूभाग ने, भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इसकी गगनचुम्बी पर्वतमालाएँ और गहन वन अतीत गाथाओं को सुनाते चले आ रहे है। वैदिक काल में प्रसिद्ध इस भूभाग हैमवत की स्वरूपात्मक कल्पना पुराणों में क्रमशः हिमवत् खण्ड (नेपालराष्ट्र पशुपति क्षेत्र), मानस खण्ड (कूर्माञ्चल क्षेत्र जिसका विस्तार कैलास मानसरोवर तक था) और तीसरा केदार खण्ड (वर्तमान गढ़वाल प्रदेश प्राचीन किरातखस मण्डल) इन तीनों रूपों में की गयी है।

हिमालय कुक्षिस्थ इस प्रदेश का विस्तार केदार खण्ड काल तक पाँच खण्डों में पहुँच गया था। अतः इस उत्तरीय भाग को प्रारम्भ में नेपाल और सिक्किम से लेकर काश्मीर पर्यन्त मान कर पाँच खण्डों में विभाजित कर दिया गया है।[1] जिसके उपर्युक्त तीन खण्डों के अतिरिक्त चौथा जालन्धर खण्ड (वर्तमान हिमाचल प्रदेश का भाग) और पाँचवा काश्मीर खण्ड। सप्त खण्डात्मक स्कन्दमहापुराण से भिन्न संहितात्मक स्कन्दोपपुराण के अन्तर्गत आने वाले पचास से भी अधिक खण्डों में हिमवत् खण्ड, मानस खण्ड, जालन्धर खण्ड के साथ ही 'काश्मीर खण्ड' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। (अष्टादश पुराण दर्पण पृ. ३६५)

वर्तमान में यह काश्मीर खण्ड तो उपलब्ध नहीं किन्तु इस काश्मीर क्षेत्र का वर्णन करने वाला जो ग्रन्थ उपलब्ध है वह है 'नीलमत-पुराण'। इसके संक्षिप्त और विस्तृत ऐसे दो प्रकार के हस्त लेख प्राप्त होते हैं। इन हस्त लेखों में इसके चारों नाम नीलमत, नीलमत-पुराण, नील-पुराण और काश्मीर-माहात्म्य पाये जाते हैं।[2]

डा. भाण्डारकर ने इसकी एक पाण्डुलिपि के आधार पर इसे स्वतंत्र पुराण न स्वीकार कर माहात्म्य माना है। पं. रामलाल काञ्जीलाल और पं. जगद्धर झड्डू ने नागर-खण्ड और अन्य माहात्म्यों के साथ सादृश्य होने से इसे स्वतंत्र पुराण न स्वीकार कर किसी पुराण विशेष का अंश माना है। जहाँ तक सर्गादि सभी पञ्च लक्षण न प्राप्त होने के कारण

---

१. तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे। अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने।। काश्मीरे चैव प्रस्तावे जालन्ध्रे वै तथा पुनः। तथा केदारप्रस्तावे कथितानि मयाऽद्य ते।।

–स्कं.पु.केदार. अ. २०४/५६-५७

२. सम्पूर्णं चेदं नीलमतं नामेति शुभम्।। (संक्षिप्त रूप पाण्डुलिपि) समाप्तं चेदं नीलमतं नाम पुराणम्। (विस्तृत रूप पाण्डुलिपि) आचार्य कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में इस ग्रन्थ के विषय में दो बार नीलमत, दो बार नीलमत-पुराण और एक बार नील पुराण शब्द का प्रयोग किया है। (राज.तर. १/१४)

इसे पुराण न मानना उचित नहीं होगा, क्योंकि अनेक महापुराणों एवं उपपुराणों में भी ये पाँच लक्षण नहीं प्राप्त होते। इनमें प्रायः वर्णाश्रम धर्म, आचार, श्राद्ध, प्रायश्चित्त, दान, पूजा, व्रत, तिथि, प्रतिष्ठा, दीक्षा, उत्सर्ग आदि का वर्णन कर कथानकों द्वारा पारम्परिक रीति-रिवाजों का वर्णन होता है। जिसे कल्प शुद्धि के नाम से पुराणों के उपकरण के रूप में स्वीकार किया है।

जहाँ तक पञ्च लक्षणों की बात है, नीलमत पुराण में कुछ प्रसङ्गों में प्रतिसर्ग, कुछ में वंशानुचरित और कुछ में मन्वन्तर की ओर सङ्केत करते हैं। (नी.पु. श्लो. ६-१०, ३०-५१)। आचार्य कल्हण की राजतरङ्गिणी में काश्मीर के प्रथम चार सम्राटों का विवरण नीलमत से प्राप्त किया था किन्तु वर्तमान में केवल राजा बालगोनन्द का ही विवरण प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान नीलमत से वह शेष तीन राजाओं के चरित्र का भाग लुप्त है। हो सकता है कल्हण के पूर्व अनेक पूर्ववर्ती राजाओं का वर्णन उपलब्ध रहा हो जो कल्हण के समय केवल चार राजाओं तक आकर सिमट गया हो। प्रारम्भ में पुराणों की भी वेद की तरह मौखिक परम्परा रही है। कालान्तर में लिखते समय प्रमाद वश हो सकता है कुछ भाग छूट गये हों। इसलिये मात्र लक्षणों के न्यून होने के आधार पर इसके पुराणत्व को नकारा नहीं जा सकता।

दूसरी बात यह है कि नीलमत पुराण भी पौराणिक शैली में ही लिखा गया है। जिसमें एक व्यक्ति की जिज्ञासा युक्त प्रश्नों का उत्तर दूसरा व्यक्ति पूर्व संवाद (जिसमें उसके पूर्व के वक्ता श्रोता की भी चर्चा होती) के माध्यम से देता है, जिनमें तीन वक्ता और तीन श्रोताओं के माध्यम से कथा चलती रहती है।

तीसरी बात यह कि नीलमत पुराण स्वयं अपने में कुछ माहात्म्य रखता है जैसे कपटेश्वर-माहात्म्य, आश्रमस्वामी माहात्म्य और वितस्ता-माहात्म्य जैसे कुछ माहात्म्य नीलमत में प्राप्त होते हैं। इसलिये इस सम्पूर्ण कार्य को माहात्म्य नहीं कहा जा सकता।

महत्वपूर्ण बात यह है कि कल्हण स्वयं इसे पुराण कहकर पुकारते हैं न की माहात्म्य। राजतरङ्गिणी के एक श्लोक में जिसमें 'पौराणिकम्' ऐसा प्रयोग है को शब्दान्तर के साथ नीलमत में देखा जा सकता हैं-

तस्मिन् काले स्वसचिवान् सासूयान् विन्यवीरवत्।
इमं पौराणिकं श्लोकमुदीर्य मधुसूदनः।।
कश्मीरा पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः।
नावज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता।।

कल्हण राज. अ. १/७१-७२

एवं नरेन्द्र कश्मीरा प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे।
समुत्पन्ना महापुण्या हरभार्या सती शुभा।।
कश्मीरायां तथा राजा त्वया ज्ञेयो हरांशजः।
तस्यावज्ञा न कर्तव्या सततं भूतिमिच्छता।। नीलमत २४५-२४६

इस प्रकार सात सौ वर्षों से भी अधिक पहले इस नीलमत को पुराण रूप से स्वीकृति प्राप्त थी तो इसके पुराणत्व के विषय में कैसे सन्देह किया जा सकता है।

निश्चय ही यह महापुराण नहीं है क्योंकि उनकी संख्या निश्चित है जैसा कि सभी जानते हैं कि उपपुराण तत्तत ऋषियों द्वारा किसी महापुराण का आश्रय लेकर लिख जाते रहे हैं; वैसे ही वर्तमान् में पूर्वोक्त स्कन्दपुराण के काश्मीर-खण्ड की छाया में यह पुराण लिखा गया हो ऐसी संभावना बनती है। इसका जो वर्तमान स्वरूप उपलब्ध है उसमें बिना किसी अध्याय या सर्ग इस प्रकार के विभाजन के आरम्भ से अन्त तक १४५३ श्लोकों में कथाएं निबद्ध हैं। अन्त में 'इति वितस्ता माहात्म्यम्। समाप्तमिदं नीलमतम्। शुभमस्तु।' ऐसा पुष्पिका में लिखा हुआ है। सामान्यतया कोई भी पुराण एक अध्याय में जिसमें १४५३ श्लोक हो नहीं लिखा जा सकता है। ऐसा लगता है कि आरम्भ में ही इसके सारे श्लोकों को बिना किसी अध्याय विभाजन के उतार लिया गया और आगे भी वैसी ही परम्परा चल पड़ी हो। यह भी हो सकता है कि वर्तमान् में उपलब्ध नीलमत पुराण केवल वितस्ता माहात्म्य ही हो और इसका शेष विस्तृत भाग और हो जो दुर्भाग्य से आज उपलब्ध न हो। जो भी यह एक महत्वपूर्ण स्थल पुराण है जिससे काश्मीर के इतिहास, भूगोल और संस्कृति पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

नामकरण का अभिप्राय– जैसा कि सभी पुराणों का नामकरण उसके वक्ता, श्रोता या प्रतिपाद्य देवता के उपर होता है। इस पुराण के जो चार नाम नीलमत, नील-पुराण, नीलमत-पुराण या काश्मीर-माहात्म्य उपलब्ध होते हैं, वे सभी उचित प्रतीत होते है। यहाँ नीलमत इस शब्द में उत्तर पद 'मत' जिसका अर्थ निर्देश, विचार, चिन्तित, विश्वसित, कल्पित, प्रत्यक्ष किया गया आदि होता है इसके अनुसार नीलमत यानी नील के द्वारा कहा गया ऐसा होगा। जिस प्रकार मत्स्य, मार्कण्डेय, गरुड, कपिल, मुद्गलादि पुराणों के नाम उनके वक्ताओं के नाम पर आधारित है वैसे ही यहाँ इस पुराण का मुख्य विषय नील और चन्द्रदेव के संवाद से सम्बन्धित है जहाँ नील (नाग) वक्ता है–(कान्याचाराणि नीलेन चन्द्रदेवाय भार्गव। पुरा प्रोक्तानि चैतानि कथयस्व महाद्युते।।-नीलमत श्लो. ३७३), उपर्युक्त आधार पर 'नीलमतम्', 'नील-पुराणम्' या 'नीलमत-पुराणम्' ये तीनों ही नामकरण सर्वथा उपयुक्त ही है। रहा चौथा नाम 'काश्मीर-माहात्म्य' यह नाम भी उपयुक्त ही है क्योंकि

नीलमत पुराण के अनुसार, शिव पत्नी सती का कश्मीरा रूप से उत्पन्न होना और कश्यप के द्वारा कश्मीरा नामक देश के निर्माण की बात कही गयी। इस पुराण में कश्मीरा देवी और कश्मीर देश की चर्चा होने के कारण 'काश्मीर माहात्म्य' यह नाम भी सार्थक ही प्रतीत होता है-(कश्मीरा नाम सुभगो देशो वै निर्मितो मया। तं देशमम्बुदानेन भावयध्वं शुचिस्मिताः।। -नी.म. २४६)

देशकाल निर्धारण- जहाँ तक नीलमत पुराण के रचना स्थल की बात है, यह काश्मीर की महिमा का वर्णन करने वाला स्थल पुराण होने के कारण, निश्चित रूप से इसकी रचना काश्मीर के किसी प्रदेश (भूभाग) में हुई होगी।

नीलमत पुराण के रचना काल के विषय में विचार करते हुए यदि हम कल्हण की राजतरङ्गिणी को देखें तो कल्हण ने इसे एक महान् प्राचीन रचना माना है जिससे बारहवीं शताब्दी से कहीं पहले इसका अस्तित्व सिद्ध होता है। (कल्हण राजतरङ्गिणी १/१४)

नीलमत पुराण में उदारतापूर्वक बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार करने के कारण इसे आठवीं शताब्दी के बाद की रचना नहीं मानी जा सकती क्योंकि उसके बाद बौद्ध धर्म का वैसा प्रभाव नहीं रहा कि वैष्णव बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार करते। निश्चय ही बाद के बहुत से पुराणों, क्षेमेन्द्र, जयरथ और कल्हण की रचनाओं में बुद्ध को विष्णु का अवतार स्वीकार करने पर भी उन्हें लोगों को भ्रमित करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत कर प्रकारान्तर से बौद्ध धर्म की अवहेलना ही की है। नीलमत का बुद्ध के प्रति उदार भाव देखते हुए निश्चय ही इसकी रचना उस समय हुई होगी जब काश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रभाव जबरदस्त रहा होगा।

अवतार शब्द के स्थान पर प्रादुर्भाव शब्द का प्रयोग भी नीलमत पुराण को प्राचीन सिद्ध करता है। इसी प्रकार कल्कि अवतार, राधा, तुलसी आदि की चर्चा न होना भी इसके प्राचीनता का द्योतक है।

जयरथ के हरचरित चिन्तामणि से तुलना करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि जयरथ ने शिव की सर्वोच्चता सिद्ध करने के लिये शिव चरित्र को अतिरिक्त विशेषताओं से रञ्जित करने की चेष्टा की है। जयरथ और कल्हण द्वारा बुद्ध की यक्षों से तुलना करने जैसी कल्पना के प्रादुर्भाव में निश्चय ही एक लम्बा समय लगा होगा। बारहवीं शताब्दी के लक्ष्मीधर द्वारा लिखित 'कृत्यकल्पतरु' में दिये गये ब्रह्मपुराण के कई वचन किञ्चित् परिवर्तन के साथ नीलमत पुराण में भी प्राप्त होते हैं। ब्रह्म पुराण दो हैं, एक महापुराण और एक उपपुराण। उनमें से एक उप अनुपलब्ध है।

काश्मीर में हिमपात के विषय में ब्रह्मपुराण का मत नीलमत से कुछ अतिरिक्त हट के है अतः ब्रह्म पुराण ने यह प्रसङ्ग नीलमत से लिया है यह सिद्ध होता है। अतः नीलमत

पुराण लक्ष्मीधर (११०४-५४ A.D.) जिनके ग्रन्थ में ब्रह्म पुराण के उद्धरण हैं नीलमत के नहीं, बहुत पहले अस्तित्व में रहा है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण जिसका रचना काल (४०० A.D. से ५५० A.D.) के बीच माना जाता है, ऐसा प्रतीत होता है कि नीलमत पुराण के रचयिता ने किञ्चित् परिवर्तन के साथ इसके श्लोकांशों का प्रयोग किया है। (तौषी तोषित भास्करा/नी.म. ११६-तौषी तत्रार्कनन्दिनी विष्णु धर्मोत्तर १।१६२।३५)

नीलमत पुराण के विषयगत अध्ययन से इस पर भी प्रकाश पड़ता है कि नौंवी और दसवीं शताब्दी में काश्मीर शैव दर्शन के अनुरूप बनाने हेतु इस पुराण में कुछ परिवर्तन और कुछ नये तथ्यों का संयोजन किया गया है। यदि नीलमतपुराण नौवी या दसवीं शताब्दी के बाद की रचना होती तो यह संभव नहीं होता।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर नीलमत पुराण के रचना काल की निम्न सीमा आठवी शताब्दी के बाद नहीं हो सकती और उच्च सीमा छठी शताब्दी से पहले की नहीं हो सकती।

काश्मीर के शैव, वैष्णव एवं बौद्ध धर्म के बारे में नीलमत में जैसा विवरण प्राप्त होता है उससे उपर्युक्त काल ही सिद्ध होता है। नीलमत में वर्णित काश्मीर की राजनैतिक स्थिति भी इसी काल की ओर सङ्केत करती है जिसकी पुष्टि कल्हण की राजतरङ्गिणी के वर्णन से भी हो जाती है, जिसके अनुसार राजा मिहिरकुल की मृत्यु के बाद विभिन्न राजाओं के आपसी सङ्घर्ष के कारण काश्मीर में अराजकता की बात कही गयी है। नीलमत में भी राजाओं के आपसी मतभेद से उनके विनाश होने की बात वर्णित है। (स्वभेदेनेह नश्यन्ति बद्धमूला नराधिपाः।। -नीलमत ८३५)

इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि नीलमत पुराण की रचना छठी या सातवीं शताब्दी में हुई होगी।

संस्करण तथा पाण्डुलिपि– नीलमत-पुराण सर्वप्रथम सन् १९२४ में लाहौर से प्रकाशित किया गया था जिसके सम्पादक प्रो. रामजीलाल काञ्जीलाल और पण्डित जगद्धर झड्डू हैं। दूसरा संस्करण सन् १९३६ में डा. के.डी.-व्रीज द्वारा हुआ है। इसका तीसरा संस्करण अंग्रेजी अनुवाद सहित सन् १९७३ में हुआ। इसका प्रकाशन जम्मू कश्मीर कला संस्कृति भाषा एकेडमी श्रीनगर द्वारा हुआ है। इसकी सम्पादिका डा. वेद कुमारी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय हैं।

पाण्डुलिपियाँ

क्र.	संस्था का नाम	क्रमाङ्क पा.पु.क्रं.	आकार	पंक्ति एवं अक्षर प्रति पंक्ति	लिपि	लिपि काल संवत्	पत्र
१.	रिसर्च लाइब्रेरी जम्मू एण्ड कश्मीर श्रीनगर	१४७८	६-४" x ४-४"	८ पंक्ति २० अक्षर	शारदा	६६	१४३
२.	" "	७१४			देवनागरी	१६१६ पुन लिपि	१८०
३.	रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय जम्मू	४५५	६-३" x ६-५"	१७ पंक्ति १४ अक्षर	"	-	११३
४.	" "	३६६०	१४-३" x ८-५"	२४ पंक्ति २० अक्षर	"	-	५१
५.	" "	३८३०	१३-४" x ७-४"	१३ पंक्ति ३५ अक्षर	"	-	६२
६.	रिसर्च लाइब्रेरी जम्मू एण्ड कश्मीर श्रीनगर	२२२२	२० से.मी x १८ से.मी	१७ पंक्ति ३० अक्षर	शारदा	-	५५
७.	" "	१३०७	३५ से.मी x १७ से.मी	१४ पंक्ति ४५ अक्षर	देवनागरी	-	४०
८.	" "	१८७६	२३ से.मी x १६ से.मी		शारदा	-	६०

नीलमत पुराण की कथावस्तु–नीलमत पुराण का प्रारम्भ वैशम्पायन के प्रति राजा जनमेजय के इस प्रश्न के साथ होता है कि काश्मीर राज्य विश्व का प्रमुख राज्य होने पर भी वहाँ के राजा ने महाभारत के युद्ध में भाग क्यों नहीं लिया। इसके प्रत्युत्तर में वैशम्पायन ने बतलाया कि महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने के कुछ समय पूर्व कश्मीर नरेश गोनन्द को उनके सम्बन्धी राजा जरासन्ध ने यादवों के विरुद्ध युद्ध में सहायता के लिये बुला लिया था। गोनन्द ने जरासन्ध की प्रार्थना स्वीकार कर युद्ध में भाग लिया और बलराम के हाथों मारा गया। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये गोनन्द का पुत्र दामोदर कृष्ण से युद्ध करने गान्धार चला गया जो वहाँ एक स्वयंवर में भाग लेने गये थे। इस युद्ध में दामोदर कृष्ण के हाथों मारा गया। लेकिन कृष्ण ने काश्मीर की अत्यन्त पवित्रता को और सम्मान को देखते हुए एक छोटा मुकुट दामोदर की गर्भवती विधवा यशोवती के पास (उसके

होने वाले पुत्र को राजा के रूप में स्वीकृति के तौर पर) भेजा। पिता की मृत्यु के बाद उत्पन्न होने वाला उसका पुत्र गोनन्द (द्वितीय) इस महाभारत के युद्ध के समय अल्प वयस्क था जिसके कारण उसने कौरव या पाण्डव किसी भी पक्ष की तरफ से युद्ध नहीं किया।[१]

वैशम्पायन ने कश्मीर के अनेक प्रकार के सौन्दर्यों के वर्णन के साथ इसकी महत्ता पर प्रकाश डाला है और इसकी पहचान उमा के रूप में की है। वह पुनः बतलाते है कि कश्मीर घाटी मूल रूप से एक सरोवर थी जो सती-सरोवर के नाम से जाना जाता था।[२]

यह वर्णन कश्मीर के पौराणिक इतिहास की ओर ध्यान खीच ले जाता है जिसके प्रत्युत्तर में वैशम्पायन पूर्व में राजा गोनन्द और ऋषि बृहदश्व के बीच हुए संवाद को सुनाते हैं।

ऋषि बृहदश्व सर्वप्रथम काल विभाजन की चर्चा कर, मन्वन्तर के अन्त में होने वाली प्रलय की घटना का वर्णन करते हैं। मनु और पदार्थों के बीजों की रक्षा एक नौका (जो स्वयं सती ने लोक रक्षार्थ नौका रूप धारण किया है) में बैठकर किया जाना, विष्णु द्वारा उस नौका को एक पर्वत से बान्धा जाना जो बाद में नौ बन्धन के नाम से विख्यात हुआ का वर्णन करते हैं। आगे इस क्षेत्र और सती सरोवर की उत्पत्ति तथा कश्यप द्वारा विभिन्न जातियों की सृष्टि का वर्णन है।[३]

इसके बाद आगे कद्रू और विनता के बीच परस्पर ईर्ष्या के चलते सूर्य के अश्व के वर्ण को लेकर आपस में शर्त लगाने की कथा है। कद्रू के कपट से विनता की पराजय के कारण गरुड़ और नागों में वैर उत्पन्न होता है। गरुड़ नागों का संहार करते है। जिससे डरकर नागों के प्रमुख वासुकी भगवान् विष्णु की प्रर्थना कर उनकी सहायता से शेष नागों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं। विष्णु नागों को रहने हेतु सतीसर नामक यह स्थान प्रदान करते हैं और नील नाग को उनका राजा नियुक्त करते हैं।[४]

इसके बाद दैत्य जलोद्भव की कथा आती है। यह जल में उत्पन्न और नागों द्वारा पालित था। ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर इस दैत्य ने मनु के वंशजों के निवास स्थान जो दारवाभिसार, गान्धार, जुहुण्डुरा, शक, खस आदि की भूमि में बने थे का विनाश प्रारम्भ कर दिया। इस विनाश लीला को देख राजा नील (नाग) अपने पिता कश्यप जो पृथ्वी के तीर्थों की यात्रा के क्रम में कनखल में थे उनसे मिलकर उनसे मद्रक और हिमवान् के तीर्थों में भी आने की प्रार्थना की। कश्यप ऋषि भी स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक

१. नी.म.पु. श्लो. (२-१०) तक
२. नी.म.पु. श्लो. (१२-२६) तक
३. नी.म.पु. श्लो. (२७-५२) तक
४. नी.म.पु. श्लो. (५३-७३) तक

समाधान हेतु ब्रह्मा, विष्णु और शिव से प्रार्थना करते हैं। ब्रह्मा, शिव और अन्य देवताओं को साथ लेकर भगवान् विष्णु दानव को दण्डित करने हेतु नवबन्धन क्षेत्र पहुँचते हैं। दानव जल में अदृश्य हो जाता है, तब भगवान् विष्णु अनन्त नाग से पहाड़ों के प्रतिरोधों को तोड़कर जल के निष्क्रमण मार्ग बनाने को कहते हैं। अनन्त नाग वैसा ही करते हैं। उसके उपरान्त दानव अपनी माया का प्रयोग कर अन्धकार उत्पन्न करता है, जिसे भगवान् शिव अपने हाथों में सूर्य, चन्द्र लेकर दूर कर देते हैं। तदुपरान्त विष्णु से उसका युद्ध होता है और वह अपने चक्र से उसका शिर काट लेते हैं।[1] (वामन पुराण के ८१ अ. में भी यह कथा आयी है जिसके अनुसार दानव जलोद्भव ब्रह्मा के वरदान स्वरूप किसी भी देवता के अपने शस्त्र से अवध्य होने के कारण विष्णु ने शिव का त्रिशूल और शिव ने विष्णु का चक्र लेकर दानव का वध किया)।

इसी कथा के मध्य विष्णु के चक्र को शिव द्वारा प्राप्त करने और उसे सशर्त लौटाने की बात आती है। जिसके अनुसार जलोद्भव को मारने के बाद रक्तरञ्जित सुदर्शन भ्रमण कर रहा था तभी शिव ने उसे पकड़ लिया और विष्णु के पास गये, विष्णु के द्वारा उसको वापस माँगने पर शिव ने वरदान देने के बाद ही उसे लौटाने की बात कही और उस दानव के शिर पर शिव पार्वती के साथ विशिष्ट रूप से वास करने का वर प्राप्त कर लिया।[2]

इसके अनन्तर घाटी में पूर्ण अनुकूलन होने पर कश्यप ऋषि ने इच्छा व्यक्त की कि यहाँ नागों के साथ-साथ मनु के वंशज भी वास करें। किन्तु नागों ने जब मनुष्यों के साथ वास करने से सीधे मना कर दिया तब कश्यप ने उन्हें क्रोध में आकर पिशाचों के साथ रहने का शाप दे दिया। भयभीत होकर नील ने जब शाप वापस लेने की बात कही तब कश्यप ने शाप वापस न लेकर उसमें संशोधन करते हुए कहा कि प्रत्येक वर्ष छः मास पर्यन्त पिशाच मरुभूमि में वास करने जायेंगे और उस अवधि में मनुष्यों का नागों के सहवासी के रूप में यहाँ वास होगा। इस पर भगवान् विष्णु ने नागों को फिर आश्वस्त किया कि पिशाचों का वास यहाँ केवल एक चतुर्युगी तक ही होगा।[3]

आगे चतुर्युगी बीतने के बाद जब मनुष्य पूर्व की तरह छ मास के लिये स्थान छोड़ कर चले गये तब एक वृद्ध ब्राह्मण चन्द्रदेव नहीं गया। पिशाचों द्वारा पीड़ित किये जाने पर वह ब्राह्मण, पिशाच प्रमुख निकुम्भ और अन्य नागों द्वारा सेवित, नागों के राजा नील के पास पहुँचा। ब्राह्मण चन्द्रदेव ने नागराज नील की प्रशंसा करते हुए प्रार्थना की कि आगे से काश्मीर बिना किसी निर्वासन भय के मनुष्यों का भी वास स्थान बने। नागराज नील ने सशर्त इस प्रार्थना से सहमति जताते हुए कहा कि भगवान् केशव द्वारा उसे दिये गये

१. नील.पु. श्लो. (७४-१८०)
२. नील.पु. श्लो. (१८१-२०४)
३. नील.पु. श्लो. (२०५-३३३)

निर्देशों का पालन मनुष्यों को भी करना पड़ेगा। इस पर चन्द्रदेव ने नागराज नील के प्रासाद में छः मास रहकर नील द्वारा बतलाये सभी धार्मिक संस्कारों एवं उत्सवों की जानकारी प्राप्त की। चैत्र मास में छः महिने बाद जब वहाँ के निवासी मानव लौटे तब ब्राह्मण चन्द्रदेव ने मनुष्यों के राजा वीरादेय को इस घटना के सम्बन्ध में सारी जानकारी दी और तब से आगे मनुष्य निरन्तर शान्तिपूर्वक काश्मीर में रहने लगे।[1]

इस कथानक को सुनने के बाद जिज्ञासावश जब गोनन्द ने नागराज नील के क्या निर्देश थे ऐसा प्रश्न किया तब बृहदश्व ने नील नागराज और ब्राह्मण चन्द्रदेव के बीच हुए संवाद को सुनाया है। इस विस्तृत संवाद में लगभग पैंसठ संस्कारों, समारोहों और उत्सवों के बारे में बतलाया है, जो प्रायः अन्य पुराणों में भी वर्णित हैं और भारत में प्रायः सर्वत्र देखने को मिलते हैं। यथा देवोत्थान, नवसंवत्सर, जन्माष्टमी, माघ पूर्णिमा, फाल्गुनी श्रवण द्वादशी, अगस्त्य दर्शन, महानवमी इत्यादि उत्सव तो प्रसिद्ध ही है, लेकिन नीलमत पुराण में कुछ खास उत्सव भी है जिनका सम्बन्ध केवल काश्मीर से ही है। यथा–आश्वयुजी कौमुदी (पिशाचों के निवास मरुभूमि में नष्ट कर उनके राजा निकुम्भ के आगमन के उपलक्ष्य में ३ दिन तक मनाया जाता है।), नवहिमपातोत्सव (हेमन्त और शिशिर ऋतु में हिमालय पूजन, नील नाग पूजनादि), पिशाच चतुर्दशी (पिशाच निकुम्भ का पूजन), पिशाच प्रयाण, इरामञ्जरी, श्रावणी (वितस्ता नदी स्थान, विष्णु पूजा), वितस्तोत्सव, वरुण पञ्चमी, महाद्वादशी।[2]

उपर्युक्त नागराज नील और ब्राह्मण चन्द्रदेव के बीच हुए इस संवाद का महत्व बताते हुए बृहदश्व ने गोनन्द से कहा कि इन निर्देशों का पालन करने से समृद्धि और विजय तथा इनकी उपेक्षा करने से दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राजा की मृत्यु, भयङ्कर दण्डभोग या भारी हिमपात हो सकता है। इस संवाद के मध्य में ही वैशम्पायन के वचन द्वारा यह बताया है कि काश्मीर नरेश गोनन्द द्वारा नागराज नील के इन वचनों का पालन न करने के कारण ही बलभद्र के हाथों मथुरा में मारा गया।[3]

जनमेजय द्वारा यह पुनः पूछे जाने पर गोनन्द ने नागराज नील के इन उपदेशों के बारे में बृहदश्व से सुनने के बाद फिर क्या पूछा के प्रत्युत्तर में पुनः इन्हीं दोनों के संवाद के माध्यम से आगे की कथा कही गयी है।

गोनन्द के द्वारा काश्मीर में निवास करने वाले नागों के नाम और स्थान के बारे में पूछे जाने पर बृहदश्व ने कहा कि सम्पूर्ण नागों के नाम सौ वर्षों में भी बतलाना मेरे लिये संभव नहीं है। अतः केवल प्रमुख नागों के नाम ही बताऊँगा ऐसा कहकर लगभग

---

१. नील.पु. श्लो. (३३४-३८३)
२. नील.पु. श्लो. (३८४-८६६)
३. नील.पु. श्लो. (६००-६११)

छः सौ नागों के नाम बतलाये हैं। आगे वह नाग षडाङ्गुल और नाग महापद्म के सम्बन्ध में कथा सुनाते है।[1]

नाग षड़ङ्गुल को उसकी बुरी आदतों के कारण काश्मीर में प्रतिबन्धित कर दिया था। जब नाग महापद्म गरुड़ के भय से डर कर नागराज नील के पास आया, उसने अपने तथा अपने परिजनों के लिये आश्रय की याचना की। तब नील ने उसे षड़ङ्गुल द्वारा खाली किया गया वह स्थान जहाँ षड़ङ्गुल पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद चन्द्रपुर नगर बसाया गया था तथा जिसके शासक विश्वगाश्व थे, आबण्टित कर दिया। उस नगर का दुर्वासा के शाप से सरोवर में बदलना पूर्व निश्चित था। नागराज नील के परामर्शानुसार नाग महापद्म एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप लेकर राजा विश्वगाश्व के पास गया और उनसे अपने तथा अपने विशाल परिवार के लिये पर्याप्त स्थान की याचना की। राजा ने जब उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, तब महापद्म अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया और उसने राजा विश्वगाश्व से अपनी सम्पूर्ण प्रजा सहित उस नगर को खाली करने को कहा जिससे वह अपने विशाल परिवार के साथ वहाँ रह सके। सत्यवादी राजा विश्वगाश्व ने नगर खाली कर दिया और उसके बाद वह महापद्म से पूरित हो गया।[2]

तदुपरान्त गोनन्द द्वारा काश्मीर के पवित्र तीर्थों के बारे में जिज्ञासा किये जाने पर बृहदश्व ने शिव और अन्यान्य देवों के लिये समर्पित अनेक स्थानों की महिमा का वर्णन किया है। इन तीर्थों में दो नाम 'भूतेश्वर' और 'कपटेश्वर' ने गोनन्द के भीतर उत्सुकता बढ़ा दी। जिसके प्रत्युत्तर में बृहदश्व ने भूतेश्वर माहात्म्य और कपटेश्वर माहात्म्य सुनाया है, जिनमें क्रमशः ब्राह्मण शिलाद और उनका पुत्र नन्दी पर शिवानुग्रह तथा ऋषिजनों के मध्य लकड़ी के लट्ठों के छद्मवेश में शिव के प्राकट्य की कथा वर्णित है।

इसके पश्चात् विष्णु से सम्बन्धित पवित्र स्थानों की चर्चा आती है। जिसमें 'आश्रमस्वामी' इस विष्णु स्थान का विशेष महत्व है जहाँ परशुराम की भक्ति की चर्चा है।

श्लो. १०२६ से १०६७ तक अनेक तीर्थों की चर्चा है जिनमे गाङ्गेय विनायक, काम्यवर, भूर्जस्वामी, हिडिम्बेश, लोवार, श्री विनायक, उत्तङ्केश, गृहावासी, भीमेश, सौमुख, भद्रेश्वर, महास्य, महाशन, गणेषण, पौलस्त्य, गिरिवासी, जयेश्वर, महेश्वर इन गणेशों की चर्चा है, जिनके दर्शन से कार्य सिद्धि होती है। इसी प्रकार पौलस्त्य, मालीवन, गौतमेश, विश्वामित्रेश्वर, सौनासिक, वसिष्ठेश, माखरेश, सुरेश्वर, स्कन्देश्वर, विशाखेश इन कुमारों (कार्तिकेय) के स्थान जिनके दर्शन से गोदानज फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार पुलस्त्य, भरद्वाज, कश्यप, कण्व, अगस्त्य और वसिष्ठ इन ऋषियों द्वारा स्थापित इन्द्र के स्थान हैं

१. नील.पु. श्लो. (६१२-६६०) तक
२. नील.पु. श्लो. (६६१-१०२५) तक

जिनके अर्चन से स्वर्ग लोक प्राप्ति होती है। आगे वसिष्ठादि द्वारा स्थापित यम के स्थान, विरूपाक्ष, वरुण और बली द्वारा स्थापित शिव, मानस से उत्तर स्थित पुलस्त्य द्वारा स्थापित शिव के दर्शन से रोग भय मुक्ति होती है। अगस्त्य द्वारा स्थापित कुबेर, मणिभद्र, चन्द्रदेव और कामदेव के स्थान जहाँ दर्शनादि से धन, रूप, प्रसन्नता, ऐश्वर्यादि की प्राप्ति होती हैं। आगे पुलस्त्य द्वारा स्थापित भेंडा, विशोका, काश्मीरा, भीमा, कापिञ्जलि, भद्रेश्वरी, गौतमेशी, कालशिल, उद्योगश्री, गवाश्री, चण्डिका, दुर्गा, गौरी, विजया, शकुनी, ब्रह्मचारिणी, चक्रेश्वरी, हराङ्गगा आदि विभिन्न देवी स्थानों तथा कार्तवीर्यार्जुनस्वामी (दिवाकर) कश्यपस्वामी (मार्तण्ड), विश्वगाश्व स्थापित रवि, सुचन्द्रेश, सुचक्रेश, सुरभिस्वामी इन सूर्य स्थानों की चर्चा है। ब्रह्मा, विष्णुस्वामी, हरस्वामी, कश्यपस्वामी, पिङ्गलेश्वर, बिन्द्रनादेश्वर, भद्रेश्वर, चन्द्रेश्वर, ज्येष्ठेश, बालखिल्येश्वर, केशवेश, कश्यपेश, कामेश, सूर्येश्वर, विमलेश्वर, शङ्खेश, हिमाचलेश, वैवट्टिलेश्वर, महानदीश्वर, राजेश्वर, धनदेश्वर, नृसिंहेश और भूतेश्वर प्रसिद्ध शिव क्षेत्र हैं।

भूतेश्वर माहात्म्य वर्णन (श्लो. १०६८ से ११६८ तक)– नन्दि द्वारा किस प्रकार शिव की आराधना की गई इस विषय में गोनन्द द्वारा जिज्ञासा की जाने पर बृहदश्व ने भूतेश्वर माहात्म्य सुनाया। इसके अनुसार नन्दि पर्वत पर शिलाद नामक ब्राह्मण ने पाषाण चूर्ण खाकर पुत्र प्राप्त्यर्थ सौ वर्षों तक भगवान् शिव की आराधना की। तब भगवान् ने अपने प्रमुख गण नन्दी को पुत्र रूप में प्रदान किया। इस पर नन्दी ने भगवान् से कहा कि मैं ब्राह्मण का आयोनिज पुत्र होना चाहूँगा तथा मैं बहुत दिनों तक आपसे दूर नहीं रह पाऊँगा। वैसे भी उमा के विवाह में भृगु ऋषि के शाप से मनुष्य योनि में जाना होगा। आगे नन्दी की उत्पत्ति बताते हुए कहा है कि शिला को चूर्ण करते समय शिलाद ऋषि को शङ्कर के प्रसाद से पुत्र प्राप्त हुआ। बालक के संस्कार के समय ब्राह्मणों ने जब उसे अल्पायु बताया तब शिलाद रोने लगे। इस पर नन्दी ने अपने पिता से शिवाराधन करते दीर्घ जीवन प्राप्त करने की बात कही। पिता से आज्ञा लेकर तपस्या हेतु हिमालय के हरमुकुट शिखर पर आया और उसने तपस्या आरम्भ की। एक भारी शिला अपने शिर पर रखकर कालोदक तीर्थ में शिव नामोच्चार के साथ नन्दी ने शिवाराधन शुरु किया। सौ वर्षों की तपस्या के बाद देवी उमा ने शिव को नन्दी के पास जाकर वर देने को कहा। इस पर शिव वाराणसी से चले मार्ग में प्रयाग, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार, स्थानेश्वर, कुरुक्षेत्र, विष्णुपद क्षेत्र, शतद्रु, विपाशा, दूरावती आदि नदियों को पारकर भरतगिरि पर आये। वहाँ पार्वती को वृष के साथ छोड़कर दुर्गम चढ़ाई चढ़ते हुए अकेले ही आगे बढ़े। जहाँ पथेश्वर, मार्गावरोध बने पर्वत पर प्रहार करने से मुण्डपृष्ठ वहाँ कृपाणी तीर्थ, अप्सरसतीर्थ, हंसतीर्थादि को प्रकट करते ब्रह्मा, इन्द्रादि द्वारा पूजित होकर कालोदक तीर्थ पहुँचे। शिलाद और नन्दी दोनों पर अनुग्रह कर उन्हें गणों में सम्मिलित कर वहाँ भूतेश्वर के नाम से विख्यात हुए। यहीं वसिष्ठ द्वारा स्थापित नन्दी प्रतिमा व ज्येष्ठेश की भी चर्चा आयी है।

कपटेश्वर माहात्म्य (श्लो. ११६६ से ११६१ तक)– शिव के कपटेश्वर इस नामकरण के विषय में गोनन्द द्वारा जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर बृहदश्व ने यह आख्यान सुनाया है। एक बार कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के किनारे शिव दर्शन हेतु तप कर रहे करोड़ों ऋषियों को भगवान् रुद्र ने काश्मीर में नाग क्षेत्र में जाकर आराधना करने को कहा जहाँ कपटवेश में उन्हें शिव दर्शन होंगे। इस पर सभी महात्मा शिव दर्शन की लालसा से नाग क्षेत्र पहुँचे तो वहाँ उन्हें थोड़ा भी जल न दिख कर लकड़ियों का ढेर दिखायी दिया। उन्हें हाथों से हटाकर जैसे ही उन महात्माओं ने स्नान किया वे सभी रुद्र रूप हो गये।

उन ऋषियों में गौर पाराशर नामक एक वसिष्ठ गोत्रीय महात्मा उन्होंने न स्नान किया और न ही उन लकड़ियों का स्पर्श, अपितु निराहार रह कर शरीर को सुखाने लगे, जिस पर स्वप्न में आकर शिव ने उन्हें काष्ठ स्पर्श पूर्वक स्नान कर रुद्रत्व प्राप्त करने की बात कही। किन्तु महात्मा ने कहा कि आपने कपट रूप से दर्शन देने की बात कही थी। अतः दर्शन किये बिना न तो मैं यहाँ से जाऊँगा और न ही अन्न ग्रहण करूँगा। इस पर भगवान् शिव ने कहा कि मैं तो पहले ही काष्ठ रूप से दर्शन दे चुका हूँ और दर्शन कर वे महात्मा रुद्र रूप भी प्राप्त कर चुके हैं। फिर भी तुम्हारी तपस्या उनसे अधिक होने से तुम अतिरिक्त वर माँग लो। इस पर गौर पाराशर ने कहा कि भगवन् अगर आप मुझे वरदान देना चाहते हो तो आप इस काष्ठ रूप में सभी को दर्शन दे। इस पर भगवान् शिव ने कहा कि सर्वसाधारण लोगों को इस काष्ठ रूपी नन्दी का दर्शन तो होगा लेकिन मेरा इस रूप में कभी-कभी ही दर्शन होगा। कपट रूप में मेरा लोगों को दर्शन होने के कारण यह स्थान कपटेश्वर के नाम से विख्यात होगा और इस क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में लोगों को जल सुलभ होगा।

आगे गोनन्द ने काश्मीर के विष्णु क्षेत्रों के विषय में श्रवण की इच्छा व्यक्त की है जिसका समाधान बृहदश्व ने इन तीर्थों का वर्णन कर किया है। चक्रधर, नरसिंह, बहुसर वसिष्ठ-कद्रू-विनता-गौतम द्वारा स्थापित केशव, महापद्मसर स्थित नरसिंह, इन्द्र, वरुण, कुबेर, ब्रह्मा, यम, हर, दिवाकर, सोम, वह्नि, पवन, कश्यप, भृगु, पुलस्त्य, अत्रि आदि द्वारा स्थापित भूर्जस्वामी, महास्वामी, शतश्रृङ्ग, गदाधर, भृगुस्वामी, जनार्दन आदि नामों से विख्यात विष्णु विग्रह हैं। मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म, हंस, वराह, हरि, गरुड़, शेषशायी आदि अवतारों के साथ ही गृध्रकूट से परशुराम द्वारा यहाँ लाये गये पूर्व में भृगु द्वारा स्थापित 'आश्रमस्वामी' नामक विष्णु विग्रह की विशेष चर्चा है।

आश्रमस्वामी उपाख्यान (श्लो. १२११ से १२७५)– राजा गोनन्द द्वारा ऋषि बृहदश्व से गिरिश्रेष्ठ गृध्रकूट से भृगु द्वारा स्थापित विष्णु विग्रह परशुराम अपने आश्रम के निकट क्यों ले आये ऐसा पूछने पर यह आश्रमस्वामी उपाख्यान सुनाया है। अपने पिता जमदग्नि के वध का प्रतिशोध लेते हुए पूर्व में परशुराम ने जो इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार

किया था उसमें इक्कीसवें युद्ध में कुछ क्षत्रिय काश्मीर के गिरि दुर्गों में भागे। किन्तु परशुराम ने वहाँ भी उनका पीछा करते हुए उन्हें मधुमती नदी के किनारे ले जाकर सब का वध कर दिया और उसके उपरान्त भगवान् केशव की स्थापना की जो स्थान राजवास इस नाम से जाना जाता है। रौद्र भाव से स्थापित होने के कारण यहाँ तामसी पूजा पशुबलि वगैरह का विधान है। उसके बाद कुरुक्षेत्र में आकर जब परशुराम ने अपने पूर्वजों का तर्पण किया तब उन्होंने कहा कि पलायमान शत्रु अवध्य होता है। उनका तुमने वध किया। अतः प्रायश्चित्त हेतु तीर्थयात्रा करो, जिससे तुम्हारी पूर्ण पाप निवृत्ति होगी। उसके अनन्तर ही तुम तप करने के अधिकारी होगे।

इसी क्रम में परशुराम कश्मीर के अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए गृध्रकूट पहुँचे जहाँ शद्ध सरस्वती के जल में स्नान करते ही राम के क्षत्रियों के रक्त से रञ्जित हाथ शुद्ध हो गये। उस स्थल को वर प्रदान कर राम ने पथेश्वर में आकर तप किया वहाँ से ब्रह्मसर ने निर्गत पुण्योदा तट पर और उसके बाद गृध्रकूट के समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने कष्ट से बचने के लिये भृगु द्वारा पर्वत पर स्थापित विष्णु का विग्रह अपने आश्रम में लाने का विचार किया। प्रभु का आदेश प्राप्त करने की इच्छा से राम ने एक वर्ष तक कठोर तप किया जिसके परिणाम स्वरूप नारायण ने दर्शन दिये। परशुराम ने स्तुति कर प्रभु को प्रसन्न करके गृध्रकूटस्थ भृगु द्वारा स्थापित उस श्रीविग्रह को आश्रम में लाने की इच्छा निवेदन की जिससे लोगों को भी दुर्गम पर्वत पर चढ़ने का कष्ट न हो। भगवान् ने भी उन्हें इस कार्य हेतु अपनी सहमति दे दी। प्रभु का आदेश पाकर भगवान् परशुराम उस विग्रह को अपने आश्रम में लाकर स्थापित किये और स्वयं तप करने हेतु महेन्द्र पर्वत पर चले गये। परशुराम के आश्रम में लाकर स्थापित होने से यहाँ भगवान् 'आश्रमस्वामी' इस नाम से विख्यात हुए। आगे १२७५ श्लो. से १३२५ और फिर १३२६ श्लो. से १४२२ श्लो. तक इस कश्मीर एवं उसके समीपस्थ अनेकानेक तीर्थों, सरोवरों, नदी सङ्गमों और देव विग्रहों की चर्चा है। जिसे महात्मा बृहदश्व ने राजा गोनन्द को सुनाया है।

वितस्ता माहात्म्य (श्लो. १४२३ से १४५३ तक)– राजा जनमेजय ने व्यास शिष्य वैशम्पायन से राजा गोनन्द और महात्मा बृहदश्व के संवाद के माध्यम से हिमालयस्थ काश्मीर प्रदेश के इतिहास, तीर्थ, सरोवर, नदियों आदि के बारे में सुनने के बाद एक बार पुनः वितस्ता नदी की महिमा सुनने की इच्छा व्यक्त की है। इस पर वैशम्पायन ने वितस्ता की महिमा पुनः सुनायी है।

भगवान् शिव की पत्नी दक्ष कन्या सती देहोत्सर्ग के बाद जहाँ पुनः नगराज हिमाद्रि की कन्या उमा के रूप में अवतरित हुई, वही पापनाशिनी यमुना और मन्वन्तर की समाप्ति पर प्रलयकालीन जल से मनु की रक्षा करने हेतु नौका के रूप में, वही कश्मीरा देवी और वही शूलघात से पाताल से प्रकट वितस्ता है। वितस्ता स्नानादि कार्य में गङ्गा जैसा ही फल

देने वाली है केवल अस्थि विसर्जन की महिमा गङ्गा में अधिक है क्योंकि भगीरथ इसे इसीलिये लाये थे। यहाँ जप, तप, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि की महिमा, चन्द्रभागादि अनेक नदियों का आगमन और वितस्ता से सङ्गम, वितस्ता की महिमा को प्रदर्शित करता है। भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को सारे तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, कूपादि वितस्ता में स्नानार्थ आते हैं। इसके माहात्म्य श्रवण से सभी पापों की निवृत्ति बतलायी गयी है। यह नीलमत पुराण एक स्थल पुराण है। स्थानीय स्तर पर वितस्ता का विशेष महत्व होने के कारण ही उसे इतना महिमा मण्डित किया है ऐसा प्रतीत होता है। इसी के साथ यह नीलमत पुराण का सम्पूर्ण वर्ण्य विषय पूर्ण होता है।

नीलमत पुराण का भाषागत वैशिष्ट्य– अभिधा शक्ति के प्राधान्य वाले पुराण वाङ्मय में अभीष्ट अर्थ को ही प्रकट करने का आग्रह होता है। एक मित्र की तरह पाठकों के हृदय में कथानकों के माध्यम से हितकारी बातों को हृदयङ्गम कराना ही पुराणों का उद्देश्य होता है। इनकी भाषा सरल सुबोध और प्रवाहमयी होती है। उसमें व्यावहारिकता का पुट अधिक होने से वह लौकिक व्याकरण के नियमों में अपवाद रूप हो शब्द प्रयोग में संकोच नहीं करता। नीलमत पुराण भी इसका अपवाद नहीं है। यहाँ कुछ उदाहरण देखे जा सकते है। धातुओं के गणों में परिवर्तन (उपासन्त, उपासन्ति यहाँ अदादि से भ्वादि गण नी.म. श्लो. ३३२/३३), परस्मैपदी के लिये आत्मनेपदी विनश्यति के लिये विनश्यते श्लो. ३६, स्वपिषि के लिये स्वपिषे श्लो. १०७६। इसी प्रकार वाच्य जनित दोष कर्तृवाच्य की जगह कर्मवाच्य और कर्मवाच्य की जगह कर्तृवाच्य श्लो. २२६ उष्यते के लिये वसते, श्लो. १०५१ में तपते के लिये तप्यते, लिङ्ग व्यत्यय तो प्रायः हुआ है– विषयः के लिये विषयम्, देशः के लिये देशम्, यज्ञाः के लिये यज्ञानि आदि क्रमशः १३, (२६, ४४, १३८), १०८१ श्लोकों में देखा जा सकता है। इसी प्रकार व्याकरण सम्बन्धी और भी दोष देखे जा सकते हैं, किन्तु ये सभी दूषण नहीं भूषण ही हैं।

छन्द– इसके १४५३ श्लोकों में अधिकांश अनुष्टुप छन्द में है और मात्र ४०-४५ श्लोक ही त्रिष्टुप में हैं। जहाँ तक अलङ्कारों की बात है इसमें जटिल अलङ्कारों का प्रयोग न होकर उपमा, रूपक विरोधाभासादि के उदाहरण मिलते हैं। इन अलङ्कारों का प्रयोग भाषा के शृङ्गार के रूप में न होकर अपितु उसे प्रभावी बनाने या अज्ञात को ज्ञात रूप में लाने के लिये किया गया है। सूर्य, चन्द्र, आकाश, मेघ आदि इन प्राकृतिक वस्तुओं की ही उपमायें दी गयी है। (आकाशमिव गम्भीरं.....।, चन्द्ररश्मि निकाशेन चीनांशुकेन....। इत्यादि) उपमा की तुलना में रूपकों की संख्या कम है। कश्मीरा को उमा या नदियों को देवियों की उपमा दिये जाने में वैसा सौन्दर्य नहीं है। (यैव देवी उमा सैव कश्मीरा नृप सत्तम।)[1] इसी प्रकार वितस्ता को गङ्गा के समान कहा है। केवल अस्थि क्षेपण का

---

१. नीलमत श्लो. १२, २३८, २५५

छोड़कर यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग है। (केवलं जाह्नवीतोये पुरुषस्यास्थिसम्भवः। वितस्तातोऽधिकोराजन् स्नानार्थं तुल्यमेव च।। वितस्ता ४२६ श्लोक), इसी प्रकार श्लो. १२६२ में जहाँ विष्णु का वर्णन है, वहाँ विरोधाभास अलङ्कार है।- (सूक्ष्मातिसूक्ष्म देवेश महद्भ्योऽपि महत्तर), नीलमत पुराण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्थानादि के नामों में पूर्व रूप श्लेष देखने को मिलता है। यथा- श्लो. ८२ में प्रयागं याग बहुलं....., ६४ में यमुनां यमपाशध्नीं....., १२० में चन्द्रांशु शीतल जला चन्द्रभागा सरिद्वरा। आदि) इसी प्रकार अनुप्रास संज्ञा-संज्ञा, विशेषण-विशेषण, संज्ञा-विशेषण, क्रिया-क्रिया विशेषण को सम्यक् प्रदर्शित करता है (श्लो. ६५, ६६६, १०६५, ...)[1] इसी प्रकार अन्तर्वर्त्तीं तस्य पत्नीं....., विभुश्चापि प्रभुश्चापि....., विश्वाची च धृताची च.....) इत्यादि में तुकबन्दी दिखाई देती है।[2]

ऐतिहासिक-भौगोलिक विशेषताएँ- ऐतिहासिक दृष्टि से भी नीलमत पुराण का विशेष महत्व है। यह पुराण जहाँ काश्मीर के इतिहास पर प्रकाश डालता है, वहीं उसके आसपास के क्षेत्रों, महाभारत काल में काश्मीर से सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। यद्यपि वर्तमान नीलमत पुराण में केवल एक ही राजा गोनन्द की चर्चा है। किन्तु आचार्य कल्हण अपनी राजतरङ्गिणी में वर्णित आरम्भ के चार राजाओं का चरित्र नीलमत से लेने की बात करते हैं जो इसके ऐतिहासिक महत्व को दर्शाता है।

काश्मीर की अनेक जनजातियों नाग, पिशाच, दारव, अभिसार, गान्धार, जागुड, शक, खस, तङ्गण, माण्डव, मद्र, अन्तर्गिरि और बहिर्गिरि और यवनादि से सम्बन्धित इतिहास पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। नीलमत पुराण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि काश्मीर की घाटी जो आरम्भ में सती देश के नाम से विख्यात था, उस पर नागों द्वारा सर्वप्रथम उसके सरोवर से देश में परिवर्तन के बाद अधिकार कर लिया था। यद्यपि सिन्धु सभ्यता के साथ-साथ इतिहास पुराण और बौद्ध साहित्य से भी नागों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु नीलमत पुराण में उपलब्ध सामग्री ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस पुराण के नाम में नील यह शब्द ही नाग नील से सम्बन्धित है। इतना ही नहीं दो तिहाई से ज्यादा पुराण का भाग नील द्वारा बतलाया गया है। नीलमत पुराण के अनुसार देव, दैत्य, दानव, खस, गरुड़ आदि की तरह नागों के पूर्व पुरुष प्रजापति कश्यप और दक्ष कन्या कद्रू है। गरुड़ से शत्रुता के कारण उनके प्रमुख वासुकी द्वारा विष्णु से प्रार्थना, विष्णु द्वारा सतीसर निवास के लिये देना, नील को राजा बनाया जाना, मनुष्यों को सहवासी बनाने के कश्यप ऋषि के प्रस्ताव से असहमति, बाद में जलोद्भव का अन्त,

---

१. परं पुराणं परमं सनातनम्।, सुवासाः स्वनुलिप्ताङ्गः सुचित्तः सुसमाहितः।, विशोकां विजयेशंच वितस्तां.....,

२. नील पु. श्लो. ६, ६३६, ६६५, ..., ३८२, ६५७.....

कश्यप के शाप से उन्हें छ-छ महीने पिशाचों एवं मनुष्यों के साथ रहना और चतुर्युगी के बाद स्थायी रूप से मनुष्यों के साथ रहने की कथा पुराण में वर्णित है।

यहीं षड्ङ्गुल नाग स्त्रियों का अपहरण करने के कारण नागराज नील द्वारा निष्कासन, दारव देश का उशीरक पर्वत और सुरक्षा विष्णु के कहने पर दिया जाना तथा एक अन्य नाग महापद्म द्वारा ब्राह्मण वेश से राजा विश्वगाश्व से निवास हेतु चन्द्रपुर नगर प्राप्त करना, ६०३ नागों की नामावली और नाग पूजा के सन्दर्भ ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

नीलमत पुराण में पिशाचों की भी चर्चा आती है। इस पुराण के श्लो. २०३-२०६ के अनुसार पिशाचों का एक समूह जो दैत्यों से मित्रता रखते थे, ६ योजन विस्तृत मरु समुद्र में आरम्भ में वास करते थे। बाद में निकुम्भ को कुबेर द्वारा ५ कोटि पिशाचों को नियन्त्रित करने उनका प्रमुख बनाया गया। छ महीने मरुभूमि में रहने के बाद छ महीने हिमालय पर रहने लगे। बाद में कश्यप ऋषि के नागों को शाप दिये जाने पर उनका प्रतिवर्ष ६ माह पर्यन्त काश्मीर घाटी में अधिकार हो गया। एक चतुर्युगी बाद पिशाच पूर्ण रूप से काश्मीर घाटी से बाहर कर दिये गये। इन कथाओं से भूत प्रेत की तरह कोई मृतात्मा न होकर एक जनजाति हो सकती है जिनकी जानकारी अन्य पुराणों और भाषा, संस्कार आदि से भी सम्बन्धों को देखते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से यह सामग्री भी महत्वपूर्ण है।

नीलमत पुराण के अनुसार कल्पारम्भ से छ मन्वन्तर पर्यन्त कश्मीर भूभाग एक विशाल सरोवर (झील) जो ६ योजन लम्बा और ३ योजन चौड़ा था, के रूप में सतीसर के नाम से जाना जाता था। सातवें मन्वन्तर में भगवान् विष्णु के आदेश से हल से पर्वत में निर्गम बना कर अनन्त नाग ने उस जल को बाहर निकाला जहाँ जलोद्भव दानव छिपा था। उसके बाद जलोद्भव की मृत्यु उपरान्त कश्यप ऋषि ने पिशाचों एवं मनुष्यों को वहाँ बसाया जो वहाँ के आदि निवासी नागों के साथ रहते थे। यह काश्मीर की मूल उत्पत्ति का इतिहास वर्णित है।

आधुनिक भूगर्भ वैज्ञानिक सर्वेक्षणों से भी उपर्युक्त पौराणिक मत का सत्यापन होता है। ड्रिव, कोलोनेल, गाडविन, आस्ट्रिन, लेडेकर आदि वैज्ञानिकों ने वर्तमान कश्मीर के स्थान पर एक विशाल झील होने का अनुमान लगाया है जो घाटी के वर्तमान स्तर से दो हजार फुट ऊँचाई पर थी। डा. वाडिया ने इसका विस्तार ३००० वर्ग मील से भी अधिक होने का अनुमान किया है। आधुनिक अनुसन्धानों के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त कथानक में अनन्त नाग द्वारा झील का जल बाहर निकलने का अर्थ किसी भूकम्प या चट्टानों की प्लेटों के टकराहट से यह घटना घटी होगी ऐसा कहना उपयुक्त होगा।

कश्मीर घाटी हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा नदी का प्रवाह है। नीलमत (अघृष्यं परराष्ट्रानां तद् भयानामकोविदम्। दुर्गत्वादस्य देशस्य परचक्र भयं विना।।) इन श्लोकों द्वारा

कश्मीर के बाहरी आक्रमण से बहुत अंश में अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सुरक्षित होने की बात कहता है। नीलमत पुराण में अनेक पर्वतों एवं लगभग ६० नदियों की चर्चा आई है। अनेक नदियों की पहचान में नीलमत पुराण सहायक हुआ है। उदाहरणार्थ पुराणों में बहुचर्चित देविका नदी के विषय में पार्जीटर महोदय ने पञ्जाब से प्रवाहित होने वाले डेघ झरने के रूप में इसकी पहचान की थी। किन्तु उनके इस मत को प्रारम्भ में अन्य लोगों का अपेक्षित समर्थन नहीं मिला। किन्तु कालान्तर में पञ्जाब विश्वविद्यालय के श्री जे.एन. अग्रवाल ने चावल उत्पादन में इस डेघ धारा की प्रमुख भूमिका को देखते हुए विष्णु धर्मोत्तर पुराण एवं नीलमत पुराण के आधार पर पार्जीटर के मत को उचित सिद्ध किया है।[1]

इसी प्रकार वर्तमान नगरों के इतिहास एवं भूगोल को जानने तथा कश्मीर के विषय में अन्य भौगोलिक या भूगर्भ शास्त्रीय अनुसन्धानों में नीलमत का वर्णन सहायक हो सकता है।

सांस्कृतिक महत्व– सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करने पर नीलमत पुराण में भी अन्य पुराणों की तरह समन्वयवादी दृष्टिकोण होने से धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक माना जाता है। यद्यपि मङ्गलाचरण में विष्णु का स्मरण होने के साथ ही इसके दो तिहाई भाग में विष्णु का ही प्राधान्य दिखता हैं। किन्तु आगे एक तृतीयांश में शिव की भी महिमा विशेष रूप से वर्णित है। भूतेश्वर और कपटेश्वर के आख्यानों में शिव का ही प्राधान्य है। शिव से भी अधिक 'उमा' को इस पुराण में स्थान मिला है। आरम्भिक सर का सती सरोवर के रूप में नामकरण, उमा का ही कश्मीरा और वितस्ता नदी के रूप में वर्णन, सती का नौका अवतार देवी महिमा को प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार गणेश, कुमार (कार्तिकेय), ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्रादि के स्थानों की चर्चा है। नीलमत में लगभग ६३ पर्व उत्सव आदि की चर्चा है जिनमें से अनेक भारत के इतर भागों में देखने को मिलते है। किन्तु कुछ विशेष रूप से काश्मीर की ही समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को उद्घाटित करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थ राजतरङ्गिणी का आधार भी नीलमत पुराण को ही स्वीकार किया गया है। नीलमत पुराण भी पौराणिक परम्परानुसार सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन करने में समर्थ रहा हैं। ये स्थल पुराण विशेष रूप से जहाँ देशाटन को प्रेरित करते हैं, वही भारत के अन्य खण्डों के देवी-देवताओं को अपने खण्ड में भी दर्शाता है, जिसका उद्देश्य अशक्त व्यक्तियों को भी तीर्थाटन करने की ग्लानि न रह जाये। नीलमत पुराण में भी देवतायनों की जो चार सूचियाँ

---

१. हरस्य दयिता भार्या शैलराजसुता वरा। उमादेवीति मद्रेषु देविका या सरिद्वरा। नराणामनुकम्पार्थं ब्राह्मणैरवतारिता। तीरयोरुभयोस्तस्याः क्षेत्रं क्रोशचतुष्टयम्।। –वि.धर्मो. १।१६७।१५-१६ (यैव देवी उमा सैव देविका प्रथिता भुवि। मद्राणामनुकम्पार्थं भवद्भिरवतारिता। सर्वत्र देविका तीर्थं क्षेत्रं क्रोशचतुष्टयाम्। यत्र कूपतटाख्यातं पुण्यं सर्वमशेषतः।। –नी.पु. श्लो. ११४, १६६)

है उनमें एक भारत के अन्य तीर्थों की भी है। यहाँ वितस्ता, चन्द्रभागा आदि को गङ्गा के रूप में ही प्रस्तुत किया है। जो ऋषियों की दूरदृष्टि का परिचायक है।

उपसंहार– इस प्रकार नीलमत पुराण कश्मीर की उत्पत्ति, वहाँ की ऐतिहासिक भौगोलिक, भूगर्भ वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं दार्शनिक विशेषताओं पर सम्यक् प्रकाश डालता है। काश्मीर की महान सांस्कृतिक परम्पराओं पर प्रकाश डालने वाला यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एकमेव उपलब्ध स्थल पुराण है। जो इस क्षेत्र के सम्बन्ध में होने वाले नूतन अनुसन्धान हेतु एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

दत्तपुराण

वैदिक वाङ्मय के साथ-साथ पुराण साहित्य भी भारतीय संस्कृति का द्योतक एवं आधार है। पुराण अपने इतिवृत्तों को व्यक्त करते हैं। अपने पूर्वजों की यशस्विनी गाथाओं को स्मरण करते भारतीय गर्व अनुभव करते हैं। विश्व दरबार में अपनी अस्मिता के कारण आज भी भारत श्रेष्ठ है। अतः स्मृति ग्रन्थ व्यक्त करता है-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।[1]

आम जनता के लिए उद्दिष्ट इतिहास पुराण शास्त्र पञ्चम वेद रूप में ख्यात है-

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः।।[2]

उक्त पुराण वाङ्मय में अठारह महापुराण, अठारह उप पुराण एवं अठारह औप पुराण के अतिरिक्त अनेक स्थल पुराण आते हैं, और ऐसे पुराणों के उल्लेख स्थान-स्थान पर आते है जो आज भी उपलब्ध नहीं हैं। भास के नाट्क चक्र जो प्रथम शती के पूर्व लिखे गये थे और एकोनविंश शताब्दी में प्राप्त हुए, ऐसे ही वे पुराण कभी उजागर हो सकते हैं। ऐसे पुराण हैं-और्बुद, आञ्जनेय, आनन्द, उत्तर, सौर, ऊर्ध्व कन्यका, कच्छ, कात्यायनी, कारण, कृष्ण, कातव, कौशिकी, गर्ग, गण्डकी, गालव, गोमती, गोकर्ण, चण्डी, जैमिनि त्वष्टा, तुला, दत्त, देवी रहस्य, निरञ्जन, प्रजा, पुरुषोत्तम, पुष्कर, भविष्योत्तर, भगवती, भूगोल, भूचर, भैरव, मार्त्तण्ड, माधवीय, माघ वृहल्लिङ्ग, बृहन्मत्स्य, वृहद्विष्णुधर्म, वैराट, सरस्वती, स्वल्पमत्स्य, सोम, सौरधर्म, सौरधर्मोत्तर, सन्तोषी एवं शिवधर्मोधर आदि प्रमुख है। उपर्युक्त अनुपलब्ध पुराणों में सौभाग्य से दत्त पुराण उपलब्ध हो गया है जो कि उप पुराण की कोटि में आता है।

नामकरण एवं पाण्डुलिपि

अत्रि एवं अनसूया के पुत्र दत्तात्रेय भागवतपुराण के अनुसार अवतार हैं।

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो ममाहमिति यद्भगवान् स दत्तः।[3]
तत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः।।

---

१. मनुस्मृति २/२०

२. श्रीमद्भागवत ३/१२/३६

३. वही २/७/४

धर्म की रक्षा एवं दुष्ट संहार के अतिरिक्त लोक शिक्षण भी अवतार लेने का प्रयोजन है, जिससे जगत् का कल्याण होता है। भागवत पुराण के अनुसार-

मर्त्यावतारः खलु मर्त्यशिक्षणं
रक्षोबधायैव न केवलं विभोः।

अव्यय अप्रमेय, गुणहीन तथा गुणात्मक भगवान् की अभिव्यक्ति मनुष्यों के परम कल्याणभूत मोक्ष के साधन के लिए है। यदि भगवान का अवतार धरती पर नहीं होता तब उनके अशेष गुण का ज्ञान मनुष्यों को कैसे होता। भगवान के धराधाम आने पर ही उनके आचार को देखकर लोग उनकी अलौकिकता को जान सकते है। इस तरह दत्तात्रेय की जीवन शैली को देखकर ही लोगों को उनकी अलौकिक तपस्या, सिद्धि एवं उपलब्धियों के बारे में ज्ञान होता है। अतः दत्त पुराण, का नाम दत्तात्रेय के लघु नाम-रूप से पड़ा है।

उपपुराणों के काल निर्णय के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। परन्तु इनकी प्राचीनता सिद्ध हो चुकी है। क्योंकि षड्गुरु शिष्य के द्वारा रचित वेदार्थनिणय में नरसिंह उपपुराण से अनेक श्लोक उद्धरण के रूप में लिए गये हैं। ऐतिहासिकों ने षड़गुरुशिष्य का समय १०३० शताब्दी के पूर्व माना है। अतः मोटी तौर पर यह कह सकते हैं उपपुराण की रचना ग्यारहवी शताब्दी तक हो गई होगी। वैदेशिक विद्वान् विण्टरनिज भी उपपुराण रचना काल षष्ठ शताब्दी से दशम शताब्दी तक मानते हैं। परन्तु भारतीय विद्वान् डॉ. आर. सी. हाजरा ने उपपुराणों की रचना ख्री.पू. ५०० से प्रारंभ हो गया था, ऐसा मानते हैं।[1]

सन्दर्भित दत्तपुराण बहुत पहले निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई द्वारा प्रकाशित हो चुका था। परवर्ती समय में कृष्णदास अकादमी, वाराणसी द्वारा विक्रम संवत् २०४० अर्थात् ख्रीष्टाब्द १९५२ में इसका पुनर्मुद्रण हुआ है। इसके ऊपर स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती द्वारा वासुदेवी नामक संस्कृत टीका भी उपलब्ध है।

इससे अतिरिक्त ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत अतिविशाल दत्तमाहात्म्यम् भी पृथग् रूप में आवाजी रामचन्द्र, आन्ध्रप्रदेश द्वारा १८९६ संवत्सर में प्रकाशित है जिसकी श्लोक संख्या ४७४४ है। इसमें कुल चार अंश हैं। संवाद रूप में उक्त ग्रन्थ रचित है-श्रीकृष्ण श्रीदामसंवाद, अवधूत-यदुसंवाद, प्रहलाद-अजगर संवाद एवं कुञ्जलकपिञ्जल संवाद के रूप में यह वर्णित है। मुख्य वर्णित विषय निम्नवत् है अनूसया अत्रि के द्वारा दत्त की उत्पत्ति, वेन-नहुष कथा, अनघानघव्रत, एकादशीव्रत, भद्रशील चरित एवं हुण्डवध आदि। इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं भावगर्भित है।

---

१. Studies in the Upa Puranas, P-२१२

दत्तपुराण का वर्ण्य विषय

उक्त पुराण का विभाजन अष्टक नाम से किया गया है। इसमें कुल आठ अष्टक है एवं प्रत्येक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं। प्रथम दो अष्टकों को ज्ञानकाण्ड, तृतीय अष्टक से षष्ठ अष्टकों को उपासना काण्ड एवं शेष दो सप्तम एवं अष्टम को कर्मकाण्ड की संज्ञा दी गई हैं। प्रथम अष्टक के आठ-आठ अध्यायों में क्रमश, वेदपाद स्तुति, विरोध परिहार, ज्ञान काण्ड, कर्मेश्वर प्रतिपत्ति, ईश्वरोपासना, आत्मयाथात्म्य, हठ योग एवं योग कथन प्रतिपादित हैं।

द्वितीय अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः योग प्रकरण, योग का फल, भूत भौतिकसर्ग, अनुसूया-अत्रिमाहात्म्य, दत्तात्रेय अवतार, दशावतार चरित, वराह एवं नरसिंह अवतार एवं प्रहूलाद आदि भक्तों को दिये गये उपदेश विस्तार से वर्णित हैं।

तृतीय अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः उपसनाविधि, दत्तात्रेय अवतार के कर्म, कार्तवीर्यार्जुन का चरित, गर्गाचार्य के द्वारा देवताओं के विजय कथन, शिल्प एवं काम शास्त्र की गति, विष्णुदत्त का उद्धार, रोग्युद्धार एवं झुटिङ्ग का निग्रह, एवं संसार में बन्धन के कारण विपुल रूप में निरूपित है।

चतुर्थ अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः श्रवणमहावाक्यार्थ का बोध, अष्टांग योग, कार्तवीर्यार्जुन के योगभ्यास के द्वारा राज्याधिगम, कार्तवीर्य के प्रति ऋषियों का शाप, परशुराम का अवतार, होमधेनु का हरण करने से परशुराम के द्वारा कार्तवीर्याजुन का वध, रेणुका का पति के पास आगमन एवं परशुराम के द्वारा शत्रुओं के नाश करने हेतु प्रतिज्ञा एवं परशुराम के द्वारा पिता के और्ध्वदैहिक कार्य सम्पन्न एवं ऋषियों को भूमिदान करने का प्रसंग वर्णित हैं।

पञ्चम अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः गालव ऋषि के लिए दानव का हनन एवं मदालसा का अवतरण, नागों से मदालसा की प्राप्ति, मदालसा के द्वारा ज्ञान मार्ग कथन, अलर्क प्रसंग, योगिराज के द्वारा अलर्क को अष्टांग योग का प्रदर्शन, दत्तात्रय के द्वारा अलर्क सिद्धयोग के बारे में बताना, पुनः दत्तात्रय के द्वारा अलर्क को मृत्यु चिह्न के बारे में उपदेश देना, एवं सुबाहु से अलर्क का मिलन एवं मोक्ष के उपाय विस्तार से समझा गया है।

षष्ठ अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः आयूराज का दास्यवर्णन एवं दत्तात्रेय का दानादिकथन, हुण्ड के द्वारा मारने हेतु लिया गया ब्राह्मण बालक वसिष्ठाश्रम में गमन, पुत्र के हरण से राजा एवं इन्दुमानी के शोक एवं नारद के द्वारा शोक विमोचन, नहुष के द्वारा हुण्डासुर का वध एवं अशोकसुन्दरी कथा, चौबीस गुरुओं से ज्ञान प्रारित एवं कृष्णावतार कथन, चतुर्दश मन्वन्तर एवं ब्रह्माण्ड का कथन, सूर्यवंश वर्णन प्रसंग के श्रीराम कथा एवं सोमवंश के राजाओं चरित अतिविस्तृत वर्णित हैं।

सपाम अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः सुन्दोपसुन्दचरित हेमकुण्डल नामक वैश्य का चरित, देवदत्तों के द्वारा वैश्य पुत्र के लिए देवता पूजन, अन्न वस्त्रादि के दान विधि कथन, वैष्णवधर्म वर्णन के प्रसङ्ग में एकादशी व्रत विधान एवं नियमों का कथन, विकुण्डल द्वारा भातृमोक्ष के उपाय कथन, माघ स्नानविधि, रक्षोऽप्सरःसंवाद एवं अन्त में पापों से मुक्ति के उपाय चर्चित हैं।

अन्तिम अष्टम अष्टक के आठ अध्यायों में क्रमशः गालव ऋषि के द्वारा ब्रह्मचारिधर्म कथन, गृहस्थ धर्मकथन, और्ध्वदेहिक श्राद्ध लक्षण एवं उनके प्रयोग, तिथि निर्णय, ग्रहण, पापकर्म निर्णय, विभिन्न पाप, उनके पायश्चित्त के उपाय एवं कृच्छ्र व्रतों के लक्षण, गुरुतल्प पातक एवं उम्र की शुद्धि, षोड़श संस्कार, शौच निर्णय, वानप्रस्थाश्रम सन्यास पद्धति का वर्णन उपलब्ध हैं।

ऐसे ही पुराण की भाषा सरल एवं बोधगम्य है। परन्तु उक्त पुराण की भाषा अपेक्षाकृत अत्यन्त सरल है एवं श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती द्वारा रचित संस्कृत टीका के कारण उसमें सन्निविष्ट धर्मशास्त्र के दुरुह सिद्धान्त भी अत्यन्त स्पष्ट हो गये है, जिसमें षोड़श संस्कार, महापातक, उपपातक एवं विभिन्न प्रकार के श्राद्ध प्रमुख हैं।

दत्तात्रेय वृत्तान्त

श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित चौबीस अवतारों में से दत्तात्रेय (कहाँ-कहाँ पर दत्तात्रेय दत्त के नाम से भी प्रसिद्ध है) एक प्रमुख अवतार है। वे परम एवं श्रेष्ठ योगी थे।

सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलाद-सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः।
येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्र-दत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः।।[1]

पुराणों की मान्यतानुसार दत्त अत्रि ऋषि एवं अनुसूया के पुत्र हैं। एक बार त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर अपनी अपनी पत्नियों से प्रेरित होकर पतिव्रता अनुसूया की परीक्षा लेने हेतु अत्रि के आश्रम में पहुँच जाते हैं तब अत्रि तपस्या हेतु आश्रम से बाहर थे। त्रिदेव ब्राह्मणों के वेश में जाकर अनुसूया से भोजन की कामना करते हैं, शर्त यह रखते हैं कि वे नग्न होकर भोजन परोसें। सती अनुसूया पातिव्रत के बल से त्रिदेवों के छद्म रूप के वारे में जान लेती है एवं अपने प्रभाव से उन्हें नन्हें बालक बनाकर भोजन कराती हैं। तब से बालक के रूप में त्रिदेव अत्रि के आश्रम में रह जाते हैं। जब सृष्टि, पालन एवं संहार में बाधा आती है तब सरस्वती लक्ष्मी एवं पार्वती का गर्व चूर चूर हो जाता है। अपनी गलती का अनुभव करती हुई वे तीन देवियाँ अत्रि के आश्रम में पहुँच कर अनुसूया से

---

१. श्रीमद्भागवत २/७/४५

क्षमा याचना करती हैं एवं अपने-अपने पतियों को बाल भाव से मुक्त कर देने हेतु अनुरोध करती हैं। जब त्रिदेव आश्रम से जाने को उद्यत होते हैं तब अत्रि मुनि कहते हैं कि आप लोग हमारे पुत्र के रूप में रहें, अतः आपके अंश से हमे एक एक पुत्र प्राप्त हो। तथास्तु कहकर त्रिदेव चले जाते हैं। तब वर स्वरूप ब्रह्मदेव के अंश से चन्द्रदेव, शिव के अंश से दुर्वासा एवं भगवान् विष्णु के अंश से दत्तात्रेय जन्म लेते हैं। उक्त कथा के अनुसार दत्तात्रेय विष्णु के अंशभूत अवतार हैं।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रतिष्ठान पुर में कौशिक नामक एक कोढ़ी ब्राह्मण था जो पूर्व जन्म के पापों के कारण कुष्ठ रोग से पीड़ित था, वह एक वेश्या पर आसक्त होने से उनके कहने पर उनकी पतिव्रता पत्नी को कन्धे पर बैठाकर घोर अँधेरी रात में वेश्या के घर ले जा रहा था। तब मार्ग में माण्डव्य ऋषि के शरीर से ब्राह्मण का पादस्पर्श हो गया और उन्होने सूर्योदय तक उनको समाप्त हो जाने का शाप दे दिया। सती ने कहा है कि अगर मेरे सतींत्व सत्य है तो सूर्य कभी उदय नहीं होंगे। एक तरफ ऋषि का शाप और दूसरी ओर सती का विश्वास से पृथ्वी का सन्तुलन बिगड़ने लगा एवं सूर्य उदित नहीं हुए। तब देवलोग अत्रि पत्नी अनुसूया के समीप गये।[1] अनुसूया के कहने पर सती-ब्राह्माणी ने सूर्य को मुक्त कर दिया एवं ब्रह्म सूर्योदय होने से ब्राह्मण की मृत्यु हो गई। अनुसूया के प्रभाव से ब्राह्मण पुनर्जीवित होकर रोग मुक्त भी हो गया है। अनुसूया के इस उपकार के कारण देवता ने उनकी इच्छानुसार वर दिया कि ब्रह्म, विष्णु एवं महेश उनके पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे। तदनुसर ब्रह्म सोम के रूप में, शिव दुर्वासा के रूप में एवं विष्णु दत्तात्रय के रूप में जन्म लिया।

सोमो ब्रह्माऽभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत।
दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानदिवौकसाम्।।[2]

ब्रह्मपुराण के अनुसार दत्तत्रेय समस्त विद्याओं में निपुण शङ्कर के परम भक्त थे। एक बार दत्तात्रेय ने अपने पिता अत्रि से आत्मज्ञान के सम्बन्ध में प्रश्न किया। विचार विमर्श के अनन्तर अत्रि ने कहा कि गौतमी तट पर स्नानकर भगवान् शंकर (ज्ञानेश्वर) की स्तुति करने से शङ्कर प्रसन्न होकर ब्रह्मज्ञान प्रदान करते हैं। दत्तात्रेय पिता की आज्ञानुसार गौतमी गङ्गा में स्नान कर पवित्र होकर संयत मन से भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर की स्तुति की। शङ्कर प्रसन्न होकर दत्तात्रेय को आत्मज्ञान, मुक्ति शिव के चरणों में प्रचुर भक्ति एवं तीर्थो के प्रति अटूट श्रद्धा प्रदान की, उस समय से गोमती का यह

---

१. मार्कण्डेय - १६/४८-४६, ५१-५२ आदि।
२. " १७/११

स्थान "आत्मतीर्थ" नाम से ख्यात हुआ। आत्म ज्ञान प्राप्त करने हेतु भक्त गण उक्त तीर्थ में स्नान कर भगवान ज्ञानेश्वर का दर्शन करते हैं।[1]

हैयराजा के द्वारा अत्रि मुनि को बहुत कष्ट मिलने पर दत्तात्रेय क्रुध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आये थे। भागवत पुराण के अनुसार उनके चौबीस गुरु थे। १. पृथ्वी, २. वायु, ३. आकाश, ४. जल, ५. अग्नि, ६. चन्द्रमा, ७. सूर्य, ८. कबूतर, ९. अजगर, १०. सागर, ११. पतंग, १२. मधुकर, १३. हाथी, १४. मधुहारी, १५. हरिणी, १६. मछली, १७. पिङ्गला वेश्या, १८. गिद्ध, १९. बालक, २०. कुमारी कन्या २१. बाण बनाने वाला, २२. सर्प, २३. मकड़ी, और २४. तितली[2] इन समस्त अलग अलग ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ था। दत्त पुराण में भी उक्त प्रसङ्ग सुविशद वर्णित है एवं किसी गुरु से किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त हुई, यह भी विस्तार से वतलाया गया हैं।

मदर्चकोऽस्यतो राजन् समाधाय मनः शृणु।
चतुर्विंशतिराचार्याः सन्ति मे बुद्ध्युपाश्रिताः।।[3]

दत्तात्रेय एवं कार्तवीर्यार्जुन

जब कार्तवीर्यार्जुन हैहय वंश के राजा हुए तब दत्त अपनी प्रतिभा के कारण बहुत प्रसिद्ध ही चुके थे। कार्तवीर्यार्जुन ने अलौकिक प्रतिभा प्राप्त करने हेतु गर्ग ऋषि का स्मरण किया। गर्गजी ने कहा कि दत्तात्रेय महाविष्णु के अवतार हैं, वे ही उनकी इच्छा की पूरी कट सकते हैं। तत्पश्चात् कार्तवीयार्जुन सपत्नीक आकर नर्मदा नदी के तट पर तपस्या करता है एवं दत्तात्रेय की उपासना से उन्हें सन्तुष्ट कर लेता है। दत्तात्रेय उन्हें वर माँगने हेतु कहते हैं। वर के रूप वह अपने सहस्रभुजायें एवं चिर कुमारत्व को प्राप्त कर लेता है। कार्तवीर्यार्जुन दत्त के परम भक्त बन जाता है एवं उनसे उपदेश प्राप्त करता रहता है।[4] इस कथा विस्तार से दत्तापुराण में वर्णित है। दत्तात्रेय की स्तुति से सब कुछ उसे प्राप्त हो जाता है।

गुरो गुरुतरागम्य गुरुगम्य गुणाकर।
गुरूत्तम नमस्तेस्तु संन्निधौ भव सर्वदा।।[5]

---

१. ब्रह्मपुराण ११७/१-२०
२. विष्णु. १/१०/८,
भागवत. २/७/४, ४/१/२५-३३, ११/४/१७
३. दत्तपुराण ६/५/७
४. ब्रह्मपुराण. अ-४४
५. दत्तपुराण ४/३/२२

गुरु के आशीर्वाद से सहस्रार्जुन समस्त पृथिवी का एक चक्रवर्ती सम्राट बन जाता है। एक दिन वह अपनी सहस्र भुजाओं से नर्मदा के जल को रोक कर जल क्रीड़ा कर रहा था तब नदियों पति समुद्र जल को अपवित्र करने के कारण उन पर कुपित होकर उन्हें आक्रमण किया। परन्तु सहास्रार्जुन ने उनको अपने सहस्र बाहुओं से जकड़ कर कष्ट दिया जिसके कारण समुद्र को भी भागना पड़ा।

कदाचित्स्त्रीसहस्राढ्यो रेवायां स महाबलः।
चिक्रीडे दोः सहस्रेण रेवां प्राग्गतिमानयन्।।
तत्प्रेक्ष्य तत्पतिः क्रुद्धः सिन्धुर्वेगादधावत।
तमूर्मिमालिनं क्रुद्धं दृष्ट्वा राजा प्रहस्य च।।
एको भुजसहस्रेण जग्राहे स महार्णवम्।
तस्य बाहुसहस्रेण पीडितोऽभून्महोदधिः।।
चूर्णीकृतमहावीचिर्लीनभीममुखः स च।।
भीतभीतः समुद्रोऽपि पलायनपरोऽभवत्।।[1]

एक बार सूर्यदेव ने ब्राह्मण वेष में आकर सहस्रार्जुन से भोजन की याचना की। सहस्रार्जुन उनकी इच्छा को पूर्ण करने हेतु प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् अपने स्वरूप में आकर सूर्य ने समस्त स्थावर को भस्म करके उनको भोजन के रूप में देने हेतु कहा। इस प्रकार जब वसिष्ठ के आश्रम में वृक्ष जलने लगा, तब उन्होंने कार्तवीर्यार्जुन को शाप देकर कहा है कि भगवान् परशुराम अवतार से तेरे दर्पदलन करके सहस्रभुजाओं को काट डालेंगे।

क्रुद्धः शापं ददौ तस्मा अर्जुनाय महातपाः।
मदाश्रमद्रुमा यस्मात्त्वया दग्धाः सुदुर्मते।।
मत्तोऽसि बलदृप्तोऽसि यतः प्रतिभटो न ते।
मा गर्वं वह दुष्टात्मन् तेजस्वी ब्राह्मणोत्तमः।।
भार्गवो जामदग्न्यस्ते रामः परशुना भुजान्।
छित्त्वा सहस्रं द्रुस्कन्धानिव त्वां निहनिष्यति।।[2]

दत्तात्रेय एवं नहुष

दत्तात्रेय की अलौकिक प्रतिभा के विषय में दत्तपुराण के अतिरिक्त पद्मपुराण जैसे प्रमुख पुराण भी अपना उद्गार व्यक्त करता है। राजा नहुष के विवाह के विषय में

---

१. ,, ४/४/१०-१३
२. ,, ४/४/३०-३४

पद्मपुराण की कथा इस प्रकार है-एक वार शिव पार्वती को नन्दन वन में लेकर कल्पवृक्ष के सामने अपनी इच्छा व्यक्त करने हेतु कहे। पार्वती ने कौतूहल वश एक पुत्री की प्रार्थना की। तत्क्षण कल्पवृक्ष ने एक पुत्री पार्वती को भेट कर दी। पार्वती अपनी पुत्री का नाम अशोकसुन्दरी रखा एवं वरदान दिया की उनकी शादी चन्द्रवंश के प्रतापी राजा नहुष के साथ होगी। इस बीच अशोक सुन्दरी यौवन को प्राप्त कर नन्दन वन में भ्रमण कर रही थी, तब हुण्ड नाम से एक राक्षस उनसे प्रणय याचना की। तब अशोकसुन्दरी ने बताया कि उसका विवाह नहुष के साथ होगा। तब हुण्ड ने बताया कि नहुष का अब तक जन्म नहीं हुआ है। अतः वे अपने यौवन को व्यर्थ न कर उनसे शादी कर ले। परन्तु अशोकसुन्दरी ने मना करने पर हुण्ड अर्न्तध्यान होकर एक युवती वेश में आकर अपने को हुण्ड का शत्रु बताकर उनको विश्वास में लेकर अपने राज्य को ले गया। जब अशोकसुन्दरी को ज्ञात हुआ है कि उनसे धोखा हुआ तब वह हुण्ड शाप दिया कि उनकी मृत्यु राजा नहुष से होगी एवं कैलास पर्वत पर चली गई।

इधर आयु पुत्र कामना से दत्तात्रेय के पास गये। तब दत्तात्रेय उनकी परीक्षा लेने के लिए मदिरा एवं मांस खाते हुए उन्हें दिखाई दिये एवं कहे कि मेरा अब ब्राह्मणत्व नहीं है। आप अन्य गुरु के तलाश करें। परन्तु आयु ने उनके कहने पर मदिरा मांस आदि देकर उनकी सेवा की। सेवा से प्रसन्न हो कर दत्तात्रेय ने उन्हें वरदान दिया एवं कहा कि आप का पुत्र देवता असुर एवं किन्नर आदि से परास्त नहीं होगा। तीर्थ में विश्वास करेगा एवं वेदादि शास्त्र का पण्डित होगा। तब आयु की पत्नी गर्भवती होती है। जब हुण्ड को पता चलता है कि उनको मारने वाला गर्भस्थ हो चुका है तब वह गुप्त रूप में रानी के गर्भ में प्रवेश कर बच्चा को चुरा लेता है एवं उसके मांस को चटनी बना कर देने हेतु अपने भृत्य को आदेश देता है। बच्चा पर दया होने से भृत्य अन्य मांस से हुण्ड को सन्तुष्ट कर नहुष को बचा लेता है। बाद में अशोकसुन्दरी से उनका विवाह होता है एवं उनके हाथ से राक्षस हुण्ड की मृत्यु होती है।[1]

इस प्रकार दत्तात्रेय की महिमा प्रमुख पुराण में वर्णित है। ब्रह्माण्ड पुराण में पृथग् रूप में दत्तमाहात्म्य वर्णित है। वरवर्ती काल में दत्तात्रेय के नाम से अष्टोत्तर शत नामवलि लिखी गई है जिनमें वेदधर्मकृत नामावलि उद्धृत हैं।

१. ओं श्रीदत्ताय नमः
२. ओं देवदत्ताय नमः
३. ओं ब्रह्मदत्ताय नमः
४. ओं विष्णुदत्ताय नमः
५. ओं शिवदत्ताय नमः
६. ओं अत्रिदत्ताय नमः
७. ओं आत्रेयाय नमः
८. ओं अत्रिवरदाय नमः
९. ओं अनुसूयायै नमः
१०. ओं अनुसूयासूनवे नमः

१. पद्मपुराण - १५ अध्याय

११. ओं अवधूताय नमः
१२. ओं धर्माय नमः
१३. ओं धर्मपरायणाय नमः
१४. ओं धर्मपतये नमः
१५. ओं सिद्धाय नमः
१६. ओं सिद्धिदाय नमः
१७. ओं सिद्धिपतये नमः
१८. ओं सिद्धिसेविताय नमः
१९. ओं गुरुवे नमः
२०. ओं गुरुगम्याय नमः
२१. ओं गुरोर्गुरुतराय नमः
२२. ओं गरिष्ठाय नमः
२३. ओं वरिष्ठाय नमः
२४. ओं महिष्ठाय नमः
२५. ओं महात्मने नमः
२६. ओं योगाय नमः
२७. ओं योगगम्याय नमः
२८. ओं योगदेशकराय नमः
२९. ओं योगरतये नमः
३०. ओं योगीशाय नमः
३१. ओं योगाधीराय नमः
३२. ओं योगपरायणाय नमः
३३. ओं योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजाय नमः
३४. ओं दिगम्बराय नमः
३५. ओं दिव्याम्बराय नमः
३६. ओं पीताम्बराय नमः
३७. ओं श्रेताम्बराय नमः
३८. ओं चित्राम्बराय नमः
३९. ओं बालाय नमः
४०. ओं बालवीर्याय नमः
४१. ओं कुमाराय नमः
४२. ओं किशोराय नमः
४३. ओं कन्दर्पमोहनाय नमः
४४. ओं अर्धाङ्गालिङ्गिताङ्गनाय नमः
४५. ओं सुरागाय नमः
४६. ओं विरागाय नमः
४७. ओं वीतरागाय नमः
४८. ओं अमृतवर्षिणे नमः
४९. ओं उग्राय नमः
५०. ओं अनुग्ररूपाय नमः
५१. ओं रथविराय नमः
५२. ओं स्थवीयसे नमः
५३. ओं शान्ताय नमः
५४. ओं अघोराय नमः
५५. ओं मूढाय नमः
५६. ओं उर्ध्वरेतसे नमः
५७. ओं एकवक्त्राय नमः
५८. ओं अनेकवक्त्राय नमः
५९. ओं द्विनेत्राय नमः
६०. ओं त्रिनेत्राय नमः
६१. ओं द्विभुजाय नमः
६२. ओं षड्भुजाय नमः
६३. ओं अक्षमालिने नमः
६४. ओं कमण्डलुधारिणे नमः
६५. ओं शूलिने नमः
६६. ओं डमरुधारिणे नमः
६७. ओं शङ्खिने नमः
६८. ओं गदिने नमः
६९. ओं मुनये नमः
७०. ओं मोंलिने नमः
७१. ओं विरूपाय नमः
७२. ओं स्वरूपाय नमः
७३. ओं सहस्रशिरसे नमः
७४. ओं सहस्राक्षाय नमः
७५. ओं सहस्रबाहवे नमः
७६. ओं सहस्रायुधाय नमः
७७. ओं सहस्रपादाय नमः
७८. ओं सहस्रपद्मार्चिताय नमः

७६. ओं पद्‌महस्ताय नमः
८०. ओं पद्‌मपादाय नमः
८१. ओं पद्‌मनाभाय नमः
८२. ओं पद्‌ममालिने नमः
८३. ओं पद्‌मगर्भारुणक्षाय नमः
८४. ओं पद्‌मकिञ्जल्कवर्चसे नमः
८५. ओं ज्ञानिने नमः
८६. ओं ज्ञानगम्याय नमः
८७. ओं ज्ञानविज्ञानमूर्त्तये नमः
८८. ओं ध्यानिने नमः
८९. ओं ध्याननिष्ठाय नमः
९०. ओं ध्यानसिमितमूर्तये नमः
९१. ओं धूलिधूसरिताङ्गाय नमः
९२. ओं चन्दनलिप्तमूर्तये नमः
९३. ओं भस्मोद्धूलितदेहाय नमः
९४. ओं दिव्यगन्धानुलेपिने नमः
९५. ओं प्रसन्नाय नमः
९६. ओं प्रमत्ताय नमः
९७. ओं प्रकृष्टार्थप्रदाय नमः
९८. ओं अष्टेश्वर्यप्रधानाय नमः
९९. ओं वरदाय नमः
१००. ओं वरीयसे नमः
१०१. ओं ब्रह्मणे नमः
१०२. ओं ब्रह्मरूपाय नमः
१०३. ओं विष्णवे नमः
१०४. ओं विश्वरूपिणे नमः
१०५. ओं शङ्कराय नमः
१०६. ओं आत्मने नमः
१०७. ओं अन्तरात्मने नमः
१०८. ओं परमात्मने नमः
१०९. ओं दत्तात्रेयाय नमो नमः इति

इस प्रकार श्रीमद् भागवत द्वारा स्वीकृत चौबीस अवतार में दत्तात्रेय अवतार के विषय में पुराण भी पृथक् रूप में उपलब्ध है। उक्त अवतार के बारे में ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु एवं पद्‌म पुराण जैसे प्रमुख पुराण भी अनेक अध्यायों से यशो गान करते है। उक्त पुराण में वेद एवं श्रीमद् भागवद् गीता के वचन सामान्य परिवर्तन के साथ उद्‌धृत हैं।

अदः पूर्णमिदं पूर्णं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।।
पूर्णस्यादाय पूर्णं हि पूर्णं ब्रह्मावशिष्यते।।[1]

इसकी तुलना पूर्णमदः पूर्णमिदं से की जा सकती है। इस प्रकार गीता भी प्रतिपादित है।

यद्‌यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोऽपि च।
स यत्प्रमाणं मनुते लोकस्तदनुवर्तते।।[2]

इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र के वर्णाश्रमधर्म षोडश संस्कार, श्राद्ध एवं प्रायश्चित्त आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषय इसमें विस्तार से प्रतिपादित हैं। इस प्रकार दत्तपुराण महापुराण जैसे प्रसिद्ध न होने पर भी अपने विषय की गरिमा के कारण एक महत्त्वपूर्ण उपपुराण है।

---

१. दत्तपुराण ४/३/४३
२. ,, ४/३/५४

माहात्म्य एवं स्थल पुराण

सूतसंहिता

अष्टादश पुराणों में अन्यतम 'स्कन्द पुराण' में स्वामी कार्तिकेय ने शैवतत्वों का निरुपण किया है। पुराणों की सूची में इसका तेरहवां स्थान है। इसकी श्लोक संख्या के विषय में दो मत हैं। वर्तमान खण्डात्मक उपलब्ध स्कन्द पुराण की श्लोक संख्या ८१ हजार कही जाती है, किन्तु इसके संहितात्मक भाग जो पूर्णतः उपलब्ध नहीं हैं और जो दक्षिण भारत में प्रचलित था, ऐसा अनुमित होता है, की श्लोक संख्या १ लाख है। स्कन्द पुराण की छः संहिताओं में दूसरी 'सूत संहिता' है जिसमें स्कन्द पुराण के संहितात्मक भाग की एक लाख श्लोक संख्या का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

सूत संहिता के अनुसार स्कन्द पुराण में छः संहिताएं और पचास खण्ड हैं।[2]

इन संहिताओं का नाम निर्देश 'सूत संहिता' में मिलता है,[3] जो इस प्रकार है-

१. सनत्कुमार संहिता-सूत संहिता के अनुसार छः संहिताओं में प्रथम सनत्कुमार संहिता है जिसमें ५५ हजार श्लोक हैं।[4]

यद्यपि इसमें ५५ हजार श्लोक होने का संकेत मिलता है, किन्तु सम्प्रति लगभग २२ अध्यायों की एक छोटी सी संहिता के रूप में ही उपलब्ध है।

२. सूत संहिता-यह शिवोपासनाविषयक महत्वपूर्ण संहिता है। इसमें छः हजार श्लोक हैं। संहिताओं में इसका दूसरा स्थान है।[5]

३. शंकर संहिता-यह संहिता अनेक खण्डों में विभक्त है। संहिताओं में इसका तीसरा स्थान है और इसकी श्लोक संख्या ३० हजार है।[6]

४. वैष्णव संहिता-यह चौथी संहिता है। इसकी श्लोक संख्या ५ हजार है[7] किन्तु सम्प्रति यह अनुपलब्ध है।

---

१. लक्षं तु ग्रन्थसंख्याभिः सर्वविज्ञानसागरम्।
स्कन्दमद्याभिवक्ष्यामि पुराणं श्रुतिसम्मतम्।। सू. सं. १।१।१८

२. षड्विधं संहिता भेदैः: पंचाशत् खण्डमण्डितम्।। सू. सं. १।१।२०

३. आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूत संहिता।
तृतीया शंकरी विप्राश्चचतुर्थी वैष्णवी मता।
तत्परा संहिता ब्राह्मी सौरोन्त्या संहिता मता ।। सू. सं. १।१।२०-२१

४. ग्रन्थतः पंचपंचाशत् सहस्रेणोपलक्षिता।
आद्या तु संहिता विप्राः .... सू. सं. १।१।२२

५. द्वितीय षट् सहस्रिका। सू. सं. १।१।२२

६. तृतीया ग्रन्थतस्त्रिंशत् सहस्रेणोपलक्षिता। सू. सं. १।१।२२

७. तुरीया संहिता पंचसहस्रेणोपलक्षिता। सू. सं. १।१।२३

५. ब्रह्म संहिता-यह पांचवी संहिता है और इसकी श्लोक संख्या ३ हजार है।[1] यह भी अनुपलब्ध है।

६. सौर संहिता- इसमें शिवपूजन सम्बन्धी अनेक विषयों का वर्णन है। इसमें अष्टादश पुराणों तथा उपपुराणों का भी उल्लेख है। यह अन्तिम संहिता और इसकी श्लोक संख्या १ हजार है।[2]

संस्करण-सम्प्रति 'सूत संहिता' के दो संस्करण उपलब्ध हैं-

१. तात्पर्य दीपिका टीका सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि ग्रन्थांक २५, १९२४ ई. में प्रकाशित।

२. तात्पर्य दीपिका सहित, श्री बाल मनोरमा सीरीज सं. १६, मद्रास १९५४ ई. में प्रकाशित।

सूत संहिता-पुराण या उपपुराण

इस पुराण के प्रामाणिक अंशों के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। वान्स केनेडी के अनुसार संहिता और खण्ड तो प्रामाणिक है; जबकि माहात्म्य संदिग्ध। पुराणविद् विल्सन ने इनमें से किसी के भी पुराण के अंश होने में पूर्ण सन्देह व्यक्त किया है।[3]

वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित स्कन्दपुराण की संस्कृत भूमिका में इसके सम्पादक श्रीकृष्णदास ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि खण्डों में विभक्त स्कन्दपुराण महापुराण है और संहिताओं में विभक्त उपपुराण। इस सम्बन्ध में उनका कथन है 'स्कन्दं नाम पुराणं तावद् द्विविधम्-एकं स्कन्दमहापुराणम्, द्वितीयं स्कान्दं नामोंपपुराणम्। अथ च स्कान्दं नामान्यदप्येकं पुराणं षट्संहितात्मकं पंचाशद्-खण्डमण्डितं लक्ष श्लोक संख्योपनिबद्धं समुपलभ्यते तत्तु स्कान्दं नामोपपुराणमिति।'[4]

श्रीकृष्णदास द्वारा विभिन्न स्रोतों से गृहीत उदाहरणों से इतना सिद्ध होता है कि 'स्कान्द' नाम का एक उपपुराण भी है, किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता है कि संहिता के आधार पर उपपुराण बनता है। उपपुराण साहित्य के समालोचक आर. सी. हाजरा का निष्कर्ष है कि तृतीय उपपुराण (जिसे स्कान्द भी कहते हैं) मात्र 'नान्द' उपपुराण का नामान्तर है।[5]

---

१. ततोऽन्या त्रिसहस्रेण ग्रन्थेनेव विनिर्मिता। सूं. स. १।१।२४
२. अन्या सहस्रतः सृष्टा ग्रन्थतः पण्डितोत्तमाः। सू. सं. १।१।२४
३. विष्णु पुराण की भूमिका, पृ. ४५-४६
४. स्कन्द पुराण की प्रस्तावना, पृ. ७-१२
५. स्टडीज इन दि उपपुराणज, भाग २, पृ. ४७६

सूत संहिता में भी तृतीय उपपुराण के रूप में 'नान्द' का ही उल्लेख है,[१] स्कान्द का नहीं।

स्कन्द पुराण के सप्त खण्डों में 'स्कन्द' उपपुराण का कहीं भी उल्लेख नहीं है। संहिताओं को उपपुराण इसलिए भी नहीं माना जा सकता कि संहिताएं स्वयं को महापुराण से सम्बद्ध मानती हैं, उपपुराण से नहीं। सूत संहिता 'शिवमाहात्म्य' खण्ड के प्रथम अध्याय में स्कन्दपुराण को पुराणों की सूची में गिनती है[२] न कि उपपुराणों की सूची में। स्कन्दपुराण सामान्यतः अष्टादश पुराणों में तेहरवें स्थान पर गिना जाता है और सूत संहिता में भी इसका तेरहवां स्थान है। शंकर संहिता भी षट् संहिताओं को पुराणों में त्रयोदश 'स्कन्दपुराण से ही सम्बद्ध मानती है।[३]

सूत संहिता के टीकाकार माधव मंत्री ने भी इन संहिताओं को पुराणों में त्रयोदश स्कन्दपुराण का ही अंग स्वीकार किया है।[४]

फलतः संहिताएं १४वीं शती से स्कन्दपुराण का आन्तरिक अंग मानी जाती रही है। आर. सी. हाजरा का भी कथन है, कि यद्यपि स्कन्दपुराण के खण्ड विभाजन का समर्थन नारद पुराण में भी है, किन्तु इसका वास्तविक विभाजन सनत्कुमार आदि छः संहिताओं में हैं। स्कन्द पुराण के बम्बई संस्करण में प्राप्त खण्ड विभाजन मूलरूप से किसी न किसी संहिता से सम्बद्ध है।[५]

निष्कर्षतः सूत संहिता स्कन्दपुराण का आन्तरिक अंग होने के कारण पुराण ही है, उपपुराण नहीं।

सूत संहिता का समय

प्राचीन भारतीय साहित्य में किसी भी कृति का निश्चित समय निरूपण संभव नहीं है। 'सूत संहिता' के समय-निर्धारण के विषय में भी यही स्थिति है। हर प्रसाद शास्त्री एवं सेशिल बेण्डल ने नेपाल लाइब्रेरी में स्कन्दपुराण की गुप्तकालीन पाण्डुलिपियों में प्राचीनतम

---

१. द्वितीयं नारसिंहाख्यं तृतीयं नान्दमेव च। सूं. सं. १।१।१४

२. आग्नेयं नवमं पश्चात् ब्रह्मवैवर्तमेव च।
ततो लैंगं वराहं च ततः स्कान्दमनुत्तमम्।। सू. सं. १।१।६

३. तत्र स्कान्दं प्रवक्ष्यामि पुराणेषु त्रयोदशम्।
संहिताभिस्तथा षड्भिलक्षैर्ग्रन्थैर्विराजितम्। शंकर संहिता।

४. अर्थेदानीं विवक्षितां सूतसंहितामवतारयितुमनुक्रान्तानां पुराणानां मध्ये त्रयोदशस्य स्कन्दपुराणस्य संहितादिविभागमाह। सूं. सं. १।१।१६ ता. टी.

५. स्टडीज इन दि पुराणिक् रेकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ. १५८,१६३

पाण्डु लिपि देखी है। दोनों विद्वानों ने इसका पाण्डुलिपि-शास्त्रीय अध्ययन कर यह निकर्ष निकाला कि निश्चित ही यह पाण्डुलिपि ६५६ ई. से पहले की है।[1]

इससे यह सिद्ध होता है कि स्कन्दपुराण उन सभी तिथियों से प्राचीन है, जो वे अब तक मानते रहे हैं। इस पाण्डुलिपि में आन्तरिक अंग के रूप में सूत संहिता भी विद्यमान है, इस धारणा के आधार पर एम. नारायण स्वामी अय्यर ने स्कन्द पुराण का समय ई. शती का प्रारम्भ माना।[2]

श्री अय्यर ने स्कन्दपुराण की कालविषयक स्थापना इस शती के प्रारम्भ में की थी। उस समय तक उपर्युक्त पाण्डुलिपि का पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं हुआ था, अतः स्कन्द पुराण एवं उसकी अंगभूत सूत संहिता के काल से सम्बद्ध उनकी धारणा व्यक्तिगत है। सम्प्रति नयी उपलब्ध सामग्री के प्रकाश में सूतसंहिता की काल विषयक धारणा का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है।

हर प्रसाद शास्त्री एवं बेण्डल के विवरणों से यह स्पष्ट है कि उनके द्वारा खोजी गई पाण्डुलिपि में संहिता, खण्ड या सूत संहिता नाम की कोई वस्तु नहीं है। फलतः पाण्डुलिपि के आधार पर काल सम्बन्धी निष्कर्ष का सम्बन्ध सूत संहिता से टूट जाता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार सूत संहिता से सम्बद्ध सूचनाओं का प्राचीनतम स्रोत माधव मन्त्री की 'तात्पर्यदीपिका' टीका है। यह टीका १३४७ ई. से १३६१ ई. की अवधि में लिखी गयी थी। इसके अतिरिक्त माधव मंत्री के समकालिक श्री विद्यारण्य के 'जीवन्मुक्तिविवेक' तथा माधवाचार्य की 'पराशरस्मृति व्याख्या' में सूत संहिता के अनेक उदाहरण दिए गये हैं। विद्यारण्य ने 'जीवन्मुक्ति' के प्रमाण प्रकरण के प्रथम खण्ड में (पृ. ८४-६०) सूत संहिता के लगभग ३० श्लोकों को उनके खण्ड तथा अध्याय के संकेत सहित उद्धृत किया है। स्वरूपसिद्धि प्रकरण में बिना किसी सन्दर्भ के दो श्लोक (२।३।२१, २।२०।४५) उद्धृत हैं। माधवाचार्य की पराशरस्मृति व्याख्या आचारकाण्ड में सूतसंहिता प्रथम खण्ड, अष्टम अध्याय के १४-१७ श्लोक इस टिप्पणी के साथ उद्धृत हैं - 'तत्र प्राकृतप्रलयः स्कन्द पुराणे सूत संहितायामेवं निरूपितः'। श्रीपति पण्डित ने भी वेदान्त सूत्र की वीरशैव टीका 'श्रीकरभाष्य' में सूत संहिता के अनेक श्लोकों को ससन्दर्भ उद्धृत किया है। सूत संहिता को धर्म एवं दर्शन क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने में कम से कम दो सौ वर्ष लगे होंगे। इस प्रकार सूत संहिता के रचनाकाल की ऊपरी सीमा १२वीं शती के पूर्वार्द्ध के बाद नहीं जा सकती है।

---

१. ए कैटेलाग आफ पामलीफ एण्ड सेलेक्टेड पेपर मैन्युस्क्रिप्ट्स बिलोगिगं टू दि दरबार लाइब्रेरी नेपाल, १६०५, पृ. ५२

२. दि सूत संहिता आन द शैव आगमज, पृ. ५२

सूत संहिता के कुछ अंश 'माण्डूक्य कारिका' जिसें गौड़पाद कारिका' भी कहते हैं, के कुछ अंशों से मिलते हैं।[1]

इन दोनों में सूत संहिता निश्चित रूप से परवर्ती है, क्योंकि गौडपादकारिका के आगम प्रकरण की १७वीं कारिका 'मायामात्रमिदं द्वैतम्' को श्रुतिवाक्य के रूप में दो बार उद्धृत किया गया है।[2]

अतः सूत संहिता को गोडपादकारिका से पूर्ववर्ती नहीं माना जा सकता। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सूत संहिता के रचनाकाल की पूर्वसीमा ५०० ई. के आस-पास मानी जा सकती है। शंकराचार्य ने भी 'विवेक चूड़ामणि' में उक्त कारिका को साक्षात् श्रुतिवाक्य के रूप में उद्धृत किया है।[3]

जनश्रुति के अनुसार वेदान्त सूत्र पर भाष्य लिखने से पहले शंकराचार्य ने सूत संहिता को अठाराह बार पढ़ा था। यदि यह जनश्रुति विश्वसनीय हो तो सूत संहिता शंकराचार्य से पूर्ववर्ती सिद्ध होती है। डा. वी. राघवन ने पुराण के विषय में कहा है कि यह एक सुस्थिर रचना न होकर जीवन्त संस्था है, जो बराबर विकसित होता रहा है और अपना सम्बंध करती रही है।[4]

सूत संहिता भी इसका अपवाद नहीं हो सकती, अतः यह संभव है कि सूत संहिता का अस्तित्व शंकराचार्य से पहले भी रहा हो, भले ही उसका मूल रूप वर्तमान रूप से भिन्न रहा हो।

सूत संहिता विषयक साहित्य

(क) टीकाएं

(१) **तात्पर्य दीपिका**-सूत संहिता पर अब तक प्रकाशित रूप में उपलब्ध एकमात्र लोकप्रिय टीका माधव मंत्री की 'तात्पर्य दीपिका' है। इस टीका के लेखक के

---

१. तुलनीय सूत संहिता-गौडपादकारिका

३।२।५८	४।६८
३।२।५६	२।३२
४।१०।५५	१।१७
४।१।१२।१७	१।१७

२. सू. सं. ४।१२।१७ टीकाकार माधवमंत्री ने इस श्लोक में उल्लिखित 'परमा श्रुतिः' पद की व्याख्या में 'मायामात्रमिदं द्वैतम् को भी श्रुतिवाक्य के रूप में उद्धृत किया है। द्रष्टव्य ४।१२।१७ की 'तात्पर्यदीपिका'

३. विवेक चूडामणि, ४०५

४. डा. राधवन, दि इण्डियन हेरिटेज पृ. ४४

सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। श्री जे. एम. नल्लस्वामी एवं एम. आर. सरवारे सायण को इसका लेखक मानते हैं। श्री हर प्रसाद शास्त्री टीकाकार माधव को सायण के भाई माधवाचार्य मानते हैं।[1]

परम्परागत मान्यता के अनुसार इस टीका के लेखक विद्यारण्य थे, जो श्रृंगेरीमठ में पीठासीन होने से पहले माधवाचार्य के नाम से विख्यात थे। 'क्रिया क्रमद्योतनिका' में विद्यारण्य को ही तात्पर्यदीपिका का लेखक कहा गया है-'इति सूतसंहितायां वृत्तौ च विद्यारण्यस्वामिभिः शिवागर्भः'। इस टीका में कई जगह लेखक के रूप में माधव या माधवाचार्य का उल्लेख है। अतः नाम साम्य के कारण माधव को माधवाचार्य मान लिया गया, किन्तु अनेक अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि माधव मन्त्री विद्यारण्य या माधवाचार्य से भिन्न व्यक्ति थे। वस्तुतः माधव मंत्री विद्यारण्य के ही समकालिक थे और उन्हीं के समान विद्वान थे। अभिलेखों में इसी नाम से उनका उल्लेख है। पुरातत्वविद् श्री नरसिंहाचारी ने सर्वप्रथम माधव मंत्री को विद्यारण्य से भिन्न स्थापित किया।[2]

वी. सूर्यनारायण राव और एस. कान्तैया ने माधव मंत्री को विद्यारण्य से भिन्न मानने के पक्ष में उनके प्रमाण प्रस्तुत किए।[3]

अभिलेखीय प्रशस्तियों तथा साहित्यिक प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि माधवाचार्य काशी विलास क्रियाशक्ति के शिष्य थे। वे आंगिरस गोत्र ? के पवित्र ब्राह्मण थे और उनके माता-पिता मायाम्बिका एवं चौण्ड्य थे। वे मारप, बुक्क प्रथम और हरिहर द्वितीय के लगभग ४४ वर्षों तक प्रधानमंत्री रहे। माधवमंत्री के इस प्रामाणिक परिचय से यह स्पष्ट है कि वे सायण के ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य से भिन्न व्यक्ति हैं और यही माधवमन्त्री 'तात्पर्यदीपिका' के लेखक हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी विद्यारण्य और माधवाचार्य को एक मानते हुए माधव मन्त्री को उनसे भिन्न माना है।[4]

(२) **सूत संहिता व्याख्या**-इस व्याख्या की कई पाण्डुलिपियां प्राप्त हुई हैं, जिनके लेखक शंकराचार्य बताये जाते हैं।[5]

ये सभी पाण्डुलिपियां तंजौर में तथा उसके आस-पास व्यक्तिगत संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

---

१. ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स भाग ५, पृ. ५७४

२. मैसूर आरकेयोलाजिकल रिपोर्ट्स १६०८ का पैरा ५५ और ८३

३. (क) वी. राव, ए शार्ट हिस्ट्री आफ विजयनगर १६०६, पृ. ६६
(ख) एस. कान्तैया, फाउण्डर्स आफ विजय नगर १६३८, क्वार्टली जनरल आफ मिथिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित।

४. बलदेव उपाध्याय, आचार्य सायण और माधव, पृ. १३६-१४०, १४३-१४५

५. लिस्ट आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ सदर्न इण्डिया, संग्रहकर्ता, जी. आपर्ट खण्ड २, सं. ८७६३, ६७६७, ६८६५ तथा १००७३

(३) **यज्ञ भैरव टीका**-जी. बूलर ने किसी व्यक्ति के यहां यज्ञ भैरव टीका की पाण्डुलिपि देखी थी। यह टीका सूत संहिता की 'सूतगीता' पर है।[1]

(४) **सूत संहिता व्याख्यान**-आड्यार लाइब्रेरी में सूत संहिता पर अप्पय शिवाचार्य कृत टीका की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है।[2]

यह टीका अपूर्ण है। यह ज्ञानयोगखण्ड के द्वितीय अध्याय से आरम्भ होकर 'ब्रह्मगीता' के प्रथम अध्याय तक ही है।

(५) **नीलकण्ठ भाष्य**-ब्रह्मसूत्र की श्रीपति पण्डितकृत वीर शैव टीका 'श्रीकर भाष्य' की प्रस्तावना में सी. हयवदन ने लिखा है कि श्रीपति पण्डित सूत संहिता के भाष्यकार नीलकण्ठ के परवर्ती है।[3]

श्री राव ने नीलकण्ठ के दो भाष्यों का उल्लेख किया है जिनमें एक सूत संहिता पर और दूसरा छान्दोग्योपनिषद् पर है।

(ख) संग्रह ग्रन्थ

सूत संहिता पर आधृत चार संग्रह ग्रन्थ हैं, जिनमें दो संस्कृत में तथा दो तमिल में हैं।

(१) सूत संहिता संग्रह-मुकुन्दाश्रम द्वारा लिखित यह ग्रन्थ किसी व्यक्तिगत संग्रहालय में उपलब्ध है। यह अप्रकाशित है।

(२) सूत संहिता सार संग्रह-इसके संग्रहकर्ता सदाशिवेन्द्र सरस्वती (१८वीं शताब्दी) हैं। इसकी तीन पाण्डुलिपियां मद्रास, तंजौर और त्रिवेन्द्रम में सुरक्षित हैं। इसमें सूत संहिता के चारों खण्डों के २५० महत्वपूर्ण श्लोक संकलित हैं।

(३) सूत संहितासारामृतवचनम्-यह ग्रन्थ तमिल भाषा में मद्रास में १६१२ ई. में प्रकाशित हुआ। इसकी लेखिका बाला सरस्वती देव कुंजरी अम्मल हैं। इसमें सूत संहिता के सारतत्व को सरल तमिल गद्य में लिखा गया है।

(४) सूत संहितैत्रिरहु-यह ग्रन्थ चिदम्बर स्वामिगल द्वारा तमिल भाषा में लिखा गया है। यह सूत संहिता के प्रमुख अंशों का सार संग्रह है।

---

१. ए कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स कण्टेण्ड इन दि प्राइवेट लाईब्रेरीज आफ गुजरात, काठियावाड, कच्छ एण्ड खण्डी, संकलयिता, जी. बूलर बम्बई १६७१-७३, पृ. १०६

२. डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग आफ सं. मैन्यु. भागे १०, द्वारा कृष्णमाचार्य, दि आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर, १६८६, पृ. २० (भूमिका)

३. ए कैटेलाग आफ सं. मैन्यु. इन प्राइवेट लाइब्रेरीज आफ दि नार्थवेष्ट प्राविन्सेज, भाग १, बनारस, १८७४

संस्कृत और तमिल में सूत संहिता पर आधारित कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। सद्योजाताचार्य की 'क्रियाक्रमद्योतनिका' और लक्ष्मीधर मिश्र को 'शैवकल्पद्रम' उल्लेखनीय हैं। तमिल में चिदम्बर नाथ भूपति का 'शंकर विलास' और वरतुंगराम पाण्ड्यन का 'पिरमोत्तिकण्डम्' भी १६वीं शताब्दी में लिखे गये हैं।

(ग) अनुवाद

दक्षिण भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में सूत संहिता के अनेक अनुवाद हुए हैं। तमिल भाषा में श्री एन. एस. राजाराम अय्यर द्वारा अनूदित 'श्री सूत संहिता' १६१८ ई. मद्रास से प्रकाशित हुई। सूत संहिता की 'ब्रह्मगीता' का तमिल में स्वतन्त्र अनुवाद 'स्वरूपानन्दसिद्धि' के नाम से मद्रास में १६१३ ई. में प्रकाशित हुआ। यह पद्यानुवाद तत्वरय स्वामिगल द्वारा किया गया है। १६वीं शताब्दी के मध्य में श्री काप्पराजू नरसिंहैया ने सूत संहिता का अनुवाद तेलुगु भाषा में किया। १६२० ई. में यह अनुवाद सर्वप्रथम श्री जानपाटि पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा सम्पादित तेलुगु पत्रिका 'अभिनव सरस्वती' में प्रकाशित हुआ।

मैसूर दरबार के आस्थान महाविद्वान् श्री ई. चन्द्रशेखर स्वामी ने कन्नड़ भाषा में सूत संहिता का अनुवाद किया, जो १६४५ ई. में चार खण्डों में प्रकाशित हुआ।

आड्यार लाइब्रेरी में एक संस्कृत पाण्डुलिपि 'मुक्तिसोपाननिर्णयः' नाम से उपलब्ध हैं, जो सूत संहिता के यज्ञ वैभव खण्ड का २३वां अध्याय ही है। इस के श्लोकों का अर्थ मलयालम में किया गया है। ब्रह्मगीता का एक स्वतन्त्र मलयालम अनुवाद श्री कृष्णन एम्बिरांतिरि ने किया है।

प्रतिपाद्य विषय

सम्पूर्ण सूत संहिता ४ खण्डों और १०६ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम शिवमाहात्म्य खण्ड में १३ अध्याय, द्वितीय ज्ञानयोग खण्ड में २० अध्याय, तृतीय मुक्ति खण्ड में ६ अध्याय तथा चतुर्थ यशवैभव खण्ड में ६७ अध्याय हैं। यज्ञ वैभव खण्ड पूर्व और उत्तर दो भागों में विभक्त है जिनमें पूर्व भाग में ४७ अध्याय और उत्तर भाग में २० अध्याय हैं। उत्तर भाग ब्रह्मगीता और सूतगीता नाम से दो उपभागों में विभक्त हैं, जिनमें ब्रह्म गीता में १२ अध्याय और सूतगीता में ८ अध्याय हैं।

(१) शिवमाहात्म्य खण्ड - (१३ अध्याय)

ग्रन्थावतार - इसमें प्रमुख रूप से अष्टादश पुराण, उपपुराण, वेद और वेदों की स्मृतियों का उल्लेख है। वेदार्थ का विस्तार ही इतिहास और पुराण का परम प्रयोजन है। सभी पुराण, शास्त्र एवं स्मृतियां वेदमूलक हैं। वेद मूलतः एक ही है। सर्वप्रथम महेश्वर शिव

ने ब्रह्मा को सम्पूर्ण वेद को समर्पित किया। शिव के आदेश से ही ब्रह्मा ने वेद के कर्म भाग का स्मृतिमुख से तथा विष्णु ने व्यासरूप में ज्ञान भाग का पुराण मुख से व्याख्यान किया है। महेश्वर शिव ही वेदों, पुराणों तथा स्मृतियों के मूलकर्ता हैं। विष्णु के साक्षात् अवतार व्यास की कृपा से ही सूत ने पुराणों का प्रवचन किया है।

पाशुपत व्रत-सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र कर्ता शिव हैं। शिव की मायाशक्ति ही जगत् की संचालिका है। यह जगत् भी शिवरूप ही है। वेद वाक्यों द्वारा शिव स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर पशु (जीवात्मा) संसार बन्धन में मुक्त होता है। सुसंस्कृत अधिकारी ही पाशुपतव्रत का अधिकारी है। उसके लिए ही पाशुपतव्रत का विशेष निर्देश है।

पूजा विधि-पूजा का विधान महेश्वर शिव की कृपा प्राप्ति का साधन है। परिष्कृत भूमि पर स्नानादि से शुद्ध होकर पंचोपचारविधि से शिवपूजन श्रेयस्कर है। शिवपूजन का अधिकार सभी आश्रमवासियों को है। शिव पूजा से भक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है।

शिव की पराशक्ति की पूजा बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार की है। बाह्य पूजा के वैदिक और तान्त्रिक दो भेद हैं। बाह्यपूजा की संपूर्ण विधियां मातृका द्वारा सम्पन्न होनी चाहिए, क्योंकि मातृका ही मन्त्रों की नेत्री है। पराशक्ति की आभ्यन्तर पूजा भी साधारा तथा निराधारा भेद से दो प्रकार की है। सधारा पूजा कल्पित आधार में तथा निराधारा पूजा केवल संविद् (ज्ञान) में होती है। संविद् ही पराशक्ति है। संसार भाव की निवृत्ति के लिए संविद् रूपा पराशक्ति की आराधना आवश्यक है।

मुक्ति साधन-मुक्ति साधन का कथन साक्षात् शिव ने ही किया है। मुक्ति का प्रधान साधन ज्ञान ही है। ज्ञान की प्राप्ति उपनिषद् वाक्य से ही संभव है। वाराणसी, कैलास प्रभृति पुण्य क्षेत्र शिव का निवास स्थान है। अतः वहां रह कर ज्ञानाभ्यास में मुक्ति निश्चित है।

काल परिमाण-कालपाश का विनाश ही शिवोपासना का परम लक्ष्य है। काल के अन्तर्गत निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिवारात्रि, पक्ष, मास, अयन और वर्ष की गणना है। मनुष्य काल की भांति ही देवकाल भी होता है। बारह हजार दिव्य वर्षों के चार युग होते हैं। ७१ युगों का एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। प्रलयकाल में परमेश्वर में अभिन्न रूप से स्थित माया ही माहेश्वरी शक्ति है। इसी शक्ति से परमकाल का उदय होता है। सभी वस्तु काल में विलीन हो जाती है। कालातीत शिव ही जगत् का कारण है। इसी शिवतत्व से जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार संभव है।

सृष्टि-परम शिव की महिमा से ब्रह्मा ने विष्णु के रूप में समुद्र में डूबकर पृथ्वी का उद्धार किया। पुनः विष्णु ने ब्रह्मा के रूप में सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि का विस्तार किया। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अबुद्धिपूर्वक तमोमय सर्ग की सृष्टि की। यह सृष्टि तमस्, मोह,

महामोह, तामिस्र और अन्ध भेद से पांच प्रकार की है। ब्रह्मा की बुद्धिपूर्वक की गई सृष्टि वृक्ष, पशु, देव, मनुष्य एवं भूत भेद से पांच प्रकार की हैं। ये पांचों वैकृत सृष्टि हैं। पुनः पंचतन्मात्राओं से लेकर कुमार तक नौ प्रकार की सृष्टि हुई। पंचीकरण प्रक्रिया से शब्दादि सूक्ष्म तत्व, उनसे आकाशादि पंचमहाभूत, पर्वत एवं काल की सृष्टि हुई। अन्त में ब्रह्मा द्वारा शरीर परिवर्तन की विविध प्रक्रिया से पंचीकृत सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुई।

शब्दादि सूक्ष्म तत्वों की उत्पत्ति के बाद सत्वगुण से पंचज्ञानशक्ति और रजोगुण से पंचक्रियाशक्ति की उत्पत्ति हुई। पंचज्ञानशक्ति से पंचज्ञानेन्द्रियां और पंचक्रियाशक्ति से पंचकर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई। समष्टिरूप सूक्ष्म पंचभूत में स्थित ज्ञानशक्तियों से उत्पन्न समष्टिरूप अन्तः करण में स्थित ब्रह्मा ही हिरण्यगर्भ हैं। पुनः पुरुष और नारी रूप में विभक्त ब्रह्मा द्वारा विराट्, स्वराट् तथा सम्राट् इन पुरुषों और विराट् से मनु शतरूपा की सृष्टि हुई।

सृष्टि के समय ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरुभाग से वैश्व और पैरों से शूद्र जाति की उत्पत्ति हुई। इनमें अपनी-अपनी जाति की स्त्रियों में उत्पन्न सन्तति 'स्वजाति' शब्द से अभिहित हुई। अपने से निम्न जाति की स्त्रियों में उत्पन्न सन्तति 'प्रतिलोम' कहलायी। विभिन्न जाति की स्त्रियों में उत्पन्न सन्ततियां भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित हुई। मनुष्यों की जाति जन्म से ही मानी गयी, कर्म से नहीं। जाति का बन्धन केवल संसारी पुरुष के लिए ही है, ज्ञानी पुरुष के लिए नहीं। ज्ञानदशा में पुरुष जातिबन्धन से मुक्त रहता है।

तीर्थ महिमा-अन्तिम अध्याय में गंगाद्वार से गन्धमादन पर्यन्त २२ तीर्थों का नाम कथन है। उपर्युक्त तीर्थें में स्नान करने के उपयुक्त समय तथा स्नानफल भी निर्दिष्ट है। तीर्थस्थान में श्रद्धा का विशेष महत्व है, क्योंकि श्रद्धा के बिना तीर्थ सेवन निष्फल माना गया है -

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी।। ता. टी. में उद्धृत

(२) ज्ञानयोग खण्ड (२० अध्याय)

सम्प्रदाय-परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम महेश्वर शिव ने बृहस्पति को ज्ञानयोग का उपदेश दिया। पार्वती की गोद में बैठे स्कन्द ने भी इसका श्रवण किया। उसके बाद स्कन्द ने वशिष्ट को, वशिष्ट ने शक्ति को, शक्ति ने पराशर को, पराशर ने व्यास को ओर व्यास ने सूत को ज्ञानयोग का उपदेश दिया। ज्ञानयोग की यही सम्प्रदाय परम्परा है।

आश्रम-अपने-अपने आश्रम धर्म का पालन करने वाला अधिकारी ही शिवाराधन द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्यादि चतुर्विध आश्रमों में प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम में

प्रवेश के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक है। उपवीत ब्रह्मचारी के लिए वेदाध्ययन का विधान है। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए यदि स्वभावतः वैराग्य हो जाय तो संन्यास ग्रहण करने का अथवा यथारुचि गृहस्थ धर्म को स्वीकार करने का विधान है। प्रथम आश्रम में ज्ञानसम्पन्न अधिकारी को गुरू की आज्ञा से समावर्त के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। गृहस्थों के लिए स्वर्ग की कामना से यज्ञ तथा पितृ-ऋृण से मुक्ति पाने के लिए अपनी भार्या में सन्तानोत्पत्ति का निर्देश है।

गृहस्थ आश्रम में स्वधर्मनिरत व्यक्ति को यदि विराग उत्पन्न हो जाय तो भार्या का उत्तरदायित्व अपने पुत्र को देकर अकेले अथवा भार्या सहित वनगमन करना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में वेदाभ्यासपूर्वक तपश्चरण करना चाहिए। विरक्त वानप्रस्थी के लिए प्रव्रजन का विधान है। संन्यास आश्रम में रहने वाले संन्यासियों के वृत्तिभेद से कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस ये चार भेद है। 'अतिवर्णाश्रमी' इन चारों सन्यासियों से भी श्रेष्ठ माना गया है। संन्यास ग्रहण करने का विधान ब्रह्मचर्यादि आश्रम क्रम से अथवा सीधे ब्रह्मचर्य से ही है। संन्यासी के आराध्य देव साक्षात् महेश्वर हैं।

प्रायश्चित-दोषनिवृत्ति के लिए प्रायश्चित का विधान अपेक्षित है। ब्रह्महत्या, मद्यपान, स्तेय और गुरुपत्नी सहवास ये चार महापातक हैं। इन चार महापापों के प्रायश्चितों का निर्देश है। प्रायश्चित के अतिरिक्त वेदान्त श्रवण से भी दोष निवारण होता है। ब्रह्म हत्यादि पाप करने वालों को नानाविध योनियों में भटकना पड़ता है। पापकर्मफल वर्णन का उद्देश्य पापनिवृत्तिपूर्वक ज्ञान का उदय है।

दान-धार्मिक कृत्यों में दान को प्रमुख स्थान प्राप्त है। विविध दानों में विद्यादान, भूमिदान, गोदान, अर्थदान, कन्यादान तथा अन्नदान का विशेष महत्व है। इन सभी दानों में विद्यादान सर्वोत्तम है, क्योंकि विद्या से ही सभी प्राणियों की मुक्ति संभव है।

देहोत्पत्ति-पाप और पुण्य के तारतम्य से जीव तीन प्रकार की योनियों को प्राप्त करता है-देव, स्थावर तथा मनुष्य। पुण्य से देव योनि, पाप से स्थावर योनि और पुण्य एवं पाप की समान स्थिति में मनुष्य योनि मिलती है। ऋतुकाल में स्त्री के गर्भ में समापतित शुद्धशुक्र स्त्री रक्त से मिलकर सर्वप्रथम कलल, तदुत्तर क्रमशः बुद्बुद, पिण्ड, शिर, चरण, अंगुलि, कटि, कुक्षि, पृष्ठ, अस्थि, सन्धि, नेत्र, कान, नाक, जीव प्रकाशन तथा अंग-प्रत्यंग पुष्टि द्वारा जीवात्मत्व को प्राप्त करता है।

नाडी चक्र-मनुष्य के शरीर में मूलाधार से नौ अगुंल, चार अंगुल विस्तृत, मुर्गी के अण्डे के आकार का अस्थिचर्मयुक्त कन्द स्थान है। कन्द के मध्य में स्थित नाडी का नाम सुषुम्ना है। इस सुषुम्ना के चतुर्दिक् ७२ हजार नाडियां हैं। उनमें सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ है। यही ब्रह्मलोक प्राप्ति का द्वार होने से 'ब्रह्मनाडी' भी कहीं जाती है। नाडी शुद्धि से शरीर-लघुता, दीप्ति, जठराग्नि और अनाहत नाद की अभिव्यक्ति होती है। नाडी शुद्धि की अपेक्षा आत्मशुद्धि श्रेष्ठ हैं।

अष्टांग योग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग हैं। यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार एवं शौच हैं। नियम के भी तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप तथा व्रत दश भेद हैं। आसनों में स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त, मयूर तथा सुख प्रमुख हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचक द्वारा प्राणायाम निष्पन्न होता है। प्राणायाम से आरोग्यलाभ के साथ ही चित्तशुद्धि और चित्तशुद्धि से ईश्वर प्राप्ति होती है। विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों का हठपूर्वक आहरण ही प्रत्याहार है। सभी इन्द्रियों को विषयों से विमुख कर मन का आत्मा मे धारण करना धारणा है।

आकाश में निर्मल, शुद्ध, शीतल, भासमान सोम मण्डल का ध्यान करके उसमें चन्द्र भूषण परात्पर त्रिलोचन नीलग्रीव सदाशिव का आत्मबुद्धि से चिन्तन करना ध्यान है। जीव और ब्रह्म की तादात्म्यबुद्धिरूपा ज्ञानोपलब्धि ही समाधि है। शरीरादि में आत्मबुद्धि के निषेध द्वारा केवल शिवत्व भाव भी समाधि है। अथवा अहंब्रह्मास्मि यह भावना भी समाधि है। ब्रह्मभाव प्राप्त होने से सभी कामनाओं से मुक्ति मिल जाती है। ब्रह्म ज्ञान से ही मुक्ति संभव है। अष्टांगयोग की साधना से ज्ञानलाभ और परम पुरुषार्थ मोक्ष मिलता है।

(३) मुक्तिखण्ड (८ अध्याय)

मुक्ति-भगवान् विष्णु की मुक्ति विषयक जिज्ञासा के उत्तर में स्वयं भगवान् शंकर ने पांच प्रकार की मुक्तियों का वर्णन किया है। ये पंचविध मुक्तियां हैं-(१) सालोक्य मुक्ति, (२) सामीप्य मुक्ति, (३) सारूप्य मुक्ति, (४) सायुज्य मुक्ति तथा (५) स्वस्वरूपावस्थान मुक्ति। इनमें चार प्रकार की कर्मफल भूता मुक्ति और पांचवीं ज्ञानफलरूपा मुक्ति है। यह परा मुक्ति है। मुक्ति का प्रधान उपाय ज्ञान है। ज्ञान वेदान्तवाक्य के ताप्पर्य निर्णय से होता है।

सरस्वती की मोचक विषयक जिज्ञासा के समाधान में भगवान शंकर ने मोचक (शिव) का वर्णन किया है। जीव पशु है और शिव पशुपति। वेद प्रमाण से पशुपति शिव ही पशु-जीव के मोचक है। मोचक पद का तात्पर्य ज्ञानोपदेष्टा आचार्य है। आत्मज्ञानी आचार्य ही मोचकप्रद है। मोचकप्रद आचार्य के उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्व क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम आचार्य हैं। उत्तम आचार्य चारों वर्णों का गुरु है। ज्ञान की अनुत्पति में शिवद्रोह मुख्य कारण है। व्याघ्रपुर नामक तीर्थ में स्वयं भगवान् शंकर ने आत्मस्वरूप का उपदेश दिया है। कैलास पर्वत पर प्रातः एवं सन्ध्या काल में भगवान् शिव आनन्दनर्तन करते हैं। उस नर्तन को केवल भगवती पार्वती ही देखती हैं। पुण्डरीकपुर में शिव की कृपा से अन्य शिवभक्त भी आनन्दनर्तन को देख सकते है।

(४) यज्ञवैभवखण्ड (पूर्वभाग) (४७ अध्याय)

यज्ञ-यज्ञ के दो भेद हैं-स्थूल तथा सूक्ष्म। इनमें कर्मयज्ञ स्थूल तथा ज्ञानयज्ञ सूक्ष्म है। स्थूल कर्मयज्ञ भी कायिक, वाचिक तथा मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है। इनमें नित्य नैमित्तिकादि कर्म कायिक, मन्त्रों का जप वाचिक तथा देवता का ध्यान मानसिक यज्ञ है। वाचिक यज्ञ-प्रसंग में ही वाक् की उत्पत्ति का निर्देश है। वाक् के परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चार भेद हैं। अक्षर भी स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार का होता है। स्थूल अक्षर वैखरी रूप है और सूक्ष्म अक्षर नादात्मक प्रणवरूप है। स्वर वर्ण के ३२ और व्यंजनवर्ण के ३३ भेद हैं।

मन्त्रोपासना एवं प्रणव-प्रणव ईश्वर का वाचक है। प्रणव (ओंकार) पर और अपर भेद से दो प्रकार का है। सत्य ज्ञानानन्दैकरस मायातीत शिवरूप परमदेव ही पर प्रणव है। अपर प्रणव साक्षात् शब्दरूप है। प्रणव समस्त वेदों का सार है, क्योंकि ब्रह्मा ने वेदों से साररूप में अकार, उकार, और मकार को निकालकर उन्हीं के मेल से प्रणव (ओंकार) तत्व को प्रकट किया है। वस्तुतः यह 'ओम्' सोऽहम्' का संक्षिप्त रूप होने से जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादक है। प्रणव जप से सर्वमंत्रजप का फल प्राप्त होता है।

सावित्री-सावित्री वेद की माता है। इस मन्त्र का जप, भूः आदि सात व्याहृतियों के साथ किया जाता है। व्याहृतियों का विनियोग यज्ञ कर्म तथा प्राणायामादि क्रियाओं में होता है। सावित्री के ऋषि विश्वामित्र, छन्द गायत्री, देवता सूर्य और अधिदेवता शिव हैं। यह त्रिपदा और चतुष्पदा होती है। इसी को गायत्री भी कहते हैं

आत्ममन्त्र 'हंस'-यह मन्त्र ब्रह्मज्ञानविषयक विद्योत्पत्ति का कारण है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता आत्मा, शक्ति 'स' और बीज 'हम' हैं। यहां 'श' का अन्त 'ष', उसका अन्त 'स' और उसका अन्त 'ह' है। यही मिलकर 'हंस' बनता है। शक्ति और बीजरूप से विभक्त इस मन्त्र का अर्थ पर शिवस्वरूप हंस है। हंकार पुरूष और सकार प्रकृति है। सम्पूर्ण 'हंस' मंत्र का अर्थ है-उपाधिविशिष्ट जीवात्मा का उपाधिरहित शिवस्वरूप परमात्मतत्व के साथ तादात्म्यबोध।

षडक्षर मन्त्र-'ॐ नमः शिवाय' यह षडक्षर मन्त्र है। यह मन्त्र भी आत्म मन्त्र के समान मुक्ति का साधन है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता शिव, शक्ति माहेश्वरी तथा बीज मायाविशिष्ट शिव हैं। इस मन्त्र में प्रथम प्रणव, द्वितीय नकार, तृतीय मकार, चतुर्थ शकार, पंचम वकार और षष्ठ यकार है। यह मन्त्र उपनिषत् प्रतिपादित आत्मतत्व का प्रतिपादक है। सम्पूर्ण दृश्य जगत् शिव रूप है। किसी भी वस्तु की शिव से भिन्न पृथक सत्ता नहीं है, यही इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ है।

ध्यान एवं ज्ञानयज्ञ-ध्यान में ध्येयस्वरूप का ज्ञान अपेक्षित है। उपाधिरहित परात्पर शिवतत्व का स्वरूपतः ध्यान संभव नहीं है अतः मूर्ति को आधार मान कर ही उस परम

शिवतत्व का ध्यान करना चाहिए। उमासहित, शुक्लवर्ण, अर्थचन्द्र विभूषित, नीलकण्ठ, त्रिनयन, प्रसन्नवदन शिवमूर्ति ही ध्येयस्वरूप हैं। ध्यान यज्ञोपासक पुरुष साक्षात् शिव ही हैं

कायिक आदि त्रिविधधर्मों से क्षीणपाप मोक्षार्थिजनों के परशिवस्वरूप बोध के लिए ज्ञानयज्ञ उपादेय है। श्रुति-स्मृतियों में सभी यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। यद्यपि ज्ञान के अनेक भेद हैं, किन्तु सृष्टि से पूर्व स्वयं में प्रतिष्ठित अद्वितीय शिवस्वरूप स्वप्रकाश विज्ञान एक है। यही सृष्टिकाल में मायाकृत जीव, ईश्वर आदि भेद को प्राप्त करता है।

माया और अविद्या-शिव की विशुद्ध सत्व प्रधान शक्ति माया और मलिन सत्व प्रधान शक्ति अविद्या है। माया अपने आश्रयभूत चैतन्य के अधीन रहती है और अविद्या अपने आश्रयभूत जीव को मोह में डालकर अपने अधीन रखती है। माया और अविद्या में यही अन्तर है। अविद्या ही स्थूल-सूक्ष्म उभय विघ शरीर का कारण होने से जीव का कारण शरीर भी है।

प्रमाण-चित्त विषयाकार वृत्तियों का संघात है। कालवश पुण्यापुण्य कर्मफल के कारण चित्त भी प्रमाण, भ्रान्ति और सन्देह भेद से अनेक प्रकार का होता है। दोष रहित इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही प्रमाण है। प्रमाण के छः भेद हैं-विषय के भाव और अभाव रूप होने से प्रमाण के प्रथमतः दो भेद हैं जिनमें पांच भाव विषयक एवं एक अभाव विषयक है। भाव विषय प्रमाण हैं -प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति और शब्द। शब्द प्रमाणगत उपनिषद् वाक्य को परम शिव का साक्षात् बोधक कहा गया है।

शिव भेद-सत्य, ज्ञान स्वरूप, अद्वितीय शिव की अपनी शक्ति से पांच रूपों में विभक्त होते हैं। शिव के पांच रूप हैं - ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। शिव की सर्जन, पालन, संहरण, तिरोभाव तथा अनुग्रह पांच शक्तियां हैं। अखण्ड सच्चिदानन्द परशिव मायावश भेदभाव में कल्पित होकर भी सर्वात्म भाव से अद्वितीय है। परात्पर शिव के साक्षात्कार उपाय ज्ञान है। शिव ही सबके आराध्य हैं, अतः ज्ञान की उत्पत्ति का प्रमुख कारण शिवाराधन है। शिवाराधन में वैराग्य अपेक्षित है।

अनित्य, नित्य वस्तु-वैराग्य ज्ञान का साधन है और अनित्य वस्तु का ज्ञान वैराग्य का साधन है। ऐहिक और स्वर्गिक वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हो जाने पर साधक उनसे विरत हो जाता है। षडरूप अनात्मा ही अनित्य वस्तु है। यतः अनात्मभूत घट-पटादि पदार्थ अनित्य है। अतः जहां अनात्मता है, वहां अनित्यता है। समस्त भौतिक पदार्थ के स्व-स्व कारण में तथा समस्त प्रपंच के ब्रह्म में लीन होने के कारण सबकी अनित्यता सिद्ध होती है। अनात्मभूत अनित्य पदार्थ के ज्ञान से ही वैराग्य संभव है।

माया और उसके कार्य से रहित, निर्विकार, शुद्ध, चिन्मात्र, सर्वसाक्षी परमात्मा ही नित्यवस्तु है। ज्ञानरूप नित्य चैतन्य में अनित्यता की भ्रान्ति अन्तः करण की विषयाकारवृत्ति

के कारण होती है। आत्मा में भेदबुद्धि अज्ञान का परिणाम है। नित्य शुद्ध, स्वप्रकाश परमात्मतत्व ही नित्यवस्तु है।

विशिष्ट धर्म - परमात्मा नित्यवस्तु है। उस नित्यवस्तु का ज्ञापक वेदान्त वाक्य है और उससे उत्पन्न पर शिवात्म-ज्ञान ही विशिष्ट धर्म है। श्रद्धापूर्वक स्वबुद्धि कल्पिक तपश्-चरण भी धर्म है किन्तु यह आगमरहित होने से निर्मूल धर्म है। निर्मूल धर्म की अपेक्षा वेदमूलक धर्म श्रेष्ठ है। श्रुति ज्ञानजन्य शिवस्वरूप ज्ञान ही परम धर्म है।

लिंगस्वरूप-'शिवस्य लिंगम्' शिवलिंग शब्द का यह अर्थ शिव और लिंग में भेद बुद्धि का जनक है। वस्तुतः शिव ही लिंगस्वरूप है, यह अर्थ शिव और लिंग की अभिन्नता का प्रतिपादक है। शिव और लिंग में भेददृष्टि अज्ञान का परिणाम है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन त्रिविध लिंगों में स्वशक्तियुक्त परात्पर शिव ही भासित होते हैं। अतः लिंगस्वरूप शिव ही उपास्य एवं मोक्षदायक हैं।

शिवस्थान-शिव के आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक स्थानों का वर्णन है। आध्यात्मिक स्थानों में ब्रह्मरन्ध्र, मूलाधार, प्रणव, नाद आदि तथा आधिभौतिक स्थानों में वाराणसी, सोमनाथ, केदार और श्रीमद्रामेश्वर प्रमुख हैं। योगिजनसेवित पुण्डरीकपुर नामक स्थान उत्तम है। विराट् ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत स्वराट् नामक लिंग शरीर ही पुण्डरीकपुर है। शिवस्थानों में शिवोपासना मोक्षदायिका है।

भस्म-भस्म के दो भेद हैं-महाभस्म तथा स्वल्प भस्म। महाभस्म स्वयं महादेव हैं। स्वल्प भस्म के भी दो भेद हैं-श्रौत भस्म एवं स्मार्त भस्म। इसके अतिरिक्त एक लौकिक भस्म भी है। श्रौत और स्मार्त भस्म के अधिकारी द्विज तथा लौकिक भस्म के अधिकारी शूद्र हैं। भस्मलेपन ज्ञान के अंगरूप में वर्णित है अतः इसका प्रयोजन भी मोक्षप्राप्ति है।

पातक-अन्त में पातक, प्रायश्चित, पापक्षय, अभक्ष्यनिवृत्ति और मृत्युदर्शननिमित्तों का सविस्तार वर्णन है। इसके साथ ही अवशिष्ट पापपरिणामों का भी उल्लेख है। विविध पापों के परिणामस्वरूप जीव को जो जो रोग और योनियों का कष्ट उठाना पड़ता है, उनका वर्णन विशेष महत्व रखता है।

श्रुतिविरोध परिहार-सूत संहिता में अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों में तथा द्वैत प्रतिपादक श्रुतियों में परस्पर अविरोध बताया गया है। वस्तुतः द्वैतपरक श्रुतियां भी द्वैत का अनुवाद करके अद्वैत का ही प्रतिपादन करती हैं।

(४) यज्ञवैभवखण्ड (उत्तर भाग) (२० अध्याय)

ब्रह्मगीता (१-१२ अध्याय)

ब्रह्म-स्वतः सिद्ध, सर्वसाक्षी निर्गुण ब्रह्म संसार सागर में निमग्न प्राणी का मोचक है। उसी की प्रेरणा से जीव विषयाभिमुख होता है। ब्रह्म इन्द्रियातीत, सर्वावभासक तथा

स्वप्रकाश है। वह शब्दातीत होने से केवल अनुभूति का विषय है। जो साधक इसी देह से स्वप्रकाश ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

आत्मा-आत्मतत्व कार्यकारण समूह के भीतर विद्यमान, अव्यवहित रूप से सबका द्रष्टा, स्वप्रकाश और अपरिच्छिन्न है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस श्रुतिवाक्य के 'अहम्' पद का तथा 'तत्वमसि' इसके 'त्वम्' पद का वास्तविक लक्ष्यार्थ चेतन आत्मा ही है, यह स्थूल शरीर तो घटादि के समान अचेतन होने से दृश्य है। इसका द्रष्टा सर्वान्तर्यामी आत्मा है। द्रष्टा आत्मा की चित्प्रकाशिका दृष्टि अविनाशी है। जाग्रदादि अवस्थात्रय में भासमान स्वप्रकाश चिदात्मा आविर्भाव और तिरोभाव रूप धर्म से रहित है। वही ज्ञाताज्ञात सम्पूर्ण विश्व का ज्ञाता है। वह आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म होने से दुर्दर्श, गहन स्थान में प्रविष्ट और सबकी बुद्धि में निहित है।

यह आत्मा परमानन्द एवं परप्रेमास्पद है। सुखस्वरूप आत्मा ही सबसे अधिक प्रिय है। सुखाभिलाषी को कर्म का त्याग कर श्रद्धापूर्वक उस आत्मतत्व का दर्शन, श्रवण, मनन तथा चिन्तन करना चाहिए। आत्मा और ब्रह्म की एकता उपनिषदों में प्रतिपादित है। सम्पूर्ण उपनिषदों का सार आत्मस्वरूप ब्रह्म ही 'अहम्' शब्दज्ञान का आधार है। 'अहम्' शब्दोपलक्षित सकल दुःख-निर्मुक्तचैतन्यात्मा ब्रह्म को शिवरूप में जानने वाला व्यक्ति पूर्ण है।

दहराकाश-इस ब्रह्मपुर (विद्याधिकारी शरीर) में दहरपुण्डरीक (अल्पपरिमाण हृत्पुण्डरीक) है। उससे अविच्छिन्न अल्पपरिमाण आकाश संज्ञक परशिव है। हृत्पुण्डरीक में आकाश संज्ञक पर शिव ही मुमुक्षु द्वारा अन्वेष्टव्य एवं ज्ञातव्य है। 'आ समन्तात् काशेते' इस व्युत्पत्ति से 'आकाश' शब्द स्वप्रकाश ब्रहम अर्थ में प्रयुक्त है। हृत्पुण्डरीक में आकाशरूप शिवतत्व की उपासना करनी चाहिए।

सूतगीता (१३-२० अध्याय)

पशु, पाश तथा पति- स्वतः सिद्ध, सत्य, ज्ञान और आनन्दरूप अद्वितीय जगत्कर्ता 'शिव ही पति' है। आकाशादि ३५ तत्व 'पाश' और इस पाश में बंधा जीव ही पशु है। जगत्कर्ता शिव पशु से भिन्न है। जीवरूप पशु की उपाधि अविद्या है और शिवरूप पति की उपाधि माया है। अविद्या और माया के कारण ही पशु-जीव तथा पति-शिव में कल्पित भेद है।

वेद का स्वतः प्रामाण्य - वेद सर्वश्रेष्ठ सनातन प्रमाण है। वही अद्वय शिवस्वरूप का प्रतिपादक है। जड-चेतन जगत् की स्थिति आदि का भी प्रतिपादक वेद ही है, क्योंकि सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान तर्क से संभव नहीं है। वेद अनादि और स्वतः सिद्ध है। अतः उसमें स्वतः अथवा परतः दोष असंभव है। वेद में अनाप्त प्रमाण के सम्पर्क से ही दोषभ्रान्ति होती है।

सर्वदोषमुक्त शिव से अभिव्यक्त वेद भी निर्दोष है। अनादि विशुद्ध स्वतः सिद्ध वेद प्रामाण्य से उपदिष्ट पदार्थ ही यथार्थ है।

रहस्य-सभी शरीर में, अवयवों और इन्द्रियों के नियन्त्रण के लिए अभिमानी देवता विद्यमान हैं और उन शरीरों का कारणभूत परम शिवतत्व भी समस्त शरीर में विद्यमान है। समस्त प्रपंच का, शरीर एवं तदभिमानी देवताओं का कारणभूत ब्रह्म तत्व ब्रह्मरन्ध्र संज्ञक महास्थान में रहता है। परमा चित्शक्ति देह मध्य में, मायाशक्ति ललाट के अग्रभाग में, नाद रूपा पराशक्ति ललाट के मध्यभाग में, बिन्दुमयी शक्ति ललाट के अपर भाग में, तथा जीवात्मा सूक्ष्म रूप से बिन्दु के मध्य में, स्थूलरूप से हृदय में और मध्य रूप से मध्य भाग में रहता है। ब्रह्मापत्नी सरस्वती जिह्वाग्र में, विष्णुपत्नी लक्ष्मी अनाहत हृदय मध्य स्थान में और रुद्रपत्नी पार्वती रुद्र के साथ सर्वत्र रहती हैं।

वेदान्त वाक्य-ज्ञान वेदान्त वाक्य से उत्पन्न होता है। सूक्ष्म धर्मादि और परम कारण शिव में एकमात्र श्रुति -वेदान्त वाक्य ही प्रमाण है। स्मृति श्रुति का ही अनुगमन करती है। वेदान्त वाक्य से ही ज्ञानस्वरूप स्वप्रकाश शिव तत्व का वास्तविक ज्ञान संभव है। सूत संहिता का प्रतिपाद्य विषय परम शिव और फल मोक्ष प्राप्ति है। श्रुतिसम्मत सूतसंहिता के अध्ययन से शिवस्वरूप का ज्ञान होता है।

समीक्षा

स्कन्द पुराण का लक्ष श्लोक संख्यक संहितात्मक स्वरूप अपनी विशालता में महाभारत के समकक्ष है। विपुल कलेवर में विविध विषयों का वर्णन इसकी विशेषता है। 'सूत संहिता' इसी पुराण का एक विशिष्ट अंग है। यह स्वरूपतः पुराण ही है, उपपुराण नहीं। सूत संहिता की एकमात्र प्रकाशित टीका 'तात्पर्य दीपिका' है, जिसके लेखक माधवमन्त्री हैं। सूतसंहिता में जिन धार्मिक विषयों का वर्णन है, उनमें वर्ण, आश्रम, तीर्थ, दान, धर्म, पातक एवं प्रायश्चित प्रमुख हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार वर्णाश्रम धर्म है। सूतसंहिता वर्णोत्पति के सन्दर्भ में ऋग्वेद के 'पुरुषसूक्त' का अनुसरण करती है और देवतत्व से ही वर्णों की उत्पत्ति मानती है। सूत संहिता भी जाति का अस्तित्व जन्म से ही स्वीकार करती है, कर्म से नहीं। धर्मशास्त्रों में आश्रम व्यवस्था भी वर्णव्यवस्था के समान ही प्राचीन एवं महत्वपूर्ण मानी गई है। सूत संहिता में आश्रमधर्मों का वर्णन उसी तारतम्य में है, जो सूत्र ग्रन्थों और स्मृतियों में उल्लिखित है।

यद्यपि पुराणों में दार्शनिक विषयों की अपेक्षा सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित वर्णन को प्रमुखता प्राप्त है, तथापि दर्शन के बढ़ते प्रभाव और लोकप्रियता ने पुराणों में दार्शनिक तथ्यों का समावेश करने का मार्ग प्रशस्त किया, फलतः पुराणों में दार्शनिक तथ्यों को सरल एवं सर्वजन सुलभ बनाने के लिए उनका विवेचन प्रारम्भ हुआ।

जिन पुराणों में दार्शनिक तत्वों का प्राधान्य है, उनमें 'सूतसंहिता' अन्यतम है। सूत संहिता में दार्शनिक विचारों का प्रथम सोपान सृष्टि-विवेचन से प्रारम्भ होता है। सृष्टि के विषय में सूत संहिता को नैयायिकों का 'असत्कार्यवाद' तथा लोकायतिक का 'स्वभाववाद' मान्य नहीं है। वह परमशिव से जगत् का आविर्भाव मानती है और इस दृष्टि से वह सांख्य के 'सत्कार्यवाद' के अधिक निकट है।

पुराण होते हुए भी सूत संहिता पुराण सम्मत आठ प्रमाणों के स्थान पर वेदान्त सम्मत छः प्रमाणों का ही वर्णन करती है। सूत संहिता चित्तवृत्ति के निरोध के साथ ही ज्ञानप्राप्ति के उपाय के अर्थ में भी योग शब्द का प्रयोग करती है। समाधि वह प्रकाशमय ज्ञान दशा है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। सूत संहिता मन्त्र शब्द के सामान्य अर्थ की अपेक्षा प्रतीकात्मक अर्थ को प्रश्रय देती है। तत्वमनन से संसार भय को दूर करने वाला ही मन्त्र है। प्रणव, सावित्री, हंस और षडक्षर मन्त्रों में परम शिव ही उपास्य देव हैं। सूत संहिता शिव की जडशक्ति को 'माया' और चेतन शक्ति को 'संविद्' मानती है। अद्वैत मत में जिसकों माया और सांख्य मत में मूल प्रकृति कहा गया है, सूत संहिता में उसी को शिव की जड़शक्ति कहा है।

'शिवलिंग' की अर्चना भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व रखती है। सूत संहिता 'लिंग' शब्द के अर्थ निरूपण में आध्यात्मिक दृष्टि अपनाती है और शिव और लिंग में अभेद भाव का प्रतिपादन करती है। उपनिषदों से प्रभावित सूत संहिता 'आत्मा' को सूक्ष्म, नित्य तथा ब्रह्मस्वरूप मानती है। वस्तुतः उपनिषद् का 'ब्रह्म' ही शैवदर्शन के परिप्रेक्ष्य में सूत संहिता में 'परम शिव' के रूप में वर्णित हैं।सूत संहिता छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित पृथ्वी, अग्नि और जल के तीन रूपों के विकास का सारांश प्रस्तुत कर उपनिषद् के 'त्रिवृतकरणप्रक्रिया' को 'पंचीकरण प्रक्रिया' के रूप में विकसित करती है। बृहदारण्यकोपनिषद् को आधार मानकर अद्वैत तत्व के निरूपण में संहिता विशेष रूचि लेती है और द्वैतवादी विचारों की तीव्र आलोचना करती है। मुक्ति मानव जीवन का परम लक्ष्य है। सूत संहिता परम शिवतत्व में चित्तवृत्ति की परम विश्रान्ति को 'मुक्ति' कहती है। आत्मतत्व में सर्वार्थतत्व की भावना ही जीवन्मुक्ति है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक तथ्यों के विवेचन में सूत संहिता उपनिषद्, सांख्य, योग, आगम एवं वेदान्त के सिद्धान्तों का निरूपण कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से करती है। जहां तक धार्मिक तथ्यों के विवेचन की बात हैं, सूत संहिता निश्चित रूप से धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा कुछ प्राचीन पुराणों की विचार सम्पत्तियों का आधार ग्रहण करती है और उनसे अनुप्राणित विचारों को प्रश्रय देती है। सूतसंहिता ने

भारतीय वेदशास्त्रों को उपजीव्य मानकर धर्म एवं दर्शन का सुन्दर समन्वय किया है, जो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन के समुन्नयन में विशेष उपादेय है।

सूत संहिता की भाषा और शैली

भाषा-पुराण साहित्य अर्थ प्रधान होता है। अभीष्ट अर्थ को स्पष्ट करना उसका मुख्य प्रयोजन है। सूत संहिता में भी अर्थ की अभिव्यक्ति को विशेष बल मिला है। सूत संहिता के लेखक का लक्ष्य जनसामान्य के मन को धर्म और दर्शन की ओर आकर्षित करना है अतः वह सरल, सुबोध, व्यावहारिक, प्रवाहपूर्ण और अर्थ प्रधान भाषा का प्रयोग करता है। दार्शनिक विषयों के वर्णन-क्रम में सूतसंहिता में उपनिषदों के शब्दों और अर्थों को भी ग्रहण किया गया है। कहीं-कहीं तो कई उपनिषदों के कतिपय मंत्र अक्षरशः गृहीत हैं। यद्यपि पुराणों में अपाणिनीय शब्दों के प्रयोग मिलते हैं, किन्तु सूतसंहिता इसका अपवाद है। इसमें प्रायः पाणिनि व्याकरण सम्मत शब्दों का प्रयोग हुआ है। गूढ़ दार्शनिक तत्वों के विवेचन-प्रसंग में भाषा की सुगठितप्रौढ़ता श्लाघ्य है, किन्तु दर्शन को भी सरल, सुबोध भाषा में जनसाधारण के लिए सुग्राह्य बनाने में संहिता जागरूक है। चतुर्थ खण्ड के २६वें अध्याय में वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण से स्तोत्रमन्त्र का आरम्भ इसकी भाषा-विलक्षणता का सुन्दर उदाहरण है।

शैली-सूत संहिता में अनुप्रास, उपमा और रूपक अलंकारो का अधिक प्रयोग हुआ है। सूत संहिता का कलेवर पुराणात्मक है अतः उसमें काव्यग्रन्थों की भांति अंलकारो की विविधता नहीं है। गूढ़ विषय के स्पष्टीकरण के लिए इसमें उपमा और अधिकतर रूपक का ही आश्रय लिया गया है। जहां तक छन्दः प्रयोग की बात है, इसमें विविधता दर्शनीय है। इसमें अधिकतर अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु अध्यायों के मध्य और अन्त में विषय अनुरूप छोटे-बड़े छन्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है। इन प्रयुक्त छन्दों में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, रथोद्धता, उपचित्र, शालिनी, वंशस्थ, वसन्ततिलका, तामरस, मालिनी, प्रहर्षिणी, पंचचामर, द्रुतविलम्बित और शार्दूलविक्रीडित हैं। औपनिषदिक विषयों के वर्णन में वैदिक त्रिष्टुप् छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

मानसखण्ड

स्कन्द पुराण अठारहों पुराणों में सबसे विशालकाय है। इसके दो प्रकार के विभाजन प्रसिद्ध हैं- 'खण्डात्मक और संहितात्मक'। इसका मुख्य उद्देश्य शैव तत्व का निरूपण करना है। स्वामी कर्तिकेय द्वारा इसका निर्वचन कराया गया है। 'स्कन्द पुराण' के सप्तखण्डात्मक विभाजन का विवरण 'नारद पुराण' के अध्याय १०४ में दिया गया है। ये खण्ड क्रमशः इस प्रकार हैं- (१) माहेश्वर खण्ड (२) वैष्णव खण्ड (३) ब्रह्म खण्ड (४) काशी खण्ड (५) रेवा खण्ड (६) अवन्ति खण्ड (७) तापी खण्ड।

'नारद पुराण' के मतानुसार इसके छठे खण्ड का नाम 'नागर खण्ड' है तथा सातवें खण्ड का नाम 'प्रभास खण्ड' है। इस प्रकाशित खण्डात्मक विभाजन में 'मानस खण्ड' तथा 'केदार खण्ड' का पृथक विस्तृत विवरण विद्यमान नहीं है। महामहोपाध्याय पण्डित हर प्रसाद शास्त्री ने स्कन्द पुराण का दो प्रकार से विभाजन माना है- (१) खण्डात्मक तथा (२) संहितात्मक। संहितात्मक विभाजन को उन्होंने माहेश्वर- संहिता के रूप में स्वीकार किया है। अभी तक माहेश्वर संहिता के नाम से ग्रन्थ प्रकाशित नहीं मिलता। उन्होंने इस माहेश्वर संहिता को नेपाल में देखा था। इसी के अन्तर्गत हिमालय की सीमा को निर्धारित करने वाले पाँच खण्डों की परिकल्पना की गई है। इस परिकल्पना को केदार खण्ड में उल्लिखित किया गया है-

तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे।
अग्रे मानसप्रस्तावे तथा नेपालके मुने।।
कश्मीरे चैव प्रस्तावे जालन्ध्रे वै तथा पुनः।
तथा केदार-प्रस्तावे कथितानि मयाऽद्य ते।।
(के.ख.अ. २०४/५६-५७)

इसी को अभिलक्षित कर तत्कालीन टिहरी राज्य के मन्त्री श्रीयुत हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने 'गढ़वाल के इतिहास' में श्लोकात्मक रचना के उत्तरार्ध में वर्णित किया है।

"खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपाल- कूर्माचलौ,
केदारश्च जलन्धरोऽथ रुचिरः कश्मीरसञ्ज्ञोऽन्तिमः।"

मानस खण्ड की पृष्टभूमि

स्कन्द पुराण के अन्तर्गत वर्तमान मानस खण्ड के परिप्रेक्ष्य में 'हिमालय' और उसके आस-पास के परिसर से परिचित होना आवश्यक है। तदनुसार यह वर्णन दिया जा रहा

है। प्राचीन काल में उत्तर भारत के दो मुख्य भाग थे १) प्राच्य तथा २) उदीच्य। अमरकोषकार ने इसका समर्थन किया है- 'देशोऽयं भारतं वर्ष शरावत्यास्तु योऽवधेः। देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्य पश्चिमोत्तरः।।' तदनुसार इसकी विभाजक नदी का नाम 'शरावती' था। 'शरावती' के विषय में विद्वानों में मतभेद है। तथापि रामायण के आधार पर डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'शरदण्डा' नदी को शरद्वती के रूप में माना है। वही शरावती है। उसकी पवित्रता को अभिलक्षित कर क्षीरस्वामी ने भी इस प्रकार उल्लेख किया है-

प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदके यथा।
विदुषां शब्दसिद्ध्यर्थं सा नः पातु शरावती।।

अतः चितांग नदी के पूर्व तथा दक्षिण भाग को 'प्राच्य' कहा जाता है तथा पश्चिमोत्तर भाग को 'उदीच्य' कहा जाता है। उदीची (उत्तर दिशा) में ही 'हिमालय' विराजमान है। पुराणों के अनुसार 'हिमवान्' अर्थात् हिमालय हमारे देश का वर्ष-पर्वत है। 'सिन्धु' तथा 'ब्रह्मपुत्र' नदियाँ हिमालय के समीप उत्तरपूर्वी भाग से निकलकर 'सिन्धु' पश्चिम की ओर तथा 'ब्रह्मपुत्र' पूर्व की ओर चलकर 'हिमालय' की उत्तरी सीमा बनाती है। तद्नन्तर बहुत दूर जाकर दोनों दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। इन्हीं स्थानों को अभिलक्षित कर कालिदास ने हिमालय की पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा निर्धारित कर पृथ्वी के मानदण्ड के रूप में वर्णित किया है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

(कुमारसम्भव)

हिमालय की चौड़ाई १५० मील से २०० मील तक है। भूगोल वेत्ताओं ने इस चौड़ाई को तीन भागों में विभक्त किया है- (१) गर्भ श्रृङ्खला या उपगिरि (२) भीतरी श्रृङ्खला या लघु हिमालय तथा (३) गर्भ श्रृङ्खला या बृहत् हिमालय या अन्तर्गिरि। वाह्य श्रृङ्खला के अन्तर्गत सिन्धु तथा गङ्गा के मैदान का उत्तरी किनारा समुद्र की सतह से १००० फीट से लेकर ५००० फीट तक ऊँचा तथा २४ से ५० मील तक चौड़ा है। इन श्रृङ्लाओं का निम्नभाग भाभर-तराई अथवा दून (संस्कृत में द्रोणी) कहा जाता है। इससे ऊपर की ओर बढ़कर 'लघु हिमालय' आरम्भ होता है। बहिर्गिरि की श्रृङ्खलाओं में कश्मीर की 'पीरपंजाल', कांगडा, कुल्लू, किन्नौर की धौलाधार-श्रृङ्खला, जौनसार तथा गढ़वाल की नागाटिब्बा श्रृङ्खला तथा नेपाल की महाभारत श्रृङ्खलायें हैं। इसकी चौड़ाई ५० से ७० मील तक है। लगभग १०,००० फीट की ऊँचाई तक यह श्रृङ्खला चली गई है। लघु हिमालय के उत्तर में बृहत् हिमालय (हिमाद्रि) अथवा अन्तर्गिरि प्रारम्भ होता है। इस पर

सदा हिमपात होता रहता है। इसमें नङ्गापर्वत, बन्दरपूँछ, केदारनाथ, नन्दादेवी, धौलागिरि, गोसाईथान, गौरीशंकर, कांचनजङ्घा आदि शिखर हैं। इस श्रृङ्खला से ही प्रायः उत्तरी भारत की विशाल नदियाँ- चिनाब, गङ्गा, यमुना, सतुलज, घाघरा (सरयू) गण्डकी आदि नदियाँ निकल कर पहाड़ों को काटती हुई दक्षिण की ओर बहती हैं। इसके शिखरों पर बस्तियाँ नहीं हैं। इस श्रृङ्खला का ऊपरी भाग अन्तर्राष्ट्रीय सीमा को बनाता है। हिमालय की बृहत् श्रृङ्खला को अभिलक्षित कर भौगोलिक दृष्टि से पुराणों में इसे पाँच खण्डों में विभक्त किया है। पंञ्चखण्डोक्त विभाजन में 'पञ्चचूली' शिखर को उपजोत्य माना है। यह विभाजन 'केदारखण्ड' के समय तक पूर्ण हो गया था। 'मानस खण्ड' के अनुसार 'बृहत् हिमालय' के अन्तर्गत 'बृहतर कूर्मांचल' की पर्वतीय सीमा 'नन्द पर्वत' से आरम्भ होकर 'काकगिरि' (पश्चिम नेपाल) पर्यन्त विस्तृत की गई है।

मानस खण्ड का पौराणिक सर्वेक्षण

भारत के उत्तर में स्थित पर्वतीय भूभाग ने भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसकी गगनचुम्बी पर्वतमालायें तथा घने जंगल देश की अतीत गाथाओं के विषय में अपना मौन व्याख्यान सुनाते चले आ रहे हैं। प्राचीन काल से इन पर्वतों ने देश की रक्षा दो प्रकार से की है। एक ओर तो उत्तर की ओर आते हुए भयानक झंझावातों को रोकने का कार्य बड़े साहस के साथ किया है तो दूसरी ओर आक्रान्ताओं के लिए अर्गला स्वरूप भारत की सुरक्षा हेतु प्रहरी बन कर भी इसकी मान-मर्यादा को बढ़ाने में सहयोग दिया है।

नगाधिराज हिमालय का महात्म्य पुराणों में विशेषतया वर्णित है। इसे शिव की वास भूमि कहा जाता है। कैलास पर्वत की तदाकारिता ने मानो शिव का स्वरूप ग्रहण कर लिया हो, जिसके फल स्वरूप कैलास पर्वत पर्यन्त यात्रा का प्रसङ्ग विविध पुराणों का वर्ण्य विषय रहा है। हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है[1]।

वैदिक काल में यह भूभाग 'हैमवत' नाम से विदित रहा। उस समय मध्य हैमवत के शासक 'तृत्सु' थे। ये ऋग्वैदिक पञ्चजनों से भिन्न थे। मध्यहैमवत में कूर्मांचल एवं गढ़वाल दोनों सम्मिलित थे। तदनन्तर महाभारत काल में 'कुरु' वंश का प्राधान्य रहा। कुरु प्रदेश के उत्तर भाग में स्थित होने के कारण उस समय इस भू-भाग की प्रसिद्धि 'उत्तर-कुरु' देश के नाम से सुविदित है। महाभारत के वर्णन से यह विदित होता है कि इस भू-भाग के शासकों ने युधिष्ठिर के यज्ञ में स्वर्ण राशि उपहार में दी थी। प्राकृतिक-सम्पदा की यह भूमि अपने अतीत के गौरव-पृष्टों को आज भी उसी तरह

---

१. पश्चिमाभिमुखः साक्षात् हिमाद्रिः कथ्यते बुधैः। तस्य दक्षिणभागे वै नाम्ना नन्दागिरिः स्मृतः।।

जिज्ञासुओं के समक्ष खोले हुए है। पूर्वकाल में किरात, नाग, खस, शक, हूण आदि जातियाँ यहाँ समय-समय पर रहती चली आई हैं। जैन-बौद्ध काल में भी यह स्थान प्रसिद्ध रहा है। शंकराचार्य के समय भी यहाँ धार्मिक जागृति अच्छी हुई। ह्वेनसांग का ब्रह्मपुर भी अभी तक विस्मृत नहीं हुआ है।

मध्य हैमवत की कल्पना पुराणों में तीन रूपों में की गई है। ये स्वरूपात्मक दृष्टि से 'हिमवत्खण्डान्तर्गत नेपाल' 'मानस खण्ड' तथा 'केदार खण्ड' के नाम से विख्यात है। यह त्रिकूटाकार विभाजन अपने-अपने देश की सार्थकता को संजोये हुए हैं। हिमवत्खण्ड का यह नाम सार्थक है, क्योंकि यहाँ की पर्वत श्रेणियाँ सदा सर्वदा हिमाच्छादित रहती हैं। संकलित हिमवत्खण्ड में नेपाल का महात्म्य प्रधानतया वर्णित है। हिमालय की सर्वोच्च चोटी एवं पशुपतिनाथ ने इस देश को विभूषित कर बड़ा गौरव प्रदान किया है। दूसरा खण्ड 'मानस खण्ड' भी तदनुसार वर्तमान कूर्माचल के परिवेश को अतीत की भौगोलिक सीमा में परिवेष्ठित कर कैलास-मानसरोवर की ओर दृष्टि लगाए हुए है। कहाँ गई वह भारत की सीमा रेखा? जिसकी सुरक्षा करने हेतु कूर्माचल नरेश बाज बहादुर चन्द्र ने सन् १६७० ई. में कुमायूं तथा तिब्बत के बीच सभी घाटों (जोतों) पर पुनः अधिकार कर लिया था तथा 'तकलाकोट' पर यात्रियों की सुरक्षा हेतु सेना का शिविर- स्थान निश्चित किया था। इतना ही नहीं भोदान्त के 'पनछू' आदि पाँच गाँव यात्रियों की सुविधा हेतु दान स्वरूप अर्पण कर दिये थे। इसके साथ ही मार्ग स्थित 'ब्यांस' (व्यासाश्रम) आदि को भी कूर्माचल में पुनः प्रतिष्ठित कर उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होने दी। तीसरा 'केदार खण्ड' वर्तमान गढ़वाल प्रदेश की सांस्कृतिक महत्ता को प्रकाशित करने में अपनी भूमिका निभा रहा है। प्राचीन काल में 'किरात-खस-मण्डल' नाम से यह भू-भाग देवभूमि का परिचायक रहा है। इसकी उच्चता को 'केदार' ने अभिव्यञ्जित कर जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य को यहीं ब्रह्मलीन होने की प्रेरणा देकर सार्थक सिद्ध किया है।

हिमालय-कुक्षिस्थ इस प्रदेश का विस्तार केदारखण्ड के काल तक पाँच खण्डों में पहुँच गया था। अतः इस उत्तरी भाग को प्रारम्भ में नेपाल और सिक्किम से लेकर कश्मीर पर्यन्त मानकर पाँच खण्डों में विभाजित कर दिया गया है। इसमें से तीन तो बतला दिए गए हैं, चौथा तथा पाँचवा खण्ड क्रमशः जालन्धर एवं कश्मीर हैं। हिमाचल प्रदेश का भूभाग 'जालन्धर खण्ड' के अन्तर्गत समाविष्ट होता है। प्रकृत 'जालन्धर खण्ड' की भौगोलिक सीमा का पौराणिक स्वरूप ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत 'जालन्धर महात्म्य' में वर्णित है। उस वर्णन में १३ अध्याय हैं तथा १०३० श्लोकों की संख्या है। विक्रम संवत् १८३६ की लिखी हुई इसकी एक प्रति महाराज हथुआ के ग्रन्थालय में सुरक्षित थी। काश्मीर का पौराणिक उपाख्यान 'नीलमत्-पुराण' नामक ग्रन्थ में वर्णित है। तदनुसार काश्मीर प्रमुख नदियाँ, सरोवर, गुहायें, नागमन्दिर तथा पर्वत श्रेणियाँ आदि सभी सौन्दर्य विभूतियाँ इस प्रदेश की 'भारत भूमि का स्वर्ग' नाम से यथार्थता सिद्ध करती चली आ रही हैं।

सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से उत्तरापथ (खण्ड) की चर्चा अनेक रूपों में होती चली आ रही है। एक ओर ऋषि-मुनियों की यह साधना स्थली रही है तो दूसरी ओर आक्रान्ताओं के लिए प्रवेश द्वारा भी इसी भूमि में प्राप्त हुआ है, तथापि इसकी दुर्गमता के कारण इस प्रदेश ने अधिक आघात नहीं सहे। पुराणोक्त 'मानस-केदार' क्षेत्र को उत्तराखण्ड की संज्ञा दी जाती है। यह दोनों मण्डल एक दूसरे से मिले हुए हैं। नन्दा पर्वत श्रृङ्खला दोनों भू-खण्डों की विभाजन श्रेणी है। इस पर्वत श्रृङ्खला का पश्चिम का पर्वतीय भाग केदार खण्ड के नाम से विख्यात है तथा पूर्वी भाग मानस खण्ड के नाम से अपनी सार्थकता को संजोए हुए है।

मानस खण्ड का भौगोलिक विस्तार

मानस खण्ड के इक्कीसवें अध्याय में मानस खण्ड की सीमा वर्णित है। जिसके अनुसार इस आख्यान (मानस खण्डाख्यान) में दत्तात्रेय ने राजा धन्वन्तरि की जिज्ञासा को शान्त करते हुए भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम 'मानस खण्ड' की स्थूल सीमा का निदर्शन करते हुए यह बताया है कि नन्द पर्वत से आरम्भ होकर 'काकगिरि' पर्यन्त विस्तृत भू-भाग 'मानस खण्ड' के नाम से प्रख्यात है।

नन्दपर्वतमारभ्य यावत् काकगिरिः स्मृतः।
तावद् वै मानसः खण्डः ख्यायते नृपसत्तम।।
(मा.ख.आ. २१-४)

तदनुसार इस स्थूल सीमा में दो पर्वत श्रेणियों का उल्लेख है। वह हैं 'नन्द पर्वत' (२५६८६ फीट ऊँचा) तथा 'काक गिरि' (पश्चिम नेपाल)। इस सीमा के अन्तर्गत कैलास मानसरोवर का वर्णन 'मानस क्षेत्र' के नाम से किया गया है। तदनन्तर इस भू-भाग की विस्तृत सीमा का परिचय कराते हुए समस्त भू-भाग को बाइस पर्वत श्रेणियों में विभाजित कर उसका यथार्थ परिचय दिया गया है। इस विस्तृत परिचय से इस भूखण्ड की विशालता तथा सांस्कृतिक महत्ता विदित होती है। सर्वप्रथम 'नन्द-पर्वत' की महिमा के कारण-स्वरूप 'नन्दा देवी' को बतलाकर दूसरे पर्वत-श्रृङ्ग 'द्रोण गिरि' का वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसकी प्रसिद्ध औषधियाँ रामायण काल में भी रही हैं। इसके बाद 'पुण्यशील' 'दारूकानन' है, जहाँ योगीश्वर भगवान की पूजा होती है। इसे बाद कूर्माचल पर्वत है, जहाँ मानसरोवर का प्रभाव समाप्त होता है।

"नाम्नाः नन्दगिरिः पुण्यों यत्र नन्दा महेश्वरी।
ततो मानसखण्डे वै पुण्यो द्रोणगिरिः स्मृतः।।

महौषधिसमाकीर्णः सिद्धगन्धर्वसेवितः।
ततः पुण्यं महाभाग विद्यते दारुकाननम्।
यत्र योगेश्वरो देवो पूज्यते नात्र संशयः।
परं कूर्माचलो नाम पर्वतः ख्यायते भुवि।।
यत्र वै मानसस्यान्तं वदन्ति मुनयः शुभाः। (मा.स. २१/९-१२)

काली-कुमाऊं में मानसरोवर के प्रभाव की स्मृति को 'मानसेश्वर' महादेव अब संजोए हुए हैं। सरोवर का भूमिगत अन्तस्थ प्रभाव कितने नीचे तक पड़ सकता है, यह भूगर्भ-विज्ञान-वेत्ताओं के लिए एक चुनौती है।

इसके पश्चात् सीमा के दूसरे छोर को पकड़ते हुए 'नागपुर' पर्वत का उल्लेख किया गया है, जहाँ वासुकि-प्रभृति नागों की पूजा प्रचलित है। इन नागों के विषय में बहुत सी लोक-गाथायें भी प्रचलित हैं। इसके बाद सिद्ध गणों से सेवित 'पावन' पर्वत का निवेश किया गया है-

ततो नागपुरो नाम पर्वतो नृपसत्तम।
यत्र सम्पूज्यते नागा वासुकिप्रमुखादयः।।
ततो दारुगिरिः पुण्यः पूज्यते नात्र संशयः।
यत्र सम्पूज्यते देवः पातालभुवनेश्वरः।।
ततस्तु पावनो नाम पर्वतः सिद्धसेवितः।
यत्र सम्पूज्यते देवः पावनो लोकपावनः।। (मा.ख. २१/१३-१५)

तद्नन्तर वहाँ से सीमा की ऊँचाई अभिलक्षित कर 'पञ्चशिर' नामक पर्वत की ओर बढ़ने का निर्देश दिया है। उसकी उच्चता की समता देवराज इन्द्र से की गई है। इतना ही नहीं उस पर्वत में साक्षात् शङ्कर के सिर ही मानो विद्यमान हों। तत्पश्चात् 'केतुमान' पर्वत की चर्चा की गई है। फिर 'मल्लिकार्जुन्' पर्वत का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् सुपरिचित एवं सुप्रसिद्ध 'गणनाथ' पर्वत श्रृङ्ग का निर्देश किया है। इसी के साथ 'दुन्दुकर' पर्वत का उल्लेख कर 'चन्द्रमा' पर्वत की ओर बढ़ने का सङ्केत दिया है जहाँ सुषमा देवी की पूजा की जाती है-

ततः पञ्चशिरो नाम पर्वतः सुरराडिव।
राजते नृपशार्दूल साक्षादिव शतक्रतुः।
तस्मिन् शिरांसि देवस्य विराजन्ते न संशयः।
ततस्तु केतुमान् नाम पर्वतो नृपसत्तम।
मल्लिकार्जुन-नामा वै पर्वतः सुरसेवितः।

मल्लिकार्जुन संज्ञो वै तत्रैव परिपूज्यते।
गणनाथेति विख्यातः पर्वतस्तदनन्तरम्।।
तत्र सम्पूज्यते राजन् गणनाथो न संशयः।
ततो दुन्दुकरो नाम पर्वतः समुदाहृतः।।
ततस्तु चन्द्रमा नाम पर्वतो नृपसत्तम।
तत्र सम्पूज्यते देवी सुषमा नाम नामतः।।
(मा.ख. अ. २१/१६-२०)

इसके अनन्तर 'देवतट' तथा 'मालिका' का उल्लेख करते हुए 'काक पर्वत' तथा 'जलाशय पर्वत' की ओर बढ़ने का संकेत दिया है, जहाँ जलन्धर देव का पूजन बतलाया है। तत्पश्चात् 'स्कन्दगिरि' के उल्लेख करने के साथ उससे सम्बद्ध देवताओं के सेनानी (कार्तिकेय) की पूजा इङ्गित की गई है। इसी प्रसंग में आगे 'त्रिपुर' नामक पर्वतश्रृंग' के साथ त्रिपुरादेवी का महत्व सूचित किया गया है। पुनः और ऊँचाई की ओर बढ़ते हुए गौरी पर्वत का वर्णन कर वहाँ की अभीष्ट देवी पार्वती की स्थिति गुफा में बतलाई गई है। तदनन्तर 'नागगिरि' का उल्लेख कर 'काकगिरि' में मानसखण्ड की सीमा का पर्यवसान किया गया है। 'काकगिरी' में काली के रूप में देवी की अर्चना की जाती है-

ततो देवतटो नाम पर्वतः सिद्धसेवितः।
यत्र वै शतलिङ्गाख्यो देवः सम्पूज्यते हरः।।
ततस्तु सुमहत् पुण्या मालिकासु सुशोभना।
यत्र देव्याः पुरो पञ्च पूज्यन्ते त्रिदशैरपि।।
ततस्तु काकनामा वै पर्वतः समुदाहृतः।
चक्रपाणेः पदं यत्र पूज्यते नृपसत्तम।।
ततो जलाशयो नाम पर्वतः समुदाहृतः।
यत्र सम्पूज्यते राजन् देवो जालन्धराह्वयः।।
ततः स्कन्दगिरिः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः।
यत्र रुद्रस्य तनयः पूज्यते त्रिदशैरपि।।
ततस्तु त्रिपुरो नाम गिरिर्वै समुदाहृतः।
तत्र वै पूज्यते देवी त्रिपुरा देवपूजिता।।
ततो गौरीगिरिः पुण्यः शिवाशतनिनादितः।
सम्पूज्यते यत्र देवी गह्वरे गिरिकन्यका।।
ततो नागगिरिः पुण्यस्ततः काकगिरिः स्मृतः।
यत्र सम्पूज्यते काली भवानी लोकसाक्षिणी।।
(मा.ख.अ. २१/२१-२८)

यहाँ से पूर्व की ओर पर्वत श्रेणियों का सञ्चरण नेपाल की ओर बढ़कर उस देश की पौराणिक महिमा को मण्डित करता है। जिसका वर्णन हिमवत्खण्डान्तर्गत नेपाल महात्म्य से जाना जा सकता है। मानसखण्डान्तर्गत उसकी समस्त सीमा को अभिलक्षितकर पर्वतशृङ्गों का अन्तःस्थ सर्वेक्षण बड़ी बारीकी के साथ किया गया है। इसके अतिरिक्त छोटी-बड़ी नदियाँ जलस्रोत, दो नदियों एवं जलस्रोतों के संगमस्थल की महत्ता, पर्वत शिखरों एवं नदी-संगम तथा उसके तटवर्ती प्रदेशों में स्थित देवालय, वनस्पति, धातु, अन्य खनिज-पदार्थो आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है। पर्वत शिखरों में उल्लेखनीय उच्च पर्वत नन्दाखात, पञ्चूली, द्रोणगिरि, पिण्डारी, हितानी, ऊँटा धूरा के शिखर, व्यास में बुधी के ऊपर रिङ्नाजोङ् शिखर आदि हैं। नदियों में उल्लेखनीय 'करनाली', 'काली', 'सरयू', 'शारदा', 'रामगङ्गा (पश्चिम)', 'रामगङ्गा (पूर्वी)', 'कोसी', 'पिण्डारका', 'गोमती', 'सुआल', 'गार्गी', 'द्रोणी', 'गोदावरी', 'लोहित', आदि यथास्थान अपने-अपने क्षेत्र में पूजनीय हैं। इनमें से 'करनाली' विशेष महत्वपूर्ण है। सरोवरों की तो यह भूमि ही है। यदि 'मानसखण्ड' को सरोवरों का प्रदेश कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। मानसरोवर, राक्षसताल, त्रि-ऋषि सरोवर, भीमताल, नवकोण ताल, सप्तताल, नलदमयन्ति-सरोवर आदि सुप्रसिद्ध तथा 'छखाता' के अन्तर्गत अनेक अविदित तालों ने इस प्रदेश को मनोरम एवं शान्त बनाकर 'देवभूमि' के नाम से प्रसिद्ध किया है। सुप्रसिद्ध मन्दिरों में योगीश्वर (जागनाथ), वागीश्वर (वागनाथ), कालिका, पाताल भुवनेश्वर, गणनाथ, वैद्यनाथ, त्रिपुरसुन्दरी, ध्वजेश, अनेक नाग मन्दिर, विभाण्डेश्वर, नागार्जुन, मृत्युञ्जय मालिका, श्यामा, रामेश्वर, अनेक सूर्य मन्दिर आदि वर्णित हैं। ऋषियों के आश्रम में मार्कण्डेय, व्यास, वशिष्ठ, कपिल, गर्ग, पुलस्त्य आदि के नाम बड़े सम्मानित रहे हैं।

'मान सरोवर' की यात्रा मानसखण्ड का प्रमुख उद्देश्य है। आज के युग में जो यह भ्रम फैला हुआ है कि कैलास-मानसरोवर भारतीय सीमा के बाहर रहा है, इसका निवारण मानसखण्ड के अध्ययन से भली-भाँती हो जाता है। 'मानसरोवर' की यात्रा तथा परिक्रमा एवं कैलास दर्शन के प्रसङ्ग में मार्गस्थ पर्वतशृङ्गों, नदियों, तीर्थस्थलों, ऋषि-मुनियों के आश्रमों तथा पवित्र मन्दिरों के महात्म्य के वर्णन को देखकर इस प्रदेश की पवित्रता तथा देवभूमि होने से इसकी महिमा स्वयं सिद्ध हो जाती है। मान सरोवर की यात्रा एवं परिक्रमा के प्रसंग में आगम और निर्गम दोनों मार्गों की ओर सङ्केत किया गया है। यात्रा के शुभारम्भ के प्रसङ्ग में यात्री को कूर्माचल मार्ग (वर्तमान पिथौरागढ़ काली कुमायूँ प्रदेश) से जाने का सङ्केत किया गया है। तदनन्तर वहाँ से लोहाघाट होते हुए 'कूर्मशिला' की चोटी पर पूजन कर, सरयू में स्नान करने के उपरान्त दारुकानन व झांकर (जागीश्वर), पाताल भुवनेश्वर, रामगङ्गा (पूर्वी), पावन-पर्वत (सीरा की पट्टी पाली का पर्वत) पताका पर्वत (ध्वज पर्वत-कनाली छीना के पास), काली-गोरी का संगम (जौल-जीवी), चतुर्दस्टू

(चौदांस), व्यासाश्रम (ब्यांस), काली नदी का मूल (केराल-छेछला-पर्वत), पुलोमन पर्वत (बयांस-चौदांस पर्वतों के बीच) तथा तारक पर्वत होते हुए गौरी-पर्वत के नीचे उतरकर 'मानसरोवर' में स्नान करे। लौटते समय यात्री राक्षस-ताल, कैलास, सरयूमूल, खेचरतीर्थ (खेचरनाथ) से नन्दा पर्वत की ओर जाकर वैद्यनाथ (पश्चिमी नेपाल) आ जाए, वहाँ से ज्वालापर्वत (ज्वालादेवी-वर्तमान पश्चिमी नेपाल) जाएं। इसके अतिरिक्त और विस्तृत यात्राएं भी बताई गई हैं।

मानसखण्ड में उपर्युक्त वर्णन द्वारा उसकी सीमा का साङ्केतिक दिग्दर्शन कराया गया है जिसके द्वारा अनेक ऋषि-मुनियों के उत्तर-प्रत्युत्तर-स्वरूप निर्वचन से सभी महत्वपूर्ण अजेय पर्वत-श्रृङ्गों का वास्तविक बोध करा दिया है। इसी कारण उत्तरापथ को 'देवभूमि' होने का सौभाग्य प्राप्त है। देवभूमि की यह संज्ञा काल्पनिक नहीं किन्तु वास्तविक है और वह अद्यावधि असंख्य श्रद्धालुओं तथा पर्यटकों को हिमालय के दर्शन करने को प्रेरित करती है। इन सब वर्णनों की समष्टि ही मानसखण्ड का केन्द्र बिन्दु है तथा उसका विस्तार व्यास के शिष्य सूत ने राजा जन्मेजय को हृदयङ्गम कराया है। तद्न्तर इसके स्वरूप को दत्तात्रेय ने काशिराज को ज्ञात कराया, मानस खण्ड (मानस क्षेत्र) की वास्तविक सीमा को बतलाकर इसके दक्षिण, पश्चिम तथा पूर्व दिशा तक के विस्तार वर्णन के साथ पूर्व में नेपाल राष्ट्र तथा इसके पश्चिम स्थित केदारखण्ड की भौगोलिक स्थिति का बोध करा दिया है। इसके अतिरिक्त तिब्बत से लगे हुए मानसरोवर ने नन्दादेवी और नन्दादेवी से पिण्डर नदी के किनारे-किनारे कर्णप्रयाग तक के मार्ग का ब्यौरा बताते हुए यात्री को दानपुर पर्वत श्रृंखला से रामगङ्गा, कोसी के मैदानी भागों तक का मार्गदर्शन करा दिया गया है। दक्षिण की ओर नैनीताल जनपद की तराई से कुछ ऊँचे भूभाग तक इसकी सीमा बतलाई गई है। पूर्व में छलेश्वर (छकाड) के महात्म्य द्वारा पुरातन कूर्मांचल की सीमा का पूर्वी छोर निर्धारित किया गया है।

कालचक्र की यह यात्रा- जो दत्तात्रेय आदि ऋषि-मुनियों तथा तीर्थ पर्वतारोहियों की साधना के बाद बढ़ चली, वह मानस क्षेत्र को पिछले तीन दशकों से भारतवासियों के लिए रोक दी गई थी। इस कारण पौराणिक कूर्मांचल कटा हुआ सा प्रतीत होता था। पुरातन काल में अकेले दत्तात्रेय ने असंख्य यात्रियों को इस देवभूमि के दर्शन हेतु प्रेरित किया था, जिसके आरम्भ में युधिष्ठिर के अतिरिक्त काशीराज धन्वन्तरि भी हिमालय की ओर गए। अब अपेक्षा इस बात की है कि वर्तमान युग के दत्तात्रेय पूर्वोक्त पौराणिक मानस खण्ड की अपूर्ण यात्रा के द्वार निर्बाध रूप से खुलवाने में समर्थ हो प्राचीन दत्तात्रेय की स्मृति को पुनरुज्जीवित करें।

मानसखण्ड की विषयगत समीक्षा

प्रायः प्रत्येक पुराण में 'मेरु' को केन्द्र बिन्दु मानकर भौगोलिक विचार की समीक्षा की है तथा अपने विषय से सम्बद्ध प्रमुख देवता को दृष्टि पथ में रखते हुए तदनुसार भौगोलिक विस्तार का सिद्धान्त अपनाया है। प्रस्तुत मानसखण्ड का विषय यद्यपि समग्र भू-मण्डल से अभिव्याप्त नहीं है, तथापि ग्रन्थ के आरम्भ में उपक्रम स्वरूप 'मेरु' निवासी देवों, मन्दराचलवासी यक्षों, पतालवासी 'नागों' तथा रमण करते हुए कैलासवासी विद्याधर-दम्पत्ति का इस वर्णन को सुनने के लिए आह्वान किया गया है। मेंरु के सम्बन्ध में लोगों की भिन्न कल्पनायें हैं। यहाँ तक की प्रत्येक खण्ड के वर्णन से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न मेरु हो गए हैं। मानसखण्ड के सम्बन्ध में स्व. पं. बद्रीदत्त पाण्डेय जी ने 'कैलास' को ही मेरु मानने का आग्रह किया है। उनका आधार उसके चारों ओर के कंगूरों की मेरुगत मौलिक कंगूरों से समानता है। किन्तु ग्रन्थारम्भ के पूर्व में आह्वन स्वरूप विषयगत वर्णन क्रम में मेरुप्रदेशस्थ देवताओं का स्मरण किया है।[1] तद्नन्तर कैलास निवासी देवों एवं गन्धर्वो आदि का स्मरण करते हुए जनसाधारण समुदाय को मानसखण्ड की कथा सुनने का आग्रह किया है। अतः पं. बद्रीदत्त जी की कल्पना को यहाँ स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार 'केदार मण्डल' में भी वहाँ 'रुद्रहिमालय' के शिखरों को 'मेरु' और मन्दराचल की संज्ञा दी है। हिमवत्खण्ड में सात द्वीपों के मध्यगत 'जम्बूद्वीप' के मध्य में मेरु का स्थान पृथक ही बतलाया है-

द्वीपानां मध्यतोयस्य जम्बूद्वीपो विराजते।
जम्बूद्वीपान्तरं मध्ये चतुरस्रे सुशोभने।।
मेरुं चकार विश्वात्मा सर्वशैलोत्तमोत्तमम्।
(हिमवत् खण्ड अध्याय २ श्लोक ८-९)

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त मेरु के सम्बन्ध में ज्योतिर्विज्ञान (खगोलशास्त्र) तथा अन्य पुराण ग्रन्थों का समन्वयात्मक विचार भी उल्लेखनीय है। तद्नुसार इस सम्बन्ध में सैद्वान्तिक निष्कर्ष से अवगत होना परम आवश्यक है। इस सम्बन्ध में भास्कराचार्य का मत विचारणीय है। सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय के अन्तर्गत भुवनकोष पर विचार करते हुए भास्कराचार्य ने भूमण्डलस्थ 'मेरु' पर्वत की स्थिति पर विचार किया है। प्राचीन भूगोल के तत्ववेत्ता सुप्रसिद्ध विद्वान स्व. पं. तारादत्त पंत ने अपनी लघुकाय पुस्तक

---

१. ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मन्दिरे ये च यक्षाः, पाताले ये भुजङ्गा फणिमणि-
किरणध्वस्तसर्वान्धकाराः।
कैलासे स्त्रीविलासः प्रमुदितहृदया ये च विद्याधराद्यास्ते, मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्तु सर्वे।।१।।

'गोलविद्या' में 'मेरु' को ध्रुव माना है। इसके साथ ही पुरातन नव खण्डों को आधुनिक देशों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार माना है-

१. भारत वर्ष (हिमालय से दक्षिण की ओर 'पूर्वी चीन' से 'टर्की इन एशिया' के पर्यन्त भू-भाग)
२. किन्नर वर्ष (मंगोलिया तथा चीनी पुर्किस्तान में विभक्त)
३. हरिवर्ष (रूस)
४. इलावृत्त (साइबेरिया तथा ग्रीन लैण्ड)
५. रम्यक वर्ष (उत्तर अमेरिका का उत्तरी भाग)
६. हिरण्मय वर्ष (उत्तर अमेरिका का दक्षिणी भाग)
७. कुरु वर्ष (दक्षिणी अमेरिका)
८. भद्राश्च (चीन देश)
९. केतुमाल (यूराल पर्वत से पश्चिमी भाग यूरोप का)

इस प्रकार पुराणों में वर्णित भूगोल के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य बराबर होता रहा है।

मानसखण्ड में ऐतिहासिक तत्त्व

सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत पुराणों में दो प्रकार का वंशानुगत वर्णन विद्यमान है- विद्यावंश तथा जन्मवंश। इस प्रकार का वर्णन अब भी प्राचीन परम्परा का स्मरण कराता है। उत्तराखण्ड की भूमि आज भी तपस्थली के रूप में जन-साधारण में भी प्रसिद्ध है। प्रत्येक कल्प या युग में यहाँ आकर साधकों ने आध्यात्मिक चेतना को जन्म दिया। आज की तरह प्राचीन काल में हिमालय का भू-भाग अनेक खण्डों में विभक्त नहीं था फिर भी ऋग्वेद (१०-१२१-४) में हिमालय का उल्लेख महत्व के साथ हुआ है 'हिमवत्' या 'हिमवन्त' नाम से सम्मानित कर उसकी स्तुति की गई है।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा .... यस्य समुद्रं रसमा संहादुः। इसके साथ ही 'मौजवत' का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इसी पर्वत को 'सोमलता' का उत्पत्ति स्थान भी कहा गया है। इसके साथ ही औषधियों के उत्पत्ति स्थान के विषय में हिमालय के समशीतोष्ण भाग का भी सङ्केत मिलता है-

आ औषधिः पूर्वाजाता देवेभ्यास्त्रियुगं पुरा।
मतै नु बभ्रूणामहं शतं धमानि सप्त च।।
(ऋग्वेद १०-९७-१)

महाभारत में भी 'मुञ्जवान्' पर्वत को भगवान शङ्कर की तपः स्थली कहा है। कदाचित् 'मुञ्जवान्' पर्वत 'कैलास' पर्वत का अङ्ग रहा हो।

तैत्तिरीय आरण्यक में 'महामेरु' का पर्यायवाची है, जिसमें कश्यप नामक आठवें सूर्य का निवास बताया गया है। पर्वतों के अतिरिक्त पर्वतस्थ गुफाओं का भी ऋग्वेद में (१-६-५) उल्लेख हुआ है, जिनमें पणियों द्वारा छिपाई गई गायों का इन्द्र ने उद्धार किया था। देवासुर-संग्राम की भूमि भी हिमालय में ही कही जाती है। यहाँ के 'असुर-पर्वत' (असुर चुल) आदि नाम इस बात के सङ्केतक हैं।

मानसखण्ड में वर्णित अनेक स्थल रामायण में भी विद्यमान हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, बाली, सुग्रीव, हनुमान आदि का कूर्माचल (कुमायूँ) के अनेक स्थलों पर आगमन तथा शिवलिङ्गों, आश्रमों आदि की स्थपना करने का वर्णन- इस प्रदेश की अभिज्ञता तथा प्राचीनता का सूचक है। राम और सीता के आगमन के सूचक कुछ स्थल मानस खण्ड में विद्यमान हैं, किन्तु रामायण में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है। तथापित 'कोसल' राज्य की स्थिति उस समय उत्तराखण्ड तक अवश्य रही होगी। अतः उस भाग को उत्तर-कोसल के अन्तर्गत माना गया है।

महाभारत भी इस बात का साक्षी है कि मानस क्षेत्र उस युग में विख्यात रहा। तदनुसार 'युधिष्ठिर' के राजसूय यज्ञ के समय किरात, खस आदि जातियों का उल्लेख एवं वहाँ के राजाओं द्वारा स्वर्ण-पिपीलिका आदि वस्तुओं का समर्पण, 'अर्जुन' का किरात वेशधारी शिव से युद्ध एवं अस्त्र प्राप्ति आदि प्रसंग सर्व विदित हैं। महाभारतोक्त दुर्योधन, कर्ण एवं अर्जुन की विजय तथा तपश्चर्या के अन्य उल्लेख भी 'मानसखण्ड' में यथास्थान वर्णित है। खसों की प्रभुता इस क्षेत्र में महाभारत काल में अवश्य रही। 'गढ़वाल' में तो सम्प्रति संकल्प आदि 'खसमण्डलान्तर्गत' शब्द का उल्लेख मिलता है। इसकी स्थिति 'कैलास' और 'गंधमादन' के बीच समझी जाती है। वस्तुतः उस समय 'कुरु' राज्य के उत्तर में स्थित होने से इस भू-भाग को 'उत्तर-कुरु' नाम से अभिहित किया गया है। अन्यथा पुराणों में वर्णित 'इलावृत्त' वर्ष के उत्तर में 'कुरु वर्ष' के स्थित होने से इस विजय की सत्यता कैसे सिद्ध हो सकती है।

मेरु के अतिरिक्त तदनन्तर वर्णित 'कैलास' मानसण्ड का 'मेरुदण्ड' है। कैलास को भी भगवान शङ्कर की क्रीड़ा स्थली कहा गया है। स्वामी प्रणवानन्द जी ने 'कैलास' शब्द के इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ को इस प्रकार विदित कराया है- "केलिनां समूहः- कैलम्, तेन आस्यते = स्थीयते इति कैलासः।" अल्मोड़ा नगर से यह पर्वत २४० मील ईशान कोण में विद्यमान है। तिब्बत की राजधानी से ८०० मील पश्चिम की ओर हिमालय स्थित है। पुराणों में वर्णित पर्वतों से बने एक षोडष दल कमल के मध्य बनी हुई एक विराट लिंग स्वरूप आकृति विद्यमान है। कैलास के शिखर के चारों कोनों में ऐसी मन्दराकृति प्राकृतिक रूप से बनी है, जैसी बहुत से मन्दिरों के शिखरों पर चारों ओर बनी रहती है।

विश्वविख्यात मानसरोवर की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में 'मानसखण्ड' का वर्णन महत्वपूर्ण है। मानव जगत में उसके अन्वेषक 'मान्धाता' को बड़ा श्रेय दिया गया है। उनकी तपश्चर्या के कारण उसके दक्षिण की ओर वह स्थान 'मान्धाता-पर्वत' के नाम से आज भी विख्यात है। पूरे हिमालय को पार कर तिब्बती पठार में लगभग ३० मील जाकर पर्वतों से घिरे हुए दो सरोवर हैं। इन दोनों के मध्य में नासिका की तरह ऊपर उठी हुई पर्वतीय भूमि है जो दोनों को अलग करती है। 'राक्षसताल' और 'मानसरोवर' में राक्षसताल विस्तार में बहुत बड़ा है। वह गोल या चौकोर नहीं है, उसकी कई भुजायें मीलों टेढ़ी होकर चली गई हैं। पुराणों के अनुसार राक्षसराज रावण ने यहाँ तपश्चर्या की थी। 'मानसरोवर' गोलाकार है। मानों वह जलीय-ब्रह्माण्ड का प्रतीक हो पृथ्वी के चारों ओर जल की विद्यमानता को इङ्गित कर रहा हो। मानसरोवर की स्थिति के सम्बन्ध में मानसखण्ड के नवें अध्याय के अन्तर्गत सविस्तार प्रकाश डाला गया है। उस आख्यान में दत्तात्रेय ऋषि ने राजा धन्वन्तरि की जिज्ञासा शान्त की जिसके फलस्वरूप मानसरोवर की मानसी सृष्टि हुई।[1]

मनसरोवर का जल नीलाभ एवं अत्यन्त स्वच्छ बताया गया है। इसका बाहरी घेरा २२ मील का है। मानसरोवर का परिसर ५१ शक्तिपीठों में से एक है। सती की दाहिनी हथेली यहाँ गिरी थी। पाली साहित्य में इसे 'अनवतप्त' (शीत) कहा गया है। राजहंसों का यह प्रिय स्थल है। 'मानसखण्ड' के अनुसार 'कलियुग' में राजहंसों का यहाँ अभाव हो जाएगा। यहा सरोवर अभी बड़ी नदियों का उद्गम स्थल है। यहाँ तक कि 'मानस खण्ड' में इसे गङ्गा का उद्गम भी माना गया है।[2]

मानसरोवर से 'ब्रह्मपुत्र' तथा 'सिन्धु' नद निकल कर पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में आत्मसमर्पण कर देते हैं। भारतीय तीर्थों में यह सर्वप्रमुख माना गया है तथा यहाँ की यात्रा अत्यधिक कठिन है। भौगोलिकों की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए स्व. डॉ. सम्पूर्णानन्द जी ने स्वामी प्रणवानन्द जी से कैलास-मानसरोवर का सर्वेक्षण कराया था। स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'कैलास और मानसरोवर' में इसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवम् सर्वप्राचीन सरोवर कहा है। वह कैलास तथा मान्धाता पर्वत के मध्य जड़ा हुआ हरितू सुशोभित है। वह समुद्रतल के धरातल १४६५० फीट की ऊँचाई पर लटका हुआ प्रतीत

---

१. ससर्ज मानसा ब्रह्मा मानसाख्यं सरोवरम्।
ऋषिणामाश्रमः पुण्यैः सेवितं सुमनोहरैः।।
मूलं तमेव राजर्षे सरिता स चकार ह।
तथा न दानं शुद्धानां पूज्यानां दैवतैरपि।।(मा.ख.अ. ६-२८-२६)

२. गङ्गया पूरितं चक्रे विष्णुपादोपन्नया।
राजन् प्रवाहैर्बहुभिर्युक्तया मनसा प्रभुः।। (मा.ख.अ.-२६)

होता है। इसकी परिधि लगभग ५४ मील तथा गहराई ३०० फीट है। उसका क्षेत्रफल लगभग २०० वर्गमील कहा गया है। उसके तट पर आठ पवित्र विहार हैं। शीत ऋतु में उसका जल जम जाता है तथा बसन्त के आते ही फटकर गलना आरम्भ होता है। तिब्बती भाषा के ग्रन्थों में विश्व के मध्य में कैलास की स्थिति कही गई है। कैलासपुरी शिव के विश्राम का प्रमुख तीर्थ स्थान है। इसके आस-पास अनेक तीर्थ स्थल है, जिनमें 'तीर्थपुर' सुप्रसिद्ध है। यह कैलास से २८ मील की दूरी पर है। भस्मासुर के भस्म होने का स्थान 'तीर्थपुरी' आज भी अनेक कारणों से प्रसिद्ध है।

पुराणों में लौकिक इतिहास अधिकतर अनुमेय है। उदाहरणार्थ प्रकृत ग्रन्थ 'मानस खण्ड' का उपक्रम करते हुए ऋषि ने आरम्भ के श्लोक में ही 'मन्दराचल' के निवासियों के रूप में "यक्षों" का उल्लेख किया है। कोषग्रन्थों के अनुसार 'यक्ष' देवयोनि विशेष है वे भी किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर आदि की कोटि में गिनाये गए हैं। शिव की भूमि कैलास एवं हिमालय में इनकी स्थिति होने से शिव के गणों (भक्तों या पूजकों) में इनका समावेश होना युक्तिसंगत है। शिव के समान यक्ष भी कालान्तर में पूजित होने लगे और 'यक्ष-पूजा' प्रचलित हो चली। कुषाण-काल में यक्षों द्वारा 'शिव-पूजा' के सङ्केत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त यक्ष पूजा के साथ 'पिशाच' एवं 'यक्षिणियों' की पूजा की अद्यावधि 'शाबर मंत्रों' द्वारा सिद्ध की जाती है। पर्वतीय प्रदेशों में प्राचीन निवासी (क्षत्रिय जाति विशेष) 'खस' भी 'यक्ष' माने जाते रहे।

'मानस खण्ड' में नागों से सम्बद्ध अनेक देव मन्दिर हैं जिनमें 'पाताल भुवनेश्वर बड़ा प्रसिद्ध है। इसी कारण ग्रन्थ के आरम्भ में 'पाताले ये भुजङ्गा' द्वारा उन 'नागों' (भुजङ्गों) की ओर भी संकेत किया है। 'नाग' शब्द का प्रयोग प्रकरणानुसार वस्तुतः 'नाग' जाति के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। 'नग' शब्द पर्वत का पर्यायवाची है। पर्वत के निवासी नाग कहलायेंगे। 'मानसखण्ड' में नागवंश की जन्मभूमि होने के सम्बन्ध में 'नागपुर' पर्वत (वर्तमान नाम नाकुरी) को ब्रह्मा द्वारा उन्हें दिये जाने से इस बात की पुष्टि होती है। नागवंश के लोग शिव के उपासक रहे। इस जाति के लोग 'गोप' थे। नागकन्याओं के गोधारण करने के सम्बन्ध में गोपीश्वर मन्दिर का उल्लेख होना भी महत्वपूर्ण है। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण विषय 'पाताल भुवनेश्वर' की गुफा है। पुराणों में प्रत्येक लोक में अपने चौदहों लोकों की पृथक स्थिति मानी गयी है। तदनुसार 'भू-लोक' का भी पृथक पाताल है। उस पाताल में जाने वाले भिन्न-भिन्न मार्ग भी प्रतीकात्मक हैं। सागर-मार्ग 'रामेश्वरस्थ' सरयू-रामगंगा-संगम की ओर इंगित करता है क्योंकि दक्षिण में 'रामेश्वर' सागर के किनारे पर स्थित है। इस प्रकार 'काशी' की ओर जाने वाला गुहास्थ मार्ग 'उत्तर वाराणसी' के प्रतीक 'वागीश्वर' (बागेश्वर) की ओर जाने का सङ्केतक है। ऐसे ही अन्य मार्ग भी हैं। 'पाताल-लोक' (परिसर) की पृथक महत्ता दिखाने के लिए वह स्थल 'मानस खण्ड' का सबसे विस्तृत

अध्याय है। उसमें ५०० से अधिक श्लोक हैं। इसके अतिरिक्त नागवंश के सम्बन्ध में अनेक सङ्केत मिलते हैं। जिनपर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कदाचित् गुप्त नरेशों द्वारा नागवंश का दमन हुआ हो।

मानसखण्ड के वर्तमान स्वरूप के देखते हुए उसकी संकलनात्मक-समष्टि का काल निर्धारण करने में इतिहासवेत्ताओं ने अनुमानिक व्यवस्था की है। उन विद्वानों का आधार कुमायूँ से सम्बद्ध अभिलेखों एवं दान पत्रों आदि का प्राप्त होना है। वहाँ के कुछ मन्दिर तो ईस्वी सन् से शताब्दियों पूर्व तथा अन्य महत्वपूर्ण मन्दिर ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास स्थित रहे।

धार्मिक सहिष्णुता

मानसखण्ड में वर्णित धार्मिक स्वरूप पर दृष्टिपात करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका सैद्धान्तिक स्वरूप धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। जहाँ आरम्भ में शैव धर्म की प्रतिष्ठा अन्य हिमालस्थ खण्डों की तरह सयुक्तिक की गई है वहीं उसके साथ विष्णु, देवी, सूर्य, भैरव एवं ग्राम-देवताओं आदि को साथ में लेते हुए पर्वतीय भू-भाग की नवीन समन्वयात्मक धार्मिक जागृति देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त शिव और शक्ति के युगल माहात्म्य से यह भू-भाग सर्वत्र व्याप्त है। शुम्भ-निशुम्भ-वध आदि देवी के महत्वपूर्ण कार्य इसी पुण्यस्थली में सम्पन्न हुए हैं। दुर्गासप्तशती में वर्णित भगवती के विभिन्न नामों से सम्बद्ध अनेक स्थल यहाँ प्रसिद्ध हैं। दानपुर क्षेत्र के निवासियों का कथन है कि भगवती ने सम्प्रति प्रसिद्ध 'शुभगढ़' नामक स्थान पर 'शुम्भ-निशुम्भ' का वध किया, इसी से इसका नाम 'शुभगढ़' पड़ा।

नन्दा देवी तो कुमायूँ की राष्ट्रशक्ति के रूप में पूजित होती हैं। कल्चुरी राजाओं में कीर्तिवर्मदिव बड़े तपस्वी हुए हैं। इनकी रानी का नाम नन्दा था। वह सीता-सावित्री के समान सती थीं। हिमालयस्थ 'नन्दाकोट' व 'नन्दादेवी' के शिखर इनके विहार-स्थल बताए जाते हैं। इन्होंने संवत् २६५ से ३६० तक यानी ६५ वर्ष राज्य किया। कार्तिकेयपुर इनकी राजधानी थी। कुछ लोग इसे करवीरपुर भी कहते हैं।

पौराणिक धर्म के अनुसार सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन करने में सभी खण्डात्मक पुराण अधिकतर सफल हुए हैं। इस सूझ-बूझ ने देश को एकता के सूत्र में बाँधने की अपार शक्ति पाई है। एक ओर तो पुराण वाङ्मय देशाटन के लिए प्रेरित करता है तो दूसरी ओर प्रत्येक खण्ड में देश के अन्य खण्डों में स्थित देवी-देवताओं, नदियों तथा आश्रमों आदि की स्थिति को अपने खण्ड में दिखाता है।

काशीरहस्य

पुराण वाङ्गमय भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की अमूल्य निधि है। ये भारतीय जीवन की प्राचीन परम्परा को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं के कारण हमारी धार्मिक परम्परा आजतक चली आ रही है।

काशी रहस्य ब्रह्मवैवर्त पुराण का परिशिष्ट भाग है। यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के तृतीय भाग के रूप में प्रकाशित है। ब्रह्मवैवर्त पुराण की व्याख्या करते हुए यह कहा गया है कि जो विश्व का वरण करता है तथा जो जीवधारियों का परमात्मस्वरूप है वही ब्रह्म कर्मनिष्ठों के कर्मों का साक्षी रूप है। उस ब्रह्म का तथा उसकी विभूतियों का जिस पुराण में निरूपण हो उसे ब्रह्मवैवर्त पुराण कहते हैं।[1] अथवा ब्रह्म के विवर्त का जहाँ पर वर्णन हो वह ब्रह्मवैवर्त पुराण है।[2] काशी ब्रह्म है और जगत् उस 'ब्रह्म' का विवर्त है।[3] इस प्रकार ब्रह्म (काशी) का विवर्त्त (वरण रहस्य) जहाँ प्रतिपादित हो, वह ब्रह्मवैवर्त्त है। काशीरहस्य में काशी ब्रह्म का विवर्त्त (रहस्य या स्वरूप) प्रतिपादित है। अतः काशीरहस्य ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का एक भाग है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में कहा गया है कि एक बार लिङ्गरूप परब्रह्म शिव ने शक्ति को अपने से पृथक् कर दिया, वही शक्ति काशी नाम से विख्यात हुई।[4] इस प्रकार काशी पराशक्ति है, काशी ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही काशी है। उस पराशक्ति काशी के शरीर में प्रवष्टि चैतन्य शिव भी काशी है। अतः काशी शिवशक्त्यात्मक उभयरूप है। दोनों में अविनाभाव संबंध है।[5] अथवा **'काशन्ते तनत्यागमात्रेण आनन्दरूपतया राजन्ते प्राणिनो यस्यां सा काशी,'** से निष्पन्न है। गरुड़ पुराण के मतानुसार-'काशी ब्रह्मेति विख्यातं तत् ब्रह्म प्राप्यतेऽत्र हि। तस्मात् काशीति सम्प्रोक्तम्।' इस प्रकार जगत् के अधिष्ठानभूत तथा स्वयं विवर्त परिणामों से रहित जो ब्रह्म है, वही काशी है। काशी का एक नाम वाराणसी भी है जैसा जाबालोपनिषद्

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४.३३३.३०-३२।

२. ब्रह्मणो विवर्त्तः (परिणामः) ब्रह्मवैवर्तः, ब्रह्मवैवर्तस्य प्रकृतेर्विवर्त्ताः परिणामाः यत्र प्रदर्श्यन्ते, तत् पुराणं ब्रह्मवैवर्तम्।

३. काशी ब्रह्मेति विख्याता यद्विवर्त्तो जगद्भ्रमः (काशीरहस्यम् २/२८)।

४. कदाचिल्लिङ्गरूपेण शिवेन परमात्मना। शक्तिः पृथक्कृता शान्ता काशीति प्रथितिङ्गता।। -काशीरहस्य १७.१४

५. न शिवेन विना शक्तिः न शक्तिरहितः शिवः। नानयोरन्तरं किंचित् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।। -काशीरहस्य, सेतुबन्ध। (तत्र लिङ्गे या योनिरस्ति सा शक्तिरस्ति लिङ्गन्तु शिवो भवति तदेव रीत्या प्रकृतेः (शक्तेः) पुरुषस्य यत् स्वरूपं प्रथितं वेदादिषु, तदेव काशी। -काशीरहस्यम् १७/७ सेतुबन्ध) (शिवशक्त्यात्मकं लिङ्गं श्रुतिभिः परिपठ्यते। योनिः शक्तिः शिवो लिङ्गं प्रकृतेः पुरुषस्य च।। स्वरूप प्रथितं वेदे पुराणादिषु पार्वति। शिवः परमात्मा ब्रह्मेति शिवेति हरिरित्यपि।। X X X X पञ्चक्रोशात्मकं लिङ्गं रुद्रावासमथाऽपरे। ब्रह्मावासं विष्णुवासं वाराणसीमथाऽपरे।। -काशीरहस्यम् ३७,७,१२) काशी शब्द (कं सुखमाशयति भोजयति स्वभक्तान् इति काशी)

में कहा गया है कि अविमुक्त ब्रह्म वरणा और नासी में प्रतिष्ठित है जो सभी इन्द्रिय दोषों का वारण (निवारण) करता है (सर्वान् इन्द्रियदोषान् वारयति इति वरणा) और जो समस्त इन्द्रिय कृत पापों का नाश करता है वह नासी है (सर्वान् इन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति इति नासी)। ये दोनों शब्द वरण और नासी मिलकर वाराणसी कहलाये।[1]

काशी का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखा में मिलता है (अथर्ववेद ५-१२-१४)। काशी के आविर्भाव के प्रसंग में शिवपुराण में कहा गया है कि जब भगवान शिव की पत्नी सती अपने पिता द्वारा यज्ञ में अपमानित होने के कारण दक्ष के यहाँ हो रहे यज्ञ में कूदकर सती हो गईं तो उनके शोक में शिव उनके मृत शरीर को लेकर विभिन्न स्थानों में घूमते रहे। जब शिव वर्तमान मणिकर्णिका के पास पहुँचे तो सती का सिर टूटकर वहीं गिर पड़ा। मोहवश शिव ने उसी स्थान को अपना स्थायी निवास बनाया। शिव के गण भी वहीं आकर रहने लगे। उसी समय से इस स्थान का नाम गौरीमुख नाम से प्रसिद्ध हुआ।

काशी की पौराणिकता एवं वर्तमान सन्दर्भ

महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान (हर्यश्व) काशी के राजा थे। उसके पश्चात् दिवोदास काशी के राजा हुए। अन्त में दिवोदास ने वरुणा और अस्सी का भाग देवताओं को समर्पित कर मोक्ष प्राप्त किया (ब्रह्माण्ड पुराण, १२वाँ अध्याय)। दिवोदास के पौत्र वत्स व गर्ग थे। वत्स काशी के राजा हुए। वत्स पुत्र अलर्क के समय में काशी राज्य बहुत विस्तृत हुआ (द्रष्टव्य- वायुपुराण २-३०; ६४-७५)। वैदिक युग में स्थानवाचक प्रथा के अनुसार काशी के राजाओं को कास्य कहकर संबोधित किया जाता था। इस प्रकार पौराणिक युग में शिव काशी में विराजमान थे। १९४० ई. में रेलवे द्वारा प्राप्त खुदाई के अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि काशी नगरी ७०० ई. पूर्व में पूर्ण अस्तित्व में थी।

काशी के ऐतिहासिक पक्ष को देखने से यह प्रतीत होता है कि काशी का स्वतन्त्र अस्तित्व था। ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उस समय काशी विद्याकेन्द्र थी। यहाँ का राजा न्याय प्रिय एवं शान्ति प्रिय था। उस समय दीपावली, छत्र-मंगल, हस्ति-मंगल, मदनोत्सव, जलोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता था। काशी के बने हुए वस्त्र मुलायम एवं नीले होते थे। यहाँ के लोग चन्दन का प्रयोग करते थे (द्रष्टव्य- मातंक जातक)। काशी व्यापार का केन्द्र था। यहाँ पर आचार्य धर्म का विशेष जोर था (द्रष्टव्य- राघ जातक)।

---

१. .....सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठितो वरणायां नास्यां च प्रतिष्ठित इति का च वरणा? का च नासीति? सर्वानिन्द्रियदोषान् वारयति, तेन वरणेति। सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान्नाशयतीति, तेन नासीति।। -जाबालोपनिषद्

काशी में देवदत्त के राज्य के समय बौद्ध मत प्रबल था। ईसा पूर्व ५०० में शाक्य सिंह ने सारनाथ में बौद्ध मन्दिर स्थापित किया। ईसा पूर्व ६४२ में राजा बिम्बिसार ने काशी के कुछ सनातनियों को छोड़कर पूरे भारत को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। ईसा पूर्व ४५६ में काशी मगध में मिला लिया गया। ईसा पूर्व ३२६ तक काशी पर नन्द वंश का अधिकार था। ३२१ ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई। ईसा पूर्व १८४ में व्यापारी काशी को 'जित्वरी' के नाम से जानते थे। फिरोज-तुगलक ने काशी पर आक्रमण कर अधिकार किया। उसके बाद सिकन्दर लोदी फिर डोमनदेव ने काशी पर शासन किया। १५२७ में बाबर ने काशी पर आक्रमण कर अधिकार में लिया, फिर शेर खाँ व शेरशाह सूरी का अधिकार रहा। १५५६ में अकबर; १५६६ में खनेजमा ने काशी को अपने अधीन किया। १५६७ में मुनइन खाँ काशी को अधिकृत किये। उसके बाद औरंगजेब ने काशी पर आक्रमण कर अपने पुत्र मुहम्मद शाह को राजा बनाया। १७३८ में मंशाराम सिंह ने मुहम्मद शाह से काशी का पट्टा लिखवाया। उसके बाद मंशाराम सिंह के पुत्र बलवन्त सिंह को मुहम्मद शाह ने काशी का राजा घोषित किया। बलवन्त सिंह के परिवार के लोगों ने, बलवन्त सिंह के पुत्र चेत सिंह की जगह उनके भतीजे मनियार सिंह को काशी का उत्तराधिकारी घोषित किया। १७७० में बलवन्त सिंह की मृत्यु के बाद चेत सिंह काशी के राजा बने। १७८१ में वारेन हेस्टिंग्स ने काशी को अपने अधिकार में कर महीप नारायण सिंह को राजा बनाया। १७९५ में महीप सिंह के पुत्र उदित नारायण राजा बने। इन्होंने अपने बड़े भाई के पुत्र ईश्वरी नारायण सिंह को दत्तक पुत्र बनाया। १८३५ में उदित नारायण सिंह राजा बने। प्रभु नारायण सिंह निःसन्तान थे अतः अपने चचेरे भाई विभूति नारायण सिंह को गोद लिया। वही काशी नरेश माने जाते थे।

सांस्कृतिक पक्ष

वरुणा अस्सी के मध्य बसी हुई काशी भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। काशी वैष्णव, शैव, तांत्रिक, बौद्ध, जैन सभी सम्प्रदायों की तीर्थस्थली है। बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। जैन धर्म के चार तीर्थंकर यहीं पैदा हुए। काशी सदैव विद्वानों, संतों, भक्तों का केन्द्र रही। वैदिक काल में काशी धर्म का केन्द्र थी। यह नगरी चैतन्य महाप्रभु, रामानुज, वल्लभाचार्य, कबीर, गुरुनानक, तुलसीदास आदि संतों की साधना भूमि रही है।

शक्ति सम्प्रदाय और बौद्धों के वज्रयान से पूर्ण मंत्र-तन्त्र का भी यहाँ प्रचलन रहा है। चौसट्टी घाट के आस-पास एवं लक्ष्मी कुण्ड के पास तथा नवदुर्गा मन्दिरों में गुह्य साधनाएँ होती हैं। काशी के मठ व प्रसिद्ध अखाड़े इस प्रकार हैं- सागर, अरण्य, वनभारती, पुरी, गिरि, आनन्द, निरंजनी, निर्वाणी, जूना। लिङ्गायत सम्प्रदाय के विश्वाराध्य मठ में कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना की गई है। दक्षिण भारतीयों का यह प्रमुख

देवस्थल है। जंगमवाड़ी में जंगमों का मठ है। गुरुनानक के अनुयायियों की २४ संगतें (मठ) नगर के विभिन्न स्थानों में स्थापित हैं। जहाँ पाठ व ज्ञान चर्चा होती है।

सिन्धियों के धर्मगुरु उदासीन सम्प्रदाय वालों का साधुबेला आश्रम नामक मठ अस्सी पर है। शहजारे बाबा का मठ आसभैरव के बगल में है। कमच्छा में गुरुबाग का है जिसमें गुरुवाणी आदि होती है। रामानन्द सम्प्रदाय का एक मठ पंचगंगा घाट पर है। कबीर चौरा मुहल्ले में कबीर का मठ है। कबीर के चार प्रधान शिष्यों के चार मठ हैं। रैदास जी का मठ इंगलिशिया लाइन के चौराहे के पास है। अस्सी मुहल्ले में दादुदयाल सम्प्रदाय के सुरेका ने एक मठ बनवाया जहाँ सत्संग होता है। अघोर सम्प्रदाय को दो भागों में विभक्त करने वाले बाबा कीनाराम ने अघोर पथ की वाम परम्परा शुरू की। कृमि कुण्ड पर बाबा कीनाराम का मठ है। तुलसी मंदिर के निकट गेरुए रंग का गणेश मठ है। मिश्र पोखरा पर गीताधर्म मठ है। गुजरात में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। राजघाट के पास वरुणा के किनारे तोताद्रि मठ है जो दक्षिण भारतीयों में प्रसिद्ध है।

घाट

काशी में गंगा के किनारे निर्मित घाट भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। यहाँ युगों से प्रातः सूर्य के साथ ही धार्मिक कृत्य प्रारम्भ हो जाते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर काशी के घाटों का प्रथम निर्माण अकबर काल में मराठों द्वारा कराया गया। राजघाट को १८६८ में पेशवा नायक राजा विनायक राव ने बनवाया था। वरुणा संगम घाट, प्रहलाद घाट, गायघाट-कच्चे घाट हैं। लालघाट-राजा बलदेव दास बिड़ला ने बनवाया। बद्री का परकोटा-महाराज बूँदी ने बनवाया। पंचगंगा घाट-श्रीपतराव ने बनवाया। दुर्गाघाट, ब्रह्माघाट-१७४० में नारायण दीक्षित कायगांवकर ने बनवाया। गणेशघाट-माधवराव पेशवा ने बनवाया। रामघाट-२०० वर्ष पूर्व महाराज जयपुर ने बनवाया। भोंसलाघाट-नागपुर के राजा ने १६वीं शताब्दी में तथा संकटाघाट १८२५ में पंडित विसम्भर की पत्नी ने बनवाया। सिन्धिया घाट पुराना विश्वेश्वर घाट है जिसे १८३० में ग्वालियर की रानी ने बनवाया। १८४६ में उसका जीर्णोद्धार उसी राज्य द्वारा कराया गया। मणिकर्णिका घाट को १७२० में सदाशिव नायक ने बनवाया और १८वीं सदी के अंत में अहिल्याबाई ने इसका कायाकल्प कराया। ललिताघाट को नेपाल नरेश ने बनवाया। मीरघाट को काशी के भूतपूर्व दीवान मुंशी दयाशंकर ने बनवाया। त्रिपुरा भैरवी कच्चा घाट है। मानमंदिर घाट १६०० ई. में राजा मान सिंह ने बनवाया। घोड़ाघाट राजेन्द्र प्रसाद घाट पक्का घाट है। दशाश्वमेध घाट बाला जी वाजीराव ने १७४८ में बनवाया। अहिल्याबाई घाट को काशी प्रवास के समय रानी अहिल्याबाई ने बनवाया। मुंशीघाट नागपुर के राजा के मंत्री श्रीधर मुंशी ने १८१२ में बनवाया। राणाघाट उदयपुर के महाराणा ने १७वीं सदी में बनवाया। चौसट्टी घाट १७वीं

शताब्दी में बंगाल के राजा दिगपति ने बनवाया। पाण्डेय घाट १८वीं शताब्दी में काशी के पण्डों के नाम पर कहलाता है। राजघाट-नायब राजा विनायक राव द्वारा बनवाया गया। नारद घाट कच्चा घाट है। हनुमान घाट १७वीं शताब्दी में जूना अखाड़ा के नागाओं ने बनवाया है। हरिश्चन्द्र घाट प्राचीन श्मशान घाट है जो आदि काल से अस्तित्व में है। केदार घाट राजा चेत सिंह ने बनवाया। ढुण्डी घाट ढुण्डी सम्प्रदाय के लोगों ने बनवाया। शिवाला घाट-राजा बलवन्त सिंह के कोषाध्यक्ष ने बनवाया। वक्षराज घाट वक्षराज ने बनवाया। अक्रूर घाट स्व. शिव प्रसाद गुप्त के पूर्वजों ने बनवाया। जानकी घाट सुरसरी की रानी ने बनवाया। पानीकल घाट से पूरे नगर में जल वितरित किया जाता है। तुलसीघाट-१६वीं शताब्दी में काशिराज ने बनवाया। वाजीराव घाट-१७वीं शताब्दी में पूना नरेश वाजीराव पेशवा ने बनवाया। अस्सीघाट कच्चा है।

मन्दिर

काशी को मंदिरों की नगरी कहा जाता है। यहाँ के प्रमुख प्रसिद्ध मंदिर इस प्रकार हैं- विश्वनाथ मंदिर; अन्नपूर्णा मंदिर- इस मंदिर के ऊपरी मंजिल में चार स्वर्ण मूर्तियाँ- अन्नापूर्णा, विश्वनाथ, लक्ष्मी और पृथ्वीमाता की हैं। निचली मंजिल में अन्नपूर्णा की रजत प्रतिमा है। जिसका दर्शन-पूजन वर्ष भर होता है। स्वर्ण मूर्तियों का दर्शन अन्नकूट के अवसर पर ही होता है। राम मंदिर, ढुण्ढिराज गणेश, सत्यनारायण मंदिर, आदिविश्वेश्वर मंदिर, मृत्युञ्जय महादेव, कालभैरव, पंचक्रोशी मंदिर, विशालाक्षी, केदार जी, संकट मोचन, दुर्गा जी।

काशी की सात पुरियाँ

काशी की महिमा व माहात्म्य का पता इसी से स्पष्ट हो जाता है कि केवल काशीवास से ही मनुष्य को सातों पुरियों में वास का लाभ प्राप्त होता है। वे सातों पुरियाँ काशी में इस प्रकार हैं-

अयोध्या	-	वर्तमान रामेश्वर वाला क्षेत्र है।
मथुरा	-	नक्खी घाट स्थित क्षेत्र है।
काशी	-	ललिता घाट का क्षेत्र आता है।
विष्णुकाञ्ची	-	पञ्चगंगा वाला क्षेत्र है।
आवंतिका	-	वृद्धकाल का क्षेत्र है।
द्वारिका	-	संकुलधारा वाला क्षेत्र है।
माया	-	लोलार्क भदैनी का क्षेत्र है।

काशी के देवी-देवता

ज्योतिर्लिङ्ग- आदि काल से काशी में शिवलिङ्ग पूजन की परम्परा चली आ रही है। यहाँ तीन प्रकार के शिवलिंग मिलते हैं-

१. सतोगुण, महर्षि एवं ब्राह्मण के लिये श्वेत रंग।
२. रजोगुण, राजा के लिये लाल रंग तथा
३. तमोगुण प्रधान के लिये काले रंग के शिवलिङ्ग पूजन का विधान है।

काशी में ५४ शिवलिङ्ग हैं लेकिन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का विशेष महत्त्व है। उनकी स्थिति इस प्रकार है-केदारेश्वर (केदार घाट), रामेश्वर (मानमन्दिर), गोकर्णेश्वर (कोदई चौकी), विशेश्वर (प्रसिद्ध), शैलेश्वर (मछिया घाट), त्र्यम्बकेश्वर (हौजकटोरा), वागेश्वर (काशी करवट के पास), महाकालेश्वर (वृद्धकाल), नागेश्वर (भोंसला घाट), घुष्णेश्वर (मछोदरी पार्क के उत्तर में)।

कालभैरव

काशी नगर के रक्षाधिकारी कालभैरव हैं। यह मैदागिन भैरवनाथ मुहल्ले में अग्निकोण में स्थित हैं। कालभैरव नगर के आठ स्थानों पर अपने आठ अंशों में विभिन्न नामों से विराजमान हैं, जिन्हें अष्ट भैरव कहा जाता है। इनके नाम हैं- रुरुभैरव, चण्डभैरव, असितांग भैरव, श्री कपाल भैरव, उन्मत्त भैरव, बटुक भैरव, संहार भैरव, भीषण भैरव। इसके अतिरिक्त आस भैरव, आनन्द भैरव तथा वठुक भैरव भी हैं।

काशी में चैत्र मास के नवरात्र में नवगौरी के दर्शन का विधान है तथा आश्विन मास के नवरात्र में नवदुर्गा के दर्शन का विधान है। चैत्र मास नवरात्र की नवगौरी इस प्रकार हैं- मुखनिमीलिका गौरी, ज्येष्ठा गौरी, सौभाग्य गौरी, श्रृङ्गार गौरी, विशालाक्षी गौरी, ललिता गौरी, भवानी गौरी, मंगला गौरी, महालक्ष्मी। आश्विन मास की नवरात्र के नवदुर्गा दर्शन का विधान इस प्रकार है- शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चित्रघंटा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्री, महागौरी, सिद्धिदात्री।

विनायक

स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में काशी की सुरक्षा हेतु ५६ विनायकों की चर्चा की गई है। ये सभी प्रतिमायें आज भी यहाँ सुरक्षित हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं- अभयद, अविमुक्त, आशा, एकदन्त, उद्दण्ड, उद्दण्डमुण्ड, कूष्माण्ड, कलिप्रिय, काल, कुपिताक्ष, खर्व, गज, गजकर्ण, गणेश्वर, चिन्तामणि, चतुर्दन्त, ज्येष्ठ, ढुण्ढिराज, दन्तहस्त, द्वितुण्ड, दुर्मुख, द्वार, दुर्ग, कूटदन्त, डेवढ़िया, नागेश, प्रमोद, पांचास्यु, पिचिडिल, प्रणव, बिन्दु, भगीरथ, मंगल, मोद, मणिकर्णि, मोदकप्रिय, मुण्ड, महाराज, यज्ञ, राजपुत्र, लम्बोदर,

विकटदन्त, वकृतुण्ड, विघ्नराज, वरद, शालकंटक, स्थूलदन्त, सृष्टि, स्थूल-जंघ, साक्षी, सिद्ध, हरेम्ब, क्षिप्र प्रसादन, ज्ञान, त्रिमुख, षोडस, दण्डपाणि, जव, हरिश्चन्द्र, बड़ागणेश, षडानन, पाशपाणि, सीमा, सेना, कपर्दि, दूध, दीर्घ, मधु, घृत, हिमांशु शेखर, पाशपाणि तथा ज्ञानेश्वर विनायक।

आदित्य

काशी में आदित्यों (सूर्य) का प्रतीकात्मक अंकन हुआ है। काशी में बारह आदित्य हैं- यमादित्य, विमलादित्य, अरुणादित्य, केशवादित्य, गंगादित्य, द्रोपदादित्य, खखोलकादित्य, मयूखादित्य, वृद्धादित्य, लोलार्क, उत्तरार्क, साम्वादित्य।

रचनाकाल

काशी रहस्य ब्रह्मवैवर्त पुराण के तृतीय खण्ड का तृतीय भाग है। डॉ. आर.सी. हजारा के अनुसार इसका रचनाकाल ८०० ई. पूर्व है। द्रष्टव्य-पौराणिक रिकार्ड्स, पृ. १६६-६७।

भाषाशैली

काशी रहस्य की भाषा समास युक्त शुद्ध लौकिक भाषा है। इसमें वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। काशी रहस्य में स्थान-स्थान पर आख्यानों का समावेश किया गया है। ये आख्यान आध्यात्म के गम्भीर पक्ष को प्रस्तुत व स्पष्ट करते हैं जैसे गुरु शिष्य महिमा तथा काशीमाहात्म्य जैसे गम्भीर विषय को स्पष्ट करने के लिये वेदधर्मा संदीपक का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय में काशी प्रादुर्भाव भी आख्यान के माध्यम से बताया गया है। मुक्ति साधन जैसे दार्शनिक पक्ष को अग्नि शर्मा व सोम शर्मा के आख्यान द्वारा प्रस्तुत किया गया है। काशी में तुच्छ व्यक्ति के शासन को वर्जित करने के लिये महासेन का आख्यान है। आठवें अध्याय में प्रायश्चित्त प्रकरण को शंकर और जैगीषव्य के आख्यान के माध्यम से सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। नवें अध्याय में इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिये मण्डप का आख्यान है। मिथ्या जगत् से मुक्ति हेतु द्विजेता एवं ब्राह्मण आख्यान महत्त्वपूर्ण है। पाप से मुक्ति हेतु कामकला एवं वीरसेन का आख्यान है। श्रद्धापूर्ति के लिये भिल्ल एवं ब्राह्मण कथा है। गंगा की महत्ता को राजा पुण्यकीर्ति के आख्यान द्वारा दर्शाया गया है। वेद-रहस्य का प्रतिपादन ऋतुध्वज आख्यान के द्वारा किया गया है। विश्व ज्ञान सदृश आध्यात्मिक प्रकरण को सनातन ब्राह्मण आख्यान द्वारा बताया गया है। अन्तिम अध्याय में पर निन्दा फल के सम्बन्ध में विष्णु शर्मा का आख्यान प्रस्तुत करते हुए मोक्ष प्रकरण को स्पष्ट किया गया है।

वर्ण्य विषय

काशी रहस्य का वर्ण्य विषय इस प्रकार है-सृष्टि रचना, युगों का स्वरूप और उनका कर्म, गुरु-शिष्य महिमा, काशी माहात्म्य, काशी क्षेत्र में सन्यास की महिमा, काशी प्रादुर्भाव, काशी निवासियों की महिमा, कलिदोष एवं छुटकारे का उपाय, मोक्ष प्रकरण में काशी की विशेषता, कलियुग में धर्म का स्वरूप, मनुष्यों का आचरण, पुरुषार्थ का स्वरूप, कलिदोषों से बचने का उपाय, मायामोह में लिप्त मनुष्यों के उद्धार का उपाय, पाप से मुक्ति का उपाय, काशी में धर्म-कर्म सम्पादन का माहात्म्य, प्रायश्चित्त एवं पापशमन हेतु पञ्चक्रोशी क्षेत्र प्रदक्षिणा, पञ्चक्रोशी प्रदक्षिणा विधि, पञ्चक्रोशी यात्रा नियम, क्षेत्र प्रदक्षिणा, असक्त प्राणियों के प्रायश्चित्त स्वरूप कार्य का विधान, काशी स्थित प्रमुख तीर्थों का वर्णन, काशी प्रसिद्धि का रहस्य, काशी में कलि का प्रभाव, असज्जन पुरुषों के लक्षण, शास्त्र श्रवण विधि एवं सच्चे गुरु के लक्षण, गुरु के प्रकार, गंगा महिमा वर्णन, मृत्योपरान्त आत्मा-गमन, पापानुसार नरक के प्रकार, स्थिति एवं लक्षण, पापी और मुमुक्षु की धर्मोपासना में अन्तर, पाप, पापी और उनकी यातनाओं का आध्यात्मिक रहस्य, वेद रहस्य, वर्णानुसार अपराधों का विवेचन, काशी सेवन-आध्यात्मिक रहस्य, काशीवासी व्यक्ति के लिये दुख का कारण, काशीवासियों के लिये कर्तव्य एवम् कर्म-निर्देश, कामी पुरुषों के उद्धार के उपाय, मिथ्यावादियों के पापों का स्वरूप, काशी में परनिन्दा का फल, मृत्यु के पश्चात् ऋषि-मनुष्यों की गति, मनुष्य के स्वर्ग-नरक प्राप्ति के उपाय इत्यादि। इस प्रकार काशी रहस्य उपपुराण काशी के समस्त रहस्यों को उद्घाटित करने में समर्थ है।

इसमें कुल २६ अध्याय तथा २७०० श्लोक हैं। इसमें भारतीय संस्कृति के सूक्ष्म तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है।

विनायकमाहात्म्य

उपक्रम

पञ्चदेवोपासना में भगवान् गणेश का भी एक अति महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण आदि देव प्रथम पूज्य भगवान् गणेश के लीला चरित्र एवं उपासना के प्रकार न्यूनाधिक रूप से प्रायः सभी महापुराणों एवं उपपुराणों में वर्णित हैं। इनकी महिमा का गान करने वाले एवं गणपति सम्प्रदाय में उपासना की दृष्टि से अत्यधिक समादृत स्वतंत्र कई उपपुराण भी हैं। गणेश महिमा का वर्णन करने वाले बहुत से पृथक् माहात्म्य ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें से एक है 'विनायक माहात्म्य'। वस्तुतः ये माहात्म्य स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर इनका सम्बन्ध किसी न किसी पुराण या उपपुराण से अवश्य ही होता है। पुराण वाङ्मय का अत्यधिक विस्तार, सतत् समय-समय पर होने वाले पूर्वकालीन परिवर्धनों, इनकी लोकप्रियता और कालक्रम से दुर्भाग्य से इन पुराणों के बहुत सारे अंशों के विलुप्त होने से इन माहात्म्यों की स्थिति के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना निश्चय ही कठिन कार्य है। इस सम्बन्ध में अनेक सम्भावनाएं हो सकती हैं। जनमानस में पुराणों के प्रति अत्यधिक आदर और लोकप्रियता को देखते हुए बाद में बहुत से अंश पुराणों के नाम से विशेष कर स्कन्द और पद्म पुराणों के नाम से जोड़ दिये गये जो आज उनके वर्तमान स्वरूप में इसी लिये उपलब्ध नहीं होते ऐसा कुछ विद्वानों का अभिमत है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि निश्चय ही ये अंश मूल पुराण में रहे होंगे किन्तु कालक्रम से और विदेशियों के आक्रमण, सामान्य जन की उपेक्षा या ग्रन्थ की तात्कालिक रूप से उपयोगिता के न रहने पर उनके गङ्गा प्रवाह की प्रवृत्ति के कारण वर्तमान उपलब्ध पुराणों का स्वरूप कुछ बदल सा गया है। कई पुराणों के कई अंश न्यूनाधिक रूप से आज दुर्लभ हैं। इसी कारण आज के उपलब्ध पुराणों में वह माहात्म्य न होने से वह पुराण का अंश नहीं है ऐसा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता और न ही ऐसा कहना उपयुक्त होगा।

महापुराणों में विशेषकर स्कन्द पुराण के साथ यह बात अधिक देखने को मिलती है। वैसे कहीं-कहीं स्कन्द पुराण का उल्लेख उपपुराणों में भी आता है। वर्तमान में स्कन्द पुराण दो स्वरूपों में प्राप्त होता है। एक खण्डात्मक, जिसमें माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवन्ति, नागर और प्रभास ये सात खण्ड हैं, जो अपनी विषयवस्तु एवं भौगोलिक विवरण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। स्कन्द पुराण का एक दूसरा स्वरूप जो संहितात्मक है, उसमें सनत्कुमार, सूत, शङ्कर, सौर, विष्णु एवं ब्रह्म ये छ संहिताएं प्रमुख है। ये संहिताएँ भी विषयवस्तु की दृष्टि से कहीं से भी कम नहीं हैं। वर्तमान समय में अनेक संहिता, अनेक खण्ड और बहुसंख्यक माहात्म्य इस पुराण के अन्तर्गत कहकर प्रसिद्ध हैं जिसके कारण

८१००० श्लोकों वाले स्कन्द पुराण की श्लोक संख्या एक लक्ष के भी आँकड़े को पार कर चुकी है। प्रभास खण्ड, नारदीय पुराण एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर स्कन्द पुराण का ५वाँ, ६ठा एवं ७वाँ खण्ड क्रमशः रेवा, तापी और अम्बिका खण्ड भी बतलाया गया है।

उपर्युक्त संहिता और खण्डों के अतिरिक्त और भी बहुत से माहात्म्य, खण्ड और संहिताएँ स्कन्द पुराण के अन्तर्गत प्रचलित है। यथा- सह्याद्रि खण्ड, अर्बुदाचल खण्ड, कनकाद्रि खण्ड, कश्मीर खण्ड, कौशल खण्ड, गणेश खण्ड, उत्तर खण्ड, पुष्कर खण्ड, द्वारिका खण्ड, भीम खण्ड, भू खण्ड, भैरव खण्ड, मलयाचल खण्ड, मानस खण्ड, कालिका खण्ड, श्रीमाल् खण्ड, पर्वत खण्ड, जालन्धर खण्ड, सेतु खण्ड, हालास्य खण्ड, हिमवत् खण्ड और महाकाल खण्ड ये कतिपय प्रमुख खण्ड हैं। इसी प्रकार संहिताओं में भी अगस्त्य संहिता, ईशान संहिता, उमा संहिता, सदाशिव संहिता, प्रह्लाद संहिता आदि प्रमुख संहिताएँ हैं।

माहात्म्यों में अधिमास माहात्म्य, अम्बिका माहात्म्य, अयोध्या, अर्बुद, आदिकैलास, आलम्पुरी, आषाढ, इन्द्रावतार क्षेत्र, इषुपात क्षेत्र, उत्कण्ठ एकादशी, अदुःख नवमी व्रत, अरुन्धती व्रत, ओकारेश्वर, कदम्बवन, कनकाद्रि, कमलालय, कलश क्षेत्र, कात्यायनी, कालेश्वर, कुमार क्षेत्र, कुरुकापुरी, कृष्णनाम, कैवल्यरत्नकेश्वर क्षेत्र, कोटीश्वरी व्रत, गणेश, गरलपुर, गोकर्ण, गो, परमेश्वरी, चातुर्मास्य, चिदम्बर, जगन्नाथ, जयन्ती, तञ्जापुरी, विष्णुस्थली, तपसतीर्थ, तल्पगिरि, तिकलनवाडी, तुङ्गभद्रा, तुङ्गशैल, तुलजाभवानी, त्रिशिरगिरि, नन्दी क्षेत्र, पञ्चपार्वती, नन्दीश्वर, पराशर क्षेत्र, पाण्डुरङ्ग, पावकाचल, पैरलस्थल, प्रबोधिनी, प्रयागपुरी, बकुलारण्य, बदरिकावन, बिल्बवन, भागवत, भैरव, मथुरा, मन्दाकिनी धराचल, महालक्ष्मी, मायाक्षेत्र, मार्गशीर्ष, रामशिला, रामायण, रुद्रगया, लिङ्ग, वटतीर्थ, वरलक्ष्मी, वाञ्छेश्वर, वानरवीर, विनायक, विरजा, बृहदगिरि, वेदपादशिव, वैशाख, बिल्वारण्य, शम्भलग्राम, शम्भुगिरि, शालग्राम, महादेव क्षेत्र, शीतला, श्रृंङ्गवेरपुर, शूलटङ्केश्वर, श्रीमाल, श्रीशैल, सिंहाचल, सुब्रह्मण्य, स्वयम्भू, हेमेश्वर हृदयाचल और सिद्धिविनायक माहात्म्य इत्यादि बहुसंख्यक माहात्म्य स्कन्द पुराण के अन्तर्गत कहकर प्रचलित हैं।

विनायक माहात्म्य स्कन्द पुराण के अन्तर्गत स्कन्द शङ्कर संवाद के माध्यम से गणेश की महिमा वर्णन करता है। इसमें २४ (चौबीस) अध्याय एवं १४६१ (एक हजार चार सौ इकसठ) श्लोक हैं।

नामकरण का अभिप्राय

विनायक माहात्म्य में निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त अरूप उस परब्रह्म परमात्मा भगवान् गणेश द्वारा चराचर के हित के लिये लिये गये सात अवतारों का वर्णन है। जिसका कोई अन्य नायक नहीं है जो स्वयं ही नायक है अथवा जो विशिष्ट नायक है इस अर्थ में

भगवान् गणेश की इन अवतारों में की गई विभिन्न लीलाओं के आधार पर इसका नाम विनायक माहात्म्य रखा गया है जो सर्वथा उपयुक्त ही प्रतीत होता है। परब्रह्म परमात्मा स्वयं नायक है उसका कोई अन्य नायक नहीं है इसलिये उसी की विनायक नाम से महिमा यहाँ वर्णित है।

कालनिर्धारण

विनायक माहात्म्य अपने को स्कन्द पुराण से सम्बद्ध बताता है यदि इसे स्कन्द पुराण के अन्तर्गत मानते हैं तो इसका काल भी वही होगा जो स्कन्द पुराण का होगा। स्कन्द पुराण का काल ७ (सप्तम) शती से ९ (नवम) शती के बीच का काल प्रायः विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु इसके आख्यानों को देखने पर इस पर तीनों ही गणेश से सम्बन्धित उपपुराणों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। मुद्गल पुराण में जहाँ वक्रतुण्डादि आठ गणेशवतारों की चर्चा की है वहीं विनायक माहात्म्य में सात अवतारों की चर्चा है। गणेश पुराण, मुद्गल पुराण एवं गणेश भागवत के कई आख्यान इसमें प्राप्त होते हैं। डा. हाजरा के अनुसार गणेश पुराण का रचनाकाल ११०० और १४०० A.D. बीच होना चाहिए। जबकि एक अन्य विद्वान जे.एन. फारुकहर ने ९०० से १३५० के बीच गणेश पुराण का रचनाकाल माना है। डा. हाजरा के अनुसार मुद्गल पुराण गणेश पुराण से प्राचीन है जबकि उपासना परम्परा और अन्य विद्वानों के अभिमत से गणेश पुराण प्राचीन है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विनायक माहात्म्य का रचनाकाल ९०० से १४०० A.D. के बीच का हो सकता है।

संस्करण एवं पाण्डुलिपि

संस्कृत मुद्रित ग्रन्थ जिसके सम्पादक वासुदेव शास्त्री पणशीकर हैं।[1] सन् १९३० ई. द्वितीय आवृत्ति, आकार ८.५" x ४" पृष्ठ ५१ अध्याय २४ श्लोक सं १४६१ एवं मूल्य १/- है। सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में इसकी तीन पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है।

क्र.सं.	पत्र संख्या	आकार	पंक्ति	अक्षर	लिपि	आधार	पूर्ण/ अपूर्ण	विशेष	लिपि काल
14556	1–24 24–57	13ग6.4	10	35	देवनागरी	का.	पूर्ण	स्कन्द पुराण	–
15685	1–69	12.8x5.5	11	38	देवनागरी	का.	पूर्ण	स्कन्द पुराण	–
15992	1–101	9.1x4.1	08	28	देवनागरी	का.	पूर्ण	स्कन्द पुराण	1715 ई.

१. यह निर्णयसागर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित है।

विनायक माहात्म्य की विषयवस्तु

(अध्याय १)- पहिले अध्याय में गणेश के वक्रतुण्ड रूपी प्रथम अवतार का वर्णन है। सृष्टि निर्माण के समय जब ब्रह्माजी के कार्य में अनेक विघ्न आने लगे तब परमेश्वर ने ब्रह्माजी को वक्रतुण्ड मन्त्र का उपदेश किया। तत्पश्चात् बारह वर्ष पर्यन्त तप करने पर वक्रतुण्ड गणेश से वर पाकर निर्विघ्न रूप से सृष्टि रचना की तथा अपनी दो कन्याएँ सिद्धि और बुद्धि भगवान् वक्रतुण्ड को समर्पित कर दी। यही कथा गणेश पुराण के उपासना खण्ड के १४-१५ अध्यायों तथा मुद्गल पुराण के प्रथम खण्ड में ४०वें अध्याय में भी आई है। जहाँ ब्रह्मा द्वारा षड़क्षर मन्त्र जपने की बात मुद्गल पुराण और विनायक माहात्म्य में आई है वही गणेश पुराण में ब्रह्मा ने एकाक्षर मन्त्र का जप किया है।

(अध्याय २ से ८)- विनायक माहात्म्य में २ से ८ अध्याय तक गणेश के चिन्तामणि अवतार का वर्णन है। भगवान् ब्रह्मा के वीर्य एवं अनुग्रह से अभिजित् व गुणवती इन्हें गण नाम का अत्यन्त बलवान् पुत्र प्राप्त हुआ। कठोर तप करके उसने भगवान् शिव से वर प्राप्त कर लिया। पूर्व में इन्द्र ने प्रसन्न होकर कपिलमुनि को चिन्तामणि नाम का एक दिव्य मणि प्रदान किया था। वह मणि इस गण नाम के दैत्य ने कपिल से छीन लिया। उससे खिन्न होकर कपिल मुनि ने भगवान् विनायक की आराधना की। भगवान् विनायक ने प्रसन्न होकर गण दैत्य का वध किया और कपिल की ही इच्छा व प्रार्थनानुसार चिन्तामणि नामक मणि स्वयं धारण किया। यही कथा मुद्गल पुराण के द्वितीय खण्ड में (७०-७२) अध्याय में वर्णित है। मुद्गल पुराण में इसे एकदन्त अवतार कहा हैं।

(अध्याय ६ से १२)- ६ से १२ अध्यायों में गजाननावतार का वर्णन है। ब्रह्मा जी की जभाई से सिन्दुर नाम का पुरुष प्रकट हुआ। ब्रह्मा से वर पाकर उसने तीनों लोकों में उत्पात मचाया जिससे त्रस्त होकर सभी देवता विनायक की शरण गये। तब भगवान् विनायक ने सभी दुःखों से निवृत्ति दिलाने वाले स्तोत्र 'दुःख प्रशमन स्तोत्र' जो उन्हे अत्यन्त प्रिय है चतुर्थी तिथि के दिन इस स्रोत्र द्वारा आराधना करने को कहा। आगे चलकर देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर, सिन्दुरासुर का विनाश एवं धर्म की स्थापना हेतु भगवान् विनायक ने पार्वती के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। सिन्दुरासुर को आकाशवाणी द्वारा जब यह बात मालूम पड़ी तब उसने पार्वती के गर्भ में माया द्वारा प्रवेश कर गर्भस्थ शिशु के सिर को अपने नखों से विदीर्ण कर नर्मदा किनारे फेंक दिया। आगे कुछ दिनों बाद अपने नवजात शिशु को मस्तक विहीन देखकर पार्वती अत्यन्त व्याकुल हुई। तदनन्तर भगवान् गणेश ने स्वयं ही अपने प्रभाव, अपने पिता भगवान् शिव एवं देवगुरु बृहस्पति का आशीर्वाद प्राप्त कर, शिव द्वारा अपने हाथ से छिन्न किये गजासुर के मस्तक को धारण किया। आगे चलकर इन्ही भगवान् गजानन ने गजासुर का वध कर उद्धार किया। यही कथा गणेश पुराण के क्रीडा खण्ड के १२७-१३२ अध्यायों तथा मुद्गल पुराण के ४४-४८ अध्यायों में भी कुछ परिवर्तनों के साथ वर्णित है।

(अध्याय १३-१४)- विनायक माहात्म्य के तेरहवें तथा चौदहवें इन दो अध्यायों में विघ्नराजावतार का वर्णन किया गया है। एक बार "इन्द्र को हविभाग दिये बिना यज्ञ किया जाय" ऐसा आदेश देकर राजा अभिनन्दन ने याग महोत्सव प्रारम्भ किया। इस घटना से रुष्ट हुए देवराज इन्द्र ने एक कालपुरुष उत्पन्न कर उसे अनेक विघ्न उत्पन्न करने का आदेश दिया। इस कालपुरुष को मारने हेतु भगवान् विनायक ने राजा वरेण्य के यहाँ जन्म लिया। परन्तु बालक को अत्यन्त तेजस्वी देख भयभीत राजा अभिनन्दन ने उस नवजात बालक को एक सरोवर में छोड़ दिया। जहाँ पार्श्व मुनि और उनकी पत्नी दीपवत्सला ने उस बालक को पाल-पोसकर बड़ा किया। इधर सौभरि मुनि के शाप से चूहे के रूप को प्राप्त क्रौञ्चगन्धर्व ने पार्श्व मुनि को बालक रूप से प्राप्त विनायक की शरण जाकर अपनी सेवा लेने हेतु प्रार्थना की। तब विनायक ने मूषक पर आरूढ होकर उस विघ्नासुर को मारने का प्रयत्न किया। किन्तु विघ्न ने विनायक की शरण लेकर अपना नाम पहले लगा कर विघ्नराज यह नाम धारण करने की गणेश से प्रार्थना की। साथ ही उसने यह भी वचन दिया कि जहाँ विनायक का नाम स्मरण, पूजन होगा वहाँ मैं कदापि विघ्न उपस्थित नहीं करूँगा। मुद्गल पुराण के चतुर्थ खण्ड में ५० (पचासवें) एवं इक्यावनवें अध्याय में भी यह कथा वर्णित है।

(अध्याय १५ से १८)- विनायक माहात्म्य के १५ से १८ अध्यायों तक मयूरेश्वर अवतार का वर्णन किया गया है। एक बार शङ्खासुर ने वेद, शास्त्र, पुराणादि का हरण कर लिया, जिस कारण श्रौत स्मार्त क्रियाएँ विलुप्त हुईं। तब भगवान् विनायक ने बल्लाल नामक ब्राह्मण का रूप धारण कर अपनी माया से वेद, शास्त्र, पुराणदि की पुस्तकें निर्मित की। उसके बाद पुनः लोग हव्यकव्य कर्म, नित्य नैमित्तिक कर्म पूर्ववत करने लगे। गार्ग्य मुनि के कहने पर एक बार यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ समाप्ति पर यज्ञकुण्ड से सुन्दर पंखों वाला एक वेगवान् मोर प्रकट हुआ। उस मोर पर सवार होकर शङ्खासुर के भ्राता कमलासुर का वध किया। आगे चलकर शङ्खासुर का विष्णु ने मारकर वध किया। यह कथा भी परिवर्तन परिवर्धन के साथ गणेश एवं मुद्गल पुराण में प्राप्त होती है।

(अध्याय १९ से २३)- विनायक माहात्म्य के उन्नीस से तेईस अध्यायों में धूमकेतु अवतार का वर्णन है। एक बार माधव नाम के क्षत्रिय की पत्नी सुमदा ने बारह वर्ष भगवान् विष्णु की घोर तपस्या की जिससे धूमकेतु गणेश ने विशाल रूप धारण कर धूमासुर को बड़े वेग से अपने जठर में स्थापित किया। 'गणेश भागवत' के सप्तम स्कन्ध में कई अध्यायों में धूमकेतु अवतार की विस्तार से कथा वर्णित है।

(अध्याय २४)- विनायक माहात्म्य के इस अन्तिम अध्याय में विनायक के गणेश अवतार का वर्णन किया गया है। त्रिपुरासुर ने जब देवताओं को पीड़ित करना शुरू किया तब भगवान् शिव ने एकाक्षरी मन्त्र का विधिपूर्वक जप किया। जप से प्रसन्न होकर पाँच

मुख व दस हाथवाला पुरुष शिव के सम्मुख प्रकट होकर मेरा नाम गुणेश है ऐसा बोला। तत्पश्चात् गुणेश द्वारा बतलाये मन्त्र सामर्थ्य से तीनों पुरों सहित त्रिपुर दैत्य का भगवान् शिव ने वध किया। गणेश पुराण में यह कथा भिन्न रूप से वर्णित है। वहाँ भगवान् गणेश ने शिव को गणेश सहस्रनाम का उपेदश किया है।

विनायक माहात्म्य की भाषाशैली

विनायक माहात्म्य इस ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त प्रवाहमान व सरल है जैसी कि प्रायः सभी पुराणों (केवल भागवत को छोड़कर) देखने को मिलती है। विनायक माहात्म्य के दूसरे चिन्तामणि अवतार वर्णन के प्रसङ्ग में दूसरे अध्याय में किया गया सरस्वती का वर्णन, तीसरे अध्याय में गणों का वर्णन, सातवें अध्याय का गणविलाप एवं अभिजित् विलाप का वर्णन अत्यन्त मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है। अलङ्कारों का प्रयोग अत्यन्त कम मात्रा में दिखलाई देता है। सभी पुराणों की तरह आर्ष प्रयोग इसमें भी प्राप्त होते हैं। अलङ्कारों का प्रयोग न्यून मात्रा में होने पर भी इसकी कुछ-कुछ पंक्तियाँ अत्यन्त सहज स्वाभाविक रूप से किसी व्यावहारिक सत्य को उद्घाटित करती प्रतीत होती हैं-

"उदयं प्राप्स्यमानौ द्वौ नोपेक्ष्यौ रोगवैरिणौ।"

-वि.मा. अ. ११, श्लोक २४

अर्थात् उदीयमान् रोग एवं वैरी इनकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

इसी प्रकार-

सङ्कटे च विवाहे च परत्राणे विपत्सु च।
वदन्त्यनृतवाक्यानि अपि सत्यव्रताः नराः।।

-वि.मा. अ. १२, श्लोक ३७

अर्थात् सङ्कटकाल में, विवाह निश्चित करने के सन्दर्भ में, दूसरों की रक्षा के लिये अथवा कठिन प्रसङ्ग में सत्य बोलने वाले भी असत्य बोलते है। ऐसा ही वचन बलि प्रसङ्ग में शुक्राचार्य द्वारा बलि से कहा जाता है।[1]

और भी-

"दुष्टानां सङ्गमो स्वामिन् सुखार्थो नैव जायते।"

-वि.भा. अ. ६, श्लोक ३५

अर्थात् दुष्टों से की गई मित्रता कभी सुखकारक नहीं हो सकतीं।

---

१. स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्यर्थे प्राणसङ्कटे। गो-ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।
-श्री.भा.०८/१९/४३

इस प्रकार विनायक माहात्म्य की भाषा एवं शैली अत्यन्त सुगम, बोधगम्य व हृदय को छू लेने वाली है।

विनायक माहात्म्य का सामाजिक सांस्कृतिक महत्व

पुराणों का प्रमुख उद्देश सामाजिक परिष्कार है। पुराणानुसार समाज का भवन वर्णाश्रम की दृढ़ भित्ति पर आधारित है। अतः तदनुकूल सदाचार का वर्णन पुराणों में प्रतिपादित है। वर्णाश्रम धर्म के पालन द्वारा समाज के अभ्युदय की कल्पना पुराणों में की गई है। वर्णाश्रम धर्म के शुद्ध स्वरूप का निर्वचन करने में पुराणों ने अपनी सार्थकता मानी है। सदाचार का स्वरूप बतलाने से पूर्व पुराणों में कदाचार की विभीषिका प्रस्तुत की गई है। जिसके द्वारा अनाचार में अनास्था प्रकट कर सदाचार की ओर प्रवृत्त किया जाता है। पुराण लोगों को सत्कार्य में प्रेरित करते रहते हैं। सत्कर्म द्वारा मानव को सुखी बनाने हेतु पुराणों ने भोग और मोक्ष को आदर्श माना है। वर्तमान में सुख और भावी जीवन में मुक्ति की प्रतिष्ठा द्वारा मानव के कल्याण की कामना इस आदर्श में निहित है। श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में भी पुराणों के इस सिद्धान्त का समर्थन किया है।[1]

विनायक माहात्म्य के सम्यक् अनुशीलन से उपर्युक्त पौराणिक सिद्धान्त की ही पुष्टि होती है। 'श्रेयांसिबहुविघ्नानि' इस नियम के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में वर्णित वक्रतुण्ड चरित्र में ब्रह्मा द्वारा सृष्टि कार्य आरम्भ करने पर उसमें अनेक विघ्नों के आने की बात कही गयी है। ब्रह्मा द्वारा वक्रतुण्ड मंत्र का जपपूर्वक ध्यान जहाँ सच्चे मन से भगवान् के चिन्तन का द्योतक है वहीं अपनी दोनों कन्यायें ऋषि-सिद्धि गणेश को समर्पित करना उनके निष्काम कर्म की ओर इङ्गित करता है जिससे विघ्नों से मुक्ति होकर वह सृष्टि कार्य करने में समर्थ होते हैं।

इसी प्रकार इस माहात्म्य के द्वितीय प्रकरण में चिन्तामणि अवतार के वर्णन में अभिजित और गुणवती का पुत्र गण कठोर तप कर शिव से वर प्राप्त करता है और वर से मदोन्मत्त होकर इन्द्र द्वारा कपिल मुनि को प्रदत्त दिव्य मणि छीन लेता है। कपिल द्वारा एकदन्त चिन्तामणि गणेश की आराधना किये जाने पर गणेश उस गण दैत्य का वध करते हैं और कपिल मुनि की इच्छा और प्रार्थना पर स्वयं गणेश उस मणि को धारण करते हैं। यहाँ भी अहङ्कार के कारण 'गण' वर्णाश्रम के विपरीत आचरण से कदाचारी हो जाता है। किन्तु कपिल द्वारा ईश्वर की कृपा की प्रतीक्षा और निरन्तर ध्यान से भगवान् प्रगट होकर कदाचारी गण दैत्य का अन्त कर धर्म की प्रतिष्ठा करते है। यहाँ कपिल द्वारा इन्द्र

---

१. तत्तेनुकम्पा सुखमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्। हृदवाग्-वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्ति पदे स दायभाक्।। -श्री.भा. १०/१४/०८

से प्राप्त मणि एकदन्त गणेश को समर्पित किया जाना उनके निष्काम कर्म को ही प्रकट करता है।

तृतीय गजाननावतार में भी सिन्दुरासुर द्वारा तीनों लोकों में उत्पात मचाया जाना, पार्वती के गर्भ को नखों से विदीर्ण करना आदि कदाचार की विभीषका ही देवों को सदाचार की ओर प्रवृत्त करती है और गणेश कृपा से उनके दुःख दूर होते हैं।

चौथे विघ्नराज अवतार में भी राजा अभिनन्दन द्वारा इन्द्र की उपेक्षा कर यज्ञ किये जाने पर विघ्न आते हैं। किन्तु विघ्नासुर का कदाचार राजा को गणेशारधन की ओर प्रेरित करता है। मूषकारूढ़ गणेश विघ्न को नियंत्रित करने एवं भगवत् चिन्तन युक्त कार्य में न आने का वचन प्राप्त करते हैं। यहाँ मूषक उद्यम का प्रतीक है। बुद्धि या ज्ञान द्वारा नियंत्रित उद्यम विघ्नों को नियंत्रित करने और दूर करने में समर्थ होता है। यहाँ भी निष्काम कर्म का प्रतिपादन है।

जैसा कि पूर्व में कहा है कि सदाचार, सद्धर्म की स्थापना हेतु वेद एवं वीर्य की रक्षा आवश्यक है। विनायक माहात्म्य में भगवान् गणेश के मयूरेश्वर अवतार की चर्चा है। इसके अनुसार शङ्खासुर द्वारा वेद, शास्त्र, पुराणादि का हरण करने से श्रौत स्मार्त कर्म विलुप्त हुए। वर्णाश्रम व्यवस्था पर आघात हुआ। तब बल्लाल नामक ब्राह्मण के रूप में प्रगट होकर अपनी माया से पुनः वेद शास्त्र प्रवर्तित कर, यज्ञ संस्था और वेद मार्ग को प्रतिष्ठित किया। गार्ग्य मुनि के कहने पर यज्ञ आयोजित किया और यज्ञकुण्ड से प्राप्त दिव्य मयूर का आरोहण कर कमलासुर को मारा। यहाँ दिव्य पङ्ख वाले मयूर का अभिप्राय ज्ञान-कर्म और उपासना (भक्ति) इन त्रिकाण्डों से युक्त वैदिक मार्ग के द्वारा ही सदाचार की प्रतिष्ठा होने की ओर सङ्केत किया गया है।

विनायक माहात्म्य के छठे एवं सातवें अवतारों धूमकेतु और विनायक अवतार वर्णन प्रसङ्गों में भी धूमासुर और त्रिपुरासुर के अत्याचार से पीड़ित क्रमशः माधव-सुमदा और भगवान् शिव द्वारा गणेश की आराधना से इन दैत्यों का अन्त एवं वैदिक सनातन वर्णाश्रम धर्म की संस्थापना की ही चर्चा है।

सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करने पर सभी पञ्च देवताओं में समन्वय स्थापित करने की प्रवृत्ति का द्योतक होने से इस ग्रन्थ को धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक मान सकते हैं। गणेश या विनायक प्रधान होने पर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, इन्द्र, बृहस्पति आदि को भी महत्व प्रदान किया है। प्रथम अवतार में जहाँ ब्रह्मा द्वारा गणेश (वक्रतुण्ड) की आराधना वर्णित है वही द्वितीय चिन्तामणि अवतार चरित्र में विष्णु के अवतार कपिल मुनि द्वारा अपने पिता कर्दम को गणेशतत्वज्ञान का उपदेश, गणेश द्वारा विष्णु की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हे चिन्तामणि दिया जाना, विष्णु द्वारा इन्द्र को वह मणि देना और फिर इन्द्र द्वारा कपिल को और कपिल द्वारा पुनः गणेश को दिये जाने की घटना सबके ऐक्य

को ही दर्शाती है। इसी प्रकार तृतीयावतार में ब्रह्मा जी से सिन्दुरासुर की उत्पत्ति, पार्वती से जन्म, असुर द्वारा शिरच्छेद और फिर शिव, बृहस्पति के आशीर्वाद से स्वयं गज मस्तक धारण करना इन सभी देवताओं के ऐक्य को प्रदर्शित करता है।

चतुर्थ अवतार में इन्द्र द्वारा विघ्नासुर की उत्पत्ति गणेश द्वारा उसका नियंत्रण और फिर विघ्न के साथ नाम धारण कर विघ्नराज कहलाना यह भी ऐक्य को ही प्रदर्शित करता है। पाँचवे मयूरेश्वर अवतार प्रसङ्ग में मुख्य दैत्य शङ्खासुर का विष्णु के द्वारा और उसके भाई कमलासुर का वध स्वयं गणेश ने कर विष्णु के साथ अपने ऐक्य को ही दर्शाया है। छठे अवतार में तो माधव क्षत्रिय और उसकी पत्नी प्रमदा ने बारह वर्षों तक भगवान् विष्णु की आराधना करके पुत्र रूप में धूम्रकेतु गणेश को प्राप्त किया इससे भी विष्णु से अभिन्नता ही सिद्ध होती है। इसी प्रकार सप्तमावतार में शिव द्वारा गणेशाराधन को प्रदर्शित कर शिव द्वारा त्रिपुरासुर के अन्त की घटना से भी दोनों में विरोध होकर दोनों के समन्वय का ही प्रयत्न किया गया है। पुराणों की इस सूझ-बूझ ने देश को एकता के सूत्र में बाँधने की अपार शक्ति पाई है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विनायक माहात्म्य का महत्व

कुछ विद्वानों का मत है कि खिस्ताब्द के आरम्भ में गणेश पूजा प्रचार में आई। गृह्य और धर्म सूत्रों में गणेश की पूजा कार्यारम्भ में की जानी चाहिए ऐसा दिया है। गोभिल स्मृति जिसका काल खिस्ताब्द पूर्व माना जाता है के अनुसार सभी संस्कारों के प्रारम्भ में गणेश पूजन अवश्य किया जाना चाहिए। आगे बौधायन सूत्र में गणेश को मोदक एवं अपूप समर्पण का विधान है वहाँ विनायक के भूतनाथ, विघ्नेश्वर, हस्तिमुख ऐसा वर्णन है। तीसरी शताब्दी की याज्ञवल्क्य स्मृति में ब्रह्मा और रुद्र इन दोनों देवताओं ने अपने-अपने गणों पर नियंत्रण हेतु चार विनायकों की नियुक्ति की थी। विनायक यह प्राचीन नाम ही है जिसका अर्थ है विशिष्ट शासन करने वाला देवता। ये नायक अनिष्ट कारक क्षुद्र शक्ति युक्त थे। आचार अध्याय में २८१ विनायकों का उल्लेख है। श्रीमद् भागवत में भी डाकिनी, यातुधान, कूष्माण्डादि के साथ विनायक की गणना की गई है। हरि वंश में भी ऐसा ही उल्लेख है। विघ्न निर्माण करने में प्रमुख प्रकृति वाला विनायकों का अधिपति ही गणेश है। कष्ट, हानि, कार्यविरोध, भीति दुःस्वप्नादि के कारण ये विनायक माने जाते हैं। वाराह पुराण के अनुसार पार्वती का अपने अत्यन्त सुन्दर बालक के प्रति अत्यधिक आकर्षण देख शिव ने असूयावश उसे लम्बोदर और गजमुख होने का शाप दे दिया बाद में शिव ने उसे सभी भूतगणों विनायकों का अधिपति बना कर उसे सदा पूजा का सम्मान दिया और पूजा न होने पर कार्य में विघ्न आए ऐसा भी कहा।

कुछ विद्वानों का मत है विनायक अनार्य या एतद्देशीय प्राचीन परम्परा से प्राप्त ग्राम देवता हैं, जिनको वैदिक देवत्व का संस्कार कर उसे वैदिक परम्परा में सम्मिलित कर लिया। इसी प्रकार एक अन्य मत से गणेश सम्प्रदाय भी प्राचीन सम्प्रदाय रहा है। उसमें भी लिङ्ग पूजा प्रचलित थी। शिव जैसा ही गणपति की मूर्तियाँ भी स्वयम्भू है। कोई विशिष्ट आकार न होना, मानवी हाथ न लगना, अपने आप निर्माण होना ये सब स्वयम्भू होने के लक्षण गोल लाल पत्थर या शिला पूजन में दिखता है। शिव की तरह नर्मदा से गणेश लिङ्ग भी प्राप्त होता है। देश के विविध भागों में गजमुख विहीन, पुरुष देहरहित, अव्यक्त या व्यक्त रूप में गणेश को देखने की मनोवृत्ति, गणपति की कल्पना के पीछे शैव पार्श्वभूमि के साक्ष्य रूप में देखी जा सकती है।

जावा देश के लोग गणेश को कालान्तक ऐसा पुकारते हैं। लेकिन यह शिव का वैशिष्टय है। शिव की ही तरह गणेश के पाँच मुख एवं दस हाथ का वर्णन प्राप्त होता है जो इस विनायक माहात्म्य में भी दिया हैं।

कालान्तर में शैव सम्प्रदाय के प्रबल होने पर गणेश को केवल शिवगणों का अधिपति होकर रहना पड़ा। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तन में शाक्त सम्प्रदाय का विशेष योगदान रहा इसी से यह पृथक् हुआ ऐसा प्रतीत होता है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में 'एषते रुद्र भागः। सहस्वसा अंबिकया। तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः।।' यहाँ चूहे को रुद्र का पशु कहा है और गणेश का वाहन भी चूहा है। गणेश का शक्ति के साथ भी सम्बन्ध है। प्रत्येक पुरुष देवता के साथ एक स्त्री देवता होने की पद्धति है। गणेश के साथ भी सिद्धि और बुद्धि ये दो शक्तियाँ है।

प्रारम्भ में ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिदेवों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, किन्तु कालान्तर में ब्रह्मा के सम्प्रदाय के लोप होने पर गणपति सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुआ। गणेश या विनायक के इतिहास में चार प्रमुख मोड़ दिखते हैं। वेदकालीन ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और इन्द्र से गणपति की एकरूपता। दूसरा गणपति और विनायक इन प्रारम्भ में दो भिन्न देवताओं का एकीकरण। दुष्ट और सुष्ट स्वभावों का मिलन गणेश और विनायक इन दो नामों का एक ही देवता के लिये प्रयोग यह तीसरी स्थिति और गजमुख गणेश का उपासना में पदार्पण यह चौथी स्थिति है। गणेश या विनायक के विविध वर्णनों में गजमुखत्व, मूषकवाहन, मयूरवाहन, लम्बोदर, एकदन्त, लम्बकर्ण, विघ्नराज ये नाम, शिवपार्वती का पुत्र होना, शिव पुत्र होकर भी स्वयम्भू होना, नारायण की उपसना से उनका प्राकट्य, विद्या और ज्ञान की देवता होना ये बातें निरन्तर दृष्टिगोचर होती रहती हैं।

विनायक माहात्म्य में वर्णित इन सातों अवतारों के विवरण का सम्यक् अनुशीलन उपर्युक्त भिन्न-भिन्न मान्यताओं और अवधारणाओं में न केवल सामञ्जस्य बैठा सकता है अपितु अनार्यों से आर्यों में प्रवेशादि जैसी भ्रान्त धारणाओं का निरसन भी करता है।

साम्प्रदायिक सौहार्द समन्वय एवं पुराणों के प्रमुख लक्ष्य 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।' को भी दृढ करता है। जिस प्रकार ईश्वर में सृष्टि, पालन के साथ संहार की भी शक्ति निहित है। उसी प्रकार विघ्नहर्ता के साथ विघ्नकर्ता होना भी जरुरी है। 'विनायक माहात्म्य' में भी इन सात अवतारों के वर्णन के माध्यम से उस अवतारी के निर्गुण, निराकार, अनादि, अरूप, अनन्त, परब्रह्म परमात्मा के, चराचर के हित के लिये किये कार्यों का वर्णन किया गया है।

भौगोलिक दृष्टि से विनायक माहात्म्य का वैशिष्ट्य

विनायक माहात्म्य अपने प्रथम वक्रतुण्ड अवतार के सन्दर्भ बतलाया है कि चित्त की चञ्चलता (थर्व) उत्पन्न होने से उनकी सृजन शक्ति कम हुई। तब ब्रह्मा ने एकाग्र होकर तपोनुष्ठान किया। गणेश की कृपा से शान्ति व स्थिरता प्राप्त हुई। तब ब्रह्मा ने इसे स्थावर क्षेत्र ऐसा नाम दिया। दूसरे अवतार चिन्तामणि का भी यही स्थान है। जहाँ गण दैत्य को मारकर कपिल पर अनुग्रह किया वहाँ कदम्ब वृक्ष होने से कदम्ब तीर्थ कहलाया। इसे स्थावर यानी स्थिर क्षेत्र कहते हैं, यहाँ की भूगर्भ स्थिति, चट्टानों एवं प्राकृतिक पर्यावरणादि की दृष्टि से मन की या इस स्थान की स्थिरता के विषय में अनुसन्धान किया जा सकता है। मयूरेश्वर गणपति सम्प्रदाय का आद्यपीठ है। इस स्थान का मूल नाम 'भूस्वानन्दभुवन' ऐसा था। इस क्षेत्र का आकार मोर जैसा था। ब्रह्म पुराण में इस क्षेत्र का वर्णन प्राप्त होता है। **"तत्र भूमिगुहायां तु शतयोजनविस्तृते मयूराकाररूपेण महामाया सनातनी।"** यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति एवं सूर्य इन पाँच देवताओं ने यहाँ तप किया और गणेश के आदेश से वहीं बस गये। यहाँ ये देवता पञ्च महाभूतों के प्रतीक हैं। वायु, जल, उष्मा, प्रकाश आदि का भौगोलिक दृष्टि से स्थानीय परिप्रेक्ष्य में अनुसन्धान अपेक्षित है। सिन्दुरासुर के प्रसङ्ग में शिशु गणेश के सिर को नर्मदा में फेकें जाने और उसमें प्राप्त लाल पत्थरों की पूजा गणेश रूप में की जाती है। इन लाल पत्थर प्राप्त होने का भौगोलिक एवं भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से अनुसन्धान अपेक्षित है। इन वर्णनों में मुख्यतः पुण्यपत्तन (पुणे) क्षेत्र का ही भूगोल उपलब्ध होता है।

इस प्रकार विनायक माहात्म्य लघु आकार का पुराण वाङ्गमय होने पर भी गणेशोपासना का प्रारम्भ, उद्भव और विकास पर सम्यक प्रकाश पड़ता है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से अनुसन्धान कर्ताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। अतः पौराणिक साहित्य में विनायक माहात्म्य अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

विरजाक्षेत्रमाहात्म्य

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष में जितने प्राचीन तीर्थ स्थान हैं उनमें से उत्कल प्रान्त के याजपुर में अवस्थित विरजाक्षेत्र ऐतिहासिक, पौराणिक, तान्त्रिक एवं शक्ति पीठ के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, पहले याजपुर कटक जनपदान्तर्गत था। अब वह पृथग् रूप से जिला बन चुका है। उक्त क्षेत्र कलिङ्ग, उड्र एवं विरजा क्षेत्र नाम से जाना जाता था। परन्तु सोमवंश के राजा ययाति केशरी ने अपने नाम से उक्त स्थान का ययाति नगर नाम करण किया। कालक्रम में लोक में उक्त ययातिनगर याजपुर बन गया। कुछ समालोचक उसका पूर्व नाम 'यज्ञपुर' बताते हैं और यज्ञपुर का अपभ्रंश रूप याजपुर है। यह मत को स्वीकार करने हेतु तर्क देते हैं कि यहाँ अश्वमेध आदि यज्ञों का अनुष्ठान होता रहता था। स्वयं पितामह ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ सम्पादन किया था-

तस्यास्तटप्रदेशे तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
मनोहरं देवनद्यास्ततान मखमादरात्।।[1]

एक कारण हो सकता है कि याजपुर के समीप वैतरणी नदी बहती है। मन्दिर के समीप दशश्वमेध घाट है। अतः उक्त घाट के आस पास दशाश्वमेध हुआ था, यह भी कह सकते हैं कि तांत्रिक ग्रन्थ में उक्त स्थान का नाम याजपुर है -

'विरजा यागपुर्य्यां तु उड्रेशी भद्रकर्णिका'[2] -इस पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि याजपुर यज्ञों की नगरी रही है।

विरजा क्षेत्र की प्राचीनता पुराण इतिहास एवं शिलालेखों से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त महाभारत में भी इस क्षेत्र का विशद वर्णन उपलब्ध है–

ततो वैतरणीं गच्छेत् सर्वपापप्रमोचिनीम्।
विरजं तीर्थमासाद्य विराजति यथा शशी।।
व्रतेरत्र कृतं पुण्यं सर्ववापं प्रमोहति।
गोसहस्रं फलं लब्ध्वा पुनाति स्वकुलं नरः।।[3]

---

१. विरजाक्षेत्रमाहात्म्यम् अ. १/५३
२. नीलतन्त्रम्, पञ्चम पटलम्
३. महाभारतम्, वन पर्व ८५/६-७

ऐतिहासिक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि 'गुहशिव' विरजा क्षेत्र के सर्वप्राचीन नृपति थे एवं बौद्ध धर्म के प्रमुख पृष्ठपोषक भी रहे, जिसका उल्लेख श्रीलंका के कवि धर्मकीर्ति ने अपनी कृति दठधातुवंश में उल्लेख किया है। गृहशिव के नामानुसार उनकी राजधानी का नाम गृहेश्वरपाटक या गुहदेव पाटक था। उसका प्रकारान्तर में उल्लेख वायुपुराण में आता है।[1] महेन्द्र पर्वत में जो आदिवासी लोक वास करते हैं वे गुहशिव के वंशज हैं। खीष्टपूर्व तृतीय शतक में उनका कलिङ्ग पर शासन था। दूसरा मत इस प्रकार है कि गुह संप्रदाय के आदिवासियों (गुहशबर) के देव गुहेश्वर नाम से पूजित थे। तदनुसार राजा का नाम गुहशिव पड़ा था। गुहेश्वर पाटक अपभ्रंस हो कर अब ओडिआ भाषा में "गोहिराटिकिर" है। उक्त स्थान विरजा क्षेत्र में 'खडिपदा' उपखण्ड में है। उत्कल के अन्तिम स्वाधीन राजा मुकुन्द देव यहाँ पर यवनों से पराजित हुए थे। गुहेश्वर पाटक की ऐतिहासिक कीर्ति अभी भी स्मरणीय है। तृतीय शतक तक विरजा क्षेत्र ही कलिंग नाम से अभिहित था यहाँ गुहशिव राजा के रूप में शासन कर रहे थे।

महाभारत में उक्त विरजाक्षेत्र की महिमा महर्षि लोमश के द्वारा सुविशद वर्णित है–

एते कलिङ्गाः कौन्तेय! यत्र वैतरणी नदी।
यत्रायजत धर्मोऽपि देवाञ्छरणमेत्य वै।।
ऋषिभिः समुपायुक्तं यज्ञियं गिरिशोभितम्।
उत्तरं तीरमेतद्धि सततं द्विजसेवितम्।।

वनपर्व ११४/४-५

विद्वानों ने महाभारत का रचनाकाल खीष्ट पूर्व तृतीय शतक ही माना है। अतः विरजा क्षेत्र उस समय का है। पुरातत्त्वविदों ने भी विरजा क्षेत्र की प्राचीनता ई.पू. तृतीय शतक सिद्ध किया है।

ई.पू. तृतीय शतक के बाद विरजाक्षेत्र उत्कल नाम से अभिहित हुआ है। कालिदास ने उत्कल का ही नाम रघुवंश में लिया है।[2] उक्त पद्य में उन्होंने कपिशा नदी का वर्णन किया है जिसका आधुनिक नाम कसाई है। कालिदास गुप्त काल के होने के कारण उनका समय कुछ समालोचकों के द्वारा चतुर्थ या पञ्चमशतक निर्धारित किया गया है, तब तक विरजा क्षेत्र उत्कल नाम से अभिहित हो चुका था।

भौम राजाओं के काल में विरजा क्षेत्र तोषाली नाम से जाना जाता था। उक्त तोषाली दो भागों में विभक्त था एवं विरजा क्षेत्र उत्तर तोषाली के अन्तर्गत था, जिसके राजा

---

१. वायुपुराण वंगवासी संस्करण अ. १६ पृ. ३८६
२. उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ रघु. ४/३८

शम्भुयश थे। दुर्जय वंश के पृथ्वी महाराज ६०६ शतक में मुद्गल-वंश के शम्भुयश को पराजित कर विरजा क्षेत्र पर अधिकार किया था।

ओडिशा का पूर्व नाम उड्र था, जिसका विस्तार वज्रमण्डल (याजिपुर) तक हुआ था यहाँ वैतरणी नदी प्रवाहित हो रही थी। चीन परिव्राजक हेनसांग के अनुसार वर्तमान पश्चिम बंग राज्य में अवस्थित मेदिनापुर जनपद से उड्रदेश का आरंभ हुआ था। उक्त उड्रदेश की राजधानी आजिपुर था यहाँ विरजा देवी जी का मन्दिर है। इसके बाद में भी सोम वंश के केशरी उपाधिधारी राजाओं ने ११1० शतक तक विरजाक्षेत्र में शासन किया। उनकी भी राजधानी याजपुर रही।

इसी प्रकार समालोचकों की दृष्टि से कलिंग, उत्कल-उड्र एवं तोषाली विरजाक्षेत्र को ही कहा गया है जिसका ऐतिहासिक नगर याजपुर रहा। इस याजपुर के भी अनेक नाम रहे-विरञ्जानगर, ययातिनगर, याजनगर, नाभिगया, गदाक्षेत्र एवं वराहतीर्थ आदि। उत्कल के राजाओं का यह स्थान सामरिक केन्द्र के साथ साथ राजधानी भी रहा है।

विरजा क्षेत्र के वर्ण्य विषय

कुल मिलाकर विरजाक्षेत्र माहात्म्य में उन्नीस अध्याय हैं जिसमें उस क्षेत्र की देवता, तीर्थ एवं पौराणिक आख्यान वर्णित है। उक्त स्थल के माहात्म्य का वर्णन होने के कारण इसे स्थलपुराण भी कह सकते हैं।

इस पुराण के वक्ता स्कन्द एवं श्रोता भृङ्गी ऋषि, प्रथम अध्याय में भृंगी के प्रश्न के उत्तर में स्कन्द बताते हैं कि विरजा क्षेत्र ही अविमुक्त क्षेत्र है यहाँ पर कोटिलिंग एवं शक्ति स्वरूपिणी देवी विरजा विद्यमान हैं। यहाँ जनार्दन विष्णु, पिनाकपाणि शिव एवं देवी पार्वती चिर निवास करती हैं। द्वादश योजन में यह क्षेत्र फैला हुआ है एवं चार भागों में विभक्त है। विष्णु क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र, सौर क्षेत्र को कोणार्क, शाम्भव क्षेत्र को एकाम्र एवं शक्ति क्षेत्र को विरजा क्षेत्र कहा गया है। यहाँ पर गोनाक्षिका पर्वत से निकलकर पावनी वैतरणी नदी बहती है जिसके तट में संपन्न यज्ञ में इन्द्रप्रमुख देवता उपस्थित रहते हैं। एक बार पार्वती समेत शिव यज्ञ के दर्शन हेतु पधारे थे, यज्ञ समाप्ति के बाद त्रिलोचन अग्नि रूप में आविर्भूत हुए एवं उक्त तेज से उद्विग्न मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे। शिवजी की आज्ञा से चार भैरव उस क्षेत्र की रक्षा करने हेतु उपस्थित हुए और शिवजी लिंग रूप में ईशानेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। जो व्यक्ति उस स्थान का दर्शन करता है, वह राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है।

द्वितीय अध्याय में विरजा देवी की उत्पत्ति का कारण वर्णित है। जब पार्वती जी को यह ज्ञात हुआ कि शिवजी ईशानेश्वर के रूप में वहाँ विराजमान हो गये हैं तब वे गार्हपत्य नाम के अग्निकुण्ड से दिव्यवस्त्र धारण करके आविर्भूत हुईं। यह देखकर ब्रह्मा ने गंगा

जल से उन्हें अभिषिक्त किया। तब देवी स्वयं बोलीं-"त्वं मां विरजसं नाम्ना भज कमलोद्भव !" तब से देवी का विरजा नाम प्रसिद्ध हुआ।

तृतीय अध्याय में माधवमूर्तियों के आविर्भाव का प्रकार वर्णित है। शिवजी के आग्रह से विष्णुजी भी वहाँ चिर निवास हेतु पधारे एवं उनके शरीर से द्वादश माधव मूर्तियों का निर्गमन हुआ।

ब्रह्मा जी के आग्रह से वहाँ मन्दाकिनी भी बहने लगीं। जहां जहां ऋषियों ने उक्त नदी में स्नान किया वहाँ वहाँ तीर्थ बन गये। उक्त क्षेत्र का आयतन त्रिकोणाकार है। इसके दक्षिण में वरुणेश्वर, पूर्व में कीलालाटेश्वर एवं पश्चिम में उत्तरेश्वर विराजमान हैं। प्रमुख तीर्थों में से शचीतीर्थ प्रमुख है जो पितृकार्य के लिए प्रसिद्ध है।

चतुर्थ अध्याय में क्षेत्र प्रदक्षिणा विधि वर्णित है एवं उक्त प्रदक्षिणा क्षेत्र के अन्तर्गत अष्टचण्डिका, चार भैरव, त्रयोदश रुद्र, द्वादश माधव, तीन नदियाँ, अड़सठ तीर्थ एवं सात पर्वत आते हैं। जो नर इस क्षेत्र की परिक्रमा करता है वह देवत्व को प्राप्त करता है।

पञ्चम अध्याय में इस क्षेत्र में स्थित कपिलतीर्थ का वर्णन है जिसमें पितृकार्य के बाद स्नान किया जाता है एवं वहां पर स्थित वट वृक्ष की प्रदक्षिणा की जाती है।

षष्ठ अध्याय में मृत्युञ्जय तीर्थ वर्णित है। जहाँ पर विष्णु गदाधर नाम से पूजित हैं। उक्त तीर्थ में वैशाख शुक्ल तृतीया तिथि में अथवा श्रावण द्वादशी तिथि में पिण्ड देकर नर ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। उक्त क्षेत्र में शिव के प्रतिनिधिभूत त्रयोदश रुद्रों के मन्दिर हैं। जिसके दर्शन का क्रम है-पहले कश्यपेश्वर उसके पश्चात् क्रम से हरिकेश्वर, गंगेश्वर, कीकशेश्वर, भारभूतेश्वर, मुक्तेश्वर, गोकर्णेश्वर, हाटकेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, अप्सरेश्वर, चित्रगुप्तेश्वर, मानसेश्वर एवं कपिलेश्वर।

सप्तम अध्याय में अगस्त्याश्रम वर्णित है। यह आश्रम वैतरणी के दक्षिण एवं मन्दाकिनी के उत्तर में अवस्थित है। महामुनि अगस्त्य साढ़े तीन सौ वर्ष तप करके शिवजी को प्रसन्न किये थे।

मन्दाकिन्याः प्रवाहिन्या उत्तरत्र महामुनिः।
तपस्तेपे महादेवि ! कुम्भयोनिर्महातपाः।।[1]

अष्टम अध्याय में शंकर जी के मन्दिर में स्थित पार्श्व देवताओं का वर्णन है, जिनमें चार भैरव जो अन्तर्गृह के रक्षक हैं एवं त्रयोदश रूद्र जो क्षेत्र पाल के रूप में वर्णित हैं, प्रमुख हैं। यहाँ गंगा तीन धाराओं में प्रवाहित होकर शिवजी की सेवा करती हैं। इसके अतिरिक्त विष्णु की द्वादश मूर्तियाँ भी यहाँ पर वर्णित हैं। नवम अध्याय में यज्ञवाराह के

१. विरजाक्षेत्रमाहात्म्यम् ७/६

आविर्भाव का कारण वर्णित है जिसमें राजकुमार विचित्रधन्वा का चरित्र वर्णित है। दशम अध्याय में देवराज इन्द्र के द्वारा आखण्डलेश्वर की पूजाविधि भी सांगोपांग वर्णित है। इनकी पूजा करने से दशाश्वमेध फल प्राप्ति होती है। एकादश अध्याय में धर्म देवता का वटवृक्ष के रूप में पूजन के विषय में त्रिपुरासुर कथा वर्णित है। युद्ध के समय शिवजी के रथ का एक चक्र जैसे ही टूट गया तत्काल धर्म वृषभरूप में वहाँ उपस्थित होकर सहायता की थी। विजय के पश्चात उनके मन में अहंकार हो जाने से शिवजी उनकी शक्ति का हरण कर लिये। इससे हतप्रभ होकर उन्होंने विरजा क्षेत्र में आकर तपस्या करके सिद्धि पायी। तबसे वे वटेश्वर के नाम से यहाँ पूजित हैं। द्वादश एवं त्रयोदश अध्याय में विभिन्न नदियाँ वर्णित हैं जिनमें गंगा प्रमुख है। तदुपरान्त गंगा स्नान का फल वर्णित है। चतुर्दश अध्याय में शिव की अष्टमूर्ति अष्टशम्भु के नाम से वर्णित है। त्रिलोचन सूर्य, पद्मेश्वर चन्द्र, लोमहर्षणेश्वर, अग्नि, प्राणायामेश्वर, वायु, सिद्धेश्वर यजमान, तिलकेश्वर आकाश, आखण्डलेश्वर पृथिवी एवं ईशानेश्वर जलमूर्ति रूप में प्रसिद्ध हैं।

पञ्चदश अध्याय में त्रिवेणी प्रकरण वर्णित है। जैसे प्रयाग में गंगा यमुना और सरस्वती का संगम है, ठीक उसी प्रकार विरजा क्षेत्र में त्रिजटा, वेगवती और वैतरणी नदियों का संगम है एवं उसमें मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी में स्नान करने से इक्कीस पूर्वजों के पातक विनाश होने का प्रकरण विस्तृत रूप में वर्णित है।[1] षोडश अध्याय में उपर्युक्त तीन नदियों की उत्पत्ति एवं उससे सम्बन्धित तीर्थों का वर्णन उपलब्ध है।

सप्तदश अध्याय में नाभिगया प्रकरण वर्णित है। विष्णु के द्वारा गयासुर के पास जाना एवं उनके यज्ञपशु रूप में याचना करने का वर्णन उपलब्ध है। गयासुर की नाभि विरजा क्षेत्र में गिरने से उक्त स्थान नाभिगया के रूप में प्रसिद्ध तीर्थ हो गया है। अष्टादश अध्याय में भस्म प्रकरण एवं नाभि गया में पार्वती के द्वारा तपस्या करके मृत्यु की जय करने से उस तीर्थ का मृत्युञ्जय तीर्थ नाम पड़ने का विषय विस्तृत रूप में वर्णित है। उन्नीसवें अध्याय में सोमेश्वर के माहात्म्य में भगवान् शिव पार्वती जी को तारा चन्द्र की कथा सुनाते हैं, गुरु द्रोह के कारण चन्द्र को अभिशाप मिलने से चन्द्र अपने पिता अत्रि के पास जाते हैं। अत्रि के उपदेश से चन्द्र उमा-महेश्वर के निवास स्थल विरजा क्षेत्र को जाकर तपस्या करने का प्रकरण वर्णित है। इसके साथ ब्रह्मा विष्णु का विवाद एवं शिव के द्वारा उसका निराकरण के उपाय भी इस अध्याय में आता है, बीसवें अध्याय में अनुसूया के द्वारा ब्रह्माजी की शापप्राप्ति वर्णित है जिसके कारण विष्णु के साथ विवाद होना एवं शिव के द्वारा उन्हें शाप मिलता है। इससे ब्रह्माजी का गर्व खण्डित होता है एवं अत्रि अनुसूया को अपने अंश से पुत्र प्राप्ति का वरदान देते हैं एवं चन्द्र की उत्पत्ति होती है। इस प्रकरण

---

१. तस्यां त्रिवेण्यां विधिवत् स्नात्वाचम्य सकृन्नरः। कुलं तारयेत् सप्त सप्त सप्त महामना।। १५/१२

शिव के अंश से दुर्वासा एव विष्णु के अंश से दत्तात्रेय का जन्म प्रसंग भी इस अध्याय का विषय वस्तु है। इक्कीसवें अध्याय में सनत्कुमारों के द्वारा अपने पिता ब्रह्माजी को शाप देना, शाप के कारण उनके पांच सर एक सर को शिवजी द्वारा काटना एवं बाद में ब्रह्मा जी का शिवपुत्र गणपति के रूप में पैदा होकर पाताल जाकर पातालासुर का वध करने का प्रकरण विस्तार से वर्णित है। बाइसवें अध्याय में पुत्र प्राप्ति की इच्छा से वैतरणी नदी तट पर अदिति के तप का वर्णन आता है। तपस्या से संतुष्ट शिव ने उन्हें वरदान दिया एवं अदिति की प्रार्थना से शिवजी वहाँ विल्वेश्वर नाम से पूजित हैं। तेईसवें अध्याय में भगिनी शाप से यम का देवत्व विहीन किये जाने से उनका विरजाक्षेत्र में आकर शिव पूजन का प्रकरण एवं शिवजी का यमेश्वर के रूप में प्रसिद्धि पाना वर्णित है। चौबीसवें अध्याय में विरजाक्षेत्र में अवस्थित अन्य शिव लिंगों का विस्तार से वर्णन है जिनमें शक्रेश्वर, चन्द्रेश्वर, तारकेश्वर एवं सिद्धेश्वर प्रमुख हैं।

पचीसवें अध्याय मे विरजाक्षेत्र में स्थित गदाधर तीर्थ वर्णन प्रसंग में विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्रह्मा कैसे विष्णु की परीक्षा लेते है; यह प्रकरण भी इसमें आता है। छब्बीसवें अध्याय में भी कृष्ण लीला प्रकरण में ब्रह्माजी के द्वारा गायों को स्वर्ग में ले जाना एवं वैष्णवी माया में गोपपुर में गांयों की यथास्थिति को देखकर ब्रह्मा का चकित होना एवं विष्णु से द्वेष करने के कारण विरजाा क्षेत्र में आकर तपः करने का वर्णन आता है। सत्ताइसवें अध्याय में भार्गविश्वर का वर्णन आता है। पहले पुत्र की कामना से भृगु यहां तप किये थे। पुत्र कामना से यहां तप करने का विधान इस क्षेत्र का महत्त्व है। अट्ठाइसवें अध्याय में यम का शाप विमोचन प्रसंग आता है। जब सूर्य पुत्री संज्ञा का पति के तेज को सहन न करके स्वदेह से छाया को उत्पन्न करके स्वपुत्र यम एवं यमी को छोड़कर चला जाना एवं यमी का अपने भाई को पति के रूप में याचना करना ऐसा न करने से दोनों के परस्पर अभिशाप देना इत्यादि विषय यहां वर्णित हैं। यमी के अभिशाप से जब यम का देवत्व चला जाता है तो वे विरजाक्षेत्र में आकर शिव को सन्तुष्ट करते हैं। इसीलिए शिवजी का नाम यमेश्वर पड़ता है। अंतिम उनतीसवें अध्याय में शिव-पार्वती संवाद के रूप में दिति के द्वारा गर्भ

धारण एवं उस गर्भ को नष्ट करने हेतु इन्द्र के द्वारा सात टुकड़ों में उसे काटना आदि वर्णन आता है। दिति यह सब विष्णु का षडयन्त्र समझ कर उन्हें शाप देती है। शाप विमोचन हेतु विष्णु विरजा क्षेत्र में विमुक्तेश्वर शिव की आराधना करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्डपुराण में वर्णित विरजा माहात्म्य एक विशिष्ट स्थल पुराण के रूप में उत्कल देश के पौराणिक ऐतिहास को बताता है।

विरजा क्षेत्र माहात्म्य का पुरातात्त्विक अध्ययन

ब्रह्माजी के गार्हपत्य अग्नि से आविर्भूत देवी विरजा के नाम से ख्यात याजपुर एक

प्रसिद्ध शक्तिपीठ है। यह आन्तरिक एवं बाह्य प्रमाण से सिद्ध है। परन्तु विरजा मन्दिर की स्थापत्य शैली का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि यह इतना पुरातन नहीं है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक डॉ. कृष्णचन्द्र पाणिग्रही का कहना है कि बौद्धों के प्रभाव से याजपुर को मुक्त करने हेतु ईशवीय पञ्चम शतक में यह बनाया गया है। ईशवीय १५६८ में ओडिशा में (कालापहाड़) का आक्रमण हुआ तब यह मन्दिर ध्वस्तविध्वस्त हो गया था। बाद में उन्नीसवें शतक में चौधरी सुदर्शन महापात्र ने नूतन मन्दिर का निर्माण करवाया। निर्माण शैली से यह ज्ञात होता है कि यह पद्मगर्भरेखा मन्दिर है जो प्राचीन मन्दिर की भित्तिभूमि पर बनाया गया है। मन्दिर में प्राचीन कलाकृतियाँ एवं पार्श्वदेवताओं की मूर्तियां बनायी गयी हैं। पार्श्वदेवताओं के लिए पश्चिमोत्तर दिशाओं में विमान बनाये गये हैं।

मन्दिर की मुखशाला अर्थात प्रवेश द्वार अन्य मन्दिरों से कुछ भिन्न है। क्योंकि चार विशाल स्तम्भों के ऊपर मुखशाला खड़ी है। उसके ऊपर दो छत्राकार गोपुर हैं। मुखशाला में यज्ञकुण्ड है एवं अष्ट मातृकाओं के लिए पूजास्थान सुरक्षित है। द्वार बन्ध में दो नागों का परस्पर बलित अङ्कित कला प्राचीन स्थापत्य को जीवन्त करती है। मन्दिर के अन्दर नाभिगया मन्दिर के दक्षिण में चण्डी मन्दिर है।

गर्भगृह में श्री विरजा विराजमान हैं। तीन हाथ की उच्चता विशिष्ट कृष्ण मसृण प्रस्तर सिंहासन के ऊपर देवी विराजमान है जिसकी दो भुजायें एवं महिष को पुच्छ पकड़कर त्रिशूल से उसे मारने की भव्य मूर्ति है।

मन्दिर के पार्श्व देवता गणेश, भैरव, चामुण्डा, कार्तिकेय, बगलामुखी, काली, सूर्य, गणेश, कपाल भैरव, वराह, ईशानेश्वर एवं नाभिगया हैं। मन्दिर प्राचीर के अन्तर नाभिगया के सामने वैद्यनाथ मन्दिर, चण्डी मन्दिर के पूर्वोत्तर बीच में गङ्गेश्वर, अग्नि कोण में मार्कण्डेयेश्वर, दक्षिण में अप्सरेश्वर, बलिमण्डल के दक्षिण कोण में रुधिरेश्वर एवं वायु कोण में मुक्तेश्वर मन्दिर प्रमुख हैं।

मन्दिर के उत्तर द्वार में प्रवेश करते समय बायीं ओर बयालीस और दक्षिण की ओर चौवन शिवलिङ्ग हैं।

अनेक गवेषकों ने विरजा क्षेत्र माहात्म्य के अनुसार इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया है। ग्रन्थ में यह बताया गया है कि विरजा देवी के आविर्भाव के अनन्तर उनके मन से नव दुर्गा, अष्ट चण्डिका एवं चन्तुःषष्टियोगिनी गण आविर्भूत हुईं।

दुर्गानवचतुःषष्टियोगिन्योऽष्टौ च चण्डिकाः।[1]

---

१. विरजाक्षेत्रमाहात्म्यम् २/३०

उक्त देवी मन्दिर विरजा मन्दिर के आसपास गाँव में अवस्थित हैं।

१. **शैलपुत्री** - विचित्रपुर गाँव में विचित्रेश्वरी नाम से पूजित।
२. **ब्रह्मवादिनी** - सिन्दूरेई नाम से सिन्दूरेई मुह में पूजित।
३. **कूष्माडा** - बालेश्वर जिला षोडहा ग्राम में कुण्डेइ नाम से प्रसिद्ध।
४. **स्कन्दमता** - उत्तरेश्वर लिंग के समीप कन्दराई नाम से प्रसिद्ध।
५. **कात्यायनी** - जाऊलि बन्ध के निकट कार्त्तिकी नाम से प्रसिद्ध।
६. **कालरात्री** - याजपुर नगर में नरहरिपुर शासन में जयदुर्गा नाम से पूजित।
७. **महागौरी** - वैतरणी नदी के दक्षिण तीर में मुक्तेश्वर मन्दिर के अन्दर पूजित।
८. **सिद्धिधात्री** - हीरापुर ग्राम के निकट पार्वती के नाम से पूजित।
९. **चन्द्रघण्टा** - वैतरणी नदी के वल्लभी घाट में वल्लभी देवी के नाम से पूजित।

इस प्रकार विरजा मन्दिर के आसपास में अष्ट भैरव, अष्टचण्डिका एवं तान्त्रिक विधि में पूजी जाने वाली चतुर्भुजा, द्विभुजा, चामुण्डा आदि के अनेक मन्दिर हैं। इससे ज्ञात होता है कि विरजा क्षेत्र एक प्रसिद्ध शक्तिपीठ हैं। इसके अतिरिक्त विरजा क्षेत्र माहात्म्य में वर्णित अनेंक शिव मन्दिर भी विरजा मन्दिर के आसपास हैं। कुछ प्रमुख मन्दिरों के नाम इस प्रकार हैं -अट्टेश्वर, अप्सरेश्वर, अगस्त्येश्वर, अर्केश्वर, अग्नीश्वर, अर्धनारीश्वर, आखण्डलेश्वर, ईशानेश्वर, उत्तरेश्वर, कपिलेश्वर, कश्यपेश्वर, कालेश्वर, कामेश्वर, कीलालाटेश्वर, कीकशेश्वर, कुमारेश्वर, कुसुमेश्वर, केदारेश्वर, कोदण्डेश्वर, गंगेश्वर, गञ्जेश्वर, गरिमेश्वर, गोकर्णेश्वर, गोधनेश्वर, आदि नवासी शिव मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त विरजा क्षेत्र माहात्म्य में वर्णित द्वादश माधवों के मन्दिर भी आज उपलब्ध हैं-

१. आदि माधव – वैतरणी नदी के वारुणी तीर्थ के निकट आंगुल ग्राम में।
२. वराह माधव – वैतरणी नदी के दक्षिण तट में।
३. अनन्त माधव – राजपुर ग्राम में अट्टट्टेश्वर मन्दिर के समीप
४. गदाधर माधव – विरजा मन्दिर में स्थित नाभिगया मन्दिर के समीप
५. पुरुषोत्तम माधव – मांऊलि बांध के निकट त्रिलोचन मन्दिर के परिसर में है
६. नरकान्तक माधव – चम्पामडेई गाँव में लोमहर्षण मन्दिर के ईशान कोण में
७. भोग माधव – भोगमाधव गांव के पश्चिम में
८. वासुदेव माधव – गोधनेश्वर मन्दिर के पश्चिम में
९. योगमाधव – वल्लभी घाट के निकट वल्लभी देवी मन्दिर के पास
१०. चम्पक माधव – गोरड़ेश्वर गांव में यज्ञेश्वर मन्दिर के पास
११. हरिहर माधव – सिद्धेश्वर मन्दिर के निकट पाहड़पुर गांव में अवस्थित। उक्त विग्रह गुप्तकालीन कलात्मक विग्रह है।
१२. सिद्धमाधव – सिद्ध तीर्थ के निकट सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर के समीप

इसके अतिरिक्त पञ्च नृसिंह मन्दिर भी विरजा क्षेत्र में विराजमान है-१. अभय नृसिंह, २. लक्ष्मी नृसिंह, ३. उग्र नृसिंह, ४. भीम नृसिंह, ५. वीर नृसिंह। उत्कल में उपलब्ध उपपुराण, औपपुराण एवं स्थल पुराणों में ब्रह्माण्डपुराण में वर्णित विरजा क्षेत्र माहात्म्य एक प्रसिद्ध स्थल पुराण है जिस के समय के बारे में पहले चर्चा हो चुकी है। इसका साहित्यिक मूल्य भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। देवी विरजा की उत्पत्ति के बारे में उल्लिखित पद्य द्रष्टव्य है –

बाह्यारिशीर्षमरविन्दनिभेन पादेनाक्रम्य पाणिकमलेन गृहीतपुच्छा।
अन्येन तत्ककुदगात्रशिखस्य मूलं संगृह्य भूषयसि मेऽहह गार्हपत्यम्।।[1]

विभिन्न छन्द, अलङ्कार एवं प्रसाद गुण से युक्त उक्त ग्रन्थ अपने आपमें अद्वितीय है एवं ओडिशा की शाक्त परम्परा का अनुपम धरोहर है।

१. वही २/१३

नेपालमाहात्म्य

पूर्वार्द्ध

स्कन्द पुराण अन्तर्गत 'हिमवत्खण्ड' में बदरीकेदार से लेकर अरुणाचल तक फैले हुए हिमालयके तीर्थस्थल, देवपीठ आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ एक महापुराण का अन्यतम अंश होने पर भी हिमालय के भूगोल, संस्कृति, इतिहास पुराण के समग्रवर्णन- परक होने से स्वतन्त्र "हिमालय पुराण" के रूप में देखा जा सकता है। वर्तमान नेपाल की राजधानी काठमाण्डौ को मुख्य केन्द्र मानकर इस पुराण में उससे पूर्व तथा पश्चिम के हिमालय के अन्य भागों में रहने वाले नदियों, देवालयों, पीठों शिखरों, कुण्डों, सरोवरों तथा नदीसङ्गमों का भौगोलिक स्थिति से मेल खाने वाला वर्णन सरलतम भाषा में हुआ है। इसी 'हिमवत् खण्ड' से प्राचीन नेपाल राज्य (जो काठमाण्डौ के आसपास के क्षेत्र में ही था) के तीर्थों के वर्णन परक केवल ३० अध्यायों के भाग को निकालकर "नेपाल-माहात्म्य" नाम से वि.सं. १९५७ में प्राभाकरी कम्पनी, वाराणसी कैन्ट के द्वारा तारायन्त्रालय में मुद्रित कराकर प्रकाशित किया गया। इस कम्पनी ने समग्र हिमवत्खण्ड को प्रकाशित करने की इच्छा भी रखी थी, पर सम्भवतः यह ग्रन्थ प्रथमतः नेपाल के महान् मनीषी स्व. योगी नरहरि नाथ जी के प्रयास से नेपाल से ही नेपाली अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ, इस कम्पनी से प्रकाशित नहीं हो सका। कहा जाता है कि 'हिमवत्खण्ड' की हस्तलिपि मिथिला में भी थी। मिथिला के विद्वान् काशिकराजकीयसंस्कृत पाठशाला, वाराणसी के ज्योतिषाध्यापक पं. मुरलीधर शर्मा झा ने इस 'नेपालमाहात्म्य' ग्रन्थ का संशोधन किया है। मालूम पड़ता है कि 'हिमवत्खण्ड' की एक हस्तलिखित प्रति मिथिला से इन्हें मिली, जिसमें से अति उपयोगी मानकर कुछ उस हिमवत्खण्ड के अंश को अलग कर 'नेपाल माहात्म्य' नाम से अपने संशोधन में छपाया। जो भी हो यह 'नेपाल माहात्म्य' नाम का ग्रन्थ नेपाल की प्राचीन सीमा के भीतर के तीर्थों देवालयों आदि के सोपाख्यान वर्णन में ही सीमित हैं। हमने इस लेख के उत्तर भाग में वर्तमान नेपाल की सीमा को समेटते हुए नेपाल के तीर्थों का वर्णन किया है। यहां स्कन्द पुराण के 'हिमवत्खण्ड' से उद्धृत इस 'नेपाल माहात्म्य' में वर्णित विषयों को संक्षेप में अध्यायगत रूप में प्रस्तुत करते हैं-

प्रथम अध्याय

परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजय' के यज्ञान्त में वहां आए ऋषियों ने पुराणकथा करना प्रारम्भ किया। वहां वक्ता बने मार्कण्डेय तथा पृच्छक जैमिनि, श्रोता और बहुत से ऋषि। जैमिनि ने प्रश्न किया कि नेपाल का माहात्म्य कैसा है? उत्तर में मार्कण्डेय ने कहा कि नेपाल महान् धर्मपीठ तथा सर्वोत्तम तीर्थक्षेत्र है, इसका प्राचीन नाम 'श्लेष्मान्तक वन' है।

यह स्थान विविध वृक्षों और लताओं से अत्यन्त ही सुशोभित है, कभी यहां शिव-पार्वती हिरण-हरिणी का रूप लेकर विचरण करने लगे। उनके कैलास तथा काशी को छोड़कर यहां रहने के कारण सभी देव बहुत चिन्तित हुए और ढूँढते हुए इसी स्थान पर पहुँचे, तो वहां एक श्रृङ्ग एवं तीन नेत्र वाले सुन्दर मृगरूपी शिव तथा मृगी रूपा पार्वती को देखकर ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र ने स्तुति की, पर वे अपने इस रूप को नहीं छोड़े तो इन तीनों देवों ने आपस में परामर्श कर शिव के श्रृंङ्ग में पकड़ा तो वह श्रृङ्ग शिर से निकलकर इन लोगों के हाथ में चार टुकड़े में टूटकर आया। स्वयं शिव तो वहां से उछलकर वाग्मती के दक्षिण किनारे पर आए और पशुपति के रूप में रहने लगे। देवों के कैलाश या काशी चलने की प्रार्थना करने पर शिव ने स्वीकार नहीं किया और कहा कि मैं स्वयं जगत् का पति होते हुए यहाँ पशु (हिरण) के रूप में आया। अतः हम पशुपति हैं। साथ ही शिव के आज्ञानुसार इसी क्षेत्र के विभिन्न स्थान में अपने-अपने हाथ में मिले श्रृङ्ग के खण्ड को स्थापित किया तो वे तत्तत्शिवलिङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इधर पार्वती जी भी वहीं शिव के साथ रहने की इच्छा से गुह्येश्वरी का रूप धारण कर रहने लगीं। पहले सती का गुह्य यहीं पर गिरने के कारण यह शक्तिपीठ इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। जहाँ शिव-पार्वती ने मृगरूप धारण कर विहार किया उस स्थान को आज भी 'मृगस्थली' ही कहा जाता है। शिवजी एवं पार्वती के इन रूपों से यहां रहने पर अन्य देव-देवी भी यहां विविध रूप से रहने लगे। जयवागीश्वरी, राजराजेश्वरी, वज्रयोगिनी आदि देवियां भी इस पाशुपत क्षेत्र में रहकर भक्तों को अभीष्ट फल देने लगीं।

द्वितीय अध्याय

दोलागिरि में चम्पक वृक्ष से गरुडवाहन विष्णु का प्रादुर्भाव, सुदर्शन मुनि की तपस्या, उनकी कपिला धेनु का चम्पक वृक्ष वासी विष्णु के द्वारा स्वयं प्रतिदिन दुग्धपान करना, क्रुद्ध मुनि के द्वारा चुपके से गौ के पीछे चलकर दुग्धपान करने वाले को पता लगाकर उनका शिर काटना, शिरोहीन पुरुष के चार बाहों में शंखचक्रादि देख मुनि का विह्वल होना, पूर्वजन्म के वृत्तान्त को बताकर उन्हें विष्णु के द्वारा आश्वस्त करना, शुक्राचार्य के शिष्य सुमति की हत्या से क्षुब्ध शुक्राचार्य द्वारा सुमति के वंशज द्वारा विष्णु के शिर कटने का शाप, सुमति के वंशज सुदर्शन के द्वारा विष्णु के शिरच्छेद के कारण का प्रतिपादन, सुदर्शन के द्वारा विष्णु का अर्चक बनना, दोलागिरि के नारायण का महत्त्व वर्णन, गरुड की स्थिति के कारण उस पर्वत पर सर्पों में विष का अभाव।

तृतीय अध्याय

दोलागिरि के पास अग्नि कोण में नारदाज्ञा से वाल्मीकि जी के द्वारा रामायण काव्य का निर्माण, वहाँ ही वीरभद्रा का अन्य नदी के साथ सङ्गम में वाल्मीकि के द्वारा तमसा

नदी का आवाहन, इस स्थान के वाग्विभूतिप्रदत्व का समर्थन, राम के द्वारा सागर में सेतु-बन्धन के समय हनुमान के द्वारा हिमालय श्रृङ्ग का उत्पाटन कर आते समय इसी दोलागिरि समीपस्थ वीरभद्रासङ्गम तीर्थ में विश्राम, यहीं उनके द्वारा हनुमदीश्वर शिव की स्थापना, इसी की हनुमत्तीर्थ के रूप में ख्याति, इसके समीप वाल्मीकि के द्वारा वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान, पहाड़ पर वाल्मीकीश्वर शिव की स्थापना, उसके दर्शन से वाग्विभूति प्राप्त होने का वर्णन, दानवाधिप चण्ड का प्रताप, सुमति नामक चण्डमित्र ब्राह्मण का वध देवों द्वारा प्रार्थित विष्णु के द्वारा होने से विष्णु को सुमति के गुरु शुक्राचार्य का शापप्रदान, विष्णु का युद्ध से विरत होने से चण्ड का उपद्रव बढ़ना, देवों को महान् कष्ट, उनका ब्रह्मा के पास जाना, दोलागिरि के महान् चम्पक वृक्ष में रहने वाली नारायणी देवी की उपासना से चण्ड के मृत्यु होने की बात बताकर ब्रह्मा के द्वारा देवों का श्लेष्मान्तक वन नेपाल क्षेत्र में भेजना, उन लोगों द्वारा देवी स्तुति, देवी दर्शन, उधर नारद के द्वारा देवों द्वारा होने वाले देवीपूजन को बताना, सदलबल चण्डासुर का दोलगिरि के देवीपाठ के पास आना, भयभीत देवों का विविध-पक्षिरूप धारण कर आकाश मार्ग से उड़ जाना, देवी के अधिष्ठान चम्पक वृक्ष में देवी का भी छिप जाना, चण्ड के द्वारा उस वृक्ष के टुकड़े टुकड़े करना, उसी वृक्ष से सुन्दरी देवी का प्रादुर्भाव, चण्ड की आज्ञा से दैत्यों का देवी को पकड़ने आना, दैत्यों के साथ घोर युद्ध, अन्त में देवी द्वारा चण्ड का वध, शिवभक्त दानव के शरीर से तेजोमय चण्डेश्वर शिवलिङ्ग की उत्पत्ति, वही चण्डेश्वर शिव तथा रक्त चन्दन के वृक्ष पर चण्डेश्वरी देवी की स्थिति आज भी उस पेड़ का वन के भीतर रहना, उस पर प्रहार करने पर मानवशब्द का सुनाई देना, वैशाख पूर्णमासी में चण्डेश्वरी यात्रा की महिमा।

पञ्चम अध्याय

चण्ड के वध के बाद अपने रूप से देवोंका आना, तथा भगवती की पूजा एवं स्व-स्वभाव से विविध शिवलिङ्गों की स्थापना, काशी के वेश्यागामी मद्यपायी ब्राह्मणपुत्र मलय का सुखे लकड़ी के दण्डे को लेकर काशी के पण्डितों के इस वचन से कि यदि इस डण्डे में अङ्कुर लग गये तो तुम अपने पाप से मुक्त हो जाओगे, घूमते हुए नेपाल के दोलागिरि नारायण क्षेत्र के पास आकर नहाने से सुखे दण्डे में अङ्कुर आ गए, मलय प्रसन्न होकर वही बड़े नियम के साथ शिवजी की तपस्या करने लगा, जमीन से मलय के सामने एक महान शिवलिङ्ग निकला, उससे आवाज निकला कि तुम पापों से पूर्णतः मुक्त हो गए, फिर भक्त काशी वासी मलय की प्रार्थना पर भगवान् ने दोलेश्वर नाम से वहीं सर्वदा रहने का वचन दिया।

षष्ठ अध्याय

(सूर्य विनायक-वर्णन) दोलेश्वर के पश्चिम में स्थित प्रकाण्ड वन में ऋषियों के

आश्रम में गुणनिधि ब्राह्मण के पुत्र प्राणनाथ की अकस्मात् जमीन में गिरकर मृत्यु उसके माता-पिता के साथ सभी ऋषियों तथा उनकी पत्नियों का पशुपति भगवान् के द्वार पर शव के साथ प्रायोपवेश (अनशन-धरना) करना, भगवान् के द्वारा इसके कारण के रूप में गणेश की पूजा के अभाव को मानकर उसी वन में जाकर सूर्योदय तक रात भर गणेश की आराधना करने को कहना, तदनुसार सबके द्वारा श्री गणेश की स्तुति करना, बालक के शव को आगे रख कर स्तुति करते हुए रात बिताना, शिवाज्ञानुसार सूर्य के प्रथम किरण के साथ वहीं सूर्यविनायक के रूप में गणेश जी का आविर्भाव, बालक प्राणनाथ के प्राणों का पुनरागमन, मङ्गलचतुर्थी को सूर्यविनायक दर्शन का महत्व, मङ्गलेश्वर की स्थापना।

सप्तम अध्याय

वाग्मती तट के एक गाँव में धर्मदत्त नामक वणिक की उत्पत्ति, विष्णु भक्त इस बनिया के द्वारा मकर संक्रान्ति के समय घूम-घूम कर तिल को बेचना, मङ्गलेश्वर के पास पहुँचने पर तिल के राशि के बीच से भगवान विष्णु की उत्पत्ति, उसी विष्णु मूर्ति में धर्मदत्त वणिक् का विलय होना, तिलमाधव के दर्शन का महत्त्व, अनन्तलिङ्ग, स्वर्णश्रृङ्गेश्वर, कीलेश्वर, आदि तीर्थों का वर्णन, वाग्वती के उद्भव स्थान में हिरण्यकशिपु के वध के बाद नरसिंह भगवान का आना, वहीं आकर भक्त प्रह्लाद का तप करना, इससे प्रसन्न शिव के अट्टहास से वाग्वती नदी की उत्पत्ति, शिव-प्रह्लाद-संवाद, इस मृगेन्द्र शिखर को शिव के द्वारा वैष्णव क्षेत्र की घोषणा, चम्पकारण्य के पराजित राजा सूर्यकेतु का नारदवचन से मृगेन्द्र शिखर आकर रहना।

अष्टम अध्याय

महेन्द्र दमन दैत्य की कथा, शिवभक्ति से महेन्द्र दमन दैत्य का त्रैलोक्य विजयी होना, नेपाल के चन्दनगिरि के उत्तर में 'सुप्रभा' नाम की राजधानी बनाना, इसी दैत्यराज की बहन प्रभावती के द्वारा कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न को पति पाने के लिए गुह्येश्वरी देवी की आराधना, देवी का 'तथास्तु' का वरदान, दैत्यराज के द्वारा वाग्वती नदी को रोकना, पूरे नेपाल क्षेत्र का महान सरोवर के रूप में बदल जाना, मृगेन्द्रशिखरवासी राजा चन्द्रकेतु की सुन्दरी पुत्री पर महेन्द्रदमन की नजर, नारद का श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न के साथ सूर्यकेतुपुत्री चन्द्रावती के विवाह का प्रयास, नारद और श्रीकृष्ण का महेन्द्रदमन दैत्य के विषय में विचार-विमर्श, महेन्द्र दमन की स्वर्ग पर चढ़ाई।

नवम अध्याय

प्रभावती-प्रद्युम्न विवाह, इन्द्र का रण छोड़कर भगना, ब्रह्मा के वचन से स्वर्ग को

छोड़कर महेन्द्र दमन का सुप्रभा नगरी में ही आना, इस दैत्य के वध के लिए नारदजी द्वारा प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण से मांगना, गरुड वाहन प्रद्युम्न का नारद के साथ नेपाल के चन्दनगिरि के शिखर में स्थित महेन्द्र दमन दैत्य की विरहातुर बहन के पास आना, नारद के समझाने पर भाई का वध करने आए प्रद्युम्न के साथ विवाह को तैयार होना, दोनों का गान्धर्व विवाह।

दशम अध्याय

महेन्द्रदमनासुरवध एवं वाग्वतीद्वारउद्घाटन, प्रद्युम्न के द्वारा शङ्खासुरवध, भीषण युद्ध के बाद महेन्द्रदमन का भी वध, बीच में ही श्रीकृष्ण का आगमन, तथा दैत्य के द्वारा रुकी हुई वाग्वती का उद्घाटन, कच्छपाकार विराध के द्वारा पहाड़ों को उठाना, कृष्ण के द्वारा दोलाद्रि एवं स्वर्णश्रृङ्ग नामक दोनों पहाड़ों पर क्रमशः कीलेश्वर तथा स्वर्णेश्वर की स्थापना तथा दोनों लिङ्गों का माहात्म्य।

एकादश अध्याय

स्थापित शिवलिङ्ग के प्रभाव से कच्छपासुर की पर्वत उठाने में असमर्थता, प्रद्युम्न के द्वारा उसका वध, सूर्यकेतु को नारद द्वारा दैत्यवध की घटना को सुनाना, उनकी प्रसन्नता, राजा सूर्य केतु के द्वारा शेषशायी भगवान विष्णु के जलस्थ मूर्ति की स्थापना, दैत्यनगरी में जाकर राजा के द्वारा भगवान की स्तुति, उनकी प्रार्थनाऐ श्रीकृष्ण का पशुपति आदि देवों के दर्शन, पशुपति के दक्षिणद्वार पर जप करते हुए श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आसपास के सभी क्षेत्रों के ब्राह्मणों, ऋषियों का समागम, भगवान के द्वारा उन लोगों का दानमानादि द्वारा सत्कार, महातपस्वी नेमिमुनि का एक साथ हरि एवं हर का दर्शन प्राप्त होने से उठकर सबके बीच निम्न घोषणा-

"यो हरिं हररूपेण हरं च हरिरूपिणम्
यः पश्यति स एव स्यात् वैष्णव शैव एव च"

पशुपति के द्वारा नेमि मुनि को इस क्षेत्र का पालक घोषित करना, इसी से इस क्षेत्र का नाम 'नेपाल' पड़ना। इस क्षेत्र के तीर्थों तथा उनके सेवन के फल का वर्णन, सूर्यकेतु-पुत्री चन्द्रावती के साथ प्रद्युम्न का भव्य रूप से विवाह।

द्वादश अध्याय

श्रीकृष्ण के द्वारा गोपालेश्वर की स्थापना, प्रद्युम्न के द्वारा शिवऔर नारायण की संयुक्त मूर्ति की स्थापना, सूर्यकेतु को श्रीकृष्ण के द्वारा अपने राज्य में पुनः बैठाना।

त्रयोदश अध्याय

बृहस्पति के आचार्यत्व में चन्द्रमा का राजसूय यज्ञ, यज्ञान्त में बृहस्पतिपत्नी तारा को चन्द्रमा के द्वारा पत्नी बनाना, और सबके डरने पर भी शङ्कर के द्वारा चन्द्रमा के इस कर्म का विरोध, दोनों का घोर युद्ध, ब्रह्मा के द्वारा शङ्कर को समझाकर चन्द्रमा की प्राण-रक्षा।

चतुर्दश अध्याय

बहुत विवाद के बाद तारा के गर्भ से उत्पन्न बुध चन्द्रमा को देना, शिव के गुरुपत्नीहरण करने के अपराध पर चन्द्र को क्षयरोगी बनने का शापदान, शुद्धि के लिए चन्द्रमा का सर्वतीर्थभ्रमण, अन्त में अगस्त्य वचन से उनके साथ चन्द्रमा का पाशुपत क्षेत्र में आगमन, घोर तपस्या, पशुपति का प्रत्यक्ष होना, चन्द्रमा की पापमुक्ति, शिव द्वारा पाशुपत क्षेत्र के तीर्थों का वर्णन।

पञ्चदश अध्याय

शिव के द्वारा प्राचीन नेपाल की सीमा का उल्लेख, शिवलिङ्ग स्थापना के लिए चन्द्रमा को शिव का निर्देश, चन्द्र का शङ्खमूल में स्थित अगस्त्य के साथ मिलने के लिए जाना, चन्द्र की शाप मुक्ति से दोनों में उल्लास, अगस्त्य के द्वारा कुम्भेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना।

षोडश अध्याय

शिवाज्ञानुसार अगस्त्यादि मुनियों के साथ चन्द्रमा का नेपाल के तीर्थों में भ्रमण, श्याम ऋषि के प्रश्न पर अगस्त द्वारा रावण के वृतान्त का वर्णन, मेरुपृष्ठ पर तपस्यारत राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या के साथ ब्रह्मर्षि पुलस्त्य का विवाह, विश्रवा का जन्म, भरद्वाज कन्या में तपस्वी विश्रवा के द्वारा कुबेर का जन्म, उग्र तपस्या से प्रसन्न ब्रह्मा से उनको लोकपाल होने का वरदान तथा पुष्पक विमान की प्राप्ति, पिता विश्रवा के कहने पर कुबेर द्वारा लङ्कापुरी में निवास करना, पुलस्त्यवंशी राक्षसों के विषय में श्याम का प्रश्न, प्रजापति पुलस्त्य के द्वारा जलरक्षा के लिए बनाए गए जीवों में यक्ष एवं राक्षस की उत्पत्ति, प्रथमतः प्रहेति और हेति नाम के दो राक्षस का होना, हेति को कालभगिनी 'भया' पत्नी से 'विद्युत्केश' नामक पुत्र की प्राप्ति, विद्युत्केश को सन्ध्यापुत्री 'शालकटङ्कटा' से 'सुकेश' नाम के पुत्र की प्राप्ति, पितृ-मातृपरित्यक्त सुकेश को शिवपार्वती द्वारा अनुग्रह, पार्वती की मांग पर भगवान शिव के द्वारा उसको आकाशचारी नगर की प्राप्ति।

अष्टादश अध्याय

सुकेश राक्षस को ग्रामणी नामक गन्धर्व के द्वारा अपनी कन्या वेदवती का प्रदान, इन दोनों से महाप्रतापी माल्यवान्, सुमालि और मालि नाम के राक्षसों की उत्पत्ति, तीनों के द्वारा घोर तपस्या, प्रसन्न ब्रह्मा द्वारा अजेय, शत्रुहन्ता, प्रभावशाली तथा चीरंजीवी बनने का वरदान, इन तीनों के द्वारा सुर, असुर एवं नरों में भयानक उपद्रव का प्रारम्भ, प्रार्थित विश्वकर्मा द्वारा इन तीनों के लिए लङ्का में निवास करने की अनुमति, गरुड एवं वायु की प्रतिस्पर्धा में गरुड द्वारा उत्थापित सुमेरु के स्वर्णमय शिखर को वायु द्वारा समुद्र मध्य में गिराने से लङ्का की उत्पत्ति का वर्णन, वहां इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा के द्वारा अमरावती से समानता करने वाली लङ्का नगरी का निर्माण, इन्द्र का लङ्का में निवास, ब्रह्मा के द्वारा इस नगरी की वास्तुशास्त्रीय स्थिति ठीक न होने से राक्षसों के लिए छोड़ देने और यहाँ न रहने के अनुराध पर इन्द्र के द्वारा लङ्का को छोड़ना।

ऊनविंश अध्याय

इधर सुकेश के पुत्र माल्यवान्, सुमालि और मालि के द्वारा नर्मदा नामिका गन्धर्वी की माल्यवती, केतुमती और वसुदा नाम की कन्याओं से क्रमशः विवाह करना, इन तीनों से महान राक्षसवंश का विस्तार।

विंश अध्याय

इन सुकेश पुत्रों के उपद्रवों से सबका भयभीत होना, देवों का शङ्कर के परामर्श से विष्णु के शरण में जाना, इधर तीनों राक्षसों द्वारा स्वर्ग पर आक्रमण, विष्णु का देवों के सहयोगार्थ आना।

एकविंश अध्याय

घनघोर युद्ध में नारायण के चक्र से मालि का वध।

द्वाविंश अध्याय

युद्ध में विष्णु भगवान् से परास्त माल्यवान एवं सुमालि का युद्ध छोड़ना, बाद में लङ्का को छोड़कर पाताल चला जाना।

त्रयोविंश अध्याय

सुमालि का अपनी पुत्री नैकसी को विश्रवा ऋषि के आश्रम के पास छोड़ना, दोनों के संपर्क से, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण एवं शूर्पणखा का जन्म, अपने भाइयों के साथ रावण का तपस्यार्थ नेपाल के गोकर्ण क्षेत्र में आना।

चर्तुविंश अध्याय

तीनों की घोर तपस्या से प्रसन्न ब्रह्माजी का रावण के पास आना, अमरत्वप्राप्ति के लिए रावण की प्रार्थना, ब्रह्मा के द्वारा एवमस्तु कहना, विभीषण के द्वारा बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी धर्मत्याग न करने की बुद्धि को मांगना, कुम्भकर्ण के द्वारा छः माह में एक दिन भोजन करने का वरदान प्राप्त करना।

पञ्चविंश अध्याय

सुमाली आदि राक्षसों के कहने पर रावण का लङ्का छोड़ने के लिए कुबेर के पास दूतभेजना, 'विश्रवा' से परामर्श के बाद राक्षसों के लिए कुबेर का लङ्का-त्याग।

षड्विंश अध्याय

चन्द्रमा के द्वारा स्थापित सोमलिङ्ग का महत्व।

सप्तविंश अध्याय

कैलास से शापित शिवपार्षद भृङ्गी का मथुरा में गुणाढ्य ब्राह्मण के रूप में जन्म, सर्वविद्या ग्रहण, आजीविका अन्वेषण क्रम में उज्जयिनी को जाना, मदन राजा के राजपण्डित वैयाकरण सर्ववर्मा से मिलना, सर्ववर्मा के सिफारिस पर राजा के द्वारा गुणाढ्य को द्वारपण्डित के रूप में रखना, विदुषी पत्नी से पराजित राजा का व्याकरणाध्ययन के लिए सर्ववर्मा एवं गुणाढ्य के पास आना।

अष्टाविंश अध्याय

गुणाढ्य के द्वारा बारह वर्ष में व्याकरण ज्ञान कराने की बात कहने पर सर्ववमी के द्वारा दो वर्ष में व्याकरण का पूरा ज्ञान कराने की प्रतिज्ञा करना, राजा को दो वर्षों में पूर्ण व्याकरण ज्ञान होने पर गुणाढ्य के द्वारा सारे अधीत शास्त्रों का तथा संस्कृत भाषा के त्याग की प्रतिज्ञा, रात भर में कुमार से कलाप व्याकरण प्राप्त कर सर्व वर्मा के द्वारा राजा को दो ही वर्षों में व्याकरण में पारंगत बनाना, प्रतिज्ञानुसार सर्ववर्मा को सर्वस्व अर्पण कर संस्कृत भाषा को त्यागकर गुणाढ्य का वन में प्रवेश, वन में कठोर तपःसाधना, उनके पास पुलस्त्य का आना, पुलस्त्य के द्वारा पिशाच भाषा द्वारा नौ लाख गाथा बनाने को एवं नेपाल में जाकर शिवलिङ्ग की स्थापना करने को कहना, गुणाढ्य के द्वारा नौ लाख गाथा लिखना, गाथा श्रवण से आहार त्याग करने पर वन के मृगों मु दुर्बलता का उदय, मृगों के मांस के शुष्क होने के कारण को पता लगाने हेतु व्याधाओं को राजा के द्वारा जङ्गल भेजना, गुणाढ्य की गाथाओं को सुनने से मुग्ध हो मृगों के साथ ही व्याधों का भी वन में ही रह

जाना, सर्ववर्मा के साथ उनको ढूँढने राजा का वन में पहुँचना, नौ लाख पिशाच भाषा की गाथाओं का संस्कृत में अनुवाद करने के लिए गुणाढ्य का राजा से अनुरोध, शिवलिङ्ग स्थापनार्थ गुणाढ्य का नेपाल प्रस्थान।

ऊनविंश अध्याय

पूर्व जन्म के शिव पार्षद भृङ्गी गुणाढ्य का नेपाल में शिवलिङ्ग की स्थापना कर कैलास में जाकर अपने वास्तविक रूप को प्राप्त होना, नेपाल क्षेत्र की प्रदक्षिणा की विधि का विस्तृत वर्णन।

त्रिंश अध्याय

गुणाढ्य के द्वारा शिवलिङ्ग स्थापना महोत्सव में सभी नेपालवासियों का आह्वान तथा सबका समागम, ब्राह्मणों की सलाह से गुणाढ्य के द्वारा समुचित सत्कार, कैलाश से गुणाढ्य को लेने विमान का आना, रुद्रगण के द्वारा शिवतत्त्व एवं शैवधर्म के विषय व्याख्यान, भृङ्गी का भृङ्ग रूप लेकर शिव पार्वती के एकान्त में हुई रसमयी वार्ता के श्रवण से शाप प्राप्त होने की वार्ता का कथन, नेपाल में शिवलिङ्ग स्थापना से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति तथा शिवप्राप्ति की सुनिश्चितता का प्रतिपादन, गुणाढ्य का शिवप्रेषित विमान द्वारा शिवलोक प्रस्थान, भृङ्गीश्वर शिवलिङ्ग के दर्शन का महत्त्व, सूतजी के द्वारा नेपाल-माहात्म्य को गुह्य एवं अत्यन्त दुर्लभ बताना।

इस प्रकार 'हिमवत्खण्ड' के इन तीस अध्यायों से नेपाल की राजधानी काठमाण्डू के आसपास स्थित सभी तीर्थों तथा देवस्थलों का वर्णन हुआ है।

उत्तरार्द्ध

यत्र साक्षात् पशुपतिः पशूनां पाशभेदकः।
मुक्तिनाथश्च जीवानां मुक्तिदो गिरिगः परः ।। १ ।।

कोका-कौशीतकीतीर्थे यत्रोद्भूतं परात्परम्।
ब्रह्म वराहरूपेण भूम्युद्धरणकामुकम्।। २ ।।

यत्र भूमिर्महालक्ष्मीजननीत्वमुपागता।
सीतावतारसम्बन्धात् तीर्थं तत् केन मीयताम् ?।। ३ ।।

अधरीकृतविश्वसर्वशैलो शिखरेणोच्चतमेन यत्र भाति।
तरलीकृतसर्वभूमिभागो हिमसद्मेति सुनामको गिरिर्हि।। ४ ।।

गण्डक्याः पुत्रतां यातो यत्र नारायणः स्वयम्।
शालग्रामशिलामूर्तावर्चारूपेण राजते।। ५ ।।

सौलभ्यं व्यञ्जयन् स्वामी दुःखाराध्योऽपि देहिभिः।
सुखाराध्यतमो जातः कृपया परया प्रभुः।। ६ ।।

नेपालैकजनिश्रीमच्छालग्रामशिलामृते।
नान्यार्चा फलदा लोके सैष शास्त्रीयनिर्णयः।। ७ ।।

प्रापितो बुद्धतां येन विष्णुः सर्वेश्वरः परः।
धर्मप्रमादभङ्गाय तीर्थं नैपालकं हि तत्।। ८ ।।

यत्तीर्थक्लिन्नपाषाणरूपं नारायणं विना।
न मूर्त्तिपूजासाफल्यं तन्नेपालं सुतीर्थकम्।। ९ ।।

विष्णुगण्ड-शिवजटोभ्दूते हैमे सरिद्वरे।
यत्रैक्यमापतुर्नारायणीरूपत्वमेत्य तत्।। १० ।।

यत्र वैदेशिकं तन्त्रं नायाच्छासनकर्मसु।
स्वतन्त्रहिन्दुसद्देशरत्नं प्रत्नं नयान्वितम्।। ११ ।।

शैव-वैष्णवबौद्धादिसुहृत्कं सज्जनान्वयम्।
नैपालं परमं तीर्थं हिन्दूनां मानवर्द्धनम्।। १२ ।।

तस्मान्नेपालमाहात्म्यमत्युत्कृष्टं महोन्नतम्।
ब्रवीमि सर्वशास्त्रार्थसारमाकृष्य शक्तितः।। १३ ।।

वेद-भारत-सत्तन्त्र-रामायण-पुराणतः।
प्रसिद्धं सिद्धगीतञ्च समाहृत्योच्यतेऽधुना ।।१४।।

उपर्युल्लिखित श्लोकों द्वारा नेपाल राज्य में अवस्थित पुराणादि-शास्त्रप्रोक्त अति महत्त्वपूर्ण विषयों की संक्षिप्त सूची प्रस्तुत है।

भगवान पशुपतिनाथ : काठमाण्डू

भगवान् पशुपतिनाथ शिव, राजधानी काठमाण्डू में वाग्मती नदी के दक्षिण तट पर पञ्चमुख मूर्ति तथा स्वयम्भू लिङ्ग के रूप में अवस्थित रहते हुए इस देश के रक्षक राष्ट्रदेव के रूप में स्वीकारे जाते रहे हैं। यहाँ के पीठासीन महाराजाधिराज आज तक अपने राजकीय वक्तव्य के अन्त में, "श्रीपशुपतिनाथले हामी सबैको रक्षा गरुन्" (श्री पशुपतिनाथ हम सबकी रक्षा करें) बोला करते हैं। धार्मिक कृत्यों के संकल्प आदि में उस क्षेत्र में "पाशुपतक्षेत्रे" ऐसा उच्चारण किया जाता है। यद्यपि इस देश की राजधानी काठमाण्डू

मन्दिरों के नगर के रूप में विख्यात है, यहाँ की वास्तु, काष्ठ तथा मूर्तिकला विश्व प्रसिद्ध रही है, तथापि श्री पशुपतिनाथ की गरिमा सर्वाधिक है।

भगवान् मुक्तिनाथ : मुक्तिनाथधाम, मुस्ताङ

दूसरी अति महत्त्वपूर्ण मूर्ति श्री मुक्तिनाथ विष्णु की है। यह स्थान नेपाल के मध्य भाग के उत्तरी छोर पर हिमालय की घाटी पर है। राजधानी से प्रायः १७५ किलोमीटर दूर स्थित इस क्षेत्र में ही अर्चाविग्रह श्री शालग्राम शिला मिलती है। यद्यपि पौराणिक आख्यानों तथा शङ्कराचार्यादि सुप्रसिद्ध आचार्यों के "यथा शालग्रामे हरिः" (शाङ्कर भाष्य, प्रतीकोपासनाप्रसङ्ग) इत्यादि कथनों से शालग्राम शिला मुख्यतया विष्णुमूर्ति ही है, तथापि पुराणादि शास्त्रों में स्थान २ पर सभी वैदिक प्रधान देवों की पूजा इस शिला में करने के उल्लेख मिलने एवं नेपाल की प्राचीन परम्परा में शालग्राम शिला में ही पञ्चदेवोपासना करने की प्रथा होने से शालग्राम श्री शिवादिदेवों के भी अर्चाविग्रह माने गए हैं। हमने स्वयं शालग्राम शिला में स्वयंसिद्ध श्री गणेश भगवान् की शुण्डादण्डादि सहित मूर्ति का दर्शन किया है, जो कि किसी विशिष्ट भक्त को गण्डकी नदी के जल के भीतर मिली। इसी प्रकार इन नदी में एक मध्ययुगीन मुकुन्दसेन राजा को एक श्री-भू-नीला सहित एक अत्यन्त सुन्दर विष्णुमूर्ति मिली थी, जिसे उसी नदी के तट पर स्थित रुरुक्षेत्र रिडी धाम, पाल्पा जिले में स्थापित किया गया, जो नेपाल में प्रसिद्ध देवस्थल है।

इस शालग्रामी, चक्रनदी, गण्डकी आदि नामों से प्रसिद्ध नदी के तट पर तिब्बतसीमा से लगे दामोदर कुण्ड (जो कृष्ण की दामोदर लीला से संबद्ध है) से लेकर बिहार राज्य के चम्पारन जिले की सीमा में स्थित नेपाल के प्रसिद्ध त्रिवेणी क्षेत्र तक (जो पश्चिम नेपाल के चितवन तथा नवलपरासी जिले में है) पन्द्रह तीर्थ वराहादि पुराणों में विस्तृत वर्णनों के साथ उल्लिखित हैं।

शास्त्रों में लिखा गया है कि सभी देवों की प्रतिष्ठा में श्री शालग्राम मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए। अतएव जहाँ जो हिन्दूधर्मावलम्बी रहते हैं वे सभी इस गण्डकी नदीस्थ शालग्राममूर्ति की अपेक्षा रखते हैं। दक्षिण भारत में कतिपय परिवार में कन्या के साथ वर को शालग्राम भगवान भी दान में अनिवार्य रूप से देने पड़ते हैं। प्रतिवर्ष भारत के विभिन्न छोरों तथा विश्व के विविध स्थानों से मुक्तिनाथ, दामोदरकुण्ड आदि तीर्थों में अवगाहन करने के लिए धार्मिक जनता बड़ी श्रद्धा के साथ नेपाल यात्रा करती हैं। गण्डकी के तट पर शालग्राम प्रभु की प्राप्ति के लिए भटकती दीखती है। जब उसे एक भी श्रीमूर्ति मिली तो वह अपनी तीर्थयात्रा ही नहीं जीवन यात्रा भी सफल समझती है। इस मुक्तिनाथ क्षेत्र के और व्यापक प्रचार एवं यात्रियों के सेवा सत्कार का कार्य वै. वा. त्रिदण्डी स्वामी श्रीधराचार्य

जी की प्रेरणा से उनके शिष्य स्वामी कमलनयनाचार्य जी के द्वारा बृहद्रूप में हो रहा है। वे इस क्षेत्र में यात्रा करने वालों को अपेक्षित सभी सुविधा दिलाने के लिए कृतसंकल्प हैं। सरकारी एवं गैरसरकारी दोनों तरफ से आपके इस कार्य की सराहना की गई है, साथ ही आप को प्रयाग के विगत महाकुम्भ मेले में (ई. २००१) हिन्दू धर्माचार्यों के द्वारा मुक्तिनाथ पीठाधीश्वर घोषित भी किया गया है।

भगवान् श्रीमन्नारायण का वराह-अवतार : वराह क्षेत्र सुनसरी

नेपाल के माहात्म्य का तीसरा कारण है कोका-कौशीतकीसङ्गम में वराह भगवान् का अवतार। नेपाल के अति अशिक्षित आदिवासी गिरिशिखरनिवासी जनता भी वराह की पूजा करती है। वराह एवं स्कन्द आदि पुराणों में नेपाल की कोशी नदी के तट पर श्रीवराह अवतार का होना विस्तार से वर्णित है। यह स्थल पूर्व नेपाल के प्रसिद्ध नगर "विराटनगर" के समीप थोड़ा उत्तर भाग में है। भगवान् का पूर्ण अवतार है यह वराहरूप, असली सूकरखेत यही है, क्योंकि वराह पुराण में हिमालय के तट पर ही इस अवतार का होना बताया गया है। यह कोशी नाम से जानी जाने वाली कौशीतकी या कौशिकी नदी हिमालय के शिखरों से आने वाली अरुण, तमोर आदि सात धाराओं के मिलने से बनी है। इसीलिये इसे सप्तकोशी कहते हैं। वराह पुराणानुसार इस क्षेत्र में ऊपर हिमालय पर्वत से नीचे तराई तक के विस्तृत भूभाग में विविध तीर्थों का वर्णन है। यहाँ कार्तिक-पूर्णिमा को मेला लगता है।

भगवती महालक्ष्मी सीताजी : जनकपुरधाम, धनुषा

नेपाल की भूमि में हुई अति महत्त्वपूर्ण घटनाओं में सीताजी का अवतार भी एक है। ब्रह्मज्ञानी राजर्षि जनक तथा उनके आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्य एवं उनकी विदुषी पत्नी मैत्रेयी की शास्त्रज्ञता के कारण भी नेपाल का जनकपुर क्षेत्र विख्यात है। प्राचीन मिथिला राज्य आज नेपाल तथा विहार राज्य में विभक्त हैं। भिन्न राज्य-व्यवस्था के रहते हुए भी भाषा और संस्कृति एक ही हैं। मिथिला-माहात्म्य के अन्दर भी जनकपुर की भूमि ही विशेष रूप से वर्णित होगी। **विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मिथिला माहात्म्य विशेषतः वर्णित है।**

देवतात्मा हिमालय और विश्व का सर्वोच्च शिखर सगरमाथा

नेपाल के पूरे उत्तर भाग में विशाल उच्च हिमालय खड़ा है। इसीलिए इस क्षेत्र का प्राचीन नाम "हिमवत्खण्ड" भी है। महाकवि कालीदास ने इसे अपने काव्य 'कुमारसंभव' में 'देवतात्मा' (**अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, कुमार सम्भव १/१**) माना है। यह कवि का उद्घोष वास्तव में वैदिक संस्कृति की मूल मान्यता का ही उद्घोष है। कालीदास भारतवर्षीय महान् संस्कृति की अन्तरात्मा को पहचानते थे। आदिकाल से ही प्रत्येक वैदिकधर्मावलम्बी आर्य जन की यह इच्छा आजीवन बनी रहती थी कि हम हिमगिरि की

किसी कन्दरा में एक बार तो अवश्य पहुँच ही जाए। हमारी वैदिक संस्कृति के पल-पल में समग्र उत्तर दिशा के ही प्रति अथाह श्रद्धा उमड़ी है। 'उदीचीं प्रविवेशां गतपूर्वां महिर्षिभिः' (श्रीमद्भागवत १।१५।४४) इत्यादि वचन उत्तर के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। समग्र भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय को दृष्टि में रखकर ही यहाँ के लोगों ने उत्तर भाग को सराहा है। वेदमाता गायत्री की अभिव्यक्ति पूर्वोक्त कोशी नदी के तट पर हिमालय की तलहटी में ही कोशी से सम्बन्ध रखने वाले कौशिक (विश्वामित्र) महर्षि के तपोविशुद्ध मानसपटल में हुई थी। गायत्री के द्रष्टा ऋषि वे ही थे। वे कोशी तट पर रहते थे। यह नदी उनकी बड़ी बहन की ही परिवर्तित रूप थी। श्री वाल्मीकि रामायण आदि ग्रन्थों में यह कथा विस्तार से वर्णित है। सन्ध्योपासना के समय सभी द्विजगण इसी सप्तकोशी प्रस्रवणक्षेत्र के हिमालय के उत्तम (र) शिखरों से गायत्री को बुलाकर जप करते हैं फिर उसी देश के लिए उन्हें भेज देते हैं। गायत्री का विसर्जन मन्त्र इस प्रकार है :-

"उत्तरे (मे) शिखरे देवि ! भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्।।"

अर्थात् : "हे गायत्रि ! उपासक ब्रह्मणादि की स्वीकृति से पृथ्वी के पर्वत के शिखरों पर उत्तर दिशा में जाओ।" इस हमारे नित्य व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक संस्कृति के अनुयायीगण उत्तर दिशा, उसमें भी हिमालय के उच्च शिखरों का विशेष आदर करते आ रहे हैं। हमारे समस्त शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा उत्तम संस्कृतियों का उत्स हिमालय ही है। कश्मीर से अरुणाचल तक स्पष्टतः फैले हुए इस महान् हिमालय का मध्य एवं सर्वाधिक उन्नत भाग नेपाल में ही है। उस विश्व के सभी पर्वत शिखरों से उच्च हिमालय शिखर को नेपाली भाषा 'सगरमाथा' (स्वर्गमस्तक) कहती है तो अंग्रेज लोग 'एवरेस्ट' कहते हैं। इस सर्वोच्च पर्वत शिखर के अवस्थिति ने भी नेपाल के राष्ट्रीय महत्त्व में चार चांद लगा दिए। सम्पूर्ण नेपाल का अधिकांश भाग हिमालय की ऊँची या नीची विविध श्रृंखलाओं में ही अवस्थित है। शेष दक्षिणी तराई भाग भी उसी हिमालय की सुरम्य छायामय गोद में होने से तथा हिमगिरिप्रसूत पुनीत अजस्र जलधारा से निरन्तर अभिषिञ्चित होने से भी हिमालय तुल्य ही पवित्र है। नेपाल के माहात्म्य का पांचवा कारण यही हिमालय का इस देश के साथ का तादात्म्य है।

अहिंसा और सत्य की प्रतिमूर्ति भगवान बुद्ध का अवतारःलुम्बिनी रूपन्देही

छठवाँ नेपाल के माहात्म्य का कारण है वर्तमान नेपाल के एक स्थल लुम्बिनी में भगवान् का बुद्धावतार। शान्ति के देवदूत माने जाने वाले भगवान् बुद्ध ने आज से लगभग २६ सौ वर्ष पूर्व इसी देश में अवतार लिया था। यह वही भूमि है जिस ने अपने सर्वसम्पन्न

राजकुमार को भी परिपूर्ण वैराग्य का मूल मन्त्र दिया था। बुद्धावतार के कारण नेपाल को अन्तर्राष्ट्रिय विशेष महत्त्व मिला है। विश्व भर के बौद्ध तथा सभी शान्ति तथा अहिंसा के पक्षधर लोग भगवान् बुद्ध के अविर्भाव के कारण से नेपाल को पवित्र तीर्थ के रूप में मानते हैं। 'नेपाल' के नामकरण के सम्बन्ध में भी यहाँ बुद्ध के प्राकट्य का प्रभाव है, ऐसा भी एक पक्ष है। भोट क्षेत्र की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ 'पवित्र' और 'पाल' शब्द का अर्थ 'स्थान' है। आज भी भोट के धर्मगुरु लामा लोग बुद्धावतार के कारण इस देश को पवित्र स्थल मानते हैं। इन्हीं लोगों के व्यवहार से इस देश का नाम 'नेपाल' पड़ा, यह पक्ष भी कुछ इतिहासकारों का रहा है।

समन्वयात्मक उदात्त हिन्दुता की अखण्ड सापेक्षता

नेपाल के माहात्म्य का सप्तम बिन्दु यह है कि यहाँ आज तक कभी भी धार्मिक झगड़े नहीं हुए। यद्यपि यह देश बहुत प्राचीन समय से ही बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक ही रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही यहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त आदि वैदिक संप्रदायों के साथ विविध शाखाओं में विभक्त बौद्ध धर्म भी फला-फूला, पर इन सबमें अपेक्षित पारस्परिक सहयोग तथा सद्भाव हमेशा बना आ रहा हैं। इन धर्मों में यद्यपि दर्शन तथा भगवत्प्राप्ति के साधन पृथक-पृथक् ही हैं तथापि नेपाल में किसी को किसी से वैमनस्य नहीं रहा। यह सर्व-धर्म-समन्वय की उच्च परम्परा विश्वसमुदाय के लिए भी अनुकरणीय है। यह नेपाली इतिहास का गौरवमय पक्ष है।

हमारे वैदिक समाज में सभी देवों के प्रति पर्याप्त आदरभाव रहने पर भी लोगों में अधिकांश के आराध्य देव भगवान् विष्णु या शिव ही रहते हैं। जब कभी लोग अपने आराध्य की विशेषता बढ़ाने के लिए दूसरे प्रसिद्ध जनप्रिय देव के ऊपर आक्षेप करने लगते हैं, तक समाज में साम्प्रदायिक विवाद छिड़ने लगता है, इसको समय में ही रोकने का काम शासक या विद्वान् ही कर सकते थे। यहाँ के इन दोनों समूहों ने पर्याप्त ध्यान देकर इस धार्मिक समस्या से इस देश को बचाया है।

नेपाल के अभिलेखयुक्त प्रामाणिक इतिहास के प्रथम राजा मानदेव (प्रथम) स्वयं वैष्णव थे। वे ई. सन् ४६४ से ५०५ तक नेपाल की राजगद्दी में शासक थे। उन्होंने प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर चांगुनारायण की विशिष्ट पूजा, वहाँ गरुड़ध्वज की स्थापना, वामन मूर्ति की स्थापना आदि कार्यों में वैष्णव धर्म की सेवा की तो साथ ही "धतुरी-द्रंग" नामक स्थल में शिवजी की स्थापना भी करायी थी। फिर इन्होंने ही 'श्रीमानविहार' नामक बौद्ध विहार की भी स्थापना की। बाद में सभी शासकों ने इसकी का अनुसरण कर सर्वधर्मसमन्वय की भावना को राष्ट्रीय धरोहर के रूप में आगे बढ़ाया। यहाँ के मुख्य शासक यद्यपि वैदिक

हिन्दू धर्मानुयायी रहते आए हैं, पर इन सभी ने समयानुसार बौद्ध धर्म के विकास के अवसरों को कभी अवरुद्ध नहीं किया।

कालक्रम में आये हुए शैव-वैष्णव विवाद के प्रशमनार्थ यहाँ के सर्वधर्मसमन्वयी राष्ट्रीय विद्वानों के परामर्श से हरि और हर की संयुक्त मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा की परम्परा चली। राजा गणदेव (वि. सं. ६२४) के पशुपति त्यागल टोल अभिलेख में हरिहर मूर्ति की स्थापना के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए "इस प्रकार के समन्वयात्मक कार्यों से शक्ति वृद्धि होने की बात कही गई है।" नेपाल राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित राजा अंशुवर्मा (६०५-६२० ई.) के अभिलेख में परस्पर में हाथ मिलाए हुए शङ्कर एवं विष्णु की मूर्ति का उल्लेख है।

वि.सं. ४८७ में 'स्वामीवार्त्त' से संस्थापित शङ्कर-नारायण मूर्ति भी साम्प्रदायिक समभाव जगाने के लिए किया गया एक स्तुत्य प्रयास है। आधे में नारायण तथा आधे में शिवमूर्ति की कल्पना कर निर्मित इस संयुक्त मूर्तिवाले देवस्थल के अभिलेख में व्यक्त किया गया है कि 'शैव-वैष्णव धर्म में पनपते हुए विभेद को दूर करने के लिए इस मूर्ति को स्थापित किया गया, भिन्न-भिन्न देवों में श्रद्धा होने पर भी परस्पर विरोधभाव नहीं रखना चाहिए' इत्यादि। इन सब प्रकरणों से यह सिद्ध होता है कि यहाँ के शासक एवं बुद्धिजीवी-वर्ग सर्वधर्मसमन्वय में निरन्तर सावधानी बरतता था।

शैव-वैष्णव की एकता की अपेक्षा बौद्ध-वैदिक की एकता विशेष महत्त्व की है। इस क्षेत्र में भी नेपाल में सचेत रूप में सफल प्रयास होते आ रहे हैं। राजा अंशुवर्मा व्यक्तिगत रूप से शिवभक्त वैदिक थे, पर वे 'राज विहार' नाम से 'बौद्ध विहार' बनाने में भी पीछे नहीं पड़े। विक्रम की सातवीं शती के नेपाली राजा नरेन्द्रदेव शिवभक्त होने से 'पशुपति भट्टारकपादानुगृहीत' इस उपाधि से भूषित थे, साथ ही वे अपने कवच में बुद्धमूर्ति अङ्कित कराकर पहनते थे। मानों यहाँ वैदिक एवं बौद्ध धर्म को एक में मिलाकर कोई दूसरा नया सम्प्रदाय खड़ा हो गया हो। आज भी वैदिकरीति से चलने वाले प्रसिद्ध पशुपति मन्दिर की मूर्ति में प्रतिवर्ष एक बार बुद्धमुकुट लगाकर छाया-दर्शन करने की परम्परा है। इसका मुख्य प्रयोजन धार्मिक विभेद के बढ़ने से हो सकने वाली कटुता को रोकना ही है। नेपाल में बौद्धचैत्य में शिव व विष्णु की मूर्ति एवं शिव आदि मन्दिर में बुद्धमूर्ति रखने की परम्परा जहाँ-तहां मिलती है। इससे विभिन्न धर्मसंप्रदाय के बीच सामञ्जस्य दृढ हुआ है, सभी धर्म-परम्पराएँ भी विधिवत् चल भी रही हैं। पशुपति मन्दिर के दक्षिणी दिवाल में बुद्ध की मूर्ति एवं उसी मन्दिर के सामने स्थित नृत्येश्वर शिव मन्दिर के दक्षिण तरफ भी बुद्ध मूर्ति आदि का निःसङ्कोच रहना यहां की धर्मसहिष्णुता का उज्ज्वल प्रमाण है। यहाँ के भूमिदान आदि के अभिलेखपत्र के साक्षी देवों में विष्णु, ब्रह्मा, शिव आदि के साथ बुद्ध भी रखे जाते रहे हैं।

नेपाल हिन्दुओं की पुण्यतीर्थभूमि एवं विकास भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। **'आर्यावर्त्तं पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः'** इत्यादि स्मृतिवाक्यानुसार यह आर्यावर्त के भीतर है। अतएव यहाँ प्राचीन काल से ही वैदिक धर्म बद्धमूल रहते हुए अन्य सम्प्रदाय की रक्षा भी कर सका। **दोनों की बराबरी प्रतिस्पर्धा तथा विवाद पैदा करती है। एक ही की मजबूती तथा विवेकशीलता रहे तो विवाद भी नहीं रहता, सभी की रक्षा एवं उन्नति भी संभव होती है। इन्हीं स्थितियों में वैदिक तथा बौद्ध धर्म की विविध धाराएं यहाँ फल-फूल सकीं। यह धार्मिक, सामाजिक समन्वय की स्थिति ही नेपाल की राष्ट्रीय संप्रभुता तथा स्वतन्त्रता की कुंजी रही है।** इसे नेपाल के अद्भुत माहात्म्य के रूप में लिया जाना चाहिए।

अपराधीन राष्ट्रीय संप्रभुता का अखण्ड उज्ज्वल वर्चस्व

नेपाल माहात्म्य के अष्टम तथा चरमबिन्दु के रूप में हम प्रायः पूरे भारत वर्ष में समय-समय में भयङ्कर बाढ़ के रूप में होते रहने वाले वैदेशिक-वैधार्मिक आक्रमण तथा शासन के अभाव को लेते हैं। यहाँ के इतिहास में कभी भी विधर्मी शासकों का शासन नहीं हो सका। ई.सं. १३५० में ही केवल एक बार बंगाल के नवाब शमसुद्दीन इलियास का लूटपाट इस देश में हुआ, जिस समय यह राज्य आपसी सत्तासंघर्ष में लिप्त रहने के कारण सैनिक संगठन की दृष्टि से खोखला हो गया था। इस आतंकपूर्ण धर्मान्धताप्रेरित युद्ध से नेपाली कला की बड़ी क्षति हुई। यह तो लूटपाट था। मन्दिर आदि का निर्मम ध्वंस कर उसके जाने के बाद यहाँ सुगौलीसन्धि के समय का अंग्रेजों का आक्रमण हुआ, जो नेपाल के कुछ भूभाग छिनने के बाद सन्धिपत्र के तहत शान्त हुआ। इस प्रकार नेपाल अद्यावधि अपरतन्त्र हिन्दू राज्य के रूप में अवस्थित रह सका यह भी नेपाल की एक महिमा ही है। हिन्दू क्षत्रिय राजा द्वारा शासित हिन्दू राष्ट्र के रूप में आज तक अपनी पारम्परिक विशेषता की रक्षा में सक्षम यह देश आज भी पूर्वोक्त विशेषताओं के कारण विश्व भर के हिन्दुओं तथा शान्तिप्रिय बौद्धों एवं अन्य लोगों की आस्था का केन्द्र बना हुआ है।

इस प्रकार पूर्व लिखित श्लोकों से सूत्रित ऐतिहासिक, धार्मिक, भौगोलिक आदि महत्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत हुआ।

आगे पुराणादि शास्त्रीय प्रमाणों सहित नेपाल की प्राचीनता तथा नेपाल के प्रमुख तीर्थों का वर्णन है।

नेपाल की प्राचीनता

यद्यपि नेपाल राज्य का क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास ईसा की पाँचवीं शती से ही मिलने की बात इतिहास लेखक मानते हैं, तथापि विविध स्रोतों से हम नेपाल राज्य की स्थिति उससे पर्याप्त पहले तक देखते हैं।

प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रन्थों में नेपाल का उल्लेख अत्यधिक रहने तथा उन ग्रन्थों की प्राचीनता प्रामाणिक होने से हम नेपाल देश की प्राचीनता भी प्रामाणिक मानते हैं। महाभारत की प्राचीनता ई.पू. ११०० वर्षों से कम किसी ने भी नहीं मानीं। डा. जी.वी. वर्तक तो इसे ५५६१ वर्ष ई.पू. का (नवभारत टाइम्स, दि. १४.९.१९८१) मानते हैं। इस ग्रन्थ में कर्ण के द्वारा नेपाल देश के कतिपय राजाओं पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है (**नेपाल विषये ये च राजानस्तानवाजयत् - म.भा. वन प. २५४ अ. ७**) साथ ही युधिष्ठिर के तीर्थयात्राप्रसङ्ग में और दूसरे प्रसङ्गों में भी स्थान-स्थान पर महाभारत में नेपाल में विद्यमान, तीर्थक्षेत्रों, देवपीठों का उल्लेख आया है। मुख्यतया भगवान व्यास ने महाभारत के अपने पात्रों को नेपाल के हिमशिखरों, सप्तगण्डकीक्षेत्र, सप्तकोशीक्षेत्र, जनकपुरक्षेत्र तथा आज के नेपाल की राजधानी परिसर के तीर्थों में तो पहुँचाया ही है। नेपाल के जनकपुर, शालग्राम, वराह तथा पशुपति से महाभारत पूर्ण परिचित है। नेपाल के पर्वतीय क्षेत्रों में भी जहाँ आदिवासियों का ही बाहुल्य है, पाण्डव या तद्विशेषवाची शब्द तथा महाभारत कालीन अन्य पात्रों के नाम से स्थानों के नाम हैं। नेपाल के इतिहास में विक्रम की तीसरी शती से यहाँ लिच्छवीवंश का शासन रहा। उसके पहले का नेपाल का ऐतिहासिक शासक वंश किरातवंश रहा है। लगता है कि महाभारत रचना के समय नेपाल में किसी भाग में किरातों का शासन था। क्योंकि यहाँ हिमालय को किला बनाकर रहने वाले किरात को युद्ध में अत्यन्त तेज बताया गया है। (हिमवददुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः- म.भा. भीष्म पर्व ३० अ.)। नेपाल का एक अन्य नाम 'किरात देश' भी माना गया है। प्रायः ई.पू. ८०० वर्ष में रचित 'अथर्वपरिशिष्ट' में सीमावर्ती देशों के साथ नेपाल का उल्लेख है (**नेपालं कामरूपं च विदेहोदुम्बरं तथा। तथावन्त्यः केकयश्च.....अथर्व प.कू.वि.**) इसी के आधार पर कुछ इतिहासकार तब नेपाल पूर्व में कामरूप (आसाम) तक, दक्षिणपूर्व में विदेह (आधुनिक बिहार की उत्तर सीमा) तक, पश्चिम में उदुम्बर (पश्चिम पञ्जाब) तक तथा दक्षिण में अवन्ती (मध्य भारत) तक था, ऐसी स्थापना करते हैं। यदि 'किरात देश' यह नेपाल का ही एक पूर्वनाम है तो, मनुस्मृतिकार भी नेपाल से परिचित थे, ऐसा कहा जा सकता है। क्योंकि इस ग्रन्थ में किरात जाति के विषय में उल्लेख है। मनुस्मृति अवश्य ही कौटिल्य के अर्थशास्त्र से काफी पुरानी है। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा शक्तिसङ्गम तन्त्र आदि संस्कृत ग्रन्थों में भी नेपाल का वर्णन प्राप्त होने से नेपाल देश की प्राचीनता तथा यहां के तीर्थ स्थानों एवं वस्तुओं की विशेषता प्रकट होती है।

आयुर्वेद के एवं साधारण कोशों में नेपाल में विशेषतः प्राप्त होने वाले खनिज या अन्य वस्तुओं के नामकरण सन्दर्भ में नेपाल का उल्लेख हुआ है (**कैरातकोऽन्यो नेपालः-**

सोऽर्धतिक्तो ज्वरान्तकः - भावप्रकाशपू.ख., नैपाली कुनटी गोला (मैनशिल खनिज के लिए) अमरकोश का. २ व. १०, नैपाली नवमाली मनःशिलासु बहुषु - विश्वकोश)। ये ग्रन्थ पर्याप्त प्राचीन हैं। ऊन के लिए तो यह देश अत्यन्त प्रसिद्ध है। किस देश में कौन सी चीज विशेष प्रसिद्ध है, इस सन्दर्भ में 'तथा नैपालकम्बलम्' ऐसा लेख प्राचीन ग्रन्थों में आता है। चीन का पट्टाञ्चल या पट्टांशुक तथा नेपाल का ऊनी कम्बल संस्कृत वाङ्मय के प्रसिद्ध वस्तु हैं।

कश्मीर के कल्हणकविरचित राजतरङ्गिणी में कश्मीर नरेश जयापीड का नेपाल आकर राजा अरमुडि वरदेव के साथ युद्ध करना वर्णित है **(राजा अरमुडि वरदेव विक्रम की नवीं शती के मध्य के थे)** नैषध महाकाव्य के (१२वीं शती)... में दमयन्ती के स्वयम्बर में, अयोध्या, कामरूप, काञ्ची, मिथिला आदि देशों के भूपालों के साथ नेपालभूपाल की उपस्थिति भी सुन्दरता के साथ बतायी गई है।

समग्र नेपाल ही तीर्थस्थल है

नेपाल देवतात्मा नगाधिराज हिमालय के गोद के मध्यभाग में स्थित हिन्दू देश है। हिमालय वैदिक धर्म संस्कृति का उत्स रहा है, जिस प्रकार हिमप्रसूता नदियों द्वारा हमारे मैदानी भाग को हराभरा बनाने में हिमगिरि की अहंभूमिका है उसी प्रकार सांस्कृतिक रसधारा बहाकर सम्पूर्ण भारतवर्ष को तथा इसके बाहर भी रहने वाले भारतवर्षीय जनमानस को सरस बनाने का काम भी इसी का रहा है। इसी हिमालय के एक शिखर कैलास में हिमालयपुत्री पार्वती के साथ रहने वाले भगवान शिव ही सारी विद्याओं के आदिगुरु हैं। आप ही अपनी अर्द्धाङ्गिनी पर्वतपुत्री भगवती को ही प्रथम शिष्या बनाकर हिमगिरि के उस उच्च्व शिखर से सर्वविध ज्ञानगंगा का प्रवाह इस नीचे के समतल भाग के लिए बहाते रहते हैं। अतः वैदिक धर्मानुयायिओं के लिए यह समग्र पर्वत ही आदरणीयतम तीर्थ रहा है। नेपाल इसी पर्वत के मध्य भाग में स्थित एक मनोहर प्राकृतिक दृश्यवाला प्राचीन देश है। यह हिमालयमय होने से समग्र रूप से ही तीर्थरूप है। फिर भी जिन-जिन स्थानों का शास्त्रों में विशेष पुण्यजनक स्थल के रूप में पृथक् वर्णन है, उनका यहाँ संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

श्रीमुक्तिनाथ धाम

नेपाल के तीर्थों में इस तीर्थ की सर्वाधिक महत्ता है। दामोदर कुण्डनामक हिमशिखर से, जो तिब्बतसीमा से जुड़ा है, बहने वाली कृष्णा (काली) नदी जहाँ नीचे आकर गण्डकी नदी से मिलती है, उस स्थान को कागवेणी (काग-बिनी) कहते हैं। का-ग वेणी का अर्थ हुआ काली (कृष्णा) एवं गण्डकी (जो मुक्तिनाथ से गिरती है) का सङ्गम। यह कागवेणी

तीर्थ भी पितरों के पिण्डतर्पण के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है, इसे पुराण में **हंसतीर्थ** कहा है। इससे १०-१२ किलोमीटर चढ़ाई पर भगवान मुक्तिनाथ (श्री और लक्ष्मी सहित नारायण) हिमालय के शिखरों की तलहटी में अति प्राचीन काल से विराजमान हैं। गण्डकी नदी का उद्‌गम स्थल यही है। पूर्वोक्त कृष्णा एवं इस गण्डकी नदी के दोनों तटों के समस्त पर्वतीय भाग में जहाँ तहाँ शालग्राम मूर्तियां मिलती हैं। इसी भाग से नीचे उतरने के कारण इस कृष्णा-गण्डकी के पूरे नेपाल के तटीय क्षेत्र शालग्राममय हो गए हैं। जब यह नदी देवघाट में (चितवन जिले के नारायणगढ़ से ६ कि.मी. उत्तर) मत्स्यश्रृंङ्ग (माछापुच्छ्रे) हिमालय के आसपास से निकलने वाली अन्य छ गण्डकी नदियों की समवेत धारा से मिलती है तब इन सभी नदियों का संयुक्त नाम 'नारायणी' पड़ता है। यही नदी देवघाट से पश्चिमाभिमुख बहने पर नेपाल के त्रिवेणीधाम होती हुई भारतीय बिहार राज्य के चम्पारन जिले में प्रविष्ट होकर आगे हाजीपुर के पास गङ्गाजी में मिलती हुई हरिहर क्षेत्र का निर्माण करती है।

इसी नेपाल के प्रसिद्ध त्रिवेणी क्षेत्र में ही वाल्मीकि महर्षि का आश्रम रहा, जहां रामपरित्यक्ता सीता ने युगलपुत्र पैदा किए। यही श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का अवतार हुआ। इस पञ्चमवेद स्वरूप आदिकाव्य के प्रथम अध्येता श्री राम के कुश और लव नामक दो पुत्र ही हुए। यहीं से श्रीराम के यज्ञ में निमन्त्रित श्री वाल्मीकिजी महाराज के साथ अयोध्या आकर वीणा के झङ्कार के साथ उन दोनों ने श्री रामायण का सुमधुर गायन कर श्रीराम सहित यज्ञ में आए विश्वभर के मानव को आश्चर्य चकित किया था। इस प्रकार श्रीरामायण तथा उनके प्रथम प्रवक्ता कुश-लव की अवतारभूमि होने से भी नेपाल का धार्मिक माहात्म्य अत्यन्त ऊँचा हुआ है। आज नेपाल के त्रिवेणी में आविर्भूत इसी वाल्मीकि-उक्त रामायण एवं इसी के अन्य नव-विकसित रूपों के ही आधार पर वैदिक सनातन हिन्दूधर्म का अधिकांश प्रचार-प्रसार होता आ रहा है। यह क्षेत्र महर्षि वाल्मीकि की तपोभूमि थी, इस विषय को प्रमाणित करते हुए अब स्वतन्त्र भारत ने इसी क्षेत्र के समीपस्थ अपने सीमान्त नगर का नाम 'भैंसालोटन' से बदलकर 'वाल्मीकि नगर' रखा। इसी त्रिवेणी क्षेत्र के पूर्व भाग में नारायणी नदी के वाम तट पर सटा सोमेश्वर गिरि है, जहाँ चन्द्रमा ने शिवाराधना की थी (इन सब स्थलों का वर्णन वराहादि पुराणों में है)। यह स्थान नेपाल के चितवन जिले के दक्षिणी भाग 'माडी' नामक क्षेत्र में है। सोमेश्वर के उत्तर की तलहटी में, महेश्वरी (मगै) नदी के समतल में अवतरणस्थल को 'छर्हरे' कहते हैं। यह स्थल बगौडा ग्राम विकास समिति के अन्तर्गत है। यहाँ कभी कृष्णा-गण्डकी का प्रवाह रहा। देवघाट में सप्तगण्डकीसङ्गम के बाद पहले इस नदी की धारा सीधे दक्षिण मुड़कर बहती थी, जो राप्ती नदी से मिलती हुई सोमेश्वर (ठोरी) पहाड़ में जा टकराती थी। इसीलिए यहां विभिन्न प्रकार के शालग्राम मूर्तियां पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। इसे अब 'दक्षिणशालग्राम तीर्थ' कहा जाने लगा है। यहाँ प्रतिवर्ष हरिबोधनी एकादशी के पर्व पर तीन दिनों तक बड़ा

मेला लगता है। वराह पुराण में उल्लेख है कि सोमेश्वरगिरि के पास रावण के बाण से निकली वाणगङ्गा है। आज भी सोमेश्वर के दक्षिण पार्श्व में चम्पारन के तरफ वाणगङ्गा कहलाने वाला एक अद्भुत जलस्रोत है, जो पहाड़ी भूमि में एक ही जगह से भूगर्भ से फूट पड़ा है।

यह नेपाल का त्रिवेणी क्षेत्र नेपाल के चितवन एवं नवलपरासी नामक दो जिलों की सीमा में है। चितवन तरफ वाल्मीकि आश्रम, सोमेश्वर गिरि, दक्षिण मुक्तिनाथ धाम (छर्हरे), पाण्डवों का वासस्थल गोद्दक (पाण्डव नगर), वाणगङ्गा आदि अत्यन्त मनोहर दृश्यवाले प्राचीन तीर्थ हैं तो नवलपरासी वाले भाग में गजग्राह तीर्थ है जहां नारायण भगवान ने हरि रूप धारण कर ग्राह के चंगुल से गज का उद्धार किया और दोनों को सद्गति दी। वराह पुराण में पूर्वजन्म के ब्राह्मणद्वय का परस्पर शाप के कारण गण्डकी तट पर गज-ग्राह के रूप में आने की कथा उल्लिखित है (**ततस्तौ ग्राहमातङ्गवभूतां शापतः पृथक्। गण्डक्यामेव सञ्जातो ग्राहः पूर्वस्मृतिर्द्विजः। त्रिवेणीक्षेत्रमध्ये तु जयोऽभूद् वै महान् गजः**)। इस घटना के प्रमाण स्वरूप आज भी वहाँ नदी तट पर बड़ी बड़ी शिलाओं में हाथी के पांव के स्पष्ट चिन्ह हैं। इस क्षेत्र में स्वामी कमलनयनाचार्य श्री मुक्तिनाथ पीठाधीश द्वारा विविध विकास कार्य किए जा रहे हैं। **"आरभ्य मुक्तिक्षेत्रं तच्क्षेत्रं द्वादशयोजनम्, शालग्रामस्वरूपेण मया यत्र स्थितं स्वयम्"** यह वराह पुराण में वराह भगवान् का वचन है। इस श्लोक से भगवान् ने मुक्तिनाथ से त्रिवेणी धाम तक की लम्बाई ४८ कोश बताई है। यह सब शालग्राम क्षेत्र है। इस पूरे क्षेत्र को हरिक्षेत्र कहा गया है। इस द्वादश योजन (४८ कोश) लम्बे शालग्राम क्षेत्र के अन्तर्गत कृष्णा गण्डकी के तट पर १५ तीर्थों का होना भी वराह पुराण में विस्तार से वर्णित है। कृष्णा गण्डकी में विभिन्न नदियों के सङ्गम से बिल्वप्रभादि तीर्थ बने हैं (**गुह्यानि तत्र वसुधे तीर्थानि दश पञ्च च। नाद्यापि किञ्चिज्जानन्ति मुच्यन्ते यैरिह स्थिताः। तत्र बिल्वप्रभं नामः....।**) क्रमशः गण्डकी तट के १५ तीर्थों के नाम निम्नलिखित हैं - १. बिल्वप्रभ, २. चक्रस्वामी, ३. विष्णुपद, ४. कालीह्रद, ५. शंखप्रभ, ६. गदाकुण्ड, ७. अग्निप्रभ, ८. सर्वायुध, ९. देवप्रभ, १०. विद्याधर, ११. पुण्यनदी, १२. गन्धर्व, १३. देवह्रद, १४. सर्वतीर्थकदम्ब (सिद्धाश्रम), १५. शम्भु-तपोवन। इन सभी तीर्थों का विवेचन यहां सम्भव नहीं। वराह भगवान् ने शालग्रामक्षेत्र वर्णन के अन्त में जो चार मुख्य गण्डकी तट के तीर्थ बताए हैं (**मुक्तिक्षेत्रं प्रथमतो रुरुखण्डं ततः परम्। संभेदो देवनद्योश्च त्रिवेणी च ततः परम्। क्षेत्रप्रमाणं विज्ञेयं गण्डकीसङ्गतः परम्-वराह पुराण**) केवल इन चारों का ही संक्षिप्त वर्णन करेंगे। आरम्भ का मुक्तिक्षेत्र एवं अन्त का त्रिवेणीक्षेत्र सामान्यतया वर्णित हुआ, अब अवशिष्ट दो तीर्थों का वर्णन कर इस तीर्थ का वर्णन पूरा करेंगे।

रुरुक्षेत्र (रिडी)

दामोदर हिमालय (मुस्ताङ) से प्रारम्भ होने वाली यह कृष्णा-गण्डकी इस रुरु नामक स्थान तक दक्षिण-पश्चिमबहती है। यहां से पूर्ववाहिनी होकर देवघाट में त्रिशूलगङ्गा से मिलने के बाद पुनः पश्चिम वाहिनी होती हुई भारत के बिहार राज्य के चम्पारन मण्डल में प्रवेश करती है। इसके उद्गमस्थान दामोदरशिखर से भारत में प्रवेश होने तक इस नदी की लम्बाई लगभग ३३८ किमी. है। इस नदी में प्रविष्ट होने वाले प्रमुखतम अन्य छः नदियों को भी प्राचीनकाल से ही गण्डकी ही कहा जाता है। मध्य नेपाल के काठमाण्डू के समीपस्थ रसुवाजिला स्थित गोसाईकुण्ड नामक हिमशिखर से पश्चिम में धवलगिरि हिमशिखर तक में पड़ने वाले विविध हिमशिखरों से निकलने वाली सभी सात जलधाराओं को गण्डकी नाम से जाना जाता है। उनके पुराणोक्त एवं लोकप्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं :

त्रिशूली (धर्मधारा), बुढी गण्डकी (यशोधारा), मर्स्याङ्दी (विश्वधारा), मादी (रत्नधारा), सेती, शुक्ला (सितप्रभा), काली-गण्डकी (कृष्णप्रभा), तादी (सुवर्णाभा) इस सप्तगण्डकी-नारायणी नदी में प्रविष्ट होने वाली सभी शाखा-प्रशाखा रूप में रहने वाली नदियों की संख्या ली जाय तो पन्द्रह सौ पहुंचती है।

इस गण्डकी तटस्थ रुरु तीर्थ का वर्णन वराह पुराण में विस्तृत रूप से किया गया है। वह इस प्रकार है : प्राचीन समय में विष्णुभक्त देवदत्त ऋषि ने बड़ी निष्ठा से लम्बी तपस्या की। इन्द्र ने इनके तपोभङ्ग के लिए प्रम्लोचा नामिका अप्सरा को भेजा। ऋषि ने मोहित होकर उसके साथ बहुत दिन बिताए। एक दिन जब उनका मोहभङ्ग हुआ तब तत्काल उस गर्भवती को वहीं छोड़कर तप करने अन्यत्र चल पड़े। उत्पन्न कन्या को छोड़कर वह अप्सरा भी इन्द्र के पास जाती बनी। रुरु (मृग) ओं ने उस बालिका को अपना दूध पिलाकर बढ़ाया। इसी कारण उस कन्या को लोग रुरु ही कहने लगे। वहाँ मातृ-पितृहीन कन्या बड़ी होकर भी विवाह की इच्छा न कर भगवान् की तपस्या में लीन रही। भगवान नारायण ने प्रकट होकर वर देना चाहा तो उसने इसी स्थान में अर्चाविग्रह के रूप में रहने के लिए भगवान् से प्रार्थना की स्वयं भी तीर्थ रूप में यहीं रहने की इच्छा की, प्रभु ने स्वीकार किया। तब से यह विष्णुतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रुरुक्षेत्र हुआ। उस सुन्दरी कन्या ने एकान्त स्थल में अपने प्रभु की प्राप्ति के लिए हृषीक-इन्द्रियों का दमन कर तीव्र तपस्या की थी। प्रभु ने अपनी भक्ता को इन्द्रियविजय की पूर्ण शक्ति प्रदान की थी, इसीलिए यहाँ भगवान का नाम भी 'हृषीकेश' पड़ा। बाद में विक्रमीय सोलहवीं शदी के प्रसिद्ध राजा मुकुन्दसेन प्रथम ने लुप्त मूर्ति को उपलब्ध कर पूजापाठ, भोगराग की उत्तम व्यवस्था की। यहां मकर संक्रांति पर तीन दिनों का तथा हरिबोधनी एकादशी में बड़े-बड़े मेले लगते हैं। उत्तम ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक भगवान की पूजा होती हैं यहां विशेष अवसर पर पिण्ड-तर्पण के साथ दूर-दूर से काशी की ही तरह अस्थिविसर्जन करने के लिए लोग

आते हैं। यह स्थान बुटवल से ऊपर पाल्पा जिले के पूर्वी अन्तिम छोर पर रुरु और गण्डकी नदियों के सुन्दर संगम में है।

सप्तगण्डकी सङ्गम-देवघाट धाम

गण्डकी तट के प्रसिद्धतम चार स्थानों में यह स्थान तृतीय है। इसे हरिहर क्षेत्र या हरि क्षेत्र, देवाट, सर्वतीर्थकदम्ब, सिद्धाश्रम, शम्भुतपोवन इत्यादि नामों से पुराणों में वर्णित किया गया है। यह बुटवल से काठमाण्डू जाने के मार्ग में अवस्थित नारायणगढ़ से उत्तर ६ किलोमीटर पर स्थित है। बुढ़ी गण्डकी, मर्स्याङ्दी, मादी, सेती और दरौदी नाम से विख्यात पांच गण्डकियों के साथ पूर्व से त्रिशूली आती हैं। उत्तर से कृष्णा-गण्डकी आती हैं। देवघाट के सुन्दर स्थान पर इन दो देवनदियों का सङ्गम अत्यन्त मनोहर तथा पवित्र बनता है। वराह पुराण में उल्लिखित है :

नेपाले यच्छिवस्थानं समस्तसुरवल्लभम्। तेभ्यस्तेभ्यश्च स्थानेभ्यस्तीर्थेभ्यश्च विशेषतः। महादेवजटाजूटान्नीलकण्ठात् शिवालयात्। श्वेतगङ्गेति या प्रोक्ता तया सम्भूय सादरम्। नाना नद्यः समायाता दृश्यादृश्यतया स्थिताः। गण्डक्या कृष्णया चैव या कृष्णस्य तनूद्भवा। तया संभेदमापन्ना या सा शिवतनूद्भवा। त्रिशूलगङ्गेत्याख्याता सापि तत्र महानदी। एवं नदीसमुद्भेदः सर्वतीर्थकदम्बकम्। मम क्षेत्रे समाख्यातं पुण्यं परम-पावनम्। वसुधे त्वं विजानीहि देवानामपि दुर्लभम्।

इन प्रसङ्गों में शुक्ल गङ्गा, त्रिशूल गङ्गा आदि नदियों का कृष्णा गण्डकी के साथ सङ्गम वर्णित है। त्रिशूल गङ्गा एवं कृष्णा गण्डकी के सङ्गम को प्रयाग के समान माना गया है - वही आगे लिखा गया है कि - **गङ्गायमुनयोर्यद्वत् सङ्गमो मर्त्यदुर्लभः। तथैवायं देवनद्योः सङ्गमः समुदाहृतः।** इस देवघाट धाम को शालग्राम क्षेत्र कहा गया है और यहां भगवान विष्णु के साथ शिवजी का रहना भी वर्णित है, "**अहमस्मिन् महाक्षेत्रे धरे पूर्वमुखः स्थितः। शालग्रामे महाक्षेत्रे भूमे भागवतप्रियः। शिवो मे दक्षिणे स्थाने तिष्ठन् वै विगतज्वरः। लोकानां प्रवरः श्रेष्ठः सर्वलोकवरो हरः।**

इस तरह देवघाट धाम की महिमा संक्षेप में प्रस्तुत हुई। इस तीर्थ के विकास में राजा मुकुन्देदेव प्रथम (१६वीं शती) की तथा वर्तमान समय में दिवंगत महापुरुषत्रय श्री गलेश्वर बाबाजी तथा नेपालराष्ट्रसन्त स्वामी परमानन्द सरस्वती जी एवं श्री डिल्लीराम बाबाजी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। इसके बाद इस नदी के तट पर आने वाले तीर्थ त्रिवेणी धाम, वाल्मीकि आश्रम तथा दक्षिण मुक्तिनाथ धाम आदि हैं। अन्तिम गण्डकीतट का तीर्थ है गङ्गा-गण्डकी-सङ्गम, जो हाजीपुर के निकट भारत के बिहार राज्य में है। इसे हरिहर क्षेत्र कहते हैं। इस सङ्गम के विषय में वराह पुराण में ऐसा उल्लेख है -

एवं सा गण्डकी देवी नदीनामुत्तमा नदी
गङ्गया मिलिता पुण्या भागीरथ्या महाफला
आदौ सा गण्डकी पुण्या भागीरथ्या च संगता
तस्य तीर्थस्य महिमा ज्ञायते न सुरैरपि।

अन्त में इस शालग्राम-गण्डकी के माहात्म्य का उपसंहार करते हुए भगवान वराह कहते हैं -

एतत्ते कथितं देवि शालग्रामस्य सुन्दरि ।।
गण्डक्याश्चैव माहात्म्यं सर्वकल्मषनाशनम् ।।

गण्डकी नदी भगवान हरि के गण्डस्थल से उत्पन्न हुई है। इसीलिए गण्डकी स्नान के समय यह श्लोक बोला जाता है -

"हरिगण्डसमुद्भूते, सुरासुरनमस्कृते,
अघौघशमने, देवि, पापं मे हर गण्डकि"

शालग्राम-मूर्तिमाहात्म्य

'शालग्राम' शिलाएं केवल नेपाली नदी गण्डकी के तट पर या इसी नदी के जल के भीतर ही मिलती हैं। यद्यपि आज नेपाल में इस नदी से काफी दूर भी इन शिलाओं को पाया जाता है तथापि ऐसे सभी स्थानों से यह नदी कभी बहती थी, इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा। भगवती गण्डकी की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने इनके गर्भ में आना स्वीकार किया था। स्कन्द पुराण के हिमवत्सखण्ड में लिखा है कि - **यदि देव प्रसन्नोऽसि देयो मे वाञ्छितो वरः। मम गर्भगतो भूत्वाा विष्णो मत्पुत्रतां व्रज। .... शालग्रामशिलारूपी तव गर्भगतः सदा। स्थास्यामि तव पुत्रत्वे भक्तानुग्रहकारणात्। मत्सान्निध्यान्नदीनां त्वमतिश्रेष्ठा भविष्यसि। एवं तस्मै वरं दत्वा सालङ्कायनकाय, वै। पश्यतस्तस्य वसुधे तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्। मम तद् रोचते स्थानं गिरिकूटशिलोच्चये।** सालङ्कायन मुनि की घोर तपस्या से प्रसन्न होने पर फिर भगवान ने पूरे शालग्राम पर्वत पर अवतार लेकर शिलामूर्ति के रूप में रहने की प्रतिज्ञा भी की। इस प्रकार स्थल और जल के भेद से ये मूर्तियां दो प्रकार की हैं। स्थलमूर्ति से जलमूर्ति की श्रेष्ठता है।

शालग्राम की पूजा के बिना अन्य मूर्तियों की पूजा फलदायिनी नहीं है। जो व्यक्ति शालग्राम जैसे स्वयंव्यक्त मूर्तियों को छोड़कर अन्यविध प्रतिष्ठित मूर्तियों में ईश्वराधना करता है, वह बुद्धिमान नहीं है। शालग्राम में विष्णु भगवान के मत्स्य, कूर्म, आदि शताधिक रूपों का होना स्कन्द, पद्म, वराह आदि पुराणों में विविध प्रकरणों में विस्तार के

साथ वर्णित है। वेदों में भी **'अब्जा ऋतजा अद्रिजा गोजा'** इत्यादि उल्लेख कर पृथ्वी, पर्वत, जल आदि में ईश्वर का स्वयं व्यक्त होना वर्णित है। पाञ्चरात्र आगम में ईश्वर के पांच प्रकार बताए गए हैं। स्वयं नारायण कहते हैं -

मम प्रकारा पञ्चेति प्राहुर्वेदान्तपारगाः।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम्।।
अर्चावतारश्च तथा दयालुः पुरुषाकृतिः।
इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मां रहस्यविदो जनाः।

अर्थात् ईश्वर के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी एवं अर्चा नाम से पांच प्रकार हैं। पर रूप से त्रिपादविभूति महावैकुण्ठ में श्री भू एवं नीला नामक देवियों के साथ परदेवता भगवान् नारायण हैं, आप ही मुक्तोपसृप्य-मुक्त जीवों के द्वारा प्राप्त होने वाले-प्रभु हैं। फिर सृष्टि को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नाम से भगवान् की चार व्यूहमूर्तियाँ प्रकट हुईं। उसी व्यूह अवतार के ही भेद के रूप में केशव आदि २४ मूर्तियों को माना जाता है। विभव रूप में संसार के विविध भाग में धर्मरक्षण तथा दुष्टदलन-रूप कार्य सम्पन्न करने के लिए विविध मत्स्य, कूर्म आदि रूपों में प्रभु का प्राकट्य हुआ है। इन्हीं विभव रूपों को लेकर श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध के अध्याय २६ श्लोक २ में आया है-

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः।।

सत्यगुण के निधि हरि के अवतार असंख्य हैं। जैसे अखण्ड जलस्रोत वाले महान् सरोवर से हजारों नहर निकलते हैं, और वे मूल सरोवर से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं, न इनके निकलने से सरोवर की विशालता को ही हानि पहुँचती है। यही बात नारायण एवं उनकी अनन्त अवतारों के विषय में हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि भगवान के विभव रूप अनन्त हैं। भगवान् का एक रूप अन्तर्यामी भी है। सभी अपने द्वारा सृष्टि किए गए चराचर वस्तुओं के भीतर प्रविष्ट होकर उनका नियमन करने के लिए इस रूप को प्रभु लेते हैं। प्रभु का पाँचवा स्वरूप अर्चावतार कहलाता है। अनन्त जीवों के प्रति दया कर इस रूप को ग्रहण करते हैं। इस अर्चाविग्रह के भी स्वयंव्यक्त, दैव, आर्ष तथा भक्तप्रतिष्ठित आदि भेद होते हैं। शालग्राम नर्मदेश्वर आदि स्वयंव्यक्त अर्चावतार हैं।

शालग्राम में परव्यूहादि पांचों प्रकार का समावेश

यद्यपि शालग्राम अर्चाविग्रह हैं तथापि इनमें सभी रूपों के भेदों तथा उपभेदों ने

अवतार ग्रहण किया है। यद्यपि यह पूर्णतः प्रमाणित है कि शालग्राम शिलाएँ विष्णु के ही विविध रूपों के अवतार हैं, अन्यदेवों के नहीं, तथापि सर्वत्र व्याप्तिशाली भगवान् अन्तर्यामी रूप से सभी देवों में रहने वाली आत्माओं के भीतर भी रहते हैं, उसी विष्णु के अन्तर्यामी रूप के अवतार के रूप में श्री शिव, गणेश, आदि के रूप में भी श्री विष्णु का प्राकट्य शालग्राम शिला में हुआ है। इसीलिये शास्त्रों में शालिग्राम में सभी देवता की पूजा करने की अनुमति दी है, तथा ऐसा शिष्टाचार भी है।

गण्डकी नाम का कारण तथा भगवान् शिव के द्वारा मुक्तिक्षेत्र की घोषणा

वराहादि पुराणों के अनुसार जब भगवान् विष्णु ने नेपाल में हिमालय पर्वत पर कठोर तपस्या की तो उसके प्रभाव से भगवान् के गण्डस्थल (गाल) से बहने वाले पसीनों से एक नदी बनी और वह अद्भुत कलकल दिव्य ध्वनि और तेज को चारों तरफ फैलाने लगी। इस चारों तरफ फैले ध्वनि एवं तेज को पता लगाने के लिए देवों ने प्रयास किए, असफल होकर वे ब्रह्मा के साथ भगवान् शङ्कर के पास जाकर पूछे कि यह ब्रह्माण्डव्यापी दिव्य ध्वनि एवं फैलते हुए अद्भुत तेजःपुञ्ज का मूल क्या है ? श्री शिव ने प्रसन्न होकर ब्रह्मादियों के साथ भगवान् की तपःस्थली की यात्रा की और उनका दर्शन कर तपस्या का कारण जानना चाहा। देवगण सहित उपस्थित शिव को पाकर प्रसन्न हरि ने शिव से कहा कि मैंने सभी जीवों के उद्धारार्थ यह तपस्या की है, और आप सबके समागम से मैं कृतार्थ हुआ। तब हर्ष गद्गद श्री शिव ने सभी के समक्ष कहा कि - हे भगवन् ! आप की तपस्या से यह क्षेत्र मुक्ति देने में समर्थ है, अतः इस क्षेत्र का नाम मुक्तिक्षेत्र होगा, इसके दर्शन से सभी को मुक्ति मिलेगी। आप के तपोजनित पसीनों से गण्ड स्थल से निकली यह नदी 'गण्डकी' नाम से विख्यात रहेगी। इसके गर्भ में स्वयं आपका शिला रूप में अवतार होगा। आपके साथ हम सब देवगण तथा वेद, यज्ञ, तीर्थ आदि भी यहाँ सर्वदा रहा करेंगे। भागीरथी गङ्गा के अलावा अन्य कोई भी नदी इस नदी की बराबरी नहीं कर सकेगी। मुक्तिनाथ रूप में आप सर्वदा यहीं विराजमान रहेंगे। आपकी सन्निधि पाकर यह नदी गण्डकी सभी को मुक्ति प्रदान करती रहेगी। इस प्रकार मुक्तिक्षेत्र की घोषणा कर सभी देवों के साथ श्री शिव आदि के अपने-अपने धाम चले जाने के बाद इस नदी एवं क्षेत्र का महत्त्व बढ़ गया। इस क्षेत्र में यज्ञ, तपस्या, दान, श्राद्ध, इष्टदेवपूजा, हवन, साधुसन्त सेवा आदि सत्कर्म करने से अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जैसे कि वराह पुराण का वचन है -

यज्ञस्तपोऽथवा दानं श्राद्धमिष्टस्य पूजनम्।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तदनन्तफलं भवेत्।।

इस क्षेत्र में भूतभावन शङ्कर जी सभी को मुक्ति दिलाने के लिए तारक मन्त्र जपते हुए निरन्तर निवास करते हैं -

दुर्लभं गण्डकीतीर्थं विष्णुक्षेत्रन्तु दुर्लभम्।
तारकं तत्र विशदं जपामि तु निरन्तरम्।।
अतोऽहं वैष्णवो जातो विष्णुक्षेत्रं यतो गतः। (पद्म पुराण)

इस तीर्थ में हरिचिन्तन तत्पर शम्भु रहते हुए अपने भक्तों को मुक्तिमार्ग का उपदेश करते रहते हैं -

शालग्रामाभिधे क्षेत्रे हरिशीलनतत्परः
यत्र शम्भुः स्थितः साक्षात् महायोगी महेश्वरः
दिशञ्ज्ञानं स्वभक्तानां संसारात् येन मुच्यते।

कृष्णा-गण्डकी एवं अन्य गण्डकियों के सङ्गम स्थल देवघाट में स्नान कर फिर पशुपतिनाथ का दर्शन कर लौटकर अयोध्या जाते हुए हरिहर क्षेत्र (गङ्गागण्डकी सङ्गम, सोनपुर) भी श्रीराम गए-

गण्डकीसङ्गमे स्नात्वा नेपाले जगदीश्वरम्।
दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्वहः।।

(आनन्द रामायण, यात्रा काण्ड)

स्कन्द पुराण अन्तर्गत हिमवत्खण्ड में नेपाल के गण्डकीतीर्थ में अपनी शुद्धिकी कामना से सभी तीर्थों का आना वर्णित है -

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि यानि तीर्थानि भारते।
आत्मनः शुद्धिमिच्छन्ति सदा गच्छन्ति पर्वसु।।

इसी ग्रन्थ में इस गण्डकी नदी के जल का दर्शन, पान तथा स्नान से सौ-सौ जन्म के पाप से छुटकारा मिलने की बात कही गई है -

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं, पीत्वा जन्मशतोद्भवम्।
स्नात्वा जन्मशतं पापं गण्डकी हरते सदा।।

इसी ग्रन्थ में नेपाल के मुख्य भाग सप्तकोशीप्रस्रवणक्षेत्र से पश्चिम एवं सप्तगण्डकी प्रस्रवण क्षेत्र से पूर्व के भाग को परम पवित्र स्थल के रूप में वर्णन किया गया है-

द्वीपानां चैव सर्वेषां जम्बूद्वीपं विशिष्यते।
त्रैलोक्यानां गरिष्ठोऽयं नेपाल इति सर्वतः।।
नेपाल इति विख्यातं देवक्षेत्रं सुखप्रदम्।
कौशिकी-गण्डकी चैव तयोर्मध्ये वरस्थलम्।।

इस प्रकार गण्डकी एवं शालग्राम के कारण नेपाल का माहात्म्य अत्यन्त बढ़ गया।

शालग्राम संबंधी विषयों के आकार ग्रन्थ

शालग्राम तीर्थ, हरि पर्वत, दामोदर कुण्ड से त्रिवेणी (गजग्राह क्षेत्र) तक के कृष्णा गण्डकी के साथ अन्य नदियों के सङ्गम से होने वाले प्रमुख १५ तीर्थ, शालग्राम शिला में मिलने वाले विष्णु भगवान् के शताधिक रूप, उनके पूजा का महत्त्व, उनके लक्षण, तत्तत्मूर्ति पूजा के फल, त्याज्यमूर्तियों के स्वरूप, शालग्राम में शिव, गणेश, शक्ति आदि देवों के लक्षण, शालग्राम के स्नानजल (पादोदक) पान तथा प्रसादभक्षण का महत्त्व, सभी सत्कर्म तथा अन्तिम बेला में शालग्राम के सान्निध्य से लाभ, शालग्राम पूजा के अधिकारी, पूज्य शालग्राम शिला की संख्या, शालग्रामपूजारहित द्विजाति की निन्दा, शालग्राम पूजा की सरलता, शालग्राम के अभाव में पूजास्थलों की अपूर्णता, आदि शालग्राम सम्बन्धी विषयों के वर्णन से हमारा संस्कृत वाङ्मय विशेषकर पौराणिक ग्रन्थ अत्यधिक भरे पड़े हैं।

ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, वराह, पद्म, अग्नि, स्कन्द, नरसिंह, गरुड, वामन, नारदीय आदि पुराण तथा उपपुराण, वैखानस तथा पाञ्चरात्र आगम की विहगेन्द्र, पाद्म आदि संहिताएँ, वशिष्ठसंहिता, पुराण संग्रह एवं वृद्ध गौतम आदि स्मृतियों में तथा अनेक शास्त्रीय संग्रहग्रन्थ प्रयोगपारिजात आदि में शालग्राम सम्बन्धी विविध विषयों का विशाल भण्डार भरा हुआ है। श्रीतत्त्वनिधि नामक ग्रन्थ इस विषय का एक संग्रह है। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखालय में शालग्राम संबद्ध निम्नलिखित पुस्तक है -

१. शालग्राम-परीक्षा   २. शालग्रामपूजा-महिमा

३. शालग्राम माहात्म्यम्   ४. शालग्रामलक्षणम्

इस विषय में वर्तमान समय में लिखी, शालग्राममीमांसा तथा शालग्रामरहस्यम् ये दो पुस्तकें हैं। इसके अतिरिक्त शालग्रामोपनिषद् एवं शालग्रामनिघण्टु नामक एतद्विषयक ग्रन्थों का होना भी बताया जाता है। साथ ही इतने बड़े भारत एवं इसके बाहर रहने वालों ने भी इस महत्त्वपूर्ण विषय में समय-समय पर अवश्य भी रचनाएं की होंगी, इन सबका समग्र अध्ययन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा में गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता है। ई. १४वीं. शती के दक्षिण भारत के **महान् विद्वान् कवितार्किक सिंह वेदान्तदेशिक स्वामीजी** ने भी अपने "संकल्प सूर्योदय" नाटक में पवित्रतम विष्णुक्षेत्रों के वर्णनक्रम में बड़े आदर के साथ **"प्रागुत्तरोऽयं देशः"** कहकर नेपाल का उल्लेख किया है। स्वयं व्यक्त नारायण के एक साथ अनेक अवतारों की भूमि होने का उल्लेख कर इस शालग्राम क्षेत्र की प्रशंसा की है। आगे एक श्लोक की रचना की है -

पुनरुपजनिभीतैः पुण्डरीकादिभिस्तैः
चिरपरिचितपूर्वं श्रीहरेः क्षेत्रमेतत्

सकृदपि पुनरस्मिन् मज्जतश्चक्रतीर्थे
भवजलनिधिगर्तात् क्षिप्रमुन्मज्जनं स्यात्।

"चक्रनदी गण्डकी का यह तीर्थ श्रीहरि का परम पुनीत स्थल है, यह पुनर्जन्म के भय रखने वाले पुण्डरीक (महाभारत प्रोक्त) आदि महाभागवतों से चिरपरिचित रहा है। इस तीर्थ में सच्ची श्रद्धा से जो जन एक बार भी भीतर डुबकी मारता है, वह संसार रूप समुद्र के गर्भ से जल्दी ही अनायास बाहर निकल आता है।"

महाभारत में भी नेपाल के इस गण्डकी तीर्थ का स्मरण यत्र-तत्र श्रद्धापूर्वक किया गया है।

मिथिला माहात्म्य

तीरैर्नदीनां बह्वीनां युता तीरहुताभिधा।
सीताराममयी मान्या मिथिलाऽशिथिला पुरी।। १ ।।

कमलावाग्वती-कोशी-गण्डक्यादिनदीमती।
चित्रैर्नदीसरः-कूप-शैल-काननकैर्वृता।।२।।

महामाङ्गल्यनिलया हिमपर्वतपार्श्वगा।
यत्राभूवन् महात्मन ऋषयः समदर्शिनः।।३।।

अद्ययावत् सदाऽखण्डा यत्र विद्वत्-परम्परा।
देशः प्रागुत्तरः पुण्यो मिथिला मिथिनिर्मितः।।४।।

जगदाश्चर्यकर्त्तारो यत्राद्वैतधियो नृपाः।
गौतमाद्याश्च मुनयो देशः स केन मीयताम्।। ५।।

आविर्भावेन गायत्र्याः श्रीमद्रामायणस्य च।
गङ्गादीनां सङ्गमैश्च देशः परमपावनः।। ६।।

सीतायां यत्र सीतासीत् जनकस्य महीपतेः।
यया संतर्जितो भीमो रावणस्तद्वनस्थया।।७।।

सर्वशक्तियुताऽपीयमनन्तकरुणामयी।
मैथिली सूयते यत्र मिथिला साऽसमा ननु।। ८।।

श्लोकाष्टकस्तुता देवी मिथिला मैथिलीप्रसूः।
भूयात् प्रसन्ना वरदा सीता-तद्वरप्रीतिदा।। ९।।

प्राकृतिक सौन्दर्य

पूर्व में कोशी, पश्चिम में गण्डकी, दक्षिण में गङ्गा और उत्तर में हिमालय के बीच में कमला, वाग्वती आदि १३ मुख्य[1] नदियों, अनेक कूपों, सरोवरों, कुण्डों, वनों तथा पर्वतों की सुरम्य अवस्थिति के साथ उत्तर में स्थित उच्चतम शिखरों से युक्त देवतात्मा

---

१. गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे। तैरभुक्तिरितिख्यातो देशः परमपावनः।। कौशिकी कमला चैव तथा बिल्ववती मता। यमुना चेति विख्याता भूयसी गैरिका तथा।। जलाधिका दुग्धवती तथा व्याघ्रवती मता। विरजा मण्डना चैव तथैवेच्छावतीति च। लक्ष्मणा वाग्वती ख्याता गण्डकीति ततः परा। इति पूर्वक्रमात् प्रोक्तं नदीनामनिदर्शनम्। नदी नाम– कौशिकी, कमला, बिल्ववती, यमुना, भूयसी, गैरिका, जलाधिका, दुग्धवती, व्याघ्रवती, विरजा, मण्डना, इच्छावती, लक्ष्मणा, वाग्वती और गण्डकी ये १५ नदी मिथिला में हैं, इनके अलावा दक्षिण सीमा से सटी गङ्गा है। अन्य नदी प्रायः उत्तर से दक्षिण आ रही हैं।

नगाधिराज हिमालय के छायामय गोद में रहते हुए सर्वमनोहर महामङ्गलकारी पवित्र देश के रूप में सुप्रसिद्ध होना इस मिथिला की प्राकृतिक विशेषता है।

आध्यात्मिकता

इस देश के विभिन्न भागों में पहले विश्वामित्र, विभाण्डक, गौतम, वाल्मीकि और याज्ञवल्क्य आदि महर्षियों का निवास रहता था। यहीं पूर्व में विश्वामित्र द्वारा वेदमाता गायत्री का तथा पश्चिम में वाल्मीकि द्वारा वेदावतार श्रीमद्रामायण का अवतरण हुआ। यहाँ के राजा सभी ब्रह्मविद्या में निपुण रहते थे। यहाँ के ऋषियों एवं राजाओं ने ही नहीं अन्य सामान्य वर्ग के लोगों- यहाँ तक कि वेश्यावृत्ति से जीवन चलाने वाली नारी पिङ्गला ने भी "आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्"[1] आशा ही बड़ा दुःख है तथा आशा का न होना ही परम सुख है, इस महान् सिद्धान्त को पता लगाकर उसको प्रयोग में लाने में महान् ज्ञानी अवधूत मुनि का सहयोग कर पाया था। यहाँ के राजा ने तो सारी राज्य-व्यवस्था को ठीक ढंग से संभालते हुए भी **"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किञ्चन दह्यति"** अर्थात् "सारा मिथिला देश एक साथ जल भी जाय तो भी मेरा कुछ भी नहीं जलता" इस प्रकार का उच्चतम निर्ममभाव अपने में संजोया था और **"तरति शोकमात्मवित्"** अर्थात् आत्मज्ञानी व्यक्ति किसी भी स्थिति में शोक नहीं करता, इस उपनिषद्वाक्य के साक्षात् उदाहरण बने थे। मिथिला ने सब प्रान्तों से ज्यादा भारतीय-अध्यात्मवाद को विकसित किया। ये सब इस देश की आध्यात्मिक विशेषताएँ हैं।

अखण्ड-विद्वत्परम्परा

इस देश में वेद तथा गायत्री के प्राकट्य काल से आज तक सनातन वैदिक विद्वानों की उदात्त परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। जिसमें आद्यशङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाले महामीमांसक "मण्डन मिश्र" सर्वदर्शन-कानन-पञ्चानन वाचस्पति मिश्र, महानैयायिक उदयनाचार्य, पक्षधरमिश्र, गङ्गेशोपाध्याय आदि एवं ललित काव्यकला के कमनीय शिल्पी महाकवि जयदेव मिश्र, मैथिली के महाकवि मनीषी विद्यापति आदि प्रमुखतम हैं। विविध विषयों के चूडान्त विद्वान् समय-समय में इस देश में पैदा होकर यहाँ की 'विद्याश्री' की अभिवृद्धि में हाथ बँटाते रहे। यहाँ की परम्परागत भारतीय विद्याओं के विद्वानों की आज तक की सूची ही तैयार हो तो एक अच्छी-खासी पुस्तक बन जाए। सनातन-परम्परागत शास्त्रों, विद्याओं तथा कलाओं की रक्षा में इस भू-भाग ने सबसे अधिक भारतवर्ष का सहयोग किया। यहाँ बंगाल के नवद्वीप एवं अन्य स्थानों से आकर

---

१. आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला।
–भा. ११/८/४४

प्राच्य विद्याओं के अध्ययन करने वाले बहुत विद्वान् हुए हैं। इस प्रकार यह विद्वत्परम्परा अभी तक अखण्ड चली आ रही है।

महालक्ष्मी सीता का अवतार तथा श्रीराम से सम्बन्ध

इस मिथिला की भूमि में महालक्ष्मी सीता का अद्भुत रीति से हुआ प्राकट्य, उनका शील, सामर्थ्य, आराध्य के प्रति परिपूर्ण समर्पण भाव, अक्षम्य दुष्टों के प्रति भी महान् दयाभाव आदि सद्गुणों से रामायण आदि भारतीय वाङ्गमय के अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। इस महनीय भूमि की कन्या सीता ने समग्र भारत-उपमहाद्वीपीय वाङ्मय तथा संस्कृति को इतने गहरे ढंग से प्रभावित किया है कि इस प्रकार इतने बड़े भू-भाग को अकेले ही प्रभावित करने वाली कन्या किसी भी भूमि ने नहीं पैदा की होगी।

इन्हीं श्रीसीता जी के कारण इस भूमि ने श्रीराम जैसे पूर्ण ब्रह्म के मानव-रूप को अपने सुन्दर जामाता या वरवर (अच्छे दामाद) के रूप में प्राप्त किया, जो सौभाग्य आज तक किसी भी भूमि को प्राप्त न हो सका। सीता का अवतार तथा उनके साथ श्रीराम के विवाह ने इस भूमि के उत्कर्ष में चार-चाँद लगा दिए।

श्रीसीता जी की अपने प्रति रहने वाली एवं विविध विषम परिस्थितियों में भी न डिगने वाली अनन्यनिष्ठा ने इस सीतावतार भूमि के प्रति श्रीराम जी का लगाव अयोध्या से भी बढ़कर हुआ, जिसके कारण इस भूमि के सेवन के विना सीता तथा राम की पूर्ण प्रीति-भाजनता नहीं। इससे मिथिला रामभक्तों के लिए एक महान् तीर्थ बन गयी।

मिथिला की सीमा

मिथिला भारतवर्षीय राज्यों में एक पूर्वोत्तर भाग में स्थित अति प्राचीन राज्य है। यह नेपाल तथा प्राचीन कोशल एवं अङ्ग देश के मध्य भाग में अवस्थित रहा। इस समय यह नेपाल तथा भारत में विभक्त हुआ है। इस देश की प्राचीन राजधानी जनकपुर, धनुष-यज्ञस्थल "धनुषा" (नेपाल का एक जिला) आदि कतिपय महत्त्वपूर्ण स्थल नेपाल में हैं तो सीता की अवतरणभूमि "सीतामढ़ी" भारत में ही है। शुक्ल यजुर्वेद के "शतपथ ब्राह्मण" में इस देश को विदेह या विदेघ कहा गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि– इस देश के राजा 'माधव' के पुरोहित 'गौतम' ऋषि थे। राजा ने अपने मुँह में अग्नि धारण किया था। उस अग्नि को जब पुरोहित ने मन्त्रोच्चारण से प्रदीप्त किया तो राजा के मुँह में अग्नि खूब धधकने लगी। अग्नि को जमीन पर गिराकर ताप-शान्ति के लिए जब विदेह के राजा समीपस्थ 'सरस्वती' नामक नदी पर गोता लगाए तब अग्नि ने उस नदी को सुखा दिया, इस प्रकार वह अग्नि नदियों एवं उनके समीपस्थ स्थानों को जलाती हुई वहाँ से पूर्व की ओर बढ़ती गई। राजा और पुरोहित दोनों इसी अग्नि के पीछे-पीछे

चल रहे थे। इस बीच उत्तर से आती हुई 'सदानीरा' नामक नदी से अग्निदेव भिड़ गए। जलाधिक्य के कारण अग्नितेज से यह नदी सूख न सकी और अग्नि का वेग यहीं रुक गया।[1] तब राजा ने अग्नि से कहा- "मैं कहाँ रहूँ" ? अग्नि ने उत्तर दिया कि इसी 'सदानीरा' के पूर्व भाग में रहो। इस प्रकार यह नदी कोशल एवं विदेह इन दो देशों की सीमा बनी। माधव नामक विदेह के राजा को इस 'सदानीरा' नदी से पूर्व दिशा के देशों में रहने को कहा गया। अतः इस देश का दूसरा नाम 'माधव' भी पड़ा। शतपथप्रोक्त यह 'सदानीरा' नदी गण्डकी (नारायणी) ही हैं। गण्डकी के पूर्वोत्तर में 'विदेह' की स्थिति है तो दक्षिण पश्चिम में 'कोशल' की। वहीं पर शतपथ श्रुति सदानीरा (गण्डकी) के विषय में कहती है कि **"तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धा अग्निना वैश्वानरेणेति"** "अग्नि से पूरा सूख न जाने के कारण पहले इस (सदानीरा) नदी को ब्राह्मण तैरकर पार नहीं करते थे।" बाद के धर्मशास्त्रियों ने 'सदानीरा' को गण्डकी मानकर **"गण्डकीबाहुतरणात्"** इत्यादि उल्लेख कर हाथ से उसे पार करने का निषेध किया। इस प्रकार कोशल और विदेह की सीमा बनी सदानीरा नदी गण्डकी ही सिद्ध होती है।

'बृहद् विष्णु पुराण' में २२ अध्यायों में मिथिला का माहात्म्य मिलता है, जिसे २००८ वि.सं. में पं. रामदुलारी शरण ने हिन्दी टीका के साथ पृथक् छपवाया है। इसमें मिथिला देश की सीमा इस प्रकार है–

कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै।
योजनानि चतुर्विंशत्यायामः परिकीर्तितः।।
गङ्गाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम्।
विस्तारः षोडश प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दनः।। –मि.मा. २/१२-१३

इसके अनुसार मिथिला देश के पूर्व में कोशी से पश्चिम में गण्डकी तक २४ योजन अर्थात् ६६ कोश लम्बा तथा दक्षिण में गङ्गा की धारा से लेकर उत्तर में हिमालय के वन प्रान्त तक १६ योजन अर्थात् ६४ कोश चौड़ा है। शतपथ श्रुति ने "सदानीरा" नदी अर्थात् गण्डकी के पूर्व में विदेह को माना है तो यह पुराण भी गण्डकी को विदेह (मिथिला) की पश्चिम सीमा मानता है।

गण्डकीतीरमासाद्य चम्पारण्यान्तकं शिवे ?
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्ताभिधा तु सा।

---

१. स होवाच विदेहो माधवः क्वाहं भवानीत्यत एव ते प्राचीनं भुवनमिति होवाच, सैषाप्येतर्हि कोशल-विदेहानां मर्यादा ते हि माधवाः। शतपथ ब्राह्मण १/४/१/१७

इस "शक्ति सङ्गम तन्त्र" के वाक्य की व्याख्या इस तरह की जानी चाहिए कि मिथिला के पश्चिमी सीमा के उत्तरी छोर पर गण्डकी नदी है तो दक्षिणी छोर पर चम्पकारण्य नाम स्थान है। गण्डकी एवं चम्पारन दोनों मिथिला या विदेह देश की पश्चिम में है।

मिथिला की प्राचीनता

पूर्वोक्त शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक ३/१०/९/९, बृहदारण्यक उपनिषद् ३/८/२ तथा ४/२/६ एवं कौषीतकी ब्राह्मण आदि श्रुतियों में इस देश का उल्लेख समादरपूर्वक किया गया है। भारतीय वाङ्गमय में पूर्वोक्त ग्रन्थ काफी पुराने माने गए हैं। इधर पौराणिक इतिहास तो इस देश को सृष्टि का आरम्भकालिक मानता है। वाल्मीकि-रामायण एवं महाभारत जैसे इतिहास एवं भागवत, पद्म आदि पुराणों के विविध उपाख्यानों में इस देश के साथ यहाँ के प्रचुर ज्ञान सम्पन्न ऋषियों तथा राजाओं का सुन्दर वर्णन है। वेद की भाषा से लेकर आधुनिक भाषाओं तक में इस देश का उदात्त वर्णन मिलता है।[1] गौतम, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, वाल्मीकि आदि अति प्राचीन ऋषियों का इस भूमि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

मिथिला के आत्मवेत्ता राजाओं की परम्परा

भारतीय प्राचीन इतिहास के अनुसार प्रत्येक सृष्टि का प्रारम्भ भगवान् नारायण के नाभि-कमल से होता है। उस कमल में चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। भगवत्संकल्प से उनमें अपौरुषेय वेदवाणी का आविर्भाव होता है। पञ्चीकरण से ब्रह्माण्डगोल के निर्माण तक की समष्टिसृष्टि के बाद ब्रह्माण्डगोल के फटने से उसके बीच से पैदा हुए ब्रह्मा नारायण की आज्ञा से स्वर्गादि लोकों की सृष्टि से शुरु होने वाली व्यष्टिसृष्टि को आगे बढ़ाते हैं। इसी क्रम में इनको मरीचि आदि १० मानस पुत्र पैदा होते हैं। फिर ब्रह्मा के दक्षिण एवं वाम अङ्ग से क्रमशः स्वायम्भुव मनु (पुरुष) तथा 'शतरूपा' नारी की उत्पत्ति होती है। इन दोनों से मैथुनसृष्टि का आरम्भ होता है। इन दोनों से उत्पन्न तीन पुत्रियों में से एक 'देवहूति' नाम की कन्या का ब्रह्मपुत्र 'कर्दम' ऋषि से विवाह होता है। भगवान् कपिल के

---

१. महर्षयो महाभागा त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम्। निवसन्ति प्रयत्नेन रामाराधनहेतवे।।
विश्वामित्रस्तु पूर्वस्यां दिशि वासमकल्पयत्। विभाण्डको महायोगी दक्षिणे निवसत्यसौ।।
गौतस्याश्रमः पुण्यो याम्य-पश्चिमकोणके। निवसत्युटजं कृत्वा वाल्मीकिस्तत्र पश्चिमे।।
उत्तरे याज्ञवल्क्यस्तु निवासाभिरतः सदा। एवमेव प्रकारेण वसन्त्यन्ये महर्षयः।।
मिथिला में पूर्व, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, उत्तर में क्रमशः विश्वामित्र, विभाण्डक, गौतम, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य राम की सेवा के लिए निवास करते हैं।
–बृहद् विष्णु पुराण मिथिला महात्म्य २/२६-२९

अवतार के पहले कर्दम को कला, अनसूया आदि नौ कन्याएँ पैदा हुईं। ब्रह्मपुत्र मरीचि ने इन्हीं कर्दमपुत्री कला से विवाह कर महर्षि कश्यप को उत्पन्न किया। उधर ब्रह्मपुत्र दक्ष ने कर्दम की पुत्री प्रसूति को विवाह कर बहुत सी कन्याओं को उत्पन्न किया। उनमें से अदिति, दिति आदि १३ कन्याओं को अकेले कश्यप ने विवाह किया। इन पत्नियों से कश्यप ने देव, दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पशु, पक्षी, जलजन्तु, सर्प आदि सभी प्राणियों की सृष्टि की। अदिति ने सूर्य आदि देवों को उत्पन्न किया। सूर्य का विवस्वान् कहा गया। सूर्य से वैवस्वत नाम के मनु हुए। इनकी ज्येष्ठ पत्नी संज्ञा से उत्पन्न कन्या इला को भगवान् हरि ने सुद्युम्न नामक पुत्र के रूप में बदल दिया था। बाद में निषिद्ध शिव-पार्वती-क्रीड़ास्थल में पहुँचने पर यह मनुपुत्र फिर कन्या 'इला' ही बना। इधर ब्रह्मपुत्र अत्रि के नेत्र से उत्पन्न चन्द्रमा से बृहस्पति-पत्नी तारा को 'बुध' नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। इसी से इसी कन्या 'इला' का सम्बन्ध होने से उसी कैलाश क्षेत्र में 'पुरूरवा' नाम के राजर्षि हुए। इनसे चन्द्रवंश चला, इन्हीं को राज्य सौंपकर वैवस्वत मनु अन्य पुत्रप्राप्ति के लिए दूसरी पत्नी श्रद्धा के साथ तपस्या करने वन चले गए। भगवान् हरि की कृपा से इन्हें इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति आदि दश पुत्र पैदा हुए। उनमें से ज्येष्ठ इक्ष्वाकु के विकुक्षि, निमि, दण्डक आदि १०० पुत्र पैदा हुए। उनमें विकुक्षि के वंश में प्रसिद्ध ककुत्स्थ, मान्धाता, अम्बरीष, सगर, भगीरथ आदि राजर्षि हुए। इसी वंश के राजा दशरथ के पुत्र के रूप में भगवान् नारायण के अंशों से राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक चार रूप प्रकट हुए। जिनकी कीर्ति से त्रिभुवन व्याप्त है।

इक्ष्वाकु के दूसरे पुत्र निमि से जनक-राजवंश का विस्तार हुआ। सूर्य के पौत्र इक्ष्वाकु के पुत्र निमि को 'मिथि' नाम का पुत्र हुआ। इसी के द्वारा "मिथिला-राज्य" की स्थापना हुई।[1]

विदेह निमि तथा उनके पुत्र मिथि

सूर्यदेव के प्रपौत्र 'निमि' नाम के राजर्षि का अद्भुत चरित्र इतिहास-पुराण में वर्णित है। कथा इस प्रकार है– निमि सत्रयाग करने की इच्छा से अपने कुल पुरोहित वशिष्ठ को निमन्त्रित करने उनके पास गए, पुरोहित ने कहा कि "मैं इन्द्र के यहाँ आहूत होने के कारण इस समय तुम्हारा काम नहीं कर सकता, बाद में आ सकता हूँ।" इधर यजमान ने प्रतीक्षा करने को नहीं कहा था, अतः अन्य लोगों के सहयोग से यज्ञ प्रारम्भ हुआ, इन्द्र का काम पूरा कर यज्ञार्थ वशिष्ठ दौड़े-दौड़े आए। यहाँ यज्ञारम्भ देखकर कुपित होते हुए निमि को शाप दिया कि "तुम्हारा यह देह गिर जाय, फिर निमि ने भी उनको शाप देते

---

१. इस राजपरम्परा वर्णन का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत का नवम स्कन्ध के १२ एवं १३ अध्याय हैं।

हुए कहा कि "आप भी देह रहित हो जाओ।" वशिष्ठ तो उस देह को छोड़कर मित्रावरुण देवता के वीर्य से उर्वशी अप्सरा में पैदा होकर देहधारी बन गए, पर निमि ने आत्मज्ञानी होने के कारण उस देह को त्याग कर भी अन्य देह को धारण करने की इच्छा नहीं की। यज्ञ के अन्त में राजा के सुरक्षित देह में पुनः आत्मा लौटाने के लिए ब्राह्मणों ने देवों से प्रार्थना की पर स्वयं निमि ने अदृश्य रूप लेकर समझाया कि बन्धन कारक हरिभजन-विरोधी इस देह की मुझे आवश्यकता नहीं है, यह तो दुःख, शोक और मोह का हेतु हैं।" ऐसे उत्तम वचन सुनकर देवों ने राजा को कहा "धन्य हैं महाराज ?" आप अब विदेह हुए, आप सभी शरीरधारियों के नेत्र के पलक में रहा करें, तब से निमि प्राणियों के पलक में रहने लगे। इन्हीं के समय से मिथिला में अद्यावधि अबाधित गति से अध्यात्मविद्या का अवरिल प्रवाह निरन्तर बहता आ रहा है। फिर यज्ञान्त में राजा के इस महत्वपूर्ण देह को मन्थन कर महर्षियों ने एक सुन्दर कुमार को उत्पन्न किया। इस विषय में यह श्लोक है-

जन्मना जनकः सोऽभूत् वैदेहस्तु विदेहजः।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता।। -श्रीमद्भागवत ६/१३/१३

अद्भुत रीति से पैदा होने से इस कुमार को 'जनक' तथा विदेह बन चुके राजा का पुत्र होने से 'वैदेह' एवं मन्थन से पैदा होने के कारण 'मिथिल' या 'मिथि' कहा गया। इसी ने मिथिला को बसाया और भारतवर्ष के पूर्वोत्तर कोण में एक अध्यात्म-प्रधान सुन्दर राष्ट्र खड़ा किया जो कतिपय युगों तक अबाध गति से चलता आया, साथ ही यह देश भारतवर्षीय संस्कृति, विद्या एवं कलाओं का संरक्षक एवं परिष्कारक रहा। बाद में इस देश का राजनैतिक अस्तित्व तो अवध, मगध एवं हिमवत्खण्डीय राज्यों के भीतर अन्तर्निहित हो गया, पर अभी तक इस भू-भाग ने अपने सांस्कृतिक धरोहरों को तो जिस किसी तरह सुरक्षित रखने की चेष्टा समाप्त नहीं की, जिसके फलस्वरूप आज भी मिथिला की भाषा, संस्कृति तथा विद्या-परम्पराएँ देखने को मिल रही हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार 'मिथि' के १६ पुरुषों के बाद राजर्षि सीरध्वज हुए जिन्होंने महालक्ष्मी सीता को यज्ञ के लिए भूमिकर्षण के समय पृथ्वी के भीतर से प्राप्त किया। उनके बाद 'महावशी के पुत्र कृति' तक के और ३३ पीढ़ी को गिनाते हुए भगवान् व्यास ने इस राजवंश की विशेषता संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया-

एते वै मैथिला राजन् ! आत्मविद्याविशारदाः।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि।। -भा. ६/१३/५७

"ये सभी मिथिलानरेश आत्मविद्या में निपुण होने से भगवत्कृपा के पात्र बनकर गृहस्थ रहते हुए भी आन्तरिक द्वन्द्व से मुक्त हो सके थे।"

सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, सूर्य, वैवस्वत (मनु), इक्ष्वाकु और निमि के बाद के मिथि के समय से सत्युग से ही इस देश ने अपना अस्तित्व प्राप्त कर लिया था, तभी से यहाँ आर्य महर्षि तथा अन्य वैदिक लोग बड़ी संख्या में रहने लगे थे। अतः यह कहना कि–हिमालय[1] की उपत्यका में रहने वाले जनकपुर आदि क्षेत्र में आर्यों का निवास बहुत बाद से हुआ, यह बहुत बाद तक मङ्गोलियन किरात एवं आदिवासी भिल्लों के ही अधीन में था–सत्यता के बहुत दूर लगता है। किरात, भिल्ल आदि तो इन्हीं आर्यों के बनवासी बन्धु ही हैं। इस विषय में प्रामाणिक अनुसन्धान का निष्पक्ष कार्य नेपाल में **किरात क्षत्रिय वंशावत डॉ. स्वामी प्रपन्नाचार्य** जी ने प्रारम्भ किया है जिसको और अन्वेषणपूर्वक आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। अब भारतवर्ष के और भी विद्वान् स्वार्थ-सिद्धि के लिए विदेशियों द्वारा बनाए गये इतिहास को प्राचीन भारतवर्षीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में गलत सिद्ध कर रहे हैं। **भारतवर्षीय प्राचीन पौराणिक इतिहास यद्यपि अनेक गम्भीर उलझनों से भरा है तथापि वह अवास्तविक या मनगढ़न्त बिल्कुल नहीं। उसकी गुत्थियों को सुलझाकर सत्य-तथ्य का पता लगाया जाय तो यथार्थ भारतवर्षीय इतिहास का असली स्वरूप उभर आएगा।**

मिथिला में अध्यात्म-विद्या का विकास

जिससे आत्मा तथा परमात्मा का यथार्थ ज्ञान हो, उस विद्या को अध्यात्म विद्या कहते हैं। **"आत्मा बुद्धौ धृतौ जीवे स्वभावे परमात्मनि"** इस कोष के अनुसार जीव तथा परमात्मा दोनों आत्मा पद के अर्थ हैं। विविध नदियों तथा तालाबों के पर्याप्त मात्रा में रहने से यह देश तपस्वी मुनियों के निवास के लिए अत्यन्त उपयुक्त था। अतः सृष्टि के प्रारम्भ से ही विविध ऋषि यहाँ रहने लगे थे।[2] अधिक साहसी ऋषि ऊपर हिमगिरि की कन्दराओं में तपस्या करते थे, शेष लोग नदियों के सङ्गमों से भरे इस मिथिला में ही तपोमय जीवन बिताते थे। कुछ लोग कभी हिमालय में, कभी हिमालय की तलहटी में स्थित विदेह भूमि में अपनी तपस्या करते थे। स्वयं विश्वामित्र ऐसे ही ऋषियों में एक थे। वे पहले कोशी के उद्गमस्थल हिमालय में रहे, बाद में सिद्धाश्रम बक्सर (बिहार) में रहने लगे।

राजर्षि निमि से यह जनकवंश का प्रारम्भ होता है। निमि ही ऐसे राजा थे जिनके अध्यात्म प्रधान यज्ञ को देखने कवि, हरि आदि योगेश्वर पधारे थे। श्रीमद्भागवत के ११/२/१४ में कहा गया है–

**"त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया।
वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः।।"**

---

१. नेपाली उपन्यारन 'सुम्निमा' ले. विश्लेश्वर प्रसाद कोइराला
२. "नदीनां सङ्गमे गिरीणां गह्वरे धिया विप्रो अजायत" –ऋग्वेद

"वे नव योगेश्वर ऋषियों से भरे महाराज निमि के यज्ञ में स्वयं दर्शनार्थ आए थे।" इससे पता चलता है कि महाराज निमि अध्यात्मवादी होने के कारण निरन्तर सत्सङ्ग चलाया करते थे, जिसमें दूर-दूर से अच्छे-अच्छे साधु लोग आते रहते थे। पिता निमि सत्सङ्ग एवं यज्ञ के लिए इस मिथिला क्षेत्र में आया करते थे उनके पुत्र मिथि ने यहीं राज्य खड़ा किया। निमि इतने बड़े तत्त्वज्ञानी थे कि यज्ञ से सन्तुष्ट देवों के द्वारा मुनियों के अनुरोध पर पुनः दिया जाने वाला शरीर भी उनको अच्छा नहीं लगा। श्रीमद्भागवत के ६/१३/६-१० में कहा गया है कि-

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः।
मज्जन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः।।
देहं नावरुरुन्धेऽहं दुःखशोकभयावहम्।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा।।

"शरीर की हमें आवश्यकता नहीं है क्योंकि शरीर धारण करने पर पल-पल में चारों ओर से मृत्यु का भय बना रहता है, इस देह का चक्कर छोड़कर मुनि लोग श्रीहरि में चित्त लगाकर उन्हीं के चरण कमल के मधुर अनुभव में डूब जाते हैं। हमें भी ऐसा ही करना है, अतः इस तुच्छ देह को रोकेंगे नहीं क्योंकि यह देह हमेशा हर किसी को दुःख, शोक और भय ही प्रदान करता आया है, इससे सुख-शान्ति की कभी आशा ही नहीं की जा सकती है।" महाराज निमि इतने बड़े भगवद्भक्त थे कि भक्तिविरोधी होने से देह की भी अपेक्षा नहीं किए। इस प्रकार के उच्चभगवद्भक्ति-सम्पन्न होने के कारण ही इनके सत्र में नव योगेश्वरों का आगमन हुआ। ऐसे महान् भगवद्भक्त निमि इस जनकवंश के मूल पुरुष थे, अतएव इस वंश के सभी लोग आत्म-परमात्मविवेकसम्पन्न विवेकी बने। इन्हीं को सीता के पिता जनक ने भी अपने वंश के मूल पुरुष के रूप में वर्णन किया है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के ७१वें अध्याय में सीताविवाहप्रसङ्ग में अपने कुल का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

राजाभूत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा।
निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्ववतां वरः।।
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिला येन निर्मिता।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः।।

"निमि नाम के हमारे कुल के प्रधान पुरुष एक राजा थे जो अपनी अद्भुत विशेषता के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे, वे बहुत बड़े धर्मात्मा तथा अत्यन्त धैर्यसम्पन्न थे, उनके पुत्र मिथि ने मिथिला राज्य की स्थापना की, वे प्रथमतः जनक उपाधि से विभूषित हुए, उसके

बाद के सभी हमारे पूर्वजों ने 'जनक' उपाधि धारण किया, द्वितीय जनक के रूप में उदावसु हुए"। उस ग्रन्थ में आगे नन्दीवर्धन के बाद कुशध्वज तक बहुत राजाओं का उल्लेख कर उनके पुत्र सीरध्वज जनक ने अपने वंश का परिचय दिया था। श्रीमद्भागवत में सीरध्वज सीतापिता के बाद के ३३ जनकों का वर्णन कर सबको आत्मविद्यानिष्ठ गृहस्थ होकर भी निर्लिप्त बताया। वे ज्ञानी जनक राजा वैवस्वत मन्वन्तर (अट्ठाइसवें) के सत्य से लेकर द्वापर तक हुए हैं। इतनी लम्बी अवधि तक अध्यात्म के क्षेत्र में मिथिला का पूरे विश्व में वर्चस्व रहा।

महर्षि याज्ञवल्क्य आदिम जनकों के ब्रह्मविद्या के आचार्य हैं। वे इसी देश के निवासी हैं। उपनिषदों में इनका बहुत स्थान पर महान् ब्रह्मवेत्ता के रूप में उल्लेख है। याज्ञवल्क्य-स्मृति के लेखक याज्ञवल्क्य ही ब्रह्मवेत्ता थे, उपनिषद्प्रसिद्ध भी यही हैं। कर्म, ज्ञान और भक्ति का इन्होंने इतना समन्वय किया था कि इनके जीवन को पढ़ने से पता चलता है कि कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, वे एक-दूसरे के बिना नहीं चल सकते। ईश्वराराधन रूप निष्काम कर्म किए बिना मनुष्यों में न भक्ति हो सकती है न तो ज्ञान। परमेश्वर के विषय में होने वाली परमाप्रीति ही भक्ति है, प्रेम चित्तवृत्तिविशेष होने के कारण ज्ञानविशेष ही है। अतः भक्ति अत्यन्त अनुकूल वस्तु के प्रति होने वाला आनन्ददायी ज्ञान ही है। इस प्रकार वस्तुतः भक्ति एवं ज्ञान में ज्यादा दूरी नहीं रहती। इन दोनों का पोषण वर्णाश्रमानुसार किए जाने वाले शास्त्रोक्त ईश्वराराधनात्मक कर्मों से ही होगा। इसी याज्ञवल्क्य के दर्शन का प्रभाव स्पष्टतः जनकदर्शन में है। अतः वे राजा याज्ञवल्क्यस्मृति अनुसार सभी कर्मों (राज्य-संचालन सहित के गार्हस्थ्य) का निर्वाह-करते हुए देह-गेह की आसक्ति से एकदम दूर रह सके। स्वकर्मों का सम्पादन तो जनकों का उपनिषद् में भी प्रसिद्ध है–

"जनको ह वै वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे
जनको जनक इति वै जना धावन्ति।" –बृहदारण्यक उपनिषद्

वे इतने यज्ञ एवं दान करते थे कि चारों तरफ से लोग इनके पास दौड़कर आते थे। इन जनक राजाओं ने भारतवर्ष के अन्य देशों की तुलना में कुछ भिन्न सिद्धान्तों की स्थापना की। इन सिद्धान्तों की स्थापना का समस्त श्रेय इस मिथिला भूमि को हो जाता है।

मिथिला के तीन अपूर्व सिद्धान्त

१. ब्राह्मणेतर का गुरुत्व

इस देश ने सर्वत्र प्रसिद्ध इस विचार को बदल दिया कि 'केवल प्रथम वर्ण किसी भी विद्या का उपदेशक हो सकता है।' द्वितीय वर्ण के राजा जनकों के पास बड़े-बड़े

कर्मनिष्ठ ब्राह्मण भी ब्रह्मविद्या सीखने के लिए आया करते थे, उन राजाओं को गुरु का परिपूर्ण आदर देकर इनसे सविधि विद्याग्रहण करते थे। महाज्ञानी व्यासपुत्र शुकदेव मुनि एवं मुनिपुत्र अष्टावक्र जैसे भी जनक के दरवाजे खटखटाने से नहीं बच सके। महाभारत शान्तिपर्व के ३२५वें अध्याय में जनक के विषय में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं–

स तु ब्राह्मयाः श्रिया युक्तं ब्रह्मतुल्यपराक्रमम्।
मेने पुत्रं यदा व्यासो मोक्षधर्मविशारदम्।।
उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम्।
स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलं मिथिलेश्वरः।।

"जब व्यास ने समझ लिया कि मेरा पुत्र शुकदेव मोक्षधर्म जानने वाला हो गया है तब कहा कि बेटे ! तुम अब मोक्ष के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान के लिए मिथिला जावो और वहाँ के राजा से समस्त मोक्षधर्म सीख लो।"

शान्तिपर्व के ३२०वें अध्याय में भी भीष्म युधिष्ठिर से जनक के विषय में बोलते हैं–

संन्यासफलिकः कश्चित् बभूव नृपतिः पुरा।
मैथिलो जनको नाम धर्मध्वज इति स्मृतः।।
स वेदे मोक्षशास्त्रे य स्वे च शास्त्रे कृतश्रमः।
इन्द्रियाणि समाधाय शशास वसुधामिमाम्।।
तस्य वेदविदः प्राज्ञाः श्रुत्वा तां साधुकृत्तमाम्।
लोकेषु स्पृहयन्त्यन्ये पुरुषाः पुरुषेश्वर ?।।

"वे संन्यासी न होने पर भी संन्यास का फल अहङ्कार-ममकार की शून्यता को प्राप्त किए थे, ऐसे राजा धर्मध्वज जनक पहले हुए, उन्होंने समस्त वेद के साथ मोक्षशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का भी गम्भीर अध्ययन किया था, इस प्रकार शास्त्रज्ञ होने के कारण ही इन्होंने जितेन्द्रिय बन इस पृथ्वी का उत्तम रीति से शासन किया, दुनिया के बड़े-बड़े लोग इस जनक की वृत्ति को अपने में आधान करने की लालसा रखते हैं कि "हम भी गृहस्थ सम्राट् बनते हुए भी परम विरक्त ज्ञानी भी बन सकें।"

देवीभागवत प्रथम स्कन्ध के १७वें अध्याय में व्यास अपने पुत्र शुक को विशेष ज्ञान के लिए जनक के पास भेजते हुए कहते हैं–

न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत ?।
गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह।।

स ते मोहं महाभागो नाशयिष्यति भूपतिः।
जनको नाम धर्मात्मा विदेहः सत्यसागरः।।

"हे शुक ! मेरी वाणी से तुम्हें सन्तोष नहीं है तो तुम राजा जनक के पास जावो, वे तुम्हारे अज्ञान को दूर करेंगे।"

इसी प्रकार अष्टावक्र को भी संशयच्छेदन के लिए जनक के पास जाने के लिए 'त्रिपुरा रहस्य' के ज्ञानकाण्ड में एक तापसी कहती है–

व्रजाम्यहं त्वया चैतत्र विज्ञातं सकृच्छ्रुतेः।
बोधयिष्यति त्वामेव राजा बुद्धिमतां वरः,
पृच्छ भूयः संशयन्ते सर्वं छेत्स्यति वै नृपः।।

"मैंने एक बार सुनाया तुम नहीं समझ सके, मैं तो अब जाती हूँ, पर तुम अब बुद्धिमान् राजा जनक के पास जाओ, वे तुम्हारी शंकाओं को दूर करेंगे। पुनः-पुनः पूछते रहो वे बिगडेंगे भी नहीं, वे धैर्यशाली राजा ही तुम्हें समझा सकते हैं।"

इस प्रकार अपनी शिष्यता स्वीकार कर आए उनको राजा जनक ने आगे बताया है कि–

यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समुक्षयेत्।
सव्यं वास्याऽपि यस्तक्षेत् समावेतावुभौ मम।।
सुखी सोऽहमवाप्तार्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
मुक्तसङ्गः स्थितो राज्ये विशिष्टोऽन्यैस्त्रिदण्डिभिः।।

"मेरी दाहिनी भुजा को एक आदमी बड़े प्रेम से सुगन्ध शीतल चन्दन से अलङ्कृत कर रहा हो फिर दूसरी भुजा को दूसरा आदमी औजार से थोड़ा-थोड़ा काटकर पतला कर रहा हो" वे दोनों व्यक्ति मेरे लिए समान रूप से दिखते हैं। हमें कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है अतः हम सदा सुखी ही रहते हैं। हमको मिट्टी का ढ़ेला, पत्थर या सोना जो कुछ भी मिले उनका भेद हम नहीं देखते। हम राज्य-व्यवस्था में हमेशा तत्पर रहते हैं पर हमारी आसक्ति किसी भी वस्तु में नहीं है। अतः हम अन्य वेषधारी त्रिदण्डी संन्यासियों से श्रेष्ठ हैं।

न जाने कितने अन्य ब्राह्मणादि वर्ण के लोग महाराज जनक के पास ज्ञान-भिक्षु बनकर पहुँचे, इसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। सबको उन्होंने अपनी प्रसन्न गम्भीर वाणी से सन्देहहीन तथा तत्वज्ञानी बनाकर ही लौटाया। ऐसा राजा जिस भूमि को मिला हो उसकी महिमा का गान कौन कर सके ? इन उदाहरणों से यह सिद्ध हुआ कि सर्वप्रथम मिथिला ने ही इस सिद्धान्त को स्थापित किया कि 'यथार्थ ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति किसी भी

वर्ण या वर्ग का हो, सबका गुरु बन सकता है।'

२. गृहस्थाश्रम से ही सभी कर्म करते हुए मुक्ति

बहुधा वेदान्त के छात्र भ्रम में रहते हैं कि 'मोक्षमार्ग केवल घर छोड़ने वालों के लिए है'– इसका समूल खण्डन मिथिला की भूमि ने की। प्रमाण पहले ही उद्धृत है। यहाँ के राजा तथा ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य आदि ने कर्म एवं ब्रह्म को जोड़कर देखा, जिससे मानव कर्म को विधिवत् करते हुए परमात्मा को प्राप्त कर सके। ऐसी मिथिला की सुदीर्घ परम्परा को ध्यान में रखकर ही भगवान् ने गीता में कहा–

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" –गी. ३/२०

"जनक याज्ञवल्क्य आदि ज्ञान योग के अधिकारी भी निष्काम कर्म के सहयोग से ही आत्म स्वरूप का यथावत् ज्ञान कर सके।"

गृहस्थाश्रम में ही रहकर सभी वर्णाश्रमोचित कर्म को करते हुए भी आत्म-प्राप्ति हो सकती है, मुक्ति के लिए तुरन्त घर से बाहर निकलकर चतुर्थ आश्रम में प्रवेश करना अनिवार्य नहीं है। विषयों की तुच्छता एवं क्षणभङ्गुरता का अनुसन्धान करते हुए उनसे आसक्ति हटाने की आवश्यकता है। घर से हटने की आवश्यकता मुक्ति के लिए नहीं है। इसीलिए तो श्रीमद्भागवत में कहा गया है–

वनेऽपि रागाः प्रभवन्तिः रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।।

अर्थात् "वन में रहकर विषयाभिलाषी बनने की अपेक्षा घर में ही विषयवैराग्य बन सके तो प्रभु की बहुत बड़ी अनुकम्पा समझनी चाहिए। ऐसी स्थिति हो तो घर ही तपोवन है।" इसी सिद्धान्त को मिथिला के महामहिम राजाओं, ऋषियों तथा निम्नस्तर की वृत्ति से जीने वाले लोगों तक ने स्वीकार किया था। ऐसी महिमामयी भूमि को ही महालक्ष्मी सीता जी ने अपने अवतार के लिए उपयुक्त समझा। जहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीराम को भी परमानन्द का अनुभव हुआ।

"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किञ्चन दह्यति" पूरी मिथिला जलकर खाक हो जाय तो भी मेरा कोई भी चीज जलता नहीं, इस उच्च्व निर्ममता को अपनाने वाले राजा जिस देश में शासक हों भले उस देश की प्रजा क्यों न निर्मम तथा निरहङ्कार बने। **"भ्रष्टाचार तथा सारी ओछी वृत्तियाँ ऊपर से नीचे की ओर संक्रमित होती हुई फैलती है। शासक जैसी वृत्तिका होगा शासित जनता उसी वृत्ति की होना चाहेगी।" ऊपर के लोगों की जैसी स्थिति में पहुँचने की प्रवृत्ति सहज तथा स्वाभाविक भी है। इसीलिए कहा जाता है कि "यथा राजा तथा प्रजाः" जैसा नेता वैसी जनता।** इस प्रकार मिथिला ने विश्व को निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी है। वास्तव में किसी भी स्थिति में समस्त कर्मों का त्याग

सम्भव नहीं है। इसीलिए कर्म कर उन कर्मों के फल की आसक्ति से रहित होना ही असली संन्यास धर्म है। यज्ञादि कर्मों का परित्याग ही संन्यास नहीं है। इस प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का उत्तम समन्वय मिथिला में ही हुआ।

३. नारियों की ब्रह्मविद्या में निपुणता

ब्रह्मवादिनी विदुषी मैत्रेयी–महर्षि याज्ञवल्क्य इसी मिथिला के महर्षि थे। इनकी दो पत्नियों में मैत्रेयी उच्चस्तर की ब्रह्मवादिनी थी। जब वे गृहस्थ आश्रम को त्यागकर संन्यासी बनना चाहते थे तब इन्होंने मैत्रेयी से कहा कि 'मैं संन्यास ले रहा हूँ, जो मेरे पास धन है उसको तुम और कात्यायनी के बीच विभाजित कर देना चाहता हूँ।' तब मैत्रेयी ने कहा– "भगवन् ! आप हमें अमर होने का साधन बताइए, धन-धान्य से परिपूर्ण सारी पृथ्वी मेरे ही अधीन में हो तब भी मुझे अमरत्व मिल नहीं सकेगा, धन या सांसारिक कोई वस्तु अमरत्व या मोक्ष देने में हमें समर्थ नहीं लगता।"

ऐसे उत्तम प्रश्न से प्रसन्न हुए याज्ञवल्क्य ने अपनी ज्येष्ठा पत्नी मैत्रेयी को अमरत्व के साधन ब्रह्मैकत्वविज्ञान को बताया। जब मैत्रेयी ने समझा कि चेतन तथा अचेतन दोनों तत्त्व ब्रह्म से पृथक् रूप में रह नहीं सकते, इसलिए कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो ब्रह्म से असंबद्ध या पृथक् हो, अतः सभी वस्तुओं एवं चेतनों को ब्रह्म से पृथक् सिद्ध समझना ठीक नहीं है, हर किसी वस्तु में ब्रह्म की सत्ता की अनुभूति ही अमरता को प्रदान करती है। ब्रह्म से असंबद्ध स्वात्मा को समझने वाले हमेशा मृत्यु को ही प्राप्त करते हैं। सर्वत्र ब्रह्म की अवस्थिति में विश्वास रखने वाले ब्रह्म के बिना किसी की सिद्धि नहीं समझते, ऐसे तत्त्वज्ञ लोग ही अमरत्व को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पतिदेव के द्वारा उपदेश प्राप्त कर कृतकृत्य बनी मैत्रेयी पति के संन्यास-स्वीकार के बाद भी ब्रह्म चिन्तन करती हुई सानन्द रहने लगी।

स्थालीपुलाकन्याय से समझना चाहिए कि मैत्रेयी जैसी ब्रह्मनिष्ठ महिलाएँ इस देश में बहुत थीं। यह याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद बृहदारण्यक उपनिषद् के दूसरे अध्याय में वर्णित है।

याज्ञवल्क्य के वैदुष्य की निकषोपल विदुषी गार्गी– इसी उपनिषद् के तीसरे अध्याय में विदेह के राजा जनक के द्वारा बहुदक्षिण नामक यज्ञ के अन्त में बहुत देशों से आए ब्राह्मणों के बीच वरिष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा के लिए एक हजार गौएँ जिनके सींग में २-१/२ पल सोना बँधा था; पुरस्कार में देने की घोषणा की गई। सभी विद्वानों से अपने को सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञ समझने वाले को यह अधिकार था कि वह इन सभी गायों को अपने घर ले जाए। अन्य किसी ने हिम्मत नहीं की। वे ही मैथिल याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा कि गायों को खोलकर घर ले चलो। तब अन्य लोगों ने विरोध किया, अब वहाँ याज्ञवल्क्य के विद्वता की परीक्षा शुरू हुई। लोगों ने अनेक प्रकार के प्रश्नों की बारी-बारी

से झड़ी लगा दी। सबको मुँह तोड़ उत्तर दिये जाते रहे। सटीक समाधान पाकर सभी देश के विद्वान् अवाक होकर बैठ जाते थे। मिथिलासूर्य महान् याज्ञवल्क्य के सामने किसी की कुछ न चली। याज्ञवल्क्य की एक ब्रह्मवादिनी शिष्या गार्गी थी वह इतनी विदुषी थी कि उस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ सी बन गई। जब सभी लोग अपने प्रश्नों के उचित उत्तर पाकर चुप हो गए तो उसने सभी पराजितों से परामर्श कर स्वयं और दो प्रश्न करने की अनुमति ली और इन दो प्रश्नों का भी यदि याज्ञवल्क्य जी समुचित समाधान करते हैं तो इस पुरस्कार में हम किसी का दावा नहीं रहेगा, ऐसी स्वीकृति भी सबसे ली, उन प्रश्नों का भी जब सही उत्तर मिला तब इस विदुषी गार्गी ने सबके सामने घोषणा कर दी कि अब इस पुरस्कार के हम कोई भी अधिकारी नहीं, इसमें केवल याज्ञवल्क्य का ही एकाधिकार है। इस प्रकार गार्गी का वैदुष्य अद्भुत सिद्ध होता है। गार्गी वास्तव में महर्षि याज्ञवल्क्य की विद्वता के परखने में निकषोपल (कसी लगाने वाला पत्थर) बनी। इन्हीं की वाग्मिता से ही याज्ञवल्क्य को वह ब्रह्मोद्य (ब्रह्मवादी को मिलने वाला पुरस्कार) ससम्मान मिला था।

मिथिला की आध्यात्मिक भावधारा से लंका सींचने वाली सीता

मिथिला की ही नहीं विश्व की नारियों में सीता जी का स्थान सर्वोच्च है। यद्यपि सीता जी परब्रह्मस्वरूपिणी जगज्जननी भगवती ही हैं, तथापि नारी रूप में आने के कारण उन्होंने भी परब्रह्म राम के तरह मानव लीलायें की। वे मिथिला की थीं इसीलिए उन्हें मैथिली कहा जाता है। मिथिला के आध्यात्मिक दर्शन का पूरा प्रभाव इनके जीवन में दिखता है। भारतीय मान्यता में क्षमा बहुत बड़े परमावश्यक मानव गुणों में लिया जाता है। भगवान् राम की अपेक्षा भी सीता में यह क्षमा गुण अत्यधिक है। इसकी सिद्धि लिए हम वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के ११४वें अध्याय के प्रसंग पर जायेंगे।[१]

लङ्काविजय के बाद रामाज्ञा से सीता को आश्वस्त करने गये हनुमान् ने पहले रावण की अनुकूल न बनने के कारण सीता को विविध मानसिक कष्ट देने वाली सीतारक्षिका राक्षसियों को दण्ड देने की बात कहने पर निम्नलिखित तीन श्लोकरत्नों के द्वारा सीता ने अपने मैथिल अध्यात्मवादी क्षमाप्रधान विचारधारा को स्पष्ट किया है। श्लोक इस प्रकार हैं–

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।
न नरः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः।।

१. वाल्मीकीय रामायण, काण्ड- ६, अध्याय- ११४, श्लोक- ४३-४५

लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्।।

इन श्लोकों का सारांश यह है कि "आत्मतत्त्व को जानने वाले आर्यजन को कभी भी अज्ञानी दूसरे की आज्ञा पर चलने वालों पर क्रोध नहीं करना चाहिये। ठीक से ढूँढा जाये तो कोई भी ऐसा नहीं मिलेगा जो किसी न किसी के प्रति कुछ न कुछ अपराध न किया हो, अतः छोड़ दो इन बेचारियों को। सामर्थ्य के आने पर भी अपराधियों को बचाना ही क्षमा है। सज्जनों को हमेशा क्षमाशील रहना चाहिए। जो कुछ हमने इन लोगों के द्वारा कष्ट भोगे वे तो हमारे ही प्रारब्ध के फल के अलावा और कुछ नहीं थे। हम आर्यों को किसी भी स्थिति में अपनी क्षमाशीलता को गवाँकर क्रूर राक्षसपन के वश में नहीं होना है। ऐसा हो तो हमारी जातीय विशेषता ही क्या रही ? फिर तो हम भी वही दुनिया को कष्ट देकर आनन्द लूटने वाले राक्षस ही तो हुए। यद्यपि पिछली मेरी कष्टमयी स्थिति को इन लोगों ने अनावश्यक ढंग से और गहराया था, मेरे को कहीं भागने या किसी से विशेष बात करने से रोकना मात्र उनका राजकीय कर्त्तव्य था, इससे काफी आगे बढ़कर रावण की सेज बनने के लिए हम जैसी सती महिला को विवध प्रकार से फुसलाना तथा न मानने पर भयावह धमकी देना अवश्य ही इन लोगों का घोर अपराध था। इस प्रकरण को आपने पिछले दिनों अपने आँखों से ही देखा, अतः आज इन लोगों को दण्डित करना चाहते हैं। हे हनुमन् ! यह नीतिशास्त्र के अनुरूप भी है। आप श्रीराम के परम आराधक हैं, आप में अतुल रामभक्ति है। उन अत्यन्त विषम परिस्थिति के दिनों में आपने मेरे साथ रावण के बर्ताव को देखा और हमको परखा, साथ ही हमारे आँखों एवं चेहरे से छलकने वाली राम के प्रति अनन्य प्रीति एवं परतन्त्रता को भी गौर किया। आप तो उसी समय भी इन लोगों को दण्डित करना चाहे, पर कुछ सोचकर सहम गये, अब रावण इस लोक में नहीं है, अतः उचित दण्ड देने का अवसर आप को दिखायी दे रहा है। तीव्र प्रतिकार की भावना उबल रही है। ठीक है एक रामभक्त दूसरे रामभक्त के कष्ट को समझे, पर हम हिमालय की तलहटी की मैथिली हैं, हमारे हिमालय जितनी भी क्रूर हिमपात या वर्षा अनवरत होती रहे वे कभी डिगने वाले नहीं। उनमें कोई अन्तर आने वाला नहीं। इस व्यवहार से वे हमें सहनशीलता व क्षमा का पाठ पढ़ाते रहते हैं। हमें उबलना नहीं, सहम जाना चाहिए। क्षमा ही सबसे बड़ी साधुता है। यही असली आत्मवादियों की पहचान है हमें अपना पहचान कभी गवाँना नहीं है। हनुमन् ! मैं आपकी रामभक्ति एवं मेरे प्रति श्रद्धा खूब समझ रहीं हूँ, पर मेरे कहने से आप इनको क्षमा कर दीजिए।

इस प्रकार मैथिली सीता ने अपने अध्यात्मवादी दर्शन का परिचय देकर अपनी क्षमा-प्रधान विचारधारा से क्रूर राक्षसों की नगरी लंका में निरपराध पर जघन्य अपराध करने वाली राक्षसियों को विना शर्त पूरी क्षमा प्रदान कर अपने मैथिलदार्शनिक चरित्र को स्पष्ट किया है।

मिथिला की वारवधू विष्णुभक्ता पिङ्गला

मिथिला समग्र में अध्यात्मवादी भक्तिमयी विचारधारा की अनुगामिनी दिखती है। श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के ७, ८ और ६ अध्याय में अवधूतोपाख्यान है। महाराज यदु को अवधूत रूप में भगवान् दत्तात्रेय मिल गए। अच्छे शरीर, यौवन, रूप, विद्या, वाणी और बल के रहने पर भी इन्हें काम, लोभ, मोह आदि कभी नहीं सताते थे और वे सदा आनन्दमग्न रहते थे। ऐसा देखकर यदु का आश्चर्य हुआ, वे बोले– आप सर्वसमर्थ होकर भी किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रखते, किसी की प्राप्ति के लिए कुछ भी चेष्टा नहीं करते, हमेशा आनन्द-सागर में विलीन रहते हैं। इसका कारण बताइए ?

तब दत्तात्रेय जी बोले– मैंने चौबीस गुरु बनाए हैं। इन्हीं गुरुओं ने जो-जो उपदेश दिया वही-वही मैं करता हूँ। पृथ्वी, वायु, आकाश आदि मेरे गुरु हैं। इन्हीं गुरुओं की वृत्ति ग्रहण करने से मुझमें विषय-वैराग्य तथा आनन्दमयता की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार उन्होंने राजा यदु को अपने सभी गुरुओं से प्राप्त उपदेश के बारे में बताया। गुरुओं में मिथिला निवासिनी पिङ्गला नाम की एक वारवधू (वेश्या) भी थी। विदेह की राजधानी में यह पिङ्गला नाम की वारवधू रहती थी। वह एक दिन रात के कुछ बीतने के बाद सुन्दर परिधान में सजकर किसी धनिक के आगमन की प्रतीक्षा में अपने द्वार पर अकेली निकल पड़ी, कतिपय लोग रास्ते से आए और निकलते गए, आज इसके ओर किसी ने झाँका तक नहीं, उनकी दृष्टि अपनी ओर पड़े इसलिए उसने अनेक चेष्टाएँ की, आज उसे कोई ताक तक नहीं रहा था, विलम्ब से ही सही, कोई न कोई तो आ ही जाए, इसी आशा में रात आधी बीत गई, उसके लिए कोई नहीं आया, वह भले ही वेश्या थी, पर मिथिला के भगवद्भक्ति तथा अध्यात्मवाद से अछूती नहीं थी। सत्क्षेत्र का प्रभाव उभर आया, धीरे-धीरे वैराग्य सूर्य की लाली मानसपटल पर खिलने लगी। जब ईश्वर को अपना भक्त लौकिक व्यवसाय में फँसा दिखता है, तब वे उसे अपनी ओर खींचने के लिए उसके व्यवसाय में गम्भीर विघ्न पैदाकर भक्त में उसको त्यागने की इच्छा ला देते हैं। पिङ्गला भी आज इसी भगवान् की कृपा की विषय बनी थी। आज उसे अपने इस खानदानी पेशे से इतना वैराग्य हुआ कि अपने अतीत जीवन के क्षुद्र भोग्यविषय को याद करने पर भी लज्जा का अनुभव करने लगी।

वह सोचने लगी कि "मेरी कितनी बड़ी नासमझी है, जो कि इन दुष्ट क्षुद्र पुरुषों से मैं सुख की कामना करती थी, जो जीवन में सुख को कभी देख ही नहीं पाए, वे क्या हमें सुख दे सकते थे ? नहीं।

आत्मा को सुख देने वाले पति तो अच्युत भगवान् हैं। संसार के च्युत व्यक्ति हमारे पति कैसे ? जो प्रभु अनन्त और अखण्ड रति प्रदान कर सदा सम्पूर्णानन्द-प्रवाह में जीव को निमग्न कर सकते हैं, उन्हें छोड़कर अत्यन्त दुर्गन्धमय मलमूत्रादि अमेध्य वस्तु से भरे

शरीर को पति बनाकर सुख पाने की इच्छा कर हमने अपने उत्तम मनुष्य योनि को व्यर्थ किया है। इस विदेह नगरी को हमने कलुषित किया है। यहाँ मैं ही एक अकेली ऐसी व्यभिचारिणी हूँ, जिसनें अपने जन्मसिद्ध पति परमेश्वर को तजकर अन्य तुच्छ लोगों के पीछे-पीछे भटककर जीवन बिगाड़ा है, मैं सब छोड़ अपने ही नित्य अच्युत परमपति ईश्वर नारायण के शरण जाकर उनके द्वारा ही आनन्दित बनूँगी। दुनिया के भोगी देवता या मनुष्यों ने आज तक अपनी पत्नियों को सुख के बहाने अनन्त दुःख ही तो दिया है, जो स्वयं दुःख के महासागर में सड़ता हुआ कराह रहा है वह बेचारा किसको क्या सुख देगा। मालूम पड़ता है कि मुझसे कभी अनजान में ही सही कोई एक सत्कर्म हुआ है, उसी के बहाने भगवान् विष्णु ने मुझ पर प्रसन्न होकर आज मेरे पास किसी को आने नहीं दिया, जिससे मुझे वैराग्य हुआ, अब मैं भगवान् के अलावा किसी की आशा से नजर नहीं खोलूँगी। आज मेरे पास किसी का न आना ही मेरे भाग्य का उदय है। अब दूसरे पुरुषों की ओर कभी न झाँककर अपने ही भीतर रहने वाले परमपति परमेश्वर के अजर-अमर नित्य दिव्य श्रीविग्रह के दर्शन-मनन में ही अपने को समर्पित करूँगी। मेरे प्रारब्ध से मुझे जो भी मिले उसी पर सन्तोष रख, अपने नित्य शाश्वत प्रियतम से रमाया करुँगी, इस स्वार्थमयी दुनिया में मेरे प्रियतम परम प्रभु के सिवा सदा परम हित करने वाला कौन हो सकता है ? हम तो संसार रूप कूप में न जाने कब से गिरे हैं, विषय भोग ने हमें इतना अन्धा बना दिया कि हमें सच्चा मार्ग दिखता ही नहीं। हमें कालरूप अजगर ने अपने मुँह के भीतर कर लिया है, अब उन मेरे नित्य प्रियतम के बिना मेरे बचने का कोई उपाय नहीं, मैं मेरे ही अपने प्रियतम परमेश्वर के शरण में जाती हूँ, वे महान् दयालु हैं, वे नहीं कहेंगे कि तुम कहाँ-कहाँ गई, क्या-क्या करती थी ? पूछ भी लेंगे तो मैं बिना बोले चुपचाप नीचा सिर कर बैठी रहूँगी। किसी हालत में मैं अब उन्हें नहीं छोड़ूँगी, अपने को छोड़कर पराए को अपनाने से जो भोगा, उसे अब नहीं भोगना है।"

इन्हीं विषयों में मीठे गीत बनाकर उस मध्य रात की निर्जनता में पिङ्गला रो-रोकर गा रही थी। स्वेच्छा से रातों दिन हर जगह तत्त्व-जिज्ञासा के साथ विचरण करने वाले मुनि दत्तात्रेय जी अपनी गुरुमाता पिङ्गला के गीत सुन रहे थे। धन्य गुरुमाता जो अपने इतने बड़े चेले को देख नहीं पाई, धन्य चेला जो अपनी गुरुमाता से अपना चेहरा छिपाकर अमूल्य ज्ञान ग्रहण कर रहा है। **"चेले ने इस पूरे प्रकरण से सार निकाला कि किसी लौकिक असमर्थ व्यक्ति की आशा में लटके रखना सबसे बड़ा दुःख है। अन्यों की आशा त्यागकर ईश्वर के भरोसे जीना परम सुख का साधन है।"** बाद में झरोखे से चुपके से चेले ने गुरुमाता जी को देखा तो वे अपनी सेज पर खर्राटे भर-भरकर निश्चिन्त गाढ़निद्रा में विलीन हैं, पहले की सारी चिन्ता अब बहुत दूर भाग चुकी है। "जो एक वारवधू भी इतनी भगवन्निष्ठ वैराग्य सम्पन्न बनी यह मिथिला का ही माहात्म्य है। आदमी

किसी प्रकार की जीविका का अवलम्बन करे, स्थानीय वातावरण का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ेगा। अतः मिथिला के वातावरण का प्रभाव इस वारवधू पर भी पड़ा। वह कहाँ से कहाँ पहुँच गई!

मिथिला के अन्य नाम

इस देश को मिथिला, विदेह और तैरभुक्त (तीरहुत) इन तीन नामों से मुख्य रूप से जाना जाता है।

विदेह

यह नाम मुख्यतया महाराज 'निमि' का है। निमि और उनके शरीर के मन्थन से हुए मिथि की कथा पहले कही गई। राजा निमि ने गुरुशाप से नष्ट हुए देह की पुनः इच्छा नहीं की। वे देहरहित विदेह ही रहना पसन्द किए। अतः इन्हें 'विदेह' कहा गया। इनकी भगवद्भक्ति अतुलनीय थी। भगवान् के भक्त इन्हें भगवान् से भी बढ़कर प्यारे थे। ऋषभदेव के पुत्र नौ योगेश्वर इनके यज्ञ के दर्शनार्थ आए तो अत्यन्त[1] विनय के साथ उनका स्वागत किया और बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे– "आप लोग भगवान् नारायण के साक्षात् पार्षद हैं। भगवद्भक्त, हम लोग जैसे सांसारिक व्यक्तियों को पवित्र करने के लिए भ्रमण करते रहते हैं। यह दुर्लभ मानव शरीर जल्दी ही नष्ट होने वाला है, इस देह से यदि भगवान् के प्यारे भक्तों का दर्शन हो जाय तो इससे बड़ा सौभाग्य कोई नहीं"। ऐसे भक्त को शोकमोहादि के कारण तथा हरिभजन-विरोधी देह की अपेक्षा नहीं थी। देवताओं की कृपा से निमि देहरहित होकर भी सभी देहधारियों के नजर में निवास किया करते थे। **एक साथ सभी की दृष्टि में रहने के लिए देहाभिमान शून्य विदेह ही होना होगा। देहाभिमानी व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा किसी एक वर्ग विशेष की दृष्टि में ही रह सकेगा, सभी की दृष्टि में नहीं।** जब तक देह का अभिमान बना रहेगा तब तक अपना पराया दिखता रहेगा। ऐसे व्यक्ति के लिए एक साथ सबकी दृष्टि में विचरण करना– सबकी आँखों का तारा बनना-असम्भव है। विदेह और निमि शब्दों से इन्हीं रहस्यों का स्फोरण हुआ जान पड़ता है। निमि के बाद के लोग भी इस देहाभिमानरहित वृत्ति के कारण विदेह ही कहे जाने लगे। धीरे-धीरे शासकों की भगवद्भक्ति तथा विदेहता देशवासी अन्य लोगों में भी संक्रमित होती गई, जिससे पूरा देश की विदेह कहलाने लगा। अतः यहाँ एक शरीर विक्रय से जीने वाली नारी भी कहती है कि– "प्रसन्न होने पर स्वयं को देने वाले अच्युत भगवान् से मैं उन्हीं

---

१. त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया। पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः।। मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान्वो मधुद्विषः। विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि।। दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।। –श्रीमद्भागवत ११/२/२७-२९

की याचना न कर अन्य लौकिक वस्तु की याचना कर रही हूँ, यह मेरे बुद्धि की बड़ी ही मूर्खता है, मेरे जैसा अज्ञानी व्यक्ति यह विदेह देश में कोई दूसरा नहीं, यह पश्चात्ताप उसमें रहने वाले आत्मविद्या की निष्ठा को व्यक्त कर रहा है। यह भी विदेहता की धारा में प्रवेशार्थिनी लग रही है। **धन्य है मिथिला की आत्मविद्या का जन-जन तक पहुँचा प्रभाव। ऐसे लोग इस देश में रहते थे अतः इस देश को 'विदेह' कह गया।"**

मिथिला

निमि के पुत्र राजा मिथि के द्वारा प्रवर्तित होने से इस देश को मिथिला कहा गया। इसके विषय में पहले ही चर्चा हुई है।

तैरभुक्त (तीरहुत)

तीरभुक्त या तीरभुक्ति शब्द का अपभ्रष्ट रूप ही आज 'तीरहुत' हुआ है। भविष्य पुराण में चर्चा इस प्रकार है–

निमेः पुत्रस्तु तत्रैव मिथिर्नाम महानभूत्।
स्वयं भुजबलैर्यन तैरहूतस्य पार्श्वतः।।
निर्मितं स्वेन नाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम्।
पुरीजननसामर्थ्यात् जनकः स च कीर्तितः।।

"निमि के योग्य पुत्र ने तिरहुत के बगल में अपने बाहुबल से अपने नाम से मिथिला नाम का उत्तम नगर बसाया, ऐसा नगर बनाने का सामर्थ्य देखकर लोगों ने इन्हें 'जनक' की उपाधि दी।" इस ग्रन्थ के अनुसार मिथिला नाम से तीरहुत (तैरभुक्त) नाम प्राचीन है, यह बात एवं नगर बसाने का सामर्थ्य होने से 'जनक' उपाधि मिलने की बात अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा भिन्न रूप से कही गई है।

तीराणां = कौशिक्यादिनदीतटानां भुक्तिः = 'भोगो यत्र स तैरभुक्तिः देशः' ऐसा समास कर आदि वृद्धि से 'तैरभुक्तिः' यह शब्द बना। अनेक नदी, कूप, कुण्ड, तालाब आदि जलस्रोतों के तट से ही यह देश बना है। यह संज्ञा सबसे प्राचीन एवं प्राकृतिक विशेषताओं को समेटने वाला लगता है। शक्ति सङ्गम तन्त्र, बृहद् विष्णु पुराण आदि में भी यह नाम आया है।

बृहद् विष्णु पुराण[1] में इस देश के इन तीनों के साथ कुल बारह नाम उल्लिखित हैं–

मिथिला तैरभुक्तिश्च वैदेहीनैमिकाननम्।
ज्ञानक्षेत्रं कृपापीठं स्वर्णलाङ्गलपद्धतिः।।

---

१. मिथिलामाहात्म्यम्, अध्याय- २, श्लोक- २२-२४



जानकीजन्मभूमिश्च निरपेक्षा विकल्मषा।
रामानन्दकरी विश्वभावनी नित्यमङ्गला।।
इति द्वादश नामानि यः पठेत् शृणुयादपि।
संप्राप्नुयाद् रघुश्रेष्ठं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।

"मिथिला, तैरभुक्ति, वैदेही-नैमिकानन, ज्ञानक्षेत्र, कृपापीठ स्वर्णलाङ्गल-पद्धति, जानकीजन्मभूमि, निरपेक्षा, विकल्मषा, रामानन्दकरी, विश्वभाविनी एवं नित्यमङ्गला, ये बारह नाम श्रद्धा से जो व्यक्ति पढ़ता या सुनता है, उसे रघुनाथ जी मिलते हैं और सभी अपेक्षित फल भी मिल जाते हैं।"

मिथिला की अन्य विशेषताएँ

मिथिला माहात्म्य के प्रथम अध्याय में ही पाँच हेतु से इस देश को प्रसिद्ध बताया है। १. निमि के द्वारा घोर तपस्या करने से इसका नाम तपोवन पड़ा, २. इसी तपोवन में पहले सोने की खान निकली जिससे इसको सुवर्णकानन भी कहा गया, ३. निमि तथा मिथि द्वारा निर्मित होना, जिससे इसका मिथिला नाम हुआ, ४. देवरात ने यहाँ आकर बहुत बड़ी तपस्या की, ५. जहाँ शिव जी का महान् धनुष बहुत[1] दिनों तक रहा, इसलिए इस नगरी को शाम्भवी भी कहते हैं।

इसी प्राचीन मिथिला राज्य के अन्तर्गत स्थित कोशी क्षेत्र में– जो नेपाल के विराट नगर के पास है– भगवान् ने वराह अवतार ग्रहण किया था, यहीं वेदमाता गायत्री को महामुनि विश्वामित्र ने अपने मानसपटल पर उद्भूत पाया था, वराह पुराण, वाल्मीकि रामायण आदि ग्रन्थों में इस सब विषयों का विस्तृत वर्णन है। इसी मिथिला के पश्चिम में गण्डकी (नारायणी) के तट पर भगवान् वाल्मीकि महर्षि का आश्रम था, जहाँ राम परित्यक्ता सीता ने युगल किशोर लव-कुश को उत्पन्न किया, जिन दोनों ने महर्षि वाल्मीकि की सेवा से श्रीमद्रामायण को सर्वप्रथम पाया और महर्षि के साथ श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में जाकर विश्व भर से आए सभी लोगों को रामायण सुनाकर मन्त्रमुग्ध किया। इस प्रकार गायत्री और आदिकाव्य रामायण की अवतार तथा प्रचार भूमि होने से इस देश की महिमा बढ़ गई है।

इस प्रकार संक्षेप में मिथिला के माहात्म्य को सूत्रित किया गया।

---

१. पञ्चभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगतीतले। निमिर्नाम महाराज इक्ष्वाकुतनयो नृपः। तेन तप्तं तपो घोरं तेन ख्यातं तपोवनम्। सुवर्णखनिरुत्पन्ना पूर्वस्मिंस्तु तपोवने। सुवर्णकाननं नाम तेन ख्यातिपथागतम्। पुनस्तथैव नगरी निर्मिता निमिना मुने। तत्र जातो मिथिर्नाम तेन सा मिथिलाभवत्। देवराततपोभूमिः शिवतुष्टिकरी मता। यत्र प्राप्तं धनूरत्नं तेन सा शाम्भवी बभौ।

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास के त्रयोदश खण्ड पुराण वाङ्मय में महापुराणों से लेकर स्थलपुराण एवं माहात्म्य तक का क्रमबद्ध इतिहास परक विकास प्रस्तुत किया गया है। पुराण शब्द का अर्थ-निर्वचन पुराण की प्राचीनता, प्रामाणिकता तथा महत्ता का विश्लेषण तुलनात्मकदृष्टि से किया गया है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धर्मशास्त्रीय दृष्टि से समस्त पौराणिक विषयों का पर्यालोचन, पुराण साहित्य की महनीयता और व्यापकता पर विद्वान् लेखकों ने विस्तृत विचार किया है।

इस खण्ड में सर्वप्रथम पुराण इतिहास वाङ्मय के स्वरूप विश्लेषण और अठारह महापुराणों का क्रम श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार प्रस्तुत किया गया है। इस पर्याय में श्रीमद् देवीभागवत एवं शिवपुराणों की चर्चा की गई है। महापुराणों के विमर्श के बाद उपपुराण एवं औपपुराण को स्थान दिया गया है। अन्तिम पर्याय में स्थल पुराण एवं माहात्म्य का उल्लेख है।

जिन पुराणों के विषय में स्वतन्त्र लेख नहीं हैं उनका परिचय शिवसंकल्प में संक्षेप में सूचित है।

इस खण्ड में मुख्यतः पुराणों का काल, पुराण लक्षण, साहित्यिक विमर्श, दार्शनिक तत्त्व निरूपण, भाषा, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक स्थिति की समीक्षा की गई है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पुराणों में उपलब्ध पाण्डुलिपियों का समीक्षात्मक एवं गवेषणापूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत है।